❀ श्रीः ❀

❀ शिवमहापुराणकी विषयानुक्रमणिका ❀

(२)

४-कोटिरुद्रसंहिता

शिवपुराणके द्वितीयखण्ड की विषयसूची समाप्त।

Printed and Published by Pt. Ramchandr Sharma
at the Sanatan Dharm Press, Moradabad.

॥ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥



अथ-

श्रीशिवमहापुराण

अथ रुद्रसंहितायां चतुर्थः कुमारखण्डः

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पू॒र्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् । सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥ १ ॥ नारद उवाच । विवाहयित्वा गिरिजां शङ्करो लोकशङ्करः । गत्वा स्वपर्वतं ब्रह्मन् किमकार्षीद्धि तद्वद ॥ २ ॥ कथं हि तनयो जज्ञे शिवस्य परमात्मनः । यदर्थमात्मारामोऽपि समुवाह शिवां प्रभुः ॥३॥ तारकस्य कथं ब्रह्मन् वधोऽभूद्देवशङ्कर । एतत्सर्वमशेषेण वद कृत्वा दयां मयि ॥ ४ ॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य प्रजापतिः । सुप्रसन्नमनाः स्मृत्वा शङ्करं प्रत्युवाच ह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच । चरितं

श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः । वन्दना करनेसे मनमें प्रसन्न होने वाले, प्रेम को परम प्रिय समझने वाले, प्रेमके दाता, पूर्णस्वरूप, भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करने वाले और पूर्णैश्वर्यके एकमात्र आधार, सत्य, सत्यमय और त्रिकालमें सत्य ऐश्वर्य वाले, सत्यप्रिय और सत्यके दाता तथा ब्रह्मा विष्णु भी जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे कृपावश शरीर धारण करने वाले शङ्कर की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! संसारका कल्याण करने वाले शंकरने गिरिजासे विवाह कर अपने पर्वत पर जानेके अनन्तर क्या किया ? उसको आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ परमात्मा शिवके पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ था, क्योंकि-प्रभुने आत्माराम होने पर भी इसी लिये विवाह किया था ॥ ३ ॥ और हे देवताओंका कल्याण करने वाले ब्रह्मन् ! तारकका वध किस प्रकार हुआ था, इस सबको मुझ पर कृपा करके कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी कहते हैं, कि-नारदजीकी इस बातको सुन कर प्रजापति ब्रह्मा मनमें प्रसन्न हुए और शंकरका स्मरण करके इस प्रकार

शृणु वक्ष्यामि शशिमौलेस्तु नारद । गुहजन्मकथां दिव्यां तारकासुरसद्वधम् ॥ ६ ॥ श्रूयतां कथयाम्यद्य कथां पापप्रणाशिनीम् । यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो ध्रुवम् इदमाख्यानमनघं रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ८ ॥ सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजं च कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥ कैलासमागत्य शिवां विवाह्य शोभां प्रपेदे नितरां शिवोऽपि । विचारयामास च देवकृत्यं पीडां जनस्यापि च देवकृत्ये ॥ १० ॥ शिवस्स भगवान् साक्षात्कैलासमगमद्यदा । सौख्यं च विविधं चक्रुर्गणास्सर्वे सुहर्षिताः ॥ ११ ॥ महोत्सवो महानासीच्छिवे कैलासमागते । देवास्स्वविषयं प्राप्ता हर्षनिर्भरमानसाः ॥ १२ ॥ अथ शम्भुर्महादेवो गृहीत्वा गिरिजां शिवाम् । जगाम निर्जनं स्थानं महादिव्यं मनोहरम् ॥१३॥ शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । अद्भुतां तत्र परमां भोगवस्त्वन्वितां शुभाम् ॥ १४ ॥ स रेमे तत्र भगवान्शम्भुर्गिरिजया सह । सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन मानदः ॥ १५ ॥ दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण

कहने लगे ॥५॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे नारद ! सुनो, मैं चन्द्रभालके चरित्र, गुह (स्वामिकार्तिकेय) के जन्मकी दिव्य कथा और तारकासुरके श्रेष्ठ वध का वर्णन करता हूँ ॥६॥ सुनो, अब मैं सब पापोंको दूर करने वाली कथा कहता हूँ, इस कथाको सुननेसे मनुष्य पापोंसे अवश्यमेव छूट जाते हैं ॥७॥ यह आख्यान पापरहित रहस्यमय और परम अद्भुत है, पाप और सन्ताप को दूर करने वाला है और सब विघ्नोंको नष्ट करने वाला है ॥ ८ ॥ इस आख्यानको सुननेसे सब प्रकारके मङ्गलोंकी प्राप्ति होती है, यह सब श्रवण करने योग्य कथाओंमें मनोहर है, कथाओंका सार–रूप है, सुख देने वाला है, मोक्षका बीजरूप है और कर्मकी मूलको काटने वाला है ॥ ९ ॥ शिव शिवाके साथ विवाह कर कैलासमें आकर परम शोभा पाने लगे, फिर उन्होंने देवताओंकी पीड़ाका विचार किया और इस देवकृत्यके न होनेसे जनता में भी जो पीड़ा फैल रही थी, उस पर भी विचार किया ॥ १० ॥ इधर भगवान् शिवके कैलासमें पहुँचने पर गणोंने भी हर्षमें भर कर अनेक प्रकार के सुखदायक कर्म किये ॥ ११ ॥ इस प्रकार शिवके कैलास पर आने पर बड़ा भारी उत्सव हुआ और देवता भी चित्तमें प्रसन्न होकर अपने २ स्थानों को चले गए ॥ १२ ॥ उस समय शम्भु कल्याणकारिणी गिरिजाको लेकर एक महादिव्य मनोहर निर्जन स्थानमें चले गए ॥ १३ ॥ वहाँ उन्होंने पुष्प और चन्दनसे अलंकृत तथा उपभोगमें आने योग्य वस्तुओंसे सम्पन्न एक परम अद्भुत् शुभ रतिशय्या बनाई ॥ १४ ॥ मान देने वाले भगवान् शंभु ने वहाँ गिरिजाके साथ देवमानसे सहस्र वर्ष तक रमण किया ॥ १५ ॥

लीलया मूर्च्छितः शिवः । मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥ १६ ॥ हरे भोगप्रवृत्ते तु लोकधर्मप्रवर्तिनि । महान् कालो व्यतीयाय तयोः क्षण इवानघ ॥ १७ ॥ अथ सर्वे सुरास्तात एकत्रीभूय चैकदा । मन्त्रयांचक्रुरागत्य मेरौ शक्रपुरोगमाः ॥ १८ ॥ सुरा ऊचुः । विवाहं कृतवाञ्छम्भुरस्मत्कार्यार्थमीश्वरः । योगीश्वरो निर्विकारो स्वात्मारामो निरंजनः ॥ १९ ॥ नोत्पन्नस्तनयस्तस्य न जानीमोऽत्र कारणम् । विलम्बः क्रियते तेन कथं देवेश्वरेण हा ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवा नारदादेव दर्शनात् । बुबुधुस्तन्मितं भोगं तयोश्च रममाणयोः ॥ २१ ॥ चिरं ज्ञात्वा तयोर्भोगं चिंतामापुस्सुराश्च ते । ब्रह्माणं मां पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२२॥ तं नत्वा कथितं सर्वं मया वृत्तान्तमीप्सितम् । सन्तस्थिरे सर्वदेवाश्चित्रे पुत्तलिका यथा ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच । सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन शंकरः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो योगी विरमते न हि ॥ २४ ॥ भगवानुवाच । चिन्ता नास्ति जगद्धातस्सर्वं भद्रं भविष्यति । शरणं व्रज देवेश शंकरस्य महाप्रभोः ॥ २५ ॥ महेशशरणापन्ना ये जना मनसा मुदा । तेषां प्रजेश भक्तानां न कुतश्चिद्भयं क्वचित् ॥

लीलावश शिव दुर्गाके अङ्गका स्पर्श होनेसे मूर्छितसे होजाते थे और शिवके स्पर्शसे मोहमें पड़ी हुई गिरिजाको भी दिन रातका कुछ पता न रहा १६ हे निष्पाप ! लोकधर्मके अनुसार प्रवृत्त होने पर उन दोनोंको बहुतसा समय क्षण भरकी समान व्यतीत होगया ॥ १७ ॥ हे तात ! तब इन्द्र आदि सब देवताओंने मेरुपर्वत पर एकत्रित होकर सलाह की ॥१८॥ देवताओंने कहा, कि-योगीश्वर शम्भुने हमारे कामके लिये ही विवाह किया था, क्योंकि-वैसे तो वह स्वात्माराम निर्विकार और निरञ्जन हैं ॥१९॥ परन्तु उनके पुत्र क्यों नहीं हुआ, इसका कोई कारण हमें मालूम नहीं होता ? न जाने वह देवेश्वर विलम्ब क्यों कर रहे हैं ? हा ! ॥ २० ॥ इसी समय देवताओंने नारदजीसे उन दोनोंके इतने कालके भोगका वृत्तान्त सुना ॥ २१ ॥ उन दोनोंके भोगको चिरकाल हुआ समझ कर देवताओंको चिंता हुई और वे मुझे साथमें लेकर नारायणके पास पहुँचे ॥ २२ ॥ उस समय सब देवता चित्रमें खिची हुई पुतलियोंकी समान खड़े रहे, तब मैं उनको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कहने लगा ॥ २३ ॥ कि-निश्चेष्ट रहने वाले योगी शंकर सहस्र दिव्य वर्ष होनेको आए रतिमें परायण हैं. विराम नहीं लेते ॥ २४ ॥ भगवान्ने कहा, कि-हे जगत्के धातः ! आप कुछ चिन्ता न करें, हे देवेश ! आप महाप्रभु शङ्करकी शरण लें, उससे सब कल्याण होगा ॥ २५ ॥ हे प्रजापति ! जो प्राणी आनन्द भरे मनसे शंकरकी शरण लेते हैं, उन भक्तोंको कहीं पर भी भय नहीं होता ॥२६॥ हे विधे ! समय आने पर भृंगारका

शृङ्गारभङ्गस्समयं भविता नाधुना विधे। कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धिं प्राप्नोति नान्यथा
शम्भोस्संभोगमिष्टञ्चो भद्रां कर्तुमिहेश्वरः। पूर्णे वर्षसहस्रे च स्वेच्छया हि विरंस्यति॥
स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः। तस्य स्त्रीपुत्रयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि २९
भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह। प्रयात्यन्ते कालसूत्रं वर्षलक्षं स पातकी॥३०॥
रम्भायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ। महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह॥३१॥
पुनरन्यां स संप्राप्य निषेव्य शुभपाणिकाम्। दिव्यं वर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम्॥
घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान् गुरुः। षण्मासाभ्यन्तरे चन्द्रस्तस्य पत्नीं जहार
ह॥३३॥ पुनश्शिवं समाराध्य कृत्वा तारामयं रणम्। तारां सगर्भां संप्राप्य विजहौ
विरहज्वरम्॥३४॥ मोहिनीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ। महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्री-
विच्छेदो बभूव ह॥३५॥ हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषलया सह संयुतं। वारयामास निश्लिष्टं
निर्जने तत्फलं शृणु॥३६॥ भ्रष्टः स्त्रीपुत्रराज्येभ्यो विश्वामित्रेण ताडितः। ततश्शिवं

भंग होगा, इस समय उसका समय नहीं है, और समयानुसार किया हुआ काम ही सिद्ध होता है, अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती ॥२७॥ शम्भुके प्रिय संभोगको भंग करनेकी शक्ति किसमें है? जब सहस्र वर्ष पूर्ण होजावेंगे, तब वे अपनी इच्छासे ही विरत होजावेंगे॥ २८ ॥ जो उपाय करके स्त्री और पुरुषकी रतिको भंग करता है, उसको अनेक जन्मों तक स्त्री और पुत्रका दुःख (भेद) सहना पड़ता है॥ २९ ॥ ऐसे पातकीका ज्ञान नष्ट होजाता है, कीर्ति मिट जाती है, लक्ष्मी क्षीण होजाती है, इस लोकमें ऐसी अवस्था भोग कर वह पातकी देहपात होने पर लाख वर्ष तक कालसूत्र नरकमें गिरता है॥ ३० ॥ ये इन्द्र रम्भाके साथ रतिमें परायण थे, महामुनि दुर्वासाने इनको रतिसे हटा दिया, इस लिये इनको स्त्रीका वियोग होगया ॥३१॥ फिर इन्द्रने एक दूसरी शुभ हस्तवाली स्त्रीको स्वीकार कर दिव्य सहस्र वर्ष तक रमण करके विरहज्वरको शान्त किया था ॥३२॥ और बृहस्पतिने घृताचीके साथ संभोग करते हुए इन्द्रको रोक दिया था, इस लिये छः महीनेमें ही चन्द्रमाने उनकी पत्नीको हर लिया था॥ ३३ ॥ तब उन्होंने शिवकी आराधना कर तारामय-संग्राम कर सगर्भा ताराको पाकर विरहज्वरको शान्त किया था॥ ३४ ॥ महर्षि गौतमने मोहिनीके साथ सम्भोग करते हुए चन्द्रमाको रोका था, इस लिये उनको स्त्रीका वियोग भोगना पड़ा था॥ ३५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने वृषलीके साथ एकांतमें सम्भोग करते हुए हालिकको रोका था, उसका जो फल हुआ था, उसको तुम सुनो॥ ३६ ॥ वह राजा विश्वामित्रके ताड़ना करने पर स्त्री पुत्र

समाराध्य मुक्तो भूतो हि कश्मलात् ॥३७। अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयतम् । न भिया वारयामासुस्सुरास्तं चापि केचन ॥ ३८ ॥ सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान् विधे । निषेकफलदो वै स विषेक: केन वार्यते ॥ ३९ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रञ्च शम्भोः संभोगकर्म तत् । पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र सुरेश्वराः ॥ ४० ॥ येन वीर्यं पतेद् भूमौ तत् करिष्यथ निश्चितम् । तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दनामा प्रभोस्सुत: ।। ४१ ॥ अधुना स्वगृहं गच्छ विधे सुरगणैस्सह । करोतु शंभुस्संभोगं पार्वत्या सह निर्जने ।।४२।। ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा कमलाकान्त: शीघ्रं स्वान्त:पुरं ययौ । स्वालयं प्रययुर्देवा मया सह मुनीश्वर ॥ ४३ ।। शक्तिशक्तिमतोश्चाथ विहारेणाति च क्षिति: । भाराक्रान्ता चकम्पे सा सशेषापि सकच्छपा ।।४४।। कच्छपस्य हि भारेण सर्वाधारस्समीरण: । स्तंभितोऽथ त्रिलोकाश्च बभूवुर्भयविह्वलाः ॥ ४५ ॥ अथ सर्वे मया देवा हरेश्च शरणं ययु: । सर्वं निवेदयांचक्रुस्तद्वृत्तं दीनमानसा: ।४६। देवा ऊचु: । देवदेव रमानाथ सर्वावनकरप्रभो । रक्ष न: शरणापन्नान् भयव्याकुलमानसान् ॥ ४७ ॥ स्तम्भित'स्त्र्गतप्राणो न जाने केन

और राज्यसे भ्रष्ट होगया था, फिर शिवकी आराधना करने पर उसका दुःख मिटा था ।। ३७ ।। इसी लिये वृषलीके साथ सम्भोगमें मग्न द्विजश्रेष्ठ अजामिलको भयके कारण देवताओंने नहीं हटाया था ।। ३८ ।। हे विधे ! सब निषेक (गर्भाधान) से साध्य है, निषेक ही बलवान् है, गर्भाधानमें कौन विघ्न डाला करता है ।। ३६ ।। यह शम्भुका सम्भोग दिव्य सहस्र वर्षों के लिये होरहा है, इस लिये हे श्रेष्ठ देवताओं ! जब सहस्र वर्ष पूर्ण होजावें, तब तुम वहाँ जाकर ।। ४० ।। जिस प्रकार शम्भुका वीर्य पृथ्वी पर गिरे वैसा करना, उस वीर्यसे प्रभुके स्कन्द नाम वाला पुत्र उत्पन्न होगा ।४१। हे विधे ! अब तुम सब देवताओंको लेकर अपने स्थानको जाओ और शंभु को निर्जन स्थानमें पार्वतीके साथ भोग करते रहने दो ।। ४२ ।। ब्रह्माजी कहते हैं, कि–कमलाकान्त इस प्रकार कह कर शीघ्र ही अपने अन्तःपुरमें घुस गए और हे मुनीश्वर ! देवता भी मेरे साथ २ अपने २ स्थानोंको चले गए ।। ४३ ।। तदनन्तर शक्ति और शक्तिमान्के घोर विहारके कारण भार से दब कर पृथ्वी शेष और कच्छपके साथ ही साथ काँपने लगी ।। ४४ ।। कच्छपके भारके कारण सबका आधार पवन स्तम्भित होगया और त्रिलोकी के जीव भयसे विह्वल होगए ।।४५।। तब मैं और सब देवता हरिकी शरण में पहुँचे और चित्तमें दीन होकर सब वृत्तान्त कहा ।। ४६ ।। देवताओंने कहा, कि–हे देवदेव ! हे रमानाथ ! हे सबकी रक्षा करने वाले प्रभो ! आप हम भयभीत मन वाले शरणागतोंकी रक्षा करें ।। ४७ ।। त्रिलोकीके प्राण

हेतुना । व्याकुलं मुनिभिर्लोकैस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४८॥ ब्रह्मोवाच॥ इत्युक्त्वा सकला देवा मया सह मुनीश्वर । दीनास्तस्थुः पुरो विष्णोर्मौनीभूतास्सुदुःखिताः ॥ ४९ ॥ तदा कर्ण्य समादाय सुरान्नः सकलान् हरिः । जगाम पर्वतं शीघ्रं कैलासं शिववल्लभम् ५० तत्र गत्वा हरिर्देवैर्मया च सुरवल्लभः । ययौ शिववरस्थानं शंकरं द्रष्टुकाम्यया ॥५१॥ तत्र दृष्ट्वा शिवं विष्णुर्न सुरैर्विस्मितोऽभवत् । तत्र स्थितान् शिवगणान् पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ५२ ॥ विष्णुरुवाच । हे शांकराः शिवः कुत्र गतस्सर्वप्रभुर्गणाः । निवेदयत नः प्रीत्या दुःखितान्वै कृपालवः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सामरस्य हरेर्गणाः । प्रोचुः प्रीत्या गणास्ते हि शंकरस्य रमापतिम् ॥ ५४ ॥ शिवगणा ऊचुः । हरे शृणु शिवप्रीत्या यथार्थं ब्रूमहे वयम् । ब्रह्मणा निर्जरैस्साद्धं वृत्तान्तमखिलं च यत् ५५ सर्वेश्वरो महादेवो जगाम गिरिजालयम् । संस्थाप्य नोऽत्र सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥५६॥ तद्गुहाभ्यन्तरे शम्भु किं करोति महेश्वरः । न जानीमो रमानाथ व्यतीयुर्बहवस्समाः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मोवाच । श्रुत्वेति वचनं तेषां स विष्णुस्सामरो मया । विस्मि-

---

न जानें क्यों स्तम्भित होरहे हैं, मुनियोंसहित चराचर त्रिलोकी व्याकुल होकर चित्रलिखितसी होरही है ॥४८॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–हे मुनीश्वर ! मैं और सब देवता इस प्रकार कह विष्णुके सामने दुःखित होकर खड़े हो गए ॥ ४९ ॥ इस बातको सुन विष्णु हम सबको साथमें ले शिवके प्रिय कैलास नामक पर्वतको चल दिये ॥ ५० ॥ देवताओंसे प्रेम करने वाले हरि तहाँ पहुँच मुझे तथा अन्य सब देवताओंको साथमें ले शङ्करको देखनेकी इच्छासे शिवके श्रेष्ठ स्थानमें पहुँचे ॥५१॥ विष्णु भगवान् और देवता तहाँ पर शिवको न पाकर विस्मित हुए, तदनन्तर विष्णुने नम्रतापूर्वक तहाँ पर विराजमान शिवके गणोंसे बूझा, कि–॥ ५२ ॥ हे शंकरके गणों ! सबके प्रभु शंकर कहाँ गए हैं, हम दुःखी हैं और तुम कृपालु हो, इस लिये प्रीतिपूर्वक हमसे उनका समाचार कहो ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–देवताओंके साथ खड़े हुए विष्णुके इस वचनको सुन कर उन गणोंने रमापतिसे शंकरका यथार्थ वृत्तान्त कहा ॥ ५४ ॥ शिव–गणोंने कहा, कि–हे हरे ! हम शिवकी प्रीतिके कारण यथार्थ वृत्तान्तको कहते हैं, उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको देवता, ब्रह्माजी और आप सब सुनें ॥ ५५ ॥ अनेक प्रकारकी लीला करनेमें चतुर सर्वेश्वर महादेव हम सबको यहाँ पर स्थापित करके प्रीतिपूर्वक गिरिजाके भवनको गए हैं ॥ ५६ ॥ हे रमानाथ ! उस गुहाके भीतर महेश्वर शम्भु क्या कर रहे हैं, इस बातका बहुत वर्ष बीतने पर भी हमें कुछ पता नहीं चला ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–मेरे और देवताओंके साथ खड़े हुए

तोऽति मुनिश्रेष्ठं शिवद्वारं जगाम ह ॥ ५८ ॥ तत्र गत्वा मया देवैस्सहहरिर्देववल्लभः । आर्तवाण्या मुने प्रोचे तारस्वरतया तदा ॥ ५९ ॥ शम्भुमस्तौन्महाप्रीत्या सामरो हि मया हरिः । तत्र स्थितो मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकप्रभुं हरम् ॥ ६० ॥ विष्णुरुवाच । किं करोषि महादेवाऽभ्यन्तरं परमेश्वर । तारकार्तान्सुरान्सर्वान् पाहि नश्शरणागतान् ॥ ६१ ॥ इत्यादि संस्तुवन् शंभुं बहुधा सोऽमरैर्मया । रुरोदाति हरिस्तत्र तारकार्त्तैर्मुनीश्वर ॥ दुःखकोलाहलस्तत्र बभूव त्रिदिवौकसाम् । मिश्रितश्शिवसंस्तुत्यासुरार्त्तानां मुनीश्वर ६२

इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां कुमारखण्डे शिवविवाहवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच । तदाकर्ण्य महादेवो योगज्ञानविशारदः । त्यक्तकामो न तत्याज संभोगं पार्वतीभयात् ॥ १ ॥ आजगाम गृहद्वारि सुराणां निकटं शिवः । दैत्येन पीडितानां च शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २ ॥ देवास्सर्वे प्रभुं दृष्ट्वा हरिणा च मया शिवम् । बभूवुस्सुखिनश्चाति तदा वै भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां भगवान्भवः । प्रत्युवाच विषण्णात्मा दूयमानेन चेतसा ॥ ४ ॥ प्रणम्य सुमहाप्रीत्या नतस्कंधाश्च निर्जराः । तुष्टुवुः शंकरं सर्वे मया च हरिणा मुने ॥ ५ ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव करुणा-

विष्णु उनके इस वचनको सुन कर बड़े विस्मयमें पड़ गए और हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वह शिवद्वारको चल दिये ॥ ५८ ॥ देवबल्लभ हरि मेरे और देवताओं के साथ तहाँ पहुँच कर हे मुने ! आर्तवाणीसे ऊँचे स्वरमें कहने लगे ।५९। हे मुनिश्रेष्ठ ! तहाँ विराजमान हरि मैं और सब देवता सब लोकके प्रभु हर की प्रीतिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥६०॥ विष्णुने कहा, कि-हे परमेश्वर ! हे महादेव ! आप भीतर क्या कर रहे हैं,तारकासुरसे पीड़ित होकर शरणमें आये हुए हम सबकी आप रक्षा करिये ॥६१॥ फिर हे मुनीश्वर ! इस प्रकार नाना प्रकारकी स्तुति करके तारकासुरसे पीड़ित देवता मैं और हरि रोने लगे ६२ हे मुनीश्वर ! उस समय असुरसे पीड़ित देवताओंका शिवकी स्तुतिसे भरा हुआ दुःखमय कोलाहल होने लगा ॥ ६३ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा, कि-योग और ज्ञानमें चतुर निष्काम महादेवने इस बात को सुन कर भी पार्वतीके भयसे सम्भोगको नहीं त्यागा ॥ १ ॥ तदनन्तर भक्तवत्सल शिवशङ्कर घरके द्वार पर दैत्यपीड़ित देवताओंके निकट पधारे २ उस समय सब देवता मैं और हरि, भक्तवत्सल शिवको देख कर परम सुखी हुए ॥ ३ ॥ भगवान् भव देवताओंके उस वचनको सुन चित्तमें खिन्न हो दुखते हुए मनसे बातें करने लगे ॥ ४ ॥ हे मुने ! उस समय मैं हरि और सब देवता कन्धोंको झुका प्रेमपूर्वक प्रणाम कर शंकरकी स्तुति करने लगे ५ देवताओंने कहा, कि-हे करुणासागर देवदेव प्रभो महादेव शङ्कर ! आप

सागर प्रभो । अन्तर्यामी हि सर्वेषां सर्वं जानासि शंकर ॥ ६ ॥ देवकार्यं कुरु विभो रक्ष देवान् महेश्वर । जहि दैत्यान् कृपां कृत्वा तारकादीन् महाप्रभून् ॥७॥ शिव उवाच । हे विष्णो हे विधे देवास्सर्वेषां वै मनोगतिः । यद्भावि तद्भवत्येव कोऽपि नो तन्निवारकः यज्जातं तज्जातमेव प्रस्तुतं शृणुताऽमराः । शिवरेतस्खलितं वीर्यं को ग्रहीष्यति मेऽधुना स गृह्णीयादिति प्रोच्य पातयामास तद्भुवि । अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितस्सर्वनिर्जरैः ॥ अभक्षच्छांभवं वीर्यं चंच्वा तु निखिलं तदा । एतस्मिन्नन्तरे तत्राऽऽजगाम गिरिजा मुने ॥ ११ ॥ शिवागमविलम्बे च ददर्श सुरपुंगवान् । ज्ञात्वा तद्वृत्तमखिलं महाक्रोधयुता शिवा ॥ १२ ॥ उवाच त्रिदशान् सर्वान् हरिप्रभृतिकांस्तदा ॥ १३ ॥ देव्युवाच । रे रे सुरगणास्सर्वे यूयं दुष्टा विशेषतः । स्वार्थसंसाधका नित्यं तदर्थं परदुःखदाः ।१४। स्वार्थहेतोर्महेशानमाराध्य परमं प्रभुम् । नष्टं चक्रुर्मद्विहारं वन्ध्याऽभवमहं सुराः ।१५। मां विरोध्य सुखं नैव केषांचिदपि निर्जराः । तस्माद् दुःखं भवेद्वो हि दुष्टानां त्रिदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा विष्णुप्रमुखान् सुरान्सर्वान् शशाप सा । प्रजव-

---

सबके अन्तर्यामी हैं, अतः सब कुछ जानते हैं ॥६॥ हे विभो ! हे महेश्वर ! आप देवताओंका कार्य कर देवताओंकी रक्षा करिये और कृपा करके तारक आदि बड़े २ दैत्योंका संहार करिये ॥ ७ ॥ शिवने कहा, कि—हे विष्णो ! हे विधे ! हे देवताओं ! आपका जो मनोरथ है, वह पूर्ण हो, जो होनहार है, वह होती ही है, उसको दूर करने वाला कौन है ? ॥ ८ ॥ जो होगया सो होगया, हे देवताओं ! अब तुम वर्तमान बातको सुनो । अब मुझ शिव के स्खलित वीर्यको कौन धारण करेगा ॥ ९ ॥ जो ग्रहण करना चाहे, वह ग्रहण करे, यह कह कर उन्होंने उस वीर्यको पृथ्वी पर गिरा दिया । तब सब देवताओंके प्रेरणा करने पर अग्नि कपोत (कबूतर) का रूप धारण कर शम्भुके समस्त वीर्यको चोंचसे पीगए, हे मुने ! इसी समय तहाँ गिरिजा आपहुँचीं ॥ १० ॥ ११ ॥ वह शिवके आगमनमें विलम्ब होनेसे तहाँ आई थीं, तहाँ आ, वह देवताओंको देख सब वृत्तान्तको समझ बड़े क्रोधमें भर गईं ॥ १२ ॥ और हरि आदि सब देवताओंसे कहने लगीं ॥ १३ ॥ देवीने कहा, कि—अरे देवताओं ! तुम सब बड़े दुष्ट हो, अपने स्वार्थको ही सदा साधते हो और उस स्वार्थसाधनके लिये दूसरोंको दुःख देते रहते हो ।१४। तुमने स्वार्थके कारण परम प्रभु महादेवकी आराधना कर मेरे विहारको नष्ट कर दिया, इस प्रकार हे देवताओं ! तुमने मुझे बाँझ कर दिया ॥ १५ ॥ हे देवताओं ! मुझसे विरोध कर किसीको सुख नहीं मिल सकता इस लिये तुम दुष्ट देवताओंको अवश्यदुःख भोगना पड़ेगा ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी कहते

लन्ती प्रकोपेन शैलराजसुता शिवा ॥ १७ ॥ पार्वत्युवाच । अद्यप्रभृति देवानां वन्ध्या भार्या भवन्त्विति । देवाश्च दुःखितास्सन्तु निखिला मद्विरोधिनः ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच । इति शप्त्वाऽखिलान्देवान् विष्णवाद्यान्सकलेश्वरी । उवाच पावकं क्रुद्धा भक्षकं शिवरेतसः ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच । सर्वभक्षी भव शुचे पीडितात्मेति नित्यशः । शिवतत्त्वं न जानासि मूर्खोऽसि सुरकार्यकृत् ॥२०॥ रे रे शठ महादुष्ट दुष्टानां दुष्टबोधवान् । अभक्ष्यशिववीर्यं यन्नाकार्षीदुचितं हितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच । इति शप्त्वा शिवा वह्निं सहेशेन नगात्मजा । जगाम स्वालयं शीघ्रमसंतुष्टा ततो मुने ॥ २२ ॥ गत्वा शिवा शिवं सम्यक् बोधयामास यत्नतः । अजीजनत्परं पुत्रं गणेशाख्यं मुनीश्वर ॥२३॥ तद् वृत्तांतमशेषं च वर्णयिष्ये मुनेऽग्रतः । इदानीं शृणु सुप्रीत्या गुहोत्पत्तिं वदाम्यहम् ॥ २४ ॥ पावकार्पितमन्नादि भुञ्जते निर्जराः खलु । वेदवाण्येति सर्वे ते सगर्भा अभवन्सुराः २५ ततोऽसहंतस्तद्वीर्यं पीडिता ह्यभवन् सुराः । विष्णवाद्या निखिलाश्चाति शिवाऽज्ञानष्टबुद्धयः अथ विष्णुप्रभृतिकास्सर्वे देवा विमोहिताः । दह्यमाना ययुः शीघ्रं शरणं पार्वतीपतेः ॥

हैं, कि-क्रोधसे जलती हुई शैलराजकी पुत्री शिवा विष्णु आदि सब देवताओंसे इस प्रकार कह उनको शाप देने लगीं ॥ १७ ॥ पार्वतीने कहा, कि-आजसे देवताओंकी स्त्रियें बाँझ होजायें और मुझसे विरोध करने वाले देवता दुःखी रहें ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-सबकी ईश्वरी पार्वती विष्णु आदिक समस्त देवताओंको इस प्रकार शाप देकर, शिववीर्यका भक्षण करने वाले अग्निसे क्रुद्ध होकर कहने लगीं ॥ १६ ॥ पार्वतीने कहा, कि-हे अग्ने ! तुम सर्वभक्षी होजाओ तुम्हारा चित्त सदा पीड़ित रहा करे, तुम शिवके तत्त्वको नहीं जानते हो, तुमने देवताओंका काम किया है, अतः तुम मूर्ख हो ॥२०॥ रे शठ ! रे महादुष्ट ! अरे दुष्ट भाव वाले ! शिववीर्य तो अभक्ष है, अतः तूने शिववीर्यका भक्षण कर उचित और हितकारी काम नहीं किया है ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-पर्वतपुत्री शिवा वह्निको इस प्रकार शाप देकर, शिवको साथमें ले असन्तुष्ट भावसे शीघ्रतापूर्वक अपने घरमें चली गईं ॥ २२ ॥ हे मुनीश्वर ! शिवाने वहाँ पहुँच कर शिवको भली प्रकार समझाया और गणेश नामक दूसरे पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ हे मुने ! उसके संपूर्ण वृत्तान्तको मैं आगे कहूँगा, इस समय तुम प्रीतिपूर्वक गुहकी उत्पत्तिको सुनो, मैं कहता हूँ ॥ २४ ॥ सब देवता वेदवाणीसे पावकमें अर्पण किये हुए अन्नका भक्षण करते थे अत एव वे सब सगर्भ होगए ॥ २५ ॥ तब उस वीर्यको न सहनेके कारण देवता पीड़ित होने लगे, उस समय शिवकी आज्ञासे विष्णु आदि सब देवताओंकी बुद्धि नष्ट होगई ॥ २६ ॥ तब विष्णु आदि

शिवालयस्य ते द्वारि गत्वा सर्वे विनम्रकाः । तुष्टुवुस्सशिवं शम्भुं प्रीत्या सांजलय-स्सुराः ॥२८॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव गिरिजेश महाप्रभो । किं जातमधुना नाथ तव माया दुरत्यया ॥ २९ ॥ सगर्भाश्च वयं जाता दह्यमानाश्च रेतसा । तव शम्भो कुरु कृपां निवारय दशामिमाम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्याऽमरनुतिं परमेशश्शिवापतिः । आजगाम द्रुतं द्वारि यत्र देवाः स्थिता मुने ॥ ३१ ॥ आगतं शंकरं द्वारि सर्वे देवाश्च साच्युताः । प्रणम्य तुष्टुवुः प्रीत्या नतका भक्तवत्सलम् ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः । शम्भो शिव महेशान त्वां नतास्स्म विशेषतः । रक्ष नश्शरणापन्नान् दह्यमानांश्च रेतसा ॥३३॥ इदं दुःखं हर हर भवामो हि मृता ध्रुवम् । त्वां विना कस्समर्थोऽद्य देवदुःखनिवारणे ३४ ब्रह्मोवाच । इति दीनतरं वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् प्रभुः । प्रत्युवाच विहस्याऽथ स सुरान् भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ शिव उवाच । हे हरे हे विधे देवास्सर्वे शृणुत मद्वचः । भविष्यति सुखं वोऽद्य सावधाना भवन्तु हि ॥३६॥ एतद्वमत मद्वीर्यं द्रुतमेवाऽखिलास्सुराः । सुखिनस्तद्विशेषेण शासनान्मम सुप्रभोः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याज्ञां शिरसाऽधाय

सब देवता मोहित हो सन्तप्त होते २ पार्वतीपतिकी शरणमें पहुँचे ॥ २७ ॥ उस समय सब देवता शिवालयके द्वार पर जा नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ शिवासहित शिवकी स्तुति करने लगे ॥२८॥ देवताओंने कहा, कि–हे गिरिजाके स्वामिन् ! देवदेव प्रभो महादेव ! न जानें हमें क्या होगया है ? आपकी माया को समझना बड़ा कठिन है ॥ २९ ॥ हे शम्भो ! हम आपके वीर्यसे गर्भवान् होगए हैं और उस आपके वीर्यसे हम जले जाते हैं, इस लिये आप कृपा करके इस दशाको दूर करिये ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे मुने ! शिवाके स्वामी परमेश शिव देवताओंकी ऐसी स्तुतिको सुन कर, जहाँ पर देवता खड़े थे, उस द्वार पर शीघ्र आगए ॥ ३१ ॥ तब अच्युत और सब देवता द्वार पर आए हुए भक्तवत्सल शङ्करको मस्तक झुका कर स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥ देवताओंने कहा, कि–हे महेशान शिव शम्भो ! हम आपको विशषरूपसे प्रणाम करते हैं हम वीर्यसे संतप्त होरहे हैं, हम शरणागतोंकी आप रक्षा करिये ॥ ३३ ॥ हे हर ! इस दुःखको आप हरिये ! नहीं तो हम मरे, आपके बिना और ऐसा कौन है, जो देवताओंके दुःखको दूर कर सके ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–सुरराज भक्तवत्सल प्रभु शिव इस बड़े दीन वाक्यको सुन कर हँस कर देवताओंसे कहने लगे कि–॥३५॥ हे हरे ! हे विधे ! हे सब देवताओं ! तुम सब मेरे वचनको सुनो, तुमको सुख प्राप्त होगा, तुम सावधान हो ॥ ३६ ॥ हे सम्पूर्ण देवताओं ! तुम मेरे वीर्यको उगल दो, इस मेरी आज्ञाको माननेसे तुमको विशेष सुख प्राप्त होगा ।३७।

विष्णवाद्यास्सकलास्सुराः । अकार्षुर्वमनं शीघ्रं स्मरन्तश्शिवमव्ययम् ॥ ३८ ॥ तच्छंभुरेतस्स्वर्णाभं पर्वताकारमद्भुतम् । अभवत्पतितं भूमौ स्पृशद्द्यामेव सुप्रभम् ॥३९॥ अभवन्सुखिनस्सर्वे सुराः सर्वेऽच्युतादयः । अस्तुवन् परमेशानं शंकरं भक्तवत्सलम् ॥४०॥ पावकस्त्वभवन्नैव सुखी तत्र मुनीश्वर । तस्याज्ञां परमोऽदाद्वै शंकरः परमेश्वरः ॥४१॥ ततस्स वह्निर्विकलस्सांजलिर्नतको मुने । अस्तौच्छिवं सुखी नात्मा वचनं चेदमब्रवीत् ४२ अग्निरुवाच। देवदेव महेशान मूढोऽहं तव सेवकः। क्षमस्व मेऽपराधं हि मम दाहं निवारय ।४३। त्वं दीनवत्सलस्स्वामिन्शंकरः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावको दीनवत्सलम् ।४४। ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य शुचेर्वाणीं स शंभुः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावकं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ शिव उवाच । कृतं त्वनुचितं कर्म मद्रेतो भक्षितं हि यत् । अतो निवृत्तस्ते दाहः पापाधिक्यान्मदाज्ञया ।४६। इदानीं त्वं सुखी नाम शुचे मच्छरणागतः । अतः प्रसन्नो जातोऽहं सर्वं दुःखं विनश्यति ॥ ४७ ॥ कस्याश्चित्सुस्त्रियो योनौ

ब्रह्माजीने कहा, कि—विष्णु आदि सब देवताओंने शिवकी इस आज्ञाको शिर पर चढ़ा कर अव्यय शिवका स्मरण करते २ कै करदी ॥ ३८ ॥ वह शम्भुका वीर्य सुवर्णकी समान दमक रहा था, पर्वतकी समान अद्भुत ढेर था और वह सुन्दर प्रभा वाला वीर्य पृथ्वी पर पड़ा हुआ स्वर्गका स्पर्श कर रहा था ॥ ३९ ॥ उस समय अच्युत आदि सब देवता सुखी होगए और भक्तवत्सल परमेश शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ किन्तु हे मुनीश्वर ! पावकको सुख नहीं मिला, परमेश्वर शंकरने उसको (और ही) आज्ञा दी ॥४१॥ हे मुने ! तब वह अग्नि मनमें सुख न मान विकल हो हाथ जोड़ शिवकी स्तुति करके कहने लगा, कि–॥ ४२ ॥ हे देवदेव महादेव ! मैं मूढ़ हूँ, तथापि आपका सेवक हूँ, इस लिये मेरे अपराधको क्षमा करके मेरे दाह को दूर करिये ॥ ४३ ॥ हे स्वामिन् ! आप दीनवत्सल हैं, कल्याण करने वाले हैं, और परमेश्वर हैं । इस प्रकार चित्तको प्रसन्न करके पावकने दीनवत्सल प्रभु शंकरसे कहा ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—दीन–वत्सल प्रभु शंकरने अग्निकी इस बातको सुन चित्तमें प्रसन्न होकर अग्निसे कहा, कि–॥ ४५ ॥ यह तुमने अनुचित काम किया था, जो मेरे वीर्यका भक्षण कर लिया था, पापकी अधिकतासे ही ऐसा परिणाम भोगना पड़ा था, किन्तु अब मेरी आज्ञासे तेरा दाह दूर होजावेगा ॥ ४६ ॥ इस समय तू मेरी शरणमें आया है, अतः सुखी होगा, हे अग्ने ! मैं प्रसन्न होगया हूँ, अतः तेरा सब दुःख दूर होजावेगा ॥ ४७ ॥ अब तू किसी सुन्दर स्त्रीकी योनिमें मेरे वीर्यको यत्नपूर्वक त्याग, तब तू सुखी होगा और तेरे चित्तका

मद्रेतस्त्यज यत्नतः । भविष्यसि सुखः त्वं हि निर्दाहात्मा विशेषतः ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच । शम्भुवाक्यं निशम्येति प्रत्युवाच शनैः शुचिः । सांजलिर्नतकः प्रीत्या शंकरं भक्तशंकरम् ॥४९॥ दुरासदमिदं तेजस्तव नाथ महेश्वर। काचिन्नास्ति विना शक्त्या धर्तुं योनौ जगत्त्रये ॥ ५० ॥ इत्थं यदाऽब्रवीद्वह्निस्तदा त्वं मुनिसत्तम। शंकरप्रेरितः प्रात्थ हृदाग्निमुपकारकः ॥ ५१ ॥ नारद उवाच । शृणु मद्वचनं वह्ने तव दाहहरं शुभम् । परमानंददं रम्यं सर्वकष्टनिवारकम् ॥५२॥ कृत्वोपायमिमं वह्ने सुखी भव विदाहकः । शिवेच्छया मया सम्यगुक्तं तातेदमादरात् ॥५३॥ तपोमासस्नानकर्त्र्यस्त्रियो यास्युः प्रगे शुचे। तद्देहेषु स्थापय त्वं शिवरेतस्त्विदं महत् ॥ ५४ ॥ ब्रह्मोवाच । तस्मिन्नवसरे तत्राऽगतास्सप्तमुनिस्त्रियः । तपोमासि स्नातकामाः प्रातस्सन्नियमा मुने ॥ ५५ ॥ स्नानं कृत्वा स्त्रियस्ता हि मह्वाशीतार्दिताश्च षट् । गन्तुकामा मुने याता वह्निज्वालासमीपतः ॥५६॥ विमोहिताश्च ता दृष्ट्वारुन्धती गिरिशाज्ञया । निषिषेध विशेषेण सुचरित्रा सुबोधिनी ॥ ५७ ॥ ताः षड् मुनिस्त्रियो मोहाद्धठात्तत्र गता मुने । स्वशीतविनिवृत्त्यर्थं मोहिताः शिवमायया ५८

दाह जाता रहेगा ॥४८॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–शम्भुके इस वचनको सुन अग्निने मस्तक झुका हाथ जोड़ भक्तोंका कल्याण करने वाले शंकरसे धीरे से यह बात कही ॥ ४९ ॥ हे नाथ! हे महेश्वर! त्रिलोकीमें शक्तिके अतिरिक्त और कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो योनिमें आपके दुर्धर्ष व . धारण कर सके ॥ ५० ॥ हे मुनिसत्तम! जब अग्निने यह बात कही, तब अग्निका हृदयसे उपकार चाहने वाले तुमने शंकरके प्रेरणा करने पर यह बात कही, कि–॥५१॥ हे वह्ने! तुम दाहको हरने वाले मेरे शुभ वचनको सुनो, यह वचन बड़ा आनन्द देने वाला, रमणीय और सब प्रकारके कष्टोंको दूर करने वाला है ॥ ५२ ॥ हे वह्ने! तुम इस उपायको करके दाहरहित होकर सुखी हो, हे तात! शिवकी इच्छासे मैं आदरपूर्वक तुमसे यह बात कह रहा हूँ ॥ ५३ ॥ हे अग्ने! जो स्त्रियें माघमासमें अतिप्रातःकालके समय स्नान करती हों, उनके शरीरमें तुम इस शिवके महावीर्यको स्थापित करो ॥५४॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे मुने! उसी समय वहाँ माघमासमें प्रातःकालके समय स्नान करनेके नियमका पालन करने वालीं सात मुनियोंकी स्त्रियें आईं ५५ स्नान करके बड़े जाड़ेसे पीड़ा पाती हुईं उनमेंसे छः स्त्रियें वह्निकी ज्वाला के समीप आने लगीं ॥ ५६ ॥ और मोहमें पड़ गईं, उनको देख कर शिवकी आज्ञासे ज्ञानवती सच्चरित्रा अरुन्धतीने उनसे मना किया ॥५७॥ परन्तु हे महामुने! वे छः स्त्रियें शिवकी मायासे मोहमें पड़ अपने शीतको दूर करने के लिये अग्निके पास पहुँचीं ॥ ५८ ॥ हे मुने! तब उस वीर्यके कण रोमों

तद्रेतः कणकाःस्वयस्तद्देहान् विविशुर्मुने । रोमद्वाराऽखिला वह्निरभूद्दाहविवर्जितः ५९
अन्तर्धाय द्रुतं वह्निर्ज्वालारूपो जगाम ह । सुखी स्वलोकं मनसा स्मरंस्त्वा शंकरं च तम्
सगर्भास्ताःस्त्रियस्साधोऽभवन् दाहप्रपीडिताः। जग्मुस्स्वभवनं ताताऽरुन्धती दुःखिताऽग्निना
दृष्ट्वा स्वस्त्रीगतिं तात नाथाः क्रोधाकुला द्रुतम् । अत्यजुस्ताः स्त्रियस्तात सुसंमन्त्र्य परस्परम् ॥ ६२ ॥ अथ ताः षट् स्त्रियस्सर्वा दृष्ट्वा स्वव्यभिचारकम् । महादुःखान्वितास्तातासभवन्नाकुलमानसाः ॥ ६३ ॥ तत्यजुश्शिवरेतस्तद्गर्भरूपं मुनिस्त्रियः । ता हिमाचलपृष्ठेऽथाभवन् दाहविवर्जिताः ॥ ६४ ॥ असहञ्छिवरेतस्तद्धिमाद्रिः कंपमुद्वहन् । गंगायां प्राक्षिपत्तूर्णमसह्यं दाहपीडितः ॥ ६५ ॥ गङ्गयाऽपि च तद्वीर्यं दुस्सहं परमात्मनः । निःक्षिप्तं हि शरस्तम्बे तरंगैः स्वैर्मुनीश्वर ॥ ६६ ॥ पतितं तत्र तद्रेतो द्रुतं बालो बभूव ह । सुन्दरस्सुभगः श्रीमांस्तेजस्वी प्रीतिवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ मार्गमासे सिते पक्षे तिथौ षष्ठ्यां मुनीश्वर । प्रादुर्भावोऽभवत्तस्य शिवपुत्रस्य भूतले ॥ ६८ ॥ तस्मिन्नवसरे ब्रह्मन्नकस्माद्धिमशैलजा । अभूतां सुखितौ तत्र स्वगिरौ गिरिशोऽपि च ॥६९॥ शिवाकुचाभ्यां सुस्राव

के द्वारा उनके सारे शरीरमें घुस गए और अग्नि दाहरहित होगया ॥५९॥ तब तो ज्वालारूपी अग्नि अन्तर्धान हो मनमें शंकरका स्मरण कर सुखी होता हुआ अपने लोकको चला गया ॥ ६० ॥ और हे साधो ! वह स्त्रियें गर्भवती हो दाहसे पीड़ा पाने लगीं और अग्निसे दुःखित होती हुई अपने घरको चलीं ॥ ६१ ॥ हे तात ! तदनन्तर उनके नाथोंने अपनी स्त्रियोंकी ऐसी गति देख, मन्त्रणा करनेके अनन्तर उन स्त्रियोंको त्याग दिया ।६२। तब वे छहों स्त्रियें अपने व्यभिचारको देख चित्तमें घबड़ाईं और उनका चित्त महादुःखके कारण व्याकुल होने लगा ॥ ६२ ॥ और उस गर्भरूप शिववीर्य को उन्होंने हिमाचलके शिखर पर छोड़ दिया और सन्ताप-शून्य होगईं ६४ और हिमालय भी उस वीर्यको न सहनेके कारण काँपने लगा और उसने दाहसे व्याकुल होकर उसको गङ्गामें फेंक दिया ॥ ६५ ॥ परन्तु परमात्मा का वह वीर्य गङ्गाको भी दुःसह हुआ, इस लिये हे मुनीश्वर ! उन्होंने अपनी तरङ्गोंसे उसको शरस्तम्ब (सैंटेके झुण्ड) में फेंक दिया ॥३६॥ तहाँ पर गिरा हुआ वह वीर्य शीघ्र ही बालक बन गया, वह बालक सुन्दर, सुभग श्रीमान्, तेजस्वी और प्रीतिको बढ़ाने वाला था ॥ ६७ ॥ हे मुनीश्वर ! उस शिवपुत्रका प्रादुर्भाव मार्गशीर्षके मासके शुक्ल-पक्षकी षष्ठीके दिन, भूतल पर हुआ था ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय अकस्मात् ही शिव और शिवा को अपने पर्वत पर हर्ष हुआ ॥ ६९ ॥ पार्वतीके कुचोंसे आनन्दके कारण दूध टपकने लगा और हे मुने !-तहाँ पहुँचने पर सबको परम सुख हुआ ७०

पय आनन्दसंभवम् । तत्र गत्वा च सर्वेषां सुखमासीन्मुनेऽधिकम् ॥७०॥ मङ्गलं चाऽभवत्तात त्रिलोक्यां सुखदं सताम् । खलानामभवद्विघ्नो दैत्यानां च विशेषतः ॥७१॥ अकस्माद्ऽभवद्व्योम्नि परमो दुन्दुभिध्वनिः । पुष्पवृष्टिः पपाताऽशु बालकोपरि नारद ॥७२॥ विष्णवादीनां समस्तानां देवानां मुनिसत्तम । अभूदकस्मात्परम आनन्दः परमोत्सवः ७३

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां कुमारखण्डे शिवपुत्रजननवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारद उवाच । देवदेव प्रजानाथ ब्रह्मन् सृष्टिकर प्रभो । ततः किमभवत्तत्र तद्वदाऽद्य कृपां कुरु ॥१॥ ब्रह्मोवाच । तस्मिन्नवसरे तात विश्वामित्रः प्रतापवान् । प्रेरितो विधिना तत्रागच्छत्प्रीतो यदृच्छया ॥ २ ॥ स दृष्ट्वाऽलौकिकं धाम तत्सुतस्य सुतेजसः । अभवत्पूर्णकामस्तु सुप्रसन्नो ननाम च ॥ ३ ॥ अकरोत्सुनुतिं तस्य सुप्रसन्नेन चेतसा । विधिप्रेरितवाग्भिश्च विश्वामित्रः प्रभाववित् ।४। ततस्सोऽभूत्सुतस्तत्र सुप्रसन्नो महांतिकृत् । सुप्रहस्याद्भुतमहो विश्वामित्रमुवाच च ॥ ५ ॥ शिवसुत उवाच । शिवेच्छया महाज्ञानिन्नकस्मात्त्वमिहागतः । संस्कारं कुरु मे तात यथावद्वेदसंमितम् ॥ ६ ॥ अद्यारभ्य पुरोधास्त्वं भव मे प्रीतिमावहन् । भविष्यसि सदा पूज्यस्सर्वेषां नात्र संशयः ।७। ब्रह्मोवाच ।

हे तात ! सज्जनोंको सुख देने वाला मंगल त्रिलोकीमें होने लगा और दैत्य तथा दुष्टोंको विशेषरूपसे विघ्नोंका लक्षण दिखाई दिया ।७१। आकाशमें अकस्मात् ही दुन्दुभियोंकी बड़ी ध्वनि होने लगी और हे नारद ! आकाशसे बालकके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी ॥७२॥ और हे मुनिसत्तम ! विष्णु आदि समस्त देवताओंको अकस्मात् ही परम आनन्द हुआ वे बड़ा उत्सव मचाने लगे ॥ ७३ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ❀ ।। ❀

नारदजीने कहा, कि-हे देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकर्ता ब्रह्मन् ! फिर क्या हुआ था, उसको आप कृपा करके कहिये ॥१॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे तात ! इसी समय विधिसे प्रेरित प्रतापवान् विश्वामित्र भी अकस्मात् ही वहाँ आ पहुँचे ॥ २ ॥ परमतेजस्वी शंकर-पुत्रके उस अलौकिक तेजको देख कर उन्होंने कृतकृत्य और प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ फिर उस बालकके प्रभावको जानने वाले विश्वामित्रने चित्तमें प्रसन्न हो विधिकी प्रेरित वाणियोंसे उनकी स्तुति की ॥ ४ ॥ तब वह परम रक्षक कुमार प्रसन्न हुआ और हँस कर विश्वामित्रसे कहने लगा ॥ ५ ॥ शिवकुमारने कहा, कि-हे महाज्ञानिन् ! शिवकी इच्छासे आप अकस्मात् ही यहाँ आगए हैं, हे तात ! आप वेदानुसार मेरा यथावत् संस्कार करिये ॥६॥ आजसे आप मेरे पुरोहित बन कर मेरी प्रीतिको बढ़ाइये, आप सबके पूज्य रहेंगे, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-गाधिनन्दन उनके इस वचनको सुन

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुप्रसन्नो हि गाधिजः । तमुवाचानुदात्तेन स्वरेण च सुविस्मितः विश्वामित्र उवाच । शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रियबालकः । विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः ॥ ९ ॥ इति स्वचरितं ख्यातं मया ते वरबालक । कस्त्वं स्वचरितं ब्रूहि विस्मितायाखिलं हि मे ॥१०॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तत्स्ववृत्तं जगाद ह । ततश्चोवाच सुप्रीत्या गाधिजं तं महोतिकृत् ॥११॥ शिवसुत उवाच । विश्वामित्र-वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षिर्नाऽत्र संशयः । वसिष्ठाद्याश्च नित्यं त्वां प्रशंसिष्यन्ति चादरात् ।१२। अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि । इदं सर्वं सुगोप्यं ते कथनीयं न कुत्रचित् १३ ब्रह्मोवाच । ततोऽकार्षीत्स संस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा । शिवबालस्य देवर्षे वेदोक्त-विधिना परम् ॥१४॥ शिवबालोऽपि सुप्रीतो दिव्यज्ञानमदात्स्वरम् । विश्वामित्राय मुनये महातिकारकः प्रभुः ॥१५॥ पुरोहितं चकारासौ विश्वामित्रं शुचस्सुतः । तदारभ्य द्विज-वरो नानालीलाविशारदः ॥ १६ ॥ इत्थं लीला कृता तेन कथिता सा मया मुने । तल्ली-मपरां तात शृणु प्रीत्या वदाम्यहम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसरे तात श्वेतनामा च संप्रति ।

कर प्रसन्न हुए और विस्मित हो अनुदात्त-स्वरसे कहने लगे, कि-॥ ८॥ हे तात ! सुनो, मैं विप्र नहीं हूँ, किन्तु गाधिका पुत्र क्षत्रिय बालक हूँ, विश्वा-मित्र नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हूँ और ब्राह्मणोंका सेवक हूँ॥ ९ ॥ हे श्रेष्ठ बालक ! मैंने तुझसे यह अपना चरित्र कह दिया, अब तू अपने सारे चरित्र का वर्णन कर, क्योंकि-मैं विस्मयमें पड़ा हुआ हूँ ॥ १० ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-उनके इस वचनको सुन कर वह परम-रक्षक कुमार गाधिनन्दनसे प्रीतिपूर्वक अपना चरित्र कहने लगे ॥११। शिवसुतने कहा, कि-हे विश्वा-मित्र ! तुम मेरे वरसे ब्रह्मर्षि होगए, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, वसिष्ठ आदिक भी आदरपूर्वक तुम्हारी प्रशंसा करेंगे ॥ १२ ॥ इस लिये तुम मेरी आज्ञा से मेरा संस्कार कराओ, और इस बातको तुम भली भाँति छिपाये रखना, और कहीं प्रकाशित न करना ॥१३॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे देवर्षे ! तद-नन्तर उन्होंने उस बालकके संस्कारको प्रीतिपूर्वक वेदोक्तरीतिसे किया १४ तब उस परम-रक्षक प्रभु दिव्यबालकने भी प्रसन्न होकर मुनि विश्वामित्रको दिव्य ज्ञान दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार उस अग्निपुत्रने विश्वामित्रको पुरो-हित बनाया था, तदनन्तर वह अनेक लीलाओंमें चतुर विश्वामित्र द्विजवर होगए ॥ १६ ॥ हे मुने ! इस प्रकार उन्होंने जो लीला की थी वह मैंने तुम से कह दी । हे तात ! अब मैं दूसरी लीलाको कहता हूँ, उसको आप प्रीति-पूर्वक सुनें ॥ १७ ॥ हे तात ! उस समय पवित्र नाम वाले अग्निने अपने दिव्य और परम पावन पुत्रको देखा ॥१८॥ तब पावकने उसके पास जाकर

तत्राऽपश्यत्सुतं दिव्यं निजं परमपावनम् ॥ १८ ॥ ततस्तं पावको गत्वा ह्यालिंग्य चुचुम्ब च । पुत्रेति चोक्त्वा तस्मै स शस्त्रं शक्तिन्ददौ च सः ॥ १६ ॥ गुहस्तां शक्तिमादाय तच्छृङ्गं चारुरोह ह । तं जघान तया शक्त्या शृंगो भुवि पपात सः ॥ २० ॥ दशपद्ममिता वीरा राक्षसाः पूर्वमागताः । तद्वधार्थं द्रुतं नष्टा बभूवुस्तत्प्रहारतः ॥ २१ ॥ हाहाकारो महानासीच्चकम्पे साचला मही । त्रैलोक्यं च सुरेशानस्सदेवस्तत्र चागमत् २२ दक्षिणे तस्य पार्श्वे च वज्रेण स जघान ह । शाखनामा ततो जातः पुमांश्चैको महाबलः ॥२३॥ पुनश्शक्रो जघानाऽशु वामपार्श्वेहि तं तदा । वज्रेणान्यः पुमाञ्जातो विशाखाख्योऽपरो बली ॥ २४ ॥ ततस्तद्धृदयं शक्रो जघान पविना तदा । परोऽभून्नैगमो-पाख्यः पुमांस्तद्वन्महाबलः ॥ २५ ॥ तदा स्कन्दादिचत्वारो महावीरा महाबलाः । इन्द्रं हन्तुं द्रुतं जग्मुस्सोऽहं तच्छरणं ययौ ॥२६॥ शक्रस्स सामरगणो भयं प्राप्य गुहात्ततः । ययौ स्वलोकं चकितो न भेदो ज्ञातवान्मुने ॥ २७ ॥ स बालकस्तु तत्रैव तस्थावानन्द-संयुतः । पूर्ववन्निर्भयस्तात नानालीलाकरः प्रभुः ॥ २८ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः । स्नातुं समागता बालं ददृशुस्तं महाप्रभुम् ॥२९॥ ग्रहीतुं तं मन-

---

उसका आलिंगन किया और चूमा और पुत्र कह कर उसको शस्त्र और शक्ति दी ॥ १६ ॥ गुह उस शक्तिको लेकर शिखर पर चढ़ गए और उस पर उस शक्तिका प्रहार किया, तब वह शिखर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२०॥ और जो दश पद्म राक्षस उनका वध करनेके लिये पहिले ही आगए थे वे उसके प्रहारसे शीघ्र ही नष्ट होगए ॥२१॥ उस समय हाहाकार मचने लगा, पर्वतोंसहित पृथ्वी क्या त्रिलोकी ही काँपने लगी तब देवताओंको लेकर देवराज तहाँ आये ॥ २२ ॥ और उसकी दाईं करवट पर वज्रका प्रहार किया तब शाख नाम वाला एक महाबली पुरुष प्रकट हुआ ॥ २३ ॥ फिर इन्द्रने उनकी बाईं करवट पर प्रहार किया, तब विशाख नाम वाला दूसरा बलवान् पुरुष प्रकट हुआ ॥ २४ ॥ तदनन्तर इन्द्रने उन कुमारके हृदय पर वज्रका प्रहार किया, तब नैगम नाम वाला एक महाबली पुरुष प्रकट हुआ २५ तब स्कन्द आदि चारों महाबलवान् महावीर, इन्द्रको मारनेके लिये झपटे, कि—मैं स्कन्दकी शरणमें पहुँचा ॥ २६ ॥ हे मुने ! उस समय इन्द्र भी भय पा चकित हो अपने लोकको भाग निकला और कुछ भेद उसकी समझमें न आया ॥ २७ ॥ और हे तात ! अनेक प्रकारकी लीलाओंको करने वाला वह प्रभु बालक तो निर्भय हो आनन्दपूर्वक तहाँ ही खड़ा रहा ॥ २८ ॥ उसी समय कृत्तिका आदि छः स्त्रियें स्नान करनेके लिये आईं और उन्होंने उस महाप्रभु बालकको देखा ॥ २९ ॥ और उन सब कृत्तिका स्त्रियोंने उन

श्चक्रुस्सर्वास्ताः कृत्तिकाः स्त्रियः । वादो बभूव तासां तद्ग्रहणेच्छापरो मुने ॥ ३० ॥
तद्वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकार ह । पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने ३१
तन्मनोगतिमाज्ञाय सर्वास्ताः कृत्तिकास्तदा । तमादाय ययुर्लोकं स्वकीयं मुदिता मुने ३२
तं बालकं कुमाराख्यं स्तनं दत्वा स्तनार्थिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम् ३३
न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टयस्तस्य पुत्रकः
यानि यानि च वस्त्राणि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । ददुस्तस्मै च ताः प्रेम्णा भूषणानि वराणि च
दिने दिने ताः पुपुषुर्बालकं तं महाप्रभुम् । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयित्वा विशेषतः ॥
अथैकस्मिन् दिने तात स बालः कृत्तिकात्मजः । गत्वा देवसभां दिव्यां सुचरित्रं चकार
ह ॥३७॥ स्वमहो दर्शयामास देवेभ्यो हि महाद्भुतम् । सविष्णुभ्योऽखिलेभ्यश्च महोति
करबालकः ॥ ३८ ॥ तं दृष्ट्वा सकलास्ते वै साच्युतास्सर्षयस्सुराः । विस्मयं प्रापुरत्यन्तं
पप्रच्छुस्तञ्च बालकम् ॥ ३९ ॥ को भवानिति तच्छ्रुत्वा न किंचित्स जगाद ह । स्वालयं
स जगामाऽशु गुप्तस्तस्थौ हि पूर्ववत् ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे कार्तिकेय-
लीलावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

को ग्रहण करने का विचार किया और हे मुने ! उन सब स्त्रियोंमें कुमारको ग्रहण करनेके विषयमें वाद विवाद होने लगा ॥३०॥ हे मुने ! उनके वादको शान्त करनेके लिये कुमारने छः मुख धारण कर लिये और उन सबका दूध पिया, इस लिये वे सब स्त्रियें प्रसन्न होगईं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! फिर वे सब कृत्तिकायें उनकी मनकी गतिको जान उनको ले प्रसन्न होती हुईं अपने लोकको चल दीं ॥ ३२ ॥ और वे स्तनपान करना चाहने वाले ईश-पुत्र सूर्यसे भी अधिक कान्ति वाले कुमार नामक बालकको स्तनपान करा कर बढ़ाने लगीं ॥३३॥ वे बालकको नेत्रोंके सामनेसे नहीं हटने देती थीं, वह उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था, इस प्रकार जो उनका पोषण करती थीं, उनका वह पुत्र हुआ ॥ ३४ ॥ जो वस्त्र और आभूषण त्रिलोकीमें भी दुर्लभ थे उनको वे प्रेमपूर्वक लाकर कुमारको देती थीं ॥ ३५ ॥ वह प्रति-दिन प्रशंसनीय श्रेष्ठ भोजन जिमा कर उस महाप्रभु बालकका पोषण करने लगीं ॥ ३६ ॥ फिर उस कृत्तिकापुत्र बालकने एक दिन दिव्य देवसभामें जाकर सुन्दर चरित्र किया ॥३७॥ उस परम रत्तक बालकने विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंको अपना अद्भुत तेज दिखाया ॥ ३८ ॥ उसको देख कर अच्युत देवता और सब ऋषि अतिविस्मित हो उस बालकसे बूझने लगे ३९ आप कौन हैं ? परन्तु उस बालकने कुछ उत्तर नहीं दिया और अपने घर जाकर पहिलेकी समान गुप्त रहने लगा ॥ ४० ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥

नारद उवाच । देवदेव प्रजानाथ ततः किमभवद्विधे । वदेदानीं कृपातस्तु शिवलीलासमन्वितम् ॥१॥ ब्रह्मोवाच । कृत्तिकाभिगृहीते वै तस्मिन्शम्भुसुते मुने । कश्चित्कालो व्यतीयाय बुबुधे न हिमाद्रिजा।२।तस्मिन्नवसरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा। उवाच स्वामिनं शम्भुं देवदेवेश्वरं प्रभुम्।३। पार्वत्युवाच । देवदेव महादेव शृणु मे वचनं शुभम् । पूर्वपुण्यातिभारेण त्वं मया प्राप्त ईश्वरः ॥ ४ ॥ कृपया योगिषु श्रेष्ठो विहारैस्तत्परोऽभवः । रतिभङ्गः कृतो देवैस्तत्र मे भवता भव ॥५॥ भूमौ निपतितं वीर्यं नोदरे मम ते विभो । कुत्र यातञ्च तद्देव केन देवेन निह्नुतम् ॥ ६ ॥ कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं ते महेश्वर । मोघं यातञ्च किं किं वा शिशुर्जातश्च कुत्रचित् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच । पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देवानाहूय मुनींश्चापि मुनीश्वर ॥ ८ ॥ महेश्वर उवाच । देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् । अमोघं कुत्र मे वीर्यं यातङ्केन च निह्नुतम् सभयं नाप तत्क्षिप्रं सचेद्दण्डं न चार्हति । शक्तौ राजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च भक्षकः

नारदजीने कहा, कि–हे देवदेव प्रजानाथ ! फिर क्या हुआ ? कृपा कर शिवलीलासे भरे हुए इस वृत्तान्तको कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे मुने ! जब कृत्तिकाओंने शम्भुके पुत्रको ग्रहण कर लिया, तब बहुत समय बीतने पर भी हिमाचलकुमारीको इसका कुछ पता न चला ॥२॥ तदनन्तर एक समय मुस्कुराते हुए मुखकमल वाली दुर्गाने अवसर पाकर देवदेवेश्वर प्रभु शम्भु स्वामीसे कहा, कि–॥ ३ ॥ हे देवदेव महादेव ! मेरे शुभ-वचन को सुनिये, मैंने बड़े २ पूर्व–पुण्योंके कारण आपको ईश्वररूपमें पाया है ४ आप योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, तब भी आप मेरे साथ विहारमें प्रवृत्त हुए थे, हे भव ! मेरी और आपकी उस रतिको देवताओंने भंग कर दिया था ॥५॥ हे विभो ! आपका वह वीर्य मेरे उदरमें न गिर कर पृथ्वी पर गिरा था, वह कहाँ गया ? किस देवताने उसको छिपा लिया ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं, आपका अमोघ वीर्य भी किस प्रकार निष्फल होगया अथवा उस से कहीं कोई बालक उत्पन्न हुआ है ॥७॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–हे मुनीश्वर ! पार्वतीके वचनको सुन कर जगदीश्वर हँसे और देवता तथा मुनियों को बुला कर कहने लगे ॥ ८ ॥ महेश्वरने कहा, कि–मैंने पार्वतीके वचन को सुना है, उस मेरे वाक्यको तुम सुनो, मेरा वीर्य अमोघ था, वह कहाँ गया और उसको किसने छिपा लिया ॥ ९ ॥ यदि इसका शीघ्र ही पता न चलेगा, तो वह भयदायक होजावेगा, इस लिये यदि छिपाने वालेको दण्ड से बचनेकी इच्छा हो तो शीघ्र ही बतावे, जो राजा शक्ति होने पर भी दण्ड नहीं देता है, वह प्रजासे पीड़ा पाता है और अनुचित पीड़ा देने वाला भक्षक

शम्भोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्। ऊचुस्सर्वे क्रमेणैव त्रस्तास्तु परतः प्रभोः विष्णुरुवाच। ते मिथ्यावादिनस्सन्तु भारते गुरुदारिकाः। गुरुनिन्दारताश्शश्वत्त्वद्वीर्यं यैश्च निन्हुतम्॥ ब्रह्मोवाच। त्वद्वीर्यं निन्हुतं येन पुण्यक्षेत्रे च भारते। स नाऽन्वितो भवेत्तत्र सेवने पूजने तव।१३। लोकपाला ऊचुः। त्वद्वीर्यं निन्हुतं येन पापिना पतितभ्रमात्। भाजनं तस्य सोऽप्लुत्यं तत्तापं कर्म संततम् १४ देवा ऊचुः। कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो नाऽपादयति पूर्णताम्। भाजनं तस्य पापस्य त्वद्वीर्यं येन निन्हुतम् १५ देवपत्न्य ऊचुः। या निंदति स्वभर्तारं परं गच्छति पूरुषम्। मातृबन्धुविहीना च त्वद्वीर्यं निह्नुतं यया॥१६। ब्रह्मोवाच। देवानां वचनं श्रुत्वा देवदेवेश्वरो हरः। कर्म्मणां साक्षिणश्चाह धर्मादीन्सभयं वचः।१७। श्रीशिव उवाच। देवैर्न निन्हुतं केन तद्वीर्यं निन्हुतं ध्रुवम्। तदमोघं भगवतो महेशस्य मम प्रभोः।१८। यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम्। युष्माकं निन्हुतं किंवा किं ज्ञातुं वक्तुमर्हथ॥ १९॥ ब्रह्मोवाच। ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कंपिताश्च ते। पर-

---

कहलाता है॥ १०॥ शम्भुके इस वचनको सुन उन सबने विचार किया फिर प्रभु शंकरसे बहुत ही डर कर कहने लगे॥११॥ विष्णुने कहा, कि-जिन्होंने आपके वीर्यको छिपाया हो वे भारतमें मिथ्यावादी होवें और गुरुपत्नीगामी और गुरुकी निन्दा करने वालोंको जो पाप लगता है, वह पाप उनको लगे॥ १२॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-जिसने आपका वीर्य छिपाया हो, वह पुरुष पुण्यक्षेत्र भारतमें आपकी पूजा और सेवामें परायण न रह सके॥ १३॥ लोकपालोंने कहा, कि-जिस पापीने पतित होने पर भ्रमपूर्वक आपके वीर्यको छिपा लिया हो, उसको (गरम जलसे) उछलते हुए पात्रको जो ताप प्राप्त होता है, वैसा ताप निरन्तर प्राप्त हो॥ १४॥ देवताओंने कहा, कि-जो प्रतिज्ञा करके उसको पूर्ण नहीं करता है, आपका वीर्य दुबकाने वाले मूढ़को वही पाप लगे॥ १५॥ देवपत्नियोंने कहा, कि-जिसने आपके वीर्यको छिपाया हो उसको अपने भर्ताकी निन्दा कर परपुरुषके पास जानेका पाप लगे और वह माता पितासे हीन रहे॥ १६॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-देवदेवेश्वर हरने देवताओंके वचनको सुन कर कर्मोंके साक्षी धर्म आदिको भय दिखाते हुए कहा॥ १७॥ श्रीशिवने कहा, कि-किसी देवताने उस वीर्यका हरण नहीं किया, किन्तु मुझ भगवान् महेश प्रभुका वह अमोघ वीर्य हरा तो गया ही है।१८। और तुम सदा सबके कर्मोंके साक्षी हो, क्या तुमने उस वीर्यका हरण किया है ? अथवा इस बातका तुम्हें कुछ पता है, तुम कुछ कह सकते हो॥ १९॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-ईश्वरके वचनको सुन कर वह सभामें ही काँप उठे, और परस्पर दृष्टि डाल क्रमशः

स्परं समालोक्य क्रमेणोचुः पुरः प्रभोः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच । रते तु तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः ॥ २१ ॥ क्षितिरुवाच । वीर्यं सोढु-मशक्ताहं तद्वन्हौ न्यक्षिपं पुरा । अतोऽत्र दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षंतुमर्हसि ।२२। वह्निरुवाच । वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शंकर पर्वते । कैलासे न्यक्षिपं सद्यः कपोतात्मा सुदुस्सहम् २३ गिरिरुवाच । वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शङ्कर लोकप । गंगायां प्राक्षिपं सद्यो दुस्सहं पर-मेश्वर ।२४। गंगोवाच । वीर्यं सोढुमशक्ताहं तव शंकर लोकप । व्याकुलाऽति प्रभो नाथ न्यक्षिपं शरकानने ॥२५॥ वायुरुवाच । शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह । अतीव सुन्दरश्शम्भो स्वर्नद्याः पावने तटे ॥२६॥ सूर्य उवाच । रुदंतं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रभो । प्रेरितः कालचक्रेण निशायां स्थातुमक्षमः ॥ २७ ॥ चन्द्र उवाच । रुदंतं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः । जगाम स्वालयं शंभो गच्छन्बदरिकाश्रमम् ॥ २८ ॥ जल मुवाच । अमुं रुदंतमानीय स्तन्यपानेन ताः प्रभो । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं तव रवि-प्रभम् ॥ २९ ॥ संध्योवाच । अधुना कृत्तिकानां च वनं तं पोष्य पुत्रकम् । तन्नाम

प्रभुसे कहने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–आपका वीर्य रमण करते समय कोपवश पृथ्वी पर गिर गया था उसको मैंने अमोघ समझा था २१ पृथिवीने कहा, कि–मैंने आपके वीर्यको सहनेमें असमर्थ होकर उस वीर्यको अग्निमें डाल दिया था, अतः हे ब्रह्मन्! आप मुझ अबलाको क्षमा करें ।२२। अग्निने कहा, कि–हे शङ्कर! कपोतरूपी मैंने आपके वीर्यको सहनेमें अस-मर्थ होकर उस वीर्यको कैलास पर्वत पर तत्काल ही फैंक दिया था ॥२३॥ पर्वतने कहा, कि–हे परमेश्वर! हे संसारका पालन करने वाले शंकर! आप के दुःसह वीर्यको सहनेमें असमर्थ होकर मैंने उसको तत्काल ही गंगामें डाल दिया था ॥ २४ ॥ गंगाने कहा, कि–हे लोकोंकी रक्षा करने वाले शंकर! हे प्रभो! आपके वीर्यको मैं न सह सकी और बड़ी व्याकुल हुई, तब मैंने उस वीर्यको सैंटोंके वनमें डाल दिया ॥ २५ ॥ वायुने कहा, कि-स्वर्नदी (गंगा) के पवित्र तट पर सैंटोंमें पड़ा हुआ वह वीर्य तत्काल ही परम सुन्दर बालकके रूपमें बदल गया था ॥२६॥ सूर्यने कहा, कि–उस बालकको रोता देख कर भी मैं कालचक्रकी प्रेरणावश रात्रिमें उपस्थित रहनेमें असमर्थ हो-कर हे प्रभो! अस्ताचलको चला गया था ॥ २७ ॥ चन्द्रमाने कहा, कि–कृत्तिकाएँ बदरिकाश्रमकी ओर जा रही थीं, उन्होंने जो उस बालकको रोते हुए देखा तो वह उसको अपने निवास-स्थानको लेगईं ॥ २८ ॥ जलने कहा, कि–हे प्रभो! वे उस सूर्यकी समान कान्ति वाले आपके पुत्रको दुग्ध पिला कर बढ़ा रही हैं ॥ २९ ॥ सन्ध्याने कहा, कि–अब उन कृत्तिकाओंने

चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्तिकश्चेति कौतुकात् ॥३०॥ रात्रिरुवाच । न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रीतिपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रक ॥ ३१ ॥ दिनमुवाच । यानि यानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टः पुरसूदनः । मुदं प्राप्य ददौ प्रीत्या विप्रेभ्यो बहुदक्षिणाम् ॥ ३३ ॥ पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च । ३४॥ लक्ष्मी सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुस्सर्वे च देवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥ ३५ ॥ प्रेरितस्स प्रभुर्देवैर्मुनिभिः पर्वतैरथ । दूतान् प्रस्थापयामास स्वपुत्रो यत्र तान् गणान् ॥ ३६ ॥ वीरभद्रं विशालाक्षं शंकुकर्णं कराक्रमम् । नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदंष्ट्रं महोन्मदम् ॥३७। गोकर्णास्यं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् । लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम् ॥३८॥ रुद्राश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद ॥ ३९ ॥ ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुद्धताः ॥४०॥ दृष्ट्वा तान्

उस बालकका पोषण कर कौतुक और प्रेमवश उस बालकका नाम कार्तिक धरदिया है ॥३०॥ रात्रिने कहा, कि–वे उस बालकको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझ उसको अपने नेत्रोंके सामनेसे नहीं हटातीं ॥३१॥ दिनने कहा, कि–संसारमें जो २ श्रेष्ठ वस्त्र और आभूषण हैं और जो २ श्रेष्ठ और स्वादु भोजन हैं, वे सब उसको देरही हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–पुरसूदन शिव उनके इस वचनको सुन प्रसन्न हुए और आनन्दमें भर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुतसी दक्षिणा दी ॥३३। पुत्रकी बातको सुन पार्वतीका मन भी हर्षमें भर गया और उन्होंने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न और बहुतसा धन दिया ३४ तथा उस समय लक्ष्मी, सरस्वती, मेना और सावित्री आदि सब स्त्रियोंने और विष्णु आदि सब देवताओंने ब्राह्मणोंको धन दिया ॥३५॥ तदनन्तर उन प्रभुने देवता, मुनि और पर्वतोंके प्रेरणा करने पर अपने दूतोंको तहाँ भेजा जहाँ उनका पुत्र था ॥ ३६ ॥ उनके नाम यह थे, वीरभद्र, विशालाक्ष शङ्कुकर्ण, कराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदंष्ट्र, महोन्मद, गोकर्णास्य, दधिमुख, प्रदीप्ताग्निशिखोपम और तीन लाख क्षेत्रपाल, तीन लाख भूत, शिवके समान पराक्रमी रुद्र, भैरव, तथा अन्य विकृत आकार वाले असंख्य गणोंको दूतोंके रूपमें भेजा, हे नारद ! उन सब अनेक प्रकार अस्त्र शस्त्रों को हाथमें धारण करने वाले उद्धत शिव-दूतोंने कृत्तिकाओंके भवनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३७—४० ॥ उनको देख कर सब कृत्तिकाओं का मन भयभीत होगया और उन्होंने ब्रह्मतेजसे दमकते हुए कार्तिकसे सब

कृत्तिकास्सर्वा भयविह्वलमानसाः । कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ।४१। कृत्तिका ऊचुः । वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं महाभयमुपस्थितम् ॥ ४२ ॥ कार्तिकेय उवाच । भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वा मयि स्थिते । दुर्निवार्योऽस्मि बालश्च मातरः केन वार्यते ४३ ब्रह्मोवाच । एतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्तिकेयस्योपविष्टस्समुवाच ह ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहाम् । प्रेरितोऽहं महेशेन संहर्त्रा शंकरेण च ॥ ४५ ॥ कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सभायां संस्थितास्तात महत्युत्सवमंगले ॥४६॥ तदा शिवा सभायां वै शंकरं सर्वशङ्करम् । संबोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम् ४७ पप्रच्छ तांश्शिवो देवान् क्रमात्त्वत्प्राप्तिहेतवे। प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम् ४८ त्वामत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो धर्माधर्मस्य कर्मसाक्षिणः ४९ प्रबभूव रहःक्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा । दृष्टस्य च सुरैश्शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥५०॥ भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्चाद्रौ स भूधरः । गंगायां सोऽक्षिपद्वेगात् तरंगैश्शरकानने ५१ तत्र बालोऽभवस्त्वं हि देवकार्यकृतिः प्रभुः । तत्र लब्धः कृत्तिकाभिस्त्वं भूमिं गच्छ सांप्र-

वृत्तान्त कहा ॥ ४१ ॥ कृत्तिकाओंने कहा, कि—हे वत्स ! असंख्य सेनाओंने घरको घेर लिया है, अब हम क्या करें और कहाँ जावें ? यह तो बड़ा भारी भय आलगा ॥ ४२ ॥ स्वामि कार्तिकेयने कहा, कि—हे कल्याणियों ! तुम भयको त्याग दो, मेरे होने पर भय कैसा ? हे माताओं ! मैं बालक होने पर भी दुर्निवार्य हूँ, देखूँ, मुझे कौन हटाता है ॥४३॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—इसी समय सेनायक नन्दिकेश्वर, कार्तिकेयके सामने बैठकर कहने लगे, कि ।४४। हे भाई ! और हे माताओं ! तुम मेरी शुभ बातको सुनो, मुझे संहार करने वाले महेश शंकरने भेजा है ॥४५॥ हे तात ! कैलास पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि देवता बड़ा भारी मांगलिक उत्सव मनानेके लिये एकत्रित हुए ४६ उस समय शिवाने सभामें सबका कल्याण करने वाले शङ्करको सम्बोधित करके आपको ढूँढ़नेके लिये कहा ॥४७। तब शिवने उन देवताओंसे आपकी प्राप्तिके विषयमें क्रम २ से एक २ से बूझा, तब उन्होंने यथोचित उत्तर दिया ॥ ४८ ॥ और धर्म अधर्म तथा कर्म आदिके साक्षी सबने आपको यहाँ कृत्तिकाओंके स्थानमें बताया ॥४९॥ पहिले एकान्तमें शिव और पार्वती की एकान्त-क्रीड़ा हुई थी, उस समय जब देवताओंने शम्भुको देखा, तब उनका वीर्य गिर पड़ा था ॥ ५० ॥ भूमिने उसको अग्निको सौंप दिया और अग्निने पर्वतके अर्पण कर दिया, पर्वतने गङ्गामें डाला और गंगाने तरंगोंसे उसको सैंटोंके वनमें फैंक दिया ॥ ५१ ॥ देवताओंके कार्यको करने

तम् ॥ ५२ ॥ तत्राभिषेकं शम्भुस्तु करिष्यति सुरैस्सह । लप्स्यसे सर्वशस्त्राणि तारकाख्यं हनिष्यसि ॥ ५३ ॥ पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तु स्त्वां प्राप्तुञ्चाक्षमा इमाः । नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तश्शुष्कवृक्षस्स्वकोटरे ॥ ५४ ॥ दीप्तवांस्त्वं च विश्वेषु नासां गेहेषु शोभसे । यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥ ५५ ॥ करोषि च यथाऽऽलोकं नाऽऽच्छन्नोऽस्मासु तेजसा । यथा सूर्यः कलाच्छन्नो न भवेन्मानवस्य च ॥ ५६ ॥ विष्णुस्त्वं जगतां व्यापी नान्यो जातोऽसि शांभव । यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः॥५७॥ योगीन्द्रो नानुलिप्तश्च भागी चेत्परिपोषणे । नैव लिप्तो यथात्मा च कर्मयोगेषु जीविनाम् ॥ ५८ ॥ विश्वारंभस्त्वमीशश्च नासु ते संभवेत् स्थितिः । गुणानां तेजसां राशिर्यथात्मानं च योगिनः ॥ ५९ ॥ भ्रातर्ये त्वां न जानन्ति ते नरा हतबुद्धयः । नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासाश्च पंकजान् ॥ ६० ॥ कार्तिकेय उवाच । भ्र तस्सर्वं विजानासि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् । ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाश्रितः ॥ ६१ ॥ कर्मणां जन्म येषां वा

वाले प्रभु आप तहाँ पर बालक-रूपमें बदल गए, तहाँ कृत्तिकाओंने आपको उठा लिया, इस लिये अब आप अपने स्थान पर चलिये ॥ ५२ ॥ तहाँ पर शम्भु देवताओंको साथमें लेकर आपका अभिषेक करेंगे और आपको सब प्रकारके अस्त्र प्राप्त होंगे तथा आप तारक नाम वाले असुरका संहार करेंगे ॥ ५३ ॥ तुम तो विश्वका संहार करने वालेके पुत्र हो, ये तुम्हें पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, क्या कहीं सूखा वृक्ष अपनी खखोड़लमें अग्निकी रक्षा कर सकता है ।५४॥ जैसे गढ़ेमें पड़े हुए गजराजकी शोभा नहीं होती, ऐसे ही समस्त संसारमें दीप्तिमान् आप इनके घरमें शोभा नहीं पाते ५५ जैसे सूर्य मनुष्योंकी कलासे आच्छन्न नहीं हो सकता, इसी प्रकार तेजसे व्याप्त आप प्रकाश ही फैलावेंगे, हममें छिप नहीं सकते ॥ ५६ ॥ हे शंभु-पुत्र ! आप जगत् व्यापी विष्णु ही हैं, शिवके यहाँ कोई और उत्पन्न नहीं हुए हैं । जैसे आकाश व्यापक है, किसीका व्याप्य नहीं है, इसी प्रकार आप भी किसीके व्याप्य नहीं हैं, व्यापक हैं ॥ ५७ ॥ जैसे कर्मयोगियोंका आत्मा उन कर्मोंसे निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार आप भी परिपोषणके भागी होने पर भी योगीन्द्र होनेके कारण निर्लिप्त हैं ॥५८॥ आप विश्वका आरंभ करने वाले हैं और ईश हैं, अतः आपका इनमें रहना अनुचित है क्या कहीं गुण और तेजोंके समूह योगीकी आत्मा ऐसे रहती है ॥ ५९ ॥ हे भाई ! जो आपको नहीं जानते, वे हतबुद्धि हैं । वे कमलोंका आदर न करने वाले मेंढकोंकी समान हैं ॥६०॥ कार्तिकेयने कहा, कि-हे भाई ! आप सब कुछ जानते हैं, त्रिकाल-ज्ञानी हैं । आप ज्ञानी हैं, इस लिये मैं आपकी क्या

यासु यासु च योनिषु । तासु ते निर्वृतिं भ्रातः प्राप्नुवन्तीह सांप्रतम् ॥ ६२ ॥ कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः । स्तन्येनासां वर्द्धितोऽहमुपकारेण सन्ततम् ॥ ६३ ॥ आसामहं पोष्यपुत्रो मदंशा योषितस्त्विमाः । तस्याश्च प्रकृतेरंशास्ततस्तत्स्वामिवीर्यजः न मद्भङ्गो हि शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर । सा च मे धर्मतो माता यथेमास्सर्वसंमताः शम्भुना प्रेषितस्त्वञ्च शम्भोः पुत्रसमो महान् । आगच्छामि त्वया सार्द्धं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् ॥ ६६ ॥ इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं संबोध्य कृत्तिकागणम् । कार्तिकेयः प्रतस्थे हि सार्द्धं शङ्करपार्षदैः ॥ ६७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्तिकेयान्वेषणनन्दिसंवादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । अद्भुतं शोभितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥१॥ शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥२॥ समारोहत्ततोऽनन्तो हृदयेन विदूयता । कार्तिकः परमज्ञानी परमेशानवीर्यजः ॥ ३ ॥ तदैव कृत्तिकाः प्राप्य मुक्तकेश्यश्शुचाऽऽतुराः । उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तु-

---

प्रशंसा करूँ ? क्योंकि–आप मृत्युञ्जय शिवके आश्रयमें रहते हैं ॥ ६१ ॥ कर्मवश जिनका जिस २ योनिमें जन्म होता है, वे उसीमें सुखी रहते हैं ६२ ये कृत्तिकाएँ ज्ञानवती हैं, योगनियें हैं, प्रकृतिकी कलाएँ हैं । इनका दुग्धपान कर मैं बड़ा हुआ हूँ, अतः इनका मुझ पर उपकार ही है ॥ ६३ ॥ मैं इनका पोष्यपुत्र हूँ, ये स्त्रियें उस प्रकृतिकी ही अंश हैं और मैं उस प्रकृतिके स्वामीके वीर्यसे ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ६४ ॥ हे नन्दिकेश्वर! इनसे मेरा या शैलराजकुमारीका कोई अपमान नहीं होता, जैसे ये सर्वसम्मत मेरी माता हैं, इसी प्रकार वह भी मेरी धर्मतः माता हैं ॥ ६५ ॥ आपको शम्भुने भेजा है और आप शम्भुके पुत्रकी समान हैं, इस लिये मैं आपके साथ चलता हूँ और देवताओंके कुलको देखूँगा ॥ ६६ ॥ इस प्रकार उन सबसे कह और कृत्तिकाओंको शीघ्रतापूर्वक समझा कर कार्तिकेय शंकरके पार्षदोंके साथ चलनेके लिये उद्यत होगए ॥ ६७ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ ❀

ब्रह्माजीने कहा, कि–इसी समय पार्वतीका भेजा हुआ एक उत्तम रथ दिखाई दिया, उसकी शोभा अद्भुत थी, उसको विश्वकर्माने बनाया था, उसमें सौ पहिये लगे हुए थे, वह बड़ा विस्तीर्ण था, मनकी इच्छानुसार चलने वाला और मनोहर था और श्रेष्ठ २ पार्षद उसके चारों ओर खड़े हुए थे ॥ १–२ ॥ उस समय परमेशके वीर्यसे उत्पन्न हुए परमज्ञानी कार्तिकेय (कृत्तिकाओंके वियोगके कारण) दुखते हुए चित्तसे उस रथ पर सवार हुए ३

मारेभिरे वचः ॥४॥ कृत्तिका ऊचुः । विहायास्मान् कृपासिन्धो गच्छसि त्वं हि निर्दयः ।
नायं धर्मो मातृवर्गान् पालितो यत् सुतस्त्यजेत् ॥ ५ ॥ स्नेहेन वर्द्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽ-
स्माकं च धर्मतः । किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं किं करवाम ह ॥६॥ इत्युक्त्वा कृत्ति-
कास्सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्तिकम् । द्रुतं मूर्च्छामवापुस्तास्सुतविच्छेदकारणात् ॥ ७ ॥
ताः कुमारो बोधयित्वा अध्यात्मवचनेन वै । ताभिश्च पार्षदैस्सार्द्धमारुरोह रथं मुने ।८।
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलानि बहूनि सुखदानि वै । कुमारः पार्षदैस्सार्द्धं जगाम पितृमन्दिरम् ९
दक्षेण नन्दियुक्तश्च मनोयायिरथेन च । कुमारः प्राप कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके ॥१०॥
तत्र तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह । कुमारश्शांकरिः प्रीतो नानालीलाविशारदः ॥
तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः । विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं समाचख्युस्तदागमम्
तदा दृष्ट्वा च गांगेयं ययौ प्रमुदितश्शिवः । अन्यैस्समेतो हरिणा ब्रह्मणा च सुरर्षिभिः
शंखाश्च बहवो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः । उत्सवस्सुमहानासीद्देवानां तुष्टचेतसाम् ॥१४॥
तदानीमेव तं सर्वे वीरभद्रादयो गणाः । कुर्वन्तः स्वन्वयुः केलिं नानातालधरस्वराः १५

उसी समय कृत्तिकाएँ भी शोकसे व्याकुल हो बाल खोल उन्मत्तकी समान वहाँ उनसे कहने लगीं ॥ ४ ॥ कृत्तिकाओंने कहा, कि हे कृपासिन्धो ! आप हमको छोड़ निर्दयकी समान कहाँको जाते हो । यह धर्म नहीं है, जो पाला हुआ पुत्र माताको त्याग दे ॥ ५ ॥ हमने तुमको स्नेह-पूर्वक बड़ा किया है, इस लिये तुम हमारे पुत्र हो, अब क्या करें ? कहाँ जावें ? अरे ! अब हम क्या करें ॥ ६ ॥ कृत्तिकाएँ इस प्रकार कह कार्तिकेयको वक्षःस्थल से लगा, पुत्रवियोगके ध्यानसे मूर्छित होगई ॥ ७ ॥ तब कुमारने उनको आध्यात्मिक वचनोंसे समझाया और उनको तथा पार्षदोंको साथमें लेकर रथ पर चढ़ गए ॥ ८ ॥ तदनन्तर बहुतसे मांगलिक चिन्होंको देखते हुए और बहुतसी सुखदायक बातोंको सुनते हुए कुमार पार्षदोंके साथ पिताके मन्दिरको जाने लगे ॥ ९ ॥ मनके अनुसार चलने वाले रथमें कुमारके दाईं ओर नन्दी बैठे थे ऐसे कुमार कैलास पर्वत पर अक्षय न्यग्रोध वृक्षके नीचे पहुँच गए ॥ १० ॥ वहाँ पर अनेक लीलाओंमें चतुर शंकरपुत्र कुमार श्रेष्ठ पार्षद और कृत्तिकाओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक टिक गए ॥११॥ तब सब देवता ऋषि सिद्ध चारण विष्णु और मैंने (ब्रह्माने) उनके आगमनका वृत्तान्त कहा ॥१२॥ तब गङ्गानन्दनको देख कर आनन्दमें भरे हुए शिव हरि ब्रह्मा देवता तथा अन्याय प्राणियोंको लेकर मिलनेके लिये चले ॥ १३ ॥ तब तो प्रसन्न चित्त वाले देवता, शंख नगाड़े और तुरहियोंको बजा कर बड़ा उत्सव करने लगे ॥ १४ ॥ उस समय वीरभद्र आदि गण भी अनेक प्रकारके ताल

स्तावकाः स्तूयमानाश्च चक्रुस्ते गुणकीर्त्तनम् । जयशब्दं नमश्शब्दं कुर्वाणाः प्रीतमानसाः । द्रष्टुं ययुस्तं शरजं शिवात्मजमनुत्तमम् ॥१६॥१७॥ पार्वती मङ्गलं चक्रे राजमार्गं मनोहरम् । पद्मरागादिमणिभिस्संस्कृतं परितः पुरम् ॥ १८ ॥ पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः स्त्रीभिरन्विताः । लक्ष्म्यादित्रिंशद्देवीश्च पुरः कृत्वा समाययौ ॥१९॥ रम्भाद्यप्सरसो दिव्यास्सस्मिता वर्षसंयुताः । संगीतनर्तनपरा बभूवुश्च शिवाज्ञया ॥ २० ॥ ये तं समीक्षयामासुर्गाङ्गेयं शङ्करोपमम् । ददृशुस्ते महत्तेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रये ॥२१॥ तत्तेजसा वृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम् । ववन्दिरे द्रुतं सर्वे कुमारं सूर्यवर्चसम् ॥ २२ ॥ जहृषुर्विनतस्कन्धा नमश्शब्दरतास्तदा । परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणमागताः ॥२३॥ अहं विष्णुश्च शक्रश्च तथा देवादयोऽखिलाः । दण्डवत्पतिता भूमौ परिवार्य कुमारकम् ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्गिरिजा च मुदान्विता । महोत्सवं समागम्य ददर्श तनयं मुदा ॥ २५ ॥ पुत्रं निरीक्ष्य च तदा जगदेकबन्धुः प्रीत्यान्वितः परमया परया भवान्या । स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात्सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैः परेशः ॥२६॥ अथ शक्तिधरः स्कन्दो दृष्ट्वा तौ पार्वतीशिवौ । अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥

स्वरमें क्रीड़ा करते हुए शिवके साथ चल दिये ॥ १५ ॥ और स्तुति करने वाले भी चित्तमें प्रसन्न हो गुण गाते हुए, जय २ करते हुए और नमः २ करते हुए सैंटोंमें प्रकट हुए शिवके श्रेष्ठ पुत्रको देखनेके लिये चल दिये १६॥१७ पार्वती भी मङ्गलाचार कर राजमार्गको मनोहर बना और नगरको पद्मराग आदि मणियोंसे विभूषित कर, पति और पुत्र वाली साध्वी स्त्रियोंको लेकर तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियोंको लेकर चलदीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ इधर शिवकी आज्ञासे रम्भा आदिक अप्सराएँ और हिजड़े मुस्कुरा कर गाने और नाचने लगे ॥ २० ॥ जिन्होंने शङ्करकी समान गंगापुत्रको देखा, उन्होंने त्रिलोकीमें व्याप्त एक बड़े भारी तेजको देखा ॥ २१ ॥ तपे हुए सुवर्णकी समान कान्ति वाले और सूर्यकी समान तेजस्वी उस तेजसे व्याप्त कुमार नामक बालककी सबने शीघ्रतासे वन्दना की ॥२२॥ वे उनको बाईं और दाईं ओर से घेर कर खड़े होगए और कार्तिकेय नमः कह कन्धोंको झुका कर प्रसन्न होने लगे ॥ २३ ॥ तब मैं विष्णु इन्द्र तथा और सब देवता कुमारको घेर कर उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ २४ ॥ इसी समय शम्भुने और आनन्दमें भरी हुई गिरिजाने उस महोत्सवमें आकर आनन्द–पूर्वक पुत्रके दर्शन किये ॥ २५ ॥ चारों ओर प्रमथोंसे घिरे हुए परेश, सर्वेश्वर, सर्पोंसे अलंकृत, जगत्के एकमात्र बन्धु और श्रेष्ठ भवानीपुत्रको देख कर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ इधर शक्तिधर स्कन्दने भी पार्वती और शिवको देख शीघ्र

उपगुह्य शिवः प्रीत्या कुमारं मूर्ध्नि शङ्करः। जघ्रौ प्रेम्णा परेशानः प्रसन्नः स्नेहकर्तृकः
उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसंभ्रमा। प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ २९ ॥
तदा नीराजितो देवैस्सकलत्रैर्मुदान्वितैः। जयशब्देन महता व्याप्नमासीन्नभस्तलम् ३०
ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः। वाद्यैश्च बहवस्तत्रोपतस्थुश्च कुमारकम् ३१
स्वमङ्कमारोप्य तदा महेशः कुमारकं तं प्रभया समुज्ज्वलम्। बभौ भवानीपतिरेव साक्षा-
च्छ्रियान्वितः पुत्रवतां वरिष्ठः ॥३२॥ कुमारः स्वगणैः सार्द्धमाजगाम शिवालयम्। शिवा-
ज्ञया महोत्साहैस्सह देवैर्महासुखी ॥ ३३ ॥ दम्पती तौ तदा तत्रैकपद्येन विरेजतुः।
विवन्द्यमानावृषिभिरावृतौ सुरसत्तमैः ॥ ३४ ॥ कुमारः क्रीडयामास शिवोत्संगे मुदा-
न्वितः। वासुकिं शिवकण्ठस्थं पाणिभ्यां समपीडयत् ॥ ३५ ॥ प्रहस्य भगवान् शम्भु-
श्शशंस गिरिजां तदा। निरीक्ष्य कृपया दृष्ट्या कृपालुर्लीलयाकृतिम् ॥ ३६ ॥ मन्दस्मि-
तेन च तदा भगवान्महेशः प्राप्तो मुदञ्च परमां गिरिजासमेतः। प्रेम्णा स गद्गदगिरो
जगदेकबन्धुर्नोवाच किंचन विभुर्भुवनैकभर्ता ॥३७॥ अथ शम्भुर्जगन्नाथो हृष्टो लौकिक-

ही रथसे उतर शिर झुका कर प्रणाम किया ॥ २७ ॥ तब प्रसन्न हुए स्नेह-कर्ता परेश शिवने कुमारका आलिंगन करके उनका मस्तक सूँघा ॥ २८ ॥ और स्नेहमें भरी हुई पार्वती भी गुहको चिपटा कर स्नेहके कारण स्तनोंमें से दूध बहाने लगीं ॥ २९ ॥ तदनन्तर सब देवताओंने आनन्दमें भर कर उनकी आरती उतारी, उस समय जयजयकारकी ध्वनिसे आकाशमण्डल गुञ्जार उठा ॥३०॥ ऋषि ब्रह्मघोषसे, गायक गीतोंसे और बहुतसे (गंधर्व) प्राणी बाजोंसे उनका उपस्थान करने लगे ॥ ३१ ॥ उस समय पुत्र वालोंमें श्रेष्ठ, शोभासम्पन्न, साक्षात् भवानीपति महेश उस कुमारको गोदमें लेकर दमकने लगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर कुमार भी शिवकी आज्ञासे उत्साहमें भरे हुए देवताओंको और अपने गणोंको साथमें ले परमसुखके साथ शिवालय में पधारे ॥३३॥ उस समय श्रेष्ठ देवताओंसे घिरे हुए और ऋषियोंसे वंदना किये जाते हुए वे दोनों दम्पति शोभित होने लगे ॥३४॥ उस समय आनन्द में भर शिवकी गोदीमें बैठे हुए कुमार शिवके कण्ठमें स्थित वासुकिको हाथों से दबोच कर क्रीड़ा करने लगे ॥ ३५ ॥ उस समय कृपालु शंकर, लीला करनेके लिये शरीर धारण करने वाली गिरिजाको कृपादृष्टिसे देख कर हँसे और गिरिजाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय गिरिजाके साथ विराजमान भगवान् महेश हर्षमें भर कर मुस्कुराने लगे और वह भुवनके एकमात्र स्वामी, जगत्के परम बन्धु प्रेमके कारण गद्गद कण्ठ होजानेसे कुछ कह न सके ॥ ३७ ॥ तदनन्तर हर्षमें भरे हुए जगन्नाथ शम्भुने लोकाचार

कृतवान् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कार्त्तिकम् ॥ ३८ ॥ वेदमन्त्राभिपूतैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३९॥ सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटांगदम् । वैजयन्तीं स्वमालां च तस्मै चक्रं ददौ हरिः ॥ ४० ॥ शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं शरम् । संहारास्त्रं च परमां विद्यां तस्मै ददौ शिवः ॥ ४१ ॥ अदामहं यज्ञसूत्रं वेदांश्च वेदमातरम् । कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां चवारिमर्दिनीम् ॥ ४२ ॥ गजेन्द्रं चैव वज्रं च ददौ तस्मै सुरेश्वरः । श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ वस्तुं जलेश्वरः ॥ ४३ ॥ मनोयायिरथं सूर्यस्सन्नाहं च महाचयम् । यमदण्डं यमश्चैव सुधाकुम्भं सुधानिधिः ॥ हुताशनो ददौ प्रीत्या महाशक्तिं स्वसूनवे । ददौ स्वशस्त्रं निरृतिर्वायव्यास्त्रं समीरणः । गदां ददौ कुबेरश्च शूलमीशो ददौ मुदा । नानाशस्त्राण्युपायांश्च सर्वे देवा ददुर्मुदा ४६ कामास्त्रं कामदेवोऽथ ददौ तस्मै मुदान्वितः । गदां ददौ स्वविद्याश्च तस्मै च परया मुदा क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टं रत्ननूपुरम् । हिमालयो हि दिव्यानि भूषणान्यंशुकानि च ॥ ४८ ॥ चित्रबर्हणनामानं स्वपुत्रं गरुडो ददौ । अरुणस्ताम्रचूडाख्यं बलिनं चर-

---

करनेके लिये कार्तिकेयको रत्नमय सिंहासन पर बैठाया ॥३८॥ और वेदमन्त्रोंसे पवित्र किये हुए, सकल तीर्थोंके जलसे भरे हुए और सैंकड़ों रत्न पड़े हुए कलशोंसे उनको आनन्दपूर्वक स्नान कराया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर हरिने उनको श्रेष्ठ २ रत्नोंका बना हुआ किरीट मुकुट बाजूबन्द और अपनी वैजयन्ती माला तथा चक्र दिया ॥४०॥ और शिवने उनको शूल, पिनाक, फरसा, शक्ति, पाशुपत अस्त्र, संहारास्त्र और परम विद्या दी ॥ ४१ ॥ और मैंने भी उनको यज्ञसूत्र, वेद, वेदमाता (गायत्री) कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र और शत्रुओंका मर्दन करने वाली विद्या दी ॥४२॥ और सुरराजने उनको गजराज और वज्र दिया और वरुणने उनको श्वेत छत्र और रत्नमाला दी ॥ ४३ ॥ सूर्यने मनके अनुकूल चलने वाला रथ और बड़ा भारी कवच दिया यमने यमदण्ड और सुधानिधि (चन्द्रमा) ने सुधाका कुम्भ दिया ४४ और हुताशनने अपने पुत्रको प्रीतिके साथ महाशक्ति दी ॥ ४५ ॥ कुबेरने गदा दी और ईशने आनंदके साथ शूल दिया, इस प्रकार सब देवताओंने आनन्दपूर्वक बहुतसे शस्त्र और उपाय दिये ॥ ४६ ॥ कामदेवने भी हर्षमें भर कर उनको कामशास्त्र दिया और परम आनन्दके साथ उनको गदा और अपनी विद्या दी ॥ ४७ ॥ क्षीर–समुद्रने अमूल्य रत्न श्रेष्ठ रत्ननूपुर दिया तथा हिमालयने दिव्य आभूषण और वस्त्र दिये ॥ ४८ ॥ गरुड़ने अपने चित्रबर्हण नाम वाले पुत्रको दिया और अरुणने चरणोंसे युद्ध करने वाले बलवान् ताम्रचूडको दिया ॥ ४९ ॥ पार्वतीने प्रसन्न हो मुस्करा कर

णायुषम् ॥४९॥ पार्वती सस्मिता हृष्टा परमैश्वर्यमुत्तमम् । ददौ तस्मै महाप्रीत्या चिरञ्जीवित्वमेव च ॥ ५० ॥ लक्ष्मीश्च संपदं दिव्यां महाहारं मनोहरम् । सावित्री सिद्धविद्यां च समस्तां प्रददौ मुदा ॥ ५१ ॥ अन्याश्चापि मुने देव्यो या यास्तत्र समागताः । स्वात्मवस्तु ददुस्तस्मै तथैव शिशुपालिकाः ॥५२॥ महामहोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम । सर्वे प्रसन्नतां याता विशेषाच्च शिवाशिवौ ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे काले प्रोवाच प्रहसन् मुदा । मुने ब्रह्मादिकान् देवान् रुद्रो भर्गः प्रतापवान् ॥ ५४ ॥ शिव उवाच । हे हरे हे विधे देवास्सर्वे शृणुत मद्वचः । सर्वथाहं प्रसन्नोऽस्मि वरान्वृणुत ऐच्छिकान् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मोवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भोर्मुने विष्णवादयस्सुराः सर्वे प्रोचुः प्रसन्नास्या देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥५६॥ कुमारेण हतो ह्येष तारको भविता प्रभो । तदर्थमेव संजातमिदं चरितमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हन्तुमुद्यताः । आज्ञां देहि कुमाराय स तं हन्तुं सुखाय नः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मोवाच । तथेति मत्वा स विभुर्दत्तवांस्तनयं तदा । देवेभ्यस्तारकं हन्तुं कृपया परिभावितः ॥५९॥ शिवाज्ञया सुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखास्तदा । पुरस्कृत्य गुहं सद्यो निर्जग्मुर्मिलिता गिरेः ॥ ६० ॥ बहिर्निस्सृत्य कैलासात्त्वष्टा शास-

---

उत्तम परमैश्वर्य दिया तथा परम-प्रेमसे चिरंजीवीपन भी दिया ॥५०॥ लक्ष्मीने दिव्यसम्पत्ति और मनोहर महाहार दिया और सावित्रीने आनन्दके साथ उनको समस्त सिद्धविद्या सिखाई ॥ ५१ ॥ हे मुने ! और भी जो देवियें तहाँ आई थीं और जो बच्चोंका पालन करने वाली थीं उन आत्मज्ञान वाली स्त्रियोंने भी कुमारको (बहुतसी वस्तुएँ) दीं ॥ ५२ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार तहाँ बड़ा भारी उत्सव हुआ, सब प्रसन्न हुए और शिव तथा शिवा तो विशेषरूपसे प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ हे मुने ! इसी समय प्रतापवान् भर्ग रुद्रने आनन्दके साथ हँस कर ब्रह्मा आदि देवताओंसे समयोचित बात कही ५४ शिवने कहा, कि-हे हरे ! हे विधे ! हे सब देवताओं ! तुम मेरे वचनको सुनो, मैं भली प्रकार प्रसन्न होरहा हूँ, तुम इच्छानुसार वर माँग लो ५५ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मुने ! शम्भुके इस वचनको सुन कर विष्णु आदि देवताओंका मुखकमल प्रसन्न होगया और उन्होंने पशुपति प्रभु देवसे कहा, कि-५६ यह तारकासुर कुमारसे ही मारा जावेगा और इसीलिये यह उत्तम चरित हुआ है इसलिये हम आज ही तारकको मारनेके लिये उद्यत होकर चलें । अतः आप हमें सुख पहुँचानेके लिये कुमारको उसका वध करनेकी आज्ञा दीजिये ५८ ब्रह्माजीने कहा, कि-तब प्रभुने कृपाके कारण तथास्तु कह कर देवताओंको अपना पुत्र तारकका वध करनेके लिये देदिया ॥ ५९ ॥ तब शिवकी आज्ञासे ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता गुहको आगे करके तत्काल ही पर्वतसे चल

नतो हरेः। विरेचे नगरं रम्यमद्भुतं निकटे गिरेः ॥ ६१ ॥ तत्र रम्यं गृहं दिव्यमद्भुतं परमोज्ज्वलम्। गुहार्थं निर्ममे त्वष्टा तत्र सिंहासनं वरम् ॥ ६२ ॥ तदा हरिस्सुधीर्भक्त्या कारयामास मङ्गलम्। कार्तिकस्याभिषेकं हि सर्वतीर्थजलैस्सुरैः॥ ६३ ॥ सर्वथा समलंकृत्य वासयामास संभ्रमम्। कार्तिकस्य विधिं प्रीत्या कारयामास चोत्सवम् ॥ ६४ ॥ ब्रह्मांडाधिपतित्वं हि ददौ तस्मै मुदा हरिः। चकार तिलकं तस्य समानर्च सुरैस्सह।६५। प्रणम्य कार्तिकं प्रीत्या सर्वदेवर्षिभिस्सह। तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैः शिवरूपं सनातनम् ॥ वरसिंहासनस्थो हि शुशुभेऽतीव कार्तिकः। स्वामिभावं समापन्नो ब्रह्मांडस्यापि पालकः

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कुमाराभिषेकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच। अथ तत्र स गांगेयो दर्शयामास सूतिकाम्। तामेव शृणु सुप्रीत्या नारद त्वं स्वभक्तिदाम् ॥१॥ द्विज एको नारदाख्य आजगाम तदैव हि। तत्राध्वरकरः श्रीमान् शरणार्थं गुहस्य वै ॥ २ ॥ स विप्रः प्राप्य निकटं कार्तिकस्य प्रसन्नधीः। स्वाभिप्रायं समाचख्यौ सुप्रणम्य शुभैः स्तवैः ॥ ३ ॥ विप्र उवाच। शृणु स्वामिन्वचो मेऽद्य कष्टं

दिये ॥ ६० ॥ हरिकी आज्ञासे त्वष्टाने कैलाससे बाहर निकल कर पर्वतके निकट एक अद्भुत नगर बनाया ॥ ६१ ॥ तहाँ पर विश्वाकर्माने एक रम्य उज्ज्वल परम दिव्य घर बनाया और उसमें गुहके लिये श्रेष्ठ सिंहासन बनाया ६२ तब बुद्धिमान् हरिने भक्तिपूर्वक मंगलाचरण किया और सब देवताओंके साथ सब तीर्थोंके जलसे कार्तिकेयका अभिषेक किया ॥६३॥ और उनको सर्वथा अलंकृत करके प्रीतिपूर्वक कार्तिकेयके निमित्त विधिपूर्वक उत्सव मनाया ६४ फिर हरिने आनन्दमें भर कर उनको ब्रह्माण्डका अधिपति बनाया, देवताओंको साथमें लेकर उनका तिलक करके पूजा की ॥ ६५ ॥ फिर उन शिवरूप सनातनकी सब देवता और ऋषियोंको साथमें लेकर प्रीतिपूर्वक प्रणाम कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ उस समय स्वामिभावको प्राप्त हुए ब्रह्माण्डके पालक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए कार्तिकेय बड़ी शोभा पाने लगे ॥ ६७ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

ब्रह्माजीने कहा, कि—हे नारद ! तदनन्तर तहाँ पर गंगा-नन्दनने अपनी रक्षकताका परिचय दिया था, उस कार्तिकेयकी भक्ति प्रदान करने वाली कथाको प्रेमपूर्वक सुनो ॥ १ ॥ तहाँ एक नारद नाम वाला यज्ञकर्ता श्रीमान् द्विज गुहकी शरणमें आया ॥२॥ वह निर्मल बुद्धि वाला विप्र कार्तिकेयके पास आ शुभ स्तोत्रोंके साथ उनको प्रणाम कर अपने अभिप्रायको कहने लगा ॥ ३ ॥ विप्रने कहा, कि—हे स्वामिन् ! मेरे वचनको सुनिये और

मे विनिवारय । सर्वब्रह्मांडनाथस्त्वमतस्ते शरणं गतः ॥ ४ ॥ अजमेधाध्वरं कर्तुमारंभं कृतवानहम् । सोऽजो गतो गृहान्मे हि त्रोटयित्वा स्वबन्धनम् ॥ ५ ॥ न जाने स गतः कुत्रान्वेषणं तत्कृतं बहु । न प्राप्तोऽतस्स बलवान् भङ्गो भवति मे क्रतोः ॥ ६ ॥ त्वयि नाथे सति विभो यज्ञभङ्गः कथं भवेत् । विचार्य्यैवाखिलेशान कामं पूर्णं कुरुष्व मे ॥७॥ त्वां विहाय शरण्यं कं यायां शिवसुत प्रभो । सर्वब्रह्मांडनाथं हि सर्वामरसुसेवितम् ॥ ८ ॥ दीनबन्धुर्दयासिन्धुस्सुसेव्यो भक्तवत्सलः । हरिब्रह्मादिदेवैश्च सुस्तुतः परमेश्वरः ॥ ९ ॥ पार्वतीनन्दनस्स्कन्दः परमेकः परन्तपः । परमात्माऽऽत्मदः स्वामी सतां च शरणार्थिनाम् दीनानाथ महेश शंकरसुत त्रैलोक्यनाथ प्रभो मायाधीश समागतोऽस्मि शरणं मां पाहि विप्रप्रिय । त्वं सर्वप्रभुरानताखिलविद्ब्रह्मादिदेवैः स्तुतस्त्वं मायाकृतिरात्मभक्तसुखदो रक्षापरो मायिकः ॥ ११ ॥ भक्तप्राणगुणाकरस्त्रिगुणतो भिन्नोऽसि शम्भुप्रियः शंभुः शंभुसुतः प्रसन्नसुखदस्सच्चित्स्वरूपो महान् । सर्वज्ञस्त्रिपुरघ्नशंकरसुतः सत्प्रेमवश्यस्सदा षड्वक्त्रः प्रियसाधुरानतप्रियस्सर्वेश्वरश्शंकरः । साधुद्रोहकरघ्न शंकरगुरो ब्रह्मांड-

---

सुन कर मेरे कष्टको निवृत्त करिये, क्योंकि—सब ब्रह्माण्डके नाथ आपकी मैंने शरण ली है ॥ ४ ॥ मैंने अजमेध यज्ञका आरम्भ किया था वह बकरा मेरे घरसे रस्सी तुड़ा कर भाग गया है ॥५॥ न जाने वह कहाँ चला गया, परन्तु उस बलवान् बकरेका कुछ पता नहीं चलता, इस कारण मेरा यज्ञ भङ्ग हुआ जाता है ॥६॥ परन्तु आपसे नाथ होने पर मेरा यज्ञ भ्रष्ट कैसे होगा? इस लिये हे सबके स्वामिन्! आप विचार करके मेरी कामानाको पूर्ण करिये ७ हे शिवसुत! हे प्रभो! मैं सब ब्रह्माण्डके नाथ तथा सब देवताओंसे सेवित आपको छोड़ कर और किसकी शरणमें जाऊँ ॥ ८ ॥ आप दीनबन्धु हैं, दयासिन्धु हैं, सबके सेवनीय हैं और भक्तवत्सल हैं तथा परमेश्वर होनेके कारण हरि ब्रह्मा आदिक देवता भी आपकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ आप पार्वतीके नन्दन हैं, स्कन्द हैं, पर हैं, एक हैं, परन्तप हैं, परमात्मा हैं, आत्मज्ञान देने वाले और शरण चाहने वाले सज्जनोंके स्वामी हैं ॥ १० ॥ हे दीनानाथ! हे महेश! हे शंकरसुत! हे त्रैलोक्यनाथ! हे प्रभो! हे मायाधीश! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, हे विप्रप्रिय! आप मेरी रक्षा करिये, आप सबके प्रभु हैं, जो प्रणाम करने वालोंको सब वस्तुएँ प्राप्त करा देते हैं, ऐसे ब्रह्मा आदि देवता आपकी स्तुति करते हैं, आपने अपनी मायासे शरीर धारण कर रखा है, आप अपने भक्तोंको सुख दिया करते हैं, रक्षक हैं और आप मायिक हैं ॥११॥ आप भक्तोंको प्राणप्रिय गुणोंके खजाने हैं और त्रिगुण से भिन्न भी हैं, शम्भुके प्रिय हैं, कल्याणके उत्पादक हैं और शम्भुकुमार

नाथः प्रभुः। सर्वेषाममरादिसेवितपदो मां पाहि सेवाप्रिय ॥ १२ ॥ वैरिभयंकर शंकर-जनशरणस्य वन्दे तव पदपद्मं सुखकरणस्य। विज्ञप्तिं मम कर्णे स्कन्द निधेहि निजभक्तिं जनचेतसि सदा विधेहि ॥ १३ ॥ करोति किं तस्य बली विपक्षो दक्षोऽपि पक्षोभयपार्श्वगुप्तः। किन्तक्षकोऽप्यामिषभक्षको वा त्वं रक्षको यस्य सदक्षमानः ॥ १४ ॥ विबुधगुरुरपि त्वां स्तोतुमीशो न हि स्यात्कथय कथमहं स्यां मन्दबुद्धिर्वराच्यं। शुचिरशुचिरनार्यो यादृशस्तादृशो वा पदकमलपरागं स्कन्द ते प्रार्थयामि ॥ १५ ॥ हे सर्वेश्वर भक्तवत्सल कृपासिन्धो त्वदीयोऽस्म्यहं क्षमस्व मे हि सेवकस्य गणपस्याऽगश्शतं सत्प्रभो। भक्तिं क्वापि कृतां मनागपि विभो जानासि भृत्यार्तिहा त्वत्तो नास्त्यपरोऽविता न भगवन् मत्तो नरः पामरः ॥ १६ ॥ कल्याणकर्ता कलिकल्मषघ्नः कुबेरबन्धुः करुणार्द्रचित्तः।

हैं, प्रसन्न होने पर सुख देने वाले हैं, सत् चित् स्वरूप और महान् हैं, सर्वज्ञ हैं, त्रिपुरासुरका संहार करने वाले हैं, सदा सज्जनोंके प्रेमके वशमें रहते हैं, आपके छः मुख हैं, साधु पुरुषोंको आप प्रिय हैं, आप प्रणाम करने वालों को प्रिय समझते हैं, सबके ईश्वर हैं, कल्याण करने वाले हैं, जो साधुओं से द्रोह करते हैं, उनका आप संहार कर डालते हैं, शंकर आपके गुरु हैं, आप ब्रह्माण्डके नाथ हैं, सबके प्रभु हैं, देवता आदि आपके चरणोंकी सेवा करते हैं, हे सेवाप्रिय ! आप मेरी रक्षा करिये ॥ १२ ॥ हे वैरियोंको भय देने वाले ! हे कल्याणकारक ! पुरुषोंके शरण लेने योग्य और सुखदायक आपके चरणयुगलोंकी मैं वन्दना करता हूँ, हे स्कन्द ! आप मेरी विज्ञप्ति पर कान दीजिये और मनुष्योंके चित्तमें सदा अपनी भक्तिका विस्तार करिये १३ चतुरता और मानसे संपन्न आप जिसके रक्षक हों उसका बलवान् विपक्षी क्या कर सकता है, दोनों ओरसे रक्षित चतुर प्राणी भी उसका कुछ नहीं कर सकता और मांसभक्षी तक्षक भी उसका कुछ नहीं कर सकता ॥१४॥ हे श्रेष्ठ २ पुरुषोंसे पूजनीय ! जब देवताओंके गुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हो सकते तो मैं मन्दबुद्धि आपकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ हे स्कन्द ! मैं पवित्र हूँ, वा अपवित्र हूँ, वा अनार्य हूँ, चाहे जैसा भी हूँ, आपके चरण-कमलोंके परागकी ही प्रार्थना करता हूँ ॥१५॥ हे भक्तवत्सल ! हे सर्वेश्वर ! हे कृपासिन्धो ! मैं आपका ही हूँ, हे प्रभो ! मुझ सेवकके सैंकड़ों अपराध भी आपको क्षमा करने चाहियें हे विभो ! कहीं पर आपकी थोड़ीसी भी भक्ति की जाय आप उसको जान जाते हैं, आप भृत्योंके दुःखोंका नाश करने वाले हैं, आपसे अधिक रक्षक और कोई नहीं है और हे भगवन् ! मुझसे अधिक पामर नर और कोई नहीं है १६

त्रिषट्कनेत्रो रसवक्त्रशोभी यज्ञं प्रपूर्णं कुरु मे गुह त्वम् ॥ १७ ॥ रक्षकस्त्वं त्रिलोकस्य शरणागतवत्सलः । यज्ञकर्ता यज्ञभर्ता हरसे विघ्नकारिणाम् ॥१८॥ विघ्नवारण साधूनां सर्गकारण सर्वतः । पूर्णं कुरु ममेशानसुत यज्ञं नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥ सर्वत्राता स्कन्द हि त्वं सर्वज्ञाता त्वमेव हि । सर्वेश्वरस्त्वमीशानो निवेशसकलावनः ॥ २० ॥ संगीतज्ञस्त्वमेवासि वेदविज्ञः परः प्रभुः । सर्वस्थाता विधाता त्वं देवदेवस्सतां गतिः ॥ २१ ॥ भवानीनन्दनश्शम्भुतनयो वयुनः स्वराट् । ध्याता ध्येयः पितॄणां हि पिता योनिः सदात्मनाम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य देवसम्राट् शिवात्मजः । स्वगणं वीरबाह्वाख्यं प्रेषयामास तत्कृते ॥२३॥ तदाज्ञया वीरबाहुस्तदन्वेषणहेतवे । प्रणम्य स्वामिनं भक्त्या महावीरो द्रुतं ययौ ॥ २४ ॥ अन्वेषणं चकारासौ सर्वब्रह्माण्डगोलके । न प्राप तमजं कुत्र शुश्राव तदुपद्रवम् ॥ २५ ॥ जगामाथ स वैकुण्ठं तत्राजं प्रददर्श तम् । उपद्रवं प्रकुर्वन्तं गलयूपं महाबलम् ॥ २६ ॥ धृत्वा तं शृङ्गयोर्वीरो धर्षयित्वाऽतिवेगतः ।

आप कल्याण करने वाले हैं, कलिके कल्मषको नष्ट करने वाले हैं, कुबेरके बन्धु हैं और आपका चित्त करुणासे आर्द्र रहता है, आपके अठारह नेत्र हैं, और आप छः मुखोंसे शोभा पाते रहते हैं, इस लिये हे गुह ! आप मेरे यज्ञको पूर्ण करिये ॥ १७ ॥ आप त्रिलोकीके रक्षक हैं, शरणागतवत्सल हैं, यज्ञके कर्ता और यज्ञके भर्ता हैं और विघ्नकारियोंका हरण करने वाले हैं १८ हे साधुओंके विघ्नको दूर करने वाले ! हे चारों ओरसे सृष्टिके कारण ! हे ईशानसुत ! आप मेरे यज्ञको पूर्ण करिये, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।१९। हे स्कन्द ! तुम सबकी रक्षा करने वाले हो और तुम ही सबके ज्ञाता हो, तुम सर्वेश्वर, ईशान और सब स्थानोंकी रक्षा करने वाले हो ॥२०॥ आप संगीतको जानने वाले, वेदवेत्ता और परम प्रभु हैं, आप सबको स्थित रखने वाले, विधाता, देवदेव और सज्जनोंकी गति हैं ॥ २१ ॥ भवानीके नन्दन, शम्भुपुत्र, सुखस्वरूप और स्वराट् हैं । आप पितरोंके ध्याता और ध्येय हैं और सज्जनोंके माता पिता हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—उसके इस वचनको सुन शिवके पुत्र देवसम्राट्ने वीरबाहु नामवाले अपने गणको उसके निमित्त भेजा ॥२३॥ उनकी आज्ञा पाकर महावीर वीरबाहु स्वामीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उस बकरेको ढूंढनेके लिये शीघ्रतापूर्वक चल दिये २४ उन्होंने सारे ब्रह्माण्डमें उसको ढूँढा, परन्तु उस बकरेका कुछ पता न चला और न उसका कुछ उपद्रव दीखा ॥२५॥ तब वह वैकुण्ठमें गए और उन्होंने वहाँ गलेमें यूप बँधे हुए महाबली बकरेको उपद्रव करते हुए देखा ॥ २६ ॥ तब वह वीर उसके सींगोंको पकड़ और उसको दबा कर बड़े वेगसे अपने

आनिनाय स्वामिपुरो विकुर्वन्तं रवं बहु ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा तं कार्तिकस्सोऽरमारुरोह स तं प्रभुः । धृतब्रह्माण्डगरिमा महासूतिकरो गुहः ॥ २८ ॥ मुहूर्तमात्रतस्सोऽजो ब्रह्माण्डं सकलं मुने । बभ्राम श्रम एवाशु पुनस्तत्स्थानमागतः ॥ २९ ॥ तत उत्तीर्य स स्वामी समुवास स्वमासनम् । सोऽजः स्थितस्तु तत्रैव स नारद उवाच तम् ३० नारद उवाच । नमस्ते देवदेवेश देहि मेऽजं कृपानिधे । कुर्यामध्वरमानन्दात्सखायं कुरु मामहो ॥ ३१ ॥ कार्तिक उवाच । वधयं ग्यो न विप्राज: स्वगृहं गच्छ नारद । पूर्णोऽस्तु तेऽध्वरस्सर्वः प्रसादादेव मे कृतः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य द्विजस्स्वामी वचनं प्रीतिमानसः । जगाम स्वालयं दत्त्वा तस्मा आशिषमुत्तमाम् । ३३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कुमाराद्भुतचरितवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच । हर्यादयस्सुरास्ते च दृष्ट्वा तच्चरितं विभोः । सुप्रसन्ना बभूवुर्हि विश्वासासक्तमानसाः ॥ १ ॥ वल्गुतः कुर्वता नादं भाविताद्शिवतेजसा । कुमारन्ते पुरस्कृत्य तारकं हन्तुमाययुः ॥२॥ देवानामुद्यमं श्रुत्वा तारकोऽपि महाबलः । सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति ॥ ३ ॥ देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकस्य महाबलम् । बलेन बहु

स्वामीके पुरमें लाने लगे, उस समय वह अनेक प्रकारका शब्द करने लगा २७ उसको देख कर ब्रह्माण्डके भारको धारण करने वाले वह परम रक्षक गुह उस पर सवार होगए । २८॥ हे मुने ! तब वह बकरा मुहूर्तभर तक ब्रह्मांड में घूम कर थक कर फिर उसी स्थानमें आगया ॥ २९ ॥ तब वह स्वामी उससे उतर कर अपने आसन पर बैठ गए और वह बकरा तहाँ ही खड़ा रहा, तब नारदने कार्तिकेयसे कहा ॥ ३० ॥ नारदने कहा, कि–हे देवदेवेश ! आपको प्रणाम है, हे कृपानिधे ! आप कृपा करके मेरा बकरा मुझे दीजिये ३१ कार्तिकेयने कहा, कि–हे ब्राह्मण ! यह बकरा वधके योग्य नहीं है, अतः हे नारद ! तुम अपने घरको चले जाओ और मैं अपनी कृपासे ही तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण किये देता हूँ ॥ ३२ ॥ वह स्वामी द्विज इस बातको सुन कर मनमें प्रसन्न हुआ और उनको उत्तम आशीर्वाद देता हुआ अपने घरको चला गया ॥ ३३ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀

ब्रह्माजीने कहा, कि–हरि आदि देवता प्रभुके इस चरित्रको देख कर प्रसन्न हुए और उनके चित्तमें विश्वास होगया (कि–यह तारकासुरका संहार कर डालेंगे) ॥ १ ॥ इस कारण शिवतेजसे पवित्र हुए वे कुमारको आगे कर मनोहर नाद करते हुए तारकको मारनेके लिये चल दिये ॥ २ ॥ देवताओंके उद्योगको सुन कर महाबली तारक भी, बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर देवताओंसे युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा ॥ ३ ॥ देवता, तारककी

कुर्वन्तः सिंहनादं विसिस्मियुः ॥४॥ तदा नभोऽङ्गगा वाणी जगादोपरि सत्वरम् । शंकरप्रेरिता सद्यो हर्यादीनखिलान् सुरान् ॥ ५ ॥ व्योमवाण्युवाच । कुमारं च पुरस्कृत्य सुरा यूयं समुद्यताः । दैत्यान् विजित्य संग्रामे जयिनोऽथ भविष्यथ ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच । वाचं तु खेचरीं श्रुत्वा देवास्सर्वे समुत्सुकाः । वीरशब्दान् प्रकुर्वन्तो निर्भया ह्यभवंस्तदा ॥ ७ ॥ कुमारं च पुरस्कृत्य सर्वे ते जातसाध्वसाः । योद्धुकामास्सुरा जग्मुर्महीसागरसंगमम् ८ आजगाम द्रुतं तत्र यत्र देवास्स तारकः । सैन्येन महता सार्द्धमसुरैर्बहुभिर्वृतः ॥ ९ ॥ रणदुन्दुभयो नेदुः प्रलयांबुदनिस्स्वनाः । कर्कशानि च वाद्यानि पराणि च तदागमे १० गर्जमानास्तदा दैत्यास्तारकेणासुरेण ह । कंपयन्तो भुवं पादक्रमैर्वल्गुनकारकाः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा रवमत्युग्रं सर्वे देवा विनिर्भयाः । ऐकपद्येन चोत्तस्थुर्योद्धुकामाश्च तारकम् ॥ गजमारोप्य देवेन्द्रः कुमारं ह्यग्रतोऽभवत् । सुरसैन्येन महता लोकपालैस्समावृतः ।१३। तदा दुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः । वीणावेणुमृदङ्गानि तथा गन्धर्वनिस्स्वनाः ॥१४॥ गजं दत्त्वा महेन्द्राय कुमारो यानमारुहत् । अनेकाश्चर्यसंभूतं नानारत्नसमन्वितम् १५

बड़ी भारी सेनाको आती हुई देख कर विस्मित हुए और बलपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ ४ ॥ उस समय शङ्करकी प्रेरित आकाशवाणी विष्णु आदि सब देवताओंसे कहने लगी ॥५॥ आकाशवाणीने कहा, कि—हे देवताओं ! तुम कुमारको साथमें लेकर युद्ध करनेको उद्यत हुए हो अब तुम दैत्योंको संग्राममें जीत कर शीघ्र ही विजयी होगे ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—सब उत्सुक देवता आकाशवाणीको सुन निर्भय हो वीरोचित शब्द करने लगे ॥ ७ ॥ फिर आनन्दमें भरे हुए वे सब देवता युद्ध करनेकी इच्छासे पृथ्वी और समुद्रके संगम-स्थानको चल दिये ॥८। तदनन्तर बहुतसे दैत्यों की बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ तारकासुर भी, जहाँ पर देवता थे, तहाँ पर शीघ्र ही आपहुँचा ॥ ९ ॥ तब तो मलयके मेघोंकी समान गड़गड़ाती हुई रण-दुन्दुभियें बजने लगीं और बहुतसे कर्कश बाजे भी बजने लगे १० तारकासुरके साथके दैत्य गर्ज कर पृथ्वीको कँपाने लगे, उस समयके उनके कदम मनोहर नहीं लगते थे ॥ ११ ॥ उस परम उग्र शब्दको सुन कर सब देवता निर्भय हो एक साथ तारकासुरसे युद्ध करनेके लिये खड़े होगए १२ देवेन्द्र हाथी पर चढ़ कर कुमारके आगे आगे हो लिये, उस समय बड़ी भारी सेना और लोकपाल उनको घेरे हुए थे ॥१३॥ उस समय दुन्दुभियें, नगड़े और तुरहियें बजने लगीं और बीन, बांसुरी, मृगङ्ग तथा गन्धर्वोंके शब्द होने लगे ॥ १४ ॥ उस समय कुमार, महेन्द्रको हाथी दे अपने आप अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए और बहुतसे रत्नोंसे सम्पन्न यान पर चढ़ गए ॥१५॥

विमानमारुह्य तदा महायशास्स शांकरिस्सर्वगुणैरुपेतः । श्रिया समेतः परया बभौ महान् संवीज्यमानश्चमरैर्महाप्रभैः ॥ १६ ॥ प्राचेतसं छत्रमतीव सुप्रभं रत्नैरुपेतं विविधैर्विराजितम् । धृतं तदा तच्च कुमारमूर्ध्नि वै ह्यनन्तचान्द्रैः किरणैर्महाप्रभैः ॥ १७ ॥ मिलितास्ते तदा सर्वे देवाश्शक्रपुरोगमाः । स्वैः स्वैर्बलैः परिवृता युद्धकामा महाबलाः ॥१८॥ एवं देवाश्च दैत्याश्च योद्धुकामाः स्थिता भुवि । सैन्येन महता तेन व्यूहं कृत्वा पृथक् पृथक् ॥ १९ ॥ ते सेने सुरदैत्यानां शुशुभाते परस्परम् । हन्तुकामे तदान्योन्यं स्तूयमाने च वन्दिभिः ॥ २० ॥ उभे सेने तदा तेषामगर्जेतां वनोम्मे । भयङ्करेऽल्पवीराणामितरेषां सुखावहे ॥२१॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र बलोन्मत्ताः परस्परम् । दैत्या देवा महावीरा युयुधुः क्रोधविह्वलाः ॥ २२ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धं देवदैत्यसमाकुलम् । रुण्डमुण्डांकितं सर्वं क्षणेन समपद्यत ॥२३॥ भूमौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः । निकृत्तांगा महाशस्त्रैर्निहता वीरसम्मताः ॥२४। केषांचिद्बाहवश्छिन्नाः खड्गपातैस्सुदारुणैः । केषांचिदूरवश्छिन्ना वीराणां मानिनां मृधे ॥२५॥ केचिन्मथितसर्वांगा गदाभिर्मुद्गरैस्तथा । केचिन्निर्भिन्नहृदयाः पाशैर्भल्लैश्च पातिताः ॥२६॥ केचिद्विदारिताः पृष्ठे कुन्तैर्ऋष्टिभिरंकुशैः ।

सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शङ्करपुत्र विमान पर चढ़ कर, दमकते हुए चँवरों के डुलाये जाने पर बड़ी शोभा पाने लगे ॥ १६ ॥ उस समय वरुणका छत्र कुमारके मस्तक पर लगाया गया, वह बहुतसे रत्नोंसे दमक रहा था और उसमेंसे चन्द्रमाकी महाप्रभा वाली किरणें निकल रही थीं ॥ १७ ॥ तदनंतर महाबली और युद्धकी इच्छा वाले, अपनी २ सेनासे घिरे हुए इन्द्र आदि देवता मिले ॥ १८ ॥ इस प्रकार देवता और दैत्य युद्ध करनेकी इच्छासे अलग २ व्यूहरचना बना कर पृथ्वी पर खड़े होगए ॥ १९ ॥ उस समय परस्परका संहार करना चाहने वालीं और वन्दियोंसे स्तुति पाती हुईं वे देवता और दैत्योंकी सेनाएँ बड़ी शोभा पाने लगीं ॥ २० ॥ उस समय वे दोनों सेनाएँ समुद्रकी समान गर्जना करने लगीं, उस समय कापुरुषोंको भय लगने लगा और वीरोंको सुख मिलने लगा ॥ २१ ॥ इसी समय क्रोधसे विह्वल और बलसे उन्मत्त महावीर देवता और दैत्य परस्पर युद्ध करने लगे २२ उस समय देवता और दैत्योंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ और क्षणभरमें सारी पृथ्वी रुण्ड और मुण्डोंसे भर गई ॥ २३ ॥ उस समय वीरोंमें माननीय बहुतसे पुरुष बड़े २ शस्त्रोंसे अंग कट जाने पर मर कर सैंकड़ों और हजारों की संख्यामें पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ २४ ॥ दारुण खड्गपातोंसे अनेकोंकी भुजाएँ कट गईं और कुछ मानी वीरोंकी युद्धमें ऊरु कट गईं ॥२५॥ बहुतसों के अंग गदा और मुद्गरोंसे कुचल गए और कुछको योधाओंने भालोंसे हृदय

छिन्नान्यपि शिरांस्येव पतितानि च भूतले ॥ २७ ॥ बहूनि च कबन्धानि नृत्यमानानि तत्र वै । वल्गमानानि शतशो उद्यतास्त्रकराणि च ॥ २८ ॥ नद्यः प्रवर्तितास्तत्र शतशोऽसृक्प्रवहास्तदा । भूतप्रेतादयस्तत्र शतशश्च समागताः ॥ २९ ॥ गोमायवश्शिवास्तत्र भक्षयन्तः पलं बहु । तथा गृध्रवटाश्श्येनवायसा मांसभक्षकाः । बुभुजुः पतितानां च पलानि सुबहूनि वै ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र तारकाख्यो महाबलः । सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति ॥३१॥ देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकं युद्धदुर्मदम् । योद्धुकामं तदा सद्यो ययुश्शक्रादयस्तदा । बभूवाथ महोन्नादस्सेनयोरुभयोरपि ॥ ३२ ॥ अथाभूद् द्वन्द्वयुद्धं हि सुरासुरविमर्दनम् । यं दृष्ट्वा हर्षिता वीराः क्लीबाश्च भयमागताः तारको युयुधे युद्धे शक्रेण दितिजो बली । अग्निना सह संह्लादो जम्भेनैव यमः स्वयम् महाप्रभुर्नैर्ऋतेन पाशी सह बलेन च । सुवीरो वायुना सार्द्धं पवमानेन गुह्यराट् ॥ ३५ ॥ ईशानेन समं शम्भुर्युयुधे रणवित्तमः । शुम्भश्शेषेण युयुधे कुंभश्चन्द्रेण दानवः ॥ ३६ ॥ कुञ्जरो मिहिरेणाजौ महाबलपराक्रमः । युयुधे परमार्कौश्च नानायुद्धविशारदः ॥ ३७ ॥

फाड़ पाशोंसे बाँध कर गिरा दिया ॥ २६ ॥ कुछकी पीठ कुन्त ऋष्टि और अङ्कुशोंसे विदीर्ण होगई और शिर कट कर भूमि पर गिर पड़े ॥ २७ ॥ तहाँ पर बहुतसे कबन्ध नाचने लगे और बहुतसे हाथोंमें शस्त्रोंको उठा कर मधुर वाणी कहने लगे ॥ २८ ॥ तहाँ सैंकड़ों खूनकी नदियें बह गईं, और सैंकड़ों भूत प्रेत आगए ॥ २९ ॥ गीदड़ और गीदड़ियें बहुतसा कच्चा मांस खाने लगीं और तहाँ पर गिरे हुओंके मांसोंको गिद्ध, बाज और कौए आदि मांसभक्षी खाने लगे ॥ ३० ॥ इसी समय तारक नाम वाला महाबली असुर शीघ्र ही बड़ी भारी सेनाको लेकर देवताओंसे युद्ध करनेके लिये झपटा ॥३१॥ युद्धदुर्मद तारकको युद्ध करनेकी इच्छासे आता हुआ देख कर शक्र आदि देवता उसके सामनेको बढ़े, तब दोनों सेनाओंमें बड़ा भारी नाद हुआ ॥३२॥ तदनन्तर देवता और असुरोंका मर्दन करने वाला द्वन्द्व युद्ध हुआ, उसको देख कर वीर हर्षमें भर गए और हिजड़ोंको डर लगने लगा ३३ दितिका पुत्र बलवान् तारक युद्धमें इन्द्रसे लड़ने लगा, अग्निके साथ संह्लाद लड़ने लगा जम्भके साथ स्वयं यम युद्ध करने लगे ॥३४॥ महाप्रभु नैर्ऋत के साथ युद्ध करने लगे और वरुण बलके साथ युद्ध करने लगे, सुवीर वायु के साथ भिड़ गया और कुबेर पवमानसे अड़ गए ॥ ३५ ॥ रणको जानने वाले शम्भु ईशानके साथ युद्ध करने लगे, शुम्भ शेषके साथ युद्ध करने लगा और कुम्भ नामक दानव चन्द्रमाके साथ युद्ध करने लगा ॥ ३६ ॥ और महाबली कुञ्जर सूर्य पर झपटा. और अनेक युद्धोंमें चतुर वह कुञ्जर

एवं द्वन्द्वेन युद्धेन महता च सुरासुराः । संगरे युयुधुस्सर्वे बलेन कृतनिश्चयाः ॥ ३८ ॥ अन्योन्यं स्पर्द्धमानास्तेऽमरा दैत्या महाबलाः । तस्मिन्देवासुरे युद्धे दुर्जया अभवन्मुने तदा च तेषां सुरदानवानां बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणाम् । सुखावहं वीरमनस्विनां वै भयावहं चैव तथेतरेषाम् ॥ ४० ॥ मही महारौद्रतरा विनष्टकैस्सुरासुरैर्वै पतितैरनेकशः । तस्मिन्नगम्यातिभयानका तदा जाता महासौख्यवहा मनस्विनाम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे युद्धप्रारम्भ-वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच । इति ते वर्णितस्तात देवदानवसेनयोः । संग्रामस्तुमुलोऽतीव तत्प्रभ्वोः शृणु नारद ॥ १ ॥ एवं युद्धेऽतितुमुले देवदानवसंचये । तारकेणैव देवेन्द्रश्शक्त्या परमया सह ॥ २ ॥ सद्यः पपात नागाच्च धरण्यां मूर्च्छितोऽभवत् । परं कश्मलमापेदे वज्रधारी सुरेश्वरः ॥ ३ ॥ तथैव लोकपास्सर्वेऽसुरैश्च बलवत्तरैः । पराजिता रणे तात महारणविशारदैः ॥ ४ ॥ अन्येऽपि निर्जरा दैत्यैर्युद्धयमानाः पराजिताः । असहन्तो हि तत्तेजः पलायनपरायणाः ॥ ५ ॥ जगर्जुरसुरास्तत्र जयिनस्सुकृतोद्यमाः । सिंहनादं प्रकुर्वन्तः कोलाहलपरायणाः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र वीरभद्रो रुषान्वितः । आससाद

श्रेष्ठ अस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार निश्चय बाँध कर सब देवता और असुर बड़े भारी द्वन्द्वयुद्धमें प्रवृत्त होगए ॥ ३८ ॥ हे मुने ! परस्पर स्पर्धा रखते हुए वे महाबली दैत्य और देव उस देवासुर युद्धमें दुर्जय हो उठे ॥३९॥ उस समय विजयाभिलाषी देवता और दानवोंमें तुमुल युद्ध होने लगा, उसको देख कर वीर मनस्वियोंको सुख मिलने लगा और दूसरों को डर लगने लगा ॥ ४० ॥ विनष्ट होकर पड़े हुए देवता और दैत्योंसे पृथ्वी रौद्र होगई और अगम्य होनेके कारण अतिभयानक होनेसे मनस्वियों को सुख देने लगी ॥ ४१ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ❀

ब्रह्माजीने कहा, कि हे तात ! हे नारद ! यह मैंने तुमसे देवता और दानवोंकी सेनाका तुमुल संग्राम कहा, अब तुम इनके प्रभुओंके संग्रामको सुनो ॥ १ ॥ इस प्रकार जब देव दानवोंका संहार करने वाला अति तुमुल युद्ध हो रहा था उस समय तारकके साथ पूर्ण शक्तिसे युद्ध करते हुए देवेन्द्र मूर्छित होकर हाथी परसे पृथ्वी पर लुढ़क गए और उन वज्रधारी सुरेश्वर को बड़ा कष्ट हुआ ॥२॥३॥ हे तात ! इसी प्रकार रणकोविद बली असुरोंने और सब लोकपालोंको भी युद्धमें हरा दिया॥४॥ इसी प्रकार दूसरे देवता भी युद्ध करते २ दैत्योंसे हार गए और उनके तेजको न सह कर भागनेको उद्यत होगए ॥ ५ ॥ तब तहाँ सुन्दर उद्योग करने वाले असुर गर्जने लगे और उनके सिंहनादका कोलाहल होने लगा ॥ ६ ॥ तब तो वीरभद्रको

गणैर्वीरैस्तारकं वीरमानिनम् ॥ ७ ॥ निर्जरान् पृष्ठतः कृत्वा शिवकोपोद्भवो बली । तत्सम्मुखो बभूवाथ योद्धुकामो गणाग्रणीः ॥ ८ ॥ तदा ते प्रमथास्सर्वे दैत्याश्च परमोत्सवाः । युयुधुस्संयुगेऽन्योन्यं प्रसक्ताश्च महारणे ॥९॥ त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैः परशुपट्टिशैः । निजघ्नुस्समरेऽन्योन्यं रणे रणविशारदाः ॥ १० ॥ तारको वीरभद्रेण स त्रिशूलाहतो भृशम् । पपात सहसा भूमौ क्षणं मूर्छापरिप्लुतः ॥ ११ ॥ उत्थाय स द्रुतं वीरस्तारको दैत्यसत्तमः । लब्धसंज्ञो बलाच्छक्त्या वीरभद्रं जघान ह ॥ १२ ॥ वीरभद्रस्तथा वीरो महातेजा हि तारकम् । जघान त्रिशिखेनाशु घोरेण निशितेन तम् ॥ १३ ॥ सोऽपि शक्त्या वीरभद्रो जघान समरे ततः । तारको दितिजाधीशः प्रबलो वीरसंमतः ॥ एवं संयुध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् । नानास्त्रशस्त्रैस्समरे रणविद्याविशारदौ ॥ १५ ॥ तयोर्महात्मनोस्तत्र द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा । सर्वेषां पश्यतामेव तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ततो भेरीमृदङ्गाश्च पटहानकगोमुखाः । विनेदुर्विहता वीरैश्शृण्वतां सुभयानकाः ॥१७॥ युयुधाते ऽतिसन्नद्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ । अन्योन्यमतिसंरब्धौ तौ बुधांगारकाविव ॥१८॥

क्रोध आया और वे अपने गणोंको साथमें लेकर वीरमानी तारकके सम्मुख आ डटे ॥ ७ ॥ शिवके कोपसे उत्पन्न हुए वह बली गणनायक युद्ध करने की इच्छामें भर रहे थे, अतः देवताओंको पीठ पीछे करके युद्ध करनेके लिये बढ़े ॥ ८ ॥ तब परम उत्सव मनाते हुए वे प्रमथ और दैत्य आपसमें भिड़ कर युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ वे रणबाँकुरे त्रिशूल, ऋष्टि (दोनों ओर धार वाली तलवार), फाँसे, खड्ग, फरसे और पटोंसे समरमें परस्परका संहार करने लगे ॥ १० ॥ तब वीरभद्रने तारकके त्रिशूल मारा, तब वह भयंकररूपसे घायल होजानेके कारण क्षण भरके लिये मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ११ ॥ फिर उस दैत्यश्रेष्ठ वीर तारकने होशमें आने पर फुरती के साथ वीरभद्रके बलपूर्वक शक्ति मारी ॥१२॥ तब महातेजस्वी वीर वीरभद्र ने भी घोर और तीखे त्रिशूलसे उसको मारा ॥ १३ ॥ तब वीरोंमें माननीय प्रबल दितिजाधीशने भी वीरभद्रके शक्ति मारी ॥ १४ ॥ इस प्रकार युद्ध करते हुए उन दोनों रणविद्याविशारदोंने अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रों से परस्पर पर प्रहार किया ॥१५॥ सबके सामने ही उन दोनों महात्माओं का द्वन्द्व युद्ध तुमुल और रोमहर्षण हो उठा ॥ १६ ॥ तब वीरोंके बजाये हुए नगाड़े मिरदंगे, आनक पटह और गोमुख बजने लगे, उससे सुनने वालों को बड़ा भय लगा ॥ १७ ॥ प्रहारोंसे जर्जर हुए वे दोनों वीर घोर क्रोधमें भर बुध और मङ्गलकी समान लड़ने लगे ॥ १८ ॥ वीरभद्रके और उसके ऐसे युद्धको देख कर, तुम शिवप्रिय होनेके कारण तहाँ पहुँच कर वीरभद्र

एवं दृष्ट्वा तदा युद्धं वीरभद्रस्य तेन च । तत्र गत्वा वीरभद्रमवोचस्त्वं शिवप्रियः ॥ १९ ॥ नारद उवाच वीरभद्र महावीर गणानामग्रणीर्भवान् । निवर्तस्व रणादस्माद्रोचते न वधस्त्वया ॥ २० ॥ एवं निशम्य त्वद्वाक्यं वीरभद्रो गणाग्रणीः । अवदत्स रुषाविष्टस्त्वां तदा तु कृतांजलिः ॥ २१ ॥ वीरभद्र उवाच । मुनिवर्य्य महाप्राज्ञ शृणु मे परमं वचः । तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥२२॥ आनयन्ति च ये वीरास्स्वामिनं रणसंसदि । ते पापिनो महाक्लीबा विनश्यन्ति रणं गताः ॥२३॥ असद्गतिं प्राप्नुवन्ति तेषां च निरयो ध्रुवम् । वीरभद्रो हि विज्ञेयो न वाच्यस्ते कदाचन ॥ २४ ॥ शस्त्रास्त्रैर्भिन्नगात्रा ये रणं कुर्वंति निर्भयाः । इहामुत्र प्रशंस्यास्ते लभन्ते सुखमद्भुतम् ॥२५॥ शृण्वन्तु मम वाक्यानि देवा हरिपुरोगमाः । अतारकां महीमद्य करिष्ये स्वामिवर्जितः ॥२६॥ इत्युक्त्वा प्रमथैस्सार्द्धं वीरभद्रो हि शूलधृक् । विचिन्त्य मनसा शम्भुं युयुधे तारकेण हि ॥ २७ ॥ वृषारूढैरनेकैश्च त्रिशूलवरधारिभिः । महावीरैस्त्रिनेत्रैश्च स रेजे रणसङ्गतः ॥ २८ ॥ कोलाहलं प्रकुर्वंतो निर्भयाश्शतशो गणाः । वीरभद्रं पुरस्कृत्य युयुधुर्दानवैस्सह ॥२९॥ असुरास्तेऽपि युयुधुस्तारकासुरजीविनः । बलोत्कटा महावीरा मर्दयन्तो गणान् रुषा ॥ ३० ॥ पुरः

से कहने लगे ॥ १९ ॥ कि—हे महावीर वीरभद्र ! तुम गणोंमें अग्रगण्य हो तुम इस रणसे हट जाओ, क्योंकि—आपसे इसका वध होना अच्छा नहीं लगता ॥ २० ॥ तुम्हारे इस वचनको सुन कर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने क्रोध में भर हाथ जोड़ कर तुमसे कहा कि—॥ २१ ॥ हे महाबुद्धिमान् मुनिवर ! आप मेरे श्रेष्ठ वचनको सुनें, मैं तारकको मार डालूँगा, आज आप मेरे पराक्रमको देखें ॥२२॥ जो पुरुष स्वामीको रणमें घसीट लाते हैं, वे महाक्लीब पापी रणमें जाने पर नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥ उनको असद्गति प्राप्त होती है और अवश्य ही नरकमें पड़ना पड़ता है, आप मुझे वीरभद्र समझें और कुछ न कहें ॥ २४ ॥ जो शस्त्र तथा अस्त्रोंके द्वारा शरीरके कट फट जाने पर भी निर्भय होकर युद्ध करते रहते हैं, वे इस लोकमें और परलोकमें प्रशंसा पाते हुए अद्भुत सुख भोगते हैं ॥२५॥ हरि आदि देवता, मेरे वचनको सुनें, मैं स्वामीके बिना ही आज पृथ्वीको तारकासुरसे रहित कर दूँगा २६ त्रिशूलधारी वीरभद्र इस प्रकार कह कर मनमें शम्भुका ध्यान धर प्रमथोंको साथमें ले तारकके साथ युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ तब रणमें मग्न वह वीरभद्र वृष पर सवार, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र महावीरोंसे शोभा पाने लगे ।२८। सैंकड़ों गण निर्भय हो कोलाहल करके वीरभद्रको साथमें ले दानवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥२९॥ और तारकासुरसे आजीविका चलाने वाले वे उत्कट बली महावीर असुर भी क्रोधमें भर गणोंको मसलते हुए युद्ध करने लगे ३०

पुनश्चैव बभूव सगरो महोत्कटो दैत्यवरैर्गणानाम् । प्रहर्षमाणाः परमाजकोविदास्तदा गणास्ते जयिनो बभूवुः ॥ ३१ ॥ गणैर्जितास्ते प्रबलैरसुरा विमुखा रणे । पलायनपरा जाता व्यथिता व्यग्रमानसाः ।३२। एवं भ्रष्टं स्वसैन्यं तद् दृष्ट्वा तत्पालकोऽसुरः। तारको हि कृपाविष्टो हंतुं देवगणान् ययौ ।३३। भुजानामयुतं कृत्वा सिंहमारुह्य वेगतः । पातयामास तान्देवान् गणांश्च रणमूर्द्धनि ॥ ३४ स दृष्ट्वा तस्य तत्कर्म वीरभद्रो गणाग्रणीः । चकार सुमहत्कोपं तद्वधाय महाबली।३५। स्मृत्वा शिवपदांभोजं जग्राह त्रिशिखं परम् । जज्वलुस्तेजसा तस्य दिशः सर्वा नभस्तथा ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे स्वामी वारयामास तं रणम् । वीरबाहुमुखान्सद्यो महाकौतुकदर्शकः ॥ ३७ ॥ तदाज्ञया वीरभद्रो निवृत्तोऽभूद्रणात्तदा । कोपं चक्रे महावीरस्तारकोऽसुरनायकः ।३८। चकार बाणवृष्टिं च सुरोपरि तदाऽसुरः । ततोऽह्वासीत्सुरान्सद्यो नानास्त्ररणकोविदः ॥३९॥ एवं कृत्वा महत्कर्म तारकोऽसुरपालकः । सर्वेषामपि देवानामशक्यो बलिनां वरः ॥४०॥ एवं निहन्यमानांस्तान् दृष्ट्वा देवान् भयाकुलान् । कोपं कृत्वा रणायाशु संनद्धोऽभवदच्युतः ॥४१॥ चक्रं सुदर्शनं शार्ङ्गं धनुरादाय सायुधः । अभ्युद्ययौ महादैत्यं रणाय भगवान् हरिः ॥ ४२ ॥ ततस्सम-

---

गणोंका दैत्यवरोंके साथ वार २ परम उत्कट युद्ध होने लगा, तदनन्तर हर्षमें भरे हुए परम चतुर गण जीत गए ॥ ३१ ॥ गणोंके जीतने पर वे प्रबल असुर, चित्तमें घबड़ा व्यथित होकर भागने लगे ॥ ३२ ॥ अपनी सेनाको इस प्रकार भ्रष्ट होती हुई देख कर, उसका पालक असुर क्रोधमें भर कर देवताओं पर झपटा ॥ ३३ ॥ और दश हजार भुजा धारण कर सिंह पर सवार हो रणके मुहाने पर देवता और गणोंको वेगपूर्वक गिराने लगा ३४ गणोंमें श्रेष्ठ महाबली वीरभद्रने उसके इस कर्मको देख कर उसका वध करनेके लिये बड़ा कोप किया ॥३५॥ और शिवके चरण-कमलका स्मरण करके श्रेष्ठ त्रिशूलको उठा लिया, तब उस त्रिशूलके तेजसे सब दिशाएँ और आकाश दमक उठा ॥३६॥ इसी समय कौतुक दिखाने वाले स्वामी कार्तिकेयने वीरबाहुके मुखसे वीरभद्रको रण करनेसे रोक दिया ॥ ३७ ॥ तब उनकी आज्ञासे वीरभद्र रण करनेसे हट गए, इधर असुरनायक महावीर तारकने भी कोप किया ॥ ३८ ॥ और वह असुर देवताओंके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा, फिर वह अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें चतुर असुर देवताओंको युद्ध करनेके लिये पुकारने लगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बड़ा भारी कर्म करके वह असुरपालक तारक सब देवताओंसे अशक्य रहा ॥ ४० ॥ भयव्याकुल देवताओंको इस प्रकार पिटते देख कर, अच्युत कोप कर रण करनेके लिये तयार होगए ॥ ४१ ॥ फिर भगवान् हरि सुदर्शन चक्र और शार्ङ्ग धनुषको

अवद्युद्धं हरितारकयोर्महत् । लोमहर्षणमत्युग्रं सर्वेषां पश्यतां मुने ॥ ४३ ॥ गदामुद्यम्य स हरिर्जघानासुरमोजसा । द्विधा चकार तां दैत्यस्त्रिशिखेन महाबली ॥ ४४ ॥ ततस्सक्रुद्धो भगवान्देवानामभयंकरः । शार्ङ्गच्युतैश्शरव्यूहैर्जघानासुरनायकम् ॥ ४५ ॥ सोऽपि दैत्यो महावीरस्तारकः परवीरहा । चिच्छेद सकलान्बाणान्स्वशरैर्निशितैर्द्रुतम् ॥ ४६ ॥ अथ शक्त्या जघानाशु मुरारिं तारकासुरः । भूमौ पपात स हरिस्तत्प्रहारेण मूर्च्छितः ४७ जग्राह स रुषा चक्रमुत्थितः क्षणतोऽच्युतः । सिंहनादं महत्कृत्वा ज्वलज्ज्वालासमाकुलम् ॥ ४८ ॥ तेन तच्च जघानाशौ दैत्यानामधिपं हरिः । तत्प्रहारेण महता व्यथितो न्यपतद्भुवि ॥ ४९ ॥ पुनश्चोत्थाय दैत्येन्द्रस्तारकोऽसुरनायकः । चिच्छेद त्वरितं चक्रं स्वशक्त्या तिबलान्वितः ॥ ५० ॥ पुनस्तया महाशक्त्या जघानामरवल्लभम् । अच्युतोऽपि महावीरो नन्दकेन जघान तम् ॥ ५१ ॥ एवमन्योन्यमसुरो विष्णुश्च बलवानुभौ । ययुधाते रणे भूरि तत्राक्षतबलौ मुने ॥ ५२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे देवदैत्यसामान्ययुद्धवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच । देवदेव गुह स्वामिञ्शंकर पार्वतीसुत । न शोभते रणे विष्णुतारका-

लेकर युद्ध करनेके लिये उसके सामने बढ़े ॥ ४२ ॥ हे मुने ! तब सबके सामने हरि और तारकमें परम उग्र लोमहर्षण युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥ उन हरिने गदा उठा कर बलपूर्वक असुर पर प्रहार किया, परन्तु उस महाबली दैत्यने त्रिशूलसे उस गदाको दो टूक कर दिया ॥ ४४ ॥ तब देवताओंको अभय देने वाले वह भगवान् क्रोधमें भर कर शार्ङ्ग धनुषसे बाणोंको छोड़ कर असुरको मारने लगे ॥४५॥ तब शत्रुओंका नाशक महावीर दैत्य तारक भी उनके सब बाणोंको अपने तीक्ष्ण शरोंसे शीघ्रतापूर्वक काटने लगा ४६ तदनन्तर उस तारकासुरने मुरारीके शक्ति मारी, तब उस प्रहारसे मूर्छित हो कर हरि पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४७ ॥ फिर क्षणभरमें ही उठ अच्युतने क्रोध में भर सिंहनाद किया और धधकती हुई ज्वालाओंसे सम्पन्न अपने चक्र को उठा लिया ॥ ४८ ॥ और उसका हरिने दैत्योंके अधिप पर प्रहार किया, तब वह उसके प्रहारसे व्यथित होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥४९॥ फिर असुरनायक दैत्येन्द्र तारकने उठकर अपनी शक्तिसे उस चक्रको शीघ्र ही शान्त कर दिया ॥ ५० ॥ फिर उस असुरने अपनी महाशक्तिका अच्युत पर प्रहार किया और महावीर अच्युतने भी उसके नन्दक मारा ॥ ५१ ॥ हे मुने ! इस प्रकार वह अच्युत और असुर दोनों ही बली प्राणी अक्षत बलसे युद्धमें बहुत लड़े ॥ ५२ ॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀

ब्रह्माजीने कहा, कि–हे देवदेव ! हे गुह ! हे स्वामिन् ! हे शङ्कर और

सुरयोर्वृथा ॥१॥ विष्णुना न हि वध्योऽसौ तारको बलवानति। मया दत्तवरस्तस्मात्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २ ॥ नान्यो हंताऽस्य पापस्य त्वां विना पार्वतीसुत। तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं वचनं मे महाप्रभो ॥ ३ ॥ सन्नद्धो भव दैत्यस्य वधायाशु परंतप। तद्वधार्थं समुत्पन्नः शंकरात्त्वं शिवासुत ॥ ४ ॥ रक्ष रक्ष महावीर त्रिदशान्व्यथितान्रणे। न बालस्त्वं युवा नैव किंतु सर्वेश्वरः प्रभुः ॥ ५ ॥ शक्रं पश्य तथा विष्णुं व्याकुलं च सुरान् गणान्। एवं जहि महादैत्यं त्रैलोक्यं सुखितं कुरु ॥ ६ ॥ अनेन विजितश्चेन्द्रो लोकपालैः पुरा सह। विष्णुश्चापि महावीरो तर्जितस्तपसो बलात् ॥७॥ त्रैलोक्यं निर्जितं सर्वमसुरेण दुरात्मना। इदानीं तव सान्निध्यात्पुनर्युद्धं कृतं च तैः ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वया निहन्तव्यस्तारकः पापपूरुषः। अन्यवध्यो न चैवायं मद्वराच्छंकरात्मज ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच। इति श्रुत्वा मम वचः कुमारः शंकरात्मजः। विजहास प्रसन्नात्मा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ विनिश्चित्यासुरवधं शांकरिस्स महाप्रभुः। विमानादवतीर्याथ पदातिरभवत्तदा ॥ ११ ॥ पद्भ्यां तदासौ परिधावमानो रेजेऽतिवीरः शिवजः कुमारः। करे

पार्वतीके पुत्र! विष्णु और तारकका व्यर्थका युद्ध अब अच्छा नहीं लगता।१। क्योंकि—यह बलवान् तारक विष्णुसे नहीं मारा जावेगा, मैंने इसको यह वर देदिया है, अत एव मैं यह सत्य २ कह रहा हूँ ॥ २ ॥ हे पार्वतीनन्दन! आपके सिवाय और कोई इस पापीका वध नहीं कर सकता, इस लिये हे महाप्रभो! आपको मेरे वचनको मानना चाहिये ॥३। हे परन्तप! इस लिये आप दैत्यका वध करनेके लिये शीघ्र ही तयार हूजिये, क्योंकि—हे शिवासुत! आप दैत्यका वध करनेके लिये ही शंकरसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥ हे महावीर! आप युद्धमें व्यथित हुए देवताओंकी रक्षा करिये! रक्षा करिये!! आप न बालक हैं, न युवा हैं, किन्तु फिर भी सबके ईश्वर और प्रभु हैं ५ आप व्याकुल होते हुए इन्द्र विष्णु, देवता और गणोंको देखें और अब इस दैत्यका संहार करके त्रिलोकीको सुखी करें ॥६॥ इसने पहिले लोकपालोंसहित इन्द्रको जीत लिया था और इसने तपोबलके कारण विष्णुको भी धमका दिया था ॥ ७ ॥ इस दुरात्मा असुरने त्रिलोकी जीत ली थी, अब आपके पास होनेसे इन देवताओंने फिर युद्ध किया है ॥ ८ ॥ इस लिये आप पापी पुरुष तारकासुरका वध कर डालिये, हे शंकरपुत्र! मेरे वरके कारण इसको और कोई नहीं मार सकता ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—शंकरपुत्र कुमार इस वचनको सुन कर मनमें प्रसन्न होकर हँसे और बोले तथास्तु ॥ १० ॥ फिर वह महाप्रभु शंकरपुत्र असुरके वधका निश्चय करके विमान परसे उतर कर पैदल होगए ॥ ११ ॥ तब वह शिवसे प्रकट हुए

समादाय महाप्रभां तां शक्तिं महोल्कामिव दीप्तिदीप्ताम् ॥१२॥ दृष्ट्वा तमायांतमतिप्रचंड-
मव्याकुलं षण्मुखमप्रमेयम्। दैत्यो बभाषे सुरसत्तमान्स कुमार एष द्विषतां प्रहन्ता १३
अनेन सार्कं ह्यहमेकवीरो योत्स्ये च सर्वानहमेव वीरान्। गणांश्च सर्वानपि घातयामि
सलोकपालान्हरिनायकांश्च ॥ १४ ॥ इत्येवमुक्त्वा स तदा महाबलः कुमारमुद्दिश्य ययौ
च योद्धुम्। जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको देववरान्बभाषे १५ तारक उवाच।
कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः। यूयं गतत्रपा देवा विशेषाच्छक्रमेश्वरौ १६
पुरैताभ्यां कृतं कर्म विरुद्धं वेदमार्गतः। तच्छृणुध्वं मया प्रोक्तं वर्णयामि विशेषत १७
तत्र विष्णुश्छली दोषी ह्यविवेकी विशेषतः। बलिर्येन पुरा बद्धश्छलमाश्रित्य पापतः १८
तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ। शिरोहीनौ कृतौ धौर्त्याद्वेदमार्गो विवर्जितः ॥१९॥
मोहिनीरूपतोऽनेन पंक्तिभेदः कृतो हि वै। देवासुरसुधापाने वेदमार्गो विगर्हितः ॥२०॥
रामो भूत्वा हता नारी वाली विध्वंसितो हि सः। पुनर्वैश्रवणो विप्रो हतो नीतिर्हता श्रुतेः

परम बली कुमार, हाथमें लपटोंसे दमकती हुई बड़ी उल्काकी समान उस महाकान्ति वाली शक्तिको ले पैदल दौड़ते हुए बड़ी शोभा पाने लगे ।१२। उन परम प्रचण्ड अप्रमेय षडाननको अव्याकुलभावसे आता हुआ देख कर वह दैत्य, देवताओंसे कहने लगा, कि—क्या यही वैरियोंका संहार करने वाले कुमार हैं ॥१३॥ मैं वीर हूँ, अतः अकेला ही इनके साथ युद्ध करूँगा और सब वीरोंके साथ भी मैं युद्ध करूँगा। मैं सब गणोंको मार डालूँगा और हरि जिनके नायक हैं ऐसे लोकपालोंको भी मार डालूँगा ॥ १४ ॥ वह महाबली असुर इस प्रकार कह कर कुमारको लक्ष्य करके युद्ध करनेके लिये बढ़ा तथा उस तारकने परम अद्भुत शक्तिको ग्रहण करके श्रेष्ठ २ देवताओंसे कहा, कि—॥१५॥ अरे! तुमने कुमारको मेरे आगे क्यों कर दिया, अरे हे देवताओं! और विशेषरूपसे इन्द्र और विष्णु! क्या तुम निर्लज्ज हो ॥१६॥ पहिले तुम दोनोंने वेदमार्गसे विरुद्ध कर्म किया था, उसको सुनो, मैं विशेषरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ १७ ॥ इन दोनोंमें विष्णु छली है, दोषी है और बड़ा अविवेकी है, इसने पहिले छलका आश्रय ले पापपूर्वक बलिको बाँध लिया था ॥ १८ ॥ और इसीने पहिले वेदमार्गका त्याग करके धूर्तता और यत्नके साथ मधु और कैटभको शिरसे हीन कर दिया था ॥ १९ ॥ इसने पहिले मोहिनीका रूप धारण कर देवता और असुरोंके सुधापानमें पंक्तिभेद कर दिया था। इस प्रकार इसने वेदमार्गसे निन्दित कर्म किया था २० इसने राम बन कर नारीको मारा था, बालीका विध्वंस किया था, फिर विश्रवाके पुत्र विप्र रावणका वध किया था, इस प्रकार इसने श्रुतिकी नीति

पापं विना स्वकीया स्त्री त्यक्ता पापरतेन यत् । तत्रापि श्रुतिमार्गश्च ध्वंसितस्स्वार्थहेतवे
स्वजनन्याश्शिरश्छिन्नमवतारे रसाख्यके । गुरुपुत्रापमानश्च कृतोऽनेन दुरात्मना २३
कृष्णो भूत्वान्यनार्यश्च दूषिताः कुलधर्मतः । श्रुतिमार्गं परित्यज्य स्वविवाहाः कृतास्तथा
पुनश्च वेदमार्गो हि निंदितो नवमे भवे । स्थापितं नास्तिकमतं वेदमार्गविरोधकृत् ॥२५॥
एवं येन कृतं पापं वेदमार्गं विसृज्य हौ । स कथं विजयेद्युद्धे भवेद्धर्मवतां वरः ॥ २६ ॥
भ्राता ज्येष्ठश्च यस्तस्य शक्रः पापी महान्मतः । तेन पापान्यनेकानि कृतानि निजहेतुनः
निकृत्तो हि दितेर्गर्भस्स्वार्थहेतोर्विशेषतः । धर्षिता गौतमस्त्री हौ हतो वृत्रश्च विप्रजः ॥
विश्वरूपद्विजातेश्च भागिनेयस्य यद्गुरोः । निकृत्तानि च शीर्षाणि तदध्वा ध्वंसितश्श्रुतेः
कृत्वा बहूनि पापानि हरिश्शक्रः पुनः पुनः । तेजोभिर्विहतावेव नष्टवीर्यौ विशेषतः ।३०।
तयोर्बलेन नो यूयं संग्रामे जयमाप्स्यथ । किमर्थं मूढतां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुमिहागताः ॥
जानन्तौ धर्ममेतौ न स्वार्थलं टमानसौ । धर्मं विनाऽमराः कृत्यं निष्फलं सकलं भवेत् ३२
महाधृष्टाविमौ मेऽद्य कृतवंतौ पुरश्शिशुम् । अहं बालं वधिष्यामि तयोस्सोऽपि भवि-

---

को नष्ट किया है ॥२१॥ इसने पापमें परायण होकर बिना ही पापके अपनी स्त्रीको त्याग दिया था, इस प्रकार भी इसने अपने स्वार्थके लिये श्रुतिके मार्गको दूषित कर दिया था ॥ २२ ॥ इसने छठे अवतारमें अपनी माताका शिर काट डाला था और इस दुरात्माने गुरुपुत्रका अपमान किया था २३ इसने कृष्ण बन कर दूसरोंकी नारियोंको धर्मसे दूषित कर दिया था और श्रुतिके मार्गको त्याग कर इसने अपने विवाह किये हैं ॥ २४ ॥ फिर इसने नवें अध्यायमें वेदमार्गकी निन्दा की थी और वेदमार्गके विरोधी नास्तिक मतको स्थापित किया था ॥ २५ ॥ इस भाँति जिसने वेदमार्गको छोड़ पाप किया है वह किस प्रकार विजय पा सकता है, युद्धमें तो जय धर्मात्माओंकी ही होती है ॥२६॥ और जो इसका बड़ा भाई इन्द्र है, वह बड़ा भारी पापी माना जाता है, उसने अपने लिये बड़े २ पाप किये हैं ॥२७॥ इसने अपने स्वार्थके कारण दितिके गर्भका नाश किया था, गौतमकी स्त्रीको भ्रष्ट किया था और विप्रकुमार वृत्रासुरको मार डाला था ॥ २८ ॥ इसने गुरुके भानजे द्विज विश्वरूपके शिरोंको काट डाला था और उसको श्रुतिमार्गसे भ्रष्ट कर दिया था ॥ २९ ॥ ये हरि और इन्द्र बहुतसे पापोंको करनेके कारण नष्ट-वीर्यसे होगए हैं ॥ ३० ॥ इनके बलसे तुम संग्राममें विजय नहीं पा सकते, फिर किस लिये मूढ़तावश यहाँ प्राण त्यागनेको आगए हो ॥ ३१ ॥ चित्तके स्वार्थमें फँसे होनेके कारण इनको धर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा है और हे देवताओं ! धर्मके बिना सारा कर्म निष्फल जाता है ॥ ३२ ॥ ये बड़े ढीट

ष्यति ॥ ३३ ॥ किंतु बाल इतो यायाद् दूरं प्राणपरीप्सया । इत्युक्त्वोद्दिश्य च हरी वीर-
भद्रमुवाच सः ॥ ३४ ॥ पुरा हतास्त्वया विप्रा दक्षयज्ञे ह्यनेकशः । तत्कर्मणः फलं चाद्य
दर्शयिष्यामि तेऽनघ ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्येवमुक्त्वा तु विधूय पुण्यं निजं स तन्नि-
न्दनकर्मणा वै । जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको युद्धवतां वरिष्ठः ॥३६॥ तं बाला-
न्तिकमायान्तं तारकासुरमोजसा । आजघान च वज्रेण शक्रो गुहपुरस्सरः ॥ ३७ ॥ तेन
वज्रप्रहारेण तारको जर्जरीकृतः । भूमौ पपात सहसा निंदाहतबलः क्षणम् ॥३८॥ पति-
तोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्रुषा । पुरंदरं गजस्थं हि पातयामास भूतले ॥ ३९ ॥
हाहाकारो महानासीत्पतिते च पुरंदरे । सेनायां निर्जराणां हि तद् दृष्ट्वा क्लेश आविशत्॥
तारकेणाऽपि तत्रैव यत्कृतं कर्म दुःखदम् । स्वनाशकारणं धर्मविरुद्धं तन्निबोध मे ।४१।
पतितं च पदाक्रम्य हस्ताद्वज्रं प्रगृह्य वै । पुनरुद्धत्याघातेत शक्रमाताडयद्भृशम् ॥ ४२ ॥
एवं तिरस्कृतं दृष्ट्वा शक्रं विष्णुः प्रतापवान् । चक्रमुद्यम्य भगवांस्तारकं स जघान ह ।४३।
चक्रप्रहाराभिहतो निपपात क्षितौ हि सः । पुनरुत्थाय दैत्येन्द्रः शक्त्या विष्णुं जघान

हैं, इन्होंने मेरे आगे बालकको खड़ा कर दिया है मैं बालकको मारूँ ? अहो!
इनके कारण यह भी होगा ॥ ३३ ॥ किन्तु यह बालक है अतः इसे अपने
प्राणोंको बचानेकी इच्छा हो तो यह यहाँसे दूर चला जावे । वह इस प्रकार
इन्द्र और विष्णुसे कह कर वीरभद्रसे कहने लगा ॥ ३४ ॥ तूने पहिले दक्ष
के यज्ञमें अनेक ब्राह्मणोंको मारा था, अरे निष्पाप ! उस कर्मका फल मैं
तुझे आज दिखाऊँगा ॥३५॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-इस प्रकार कह निंदा
करके उसने अपने पुण्यको क्षीण कर दिया, तदनन्तर युद्ध करने वालोंमें
श्रेष्ठ तारकने परम अद्भुत शक्तिको उठा लिया ॥ ३६ ॥ बालकके पास आते
हुए तारकासुरको देख कर, इन्द्र गुहके आगे खड़े होगए और असुरके बल-
पूर्वक वज्र मारा ॥ ३७ ॥ तारकासुरका बल निन्दा करनेके कारण पहिले
ही क्षीण होचुका था, अब वह वज्रके प्रहारसे जर्जर होकर सहसा पृथ्वी
पर गिर पड़ा ॥ ३८ ॥ वह गिर कर भी उठा और उसने क्रोधमें भर कर
शक्तिसे हाथी पर बैठे हुए इन्द्रको भूमिमें गिरा दिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार
इन्द्रके गिरने पर देवताओंकी सेनामें बड़ा हाहाकार मचने लगा, उसको देख
कर क्लेश होने लगा ॥ ४० ॥ उस समय तारकने भी तहाँ जो दुःखदायक
कर्म किया था, उस अपने नाशके कारण धर्मविरुद्ध कर्मको तुम सुनो ।४१।
उसने गिरे हुए इन्द्रके लात मारी और उसके हाथसे वज्र छीन कर फिर
इन्द्रको मारा ॥ ४२ ॥ भगवान् प्रतापी विष्णुने इस प्रकार इन्द्रको अपमा-
नित देख कर, अपना चक्र उठा कर उसके मारा ॥ ४३ ॥ तब वह चक्रके

तम् ॥ ४४ ॥ तेन शक्तिप्रहारेण पतितो भुवि चाच्युतः । हाहाकारो महानासीच्चुक्रुशु-
श्चाऽतिनिर्जराः ॥ ४५ ॥ निमेषेण पुनर्विष्णुर्यावदुत्तिष्ठते स्वयम् । तावत्स वीरभद्रो हि
तत्क्षणादागतोऽसुरम् ॥ ४६ ॥ त्रिशूलं च समुद्यम्य वीरभद्रः प्रतापवान् । तारकं दिति-
जाधीशं जघान प्रसभं बली ॥४७॥ तत्त्रिशूलप्रहारेण स पपात क्षितौ तदा । पतितोऽपि
महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः ॥ ४८ । कृत्वा क्रोधं महावीरस्सकलासुरनायकः । जघान
परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि ॥ ४९ ॥ वीरभद्रोऽपि पतितो भूतले मूर्छितः क्षणम् ।
तच्छक्त्या परया क्रोधाग्निहतो वक्षसि ध्रुवम् ॥ ५० ॥ सगणाश्चैव देवास्ते गंधर्वोरग
राक्षसाः । हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ निमेषमात्रात्सहसा महौजा-
स्सवीरभद्रो द्विषतां निहन्ता । त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानं प्रभया विरेजे ॥
स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं सूर्येन्दुबिम्बाग्निसमानमंडलम् । महाप्रभं वीरभयावहं परं
कालाख्यमत्यंतकरं महोज्ज्वलम् ॥ ५३ ॥ यावत्त्रिशूलेन तदा हंतुकामो महाबलः । वीर-
भद्रोऽसुरं तावत्कुमारेण निवारितः ॥ ५४ ॥ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रहारसे ताड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, परन्तु उसने फिर शीघ्र ही उठ कर विष्णुके शक्ति मारी ॥४४॥ उस शक्तिके प्रहारसे विष्णु पृथ्वीमें गिर पड़े और बड़ा भारी हाहाकार होने लगा तथा देवता रोने लगे ॥ ४५ ॥ फिर निमेष भरमें ही जब तक विष्णु अपने आप उठे, कि—वीरभद्र ही क्षण-भरमें असुरके सामने आ डटे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर बलवान् और प्रतापवान् वीरभद्रने राक्षसाधीश तारकके हृदयमें बलपूर्वक शूल घुमेड़ दिया ॥४७॥ उस शूलके प्रहारसे तारक पृथ्वीमें गिर पड़ा, परन्तु महातेजस्वी तारक गिर कर भी फिर खड़ा होगया ॥ ४८ ॥ और उस सब असुरोंके नायक महा-वीर तारकासुरने क्रोधमें भर कर एक श्रेष्ठ शक्ति वीरभद्रके वक्षःस्थलमें मारी ४९ उस क्रोधपूर्वक मारी हुई शक्तिसे हृदयमें घायल होकर वीरभद्र क्षणभरके लिये पृथ्वीमें लुढ़क पड़े ॥ ५० ॥ उस समय गणों सहित गन्धर्व सर्प और राक्षस तथा देवता बड़ा हाहाकार मचाते हुए चीखने लगे ॥ ५१ ॥ क्षण-मात्रमें ही वह महातेजस्वी और वैरियोंका संहार करनेवाले वीरभद्र, बिजली की समान दमकते हुए त्रिशूलको उठा कर दमकने लगे ॥५२॥ वह त्रिशूल अपनी कान्तिसे दिशा-रूपी चँदोवेको दमका रहा था और उसका मण्डल सूर्य, चन्द्र और अग्निकी समान था, बड़ी प्रभा वाला था, वीरोंको भय देने वाला और बड़ा उज्ज्वल था और उसका नाम काल था ॥५३॥ महाबली वीर-भद्र असुरको त्रिशूलसे मारना ही चाहते थे, कि—कुमारने उनको रोक दिया ५४

नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ब्रह्मोवाच । निवार्य वीरभद्रं तं कुमारः परवीरहा । समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ॥१॥ जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महबलः । सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ॥२॥ तदा जय जयेत्युक्तं सर्वैर्देवगणैस्तथा । संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ॥३॥ तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुस्सहः । जातस्तदा महाघोरस्सर्वभूतभयंकरः ४ शक्तिहस्तौ च तौ वीरौ युयुधाते परस्परम् । सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ॥ ५ ॥ शक्तिनिर्भिन्नदेहौ तौ महासाधनसंयुतौ । परस्परं वंचयंतौ सिंहाविव महाबलौ ॥ ६ ॥ वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् । प्रापतं च समाश्रित्य शक्त्या शक्तिं विजघ्नतुः ॥ ७ ॥ एभिर्मंत्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् । अन्योन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ ॥ ८ ॥ महाबलं प्रकुर्वन्तौ परस्परवधैषिणौ । जघ्नतुश्शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि कंठे तथा चोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे । वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ॥ १० ॥ तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ । बल्गंतौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ॥११॥ अभवन्प्रेक्षकास्सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः । ऊचुः

ब्रह्माजी कहते हैं, कि शत्रुओंके वीरोंका संहार करने वाले कुमार वीरभद्रको हटा शिवके चरणकमलोंका स्पर्श करके तारकके वधका विचार करने लगे ॥ १ ॥ फिर महातेजस्वी और महाबली कार्तिकेय गर्जे और बड़ी भारी सेनासे व्याप्त कुमार क्रुद्ध होकर तयार होगए ॥ २ ॥ उस समय सब देवताओं ने जय जय का शब्द किया और देवता तथा ऋषियोंने इष्ट वाणियों से उनकी स्तुति की ॥३॥ उस समय तारक और कुमारका अतिदुःसह संग्राम होने लगा, उस महाघोर संग्रामसे सब प्राणी भयभीत हो उठे॥४॥ हे मुने ! उस समय वे दोनों वीर हाथमें शक्ति लेकर युद्ध करने लगे और सब दर्शकों को बड़ा आश्चर्य लगने लगा ॥ ५ ॥ उन दोनोंके देह शक्तिसे फट गए और वे महासाधनसे सम्पन्न दोनों महाबली सिंहकी समान एक दूसरेको छलना चाहने लगे ॥ ६ ॥ वे वैतालिक खेचर और प्रापत नामक दाँवका आश्रय लेकर शक्तिसे शक्तिको खुटली करने लगे ॥ ७ ॥ वे महाबली, महापराक्रमी, महावीर साधक बन कर अद्भुत युद्ध करने लगे ॥८॥ परस्परका वध चाहने वाले वे दोनों बड़ा बल दिखाने लगे तथा वे रणविशारद रणमें शक्तिधाराओं से युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ वे परस्पर मस्तक, कण्ठ, ऊरु, जानु और कटीतट, वक्षःस्थल तथा पीठको छेदने लगे ॥१०॥ वे महाबली मारनेकी इच्छा से युद्ध करने लगे और अनेक प्रकारके युद्ध करनेमें चतुर वे दोनों वीरोचित शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥ ११ ॥ उस समय दर्शकरूपसे खड़े हुए सब देवता, किन्नर और गन्धर्व आपसमें कहने लगे, कि–इस युद्धमें कौन

परस्परं तत्र कोऽस्मिन्युद्धे विजेष्यते ॥ १२ ॥ तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सान्त्वयन् । असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ॥ १३ ॥ मा शोच्यतां सुरैस्सर्वैः सुखेन स्थीयतामिति । युष्मदर्थं शंकरो हि पुत्ररूपेण संस्थितः ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां स प्रमथैस्समावृतः । निहन्तुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाशवभूत्तदा ॥ १५ ॥ शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनान्तरे । कुमारः स्म रुषाविष्टस्तारकासुरमोजसा ॥ १६ ॥ तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुंगवः । कुमारं चापि संक्रुद्धस्स्वशक्त्या संजघान सः ॥ १७ ॥ तेन शक्तिप्रहारेण शांकरिर्मूर्च्छितोऽभवत् । मुहूर्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १८ ॥ यथा सिंहो मदोन्मत्तो हन्तुकामस्तथासुरम् । कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ॥ १९ ॥ एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः । युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धविशारदौ ॥ २० ॥ अभ्यासपरमावास्तामन्योन्यं विजिगीषया । पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ॥ २१ ॥ विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनिजघ्नतुः । नानामार्गान्प्रकुर्वन्तौ गर्जन्तौ सुपराक्रमौ ॥ २२ ॥ अवलोकपरास्सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः । विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन तत्र ते ॥ २३ ॥ न

जीतेगा ॥१२॥ उस समय आकाशवाणी देवताओंको ढाढ़स देती हुई, कहने लगी, कि–तारकासुरको यह कुमार मार डालेंगे ॥ १३ ॥ हे देवताओं! तुम शोक न करो, सुखपूर्वक खड़े रहो, तुम्हारे लिये शंकर इस पुत्ररूपमें ही खड़े हुए हैं ॥ १४ ॥ प्रमथोंसे घिरे हुए कुमार उस आकाशवाणीको सुन कर प्रसन्न हुए और दैत्यराज तारकको मारनेके लिये फुर्ती करने लगे ॥१५॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए महाभुज कुमारने तारकासुरके वक्षःस्थलमें बलपूर्वक शक्ति मारी ॥१६ ॥ परन्तु दैत्यपुंगव तारकने उस प्रहार का अनादर करके क्रोधमें भर कुमारके भी अपनी शक्ति मारी ॥१७ ॥ उस शक्तिके प्रहारसे शंकरनन्दन मूर्छित होगए और मुहूर्तभरमें चेतना आने पर महर्षि उनकी स्तुति करने लगे ॥१८॥ मदोन्मत्त सिंहकी समान असुरको मारने की इच्छा वाले प्रतापवान् कुमारने तारक पर शक्तिका प्रहार किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार शक्तियुद्धमें चतुर वे दोनों और कुमार बड़े क्रोधमें भर कर युद्ध करने लगे ॥ २० ॥ पैदल ही युद्ध करते हुए, विचित्र रूप वाले और फुर्तीले वे दोनों एक दूसरेको जीतनेके लिये बड़ा अभ्यास करने लगे ॥२१॥ वे परम-पराक्रमी अनेक प्रकारके दाँव पेंच कर गर्जना करने लगे और अनेक प्रकार के प्रहारोंका प्रहार करने लगे ॥२२॥ उस समय देवता गन्धर्व किन्नर आदि सब इकटक खड़े हुए देखते रहे, उनको बड़ा विस्मय हुआ और वह कुछ कह न सके ॥ २३ ॥ वायुका बहना बन्द होगया, दिवाकरकी कान्ति क्षीण

ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः। चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमालयमुखा धराः। स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः २५ ततस्स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः। पर्वतान्गिरजापुत्रो बभाषे परिबोधयन् २६ कुमार उवाच। मा खिद्यतां महाभागा मा चिंतां कुर्वतां नगाः। घातयाम्यद्य पापिष्ठं सर्वेषां वः प्रपश्यताम् ॥ २७ ॥ एवं समाश्वास्य तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान्। प्रणम्य गिरिजां शम्भुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम् ॥ २८ ॥ तं तारकं हन्तुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः। विरराज महावीरः कुमारश्शंभुबालकः॥ शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम्। तेजसाढ्यश्शंकरस्य लोकक्लेशकरं च तम् ॥ ३० ॥ पपात सद्यस्सहसा विशीर्णाङ्गोऽसुरः क्षितौ। तारकाख्यो महावीरस्सर्वासुरगणाधिपः ॥ ३१ ॥ कुमारेण हतस्सोतिवीरस्स खलु तारकः। लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ॥३२॥ तथा तं पतितं दृष्ट्वा तारकं बलवत्तरम्। न जघान पुनर्वीरस्स गत्वा ह्यसुमाहवे ॥ ३३ ॥ हते तस्मिन्महादैत्ये तारकाख्ये महाबले। क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ॥ ३४ ॥ केचिद्भीताः प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे। छिन्नभिन्नांगकाः केचिन्मृता दैत्यास्सहस्रशः॥ ३५ ॥ केचिज्जाताः

होगई और पर्वत वन तथा समुद्रों सहित पृथ्वी काँप उठी ॥ २४ ॥ इसी समय तहाँ पर स्नेहमें भरे हुए हिमालय आदि भूधर कुमारकी खबर लेनेके लिये आए ॥ २५ ॥ तब गिरिजापुत्र शङ्करनन्दनने उन पर्वतोंको भयभीत देख कर उनको ढाढस देते हुए कहा, कि—॥ २६ ॥ हे परम भाग्यवन्तों! तुम खेद न करो, हे पर्वतों! तुम चिन्ता न करो, मैं तुम सबके सामने ही इस पापीको मारे डालता हूँ ॥ २७ ॥ इस प्रकार पर्वत, देवता और गणों को ढाढस देकर तथा गिरिजा और शम्भुको प्रणाम करके उन्होंने प्रभा वाली शक्तिको उठा लिया ॥ २८ ॥ तारकको मारनेका मनमें विचार करने वाले, हाथमें शक्ति लिये हुए महावीर महाप्रभु शम्भु-बालक कुमार दिप उठे २९ फिर तेजके धनी शंकरनन्दनने संसारको क्लेश देने वाले उस तारकासुर पर शक्तिका प्रहार किया ॥ ३० ॥ तब सब असुर-गणोंका स्वामी तारक नाम वाला महावीर असुर सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके सब अंग बिखर गए ॥ ३१ ॥ हे मुने! कुमारका मारा हुआ वह परम वीर तारक सबके सामने ही लयको प्राप्त होगया ॥ ३२ ॥ उस परमबली तारकको इस प्रकार गिरा हुआ देख कर वीर कार्तिकेयने उसको प्राणरहित देख कर फिर उसके ऊपर प्रहार नहीं किया ॥ ३३ ॥ उस महाबली तारकासुरके मारे जाने पर देवताओंने बहुतसे दैत्योंको मार डाला ॥ ३४ ॥ उस समय कुछ दैत्य युद्धमें डर कर हाथ जोड़ने लगे, और बहुतसे अंगोंके छिन्न भिन्न होने

कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः । वदन्तः पाहि पाहीति दैत्याः सांजलयस्तदा ॥३६॥ कियन्तश्च हतास्तत्र कियन्तश्च पलायिताः । पलायमाना व्यथितास्ताडिता निर्जरैर्गणैः ।३७। सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीविषवः । पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागताः एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर । न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा ॥ ३९ ॥ आसीन्निष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि । ते देवाः सुखमापन्नास्सर्वे शक्रादयस्तदा ॥ एवं विजयमापन्नं कुमारं निखिलास्सुराः । बभूवुर्युगपद्धृष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः ४१ तदा शिवोऽपि तं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च । तत्राजगाम समुदा सगणः प्रियया सह स्वात्मजं स्वांकमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् । लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला हिमालयस्तदागत्य स्वपुत्रैः परिवारितः । सबन्धुस्सानुगश्शम्भुं तुष्टाव च शिवां गुहम् ४४ ततो देवगणास्सर्वे मुनयस्सिद्धचारणाः । तुष्टुवुश्शांकरिं शम्भुं गिरिजां तुषितां भृशम् पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः । जयशब्दो नमःशब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥

से मर गए ॥३५॥ कुछ शरणार्थी होकर कुमारकी शरणमें आगए और हाथ जोड़ कर कहने लगे, कि–रक्षा करिये, रक्षा करिये ॥ ३६ ॥ बहुतसे तहाँ पर मारे गए और बहुतसे भाग गए और कुछ भागते हुए व्यथित होरहे थे, कि–देवताओंने और गणोंने उनको पीट डाला ॥ ३७ ॥ आशाके भङ्ग होनेसे दीन बने हुए वे दैत्य सहस्रोंकी संख्यामें अपने २ प्राण लेकर पाताल में भाग गए ॥ ३८ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सब दैत्योंकी सेना भ्रष्ट होगई और उनमेंसे कोई भी तहाँ गण और देवताओंके भयसे खड़ा न रह सका ॥ ३९ ॥ उस दुरात्माके मारे जाने पर सब निष्कण्टक होगए और इन्द्र आदि सब देवताओंको सुख प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ इस प्रकार विजयी हुए कुमारको देख कर सम्पूर्ण देवता और त्रिलोकीमें रहने वाले प्राणी एक साथ प्रसन्नतामें भर गए ॥ ४१ ॥ उस समय शिव भी कार्तिकेयकी विजय का समाचार पाकर प्रसन्नतामें भर पार्वती और गणोंको साथमें लेकर तहाँ पर आए ॥ ४२ ॥ और स्नेहमें भरी हुई शिवा (पार्वती) प्रीतिपूर्वक सूर्य की समान तेज वाले कुमारको अपनी गोदीमें लेकर उनका लाड़ करने लगीं उस समय हिमालय भी अपने पुत्र बन्धु और अनुयायियों सहित तहाँ आकर शिव पार्वती और गुहकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४४ ॥ तब स्नेहमें भरे हुए सब देवता मुनि सिद्ध तथा चारण शंकरनन्दन शम्भु और प्रसन्नतामें भरी हुई पार्वतीकी स्तुति करने लगे ॥४५॥ उपदेवता बड़ी पुष्पवर्षा करने लगे, गन्धर्वपति गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४६ ॥ बाजे उस समय

ततो मयाच्युतश्चापि संतुष्टोऽभूद्विशेषतः । शिवं शिवां कुमारं च संतुष्ट्व समादरात् ४८
कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखाःसुराः । चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ॥ ४९ ॥
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । तदोत्सवो महानासीत्कीर्तनं च विशेषतः ॥५०॥
गीतवाद्यैस्सुप्रसन्नैस्तथा साञ्जलिभिर्मुने । स्तूयमानो जगन्नाथस्सर्वैर्देवगणैरभूत् ५१
ततस्स भगवान् रुद्रो भवान्या जगदम्बया । सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वगिरिं स्वगणैर्वृतः

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे तारकासुरवध-देवोत्सववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच । एतस्मिन्नन्तरे तत्र क्रौंचनामाचलो मुने । आजगाम कुमारस्य शरणं बाणपीडितः ॥ १ ॥ पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम् । तुतोदातीव स क्रौञ्चं कोटयायुतबलान्वितः ॥२॥ प्रतिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम् । प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात ॥ ३ ॥ क्रौंच उवाच । कुमार स्कन्द देवेश तारकासुरनाशक । पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडितम् ॥ ४ ॥ संगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पलायितः । त्वयीडयन्च मागत्य हा नाथ करुणाकर ॥ ५ ॥ तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं

विशेष रूपसे बजाये गए और बारंबार ऊँचे स्वरसे जय ! जय !! और नमः ! नमः !! की ध्वनि होने लगी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बड़े प्रसन्न हुए अच्युत मुझे साथमें ले शिव, शिवा और कुमारकी आदरपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ४८ ॥ तब कुमारको आगे कर हरि आदि देवता और मुनि प्रीतिपूर्वक आरती उतारने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय गाने बजानेके शब्दसे और बड़े भारी ब्रह्मघोषसे बड़ा उत्सव और कीर्तन हुआ ॥५०॥ हे मुने ! प्रसन्नतामें भरे हुए सब देवता हाथ जोड़ कर गा और बजा कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५१ ॥ तब वह भगवान् रुद्र सबसे स्तुति पा भवानी जगदम्बाको साथमें ले अपने गणोंके साथ २ अपने पर्वतको चल दिये ५२

दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं, कि—हे मुने ! इसी समय बाणसे पीड़ित क्रौंच नाम वाला पर्वत कुमारकी शरणमें पहुँचा ॥ १ ॥ उसने ईश्वरीय तेजको न सह सकनेके कारण युद्धसे भाग कर १०००००००००० सैनिकोंको साथमें ले कर क्रौंच पर्वतको पीड़ा दी थी ॥२॥ इस लिये वह क्रौंच पर्वत भक्तिपूर्वक कुमारके चरणोंमें गिर कर प्रेमभरी वाणीसे आदरपूर्वक कुमारकी स्तुति करने लगा ॥ ३ ॥ क्रौंचने कहा, कि—हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारकासुरके नाशक ! आप बाणासुरसे पीड़ित मुझ शरणागतकी रक्षा करिये ४ हे महासेन ! वह आपके युद्धसे भाग कर, हे नाथ ! हे करुणाकर ! आकर

सुदुःखितः । पलायमानो देवेश शरजन्मन्दयां कुरु ॥ ६ ॥ दैत्यं तं नाशय विभो बाणाह्वं
मां सुखी कुरु । दैत्यघ्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरस्स्वराट् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच । इति क्रौंच-
स्तुतस्स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः । गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवो धिया ॥८॥
चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शङ्करात्मजः । महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः
सबलं भस्मसात्कृत्वा सुरं तं क्षणमात्रतः । गुहोपकंठं शक्तिस्सा जगाम परमा मुने ।१०।
ततः कुमारः प्रोवाच क्रौंचं गिरिवरं प्रभुः । निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टस्स सबलोऽसुरः
तच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदितो गिरिराट् तदा । स्तुत्वा गुहं तदारातिं स्वधाम प्रत्यपद्यत
ततः स्कन्दो महेशस्य मुदा स्थापितवान्मुने । त्रीणि लिंगानि तत्रैव पापघ्नानि विधानतः
प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात् । कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ॥ १४ ॥
कुमारस्सर्वेश्वरस्तत्र जयस्तम्भसमीपतः । स्तंभेश्वराभिधं लिंगं गुहः स्थापितवान्मुदा ।१५।
ततस्सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा । लिंगं स्थापितवन्तस्ते देवदेवस्य शूलिनः ।।१६।।

मुझे पीड़ित करने लगा ॥ ५ ॥ उससे पीड़ा पा मैं दुःखित होकर भागता हुआ आपकी शरणमें आया हूँ, हे देवेश ! हे शरजन्मन् ! आप दया करिये ६ हे विभो ! आप उस बाण नामक दैत्यको मार कर मुझे सुखी करिये, क्योंकि-आप विशेषरूपसे दैत्योंका संहार करने वाले हैं, देवताओंकी रक्षा करने वाले हैं और स्वराट् हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-भक्तपालक स्कन्द क्रौंचके इस प्रकार स्तुति करने पर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी अतुल शक्तिको लेकर बुद्धिपूर्वक शिवका स्मरण किया ॥ ८ ॥ फिर शंकरनन्दनने उसको बाणके निमित्त फेंक दिया, तब तो महाशब्द हुआ और दिशाएँ जल उठीं ॥९। हे मुने ! वह श्रेष्ठ शक्ति क्षण भरमें ही उस असुरको उसके दलबलसहित भस्म करके गुहके पास आगई ॥१०॥ तब प्रभु कुमारने गिरिवर क्रौंचसे कहा, कि-वह असुर अपने दलबलसहित नष्ट होगया, इस लिये तुम निर्भय होकर अपने घरको जाओ ॥ ११ ॥ स्वामीके इस वचनको सुन कर गिरिराज प्रसन्न हुए और उन बाणके शत्रु गुहकी स्तुति करके अपने धामको पधार गए ॥१२॥ हे मुने ! तब स्कन्दने आनन्दमें आ महेशके पापनाशक तीन लिंगोंको तहाँ पर स्थापित किया ॥१३॥ पहिले उन्होंने प्रतिज्ञेश्वर नाम वाले लिंगको स्थापित किया, फिर आदरपूर्वक कपालेश्वरको स्थापित किया फिर कुमारेश्वर नामक लिंगको स्थापित किया, ये तीनों ही लिंग सब प्रकारकी सिद्धियोंको देने वाले हैं ॥१४॥ तदनन्तर सबके ईश्वर कुमारने आनन्दमें भर कर जयस्तम्भके समीप स्तम्भेश्वर नामक लिंगको स्थापित किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर तहाँ विष्णु आदि सब देवताओंने आनंद

सर्वेषां शिवलिंगानां महिमाभूत्तदाद्भुतः । सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् १७
ततस्सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः । ऐच्छन्गिरिवरं गन्तुं पुरस्कृत्य गुहं मुदा
तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः । आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः ॥ १९ ॥
प्रलंबाख्योऽसुरो यो हि रणादस्मात्पलायितः । स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः २०
सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान् । कुमारशरणं प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् २१
कुमुद उवाच । देवदेव महादेववरतात महाप्रभो । पडितोऽहं प्रलंबेन त्वाहं शरणमागतः
पाहि मां शरणापन्नं प्रलम्बासुरपीडितम् । कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो ॥२३॥
त्वं दीनबन्धुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः । खलनिग्रहर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ॥२४॥
कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि । स्वाञ्च शक्तिं स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांबुजौ २५
चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलम्बं गिरिजासुतः । महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः
तं सायुतबलं शक्तिर्द्रुतं कृत्वा च भस्मसात् । गुहांपकं सहसा जगामाक्लिष्टकारिणी ॥

में भर कर देवदेव शूलीके लिंगोंको स्थापित किया ॥१६॥ तब सब शिवलिंगोंकी अद्भुत महिमा फैल गई, उन लिंगोंसे सबकी कामना पूरी होती थी और भक्ति करने वालोंको वह मुक्ति प्रदान करते हैं ॥१७॥ तदनन्तर विष्णु आदि सब देवताओंने मनमें प्रसन्न होकर गुहको आगे कर गिरिवरको जाने का विचार किया ॥ १८ ॥ उसी समय शेषका कुमुद नामक पुत्र दैत्यसे पीड़ित हो कुमारकी शरणमें पहुँच गया ॥१९॥ तारकासुरका अनुयायी प्रलंब नामक असुर जो इस युद्धसे भाग गया था, उसने तहाँ उपद्रव मचाया था २० वह सर्पराज शेषका पुत्र कुमुद कुमारकी शरणमें आ उन गिरिजानन्दनकी स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ कुमारने कहा, कि—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे तात ! हे महाप्रभो ! मैं प्रलम्बासुरसे पीड़ा पाकर आपकी शरणमें आया हूँ ॥२२॥ हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारकशत्रो ! हे महाप्रभो ! आप प्रलम्बासुरसे पीड़ित मुझ शरणागतकी रक्षा करिये ॥ २३ ॥ आप दीनबन्धु हैं, करुणासिंधु हैं, और प्रणामकर्ताओं पर वत्सलता दिखाने वाले हैं, दुष्टोंका दमन करने वाले हैं, शरणदाता और सज्जनोंकी गति हैं ॥२४॥ कुमुदके इस प्रकार स्तुति करने पर और वधके लिये प्रेरणा करने पर कुमारने शिवके चरणकमलोंका स्पर्श करके अपनी शक्तिको उठा लिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर गिरिजानन्दनने प्रलम्बको लक्ष्य करके वह शक्ति छोड़ी, तब बड़ा भारी शब्द हुआ और दिशाएँ धधक उठीं ॥ २६ ॥ और वह सरलता से कर्म करने वाली शक्ति अयुत बल वाले दैत्यको सहसा भस्म करके कुमार के पास आगई ॥ २७ ॥ तब कुमारने उस नागबालक कुमुदसे कहा, कि—

ततः कुमारः प्रोवाच कुमुदं नागबालकम् । निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टस्स सबलोऽसुरः २८
तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुदोऽहिपतेस्सुतः । स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ
एवं कुमारविजयं वर्णितं मे मुनीश्वर । चरितं तारकवधं परमाश्चर्यकारकम् ॥ ३० ॥
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ।३१।
ये कीर्तयन्ति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयान्ति ते ३२
श्रोष्यन्ति ये च तत्कीर्तिं भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः । मुक्तिं प्राप्स्यन्ति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे बाणप्रलंबवध-कुमारविजयवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच । निहतं तारकं दृष्ट्वा देवा विष्णुपुरोगमाः । तुष्टुवुश्शांकरिं भक्त्या सर्वेऽन्ये मुदिताननाः ॥ १ ॥ देवा ऊचुः । नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल । विश्वबन्धो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥२॥ नमोस्तु ते दानववर्यहन्त्रे बाणासुरप्राणहराय देव । प्रलम्बनाशाय पवित्ररूपिणे नमो नमश्शङ्करतात तुभ्यम् ॥ ३ ॥ त्वमेव कर्ता जगतां च

अब तुम निर्भय होकर घरको जाओ, क्योंकि-वह असुर दलबलसहित नष्ट होगया है ॥ २८ ॥ नागराजका पुत्र कुमुद कुमारके इस वाक्यको सुन स्कन्द की स्तुति कर और उनको प्रणाम कर प्रसन्न हो पातालको चला गया २९ हे मुने ! इस प्रकार मैंने तुमसे परम आश्चर्यसे भरा हुआ तारकका वध और कुमारकी विजय कह दी ॥३०॥ यह चरित्र सब पापोंको हरने वाला, दिव्य, और मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है तथा यह सज्जनोंको धन देने वाला, यश देने वाला, आयु देने वाला तथा भोग और मोक्ष देने वाला है ॥ ३१ ॥ जो भाग्यवान् मनुष्य कुमारके इस दिव्य चरित्रका कीर्तन करते हैं वे शिवलोकमें जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष भक्ति और श्रद्धाके साथ उनकी कीर्तिको सुनेंगे वे इस परम सुखको भोग कर अन्तमें मुक्ति पावेंगे ३३

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं, कि-विष्णु आदि श्रेष्ठ देवताओंने तारकको मरा हुआ देख कर भक्तिपूर्वक प्रसन्न मुखसे शङ्करनन्दनकी स्तुति की थी ॥१॥ देवताओंने कहा, कि-कल्याणरूपके लिये नमस्कार है, हे विश्वमङ्गल आपको प्रणाम है, हे विश्वबन्धो ! आपको प्रणाम प्राप्त हो, हे विश्वभावन ! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ दानवोंका संहार करने वाले ! आपके लिये प्रणाम है, हे देव ! बाणासुरके प्राणोंका संहार करने वाले, प्रलम्बनाशक, पवित्ररूपी आपके लिये प्रणाम है, हे शंकरतात ! आपको प्रणाम है ! प्रणाम

भर्ता त्वमेव हर्ता शुचिज प्रसीद । प्रपञ्चभूतस्तव लोकबिंबः प्रसीद शंभ्वात्मज दीनबंधो
देवरक्षाकर स्वामिन्रक्ष नस्सर्वदा प्रभो । देवप्राणावनकर प्रसीद करुणाकर ॥ ५ ॥ हत्वा
ते तारकं दैत्यं परिवारयुतं विभो । मोचितास्सकला देवा विपद्भ्यः परमेश्वर ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ।
एवं स्तुतः कुमारोऽसौ देवैर्विष्णुमुखैः प्रभुः । वरान्ददावभिनवान्सर्वेभ्यः क्रमशो मुने ॥७॥
शैलान्निरीक्ष्य स्तुवतस्ततस्स गिरिशात्मजः । सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रोवाच प्रददद्वरान् ८
स्कन्द उवाच । यूयं सर्वे पर्वता हि पूजनीयास्तपस्विभिः । कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैव सेव्य
माना भविष्यथ ॥ ९ ॥ शम्भोर्विशिष्टरूपाणि लिङ्गरूपाणि चैव हि । भविष्यथ न संदेहः
पर्वता वचनान्मम ॥ १० ॥ योऽयं मातामहो मेऽद्य हिमवान्पर्वतोत्तमः । तपस्विनां महा-
भागः फलदो हि भविष्यति ॥११॥ देवा ऊचुः । एवं दत्त्वा वरान्हत्वा तारकं चासुरान्विभु ।
त्वया कृताश्च सुखिनो वयं सर्वे चराचराः १२ इदानीं खलु सुप्रीत्या कैलासं गिरिशालयम् ।
जननीजनकौ द्रष्टुं शिवाशम्भू त्वमर्हसि ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा निखिला देवा

है ॥ ३ ॥ आप ही जगत्के कर्ता हैं, आप ही जगत्का भरण करने वाले हैं और आप ही जगत्का संहार करने वाले हैं, हे अग्निसे प्रकट हुए ! प्रसन्न हूजिये, यह संसाररूपी बिम्ब आपका ही प्रतिबिम्ब है, हे दीनबन्धो ! हे शम्भुपुत्र ! प्रसन्न हूजिये ॥४॥ हे देवताओंकी रक्षा करने वाले स्वामिन् ! हमारी सदा रक्षा करिये, हे देवताओंके प्राणोंकी रक्षा करने वाले करुणाकर ! प्रसन्न हूजिये ॥ ५ ॥ हे विभो ! आपने तारकासुर और उसके परिवारका नाश कर सब देवताओंको विपत्तिसे मुक्त किया था ॥६॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–हे मुने ! जब प्रभु कुमारकी इस प्रकार विष्णु आदि प्रधान देवताओंने स्तुति की तो उन्होंने क्रमशः सबको नये २ वर दिये ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह पर्वतमें शयन करने वाले गिरिश (महादेव) के पुत्र, पर्वतों को स्तुति करते हुए देख कर परम प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर उनको वर देते हुए कहने लगे, कि–॥ ८ ॥ हे सब पर्वतो ! तपस्वी पुरुष तुम्हारा पूजन करेंगे और कर्मिष्ठ तथा ज्ञानवान् भी तुम्हारा सेवन करेंगे ॥ ९ ॥ हे पर्वतो ! तुम मेरे वचनसे शम्भुके श्रेष्ठ रूपवाले लिंग होगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और यह जो मेरे मातामह (नाना) हिमाचल नाम वाले श्रेष्ठ पर्वत हैं, यह महाभाग पर्वत तपस्वियोंको फल देने वाला होगा ॥११॥ देवताओंने कहा, कि–इस प्रकार वर देकर और असुरराज तारकको मार कर आपने हम सब चराचरोंको सुखी किया है ॥ १२ ॥ इस समय आपको प्रीतिपूर्वक जननी और जनक शिवा-शम्भुका दर्शन करनेके लिये गिरिश के भवन कैलास पर्वत पर जाना उचित है ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–

विष्णवाद्याः प्राप्तशासनाः । कृत्वा महोत्सवं भूरि सकुमारा ययुर्गिरिम् ॥ १४ ॥ कुमारे गच्छति विभौ कैलासं शङ्करालयम् । महामङ्गलमुत्तस्थौ जयशब्दो बभूव ह ॥ १५ ॥ आरुरोह कुमारोऽसौ विमानं परमर्द्धिमत् । सर्वतोऽलंकृतं रम्यं सर्वोपरि विराजितम् ॥ अहं विष्णुश्च समुदौ तदा चामरधारिणौ । गुरुमूर्ध्नि महाप्रीत्या मुनेऽभूवं ह्यतन्द्रितौ ॥ इन्द्राद्या अमरास्सर्वे कुर्वतो गुह्यसेवनम् । यथोचितं चतुर्दिक्षु जग्मुश्च प्रमुदास्तदा ।१८। शम्भोर्जयं प्रभाषन्तः प्रापुस्ते शम्भुपर्वतम् । सानन्दा विविशुस्तत्रोच्चरितो मंगलध्वनिः दृष्ट्वा शिवं शिवां चैव सर्वे विष्णवादयो द्रुतम् । प्रणम्य शंकरं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥ २० ॥ कुमारोऽपि विनीतात्मा विमानादवतर्य च । प्रणनाम मुदा शम्भुं शिवां सिंहासनस्थिताम् ॥ २१ ॥ अथ दृष्ट्वा कुमारं तं तनयं प्राणवल्लभम् । तौ दम्पती शिवौ देवौ मुमुदातेऽति नारद ॥ २२ ॥ महाप्रभुस्समुत्थाप्य तमुत्संगे न्यवेशयत् । मूर्ध्नि जघ्रौ मुदा स्नेहात्तं पस्पर्श करेण ह ॥ २३ ॥ महानन्दभरः शंभुश्चकार मुखचुम्बनम् । कुमारस्य महास्नेहात् तारकारेर्महाप्रभोः ॥ २४ ॥ शिवापि तं समुत्थाप्य स्वोत्संगे संन्यवेश-

---

विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता आज्ञाके प्राप्त होने पर कुमारको आगे कर महोत्सव मानते हुए कैलास पर्वतको चले । १४ ॥ जब विभु कुमार शङ्करके आलय कैलास पर्वतको चले, तब महामङ्गल हुआ और जय जयकार होने लगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर कुमार परम शोभासम्पन्न, चारों ओरसे अलंकृत, रमणीय और सबसे ऊपर विराजमान विमान पर चढ़े ॥ १६ ॥ हे मुने ! उस समय मैं और विष्णु परम प्रेममें भर गए और उनके मस्तक पर तन्द्रारहित होकर चँवर डुलाने लगे ॥ १७ ॥ इस प्रकार इन्द्र आदि देवता गुहकी सेवा करते हुए और आनन्दमें भरे हुए चारों दिशाओंमें यथोचित रूपसे संगठित होकर चलने लगे ॥१८ ॥ वे शम्भुकी जयजयकार करते हुए, शंभुके पर्वत पर पहुँच गए, फिर आनन्दपूर्वक मांगलिक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वहाँ पर प्रवेश करने लगे ॥ १९ ॥ शिव और शिवाका दर्शन पाते ही विष्णु आदि देवताओंने शीघ्रतासे भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ विनम्रभावसे शंकरको प्रणाम किया ॥ २० ॥ और विनम्र चित्त वाले कुमारने भी विमानसे उतर कर सिंहासन पर स्थित शिव और शिवाको आनन्दपूर्वक प्रणाम किया २१ हे नारद ! वे शिव और शिवा उस प्राणवल्लभ पुत्रको देख कर परम प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ महाप्रभु शिवने उस बालकको उठा कर गोदमें बैठा लिया और उसके मस्तकको सूँघने लगे और आनन्द तथा स्नेहके साथ हाथ फेरने लगे ॥ २३ ॥ हे महाप्रभो ! इसके पीछे शम्भुने बड़े भारी आनन्दमें भर कर तारकके शत्रु कुमारके मुखकमलका बड़े स्नेहसे चुम्बन किया ॥ २४ ॥

यत्। कृत्वा मूर्ध्नि महास्नेहात् तन्मुखाब्जं चुचुम्ब हि ॥ २५ ॥ तयोस्तदा महामोदो ववृधेऽतीव नारद। दंपत्यो शिवयोस्तात भवाचारं प्रकुर्वतोः॥ २६ ॥ तदोत्सवो महानासीन्नानाश्चर्यः शिवालये। जयशब्दो नमश्शब्दो बभूवातीव सर्वतः॥२७॥ ततस्सुरगणास्सर्वे विष्णवाद्या मुनयस्तथा। सुप्रणम्य मुदा शंभुं तुष्टुवुस्सशिवं मुने ॥ २८ ॥ देवा ऊचुः। देवदेव महादेव भक्तानामभयप्रद। नमो नमस्ते बहुशः कृपाकर महेश्वर अद्भुता ते महादेव महालीला सुखप्रदा। सर्वेषां शङ्कर सतां दीनबन्धो महाप्रभो ॥३०॥ एवं मूढधियश्चाज्ञाः पूजायां ते सनातनम्। आवाहनं न जानीमो गतिं नैव प्रभोऽद्भुताम् गङ्गासलिलधाराय ह्याधाराय गुणात्मने। नमस्ते त्रिदशेशाय शंकराय नमो नमः ।३२। वृषांकाय महेशाय गणानां पतये नमः। सर्वेश्वराय देवाय त्रिलोकपतये नमः ॥ ३३ ॥ संहर्त्रे जगतां नाथ सर्वेषां ते नमो नमः। भर्त्रे कर्त्रे च देवेश त्रिगुणेशाय शाश्वते ३४ विसंगाय परेशाय शिवाय परमात्मने। निष्प्रपंचाय शुद्धाय परमायाव्ययाय च ॥३५॥

शिवाने भी उसको उठा कर गोदमें बैठाया और उनके शिर पर बैठा कर स्नेहसे उनके मुखकमलको चूम लिया ॥ २५ ॥ हे नारद! हे तात! उस समय सांसारिक लीलाएँ करते हुए शिवदम्पतिको बड़ी प्रसन्नता बढ़ गई २६ जब शिवालयमें अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे भरा हुआ बड़ा भारी उत्सव होने लगा और चारों ओरसे जय! जय!! और नमः! नमः!! की ध्वनि होने लगी ॥२७॥ तब विष्णु आदि देवता और मुनि आनन्दपूर्वक प्रणाम करके शिव और शिवाकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे भक्तोंको अभय देने वाले देवदेव महादेव! हे कृपा करने वाले महेश्वर! आपको बहुत बहुत प्रणाम है! प्रणाम है ॥ २९ ॥ हे महादेव! आपकी महालीला अद्भुत है और बड़ी सुख देने वाली है, हे शङ्कर! हे दीनबंधो! हे महाप्रभो! इससे सबको सुख मिल रहा है॥ ३० ॥ हम अज्ञ और मूढ़-बुद्धि होनेके कारण आपकी पूजाके आवाहनको नहीं जानते और हे प्रभो! आपकी अद्भुत गति भी हमारी समझमें नहीं आती ॥ ३१ ॥ गङ्गाजलकी धारा वाले, गुणात्मा, आधाररूप देवताओंके ईश शङ्करके लिये नमस्कार है; नमस्कार है ॥ ३२ ॥ वृषांक, महेश और गणोंके पतिके लिये नमस्कार है, सर्वेश्वर, देव, त्रिलोकपतिके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे नाथ! सब जगत्का संहार करने वाले! आपके लिये प्रणाम है! प्रणाम है!! हे देवेश! जगत्के कर्ता भर्ता त्रिगुणेश शाश्वत आपके लिये प्रणाम है ॥३४॥ विसंग, परेश, शिव, परमात्मा, निष्प्रपञ्च, शुद्ध, परम, अव्यय, दण्डहस्त, काल और पाशहस्त आपके लिये प्रणाम है, वेदमन्त्रोंमें प्रधानरूपसे वर्णित शत-

दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय ते नमः । वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय ते नमः ।३६।
भूतं भव्यं भविष्यच्च स्थावरं जंगमं च यत् । तव देहात्समुत्पन्नं सर्वथा परमेश्वर ३७
पाहि नस्सर्वदा स्वामिन्प्रसीद भगवन्प्रभो । वयं ते शरणापन्नाः सर्वथा परमेश्वर ३८
शितिकण्ठाय रुद्राय स्वाहाकाराय ते नमः । अरूपाय सरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ३९
शिवाय नीलकंठाय चिताभस्मांगधारिणे । नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकंठाय नमो नमः ॥
सर्वप्रणतदेहाय संयमप्रणताय च । महादेवाय शर्वाय सर्वार्चितपदाय च ॥ ४१ ॥ त्वं
ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः । आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यसे ॥
पर्वतानां सुमेरुस्त्वं नक्षत्राणां च चन्द्रमाः । ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा
ॐकारस्सर्ववेदानां त्राता भव महेश्वर । त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिंचसि ।४४।
महेश्वर महाभाग शुभाशुभनिरीक्षक । आपयास्मान्हि देवेश कर्तृन्वै वचनं तव ॥४५॥
रूपकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु ते । अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोस्तु ते ।४६।
ब्रह्मोवाच । इति स्तुत्वाखिला देवा विष्णवाद्याः प्रमुखस्थिताः । मुहुर्मुहुस्सुप्रणम्य स्कंदं

जिह्वके लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे परमेश्वर ! जो कुछ भूत, भव्य, भविष्यत्, स्थावर और जङ्गम है वह सब आपके देहसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ३७ ॥ हे स्वामिन् ! आप हमारी सर्वदा रक्षा करिये, हे भगवन् ! हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिये, हे परमेश्वर ! हम सब प्रकारसे आपकी शरणमें आए हैं ॥ ३८ ॥ शितिकण्ठ रुद्र स्वाहाकार आपके लिये प्रणाम है अरूप, सरूप और विश्वरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ शिव, नीलकण्ठ, चिताकी भस्मको अंग पर धारण करने वाले, नीलशिखण्ड, और श्रीकण्ठ आपके लिये बारम्बार प्रणाम है ॥४०॥ जिनकी देहको सब प्रणाम करते हैं और जो संयमके द्वारा प्रणामको स्वीकार करते हैं ऐसे शर्व और जिनके चरणोंकी सब पूजा करते हैं उन महादेवको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ आप सब देवताओंमें ब्रह्मा हैं और रुद्रोंमें नीललोहित हैं और सब भूतोंसे आत्मा हैं और सांख्य वाले आपका पुरुषरूपमे वर्णन करते हैं ॥४२॥ आप पर्वतोंमें सुमेरु हैं और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं, ऋषियोंमें वसिष्ठ हैं और देवताओंमें इन्द्र हैं ॥ ४३ ॥ सब वेदोंमें ओंकार हैं, ऐसे हे महेश्वर ! आप हमारी रक्षा करिये, आप संसारका हित करनेके लिये प्राणियोंको सींचा करते हैं ४४ हे शुभ और अशुभके निरीक्षक महाभाग महेश्वर ! हे देवेश ! हम आपके वचनको मानने वाले हैं, अतः आप हमैं तृप्त करिये ।४५। १०००००००००० रूपोंमें तथा १००००००००० रूपोंमें भी आपका अन्त नहीं पाया जा सकता ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-इस प्रकार विष्णु

कृत्वा पुरस्सगम् ४७॥ देवस्तुतिं समाकर्ण्य शिवस्सर्वेश्वरस्स्वराट् । सुप्रसन्नो बभूवाथ विजहास दयापरः ॥ ४८ ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा विष्णवादीन्सुरसत्तमान् । शंकरः परमेशानो दीनबन्धुस्सतां गतिः ॥४९॥ शिव उवाच । हे हरे हे विधे देवा वाक्यं मे शृणुतादरात् । सर्वथाहं सतां त्राता देवानां च कृपानिधिः ॥५०॥ दुष्टहन्ता त्रिलोकेशश्शंकरो भक्तवत्सलः । कर्ता भर्ता च हर्ता च सर्वेषां निर्विकारवान् ॥५१॥ यदा यदा भवेद् दुःखं युष्माकं देवसत्तमाः । तदा तदा मां यूयं वै भजन्तु सुखहेतवे ॥५२॥ ब्रह्मोवाच । इत्याज्ञप्तास्तदा देवा विष्णवाद्यास्समुनीश्वराः । शिवं प्रणम्य सशिवं कुमारं च मुदान्विताः ॥ कथयन्तो यशो रम्यं शिवयोश्शांकरेश्च तत् । आनन्दं परम प्राप्य स्वधामानि ययुर्मुने शिवोऽपि शिवया सार्द्धं सगणः परमेश्वरः । कुमारेण युतः प्रीत्योवास तस्मिन् गिरौ मुदा इत्येवं कथितं सर्वं कौमारं चरितं मुने । शैवं च सुखदं दिव्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ५६

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे स्वामिकार्तिकचरितगर्भितशिवाशिवचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदि संपूर्ण मुख्य २ देवताओंने बारम्बार प्रणाम कर स्कन्दको आगे कर स्तुति की॥ ४७ ॥ तब सर्वेश्वर स्वराट शिव देवताओंकी स्तुतिको सुन कर प्रसन्न हुए और दयालुताके कारण हँस पड़े ॥४८॥ फिर सज्जनोंकी गति दीनबन्धु, परमेश्वर परमेशान शंकर प्रसन्न होकर विष्णु आदि श्रेष्ठ देवताओंसे कहने लगे, कि-॥ ४९ ॥ हे हरे ! हे विधे ! हे देवताओं ! तुम मेरे वाक्यको आदरपूर्वक सुनो, मैं सदा सज्जनोंकी रक्षा करता रहता हूँ और तुम देवताओं पर तो कृपालु ही रहता हूँ॥५०॥ मैं दुष्टोंका संहार करने वाला, त्रिलोकीका स्वामी, कल्याणकारक और भक्तवत्सल हूँ और सबका कर्ता हर्ता और भर्ता हूँ, तथा विकाररहित हूँ ।५१। हे श्रेष्ठ देवताओं !।जब २ तुम पर दुःख पड़े, उसी समय तुम सुख पानेके लिये मेरा भजन करना ॥५२॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-जब शिवने विष्णु आदि देवताओंको और मुनीश्वरोंको इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे शिव शिवा और कुमारको प्रणाम कर आनंदमें भर गए ॥ ५३ ॥ और शिव, शिवा तथा शंकरनन्दनके गुणोंका गान करते हुए बड़े आनंदित हो, हे मुने ! अपने २ धामको चले गए ॥ ५४ ॥ तब परमेश्वर शिव भी शिवा, गण और कुमारके साथ उस पर्वतपर आनंदपूर्वक रहने लगे ॥ ५५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार शिव-भक्तिसे भरा हुआ सुखदायक और दिव्य कुमारका सब चरित आपसे कह दिया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५६ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

सूत उवाच । तारकारेरिति श्रुत्वा वृत्तमद्भुतमुत्तमम् । नारदस्सुप्रसन्नोऽथ पप्रच्छ प्रीतितो विधिम् ॥ १ ॥ नारद उवाच । देवदेव प्रजानाथ शिवज्ञाननिधे मया । श्रुतं कार्तिकसद्वृत्तममृतादपि चोत्तमम् ॥ २ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गणेशं वृत्तमुत्तमम् । तज्जन्म चरितं दिव्यं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य महामुनेः । प्रसन्नमानसो ब्रह्मा प्रत्युवाच शिवं स्मरन् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच । कल्पभेदाद्गणेशस्य जनिः प्रोक्ता विधेः परात् । शनिदृष्टं शिरश्छिन्नं संचितं गाजमाननम् ।५। इदानीं श्वेतकल्पोक्ता गणेशोत्पत्तिरुच्यते । यत्र च्छिन्नं शिरस्तस्य शिवेन च कृपालुना संदेहो नात्र कर्तव्यः शंकरस्सूतिकृन्मुने । स हि सर्वाधिपः शंभुर्निर्गुणस्सगुणोऽपि हि तल्लीलयाखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा । विनाश्यते मुनिश्रेष्ठ प्रस्तुतं शृणु चादरात् उद्वाहिते शिवे चात्र कैलासं च गते सति । कियता चैव कालेन जातो गणपतेर्भवः ॥९॥ एकस्मिन्नेव काले च जया च विजया सखी । पार्वत्या च मिलित्वा वै विचारे तत्पराऽभवन् ॥ १० ॥ रुद्रस्य च गणास्सर्वे शिवस्याज्ञापरायणाः । ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च नन्दि-

सूतजी कहते हैं, कि-तारकसंहारकके इस अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर नारदजीने प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्माजीसे बूझा ।१। नारदजीने कहा, कि-हे शिवज्ञान-निधे! देवदेव प्रजानाथ! मैंने अमृतसे भी उत्तम कार्तिकका सद् वृत्तान्त सुना २ अब मैं गणेशजीके उत्तम वृत्तान्तको सुनना चाहता हूँ उनके मंगलमय दिव्य जन्म और चरित्रको सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा, कि-महामुनि नारदके इस वचनको सुन ब्रह्माजी प्रसन्न हो शिवका स्मरण करने लगे ४ ब्रह्माजीने कहा, कि-कल्पभेदसे यह गणेशका जन्म परम विधिसे कह दिया, कि-शनिके देखने पर उनका शिर कट गया था और फिर हाथीका शिर उनके लगाया गया था ॥ ५ ॥ अब श्वेतकल्पमें कही हुई गणेशकी उत्पत्ति कही जाती है, इसमें कृपालु शिवने गणेशके मस्तकको काटा था ॥ ६ ॥ हे मुने! इस विषयमें तुम कुछ सन्देह न करना, क्योंकि-शंकर परम रक्षक हैं, वह सबके स्वामी हैं और वही सगुण हैं, तथा निर्गुण हैं ॥ ७ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ! उनकी लीलासे सारा विश्व रचा जाता है, पाला जाता है और नष्ट होजाता है, अब आप प्रस्तुत (मौजूदा) बातको आदरपूर्वक सुनिये ८ जब शिवका विवाह होगया और वह कैलासको चले गए तो कुछ कालमें गणपतिका अवतार हुआ था ॥ ९ ॥ एक समय जया और विजया नाम वाली सखीने पार्वतीसे मिल कर विचार किया ॥१०॥ कि-सब गण रुद्रके ही हैं, वे शिवकी आज्ञामें परायण रहते हैं और हमारे भी जो नन्दी भृंगी आदि गण हैं, वह भी शिवकी आज्ञामें परायण रहते हैं और प्रमथ भी

भृंगिपुरस्सराः ॥ ११ ॥ प्रमथास्ते ह्यसंख्याता अस्मदीयो न कश्चन । द्वारि तिष्ठन्ति ते सर्वे शंकराज्ञापरायणाः ॥ १२ ॥ ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च तथापि न मिलेन्मनः । एकश्चैवास्मदीयो हि रचनीयस्त्वयानघे ॥१३॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्ता पार्वती देवी सखीभ्यां सुन्दरं वचः । हितं मेने तदा तच्च कर्तुं स्माप्यध्यवस्यति ॥१४॥ ततः कदाचिन्मज्जत्यां पार्वत्यां वै सदाशिवः । नन्दिनं परिभर्त्स्याथ ह्याजगाम गृहांतरम् ॥१५॥ आयांतं शंकरं दृष्ट्वा समये जगदम्बिका । उत्तस्थौ मज्जती सा वै लज्जिता सुन्दरी तदा ।१६॥ तस्मिन्नवसरे देवी कौतुकेनातिसंयुता । तदीयं तद्वचश्चैव हितं मेने सुखावहम् ॥ १७ ॥ एवं जाते तदा काले कदाचित्पार्वती शिवा । विचिंत्य मनसा चेति परमाया परेश्वरी ।१८। मदीयस्सेवकः कश्चिद्भवेच्छुभतरः कृती । मदाज्ञया परं नान्यद्रेखामात्रं चलेदिह ॥१९॥ विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसंभवम् । पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम् २० सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम् । विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम् ॥ २१ ॥ वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि । नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम् मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यः कश्चिदिहास्ति मे । एवमुक्तस्स पुरुषो नमस्कृत्य शिवां

असंख्य हैं, परन्तु हमारा कोई गण नहीं है और ये सब ही शंकरकी आज्ञा में परायण होकर द्वार पर खड़े रहते हैं ॥११॥१२॥ यद्यपि ये सब भी हमारे ही हैं, तथापि हमारा मन इनसे नहीं मिलता, इस लिये हे निष्पापे ! आपको भी हमारा एक गण रचना चाहिये ॥१३॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-जब सखियोंने पार्वतीसे यह सुन्दर वचन कहा, तब पार्वतीने उसको हितकारक माना और उसको करनेका भी विचार किया ॥१४॥ एक समय पार्वती स्नान कर रही थीं, कि-शिवजी नन्दीको धमका कर घरके भीतर आ गए ॥ १५ ॥ शंकरको आता हुआ देख कर सुन्दरी जगदम्बिका स्नान करती उठ खड़ी हुई और लज्जित होगई ॥ १६ ॥ उस समय कौतुकमें भरी हुई देवी पार्वतीने उन अपनी सखियोंके वचनको हितकारक माना और सुखदायक जाना १७ ऐसी घटना होने पर परमाया परेश्वरी शिवा पार्वतीने मनमें विचार किया, कि-॥ १८ ॥ कोई एक मेरा सेवक होना चाहिये, जो कुशल और परम शुभ हो और मेरी आज्ञासे रेखामात्र भी न सरके ॥१९॥ उन देवीने ऐसा विचार कर अपने शरीरके मैलसे एक सर्वलक्षणसम्पन्न पुरुषको रचा ॥ २० ॥ उसके सब अवयव निर्दोष थे और सुन्दर थे, वह विशाल था, सब शोभाओं का धनी और महाबली तथा पराक्रमी था ॥ २१ ॥ पार्वतीने उसको अनेक प्रकारके वस्त्र और अलङ्कार दिये तथा उसको बहुतसे आशीर्वाद देकर कहा, कि-॥२२॥ तुम मेरे पुत्र हो, मेरे ही हो और कोई यहाँ पर मेरा नहीं है, इस

जगौ ॥ २३ ॥ गणेश उवाच । किं कार्यं विद्यते तेऽद्य करवाणि तवोदितम् । इत्युक्ता सा तदा तेन प्रत्युवाच सुतं शिवा ॥२४॥ शिवोवाच । हे तात शृणु मद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे । मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यथा कश्चिदस्ति मे ॥२५॥ विना मदाज्ञां सत्पुत्र नैवायान्मद्गृहान्तरम् । कोऽपि क्वापि हठात्तात सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२६॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा च ददौ तस्मै यष्टिं चातिदृढां मुने । तदीयं रूपमालोक्य सुन्दरं हर्षमागता २७ मुखमाचुंब्य सुप्रीत्याऽलिंग्य तं कृपया सुतम् । स्वद्वारि स्थापयामास यष्टिपाणिं गणाधिपम् ॥ २८ ॥ अथ देवीसुतस्तात गृहद्वारि स्थितो गणः । यष्टिपाणिर्महावीरः पार्वतीहितकाम्यया ॥ २९ ॥ स्वद्वारि स्थापयित्वा तं गणेशं स्वसुतं शिवा । स्वयं च मज्जती सा व संस्थिता प्रीतसखी युता ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नेव काले तु शिवो द्वारि समागतः । कौतुकी मुनिशार्दूल नानालीलाविशारदः ॥ ३१ ॥ उवाच च शिवेशं तमविज्ञाय गणाधिपः । मातुराज्ञां विना देव गम्यतां न त्वयाधुना ॥ ३२ ॥ मज्जनार्थं स्थिता माता क्व यासीतो व्रजाधुना । इत्युक्त्वा यष्टिकां तस्य रोधनाय तदाग्रहीत् ॥ ३३ ॥ तं दृष्ट्वा तु शिवः प्राह

प्रकार कहने पर उस पुरुषने शिवाको प्रणाम करके कहा ॥ २३ ॥ गणेशने कहा, कि—आपका क्या कार्य है ? आपके कथनानुसार मैं उसको करूँगा, इस प्रकार कहने पर शिवा उस पुत्रसे कहने लगीं ॥ २४ ॥ शिवाने कहा, कि—हे तात ! तुम मेरे वाक्यको सुनो, कि—तुम आजसे मेरे द्वारपाल बनो, तुम मेरे पुत्र हो तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ मेरा और कोई नहीं है ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! मेरी आज्ञाके विना कोई भी हठपूर्वक मेरे घरमें न आवे, चाहे वह कोई हो और कहींसे भी आया हुआ हो ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे मुने ! उन्होंने इस प्रकार कह कर उसको बड़ी दृढ़ लकड़ी दी और अपने सुन्दर रूपको देख कर वह हर्षमें भर गईं ॥ २७ ॥ और प्रीतिपूर्वक उसके मुखको चूम और कृपा कर उस अपने पुत्रका आलिंगन कर उन्होंने उस हाथ में दण्डा धारण करने वाले गणाधिपको अपने द्वार पर स्थापित कर दिया २८ हे तात ! तब वह देवीके पुत्र महावीर गण पार्वतीके हितकी कामनासे हाथ में लकड़ी लेकर घरके द्वार पर खड़े होगए ॥ २९ ॥ शिवा अपने द्वार पर उस अपने पुत्र गणेशको स्थापित कर अपनी सखियोंके साथ स्नान करने लगीं ॥ ३० ॥ हे मुनिशार्दूल ! इसी समय कौतुक करने वाले तथा अनेक लीलाओंमें चतुर शिव द्वार पर आ गए ॥ ३१ ॥ उस गणने उनको शिवाके ईश न जाननेके कारण कहा, कि-आप माताकी आज्ञाके विना भीतर न जावें ॥ ३२ ॥ माता स्नान कर रही हैं, आप कहाँ जाना चाहते हैं, इस समय यहाँसे चले जाइये ॥ ३३ ॥ उसको देख कर शिवने कहा, कि—अरे

कं निषेधसि मूढधीः । मां न जानास्य सद्बुद्धे शिवोऽहमिति नान्यथा ॥ ३४ ॥ ताडि तस्तेन यष्टया हि गणेशेन महेश्वरः । प्रत्युवाच स तं पुत्रं बहुलीलश्च कोपितः ॥३५॥ शिव उवाच । मूर्खोऽसि त्वं न जानासि शिवोऽहं गिरिजापतिः । स्वगृहं यामि रे बाल निषेधसि कथं हि माम् ॥३६॥ इत्युक्त्वा प्रविशन्तं तं महेशं गणनायकः । क्रोधं कृत्वा ततो विप्र दंडेनाताडयत्पुनः ।३७। ततश्शिवश्च संक्रुद्धो गणानाज्ञापयन्निजान् । को वाऽयं वर्तते किं च क्रियते पश्यतां गणाः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा तु शिवस्तत्र स्थितः क्रुद्धो गृहाद्बहिः । भवाचाररतस्स्वामी बह्वद्भुतसुलीलकः ॥ ३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणेशोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच । गणास्ते क्रोधसंपन्नास्तत्र गत्वा शिवाज्ञया । पप्रच्छुर्गिरिजापुत्रं तं तदा द्वारपालकम् ॥१॥ शिवगणा ऊचुः । कोऽसि त्वं कुत आयातः किं वा त्वं च चिकीर्षसे । इतोऽद्य गच्छ दूरं वै यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच । तदीयं तद्वचः श्रुत्वा गिरिजातनयस्स वै । निर्भयो दण्डपाणिश्च द्वारपानब्रवीदिदम् ॥३॥ गणेश उवाच । यूयं के कुत आयाता भवंतस्सुन्दरा इमे । यात दूरं किमिर्थं वै स्थिता अत्र विरोधिनः ॥४॥

मूढधी ! तू किससे निषेध करता है, क्या तू मुझे नहीं जानता, कि–मैं शिव हूँ, कोई और नहीं हूँ ॥ ३४ ॥ यह कह कर उस गणेशने महेशके लकड़ी मारी, तब अनेक प्रकारकी लीला करने वाले शिव कोपमें भर कर उससे कहने लगे ॥ ३५ ॥ शिवने कहा, कि- तू मूर्ख है, इसी लिये तू यह नहीं समझता, कि–मैं शिवाका स्वामी शिव हूँ अरे मूढ़ ! तू मुझे अपने ही घरमें जानसे कैसे रोकता है ॥ ३६ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार कह कर महेश घुसने लगे, कि गणेशने क्रोध करके महेशके फिर दण्डा मारा ॥३७। तब शिवने क्रोध करके अपने गणोंको आज्ञा दी, कि–यह कौन है ? और क्या कर रहा है ? हे गणो ! तुम इसबातको देखो ॥ ३८ ॥ सांसारिक आचारमें परायण अद्भुत लीला करने वाले स्वामी शिव इस प्रकार कह क्रोधमें भर घरके द्वार पर खड़े होगए ॥ ३९ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ❁

ब्रह्माजी कहते हैं, कि–तब शिवकी आज्ञा पा क्रोधमें भरे हुए गण तहाँ पहुँच उस गिरिजापुत्र द्वारपालसे कहने लगे ॥१॥ शिवगणोंने कहा, कि– तू कौन है ? कहाँसे आया है ? और तू क्या करना चाहता है ? यदि तू जीवित रहना चाहता है तो यहाँसे दूर चला जा ॥२। ब्रह्माजी कहते हैं, कि- उनके इस वचनको सुन कर वह गिरिजानन्दन हाथमें लकड़ी ले उन द्वारपालोंसे निर्भयतापूर्वक कहने लगा ॥३॥ गणेशने कहा कि- तुम कौन हो ? कहाँसे आए हो, तुम सब ही सुन्दर हो ! तुम दूर चले जाओ, यहाँ पर

ब्रह्मोवाच । एवं श्रुत्वा वचस्तस्य हास्यं कृत्वा परस्परम् । ऊचुस्सर्वे शिवगणा महावीरा गतस्मयाः ॥ ५ ॥ परस्परमिति प्रोच्य सर्वे ते शिवपार्षदाः । द्वारपालं गणेशं तं प्रत्यूचुः क्रुद्धमानसाः ।६। शिवगणा ऊचुः । श्रूयतां द्वारपाला हि वयं शिवगणा वराः । त्वां निवारयितुं प्राप्ताश्शंकरस्याज्ञया विभोः ॥७॥ त्वामपीह गणं मत्वा न हन्यामोऽन्यथा हतः । तिष्ठ दूरे स्वतस्त्वं च किमर्थं मृत्युमीहसे ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्तोऽपि गणेशश्च गिरिजातनयोऽभयः । निर्भर्त्स्य शंकरगणान्न द्वारं मुक्तवांस्तदा ॥ ९ ॥ ते सर्वेऽपि गणाश्शैवास्तत्रत्या वचनं तदा । श्रुत्वा तत्र शिवं गत्वा तद्वृत्तांतमथाब्रुवन् ॥१०॥ ततश्च तद्वचः श्रुत्वाद्भुतलीलो महेश्वरः । विनिर्भर्त्स्य गणानूचे निजाँल्लोकगतिर्मुने ॥ ११ ॥ महेश्वर उवाच । कश्चायं वर्तते किं च ब्रवीत्यरिवदुच्छ्रितः । किं करिष्यत्यसद्बुद्धिः स्वमृत्युं वाञ्छति ध्रुवम् ॥ १२ ॥ दूरतः क्रियतां ह्येष द्वारपालो नवीनकः । क्लीबा इव स्थितास्तस्य वृत्तं वदथ मे कथम् ॥ १३ ॥ स्वामिनोक्ता गणास्ते चाद्भुतलीलेन शंभुना । पुनरागत्य तत्रैव तमूचुर्द्वारपालकम् ॥१४॥ शिवगणा ऊचुः । रे रे द्वारप कस्त्वं हि स्थितश्च

विरोध बढ़ानेके लिये तुम क्यों खड़े हुए हो ॥४॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–उसके इस वचनको सुन कर वे सब परस्परमें हँसे, फिर उन महावीर शिवगणोंने आपसमें आश्चर्यरहित होकर बात चीत की ॥ ५ ॥ उन सब शिवपार्षदोंने इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर मनमें क्रुद्ध हो उस द्वारपाल गणेश से कहा, कि -॥ ६ ॥ सुनो ! हम द्वारपाल हैं और शिवके मुख्य गण हैं और विभु शिवकी आज्ञासे तुमको हटानेके लिये आए हैं ॥ ७ ॥ हमने तुमको भी गण मान कर अभी तक नहीं मारा है, अन्यथा तुम अब तक कभी के मारे गए होते, तुम अपने आप ही दूर हट जाओ, किस लिये मृत्यु चाह रहे हो ॥८॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–इस प्रकार कहने पर भी वह गिरिजानन्दन गणेश निर्भय रहे और उन्होंने शंकरके गणोंको धमकाया और द्वार नहीं खोला ॥ ९ ॥ तब तहाँ पर खड़े हुए उन शिवके गणोंने भी इस वचनको सुन शिवके पास जाकर समस्त वृत्तान्त कहा ॥१०॥ तब हे मुने ! संसार की गतिरूप अद्भुत लीला वाले महेश्वर शिव उन अपने गणोंको धमका कर कहने लगे ।११। महेश्वरने कहा, कि–यह कौन है ? जो उद्दण्ड हो शत्रुकी समान दुर्वचन कह रहा है, यह दुर्बुद्धि क्या कर सकेगा, यह अपनी मृत्यु ही चाह रहा है ॥१२॥ तुम इस नवीन द्वारपालको हटा कर दूर करदो, तुम नपुंसककी समान खड़े होकर उसकी बातें मुझे क्या सुना रहे हो ॥ १३ ॥ अद्भुत लीला करने वाले स्वामी शम्भुके इस प्रकार कहने पर वे गण पुनः तहाँ ही पहुँच कर उस द्वारपालसे कहने लगे कि–॥ १४ ॥ शिवगणोंने कहा,

स्थापितः कुतः। नैवास्मान्गणयस्येवं कथं जीवितुमिच्छसि ॥ १५ ॥ द्वारपाला वयं सर्वे स्थिताः किं परिभाषसे। सिंहासनगृहीतश्च शृगालः शिवमीहते ॥१६॥ तावद्गर्जसि मूर्ख त्वं यावद्गणपराक्रमः। नानुभूतस्त्वयात्रैव ह्यनुभूतः पतिष्यसि ॥ १७ ॥ इत्युक्तस्तैस्सुसं क्रुद्धो हस्ताभ्यां यष्टिकां तदा। गृहीत्वा ताडयामास गणांस्तान्परिभाषिणः ॥१८॥ उवाचाथ शिवापुत्रः परिभर्त्स्य गणेश्वरान्। शंकरस्य महावीरान्निर्भयस्तान्गणेश्वरः ॥१९॥ शिवापुत्र उवाच। यात यात ततो दूरे नो चेद्वो दर्शयामि ह। स्वपराक्रममत्युग्रं यास्यथात्युपहास्यताम् ॥ २० ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरिजातनयस्य हि। परस्परमथोचुस्ते शङ्करस्य गणास्तदा ।२१॥ शिवगणा ऊचुः। किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं क्रियते स न किं पुनः। मर्यादा रक्ष्यतेऽस्माभिरन्यथा किं ब्रवीति च ॥२२। ब्रह्मोवाच। ततश्शंभुगणास्सर्वे शिवं दूरे व्यवस्थितम्। क्रोशमात्रं तु कैलासाद्गत्वा ते च तथाब्रुवन् ॥२३॥ शिवो विहस्य तान्सर्वांस्त्रिशूलकर उग्रधीः। उवाच। परमेशो हि स्वगणान् वीरसंमतान् २४ शिव उवाच। रे रे गणाः क्लीबमता न वीरा वीरमानिनः। मदग्रे नोदितुं योग्या

कि-रे द्वारपाल! तू कौन है और तुझे किसने स्थापित किया है, जब तू हमको गिनना नहीं चाहता, तो कैसे जीवित रहना चाहता है ॥ १५ ॥ हम सब द्वारपाल खड़े हुए हैं, बता अब तू क्या कहता है? अहो! सिंहासन पर बैठा हुआ शृगाल क्या कल्याण पानेकी कामना करता है॥१६॥ अरे मूर्ख! तू तभी तक गरज रहा है, जब तक तूने गणोंका पराक्रम नहीं देखा है और जब तू गणोंके पराक्रमको देखेगा तो यहाँ ही गिर पड़ेगा ॥१७॥ जब गणों ने इस प्रकार कहा, तब गणेश क्रोधमें भर हाथोंसे लकड़ी पकड़ उन भाषण करने वाले गणोंको मारने लगे ॥१८॥ तदनन्तर निर्भय गणेश्वर गिरिजानन्दन शंकरके महावीर गणेश्वरोंको धमका कर निर्भयतापूर्वक कहने लगे १९ शिवापुत्रने कहा, कि—अरे! भागो! भागो!! नहीं तो मैं तुम्हें अपना प्रचण्ड पराक्रम दिखाऊँगा, तो तुम्हारी हँसी होगी ॥ २० ॥ गिरिजानन्दनके इस वचनको सुन वे शंकरके गण आपसमें कहने लगे ॥२१॥ शिवगणोंने कहा, कि—अब क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये और जो करना चाहिये उसका हम पालन क्यों नहीं करते? क्या करें? हम मर्यादाकी रक्षा कर रहे हैं? अन्यथा यह क्या कह सकता था? ॥२२। ब्रह्माजी कहते हैं, कि—तदनन्तर शम्भुके सब गणोंने कैलाससे कोस भर दूर खड़े हुए शिवके पास जाकर सब बातें कहीं ॥ २३ ॥ तब हाथमें त्रिशूलको धारण करने वाले, प्रचण्ड बुद्धि परमेश अपने वीरसम्मत गणोंसे हँस कर कहने लगे, कि—२४ अरेरे! गणो! तुम नपुंसक हो! वीरमानी हो, किन्तु वीर नहीं हो, मेरे सामने

भर्त्सितः किं पुनर्वदेत् २५ गम्यतां ताडयताञ्चैव यः कश्चित्प्रभवेदिह। बहुनोक्तेन किं चात्र दूरीकर्तव्य एव सः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच। इति सर्वे महेशेन जग्मुस्तत्र मुनीश्वर। भर्त्सितास्तेन देवेन प्रोचुश्च गणसत्तमाः ॥२७॥ शिवगणा ऊचुः। रे रे त्वं शृणु वै बाल बलात्किं परिभाषसे। इतस्त्वं दूरतो याहि नो चेन्मृत्युर्भविष्यति ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच। इति श्रुत्वा वचस्तेषां शिवाज्ञाकारिणां ध्रुवम्। शिवासुतस्तदाभूत्स किं करोमीति दुःखितः ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी तेषां तस्य च वै पुनः। श्रुत्वा तु कलहं द्वारि सखीं पश्येति चाब्रवीत् समागत्य सखी तत्र वृत्तांतं समबुध्यत। क्षणमात्रं तदा दृष्ट्वा गता हृष्टा शिवान्तिकम् तत्र गत्वा तु तत्सर्वं वृत्तं तद्वद्भून्मुने। अशेषेण तया सख्या कथितं गिरिजाग्रतः ३२ सख्युवाच। अस्मदीयो गणो यो हि स्थितो द्वारि महेश्वरि। निर्भर्त्सयंति तं वीरादशङ्करस्य गणा ध्रुवम्॥ ३३ ॥ शिवश्चैव गणास्सर्वे विना तेऽवसरं कथम्। प्रविशन्ति हठाद्गेहे नैतच्छुभतरं तत्र ॥३४॥ सम्यक् कृतं ह्यनेनैव न हि कोऽपि प्रवेशितः। दुःखं चैवानुभूयात्र तिरस्कारादिकं तथा ॥३५॥ अतः परन्तु वाग्वादः क्रियते च परस्परम्। वाग्वादे

तुम्हें वार्तालाप करना उचित नहीं है, क्योंकि–अपमानित पुरुष क्या मुख ले कर बोलेगा। २५॥ जाओ, और जो कोई प्रभुता दिखाता हो उसको दण्ड दो, अधिक कहनेसे क्या उसको दूर ही कर दो ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मुनीश्वर ! उन देव महेशके इस प्रकार कहने पर वे धमकाये हुए सब श्रेष्ठ गण तहाँ पहुँच गए ॥२७॥ शिवगणोंने कहा, कि-हे बालक ! सुन ! तू अकड़ कर क्या कह रहा है, तू यहाँसे दूर चला जा नहीं तो तेरी मृत्यु होजावेगी ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–उन सबकी आज्ञा मानने वालों के ध्रुव वचनको सुन कर शिवासुत मैं क्या करूँ, यह विचार कर दुःखित हुए ॥ २६ ॥ इसी समय द्वार पर देवीने गणेश और गणोंके कलहको सुन कर सखीसे कहा, कि–द्वार पर जाकर देख, कि-क्या होरहा है ? ॥३०॥ तहाँ आकर सखीने क्षणभरमें ही सब वृत्तान्त जान लिया और देख कर प्रसन्न होती हुई शिवाके पास पहुँचीं ॥३१॥ हे मुने ! तहाँ जाकर सखीने गिरिजाके सामने जो २ वृत्तान्त हुआ था, वह सब कहा ॥ ३२ ॥ सखीने कहा, कि हे महेश्वरी ! द्वार पर जो हमारा गण खड़ा हुआ है, उसको शंकरके वीरगण धमका रहे हैं ॥ ३३ ॥ शिव और शिवके सब गण अनवसर ही हठपूर्वक आपके घरमें घुसना चाहते हैं, यह आपके लिये शुभ बात नहीं है ॥३४॥ यह उस गणेशने ठीक ही किया, कि–तिरस्कार आदिका दुःख सह कर भी किसीको घुसने नहीं दिया ।३५। इसके पीछे अब वाद-विवाद होरहा है, यदि वादविवाद न होता तो वे सुखपूर्वक यहाँ आजाते ।३६।

च कृते नैव तद्यान्तु सुखेन वै ॥ ३६ ॥ कृतश्चैवात्र वाग्वादरतं जित्वा विजयेन च । प्रविशन्तु तथा सर्वे नान्यथा कर्हिचित्प्रिये ॥३७॥ अस्मिन्नेवास्मदीये नौ रुर्वे संभर्त्सिता वयम् । तस्माद्देवि त्वया भद्रे न त्याज्यो मान उत्तमः ॥ ३८ ॥ शिवो मर्कटवत्तेऽद्य वर्तते सर्वदा सति । किं करिष्यत्यहंकारमानुकूल्यं भविष्यति ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच । अहो क्षणं स्थिता तत्र शिवेच्छावशतस्सती ॥ ४० ॥ मनस्युवाच सा भूत्वा मानिनी पार्वती तदा ॥ शिवोवाच । अहो क्षणं स्थितो नैव हठात्कारः कथं कृतः । कथं चैवात्र कर्त्तव्यं विनयेनाथवा पुनः ॥ ४२ ॥ भविष्यति भवत्येव कृतं नैवान्यथा पुनः । इत्युक्त्वा तु सखी तत्र प्रेषिता प्रियया तदा ॥ ४३ ॥ समागत्याऽब्रवीत्सा च प्रियया कथितं हि यत् । समाचष्ट गणेशं तं गिरिजातनयं तदा ॥ ४४ ॥ सख्युवाच । सम्यक्कृतं त्वया भद्र बलात्ते प्रविशन्तु न । भवदग्रे गणा ह्येते किं जयन्तु भवादृशम् ॥ ४५ ॥ कृतं चेद्वाकृतं चैव कर्त्तव्यं क्रियतान्त्वया । जितो यस्तु पुनर्वापि न वैरमथवा ध्रुवम् ॥४६॥ ब्रह्मोवाच । इति श्रुत्वा

हे प्रिये ! अब वे उससे वादविवाद करके और उसको विजयसे जीत कर ही यहाँ घुस सकेंगे और किसी प्रकार वे यहाँ नहीं घुस सकेंगे ॥ ३७ ॥ हे देवि ! इस हमारे जनके धमकाये जाने पर मानो हम सबको ही उन्होंने धमका लिया, हे भद्रे ! हे देवि ! इस लिये तुम उत्तम मानको मत छोड़ना ३८ हे सति ! शिव तो तुम्हारे पीछे सदा बन्दरकी समान नाचते हैं, तो उनका अहंकार अब क्या काम देगा, सब बात आपके अनुकूल ही होजावेगी ३९ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-तब शिवकी इच्छावश सती कुछ समय तक खड़ी रहीं फिर वह मानिनी पार्वती अपने मनमें कहने लगीं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अहो ! शिवसे क्षणभरके लिये भी खड़ा न हुआ गया, वह हठ कैसे कर रहे हैं इस अवसर पर क्या करना चाहिये, हठसे काम लूँ अथवा विनयसे ? ॥४२॥ जो कुछ होना है, वह होगा ही, उसमें कुछ लौट बदल कौन कर सकता है, यह कह शिव-प्रियाने सखीको तहाँ भेजा ॥ ४३ ॥ तब उस सखीने क्षण भरमें ही गिरिजा—नन्दन गणेशके पास पहुँच कर शिव—प्रियाने जो बात कही थी, वह सब उनसे कह दी ॥ ४४ ॥ सखीने कहा, कि–हे भद्र ! तुमने बड़ी अच्छी बात की, वे बलपूर्वक प्रवेश नहीं कर सकते, आपके सामने ये गण क्या आपको जीत सकते हैं ॥ ४५ ॥ अब तक तुमने कुछ किया हो वा न किया हो, अब तुम्हें कर्तव्य कर्मका पालन करना ही चाहिये (अब तुम उनसे कहना, कि-) तुम मुझे हरा कर अथवा विनयपूर्वक ही भीतर जा सकते हो अन्यथा नहीं जासकते ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि माताके इस वचनको सुन कर गणेश बड़े प्रसन्न हुए और उनका बल भी

वचस्तस्या मातुश्चैव गणेश्वरः । आनन्दं परमं प्राप बलं भूरि महोन्नतिम् ॥४७॥ बद्ध-कक्षस्तथोष्णीषं बद्ध्वा जंघोरु संस्पृशन् । उवाच तान् गणान् सर्वान् निर्भयं वचनं मुदा गणेश उवाच । अहं च गिरिजासूनुर्यूयं शिवगणास्तथा । उभये समतां प्राप्ताः कर्तव्यं क्रियतां पुनः ॥४९॥ भवन्तो द्वारपालाश्च द्वारपोऽहं कथं न हि। भवन्तश्च स्थितास्तत्राऽहं स्थितोऽत्रेति निश्चितम् ॥५०॥ भवद्भिश्च स्थितं ह्यत्र यदा भवति निश्चितम् । तदा भवद्भिः कर्त्तव्यं शिवाज्ञापरिपालनम् ॥ ५१ ॥ इदानीं तु मया चात्र शिवाज्ञापरिपालनम् । सत्यं च क्रियते वीरा निर्णीतं मे यथोचितम् ॥ ५२ ॥ तस्माच्छिवगणास्सर्वे वचनं शृणुतादरात । हठाद्वा विनयाद्वा न गन्तव्यं मन्दिरे पुनः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्तवारते गणेनैव सर्वे ते लज्जिता गणाः । ययुश्शिवांतिकं तं वै नमस्कृत्य पुरः स्थिताः ॥ ५४ ॥ स्थित्वा न्यवेदयन्सर्वे वृत्तांतं च तदद्भुतम् । करौ बद्ध्वा नतस्कन्धाश्शिवं स्तुत्वा पुरः स्थिताः ॥५५॥ तत्सर्वं तु तदा श्रुत्वा वृत्तं तत्स्वगणोदितम् । लौकिकीं वृत्तिमाश्रित्य शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ॥५६॥ शङ्कर उवाच । श्रूयतां च गणास्सर्वे युद्धं योग्य भवेन्न हि । यूयं

बहुत बढ़ गया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वे दुपट्टा बाँध पगड़ी पहिने जंघा तथा ऊरुको हाथसे ताडन कर उन सब गणोंसे निर्भयतापूर्वक कहने लगे ।४८। गणेशने कहा, कि–सुनो ! मैं गिरिजाका पुत्र हूँ और तुम शिवके गण हो, इस लिये हम दोनों समानताको प्राप्त होगए हैं, अतः अब तुम्हें जो कुछ करना हो उसे करो ॥ ४९ ॥ तुम द्वारपाल हो और मैं द्वारपाल क्यों नहीं हूँ, तुम वहाँ खड़े हो और मैं यहाँ खड़ा हूँ, यह निश्चित है ॥ ५० ॥ यदि तुमने यहाँ ही खड़े रहना निश्चित कर लिया हो तो, तुम यहाँ ही खड़े रह कर शिवकी आज्ञाका पालन करते रहो ॥ ५१ ॥ और मुझे तो यहाँ पर शिवाकी आज्ञाका पालन करना है और उसको मैं सत्य कर रहा हूँ, हे वीरों ! इस प्रकार मैंने यथोचित बातका निर्णय कर दिया ।५२। इस लिये हे शिवगणों ! मेरे वचनको तुम आदरपूर्वक सुनो, तुम हठसे वा विनयपूर्वक भी अब इस मंदिरमें न घुस सकोगे ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–इस प्रकार कहने पर वे सब गण फिर शिवके पास पहुँचे और लज्जित होकर उनको प्रणाम करके उनके सामने खड़े होगए ॥ ५४ ॥ और खड़े होकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़ स्तुति करके यह सारा अद्भुत वृत्तान्त सुना दिया।५५ अपने गणोंके कहे हुए इस सब वृत्तान्तको सुनकर शङ्करने सांसारिक वृत्ति का आश्रय लेकर कहा, कि–॥ ५६ ॥ हे सब गणों ! तुम सुनो ! गणेशके पास युद्धके योग्य सामग्री नहीं है, क्योंकि–अपने पक्षमें तो मैं और तुम सब बहुतसे गण हो और उस पक्षमें गणेश और पार्वती दो ही हैं ॥५७॥ अब

चात्रास्मदीया वै स च गौरी गणस्तथा ॥ ५७ ॥ विनयः क्रियते चेद् वै वश्यश्शम्भुः स्त्रिया सदा । इति ख्यातिर्भवेल्लोके गर्हिता मे गणा ध्रुवम् ॥५८॥ कृते चैवात्र कर्तव्यमिति नीतिर्गरीयसी । एकाकी स गणो बालः किं करिष्यति विक्रमम् ॥ ५९ ॥ भवन्तश्च गणा लोके युद्धे चातिविशारदाः । मदीयाश्च कथं युद्धं हित्वा यास्यथ लाघवम् ॥ ६० ॥ स्त्रिया ग्रहः कथं कार्यो पत्युरग्रे विशेषतः । कृत्वा सा गिरिजा तस्य नूनं फलमवाप्स्यति तस्मात्सर्वे च मद्वीराः शृणुतादरतो वचः । कर्त्तव्यं सर्वथा युद्धं भावि यत्तद्भविष्यति ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा शङ्करो ब्रह्मन् नानालीलाविशारदः । विरराम मुनिश्रेष्ठ दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणविवाद-वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच । इत्युक्ता विभुना तेन निश्चयं परमं गताः । सन्नद्धास्तु तदा तत्र जग्मुश्च शिवमन्दिरम् ॥ १ ॥ गणेशोऽपि तथा दृष्ट्वा ह्यायातान्गणसत्तमान् । युद्धाटोपं विधायैव स्थितांश्चैवाब्रवीदिदम् ॥ २ ॥ गणेश उवाच । आयान्तु गणपास्सर्वे शिवाज्ञापरि-

---

यदि विनय दिखाया जाता है तो लोकमें यह निन्दित अपवाद फैल जावेगा कि–शम्भु स्त्रीके वशमें हैं, हे गणो ! यह बात निश्चित ही है ॥५८॥ इस लिये अब जो करना है, उसे करना ही चाहिये, यही नीति श्रेष्ठ है, वह गण तो अकेला है, तिस पर भी बालक है, अतः वह क्या कर सकेगा ॥ ५९ ॥ और मेरे गणो ! तुम तो संसारमें युद्ध-विषयमें चतुर माने जाते हो अतः युद्ध को छोड़ कर तुम हलके कैसे कहलाना चाहते हो ॥ ६० ॥ और स्त्रीको तिस पर भी पतिके साथ क्या ऐसा आग्रह करना चाहिये ? अब गिरिजाने ऐसा कर लिया है, तो उसको अवश्य ही इसका फल मिलेगा ॥ ६१ ॥ इस लिये हे मेरे सब वीरो ! तुम आदरपूर्वक मेरे वचनको सुनो, अब तो सर्वथा युद्ध करना ही होगा तथा जो कुछ होनहार है वह तो होगा ही ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे ब्रह्मन् ! हे मुनिश्रेष्ठ ! अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेमें चतुर शङ्कर लौकिकी गति दिखानेके लिये इतनी बात कह कर चुप होगए ॥ ६३ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ❀ ❀

ब्रह्माजीने कहा, कि–विभुके इस प्रकार कहने पर वे सब गण तयार हो पक्का निश्चय करके शिवके मन्दिरकी ओर चले गए ॥ १ ॥ उस समय गणपतिने भी उन श्रेष्ठ गणोंको युद्धाटोपके साथ आ खड़े देख कर यह बात कही ॥ २ ॥ गणेशने कहा, कि–हे गणो ! शिवकी आज्ञाका पालन करने वाले तुम सब मेरे सामने आओ मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका

पालकः । अहमेकश्च बालश्च शिवाज्ञापरिपालकः ॥ ३ ॥ तथापि पश्यतां देवी पार्वती-सूनुजं बलम् । शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्यतु वै पुनः ॥४॥ बलवद्बालयुद्धञ्च भवानी-शिवपक्षयोः । भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः ॥ ५ ॥ मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना । तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥६॥ ममैवं तु भवे-न्नैव वैपरीत्यं भविष्यति । ममैव भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥ ७ ॥ एवं ज्ञात्वा च कर्त्तव्यः समरश्च गणेश्वराः । भवद्भिस्स्वामिनं दृष्ट्वा मया च मातरं तदा ॥८॥ क्रियते कीदृशं युद्धं भवितव्यं भवत्विति । तस्य वै वारणे कोऽपि न समर्थस्त्रिलोकके ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्येवं भर्त्सितास्ते तु दण्डभूषितबाहवः । विविधान्यायुधान्येवं धृत्वा ते च समाययुः ॥ १० ॥ घर्षयन्तस्तथा दन्तान् हुंकृत्य च पुनः पुनः । पश्य पश्य ब्रुवन्तश्च गणास्ते समुपागताः ॥ ११ ॥ नन्दी प्रथममागत्य धृत्वा पादं व्यकर्षयत् । धावन्भृंगी द्वितीयं व पादं धृत्वा गणस्य च ॥ १२ ॥ यावत्पादे विकर्षन्तौ तावद्धस्तेन वै गणः । आहत्य हस्तयोस्ताभ्यामुत्क्षिप्तौ पादकौ स्वयम् ॥ १३ ॥ अथ देवीसुतो वीरस्संगृह्य परिघं बृहत् । द्वारस्थितो गणपतिः सर्वानापोथयत्तदा ॥१४॥ केषांचित् पाणयो भिन्नाः केषां-

---

पालन करूँगा ॥ ३ ॥ इस प्रकार मैं अकेला हूँ, तो भी देवी पार्वती मेरे बलको देखें और शिव अपने गणोंके बलको देखें ॥४॥ अब भवानी और शिवका पक्ष लेकर बलवानोंमें और बालकमें युद्ध होगा, आपने तो पहिले भी युद्ध किया है, अत एव आप युद्धकुशल हैं ॥ ५ ॥ और मैं बालक हूँ, मैंने पहिले कभी युद्ध नहीं किया है तो भी अब युद्ध करता हूँ, तथापि गिरिजा और शिवके इस विवादमें हार जाने पर तुमको ही लज्जा चढ़ेगी मुझको तो बालक होनेके कारण हार जाने पर भी कुछ लज्जा नहीं होगी६ और जय पराजय कुछ हमारी ही नहीं होगी, यह तो गिरिजा और शिवकी जय पराजय होगी, हे गणेश्वरों ! यह जान कर तुम्हें शिवको देख कर और मुझे माताको देख कर समर करना चाहिये, अब जो होना हो सो हो, इसको हटाने वाला तो त्रिलोकीमें और कोई नहीं है ॥ ७ ८ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-इस प्रकार धमकाये जाने पर वे भुजाओंको दण्डोंसे विभूषित करके तथा अनेक प्रकारके आयुधोंको लेकर आगए ॥ १० ॥ वे दाँतोंको कटकटा हुँ हुँ करते हुए और देख देख कहते हुए वहाँ पर आ पहुँचे ।११। पहिले नन्दीने आकर उनकी टाँग पकड़ कर खेंचली और दौड़ते हुए भृंगीने आकर उनकी दूसरी टाँग पकड़ कर खेंचली ॥ १२ ॥ जब वे उनके पैरोंको खींच रहे थे, कि-उन्होंने हाथोंसे उनको पीट दोनों पैर छुटा लिये ॥ १३ ॥ फिर द्वार पर खड़े हुए देवीसुत गणपति वीरने एक बड़ा भारी परिघ उठा कर

चित् पृष्ठकानि च । केषांचिच्च शिरांस्येव केषांचिन्मस्तकानि च ॥ १५ ॥ केषांचिज्जानुनी तत्र केषांचित् स्कन्धकास्तथा । सम्मुखे चागता ये वै ते सर्वे हृदये हताः ॥ १६ ॥ केचिच्च पतिता भूमौ केचिच्च विदिशो गताः । केषाञ्चिच्चरणौ छिन्नौ केचिच्छर्वान्तिकं गताः ॥ १७ ॥ तेषां मध्ये तु कश्चिद् वै संग्रामे सम्मुखो न हि । सिंहं दृष्ट्वा यथा यांति मृगाश्चैव दिशो दश ॥१८॥ तथा ते च गणास्सर्वे गताश्चैव सहस्रशः । परावृत्य तथा सोऽपि सुद्वारि समुपस्थितः ॥१९॥ कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयङ्करः । यथा तथैव दृष्टस्स सर्वेषां प्रलयंकरः ॥ २० ॥ एतस्मिन्समये चैव सरमेशासुरेश्वराः । प्रेरिता नारदेनेह देवास्सर्वे समागमन् ॥ २१ ॥ समब्रुवंस्तदा सर्वे शिवस्य हितकाम्यया । पुरःस्थित्वा शिवं नत्वा ह्याज्ञां देहि प्रभो इति ॥२२॥ त्वं परब्रह्म सर्वेशस्सर्गे च तव सेवकाः । सृष्टे कर्ता सदा भर्ता संहर्ता परमेश्वरः ॥ २३ ॥ रजस्सत्त्वतमोरूपो लीलया निर्गुणः स्वतः । का लीला रचिता चाद्य तामिदानीं वद प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनिश्रेष्ठ महेश्वरः । गणान् भिन्नाँस्तदा दृष्ट्वा तेभ्यस्सर्वं न्यवेदयत् ॥ २५ ॥

उन सबको धुँगल डाला ॥१४॥ उस समय किन्हींके हाथ टूट गए, किन्हींकी पीठ टूट गई और किन्हीके शिर फट गए और किन्हींके मस्तक चूर होगए ॥१५॥ किन्हीके कंधे, किन्हीकी जानु टूट गई और जो सामने पड़े उन सबके हृदयमें उन्होंने प्रहार किया ॥१६॥ उस समय कुछ भूमिमें गिर पडे और कुछ दिशा विदिशाओंमेंको भाग गए, किन्हीकी टाँगें कट गईं और कुछ शिवके पास पहुँच गए ॥१७॥ उनमेंसे कोई भी संग्राममें सम्मुख न पड़ा और सिंहको देख कर जैसे मृग भाग जाते हैं, तिस प्रकार दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार वे हजारों गण लौट कर भाग गए और वह द्वार पर डट गए ॥१९॥ और कल्पान्तके समय जिस प्रकार काल भयंकर दीखता है, इसी प्रकार सबका प्रलय करने वाले वे गणेश भी भयंकर दीखने लगे ॥२०॥ इसी समय नारदजीके प्रेरणा करने पर रमेशसहित सब देवता तहाँ पर आगए ॥ २१ ॥ फिर सब शिवका हित चाह कर शिवको प्रणाम कर उनके सामने खड़े होकर कहने लगे, कि–हे प्रभो! आज्ञा दीजिये ॥ २२ ॥ आप परब्रह्म और सर्वेश हैं, तथा हम सब आपके सेवक हैं और आप सृष्टिके कर्ता हैं, सदा सृष्टिका भरण किया करते हैं और परमेश्वर आप ही उसका संहार भी किया करते हैं ॥ २३ ॥ और लीलावश सत्व रज और तमोगुण वाले होजाते हैं वास्तवमें आप निर्गुण हैं, हे प्रभो! इस समय आपने क्या लीला रची है, उसको कहिये ।२४। ब्रह्माजी कहते हैं, कि–हे मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरने उन सबके कहे हुए इस वचनको सुन

अथ सर्वेश्वरस्तत्र शंकरो मुनिसत्तम । विहस्य गिरिजानाथो ब्रह्माणं मामुवाच ह ।२६। शिव उवाच । ब्रह्मञ्छृणु मम द्वारि बाल एकः समास्थितः । महाबलो यष्टिपाणिर्गेहावेशनिवारकः ॥२७॥ महाप्रहारकर्ताऽसौ मत्पार्षदविघातकः । पराजयः कृतस्तेन मद्गणानां बलादिह ॥ २८ ॥ ब्रह्मन् त्वयैव गंतव्यं प्रसाद्योऽयं महाबलः । यथा ब्रह्मन्नयः स्याद् वै तथा कार्यं त्वया विधे ॥२९॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यमज्ञात्वा ज्ञानमोहितः । तदीयनिकटं तात सर्वैर्ऋषिवरैरयाम् ॥ ३० ॥ समायान्तञ्च मां दृष्ट्वा स गणेशो महाबली । क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य ममाश्मश्रूण्यथाकिरत् ॥ ३१ ॥ क्षम्यतां क्षम्यतां देव न युद्धार्थं समागतः । ब्राह्मणोऽहमनुग्राह्यः शांतिकर्तानुपद्रवः ॥ ३२ ॥ इत्येवं ब्रुवति ब्रह्मंस्तावत्परिघमाददे । स गणेशो महावीरो बालोऽबालपराक्रमः ॥ ३३ ॥ गृहीतपरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम् । पलायनपरो यातस्त्वहं द्रुततरं तदा ॥ ३४ ॥ यात यात ब्रुवंतस्ते परिघेन हतास्तदा । स्वयं च पतिताः केचित्केचित्तेन निपातिताः ॥ ३५ ॥ केचिच्च शिव

कर और गणोंको भागता हुआ देख कर उन सबसे कहा ॥२५॥ हे मुनिसत्तम ! उस समय गिरिजाके नाथ महेश्वर शङ्करने हँस कर मुझ ब्रह्मासे कहा, कि–॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! सुनो ! मेरे द्वार पर एक बालक बैठा हुआ है, वह महाबली है, उसके एक हाथमें दण्डा है और वह घरमें घुसनेसे रोकता है ॥ २७ ॥ वह बड़ा प्रहार करने वाला है और मेरे पार्षदोंको नष्ट करने वाला है, वह इस समय मेरे गणोंका बलपूर्वक पराजय कर रहा है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब आप ही जाकर उस महाबलीको प्रसन्न करें, हे विधे ! हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार नीतिभरा कार्य हो, तिसी प्रकार आपको करना चाहिये ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–प्रभुके इस वाक्यको सुन अज्ञानमोहित होनेके कारण मैंने कुछ न समझा और सब ऋषियोंको साथमें लेकर उनके पास पहुँचा ॥ ३० ॥ मुझे आते हुए देख कर उन महाबली गणेशने क्रोधके साथ मेरे पास आ मेरी मूँछे उखाड़ लीं ॥३१॥ "क्षमा करो ! क्षमा करो !! देव ! मैं युद्धके लिये नहीं आया हूँ, मैं तो शांति करना चाहने वाला निरुपद्रवी ब्राह्मण हूँ, ऐसे ब्राह्मण पर तो आपको अनुग्रह करना चाहिये" ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं इतना कह रहा था, कि–तरुणकी समान पराक्रम करने वाले महावीर बालक गणेशने परिघ उठा लिया ॥३३॥ महाबली गणेशको परिघ उठाता हुआ देख कर मैं तो झपट लगाकर भाग गया ३४ और सब (गण) भी भागो ! भागो ! कहते हुए परिघसे पिट गए, उस समय कुछ अपने आप भाग गए और कुछको गणेशने गिरा दिया ॥३५॥ और कुछने तत्क्षण ही शिवके पास पहुँच, शिवको वह सारा वृत्तान्त सुना

सामीप्यं गत्वा तत्क्षणमात्रतः । शिवं विज्ञापयांचक्रुस्तद् वृत्तांतमशेषतः ॥ ३६ ॥ तथा-
विधांश्च तान् दृष्ट्वा तद् वृत्तांतं निशम्य सः । अपारमादधे कोपं हरो लीलाविशारदः ३७
इन्द्रादिकान्देवगणान् षण्मुखप्रवरान् गणान् । भूतप्रेतपिशाचांश्च सर्वानादेशयत्तदा ३८
ते सर्वे च यथायोग्यं गतास्ते सर्वतो दिशम् । तं गणं हन्तुकामा हि शिवाज्ञाताउदायुधाः
यस्य यस्यायुधं यच्च तत्तत्सर्वं विशेषतः । तद्गणेशोपरि बलात्समागत्य विमोचितम् ४०
हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये सचराचरे । त्रिलोकस्था जनास्सर्वे संशयं परमं गताः
न यातं ब्रह्मणोऽप्यायुर्ब्रह्मांड क्षयमेति हि । अकाले च तथा नूनं शिवेच्छावशतः स्वयम्
ते सर्वे च गतास्तत्र षण्मुखाद्याश्च ये पुनः। देवा व्यर्थायुधा जाता आश्चर्यं परमं गताः
एतस्मिन्नन्तरे देवी जगदम्बा विबोधना । ज्ञात्वा तच्चरितं सर्वमपारं क्रोधमादधे ।४४।
शक्तिद्वयं तदा तत्र तया देव्या मुनीश्वर । निर्मितं स्वगणस्यैव सर्वसाहाय्यहेतवे ।।४५॥
एका प्रचंडरूपञ्च धृत्वातिष्ठन्महामुने । श्यामपर्वतसंकाशं विस्तीर्य मुखगह्वरम् ॥ ४६ ॥
एका विद्युत्स्वरूपा च बहुहस्तसमन्विता । भयङ्करा महादेवी दुष्टदण्डविधायिनी ॥४७॥
आयुधानि च सर्वाणि मोचितानि सुरैर्गणैः । गृहीत्वा स्वमुखे तानि ताभ्यां शीघ्रं च

दिया ॥ ३६ ॥ उनकी ऐसी दशा देख कर और इस वृत्तान्तको सुन कर लीला-विशारद हरको बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ ३७ ॥ तब उन्होंने इन्द्र आदि देवताओंको और षडानन आदि श्रेष्ठ गणोंको तथा सब भूत प्रेत पिशाचोंको आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ तब शिवकी आज्ञा पाने पर वे सब उस गणको मारने के लिये हाथोंमें यथायोग्य शास्त्रोंको लेकर चारों ओरसे चल दिये ॥३९॥ जिस २ का जो आयुध विशेषरूपसे निश्चित है, उसने उस २ आयुधको बलपूर्वक गणेश पर चलाया ॥ ४० ॥ उस समय चराचर त्रिलोकीमें बड़ा हाहाकार मचा, त्रिलोकीके सब जन बड़े संशयमें पड़ गए ॥ ४१ ॥ (और कहने लगे, कि-) अभी तो ब्रह्माकी आयु पूर्ण नहीं हुई है, तब भी यह ब्रह्मांड नष्ट क्यों होरहा है यह अकालमें ही शिवकी इच्छावश ऐसा होरहा है ४२ इधर षडानन आदि जो सब वहाँ गए थे, उनको अपने आयुध व्यर्थ गए देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४३ ॥ इसी समय विशेष ज्ञान वाली देवी जगदम्बाने उस सब चरित्रको जान कर बड़ा क्रोध किया ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर ! तब उन देवीने अपने गणको पूर्णरूपसे सहायता पहुँचानेके लिये दो शक्तियोंको रचा ॥४५॥ हे महामुने ! उनमेंसे, एक प्रचण्ड रूप धारण कर, श्यामपर्वतकी समान अपनी मुखरूपी गुफाको फैला कर खड़ी होगई ॥४६॥ और दूसरी बिजलीकी समान स्वरूप वाली, अनेक हस्तोंसे सम्पन्न, भयंकर महादेवी दुष्टोंको दंडदेने लगी ॥४७॥ देवताओंने और गणोंने जो आयुध

चिक्षिपे ॥ ४८ ॥ देवायुधं न दृश्येत परिघः परितः पुनः । एवं ताभ्यां कृतं तत्र चरितं परमाद्भुतम् ॥ ४६ ॥ एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम् । यथा गिरिवरेणैव लोडितस्सागरः पुरा ॥ ५० ॥ एकेन निहतास्सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा । शंकरस्य गणाश्चैव व्याकुला अभवंस्तदा ॥ ५१ ॥ अथ सर्वे मिलित्वा ते निश्श्वस्य च मुहुर्मुहुः । परस्परं समूचुस्ते तत्प्रहारसमाकुलाः ॥ ५२ ॥ देवगणा ऊचुः । किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न ज्ञायन्त दिशो दश । परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोवाच । एतत् कालेऽप्सरः श्रेष्ठाः पुष्पचन्दनपाणयः । ऋषयश्च त्वदाद्या हि येऽतियुद्धे तिलालसाः ५४ ते सर्वे च समाजग्मुर्युद्धसंदर्शनाय वै । पूरितो व्योमसन्मार्गस्तैस्तदा मुनिसत्तम ॥५५॥ तास्ते दृष्ट्वा रणं तं वै महाविस्मयमागताः। ईदृशं परमं युद्धं न दृष्टं चैकदापि हि ॥५६॥ पृथिवी कम्पिता तत्र समुद्रसहिता तदा । पर्वताः पतिताश्चैव चक्रुः संग्रामसम्भवम् ५७ द्यौर्महर्क्षगणैर्घूर्णा सर्वे व्याकुलतां गताः । देवाः पलायितास्सर्वे गणाश्च सकलास्तदा केवलं षण्मुखस्तत्र नापलायत विक्रमी । महावीरस्तदा सर्वान्वार्य पुरतः स्थितः ॥५९॥ शक्तिद्वयेन तद्युद्धे सर्वे च निष्फलीकृताः । सर्वास्त्राणि निकृत्तानि संक्षिप्तान्यमरैर्गणैः

फेंके उनको अपने मुखमें ग्रहण करके वे दोनों अपने आयुध फेंकने लगीं ४८ उस समय देवताओंका आयुध तो नहीं दीखता था, परन्तु परिघ वारवार दीख जाता था, इस प्रकार उन दोनोंने परम अद्भुत चरित्र किया ॥ ४६ ॥ जैसे पहिले गिरिवर मन्दराचलने समुद्रको हिलोड़ा था, इसी प्रकार वह एक बालक दुस्तर सम्पूर्ण सेनाको हिलोड़ने लगा ॥५०॥ एकने ही इन्द्र आदि सब देवताओंको पीटा, तब शंकरके गण भी व्याकुल होगए ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वे सब मिल, प्रहारसे व्याकुल होनेके कारण आपसमें कहने लगे ५२ कि-क्या करें ? कहाँ जावें, हमें दशों दिशाएँ तक नहीं सूझतीं, यह तो दाईं बाईं ओरको परिघ घुमाये ही जाता है ।५३। ब्रह्माजीने कहा, कि-इसी समय श्रेष्ठ २ अप्सराएँ और नारद आदि ऋषि जो युद्धको देखनेकी बड़ी लालसा रखते थे वे पुष्प चन्दन आदिको हाथमें लेकर युद्ध देखनेके लिये तहाँ आए हे मुनिसत्तम ! उनसे आकाशमार्ग छा गया ॥ ५४ ॥५५॥ उस रणको देख कर वह बड़े विस्मयमें पड़ गए कि ऐसा बड़ा युद्ध तो हमने कहीं देखा भी नहीं ॥ ५६ ॥ तहाँ पर समुद्रसहित पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी गिर कर संग्रामको सम्भव बनाने लगे ॥ ५७ ॥ आकाश ग्रह और नक्षत्रगणोंके साथ घूमने लगा, सब व्याकुल हो उठे, उस समय सब देवता और गण भाग गए ॥५८॥ उस समय केवल महावीर और विक्रमी षडानन ही नहीं भागे, वह सबको घेरनेके लिये आगे ही खड़े रहे ॥५९॥ उस युद्धमें दोनों शक्तियोंने

येऽत्र स्थितास्च ते सर्वे शिवस्यांतिकमागताः । देवाः पलायितास्सर्वे गणाश्च सकलास्तदा
ते सर्वे मिलिताश्चैव मुहुर्नत्वा शिवं तदा । अब्रुवन्वचनं क्षिप्रं कोऽयं गणवरः प्रभो ६२
पुरा नैव श्रुतं युद्धमिदानीं बहुधा पुनः । दृश्यते न श्रुतं दृष्टमीदृशं तु कदाचन ॥ ६३ ॥
किञ्चिद्विचार्यतां देव त्वन्यथा न जयो भवेत् । त्वमेव रक्षकस्स्वामिन्ब्रह्माण्डस्य न संशयः
ब्रह्मोवाच । इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा रुद्रः परमकोपनः । कोपं कृत्वा च तत्रैव जगाम स्वगणैः-
स्सह ॥ ६५ ॥ देवसैन्यं च तत्सर्वं विष्णुना चक्रिणा सह । समुत्सवं महत् कृत्वा शिव-
स्यानुजगाम ह ॥ ६६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भक्त्या नमस्कृत्य महेश्वरम् । अब्रवीन्नारद त्वं
वै देवदेवं कृतांजलिः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच । देवदेव महादेव श्रृणु मद्वचनं विभो ।
त्वमेव सर्वगस्स्वामी नानालीलाविशारदः ॥ ६८ ॥ त्वया कृत्वा महालीलां गणगर्वोपहा-
रितः । अस्मै दत्त्वा बलं भूरि देवगर्वश्च शंकर ॥ ६९ ॥ दर्शितं भुवने नाथ स्वमेव बल-
मद्भुतम् । स्वतन्त्रेण त्वया शम्भो सर्वगर्वप्रहारिणा ॥७०॥ इदानीं न कुरुष्वेश तां लीलां

देवताओंके चलाये हुए सब अस्त्रोंको निष्फल कर डाला और काट डाला ६० जो तहाँ खड़े थे; वे भी शिवके पास आगए और तहाँसे तो सब देवता और गण भाग खड़े हुए ॥ ६१ ॥ फिर वह सब मिल शिवको बारम्बार प्रणाम करके कहने लगे, कि-हे प्रभो ! यह कौनसा श्रेष्ठ गण है ॥ ६२ ॥ हमने पहिले भी बहुतसे युद्ध सुने हैं और आज कल भी बहुतसे युद्ध किये हैं, परन्तु ऐसा युद्ध तो हमने न कभी सुना है और न कभी देखा है ॥ ६३ ॥ कुछ विचार करिये, हे देव ! अन्यथा जय होना कठिन है, हे स्वामिन् ! आप ही ब्रह्माण्डके रक्षक हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-इस वचनको सुन कर परम क्रोधी रुद्रको कोप चढ़ा और वह अपने गणोंको साथमें लेकर तहाँ ही पहुँच गए ॥ ६५ ॥ तब सारी देवसेना भी चक्रधारी विष्णुको साथमें लेकर बड़ा भारी उत्सव करती हुई शिवके पास पहुँच गई ॥ ६६ ॥ हे नारद ! इसी समय तुमने देवदेव महेश्वरसे भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा, कि-॥ ६७ ॥ नारदजीने कहा, कि- हे देवदेव महादेव ! हे विभो ! आप सर्वव्यापी हैं, अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेमें चतुर हैं ॥ ६८ ॥ हे शङ्कर ! आपने इस गणको बड़ा भारी बल देकर और देवताओंको गर्व देकर महालीला की और अपने गणोंके गर्वको दूर कर दिया है ॥ ६९ ॥ हे प्रभो ! आप सबका गर्व गञ्जन करने वाले हैं और स्वतन्त्र हैं, इस समय आपने अपने आप ही लोकमें यह अद्भुत बल दिखाया है ॥ ७० ॥ परन्तु हे भक्तवत्सल ! इस समय इस लीलाको न

भक्तवत्सल । स्वगणानमरांश्चापि सुसम्मान्याभिवर्द्धय ॥ ७१ ॥ इमं न खेलयेदानीं जहि ब्रह्मपदप्रद । इत्युक्त्वा नारद त्वं वै ह्यन्तर्द्धानं गतस्तदा ॥ ७२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्ध-वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच । इति श्रुत्वा महेशानो भक्तानुग्रहकारकः । त्वद्वाचा युद्धकामोऽभूत्तेन बालेन नारद ॥ १ ॥ विष्णुमाहूय सम्मन्त्र्य बलेन महता युतः । सामरस्सम्मुखस्तस्याप्यभूद्देवस्त्रिलोचनः ॥ २ ॥ देवाश्च युयुधुस्तेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । महाबला महोत्साहाश्शिवसद्दृष्टिलोकिताः ॥३॥ युयुधेऽथ हरिस्तेन महाबलपराक्रमः । महादिव्यायुधो वीरः प्रवणः शिवरूपकः ॥ ४ ॥ यष्ट्या गणाधिपस्सोऽथ जघानामरपुङ्गवान् । हरिं च सहसा वीरश्शक्तिदत्तमहाबलः ॥ ५ ॥ सर्वेऽमरगणास्तत्र विकुण्ठितबला मुने । अभूवन् विष्णुना तेन हता यष्ट्या पराङ्मुखाः ॥६॥ शिवोऽपि सह सैन्येन युद्धं कृत्वा चिरं मुने । विकरालं च तं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥७॥ छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुनः । इति बुद्धिं समास्थाय सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ शिवे दृष्टे तदा देवे निर्गुण

करिये और अपने गणोंका और देवताओंका सम्मान कर उनको बढ़ाइये ७१ हे ब्रह्मपदको देने वाले ! इस समय इस खेलको न खेलिये और इसको मारिये । हे नारद ! उस समय तुम इस प्रकार कह कर अन्तर्धान होगए ॥ ७२ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं, कि–हे नारद ! भक्तों पर अनुग्रह करने वाले महादेव तुम्हारे इस वचनको सुन कर उस बालकसे युद्ध करनेके लिये उद्यत होगए १ उन्होंने विष्णुको बुला कर मन्त्रणा की और बड़ी भारी सेना तथा देवताओं को साथमें लेकर वह त्रिलोचन देव उसके अभिमुख होगए ॥ २ ॥ फिर शिवकी सुदृष्टि पड़ने पर सब देवता महाबली और महोत्साही हो शिवके चरणकमलका स्पर्श करके युद्ध करने लगे ॥३॥ तदनन्तर शिवके ही दूसरे रूप, महादिव्य आयुध वाले, महाबली हरि उससे युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ तब शक्तियोंने जिनको महाबल देदिया है ऐसे गणेशने श्रेष्ठ २ देवताओंको लकड़ीसे मारा और हरिके भी लकड़ी मारी ॥ ५ ॥ हे मुने ! उस समय विष्णुसहित सब देवताओंका बल कुण्ठित होगया और गणेशके लकड़ी फटकारने पर वे सब पराङ्मुख होगए ॥ ६ ॥ हे मुने ! इधर शिव भी अपनी सेनाको साथ ले चिरकाल तक उसके साथ युद्ध कर उसको विकराल देख कर बड़े विस्मित हुए ॥ ७ ॥ और इसको छलसे ही मारा जा सकता है, दूसरी प्रकार यह नहीं मारा जा सकता, यह विचार कर वह सेनाके बीचमें

गुणरूपिणि । विष्णौ चैवाथ संग्रामे आयाते सर्वदेवताः ॥९॥ गणाश्चैव महेशस्य महाहर्षं तदा ययुः । सर्वे परस्परं प्रीत्या मिलित्वा चक्रुरुत्सवम् ॥१०॥ अथ शक्तिसुतो वीरो वीरगत्या स्वयष्टितः । प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्वसुखावहम् ॥ ११ ॥ अहञ्च मोहयिष्यामि हन्यतां च त्वया विभो । छलं विना न वध्योऽयं तामसोऽयं दुरासदः ॥ १२ ॥ इति कृत्वा मतिं तत्र सुसम्मन्त्र्य च शम्भुना । आज्ञां प्राप्याऽभवच्छैवीं विष्णुर्मोहपरायणः ॥ १३ ॥ शक्तिद्वयं तथा लीनं हरिं दृष्ट्वा तथाविधम् । दत्त्वा शक्तिबलं तस्मै गणेशायाभवन्मुने ॥ १४ ॥ शक्तिद्वयेऽथ संलीने यत्र विष्णुः स्थितस्स्वयम् । परिघं क्षिप्रवांस्तत्र गणेशो बलवत्तरः ॥१५॥ कृत्वा यत्नं किमप्यत्र वंचयामास तद्गतिम् । शिवं स्मृत्वा महेशानं स्वप्रभुं भक्तवत्सलम् ॥ १६ ॥ एकतस्तन्मुखं दृष्ट्वा शङ्करोऽप्याजगाम ह स्वत्रिशूलं समादाय सुक्रुद्धो युद्धकाम्यया ॥१७॥ स ददर्शागतं शम्भुं शूलहस्तं महेश्वरम् । हन्तुकामं निजं वीरश्शिवापुत्रो महाबलः ॥ १८ ॥ शक्त्या जघान तं हस्ते स्मृत्वा मातृपदांबुजम् । स गणेशो महावीरश्शिवाशक्तिप्रवर्द्धितः ॥१९॥ त्रिशूलं पतितं हस्ताच्छिवस्य परमात्मनः । दृष्ट्वा सद्गतिकस्तं वै पिनाकं धनुराददे ॥ २० ॥ तमप्यपातयद् भूमौ

खड़े होगए ॥ ८ ॥ निर्गुण गुणरूपी शिवके दीखने पर और विष्णुके भी संग्राममें आने पर सब देवता और महेशके गण बड़े हर्षमें भर गए और परस्पर मिल कर उत्सव मनाने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ तब वीर शक्तिसुतने वीरगतिका आश्रय ले पहिले अपनी लकड़ीसे सबको सुख देने वाले विष्णुकी पूजा की ॥११॥ तब मोहमें पड़े हुए विष्णुने शिवसे मन्त्रणा की, कि—"हे विभो ! मैं इसको मोहित करता हूँ, तब आप इसको मार डालें, क्योंकि—यह दुरासद तमोगुणी है, छलके बिना इसको नहीं मारा जासकता" तदनंतर उन्होंने शिवकी आज्ञा पा ली ॥ १२ ॥ १३ ॥ हरिको ऐसा करते हुए देख कर वे दोनों शक्तियें गणेशको अपना बल देकर लीन होगईं ॥ १४ ॥ दोनों शक्तियोंके लीन होने पर, जहाँ पर विष्णु खड़े थे, तहाँ पर ही बलवान् गणेशने परिघ फैंका ॥१५॥ फिर वह अपने प्रभु भक्तवत्सल महेशान शिवका स्मरण कर कुछ यत्न करके गणेशको ठगना चाहने लगे ॥ १६ ॥ तब एक ओरसे शम्भु उनके मुखकी ओर देख क्रुद्ध हो युद्धकी कामनासे त्रिशूल लेकर चढ़ दौड़े ॥ १७ ॥ तब उस महाबली वीर शिवापुत्रने अपनेको मारनेकी इच्छासे आए हुए शूलधारी महेश्वरको देखा ॥ १८ ॥ तब शिवाकी शक्तिसे बढ़े हुए उन महावीर गणेशने माताके चरणोंका स्मरण करके उनके हाथमें शक्ति मारी ॥१९॥ तब परमात्मा शिवके हाथसे त्रिशूल गिर पड़ा, यह देख श्रेष्ठ रक्षक शिवने पिनाक नामक धनुषको उठा लिया २०

परिघेण गणेश्वरः । हताः पञ्च तथा हस्ताः पञ्चभिश्शूलमाददे ॥ २१ ॥ अहो दुःखतरं नूनं सञ्जातमधुना मम । भवेत् पुनर्गणानां किं भवाचारी जगाविति ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरः परिघेण गणेश्वरः । जघान सगणान् देवान् शक्तिदत्तबलान्वितः ॥ २३ ॥ गता दश दिशो देवास्सगणाः परिघार्दिताः । न तस्थुस्समरे केऽपि तेनाद्भुतप्रहारिणा विष्णुमश्च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाब्रवीत् । महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः । दानवा बहवो दैत्या यक्षगंधर्वराक्षसाः ॥ २६ ॥ नैतेन गणनाथेन समतां यांति केऽपि च । त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजोरूपशौर्यगुणादिभिः एवं संब्रुवतेऽमुष्मै परिघं भ्रामयन् स च । चिक्षेप विष्णवे तत्र शक्तिपुत्रो गणेश्वरः२८ चक्रं गृहीत्वा हरिणा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । तेन चक्रेण परिघो द्रुतं खण्डीकृतस्तदा खंडं तु परिघस्यापि हरये प्राक्षिपद्गणः । गृहीत्वा गरुडेनापि पक्षिणा विफलीकृतः ।३०। एवं विचरितं कालं महावीरावुभावपि । विष्णुश्चापि गणश्चैव युयुधाते परस्परम् ।३१। पुनर्वीरवरः शक्तिसुतस्स्मृतशिवो बली । गृहीत्वा यष्टिमतुलां तया विष्णुं जघान ह ३२

गणेश्वरने परिघ मार कर उसको भी भूमि पर गिरा दिया, और पाँच हाथों को घायल कर दिया, तब महेश्वरने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लेलिये ।२१। और वह सांसारिक आचारका पालन करनेवाले महेश कहने लगे, कि—अहो! जब मुझे ही इतना दुःख भोगना पड़ रहा है, तो मेरे गणों पर न जाने कैसी बीतती होगी ।।२२।। इसी समय शक्तिने जिनको बल प्रदान कर दिया है ऐसे वीर गणेशने परिघसे गण और देवताओंको पीटना आरम्भ कर दिया २३ तब परिघसे पीड़ित होकर देवता और गण दशों दिशाओंमें भागने लगे और उन अद्भुत प्रहार करनेवाले गणेशके सामने कोई भी खड़ा न रह सका २४ विष्णु उन गणेशको देखकर कहने लगे, कि-यह धन्य हैं, यह महाबली, महाशूर और रणप्रिय हैं ।।२५।। मैंने बहुतसे देवता देखे हैं तथा बहुतसे दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी देखे हैं ।। २६ ।। परन्तु सारी त्रिलोकी में उनमेंसे कोई भी तेज रूप शूरता गुण आदिमें इन गणनाथकी बराबरी नहीं कर सकते ।।२७।। विष्णु ऐसा कह ही रहे थे, कि—शक्तिपुत्र गणेशने परिघ घुमा कर विष्णुके मारा ।। २८ ।। तब हरिने शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके चक्र उठा लिया लिया और उस चक्रसे शीघ्र ही परिघके दो टुकड़े कर डाले ।। २९ ।। तब गणेशने उस खण्डित परिघको उठा कर भी विष्णु पर फेंका, कि—गरुड़ने पकड़ कर निष्फल कर दिया ।। ३० ।। इस प्रकार विष्णु और गणेश दोनों महावीर परस्पर युद्ध करके समयको काटने लगे ।। ३१ ।। फिर वीरवर शक्तिसुतने शिवाका स्मरण कर अपनी अनुपम

असिषह्यप्रहारं तं स भूमौ निपपात ह । द्रुतमुत्थाय युयुधे शिवापुत्रेण तेन वै ॥ ३३ ॥
एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे । आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृन्तत ३४
छिन्ने शिरसि तस्यैव गणनाथस्य नारद । गणसैन्यं देवसैन्यमभवच्च सुनिश्चलम् ३५
नारदेन त्वयाऽऽगत्य देव्यै सर्वं निवेदितम् । मानिनि श्रूयतां मानस्त्याज्यो नैव त्वयाधुना
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितस्तत्र नारद त्वं कलिप्रियः । अविकारी सदा शंभुर्मनोगतिकरो मुनिः ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणेशयुद्ध-
गणेशशिरश्छेदनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नारद उवाच । ब्रह्मन् वद महाप्राज्ञ तद्वृत्तान्तेऽखिले श्रुते । किमकार्षीन्महादेवी
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच । श्रूयतां मुनिशार्दूल कथयाम्यद्य तद् ध्रुवम् ।
चरितं जगदंबाया यज्जातं तदनन्तरम् ॥२॥ मृदङ्गान्पटहांश्चैव गणाश्चावादयंस्तथा ।
महोत्सवं तदा चक्रुर्हते तस्मिन्गणाधिपे ॥३॥ शिवोऽपि तच्छिरश्छित्वा यावद्दुःखमुपा-
ददे । तावच्च गिरिजा देवी चुक्रोधाति मुनीश्वर ॥ ४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि हा
हा दुःखमुपागतम् । कथं दुःखं विनश्येतास्याऽतिदुःखं ममाधुना ॥५॥ मत्सुतो नाशित-

लकड़ी उठा कर उसका विष्णु पर प्रहार किया ॥ ३२ ॥ उस असह्य प्रहार से वे भूमि पर गिर पड़े, और शीघ्र ही उठ कर उन शिवापुत्रसे लड़ने लगे ३३ इसी समय शूलपाणिने छिद्र पा उत्तरसे आ त्रिशूलसे गणेशके शिरको काट दिया ॥ ३४ ॥ हे नारद ! उन गणनाथके शिरके कटने पर गणोंकी और देवताओंकी सेना निश्चल होगई ॥३५॥ हे नारद ! फिर तुमने देवीके पास आकर सब वृत्तान्त कह दिया और कहा, कि-हे मानिनि ! इस समय तुम मानको मत त्यागना ॥ ३६ ॥ हे नारद ! तुम निर्विकार हो, सदा शम्भुके मनकी गतिके अनुसार काम करते हो, इसके अतिरिक्त तुम्हें कलह भी प्रिय है,इस लिये तुम यह बता कर अन्तर्धान होगए ।३७। सोलहवाँ अध्याय समाप्त

नारदजीने कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् ब्रह्मन् ! इस सम्पूर्ण वृत्तान्तके सुनने पर महादेवीने क्या किया, इसको मैं पूर्णरूपसे सुनना चाहता हूँ ॥१॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मुनिशार्दूल ! इसके उपरान्त जगदम्बाका जो चरित हुआ उसको कहता हूँ ॥ २ ॥ उन गणाधिपके मारे जाने पर गण मृदङ्गों को और नगाड़ोंको बजा कर बड़ा उत्सव मनाने लगे ॥ ३ ॥ और हे मुनीश्वर ! शिव भी उनका शिर काट कर जब दुःखित होनेको हुए, कि-उसी समय जगदम्बाको भी क्रोध चढ़ा ॥ ४ ॥ "मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? हाय ! बड़ा दुःख आ पड़ा, यह मेरा बड़ा भारी दुःख इस समय कैसे नष्ट हो ॥ ५ ॥ सब देवताओंने और गणोंने मेरे पुत्रको मार डाला, इस लिये

अद्य देवैस्सर्वैर्गणैस्तथा । सर्वांस्तान्नाशयिष्यामि प्रलयं वा करोम्यहम् ॥ ६ ॥ इत्येवं दुःखिता सा च शक्तीश्शतसहस्रशः । निर्ममे तत्क्षणं क्रुद्धा सर्वलोकमहेश्वरी ॥ ७ ॥ निर्मितास्ता नमस्कृत्य जगदम्बां शिवां तदा । जाज्वल्यमाना ह्यवदन्मातरादिश्यतामिति ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुशक्तिस्सा प्रकृतिः क्रोधतत्परा । प्रत्युवाच तु तास्सर्वा महामाया मुनीश्वर ॥ ९ ॥ देव्युवाच । हे शक्तयोऽधुना देव्यो युष्माभिर्मन्निदेशतः । प्रलयश्चात्र कर्त्तव्यो नात्र कार्या विचारणा ॥१०॥ देवांश्चैव ऋषींश्चैव यक्षराक्षसकांस्तथा । अस्मदीयान्परांश्चैव सख्यो भक्षत वै हठात् ॥११॥ ब्रह्मोवाच । तदाज्ञप्ताश्च तास्सर्वाश्शक्तयः क्रोधतत्पराः । देवादीनां च सर्वेषां संहारं कर्तुमुद्यताः ॥ १२ ॥ यथा च तृणसंहारमनलः कुरुते तथा । एवं ताश्शक्तयस्सर्वास्संहारं कर्तुमुद्यताः ॥ १३ ॥ गणपो वाथ विष्णुर्वा ब्रह्मा वा शंकरस्तथा । इन्द्रो वा यक्षराजो वा स्कन्दो वा सूर्य एव वा ॥ १४ ॥ सर्वेषां चैव संहारं कुर्वन्ति स्म निरन्तरम् । यत्र यत्र तु दृश्येत तत्र तत्रापि शक्तयः ॥ १५ ॥ कराली कुब्जका खंजा लम्बशीर्षा ह्यनेकशः । हस्ते धृत्वा तु देवांश्च मुखे चैवाक्षिपंस्तदा ॥ १६ ॥ तं संहारं तदा दृष्ट्वा हरो ब्रह्मा तथा हरिः । इन्द्रादयोऽखिला देवा गणाश्च ऋषयस्तथा १७

मैं उन सबको नष्ट करूँगी, प्रलय मचा दूँगी ॥ ६ ॥ सब लोकोंकी महेश्वरीने इस प्रकार दुःखित हो क्रोधमें भर सैंकड़ों हजारों शक्तियोंको रच डाला ॥७॥ वे रची हुई दमकती हुई शक्तियें शिवा जगदम्बाको प्रणाम कर कहने लगीं, कि-मातः ! हमें क्या आज्ञा है ? ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर ! इस वचनको सुनकर कोपमें भरी हुई वह महामाया प्रकृति शम्भुशक्ति उनसे कहने लगी ॥ ९ ॥ देवीने कहा, कि-हे देवी शक्तियों ! तुम मेरी आज्ञासे प्रलय मचाओ और कुछ विचार मत करो ॥ १० ॥ हे सखियों ! तुम देवता और ऋषि, यक्ष और राक्षस, अपने और पराये सबका बलपूर्वक भक्षण करो ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-इस प्रकार आज्ञा पाने पर वे सब शक्तियें क्रोधमें देवता आदि सबका संहार करनेके लिये उद्यत होगईं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अग्नि घास फूँसका संहार करता है, इसी प्रकार वे शक्तियें संहार करनेके लिये उद्यत होगईं ॥ १३ ॥ गणोंके स्वामी, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, कुबेर, स्कन्द वा सूर्य सबको ही वे पीड़ित करने लगीं जहाँ देखो तहाँ कराली, कुब्जका (कुबड़ी), खञ्जा (लँगड़ी) और लम्बे शिर वाली अनेक शक्तियें हाथसे देवताओंको पकड़ मुखमें डालती हुई दीखती थी ॥ १४-१६ ॥ उस संहारको देख कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता और गण तथा ऋषि सन्देहमें पड़ गए, कि-यह देवी क्या असमयमें ही सबका संहार कर डालेंगी ? और उन्होंने अपने जीवनकी

किं करिष्यति सा देवी संहारं वाप्यकालतः । इति संशयमापन्ना जीवनाशाहताऽभवन् ॥१८। सर्वे च मिलिताश्चेमे किं कर्त्तव्यं विचिन्त्यताम् । एवं विचारयन्तस्ते तूर्णमूचुः परस्परम् ॥ १९ ॥ यदा च गिरिजा देवी प्रसन्ना हि भवेदिह । तदा चैव भवेत्स्वास्थ्यं नान्यथा कोटि यत्नतः ॥ २० ॥ शिवोऽपि दुःखमापन्नो लौकिकीं गतिमाश्रितः । मोहयन्सकलांस्तत्र नानालीलाविशारदः ॥२१॥ सर्वेषां चैव देवानां कटिर्भग्ना यदा तदा । शिवा क्रोधमयी साक्षाद्गन्तुं न पुर उत्सहेत् ॥ २२ ॥ स्वीयो वा परकीयो वा देवो वा दानवोऽपि वा । गणो वापि च दिक्पालो यक्षो वा किन्नरो मुनिः ॥ २३ ॥ विष्णुर्वापि तथा ब्रह्मा शंकरश्च तथा प्रभुः । न कश्चिद्गिरिजाग्रे च स्थातुं शक्तोऽभवन्मुने ।२४॥ जाज्वल्यमानं तत्तेजस्सर्वतोदाहि तेऽखिलाः । दृष्ट्वा भीततरा आसन् सर्वे दूरतरं स्थिताः ॥ २५ ॥ एतस्मिन्समये तत्र नारदो दिव्यदर्शनः । आगतस्त्वं मुने देवगणानां सुखहेतवे ॥२६॥ ब्रह्माणं मां भवं विष्णुं शंकरं च प्रणम्य सः । समागत्य मिलित्वोचे विचार्यं कार्यमेव वा ॥ २७ ॥ सर्वे सम्मन्त्रयांचक्रुस्त्वया देवा महात्मना । दुःखशांतिः कथं स्याद्धै समूचुस्तत एव ते ॥ २८ ॥ यावच्च गिरिजा देवी कृपां नैव करिष्यति । तावन्नैवं सुखं स्याद्धै

आशा छोड़ दी ॥ १७ ॥ १८ ॥ फिर सब मिल कर विचार करने लगे, कि अब क्या करना चाहिये ? इस प्रकार विचार कर वे परस्परमें कहने लगे, कि-१९ यदि गिरिजादेवी प्रसन्न हों तभी हम स्वस्थ होसकते हैं अन्यथा करोड़ों यत्न करने पर हम स्वस्थ नहीं होसकते ॥ २० ॥ अनेक लीलाओंको करनेमें चतुर शिव भी इस समय लौकिक गतिका आश्रय लेकर सबको मोहित करते हुए दुःखमें मग्न होगए हैं ॥ २१ ॥ जहाँ तहाँ सब देवताओंकी कमर टूट गई है, इस समय शिवा मूर्तिमती क्रोध बन रही हैं, किसीको भी उनके सामने साहस नहीं होरहा है २२ इस प्रकार अपना वा पराया, देवता वा दानव, गण वा दिक्पाल, यक्ष किन्नर वा मुनि, विष्णु वा ब्रह्मा तथा प्रभु शंकर कोई भी गिरिजाके सामने खड़ा होनेको समर्थ नहीं हुआ ।२३।२४। वे सब उग्र चारों ओरसे दुःख देनेवाले दमकते हुए शक्तिरूप तेजको दमकता हुआ देखकर डरगए और भागकर बड़ी दूर खड़े होगए इसी समय हे मुने ! दिव्य दृष्टि वाले तुम नारद देवताओंको सुख देनेके लिये तहाँ पहुँच गए ॥२६॥ और मुझ ब्रह्माको, विष्णुको तथा भव शंकरको प्रणाम कर और सबसे मिल कर कहने लगे, कि-अब क्या विचारना चाहिये और क्या करना चाहिये ? ॥ २७ ॥ उस समय सब देवता तुम महात्माके साथ विचार करने लगे, कि—दुःखकी शान्ति किस प्रकार हो ? फिर सबने कहा, कि-॥ २८ ॥ जब तक गिरिजा देवी कृपा नहीं करेंगी, तब तक सुख

नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥ ऋषयो हि त्वद्वाद्याश्च गतास्ते वै शिवान्तिकम् । सर्वे प्रसादयामासुः क्रोधशान्त्यै तदा शिवाम् ॥ ३० ॥ पुनः पुनः प्रणेमुश्च स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकशः । सर्वे प्रसादयन्प्रीत्या प्रोचुर्देवगणाज्ञया ॥ ३१ ॥ सुरर्षय ऊचुः । जगदम्ब नमस्तुभ्यं शिवायै ते नमोऽस्तु ते । चंडिकायै नमस्तुभ्यं कल्याण्यै ते नमोऽस्तु ते ॥ ३२ ॥ आदिशक्तिस्त्वमेवाम्ब सर्वसृष्टिकरी सदा । त्वमेव पालिनी शक्तिस्त्वमेव प्रलयंकरी ॥ ३३ ॥ प्रसन्ना भव देवेशि शांतिं कुरु नमोऽस्तु ते । सर्वं हि विकलं देवि त्रिजगत्तव कोपतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोवाच । एवं स्तुता परा देवी ऋषिभिश्च त्वदादिभिः । क्रुद्धदृष्ट्या तदा तांश्च किंचिन्नोवाच सा शिवा ॥ ३५ ॥ तदा च ऋषयस्सर्वे नत्वा तच्चरणांबुजम् । पुनरूचुः शिवां भक्त्या कृतांजलिपुटाः शनैः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः । क्षम्यतां क्षम्यतां देवि संहारो जायतेऽधुना । तव स्वामी स्थितश्चात्र पश्य पश्य तमम्बिके ॥ ३७ ॥ वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा । प्रजाश्च भवदीयाश्च कृतांजलिपुटाः स्थिताः ॥ ३८ ॥ क्षंतव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि । सर्वे हि विकलाश्चाद्य शांतिं तेषां शिवे कुरु ॥ ३९ ॥ ब्रह्मो-

नहीं मिल सकता, इसमें और कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ तब सब ऋषि तुमको लेकर शिवाके समीप चले और क्रोधशान्तिके लिये शिवाको प्रसन्न करने लगे ॥ ३० ॥ उन्होंने अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति कर शिवाको वारंवार प्रणाम किया और प्रीतिपूर्वक उनको प्रसन्न करने लगे और देवताओंकी आज्ञासे कहने लगे, ॥ ३१ ॥ देवर्षियोंने कहा, कि—हे जगदम्बे ! आपके लिये प्रणाम है, शिवाके लिये प्रणाम है, चण्डिकाके लिये प्रणाम है, कल्याणीके लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे मातः ! आप ही सब सृष्टिको रचने वाली आदिशक्ति प्रकृति हैं, आप ही पालिका शक्ति हैं और आप ही प्रलय करने वाली हैं ॥ ३३ ॥ हे देवेशि ! प्रसन्न हूजिये ! हम आपको नमस्कार करते हैं, हे देवि ! आपके कोपसे सारी त्रिलोकी विकल होरही है, अतः अब शान्ति करिये ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—इस प्रकार नारद आदि ऋषियोंके स्तुति करने पर भी शिवा देवी क्रोधभरी दृष्टिके कारण उनसे कुछ न कह सकीं ॥ ३५ ॥ तब सब ऋषि उनके चरणकमलोंमें प्रणाम कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ कर फिर कहने लगे ॥ ३६ ॥ ऋषियोंने कहा, कि–हे देवि ! संहार होरहा है, अतः क्षमा करो ! क्षमा करो !! शिव तुम्हारे स्वामी हैं, तथा सब ब्रह्मा विष्णु आदि देवता और प्रजा भी आपकी ही हैं, ये सब हाथ जोड़ कर आपके सामने खड़े हैं, हे परमेश्वरी ! सबके अपराधोंको क्षमा करिये, हे शिवे ! ये सब विकल होरहे हैं शान्ति करिये ॥ ३७–३९ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–

वाच । इत्युक्त्वा ऋषयस्सर्वे सुदीनतरमाकुलाः । संतस्थिरे चंडिकाग्रे कृतांजलि-पुटास्तदा ॥ ४० ॥ एवं श्रुत्वा वचस्तेषां प्रसन्ना चंडिकाऽभवत् । प्रत्युवाच ऋषींस्तान्वै करुणाविष्टमानसा ॥ ४१ ॥ देव्युवाच । मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि । यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति ॥ ४२ ॥ सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि । तदा शांतिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्तास्ते तदा सर्वे ऋषयो युष्मदादयः । तेभ्यो देवेभ्य आगत्य सर्वं वृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४४ ॥ ते च सर्वे तथा श्रुत्वा शंकराय न्यवेदयन् । नत्वा प्रांजलयो दीनाः शक्रप्रभृतयस्सुराः ॥ ४५ ॥ प्रोवाचेति सुराञ्छ्रुत्वा शिवश्चापि तथा पुनः । कर्त्तव्यं च तथा सर्वलोकस्वास्थ्यं भवेदिह ॥ ४६ ॥ उत्तरस्यां पुनर्यायात् प्रथमं या मिलेदिह । तच्छिरश्च समाहृत्य योजनीयं कलेवरे ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच । ततस्तैस्तत्कृतं सर्वं शिवाज्ञाप्रतिपालकैः । कलेवरं समानीय प्रक्षाल्य विधिवच्च तत् ॥ ४८ ॥ पूजयित्वा पुनस्ते वै गताश्चोदङ्मुखास्तदा । प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ॥ ४९ ॥ तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् । संयोज्य देवतास्सर्वाः शिवं विष्णुं विधिं तदा ॥५०॥ प्रणम्य वचनं प्रोचुर्भवमुक्तं

सब ऋषि इस प्रकार कह बड़े दीन और व्याकुल हो चण्डिकाके आगे हाथ जोड़ कर खड़े होगए ॥ ४० ॥ उनके इस वचनको सुन कर चण्डिका प्रसन्न होगई और चित्तके करुणासे भर जाने पर उन सब ऋषियोंसे कहने लगीं ४१ देवीने कहा, कि—यदि मेरा पुत्र जीवित होजाय, तो संहार नहीं होगा, यदि वह तुम्हारा पूज्य हो और तुम सब उसको अपना अध्यक्ष मानो तो शान्ति होसकती है अन्यथा संसारमें शान्ति नहीं फटक सकती ॥४२॥४३॥ ब्रह्माजी ने कहा, कि—इस प्रकार कहने पर नारद आदि ऋषियोंने देवताओंसे सारा वृत्तान्त कह दिया ॥ ४४ ॥ इस बातको सुन इन्द्र आदि देवताओंने दीन हो हाथ जोड़ शंकरसे सब बात कही ॥ ४५ ॥ शिवने यह बात सुन कर कहा, कि-संसारकी स्वास्थ्यकामनाके लिये ऐसा ही होना चाहिये ॥ ४६ ॥ अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो पहिले मिले, उसके शिरको काट कर उस शरीर पर जोड़ देना चहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—तब शिवकी आज्ञाका पालन करने वाले गणोंने उस शरीरको लाकर विधिविधान से प्रक्षालित किया और उसका पूजन कर उत्तरकी ओर मुख कर चल दिये, तहाँ उन्हें एक दाँतवाला हाथी पहिले मिला ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उसके मस्तकको लाकर उन्होंने उसे धड़के साथ जोड़ दिया । तदनन्तर देवताओंने उस शिरको धरनेके अनन्तर शिव विष्णु और ब्रह्माजीको प्रणाम

कृतं च नः । अनन्तरं च तत्कार्यं भवताद्भवशेषितम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच । ततस्ते तु विरेजुश्च पार्षदाश्च सुराः सुखम् । अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवोक्तं पर्यपालयन् ॥ ऊचुस्ते च तदा तत्र ब्रह्मविष्णुसुरास्तथा । प्रणम्येशं शिवं देवं स्वप्रभुं गुणवर्जितम् ॥ ५३ ॥ यस्मात्त्वत्तेजसस्सर्वे वयं जाता महात्मनः । त्वत्तेजस्तत्समायातु वेदमंत्राभियोगतः ॥ ५४ ॥ इत्येवमभिमन्त्रेण मन्त्रितं जलमुत्तमम् । स्मृत्वा शिवं समेतास्ते चिक्षिपुस्तत्कलेवरे ॥५५॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम् । तदोत्तस्थौ सुप्त इव स बालश्च शिवेच्छया ॥ ५६ ॥ सुभगस्सुन्दरतरो गजवक्त्रस्सुरक्तकः । प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः ॥ ५७ ॥ तं दृष्ट्वा जीवितं बालं शिवापुत्रं मुनीश्वर । सर्वे मुमुदिरे तत्र सर्वं दुःखं लयं गतम् ॥ ५८ ॥ देव्यै संदर्शयामासुः सर्वे हर्षसमन्विताः । जीवितं तनयं दृष्ट्वा देवी हृष्टतराभवत् ॥ ५९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नारद उवाच । जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे प्रजेश्वर । ततः किमभवत्तत्र कृपया तद्वदाधुना ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच । जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे मुनीश्वर ।

करके कहा, कि-हमारा जो काम था, वह तो हम कर चुके, अब आपका काम बाकी रहा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-शिवकी आज्ञाका पालन करने वाले देवताओंकी बातको सुन कर देवता और पार्षद बड़े सुखी हुए५२ फिर ब्रह्मा विष्णु और देवताओंने अपने गुणरहित प्रभु देव शिवको प्रणाम करके कहा, कि-॥ ५३ ॥ आप महात्माके ही तेजसे हम सब प्रकट हुए हैं, वही आपका तेज वेदमन्त्रोंके प्रभावसे इसमें प्रवेश करे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको देवताओंने शिवका स्मरण करते हुए उसके शरीर पर छिड़क दिया ।५५। उस जलका स्पर्श होते ही वह बालक चैतन्यसे सम्पन्न होकर जीवित होगया और शिवकी इच्छासे सोये हुएकी समान शीघ्र ही उठ बैठा ॥ ५६ ॥ उस समय वह बालक सुन्दर सुभग हस्तिमुख वाला, प्रसन्न मुख वाला, सुन्दर कान्ति वाला और ललित आकृति वाला (दीखने लगा) ५७ हे मुनीश्वर ! उस पार्वतीनन्दन बालकको जीवित हुआ देख कर सब प्रसन्न हुए और सारा दुःख मिट गया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर सबने हर्षमें भरकर देवीको दिखाया, पुत्रको जीवित हुआ देख कर देवी परम प्रसन्न हुई ॥ ५९ ॥

सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

नारदजीने कहा, कि-प्रजेश्वर ! जब अपने पुत्रको देवीने जीवित हुआ देख लिया, उसके उपरान्त जो घटना घटी हो, उसका आप वर्णन करिये १

यज्जातं तच्छृणुष्वाद्य वच्मि तं महदुत्सवम् ॥ २ ॥ जीवितस्स शिवापुत्रो निर्व्यग्रो विकृतो मुने । अभिषिक्तस्तदा देवैर्गणाध्यक्षैर्गजाननः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा स्वतनयं देवी शिवा हर्षसमन्विता । गृहीत्वा बालकं दोर्भ्यां प्रमुदा परिषस्वजे ॥ ४ ॥ वस्त्राणि विविधानीह नानालङ्करणानि च । ददौ प्रीत्या गणेशाय स्वपुत्राय मुदाम्बिका ५ पूजयित्वा तया देव्या सिद्धिभिश्चाप्यनेकशः । करेण स्पर्शितस्सोऽथ सर्वदुःखहरेण वै ॥६॥ पूजयित्वा सुतं देवी मुखमाचुम्ब्य शांकरी । वरान्ददौ तदा प्रीत्या जातस्त्वं दुःखितोऽधुना ॥ ७ ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना । सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः ॥ ८॥ आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि । तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः ॥ ९ ॥ पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च । नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः ॥ १० ॥ ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि । नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति ॥ ११ ॥ तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः । विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यंत्यसंशयम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा च तदा देवी स्वपुत्रं तं महेश्वरी । नानावस्तुभिरुत्कृष्टं पुन-

ब्रह्माजीने कहा, कि–हे मुनीश्वर ! गिरिजापुत्रके जीवित होने पर जब देवीने उनको जीवित देख लिया, उसके अनन्तर जो बड़ा भारी उत्सव हुआ था, उसको मैं कहता हूँ, सुनिये ॥ २ ॥ हे मुने ! जब वह भवानीनन्दन गजानन जीवित होगए, तब उन व्यग्रतारहित विकृत (हस्तिमस्तकरूप विकृति वाले) गजाननका देवताओंने और गणाध्यक्षोंने अभिषेक किया ॥ ३ ॥ अपने पुत्रको देख कर गिरिजा देवी हर्षमें भर गईं और भुजाओंसे पकड़ उस बालकका आलिङ्गन करने लगीं ॥ ४ ॥ फिर अम्बिकाने प्रसन्न हो अपने पुत्र गणेशको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण दिये ॥ ५ ॥ सिद्धियों ने और देवीने अनेक प्रकारसे उनका (पूजन) सत्कार कर अपने सब दुःखों को हरने वाले हाथसे उनका स्पर्श किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार देवीने पुत्रका सत्कार कर उनके मुखको चूम लिया और प्रीतिपूर्वक वर देकर कहा, कि–तुझे बड़े दुःख भोगने पड़े ॥ ७ ॥ हे बेटा ! अब तू धन्य है, कृतकृत्य है और अब तू सब देवताओंमें पहिले पूजा जाया करेगा और तुझ पर कभी दुःख नहीं पड़ेगा ॥ ८ ॥ इस समय तेरे मुख पर सिंदूर दीख रहा है, इस लिये सब मनुष्य तेरा सिंदूरसे पूजन किया करेंगे ॥ ९ ॥ जो पुरुष पुष्पोंसे चन्दन से, सुगंधिसे, नैवैद्यसे, आरतीसे, ताम्बूलसे, दानसे और परिक्रमा कर तथा प्रणाम कर तुम्हारा पूजन करेंगे, उनको सब सिद्धियें प्राप्त होंगी और उनके अनेक प्रकारके दुःख भी नष्ट होजावेंगे ॥ १०–१२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-

रप्यर्चयत्तथा ॥१३॥ ततस्स्वास्थ्यं च देवानां गणानां च विशेषतः। गिरिजा कृपया विप्र जातं तत्क्षणमात्रतः ॥ १४ ॥ एतस्मिंश्च क्षणे देवा वासवाद्याः शिवां मुदा। स्तुत्वा प्रसाद्य तं देवं भक्ता निन्युः शिवान्तिकम् ॥ १५ ॥ संस्थाप्य गिरिशं पश्चा-दुत्सङ्गे सन्न्यवेशयन्। बालकं तं महेशान्याह्नि जगत्सुखहेतवे ॥ १६ ॥ शिवोऽपि तस्य शिरसि दत्त्वा स्वकरपङ्कजम्। उवाच वचनं देवान् पुत्रोऽयमिति मेऽपरः ।१७। गणेशोऽपि तदोत्थाय नमस्कृत्य शिवाय वै। पार्वत्यै च नमस्कृत्य मह्यं वै विष्णवे तथा ॥ १८ ॥ नारदाद्यानृषीन्सर्वान्स त्वास्थाय पुरोऽब्रवीत्। क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चेदृशो नृणाम् ॥ १९ ॥ अहं च शंकरश्चैव विष्णुश्चैते त्रयस्सुराः। प्रत्यू-चुर्युगपत्प्रीत्या ददतो वरमुत्तमम् ॥२०॥ अथो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये। तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम् ॥ २१ ॥ वयं च प्राकृताश्चायं प्राकृतः पूज्य एव च। गणेशो विघ्नहर्ता हि सर्वकामफलप्रदः ॥ २२ ॥ एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः। वयं च पूजितास्सर्वे नायं चापूजितो यदा ॥ २३ ॥ अस्मि-

---

देवीने अपने पुत्रसे इस प्रकार कह कर अनेक प्रकारकी वस्तुएँ देकर फिर उनका सत्कार किया ॥ १३ ॥ हे विप्र! उस समय गिरिजाकी कृपासे देवता और गण स्वस्थ होगए ॥ १४ ॥ तदनन्तर इन्द्र आदि देवता प्रसन्नतामें भर शिवाकी स्तुति कर और उनको प्रसन्न कर उन गणेश देवको शिवजीके पास लेचले ॥ १५ ॥ वहाँ पहुँच कर उन्होंने उन त्रिलोकीको सुख देने वाले भवानी के बालकको शिवजीकी गोदमें बैठा दिया ॥ १६ ॥ तब शिव भी उसके मस्तक पर अपने करकमलको रख कर देवताओंसे कहने लगे, कि—यह मेरा दूसरा पुत्र है ॥१७॥ उस समय गणेशने भी उठ कर शिवजीको प्रणाम किया फिर उन्होंने पार्वतीको, ब्रह्माको, विष्णुको और नारद आदि सकल ऋषियों को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर कहने लगे, कि—अभिमानमें भर जाना मनुष्योंका स्वभाव है, अतः आप मेरे अपराधको क्षमा करना १८-१९ उस समय, मैंने, शंकरने और विष्णुने—इन तीनों देवताओंने उनको एक साथ ही प्रेममें भर उत्तम वर देते हुए कहा, कि—॥ २० ॥ जिस प्रकार त्रिलोकीमें हम तीनों पूजे जाते हैं, हे देवश्रेष्ठों! सबको इसी प्रकार इन गणनाथकी भी पूजा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ हम प्राकृत हैं (सत्त्व रज और तमः प्रधान हैं) और यह गणेश प्रकृतिका पुत्र है, अत एव पूज्य है, विघ्नों को दूर करने वाला है और सब कामनाओंको सफल करने वाला है ॥ २२ ॥ मनुष्योंको चाहिये, कि—पहिले इनकी पूजा कर बादको हमारी पूजा किया करें जो पहिले हमारी पूजा करेगा और इन गणपतिकी पूजा न करेगा, तो उस

अपूजिते देवाः परपूजाकृता यदि । तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा स गणेशानो नानावस्तुभिरादरात् । शिवेन पूजितः पूर्वं विष्णुनानु प्रपूजितः ॥ २५ ॥ ब्रह्मणा च मया तत्र पार्वत्या च प्रपूजितः । सर्वै- र्देवगणैश्चैव पूजितः परया मुदा ॥२६॥ सर्वैर्मिलित्वा तत्रैव ब्रह्मविष्णुहरादिभिः । स गणेशश्शिवातुष्ट्यै सर्वाध्यक्षो निवेदितः ॥२७॥ पुनश्चैव शिवेनास्मै सुप्रसन्नेन चेतसा । सर्वदा सुखदा लोके वरा दत्ता ह्यनेकशः ॥२८॥ शिव उवाच । हे गिरीन्द्र- सुतापुत्र सन्तुष्टोऽहं न संशयः । मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोपि नो भवेत् ।२९। बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः । शक्तिपुत्रस्सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी ॥ ३० ॥ त्वन्नाम विघ्नहंतृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति । मम सर्वगणाध्यक्षः संपूज्यस्त्वं भवाधुना ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वा शंकरेण पूजाविधिरनेकशः । आशिष- श्चाप्यनेका हि कृतास्तस्मिंस्तु तत्क्षणात् । ३२ ॥ ततो देवगणाश्चैव गीतं वाद्यं च नृत्यकम् । मुदा ते कारयामासुस्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ३३ ॥ पुनश्चैव वरो दत्तस्सुप्रसन्नेन शम्भुना । तस्मै च गणनाथाय शिवेनैव महात्मना ।।३४। चतुर्थ्यां

को उस पूजाका कोई फल नहीं मिलेगा, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये २४ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—इस प्रकार कह कर शिवने अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे आदरपूर्वक गणेशका पूजन किया—सत्कार किया, फिर विष्णुने भी उनका पूजन किया ॥ २५ ॥ फिर ब्रह्माजीने और विष्णुने उनका सत्कार किया फिर सब देवताओंने और गणोंने हर्षपूर्वक उनका सत्कार किया ॥ २६ ॥ उस समय ब्रह्मा विष्णु और हर सबने मिल कर भवानीको प्रसन्न करनेके लिये गणेशको सर्वाध्यक्ष घोषित कर दिया ॥ २७ ॥ इस प्रकार सबका अध्यक्ष पद देनेके अनन्तर शिवने फिर भी चित्तमें प्रसन्न होकर गणेशको सदा सुख देने वाले अनेक वर दिये ॥ २८ ॥ शिवने कहा, कि—हे गिरिराजकी पुत्री के पुत्र ! मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ, मेरे सन्तुष्ट होने पर तू जगत्को ही सन्तुष्ट हुआ समझ, कोई अब विरुद्ध नहीं होसकता ॥ २९ ॥ हे शक्तिपुत्र ! तूने बालक होने पर भी बड़ा भारी पराक्रम प्रकाशित किया था, इस लिये तू तेजस्वी होगा और सदा सुखी रहेगा ॥ ३० ॥ विघ्नोंको हरनेमें तेरा नाम श्रेष्ठ होगा, अब तू मेरे सब गणोंका अध्यक्ष बन, तू बड़ी भारी पूजा पानेका पात्र है ३१ शंकरने इस प्रकार कह कर अनेक विधियोंसे गणेशजीका सत्कार किया और उन्हें अनेक प्रकारके आशीर्वाद दिये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर देवताओंने गणोंने और अप्सराओंने आनन्दमें भर गाना बजाना और नाचना आरम्भ कर दिया ॥३३॥ महात्मा शिव शम्भुने प्रसन्न होकर गणनाथको फिर वर दिया,

त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर । असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे ३७ प्रथमे च तथा यामे गिरिजायास्सुचेतसः । आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा । व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्धय सुशोभनम् ॥३७॥ यावत्पुनस्समायाति वर्षान्ते च चतुर्थिका । तावद् व्रतं च कर्तव्यं तव चैव ममाज्ञया ॥ ३८ ॥ संसारे सुखमिच्छन्ति येऽतुलं चाप्यनेकशः । त्वां पूजयन्तु ते भक्त्या चतुर्थ्यां विधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ मार्गशीर्षे तथा मासे कृष्णे या वै चतुर्थिका । प्रातः स्नानं तदा कृत्वा व्रतं विप्रान्निवेदयेत् ॥ ४० ॥ दूर्वाभिः पूजनं कार्यमुपवासस्तथाविधः । रात्रेश्च प्रहरे जाते स्नात्वा संपूजयेन्नरः ॥ ४१ ॥ मूर्तिं धातुमयीं कृत्वा प्रवालसम्भवां तथा । श्वेतार्कसंभवां चापि मार्दवां निर्मितां तथा ॥ ४२ । प्रतिष्ठाप्य तदा तत्र पूजयेत्प्रयतः पुमान् । गंधैर्नानाविधैर्दिव्यैश्चन्दनैः पुष्पकैरिह ॥ ४३ ॥ वितस्तिमात्रा दूर्वा च त्र्यंगा वै मूलवर्जिता । ईदृशानां तद्दलानां शतेनैकोत्तरेण ह ॥ ४४ ॥ एकविंशतिकेनैव पूजयेत्प्रतिमां स्थिताम् । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैर्गणनायकम् ॥ ४५ ॥ ताम्बूलाद्यर्घसद्द्रव्यैः प्रणिपत्य स्तवैस्तथा । तं तत्र पूजयित्वेत्थं बालचन्द्रं च पूजयेत् ॥४६॥ पश्चाद्विप्रांश्च संपूज्य

कि—॥ ३४ ॥ हे गणेश्वर ! तुम भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थीके दिन शुभ चन्द्रमाको उदय होने पर उत्पन्न हुए हो ॥ ३५ ॥ गिरिजाके चित्तसे रात्रिके प्रथम याममें तुम्हारा रूप प्रकट हुआ है, इस लिये तुम्हारे उत्तम व्रत को सुशोभन, सब प्रकारकी सिद्धि पानेके लिये उसी दिनसे आरम्भ करके करना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जब तक वर्षके अन्तमें फिर वही चतुर्थी आवे, तब तक इस व्रतको मेरी आज्ञासे करना चाहिये ॥ ३८ ॥ जो पुरुष संसारमें अतुल सुख चाहें, वह चतुर्थीमें भक्तिपूर्वक तुम्हारा पूजन करें ॥ ३९ ॥ अघहनके महीनेके कृष्णपक्षकी जो चतुर्थी है उसमें प्रातःकाल स्नान करके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे, उपवास रखे और रात्रिका एक प्रहर होने पर स्नान करके दूब के नालोंसे गणेशजीका पूजन करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ धातुकी, मूँगोंकी, सफेद आककी अथवा मृत्तिकाकी मूर्ति बना कर प्रतिष्ठा करे और फिर अनेक प्रकार के दिव्य चन्दन गन्ध और पुष्पोंसे पूजन करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ दूब बारह अंगुलकी, जड़रहित और तीन अंग (गाँठ) वाली हो, ऐसी एकसौ एक दूबसे वा इक्कीस दूबोंसे प्रतिमाका पूजन करे तथा अनेक प्रकारकी धूप दीप नैवेद्य से गणनायकको पूजे ताम्बूल अर्घ आदिसे गणनायकका पूजन करके प्रणाम करे, स्तोत्रपाठ करे, इस प्रकार उनका पूजन करके फिर बालचन्द्रमाका पूजन करे ॥ ४४–४६ ॥ फिर आनन्दके साथ विप्रोंका सत्कार करके उनको मधुर

भोजयेन्मधुरैर्मुदा । स्वयं चैव ततो भुञ्ज्यान्मधुरं लवणं विना ॥ ४७ ॥ विसर्ज-
येत्ततः पश्चान्नियमं सर्वमात्मनः । गणेशस्मरणं कुर्यात्संपूर्णं स्याद् व्रतं शुभम् ॥
एवं व्रतेन संपूर्णे वर्षे जाते नरस्तदा । उद्यापनविधिं कुर्याद् व्रतसम्पूर्तिहेतवे ४६
द्वादश ब्राह्मणास्तत्र भोजनीया मदाज्ञया। कुम्भमेकं च संस्थाप्य पूज्या मूर्तिस्त्वदी-
यका ॥ ५० ॥ स्थण्डिलेऽष्टदलं कृत्वा तदा वेदविधानतः । होमश्चैवात्र कर्तव्यो
वित्तशाठ्यविवर्जितैः ॥ ५१ ॥ स्त्रीद्वयं च तथा चात्र बटुकद्वयमादरात् । भोज-
येत्पूजयित्वा तौ मूर्त्यग्रे विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ निशि जागरणं कार्यं पुनः प्रातः
प्रपूजयेत् । विसर्जनं ततश्चैव पुनरागमनाय च ॥ ५३ ॥ बालकाच्चाशिषो ग्राह्या-
स्स्वस्तिवाचनमेव च । पुष्पांजलिं प्रदद्याच्च व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ ५४ ॥ नमस्कारां-
स्ततः कृत्वा नानाकार्यं प्रकल्पयेत् । एवं व्रतं कृतं येन तस्येप्सितफलं भवेत् ॥५५॥
यो नित्यं श्रद्धया सार्द्धं पूजां चैव स्वशक्तितः । कुर्यात्तत्र गणेशान सर्वकाम-
फलाप्तये ॥५६॥ सिन्दूरैश्चन्दनश्चैव तंडुलैः केतकैस्तथा । उपचारैरनेकैश्च पूज-
येत्त्वां गणेश्वरम् ॥५७॥ एवं त्वां पूजयेयुर्ये भक्त्या नानोपचारतः । तेषां सिद्धि-

पदार्थ जिमावे, तदनन्तर लवणको छोड़कर मधुर पदार्थोंका ही अपने आप भी भोजन करे ॥ ४७ ॥ फिर गणेशजीका स्मरण करके अपने सब नियमोंका विसर्जन करे, इस प्रकार यह शुभ व्रत पूर्ण होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पूर्ण वर्ष तक व्रत करके, मनुष्य व्रतकी पूर्तिके लिये उद्यापन करे ॥ ४९ ॥ मेरी आज्ञासे उसमें बारह ब्राह्मणोंको जिमावे और गणेशकी मूर्तिको स्थापित कर उसके पास एक कुम्भको स्थापित कर उनका पूजन करे ॥ ५० ॥ फिर वेदके विधानसे अष्टदल वाली वेदी बना कर वित्तका संकोच न करके होम करे ॥ ५१ ॥ फिर मूर्तिके आगे दो स्त्रियोंको और दो बालकोंको आदर और पूजन करके जिमावे ॥ ५२ ॥ रात्रिमें जागरण करे, फिर प्रातःकालमें पूजन करके पुनरागमनके लिये विसर्जन करे, बालकोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे; स्वस्तिवाचन करावे और व्रतकी पूर्तिके उपलक्ष्यमें पुष्पाञ्जलि चढ़ावे ॥५३॥५४॥ फिर नमस्कार करके (अपने) अनेक प्रकारके (व्यावहारिक) कार्य करे, जो इस प्रकार व्रत करता है, उसको मनचाहा फल मिलता है ५५ हे गणेशान ! पुरुषको सब कामनाओंका फल पानेके लिये शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक नित्य गणेशका पूजन करना चाहिये ॥ ५६ ॥ सिंदूर, चन्दन, चावल और केतकीके पुष्पोंसे और अनेक प्रकारके उपचारोंसे तुम्हारी पूजा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके उपचारों से तुम्हारा पूजन करेंगे, उनको सिद्धि मिलेगी और उनके विघ्न दूर होजावेंगे ५८

भवेन्नित्यं विघ्ननाशो भवेदिह ॥५८॥ सर्वैर्वर्णैः प्रकर्त्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः। उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः ॥५९॥ यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्। अतः कामयमानेन तेन सेव्यस्सदा भवान् ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच। शिवेनैवं तदा प्रोक्तं गणेशाय महात्मने। तदा तैर्दैवतैश्चैव सर्वैश्च ऋषिसत्तमैः ।६१। तथेत्युक्त्वा तु तैस्सर्वैर्गणैश्शम्भुप्रियैर्मुने। पूजितो हि गणाधीशो विधिना परमेण सः ॥ ६२ ॥ ततश्चैव गणास्सर्वे प्रणेमुस्ते गणेश्वरम्। समानर्चुर्विशेषेण नानावस्तुभिरादरात् ॥ ६३ ॥ गिरिजायास्समुत्पन्नो यश्च हर्षो मुनीश्वर। चतुर्भिर्वदनैर्वै तमवर्ण्यं च कथं ब्रुवे ॥ ६४ ॥ देव दुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः। जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च पुष्पवर्षं पपात ह ॥ ६५ ॥ जगत्स्वास्थ्यं तदा प्राप गणाधीशे प्रतिष्ठिते। महोत्सवो महानासीत्सर्वं दुःखं लयं गतम् ॥ ६६ ॥ शिवाशिवौ च मोदेतां विशेषेणाति नारद। आसीत्सुमङ्गलं भूरि सर्वत्र सुखदायकम् ॥६७। ततो देवगणाः सर्वे ऋषीणां च गणास्तथा। समागताश्च ये तत्र जग्मुस्ते तु शिवाज्ञया प्रशंसन्तश्शिवां तत्र गणेशं च पुनः पुनः। शिवं चैव तथा स्तुत्वा कीदृशं युद्धमेत्र

सब वर्णोंको और विशेषतः स्त्रियोंको यह पूजा करनी चाहिये और जो उदय चाहने वाले राजे हों, उन्हें भी विशेषरूपसे यह पूजन करना चाहिये ॥५९॥ जो जिस वस्तुकी प्रार्थना करे, उसको वही वस्तु इस पूजनसे प्राप्त होजाती है, इस लिये जो कामना करे, उसको सदा तुम्हारी (गणेशजीकी) सेवा करनी चाहिये ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—शिवजीने जब इस प्रकार महात्मा गणेशके संबन्धमें कहा, तब हे मुने! शम्भुके प्रिय सकल देवता ऋषि और गणोंने कहा "तथास्तु" और बड़ी विधिके साथ गणेशजीका पूजन किया ॥६१ ॥ ६२॥ तदनन्तर सब गणोंने गणेशजीको प्रणाम किया और अनेक वस्तुओंसे आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ६३ ॥ हे मुने! उस समय गिरिजाको जो हर्ष हुआ, उसका चारों मुखोंसे भी वर्णन करना कठिन है, मैं उसका कैसे वर्णन करूँ ॥ ६४ ॥ उस समय देवता दुन्दुभियें बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, बड़े २ गंधर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं और पुष्पोंकी वृष्टि हुई ॥ ६५ ॥ इस प्रकार गणाधीशके प्रतिष्ठित होने पर जगत्में स्वास्थ्य फैल गया, बड़ा भारी उत्सव हुआ और सब दुख दूर होगया ॥ ६६ ॥ हे नारद! उस समय शिव और शिवा बड़े प्रसन्न हुए और सर्वत्र सुखदायक अनेक प्रकारके मङ्गल होने लगे ॥ ६७ ॥ तदनन्तर जो अभ्यागत देवता ऋषि और गण थे वे शिवकी आज्ञा पाकर लौटने लगे ६८ चलतेमें वे शिव शिवा और गणेशकी वारम्वार प्रशंसा कर रहे थे और स्तुति

च ॥ ६९ ॥ यदा सा गिरिजा देवी कोपहीना बभूव ह । शिवोऽपि गिरिजां तत्र पूर्ववत्संप्रपद्य ताम् ॥७०॥ चकार विविधं सौख्यं लोकानां हितकाम्यया । स्वात्मारामोऽपि परमो भक्तकार्योद्यतः सदा ॥ ७१ ॥ विष्णुश्च शिवमापृच्छ्य ब्रह्माहं तं तथैव हि । आगच्छाव स्वधामं च शिवौ संसेव्य भक्तितः ॥ ७२ ॥ नारद त्वं च भगवन्संगीय शिवयोर्यशः । आगमो भवनं स्वं च शिवौ पृष्ट्वा मुनीश्वर ॥७३॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै शिवयोर्यशः । भवत्पृष्टेन विघ्नेशयशस्संमिश्रमादरात् ।७४। इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः । सर्वमङ्गलसंयुक्तस्स भवेन्मङ्गलालयः ॥७५॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् । भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम् आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगो लभेत् । नष्टपुत्रा नष्टधना प्रोषिता च पतिं लभेत् ॥ ७७ ॥ शोकाविष्टश्शोकहीनस्स भवेन्नात्र संशयः । इदं गाणेशमाख्यानं यस्य गेहे च तिष्ठति ॥७८॥ सदा मंगलसंयुक्तस्स भवेन्नात्र संशयः । यात्राकाले

कर रहे थे और कैसा युद्ध हुआ इसका वर्णन करते हुए चले जारहे थे ६९ भक्तोंके कार्यके लिये उद्यत रहने वाले स्वात्माराम शिव भी, जब गिरिजा देवी कोपहीन होगई तब संसारके हितकी कामनासे गिरिजाके पास पहिलेकी समान ही पहुँच कर अनेक प्रकारके सुखवर्धन काम करने लगे ॥७०।७१॥ तदनन्तर मैं और विष्णु, शिव और भवानीकी भक्तिपूर्वक सेवा कर उनकी आज्ञा ले अपने २ स्थानोंको चल दिये ॥ ७२ ॥ और हे मुनीश्वर नारद ! शिव और शिवाके यशका गान कर और उनसे अनुमति लेकर अपने आश्रम को चल दिये थे ॥ ७२ ॥ मैंने तुम्हारे बूझनेसे यह गणेशजीके यशसे संमिश्रित भवानी—शंकरका चरित्र तुमसे कह दिया ॥ ७४ ॥ इस मङ्गलमय आख्यानको जो जितेन्द्रियताके साथ सुनता है, उसको सब प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं अधिक क्या, वह मङ्गलोंका भवन होजाता है ॥ ७५ ॥ (इसका श्रवण करनेसे) पुत्रहीनको पुत्रकी प्राप्ति होती है, निर्धनको धन मिलता है, भार्यार्थीको भार्या मिलती है और सन्तान चाहने वालेको सन्तान मिलती है।७६ रोगी आरोग्य होजाता है, दुर्भाग्य भाग्यवान् होजाता है और जिसका पुत्र और धन नष्ट होगया हो तथा पति परदेशको चला गया हो, उसको पति की प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ और शोकमग्न पुरुष शोकसे छूट जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं । यह गणेशजीका आख्यान जिसके घरमें रहता है वह सदा मंगलसम्पन्न रहता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । यात्राके समय पुण्याहवाचन में जो इस गणेशचरित्रको सावधानीके साथ सुनता है उसको गणेशजीके

च पुण्याहे यश्शृणोति समाहितः । सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥७९॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेश-
गणाधिपपदवीवर्णनं नामाष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

नारद उवाच । गणेशस्य श्रुता तात सम्यग्जनिरनुत्तमा । चरित्रमपि दिव्यं वै सुपराक्रमभूषितम् ॥ १ ॥ ततः किमभवत्तात तत्त्वं वद सुरेश्वर । शिवाशिवयशस्स्फीतमहानन्दप्रदायकम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच । साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना । श्रूयतां दत्तकर्णं हि वदयेऽहमृषिसत्तम ॥ ३ ॥ शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम् । दर्शंदर्शं च तल्लीलां समावहतां महत्प्रेम ॥ ४ ॥ पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत । सदा प्रीत्या मुदा चातिखेलनं चक्रतुस्सुतौ ५ तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर । महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्यां प्रचक्रतुः ॥ षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा । स्नेहो व्यवर्द्धत महाञ्शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ७ ॥ कदाचित्तौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ । शिवा शिवश्च देवर्षे सुविचारपरायणौ ॥ ८ ॥ शिवाशिवावूचतुः । विवाहयोग्यौ सञ्जातौ सुताविति च तावुभौ । विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम् ॥ ९ ॥ षण्मुखश्च प्रियतमो गणेशश्च तथैव च । इति चिन्तासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभूवतुः ॥ १० ॥ स्वपित्रो-

---

प्रसादसे सब अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं ।७८।७९। अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

नारदजीने कहा, कि—हे तात ! मैंने गणेशजीकी उत्पत्ति सुनी और उनके पराक्रमसे विभूषित उत्तम चरित्र भी सुना ॥ १ ॥ हे सुरेश्वर ! हे तात ! इसके बाद जो घटना घटी हो उस शिव और शिवाके विस्तृत यश वाली परमानन्ददायिनी घटनाका आप वर्णन करिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे मुनिश्रेष्ठ ! हे ऋषिसत्तम ! आपने चित्तमें करुणा करके अच्छी बात बूझी, अब तुम कान लगा कर सुनो मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! शिव और शिवा उन दोनों पुत्रोंकी लीलाओंको देख कर बड़े प्रेममें मग्न रहने लगे ।४। माता पिताके लालन करने पर बड़ा सुख होता था और वे दोनों पुत्र भी सदा प्रीतिमें भर बड़ा खेल खेलते थे ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! स्वामि कार्तिकेय और गणेश भी महाभक्तिमें भर कर शिव और भवानीकी सेवा करते रहते थे ।६। माता पिताका स्नेह, शुक्लपक्षमें बढ़ने वाले चन्द्रमाकी समान उन दोनों पर बढ़ता ही गया ॥ ७ ॥ हे देवर्षे ! एक समय प्रेममें मग्न भवानी और शंकर एकान्तमें बैठ कर विचारने लगे ॥ ८ ॥ ये दोनों पुत्र अब विवाहयोग्य होगए हैं, अब इन दोनोंका शुभ विवाह किस प्रकार करें ? इसका विचार करना चाहिये ॥ ९ ॥ हमें तो षडानन जैसा प्यारा है, तैसे ही गणेश भी प्यारा है, ऐसे विचारमें पड़ कर वह लीलावश आनन्दमग्न होगए ॥ १० ॥ हे मुने !

मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ । तदिच्छया विवाहार्थं बभूवतुरथो मुने ॥ ११ ॥
अहं च परिणेष्यामि ह्यहं चैव पुनः पुनः । परस्परं च नित्यं वै विवादे तत्परावुभौ
श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दम्पती जगतां प्रभू । लौकिकाचारमाश्रित्य विस्मयं परमं
गतौ ॥ १३ ॥ किं कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः । इति निश्चित्य ताभ्यां वै
युक्तिश्च रचिताद्भुता ॥ १४ ॥ कदाचित्समये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ । कथ-
यामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा ॥ १५ ॥ शिवाशिवावूचतुः । अस्माकं नियमः
पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम् । श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ॥१६॥
समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्र लभ्यते । तस्मात्पणः कृतश्शन्दः पुत्रयोरुभयो-
रपि ॥ १७ ॥ यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रांत्वा पूर्वमुपाव्रजेत् । तस्यैव प्रथमं कार्यो
विवाहश्शुभलक्षणः ॥१८॥ ब्रह्मोवाच । तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः ।
जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै ॥ १९ ॥ गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धि-
सत्तमः । सुबुद्ध्या संविचार्येति चित्त एव पुनः पुनः ॥ २० ॥ किं कर्तव्यं क्व
गन्तव्यं लंघितुं नैव शक्यते । क्रोशमात्रं गतः स्याद्वै गम्यते न मया पुनः ॥ २१ ॥

अपने माता पिताके मतको समझ कर उन दोनों पुत्रोंको भी विवाह करनेकी अभिलाषा होने लगी ॥ ११ ॥ वे दोनों (पहिले) मैं विवाह करूँगा, (पहिले) मैं विवाह करूँगा इस प्रकार आपसमें बहस करने लगे ॥१२॥ जगत् के स्वामी वे दोनों दम्पती उन दोनों बालकोंके वचनको सुन लौकिक आचारवश बड़े विस्मित हुए ॥ १३ ॥ अब क्या कर्तव्य है, इनका विवाह किस प्रकार करना चाहिये, इस बातका निश्चय करते२ उन्होंने एक अद्भुत युक्ति विचारी १४ एक समय उन्होंने दोनों पुत्रोंको बुलाकर इस प्रकार कहा, कि—१५ हे पुत्रों ! हमने पहिले एक नियम किया है, वह नियम तुम दोनोंको सुख देने वाला है, हे पुत्रों ! हम प्रीतिपूर्वक यथार्थ बात कहते हैं, सुनो ॥ १६ ॥ हमें दोनों पुत्र समान हैं, कोई भी विशेष नहीं है. इस लिये हमने तुम दोनों पुत्रोंके विवाहके लिये एक शुभदायक शर्त रखी है ॥ १७ ॥ वह यह है, कि-तुम दोनोंमेंसे जो कोई सारी पृथिवीकी परिक्रमा करके पहिले आजावेगा, उसका ही विवाह पहिले होगा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—उनके इस वचनको सुन कर महाबली षडानन मन्दराचल परसे पृथिवीकी परिक्रमा करनेके लिए फुर्तीसे चल दिये ॥१९॥ परन्तु बुद्धिमान् गजानन तो वहीं खड़े रहे और अपनी बुद्धिसे चित्तमें वारम्वार विचारने लगे ।२०। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ, मुझसे तो परिक्रमा नहीं की जा सकेगी, मुझसे कोसभर चलनेके बाद ही फिर न चला जायगा २१ फिर इस पृथिवीको लाँघ (नेके लिये चल) कर मैं कैसे सुख पासकूँगा ?

किं पुनः पृथिवीमेतां क्रांत्वा चोपार्जितं सुखम् । विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार शृणुष्व तत् ॥ २२ ॥ स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं गृहम् । उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः ॥ २३ ॥ गणेश उवाच । आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह । भवंतौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ । अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ॥२५॥ तेनाथ पूजितौ तौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः । एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः ॥ २६ ॥ बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः । स्तुत्वा बहुतिथस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ ॥ २७ ॥ गणेश उवाच । भो मातर्भो पितस्त्वं च शृणु मे परमं वचः । शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहश्शोभनो मम ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः । महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ॥ २९ ॥ शिवाशिवावूचतुः । प्रक्रामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् । कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् । उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ॥ ३१ ॥ गणेश उवाच । भो मातर्भो पित-

---

इस प्रकार विचार कर गणेशजीने जो कुछ किया उसको तुम सुनो ।। २२ ।। वह स्नान करके अपने घरमें आ माता पितासे कहने लगे, कि—हे मातः ! हे पितः ! मैंने आपकी पूजा करनेके विचारसे यहाँ दो आसन बिछा दिये हैं, आप इन पर बैठ कर मेरे मनोरथको पूर्ण करिये ।। २३ ।। २४ ।। ब्रह्माजी कहते हैं, कि—गणेशजीके वचनको सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा को ग्रहण करनेके लिये आसनों पर बैठ गए ।। २५ ।। तब गणेशजी उनकी पूजा कर परिक्रमा करने लगे, इस प्रकार उन्होंने बारम्बार प्रणाम कर सात परिक्रमा कीं ।। २६ ।। हे तात ! फिर बुद्धिसागर गणेश प्रेममग्न माता पिता को हाथ जोड़ अनेक प्रकारसे स्तुति करके कहने लगे, कि—।।२७।। हे मातः ! हे पितः ! आप मेरे इस परम वचनको सुनिये, कि—अब मेरे शोभन विवाहको शीघ्र कर दीजिये ।। २८ ।। ब्रह्माजीने कहा, कि—महात्मा गणेशजीके इस वचनको सुन कर माता पिता महाबुद्धिमान् गणेशजीसे कहने लगे ।। २९ ।। शिव और शिवाने कहा, कि—तू काननों सहित पृथ्वीकी भली प्रकार प्रदक्षिणा करके आ, तेरा भाई षडानन भी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेके लिये गया है अतः तू भी पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनेको जा और उससे पहिले ही लौट आ (तो पहिले तेरा ही विवाह कर देंगे) ।। ३० ।। ब्रह्माजी कहते हैं, कि— नियममें रहने वाले गणेश माता पिताके इस वचनको सुन क्रोध कर शीघ्रतासे यह वचन कहने लगे, कि—।।३१।। हे मातः ! हे पितः ! आप दोनों धर्मरूप

धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ । धर्मतः श्रूयतां सम्यग्वचनं मम सत्तमौ ॥ ३२ ॥ मया तु पृथिवी क्रांता सप्तवारं पुनः पुनः । एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह ॥३३॥ ब्रह्मोवाच । तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ । महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्च तम् ॥३४॥ पितरावूचतुः । कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा । सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैर्युता ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच । तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशंकरयोर्मुने । महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ गणेश उवाच । भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशंकरयोरहम् । स्वबुद्ध्या हि समुद्रान्तपृथ्वी-कृतपरिक्रमः ॥३७॥ इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये । वर्त्तते किं स तत्तथ्यं नहि किं तथ्यमेव वा ॥ ३८ ॥ पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः । तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥ ३९ ॥ अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् । तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ॥४०॥ पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपंकजम् । अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ॥ ४१ ॥ इदं सन्निहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम् । पुत्रस्य च स्त्रियश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ॥४२॥ इति

और बुद्धिमान् माने जाते हैं अतः हे सज्जनों ! आप मेरे वचनको धर्मपूर्वक सुनिये ॥ ३२ ॥ मैंने तो पृथिवीकी सातवार परिक्रमा कर ली है, फिर आप वही बात फिर क्यों कह रहे हैं ॥३३॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–महालीला करने वाले शिव और पार्वती गणेशके वचनको सुन सांसारिक गतिका आश्रय लेकर उनसे कहने लगे, कि–॥ ३४ ॥ हे पुत्र ! सातों द्वीपों वाली, बड़े २ गहन स्थलों वाली इस विशाल पृथिवीकी परिक्रमा तूने कब की है ? ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–शिवा और शंकरके ऐसे वचनको सुन महाबुद्धिमान् गणेशजी कहने लगे ॥३६॥ गणेशजीने कहा, कि–आप भवानी—शंकरकी पूजा करके मैंने अपनी बुद्धिमें समुद्र तककी पृथिवीकी परिक्रमा कर ली ।३७। धर्मका सञ्चय करने वाले वेद और शास्त्रमें जो वचन हैं, वह सत्य हैं वा नहीं ॥ ३८ ॥ कि–जो माता पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसको पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनेका फल मिलता है ॥ ३९ ॥ जो (जंगम तीर्थरूप) माता पिताको घरमें छोड़कर तीर्थयात्रा करनेके लिये जाता है, उसको वह पाप लगता है, जो माता पिताकी हत्या करने पर लगता है ४० माता पिताके चरणकमल ही पुत्रके लिये बड़े भारी तीर्थ हैं और दूसरे तीर्थ तो दूर जाने पर प्राणीको मिलते हैं ॥४१॥ यह तीर्थ तो पासमें ही है, सुलभ है और धर्मका साधन है, पुत्रके लिये (माता पिता) और स्त्रीके लिये (पति) ये दोनों सुन्दर तीर्थ घरमें ही हैं ॥ ४२ ॥ वेद और शास्त्र जो इस बातकी

शास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरन्तरम् । भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ॥ ४३ ॥ भवदीयं त्विदं रूपमसत्यं च भवेदिह । तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः ॥४४॥ शीघ्रं च भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः । अथवा वेदशास्त्रश्च व्यलीकं कथ्यतामिति॥ द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत् । कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ४६ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रस्स गणेशः प्रकृष्टधीः । विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ॥ ४७ ॥ तौ दम्पती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा । इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ ॥ ४८ ॥ ततः शिवः शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम् । सुप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम् ॥४९॥ शिवाशिवावूचतुः । पुत्र ते विमला बुद्धिस्समुत्पन्ना महात्मनः । त्वयोक्तं यद्वचश्चैव तत्तथैव च नान्यथा ॥५०॥ समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते । तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥५१॥ बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् । कूपे सिंहो मदोन्मत्तश्शशकेन निपातितः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम् । त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ॥५३॥ सम्यक् कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह । आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ५४

नित्य रट लगाये रहते हैं, उसको अब आप सत्य करते हैं वा भूँठ ? ॥४३॥ और जब वेद असत्य होजायगा, तब वेदका वर्णन किया हुआ आपका (निर्गुण सगुण) रूप भी असत्य होजायगा ॥ ४४ ॥ इस लिये आपको मेरा शुभ विवाह शीघ्र ही कर देना चाहिये, अथवा यह कहिये, कि—वेद शास्त्र भूठे हैं ॥ ४५ ॥ हमारे माता पिता आप दोनों धर्मरूप हैं अतः विचार करके दोनों मेंसे जो धर्मरूप कर्तव्य हो उसको कहिये ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाज्ञानी बुद्धिमान् पार्वतीपुत्र गणेश इस प्रकार कहकर चुप होगए ॥४७॥ विश्वके ईश्वर वे पार्वती और शङ्कर उनके इस वचनको सुनकर बड़े विस्मित हुए ॥ ४८ ॥ तदनन्तर शिवा और शिव विचक्षण बुद्धि वाले अपने यथार्थवक्ता पुत्रकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ४९ ॥ हे पुत्र! तुम महात्मामें निर्मल बुद्धिका उदय हुआ है, तुमने जो बात कही वह अन्यथा नहीं है, सत्य है ॥ ५० ॥ दुःखके समय जिसमें विशेष बुद्धि आती है, उसका दुःख, सूर्योदय होने पर अन्धकारके नष्ट होनेकी समान नष्ट होजाता है ५१ जिसके पास बुद्धि है, उसमें ही बल है (बुद्धिके प्रतापसे) मदोन्मत्त सिंहको भी खरगोशने कुएँमें गिरा दिया था ॥ ५२ ॥ वेद शास्त्र और पुराणोंमें बालकका जैसा धर्म लिखा है, उस सबका तूने यथावत् पालन किया है ५३ तूने बड़ी अच्छी बात करी, इसको और कौन कर सकता है ? हमें यह बात मान्य है, अब हम इसके विपरीत नहीं करेंगे ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि-

ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् । विवाहकरणे चास्य मतिं चक्रतुरुत्तमाम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशविवाहोपक्रमो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विश्वरूपः प्रजापतिः । तदुद्योगं संविचार्य सुखमाप प्रसन्नधीः ॥ १ ॥ विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे । सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वाङ्गशोभने ॥ २ ॥ ताभ्यां चैव गणेशस्य गिरिजा शङ्करः प्रभू । महोत्सवं विवाहं च कारयामासतुर्मुदा ॥ ३ ॥ सन्तुष्टा देवतास्सर्वास्तद्विवाहे समागमन् । यथा चैव शिवस्यैव गिरिजाया मनोरथः ॥४॥ तथा च विश्वकर्माऽसौ विवाहं कृतवांस्तथा । तथा च ऋषयो देवा लेभिरे परमां मुदम् ॥ ५ ॥ गणेशोऽपि तदा ताभ्यां सुखं चैवाप्तिचिन्तकम् । प्राप्तवांश्च मुने तत्तु वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ६ ॥ कियता चैव कालेन गणेशस्य महात्मनः । द्वयोः पत्न्योश्च द्वौ दिव्यौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥ ७ ॥ सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत् । बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्रो आसीत्परमशोभनः ॥ ८ ॥ एवं सुखमचिन्त्यं वै भुञ्जाने हि गणेश्वरे । आजगाम द्वितीयश्च क्रांत्वा पृथ्वीं सुतस्तदा ॥९॥ तावच्च नारदे-

वे दोनों इस प्रकार बुद्धिमान् गणेशजीको आश्वासन देकर उनके विवाहकी उत्तम मति करने लगे ॥ ५५ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ❀

ब्रह्माजी कहते हैं, कि–इसी समय प्रजापति विश्वरूपको जब इस उद्योग का पता लगा, तब वह परम सुखी हुआ उसकी बुद्धि प्रसन्न होगई ॥ १ ॥ प्रजापति विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नाम वाली दिव्यरूप सम्पन्न सर्वाङ्गशोभना दो शुभ पुत्रियें थीं ॥ २ ॥ उनसे प्रभु शंकर और गिरिजाने गणेश का उत्सवमय विवाह बड़े प्रेमसे किया ॥ ३ ॥ उस विवाहमें सन्तुष्ट हुए सब देवता आये और शिव तथा पार्वतीका जैसा मनोरथ हुआ, उसी प्रकार विश्वरूपने विवाह किया, उस विवाहको देख कर उसमें अभ्यागत देवता और ऋषि परम प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥ और गणेश भी उन दोनों स्त्रियोंके मिलनेके विचारसे जैसे सुखी हुए, उसका वर्णन नहीं किया जासकता ॥ ६ ॥ कुछ समयके अनन्तर महात्मा गणेशके उन दोनों पत्नियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ गणेशकी पत्नी सिद्धिके क्षेम नाम वाला पुत्र हुआ और उनकी बुद्धि नाम वाली पुत्रीके लाभ नाम वाला शोभासम्पन्न पुत्र हुआ ॥ ८ ॥ गजानन इस प्रकार अचिन्त्य सुखको भोग रहे थे, कि–स्वामि कार्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा कर तहाँ आपहुँचे ॥ ९ ॥ उस समय महात्मा नारद उनके घर आकर उनसे मिले और कहने लगे, कि- मैं यथार्थ बात कहता हूँ छल वा

नैव प्राप्तो गेहे महात्मना। यथार्थं वच्मि नोऽसत्यं न छलेन न मत्सरात् ॥१०॥ पितृभ्यां तु कृतं यच्च शिवया शङ्करेण ते। तन्न कुर्य्यात्परो लोके सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥११॥ निष्कास्य त्वां कुक्रमणं मिषमुत्पाद्य यत्नतः। गणेशस्य वरोऽकारि विवाहः परशोभनः ॥ गणेशस्य कृतोद्वाहो लब्धवान्स्त्रीद्वयं मुदा। विश्वरूपप्रजेशस्य कन्यारत्नं महोत्तमम् १३ पुत्रद्वयं ललाभासौ द्वयोः पत्न्योश्शुभांगयोः। सिद्धेः क्षेमं तथा बुद्धेर्लाभं सर्वसुखप्रदम् ॥ पत्न्योर्द्वयोर्गणेशोऽसौ लब्ध्वा पुत्रद्वयं शुभम्। मातापित्रोर्मतेनैव सुखं भुंक्ते निरंतरम् १५ भवता पृथ्वी क्रांता ससमुद्रा सकानना। तच्छलाज्ञावशात्तात तस्य जातं फलं त्विदम् १६ पितृभ्यां हि कृतं यत्तु छलं तात विचार्यताम्। स्वस्वामिभ्यां विशेषेण ह्यन्यः किन्न करोति वै ॥१७॥ असम्यक्च कृतं ताभ्यां त्वत्पितृभ्यां हि कर्म ह। विचार्यतां त्वयाऽपीह मच्चित्ते न शुभं मतम् ॥ १८ ॥ दद्याद्यदि गरं माता विक्रीणीयात्पिता यदि ॥राजा हरति सर्वस्वं कस्मै किं च ब्रवीतु वै ॥ १९ ॥ येनैवेदं कृतं स्याद्वै कर्मानर्थकरं परम्। शान्तिकामस्सुधीस्तात तन्मुखं न विलोकयेत् ॥ २० ॥ इति नीतिः श्रुतौ प्रोक्ता स्मृतौ शास्त्रेषु सर्वतः।

देखजलनेपनसे मैं कोई असत्य बात नहीं कहता हूँ ॥ १० ॥ तुम्हारी माता पार्वती और पिता शंकरने जैसा कार्य किया है, संसारमें ऐसा काम कोई दूसरा नहीं कर सकता ? यह बात मैं सत्य कहता हूँ ॥११॥ उन्होंने बहानेसे तुम्हें पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये निकाल कर गणेशका बड़ा अच्छा विवाह कर दिया ॥ १२ ॥ गणेशने आनन्दसे विवाहमें दो स्त्रियें पाई हैं, वे दोनों विश्वरूप प्रजापतिकी रत्नरूप दो उत्तम कन्याएँ हैं ॥ १३ ॥ शुभ अंग वाली उन दोनों पत्नियोंसे दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, सिद्धि नाम वाली पत्नीसे क्षेम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ है और बुद्धिसे सब प्रकारके सुखको देने वाला लाभ नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ १४ ॥ माता पिताकी युक्तिसे गणेश दोनों पत्नियोंसे दो शुभ पुत्र पाकर निरन्तर सुख भोग रहे हैं ॥१५॥ तुमने उनकी छलभरी आज्ञाको मान कर समुद्रों और वन-सहित पृथ्वी पर टक्करें मारीं तो उसका यह फल हुआ ॥ १६ ॥ हे तात ! तुम्हारे माता पिताने जो छल किया है, उस पर तुम विचार तो करो, जब स्वामियोंने ही ऐसा विशेष (बुरा) काम कर डाला तो फिर दूसरा क्या न करेगा ? ॥ १७ ॥ तुम्हारे माता पिताने जो काम किया है, मेरे विचारमें तो वह अच्छा नहीं किया है, जरा तुम भी तो अपने चित्तमें विचार करके देखो ॥१८॥ यदि माता विष देने लगे, पिता सन्तानको बेचने लगे और राजा सर्वस्वको हरने लगे, तब किससे क्या कहा जाय ? ॥ १९ ॥ जिसने ऐसा अनर्थका काम किया हो शान्ति चाहने वाले विद्वान्को चाहिये, कि-उसका मुख भी न देखे ॥२०॥

निवेदिता च सा तेऽद्य यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्युक्त्वा नारद त्वं तु महेश्वरमनोगतिः । तस्मै तथा कुमाराय वाक्यं मौनमुपागतः ॥ २२ ॥ स्कन्दोऽपि पितरं नत्वा कोपाग्निज्वलितस्तदा । जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि सन् ॥२३॥ वारणे च कृते त्वद्य गम्यते च कथं त्वया । इत्येवं च निषिद्धोऽपि प्रोच्य नेति जगाम सः न स्थातव्यं मया तातौ क्षणमप्यत्र किंचन । यद्येवं कपटं प्रीतिमपहाय कृतं मयि ।२५। एवमुक्त्वा गतस्तत्र मुने सोऽद्यापि वर्तते । दर्शनेनैव सर्वेषां लोकानां पापहारकः ॥२६॥ तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै । शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम् ।२७। तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये । सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम् ॥ २८ ॥ कार्तिक्यां च सदा देवा ऋषयश्च सतीर्थकाः । दर्शनार्थं कुमारस्य गच्छन्ति च मुनीश्वराः ॥२९॥ कार्तिक्यां कृत्तिकासंगे कुर्याद्यः स्वामिदर्शनम् । तस्य पापं दहेत्सर्वं चित्तेप्सितफलं लभेत् ॥ ३० ॥ उमापि दुःखमापन्ना स्कन्दस्य विरहे सति । उवाच स्वामिनं

ऐसी नीति, वेद और शास्त्र सबमें कही है, वही मैंने तुमको बताई है, अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–महेश्वरके मन की गतिरूप नारद, कुमारसे इतनी बात कह कर मौन होगए ॥ २२ ॥ तब कोपाग्निसे झुलसते हुए स्कन्द भी पिताको प्रणाम कर क्रौंचपर्वतकी ओर चलने लगे, उस समय उनके माता पिता उनको रोकते ही रह गये, कि-२३ अरे ! हम रोक रहे हैं, तब भी तू भागा ही क्यों जाता है, इस प्रकार मना करने पर भी वह कुछ न कह कर चले ही गए ॥ २४ ॥ और कहते गए कि–आपने प्रीतिको छोड़ मेरे साथ कपट किया है, इस लिये हे तात ! मैं यहाँ क्षण भर भी नहीं रुकूँगा ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार कह कर गए हुए स्वामी कार्तिकेय आज तक भी वहाँ ही विराजमान हैं उनके दर्शनसे ही सब लोकोंके पाप जाते रहते हैं ॥ २६ ॥ हे देवर्षे ! उसी दिनसे शिवपुत्र स्वामी कार्तिकेयका कुमारत्व (अविवाहितपना) चला आता है ॥ २७ ॥ उनका नाम संसारमें कल्याण करने वाला है, सब पापोंको दूर करने वाला, पुण्यमय और ब्रह्मचर्यकी शक्ति देने वाला है ॥ २८ ॥ कार्तिककी पूर्णिमाके दिन देवता ऋषि तीर्थ और मुनीश्वर उनका दर्शन करनेके लिये क्रौंच पर्वत पर जाते हैं ॥ २९ ॥ जो पुरुष कार्तिककी पूर्णिमाके दिन कृत्तिकाका योग होने पर स्वामी कार्तिकेयका दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं और उसका मनोरथ पूर्ण होता है ॥ ३० ॥ इधर उमा भी स्कन्दका विरह होने पर दुःखी हुई और स्वामीसे दीन होकर कहने लगी, कि- जहाँ कार्तिकेय गया है, वहाँको ही आप भी मेरे साथ चलिये ॥ ३१ ॥ उनको सुख

दीना तत्र गच्छ मया प्रभो ॥ ३१ ॥ तत्सुखार्थं स्वयं शम्भुर्गतस्स्वांशेन पर्वते । मल्लिकार्जुननामासीज्ज्योतिर्लिङ्गं सुखावहम् ॥ ३२ ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र शिवया सहितःशिवः । सर्वेषां निजभक्तानां कामपूरस्सतां गतिः ॥ ३३ ॥ तमागनं स विज्ञाय कुमारस्सशिवं शिवम् । स विरज्य ततोऽन्यत्र गन्तुमासीत्समुत्सुकः ॥३४॥ देवैश्च मुनिभिश्चैव प्रार्थितस्सोऽपि दूरतः । योजनत्रयमुत्सृज्य स्थितः स्थाने च कार्तिकः ॥ ३५ ॥ पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि । दर्शनार्थं कुमारस्य तस्य नारद गच्छतः ॥३६॥ अमावास्यादिने शम्भुः स्वयं गच्छति तत्र ह । पूर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम् ।३७। यद्यत्तस्य च वृत्तान्तं भवत्पृष्टं मुनीश्वर । कार्तिकस्य गणेशस्य परमं कथितं मया ॥३८॥ एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते । शोभनाँल्लभते कामानीप्सितान्सकलान्सदा यः पठेत्पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा । सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ४० ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् । वैश्यो धनसमृद्धस्स्याच्छूद्रस्सत्समतामियात् ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत भयान्मुच्येत भीतियुक् । भूतप्रेतादिबाधाभ्यः पीडितो न भवेन्नरः ॥

देनेके लिये शम्भु भी अपने अंशसे उस पर्वत पर पहुँचे और तहाँ मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रतिष्ठित होगए ॥ ३२ ॥ आज कल भी तहाँ पर अपने भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करने वाले, सज्जनोंकी गति शिव भवानीके साथ विराजमान दीखते हैं ॥ ३३ ॥ इधर कुमार भी, भवानीको लेकर शिव यहाँ आरहे हैं, यह समाचार पा विरक्त हो तहाँसे दूसरी जगह जानेके लिये उद्यत होगए ॥ ३४ ॥ परन्तु देवता और ऋषियोंके प्रार्थना करने पर स्वामी कार्तिकेय तीन योजन जाकर ही रुक गए ॥ ३५ ॥ हे नारद ! पुत्रसे स्नेह करने वाले शिव और शिवा भी पर्व २ में कुमारका दर्शन करनेके लिये जाते हैं ॥ ३६ ॥ अमावास्याके दिन शम्भु स्वयं तहाँ पर जाते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वती तहाँ जाती हैं ॥ ३७ ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने कार्तिक और गणेश का जो जो वृत्तान्त मुझसे बूझा था, वह सब श्रेष्ठ वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य इस कथाको सुन कर सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और उसके मनचीते सुन्दर मनोरथ सदा सफल होते रहते हैं ।३९। जो पुरुष इस कथाको सुनता है वा सुनाता है, पढ़ता है वा पढ़ाता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इसका पाठ करनेसे ब्राह्मणको ब्रह्मतेज मिलता है, क्षत्रियको विजय मिलती है, वैश्यको धन मिलता है और शूद्र सज्जनोंके समागमको पाता है ॥४१॥ रोगी रोगसे छूट जाता है, डरे हुएका डर जाता रहता है और मनुष्यको भूत प्रेत आदिकी बाधा नहीं होती ॥ ४२ ॥ इस आख्यानको सुननेसे प्राणी

एतदाख्यानमनघं यशस्यं सुखवर्द्धनम् । आयुष्यं स्वर्ग्यमतुलं पुत्रपौत्रादिकारकम् ॥४३॥
अपवर्गप्रदं चापि शिवज्ञानप्रदं परम् । शिवाशिवप्रीतिकरं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥
श्रवणीयं सदा भक्तैर्निष्कामैश्च मुमुक्षुभिः । शिवाद्वैतप्रदं चैतत्सदाशिवमयं शिवम् ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेश-
विवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितान्तर्गतः कुमारखण्डश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

निष्पाप होजाता है, उसका यश बढ़ता है, आयु बढ़ती है, स्वर्गप्राप्ति होती है और वह पुत्र पौत्रोंका सुख भोगता है ॥ ४३ ॥ भक्तोंको और कामनारहित मुमुक्षुओंको भी इसको सुनना चाहिये, यह शिवसे अभेद करा देता है और यह सदा मंगलमय है, कल्याणकारक है ॥ ४४ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहितामें चतुर्थ कुमारखण्ड समाप्त ॥

मिलने का पता–

सनातनधर्म प्रेस

मुरादाबाद ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ रुद्रसंहितायां पञ्चमो युद्धखण्डः

नारद उवाच । श्रुतमस्माभिरानन्दप्रदं चरितमुत्तमम् । गृहस्थस्यैव शम्भोश्च गणेशस्कं-दादिसत्कथम् ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वरमुत्तमम् । शङ्करो हि यथा रुद्रो जघान विहरन् खलान् ॥ २ ॥ कथं ददाह भगवान्नगराणि सुरद्विषाम् । त्रीण्येकेन च बाणेन युगपत्केन वीर्यवान् ॥३॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व चरितं शशिमौलिनः । देवर्षिसुखदं शश्वन्मायाविहरतः प्रभोः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच । एवमेवत्पुरा पृष्टो व्यासेन ऋषिसत्तम । सनत्कुमारं प्रोवाच तदेव कथयाम्यहम् ॥ ५ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः । यथा ददाह त्रिपुरं बाणेनैकेन विश्वहृत् ॥ ६ ॥ शिवात्मजेन स्कन्देन निहते तारकासुरे । तत्पुत्रास्तु त्रयो दैत्याः पर्यतप्यन्मुनीश्वर ॥ ७ ॥ तारकाक्षस्तु तज्ज्येष्ठो विद्युन्माली च मध्यमः । कमलाक्षः कनीयांश्च सर्वे तुल्यबलास्सदा ८ जितेन्द्रियास्सुसन्नद्धास्संयतास्सत्यवादिनः । दृढचित्ता महावीरा देवद्रोहिण एव च ।९।

नारदजीने कहा, कि—हमने गणेश और स्कन्दकी उत्तम कथाओंसे भरा हुआ शम्भुका आनन्ददायक उत्तम गृहस्थचरित्र सुन लिया ॥१॥ अब आप प्रीतिपूर्वक उस उत्तम चरित्रका वर्णन करिये, कि—जिसमें शंकरने क्रीड़ा ही क्रीड़ामें दुष्टोंका वध किया था ॥ २ ॥ वीर्यवान् भगवान् शम्भुने देवशत्रुओंके तीन नगरोंको एक ही बाणसे किस प्रकार नष्ट किया था ॥३॥ सदा मायासे विहार करने वाले चन्द्रमौलि प्रभु शम्भुके देवता और ऋषियोंको सुख देने वाले चरित्रका वर्णन करिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—इसीप्रकार ऋषि-सत्तम सनत्कुमारसे व्यासजीने बूझा था, उस समय व्यासजीने सनत्कुमारसे जो बात कही थी उसको (और व्यासने सनत्कुमारसे जो बात कही थी) उसीको मैं कहता हूँ ॥५॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे महाबुद्धिमान् व्यासजी ! विश्वके दुःखको हरने वाले चन्द्रमौलिने एक ही बाणसे त्रिपुरको जिस प्रकार भस्म किया था उस चरित्रको मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! जब ईश्वरके पुत्र स्कन्दने तारकासुरको मार डाला था तब उसके पुत्र तीन दैत्य बड़े सन्तप्त हुए ॥ ७ ॥ उनमें बड़े पुत्रका नाम तारकाक्ष था, मध्यमका नाम विद्युन्माली था और छोटेका नाम कमलाक्ष था, ये सदा तुल्यबल वाले थे ८ वे जितेन्द्रिय, सदा कार्य करनेके लिये डटे रहने वाले, मन और वाणीको वशमें रखने वाले, सत्यवादी, दृढ चित्तवाले, महावीर और देवताओंसे द्रोह रखने वाले थे ॥ ९ ॥ वे तीनों सकल मनोहर भोगोंको त्याग मेरुपर्वतकी

ते तु मेरुगुहां गत्वा तपश्चक्रुर्महाद्भुतम् । त्रयस्सर्वान्सुभोगांश्च विहाय सुमनोहरान् ।१०। वसन्ते सर्वकामांश्च गीतवादित्रनिस्स्वनम् । विहाय सोत्सवं तेपुस्त्रयस्ते तारकात्मजाः ११ ग्रीष्मे सूर्यप्रभां जित्वा दिक्षु प्रज्वाल्य पावकम् ! तन्मध्यसंस्थाः सिद्ध्यर्थं जुहुवुर्हव्यमादरात् ॥१२॥ महाप्रतापपतितास्सर्वेप्यासन् सुमूर्छिताः । वर्षासु गतसंत्रासा वृष्टिं मूर्द्धन्यधारयन् ॥ १३ ॥ शरत्काले प्रभूतं तु भोजनं तु बुभुक्षिताः । रम्यं स्निग्धं स्थिरं हृद्यं फलं मूलमनुत्तमम् ॥१४॥ संयमात्क्षुत्तृषो जित्वा पानान्युच्चावचान्यपि । बुभुक्षितेभ्यो दत्त्वा तु बभूवुरुपला इव ॥ १५ ॥ संस्थितास्ते महात्मानो निराधाराश्चतुर्दिशम् । हेमन्ते गिरिमाश्रित्य धैर्येण परमेण तु ॥ १६ ॥ तुषारदेहसंछन्ना जलक्लिन्नेन वाससा । आसाद्य देहं क्षौमेण शिशिरे तोयमध्यगाः ॥१७॥ अनिर्विण्णास्ततस्सर्वे क्रमशोऽवर्द्धयंस्तपः । तेपुस्त्रयस्ते तत्पुत्रा विधिमुद्दिश्य सत्तमाः । १८ । तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः । तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान् दानवोत्तमाः ॥१९॥ वर्षाणां शतकं चैव पदमेकं निधाय च । भूमौ स्थित्वा परं तत्र तेपुस्ते बलवत्तराः ॥ २० ॥ ते सहस्रं तु वर्षाणां वातभक्षास्सुदारुणाः । तपस्तेपुर्दुरात्मानः परं तापमुपागताः । २१ । वर्षाणां तु

गुफामें जाकर परम अद्भुत तप करने लगे ॥१०॥ वे तारकासुरके पुत्र वसन्त ऋतुमें सकल कामनाओंको और गाने बजानेकी ध्वनिको त्याग , उत्सवोंको छोड़ कर तप करने लगे ॥ ११ ॥ वे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रभाको जीत (धूपको सह) चारों दिशाओंमें अग्निको प्रज्वलित कर उन अग्नियोंके मध्य में अपने आप बैठ सिद्धि पानेके लिये अग्नियोंमें हव्यकी आहुति देने लगे १२ वे बड़े भारी अग्निके दाहसे मूर्छित होजाते थे और वे वर्षा ऋतुमें त्रासको छोड़ कर वृष्टिको मस्तक पर धारण करने लगते थे ॥१३। और शरत्कालके समय वे स्वयं तो भूखे प्यासे रहते थे और दूसरे भूखे पुरुषोंको बहुतसा भोजन खिलाते थे वे दूसरोंको रमणीय चिकना हृदयग्राही श्रेष्ठ फल फूल देते थे श्रेष्ठ शर्बत पीनेको देते थे और अपने आप निराधार रह पत्थरकी समान पड़े रहते थे और वे हेमन्त ऋतुमें पर्वत पर जा परमधैर्यके साथ पालेको अपने ऊपर झेलते थे और शिशिर ऋतुमें रेशमीन वस्त्र पहिर भीगे हुए वस्त्रसे जलके बीचमें खडे रहते थे ॥ १४-१७॥ वे तीनों श्रेष्ठ पुत्र खिन्न हुए बिना अपने तपको बढ़ाने लगे, इस प्रकार वे श्रेष्ठ तारक—पुत्र ब्रह्माजीके निमित्त तप करने लगे ॥ १८ ॥ उग्र तपका आश्रय ले परम नियममें स्थित हुए वे दानवोत्तम तपसे अपने देहोंको क्षीण करने लगे ॥ १९ ॥ फिर उन बलवानोंने सौ वर्ष तक पृथिवी पर एक पैरसे खड़े होकर बड़ा भारी तप किया ॥ २० ॥ फिर उन दुरात्माओंने बड़े भारी कष्टको भोगते हुए हजार वर्ष तक वायुका ही भक्षण

सहस्रं वै मस्तकेनास्थितास्तथा । वर्षाणां तु शतेनैव उद्ध्र्वबाहव आस्थिताः २२ एवं दुःखं परं प्राप्ताः दुराग्रहपरा इमे । इदक्के संस्थिता दैत्या दिवारात्रमतंद्रिताः एवं तेषां गतः कालो महान् सुतपतां मुने । ब्रह्मात्मनां तारकाणां धर्मेणेति मतिर्मम ॥ २४ ॥ प्रादुरासीत्ततो ब्रह्मा सुरासुरगुरुर्महान् । संतुष्टस्तपसा तेषां वरं दातुं महायशाः ॥ २५ ॥ मुनिदेवासुरैः सार्द्धं सांत्वपूर्वमिदं वचः । ततस्तानब्रवीत्सर्वान् सर्वभूतपितामहः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच । प्रसन्नोऽस्मि महादैत्या युष्माकं तपसा मुने । सर्वं दास्यामि युष्मभ्यं वरं बत यदीप्सितम् ॥२७॥ किमर्थं सुतपस्ततं कथयध्वं सुरद्विषः । सर्वेषां तपसो दाता सर्वकर्तास्मि सर्वदा ॥२८॥ सनत्कुमार उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शनैस्ते स्वात्मनो गतम् । ऊचुः प्रांजलयस्सर्वे प्रणिपत्य पितामहम् ॥ २९ ॥ दैत्या ऊचुः । यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया । अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु देहि नः ॥३०॥ स्थिरान् कुरु जगन्नाथ यान्तु नः परिपंथिनः । जरारोगादयस्सर्वे नास्मान्मृत्युरगात् क्वचित् ३१ अजराश्चामरास्सर्वे भवाम इति नो मतम् । समृत्यवः कारयामस्सर्वानन्यांस्त्रि-

करते हुए तप किया ॥ २१ ॥ फिर वे हजार वर्ष तक मस्तकके बलसे खड़े रहे, फिर सौ वर्ष तक ऊपरको भुजा कर खड़े रहे ।२२। इसप्रकार दुराग्रहमें परायण होकर उन दैत्योंने दिन रात आलस्यको छोड़कर बड़ा दुःख उठाया२३ हे मुने ! इस प्रकार जिनका ब्रह्माजीमें मन लग रहा है ऐसे उन तारकपुत्रोंको धर्मपूर्वक तप करते हुए बहुतसा समय बीत गया ॥ २४ ॥ तब देवता और असुरोंके बड़े भारी गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी उनके तपसे सन्तुष्ट होकर उनको वर देनेके लिये प्रकट हुए ॥२५॥ सब भूतोंके पितामह ब्रह्माजीने मुनि और देवताओंके साथमें आकर उन सबको ढाढ़स देते हुए यह बात कही, कि–२६ हे महादैत्यो ! मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूँ, जो तुम्हारे मनमें हों उन सब वरोंको मैं तुम्हें दूँगा ॥ २७ ॥ हे दैत्यो ! तुमने किस लिये बड़ा भारी तप किया है ? मैं सबको तपका फल देने वाला हूँ, सब कुछ कर सकता हूँ, अतः तुम मुझे बताओ ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–ब्रह्माजीकी इस बातको सुन उन्होंने हाथ जोड़ कर उनको प्रणाम किया और धीरे २ अपने मनकी बात प्रकट करनी आरम्भ की ॥ २९ ॥ दैत्योंने कहा, कि–हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हमें वर दीजिये, कि—हम सब भूतोंसे सब देहधारियोंसे अवध्य रहें ॥ ३० ॥ हे जगन्नाथ ! आप हमें स्थिर कर दीजिये, जरा रोग आदि हमारे शत्रु नष्ट होजावें और हमें कभी मृत्यु न आवे ॥ ३१ ॥ हम अजर अमर होजावें, हमारी यह इच्छा है, कि–दूसरे सबको हम त्रिलोकीमें मारते फिरें ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमने यह निश्चय कर

लोकके ॥ ३२ ॥ लक्ष्म्या किं तद्विपुलया किं कार्यं हि पुरोत्तमैः। अन्यैश्च विपुलैर्भोगैस्स्थानैश्वर्येण वा पुनः ॥ ३३ ॥ यत्रैव मृत्युना ग्रस्तो नियतं पंचभिर्दिनैः। व्यर्थं तस्याखिलं ब्रह्मन् निश्चितं न इतीव हि ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच। इति श्रुत्वा वचस्तेषां दैत्यानां च तपस्विनाम्। प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा स्वप्रभुं गिरिशं विधिः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच। नास्ति सर्वामरत्वं च निवर्तध्वमतोऽसुराः। अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशो वो हि रोचते ॥ ३६ ॥ जातो जनिष्यते नूनं जन्तुः कोऽप्यसुराः क्वचित्। अजरश्चामरो लोके न भविष्यति भूतले ॥ ३७ ॥ ऋते तु खंडपरशोः कालकालाद्धरेस्तथा। तौ धर्माधर्मपरमावव्यक्तौ व्यक्तरूपिणौ ॥ ३८ ॥ संपीडनाय जगतो यदि स क्रियते तपः। सफलं तद्व्रतं वेद्यं तस्मात्सुविहितं तपः ॥ ३९ ॥ तद्विचार्य स्वयं बुद्ध्या न शक्यं यत्सुरासुरैः। दुर्लभं वा सुदुस्साध्यं मृत्युं वञ्चयतानघाः ॥ ४० ॥ तत्किंचिन्मरणे हेतुं वृणीध्वं सत्त्वमाश्रिताः। येन मृत्युर्नैव वृतो रक्षतस्तत्पृथक् पृथक् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच। एतद्विधिवचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थिताः। प्रोचुस्ते चिंतयित्वाथ सर्वलोकपितामहम् ॥४२॥ दैत्या ऊचुः। भगवन्नास्ति नो वेश्म पराक्रमवतामपि। अधृष्याः शात्रवाणां तु यत्र

लिया है, कि-उस बड़ी भारी लक्ष्मी, श्रेष्ठ २ नगर और विशाल भोगोंसे क्या, जो पाँच दिनमें ही मृत्युके ग्रास होजायँ, हे ब्रह्मन्! हमारी समझमें तो वे सब व्यर्थ ही हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार कहते हैं, कि—उन तपस्वी दैत्योंके इस वचनको सुन कर ब्रह्माजी अपने प्रभु गिरिशायी शंकरका स्मरण करके कहने लगे ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे असुरों! सबको अमरत्व नहीं मिल सकता अतः तुम इसको तो छोड़ दो, इसके अतिरिक्त और जो वर तुम्हें अच्छा लगता हो उसको तुम माँग लो ॥३६॥ हे असुरों! उत्पन्न हुआ या उत्पन्न होने वाला कोई भी प्राणी भूतलपर अजर अमर नहीं होसकता ३७ धर्म और अधर्मसे पर, प्रकट और गुप्त रूप वाले कालके काल हरि और शंकर ही अमर हैं ॥ ३८ ॥ तुम यदि जगत्को पीड़ित करनेके लिये तप कर रहे हो तो तुमने बड़ा भारी तप कर लिया और अपने मनोरथको तुम सफल हुआ समझो ॥ ३९ ॥ इस लिये तुम देवता वा असुरोंको भी दुर्लभ किसी वरको अपनी बुद्धिसे माँग कर दुःसाध्य मृत्युको चकमा दो ॥४०॥ हे सत्त्वसम्पन्नों! सो मरणमें किसी हेतुको रख कर वर माँगो, जिस वरके द्वारा तुम अपनी रक्षा कर सको, तुम्हें मृत्यु वरण न कर सके ऐसे वरको माँगलो ॥४१॥ सनत्कुमार जी कहते हैं, कि-ब्रह्माजीके इस वचनको सुन उन्होंने मुहूर्तभर तक ध्यानपूर्वक विचार करनेके अनन्तर सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे कहा ॥ ४२ ॥ दैत्य बोले, कि—हे भगवन्! हम पराक्रमी हैं, तब भी हमारे पास ऐसा कोई घर

वत्स्यामहे सुखम् ॥ ४३ ॥ पुराणि त्रीणि नो देहि निर्मायात्यद्भुतानि हि । सर्वसंपत्समृद्धान्यप्रधृष्याणि दिवौकसाम् ॥ ४४ ॥ वयं पुराणि त्रीण्येव समारुह्य महीमिमाम् । चरिष्यामो हि लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ॥ ४५ ॥ तारकाक्षस्ततः प्राह यदभेद्यं सुरैरपि । करोति विश्वकर्मा तन्मम हेममयं पुरम् ॥ ४६ ॥ ययाचे कमलाक्षस्तु राजतं सुमहत्पुरम् । विद्युन्माली च संहृष्टो वज्रायसमयं महत् पुरेष्वेतेषु भो ब्रह्मन्नेकस्थानस्थितेषु च । मध्याह्नाभिजिते काले शीतांशौ पुष्यसंस्थिते ॥ ४८ ॥ उपर्युपर्यदृष्टेषु व्योम्नि लीलाभ्रसंस्थिते । वर्षत्सु कालमेघेषु पुष्करावर्तनामसु ॥ ४९ ॥ तथा वर्षसहस्रान्ते समेष्यामः परस्परम् । एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि नान्यथा ॥५०॥ सर्वदेवमयो देवस्सर्वेषां मे कुहेलया । असम्भवे रथे तिष्ठन् सर्वोपस्करणान्विते ॥ ५१ ॥ असम्भाव्यैककांडेन भिनत्तु नगराणि नः । निर्वैरः कृत्तिवासास्तु योऽस्माकमिति नित्यशः ॥५२॥ वन्द्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च सोऽस्माकं निर्दहेत्कथम् । इति चेतसि सन्धाय तादृशो भुवि दुर्लभः ५३ सनत्कुमार उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः । एवमस्तीति तान्

नहीं है, जिससे हम शत्रुओंसे अधृष्य रह कर सुखपूर्वक वस सकें ॥ ४३ ॥ इस लिये हमैं ऐसे तीन अद्भुत पुर निर्माण करके दीजिये जो सकल सम्पत्तियों से भरे हों और देवताओंसे अधृष्य हों ॥ ४४ ॥ हे लोकेश ! हे जगद्गुरो ! आपकी कृपासे हम उन तीनों पुरोंमें बैठ कर इस पृथ्वी पर विचरण कर सकें ॥ ४५ ॥ तदनन्तर तारकाक्षने कहा, कि—मेरे लिये विश्वकर्मा ऐसा नगर बनावें जो सुवर्णका हो और देवता उसको तोड़ न सकें ॥ ४६ ॥ कमलाक्षने चाँदीके बड़े भारी पुरकी याचना की और विद्युन्मालीने भी प्रसन्न होकर वज्रकी समान कड़े लोहेके नगरकी याचना की ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मध्यान्हके समय अभिजित् मुहूर्तमें जिस समय पर कि—चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र पर स्थित हों उस समय यह हमारे पुर एक स्थान पर स्थित हुआ करें ॥ ४८ ॥ पुष्करावर्त नाम वाले कालमेघ जब वर्षें, तब यह पुर तला ऊपर न दीखें, इस प्रकार सहस्र वर्षके उपरान्त हम मिला करें और उसी समय यह पुर एक हुआ करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारे पृथिवी पर विचरण करते समय निर्वैर कृत्तिवासा भगवान् शिव जो कि—सर्वदेवमय हैं, वह सब सामग्रियोंसे युक्त अचिन्त्य रथमें बैठ कर अचिन्त्य एक बाणसे हमारे सारे नगरोंको भेद डालें ।५१।५२। परन्तु वह तो हमारे वन्दनीय पूज्य और प्रणाम करने योग्य हैं, वह हमैं क्यों भस्म करेंगे, चित्तमें यह विचार कर हम इस दुर्लभ वरको माँगते हैं ॥ ५३ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि—संसारके पितामह सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उनका वचन सुन शिवजीका स्मरण करके उनसे तथास्तु कह दिया ॥ ५४ ॥ और मयको

प्राह सृष्टिकर्त्ता स्मरञ्छिवम् ॥५४॥ आज्ञां ददौ मयस्यापि कुरु त्वं नगरत्रयम् । कांचनं राजतं चैव आयसं चेति भो मय ॥ ५५ ॥ इत्यादिश्य मयं ब्रह्मा प्रत्यक्षं प्राविशद्दिवम् । तेषां तारकपुत्राणां पश्यतां निजधाम हि ५६ ततो मयश्च तपसा चक्रे धीरः पुराण्यथ । कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ॥ ५७ ॥ विद्युन्माल्यायसं चैव त्रिविधं दुर्गमुत्तमम् । स्वर्गे व्योम्नि च भूमौ च क्रमाज्ज्ञेयानि तानि वै ॥ ५८ ॥ दत्त्वा तेभ्योऽसुरेभ्यश्च पुराणि त्रीणि वै मयः । प्रविवेश स्वयं तत्र हितकामपरायणः ॥ ५९ ॥ एवं पुरत्रयं प्राप्य प्रविष्टास्तारकात्मजाः । बुभुजुस्सकलान्भोगान् महाबलपराक्रमाः ॥ ६० ॥ कल्पद्रुमैश्च संकीर्णं गजवाजिसमाकुलम् । नानाप्रासादसंकीर्णं मणिजालसमावृतम् ॥ ६१ ॥ सूर्यमण्डलसंकाशैर्विमानैस्सर्वतोमुखैः । पद्मरागमयैश्चैव शोभितं चन्द्रसन्निभैः ॥ ६२ ॥ प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः । दिव्यस्त्रीजनसंकीर्णैर्गन्धर्वैस्सिद्धचारणैः ॥ ६३ ॥ रुद्रालयैः प्रतिगृहमग्निहोत्रैः प्रतिष्ठितैः । द्विजोत्तमैश्शास्त्रविज्ञैश्शिवभक्तिरतैस्सदा वापीकूपतडागैश्च दीर्घिकाभिस्सुशोभितम् । उद्यानवनवृक्षैश्च स्वर्गच्युतगणोत्तमैः ।

भी आज्ञा दी, कि—हे मय ! तुम सोने चाँदी और लोहेके तीन पुर बनाओ ५५ ब्रह्माजी इस प्रकार मयको आज्ञा देकर उन तारकासुरके पुत्रोंके देखते २ ही अपने धाम स्वर्गको चले गए ॥ ५६ ॥ तदनन्तर धीर मयने अपने तपोबलसे पुर बनाने आरम्भ कर दिये, उन्होंने तारकाक्षका सुवर्णका, कमलाक्षका चाँदी का और विद्युन्मालीका लोहेका नगर बनाया, इस प्रकार तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग बनाये, वे पुर क्रमशः स्वर्ग अन्तरिक्ष और पृथिवी पर थे ॥ ५७॥५८ ॥ असुरोंके हितमें परायण मय उन असुरोंको इस प्रकार तीन पुर देकर स्वयं भी उनमें चला गया ॥ ५९ ॥ और वे तारकके महाबली पुत्र भी उन तीनों नगरोंको पा उनमें प्रवेश कर सकल भोगोंको भोगने लगे ॥ ६० ॥ वे नगर कल्पवृक्षोंसे घिरे हुए थे, हाथी घोड़ोंसे सम्पन्न थे, उनमें मणियोंकी जाली वाले बहुतसे घर बन रहे थे, चारों ओर दरवाजे वाले सूर्यमण्डलकी समान विमानोंसे और पद्मरागमणियोंसे बने हुए चन्द्रमाकी समान आल्हाददायक विमानोंसे वे नगर सुशोभित थे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उनमें कैलासके शिखरकी समान ऊँचे २ फाटकों वाले महलोंमें दिव्य स्त्रियें और मनुष्य गच्छे रहते थे तथा गंधर्व सिद्ध और चारणोंसे वे पुर सुशोभित रहते थे ॥६३॥ उन नगरों के प्रत्येक घरमें शिवालय और अग्निहोत्र प्रतिष्ठित थे, उनमें शास्त्रको जानने वाले शिवभक्तिपरायण ब्राह्मण रहते थे ॥ ६४ ॥ उनमें बावड़ी कूए तालाब बगीचे और स्वर्गसे आए हुए गुणों वाले वनके वृक्ष वाली घरकी बावड़ियें (हौज) भी थे ॥ ६५ ॥ उन नगरोंमें बड़ी २ नदियें, नद, कमल, और सब

नदीनदसरिन्मुख्यपुष्करैः शोभितं सदा । सर्वकामफलाढ्यैश्चानेकैर्वृक्षैर्मनोहरम् ६६
मत्तमातंगयूथैश्च तुरंगैश्च सुशोभनैः । रथैश्च विविधाकारैश्शिबिकाभिरलंकृतम् ६७
समयादिशिकैश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक्पृथक् । वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः पृथक् पृथक् ॥ ६८ ॥ अदृष्टं मनसा वाचा पापान्वितनरैस्सदा । महात्मभिश्शुभाचारैः पुण्यवद्भिः प्रवीक्ष्यते ॥६९॥ पतिव्रताभिः सर्वत्र पावितं स्थलमुत्तमम् । पतिसेवनशीलाभिर्विमुखाभिः कुधर्मतः ॥७०॥ दैत्यशूरैर्महाभागैस्सदारैस्ससुतैर्द्विजैः । श्रौतस्मार्तार्थतत्त्वज्ञैस्स्वधर्मनिरतैर्युतम् ॥ ७१ ॥ व्यूढोरस्कैर्वृषस्कन्धैस्सामयुद्धधरैस्सदा । प्रशांतैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा ॥ ७२ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुंचितमूर्द्धजैः । मयेन रक्षितैस्सर्वैश्शिक्षितैर्युद्धलालसैः ॥७३॥ वरसमररतैर्युतंसमन्तादजशिवपूजनया विशुद्धवीर्यैः । रविमरुतमहेन्द्रसंनिकाशैस्सुरमथनैस्सुदृढैस्सुसेवितं यत् । ७४। शास्त्रवेदपुराणेषु ये ये धर्माः प्रकीर्तिताः । शिवप्रियास्सदा देवास्ते धर्मास्तत्र सर्वतः ॥ ७५ ॥ एवं लब्धवरास्ते तु दैतेयास्तारकात्मजाः । शैवं मयमुपाश्रित्य निवसन्ति स्म तत्र ह ॥ ७६ ॥ सर्वं त्रैलोक्यमुत्सार्य

कामनाओंको पूर्ण करने वाले फलोंसे सम्पन्न अनेक वृक्ष थे जिनसे वे नगर मनोहर लगते थे ॥ ६६ ॥ और वे नगर मदमत्त हाथियोंके झुण्डसे, घोड़ोंसे सुशोभित रथोंसे और अनेक प्रकारके आकार वाली पालकियोंसे अलंकृत रहते थे ॥ ६७ ॥ उन नगरोंमें समय समयके क्रीड़ास्थान अलग २ बने हुए थे और अनेक प्रकारकी वेदाध्ययनकी पाठशालायें भी अलग २ बनी हुई थीं ॥६८॥ उन नगरोंको पापी पुरुष देख नहीं सकते थे और मन वाणीसे भी स्पर्श नहीं कर सकते थे और पवित्र आचार वाले पुण्यात्मा महात्मा ही उन नगरोंका दर्शन पा सकते थे ॥ ६९ ॥ और पापसे विमुख स्वभावतः पतिसेवा करने वाली पतिव्रताओंसे उन सब नगरोंके स्थान पवित्र रहते थे ॥ ७० ॥ उनमें महाभाग, श्रुति और स्मृतिके अर्थके तत्त्वको जानने वाले स्वधर्मपरायण शूरवीर दैत्य और ब्राह्मण अपने २ पुत्र और स्त्रियोंके साथ रहते थे ॥७१॥ उनमें मयके द्वारा रक्षित और शिक्षित युद्धकी लालसा वाले, पुष्ट वक्षःस्थल वाले, बैलकी समान कन्धे वाले, सामपूर्वक युद्ध करने वाले, शान्त और कुपित, कुबड़े और बौने, नीलकमलकी समान नीले और घुँघराले केशों वाले, श्रेष्ठ समरसे प्रेम करने वाले, ब्रह्मा और शिवजीका पूजन करनेसे विशुद्ध वीर्यवाले, सूर्य वायु और इन्द्रकी समान बली देवताओंका मथन करने वाले दृढ़ वीर रहते थे ।७२।७४। शास्त्र वेद और पुराणोंमें जिन २ धर्मोंका वर्णन है वे सब शिवके प्यारे धर्म तहाँ रहते थे ॥ ७५ ॥ इस प्रकार वरको पाकर वे तारकपुत्र दैत्य शिवभक्त मयका आश्रय लेकर उन नगरोंमें रहते थे ॥ ७६ ॥ वे शिवमार्गमें परायण

प्रविश्य नगराणि ते । कुर्वंति स्म महद्राज्यं शिवमार्गरतास्तदा ॥७७॥ ततो महान् गतः कालो वसतां पुण्यकर्मणाम् । यथासुखं यथाजोषं सद्राज्यं कुर्वतां मुने ॥७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने त्रिपुरवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास उवाच । ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ वद मे वदतां वर । ततः किमभवद्देवाः कथं च सुखिनोऽभवन् ॥१॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितधीमतः । सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच । अथ तत्प्रभया दग्धा देवा ह्रीन्द्रादयस्तथा । संमन्त्र्य दुःखितास्सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ३ नत्वा पितामहं प्रीत्या परिस्थित्याखिलास्सुराः । दुःखं विज्ञापयामासुर्विलोक्यावसरं ततः ॥४॥ देवा ऊचुः । धातस्त्रिपुरनाथेन सतारकसुतेन हि । सर्वे प्रतापिता नूनं मयेन त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥ अतस्ते शरणं याता दुःखिता हि विधे वयम् । कुरु त्वं तद्वधोपायं सुखिनस्स्याम तद्यथा ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति विज्ञापितो देवैर्विहस्य भवकृद्विधिः । प्रत्युवाचाथ तान्सर्वान् मयतो भीतमानसान् ।७। ब्रह्मोवाच । न भेतव्यं सुरास्तेभ्यो दानवेभ्यो विशेषतः । आचक्षे तद्वधोपायं शिवं

दैत्य इस प्रकार नगरोंमें प्रवेश कर त्रिलोकीको दुःखित करते हुए बड़ा भारी राज्य करने लगे ॥ ७७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार उन पुण्यात्माओंको सुख और प्रीतिके साथ सद्राज्य करते हुए बहुतसा समय बीत गया ॥ ७८ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

व्यासजीने कहा, कि–हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र ! इसके उपरान्त क्या हुआ और देवता किस प्रकार सुखी हुए, इसका आप मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि–परम बुद्धिमान् व्यासजीके इस वचनको सुन कर सनत्कुमारजी शिवके चरणोंका स्मरण करके कहने लगे, कि २ तदनन्तर उन दैत्योंके प्रभावसे जलते हुए इन्द्र आदि देवता विचार कर दुःखित होते हुए ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे ॥ ३ ॥ क्षीण हो देवताओंने ब्रह्माजीको प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया और अवसरको देख कर अपना दुःख निवेदन किया ४ देवताओंने कहा, कि–हे धातः ! त्रिपुरके नाथ तारकके पुत्रोंने और मयने सम्पूर्ण देवताओंको त्रस्त कर रक्खा है ॥ ५ ॥ इस लिये हे विधे ! हम दुःखित होकर आपकी शरणमें आये हैं, अतः आप उनके वधका उपाय करिये, जिससे हम सुखी हों ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—संसारको रचने वाले ब्रह्माजी देवताओंके इस प्रकार कहने पर मयसे डरे हुए चित्त वाले देवताओंसे हँस कर बोले ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे देवताओं ! तुम उन दानवोंसे न डरो, मैं उनके वधके उपायको कहता हूँ, शिव—शंकर इस सब कामको

शर्वः करिष्यति ॥ ८ ॥ मत्तो विवर्धिता दैत्यो वधं मत्तो न चार्हति । तथापि पुण्यं वर्द्धेत नगरे त्रिपुरे पुनः ॥ ९ ॥ शिवं च प्रार्थयध्वं वै सर्वे देवास्सवासवाः । सर्वाधीशः प्रसन्नश्चेत्स वः कार्यं करिष्यति ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य विधेर्वाणीं सर्वे देवास्सवासवाः । दुःखितास्ते ययुस्तत्र यत्रास्ते वृषभध्वजः प्रणम्य भक्त्या देवेशं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा । तुष्टुवुर्विनतस्कन्धाश्शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः । नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने । नमः स्थितिकृते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे ॥१३॥ नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे । निर्गुणाय नमस्तुभ्यं शिवायामिततेजसे ॥१४॥ अवस्थारहितायाथ निर्विकाराय वर्चसे । महाभूतात्मभूताय निर्लिप्ताय महात्मने ॥१५॥ नमस्ते भूतपतये महाभारसहिष्णवे । तृष्णाहराय निर्वैराकृतये भूरितेजसे ॥ १६ ॥ महादैत्यमहारण्यनाशिने दाववह्नये । दैत्यद्रुमकुठाराय नमस्ते शूलपाणये ॥ १७ ॥ महादनुजनाशाय नमस्ते परमेश्वर । अम्बिकापतये तुभ्यं नमस्सर्वास्त्रधारक ॥ १८ ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ परमात्मन् महेश्वर । नीलकण्ठाय रुद्राय नमस्ते रुद्ररूपिणे ॥१९ । नमो वेदान्तवेद्याय मार्गा-

---

करेंगे ॥ ८ ॥ इन दैत्योंको मैंने ही बढ़ाया है अतः मुझे इनका वध करना उचित नहीं है, यह तो मेरे प्रभावसे अपने पुण्यवश त्रिपुरमें बढ़ते ही रहेंगे ९ इस लिये अब तुम इन्द्रको साथमें लेकर शिवजीकी प्रार्थना करो, वह सर्वाधीश यदि प्रसन्न होजावेंगे तो तुम्हारा कार्य कर देंगे ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-ब्रह्माजीकी इस बातको सुन कर इन्द्रसहित सब देवता जहाँ भगवान् शंकर थे तहाँ दुःखित होते हुए चल दिये ॥ ११ ॥ वे संसारका कल्याण करने वाले शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर कन्धोंको झुका हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ देवताओंने कहा, कि-हिरण्यगर्भ, सब सृष्टिके विधाता, स्थिति करने वाले, व्यापक और प्रभाववान् शंकरके लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ भूतोंको संहार करने वाले, निर्गुण, अमित तेजस्वी, हरस्वरूप शिवके लिये प्रणाम है ॥१४॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्विकार; तेजः सम्पन्न, महाभूतोंके भी आत्मभूत निर्लेप महात्मा शिवके लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ भूतोंके पति, महाभारको सह सकने वाले, तृष्णाको दूर करने वाले वैररहित आकृति वाले महातेजस्वी शंकरको प्रणाम है ॥ १६ ॥ महादैत्योंके महावनको नाश करनेमें दावाग्निरूप, दैत्यरूपी वृक्षोंके लिये कुठाररूप शूलपाणिके लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ हे परमेश्वर ! महादैत्योंका नाश करने वाले आपको हम प्रणाम करते हैं, हे सब अस्त्रोंको धारण करने वाले आप अम्बिकापतिको हम प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ हे पार्वतीनाथ परमात्मन् ! हे

तीताय ते नमः । नमो गुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जित ॥ २० ॥ महादेव नमस्तुभ्यं त्रिलोकीनन्दनाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय वासुदेवाय ते नमः ॥ २१ ॥ संकर्षणाय देवाय नमस्ते कंसनाशिने । चाणूरमर्दिने तुभ्यं दामोदर विषादिने ॥ २२ ॥ हृषीकेशाच्युत विभो मृड शंकर ते नमः । अधोक्षज गजाराते कामारे विषभक्षण ।२३। नारायणाय देवाय नारायणपराय च । नारायणस्वरूपाय नारायणतनूद्भव ॥२४। नमस्ते सर्वरूपाय महानरकहारिणे । पापहारिणे तुभ्यं नमो वृषभवाहन ॥ २५ ॥ क्षणादिकालरूपाय स्वभक्तबलदायिने । नानारूपाय रूपाय दैत्यचक्रविमर्दने ॥२६॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । सहस्रमूर्त्तये तुभ्यं सहस्रावयवाय च २७ धर्मरूपाय सत्त्वाय नमस्सत्त्वात्मने हर । वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च ।२८। नमो वेदस्वरूपाय वेदवक्त्रे नमो नमः । सदाचाराध्वगम्याय सदाचाराध्वगामिने॥

महेश्वर ! आपको प्रणाम है ! नीलकण्ठ, रुद्र और रुद्ररूपीके लिये प्रणाम है १९ वेदान्तसे जाननेमें आने वाले इन्द्रियोंके मार्गसे अतीत शिवशंकरके लिये प्रणाम है । हे गुणवर्जित, गुणस्वरूप और गुणी ! आपको हम प्रणाम करते हैं ।२०। हे महादेव ! त्रिलोकीको आनन्द देने वाले आपको हम प्रणाम करते हैं, प्रद्युम्न अनिरुद्ध और वासुदेवरूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥२१॥ हे दामोदर ! संकर्षण, कंसनाशी, चाणूरमर्दी, विषभक्षक (सबमें आत्मरूपसे व्याप्त) आपके लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ हे इन्द्रियोंके ईश ! हे अच्युत ! हे विभो ! हे मृड ! हे शंकर ! हे कमलाक्ष ! हे गजासुरका संहार करने वाले ! हे कामदहन ! हे विषभक्षक ! आपको प्रणाम है ॥२३॥ नारायण, देव, और नारायण जिनमें परायण रहते हैं, नारायणस्वरूप और नारायण जिनके स्वरूपसे प्रकट होते हैं, उन सर्वरूप और महानरकको दूर करने वाले पापहारी वृषवाहन महादेवको प्रणाम है ॥ २४ ॥ २५ ॥ क्षण आदि कालरूप वाले, अपने भक्तोंको बल देने वाले, अनेक रूप वाले, स्वयं रूपात्मक और दैत्योंके चक्रका मर्दन करने वाले शिवके लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके भक्त, गौ और ब्राह्मणोंका हित करने वाले, सहस्रों मूर्तियोंमें व्याप्त और सहस्रों अवयव वाले भगवान् शंकरको प्रणाम है ।२७। हे हर ! आप धर्मरूप हैं, सत्त्वमय हैं और सत्त्वात्मक हैं, ऐसे आपके लिये प्रणाम है । वेदोंसे जिनका स्वरूप जाननेमें आता है और वेद जिनको प्रिय हैं ऐसे महादेवको प्रणाम है ॥ २८ ॥ वेदस्वरूप और वेद जिनके मुखमें विराजमान हैं, ऐसे शिवके लिये प्रणाम है, सदाचारसे चलने पर जो मिल सकते हैं और जो सदाचार पर चलते हैं, उन शिवके लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ विष्णुमें भी व्याप्त, सत्यमय, सत्यप्रिय, सत्यस्वरूप और सत्यसे

विष्टरश्रवसे तुभ्यं नमस्सत्यमयाय च । सत्यप्रियाय सत्याय सत्यगम्याय ते नमः ॥३०॥ नमस्ते मायिने तुभ्यं मायाधीशाय वै नमः । ब्रह्मगाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मजाय च ॥ ३१ ॥ तपसे ते नमस्त्वीश तपसां फलदायिने । स्तुत्याय स्तुतये नित्यं स्तुति-संप्रीतचेतसे ॥ ३२ ॥ श्रुत्याचारप्रसन्नाय स्तुत्याचारप्रियाय च । चतुर्विधस्वरूपाय जल-स्थलजरूपिणे ॥ ३३ ॥ सर्वे देवादयो नाथ श्रेष्ठत्वेन विभूतयः । देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणां त्वं रविर्मतः ।३४। सत्यलोकोऽसि लोकानां सरितां द्युसरिद्भवान् । श्वेतवर्णोऽसि वर्णानां सरसां मानसं सरः ॥ ३५ ॥ शैलानां गिरिजातातः कामधुक्त्वं च गोषु ह । क्षीरोदधिस्तु सिन्धूनां धातूनां हाटको भवान् ॥ ३६ ॥ वर्णानां ब्राह्मणोऽसि त्वं नृणां राजासि शंकर । मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं तीर्थानां तीर्थराड् भवान् ॥३७। उपलेषु समस्तेषु स्फटिकस्त्वं महेश्वर । कमलस्त्वं प्रसूनेषु शैलेषु हिमवांस्तथा ॥ ३८ ॥ भवान्वाग्व्यवहारेषु भार्गवस्त्वं कविष्वपि । पक्षिष्वेवासि शरभः सिंहो हिंस्रेषु संमतः ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिला च त्वं शिलासु वृषभध्वज । पूज्यरूपेषु सर्वेषु नर्मदालिङ्गमेव हि ॥४०॥

प्राप्त होने वाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ आप माया वाले हैं और मायाधीश हैं, ऐसे आपके लिये प्रणाम है, ब्रह्म (वेद) से प्राप्त होने वाले वेदस्वरूप आपको प्रणाम है और वेदोंसे जिनका स्वरूप प्रकट होता है, ऐसे आपके लिये प्रणाम है ॥३१॥ तपका फल देने वाले और तपमें व्याप्त, स्तुति करने योग्य और स्तुतिरूप और स्तुतिसे जिनका चित्त प्रसन्न होता है, ऐसे देवको हम प्रणाम करते हैं ॥३२॥ वेदोक्त आचरणसे प्रसन्न होने वाले और स्तुति करने वालोंके प्रिय, हिरण्यगर्भ विराट् आदि चार प्रकारके स्वरूप वाले जल और स्थल जिनका रूप है ऐसे शंकरके लिये प्रणाम है ॥३३॥ हे नाथ! सब देवता आदि श्रेष्ठ होनेसे आपकी ही विभूति हैं, आप देवताओंमें इन्द्ररूप हैं और ग्रहोंमें सूर्य आप ही हैं ॥ ३४ ॥ आप लोकोंमें सत्यलोक हैं और नदियोंमें सुरसरित् हैं, वर्णोंमें श्वेत वर्ण हैं और सरोवरोंमें मानसरोवर हैं ३५ पर्वतोंमें हिमाचल आपका ही रूप है, गौओंमें कामधेनु आप ही हैं, समुद्रोंमें आप क्षीरसमुद्र हैं और धातुओंमें आप सुवर्ण हैं ॥३६॥ वर्णोंमें ब्राह्मण आपके ही रूप हैं और हे शंकर! मनुष्योंमें आप राजारूप हैं ॥ ३७ ॥ हे महेश्वर! आप समस्त पाषाणोंमें स्फटिक हैं, फूलोंमें कमलमें आपका अंश है, पर्वतोंमें हिमाचलमें आपका अंश है ॥ ३८ ॥ आप व्यवहारोंमें वाणीरूप हैं और चतुर पुरुषोंमें शुक्राचार्य हैं, पक्षियोंमें जो शरभ है, उसमें आपका ही अंश है और हिंसक जीवोंमें सिंह आपका रूप है ३९ हे वृषभध्वज! शिलाओंमें शालग्रामकी शिला आपका ही रूप है, सब पूज्यरूपोंमें नर्मदालिंग आपका ही रूप है ४०

नन्दीश्वरोऽसि पशुषु वृषभः परमेश्वरः। वेदेषूपनिषद्रूपो यज्वनां शीतभानुमान् ॥४१॥ प्रतापितां पावकस्त्वं शैवानामच्युतो भवान्। भारतं त्वं पुराणानां मकारोऽस्यक्षरेषु च ॥ प्रणवो बीजमन्त्राणां दारुणानां विषं भवान्। व्योमव्याप्तिमतां त्वं वै परमात्मासि चात्मनाम् ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां मनश्च त्वं दानानामभयं भवान्। पावनानां जलं चासि जीवनानां तथा मतम् ॥ ४४ ॥ लाभानां पुत्रलाभोऽसि वायुर्वेगवतामसि। नित्यकर्मसु सर्वेषु संध्योपास्तिर्भवान्मता ॥४५॥ क्रतूनामश्वमेधोऽसि युगानां प्रथमो युगः। पुष्यस्त्वं सर्वधिष्ण्यानाममावास्या तिथिष्वसि ॥ ४६ ॥ सर्वर्तुषु वसन्तस्त्वं सर्वपर्वसु संक्रमः। कुशोऽसि तृणजातीनां स्थूलवृक्षेषु वै वटः ॥४७॥ योगेषु च व्यतीपातस्सोमवल्लीलतासु च। बुद्धीनां धर्मबुद्धिस्त्वं कलत्रं सुहृदां भवान् ॥ ४८ ॥ साधकानां शुचीनां त्वं प्राणायामो महेश्वरः। ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वेषु भवान् विश्वेश्वरो मतः ॥ ४९ ॥ धर्मस्त्वं सर्वबन्धूनामाश्रमाणां परो भवान्। मोक्षस्त्वं सर्ववर्गेषु रुद्राणां नीललोहितः ॥ ५० ॥ आदित्यानां वासुदेवो हनूमान्वानरेषु च। यज्ञानां जपयज्ञोऽसि रामः शस्त्रभृतां भवान्

हे परमेश्वर ! आप पशुओंमें नन्दीश्वर वृषभरूप हैं, वेदोंमें उपनिद्रूप हैं और यजन करने वालोंमें शीतल किरणों वाले चन्द्रमा आप ही हैं ॥४१॥ प्रतापी व्यक्तियोंमें आप पावक हैं शिवभक्तोंमें अच्युत आप ही हैं, पुराणोंमें महाभारत आपका ही रूप है और अक्षरोंमें मकार आपका रूप है ॥ ४२ ॥ बीजमन्त्रोंमें प्रणव आपका ही रूप है, दारुण पदार्थोंमें विष आपका रूप है, व्याप्ति वालोंमें आप व्योमरूप हैं और आत्माओंमें परमात्मा हैं ॥ ४३ ॥ आप इन्द्रियोंमें मन हैं और दानोंमें अभयदान आपका रूप है, पवित्र करने वाली वस्तुओंमें जल आपका रूप है जीवनप्रद वस्तुओंमें जलरूपसे आप ही विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ लाभोंमें आप पुत्रलाभरूप हैं और वेगवान् पदार्थोंमें वायु आपका रूप है, सब नित्यकर्मोंमें संध्योपासन आप ही हैं अर्थात् जो संध्योपासन करता है, वह आपकी ही उपासना करता है ४५ ॥ यज्ञोंमें अश्वमेध आपका ही रूप है, युगोंमें प्रथम युग सत्ययुग आप ही हैं, सब स्थानोंमें पुष्य स्थान आपका ही है और तिथियोंमें अमावास्या आपका ही रूप है ॥ ४६ ॥ सकल ऋतुओंमें वसन्त आपका ही रूप है और समस्त पर्वोंमेंसे संक्रान्तिमें आपका अंश है, तृणोंमें आप कुशस्वरूप हैं, स्थूलवृक्षोंमेंसे वट वृक्षमें आपका अंश विराजमान है ॥४७॥ योगोंमें व्यतीपात आपका रूप है और लताओंमें सोमवल्ली आपका रूप है ॥ ४८ ॥ हे महेश्वर! पवित्र साधकोंमें आप प्राणायामरूपसे विराजमान हैं, सब ज्योतिर्लिङ्गोंमें आप विश्वेश्वर हैं ॥ ४९ ॥ सकल बन्धुओंमें आप धर्मरूप बन्धु हैं आश्रमोंमें संन्यास आश्रममें आपका अंश है ॥५०॥ आदित्योंमें आप वासुदेव

गन्धर्वाणां चित्ररथो वसूनां पावको ध्रुवम् । मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी ऐरावतो गजेन्द्राणां सिद्धानां कपिलो मतः। अनन्तस्त्वं हि नागानां पितॄणामर्यमा भवान् कालः कलयतां च त्वं दैत्यानां बलिरेव च । किं बहूक्तेन देवेश सर्वं विष्टभ्य वै जगत् ५४ एकांशेन स्थितस्त्वं हि बहिस्थोऽन्वित एव च ॥ ५५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति स्तुत्वा सुरास्सर्वे महादेवं वृषध्वजम् । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः शूलिनं परमेश्वरम् ॥५६॥ प्रत्यूचुः प्रस्तुतं दीनास्स्वार्थं स्वार्थविचक्षणाः । वासवाद्या नतस्कन्धाः कृताञ्जलिपुटा मुने ॥५७॥ देवा ऊचुः । पराजिता महादेव भ्रातृभ्यां सहितेन तु । भगवंस्तारकोत्पन्नैः सर्वे देवास्सवासवाः ॥ ५८ ॥ त्रैलोक्यं स्ववशं नीतं तथा च मुनिसत्तमाः । विध्वस्तास्सर्वसंसिद्धास्सर्वमुत्सादितं जगत् ॥ ५९ ॥ यज्ञभागान्समग्राँस्तु स्वयं गृह्णाति दारुणः । प्रवर्तितो ह्यधर्मस्तैर्ऋषीणां च निवारितः ॥६०॥ अवध्यास्सर्वभूतानां नियतं तारकात्मजाः । तदिच्छया प्रकुर्वन्ति सर्वे कर्माणि शङ्कर ॥ ६१ ॥ यावन्न क्षीयते दैत्यैर्घोरैस्त्रिपुरवासिभिः ।

हैं, वानरोंमें हनुमान्में आपका अंश है, जपोंमें आप जपयज्ञरूप हैं और सब वर्णोंमें आप मोक्षरूपसे स्थित हैं, शस्त्रधारियोंमेंसे परशुराममें आपका अंश है ॥ ५१ ॥ आप गन्धर्वोंमें चित्ररथ हैं, वसुओंमें पवित्र करने वाले ध्रुव नामक वसु हैं, महीनोंमें अधिमास आपका रूप है, व्रतोंमें शिवचतुर्दशीमें आप विराजमान रहते हैं ॥ ५२ ॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावतमें आपका अंश है, सिद्धोंमें कपिलरूपसे आप विराजमान हैं, नगरोंमें अनन्त आपका अंश है तथा पितरोंमें आप अर्यमा हैं ॥५३॥ कलन करने वालोंमें काल आपका ही रूप है और दैत्योंमें बलि आपका ही अंश है, हे देवेश ! अधिक कहनेसे क्या, आप अपने एक अंशसे इस सारी त्रिलोकीको भीतर और बाहरसे व्याप्त कर स्थित हैं ५४।५५ सनत्कुमारजीने कहा, कि—इस प्रकार सब देवताओंने नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंसे शूलधारी परमेश्वर महेश्वरकी स्तुति की ॥ ५६ ॥ हे मुने ! फिर स्वार्थको साधनेमें चतुर इन्द्र आदि देवताओंने दीन होकर कंधोंको झुका हाथ जोड़ शिवजीसे प्रार्थना की ॥ ५७ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे भगवन् ! हे महादेव ! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने इन्द्र सहित देवताओंका पराजय कर डाला है ॥ ५८ ॥ त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया है और मुनियोंको भी अपने अधीन कर लिया है, उन्होंने सब सिद्ध स्थानोंको भ्रष्ट कर जगत्को उत्पीड़ित कर रखा है ॥ ५९ ॥ वह दारुण दानवपुत्र सब यज्ञके भागोंको स्वयं ही हड़प जाते हैं, उन्होंने अधर्म फैला रखा है, ऋषियोंके धर्मको उड़ा दिया है ॥ ६० ॥ वे तारकपुत्र सब प्राणियोंसे अवध्य हैं और हे शंकर ! वे अपनी इच्छासे ही सकल कर्मोंको करते हैं ॥ ६१ ॥ जब तक यह त्रिपुरवासी

तावद्विधीयतां नीतिर्यया संरक्ष्यते जगत् ।। ६२ ।। सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तेषामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् । शिवः संभाषमाणानां प्रतिवाक्यमुवाच सः ।। ६३ ।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
देवस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

शिव उवाच । अयं वै त्रिपुराध्यक्षः पुण्यवान्वर्ततेऽधुना । यत्र पुण्यं प्रवर्तेत न हन्तव्यो बुधैः क्वचित् ॥१॥ जानामि देवकष्टञ्च विबुधास्सकलं महत् । दैत्यास्ते प्रबला हन्तुमशक्यास्तु सुरासुरैः ॥ २ ॥ पुण्यवन्तस्तु ते सर्वे समयास्तारकात्मजाः । दुस्साध्यस्तु वधस्तेषां सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ ३ ॥ मित्रद्रोहं कथं जानन्करोमि रणकर्कशः । सुहृद्द्रोहे महत्पापं पूर्वमुक्तं स्वयम्भुवा ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेने भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥५॥ मम भक्तास्तु ते दैत्या मया वध्याः कथं सुराः । विचार्यतां भवद्भिश्च धर्मज्ञैरेव धर्मतः ॥ ६ ॥ तावत्तु नैव हन्तव्या यावद्भक्तिकृतश्च मे । तथापि विष्णवे देवा निवेद्यं कारणं त्विदम् ॥ ७ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा देवाश्शक्रपुरोगमाः । न्यवेदयन् द्रुतं सर्वे ब्रह्मणे प्रथमं मुने ॥ ८ ॥

घोर दैत्य मलियामेट न करें, उससे पहिले ही आप कोई ऐसी नीति चलिये, जिससे जगत्‌की रक्षा हो ॥ ६२ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि–भाषण करते हुए स्वर्गवासी इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार कहने पर शिवजी उनको उत्तर देने लगे ॥ ६३ ॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ * *

शिवजीने कहा, कि–त्रिपुरोंका अध्यक्ष आज कल पुण्यात्मा है, अतः जहाँ पुण्य हो, तहाँ पर विद्वानोंको प्रहार नहीं करना चाहिये ॥१॥ हे देवताओं ! मैं तुम्हारे बड़े भारी कष्टको जानता हूँ, परन्तु उन प्रबल दैत्योंका वध देवता और असुरोंके लिये भी अशक्य है ॥ २ ॥ मय और तारकपुत्र इस समय सब ही पुण्यात्मा हैं अतः उन सब पुरवासियोंका वध करना दुःसाध्य है ॥ ३ ॥ यद्यपि मैं रणकर्कश हूँ, तो भी मैं मित्रद्रोह कैसे करूँ, ब्रह्माजीने पहिले कहा था, कि-मित्रद्रोह बड़ा भारी पाप है ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर, व्रतको भङ्ग करने वाला, इन सबके तो उद्धारका उपाय है, परन्तु सज्जन पुरुष कहते हैं, कि—कृतघ्नका किसी प्रकार उद्धार नहीं होसकता ॥ ५ ॥ वे दैत्य मेरे भक्त हैं अतः हे देवताओं ! मैं उनको किस प्रकार मार सकता हूँ, आप धर्मात्मा हैं, अतः धर्मपूर्वक आप भी तो इस बातका विचार करें ॥ ६ ॥ जब तक वे मेरी भक्ति कर रहे हैं, तब तक मैं उनको नहीं मार सकता, तथापि हे देवताओं ! तुम विष्णुसे इस बातको कहो ॥ ७ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे मुने ! इस बातको सुन कर इन्द्र आदि सब देवताओंने पहिले ब्रह्माजीसे सब बात

ततो विधिं पुरस्कृत्य सर्वे देवास्सवासवाः । वैकुण्ठं प्रययुश्शीघ्रं सर्वे शोभासमन्वितम् ॥ तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा प्रणेमुर्जातसंभ्रमाः । तुष्टुवुश्च महाभक्त्या कृताञ्जलिपुटास्सुराः ॥ स्वदुःखकारणं सर्वं पूर्ववत्तदनन्तरम् । न्यवेदयन्हरं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥११॥ देवदुःखं ततः श्रुत्वा वृत्तं च त्रिपुरालये । ज्ञात्वा व्रतं च तेषां तद्विष्णुर्वचनमब्रवीत् १२ विष्णुरुवाच । इदं सत्यं वचश्चैव यत्र धर्मस्सनातनः । तत्र दुःखं न जायेत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥ १३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा देवा दुःखमुपागताः । पुनरूचुस्तथा विष्णुं परिम्लानमुखाम्बुजाः ॥ १४ ॥ देवा ऊचुः । कथं चैव प्रकर्त्तव्यं कथं दुखं निरस्यते । कथं भवेम सुखिनः कथं स्थास्यामहे वयम् ॥ १५ ॥ कथं धर्मा भविष्यन्ति त्रिपुरे जीविते सति । देवदुःखप्रदा नूनं सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ १६ ॥ किं वा ते त्रिपुरस्येह वधश्चैव विधीयताम् । नोचेदकालिकी देवसंहृतिः क्रियतां ध्रुवम् ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा ते तदा देवा दुःखं कृत्वा पुनः पुनः । स्थितिं नैव गतिं ते

कही ॥८॥ तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजीको साथमें लेकर शोभासम्पन्न वैकुण्ठकी ओर शीघ्रतासे चल दिये ॥ ९ ॥ तहाँ उन्होंने हरिको देख गौरवपूर्वक उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर महाभक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ फिर उन्होंने पहिलेकी समान ही अपने दुःखके कारणको प्रभाववान् विष्णुसे कहा ॥११॥ तब देवताओंके दुःखको सुनकर और त्रिपुरालयमें जो उन्होंने व्रत धारण कर रक्खा था उसको जान कर तथा महादेवके दिये हुए उत्तरको जान कर विष्णुने उनसे कहा ॥ १२ ॥ विष्णुने कहा, कि-महादेवजीका यह वचन सत्य है, कि-जहाँ सनातनधर्मका पालन होता हो तहाँ पर सूर्यके दीखने पर जैसे अन्धकार भाग जाता है, तिसी प्रकार दुःख भाग जाता है-जहाँ धर्मका पालन होता है तहाँ दुःख हो ही नहीं सकता ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-विष्णुके इस वचनको सुन कर देवता दुःखित हुए और अपने मुखकमल को उदास कर विष्णुसे फिर कहने लगे ॥ १४ ॥ देवताओंने कहा, कि-हम कैसी करें ? हमारा दुःख किस प्रकार दूर हो, हम किस प्रकार सुखी होंगे और हम किस प्रकार जगत्में टिके रहेंगे ॥ १५ ॥ त्रिपुरोंके जीवित रहने पर हम धर्म किस प्रकार कर सकेंगे, क्योंकि-त्रिपुरवासी तो देवताओंको दुःख ही देने वाले हैं ॥ १६ ॥ हे देव ! अधिक कहनेसे क्या ? क्या तो त्रिपुरका संहार करिये अथवा अकालमें ही हम देवताओंका संहार कर डालिये ॥१७॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-वे देवता इस प्रकार अपना दुखड़ा रोकर विष्णुसे वारम्वार कहने लगे, कि-आपके सिवाय हमारी गति और स्थिति और कोई नहीं है ॥ १८ ॥ उनको इस प्रकार हीन और विनम्र देख कर

नौ चक्रुर्दैववरादिह ॥१८॥ तान्नौ तथाविधान्दृष्ट्वा हीनान्विनयसंयुतान् । सोऽपि नारायणः श्रीमांश्चिंतयंश्चेतसा तथा॥ १९ ॥ किं कार्यं देवकार्येषु मया देवसहायिना । शिवभक्तास्तु ते दैत्यास्तारकस्य सुता इति ॥ २० ॥ इति संचिन्त्य तत्काले विष्णुना प्रभविष्णुना । ततो यज्ञास्स्मृतास्तेन देवकार्यार्थमव्ययाः ॥२१॥ तद्विष्णुस्मृतिमात्रेण यज्ञास्ते तत्क्षणं द्रुतम् । आगतास्तत्र यत्रास्ते श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥ ततो विष्णुं यज्ञपतिं पुराणं पुरुषं हरिम् । प्रणम्य तुष्टुवुस्ते वै कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ २३ ॥ भगवानपि तान्दृष्ट्वा यज्ञान्प्राह सनातनान् । सनातनस्तदा सेन्द्रान्देवानालोक्य चाच्युतः ॥ २४ ॥ विष्णुरुवाच । अनेनैव सदा देवा यजध्वं परमेश्वरम् । पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच । अच्युतस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः । प्रेम्णा ते प्रणतिं कृत्वा यज्ञेशं तेऽस्तुवन्सुराः ॥ २६ ॥ एवं स्तुत्वा ततो देवा अयजन्यज्ञपूरुषम् । यज्ञोक्तेन विधानेन संपूर्णविधयो मुने ॥२७॥ ततस्तस्माद्यज्ञकुण्डात्समुत्पेतुस्सहस्रशः । भूतसंघा महाकायाः शूलशक्तिगदायुधाः ॥ २८ ॥ ददृशुस्ते सुरास्तान् वै भूतसंघान् सहस्रशः । शूलशक्तिगदाहस्तान्दण्डचापशिलायुधान् ॥२९। नानाप्रहरणोपेतान्

श्रीमान् नारायण अपने मनमें विचारने लगे, कि–॥ १९ ॥ ये तारकके पुत्र शिवभक्त हैं अब मैं देवताओंका सहायक बन कर इनका क्या कार्य करूँ २० प्रभाववान् विष्णुने इस प्रकार विचार करते २ देवताओंका कार्य करनेके लिये यज्ञोंका स्मरण किया ॥ २१ ॥ विष्णु भगवान्के स्मरण करते ही वे यज्ञ जहाँ पर श्रीपति पुरुषोत्तम थे तहाँ पर शीघ्र ही आ पहुँचे ॥ २२ ॥ और हाथ जोड़ प्रणाम कर यज्ञपुरुष पुराणपुरुष हरि विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ सनातन भगवान् भी उन यज्ञोंको देखकर इन्द्र आदि देवताओंकी ओर देखते हुए कहने लगे ॥ २४ ॥ विष्णुने कहा, कि—हे देवताओं ! तुम त्रिपुरका विनाश करनेके लिये तथा त्रिलोकीकी विभूतिके लिये इन यज्ञोंसे परमेश्वरका पूजन करो ॥२५॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि देवता, बुद्धिमान् देवदेव अच्युतके वचनको सुन उनको प्रेमपूर्वक प्रणाम कर यज्ञेशकी स्तुति करने लगे ।२६। हे मुने ! पूर्ण विधिको जानने वाले उन देवताओंने इस प्रकार यज्ञेश भगवान्‌की स्तुति करके यज्ञके लिये कहे हुए विधानसे यज्ञपुरुषकी पूजा करनी आरंभ करदी ॥ २७ ॥ तब उस यज्ञकुण्डमेंसे शूल शक्ति और गदाका आयुध धारण किये हुए विशाल शरीर वाले बड़े २ हजारों भूत प्रकट हुए ॥ २८ ॥ तब देवताओंने हाथमें शूल शक्ति और गदाको लिये हुए तथा दण्ड चाप और शिलारूपी आयुध वाले हजारों भूतसंघोंको देखा ॥ २९ ॥ अनेक प्रकारके आयुधोंसे सम्पन्न, अनेक प्रकारका वेष धारण करने वाले, कालाग्नि, रुद्र,

नानावेषधरैस्तथा । कालाग्निरुद्रसदृशान्कालसूर्योपमांस्तदा ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा तानब्रवीद्विष्णुः प्रणिपत्य पुरः स्थितान् । भूतान्यज्ञपतिः श्रीमान् रुद्राज्ञाप्रतिपालकः ॥ ३१ ॥ विष्णुरुवाच । भूताः शृणुत मद्वाक्यं देवकार्यार्थमुद्यताः । गच्छन्तु त्रिपुरं सद्यस्सर्वे हि बलवत्तराः ॥ ३२ ॥ गत्वा दग्ध्वा च भित्त्वा च भङ्क्त्वा दैत्यपुरत्रयम् । पुनर्यथागता भूता गन्तुमर्हथ भूतये ॥ ३३ ॥ सनत्कुमार उवाच । तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं ततो भूतगणाश्च ते । प्रणम्य देवदेवं तं ययुर्दैत्यपुरत्रयम् ॥३४॥ गत्वा तत्प्रविशन्तश्च त्रिपुराधिपतेजसि । भस्मसाद्भवन्सद्यश्शलभा इव पावके ॥ ३५ ॥ अवशिष्टाश्च ये केचित्पलायनपरायणाः । निसृत्यारं समायाता हरेर्निकटमाकुलाः ॥ ३६ ॥ तान्दृष्ट्वा स हरिः श्रुत्वा तच्च वृत्तमशेषतः । चिन्तयामास भगवान्मनसा पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥ किं कृत्यमधुना कार्यमिति सन्तप्तमानसः । सन्तप्तानमरान्सर्वानाज्ञाय च सवासवान् ॥ ३८ ॥ कथं तेषां च दैत्यानां बलाद्धत्वा पुरत्रयम् । देवकार्यं करिष्यामीत्यासीच्चिन्तासमाकुलः ॥३९॥ नाशोऽभिचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः । इति प्राह स्वयं चेशः श्रुत्याचारप्रमाणकृत् ॥ ४० ॥

और कालसूर्यकी समान उपमा वाले उन भूतोंको प्रणाम कर सामने खड़े हुए देख कर रुद्रकी आज्ञाका पालन करके, यज्ञपति भगवान् विष्णु उनसे कहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विष्णुने कहा, कि हे भूतो ! तुम मेरे वचनको सुनो ! तुम बली हो अतः देवताओंके कार्यके लिये उद्यत होकर जहाँ पर तीन पुर हैं, तहाँ शीघ्र ही जाओ ॥ ३२ ॥ तहाँ पहुँच उन दैत्योंके तीनों पुरोंको जला कर, तोड़ कर, फोड़ कर, फिर देवताओंका कल्याण करनेके लिये यहाँ लौट आओ ॥ ३३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि उन भूतगणोंने भगवान्के वाक्य को सुन कर उन देवदेवको प्रणाम किया और दैत्योंके तीन पुरोंकी ओर चल दिये ॥ ३४ ॥ और तहाँ पहुँच कर त्रिपुरमें घुसना चाहते थे, कि त्रिपुराधिप के तेजसे, अग्नि पर झपटने वाले भुनगोंकी समान भस्म होगए ॥ ३५ ॥ जो कुछ बाकी बचे वे व्याकुल हो भागते हुए हरिके पास पहुँचे ॥ ३६ ॥ उनको देखकर और उनकी सारी बातको सुनकर पुरुषोत्तम भगवान् अपने मनमें विचारने लगे, कि—॥ ३७ ॥ मैं अब क्या करूँ इस प्रकार अपने मन में सन्तप्त होकर और इन्द्रसहित सब देवताओंको भी सन्तप्त समझ कर वह अपने मनमें कहने लगे, कि—मैं इन दैत्योंके तीनों पुरोंको किस प्रकार बलपूर्वक नष्ट कर देवताओंके कामको करूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि—धार्मिकोंका अभिचारसे नाश नहीं होसकता । इस प्रकार वेदके आचारको प्रमाण मानने वाले ईशने स्वयं कहा ॥ ४० ॥ कि—त्रिपुरमें रहने वाले वे सब दैत्य धर्मात्मा हैं, इसी लिये वे असुरपुंगव अवध्य होरहे हैं, इसमें

दैत्याश्च ते हि धर्मिष्ठास्सर्वे त्रिपुरवासिनः । तस्मादवध्यतां प्राप्ता नान्यथासुरपुङ्गवाः ४१
कृत्वा तु सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ये । मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवांभसा ।४२।
रुद्राभ्यर्चनतो देवाः सर्वकामा भवन्ति हि । मानोपभोगसम्पत्तिर्वश्यतां याति वै भुवि ॥
तस्मात्तद्भोगिनो दैत्या लिङ्गार्चनपरायणाः । अनेकविधसंपत्ते र्मोक्षस्यापि परत्र च ॥४४॥
ततः कृत्वा धर्मविघ्नं तेषामेवात्ममायया । दैत्यानां देवकार्यार्थे हरिष्ये त्रिपुरं क्षणात् ४५
विचार्येत्थं ततस्तेषां भगवान् पुरुषोत्तमः । कर्तुं व्यवस्थितः पश्चाद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम् ॥
यावच्च वेदधर्मास्तु यावद्वै शंकरार्चनम् । यावच्च शुचिकृत्यादि तावन्नाशो भवेन्न हि ॥
तस्मादेवं प्रकर्तव्यं वेदधर्मस्ततो व्रजेत् । त्यक्तलिंगार्चना दैत्या भविष्यन्ति न संशयः४८
इति निश्चित्य वै विष्णुर्विघ्नं र्थमकरोत्तदा । तेषां धर्मस्य दैत्यानामुपायं श्रुतिखंडनम् ।४९।
तदैवोवाच देवान्स विष्णुर्देवसहायकृत् । शिवाज्ञया शिवेनैवाज्ञप्तस्त्रैलोक्यरक्षणे ॥ ५० ॥
विष्णुरुवाच । हे देवास्सकला यूयं गच्छत स्वगृहान् ध्रुवम् । देवकार्यं करिष्यामि यथा-
मति न संशयः ।५१। तान्रुद्राद्विमुखान्नूनं करिष्यामि सुयत्नतः । स्वभक्तिरहितान्ज्ञात्वा

कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ जो भारी पापको करनेके अनन्तर रुद्रका पूजन कर लेते हैं, वे जैसे जल कमलके पत्तेसे छूट जाता है, इस प्रकार पाप से छूट जाते हैं ॥ ४२ ॥ हे देवताओं ! रुद्रका पूजन करनेसे सब कामनायें सफल होजाती हैं और पृथ्वीमें अनेक प्रकारके भोग और सम्पत्तियें भोगने को मिलती हैं ॥४३॥ शिवलिंगके पूजनमें परायण दैत्य उस पूजाके फलको भोग रहे हैं, इस शिवलिंगपूजनसे अनेक प्रकारकी सम्पत्तियें मिलती हैं और आगेको मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ अतः मैं देवताओंका कार्य करनेके लिये मायासे दैत्योंके धर्मकार्यमें विघ्न डालूँगा, फिर क्षण भरमें त्रिपुरको समाप्त कर दूँगा ॥ ४५ ॥ भगवान् पुरुषोत्तम इस प्रकार विचार कर उन देवशत्रुओं के धर्ममें विघ्न डालनेकी व्यवस्था करने लगे ॥ ४६ ॥ जब तक उन दैत्यों में वेदधर्मका प्रचार है, जब तक वे शंकरका पूजन करते हैं, जब तक वे पवित्र कृत्य करते हैं तब तक उनका नाश नहीं होसकता ॥ ४७ ॥ इस लिये ऐसा करना चाहिये, कि-वे वेदधर्मको छोड़ दें और शिवलिंगकी पूजाको छोड़ दें ४८ विष्णुने इस प्रकार निश्चय करके उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालनेके लिये उन के श्रुतिविहित धर्मको खण्डित करनेका विचार किया ॥४९॥ शिवकी आज्ञा से शिवकी आज्ञानुसार त्रिलोकीके रक्षणमें प्रवृत्त देवताओंकी सहायता करने वाले विष्णुने उसी समय देवताओंसे कहा ॥ ५० ॥ विष्णुने कहा, कि-हे सकल देवताओं ! तुम अपने घरको जाओ, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार देव-ताओंका कार्य करूँगा, इसमें तुम कुछ सन्देह न रखो ॥५१॥ मैं यत्न करके

तान्करिष्यामि भस्मसात् ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार उवाच । तदाज्ञां शिरसाधाय श्वासितास्तेऽमरा मुने । स्वस्वधामानि विश्वस्ता ययुः परममोदिताः ॥ ५३ ॥ ततश्चाकरोद्विष्णुर्देवार्थं हितमुत्तमम् । तदेव श्रूयतां सम्यक्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे युद्धत्रिपुरवधोपाख्याने भूतत्रिपुरधर्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच । असृजच्च महातेजाः पुरुषं स्वात्मसम्भवम् । एकं मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः ॥ १ ॥ मुंडिनं म्लानवस्त्रं च गुंफिपात्रसमन्वितम् । दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे ॥ २ ॥ वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीयमाणं मुखे सदा । धर्मेति व्याहरन्तं हि वाचा विक्लवया मुनिम् ॥ ३ ॥ स नमस्कृत्य विष्णुं तं तत्पुरस्संस्थितोऽथ वै । उवाच वचनं तत्र हरिं स प्रांजलिस्तदा ॥ ४ ॥ अरिहन्नच्युतं पूज्यं किं करोमि तदादिश । कानि नामानि मे देव स्थानं वापि वद प्रभो ॥ ५ ॥ इत्येवं भगवान्विष्णुः श्रुत्वा तस्य शुभं वचः । प्रसन्नमानसो भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच । यदर्थं निर्मितोसि त्वं निबोध कथयामि ते । मदङ्गज महाप्राज्ञ मद्रूपस्त्वं न संशयः ॥ ७ ॥ ममांगाच्च समुत्पन्नो मत्कार्यं कर्तुमर्हसि ।

उनको रुद्रकी भक्तिसे विमुख कर दूँगा और उनको अपने देवताकी भक्तिसे रहित करके भस्म कर डालूँगा ॥ ५२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे मुने ! तब देवताओंको ढाढस बँधा और वे उनकी आज्ञाको शिर पर चढ़ा कर प्रसन्न होते हुए अपने २ धामोंको चले गए ॥ ५३ ॥ अब विष्णुने देवताओंका हित करनेके लिये उत्तम काम किया, उस देवताओंके सब दुःखोंको नष्ट करने वाली कथाको तुम सुनो ॥ ५४ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ ❀ ❀

सनत्कुमारने कहा, कि-महातेजस्वी अच्युतने उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालनेके लिये अपनी देहसे एक मायामय पुरुषको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ उसका शिर मुँडा हुआ था, कपड़े मैले थे, पात्र काठका था, हाथमें पकड़ी हुई पुञ्जिकाको वारवार हिला रहा था, मुख पर वस्त्र बँधा हुआ था और घबड़ाई हुई वाणीमें वह धर्म धर्म पुकार रहा था ॥ २ ॥ ३ ॥ वह विष्णुको प्रणाम कर उनके सामने खड़ा हो हाथ जोड़ कर कहने लगा, कि-अरिहन् ! फिर वह पूज्य अच्युतसे कहने लगा, कि-हे प्रभो ! मैं क्या करूँ ? उसकी आज्ञा दीजिये और मेरे नाम और स्थानोंका भी वर्णन करिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ भगवान् विष्णुने उसके इस शुभ वचनको सुन प्रसन्न होते हुए उससे कहा ॥ ६ ॥ विष्णुने कहा, कि-हे मेरे अंगसे उत्पन्न हुए महाबुद्धिमान् ! तुम जिस लिये रचे गए हो उसको सुनो, मैं कहता हूँ, तुम मेरे ही हो ॥ ७ ॥ तुम मेरे अंगसे उत्पन्न हुए हो,

मदीयस्त्वं सदा पूज्यो भविष्यसि न संशयः ॥८॥ अरिहन्नाम ते स्यात्तु ह्यन्यानि च शुभानि च । स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादरात् ॥ ९ ॥ मायिन्मायामयं शास्त्रं तत्षोडशसहस्रकम् । श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥१०॥ अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा । रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति ११ ददामि तव निर्माणे सामर्थ्यं तद्भविष्यति । माया च विविधा शीघ्रं त्वदधीना भविष्यति ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरेश्च परमात्मनः । नमस्कृत्य प्रत्युवाच स मायी तं जनार्दनम् ॥१३॥ मुण्डयुवाच । यत्कर्तव्यं मया देव द्रुतमादिश तत् प्रभो । त्वदाज्ञयाखिलं कर्म सफलञ्च भविष्यति ।१४॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा पाठयामास शास्त्रं मायामयं तथा । इहैव स्वर्गनरकप्रत्ययो नान्यथा पुनः ॥ तमुवाच पुनर्विष्णुस्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । मोहनीया इमे दैत्याः सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥१६॥ कार्यास्ते दीक्षिता नूनं पाठनीयाः प्रयत्नतः । मदाज्ञया न दोषस्ते भविष्यति महामते ॥ १७ ॥ धर्मास्तत्र प्रकाशन्ते श्रौतस्मार्त्ता न संशयः । अनया विद्यया सर्वे स्फोटनीया ध्रुवं यते।१८॥ गन्तुमर्हसि नाशार्थं मुण्डिंस्त्रिपुरवासिनाम् ।

इस लिये तुम्हें मेरा काम करना चाहिये, तुम मेरे ही हो अतः तुम संसारमें पूज्य होगे ॥ ८ ॥ तुम्हारा नाम अरिहन् होगा और भी शुभ नाम तुम्हारे होंगे मैं तुम्हारे स्थानोंको पीछे बताऊँगा, अब तुम प्रस्तुत बातको आदरपूर्वक सुनो ॥ ९ ॥ हे मायिन्! तुम श्रुति और स्मृतिसे विरुद्ध तथा वर्णाश्रमधर्मसे रहित सोलह हजारकी संख्या वाले मायामय शास्त्रको रचो ॥ १० ॥ तुम कर्मवादमय अपभ्रंश शास्त्रको यत्नके साथ रचो, फिर उसका विस्तार होजायगा ११ मैं तुम्हें उस शास्त्रको बनानेकी शक्ति देता हूँ, सो वह तुम्हें प्राप्त होजायगी और अनेक प्रकारकी मायाएँ शीघ्र ही तुम्हारे अधीन होजावेंगी ॥१२॥ परमात्मा हरिके उस वचनको सुन कर वह मायी पुरुष उनको प्रणाम कर कहने लगा ॥ १३ ॥ मुण्डीने कहा, कि–हे प्रभो! मुझे जो कुछ करना चाहिये, उसकी आप शीघ्र ही आज्ञा दीजिये, आपकी आज्ञासे वह सारा कर्म सफल होजावेगा ॥ १४ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि–इस प्रकार कह कर उन्होंने उस को मायामय शास्त्र पढ़ाया, कि–स्वर्ग नरक सब यहाँ ही हैं और कहीं नहीं रखे हैं ॥ १५ ॥ विष्णुने शिवजीके चरणकमलका स्मरण करके फिर कहा, कि–इन त्रिपुरवासी समस्त दैत्योंको तुम मोहमें डालो, इनको दीक्षित करो और प्रयत्नपूर्वक पढ़ाओ, हे महामते! मेरी आज्ञासे इसमें तुम्हें कुछ दोष नहीं लगेगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे यते! त्रिपुरमें श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए धर्म प्रकाशित होरहे हैं, इस विद्यासे तुम उन सबको भ्रष्ट करो ॥१८॥ हे मुण्डिन्!

तमोधर्मं संप्रकाश्य नाशयस्व पुरत्रयम् ॥१९॥ ततश्चैव पुनर्गत्वा मरुस्थल्यां त्वया विभो । स्थातव्यं च स्वधर्मेण कलिर्यावत्समाव्रजेत् ॥ २० ॥ प्रवृत्ते तु युगे तस्मिन् स्वीयो धर्मः प्रकाश्यताम् । शिष्यैश्च प्रतिशिष्यैश्च वर्तनीयस्त्वया पुनः ॥ २१ ॥ मदाज्ञया भवद्धर्मो विस्तारं यास्यति ध्रुवम् । मदनुज्ञापरो नित्यं गतिं प्राप्स्यसि मामकीम् ॥ २२ ॥ एवमाज्ञा तदा दत्त्वा विष्णुना प्रभविष्णुना । शासनाद्देवदेवस्य हृदा त्वन्तर्दधे हरिः ॥ २३ ॥ ततस्स मुण्डी परिपालयन्हरेराज्ञां तथा निर्मितवांश्च शिष्यान् । यथास्वरूपं चतुरस्तदानीं मायामयं शास्त्रमपाठयत्स्वयम् ॥ २४ ॥ यथा स्वयं तथा ते च चत्वारो मुंडिनश्शुभाः । नमस्कृत्य स्थितास्तत्र हरये परमात्मने ॥२५॥ हरिश्चापि मुने तत्र चतुरस्तांस्तदा स्वयम् । उवाच परमप्रीतश्शिवाज्ञापरिपालकः ॥२६॥ यथा गुरुस्तथा यूयं भविष्यथ मदाज्ञया । धन्याः स्थ सद्गतिमिह संप्राप्स्यथ न संशयः ॥ २७ ॥ चत्वारो मुंडिनस्तेऽथ धर्मं पाषण्डमाश्रिताः । हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डवस्त्रस्य धारकाः ॥ २८ ॥ मलिनान्येव वासांसि धारयन्तो ह्यभाषिणः । धर्मो लाभः परं तत्त्वं वदन्तस्त्वतिहर्षतः ॥२९॥ मार्जनीं ध्रियमाणाश्च वस्त्रखण्डविनिर्मिताम् । शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद् ध्रुवम् ३०

तुम त्रिपुरवासियोंके नाशके लिये अब जाओ और वहाँ इस तमोधर्मका प्रकाश करके तीनों पुरोंको नष्ट कर डालो ॥ १९ ॥ हे विभो ! फिर तुम मरुभूमिमें जाकर कलिके आने तक रहना ॥ २० ॥ और जब कलियुग आजाय तब तुम कलियुगमें अपने शिष्य प्रशिष्योंके द्वारा फिर इस धर्मको प्रकाशित करना २१ मेरी आज्ञासे तुम्हारा धर्म विस्तारको प्राप्त होगा और मेरी आज्ञामें परायण रहनेके कारण तुम्हें मेरी गति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ प्रभाववान् विष्णुने हृदय में मिले हुएदेवदेवके शासनसे इस प्रकार आज्ञा दी और अन्तर्धान होगए २३ फिर उस मुण्डीने हरिकी आज्ञाका पालन करके लिये चार शिष्य बनाये और उनको मायामय शास्त्र पढ़ाया ॥ २४ ॥ फिर वह अपने चारों शुभ शिष्योंको साथमें लेकर परमात्माको प्रणाम करके खड़ा होगया ॥ २५ ॥ तब शिवकी आज्ञाका पालन करने वाले हरि भी उन यज्ञोंको देख परम प्रसन्न हो बोले २६ कि-जैसे तुम्हारे गुरु हैं, तुम भी वैसे ही बनो, मेरी आज्ञाका पालन करनेसे तुम धन्य होजाओगे और तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी ॥ २७ ॥ फिर उन चारों मुण्डियोंने पाखण्ड धर्मका आश्रय लिया, हाथमें पात्र लेलिया और तुण्डवस्त्र को धारण किया मैले वस्त्र पहिरे और बोलना कम कर दिया और बड़े हर्षमें भर कर कहने लगे, कि-धर्म ही बड़ा भारी लाभ है ॥ २८ ॥ २९ ॥ और वे जीवहिंसाके भयसे वस्त्रके टुकड़ेसे बनाई हुई बुहारीको धीरे २ हिलाये जाते

ते सर्वे च तदा देवं भगवन्तं मुदान्विताः। नमस्कृत्य पुनस्तत्र मुने तस्थुस्तदग्रतः ॥३१॥ हरिणा च तदा हस्ते धृत्वा च गुरवेऽर्पिताः। अभ्यधायि च सुप्रीत्या तन्नामानि विशेषतः ॥ ३२ ॥ यथा त्वं च तथैवैते मदीया वै न संशयः। आदिरूपं च तन्नाम पूज्यत्वात्पूज्य उच्यते ॥३३॥ ऋषिर्यतिस्तथाकीर्य उपाध्याय इति स्वयम्। इमान्यपि तु नामानि प्रसिद्धानि भवन्तु वः ॥३४॥ ममापि च भवद्भिश्च नाम ग्राह्यं शुभं पुनः। अरिहन्निति तन्नाम ध्येयं पापप्रणाशनम् ॥३५॥ भवद्भिश्चैव कर्तव्यं कार्यं लोकसुखावहम्। लोकानुकूलं चरतां भविष्यत्युत्तमा गतिः ३६ सनत्कुमार उवाच। ततः प्रणम्य तं मायी शिष्ययुक्तस्स्वयं तदा। जगाम त्रिपुरं सद्यः शिवेच्छाकारिणं मुदा ॥ ३७ ॥ प्रविश्य तत्पुरं तूर्णं विष्णुना नोदितो वशी। महामायाविना तेन ऋषिर्मायां तदाकरोत् ॥ ३८ ॥ नगरोपवने कृत्वा शिष्यैर्युक्तः स्थितिं तदा। मायां प्रवर्तयामास मायिनामपि मोहिनीम् ॥ ३९ ॥ शिवार्चनप्रभावेण तन्माया सहसा मुने। त्रिपुरे न चचालाशु निर्विण्णोऽभूत्तदा यतिः ॥ ४० ॥ अथ विष्णुं स सस्मार तुष्टाव च हृदा बहु। नष्टोत्साहो विचेतस्को हृदयेन विदूयता ॥ ४१ ॥ तत्स्मृतस्त्वरितं विष्णुस्सस्मार शंकरं हृदि। प्राप्याज्ञां मनसा तस्य

थे ॥३०॥ वे सब फिर भगवान्को प्रेममें भर प्रणाम कर उनके सामने आकर खड़े होगये ॥ ३१ ॥ हरिने अपने हाथसे उनको पकड़ कर गुरुके अर्पण कर दिया और प्रीतिमें भर कर उनके नामोंका विशेषरूपसे वर्णन करने लगे ३२ जैसे तुम मेरे हो वैसे ही ये चारों भी मेरे ही हैं, तुम्हारे गुरुका आदिरूप नाम होगा, पूज्य होनेसे यह पूज्य भी कहलावेंगे। ऋषि यति आचार्य और उपाध्याय ये चारों प्रसिद्ध नाम तुम्हारे होंगे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम मेरे शुभ नाम को भी लेते रहना, वह नाम अरिहन् है, उस पापका संहार करने वाले नाम का तुम ध्यान करते रहना ॥ ३५ ॥ तुम भी संसारके सुख देने वाला काम करना, जो संसारके अनुकूल काम करते हैं, उनकी उत्तम गति होती है ।३६। सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-तदनन्तर वह मायी पुरुष अपने शिष्योंके साथ शिव की इच्छानुकूल चलने वाले विष्णुको प्रणाम कर त्रिपुरकी ओर चल दिया ।३७। विष्णुकी आज्ञानुसार उस नगरमें शीघ्रतासे उस महामायावीने माया फैलानी आरम्भ कर दी ॥ ३८ ॥ वह अपने शिष्योंके साथ नगरके बगीचेमें ठहर कर मायावी पुरुषोंको भी मोहित करने वाली मायाको फैलाने लगा ॥ ३९ ॥ हे मुने ! परन्तु शिवपूजनके प्रभावसे वह माया उस नगरमें सहसा चल न सकी, तब वह यति खिन्न हुआ ॥ ४० ॥ तब उसने उत्साहीन हो, अनमने हो, दुःखित हृदयसे विष्णुका स्मरण किया और हृदयमें उनकी स्तुति करने लगा ४१ उसके स्मरण करने पर विष्णुने अपने मनमें शंकरका स्मरण किया और मन

स्मृतवान्नारदं द्रुतम् ॥ ४२ ॥ स्मृतमात्रेण विष्णोश्च नारदस्समुपस्थितः । नत्वा स्तुत्वा पुरस्तस्य स्थितोऽभूत्सांजलिस्तदा ॥ ४३ ॥ अथ तं नारदं प्राह विष्णुर्मतिमतांवरः । लोकोपकारनिरतो देवकार्यकरस्सदा ॥ ४४ ॥ शिवाज्ञयोच्यते तात गच्छ त्वं त्रिपुरं द्रुतम् । ऋषिस्तत्र गतः शिष्यैर्मोहार्थं तत्सुवासिनाम् ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः । गतस्तत्र द्रुतं यत्र स ऋषिर्मायिनां वरः ॥ ४६ ॥ नारदोऽपि तथा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः । प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः ॥ ४७ ॥ ततश्च नारदो गत्वा त्रिपुराधीशसन्निधौ । क्षेमप्रश्नादिकं कृत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४८ ॥ नारद उवाच । कश्चित्समागतश्चात्र यतिर्धर्मपरायणः । सर्वविद्याप्रकृष्टो हि वेदविद्यापरान्वितः ४९ दृष्टाश्च बहवो धर्मा नैतेन सदृशाः पुनः । वयं सुदीक्षिताश्चात्र दृष्ट्वा धर्मं सनातनम् ५० तवेच्छा यदि वर्तेत तद्धर्मे दैत्यसत्तम । तद्धर्मस्य महाराज ग्राह्या दीक्षा त्वया पुनः ॥ सनत्कुमार उवाच । तदीयं स वचः श्रुत्वा महदर्थसुगर्भितम् । विस्मितो हृदि दैत्येशो जगौ तत्र विमोहितः ॥ ५२ ॥ नारदो दीक्षितो यस्माद्वयं दीक्षामवाप्नुमः ।

में शिवकी आज्ञाको पाकर शीघ्र ही नारदजीका स्मरण किया ॥४२॥ विष्णु के स्मरण करते ही नारदजी आगए और उनको प्रणाम कर हाथ जोड़ स्तुति करते हुए सामने खड़े होगए ॥ ४३ ॥ उस समय संसारका उपकार करनेमें परायण देवकार्यमें लगे हुए बुद्धिमान् विष्णुने नारदजीसे कहा ॥ ४४ ॥ हे तात ! मैं तुमसे शिवकी आज्ञासे कहता हूँ, कि–तुम शीघ्र ही त्रिपुरको जाओ, तहाँ पर एक ऋषि अपने शिष्योंको साथमें लेकर उनको मोहित करनेके लिये गए हुए हैं ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं कि–मुनिसत्तम नारदजी विष्णु के इस वचनको सुन कर माया वालोंमें श्रेष्ठ शिष्योंके साथ विराजमान ऋषि के पास शीघ्र ही पहुँच गए ॥ ४६ ॥ और मायी नारदने भी मायी प्रभुको आज्ञासे उस पुरमें प्रवेश कर उस मायी ऋषिसे दीक्षा लेली ॥ ४७ ॥ तदनन्तर नारदजीने त्रिपुराधीशके पास पहुँच उस राजासे क्षेमप्रश्न आदि करके सब वृत्तान्त कहा ॥ ४८ ॥ नारदजीने कहा, कि–यहाँ पर एक धर्मपरायण ऋषि आये हुए हैं, वे सब विद्याओंमें अच्छी गति रखते हैं और वेदविद्यामें भी पारङ्गत हैं ॥ ४९ ॥ जैसा इन्होंने बहुतसे धर्मोंको देखा है, तैसा हरेकने नहीं देखा होगा, इनमें शाश्वत धर्मको देखकर हमने भी इनसे दीक्षा ली है ५० हे दैत्यसत्तम ! यदि तुम्हें भी उस धर्मको ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो हे महाराज ! तुम भी उनसे दीक्षा लेलो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं कि–बड़े तत्त्वसे भरे हुए नारदजीके वचनको सुन कर वह दैत्येश हृदयमें विस्मित हुआ और मोहमें पड़ कर गाने लगा, कि–॥ ५२ ॥ चूँकि "नारदजीने दीक्षा ली

इत्येवं च विदित्वा वै जगाम स्वयमेव ह ॥ ५३ ॥ तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा मोहितो मायया तथा । उवाच वचनं तस्मै नमस्कृत्य महात्मने ॥५४॥ त्रिपुराधिप उवाच । दीक्षा देया त्वया मह्यं निर्मलाशय भो ऋषे । अहं शिष्यो भविष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥५५॥ इत्येवं तु वचः श्रुत्वा दैत्यराजस्य निर्मलम् । प्रत्युवाच सुयत्नेन ऋषिस्स च सनातनः ॥ ५६ ॥ मदीया करणीया स्याद्यद्याज्ञा दैत्यसत्तम । तदा देया मया दीक्षा नान्यथा कोटियत्नतः ॥ ५७ ॥ इत्येवं तु वचः श्रुत्वा राजा मायामयोऽभवत् । उवाच वचनं शीघ्रं यतिं तं हि कृताञ्जलिः ॥ ५८ ॥ दैत्य उवाच । यथाज्ञां दास्यसि त्वं च तत्तथैव न चान्यथा । त्वदाज्ञां नोल्लङ्घयिष्ये सत्यं सत्यं न संशयः ॥५९॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्रिपुराधीशितुस्तदा । दूरीकृत्य मुखाद्वस्त्रमुवाच ऋषिसत्तमः ॥ ६० ॥ दीक्षां गृह्णीष्व दैत्येन्द्र सर्वधर्मोत्तमोत्तमाम् । येन दीक्षाविधानेन प्राप्स्यसि त्वं कृतार्थताम् ॥ ६१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा स तु मायावी दैत्यराजाय सत्वरम् । ददौ दीक्षां स्वधर्मोक्तां तस्मै विधिविधानतः ॥ ६२ ॥ दैत्यराजे दीक्षिते च तस्मिन्ससहजे मुने । सर्वे च

है, इस लिये हमें भी दीक्षा लेना चाहिये" इसके अनन्तर वह स्वयं उस यति के पास चला गया ॥ ५३ ॥ और उनके रूपको देख उनकी मायासे मोहमें पड़ उन महात्माको प्रणाम कर कहने लगा, ॥५४॥ त्रिपुराधिपने कहा, कि-हे निर्मल आशय वाले ऋषे ! आप मुझे दीक्षा दें, मैं आपका शिष्य बनूँगा, इसमें कुछ सन्देह न करिये, यह बात सत्य है, सत्य है ॥ ५५ ॥ दैत्यराजके इस निर्मल वचनको सुन कर उन ऋषिने यत्नपूर्वक यह बात कही, कि-५६ हे दैत्यसत्तम ! यदि तुम मेरी आज्ञाको मानो, तो मैं दीक्षा देसकता हूँ, अन्यथा मैं करोड़ों यत्न करने पर भी नहीं दूँगा ॥५७॥ इस वचनको सुन कर राजा पर मायाका प्रभाव पड़ा और वह हाथ जोड़ कर शीघ्र ही यतिसे कहने लगा ५८ दैत्यने कहा, कि-आप जिस प्रकार आज्ञा देंगे मैं वैसा ही करूँगा, आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करूँग, यह सत्य है; सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—त्रिपुराधीशके इस वचनको सुन कर वह ऋषिसत्तम मुखसे वस्त्रको दूर कर कहने लगे ॥ ६० ॥ हे दैत्येन्द्र ! तुम सब धर्मोंमें परमोत्तम दीक्षाको ग्रहण करो, उस दीक्षाके विधानसे तुम कृतार्थ होजाओगे ॥ ६१ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-उस मायावीने दैत्यराजसे इस प्रकार कह कर, उसको अपने धर्मकी दीक्षा विधि-विधानसे दी ॥ ६२ ॥ जब उस दैत्यराजने अपने भाइयों सहित दीक्षा लेली, तो हे मुने ! सभी त्रिपुर— वासियोंने उससे दीक्षा ले ली ॥ ६३ ॥ इस प्रकार हे मुने ! उस

दीक्षिता जातास्तत्र त्रिपुरवासिनः ॥ ६३ ॥ मुनेः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च व्याप्तमासीद्द्रुतं तदा । महामायाविनस्तत्तु त्रिपुरं सकलं मुने ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमार-पाराशर्यसंवादे त्रिपुरदीक्षाविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्यास उवाच । दैत्यराजे दीक्षिते च मायिना तेन मोहिते । किमुवाच तदा मायी किं चकार स दैत्यपः ॥१॥ सनत्कुमार उवाच । दीक्षां दत्त्वा यतिस्तस्मा अरिहन्नारदादिभिः । शिष्यैः सेवितपादाब्जो दैत्यराजानमब्रवीत् ॥२॥ अरिहन्नुवाच । शृणु दैत्यपते वाक्यं मम सज्ज्ञानगर्भितम् । वेदान्तसारसर्वस्वं रहस्यं परमोत्तमम् ॥ ३ ॥ अनादिसिद्धस्संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः । स्वयं प्रादुर्भवत्येव स्वयमेव विलीयते ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यावद्देहनिबन्धनम् । आत्मैवैकेश्वरस्तत्र न द्वितीयस्तदीशिता ॥५॥ यद् ब्रह्मविष्णुरुद्राख्या तदाख्या देहिनामिमाः । आख्या यथास्मदादीनामरिहन्नादिरुच्यते ॥ ६ ॥ देहो यथास्मदादीनां स्वकालेन विलीयते । ब्रह्मादिमशकान्तानां स्वकालाल्लीयते तथा ॥ ७ ॥ विचार्यमाणे देहेऽस्मिन्न किञ्चिदधिकं क्वचित् । आहारो मैथुनं निद्रा भयं सर्वत्र यत्समम् ॥ ८ ॥ निराहारपरीमाणं प्राप्य सर्वो हि देहभृत् । सदृशीमेव संतृप्तिं प्राप्नुयान्नाधिकेतराम् ९

महामायावीके शिष्य प्रशिष्योंसे सारा त्रिपुर व्याप्त होगया ॥ ६४ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ ❀ छ ❀ छ ❀

व्यासजीने कहा, कि—जब उस मायावीने दैत्यराजको मोहमें डाल कर दीक्षित कर लिया, तब उस मायावीने फिर क्या किया और उस दैत्यराजने भी फिर क्या किया ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, कि—दीक्षा देनेके अनन्तर शिष्य नारद ऋषि आदि जिसके चरणोंकी सेवा कर कर रहे थे उस अरिहन्‌ने दैत्यराजसे कहा ॥ २ ॥ अरिहन् बोला, कि—हे दैत्यपते ! मेरे वेदान्तके सारसे भरे हुए रहस्यमय परमोत्तम ज्ञानगर्भित वाक्यको सुनो ॥ ३ ॥ यह संसार अनादि सिद्ध है, कर्ता और कर्मसे रहित है, अपने आप ही उत्पन्न होजाता है और अपने आप ही लीन होजाता है ॥ ४ ॥ ब्रह्मासे लेकर स्तंब तक जितना देहवान् पदार्थ है, उसमें एक आत्मा ही ईश्वर है, दूसरा कोई ईशिता (आज्ञा देने वाला) नहीं है ॥ ५ ॥ जैसे हमारे अरिहन् आदि नाम हैं, तैसे ही शरीरधारियोंके ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदि नाम हैं ॥६॥ जैसे हमारा देह कालवश लीन होजाता है, इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर मच्छर तकका शरीर अपना काल आने पर लीन होजाता है ॥ ७ ॥ विचार करने पर इस देहमें कहीं पर भी कुछ अधिक बात नहीं है, सर्वत्र ही आहार, निद्रा, मैथुन और भय समान ही हैं ॥८॥ (आहार) निराहारसे सब ही देहधारियोंको एकसी

यथा वितृषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदा वयम्। तृषितास्तु तथान्येऽपि न विशेषोऽल्पकोऽधिकः॥ १० ॥ सन्तु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः। परं निधुवने काले ह्येकैवेहोपयुज्यते ॥११॥ अश्वाः परश्शतास्सन्तु सन्त्वनेकेऽप्यनेकधा। अधिरोहे तथाप्येको न द्वितीयस्तथात्मनः॥१२॥ पर्य्यङ्कशायिनां स्वापे सुखं यदुपजायते। तदेव सौख्यं निद्राभिभूतभूशायिनामपि ॥१३॥ यथैव मरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम्। ब्रह्मादिकीटकान्तानां तथा मरणतो भयम् ॥ १४ ॥ सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या विचार्यते। इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित्॥ १५ ॥ धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥१६॥ एकस्मिन्नक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत्। घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न घातयेत्॥ १७ ॥ अहिंसा परमो धर्मः पापमात्मप्रपीडनम्। अपराधीनता मुक्तिस्स्वर्गोऽभिलषिताशनम्॥ १८ ॥ पूर्वसूरिभिरित्युक्तं सत्प्रमाणतया ध्रुवम्। तस्मान्न हिंसा कर्त्तव्या नरैर्नरकभीरुभिः ॥ १९ ॥ न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे। हिंसको नरकं गच्छेत्स्वर्गं गच्छेदहिंसकः॥ २० ॥ सन्ति

तृप्ति होती है, न्यूनाधिक नहीं ॥ ९ ॥ जैसे प्यास लगते समय शरबत मिलने से हम तृप्त होजाते हैं, इसी प्रकार दूसरे तृषित पुरुष भी तृप्त होते हैं, इसमें कुछ न्यूनाधिकता नहीं है ॥ १० ॥ रूप और लावण्यकी खान चाहे हजारों नारियें हों परन्तु मैथुनके समय एक ही उपयोगमें आती है ॥ ११ ॥ घोड़े चाहें सैंकड़ों हों, अनेक प्रकारके अनेक हों, परन्तु अपने चढ़नेके काममें एक ही घोड़ा आता है, दूसरा नहीं ॥ १२ ॥ पलँग पर सोने वालोंको सोनेमें जो सुख मिलता है, वही सुख निद्रित पुरुषोंको भूमिमें भी मिलता है॥१३॥ जैसे हम शरीरधारियोंको मरणसे भय लगता है, ब्रह्मासे लेकर कीड़े तकको इसी प्रकार मरणसे भय लगता ॥ १४ ॥ यदि बुद्धिसे विचारा जाय तो सब शरीरधारी बराबर हैं, यह विचार कर किसीको भी किसीकी कभी हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥ १५ ॥ इस पृथ्वी पर जीवों पर दया करनेकी समान और कोई धर्म नहीं है, इस लिये मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्नके साथ जीवों पर दया करनी चाहिये ॥ १६ ॥ एक जीवकी रक्षा करनेसे त्रिलोकीकी रक्षा होजाती है और उसको मारने पर त्रिलोकीको मारनेका पाप लगता है, इस लिये रक्षा करे, संहार न करे ॥ १७ ॥ अहिंसा परम धर्म है, आत्मप्रपीडन पाप है, अपराधीनता मुक्ति है, अभिलाषाके अनुसार भोजन मिलना ही स्वर्ग है ॥ १८ ॥ पहिले विद्वानोंने सत्प्रमाणके साथ यह बात कही है, अतः जो नरकसे डरते हों उन मनुष्योंको हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥ १९ ॥ स्थावर जंगम त्रिलोकीमें हिंसाकी समान और कोई पाप नहीं है, हिंसक नरकमें पड़ता है और अहिंसक

दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः । अभीतिसदृशं दानं परमेकमपीह न ॥ २१ ॥ इह
चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः। विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च ॥२२॥
भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् । देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे २३
यानी यानीह दानानि बहु मुन्युदितानि च । जीवाभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
अविचिन्त्यप्रभावं हि मणिमन्त्रौषधं बलम् । तदभ्यस्यं प्रयत्नेन नानार्थोपार्जनाय वै २५
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै। परितः परिपूज्यानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥२६॥
पञ्चकर्मेन्द्रियग्रामः पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च । मनो बुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम् २७
इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनां नान्यतः क्वचित् । सुखं स्वर्गः समाख्यातो दुःखं नरकमेव हि२८
सुखेषु मुज्यमानेषु यत्स्याद्देहविसर्जनम् । अयमेव परो मोक्षो विज्ञेयस्तत्वचिन्तकैः ।२९।
वासनासहिते क्लेशमुच्छेदे सति ध्रुवम् । अज्ञानो परमो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ।३०।
प्रामाणिकी श्रुतिरियं प्रोच्यते वेदवादिभिः । न हिंस्यात्सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका॥
अग्निष्टोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह । न सा प्रमाणं ज्ञातॄणां पश्वालम्भन

स्वर्गमें जाता है ॥ २० ॥ दान बहुतसे हैं, किन्तु उन तुच्छ फल देने वाले दानोंसे क्या, किन्तु अभयदानकी समान दान एक भी नहीं है ॥ २१ ॥ परमर्षियोंने अनेक शास्त्रोंका विचार करके, इस लोकमें और परलोकमें कल्याण करने वाले चार दान कहे हैं ॥२२॥ डरे हुओंको अभय देना चाहिये रोगियोंको औषधि देनी चाहिये, विद्यार्थियोंको विद्या देनी चाहिये और क्षुधातुरको अन्न देना चाहिये ॥ २३ ॥ इस लोकमें मुनियोंने जो बहुतसे दान कहे हैं, वे जीवोंके अभयदानकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ॥ २४ ॥ मणि मन्त्र और औषधियोंका बल अचिन्त्य प्रभाव वाला है, अनेक प्रकारका अर्थ सञ्चय करनेके लिये उसका यत्नपूर्वक अभ्यास करना चाहिये ॥२५॥ अनेक प्रकारसे धन उपार्जन कर द्वादश-आयतनका भली प्रकार पूजन करना चाहिये और दूसरोंको पूजनेसे क्या लाभ ? ॥ २६ ॥ पाँच कर्मेन्द्रियोंका समूह और पाँच ज्ञानेन्द्रियें, मन और बुद्धि ये शुभ द्वादशायतन कहलाता है ॥ २७ ॥ प्राणियोंके लिये स्वर्ग और नरक यहीं हैं और कहीं अलग नहीं हैं, सुख ही स्वर्ग है और दुःख ही नरक है ॥ २८ ॥ सुख भोगते २ यदि देह छूट जाय तो तत्त्वचिन्तकोंने इसी बातको बड़ा भारी मोक्ष माना है ॥२९॥ और तत्त्वचिन्तकोंने वासनासहित क्लेशका नाश होनेको और अज्ञानके दूर होनेको ही मोक्ष माना है ॥ ३० ॥ वेदवादी इस प्रामाणिक श्रुतिको कहते हैं, कि—'न हिंस्यात् सर्वभूतानि' किसी प्राणीका वध न करो, दूसरी हिंसामें प्रवृत्त करने वाली तो कोई श्रुति नहीं मिलती ॥ ३१ ॥ जो पशुका आलंभन करने वाली

कारिका ॥ ३२ ॥ वृक्षांश्छित्त्वा पशून्हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् । दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादि चित्रं स्वर्गोऽभिलष्यते ॥ ३३ ॥ इत्येवं स्वमतं प्रोच्य यतिस्त्रिपुरनायकम् । श्रावयित्वाखिलान् पौरानुवाच पुनरादरात् ॥ ३४ ॥ दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधकान् । बौद्धागमविनिर्दिष्टान्धर्मान्वेदपरांस्ततः ॥ ३५ ॥ आनन्दं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते । तत्तथैवेह मन्तव्यं मिथ्या नानात्वकल्पना ॥ ३६ ॥ यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः । यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ३७ ॥ अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्द्धक्ये तु कुतस्सुखम् । शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतस्सुखेप्सुभिः ॥ ३८ ॥ याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नो जनिः । तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्न हि ॥३९॥ सत्वरं गत्वरो देहः सञ्चयास्सपरिक्षयाः । इति विज्ञाय विज्ञाता देहसौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ४० ॥ श्ववायसक्रमीणां च प्रातर्भोज्यमिदं वपुः । भस्मान्तं तच्छरीरं च वेदे सत्यं प्रपठ्यते ॥ ४१ ॥ मुधा जातिविकल्पोऽयं लोकेषु परिकल्प्यते । मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधमः कोऽथ

अग्निष्टोम आदिकी श्रुति हैं वह तो भ्रममें ही डालने वाली हैं, ज्ञाता पुरुष उनको प्रमाण नहीं मानते ॥ ३२ ॥ वृक्षोंको काट, पशुओंको मार, रुधिरकी कीच मचा, अग्निमें तिल घी आदिको फूँक जो स्वर्ग पानेकी अभिलाषा है वह तो एक विचित्रसी जँचती है ॥३३॥ वह यति पुरनायकसे इस प्रकार अपना मत प्रकट कर, सम्पूर्ण पुरवासियोंको सुनाता हुआ, आदरपूर्वक फिर बोला ३४ उसने बौद्ध-शास्त्रोंमें बताये हुए वेदबाह्य, एकमात्र देहको ही सुख पहुँचानेके साधन, प्रत्यक्षमें ही विश्वास देने वाले धर्मोंका वर्णन करना आरंभ कर दिया ३५ कि-श्रुतिने आनन्दको ही जो ब्रह्मका रूप माना है, वह ठीक है और कल्पनायें तो मिथ्या हैं ॥ ३६ ॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ रहे, जब तक इन्द्रियों में गड़बड़ी न आवे, जब तक बुढ़ापा न आवे, तब तक सुख पानेका उपाय करता रहे ॥ ३७ ॥ जब अस्वास्थ्यके कारण इन्द्रियोंमें विकलता आजाती है ऐसे बुढ़ापेमें सुख कहाँसे आया ? इस लिये सुख चाहने वाले पुरुषोंको अर्थियोंके लिये अपना शरीर भी देदेना चाहिये ॥ ३८ ॥ जिसका मन याचकके माँगने पर प्रसन्न नहीं होता उसके जीवनसे ही तो पृथिवीको भार लगता है, समुद्र पर्वत और वृक्षोंसे ऐसा भार नहीं लगता है ॥३९॥ यह शरीर शीघ्र ही छूट जायगा, सञ्चय भी समाप्त होजावेंगे, यह विचार कर विज्ञाता पुरुष देहको सुख देवे ॥ ४० ॥ यह शरीर प्रातःकाल ही कुत्ते कौए और कीड़ोंका भोजन बन जावेगा, इस शरीरकी अन्तमें भस्म होजावेगी, यह बात वेदमें सत्य ही कही हैं ॥ ४१ ॥ संसारमें यह जातिविचार व्यर्थ ही है, जब सब मनुष्य एकसे हैं तब कौन अधम और कौन उत्तम ? ॥ ४२ ॥ आदि-सृष्टि ब्रह्माकी हुई, ऐसा

चोत्तमः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मादिसृष्टिरेषेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः । तस्य जातौ सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ ॥ ४३ ॥ मारीचेन कश्यपेन दक्षकन्यास्सुलोचनाः । धर्मेण किल मार्गेण परिणीतास्त्रयोदश ॥४४॥ अपीदानींतनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः । अपि गम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियते मुदा ॥ २५ ॥ मुखबाहूरुसञ्जातं चातुर्वर्ण्यं सहोदितम् । कल्पनेयं कृता पूर्वैर्न घटेत विचारतः ॥ ४६ ॥ एकस्यां च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा क्वचित् । चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥ ४७ ॥ वर्णावर्णविभागोऽयं तस्मान्न प्रतिभासते । अतो भेदो न मन्तव्यो मानुष्ये केनचित्क्वचित् ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्थमाभाष्य दैत्येशं पौरांश्च स यतिर्मुने । सशिष्यो वेदधर्मांश्च नाशयामास चादरात् ॥ ४९ ॥ स्त्रीधर्मं खण्डयामास पातिव्रत्यपरं महत् । जितेन्द्रियत्वं सर्वेषां पुरुषाणां तथैव स ॥५०॥ देवधर्मान्विशेषेण श्राद्धधर्मास्तथैव च । मखधर्मान्व्रतादींश्च तीर्थश्राद्धं विशेषतः ॥ ५१ ॥ शिवपूजां विशेषेण लिङ्गाराधनपूर्विकाम् । विष्णुसूर्यगणेशादिपूजनं विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ स्नानदानादिकं सर्वं पर्वकाले विशेषतः । खण्डयामास स यतिर्मायी मायाविनां वरः ५३ किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र त्रिपुरे तेन मायिना । वेदधर्माश्च ये केचित्ते सर्वे दूरतः कृताः ॥५४॥

वृद्ध पुरुष कहते हैं, उनके दक्ष और मरीचि नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए ।४३। और मरीचिके पुत्र कश्यपने दक्षकी सुन्दर नेत्रों वाली तेरह कन्याओंको धर्मपूर्वक विवाह लिया ॥ ४४ ॥ तो भी आज कलके अल्पबुद्धि और अल्पपराक्रमी पुरुष यह गम्य है यह अगम्य है, इसका ही व्यर्थ विचार करते रहते हैं ॥४५॥ मुख, भुजा और ऊरु (तथा चरण) से चारों वर्णोंकी जो कल्पना पूर्वजोंने की है, वह ठीक नहीं मालूम होती ॥४६॥ एक ही शरीरमें वा एक ही शरीरसे जो चार पुत्र उत्पन्न हों, वे भिन्न वर्णके कैसे हो सकते हैं ? इस लिये यह वर्ण अवर्णका विभाग ठीक नहीं मालूम होता, अतः मनुष्य मनुष्यमें किसीको किसी प्रकारका भेद नहीं मानना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे मुने ! उस यतिने और उसके शिष्योंने इस प्रकार दैत्यराजसे और पुरवासियोंसे कह कर, वेदधर्मका बड़े चावसे नाश करा दिया ॥ ४९ ॥ उसने स्त्रियोंके पतिव्रतधर्मका खण्डन करा दिया और सकल पुरुषोंकी जितेन्द्रियता का भी नाश करा दिया ॥ ५० ॥ माया फैलाने वालोंमें श्रेष्ठ उस मायावी यतिने देवधर्मोंका, श्राद्धधर्मोंका, यज्ञधर्मोंका, व्रत आदिका, तीर्थश्राद्धका, शिवलिंगपूजनका, विधिपूर्वक विष्णु सूर्य गणेश आदिकी पूजाका, और पर्वके समय स्नान दान आदिका नाश करा दिया ॥५१-५३॥ हे विप्रेन्द्र ! अधिक कहने से क्या ? उस मायावीने जो कुछ वैदिकधर्म थे उन सबको त्रिपुरसे बाहर कर दिया ॥ ५४ ॥ पतिधर्मका आश्रय लेने वालीं त्रिपुरकी समस्त स्त्रियोंने पति-

पतिधर्माश्रयाः सर्वा मोहितास्त्रिपुराङ्गनाः । भर्तृशुश्रूषणवतीं विजहुर्मतिमुत्तमाम् ॥ ५५ ॥
अभ्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृत्यमयीमपि । पुरुषास्सफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः ।५६।
अन्तःपुरचरा नार्यस्तथा राजकुमारकाः । पौराः पुराङ्गना आपि सर्वे तत्र विमोहिताः ५७
एवं पौरेषु सर्वेषु निजधर्मेषु सर्वशः । पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्ललास वृषेतरः ।५८। माया
च देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभो । अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात्त्रिपुरं गता ।५९।
या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वरादरात् । बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः
बुद्धिमोहं तथाभूतं विष्णोर्मायाविनिर्मितम् । तेषां दत्त्वा क्षणादेव कृतार्थोऽभूत्स नारदः ६१
नारदोऽपि तथारूपो यथा मायी तथैव सः । तथापि विकृतो नाभूत्परमेशादनुग्रहात् ६२
आसीत्कुंठितसामर्थ्यो दैत्यराजोऽपि भो मुने । भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र मयेन च शिवेच्छया ६३

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
त्रिपुरमोहनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

व्यास उवाच । तस्मिन् दैत्याधिपे पौरे सभ्रातरि विमोहिते । सनत्कुमार किं चासी-
त्तदाचक्ष्वाखिलं विभो ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । त्रिपुरे च तथाभूते दैत्ये त्यक्तशिवा-
र्चने । स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते ॥२॥ कृतार्थ इव लक्ष्मीशो देवैस्सार्द्ध-

---

सेवाकी उत्तम मतिको छोड़ दिया ॥५५॥ पुरुष परदाराओं पर मोहित होकर आकर्षिणी और वशीकरण विद्याओंको सफल करने लगे ॥ ५६ ॥ रनवास में रहने वाली स्त्रियें और राजकुमार, पुरवासी और पुरकी स्त्रियें सब ही मोहमें पड़ गए ॥ ५७ ॥ इस प्रकार जब सब पुरवासी अपने २ धर्मोंसे पराङ्मुख होगए तब अधर्म प्रसन्न होने लगा ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! उस समय देवदेव विष्णुकी मायाने और अलक्ष्मीने विष्णुकी आज्ञासे त्रिपुरमें प्रवेश किया ५९ उस समय उन्होंने तप करके देवेश्वरसे आदरपूर्वक जो लक्ष्मी पाई थी वह प्रभु ब्रह्माकी आज्ञा पाकर बाहर निकल गई ॥ ६० ॥ इस समय नारद भी विष्णु की मायासे प्रकट हुए मोहको दैत्योंके अर्पण कर कृतार्थ होगए ॥६१॥ जिस प्रकारका वह अरिहन् था यद्यपि नारदजीने भी वैसा ही रूप बना लिया था, तथापि वह परमेश्वरके अनुग्रहवश विकृत नहीं हुए ॥ ६२ ॥ हे मुने ! उस समय शिवकी इच्छा ऐसी ही थी, इस कारण उस दैत्येशकी, उसके भाइयों की और मयकी भी शक्ति कुण्ठित होने लगी ॥ ६३ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त

व्यासजीने कहा, कि—हे विभो सनत्कुमारजी ! जब वह दैत्याधिप पुरवासी और भ्राताओं सहित मोहमें पड़ गया, तब क्या हुआ था, उस सबका आप वर्णन करिये ॥१॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—जब त्रिपुरवासी दैत्योंने शिवपूजनको त्याग दिया तथा स्त्रीधर्म नष्ट होकर दुराचारकी प्रतिष्ठा होगई ॥ २ ॥

मुमापतिम् । निवेदितुं तच्चरित्रं कैलासमगमद्धरिः ॥ ३ ॥ तस्योपकण्ठं स्थित्वाऽसौ देवैस्सह रमापतिः । ततो भूरि स च ब्रह्मा परमेण समाधिना ॥ ४ ॥ मनसा प्राप्य सर्वज्ञं ब्रह्मा सहरिस्तदा । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शंकरं पुरुषोत्तमः ॥ ५ ॥ महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने । नारायणाय रुद्राय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ॥ ६ ॥ एवं कृत्वा महादेवं दण्डवत् प्रणिपत्य ह । जजाप रुद्रमन्त्रं च दक्षिणामूर्तिसम्भवम् ॥ ७ ॥ जले स्थित्वा सार्द्धकोटिप्रमितं तन्मनाः प्रभुः । संस्मरन् मनसा शम्भुं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ॥ ८ ॥ तावद्देवास्तदा सर्वे तन्मनस्का महेश्वरम् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः । नमस्सर्वात्मने तुभ्यं शङ्कराचार्तिहारिणे । रुद्राय नीलकण्ठाय चिद्रूपाय प्रचेतसे ॥ १० ॥ गतिर्नस्सर्वदा त्वं हि सर्वापद्विनिवारकः । त्वमेव सर्वदास्माभिर्वन्द्यो देवारिसूदन ॥ ११ ॥ त्वमादिस्त्वमनादिश्च स्वानन्दश्चाक्षयः प्रभुः । प्रकृतेः पुरुषस्यापि साक्षात्स्रष्टा जगत्प्रभुः ॥ १२ ॥ त्वमेव जगतां कर्ता भर्ता हर्ता त्वमेव हि । ब्रह्मा विष्णुर्हरो भूत्वा रजस्सत्त्वतमोगुणः ॥ १३ ॥ तारकोऽसि जगत्यस्मिन् सर्वेषामधिपोऽव्ययः । वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचक-

---

तब लक्ष्मीके स्वामी विष्णु इस चरित्रको शिवजीसे कहनेके लिये देवताओंको साथमें लेकर कैलासको चल दिये ॥ ३ ॥ कैलासके पास पहुँच कर देवताओं सहित विष्णु और ब्रह्माने समाधि लगाई, तदनन्तर मनमें उनको प्राप्त कर हरि और ब्रह्मा इष्ट-वाक्योंसे शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ कि-महेश्वर देव परमात्मा नारायण रुद्र ब्रह्मा तथा ब्रह्मरूपी आपको प्रणाम है ६ इस प्रकार महादेवकी स्तुति कर उनको दण्डवत् प्रणाम करके, दक्षिणामूर्ति के लिये उपयोगमें आने वाले रुद्रमन्त्रका जप करने लगे ॥७॥ फिर उन प्रभु ने जलमें खड़े होकर अपने प्रभु परमेश्वर शम्भुका मनमें स्मरण करते हुए पूर्वोक्त मन्त्रका डेढ़ करोड़ जप करा और सब देवता भी शम्भु महादेवकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ देवताओंने कहा, कि-सर्वात्मा, शंकर, भक्तोंकी पीड़ाको हरने वाले, रुद्र, नीलकण्ठ, चिद्रूप, प्रचेता आपके लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ आप ही हमारी सर्वदा गति हैं, आप ही हमारी सब आपत्तियोंको निवारण करने वाले हैं, हे देवताओंके शत्रुओंका नाश करने वाले ! हम आपकी सदा वन्दना करते हैं ॥ ११ ॥ आप आदि हैं, अनादि हैं, अपने आप आनन्दरूप हैं, अक्षय हैं, प्रभु हैं, प्रकृति पुरुषके भी साक्षात् स्रष्टा हैं और जगद्गुरु हैं ॥१२॥ इस जगत्के कर्ता हर्ता और सबके पालक हैं और आप ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मा विष्णु और हर बन जाते हैं ॥ १३ ॥ आप इस जगत्में तारने वाले हैं, सबके अव्यय स्वामी हैं, वर देने वाले हैं, वाङ्मय और वेद प्रतिपाद्य हैं, सगुण होनेसे वाच्य हैं, और निर्गुण होनेसे वाच्यवाचक

वर्जितः ॥१४॥ वाच्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगवित्तमैः । हृत्पुंडरीकविवरे योगिनां त्वं हि संस्थितः ॥ १५ ॥ वदन्ति वेदास्त्वां सन्तः परब्रह्मस्वरूपिणम् । भवन्तं तत्त्वमित्यद्य तेजोराशिं परात्परम् ॥ १६ ॥ परमात्मानमित्याहुरस्मिन् जगति यद्विभो । त्वमेव शर्व सर्वात्मंस्त्रिलोकाधिपते भव ।१७। दृष्टं श्रुतं स्तुतं सर्वं ज्ञायमानं जगद्गुरो । अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम् ॥ १८ ॥ सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतश्श्रवणघ्राणं त्वां नमामि च सर्वतः ॥ १९ ॥ सर्वज्ञं सर्वतो व्यापिन् सर्वेश्वरमनावृतम् । विश्वरूपं विरूपाक्षं त्वां नमामि च सर्वतः ॥ २० ॥ सर्वेश्वरं भवाध्यक्षं सत्यं शिवमनुत्तमम् । कोटिभास्करसंकाशं त्वां नमामिच सर्वतः ।२१। विश्वेदेवमनाद्यन्तं षट्विंशकमनीश्वरम् । प्रवर्तकं च सर्वेषां त्वां नमामि च सर्वतः ॥ २२ ॥ प्रवर्तकं च प्रकृतेस्सर्वस्य प्रपितामहम् । सर्वविग्रहमीशं हि त्वां नमामि च सर्वतः ॥ २३ ॥ एवं वदन्ति वरदं सर्वावासं स्वयं भुवम् । श्रुतयः श्रुतिसारज्ञं श्रुतिसारविदश्च ये ॥ २४ ॥ अदृश्यमस्माभिरनेकमूर्तं त्वया कृतं यद्भवताथ लोके । त्वामेव देवासुरभूसुराश्च अन्ये च वै

वर्जित हैं ॥ १४ ॥ योगवेत्ता योगी आप ईशानसे मुक्तिकी याचना करते हैं आप योगियोंके हृदयकमलमें स्थित रहते हैं ॥ १५ ॥ वेद और सज्जन पुरुष आपको परब्रह्म, तत्त्व, तेजोराशि और परात्पर बताते हैं ॥ १६ ॥ हे विभो ! इस जगत्में जिसको परमात्मा कहते हैं, वह आप ही हैं, हे शर्व ! हे सर्वात्मन् ! हे त्रिलोकाधिपते ! हे भव ! आप ही वह परमात्मा हैं ॥१७॥ हे जगद्गुरो ! इस संसारमें जो कुछ दृष्ट श्रुत स्तुत ज्ञायमान है और जिसको छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा कहते हैं (वह आप ही हैं) ॥ १८ ॥ चारों ओर हाथ पैर वाले, सब ओर नेत्र शिर और मुख वाले और सब ओर नाक कान वाले आपको हम प्रणाम करते हैं अर्थात् सबके सब अंगोंमें आप ही व्याप्त हैं ।१९। हे सर्वत्र व्याप्त ! सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत, विश्वरूप, विरूपाक्ष आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ सर्वेश्वर, भवाध्यक्ष, सत्य, शिव, और करोड़ों सूर्य की समान प्रकाशवान् आपको हम प्रणाम करते हैं ॥२१॥ विश्वदेव, अनादि, अनन्त, छब्बीसवें तत्त्वरूप, नियामकरहित, और सबके प्रवर्तक आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ तथा प्रकृतिके भी प्रवर्तक, सबके प्रपितामह, सब विग्रहोंमें व्याप्त आप ईशको प्रणाम है ॥ २३ ॥ श्रुतियें और श्रुतिके सारको जानने वाले आपको सबमें निवास करने वाला और श्रुतिके सारको जानने वाला कहते हैं ॥ २४ ॥ हे नाथ ! हे अनेकमूर्ते ! लोकमें हमारे भी जाननेमें न आवें ऐसे अनेक कार्योंको आप करते रहते हैं, देवता असुर ब्राह्मण तथा स्थावर और जंगम सब आपकी ही स्तुति करते रहते हैं ॥ २५ ॥ देववल्लभ ! हे शंभो !

स्थावरजङ्गमाश्च ॥ २५ ॥ प्राह्यनन्यगतीञ्शम्भो सुरान्नो देववल्लभ । नष्टप्रायांस्त्रिपुरतो विनिहत्यासुरान्क्षणात् ॥ २६ ॥ मायया मोहितास्तेऽद्य भवतः परमेश्वर । विष्णुना प्रोक्तयुक्त्या त उज्झिता धर्मतः प्रभो ॥ २७ ॥ संत्यक्तसर्वधर्माश्च बौद्धागमसमाश्रिताः । अस्मद्भाग्यवशाज्जाता दैत्यास्ते भक्तवत्सल ॥ २८ ॥ सदा त्वं कार्यकर्ता हि देवानां शरणप्रद । वयं ते शरणापन्ना यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति स्तुत्वा महेशानं देवास्तु पुरतः स्थिताः । कृताञ्जलिपुटा दीना आसन् संनतमूर्तयः ॥३०॥ स्तुतश्चैवं सुरेन्द्राद्यैर्विष्णोर्जप्येन चेश्वरः । अगच्छत्तत्र सर्वेशो वृषमारुह्य हर्षितः ॥३१॥ विष्णुमालिंग्य नन्दीशादवारुह्य प्रसन्नधीः । ददर्श सुदृशा तत्र नन्दी दत्तकरोऽखिलान् ॥ अथ देवान् समालोक्य कृपादृष्ट्या हरिं हरः । प्राह गम्भीरया वाचा प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥ ३३ ॥ शिव उवाच । ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वर । विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः ॥ ३४ ॥ तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तम । पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं न संशयः ॥ ३५ ॥ परन्तु ते महादैत्या मद्भक्ता दृढमानसाः । अथ वध्या म-

---

त्रिपुरवासी दैत्योंने हमें नष्टसा ही कर दिया है, इस लिये क्षण भरमें ही आप उनका संहार कर डालिये, क्योंकि—आप ही हमारी अनन्य गति हैं ॥ २६ ॥ हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! विष्णुकी बताई हुई आपकी मायाके चक्रमें फँस कर असुर मोहमें पड़ गए हैं अतः उन्होंने धर्मको छोड़ दिया है ॥ २७ ॥ हे भक्तवत्सल ! हमारे भाग्यवश उन दैत्योंने सकल धर्म कर्म छोड़ दिये हैं तथा उन्होंने बौद्ध शास्त्रोंको स्वीकार कर लिया है ॥ २८ ॥ हे शरण देने वाले ! आप सदा देवताओंका कार्य करते रहते हैं, अतः इस समय हम आपकी शरणमें आये हैं, अतः अब आप अपनी इच्छाके अनुसार जो कार्य करना उचित समझें उसको करें ॥ २९ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि—देवता नम्रताके साथ इस प्रकार महेशकी स्तुति कर दीनताके साथ हाथ जोड़ कर खड़े होगए ॥ ३० ॥ इस प्रकार इन्द्र आदि देवताओंके स्तुति करने पर और विष्णुके तप करने पर सर्वेश महादेव प्रसन्न हो तत्काल ही बैल पर चढ़ कर प्रकट होगए ॥ ३१ ॥ फिर उन्होंने नन्दीसे उतर कर प्रसन्नतापूर्वक विष्णुका आलिंगन किया फिर नन्दी पर हाथ टेक सम्पूर्ण देवताओंकी ओर सुदृष्टिसे देख कर हरिसे गंभीर वाणीमें कहने लगे, कि—॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे विष्णो ! हे सुरेश्वर ! देवताओं का कार्य तथा बुद्धिमान् नारदका मायाबल मैंने देख लिया ॥ ३४ ॥ अतः हे देवसत्तम ! उन अधर्मनिष्ठ दैत्योंके तीनों पुरोंका मैं नाश करूँगा ॥ ३५ ॥ परन्तु वे महादैत्य दृढ़चित्तसे मेरी भक्ति करते थे अब उन्होंने व्याजवश उत्तम धर्मको त्याग दिया है, तो भी (क्या) मुझे ही उन्हें मारना चाहिये ॥ ३६ ॥

यैव रयुर्न्योजत्यक्तवृषोत्तमाः ॥३६॥ विष्णुर्हन्यात्परो वाथ यस्याजितवृषाः कृताः । दैत्या मद्भक्तिरहितास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ ३७ ॥ इति शम्भोस्तु वचनं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः । विमनस्का बभूवुस्ते हरिश्चापि मुनीश्वर ॥ ३८ ॥ देवान् विष्णुमुदासीनान् दृष्ट्वा च भवकृद्विधिः । कृतांजलिपुटश्शम्भुं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥३९॥ ब्रह्मोवाच । न किञ्चिद्विद्यते पापं यस्मात्त्वं योगवित्तमः । परमेशः परब्रह्म सदा देवर्षिरक्षकः ॥४०॥ तवैव शासनात्ते वै मोहिताः प्रेरको भवान् । त्यक्तस्वधर्मत्वत्पूजाः परवध्यास्तथापि न ॥ ४१ ॥ अतस्त्वया महादेव सुरर्षिप्राणरक्षक । साधूनां रक्षणार्थाय हन्तव्या म्लेच्छजातयः ॥ ४२॥ राज्ञस्तस्य न तत्पापं विद्यते धर्मतस्तव । तस्माद्रक्षेद् द्विजान् साधून्कंटकाद्वै विशोधयेत् ४३ एवमिच्छेदिहान्यत्र राजा चेद्राज्यमात्मनः । प्रभुत्वं सर्वलोकानां तस्माद्रक्षस्व मा चिरम् ४४ मुनीन्द्रेशास्तथा यज्ञा वेदाश्शास्त्रादयोऽखिलाः । प्रजास्ते देवदेवेश ह्यहं विष्णुरपि ध्रुवम् ॥ देवतासार्वभौमस्त्वं सम्राट् सर्वेश्वरः प्रभो । परिवारस्तवैवैष हर्यादि सकलं जगत् ॥४६॥

जिन विष्णुने उनको मेरी भक्तिसे रहित कर दिया है और धर्मभ्रष्ट कर दिया है वे ही उनको क्यों न मारें ॥३७॥ हे मुनीश्वर ! शम्भुके इस वचनको सुन कर सब देवता और हरि भी अनमने होगए ॥ ३८ ॥ संसारकी रचना करने वाले ब्रह्माजी विष्णुको और देवताओंको उदासीन देख कर शिवजीसे हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–आप परमेश हैं, परब्रह्म हैं, सदा देवता और ऋषियोंकी रक्षा करते रहते हैं तथा योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, इस लिये पाप आपका स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ आपकी आज्ञासे ही उनको मोहमें डाला गया है, इस विषयके प्रेरक तो आप ही हैं, यद्यपि उन्होंने अपने धर्म और आपकी पूजाको त्याग दिया है, तथापि दूसरा और कोई उनका वध नहीं कर सकता ॥ ४१ ॥ अतः हे महादेव ! हे देवता और ऋषियोंके रक्षक ! आपको साधुओंकी रक्षा करनेके लिये म्लेच्छ जाति वालों को मारना ही चाहिये ॥ ४२ ॥ आप राजा हैं, अतः आपको धर्मानुसार पाप नहीं लग सकता, क्योंकि राजाको चाहिये, कि–द्विजोंकी रक्षा करे और उन के काँटेको निकाल देय ॥ ४३ ॥ राजा यदि अपने राज्यको चाहे और सब लोकोंका प्रभुत्व चाहे तो उसको, क्या अपने राज्यमें और क्या अन्यत्र, सब ही जगह ऐसा वर्ताव करना चाहिये, इस लिये आप विलम्ब न करिये देवताओं की रक्षा करिये ॥ ४४ ॥ हे देवदेवेश ! बड़े २ मुनि, यज्ञ, वेद और सम्पूर्ण शास्त्र तथा ये विष्णु और मैं भी यहसब आपकी ही प्रजा हैं, यह बात निश्चित है ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! आप तो देवताओंके सार्वभौम सम्राट् हैं, यह हरि तथा सकल जगत् आपका ही परिवार है ॥ ४६ ॥ हे उत्पत्तिरहित ! यह हरि आप

युवराजो हरिस्तेऽत्र ब्रह्माहं ते पुरोहितः । राजकार्यकरः शुक्रस्त्वदाज्ञापरिपालकः देवा अन्येऽपि सर्वेश तव शासनयन्त्रिताः । स्वस्वकार्यकरा नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरस्सुरपो विधिम् ॥ ४९ ॥ शिव उवाच । हे ब्रह्मन् यद्यहं देवराजस्सम्राट् प्रकीर्तितः । तत्प्रकारो न मे कश्चिद् गृह्णीयां यमिह प्रभुः ॥ ५० ॥ रथो नास्ति महादिव्यस्तादृक् सारथिना सह । धनुर्बाणादिकं चापि संग्रामे जयकारकम् ॥ ५१ ॥ यमास्थाय धनुर्बाणान् गृहीत्वा योज्य वै मनः । निहनिष्याम्यहं दैत्यान् प्रबलानपि संगरे ॥५२॥ सनत्कुमार उवाच । अथ सब्रह्मका देवास्सेन्द्रोपेन्द्राः प्रहर्षिताः । श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं नत्वा प्रोचुर्महेश्वरम् ॥ ५३ ॥ देवा ऊचुः । वयं भवाम देवेश तत्प्रकारा महेश्वर । रथादिकास्तव स्वामिन्सन्नद्धास्संगराय हि ॥५४॥ इत्युक्त्वा संहतास्सर्वे शिवेच्छामधिगम्य ह । पृथगूचुः प्रसन्नास्ते कृतांजलिपुटास्सुराः ॥ ६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शिवस्तुतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु सर्वेषां देवादीनां वचो हरः । अङ्गीचकार

के युवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ और शुक्र आपका राजकार्य करने वाले हैं, सदा आपकी आज्ञाका पालन करने वाले हैं ॥ ४७ ॥ हे देवेश ! और सब देवता भी आपकी ही आज्ञामें रह कर अपने २ कार्यको करते रहते हैं ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—ब्रह्माजीके इस वचनको सुन कर देवताओंका पालन करने वाले परमेश्वर शंकर चित्तमें प्रसन्न हो ब्रह्माजीसे कहने लगे ॥ ४९ ॥ शिवजीने कहा, कि–हे ब्रह्मन् ! यद्यपि मुझे देवताओं का सम्राट् कहा जाता है, परन्तु मेरे पास राजाओंकेसी कोई सामग्री तो है ही नहीं ॥ ५० ॥ न मेरे पास महादिव्य रथ है, न उसका सारथि है और संग्राम में विजय दिलाने वाले धनुष बाण आदि भी मेरे पास नहीं हैं ॥ ५१ ॥ कि–जिस रथ पर बैठ कर मैं मन लगा धनुषबाणको पकड़ प्रबल दैत्योंको युद्धमें मार सकूँ ॥५२॥ सनत्कुमार कहते हैं, कि–प्रभुकी इस बातको सुनकर ब्रह्मा विष्णु और सकल देवता बड़े प्रसन्न हुए और उनको प्रणाम करके कहने लगे ॥५३॥ देवताओंने कहा, कि–हे देवेश ! हे स्वामिन् ! जब आप युद्धके लिये तयार हों तो हम सब रथ आदिके रूपमें काम देनेको तयार हैं ॥ ५४ ॥ उन सबने एकत्रित हो इस प्रकार कहा और शिवको इच्छाको समझ वे सब प्रसन्न हो हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–शरणागतरक्षक भक्तवत्सल हरने देवताओंकी

सुप्रीत्या शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी पुत्राभ्यां संयुता शिवा । आजगाम मुने तत्र यत्र देवान्वितो हरः ॥२॥ अथागतां शिवां दृष्ट्वा सर्वे विष्णवादयो द्रुतम् । प्रणेमुरतिनम्रास्ते विस्मिता गतसंभ्रमाः ॥ ३ ॥ प्रोचुर्जयेति सद्वाक्यं मुने सर्वे सुलक्षणम् । तूष्णीमासन्नजानन्तस्तदागमनकारणम् ॥ ४ ॥ अथ सर्वैः स्तुता देवैर्देव्यद्भुतकुतूहला । उवाच स्वामिनं प्रीत्या नानालीलाविशारदम् ॥ ५ ॥ देव्युवाच । क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसंनिभम् । पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठ भूषितं भूषणैर्वरैः ॥ ६ ॥ इत्येवं लोकमात्रा च वाग्भिस्संबोधितश्शिवः । न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन् स्कन्दाननामृतम् ॥ ७ ॥ न सस्मारागतान्देवान् दैत्यतेजोनिपीडितान् । स्कन्दमालिंग्य चाघ्राय मुमोदाति महेश्वरः ॥ ८ ॥ जगदम्बाथ तत्रैव संमन्त्र्य प्रभुणा च सा । स्थित्वा किञ्चित्समुत्तस्थौ नानालीलाविशारदा ॥ ९ ॥ ततस्सनन्दी सह षण्मुखेन तया च सार्द्धं गिरिराजपुत्र्या । विवेश शम्भुर्भवनं सुलीलः सुरैस्समस्तैरभिवन्द्यमानः ॥ १० ॥ द्वारस्य पार्श्वतस्तस्थुर्देवदेवस्य धीमतः । तेऽथ देवा महाव्यग्रा विमनस्का मुनेऽखिलाः ॥ ११ ॥ किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं कः

इस बातको प्रीतिपूर्वक अंगीकार कर लिया था, कि-॥ १ ॥ इसी समय हे मुने ! जहाँ देवताओंकी मण्डलीमें हर विराजमान थे तहाँ पर देवी पार्वती अपने दोनों पुत्रोंको साथमें लेकर आपहुँची ॥ २ ॥ देवी पार्वतीको आई हुई देख कर विष्णु आदि देवता बड़े विस्मित हुए और उन्होंने गौरवपूर्वक बड़ी नम्रतासे उनको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ और जय जयकार करने लगे और उनके आनेका कारण ज्ञात न होनेसे चुप होगए ॥४॥ अद्भुत कुतूहल वाली देवी सब देवताओंके स्तुति कर चुकने पर अनेक लीलाओंको करनेमें चतुर अपने स्वामीसे कहने लगीं, कि—॥ ५ ॥ हे पुत्र वालोंमें श्रेष्ठ विभो ! श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित, सूर्यकी समान प्रतापी अपने इस षडानन पुत्रको क्रीड़ा करते हुए देखिये ॥६॥ शिव, लोकमाताके इस प्रकार कहने पर स्कन्दके मुखरूप अमृतका अतृप्त नयनोंसे पान करने लगे ॥ ७ ॥ और उन्हें दैत्योंके तेजसे दुःखी देवताओंके आनेका ध्यान भी नहीं रहा अतः वे स्कन्दको आलिंगन कर और सूँघ कर बड़े प्रसन्न होने लगे ॥ ८ ॥ उसी समय अनेक लीलाओंको करनेमें चतुर जगदम्बा भी शिवजीसे कुछ बात कह उठीं ॥ ९ ॥ फिर सुन्दरतासे लीला करने वाले शम्भु, नन्दी षडानन और पार्वतीके साथ एक मन्दिरमें घुस गए और समस्त देवता स्तुति करते हुए ही रह गए ॥ १० ॥ हे मुने ! उस समय सम्पूर्ण देवता बुद्धिमान् देवदेवके मन्दिरके द्वारके समीप खड़े हो बड़े अनमने और व्यग्र होउठे ॥ ११ ॥ कि-क्या करें ? कहाँ जावें ? कौन हमें सुख देगा ? यह क्या हुआ ? हा ! हम तो मारे गए, इस प्रकार कह परस्पर

स्यादस्मत्सुखप्रदः । किं तु किं त्विति संजातं हा हताः स्मेति वादिनः ॥ १२ ॥
अन्योन्यं प्रेक्ष्य शक्राद्या बभूवुश्चातिविह्वलाः । प्रोचुर्विकलवाक्यं ते धिक्कुर्वन्तो
निजं विधिम् ॥ १३ ॥ पापा वयमिहेत्यन्ये ह्यभाग्याश्चेति चापरे । ते भाग्यवन्तो
दैत्येन्द्रा इति चान्येऽब्रुवन् सुराः ॥१४॥ तस्मिन्नेवान्तरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः।
कुम्भोदरो महातेजा दंडेनाताडयत्सुरान् ॥ १५ ॥ दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेति
वादिनः । अपतन्मुनयश्चान्ये विह्वलत्वं बभूव ह ॥ १६ ॥ इन्द्रस्तु विकलोऽतीव
जानुभ्यामवनीं गतः । अन्ये देवर्षयोऽतीव विकलाः पतिता भुवि ॥ १७ ॥ सर्वे
मिलित्वा मुनयस्सुराश्च सममाकुलाः । संगता विविहर्योस्तु समीपं मित्रचेतसोः ॥
अहो विधिवलं चैतन्मुनयः कश्यपादयः । वदन्ति स्म तदा सर्वे हरिं लोकभयाप-
हम् ॥ १९ ॥ अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः । कस्माद्विघ्नमिदं जात-
मित्यन्ये ह्यतिविस्मिताः ॥ २० ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा कश्यपाद्युदितं मुने । आश्वा-
सयन्मुनीन्देवान् हरिर्वाक्यमुपाददे ॥ २१ ॥ विष्णुरुवाच । हे देवा मुनयस्सर्वे
मद्वचः शृणुतादरात् । किमर्थं दुःखमापन्ना दुःखं तु त्यजताखिलम् ॥ २२ ॥ मह-
दाराधनं देवा न सुसाध्यं विचार्यताम् । महदाराधने पूर्वं भवेद् दुःखमिति श्रुतम् ।

एक दूसरेकी ओर देखते हुए इन्द्र आदि बड़े विकल हुए और अपने प्रारब्ध को धिक्कार देते हुए विकल वाक्य कहने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ कि—हम पापी हैं, अभागे हैं और कुछ देवता कहने लगे, कि—वे दैत्येन्द्र ही भाग्यवान् हैं ॥ १४ ॥ उनके ऐसे अनेक शब्दोंको सुन महातेजस्वी कुम्भोदर दण्डेसे देवताओंको मारने लगा ॥ १५ ॥ उस समय देवता भयभीत हो हाहाकार कर भागने लगे और दूसरे कुछ देवता और मुनि विह्वल होकर गिर पड़े ॥ १६ ॥ इन्द्र तो इतना विकल हुआ, कि—घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिर पड़ा और दूसरे देवता तथा ऋषि भी विकल हो भूमिमें गिर पड़े ॥ १७ ॥ उस समय व्याकुल हुए सब देवता और मुनि मिल कर शिवसे मित्र—भाव रखने वाले हरि और विष्णुके पास पहुँचे ॥ १८ ॥ और कश्यप आदि मुनि संसारका भय दूर करने वाले विष्णुसे कहने लगे, कि—अहो ! प्रारब्धका बल बड़ा विचित्र है ॥ १९ ॥ दूसरे कहने लगे, कि—अभाग्यवश ही हमारा कार्य पूर्ण नहीं हुआ और कुछ अतिविस्मित होकर कहने लगे, कि यह विघ्न कैसे पड़ गया ॥ २० ॥ हे मुने ! कश्यप आदिके कहे हुए इस वचनको सुन कर हरि, मुनि और देवताओंको ढाढस देते हुए यह बात कहने लगे, कि ॥ २१ ॥ हे देवताओं और मुनियों ! तुम आदरपूर्वक सुनो, सम्पूर्ण दुःखको त्याग दो ॥ २२ ॥ हे देवताओं ! बड़ोंका आराधन करना कोई सहजमें सिद्ध होने वाला काम नहीं है, हमने सुना है, कि—बड़ोंकी आराधनामें पहिले दुःख भोगना पड़ता है, हे देवताओं ! फिर

विज्ञाय दृढतां देवाः प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥ २३ ॥ शिवस्सर्वगणाध्यक्षस्सहसा परमेश्वरः । विचार्यतां हृदा सर्वैः कथं वश्यो भवेदिति ॥२४॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य नमः पश्चादुदाहरेत् । शिवायेति ततः पश्चाच्छुभद्वयमतः परम् ॥ २५ ॥ कुरुद्वयं ततः प्रोक्तं शिवाय च ततः पुनः । नमश्च प्रणवश्चैव मन्त्रमेवं सदा बुधाः ॥ २६ ॥ आवर्तध्वं पुनर्यूयं यदि शम्भुकृते तदा । कोटिमेकं तथा जप्त्वा शिवः कार्यं करिष्यति ॥ २७ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन हरिणा प्रभविष्णुना । तथा देवाः पुनश्चक्रुर्हरस्याराधनं मुने ॥ २८ ॥ संजजाप हरिश्चापि सर्वविधिशिवमानसः । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मुनीनां च विशेषतः ॥२९॥ मुहुः शिवेति भाषन्तो देवा धैर्यसमन्विताः । कोटिसंख्यं तदा कृत्वा स्थितास्ते मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम् । यथोक्तेन स्वरूपेण वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ श्रीशिव उवाच । हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च शुभव्रताः । प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत जपेनानेन चेप्सितम् ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः । यदि प्रसन्नो देवेश जगदीश्वर शंकर । सुरान् विज्ञाय विकलान् हन्यन्तां त्रिपुराणि च ॥ ३३ ॥ रक्षास्मान्परमेशान दीनबन्धो कृपाकर ।

भक्तोंकी दृढ़ताको जान कर ईश्वर अवश्य प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ शिव सब गणोंके अध्यक्ष हैं, परमेश्वर हैं, वह सहसा प्रसन्न होजाते हैं, अब आप इस बातका विचार करें, कि—वह किस प्रकार वशमें होंगे ॥ २४ ॥ अतः पहिले प्रणवका उच्चारण करो, फिर नमः का उच्चारण करो, फिर शिवायका उच्चारण करो, फिर शुभं कुरुका दो बार उच्चारण करो फिर, शिवाय नमः ॐ का उच्चारण करो, इस प्रकार (ॐ नमः शिवाय शुभं कुरु, शुभं कुरु शिवाय नमः ॐ) इस प्रकार बुद्धिमानोंको एक करोड़ मन्त्रका जप करना चाहिये इस प्रकार जप करने पर शिव तुम्हारे कार्यको करेंगे ॥२५–२७॥ हे मुने ! जब प्रभाववान् विष्णुने इस प्रकार कहा तब देवता फिर हरकी आराधना करने लगे ॥ २८ ॥ उस समय हरिने भी देवता और मुनियोंके कार्यको विशेषरूप से सिद्ध करनेके लिये शिवमें मनको लगा जप करना आरम्भ कर दिया २९ हे मुनिसत्तम ! इधर देवता भी धैर्यको धारण कर शिव २ करते हुए इस मंत्र का एक करोड़ जप करने लगे ॥३०॥ इसी समय शिव अपने साक्षात् स्वरूप में प्रकट हुए और यह कहने लगे ॥ ३१ ॥ श्रीशिवने कहा, कि–हे हरे ! हे विधे ! हे देवताओं ! और हे शुभ व्रत करने वाले मुनियों ! मैं तुम्हारे इस जपसे प्रसन्न होगया हूँ अतः तुम मनचीता वर माँग लो ॥ ३२ ॥ देवताओं ने उत्तर दिया, कि—हे देवेश ! हे जगदीश ! हे शंकर ! आप देवताओंको विकल जान कर अब त्रिपुरका संहार करिये ॥ ३३ ॥ और हे दीनबन्धो !

त्वयैव रक्षिता देवास्सदापद्भ्यो मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तं वचनं तेषां श्रुत्वा सहरिवेधसाम् । विहस्यान्तस्तदा ब्रह्मन्महेशः पुनरब्रवीत् ।३५। महेश उवाच । हे हरे हे विधे देवा देवा मुनयश्चाखिला वचः । मदीयं शृणुतादृत्य नष्टं मत्वा पुरत्रयम् ॥ ३६ ॥ रथं च सारथिं दिव्यं कार्मुकं शरमुत्तमम् । पूर्वमङ्गीकृतं सर्वमुपपादयताचिरम् ॥ ३७ ॥ हे विष्णो हे विधे त्वं हि त्रिलोकाधिपतिर्ध्रुवम् । सर्वसम्राट्प्रकारं मे कर्तुमर्हसि यत्नतः ॥ ३८ ॥ नष्टं पुरत्रयं मत्वा देवसाहाय्यमित्युत । करिष्यथः प्रयत्नेनाधिकृतौ सर्गपालने ॥ ३९ ॥ अयं मन्त्रो महापुण्यो मत्प्रीतिजनकश्शुभः । भुक्तिमुक्तिप्रदस्सर्वकामदश्शैवकावहः ॥ ४० ॥ धन्यो यशस्य आयुष्यः स्वर्गकामार्थिनां नृणाम् । अपवर्गो ह्यकामानां मुक्तानां भुक्तिमुक्तिदः ॥ ४१ ॥ य इमं कीर्तयेन्मन्त्रं शुचिर्भूत्वा सदा नरः । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥४२॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिवस्य

कृपाकर परमेश्वर! आपने देवताओंको आपत्तियोंसे छुटा कर सदा हमारी रक्षा की है, अतः त्रिपुरका संहार कर अब भी आप हमारी रक्षा करिये ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, हे ब्रह्मन! ब्रह्मा विष्णु और देवताओंके इस वचनको सुन कर महेश्वर मन ही मन हँसे और यह कहने लगे ॥ ३५ ॥ शिवजीने कहा, कि–हे ब्रह्मा विष्णु तथा सकल देवता और मुनियों! आप त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझ कर आदरपूर्वक मेरे वचनको सुनिये ॥ ३६ ॥ पहिले मैंने जिन वस्तुओंको चाहा था उन रथ, सारथी, दिव्य धनुष बाण सबको ही शीघ्र ठीक करो ॥ ३७ ॥ हे विष्णो! और हे विधे! आप ही इस त्रिलोकीके अधिपति हैं, अतः आपको ही मेरे लिये सम्राट्कीसी सारी तयारी करनी चाहिये ॥३८॥ आप लोगोंको बड़े प्रयत्नके साथ सृष्टिकी रचना और पालनके काम पर नियुक्त किया गया है, अतः तुम त्रिपुरको नष्ट हुआ समझ कर देवताओंकी सहायता करनेके लिये इस कामको करो ॥ ३९ ॥ यह (तुम्हारा जपा हुआ) मन्त्र शुभ है, परम पुण्य देने वाला है और मुझे प्रसन्न करने वाला है, यह मन्त्र भोग और मोक्षको देने वाला है, सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है और शिवभक्तोंको सुख देने वाला है ॥४०॥ स्वर्गकी कामना रखने वालोंको धन यश और आयु देने वाला है और निष्काम पुरुषोंको मुक्ति देने वाला है और मुक्त पुरुषोंको भोग तथा मोक्ष देने वाला है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य पवित्रताके साथ इस मन्त्रका कीर्तन करता है, सुनता है और सुनाता है, उसकी सब कामनायें सिद्ध होती हैं ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि परमात्मा शिवके इस वचनको सुन कर सब देवता प्रसन्न हुए और हरि तथा

परमात्मनः । सर्वे देवा मुदं प्रापुर्हरिब्रह्माधिकं तथा ॥ ४३ ॥ सर्वदेवमयं दिव्यं रथं परमशोभनम् । रचयामास विश्वार्थे विश्वकर्मा तदाज्ञया ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे देवस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

व्यास उवाच। सनत्कुमार सर्वज्ञ शैवप्रवर सन्मते । अद्भुतेयं कथा तात श्राविता परमेशितुः ॥१॥ इदानीं रथनिर्माणं ब्रूहि देवमयं परम् । शिवार्थं यत्कृतं दिव्यं धीमता विश्वकर्मणा ॥ २ ॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः । सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाप्राज्ञ रथादेर्निर्मितिं मुने । यथामति प्रवक्ष्येऽहं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४ ॥ अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा । सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥ ५ ॥ सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णस्सर्वसम्मतः । रथांगं दक्षिणं सूर्यस्तद्वाम सोम एव च ॥ ६ ॥ दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् । अरेषु तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु ॥ ७ ॥ शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत । ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम् ॥८॥ ऋतवो नेमयः

ब्रह्माको तो बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ और उस समय विश्वकर्माने उनकी आज्ञासे विश्वकी रक्षाके लिये सर्वदेवमय परम शोभन दिव्य रथको रचा ॥ ४४ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ❋ ❋ ❋

व्यासजीने कहा, कि—हे सद्बुद्धि वाले सर्वज्ञ शैवश्रेष्ठ सनत्कुमारजी ! आपने शिवजीकी यह अद्भुत बात सुनाई ॥ १ ॥ अब बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवके लिये जो देवमय दिव्य रथ बनाया था उस रथका वर्णन करिये ॥२॥ सूतजी कहते हैं, कि-मुनीश्वर सनत्कुमारजी व्यासजीके इस वचनको सुन कर शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा कि-हे महाबुद्धिमान् मुनि व्यासजी ! मैं शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके रथ आदिके निर्माणका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ, सुनिये॥४॥ तदनन्तर विश्वकर्माने देवदेव रुद्रके लिये सर्वलोकमय दिव्य रथको यत्नपूर्वक आदरके साथ बनाया ॥ ५ ॥ वह रथ सर्वभूतमय था, सुवर्णका था और सर्व-सम्मत था, रथका दाहिना अंग सूर्य था और उसके वामभागमें चन्द्रमा विराजमान थे ॥६॥ उसका दाहिना पहिया बारह अरों वाला था और बायाँ (उत्तर की ओरका) सोलह अरों वाला था, हे सुव्रत विप्रेन्द्र ! उन अरोंमें बारह आदित्य थे और वामचक्रमें चन्द्रमाकी सोलह कलायें थीं और सम्पूर्ण नक्षत्र भी उस वामचक्रके ही भूषण बने हुए थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ छः ऋतुएँ उन दोनों

षट् च तयोर्वै विप्रपुङ्गव । पुष्करं चांतरिक्षं वै रथनीडश्च मन्दरः ॥ ६ ॥ अस्ताद्रिरुदयाद्रिस्तु तावुभौ कूबरौ स्मृतौ । अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केशराचलाः १० वेगस्संवत्सरास्तस्य अयने चक्रसंगमौ । मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः ॥ ११ ॥ तस्य काष्ठाः स्मृता घोणाश्चाक्षदण्डाः क्षणाश्च वै । निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषाश्च लवाः स्मृताः ॥ १२ ॥ द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ । युगान्तकोटितौ तस्य भ्रमकामदुघौ स्मृतौ ॥ १३ ॥ ईषादण्डस्तथा व्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः । कोणास्तस्याप्यहङ्कारो भूतानि च बलं स्मृतम् ॥ १४ ॥ इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समन्ततः । श्रद्धा च गतिरस्यैव रथस्य मुनिसत्तम १५ तदानीं भूषणान्येव षडङ्गान्युपभूषणम् । पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः ॥ बलाशया वराश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः । मन्त्रा घण्टाः स्मृतास्तेषां वर्णपादास्तदाश्रमाः ॥ १७ ॥ अथो बन्धो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः । दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह ॥ १८ ॥ पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः । समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकम्बलिनस्स्मृताः ॥ १९ ॥ गङ्गाद्यास्सरितः श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः । चामरासक्तहस्ताग्रास्सर्वास्स्त्रीरूपशोभिताः ॥२०॥ तत्र तत्र कृतस्थानाः

पहियोंकी नेमि थीं, अन्तरिक्ष रथका अग्रभाग हुआ, मन्दराचल रथके बैठनेका स्थान हुआ ॥ ९ ॥ अस्ताचल और उदयाचल उस रथके दोनों कूबर हुए, महामेरु अधिष्ठान हुआ और शाखापर्वत केसर हुए ॥१०॥ सम्वत्सर उस रथका वेग हुआ और दोनों अयन उस रथके लोहधारक हुए, मुहूर्त उसके बन्धुर हुए, कलायें सैला हुईं, काष्ठा उसकी घोण हुईं और क्षण अक्षदण्ड हुए, निमेष अनुकर्ष (सुगन) हुआ और लव ईषा (लांगलदण्ड) हुए ॥ ११ ॥ १२ ॥ द्यौ वरूथ हुआ तथा स्वर्ग और मोक्ष इसकी दो ध्वजाएँ हुईं, उसमें ईषादण्ड व्यक्त था और बुद्धि नड्वल था, अहंकार उसका कोना था और भूत उसका बल थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ इन्द्रियें उसके चारों ओरके भूषण थे और हे मुनि सत्तम ! श्रद्धा उस रथकी गति थी ॥ १५ ॥ छः वेदांग उसके भूषण थे और पुराण, न्याय, मीमांसा, तथा धर्मशास्त्र उसके उपभूषण थे ॥ १६ ॥ बलसम्पन्न सर्वलक्षणसम्पन्न श्रेष्ठ २ मन्त्र उस रथके घण्टे थे और आश्रम वर्ण उसके पाद थे ॥ १७ ॥ और सहस्रफनोंसे भूषित अनन्तजी उसके बंध बने, दिशाएँ और उपदिशाएँ उस रथकी पाद (लकड़ियें) बनीं ॥ १८ ॥ और पुष्कर आदिक क्षेत्र उसकी रत्नोंसे विभूषित सुवर्णकी झण्डियें बने और चारों समुद्र परिवेष हुए ॥ १९ ॥ और गंगा आदि श्रेष्ठ २ नदियें स्त्रियोंका रूप धारण कर, सब आभूषणोंसे विभूषित हो, हाथमें चमर ले जहाँ तहाँ उस रथ

शोभयाश्चक्रिरे रथम् । आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम् ।२१। लोकालोका-चलस्तस्योपसोपानास्समन्ततः । विषमश्च तथा बाह्यो मानसादिस्तु शोभनः ॥२२॥ पाशास्समन्ततस्तस्य सर्वे वर्षाचलास्स्मृताः । तलास्तस्य रथस्याथ सर्वे तलनिवासिनः ॥ २३ ॥ सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवो रश्मिधरः स्मृतः । प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ॥ २४ ॥ अकारश्च महच्छत्रं मन्दरः पार्श्वदण्डभाक् । शैलेन्द्रः कार्मुकं तस्य ज्या भुजङ्गाधिपस्स्वयम् ॥ २५ ॥ घण्टा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी । इषुर्विष्णुर्महातेजास्त्वग्निश्शल्यं प्रकीर्तितम् ॥२६॥ हयास्तस्य तथा प्रोक्ताश्चत्वारो निगमा मुने । ज्योतींषि भूषणं तेषामवशिष्टान्यतः परम् ॥ २७ ॥ अनीकं विषसम्भूतं वायवो वाजकास्स्मृताः । ऋषयो व्यासमुख्याश्च वाहवाहास्तथाभवन् ॥ स्वल्पाक्षरैस्संब्रवीमि किं बहूक्त्या मुनीश्वर । ब्रह्माण्डे चैव यत्किञ्चिद्वस्तु तद्वै रथे स्मृतम् ॥ २९ ॥ एवं सम्यक्कृतस्तेन धीमता विश्वकर्मणा । स रथादिप्रकारो हि ब्रह्मविष्ण्वाज्ञया शुभः ॥ ३० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे रथादियुद्धप्रकारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

को सुशोभित करने लगीं ॥ २० ॥ आवह आदि सात वायु उस रथकी सुवर्णविभूषित सात सीढ़ियें बने और लोकालोक पर्वत उसके उपसोपान बने और मानस आदि सरोवर उसके बाहरी विषम स्थान हुए और सम्पूर्ण वर्षाचल उसके पाश हुए और सम्पूर्ण तलनिवासी उसका तल बने, भगवान् ब्रह्माजी उसके लगामोंको पकड़ने वाले सारथि बने और ब्रह्मदैवत ओंकार उन ब्रह्माजीका कोड़ा बना ॥ २१–२४ ॥ अकार बड़ा भारी छत्र बना और मन्दराचल करवटकी लकड़ी बना, पर्वतराज (हिमालय) धनुष बना और स्वयं शेषजी उसकी प्रत्यञ्चा बने ॥ २५ ॥ और श्रुतिरूपिणी सरस्वती देवी उस धनुषकी घण्टा बनीं और महातेजस्वी विष्णु उस धनुषके बाण बने और अग्नि उस बाणका शल्य बना ॥ २६ ॥ और हे मुने ! चारों वेद उस रथके चारों घोड़े बने और बाकी रही हुई ध्रुव आदि ज्योतियें उन घोड़ोंके भूषण बन गईं, विषसे प्रकट हुई वस्तुएँ सेना बन कर उस रथके चारों ओर फैल गईं और वायु वाजक हुए और व्यास आदि मुख्य २ ऋषि उसके वाहवाह हुए २७-२८ हे मुनीश्वर ! अधिक कहनेसे क्या, मैं थोड़ेसे ही अक्षरोंमें कहता हूँ, कि— ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी वस्तु है, वह सब रथरूपमें परिणत होगई ॥ २९ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे इस शुभ रथको बनाया था ॥ ३० ॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ❀ ❀

सनत्कुमार उवाच : इत्थंविधं महादिव्यं नानाश्चर्यमयं रथम् । संनह्य निगमानश्वांस्तं ब्रह्मा प्रार्पयच्छिवम् ॥ १ ॥ शम्भवेऽसौ निवेद्याधिरोपयामास शूलिनम् । बहुशः प्राथ्यं देवेशं विष्ण्वादिसुरसम्मतम् ॥ २ ॥ ततस्तस्मिन्रथे दिव्ये रथप्राकारसंयुते । सर्वदेवमयः शम्भुरारुरोह महाप्रभुः ॥३॥ ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगन्धर्वपन्नगैः । विष्णुना ब्रह्मणा चापि लोकपालैर्बभूव ह ॥ ४ ॥ उपावृतश्चाप्सरसां गणैर्गीतविशारदैः । शुशुभे वरदश्शम्भुस्स तं प्रेक्ष्य च सारथिम् ॥ ५ ॥ तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसंभृतम् । शिरोभिः पतिता भूमौ तुरङ्गा वेदसम्भवाः ॥ ६ ॥ चचाल वसुधा चेलुस्सकलाश्च महीधराः । चकम्पे सहसा शेषोऽसोढा तद्भारमातुरः ॥ ७ ॥ अथाधः स रथस्यास्य भगवान्धरणीधरः । वृषेन्द्ररूपी चोत्थाय स्थापयामास वै क्षणम् ॥८॥ क्षणान्तरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम् । रथारूढमहेशस्य सुतेजस्सोढुमक्षमः ॥ ९ ॥ अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयांस्तदा । स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं वरम् ॥१०॥ ततोऽसौ नोदयामास मनोमारुतरंहसः । ब्रह्मा हयान्वेदमयान्नद्धान्रथवरे स्थितः ॥११॥ पुराण्युद्दिश्य वै त्रीणि तेषां खस्थानि तानि हि । अधिष्ठिते महेशे तु दानवानां तरस्विनाम् ॥ १२ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए वेदरूपी घोड़ों वाले उस महारथको प्रस्तुत कर ब्रह्माजीने उसको शिवजीके अर्पण कर दिया ॥ १ ॥ और शम्भुको अर्पण करनेके अनन्तर विष्णु आदिक देवताओंके माननीय शम्भुकी अनेक प्रकारकी प्रार्थना कर उनको रथ पर चढ़ाने लगे २ तब उस दिव्य रथसामग्री वाले रथ पर सर्वदेवमय महाप्रभु शम्भु चढ़ने लगे ३ उस समय ब्रह्मा, विष्णु, लोकपाल, ऋषि, देवता, गन्धर्व और किन्नर सब ही उनकी स्तुति करने लगे ॥४॥ उस समय गानेमें चतुर अप्सराओंसे घिरे हुए वरदायक शम्भु, उन सारथिको देखते हुए शोभा पाने लगे ॥५॥ जब वह सारे लोककी भरी हुई वस्तुओंसे कल्पित रथ पर चढ़े तब वेदके अंश घोड़े शिरके बल भूमिमें गिर (प्रणाम कर) ने लगे ॥ ६ ॥ पृथ्वी और पर्वत काँप उठे और शेषजी भी उनके भारको न सह आतुर हो काँप उठे ॥ ७ ॥ तदनन्तर भगवान् शेषने वृषेन्द्रका रूप धारण कर उस रथको नीचेसे ऊपरको उठाया ८ कि–क्षण भरमें वह वृषेन्द्र भी रथमें चढ़े हुए महेशके तेजको न सह सकनेके कारण घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ९ ॥ तदनन्तर हाथमें कोड़े वाले भगवान् ब्रह्माजीने शिवके वचनके अनुसार घोड़ोंको यत्नके साथ उठाकर खड़ा किया ॥ १० ॥ तदनन्तर उत्तम रथमें विराजमान ब्रह्माजी मन और वायुकी समान वेग वाले वेदमय घोड़ोंको आकाशमें स्थित उन तीनों पुरोंकी ओर हाँकने लगे, फिर जिस समय महेश फुर्तीले दानवोंके देशमें पहुँच गए ११।१२

अथाह भगवान्रुद्रो देवानालोक्य शङ्करः । पशूनामाधिपत्यं मे दध्वं हन्मि ततोऽसुरान् ॥ पृथक् पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः । कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा दैत्यसत्तमाः सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धीमतः । विषादमगमन्सर्वे पशुत्वं प्रति शंकिताः ॥ १५ ॥ तेषां भावमथ ज्ञात्वा देवदेवोऽम्बिकापतिः । विहस्य कृपया देवाञ्छम्भुस्तानिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ शम्भुरुवाच । मा वोऽस्तु पशुभावेऽपि पातो विबुधसत्तमाः । श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः ॥ १७ ॥ यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति । पशुत्वादिति सत्यं वः प्रतिज्ञातं समाहिताः ॥१८॥ ये चाप्यन्ये करिष्यन्ति व्रतं पाशुपतं मम । मोक्ष्यन्ति ते न सन्देहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः ॥ १९ ॥ नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्द्धं वर्षकत्रयम् । शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते ॥२०। तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः । पशुत्वान्मोक्ष्यथ तदा यूयमत्र न संशयः ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य महेशस्य परात्मनः । तथेति चाब्रुवन्देवा हरिब्रह्मादयस्तथा ॥ २२ ॥ तस्माद्वै पशवस्सर्वे देवासुरवराः प्रभोः । रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः ॥ २३ ॥ तदा पशुपतीत्येतत्तस्य नाम महेशितुः । प्रसिद्धमभवद्विश्वे सर्व-

तब देवताओंकी ओर देखकर कहने लगे, कि—यदि तुम मुझे पशुओंका आधिपत्य दो, तो मैं इन असुरोंका संहार करूँ ॥ १३ ॥ हे देवताओं ! तुम देवताओंको पृथक् २ पशु भी बनाओ, तभी मैं उन श्रेष्ठ दैत्योंका वध करूँगा, अन्यथा नहीं ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—बुद्धिमान् देवदेवके इस वचनको सुन कर पशुत्वकी शंका कर सब देवता खिन्न होने लगे ॥ १५ ॥ उनके भावको जान कर देवदेव अम्बिकापति शम्भु हँसे और कृपा कर उनसे यह कहने लगे ॥ १६ ॥ शम्भुने कहा, कि—हे श्रेष्ठ देवताओं ! तुम्हारा पशुभावमें पतन नहीं होगा अब तुम पशुभावसे मुक्त होनेकी विधि सुनो और वैसा ही करना ॥१७॥ जो दिव्य पाशुपत व्रतको करेगा, वह पशुत्वसे छूट जायगा, यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ १८ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! जो कोई और भी इस पाशुपत व्रतको करेगा, वह पशुत्वसे छूट जावेगा ॥ १९ ॥ जो नैष्ठिक ब्रह्मचय रख बारह वर्ष तक वा छः वर्ष तक अथवा तीन वर्ष तक मेरी शुश्रूषा करेगा (वा करावेगा) वह पशुत्वसे छूट जावेगा ॥ २० ॥ अतः हे श्रेष्ठदेवताओं ! तुम इस परम दिव्य व्रतका आचरण करके पशुत्वसे छूट जाओगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि—परमात्मा महेश्वरके इस वचनको सुनकर हरि और ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा, कि—तथास्तु २२ अतः प्रभु शंकरके सब देवता और असुर पशु ही हैं और रुद्र पशुपति हैं और पशुओंके पाशको छुड़ाने वाले हैं ॥ २३ ॥ उस दिनसे महेश्वरका पशुपति नाम

लोकेषु शर्मदम् ॥२४॥ मुदा जयेति भाषन्तस्सर्वे देवर्षयस्तदा । अमुदंश्चाति देवेशो ब्रह्मा विष्णुः परेऽपि च ॥ २५ ॥ तस्मिंश्च समये यच्च रूपं तस्य महात्मनः । जातं तद्वर्णितुं शक्यं न हि वर्षशतैरपि ॥ २६ ॥ एवं विधो महेशानो महेशान्यखिलेश्वरः । जगाम त्रिपुरं हन्तुं सर्वेषां सुखदायकः ॥ २७ ॥ तं देवदेवं त्रिपुरं निहन्तुं तदा नु सर्वे तु रवि-प्रकाशाः । गजैर्हयैस्सिंहवरै रथैश्च वृषैर्ययुस्तेऽमरराजमुख्याः ॥ २८ ॥ हलैश्च शालैर्मुश-लैर्भुशुण्डैर्गिरीन्द्रकल्पैर्गिरिसंनिभाश्च । नानायुधैस्संयुतबाहवस्ते ततो नु हृष्टाः प्रययुः सुरेशाः ॥ २९ ॥ नानायुधाढ्याः परमप्रकाशा महोत्सवाश्शम्भुजयं वदन्तः । ययुः पुरस्तस्य महेश्वरस्य तदेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः ॥ ३० ॥ जहृषुर्मुनयस्सर्वे दंडहस्ता जटाधराः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचरास्सिद्धचारणाः ॥ ३१ ॥ पुरत्रयं च विप्रेन्द्रा व्रजन्सर्वे गणेश्वराः । तेषां संख्यां च कः कर्तुं समर्थो वच्मि कांश्चन ॥ ३२ ॥ गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृंगी समावृतस्सर्वगणेन्द्रवर्यः । जगाम योगी त्रिपुरं निहन्तुं विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः केशो विगतवासश्च महाकेशो महाज्वरः । सोमवल्लीसवर्णश्च सोमपस्सनकस्तथा ॥३४॥ सोमधृक् सूर्यवर्चाश्च सूर्यप्रेषणकस्तथा । सूर्याक्षस्सूरिनामा च सुरस्सुन्दर एव च ॥३५॥

प्रसिद्ध होगया, यह सब लोकोंमें कल्याण करने वाला है ॥ २४ ॥ उस समय सब देवता और ऋषि जय जयकार करने लगे तब देवेश ब्रह्मा विष्णु तथा दूसरे देवता भी प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ उस समय महात्मा शंकरका जैसा रूप बन गया था, उसका सैंकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जासकता ॥ २६ ॥ ऐसे महेश जो कि—शिवा तथा सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं और सबको सुख पहुँ-चाने वाले हैं वह, त्रिपुरको मारनेके लिये चल दिये ॥ २७ ॥ जब वह देव-देव त्रिपुरको मारनेके लिये चले तब उनके साथमें रविकी समान प्रकाशमान मुख्य २ देवता हाथी घोड़े सिंह रथ और बैलों पर चढ़ कर चलने लगे ।२८। वे पर्वतराजकी समान शरीर वाले देवताओंके स्वामी देवता हाथोंमें हल शाल मूसल भुशुण्डो और पर्वतराजकी समान विशाल आयुधोंको लेकर चल रहे थे ॥ २९ ॥ उस समय इन्द्र ब्रह्मा और विष्णु आदि मुख्य २ देवता अनेक आयुधोंको ले, बड़े भारी उत्साहमें भर जानेके कारण परम प्रकाशित हो शंभु की जय हो कहते हुए शम्भुके आगे २ चलने लगे ॥३०॥ उस समय जटाओं वाले दण्डधारी मुनि प्रसन्न होगए और आकाशचारी सिद्ध और चारण पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ उस समय जो जो विप्रेन्द्र और गणेश्वर त्रिपुर की ओर चले उनकी गिनती कौन कर सकता है, मैं कुछका वर्णन करता हूँ ३२ सब गणेन्द्रोंमें श्रेष्ठ भृङ्गी, गणेश्वरों और देवताओंको साथमें ले, विमानमें चढ़े हुए महेन्द्रकी समान चल दिये ॥ ३३ ॥ तथा केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्लीसवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेषणक, सूर्याक्ष,

प्रस्कन्दः कुन्दरश्चंडः कम्पनश्चातिकम्पनः । इन्द्रश्चेन्द्रजवश्चैव यन्ता हिमकरस्तथा ३६
शताक्षश्चैव पंचाक्षः सहस्राक्षो महोदरः । सतीजहुश्शतास्यश्च रङ्कः कर्पूरपूतनः ।३७।
द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथाहंकारकारकः । अजवक्त्रोऽष्टवक्त्रश्च हयवक्त्रोऽर्द्धवक्त्रकः ।३८।
इत्याद्या गणपा वीरा बहवोऽपरिमेयकाः । प्रययुः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः ।।३९।।
समावृत्य महादेवं तदापुस्ते पिनाकिनम् । दग्धुं समर्था मनसा क्षणेन सचराचरम् ।४०।
दग्धुं जगत्सर्वमिदं समर्थाः किंत्वत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी । ।रथेन किं चात्र शरेण तस्य गणैश्च किं देवगणैश्च शम्भोः ॥ ४१ ॥ स एव दग्धुं त्रिपुराणि तानि देवद्विषां व्यास पिनाकपाणिः । स्वयंगतस्तत्र गणैश्च सार्द्धं निजैस्सुराणामपि सोऽद्भुतोतिः ॥ ४२ ॥ किं तत्र कारणं चान्यद्वच्मि ते ऋषिसत्तम । लोकेषु ख्यापनार्थं वै यशः परमलापहम् ।४३।
अन्यच्च कारणं ह्येतद् दुष्टानां प्रत्ययाय वै । सर्वेष्वपि च देवेषु यस्मान्नान्यो विशिष्यते

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथ शम्भुर्महादेवो रथस्थस्सर्वसंयुतः । त्रिपुरं सकलं दग्धुमुद्यतोऽभूत्सुरद्विषाम् ।।१।। शीर्षे स्थानकमास्थाय सन्धाय च शरोत्तमम् । सज्जं तत्का-

सूरिनामा, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, यन्ता, हिमकर, शताक्ष, पञ्चाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर सतीजहु, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्धवक्त्रक इत्यादि बहुतसे अपरिमेय गणाध्यक्ष वीर, लक्ष्य और लक्षण की परवाह न रखते हुए महेशको घेर कर चलने लगे।। ३४--३९ ।। फिर महादेवके पास पहुँच कहने लगे, कि-महादेवजी तो अपने मनसे ही चर और अचर जगत्को भस्म करनेमें समर्थ हैं, फिर उनको त्रिपुरको भस्म करनेके लिये रथ बाण गण और देवताओंकी तो आवश्यकता ही क्या है ? ।।४०।।४१।। हे व्यासजी ! इस प्रकार वह पिनाकपाणि शिव अपने गणोंको और देवताओंको साथमें ले उन देवद्वेषियोंके त्रिपुरको भस्म करनेके लिये अपने आप चलने लगे ।। ४२ ।। हे ऋषिसत्तम ! इसमें और भी एक कारण है, उसको मैं कहता हूँ, कि-वह पापोंको दूर करनेके लिये अपने यशको संसारमें प्रसिद्ध करना चाहते थे और भी एक कारण है, कि-वह दुष्टोंको यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि-सब देवताओंमें शिवसे बढ़ कर और कोई नहीं है ।। ४३ ।। ४४ ।। नवम अध्याय समाप्त ।। ९ ।।

सनत्कुमारजीने कहा, कि-तदनन्तर सबके साथमें विराजमान रथमें स्थित महादेव शम्भु असुरोंके पूर्ण त्रिपुरको भस्म करनेके लिये उद्यत होगए ।। १ ।। वह रथके शीर्षस्थानमें पहुँच उत्तम बाणको रख, धनुषको तान अद्भुत रीतिसे

मुकं कृत्वा प्रत्यालीढं महाद्भुतम् ॥२॥ निवेश्य दृढमुष्टौ च दृष्टिं दृष्टौ निवेश्य च । अतिष्ठन्निश्चलस्तत्र शतं वर्षसहस्रकम् ॥३॥ ततोऽङ्गुष्ठे गणाध्यक्षस्स तुदत्यनिशं स्थितः । न लक्ष्यं विविशुस्तानि पुराण्यस्य त्रिशूलिनः ॥ ४ ॥ ततोऽन्तरिक्षादशृणोद्धनुर्बाणधरो हरः । मुञ्जकेशो विरूपाक्षो वाचं परमशोभनाम् ॥५॥ भो भो न यावद्भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः । पुराणि जगदीशेश सांप्रतं न हनिष्यति ॥ ६ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्त्रमपूजयत् । भद्रकालीं समाहूय ततोऽन्धकनिषूदनः ॥७॥ तस्मिन् संपूजिते हर्षात्परितुष्टे पुरस्सरे । विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भगवान्हरः ॥ ८ ॥ पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम् । यथातथं हि युक्तानि केचिदित्थं वदन्ति ह ॥ ९ ॥ परब्रह्मणि देवेशे सर्वोपास्ये महेश्वरे । अन्यप्रसादतः कार्यसिद्धिर्घटति नेति हि ॥ १० ॥ स स्वतंत्रः परं ब्रह्म सगुणो निर्गुणोऽपि ह । अलक्ष्यस्सकलैस्स्वामी परमात्मा निरंजनः ॥ ११ ॥ पञ्चदेवात्मकः पञ्चदेवोपास्यः परः प्रभुः । तस्योपास्यो न कोऽप्यस्ति स एवोपास्य आलयम् ॥ १२ ॥ अथ वा लीलया तस्य सर्वं संघटते मुने । चरितं देवदेवस्य वरदातुर्महेशितुः ॥ १३ ॥ तस्मिंस्थिते महादेवे पूजयित्वा गणाधिपम् । पुराणि तत्र कालेन जग्मु-

जबाड़ोंको चाटने लगे ॥ २ ॥ वह धनुषकी दृढ़ मुष्टि पर हाथ रख त्रिपुर पर दृष्टि लगा एक लाख वर्ष तक निश्चल खड़े रहे ॥ ३ ॥ उस समय वह गणाध्यक्ष अपने अँगूठेको हिलाते ही रहे परन्तु उस त्रिपुर पर उनका लक्ष्य न बँधा ॥ ४ ॥ तदनन्तर मुञ्जकेश विरूपाक्ष धनुषबाणधारी हरने आकाशमेंसे परम शोभन वाणीको सुना, कि—॥ ५ ॥ हे जगदीश ! हे भगवन् ! जब तक आप गणेशजीकी पूजा नहीं करेंगे, तब तक इन तीन पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे ॥ ६ ॥ तब अन्धकासुरका संहार करने वाले महादेवने भद्रकालीको बुला कर गणेशजीका पूजन किया ॥ ७ ॥ जब उन्होंने हर्षमें भर कर गणेशजीका पूजन किया और विनायकजी प्रसन्न होगए, तब भगवान् हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको यथोक्तरूपसे आकाशमें देखा । इस विषयमें कोई २ कहते हैं, कि—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब महेश्वर देवताओंके ईश हैं, सबके उपास्य हैं, परब्रह्म हैं, तब उनकी कार्यसिद्धि दूसरोंकी उपासनासे हो, यह बात उचित नहीं मालूम होती ॥ १० ॥ (क्योंकि-) वह तो स्वतन्त्र हैं, परब्रह्म हैं, सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं, स्वामी हैं, परमात्मा हैं, निरञ्जन हैं और सबसे अलक्ष्य हैं ॥ ११ ॥ वह पाँचों देवताओंमें व्याप्त हैं और पञ्चदेवरूपसे उपास्य हैं और पर प्रभु हैं, उनका उपास्य कोई नहीं है, वही उपास्य हैं, वही भक्तों के आलय हैं ॥ १२ ॥ अथवा हे मुने ! लीलावश उन देवदेव वरदाता महेश में यह सब चरित्र घट सकता है ॥१३॥ (अस्तु !) जब वह महादेव गणेशजी का पूजन कर चुके, तब वह पुर कालवश एकताको प्राप्त होगए ॥ १४ ॥

रेकत्वमाशु तौ ॥१४॥ एकीभावं मुने तत्र त्रिपुरे समुपागते । बभूव तुमुलो हर्षो देवादीनां महात्मनाम् ॥१५॥ ततो देवगणास्सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः। जयेति वाचो मुमुचुः स्तुवन्तश्चाष्टमूर्तिनम् ॥१६॥ अथाहेति तदा ब्रह्मा विष्णुश्च जगतां पतिः। समयोऽपि समायातो दैत्यानां वधकर्मणः ॥१७॥ तेषां तारकपुत्राणां त्रिपुराणां महेश्वर । देवकार्यं कुरु विभो एकत्वमपि चागतम् ॥ १८ ॥ यावन्न यान्ति देवेश विप्रयोगं पुराणि तौ । तावद्बाणं विमुञ्चंश्च त्रिपुरं भस्मसात्कुरु ॥ १९ ॥ अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वस्संधाय तं शरम् । पूज्यं पाशुपतास्त्रं स त्रिपुरं समचिंतयत् ॥ २० ॥ अथ देवो महादेवो वरलीलाविशारदः । केनापि कारणेनात्र सावज्ञं तदवैक्षत ॥२१॥ पुरत्रयं विरूपाक्षः कर्तुं तद्भस्मसात्क्षणात् । समर्थः परमेशानो मीनातु च सतां गतिः ॥ २२ ॥ दग्धुं समर्थो देवेशो वीक्षणेन जगत्त्रयम् । अस्मद्यशोविवृद्ध्यर्थं शरं मोक्तुमिहार्हसि ॥ २३ ॥ इति स्तुतोऽमरैस्सर्वैर्विष्णवादिविधिभिस्तदा । दग्धुं पुरत्रयं तद्वै बाणेनैच्छन्महेश्वरः ॥ २४ ॥ अभिलाख्यमुहूर्ते तु विकृष्य धनुरद्भुतम् । कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यन्तदुस्सहम् ॥ २५ ॥ आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य महासुरान् । मार्तण्डकोटिवपुषं कांडमुग्रं मुमोच ह ॥ २६ ॥ ददाह

हे मुने ! जब वह त्रिपुर एकीभावको प्राप्त होगए, तब महात्मा देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ १५ ॥ तब सब देवता सिद्ध और परमर्षि जय जय करके अष्टमूर्ति शिवकी स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ उस समय ब्रह्माजीने और जगत्पति विष्णुने कहा, कि—हे विभो ! हे महेश्वर ! इन तारकके पुत्र दैत्योंके वधका समय आगया है, इनके तीनों पुर भी एक होगए हैं, अतः जब तक ये अलग अलग नहीं होते हैं उससे पहिले ही आप बाणको छोड़ कर त्रिपुरको भस्म करिये और देवकार्यको सिद्ध कर डालिये ॥१७-१९॥ तब शिवजीने धनुषको तयार कर पूज्य पाशुपतास्त्रको बाण पर चढ़ाया और त्रिपुरकी ओर छोड़ने का विचार किया ॥ २० ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ लीला करनेमें चतुर महादेव किसी कारणवश अवज्ञापूर्वक देखने लगे ॥२१॥ (देवताओंने कहा, कि–) सज्जनों की गति परमेश्वर क्षण भरमें ही त्रिपुरको भस्म करनेमें समर्थ हैं, अतः वह उन दैत्योंका संहार करें ॥ २२ ॥ हे देवेश ! आप अपनी दृष्टिमात्रसे ही तीनों लोकोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं, तथापि हमारे यशकी वृद्धिके लिये आपको बाण छोड़ना उचित है ॥ २३ ॥ ब्रह्मा और विष्णु आदिके इस प्रकार स्तुति करने पर महेश्वरने तीनों पुरोंको भस्म करनेकी इच्छा की ॥ २४ ॥ उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषको खेंच प्रत्यञ्चाका अत्यन्त दुःसह शब्द कर अपना नाम सुनाते हुए करोड़ों सूर्योंकी समान कान्तिमान् उग्र बाणको असुरों पर छोड़ दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ विशेषरूपसे मलको दूर करने करने

त्रिपुरस्थांस्तान्दैत्यांस्त्रीन्विमलानहः । स आशुगो विष्णुमयो वह्निशल्यो महाज्वलन् ।२७।
ततः पुराणि दग्धानि चतुर्जलधिमेखलाम् । गतानि युगपद्भूमिं त्रीणि दग्धानि भस्मशः
दैत्यास्तु शतशो दग्धास्तस्य बाणस्थवह्निना । हाहाकारं प्रकुर्वतश्शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥
तारकाक्षस्तु निर्दग्धो भ्रातृभ्यां सहितोऽभवत् । सस्मार स्वप्रभुं देवं शंकरं भक्तवत्सलम्
भक्त्या परमया युक्तः प्रलपन् विविधा गिरः । महादेवं समुद्वीक्ष्य मनसा तमुवाच सः ॥
तारकाक्ष उवाच । भव ज्ञातोऽसि तुष्टोऽसि यद्यस्मान् सह बन्धुभिः । तेन सत्येन भूयो-
ऽपि कदा त्वं प्रदहिष्यसि ॥ ३२ ॥ दुर्लभं लब्धमस्माभिर्यदप्राप्यं सुरासुरैः । त्वद्भाव-
भाविता बुद्धिर्जाते जाते भवत्विति ।३३। इत्येवं विब्रुवन्तस्ते दानवास्तेन वह्निना । शिवा-
ज्ञयाद्भुतं दग्धा भस्मसादभवन्मुने ॥३४॥ अन्येऽपि बाला वृद्धाश्च दानवास्तेन वह्निना ।
शिवाज्ञया द्रुतं व्यास निर्दग्धा भस्मसात्कृताः ॥ ३५ ॥ स्त्रियो वा पुरुषा वापि वाहनानि
च तत्र ये । सर्वे तेनाग्निना दग्धाः कल्पान्ते तु जगद्यथा ॥ ३६ ॥ भर्तॄन्कण्ठगतान्हित्वा
काश्चिद्दग्धा वरस्त्रियः । काश्चित्सुप्ताः प्रमत्ताश्च रतिश्रान्ताश्च योषितः ॥ ३७ ॥ अर्द्ध-
दग्धा विबुद्धाश्च बभ्रमुर्मोहमूर्च्छिताः । तेन नासीत्सुसूक्ष्मोऽपि घोरत्रिपुरवह्निना ।३८।

वाले, विष्णुमय, अग्निरूप शल्य वाले दमकते हुए उस शीघ्रगामी बाणने त्रिपुरमें स्थित उन दैत्योंको जला डाला ।।२७।। तब वे तीनों पुर भस्म होकर चार समुद्ररूपी मेखला वाली भूमि पर भस्म होकर गिरने लगे ।। २८ ।। उस समय शिवपूजामें गड़बड़ी करनेसे उस बाणमें स्थित वह्निसे हाहाकार करते हुए सैंकड़ों दैत्य भस्म होगए ।।२९।। तारकाक्ष जिस समय अपने भाइयों सहित भस्म होने लगा, उस समय उसने अपने प्रभु भक्तवत्सल शंकर देवका स्मरण किया ।। ३० ।। और महादेवकी ओर देख परमभक्तिके साथ अपने मनमें बड़ा विलाप करने लगा ।। ३१ ।। तारकाक्षने कहा, कि-हे भव ! हमने जान लिया, कि-आप मेरे बान्धवों पर और मुझ पर प्रसन्न हैं, इस सत्यके प्रतापसे आप कब फिर हमें भस्म करेंगे, अहो जो बात देवता और असुरोंको भी दुर्लभ है उस (आपसे मारे जाना रूप) दुर्लभ बातको हम पारहे हैं हे देव ! प्रत्येक जन्म में हमारी बुद्धि आपकी भक्तिसे भावित रहे ।। ३२ ।। ३३ ।। हे मुने ! इस प्रकार विलाप करते हुए वे दैत्य शिवकी आज्ञासे अग्निके द्वारा अद्भुत रीतिसे भस्म होगए ।। ३४ ।। हे व्यासजी ! दूसरे भी बालक वृद्ध दानव शिवकी आज्ञानुसार उस अग्निसे भस्म होकर क्षार होगए ।। ३५ ।। त्रिपुरमें स्त्री और पुरुष जो भी थे वे सब कल्पान्तमें अग्निसे भस्म होनेकी समान उस अग्निसे भस्म होगए ।। ३६ ।। बहुतसी श्रेष्ठ स्त्रियें गलेमें भुजाएँ डालने वाले अपने पतियोंको छोड़ भस्म होगईं, सोई हुईं, प्रमत्त, और रतिश्रान्त स्त्रियें भी आधे जलने पर जाग कर मोहमें पड़ मूर्च्छित हो चकराने लगीं, त्रिपुरमें लगी हुई

अविदग्धो विनिर्मुक्तः स्थावरो जङ्गमोऽपि वा । ।वर्जयित्वा मयं दैत्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ ३९॥ अविरुद्धं तु देवानां रक्षितं शम्भुतेजसा । विपत्कालेऽपि सद्भक्तं महेशशरणागतम् ॥ ४० ॥ सन्निपातो हि येषां नो विद्यते नाशकारकः । दैत्यानामन्यसत्त्वानां भावाभावे कृताकृते ॥ ४१ ॥ तस्माद्यत्नरसुसंभाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि । गर्हणात्क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत् ॥ ४२ ॥ न संयोगो यथा तेषां भूयात्त्रिपुरवासिनाम् । मतमेतद्धि सर्वेषां दैवाद्यदि यतो भवेत् ॥ ४३ ॥ ये पूजयन्तस्तत्रापि दैत्या रुद्रं सबान्धवाः । गाणपत्यं ययुस्सर्वे शिवपूजाविधेर्बलात् ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
त्रिपुरदाहवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

व्यास उवाच । ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैवसत्तम । किमकार्षुस्ततो देवा दग्धे च त्रिपुरेऽखिलाः । १ ॥ मयः कुत्र गतो दग्धो पतयः कुत्र ते गताः । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व यदि शम्भुकथाश्रयम् ॥ २ ॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य व्यासवाक्यं भगवान्भव-

उस घोर वह्निसे स्थावर वा जंगमका कोई छोटासा भाग भी विना जला हुआ नहीं बचा, किन्तु एक अव्यय विश्वकर्मा दैत्य मय ही बचा ॥३७-३९॥ वह देवताओंके विरुद्ध नहीं रहता था, और शम्भुके तेजसे रक्षित रहता था, वह विपत्तिके समय भी महेशका शरणागत और सद्भक्त रहता था, (अत एव बच गया) ॥ ४० ॥ जिन अन्य (सत्त्व) सत्त्व वाले दैत्योंका क्या भाव क्या अभाव, क्या कर्तव्य और क्या अकर्तव्य किसीमें भी नाशकारक पतन नहीं होता (वे सदा बचे रहते हैं) ॥ ४१ ॥ इस लिये सज्जन पुरुषोंको संभावित सत्कर्म करना ही चाहिये, क्योंकि-गर्हित (निन्दित) कर्म करनेसे प्राणी क्षीण होजाते हैं, इस लिये प्राणीको चाहिये, कि-निन्दित कर्म न करे ॥४२॥ त्रिपुरवासी दैत्योंका (सत्कर्मवश ही) संयोग नहीं होता था, यही बात सबके लिये हैं अर्थात् जो असत्कर्मसे बचे रहकर सत्कर्म करते रहते हैं उनका नाश नहीं होता और दैववश ऐसा होजाय तो होजाओ, जैसे कि-वे दैत्य दैववश (असत्कर्मके चक्रमें पड़ कर) नष्ट होगए थे ॥४३॥ उस समय भी जो दैत्य अपने बान्धवों सहित रुद्रका पूजन करते थे, वे सब (भस्म होकर) शिवपूजाके बलसे (अगले जन्ममें) महेशके गणोंके अध्यक्ष बन गए ॥४४॥ दशम अध्याय समाप्त ॥१०॥

व्यासजीने कहा, कि-हे शैवसत्तम महाबुद्धिमान् ब्रह्मपुत्रजी ! जब तीनों पुर भस्म होगए तब देवताओंने क्या किया ॥ १ ॥ मय कहाँ गया और उन तीनों पुरोंके स्वामियोंकी भस्म होनेके बाद क्या गति हुई, इस शम्भुकी कथासे सम्बन्ध रखने वाली सब बातका आप मुझसे वर्णन करिये ॥२॥ सूतजी

कृत्सुतः । सनत्कुमारः प्रोवाच शिवपादयुगं स्मरन् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाबुद्धे पाराशर्य्य महेशितुः । चरितं सर्वपापघ्नं लोकलीलानुसारिणः महेश्वरेण सर्वास्मिस्त्रिपुरे दैत्यसंकुले । दग्धे विशेषतस्तत्र विस्मितास्तेऽभवन्सुराः न किंचिदब्रुवन्देवाः सेन्द्रोपेन्द्रादयस्तदा । महातेजस्विनं रुद्रं सर्वे वीक्ष्य ससंभ्रमाः ॥ ६ ॥ महाभयङ्करं रौद्रं प्रज्वलन्तं दिशो दश । कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥७॥ भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं च हिमवत्सुताम् । बिभ्यिरे निखिला देवप्रमुखास्तस्थुरानताः ॥८॥ दृष्ट्वानीकं तदा भीतं देवानामृषिपुङ्गवाः । न किंचिदूचुस्संतस्थुः प्रणेमुस्ते समन्ततः ॥ ९ ॥ अथ ब्रह्मापि संभीतो दृष्ट्वा रूपं च शांकरम् । तुष्टाव तुष्टहृदयो देवैस्सह समाहितः ॥ १० ॥ विष्णुना च सभीतेन देवदेवं भवं हरम् । त्रिपुरारिं सगिरिजं भक्ताधीनं महेश्वरम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच । देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक । प्रसीद परमेशान सर्वदेवहितप्रद ॥१२॥ प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानन्ददायक । प्रसीद शंकरस्वामिन् प्रसीद परमेश्वर ॥१३॥ ओंकाराय

कहते हैं, कि—व्यासजीके इस वचनको सुन, संसारकी रचना करने वाले ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् सनत्कुमारजी शिवके दोनों चरणोंका स्मरण कर कहने लगे ३ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे पराशरके पुत्र महाबुद्धिमान् व्यासजी ! लोकलीलाके अनुसार कर्म करने वाले महेश्वरके सकल पापोंको दूर करने वाले चरित्रको तुम सुनो ॥४॥ दैत्योंसे भरे हुए तीनों पुरोंको जब महादेवजी जला चुके, तब देवता बड़े विस्मित हुए ॥ ५ ॥ उस समय महातेजस्वी रुद्रकी ओर देख रुद्र और विष्णु आदि देवता गौरववश कुछ न बोल सके ॥ ६ ॥ करोड़ों सूर्यकी समान और प्रलयकालकी अग्निकी समान दशों दिशाओंको धकधकाते हुए शम्भुके महाभयङ्कर रौद्ररूपको देख कर और देवी पार्वतीको देख कर भय के कारण सम्पूर्ण देवता भौचक्के रह गए और बड़े २ देवता नम्र होकर खड़े होगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय देवताओंकी सेनाको डरा हुआ देख कर बड़े बड़े ऋषि भी कुछ न कह सके और शम्भुको प्रणाम करने लगे ॥ ९ ॥ उस समय (त्रिपुरसंहारसे) सन्तुष्ट हुए ब्रह्माजी भी शिवके (उग्र) रूपको देख देवताओं सहित सावधान हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ और डरे हुए विष्णुने भी डरे हुए देवदेव भव हर त्रिपुरारी भक्ताधीन महेश्वरकी और गिरिजा की स्तुति करनी आरम्भ कर दी ॥ ११ ॥ उस समय ब्रह्माजीने कहा था, कि—हे भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने वाले परमेश्वर देवदेव महादेव ! प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥ हे जगत्के नाथ ! प्रसन्न हूजिये, हे आनन्ददायक ! प्रसन्न हूजिये, हे शंकर स्वामिन् ! प्रसन्न हूजिये २ ॥ १३ ॥ जो आपके आकार

११-७-३६

नमस्तुभ्यमोंकारपरतारक । प्रसीद सर्वदेवेश त्रिपुरघ्न महेश्वर ॥ १४ ॥ नानावाच्याय देवाय वरणप्रिय शंकर । अगुणाय नमस्तुभ्यं प्रकृतेः पुरुषात्पर ॥ १५ ॥ निर्विकाराय नित्याय नित्यतृप्ताय भास्वते । निरञ्जनाय दिव्याय त्रिगुणाय नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ सगुणाय नमस्तुभ्यं स्वर्गेशाय नमोऽस्तु ते । सदाशिवाय शान्ताय महेशाय पिनाकिने ॥ १७ ॥ सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय ते नमः । वामदेवाय रुद्राय तदाख्यपुरुषाय च ॥१८॥ अघोराय सुसेव्याय भक्ताधीनाय ते नमः । ईशानाय वरेण्याय भक्तानन्दप्रदायिने ॥१९॥ रक्ष रक्ष महादेव भीतान्नस्सकलामरान् । दग्ध्वा च त्रिपुरं सर्वे कृतार्था अमराः कृताः ॥ २० ॥ स्तुत्वैवं देवतास्सर्वा नमस्कारं पृथक्पृथक् । चक्रुस्ते परमप्रीता ब्रह्माद्यास्तु सदाशिवम् ॥ २१ ॥ अथ ब्रह्मा स्वयं देवं त्रिपुरारिं महेश्वरम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥२२॥ ब्रह्मोवाच । भगवन्देवदेवेश त्रिपुरान्तक शंकर । त्वयि भक्तिः परा मेऽस्तु महादेवानपायिनी ॥ २३ ॥ सर्वदा मेऽस्तु सारथ्यं तव देवेश शङ्कर । अनुकूलो भव विभो सदा त्वं परमेश्वर ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति स्तुत्वा विधिश्शम्भु

की पूजामें तत्पर रहते हैं, उनको आप तार देते हैं, ऐसे ॐकारस्वरूप महेश्वर के लिये प्रणाम है, हे सब देवताओंके ईश ! त्रिपुरसंहारक ! प्रसन्न हूजिये १४ हे प्रकृति और पुरुषसे पर ! हे अपने वरण करने वालोंको प्रिय समझने वाले ! मैं अनेक पदोंसे वाच्य निर्गुण देव शंकरको प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, कान्तिमान्, निरञ्जन दिव्य त्रिगुणात्मक आपको मैं प्रणाम करता हूँ, स्वर्गके अधिपति, सगुण, सदाशिव, शान्त, महेश, पिनाकी आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ सर्वज्ञ, शरणागतकी रक्षा करने वाले, तत्काल अवतार धारण करने वाले, वामदेव, रुद्र तथापि (अर्धनारीश्वर रूप के कारण) अपुरुष, अघोर, सुसेव्य और भक्तोंके अधीन रहने वाले आपके लिये प्रणाम है, ईशान, वरेण्य और भक्तोंको आनन्द देने वाले महादेवको प्रणाम है ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महादेवजी ! हम सब डरे हुए देवताओंकी आप रक्षा करिये, आपने तीनों नगरोंको भस्म कर देवताओंको कृतार्थ कर दिया है ॥ २० ॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि सब देवताओंने परमप्रसन्न हो सदाशिव की अलग २ स्तुति करके उनको प्रणाम किया ॥२१॥ तदनन्तर स्वयं ब्रह्मा जी कन्धोंको झुका हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक त्रिपुरारी महेश्वरदेवकी स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि— हे देवदेवेश त्रिपुरान्तक भगवन् शंकर महादेव ! आपमें मेरी अटल भक्ति रहे ॥ २३ ॥ हे देवेश शङ्कर ! मैं सदा आपका सारथी बना रहूँ, हे विभो, परमेश्वर ! आप सदा मेरे अनुकूल रहिये २४

भक्तवत्सलमानतः। विरराम नतस्कन्धः कृताञ्जलिरुदारधीः ॥२५॥ जनार्दनोऽपि भगवान् नमस्कृत्य महेश्वरम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महेश्वरम् ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच। देवाधीश महेशान दीनबन्धो कृपाकर। प्रसीद परमेशान कृपां कुरु नतप्रिय ॥२७॥ निर्गुणाय नमस्तुभ्यं पुनश्च सगुणाय च। पुनः प्रकृतिरूपाय पुनश्च पुरुषाय च ॥२८॥ पश्चाद्गुणस्वरूपाय ततो विश्वात्मने नमः। भक्तिप्रियाय शांताय शिवाय परमात्मने ॥ २९ ॥ सदाशिवाय रुद्राय जगतां पतये नमः। त्वयि भक्ति-र्दृढा मेऽद्य वर्द्धमाना भवत्विति ॥३०॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा विररामासौ शैवप्रवरसत्तमः। सर्वे देवाः प्रणम्योचुस्ततस्तं परमेश्वरम् ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः। देवनाथ महादेव करुणाकर शंकर। प्रसीद जगतां नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥ ३२ ॥ प्रसीद सर्वकर्त्ता त्वं नमामस्त्वां वयं मुदा। त्वयि भक्तिर्दृढास्माकं नित्यं स्याद-नपायिनी ॥ ३३ ॥ सनत्कुमार उवाच। इति स्तुतश्च देवेशो ब्रह्मणा हरिणामरैः। प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरो लोकशंकरः ॥ ३४ ॥ शङ्कर उवाच। हे विधे हे हरे देवाः प्रसन्नोऽस्मि विशेषतः। मनोऽभिलषितं ब्रूत वरं सर्वे विचारतः ॥ ३५ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उदार बुद्धि वाले ब्रह्माजी कन्धोंको झुका हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक भक्तवत्सल शम्भुकी इस प्रकार स्तुति करके चुप होगए २५ तदनन्तर भगवान् जनार्दन भी महेश्वरको प्रणाम कर हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ विष्णुने कहा, कि-हे नम्रता रखने वालोंको प्रिय समझने वाले ! देवाधीश, महेश्वर, दीनबन्धो, कृपाकर ! कृपा करिये ॥ २७ ॥ आप निर्गुण हैं और सगुण भी हैं; पुरुषरूप हैं और प्रकृतिरूप भी हैं ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ गुणस्वरूप, विश्वात्मा, भक्तिप्रिय, शान्त शिव परमात्माके लिये वारम्वार प्रणाम है ॥ २९ ॥ सदाशिव रुद्र जगत्के पति रुद्र को प्रणाम है, हे देव ! आपमें मेरी भक्ति सदा बढ़ती रहे ॥३०॥ सनत्कुमार जी कहते हैं, कि-शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ विष्णु इस प्रकार कह कर चुप होगए, तब सब देवता उन परमेश्वरको प्रणाम करके कहने लगे ॥३१॥ देवताओंने कहा, कि-हे देवनाथ,महादेव,करुणाकर,शंकर,जगन्नाथ,परमेश्वर ! प्रसन्न हूजिये ३२ आप सबके कर्ता हैं, प्रसन्न हूजिये, हम आपको आनन्दपूर्वक प्रणाम करते हैं, आपमें हमारी दृढ़ अटल भक्ति रहे ॥३३॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जब ब्रह्मा विष्णु और देवताओंने इस प्रकार देवेश शंकरकी स्तुति की, तब संसार का कल्याण करने वाले शंकर चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ३४ ॥ शंकरने कहा, कि—हे ब्रह्माजी ! हे विष्णुजी ! तथा हे देवताओं ! मैं आप सब पर परमप्रसन्न हूँ, अतः आप सब विचार करके मनचीता वर माँग लीजिये ३५

सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा हरेण मुनिसत्तम । प्रत्यूचुस्सर्वदेवाश्च प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ३६ ॥ सर्वे देवा ऊचुः । यदि प्रसन्नो भगवन्यदि देयो वरस्त्वया । देवदेवेश चास्मभ्यं ज्ञात्वा दासान्हि नस्सुरात्र ॥ ३७ ॥ यदा दुःखं तु देवानां सम्भवेद्देवसत्तम । तदा त्वं प्रकटो भूत्वा दुःखं नाशय सर्वदा ॥ ३८ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तो भगवान् रुद्रो ब्रह्मणा हरिणामरैः । युगपत्प्राह तुष्टात्मा तथेत्यस्तु निरन्तरम् ॥ ३९ ॥ स्तवैरेतैश्च तुष्टोऽस्मि दास्यामि सर्वदा ध्रुवम् । यदभीष्टतमं लोके पठतां शृण्वतां सुराः ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वा शंकरः प्रीतो देवदुःखहरस्सदा । सर्वदेवप्रियं यद्धि तत्सर्वं च प्रदत्तवान् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे देवस्तुतिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुं प्रसन्नं वीक्ष्य दानवः । तत्राजगाम सुप्रीतो मयोऽदग्धः कृपाबलात् ॥ १ ॥ प्रणनाम हरं प्रीत्या सुरानन्यानपि ध्रुवम् । कृतांजलिर्नतस्कन्धः प्रणनाम पुनश्शिवम् ॥ २ ॥ अथोत्थाय शिवं दृष्ट्वा प्रेम्णा गद्गदसुस्वरः । तुष्टाव भक्तिपूर्णात्मा स दानववरो मयः ॥ ३ ॥ मय उवाच । देव-

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुनिसत्तम ! हरके कहे हुए इस वचनको सुन कर सब देवता चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगे ॥३६॥ सब देवताओंने कहा, कि–हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं, हे देवदेवेश ! यदि आप हम देवताओं को अपना दास जान कर वर देना चाहते हैं ॥ ३७ ॥ तो हे देवसत्तम ! यह वर दीजिये, कि–जब २ देवताओं पर दुःख पड़े, तब २ आप प्रकट होकर उस दुःखका सदा नाश किया करिये ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–जब हरि ब्रह्मा और देवताओंने इस प्रकार कहा, तब वह प्रसन्नचित्तसे सबसे कहने लगे, कि–सदा ऐसा ही होगा ॥ ३९ ॥ और मैं तुम्हारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न हुआ हूँ, जो कोई इस चरित्रका पाठ करेगा, वा इस चरित्रको सुनेगा तो उस को मैं मनचाहा पदार्थ दूँगा ॥ ४० ॥ सदा देवताओंके दुःखको दूर करने वाले शंकरने इस प्रकार प्रसन्न हो सकल देवताओंको जो कुछ प्रिय था वह सब ही पदार्थ उनको दिये ॥ ४१ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इस समय मय दानव भी जो शिवजीकी कृपा के बलसे जलनेसे बच गया था, वह शम्भुको प्रसन्न देख कर प्रसन्न होता हुआ वहाँ आया ॥ १ ॥ उसने प्रीतिपूर्वक हरको प्रणाम किया और दूसरे देवताओंको भी प्रणाम किया, तदनन्तर हाथ जोड़ कंधोंको झुका शिवको फिर प्रणाम किया ॥२॥ तदनन्तर वह दानवोंमें श्रेष्ठ मय भक्तिपूर्ण चित्तसे गद्गद

देव महादेव भक्तवत्सल शंकर । कल्पवृक्षस्वरूपोऽसि सर्वपक्षविवर्जितः ॥ ४ ॥ ज्योतीरूपो नमस्तेऽस्तु विश्वरूप नमोऽस्तु ते । नमः पूतात्मने तुभ्यं पावनाय नमोनमः ॥ ५ ॥ चित्ररूपाय नित्याय रूपातीताय ते नमः । दिव्यरूपाय दिव्याय सुदिव्याकृतये नमः ॥ ६ ॥ नमः प्रणतसर्वार्तिनाशकाय शिवात्मने । कर्त्रे भर्त्रे च संहर्त्रे त्रिलोकानां नमोनमः ॥ ७ ॥ भक्तिगम्याय भक्तानां नमस्तुभ्यं कृपालवे । तपस्सत्फलदात्रे ते शिवाकान्त शिवेश्वर ॥ ८ ॥ न जानामि स्तुतिं कर्तुं स्तुतिप्रिय परेश्वर । प्रसन्नो भव सर्वेश पाहि मां शरणागतम् ॥९॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य मयोक्तां हि संस्तुतिं परमेश्वरः । प्रसन्नोऽभूद् द्विजश्रेष्ठ मयं प्रोवाच चादरात् ॥ १० ॥ शिव उवाच । वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं मय दानवसत्तम । मनोऽभिलषितं यत्ते तद्दास्यामि न संशयः ॥ ११ ॥ सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वा शिवं वचश्शम्भोस्स मयो दानवर्षभः । प्रत्युवाच प्रभुं नत्वा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥१२॥ मय उवाच । देवदेव महादेव प्रसन्नो यदि मे भवान् । वरयोग्योऽस्म्यहं चेद्धि स्व-

---

कण्ठके साथ खड़ा होकर शिवकी स्तुति करने लगा ॥ ३ ॥ मयने कहा, कि-हे देवदेव महादेव भक्तवत्सल शंकर ! आप देवता वा दानव किसीका पक्ष नहीं लेते, धर्मका ही पक्ष लेते हैं, इस कारण आप सब पक्षोंसे रहित हैं, तथा भक्तों के लिये कल्पवृक्षस्वरूप हैं ॥ ४ ॥ आप ज्योतिःस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है, हे विश्वरूप ! आपको प्रणाम है, हे पवित्रात्मन् ! आपको प्रणाम है, हे पवित्र करने वाले ! आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ५ ॥ चित्ररूप, नित्य, रूपातीत, दिव्यरूप, दिव्य और सुदिव्य आकृति वाले आपको वारम्वार प्रणाम है ॥६॥ नम्र पुरुषोंकी पीड़ाको दूर करने वाले, शिवात्मा, कर्ता भर्ता और त्रिलोकीका संहार करने वाले आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ७ ॥ भक्तोंको भक्तिसे प्राप्त होने वाले कृपालु शंकरके लिये प्रणाम है, हे शिवाकान्त शिव ईश्वर ! तपका फल देनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ हे स्तुतिप्रिय परमेश्वर ! मैं स्तुति करना नहीं जानता, इस लिये हे सर्वेश ! आप मुझ शरणागत पर प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करिये ॥ ९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे द्विजश्रेष्ठ ! मयकी कही हुई इस स्तुतिको सुन कर परमेश्वर प्रसन्न होगए और आदरपूर्वक मयसे कहने लगे ॥ १० ॥ शिवने कहा, कि-हे दानवश्रेष्ठ मय ! वर माँग, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, जो तेरा मनचाहा पदार्थ होगा, उसे मैं तुझे दूँगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-दानवोंमें श्रेष्ठ मय शम्भुके कल्याणकारी वचनको सुन, कंधे झुका, हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम कर कहने लगा ॥१२॥ मयने कहा, कि-हे देवदेव महादेव ! यदि आप मुझ

भक्तिं देहि शाश्वतीम् ॥१३। स्वभक्तेषु सदा सख्यं दीनेषु च दया सदा। उपेक्षाऽन्यजीवेषु खलेषु परमेश्वर ॥ १४ ॥ कदापि नासुरो भावो भवेन्मम महेश्वर। निर्भयः स्यां सदा नाथ मग्नस्त्वद्भजने शुभे ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच। इति संप्रार्थ्यमानस्तु शंकरः परमेश्वरः। प्रत्युवाच मयं नाथः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।१६। महेश्वर उवाच। दानवर्षभ धन्यस्त्वं मद्भक्तो निर्विकारवान्। प्रदत्तास्ते वरास्सर्वेऽभीप्सितता ये तवाधुना ॥१७॥ गच्छ त्वं वितलं लोकं रमणीयं दिवोऽपि हि। समेतः परिवारेण निजेन मम शासनात् ॥१८। निर्भयस्तत्र संतिष्ठ संहृष्टो भक्तिमान्सदा। कदापि नासुरो भावो भविष्यति मदाज्ञया ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्याज्ञां शिरसाधाय शंकरस्य महात्मनः। तं प्रणम्य सुरांश्चापि वितलं प्रजगाम सः ॥२०॥ एतस्मिन्नन्तरे ते वै मुण्डिनश्च समागताः। प्रणम्योचुश्च तान्सर्वान्विष्णुब्रह्मादिकान् सुरान् ॥२१॥ कुत्र याम वयं देवाः कर्म किं करवामहे। आज्ञापयत नश्शीघ्रं भवदादेशकारकान् ॥ २२ ॥ कृतं दुष्कर्म चास्माभिर्हे हरे हे विधे सुराः। दैत्यानां शिवभक्तानां शिवभक्तिर्विनाशिता ॥ २३ ॥ कोटिकल्पानि नरके नो वासस्तु भवि-

---

पर प्रसन्न हैं और यदि आप मुझे वरयोग्य समझते हैं, तो अपनी शाश्वती भक्ति दीजिये ॥ १३ ॥ मैं अपने भक्तोंसे सदा मित्रता रखूँ, दीनों पर दया करता रहूँ और हे परमेश्वर! दुष्टोंकी उपेक्षा करता रहूँ ॥१४॥ हे महेश्वर! मुझमें कभी आसुर भाव न आवे और मैं आपके शुभ भजनमें मग्न होनेके कारण सदा निर्भय रहूँ ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जब मयने शंकर परमेश्वरकी इस प्रकार प्रार्थना की, तब वह भक्तवत्सल नाथ प्रसन्न होकर मय से इस प्रकार कहने लगे ॥ १६ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे दानवश्रेष्ठ! तुम मेरे निर्विकार भक्त हो अतः धन्य हो, मैं अब तुम्हारे मनचीते सब वरोंको तुम्हें देता हूँ ॥ १७ ॥ अब तुम मेरी आज्ञासे अपने परिवारको लेकर वितल लोकको चले जाओ, वह स्वर्गसे भी रमणीय है ॥ १८ ॥ तुम वहाँ प्रसन्न चित्तसे मेरी भक्ति करते हुए निर्भय होकर रहो मेरी आज्ञासे तुममें कभी आसुर भाव नहीं आवेगा ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि उसने महात्मा शंकरकी इस आज्ञाको शिर पर चढ़ाया फिर उनको तथा देवताओंको प्रणाम कर वितलको चला गया ॥२०॥ इसी समय वहाँ पर वे मुण्डी (यति) भी आगए और ब्रह्मा विष्णु आदि सकल देवताओंको प्रणाम कर कहने लगे, कि—हे देवताओं! हम कहाँ जायँ और क्या काम करें? इसकी हमको शीघ्र ही आज्ञा दीजिये, हम आपकी आज्ञाका पालन करने वाले हैं ॥ २२ ॥ हे हरि, विधि और देवताओं! हमने शिवभक्त दैत्योंकी शिवभक्तिका नाश करके बड़ा

ष्यति। नोद्धारो भविता नूनं शिवभक्तविरोधिनाम् ॥ २४ ॥ परन्तु भवदिच्छात इदं दुष्कर्म नः कृतम्। तच्छान्तिं कृपया ब्रूत वयं वश्शरणागताः ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुब्रह्मादयस्सुराः। अब्रुवन्मुण्डिनस्तांस्ते स्थितानग्रे कृतांजलीन् ॥ २६ ॥ विष्णवाद्य ऊचुः। न भेतव्यं भवद्भिस्तु मुंडिनो वै कदाचन। शिवाज्ञयेदं सकलं जातं चरितमुत्तमम् ॥ २७ ॥ युष्माकं भविता नैव कुगतिर्दुःखदायिनी। शिवदासा यतो यूयं देवर्षिहितकारकाः ॥ २८ ॥ सुरर्षिहितकृच्छम्भुस्सुरर्षिहितकृत्प्रियः। सुरर्षिहितकृन्नृणां कदापि कुगतिर्न हि ॥ २९ ॥ अद्यतो मतमेतं हि प्रविष्टानां नृणां कलौ। कुगतिर्भविता ब्रूमः सत्यं नैवात्र संशयः भवद्भिर्मुंडिनो धीरा गुप्तभावान्ममाज्ञया। तावन्मरुस्थली सेव्या कलिर्यावत्समाव्रजेत् ॥३१॥ आगते च कलौ यूयं स्वमतं स्थापयिष्यथ। कलौ तु मोहिता मूढास्तंग्रहीष्यन्ति वो मतम् ॥ ३२ ॥ इत्याज्ञप्ताः सुरेशैश्च मुंडिनस्ते मुनीश्वर। नमस्कृत्य गतास्तत्र यथोद्दिष्टं स्वमाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ततस्स भगवान् रुद्रो दग्ध्वा त्रिपुरवासिनः। कृतकृत्यो महायोगी ब्रह्माद्यैरभिपूजितः ॥ ३४ ॥ स्वगणैर्निखिलै·

दुष्कर्म किया है ॥ २३ ॥ इस लिये हमें करोड़ों कल्प तक नरकमें रहना पड़ेगा, हा ! हम शिवभक्तोंके विरोधियोंका उद्धार नहीं होसकता ॥२४॥ परन्तु आपकी इच्छासे ही हमने यह दुष्कर्म किया है, इस लिये हम शरणागतोंको इसकी शान्ति बताइये ॥२५॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उनके इस वचनको सुनकर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंने हाथ जोड़ कर सामने खड़े हुए उन मुंडियोंसे कहा, कि-हे मुण्डियो ! तुम डरो मत, यह सारा चरित्र शिवकी आज्ञासे ही हुआ है ॥ २७ ॥ तुम्हें दुःखदायिनी कुगति प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि—तुम शिवके दास हो तथा देवता और ऋषियोंका हित करने वाले हो ॥२८॥ शम्भु देवता और ऋषियोंका हित करने वाले हैं, शम्भु देवता और ऋषियोंका हित करने वालोंको प्रिय समझते हैं अतः देवता और मनुष्योंका हित करने वालोंकी कुगति कभी नहीं होसकती ॥ २९ ॥ किंतु आज हमारा यह मत है, कि-जो पुरुष कलियुगमें इस मतमें प्रवेश करेंगे, उनकी कुगति होगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ आप मुण्डी लोग धीर हैं, अतः हमारी आज्ञाको मान कर गुप्तभावसे कलियुगके आने तक मरुस्थली (मारवाड़) में रहो ३१ और कलियुगके आने पर तुम अपने मतको स्थापित करना, कलियुगमें मोहमें पड़े हुए मनुष्य तुम्हारे मतमें प्रविष्ट होंगे ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वर ! जब बड़े २ देवताओंने यह आज्ञा दी, तब मुण्डी लोग देवताओंको प्रणाम कर अपने लिये बताये हुए स्थानको चले गए ॥ ३३ ॥ तदनन्तर त्रिपुरवासियोंको भस्म कर

देव्या शिवया सहितः प्रभुः । कृत्वामरमहत्कार्यं ससुतोऽतरधादथ ॥ ३५ ॥ ततश्चान्तर्हिते देवे परिवारान्विते शिवे । धनुश्शररथाद्यश्च प्राकारोऽतर्द्धिमागमत् ।३६। ततो ब्रह्मा हरिर्देवा मुनिगन्धर्वकिन्नराः । नागास्सर्पाश्चाप्सरसस्संहृष्टाश्चाथ मानुषाः स्वं स्वं स्थानं मुदा जग्मुश्शंसन्तः शांकरं यशः । स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्य निर्वृतिं परमां ययुः ॥ ३८ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं चरितं शशिमौलिनः । त्रिपुरक्षयसंसूचिपरलीलान्वितं महत् ॥ ३९ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धकम् । स्वर्गदं मोक्षदं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ इदं हि परमाख्यानं यः पठेच्छृणुयात्सदा । इह भुक्त्वाखिलान्कामानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमार-पाराशर्यसंवादे त्रिपुरवधानन्तरदेवस्तुतिमयस्तुतिशुंडिनिवेशनदेवस्व-स्थानगमनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच । भो ब्रह्मन्भगवन्पूर्वं श्रुतं मे ब्रह्मपुत्रक । जलन्धरं महादैत्यममवधीच्छंकरः प्रभुः ॥ १ ॥ तस्य वद महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः । विस्तारपूर्वकं शृण्वन्कस्तृप्येत्तद्यशोऽमलम् ॥२॥ सूत उवाच । इत्येवं व्यासंपृष्टो ब्रह्म-

---

कृतकृत्य हुए महायोगी भगवान् रुद्रकी ब्रह्मा आदि देवता प्रशंसा करने लगे ३४ तब देवताओंका बड़ा भारी काम करके महादेवजी देवी पार्वती, अपने पुत्र और सम्पूर्ण गणों सहित अन्तर्धान होगए ॥ ३५ ॥ जब परिवारसहित शिवजी अन्तर्धान होगए, तब धनुष बाण आदि भी अन्तर्धान होगए ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा हरि देवता मुनि गन्धर्व किन्नर नाग सर्प अप्सरा और मनुष्य परम प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ और शंकरके यशका कीर्तन करते हुए अपने २ स्थानों को चल दिये और अपने २ स्थान पर पहुँच कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ यह तुमसे शिव—शंकरका त्रिपुरक्षयके वृत्तान्तका बड़ी भारी लीला वाला चरित्र कह दिया ॥ ३९ ॥ यह धन देने वाला है, यश देने वाला है, आयु देने वाला है और धन धान्यको बढ़ाने वाला है और यह आख्यान स्वर्ग तथा मोक्षको देने वाला है अब और तुम क्या सुनना चाहते हो ॥ ४० ॥ जो इस आख्यानको पढ़ता है वा सुनता है, वह इस संसारमें सकल कामनाओंको पाकर अन्तमें मुक्त होजाता है ॥ ४१ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

व्यासजीने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र ! मैंने सुना है, कि प्रभु शंकरने महादैत्य जलन्धरको मारा था ॥१॥ हे महाबुद्धिमान् ! आप चन्द्रमौलिके उस चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये, उनके निर्मल यशको सुनता हुआ कौन तृप्त होसकता है ॥२॥ सूतजी कहते हैं, कि-जब व्यासजी

पुत्रो महामुनिः । उवाचार्थवदव्यग्रं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । एकदा जीवशक्रौ च भक्त्या परमया मुने । दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासं जग्मतुर्भृशम् ।४। अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरः प्रभुः । परीक्षितुं तयोर्ज्ञानं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ५ ॥ दिगंबरोऽथ तन्मार्गमारुरुध्य सद्गतिस्सताम् । जटावद्धेन शिरसा तिष्ठत्संशोभितानन: ।६। अथ तौ गुरुशक्रौ च कुर्वन्तौ गमनं मुदा । दृष्टवन्तौ नरं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम् ।७। महातेजस्विनं शान्तं जटासम्बद्धमस्तकम् । महाबाहुं महोरस्कं गौरं नयनभीषणम् ।।८।। अथो पुरन्दरोऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः । पुरुषं तं स्वमार्गान्तःस्थितमज्ञाय शंकरम् ।९। पुरन्दर उवाच । कस्त्वं भो कुत आयातः किं नाम वद तत्त्वतः । स्वस्थाने संस्थितश्शंभुः किं वान्यत्र गतः प्रभुः ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच । शक्रेणेत्थं स पृष्टस्तु किञ्चिन्नोवाच तापसः । शक्रः पुनरपृच्छद्वै नोवाच स दिगम्बरः ॥ ११ ॥ पुनः पुरन्दरोऽपृच्छल्लोकानामधिपेश्वरः । तूष्णीमास महायोगी लीलारूपधरः प्रभुः ॥ १२ ॥ इत्थं पुनः पुनः पृष्टश्शक्रेण स दिगम्बरः । नोवाच किञ्चिद्भगवाञ्छक्रज्ञानपरीक्षया ॥ १३ ॥ अथ चुक्रोध

ने महामुनि ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारसे इस प्रकार बूझा, तब वाक्यविशारद सनत्कुमारजी अर्थ भरी बातको अव्यग्रतापूर्वक कहने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि–हे मुने ! एक समय बृहस्पति और इन्द्र बड़ी भक्तिके साथ हरका दर्शन करनेके लिये कैलास पर गए ॥ ४ ॥ प्रभु शंकरने गुरु और इन्द्रके आगमनको जान कर अपने दर्शनमें प्रेम रखने वाले इन्द्र और बृहस्पतिके ज्ञान की परीक्षा लेनी चाही ॥ ५ ॥ सज्जनोंकी गतिरूप भगवान् शंकर दिगम्बर बन शिर पर जटाजूट धारण कर मार्गको घेर कर बैठ गए ॥ ६ ॥ तदनन्तर मार्गमें आनन्दपूर्वक गमन करते हुए गुरु और इन्द्रने आनन्दके साथ गमन करते करते मार्गको घेर कर बैठे हुए एक अद्भुत आकृति वाले भयंकर पुरुषको देखा ७ वह महातेजस्वी था, शान्त था, उसके मस्तक पर जटाजूट बँधा था, भुजा और वक्षःस्थल बड़े थे, वर्ण गौर था और नयन भीषण थे ॥ ८ ॥ इधर इन्द्रने शंकरको न जान उनको अपने मार्गके बीचमें खड़ा हुआ एक पुरुष जान कर अपने अधिकारके गर्वमें भर कर बूझा, कि–॥ ९ ॥ अरे ! तू कौन है ? कहाँ से आया है ? और तेरा नाम क्या है ? यह सब ठीक २ बता और यह भी बता, कि–शम्भु अपने स्थान पर ही हैं, वा वह प्रभु कहीं और गए हैं ।१०। सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इन्द्रके इस प्रकार बूझने पर उस तपस्वीने कुछ उत्तर नहीं दिया, अतः इन्द्रने फिर बूझा, परन्तु उस दिगम्बरने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ११ ॥ तब इन्द्रने फिर बूझा, परन्तु लोकपालोंके भी ईश्वर महायोगी लीलावश रूप धारण करने वाले प्रभु शम्भुने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार इन्द्रके वारम्वार बूझने पर भी उन भगवान् दिगं-

देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः । उवाच वचनं चैव तं निर्भत्स्य जटाधरम् ॥१४॥ इन्द्र उवाच । रे मया पृच्छ्यमानेऽपि नोत्तरं दत्तवानसि । अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम् । हन्तुं दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६ ॥ पुरन्दरं वज्रहस्तं दृष्ट्वा देवस्सदाशिवः । चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शङ्करः ॥ १७ ॥ ततो रुद्रः क्रुधाविष्टः करालाक्षो भयङ्करः । द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १८ ॥ बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तश्शचीपतिः । समदह्यत भोगीव मन्त्ररुद्धपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा । पुरुषं तं धिया ज्ञात्वा प्रणनाम हरं प्रभुम् ॥ २० ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः । नत्वा च दण्डवद्भूमौ प्रभुं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच । नमो देवाधिदेवाय महादेवाय चात्मने । महेश्वराय प्रभवे त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥ २२ ॥ दीनानाथाय विभवे नमोऽन्धकनिषूदिने । त्रिपुरघ्नाय शर्वाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने ॥ २३ ॥ विरूपाक्षाय रुद्राय बहुरूपाय शम्भवे । विरूपायातिरूपाय रूपातीताय ते नमः ॥ २४ ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने । नमस्ते मखरूपाय परकर्मप्रवर्तिने ॥ २५ ॥ कालान्तकाय

वरने इन्द्रके ज्ञानकी परीक्षा लेनेकी इच्छासे उससे कुछ न कहा ॥ १३ ॥ तब तो त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे इन्द्रको गर्व और क्रोध होगया और वह उन जटाधारी को धमका कर कहने लगा ॥ १४ ॥ इन्द्रने कहा, कि— अरे ! मेरे बूझने पर भी तू कुछ उत्तर नहीं देता, अतः हे दुर्मते ! मैं तुझे वज्रसे मारता हूँ, देखूँ तुझे कौन बचाने वाला है ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि- इन्द्रने इस प्रकार कह उनकी ओर क्रोधसे देखते हुए उनको मारनेके लिये वज्र उठा लिया १६ पुरन्दरको हाथमें वज्र लिये हुए देख कर सदाशिवने उसकी वज्र गिराने वाली भुजाको स्तम्भित कर दिया ॥ १७ ॥ फिर क्रोधमें भरे हुए करालाक्ष भयंकर रुद्र मानों क्रोधसे भस्म कर डालेंगे इस प्रकार क्रोधसे जलने लगे ॥ १८ ॥ उधर शचीपति इन्द्र भी भुजाके रुकनेसे उदय हुए क्रोधके कारण, मन्त्रवश पराक्रम करनेसे रुके हुए सर्पकी समान अन्तःकरणमें जलने लगा ॥ १९ ॥ इधर बृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे दमकते हुए देख कर उनको रुद्र समझ कर उन हरको प्रणाम किया ॥ २० ॥ उदार बुद्धि वाले बृहस्पतिजी हाथ जोड़ भूमिमें दण्डवत् कर प्रभुकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा, कि-देवाधिदेव, महादेव, आत्मा, महेश्वर, प्रभु, त्र्यम्बक, कपर्दी, दीनानाथ, विभु शंकरको प्रणाम है, अन्धकासुरका संहार करने वाले, त्रिपुरनाशक, शर्व, ब्रह्म, परमेष्ठी शिवके लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ २३ ॥ विरूपाक्ष, रुद्र, बहुरूपिये, शम्भु, विरूप, अतिरूप और रूपातीतके लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ दक्षयज्ञका विध्वंस करने वाले, यज्ञोंका फल देने वाले, यज्ञस्वरूप और श्रेष्ठ

कालाय कालसर्पाधिधराय च । नमस्ते परमेशाय सर्वत्र व्यापिने नमः ॥ २६ ॥ नमो ब्रह्म-शिरोहन्त्रे ब्रह्मचन्द्रस्तुताय च । ब्रह्मण्याय नमस्तेऽस्तु नमस्ते परमात्मने ॥ २७ ॥ त्वमग्निरनिलो व्योम त्वमेवापो वसुन्धरा त्वं सूर्यश्चन्द्रमा भानि ज्योतिश्चक्रं त्वमेव हि ॥ २८ ॥ त्वमेव विष्णुस्त्वं ब्रह्मा तत्स्तुतस्त्वं परेश्वरः । मुनयः सनकाद्यास्त्वं नारदस्त्वं तपोधनः २९ त्वमेव सर्वलोकेशस्त्वमेव जगदात्मकः । सर्वान्वयस्त्वं भिन्नस्त्वमेव प्रकृतेः परः ॥ ३० ॥ त्वं वै सृजसि लोकांश्च रजसा विधिनामभाक् । सत्त्वेन हरिरूपस्त्वं सकलं पासि वै जगत् त्वमेवासि महादेव तमसा हररूपधृक् लीलया भुवनं सर्वं निखिलं पांचभौतिकम् ।३२। त्वद्ध्यानबलतस्सूर्यस्तपते विश्वभावन : अमृतं च्यवते लोके शशी वाति समीरणः ।३३ त्वद्ध्यानबलतो मेघाश्चांबु वर्षन्ति शङ्कर । त्वद्ध्यानबलत शक्रस्त्रिलोकीं पाति पुत्रवत् ३४ त्वद्ध्यानबलतो मेघाः सर्वे देवा मुनीश्वराः । स्वाधिकारं च कुर्वन्ति चकिता भवतो भयात् ॥३५॥ त्वत्पादकमलस्यैव सेवनाद्भुवि मानवाः । नाद्रियन्ते सुरान्रुद्र लोकैश्वर्यं च भुञ्जते ॥ ३६ ॥ त्वत्पादकमलस्यैव सेवनादगमन्परम् । गतिं योगधनानामगम्यां सर्व-

कर्म के प्रवर्तक, कालान्तक, काल, कालसर्पधारी, परमेश और सर्वत्रव्यापी शंभु के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ २६ ॥ ब्रह्माका शिर काटने वाले, ब्रह्मा और चन्द्रमासे स्तुत, ब्रह्मण्य परमात्माके लिये प्रणाम है, प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे देव! अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और ज्योतिश्चक्र सबमें आप ही विराजमान हैं ॥ २८ ॥ आप ही ब्रह्मा और विष्णु हैं और उनसे स्तुत परमेश्वर (शिव) भी आप ही हैं, सनक आदि मुनि भी आपके ही अंश हैं और आप ही तपोधन नारद हैं ॥ २९ ॥ आप ही सब लोकोंके ईश हैं और आप ही जगदात्मक हैं, आप सबमें मिले हुए हैं और सबसे भिन्न हैं तथा आप प्रकृतिसे पर हैं ॥३०॥ आप ही रजोगुणसे विधिनामको धारण कर सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करते हैं और सत्त्वगुणसे हरिके रूपमें सबका पालन करते हैं ॥ ३१ ॥ और हे महादेव! तमोगुणसे आप ही हरका रूप धारण कर लेते हैं, यह सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत् आपकी लीलासे ही व्याप्त है।३२। हे विश्वभावन ! आपके ध्यानबलसे ही सूर्य तपते हैं और आपके ही बलसे चन्द्रमा अमृतको टपकाता है और वायु बहता है ॥ ३३ ॥ और हे शंकर! आपके ध्यानके बलसे ही मेघ जल बरसाते हैं और आपके ध्यानबलसे ही इन्द्र त्रिलोकीकी पुत्रके समान रक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ आपके ध्यानबलसे आपके भयसे चकित हो मेघ देवता और मुनीश्वर अपने २ अधिकारका काम करते हैं ॥ ३५ ॥ हे रुद्र! मनुष्य आपके चरणकमलोंका सेवन करनेसे देवताओं की परवाह करना छोड़ देते हैं और संसारके ऐश्वर्यको भोगते रहते हैं ।३६। प्राणी आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे बड़े २ योगियोंको भी दुर्लभ गति

दुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच । बृहस्पतिरिति स्तुत्वा शंकरं लोकशंकरम्। पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥३८॥ पातयित्वा च देवेशमिन्द्रं नतशिरोधरम् । बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतश्शिवम् ॥३९॥ बृहस्पतिरुवाच । दीननाथ महादेव प्रणतं तव पादयोः । समुद्धर च शान्तं त्वं क्रोधं नयनजं कुरु ॥ ४० ॥ तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम् । अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं देवदेवो महेश्वरः । उवाच करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ४२ ॥ महेश्वर उवाच । क्रोधं च निस्सृतं नेत्राद्धारयामि बृहस्पते । कथं हि कञ्चुकीं सर्पस्संधत्ते नोज्झितां पुनः ॥४३॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः । उवाच क्लिष्टरूपश्च भयव्याकुलमानसः ॥४४॥ बृहस्पतिरुवाच । देव हे भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि । भक्तवत्सलनामेति त्वं सत्यं कुरु शंकर ॥ ४५ ॥ क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि । उद्धर्तस्सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम् ॥ ४६ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक् । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यं प्रणतार्त्तिहा ॥

को पाते हैं ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं कि—बृहस्पतिजीने संसारका कल्याण करने वाले शंकरकी इस प्रकार स्तुति करके पुरन्दर इन्द्रको उनके चरणोंमें झुका दिया ॥ ३८ ॥ इन्द्रका मस्तक झुकवानेके अनन्तर बृहस्पति जी प्रेम और नम्रतापूर्वक शिवसे कहने लगे ॥३९॥ बृहस्पतिजीने कहा, कि-हे दीनोंके नाथ महादेव ! आप अपने नेत्रोंके क्रोधको शान्त कर इस चरणोंमें पड़े हुए इन्द्रका उद्धार करिये ॥ ४० ॥ हे महादेवजी ! आप प्रसन्न हूजिये और इस शरणागत इन्द्रकी रक्षा करिये तथा अपने मस्तकके नेत्रसे प्रकट हुई अग्निको शान्त करिये ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-देवदेव करुणासिन्धु महेश्वर बृहस्पतिजीके इस वचनको सुन मेघगम्भीर वाणीमें बोले ।४२। महेश्वरने कहा, कि-हे बृहस्पते ! मैं अपने नेत्रसे निकले हुए क्रोधको किस प्रकार धारण करूँ, क्या साँप छोड़ी हुई केंचुलीमें फिर घुस जाता है ॥४३॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शंकरके इस वचनको सुन कर बृहस्पतिका रूप बिगड़ गया और वह अपने मनमें भयभीत होकर कहने लगे ॥४४॥ बृहस्पतिने कहा, कि-हे देव ! हे भगवन् ! आपको तो भक्तों पर सर्वदा अनुग्रह ही करना चाहिये, हे शंकर ! आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य करिये ॥ ४५ ॥ हे देवेश ! आप अपने उग्र तेजको दूसरे स्थान पर डालिये, आप तो सब भक्तों का उद्धार करने वाले हैं, अतः अपने भक्त पुरन्दरका उद्धार करिये ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-बृहस्पतिके इस प्रकार कहने पर नम्र पुरुषोंके दुःख को दूर करने वाले भक्तवत्सल रुद्र मनमें प्रसन्न हो बृहस्पतिसे कहने लगे ४७ शिवने कहा, कि-हे तात ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर तुमको उत्तम

शिव उवाच । प्रीतः स्तुत्यानया तात ददामि वरमुत्तमम् । इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ ४८ ॥ समु तोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरेशहा । एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ ४९ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् । भालनेत्रात्समुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणांभसि ॥५०॥ ततश्चान्तर्दधे रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः । गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥५१॥ यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य वै । कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥ ५२ ॥

जलंधरवधोपाख्याने शक्रजीवनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते । श्रुतेयमद्भुता मेऽद्य कथा शम्भोर्महात्मनः ॥ १ ॥ क्षिप्ते स्वतेजसि ब्रह्मन्भालनेत्रसमुद्भवे । लवणांभसि किं ताताभवत्तत्र वदाशु तत् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु तात महाप्राज्ञ शिवलीलां महाद्भुताम् । यच्छ्रुत्वा श्रद्धया भक्तो योगिनां गतिमाप्नुयात् ॥३॥ अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् । क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालत्वमाप ह ॥ ४ ॥ तत्र वै सिन्धुगंगाया सागरस्य च सङ्गमे । रुरोदोच्चैस्स वै बालस्सर्वलोकभयंकरः ॥ ५ ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः । स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद्बधिरी कृतः ॥ ६ ॥ बालस्य रोदनेनैव

वर देता हूँ, कि—इन्द्रको जीवनदान देता हूँ, इस कर्मसे तुम्हारी भी प्रसिद्धि होगी ॥ ४८ ॥ मैंने जो इन्द्रको पीड़ित करनेके लिये अपने नेत्रसे अग्नि छोड़ी थी, इसको दूर फेंकता हूँ, अतः अब यह इन्द्रको पीड़ित नहीं कर सकेगी ४९ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उन्होंने इस प्रकार कह अपने मस्तकके नेत्रसे प्रकट हुए तेजःस्वरूप अग्निको हाथमें ले लवणसमुद्रमें फैंक दिया ॥५०॥ फिर बड़ी लीला करनेवाले प्रभु रुद्र अन्तर्धान होगए और बृहस्पति तथा इन्द्र भी भयरहित हो बड़े सुखी हुए ॥५१॥ वह जिनका दर्शन करनेके लिये आये थे उनके दर्शनको पा कृतार्थ हो अपने स्थानको आनन्दपूर्वक चल दिये ॥५२॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त

व्यासजीने कहा, कि—हे ब्रह्मपुत्र सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपको प्रणाम है मैंने आपसे यह महात्मा शम्भुकी अद्भुत कथा सुनी ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! जब शंकरने अपने भालनेत्रसे प्रकट हुए तेजको लवणसमुद्रमें फेंक दिया तो फिर तहाँ क्या हुआ, उसको आप कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे महाबुद्धिमान् तात व्यासजी ! आप इस परम अद्भुत शिवलीलाको सुनिये, भक्त पुरुष इसको श्रद्धापूर्वक सुन कर योगियोंकी गतिको पाता है ॥ ३ ॥ शिवजीके भालनेत्रसे प्रकट हुआ और समुद्रमें फेंका हुआ वह तेज शीघ्र ही बालरूपको प्राप्त होगया ॥ ४ ॥ वह सर्वलोकभयंकर बालक सिन्धुगङ्गा और सागरके संगम पर ऊँचे स्वरसे रोने लगा ॥ ५ ॥ उसके रोनेके शब्दसे पृथ्वी वार वार काँप उठी, स्वर्गलोक और सत्यलोक उस ध्वनिसे बहिरेसे होगये ॥६॥

सर्वे लोकाश्च तत्रसुः। सर्वेता लोकपालाश्च विह्वलीकृतमानसाः ॥७॥ किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र चचाल सचराचरम्। भुवनं निखिलं तात रोदनात्तच्छिशोर्विभो ॥८॥ अथ ते व्याकुलास्सर्वे देवास्समुनयो द्रुतम्। पितामहं लोकगुरुं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥९॥ तत्र गत्वा च ते देवा मुनयश्च सवासवाः। प्रणम्य च सुसंस्तुत्य प्रोचुस्तं परमेष्ठिनम् ॥ १० ॥ देवा ऊचुः। लोकाधीश सुराधीश भयमत्रसमुपस्थितम्। तन्नाशय महायोगिन्जातोऽयं ह्यद्भुतो रवः ११ सनत्कुमार उवाच। इत्याकर्ण्य वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः। गंतुमैच्छत्ततस्तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥१२॥ ततो ब्रह्मा सुरैस्तातावतरत्सत्यलोकतः। रवं तं ज्ञातुमिच्छन्स समुद्रगगमत्तदा ॥ १३ ॥ यावत्तत्रागतो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह ॥ १४ ॥ आगतं विधिमालोक्य देवरूप्यथ सागरः। प्रणम्य शिरसा बालं तदुत्सङ्गे न्यवेशयत्। १५ ॥ ततो ब्रह्म प्रबोद्धाऽयं सागरं विस्मयान्वितः। जलराशे द्रुतं ब्रूहि कस्यायं शिशुरद्भुतः ॥ १६ ॥ सनत्कुमार उवाच। ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य मुदितस्सागरस्तदा। प्रत्युवाच प्रजेशं स नत्वा स्तुत्वा कृतांजलिः ॥ १७॥ समुद्र उवाच। भो भो ब्रह्मन्मया प्राप्तो बालकोऽयमजानता। प्रभवं सिन्धुगङ्गायामकस्मात्सर्वलोकप १८

उस बालकके रोनेसे सब लोग त्रस्त होगए और सब लोकपालोंका मन भी विह्वल होगया ॥ ७ ॥ हे विभो ! हे विप्रेन्द्र ! अधिक कहनेसे क्या ? उस बालकके रोनेसे चर और अचर सारा भुवन काँप उठा ॥ ८ ॥ तब सब देवता और मुनि व्याकुल होकर पितामह लोकगुरु ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे ॥९॥ तहाँ पहुँच इन्द्र देवता और मुनि उनको प्रणाम कर तथा उनकी स्तुति कर कहने लगे ॥१०॥ देवताओंने कहा, कि-हे देवताओंके और लोकोंके स्वामिन् महायोगिन् ब्रह्माजी ! हमें इस अद्भुत शब्दसे भय लग रहा है, अतः इस भयको आप दूर करिये ॥११॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-लोकपितामह ब्रह्माजी उनके इस वचनको सुन विस्मित हो, जहाँसे वह शब्द आरहा था तहाँ जाना चाहने लगे १२ तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंको साथमें लेकर सत्यलोकसे उतरे और उस शब्दको जाननेकी इच्छासे समुद्रकी ओर चले ॥१३॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी जब तहाँ पहुँचे, तो उन्होंने समुद्रकी गोदीमें उस बालकको देखा ॥४१॥ ब्रह्माजीको आया हुआ देख समुद्रने देवताका रूप बना उनको प्रणाम कर उस बालकको उनकी गोदमें बैठा दिया ॥१५॥ तब ब्रह्माजीने विस्मत होकर समुद्रसे यह बात कही, कि-हे समुद्र ! यह अद्भुत बालक किसका है, इसको तुम शीघ्र ही बताओ ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—ब्रह्माजीके वचनको सुन समुद्रने प्रसन्न हो हाथ जोड़ ब्रह्माजीकी स्तुति करते हुए कहा, कि-॥१७॥ हे सब लोकोंके स्वामिन् ब्रह्माजी ! मैं नहीं जानता, कि—यह बालक किसका है, मैंने तो इसको समुद्र और गंगाके संगम पर पाया है ।१८। हे जगद्गुरो !

जातकर्मादिसंस्कारान्कुरुष्वास्य जगद्गुरो। जातकोक्तफलं सर्वं विधातर्वक्तुमर्हसि॥१९॥ सनत्कुमार उवाच। एवं वदति पाथोधौ स बालस्सागरात्मजः। ब्रह्माणमग्रहीत्कण्ठे विधुन्वन्तं मुहुर्मुहुः॥ २०॥ विधूननं च तस्यैवं सर्वलोककृतो विधेः। पीडितस्य च कालेय नेत्राभ्यामगमज्जलम्॥ २१॥ कराभ्याम थ जातस्य तत्सुतस्य महौजसः। कथंचिन्मुक्तकण्ठस्तु ब्रह्मा प्रोवाच सादरम्॥२२॥ ब्रह्मोवाच। शृणु सागर वक्ष्यामि तवास्य तनयस्य हि। जातकोक्तफलं सर्वं समाधानरतः खलु॥ २३॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्माद्नेनैव जलं मम। तस्माज्जलन्धरेतीह ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ॥ २४॥ अधुनैवैष तरुणस्सर्वशास्त्रार्थपारगः। महापराक्रमो धीरो योद्धा च रणदुर्मदः॥ २५॥ भविष्यति च गम्भीरस्त्वं यथा समरे गुहः। सर्वजेता च संग्रामे सर्वसंपद्विराजितः॥ २६॥ दैत्यानामधिपो बालः सर्वेषां च भविष्यति। विष्णोरपि भवेज्जेता न कुतश्चित्पराभवः॥ २७॥ अवध्यस्सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति। यत एष समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति॥२८॥ पतिव्रतास्य भविता पत्नी सौभाग्यवर्द्धिनी। सर्वाङ्गसुन्दरी रम्या प्रियवाक्छीलसागरा २९ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत्। आमन्त्र्य सरितान्नाथं

आप इसके जातकर्म आदि संस्कार करिये और हे विधातः! आप इसका जातकके अनुसार फल कहिये॥ १९॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—समुद्र इस प्रकार कह रहा था, कि—उस सगरनन्दन बालकने ब्रह्माजीके गलेको पकड़ लिया और ब्रह्माजी वारम्वार अपना गला हिलाते ही रह गए॥ २०॥ हे काली (सत्यवती) के पुत्र व्यास! सब लोकोंको रचने वाले ब्रह्माजी अपना गला हिलाते समय जब पीड़ित हुए तब उनके नेत्रोंमें जल आगया॥ २१॥ जब वह महातेजस्वी समुद्रनन्दनके हाथसे किसी प्रकार छुटे, तब ब्रह्माजी आदरपूर्वक कहने लगे॥ २२॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे समुद्र! सुनो! मैं तुम्हारा समाधान करनेके लिये तुम्हारे इस पुत्रका जातकके अनुसार फल कहता हूँ॥ २३॥ इसने मेरे नेत्रोंमें जल ला दिया, इस लिये यह जलंधर नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥ यह बालक अभी तरुण होजावेगा और सकल शास्त्रोंके अर्थको जान जावेगा, यह महापराक्रमी, धीर, योधा और रणदुर्मद होगा॥ २५॥ यह तुम्हारी समान गंभीर होगा और संग्राममें स्वामी कार्तिकेयकी समान सर्वविजयी और सकल सम्पत्तियोंसे युक्त होगा॥ २६॥ यह बालक सब दैत्योंका स्वामी होगा, यह विष्णुको भी जीतेगा और इसका कहीं पराभव नहीं होगा॥ २७॥ यह एक रुद्रके सिवाय सबसे अवध्य रहेगा, यह जहाँसे प्रकट हुआ है, वहाँ ही लीन होजावेगा॥२८॥ इसकी पत्नी पतिव्रता, सौभाग्यवर्धिनी, सर्वांगसुन्दरी, रम्य, प्रिय वाणी वाली और शीलकी समुद्र होगी॥ २९॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—इस प्रकार कह उन्होंने शुक्रको

ब्रह्मान्तर्द्धानमन्वगात् ॥ ३० ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनस्सागरस्तदा । तमात्मजं समादाय स्वगेहमगमन्मुदा ॥ ३१ ॥ अपोषयन्महोपायैस्स्वबालं मुदितात्मकः । सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं महदद्भुततेजसम् ॥ ३२ ॥ अथाम्बुधिस्समाहूय कालनेमिं महासुरम् । वृन्दाभिधां सुतां तस्य तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३३ ॥ कालनेम्यसुरो वीरोऽसुराणां प्रवरस्सुधीः । साधु मेनेऽम्बुधेर्याच्ञां स्वकर्मनिपुणो मुने ॥ ३४ ॥ जलन्धराय वीराय सागरप्रभवाय च । ददौ ब्रह्मविधानेन स्वसुतां प्राणवल्लभाम् ॥ ३५ ॥ तदोत्सवो महानासीद्विवाहे च तयोस्तदा । सुखं प्रापुर्नदा नद्योऽसुराश्चैवाखिला मुने ॥३६॥ समुद्रोऽति सुखं प्राप सुतं दृष्ट्वा हि सुस्त्रियम् । दानं ददौ द्विजातिभ्योऽप्यन्येभ्यश्च यथाविधि ॥ ३७ ॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः । ते हि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ ३८ ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां सिंधुसुताय दत्त्वा । बभूवुरत्यन्तमुदान्विता हि तमाश्रिता देवविनिर्जयाय ॥ ३९ ॥ स चापि वीरोऽम्बुधिबालकोऽसौ जलन्धराख्योऽसुरवीरवीरः । संप्राप्य भार्यामतिसुन्दरीं वशी चकार राज्यं हि कविप्रभावात् ॥४०॥

जलन्धरवधोपाख्याने जलन्धरोत्पत्तिविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४ ॥

बुला कर उस बालकका राज्य पर अभिषेक कर दिया, फिर ब्रह्माजी समुद्रसे बात कर अन्तर्धान होगए ॥ ३० ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीके दर्शनसे प्रफुल्लित नेत्रों वाला समुद्र उस पुत्रको लेकर अपने स्थानको चला गया ॥३१॥ फिर वह चित्तमें प्रसन्न हो उस सर्वांगसुन्दर रमणीय परम अद्भुत तेज वाले अपने बालकका बड़े उपायसे पोषण करने लगा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर समुद्रने कालनेमि नामक असुरको बुला कर उसकी वृन्दा नाम वाली पुत्रीको अपने लड़के की पत्नी बनानेके लिये याचना की ॥ ३३ ॥ हे मुने ! अपने कर्ममें निपुण असुरोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् कालनेमिने समुद्रकी याचनाका बड़ा मान रखा ।३४। उसने समुद्रमें प्रकट हुए वीर जलंधरको ब्रह्मविधानसे अपनी प्राणवल्लभा पुत्री विवाह दी ॥ ३५ ॥ हे मुने ! उस विवाहमें बड़ाभारी उत्सव हुआ, नद नदी और सकल असुरोंको बड़ा सुख हुआ ॥३६॥ अपने पुत्रको सुन्दर स्त्री वाला देख कर समुद्र बड़ा सुखी हुआ और उसने ब्राह्मणोंको तथा दूसरोंको विधि के अनुसार बड़ा दान दिया ॥ ३७ ॥ इस समय जिन दैत्योंको पहिले समयमें देवताओंने जीत लिया था और वे पराजित होकर पातालको चले गये थे, वे दैत्य भी भूमण्डल पर आये और जलंधरका आश्रय ले निर्भय होकर रहने लगे ॥३८॥ वह कालनेमि आदि असुर सिंधुके पुत्र जलंधरको कन्या देकर बड़े प्रसन्न हुए और देवताओंको जीतनेके लिये उसका आश्रय लेने लगे ।३९। और वह समुद्रका बालक असुरवीर जलंधर भी अतिसुन्दरी भार्याको पा, प्रजाओंको वशमें रखता हुआ शुक्राचार्यजीके प्रभावसे राज्य करने लगा ॥४०॥ ❀ ॥१४॥

सनत्कुमार उवाच । एकदा वारिधिसुतो वृन्दापतिरुदारधीः । सभार्य्यस्संस्थितो वीरोऽसुरैस्सर्वैः समन्वितः ॥१॥ तत्राजगाम सुप्रीतस्सुवर्चास्त्वथ भार्गवः । तेजःपुंजो मूर्त इव भासयन्सकला दिशः ॥२॥ तं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमसुरास्तेऽखिला द्रुतम् । प्रणेमुः प्रीतमनसस्सिन्धुपुत्रोऽपि सादरम् ॥ ३ ॥ दत्त्वाशीर्वचनं तेभ्यो भार्गवस्तेजसां निधिः । निषसादासने रम्ये संतस्थुस्तेऽपि पूर्ववत् ॥ ४ ॥ अथ सिंध्वात्मजो वीरो दृष्ट्वा प्रीत्या निजां सभाम् । जलंधरः प्रसन्नोऽभूदनष्टवरशासनः ॥ ५ ॥ तत्स्थितं छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट् । पप्रच्छ भार्गवं शीघ्रमिदं सागरनन्दनः ॥६॥ जलंधर उवाच । केनेदं विहितं राहोश्शिरश्छेदनकं प्रभो । तद् ब्रूहि निखिलं वृत्तं यथावत्तत्त्वतो गुरो ॥ ७ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः । स्मृत्वा शिवपदांभोजं प्रत्युवाच यथार्थवत् ॥८॥ शुक्र उवाच । जलंधर महावीर सर्वासुरसहायक । शृणु वृत्तांतमखिलं यथावत्कथयामि ते ॥९॥ पुराभवद्बलिर्वीरो विरोचनसुतो बली । हिरण्यकशिपोश्चैव प्रपौत्रो धर्मवित्तम ॥ १० ॥ पराजितास्सुरास्तेन रमेशं शरणं ययुः । सवासवास्स्ववृत्तां-

---

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-एक समय उदारबुद्धि वृन्दापति समुद्रनन्दन अपनी भार्या और असुरोंके साथ बैठा हुआ था ॥ १ ॥ इसी समय मूर्तिमान् तेजःपुञ्जकी समान सुन्दर कान्ति वाले शुक्राचार्यजी सकल दिशाओंको प्रकाशित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तहाँ पधारे ॥ २ ॥ उन गुरुजीको आया हुआ देख कर सब असुरोंने मनमें प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया तथा समुद्रनन्दन जलन्धरने भी उनको आदरपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३ ॥ तेजोनिधि शुक्राचार्य उनको आशीर्वाद देकर रमणीय आसन पर बैठ गए फिर वे असुर भी पहिलेकी समान अपने २ स्थानों पर विराजमान होगए ॥ ४ ॥ जिसका श्रेष्ठ शासन चलता था ऐसा सिंधुनन्दन वीर जलन्धर अपनी सभाको प्रीतिपूर्वक देख कर प्रसन्न हुआ ॥ ५ ॥ फिर उसने तहाँ शिर कटे हुए राहुको देख कर शुक्राचार्यसे यह बात कही ॥ ६ ॥ जलन्धरने कहा, कि-हे प्रभो ! हे गुरो ! राहुके शिरको किसने काट डाला था, इस सारे वृत्तान्तका यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये ॥ ७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शुक्राचार्यने सिंधुनन्दनके इस वचनको सुन शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण कर यथार्थ बात कहनी आरम्भ की ॥८॥ शुक्राचार्यजीने कहा, कि- हे सकल असुरोंको सहायता पहुँचाने वाले महावीर जलन्धर ! तुम सम्पूर्ण वृत्तान्तको सुनो, मैं तुमसे यथार्थ घटना कहता हूँ ॥ ९ ॥ हे धर्म जानने वालोंमें श्रेष्ठ ! पहिले समयमें हिरण्यकशिपुके परपोते और विरोचनके पुत्र बलि नामक बली वीर हुए थे १० उन्होंने इन्द्र और सकल देवताओंको जीत लिया था, तब सब देवता अपना

तमाचख्युः स्वार्थसाधकाः ॥ ११ ॥ तदाज्ञयासुरैः सार्द्धं चक्रुस्संधिमथो सुराः । स्वकार्यसिद्धये तात छलकर्मविचक्षणाः ॥ १२ ॥ अथामृतार्थं सिंधोश्च मंथनं चक्रुरादरात् । विष्णोस्सहायिनस्ते हि सुरास्सर्वैऽसुरैस्सह ॥ १३ ॥ ततो रत्नोपहरणमकार्षुर्दैत्यशत्रवः । जगृहुर्यत्नतो देवाः पपुरप्यमृतं छलात् ॥ १४ ॥ ततः पराभवं चक्रुरसुराणां सहायतः । विष्णोस्सुरास्सशक्रास्तेऽमृतपानाद्बलान्विताः ॥ १५ ॥ शिरश्छेदं चकारासौ पिबतश्चामृतं हरिः । राहोर्देवसभायां वै पक्षपाती हरेस्सदा ॥ सनत्कुमार उवाच । एवं कविस्तस्य शिरश्छेदं राहोश्शशंस च । अमृतार्थे समुद्रस्य मंथनं देवकारितम् ॥ १७ ॥ रत्नोपहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् । देवैरमृतपानं च कृतं सर्वं च विस्तरात् ॥ १८ ॥ तदाकर्ण्य महावीरोऽम्बुधिबालः प्रतापवान् । चुकोध क्रोधरक्ताक्षस्स्वपितुर्मंथनं तदा ॥ १९ ॥ अथ दूतं समाहूय घस्मराभिधमुत्तमम् । सर्वं शशंस चरितं यदाह गुरुरात्मवान् ॥ २० ॥ अथ तं प्रेषयामास स्वदूतं शक्रसन्निधौ । संमान्य बहुशः प्रीत्याऽभयं दत्त्वा विशारदम् ॥ २१ ॥ दूतस्त्रिविष्टपं

स्वार्थ साधनेके लिये रमाके ईश विष्णुकी शरणमें पहुँचे और उनसे अपना सारा वृत्तान्त कहा ॥ ११ ॥ हे तात ! फिर विष्णुकी आज्ञासे छल करनेमें चतुर देवताओंने अपना कार्य साधनेके लिये असुरोंके साथ संधि करली १२ विष्णुकी संरक्षकतामें रहने वाले वे सब देवता असुरोंको साथमें ले अमृतके लिये आदरपूर्वक समुद्रका मन्थन करने लगे ॥ १३ ॥ तदनन्तर उन दैत्योंके शत्रु देवताओंने यत्न और छलके साथ रत्नोंको छीन लिया और अमृतको पीने लगे ॥ १४ ॥ फिर इन्द्र सहित देवताओंने अमृतके पीनेसे बलवान् बन विष्णुकी सहायतासे असुरोंका पराभव करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ यह राहु देवताओंकी सभामें (बैठ) अमृतका पान कर रहे थे विष्णु तो इन्द्रका पक्षपात करते ही हैं, अतः उन्होंने इन अमृत पीते हुए राहुका शिर काट डाला सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—इस प्रकार शुक्राचार्यजीने राहुके शिर काटनेका वृत्तान्त, अमृतके लिये देवताओंके समुद्र मथनेका समाचार, रत्नोंका हरण, दैत्योंका पराभव और देवताओंका अमृत पीना आदि सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना दिया ॥ १६—१८ ॥ समुद्रनन्दन प्रतापवान् महावीर जलन्धर अपने पिताके मथनकी बात सुन कर क्रोधमें भर गया, उसके नेत्र लाल लाल होगए ॥ १९ ॥ उसने घस्मर नाम वाले अपने उत्तम दूतको बुलाया और आत्मवान् गुरु शुक्राचार्यने जो चरित्र कहा था, वह सब चरित्र कहा ॥२०॥ फिर उस चतुर दूतका प्रीतिपूर्वक बड़ा मान कर अभयदान देकर इन्द्रके पास भेजा ॥ २१ ॥ तब वह समुद्रनन्दनका बुद्धिमान् दूत घस्मर सब देवताओंसे

तस्य जगामारमलं सुधीः । घस्मरोऽबुधिबालस्य सर्वदैवसमन्वितम् ।। २२ ।। तत्र गत्वा स दूतस्तु सुधर्मां प्राप्य सत्वरम् । गर्वादुन्नतमौलिर्हि देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ।। २३ ।। घस्मर उवाच । जलंधरोऽब्धितनयस्सर्वदैत्यजनेश्वरः । सुप्रतापी महावीरस्स्वयं कविसहायवान् ।२४। दूतोऽहं तस्य वीरस्य घस्मराख्यो न घस्मरः। प्रेषितस्तेन वीरेण त्वत्सकाशमिहागतः ।। २५ ।। अव्याहताज्ञस्सर्वत्र जलंधर उदग्रधीः । निर्जिताखिलदैत्यारिस्स यदाह शृणुष्व तत् ।। २६ ।। जलंधर उवाच । कस्मात्त्वया मम पिता मथितस्सागरोऽद्रिणा । नीतानि सर्वरत्नानि पितुर्मे देवताधम ।। २७ ।। उचितं न कृतं तेऽद्य तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे । ममायाहि विचार्येत्थं शरणं दैवतैस्सह ।।२८।। अन्यथा ते भयं भूरि भविष्यति सुराधम। राज्यविध्वंसनं चैव सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ।।२९।। सनत्कुमार उवाच । इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच तं स्मरन्निन्द्रो भयरोषसमन्वितः। ३०।। अद्रया मद्भयात्त्रस्तास्स्वकुक्षिस्था यतः कृताः । अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा ।३१। तस्मात्तद्रत्नजातं तु मया सर्वं हृतं किल । न तिष्ठति मम द्रोही सुखं सत्यं ब्रवी-

---

सम्पन्न स्वर्गको चला ।। २२ ।। वह दूत सुधर्मा नामक देवसभामें शीघ्र ही पहुँचा और गर्वके कारण मस्तकको न झुका देवेन्द्रसे वार्तालाप करने लगा ।२३। घस्मरने कहा, कि–सब दैत्योंके ईश्वर समुद्रकुमार जलन्धर प्रतापी और महावीर हैं, स्वयं शुक्राचार्यजी उनकी सहायताके लिये उद्यत रहते हैं ।। २४ ।। मैं उन वीरका घस्मर नामक दूत हूँ, वैसे मैं घस्मर (आपको खानेके लिये आया हुआ) नहीं हूँ, किंतु उन वीरके प्रेषित करने पर मैं आपके पास आया हूँ ।। २५ ।। दैत्योंके सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतने वाले और उच्च बुद्धि वाले जलन्धरकी आज्ञा सर्वत्र मानी जाती है, उन्होंने आपसे जो कुछ कहा है, उसको सुनिये ।। २६ ।। जलन्धरने कहा, है; कि–अरे देवताओंमें अधम ! तूने मेरे पिता समुद्रको पर्वत डाल कर क्यों मथा और तू मेरे पिताके रत्नोंको कैसे लेगया ? ।।२७।। तूने यह बात उचित नहीं की, अतः उन रत्नोंको शीघ्र ही लौटादे और लौटानेका विचार कर देवताओं सहित शीघ्र ही मेरी शरणमें आ ।। २८ ।। अन्यथा हे देवाधम ! तुझे बड़ी आपत्ति भोगनी पड़ेगी और तू राज्यसे भी च्युत होजायेगा, यह बात मैं सत्य कह रहा हूँ ।।२९।। सनत्कुमार जी कहते हैं, कि–दूतके इस वचनको सुनकर देवराज इन्द्र विस्मित हुए, फिर मुस्कुरा कर भय और रोषके साथ उस दूतसे बोले ।।३०।। समुद्रने मेरे भयसे त्रस्त हुए पर्वतोंको अपने भीतर स्थान दिया था और भी मेरे द्वेषी बहुतसे दैत्योंकी उसने पहिले रक्षा की थी ।। ३१ ।। इस लिये मैंने उसके रत्नोंको हर लिया था, मेरा द्रोही सुखपूर्वक नहीं रह सकता, यह बात मैं सत्य कह

म्यहम् ॥३२॥ शंखोऽप्येवं पुरा दैत्यो मां द्विड्न्सागरात्मजः । अभवन्मूढचित्तस्तु साधुसंगात्समुज्झितः ॥ ३३ ॥ ममानुजेन हरिणा निहतस्स हि पापधीः । हिंसकस्साधुसंघस्य पापिष्ठस्सागरोदरे ।३४। तद्गच्छ दूत शीघ्रं त्वं कथयस्वास्य तत्त्वतः। तद्गच्छ दूत शीघ्रं त्वं कथयस्वास्य तत्त्वतः । अब्धिपुत्रस्य सर्वं हि सिंधोर्मंथनकारणम् ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्थं विसर्जितो दूतो घस्मराख्यस्सुबुद्धिमान् । तदेन्द्रेणागमत्तूर्णं यत्र वीरो जलन्धरः ॥ ३६ ॥ तदिदं वचनं दैत्यराजो हि तेन धीमता । कथितो निखिलं शक्रप्रोक्तं दूतेन वै तदा ॥ ३७ ॥ तन्निशम्य ततो दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः । उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥ ३८ ॥ तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा । दितिजाः प्रत्यपद्यंत कोटिशः कोटिशस्तथा अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः । निर्जगाम महावीरः सिन्धुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ प्राप त्रिविष्टपं सद्यः सर्वसैन्यसमावृतः । दध्मौ शंखं जलधिजो नेदुर्वीराश्च सर्वतः ॥ ४१ ॥ गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत् । सर्वसैन्यं समावृत्य कुर्वाणः सिंहवद्रवम् ॥ ४२ ॥ पुरमावृत्य तिष्ठत्तद् दृष्ट्वा सैन्यबलं महत् । निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥ ४३ ॥ ततस्समभवद्युद्धं देवदानव-

रहा हूँ ॥ ३२ ॥ पहिले सागरनन्दन शंख दैत्य भी सत्संगरहित होनेके कारण चित्तकी मूर्खतावश मुझसे द्वेष करने लगा था ॥ ३३ ॥ तब मेरे छोटे भाई विष्णुने उस पाप बुद्धि वाले, साधुओंकी हत्या करने वाले पापीको समुद्रके बीचमें ही मार डाला था ॥ ३४ ॥ इस लिये हे दूत ! तू शीघ्र ही जा और उस समुद्रनन्दनको समुद्र मथनेका सारा कारण सुनादे ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार जी कहते हैं, कि—इन्द्रके इस प्रकार विसर्जन करने पर वह घस्मर नामक बुद्धिमान् दूत जहाँ वीर जलन्धर था तहाँको चल दिया ॥३६॥ और उस बुद्धिमान् दूतने इन्द्रकी कही हुई सारी बात दैत्यराजसे कही ॥३७॥ उसको सुन कर दैत्य जलन्धरके ओठ क्रोधके कारण फड़कने लगे, और वह शीघ्र ही सम्पूर्ण देवताओंको जीतनेका उद्योग करने लगा ॥ ३८ ॥ असुरेन्द्रके उस उद्योगके समय दिशा विदिशाओंसे और पातालसे करोड़ोंकी संख्यामें दैत्य एकत्रित होने लगे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर शुम्भ निशुम्भ आदि करोड़ों सेना पतियोंको लेकर महावीर प्रतापी सिंधुपुत्र युद्धके लिये निकल पड़ा ॥ ४० ॥ और सब सेनाओंके साथ शीघ्र ही स्वर्ग पर जा चढ़ा, तहाँ उस जलधिनन्दन ने अपना शंख बजाया उस समय उसके वीर सैनिक गर्जना करने लगे ।४१। स्वर्गमें पहुँच कर वह दैत्य नन्दनवनमें घुस गया और तहाँ सकल सैनिकोंसे घिर कर सिंहकी समान दहाड़ने लगा ॥ ४२ ॥ उस बड़े भारी सेनादलको, नगरीको घेर कर खड़ा हुआ देख, देवता भी युद्धके लिये तयार होकर अमरा-

सेनयोः । मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदापरशुशक्तिभिः ॥ ४४॥ तेऽन्योन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम् । क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते ॥ ४५ ॥ पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः । व्यराजत रणे भूमिस्संध्याभ्रपटलैरिव ॥ ४६ ॥ तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तानजीवयत् । विद्ययामृतजीविन्या मंत्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥४७॥ देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदंगिराः । दिव्यौषधैस्समानीय द्रोणाद्रेस्स पुनः पुनः दृष्टवान्स तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् । जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ जलन्धर उवाच । मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः । त्वत्तः संजीविनी विद्या नैवान्यत्रेति वै श्रुता ॥५०॥ सनत्कुमार उवाच॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा गुरुश्शुक्रो जलन्धरम् ॥५१॥ शुक्र उवाच । दिव्यौषधीस्समानीय द्रोणाद्रेरंगिरास्सुरान् । जीवयत्येष वै तात सत्यं जानीहि मे वचः ॥ ५२ ॥ जयमिच्छसि चेत्तात शृणु मे वचनं शुभम् । ततः सोऽरं भुजाभ्यां त्वं द्रोणमब्धावुपाहर ॥ ५३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तस्स तु दैत्येन्द्रो गुरुणा भार्गवेण ह । द्रुतं जगाम यत्रासावास्ते चैवाद्रिराट् च सः ॥५४॥

वतीसे निकलने लगे ॥ ४३ ॥ फिर देवता और दानवोंकी सेनाका, मूसल, परिघ, बाण, गदा, फरसे और शक्तियोंसे तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ४४ ॥ एक दूसरे पर आक्रमण करती हुई और परस्परका संहार करती हुई वे दोनों सेनाएँ रुधिरप्रवाहसे न्हागई ॥४५॥ गिरते हुए और गिराये जाते हुए हाथी घोड़े रथी और पैदलोंसे, रणभूमि संध्याकालीन आकाशकी समान शोभा पाने लगी ॥ ४६ ॥ उस युद्धमें जो दैत्य मरते थे उनको शुक्राचार्य मृतसंजीविनी विद्याके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलबिंदुओंसे जीवित कर देते थे ॥४७॥ उधर अङ्गिरा (वंशी गुरु) भी देवताओंको द्रोणाचलसे दिव्य औषधियें लाकर जीवित कर देते थे ॥४८॥ जब जलन्धरने देवताओंको फिर उठते हुए देखा तब वह क्रोधमें भर कर शुक्राचार्यसे कहने लगा ॥ ४९ ॥ जलन्धरने कहा, कि-मैं युद्धमें जिन देवताओंको मारता हूँ, वे फिर कैसे उठ बैठते हैं? संजीवनी विद्या केवल आपके ही पास है, अन्यत्र नहीं है, यह बात तो प्रसिद्ध ही है ॥५०॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-सिन्धुनन्दन जलन्धरके इस वचनको सुन कर शुक्राचार्य चित्तमें प्रसन्न होकर उत्तर देने लगे ॥ ५१ ॥ शुक्राचार्यने कहा, कि-हे तात! अङ्गिरा ऋषि द्रोणाचल पर्वतसे दिव्य औषधियोंको लाकर देवताओंको जीवित कर रहे हैं, मेरे इस वचनको तुम सत्य समझो ॥ ५२ ॥ हे तात! यदि तुम जयको चाहते हो तो तुम मेरे इस शुभ वचनको सुनो, कि-उस द्रोणपर्वतको भुजाओंसे उठा कर समुद्रमें डाल दो ॥ ५३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-जब गुरु शुक्राचार्यने इस प्रकार कहा, तब वह दैत्येन्द्र जहाँ पर पर्वत-

भुजाभ्यां तरसा दैत्यो नीत्वा द्रोणं च तं तदा । प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं चित्रं न हरतेजसि ॥ ५५ ॥ पुनरायान्महावीरस्सिन्धुपुत्रो महाहवम् । जघानास्त्रैश्च विविधैस्सुरान्कृत्वा बलं महत् ॥५६॥ अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद् गुरुः । यावत्तत्र गिरीन्द्रं तं न ददर्श सुरार्चितः ॥ ५७ ॥ ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः । आगत्य देवान्प्रोवाच जीवो व्याकुलमानसः । ५८ ॥ गुरुरुवाच । पलायध्वं सुरास्सर्वे द्रोणो नास्ति गिरिर्महान् । ध्रुवं ध्वस्तश्च दैत्येन पाथोधितनयेन हि ॥ ५९ ॥ जलन्धरो महादैत्यो नायं जेतुं क्षमो यतः । रुद्रांशसंभवो ह्येष सर्वामरविमर्दनः ६० मया ज्ञातः प्रभावोऽस्य यथोत्पन्नः स्वयं सुराः । शिवापमानकृच्छक्रचेष्टितं स्मरताखिलम् ॥६१॥ सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वा तद्वचनं देवास्सुराचार्यप्रकीर्तितम् । जयाशां त्यक्तवन्तस्ते भयविह्वलितास्तथा ॥ ६२ ॥ दैत्यराजेन तेनातिहन्यमानास्समन्ततः । धैर्यं त्यक्त्वा पलायन्त दिशो दश सवासवाः ॥ ६३ ॥ देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यस्सागरनन्दनः । शंखभेरीजयरवैः प्रविवेशामरावतीम् ॥ ६४ ॥ प्रविष्टे

राज द्रोण था, तहाँ पर शीघ्र पहुँचा ॥ ५४ ॥ फिर वह दैत्य फुर्तीके साथ द्रोणाचलको अपनी भुजाओंसे उठा लाया और उसे समुद्रमें स्थापित कर दिया, शम्भुके तेजके लिये यह कोई अशक्य बात नहीं है ॥ ५५ ॥ फिर वह महा वीर सिंधुनन्दन पुनर्वार महायुद्धमें आया और अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे देवताओं के बड़े भारी सेनादलको पीड़ित करने लगा ॥ ५६ ॥ तब देवताओंको हत हुआ देख कर देवपूजित गुरु द्रोणाचल पर गए, परन्तु उनको तहाँ गिरिराज द्रोणाचल नहीं दीखा ॥५७॥ द्रोणाचलको दैत्यके द्वारा हरा हुआ देख कर गुरु भयसे विह्वल होगए और व्याकुल चित्तसे देवताओंसे कहने लगे ॥५८॥ गुरुने कहा, कि-हे देवताओं ! तुम सब भाग जाओ, क्योंकि-महागिरि द्रोण का अब कुछ पता नहीं है, समुद्रनन्दन दैत्यने अवश्य ही उसको गुप्त कर दिया है ॥ ५९ ॥ इस महादैत्य जलन्धरको जीतना संभव नहीं है, क्योंकि-यह रुद्र के अंशसे उत्पन्न हुआ है और सकल देवताओंका मर्दन करने वाला है ।६०। मैं इसके प्रभावको समझता हूँ और यह जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है उसको भी जानता हूँ, हे देवताओं ! इन्द्रने जो शिवका अपमान करनेकी चेष्टा की थी उस सब घटनाका तुम स्मरण करो ॥ ६१ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-देव-पुरोहित बृहस्पतिके इस वचनको सुन कर देवताओंने जयकी आशा छोड़ दी और भयसे विह्वल होगए ॥ ६२ ॥ और चारों ओरसे दैत्यराजके पीटने पर इन्द्र आदि सब देवता धैर्यको छोड़ दशों दिशाओंको भाग चले ॥ ६३ ॥ देवताओंको भागते हुए देख, दैत्य सागरनन्दनने शंख, नगाड़े और जयजय-

नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः । सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥६५॥ तदैव सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेश्य सम्यक् । शुम्भादिकान्दैत्यवरान पृथक्पृथक् स्वयं सुवर्णाद्रिगुहां व्यगान्मुने ॥ ६६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलन्धरवधोपाख्याने देवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सनत्कुमार उवाच । पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवास्सवासवाः । भयात्प्रकंपितास्सर्वे सहैवादुद्रुवुर्द्रुतम् ॥ १ ॥ वैकुण्ठं प्रययुस्सर्वे पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । तुष्टुवुस्ते सुरा नत्वा सप्रजापतयोऽखिलाः ॥२॥ देवा ऊचुः । हृषीकेश महाबाहो भगवन्मधुसूदन । नमस्ते देवदेवेश सर्वदैत्यविनाशक ॥३॥ मत्स्यरूपाय ते विष्णो वेदान्नीतवते नमः । सत्यव्रतेन सद्राज्ञा प्रलयाब्धिविहारणे ॥ ४ ॥ कुर्वाणानां सुराणां च मन्थनायोद्यमं भृशम् । बिभ्रते मन्दरगिरिं कूर्मरूपाय ते नमः ॥ ५ ॥ नमस्ते भगवन्नाथ क्रतवे सूकरात्मने । वसुन्धरां जनाधारां मूर्द्धतो बिभ्रते नमः ।६। वामनाय नमस्तुभ्यमुपेन्द्राख्याय विष्णवे । विप्ररूपेण दैत्येन्द्रं बलिं छलयते विभो ७

कारके शब्दोंके साथ अमरावती नगरीमें प्रवेश किया ।६४।। जब दैत्य अमरावती नगरीमें घुस गया, तब इन्द्र आदि देवता सुमेरुपर्वतकी गुफामें घुस गए और दैत्यसे सन्ताप पाते हुए वहाँ रहने लगे ।। ६५ ।। हे मुने ! उस समय वह दैत्य इन्द्र आदिके अधिकार पर शुम्भ आदि श्रेष्ठ २ दैत्योंको नियुक्त कर अपने आप सुमेरु पर्वतकी गुफा पर चल दिया ।।६६।। पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त

सनत्कुमारजीने कहा, कि—इन्द्र आदि देवता दैत्यको फिर आता हुआ देख कर भयसे काँप कर भाग चले ।।१।। वे प्रजापतिको साथमें लेकर वैकुण्ठको चल दिये और वहाँ पहुँच कर ब्रह्माजीने तथा सम्पूर्ण देवताओंने विष्णुको प्रणाम कर उनकी स्तुति करनी आरम्भ करदी ।। २ ।। देवताओंने कहा, कि हे सब दैत्योंका नाश करने वाले देवदेवेश हृषीकेश महाभुज मधुसूदन ! हम आपको प्रणाम करते हैं ।।३।। हे विष्णो ! आपने मत्स्यरूप धारण कर सत्यव्रत राजाके साथ प्रलयकालके जलमें विहार किया था और आप वेदोंको ले गए थे, ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं ।। ४ ।। जब देवता समुद्रको मथनेका उद्योग कर रहे थे, उस समय आपने कूर्मरूप धारण कर मन्दराचलको अपने ऊपर धारण किया था, ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं ।। ५ ।। हे भगवान् ! हे नाथ ! आपने मनुष्योंकी आधार पृथ्वीको वराहका रूप धारण कर अपने मस्तक पर धारण किया था, ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं ।६। हे विभो ! आपने उपेन्द्र वामन विप्रका रूप धारण कर बलिको छल लिया था, ऐसे वामन अवतार धारण करने वाले विष्णुको हम प्रणाम करते हैं ।।७।। आपने परशु

नमः परशुरामाय क्षत्रनिःक्षत्रकारिणे। मातुर्हितकृते तुभ्यं कुपितायासतां द्रुहे ॥८॥ रामाय लोकरामाय मर्यादापुरुषाय ते। रावणांतकरायाशु सीतायाः पतये नमः ।९। नमस्ते ज्ञानगूढाय कृष्णाय परमात्मने। राधाविहारशीलाय नानालीलाकराय च १० नमस्ते गूढदेहाय वेदनिंदाकराय च। योगाचार्याय जैनाय बौद्धरूपाय मापते।११। नमस्ते कल्किरूपाय म्लेच्छानामन्तकारिणे । अनन्तशक्तिरूपाय सद्धर्मस्थापनाय च ॥ १२ ॥ नमस्ते कपिलरूपाय देवहूत्य महात्मने । वदते सांख्ययोगं च सांख्याचार्याय वै प्रभो ॥१३॥ नमः परमहंसाय ज्ञानं संवदते परम् । विभात्रे ज्ञानरूपाय येनात्मा संप्रसीदति ॥ १४ ॥ वेदव्यासाय वेदानां विभागं कुर्वते नमः । हिताय सर्वलोकानां पुराणरचनाय च ॥ १५ ॥ एवं मत्स्यादितनुभिर्भक्तकार्योद्यताय ते। सर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे नमस्ते ब्रह्मणे प्रभो ॥ १६ ॥ आर्तिहन्त्रे स्वदासानां सुखदाय शुभाय च। पीताम्बराय हरये तार्क्ष्ययानाय ते नमः । सर्वक्रियायैककर्त्रे शरण्याय

रामका रूप धारण कर क्षत्रियोंसे पृथिवीको निःक्षत्रिय कर दिया था माताका हित किया था और कुपित होकर असज्जनोंसे द्रोह किया था ॥८॥ आपने रामावतार धारण कर संसारको आनन्दित किया था, लीलायें की थीं, रावणका संहार किया था ऐसे सीताके पतिको हम प्रणाम करते हैं ।९। आपने कृष्णावतारमें राधा (मायाशक्ति) से विहार किया था, आप ज्ञानसे गूढ़ थे और आपने अनेक लीलायें की थीं ऐसे परमात्माको प्रणाम है ॥ १० ॥ हे लक्ष्मीपते ! आपने योगाचार्य जैन बौद्धका रूप धारण कर वेदकी निन्दा की है, ऐसे गूढ़देह वाले आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ११ ॥ सद्धर्मकी स्थापना करनेके लिये कल्किका रूप धारण कर म्लेच्छोंका अन्त करने वाले अनन्तशक्ति और अनन्त रूप धारण कर सकने वाले विष्णुको हम प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! आपने देवहूतिके पुत्र बन, कपिलका रूप धारण कर सांख्ययोगका वर्णन किया है, ऐसे सांख्याचार्य विष्णुको हम प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ परमहंसका रूप धारण कर ज्ञानका उपदेश देने वाले विष्णुको हम प्रणाम करते हैं, उस हंसावतारमें आपने जो ज्ञानका उपदेश दिया था उससे चित्त प्रसन्न होजाता है ॥ १४ ॥ आपने वेदव्यासका अवतार धारण कर वेदोंका विभाग किया है और लोकोंका हित करनेके लिये पुराणोंकी रचना की है, ऐसे विष्णुको हम प्रणाम करते हैं ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार मत्स्य आदिके शरीरसे अवतार धारण कर भक्तोंका कार्य करनेके लिये उद्यत रहने वाले, उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने वाले ब्रह्म विष्णुको प्रणाम है ॥ १६ ॥ हे विष्णो ! आप अपने दासोंकी पीड़ाको दूर कर देते हैं, उनको सुख देते हैं और उनका शुभ

नमोनमः ॥ १७ ॥ दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखाद्रिध्वंसवज्रक । शेषतल्पशयायार्कचन्द्रनेत्राय ते नमः ॥१८॥ कृपासिन्धो रमानाथ पाहि नश्शरणागतान् । जलन्धरेण देवाश्च स्वर्गात्सर्वे निराकृताः ॥१९॥ सूर्यो निस्सारितः स्थानाच्चन्द्रो वह्निस्तथैव च । पाताल न्नागराजश्च धर्मराजो निराकृतः ॥२०॥ विचरन्ति यथा मर्त्याश्शोभन्ते नैव ते सुराः । शरणं ते वयं प्राप्ता वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥२१॥ सनत्कुमार उवाच । इति दीनवचश्श्रुत्वा देवानां मधुसूदनः । जगाद करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ २२ ॥ विष्णुरुवाच । भयं त्यजत हे देवा गमिष्याम्यहमाहवम् । जलन्धरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम् ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा सहसोत्थाय दैत्यारिः खिन्नमानसः । आरोहद्गरुडं वेगात्कृपया भक्तवत्सलः २४ गच्छन्तं वल्लभं दृष्ट्वा देवैस्सार्द्धं समुद्रजा । सांजलिर्बाष्पनयना लक्ष्मीर्वचनमब्रवीत् २५ लक्ष्म्युवाच । अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता यदि च सर्वदा । तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे । २६॥ विष्णुरुवाच । जलन्धरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम् । तैस्सं

करते हैं, आप पीताम्बरको धारण करते हैं, गरुड़ आपकी सवारी है ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं, सब क्रियाओंके एकमात्र कर्ता शरणागतरक्षक विष्णुको हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥ १७ ॥ हे दैत्योंसे सन्तप्त देवताओंके दुःखको नष्ट करनेमें वज्रस्वरूप ! हे शेषरूपी शय्या पर शयन करनेवाले ! हे सूर्य चन्द्र रूपी नेत्र वाले ! आपको हम प्रणाम करते हैं ॥१८॥ हे कृपासिंधु रमानाथ ! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करिये, जलंधरने सब देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है ॥ १९ ॥ उसने सूर्य चन्द्रमा और अग्निको अपने स्थानसे खदेड़ दिया है, पातालसे नागराजको निकाल दिया है और धर्मराजका भी तिरस्कार किया है ॥२०॥ अब देवता मनुष्योंकी समान विचरते रहते हैं, अतः उनकी शोभा नहीं रही, इस लिये हम आपकी शरणमें आये हैं आप उसके वधका उपाय करिये ॥ २१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—करुणासिंधु मधुसूदन देवताओंके दीन वचनको सुन कर मेघगंभीर वाणीमें कहने लगे ।२२। विष्णु ने कहा, कि-हे देवताओं ! तुम डरो मत ! मैं युद्ध करूँगा और जलंधर दैत्य को अपना पराक्रम दिखाऊँगा ॥२३॥ भक्तवत्सल दैत्यारि विष्णु इतना कह कर सहसा गरुड़ पर चढ़ गए, (देवताओंकी विपत्तिके कारण उस समय) उनका मन खिन्न होरहा था ॥२४॥ समुद्रसे प्रकट हुई लक्ष्मी अपने स्वामी को देवताओंके साथ जाता हुआ देख आखोंमें आँसू लाकर कहने लगी ।२५। लक्ष्मीने कहा, कि—हे नाथ ! यदि मैं आपकी प्रिया और भक्त हूँ, तो हे कृपानिधे ! आप मेरे भाईको युद्धमें क्यों मारना चाहते हैं ॥ २६ ॥ विष्णुने उत्तर दिया, कि-इन देवताओंने मेरी स्तुति की है इस लिये मैं जलंधर दैत्य

स्तुतो गमिष्यामि युद्धाय त्वरितान्वितः ॥२७॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि । प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥ २८ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा गरुडारूढश्शंखचक्रगदासिभृत् । विष्णुर्विनिर्ययौ योद्धुं देवैश्शक्रादिभिस्सह ॥ २९ ॥ द्रुतं स प्राप तत्रैव यत्र दैत्यो जलन्धरः । कुर्वन् सिंहरवं देवैर्ज्वलद्भिर्विष्णुतेजसा ॥ ३० ॥ अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः । वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥३१॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान् वात्याप्रपीडितान् । उद्धृत्य वचनं क्रोधाद् द्रुतं विष्णुं समभ्यगात् ॥३२॥ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चक्रुर्युद्धं प्रहर्षिताः । तेजसा च हरेः पुष्टा महाबलसमन्विताः ॥३३॥ युद्धोद्यतं समालोक्य देवसैन्यमुपस्थितम् । दैत्यानाज्ञापयामास समरे चातिदुर्मदान् ॥३४॥ जलन्धर उवाच । भो भो दैत्यवरा यूयं युद्धं कुरुत दुस्तरम् । शक्राद्यैरमरैरद्य प्रबलैः कातरैस्सदा ॥ ३५ ॥ मौर्यास्तु लक्षसंख्याता धौम्रा हि शतसंख्यकाः । असुराः कोटिसंख्याताः कालकेयास्तथैव च ॥ ३६ ॥ कालकानां दौर्हृदानां कंकानां लक्षसंख्यया । अन्येऽपि स्वबलैर्युक्ता विनिर्यान्तु ममाज्ञया ॥ ३७ ॥ सर्वे सज्जा विनिर्यात बहुसेनाभिसंयुताः । नानाशस्त्रास्त्रसंयुक्ता निर्भया गतसंशयाः ॥ ३८ ॥ भो भो शुम्भ-

के साथ पराक्रम तो करूँगा ॥ २७ ॥ किन्तु वह रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुआ है, ब्रह्माजीका उसको वरदान है और तुम्हारे प्रेमका भी मुझे ध्यान है, अतः मैं उस दैत्यको मारूँगा नहीं ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—शंख, चक्र, गदा और तलवार को धारण करने वाले विष्णु इस प्रकार कह गरुड़ पर सवार हो इन्द्र आदि देवताओंको साथमें ले युद्ध करनेको चल दिये ॥ २९ ॥ और अपने (विष्णुके) तेजसे दमकते हुए देवताओंको साथ ले सिंहकी समान शब्द करते हुए जलंधरदैत्यके समीप शीघ्र ही पहुँच गए ॥३०॥ उस समय गरुड़के परोंकी वायुसे पीड़ित हुए दैत्य आँधीसे झँझोड़े हुए बादलोंकी समान तित्तर वित्तर होने लगे ॥ ३१ ॥ जब जलंधर दैत्यने दैत्योंको आँधीसे पीड़ा पाते हुए देखो तब वह बड़बड़ाता हुआ क्रोधपूर्वक विष्णुकी ओर दौड़ा ॥३२॥ इस समय देवता विष्णुके तेजसे पुष्ट हो महाबली बन दैत्योंके साथ हर्षपूर्वक युद्ध करने लगे ॥३३॥ देवसेनाको युद्धके लिये उद्यत देख कर जलंधर युद्धदुर्मद दैत्योंको आज्ञा देने लगा ॥३४॥ जलंधरने कहा, कि—ओ श्रेष्ठ दैत्यों ! तुम आज इन सदा कातर रहने वाले इन्द्र आदि प्रबल देवताओंसे दुस्तर युद्ध करो ॥ ३५ ॥ एक लाख मौर्य, सौ धौम्र, एक करोड़ कालकेय असुर लाख लाख कालक, दौर्हृद, कंक तथा और भी दैत्य मेरी आज्ञासे अपनी सेनाओंको ले युद्ध करनेको निकलें ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तुम सब अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ले संशय और भयको छोड़ बहुतसी सेनाओंके साथ तयार होकर निकलो ॥ ३८ ॥ हे शुंभ और निशुम्भ ! तुम दोनों महावीर्यवान् हो, अतः

निशुम्भौ च देवान्समरकातरान् । क्षणेन सुमहावीर्यौ तुच्छान्नाशयतं युवाम् ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच । दैत्या जलन्धराज्ञप्ता इत्थं युद्धविशारदाः । युयुधुस्तेऽसुरास्सर्वे चतुरंगबलान्विताः ॥ ४० ॥ गदाभिस्तीक्ष्णबाणैश्च शूलपट्टिशतोमरैः । केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ४१ ॥ नानायुधैः परैस्तत्र निजघ्नुस्ते बलान्विताः । देवास्तथा महावीरा हृषीकेशबलान्विताः । युयुधुस्तीक्ष्णबाणाश्च क्षिपन्तस्सिंहवद्रवाः ॥ ४२ ॥ केचिद्बाणैस्सुतीक्ष्णैश्च केचिन्मुसलतोमरैः । केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ४३ ॥ इत्थं सुराणां दैत्यानां संग्रामस्समभून्महान् । अत्युल्बणो मुनीनां हि सिद्धानां भयकारकः

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे देवयुद्धवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथ दैत्या महावीर्याश्शूलैः परशुपट्टिशैः । निजघ्नुः सर्वदेवांश्च भयव्याकुलमानसान् ॥ १ ॥ दैत्यायुधैः समाविद्धदेहा देवास्सवासवाः । रणाद्विदुद्रुवुस्सर्वे भयव्याकुलमानसाः ॥ २ ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा हृषीकेशस्सुरानथ । विष्णुर्वै गरुडारूढो योद्धुमभ्याययौ द्रुतम् ॥३॥ सुदर्शनेन चक्रेण सर्वतः प्रस्फुरन्रुचा । सुशोभितकराब्जश्च रेजे भक्ताभयंकरः ॥ ४ ॥ शंखखड्गगदाशार्ङ्गधारी क्रोधसमन्वितः । कठोराक्षो महा-

---

इन समरकातर तुच्छ देवताओंको क्षणभरमें ही भगा डालो ॥३९॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-युद्धविशारद दैत्योंको जब जलंधरने इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे सब अपनी चतुरङ्गिनी सेनाओंको लेकर युद्ध करने लगे ॥४०॥ वे गदा, तीक्ष्ण बाण, शूल, पट्टिश, तोमर, फरसे और शूलोंसे संहार करने लगे ।४१। इधर महावीर देवता भी हृषीकेशका बल पा अनेक प्रकारके आयुध ले शत्रुओंसे युद्ध करने लगे, वे तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ सिंहकी समान दहाड़ते हुए युद्ध करने लगे ॥४२॥ उन देवदानवोंमेंसे कोई तीक्ष्ण बाणोंसे, कोई मूसल और तोमरोंसे, कोई फरसे और शूलोंसे परस्परका संहार करने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार दैत्य और देवताओंमें मुनि और सिद्धोंको भी भय देने वाला महाभयंकर संग्राम होने लगा ॥ ४४ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—तदनन्तर महावीर्यवान् दैत्य शूल फरसे और पटोंसे परम व्याकुल चित्त वाले देवताओंको मारने लगे ॥ १ ॥ उस समय दैत्योंके आयुधोंसे इन्द्र आदि देवताओंका शरीर घायल होगया और चित्त भयके कारण व्याकुल होगया अतः वे रणमेंसे भाग चले ॥२॥ देवताओंको भागते देख विष्णु गरुड़ पर सवार हो युद्ध करनेके लिये आडटे ॥ ३ ॥ भक्तोंको अभय देने वाले विष्णु, सुदर्शनचक्रकी फड़कती हुई सुन्दर कान्ति वाले करकमलसे विराजने लगे ॥ ४ ॥ शंख चक्र गदा और शार्ङ्ग धनुषको धारण

बीभत्सर्वयुद्धविशारदः ॥ ५ ॥ धनुषं शार्ङ्गनामानं विस्फूर्य्य विननाद ह । तस्य नादेन त्रैलोक्यं पूरितं महता मुने ॥ ६ ॥ शार्ङ्गनिस्सृतबाणैश्च दितिजानां शिरांसि वै । चकर्त्त भगवान् विष्णुः कोटिशो रुट्समाकुलः ॥ ७ ॥ अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः । वात्याविवर्त्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥८॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान् । चुक्रोधाति महादैत्यो देववृन्दभयंकरः ॥९॥ मर्द्दयन्तं च तं दृष्ट्वा दैत्यान् प्रस्फुरिताधरः । योद्धुमभ्याययौ वीरो वेगेन हरिणा सह ॥ १० ॥ स चकार महानादं देवासुरभयङ्करम् । दैत्यानामधिपः कर्णा विदीर्णाः श्रवणात्ततः ॥ ११ ॥ भयङ्करेण दैत्यस्य नादेनापूरितं तदा । जलन्धरस्य महता चकम्पे सकलं जगत् ॥१२॥ ततस्समभवद् युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत् । आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १३ ॥ तयोश्च तेन युद्धेन परस्परमभून्मुने । देवासुरर्षिसिद्धानां भीकरेणातिविस्मयः ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणैर्वैध्वजं छत्रं धनुश्शरान् । चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयन् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यस्समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः । आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुं जघान शूलेन तीक्ष्णेन प्रस्फुरत्त्विषा । हृदये क्रोधसंयुक्तो दैत्यः प्रस्फुरिताधरः १७

करने वाले, क्रोधमें भरे हुए, कठोर अस्त्र वाले, महावीर, सर्वयुद्धविशारद विष्णु क्रोधमें भर शार्ङ्ग नामक धनुषको तान उसके शब्दसे त्रिलोकीको गुञ्जार कर गर्जना करने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ क्रोधमें भरे हुए भगवान् विष्णु शार्ङ्गधनुषसे बाण छोड़ कर करोड़ों दैत्योंके शिरोंको काटने लगे ॥ ७ ॥ फिर गरुड़के पङ्खों की वायुकी आँधीसे पीड़ित दैत्य आँधीसे झँझोड़े हुए बादलोंकी समान तित्तर बित्तर होगए ॥ ८ ॥ तब देवताओंको भय देने वाला महादैत्य जलन्धर दैत्यों को आँधीसे पीड़ा पाते हुए देखकर क्रोधमें भर गया ॥ ९ ॥ वह वीर हरिको दैत्योंको मसलता हुआ देख, ओठोंको फड़काता हुआ वेगसे हरिसे आकर भिड़ गया ॥ १० ॥ फिर उस दैत्यराजने देवता और असुरोंको डराने वाला बड़ा भारी सिंहनाद किया, उसको सुननेसे कान फटनेसे लगे ॥ ११ ॥ जलन्धर दैत्यके बड़े भारी नादसे गूँज कर सारा जगत् काँपने लगा ॥ १२ ॥ तब विष्णु और दैत्येन्द्र बाणोंसे आकाशको छाते हुए बड़ा भारी युद्ध करने लगे १३ हे मुने ! देवता असुर ऋषि और सिद्धोंको भय देने वाले उन दोनोंके युद्धसे बड़ा विस्मय फैल गया ॥ १४ ॥ विष्णुने बाणोंकी बौछार कर दैत्यकी ध्वजा छत्र धनुष और बाणोंको काट डाला और उसके हृदयमें भी एक बाण मारा १५ तब उस दैत्यने हाथमें गदा ले छलाँग मारी और गरुड़के मस्तक पर गदा मार उसको भूमि पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ और क्रोधके कारण फड़कते हुए ओठ वाले दैत्यने फड़कती हुई कान्ति वाले शूलको विष्णुकी छातीमें मारा ॥ १७ ॥

विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव । तं विध्याथ शरैस्तीक्ष्णैश्शार्ङ्गं विस्फूर्य दैत्यहा ॥ १८ ॥ विष्णुर्जलन्धरं दैत्यं भयदेन शरेण ह । क्रोधाविष्टोऽतितीक्ष्णेन जघानाशु सुरारिहा ॥ १९ ॥ आगतं तस्य तं बाणं दृष्ट्वा दैत्यो महाबलः । छित्त्वा बाणेन विष्णुं च जघान हृदये द्रुतम् । केशवोऽपि महाबाहु र्क्षिप्तमसुरेण तम् । शरं तिलप्रमाणेन छित्त्वा वीरो ननाद ह ॥ २१ ॥ पुनर्बाणं समाधत्त धनुषि क्रोधवेपितः । महाबलोऽथ बाणेन चिच्छेद स शिलीमुखम् ॥ २२ ॥ वासुदेवः पुनर्बाणं नाशाय विबुधद्विषः । क्रोधेनाधत्त धनुषि सिंहवद्विननाद ह ॥२३॥ जलन्धरोऽथ दैत्येन्द्रः कोपच्छिन्नाधरो बली । शरेण स्वेन शार्ङ्गाख्यं धनुश्चिच्छेद वैष्णवम् ॥ २४ ॥ पुनर्बाणैस्सुतीक्ष्णैश्च जघान मधुसूदनम् । उग्रवीर्यो महावीरो देवानां भयकारकः ॥२५॥ स छिन्नधन्वा भगवान् केशवो लोकरक्षकः । जलन्धरस्य नाशाय चिक्षेप स्वगदां पराम् ॥२६॥ सा गदा हरिणा क्षिप्ता ज्वलज्ज्वलनसन्निभा । अमोघगतिका शीघ्रं तस्य देहे लगाग ह तया हतो महादैत्यो न चचालापि किंचन । जलन्धरो मदोन्मत्तः पुष्पमालाहतो यथा ततो जलन्धरः क्रोधी देवत्रासमकरोऽक्षिपत् । त्रिशूलमनलाकारं हरये रणदुर्म्मदः ॥२९॥

दैत्योंके संहारक विष्णुने हँसते २ खड्गसे उस गदाको काट डाला और शार्ङ्ग धनुष पर टंकार दे तीक्ष्ण बाणोंसे उस दैत्यको घायल किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर दैत्योंके शत्रु विष्णुने क्रोधमें भर भयदायक अतितीखे बाणसे जलन्धर को ताड़ित किया ॥ १९ ॥ महाबली दैत्यने उस बाणको आता हुआ देख कर अपने बाणसे उसको काट डाला और शीघ्रतासे विष्णुके हृदयमें भी बाण मारा ॥ २० ॥ वीर महाभुज केशव भी असुरके छोड़े हुए उस बाणके तिल की बराबर टुकड़े कर गर्जना करने लगे ॥ २१ ॥ फिर क्रोधसे काँपते हुए उस महाबली दैत्यने धनुष पर फिर बाण चढ़ाया, परन्तु विष्णुने बाण मार फिर उस बाणको काट डाला ॥ २२ ॥ फिर वासुदेवने क्रोधमें भर कर उस सुरद्वेषीका नाश करनेके लिये धनुष पर बाण चढ़ाया और सिंहकी समान दहाड़ने लगे ॥ २३ ॥ तब कोपसे काटते हुए ओठ वाले बली दैत्येन्द्र जलंधरने अपने बाणसे विष्णुके शार्ङ्ग नामक धनुषको काट डाला ॥ २४ ॥ फिर देवताओंको भय देने वाले प्रचण्ड-पराक्रमी महावीर जलन्धरने तीक्ष्ण बाणों से मधुसूदन पर प्रहार किया ॥ २५ ॥ धनुषके कट जाने पर लोकरक्षक भगवान् केशवने जलन्धरका नाश करनेके लिये अपनी श्रेष्ठ गदाको फेंका २६ प्रज्वलित अग्निकी समान हरिकी फैंकी हुई वह अमोघ गति वाली गदा उस दैत्यके शरीरमें लगी ॥ २७ ॥ परन्तु मदोन्मत्त महादैत्य जलन्धर उसके प्रहार से पुष्पमालासे पीड़ित होनेकी समान कुछ भी पीड़ित नहीं हुआ ॥ २८ ॥ तब रणदुर्मद जलन्धर क्रोधमें भर गया और उसने देवताओंको त्रास देनेके

अथ विष्णुस्तत्त्रिशूलं चिच्छेद तरसा द्रुतम्। नन्दकाख्येन खड्गेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ३०॥ छिन्ने त्रिशूले दैत्येन्द्र उत्प्लुत्य सहसा द्रुतम्। आगत्य हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना॥३१॥ सोऽपि विष्णुर्महावीरोऽविगणय्य च तद्व्यथाम्। जलन्धरं च हृदये जघान दृढमुष्टिना॥ ३२॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ। बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्॥ ३३॥ एवं हि सुचिरं युद्धं कृत्वा तेनासुरेण वै। विस्मितोऽभून्मुनिश्रेष्ठ हृदि ग्लानिमवाप ह॥ ३४॥ अथ प्रसन्नो भगवान्मायी मायाविदां वरः। उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरया गिरा॥३५॥ विष्णुरुवाच। भो भो दैत्यवरश्रेष्ठ धन्यस्त्वं रणदुर्मदः। महायुधवरैर्यैस्त्वं न भीतो हि महाप्रभुः॥ ३६॥ एभिरेवायुधैरुग्रैर्दैत्या हि बहवो हताः। महाजौ दुर्मदा वीराश्छिन्नदेहा मृतिं गताः॥ ३७॥ युद्धेन ते महादैत्य प्रसन्नोऽस्मि महान्भवान्। न दृष्टस्त्वत्समो वीरस्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ३८॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्। अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्त्तते॥३९॥ सनत्कुमार उवाच। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विष्णोर्मायाविनो हरेः। प्रत्युवाच महाबुद्धिर्दैत्यराजो जलन्धरः॥४०॥ जलन्धर उवाच। यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतं ददस्व मे।

लिये अग्निसरीखा त्रिशूल हरिके मारा॥ २९॥ तब विष्णुने शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर नन्दक नामक तलवारसे फुरतीके साथ उस त्रिशूलको काट डाला॥ ३०॥ त्रिशूलके नष्ट होने पर दैत्येन्द्र सहसा उछला और उसने विष्णुके पास आ उनकी छातीमें मुक्का मारा॥ ३१॥ परन्तु महावीर विष्णुने उसकी पीड़ाको कुछ न समझ जलन्धरके हृदयमें एक दृढ़ मुक्का मारा।३२। तदनन्तर वे दोनों महाबली बाहुयुद्ध करने लगे भुजा मुक्के और जानुओंके धमाकेसे पृथ्वीको गुञ्जारने लगे॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार बहुत समय तक उस दैत्यके साथ युद्ध करनेके अनन्तर विष्णु विस्मित हुए और उनके हृदयमें ग्लानि होने लगी॥ ३४॥ फिर मायाको जानने वालोंमें श्रेष्ठ मायावान् भगवान् विष्णु मेघगंभीरवाणीमें दैत्यसे कहने लगे॥३५॥ विष्णुने कहा, हे रणदुर्मद! दैत्यश्रेष्ठ! तुम धन्य हो क्योंकि-तुम बड़े २ आयुधोंसे भी नहीं डरे॥३६॥ महासंग्राममें इन उग्र आयुधोंसे बहुतसे दुर्मद दैत्य वीर मारे गए हैं और देहके छिन्न भिन्न होने पर मर गए हैं॥३७॥ हे दैत्य! मैं तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न हूँ, तुम महान् व्यक्ति हो, क्योंकि-मैंने जङ्गम और स्थावर त्रिलोकी में तुम्हारी समान कोई वीर नहीं देखा॥३८॥ हे दैत्येन्द्र! तुम वर माँगो, मैं तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्न हूँ अतः तेरे मनमें जो बात हो वह न देने योग्य होगी तो भी मैं तुझे दूँगा॥ ३९॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-मायावी विष्णुके इन वचनको सुन महाबुद्धिमान् दैत्यराज जलन्धरने कहा, कि-॥ ४०॥ हे भावुक! यदि तुम मुझसे सन्तुष्ट हो तो मुझे यह वर दो, कि—अपने गण

मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे सगणो वस ॥४१॥ सनत्कुमार उवाच । तदाकर्ण्य वचस्तस्य महादैत्यस्य खिन्नधीः । तथास्त्विति च देवेशो जगाद भगवान् हरिः ॥ ४२ ॥ उवास स ततो विष्णुस्सर्वदेवगणैस्सह । जलन्धरं नाम पुरमागत्य रमया सह ॥ ४३ ॥ अथो जलन्धरो दैत्यस्स्वभगिन्या च विष्णुना । उवास स्वालयं प्राप्तो हर्षाकुलितमानसः जलन्धरोऽथ देवानामधिकारेषु दानवान् । स्थापयित्वा सहर्षस्सन्पुनरागान्महीतलम् ॥ देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंचितम् । तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः ॥४६॥ पातालभवने दैत्यं निशुम्भं सुमहाबलम् । स्थापयित्वा स शेषादीनानयद्भूतलं बली ॥४७॥ देवगन्धर्वसिद्धौघान् सर्पराक्षसमानुषान् । स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥४८॥ एवं जलन्धरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः । धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ४९ न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा । न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरोपाख्याने विष्णुजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सनत्कुमार उवाच । एवं शासति धर्मेण महीं तस्मिन्महासुरे । बभूवुर्दुःखिनो देवा भ्रातृभावान्मुनीश्वर ॥ १ ॥ दुःखितास्ते सुरास्सर्वे शिवं शरणमाययुः । मनसा शङ्करं

और मेरी बहिनके साथ मेरे घरमें रहो ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उस महादैत्यके वचनको सुनकर विष्णु खिन्न होगए, फिर देवेश भगवान् हरि ने कहा, कि-तथास्तु ॥४२॥ तब विष्णु, देवता और लक्ष्मीके साथ जलन्धरपुरमें आकर रहने लगे ॥ ४३ ॥ तब जलन्धर दैत्य अपने घर आ हर्षमें भरे हुए चित्तसे अपनी बहिन और विष्णुके साथ रहने लगा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर जलन्धर देवताओंके अधिकारों पर दैत्योंको प्रतिष्ठित कर, फिर हर्षपूर्वक पृथ्वी पर आगया ॥४५॥ देवता गन्धर्व और सिद्धोंके पास जो कुछ रत्न थे, सागरनन्दनने उन सबको अपने वशमें कर लिया। ४६॥ उसने पातालभवनमें निशुम्भ नामक महाबली दैत्यको स्थापित किया और उस बलवानने शेष आदिको पृथ्वी पर खदेड़ दिया ॥ ४७ ॥ वह देवता, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, राक्षस और मनुष्य सबको अपना नागरिक बना तीनों लोकोंका शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ जलन्धर दैत्य इस प्रकार देवताओंको अपने वशमें करके पिताके औरस पुत्रों को पालनेकी समान धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा ॥४९॥ उसके धर्मपूर्वक शासन करते समय कोई रोगी दुःखी कृश और दीन नहीं दीखता था ५०

सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ * * * *

हे मुनीश्वर ! वह महान् असुर इस प्रकार धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन कर रहा था, कि-देवताओंको भ्रातृभावके कारण बड़ा दुःख हुआ ॥ १ ॥ उन्होंने

देवदेवं सर्वप्रभुं प्रभुम् ॥ २ ॥ तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भगवन्तं महेश्वरम् । निवृत्तये स्वदुःखस्य सर्वदं भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥ आहूय स महादेवो भक्तानां सर्वकामदः । नारदं प्रेरयामास देवकार्यचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अथ देवमुनिर्ज्ञानी शम्भुभक्तस्सतां गतिः । शिवाज्ञया ययौ दैत्यपुरे देवान्स नारदः ॥ ५ ॥ व्याकुलास्ते सुरास्सर्वे वासवाद्या द्रुतं मुनिम् । आगच्छन्तं समालोक्य समुत्तस्थुर्हि नारदम् ॥ ६ ॥ ददुस्त आसनं दत्वा मुनये प्रीतिपूर्वकम् । नारदाय सुराश्शक्रमुखा उत्कण्ठिताननाः ॥७॥ सुखासीनं मुनिवरमासने सुप्रणम्य तम् । पुनः प्रोचुस्सुरा दीना वासवाद्या मुनीश्वरम् ॥८॥ देवा ऊचुः । भो भो मुनिवरश्रेष्ठ दुःखं शृणु कृपाकर । श्रुत्वा तन्नाशय क्षिप्रं प्रभुस्त्वं शंकरप्रियः ॥९॥ जलंधरेण दैत्येन सुरा विद्राविता भृशम् । स्वस्थानाद्धर्षभावाच्च दुःखिता वयमाकुलाः ॥१०॥ स्वस्थानादुष्णरश्मिश्च चन्द्रो निस्सारितस्तथा । वह्निश्च धर्मराजश्च लोकपालास्तथेतरे ११ सुबलिष्ठेन वै तेन सर्वे देवाः प्रपीडिताः दुःखं प्राप्ता वयं चापि शरणं त्वां समागताः१२ संग्रामे स हृषीकेशं स्ववशं कृतवान् बली । जलंधरो महादैत्यः सर्वामरविमर्दकः ॥१३॥

दुःखित होकर अपने मनमें देवदेव सर्वप्रभु शिव शंकरकी शरण ली ॥ २ ॥ वे अपने दुःखकी निवृत्तिके लिये सब कुछ दे सकने वाले भक्तवत्सल महेश्वरकी इष्ट वाणियोंसे स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ तब भक्तोंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाले महादेवने देवताओंका कार्य करनेकी इच्छासे नारदजीको बुलाकर भेजा ॥४॥ तब वह देवमुनि ज्ञानी शम्भुभक्त तथा सज्जनोंकी गतिरूप नारद शिवकी आज्ञासे दैत्यपुरीकी ओर चल दिये ॥ ५ ॥ इधर व्याकुल होते हुए इन्द्र देवताओंने जो मुनि नारदजीको आते हुए देखा तो सब उठकर खड़े होगए ॥ ६ ॥ और इन्द्र आदि देवताओंने उत्कण्ठित मुखसे नारदको प्रीतिपूर्वक प्रणाम कर आसन दिया ॥ ७ ॥ जब नारदजी सुखपूर्वक आसन पर बैठ गए, तब इन्द्र आदि देवता उन मुनिको फिर प्रणाम कर दीनतापूर्वक कहने लगे ॥ ८ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे कृपाकर मुनिवरजी ! आप हमारे दुःखको सुनिये, उसको सुनकर शीघ्र ही उस दुःखको दूर करिये, आप शंकरके प्रिय हैं, और प्रभु हैं इस लिये हम यह बात कहते हैं ॥ ९ ॥ जलन्धर दैत्यने देवताओंको अपने स्थानसे खदेड़ दिया है, उसके स्वामी होनेसे हम तो बड़े दुःखी और व्याकुल होरहे हैं ॥१०॥ उसने सूर्यको अपने स्थानसे हटा दिया है, चन्द्रमाको निकाल दिया है, अग्नि, धर्मराज तथा दूसरे लोकपाल भी उस बली असुरसे सब पीड़ित होरहे हैं, और दुःख पाकर आपकी शरण लेना चाहते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ इस सम्पूर्ण देवताओंका मान मर्दन करने वाले महादैत्य बली जलन्धरने हृषीकेश विष्णुको संग्राममें अपने वशमें कर लिया है ॥ १३ ॥ जो विष्णु हमारे संपूर्ण प्रयोजनोंको साधने वाले हैं

तस्य वश्यो वराधीनोऽवात्सीत्तत्सदने हरिः । स लक्ष्म्या सहितो विष्णुर्यो नस्स-
र्वार्थसाधकः ॥१४॥ जलन्धरविनाशाय यत्नं कुरु महामते । त्वं नो दैववशात्प्राप्त-
स्सदा सर्वार्थसाधकः ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तेषाममराणां
स नारदः । आश्वास्य मुनिशार्दूलस्तानुवाच कृपाकरः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ।
जानेऽहं वै सुरा यूयं दैत्यराजपराजिताः । दुःखं प्राप्ताः पीडिताश्च स्थानान्निस्सा-
रिताः खलु ॥ १७ ॥ स्वशक्त्या भवतां स्वार्थं करिष्ये नात्र संशयः । अनुकूलोऽह-
मिह वो दुःखं प्राप्ता यतोऽमराः ॥ १८ ॥ सनत्कुमार उवाच । एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ
द्रष्टुं दानववल्लभम् । आश्वास्य सकलान्देवाञ्जलन्धरसभां ययौ ॥ १९ ॥ अथा-
गतं मुनिश्रेष्ठं दृष्ट्वा दैत्यो जलन्धरः । उत्थाय परया भक्त्या ददौ श्रेष्ठासनं वरम् ॥
स तं संपूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिविस्मितः । सुप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद मुनि-
सत्तमम् ॥२१॥ जलन्धर उवाच । कुत आगम्यते ब्रह्मन् किं च दृष्टं त्वया क्वचित् ।
यदर्थमिह आयातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ २२ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य
वचस्तस्य दैत्येन्द्रस्य महामुनिः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदो हि जलन्धरम् २३

वही वरदानके कारण इसके अधीन लक्ष्मीसहित इसके घरमें रहते हैं ॥ १४ ॥
इस लिये हे महामते ! आप जलन्धरका विनाश करनेके लिये यत्न करिये,
हमारे सब कार्योंको सिद्ध करने वाले आप दैववश ही हमारे पास आए हैं १५
सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—देवताओंके ऐसे वचनको सुन करुणाकर मुनि-
शार्दूल नारदने उनको ढाढ़स दिया और कहने लगे ॥१६॥ नारदजीने कहा,
कि—हे देवताओं ! यह बात मुझे विदित है, कि—दैत्यराजने तुम्हारा पराजय
कर दिया है, तुम बड़े दुःखमें पड़ कर पीड़ा पारहे हो और तुम्हें अपने पदसे
हटा दिया गया है ॥ १७ ॥ अतः मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपका काम
करूँगा, हे देवताओं ! तुम दुःखमें पड़े हुए हो, अतः मैं तुम्हारे अनुकूल रहूँगा ।१८।
सनत्कुमारजी कहते हैं, कि- हे मुनिश्रेष्ठ व्यासजी ! नारदजी इस प्रकार सकल
देवताओंसे वार्तालाप कर उनको ढाढस दे, दानववल्लभ जलन्धरकी सभाको
चल दिये ॥ १९ ॥ मुनिश्रेष्ठ नारदजीको आया हुआ देखकर जलन्धर दैत्य
बड़ी भक्तिके साथ उठा और उनको बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया ॥२०॥
बड़े भारी विस्मयमें पड़े हुए दानवेन्द्रने उन मुनिसत्तमका भली प्रकार सत्कार
कर हँसते हुए उनसे कहा, कि—॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप कहाँसे पधार रहे
हैं, क्या आपने कहीं कोई (नवीन) बात देखी है ? आप जिस लिये यहाँ आये
हैं, उस कामको मुझे आज्ञा दीजिये ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—
दैत्यराजकी इस बातको सुन कर महामुनि नारदका चित्त प्रसन्न होगया और
वह जलन्धरको उत्तर देने लगे ॥ २३ ॥ नारदजीने कहा, कि—हे सब दानव

नारद उवाच । सर्वदानवदैत्येन्द्र जलन्धर महामते । धन्यस्त्वं सर्वलोकेश रत्नभोक्ता त्वमेव हि ॥ २४ ॥ मदागमनहेतुं वै शृणु दैत्येन्द्रसत्तम । यदर्थमिह चायातस्त्वहं वक्ष्येऽखिलं हि तत् ॥ २५ ॥ गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया । योजनायुतविस्तीर्णं कल्पद्रुममहावनम् ॥२६॥ कामधेनुशताकीर्णं चिंतामणिसुदीपितम् । सर्वरुक्ममयं दिव्यं सर्वत्राद्भुतशोभितम् ॥ २७ ॥ तत्रोमया सहासीनं दृष्टवानस्मि शंकरम् । सर्वाङ्गसुन्दरं गौरं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥२८॥ तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा । क्वापीदृशी भवेद् वृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च ॥२९॥ तावत्तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिस्संस्मृता मया । तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सांनिध्यमिहागतः ॥ ३० ॥ सनत्कुमार उवाच । इति नारदतः श्रुत्वा स दैत्येन्द्रो जलन्धरः । स्वसमृद्धिं समग्रां वै दर्शयामास सादरम् ॥३१॥ दृष्ट्वा स नारदो ज्ञानी देवकार्यसुसाधकः । प्रभुप्रेरणया प्राह दैत्येन्द्रं तं जलंधरम् ॥३२॥ नारद उवाच । तवास्ति सुसमृद्धिर्हि वरवीराखिलाधुना । त्रैलोक्यस्य पतिस्त्वं हि चित्रं किं चात्र संभवम् मणयो रत्नपुञ्जाश्च गजाद्याश्च समृद्धयः । ते गृहेऽद्य विभांतीह यानि रत्नानि

और दैत्योंमें इन्द्र महाबुद्धिमान् जलन्धरजी ! आप सब लोकोंके स्वामी हैं, इस लिये आप धन्य हैं, एक आप ही सकल रत्नोंके भोक्ता हुए हैं ॥ २४ ॥ हे दैत्येन्द्रसत्तम ! अब आप मेरे आनेके कारणको सुनिये, मैं यहाँ पर जिस लिये आया हूँ, उसे भली प्रकार कहता हूँ ॥२५॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं अकस्मात् कैलास के शिखर पर पहुँच गया, उस पर दश हजार योजन लम्बा कल्पद्रुमोंका महावन है ॥ २६ ॥ उसमें सैंकड़ों कामधेनुएँ रहती हैं चिन्तामणियोंसे वह दमकता रहता है; वह सुवर्णमय है, दिव्य है, उसमें सर्वत्र अद्भुत शोभा है ॥२७॥ तहाँ मैंने उमाके साथ शंकरको बैठे देखा, उन शंकरका अंग सर्वांगसुन्दर है, वर्ण गोरा है, उनके नेत्र तीन हैं और उनके मस्तक पर चन्द्रमा है ॥ २८ ॥ उनको देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य और तर्क हुआ कि-त्रिलोकीमें कहीं भी ऐसी समृद्धि होगी या नहीं ? ॥ २९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! उस समय मुझे तुम्हारी समृद्धिका भी स्मरण आया अतः उसको देखनेके लिये मैं तुम्हारे पास चला आया हूँ ॥ ३० ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-नारदजीकी इस बातको सुन दैत्येन्द्र जलन्धर अपनी समग्र समृद्धि नारदको आदरपूर्वक दिखाने लगा ३१ उसको देख कर देवताओंका कार्य—साधन करनेके लिये ज्ञानी नारदने प्रभु शंकरकी प्रेरणासे उस दैत्येन्द्र जलन्धरसे कहा ॥३२॥ नारदजीने कहा, कि-हे श्रेष्ठ वीर ! इस समय तुम्हारे पास सारी समृद्धियें हैं, तुम त्रिलोकीके स्वामी हो अतः तुम्हारे पास इन समृद्धिका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ।३३। मणि, रत्न, हाथी आदि जो समृद्धियें हैं, वे सब रत्नरूप संपत्तियें तुम्हारे घर

तान्यपि ॥ ३४ ॥ गजरत्नं त्वयानीतं शक्रस्यैरावतस्तथा । अश्वरत्नं महावीर सूर्यस्योच्चैःश्रवा हयः ॥ ३५ ॥ कल्पवृक्षस्त्वयानीतो निधयो धनदस्य च । हंसयुक्तविमानं च त्वयानीतं हि वेधसः ॥३६॥ इत्येवं वररत्नानि दिवि पृथ्व्यां रसातले । यानि दैत्येन्द्र ते भांति गृहे तानि समस्ततः ॥ ३७ ॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्संपूर्णां विविधामहम् । प्रसन्नोऽस्मि महावीर गजाश्वादिसुशोभिताम् ॥ ३८ ॥ जायारत्नं महाश्रेष्ठं जलन्धर न ते गृहे । तदानेतुं विशेषेण स्त्रीरत्नं वै त्वमर्हसि ॥ ३९ ॥ यस्य गेहे सुरत्नानि सर्वाणि हि जलन्धर । जायारत्नं न चेत्तानि न शोभन्ते वृथा ध्रुवम् सनत्कुमार उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः । उवाच दैत्यराजो हि मदनाकुलमानसः ॥ ४१ ॥ जलन्धर उवाच । भो भो नारद देवर्षे नमस्तेऽस्तु महाप्रभो । जायारत्नवरं कुत्र वर्तते तद्वदाधुना ॥४२॥ ब्रह्मांडे यत्र कुत्रापि तद्रत्नं यदि वर्त्तते । तदानेष्ये ततो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४३ ॥ नारद उवाच । कैलासे ह्यतिरम्ये च सर्वर्द्धिसुसमाकुले । योगिरूपधरश्शम्भुरस्ति तत्र दिगम्बरः॥ तस्य भार्या सुरम्या हि सर्वलक्षणलक्षिता । सर्वाङ्गसुन्दरी नाम्ना पार्वतीति मनो-

---

में दीख रही हैं ॥ ३४ ॥ हे महावीर ! तुम इन्द्रके हस्तिरत्न ऐरावतको ले आए हो, सूर्यके रत्नरूप घोड़ोंको तुम छीन लाये हो और उच्चैःश्रवा घोड़ा भी तुम्हारे पास है ॥ ३५ ॥ तुम कल्पवृक्षको ले आये हो, कुवेरकी निधियों को ले आये हो और ब्रह्माजीके हंस वाले विमानको भी तुम ले आये हो ३६ हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार स्वर्ग पृथ्वी और रसातलमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब ही तुम्हारे भवनमें शोभा देरहे हैं ॥ ३७ ॥ तुम्हारी इस अनेक प्रकारकी हाथी घोड़े आदिसे सुशोभित पूर्ण समृद्धिको देख कर हे महावीर ! मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ ॥३८॥ परन्तु हे जलन्धर ! तुम्हारे घरमें परम श्रेष्ठ स्त्रीरत्न नहीं है, अतः किसी परम सुन्दर स्त्रीरत्नको भी तुम्हें लाना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे जलन्धर ! जिसके घरमें सम्पूर्ण सुन्दर रत्न हों, परन्तु एक स्त्रीरत्न न हो, तो उन रत्नोंकी शोभा नहीं होती, वे सब व्यर्थ ही मालूम होते हैं ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-महात्मा नारदके इस वचनको सुन कर दैत्यराजका मन कामसे व्याकुल होगया और वह कहने लगा, कि- ॥ ४१ ॥ हे महाप्रभु देवर्षि नारदजी ! वह स्त्रीरत्न कहाँ है ? उसको आप मुझे बताइये ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माण्डमें वह स्त्रीरत्न कहाँ है, यह बताइये ? तब मैं उसको अवश्य ले आऊँगा ॥४३॥ नारदजी कहते हैं, कि-सकल समृद्धियोंसे सम्पन्न अतिरमणीय कैलासमें योगी शंकर दिगम्बर बन कर रहते हैं ॥ ४४ ॥ उनकी सकल लक्षणोंसे लक्षित सर्वाङ्गसुन्दरी पार्वती नाम वाली मनोहर भार्या है ४५

हरा ॥ ४५ ॥ तदीदृशं रूपमनन्यसंगतं दृष्टं न कुत्रापि कुतूहलावधम् । अत्यद्भुतं मोहनकृत्सुयोगिनां सुदर्शनीयं परमर्द्धिकारि ॥ ४६ ॥ स्वचित्ते कल्पयाम्यद्य शिवादन्यस्समृद्धिमान् । जायारत्नान्विताद्धीर त्रिलोक्यां न जलन्धर ॥ ४७ ॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः । स्वधैर्यं मुमुचे पूर्वं तया कान्योपमीयते ।४८। गतरागोऽपि हि यया मदनारिस्स्वलीलया । निजतन्त्रोऽपि हि यतस्स स्वात्मवशगः कृतः ॥ ४९ ॥ यथा स्त्रीरत्नसंभोक्तुस्समृद्धिस्तस्य साभवत् । तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥ ५० ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदो लोकविश्रुतः । ययौ विहायसा देवोपकारकरणोद्यतः ॥ ५१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलन्धरवधोपाख्याने देवर्षिजलन्धरसंवादो नामाष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ नारदे हि गते दिवि । दैत्यराट् किमकार्षीत्स तन्मे वद सुविस्तरात् ॥१॥ सनत्कुमार उवाच । तमामन्त्र्य गते दैत्यं नारदे दिवि दैत्यराट् । तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥ २ ॥ अथो जलन्धरो दैत्यः

उसका-सा रूप किसीमें कहीं पर भी नहीं देखा है, वह रूप कुतूहलको बढ़ाने वाला परम अद्भुत है, वह सुदर्शनीय रूप योगियोंको भी मोहमें डालने वाला है और बड़ी ऋद्धि करने वाला है ॥ ४६ ॥ हे जलन्धर ! मैं अपने चित्तमें समझता हूँ, कि-त्रिलोकीमें शिवकी बराबर समृद्धिमान् और कोई नहीं है ४७ अहो ! जिस पार्वतीके लावण्यसमुद्रमें ब्रह्माजी भी धैर्यहीन हो डूब गए, तो उस पार्वतीसे और किसकी उपमा दी जा सकती है ॥ ४८ ॥ जिसने रागरहित, कामके शत्रु, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र शिवको भी अपने वशमें कर लिया तो उस शिवपत्नीकी उपमा और किससे दी जा सकती है ॥४९॥ उन स्त्रीरत्नको भोगने वाले शिवकी जैसी समृद्धि है, सब रत्नोंके स्वामी होने पर भी तुम्हारी ऐसी समृद्धि नहीं दीखती ॥५०॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-संसारप्रसिद्ध देवर्षि नारद देवताओंका उपकार करनेके लिये जलन्धरसे यह बात कह कर आकाशमार्गसे चले गए ॥ ५१ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ❀

व्यासजी कहते हैं, कि-हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! जब नारदजी इस प्रकार कह आकाशमार्गसे चले गए, तब फिर दैत्यराजने क्या किया उसका आप विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि-जब नारदजी उससे बात कर स्वर्गको चल दिये, तब वह दैत्यराज पार्वतीके रूप को सुन कामज्वरसे पीड़ित होने लगा ॥२॥ फिर कालके अधीन होनेसे जिसकी बुद्धि-चक्करमें पड़ गई थी, ऐसे मोहमें पड़े हुए जलन्धर दैत्यने राहु नामक

कालाधीनः प्रनष्टधीः । दूतमाह्वाययामास सैंहिकेयं विमोहितः ॥ ३ ॥ आगतं तं समालोक्य कामाक्रांतमनास्स हि । सुसंबोध्य समाचष्ट सिन्धुपुत्रो जलन्धरः ।४। जलन्धर उवाच । भो भो दूतवरश्रेष्ठ सर्वकार्यप्रसाधक । सैंहिकेय महाप्राज्ञ कैलासं गच्छ पर्वतम् ॥५॥ तत्रास्ति योगी शम्भ्वाख्यस्तपस्वी च जटाधरः । भस्मभूषित-सर्वाङ्गो विरक्तो विजितेन्द्रियः ।६॥ तत्र गत्वेति वक्तव्यं योगिनं दूत शंकरम् । जटा-धरं विरक्तं तं निर्भयेन हृदा त्वया ॥ ७ ॥ हे योगिंस्ते दयासिन्धो जायारत्नेन किं भवेत् । भूतप्रेतपिशाचादिसेवितेन वनौकसा ॥ ८ ॥ मन्नाथे भुवने योगिन्नोचिता गतिरीदृशी । जायारत्नमतस्त्वं मे देहि रत्नभुजे निजम् ॥९॥ यानि यानि सुरत्नानि त्रैलोक्ये तानि सन्ति मे । मदधीनं जगत्सर्वं विद्धि त्वं सचराचरम् ॥१०॥ इन्द्रस्य गजरत्नं चोच्चैःश्रवोरत्नमुत्तमम् । बलाद् गृहीतं सहसा पारिजाततरुस्तथा ।११। विमानं हंससंयुक्तमङ्गणे मम तिष्ठति । रत्नभूतं महादिव्यमुत्तमं वेधसोद्भुतम् ।१२। महापद्मादिकं दिव्यं निधिरत्नं स्वदस्य च । छत्रं मे वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति किञ्जल्किनी महामाला सर्वदाऽम्लानपङ्कजा । मत्पितुस्सा ममैवास्ति पाशश्च कप-

---

दूतको बुलाया ॥३॥ कामसे व्याप्त चित्त वाले सिंधुपुत्र जलन्धर दैत्यने राहु को आया देख उसको भली प्रकार समझा बुझा कर कहना आरम्भ किया ४ जलन्धरने कहा, कि—हे राहो ! तुम दूतोंमें श्रेष्ठ हो, सब कार्मोंको साधने वाले हो और महाबुद्धिमान् हो, अतः तुम कैलासपर्वतको जाओ ॥ ५ ॥ तहाँ पर एक शम्भु नाम वाले योगी रहते हैं, वह तपस्वी हैं, जटाधारी हैं उनके सकल अंगोंमें भस्म लगी हुई है, वह विरक्त और जितेन्द्रिय हैं ॥ ६ ॥ हे दूत ! तुम तहाँ पहुँच कर उन योगी जटाधारी विरक्त शंकरसे निर्भय हृदयसे यह बात कहना ॥७॥ हे योगिन् ! तुम्हारे पास तो भूत प्रेत पिशाच आदि रहते हैं और तुम जंगलमें रहते हो अतः हे दयासिन्धो ! तुम इस स्त्रीरत्नका क्या करोगे ८ हे योगिन् ! जब मुझ सरीखा नाथ इस भुवनमें है, तो उस स्त्रीरत्नकी ऐसी दुर्गति होना उचित नहीं है, अतः मुझ रत्नभोक्ताको तुम अपना स्त्रीरत्न देदो ॥ ९ ॥ तुम यह जान लो, कि—यह जंगम स्थावर सारी त्रिलोकी मेरे अधीन है, इस लिये त्रिलोकीमें जो रत्न हैं, वे सब मेरे ही हैं ॥ १० ॥ मैंने इन्द्रके ऐरावत हस्तीको, उत्तम रत्न उच्चैःश्रवाको और कल्पवृक्षको बलपूर्वक छीन लिया है ॥११॥ और ब्रह्माजीका परमोत्तम अद्भुत परमदिव्य हंसों वाला विमान मेरे आँगनमें ही खड़ा रहता है ॥१२॥ कुबेरकी महापद्म आदि निधियें और वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र भी मेरे पास ही है ॥१३॥ जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं हैं वह मेरे पिताकी किञ्जल्किनी नाम वाली महामाला भी मेरे पास है और वरुणका पाश भी मेरे पास है ॥ १४ ॥ और मृत्युकी प्राण

तेस्तथा ॥१४॥ मृत्योरुत्क्रान्तिदा शक्तिर्मयानीता बलाद्वरा । ददौ मह्यं शुचिर्दिव्ये शुचिशौचे च वाससी ॥ १५ ॥ एवं योगीन्द्र रत्नानि सर्वाणि विलसन्ति मे । अतस्त्वमपि मे देहि स्वस्त्रीरत्नं जटाधर ॥१६॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य नन्दिना स प्रवेशितः । जगामोग्रसभां राहुर्विस्मयोऽद्भुतलोचनः ॥ १७ ॥ तत्र गत्वा शिवं साक्षाद्देवदेवं महाप्रभुम् । स्वतेजोध्वस्ततमसं भस्मलेपविराजितम् ॥ १८ ॥ महाराजोपचारेण विलसन्तं महाद्भुतम् । सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यभूषणैर्भूषितं हरम् ॥ १९ ॥ प्रणनाम च तं गर्वात्तत्तेजःक्रांतविग्रहः । निकटं गतवाञ्छंभोस्स दूतो राहुसंज्ञकः ॥२०॥ अथो तदग्र आसीनो वक्तुकामो हि सैंहिकः । त्र्यंबकं स तदा संज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ दैत्यपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेस्सदा । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ २२ ॥ राहुरुवाच । जलन्धरोऽब्धितनयस्सर्वदैत्यजनेश्वरः । त्रैलोक्यस्येश्वरस्सोऽधुनाभवत् सर्वाधिनायकः स दैत्यराजो बलवान्देवानामन्तकोपमः । योगिनं त्वां समुद्दिश्य स यदाह शृणुष्व तत् ॥ २४ ॥ महादिव्यप्रभावस्य तस्य दैत्यपतेः प्रभोः । सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां

निकालने वाली श्रेष्ठ शक्तिको भी मैं बलपूर्वक छीन लाया हूँ, अग्निने मुझे श्रेष्ठ और पवित्र दो दिव्य वस्त्र दिये हैं ॥ १५ ॥ हे योगीन्द्र ! इस प्रकार सभी रत्न मेरे घरमें दमक रहे हैं, अतः हे जटाधर ! तुम भी मुझे अपना स्त्री-रत्न देदो ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जलन्धरके इस वचनको सुन कर राहुके नेत्र विस्मयके कारण खिल उठे और शिवसभाके समीप पहुँचने पर नन्दीने उसका शिवसभामें प्रवेश कराया ॥ १७ ॥ तहाँ पहुँच कर उसने साक्षात् देवदेव महाप्रभुको देखा, उनकी कान्तिसे सारा अन्धकार दूर हो रहा था और उनके शरीर पर भस्म रम रही थी, महाराजोंकी सामग्रीसे वह दमक रहे थे, उन दिव्य भूषणोंसे भूषित सर्वाङ्गसुन्दर हरको राहुने गर्वपूर्वक प्रणाम किया, उस समय शिवकी कान्तिसे राहुका शरीर निष्प्रभ पड़ गया इस प्रकार वह राहु नामक दूत शम्भुके पास पहुँचा ॥ १८–२० ॥ तदनन्तर वह राहु जब कुछ कहनेकी इच्छासे उनके सामने बैठ गया, तब वह शम्भुका इशारा पाकर कहने लगा ॥ २१ ॥ राहुने कहा, कि—मैं दैत्य और सर्पोंसे सेवित त्रिलोकीनाथ जलन्धरका दूत हूँ और उनके भेजने पर आपके पास आया हूँ २२ समुद्रनन्दन जलन्धर सब दैत्योंके ईश्वर हैं, वह त्रिलोकीके ईश्वर होनेसे सब के स्वामी होगए हैं ॥ २३ ॥ वह बली दैत्यराज देवताओंके लिये कालरूप हैं, उन्होंने आप योगीसे जो बात कही है, उसको आप सुनिये ॥२४॥ हे वृषभध्वज ! उन महादिव्य प्रभाव वाले सर्वरत्नेश्वर प्रभु दैत्यपतिकी आज्ञाको आप

शृणु वृषध्वज ॥ २५ ॥ श्मशानवासिनो नित्यमस्थिमालाधरस्य च । दिगम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥२६॥ अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिता । तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥२७॥ मम वश्यास्त्रयो लोका भुंजेऽहं मखभागकान् । यानि सन्ति त्रिलोकेऽस्मिन रत्नानि मम सद्मनि ॥ २८ ॥ वयं रत्नभुजस्त्वं तु योगी खलु दिगम्बरः । स्वस्त्रीरत्नं देहि मह्यं राज्ञस्सुखकराः प्रजाः २९ सनत्कुमार उवाच । वदत्येवं तथा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः । अभवत् पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ ३० ॥ सिंहास्यप्रचलज्जिह्वस्सज्वालनयनो महान् । ऊर्द्ध्वकेशश्शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥ ३१ ॥ महातनुर्महाबाहुस्तालजंघो भयंकरः । अभिदुद्राव वेगेन राहुं स पुरुषो द्रुतम् ॥ ३२ ॥ स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः । अधावदतिवेगेन बहिस्स च दधार तम् ॥ ३३ ॥ राहुरुवाच । देवदेव महेशान पाहि मां शरणागतम् । सुरासुरैस्सदा वन्द्यः परमैश्वर्यवान् प्रभुः ॥३४॥ ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः । पुरुषोऽयं तवेशान सेवकोऽतिभयंकरः ३५

सुनिये ॥ २५ ॥ सदा श्मशानमें रहने वाले और हड्डियोंकी माला धारण करने वाले तुमसे दिगम्बरकी हिमवान्‌की शुभ पुत्री भार्या कैसे हो सकती है ॥ २६ ॥ मैं रत्नोंका स्वामी हूँ और वह स्त्रीरत्न कहलाती है, इस लिये वह तो मेरे ही योग्य है, तुमसे भिखमँगेके नहीं ॥२७॥ तीनों लोक मेरे वश में हैं और मैं यज्ञोंके भागोंको भोगता हूँ, त्रिलोकीमें जितने रत्न हैं, वे सब मेरे घरमें ही हैं ॥ २८ ॥ हम तो रत्नभोक्ता हैं और तू तो दिगम्बर योगी है, इस लिये अपने स्त्रीरत्नको मुझे दे दे, क्योंकि-प्रजाएँ राजाको सुख दिया ही करती हैं ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-राहु इस प्रकार कह ही रहा था, कि-शूलपाणि शंकरके भ्रूमध्यसे कड़ी बिजलीकी समान शब्द करने वाला एक रौद्र पुरुष प्रकट हुआ ॥ ३० ॥ उसका मुख सिंहकासा था, जीभ लपलपा रही थी, आँखोंमें आग बल रही थी, बाल ऊपरको खड़े हुए थे, शरीर सूखा हुआ था अतः वह दूसरा नृसिंहसा दीखता था ॥ ३१ ॥ उसका शरीर और भुजायें बड़ी थीं, जंघाएँ तालकीसी थीं, ऐसा वह भयंकर पुरुष राहुके ऊपर वेगसे झपटा ॥ ३२ ॥ उसको खानेके लिये आता देख कर राहु भयातुर होकर भागा परन्तु उसने बाहर जाकर उसको पकड़ लिया ॥३३॥ उस समय राहु विलाप करने लगा, कि-हे देवदेव महेशान ! मुझ शरणागतकी आप रक्षा करिये, देवता और असुर सदा आपकी वन्दना करते हैं, आप परम ऐश्वर्यवान् और प्रभु हैं ॥ ३४ ॥ हे महादेव ! हे ईशान ! आपका सेवक यह परम भयंकर पुरुष मुझ ब्राह्मणको खानेके लिये तयार है ॥ ३५ ॥ अतः हे

एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सलः। न खादेत यथायं मां नमस्तेऽस्तु मुहुर्मुहुः॥ सनत्कुमार उवाच। महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदा मुने। अब्रवीत् स्वगणं तं वै दीनानाथप्रियः प्रभुः॥ ३७॥ महादेव उवाच। प्रमुञ्च ब्राह्मणं दूतं राह्वाख्यं शरणागतम्। शरण्या रक्षणीया हि न दण्ड्या गणसत्तम॥ ३८॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्तो गिरिजेशेन सगणः करुणात्मना। राहुं तत्याज सहसा ब्राह्मणेति श्रुताक्षरः॥३९॥ राहुं त्यक्त्वाम्बरे सोऽथ पुरुषो दीनया गिरा। शिवोपकंठमागत्य महादेवं व्यजिज्ञपत्॥४०॥ पुरुष उवाच। देवदेव महादेव करुणाकर शंकर। त्याजितं मम भक्ष्यन्ते शरणागतवत्सल॥४१॥ क्षुधा मां बाधते स्वामिन्क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा। किं भक्ष्यं मम देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो॥४२। सनत्कुमार उवाच। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुरुषस्य महाप्रभुः। प्रत्युवाचाद्भुतोतिः स कौतुकी स्वहितंकरः ४३ महेश्वर उवाच। बुभुक्षा यदि तेऽतीव क्षुधा त्वां बाधते यदि। संभक्षयात्मनश्शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः॥४४॥ सनत्कुमार उवाच। स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषस्स्वकम्। हस्तपादोद्भवं मांसं शिरश्शेषोऽभवद्यथा॥ ४५॥ दृष्ट्वा शिरोवशेषं

शरणागतवत्सल! देवेश मेरी रक्षा करिये, यह मुझे न खा सके, मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥३६॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–हे मुने! दीन और अनाथोंके प्यारे प्रभु महादेवने उस ब्राह्मणके वचनको सुनकर अपने गण से कहा॥३७॥ महादेवजी बोले कि–हे गणश्रेष्ठ! यह राहु नाम वाला ब्राह्मण दूत अब शरणमें आगया है, अतः शरणागतोंको दण्ड न देकर उनकी रक्षा करनी चाहिये॥ ३८॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–शंकरने जब कृपा करके यह बात कही तब उस गणने ब्राह्मण—इन अक्षरोंको सुनते ही उसको छोड़ दिया॥ ३९॥ वह पुरुष राहुको आकाशमें छोड़ शिवके पास आ दीन वाणी में महादेवजीसे कहने लगा॥४०॥ पुरुषने कहा, कि–हे देवदेव महादेव करुणाकर शंकर! आपने शरणागतवत्सलताके कारण मेरा भोजन मुझसे छुड़वा दिया॥४१॥ हे स्वामिन्! भूख मुझे पीड़ा देरही है, मैं भूखसे क्षीण होरहा हूँ, हे देवेश! हे प्रभो! अब मेरा भक्ष्य क्या होगा, उसको आप बताइये।४२। सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उस पुरुषके वचनको सुन कर उन अद्भुत रक्षक कौतुकी और अपने भक्तोंका हित करने वाले शम्भुने उत्तर दिया॥ ४३॥ शम्भुने कहा, कि यदि तुझे कड़ाकेकी भूख लगी है और भूख तुझे पीड़ा देरही है, तो तू अपने हाथ पैरके मांसको ही शीघ्रतासे खा जा॥४४॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शिवके इस प्रकार आज्ञा देने पर वह पुरुष अपने आपे को खाने लगा और हाथ पैरके मांसको इतना खाया, कि शिर ही बाकी रह गया॥ ४५॥ उसको शिरमात्र ही बाकी रहा हुआ देख कर सदाशिव प्रसन्न

तु सुप्रसन्नस्सदाशिवः । पुरुषं भीमकर्माणं समुवाच सविस्मयः ॥ ४६ ॥ शिव उवाच । हे महागण धन्यस्त्वं मदाज्ञाप्रतिपालकः । सन्तुष्टश्चास्मि तेऽतीव कर्मणानेन सत्तम ॥४७॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारकस्सदा । महागणो महावीरस्सर्वदुष्टभयंकरः ॥ ४८ ॥ मत्प्रियस्त्वं मदर्चायां सदा पूज्यो हि मज्जनैः । त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियंकराः ॥ सनत्कुमार उवाच । इति शंभोर्वरं प्राप्य पुरुषः प्रजहर्ष सः । तदाप्रभृति देवेशद्वारे कीर्तिमुखः स्थितः ॥ ५० ॥ पूजनीयो विशेषेण स गणश्शिवपूजने । नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ ५१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरोपाख्याने दूतसम्वादो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ कथा ते श्राविताद्भुता । महाप्रभोश्शंकरस्य यत्र लीला च पावनी ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या कृपां कृत्वा ममोपरि । राहुर्मुक्तः कुत्र गतः पुरुषेण महामुने ॥२॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितमेधसः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्बर्बरस्थले । अतस्स बर्बरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ४ ॥ ततः स मन्यमाः-

---

हुए और विस्मित होकर उस भयंकर कर्म करने वाले पुरुषसे कहने लगे ४६ शिवजीने कहा, कि हे महागण ! तूने मेरी आज्ञाका पालन किया, इस लिये तू धन्य है, हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तेरे इस कर्मसे प्रसन्न होगया हूँ ॥ ४७ ॥ अतः तुम कीर्तिमुख नामक मेरे द्वारपाल बनो, तुम महागण महावीर और सकल दुष्टोंको भय देने वाले होगे ॥ ४८ ॥ तुम मेरे प्यारे हो मेरा पूजन करते समय मेरे भक्तोंको सदा तुम्हारा पूजन करना चाहिये, जो तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे मेरा पूजन नहीं कर सकेंगे ॥४९॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि इस प्रकार शंभुसे वर पाकर वह पुरुष प्रसन्न हुआ उस दिनसे वह कीर्तिमुख देवेशके द्वार पर ही खड़ा रहता है ॥ ५० ॥ शिवपूजनके समय उस गणकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये, जो पहिले उसका पूजन नहीं करेंगे, उनकी पूजा व्यर्थ जावेगी ॥ ५१ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ❀ ❀

व्यासजीने कहा, कि—हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने महाप्रभु शंकरकी पवित्र करने वाली अद्भुत कथा सुनाई ॥१॥ हे महामुने ! अब आप मेरे ऊपर कृपा कर राहु मुक्त होकर कहाँ गया इस कथाको सुनाइये ॥२॥ सूतजी कहते हैं, कि—परम बुद्धिमान् व्यासजीकी इस बातको सुन कर वह ब्रह्मपुत्र महामुनि प्रसन्न चित्तसे उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—उस गणने बर्बरस्थलमें राहुको छोड़ा था, इस लिये वह पृथिवीमें बर्बर नामसे प्रसिद्ध हुआ ४

नरस्त्वं पुनर्जनिमथाततः । गतगर्वो जगामाथ जलन्धरपुरं शनैः ॥ ५ ॥ जलन्धराय सोऽभ्येत्य सर्वमीशविचेष्टितम् । कथयामास तद्व्यासाद्व्यास दैत्येश्वराय वै ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच । जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः । बभूव बलवान्सिन्धुपुत्रो दैत्येन्द्रसत्तमः ॥ ७ ॥ ततः कोपपराधीनमानसो दैत्यसत्तमः । उद्योगे सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ८ ॥ जलन्धर उवाच । निर्गच्छन्त्वखिला दैत्याः कालनेमिमुखाः खलु । तथा शुम्भनिशुम्भाद्या वीरास्स्वबलसंयुताः ॥ ९ ॥ कोटिर्वीरकुलोत्पन्नाः कम्बुवंश्याश्च दौर्हृदाः । कालकाः कालकेयाश्च मौर्या धौम्रास्तथैव च ॥१०॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिस्सिंधुपुत्रः प्रतापवान् । निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥११॥ ततस्तस्याग्रतश्शुक्रो राहुश्छिन्नशिरोऽभवत् । मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ १२ ॥ व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः । जाता अशकुना भूरि महानिद्राविसूचकाः ॥१३॥ तस्योद्योगं तथा दृष्ट्वा गीर्वाणास्ते सवासवाः । अलक्षितास्तदा जग्मुः कैलासं शंकरालयम् ॥१४॥ तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा सुप्रणम्य सवासवाः । देवास्सर्वे नतस्कन्धाः करौ बद्ध्वा च तुष्टुवुः १५ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर । नमस्तेऽस्तु महेशान पाहि नश्शरणा-

उस समय राहु अपना पुनर्जन्म हुआ मान गर्वहीन हो, नम्रतापूर्वक धीरे धीरे जलन्धरपुरको चल दिया ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! तहाँ पहुँच कर उसने दैत्येश जलन्धरसे शिवजीकी सारी करनी संक्षेपसे वर्णन की ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इस वृत्तान्तको सुन सिंधुनन्दन दैत्येन्द्रसत्तम बलवान् जलन्धरके शरीरमें क्रोध व्याप गया ॥ ७ ॥ फिर कोपमें भरे हुए चित्त वाले दैत्यसत्तमने दैत्योंकी सब सेनाओंको तयार होनेका उपदेश दिया ॥ ८ ॥ जलन्धरने कहा, कि—कालनेमि आदि सकल दैत्य और शुम्भ निशुम्भ आदि वीर अपनी २ सेनाओंको लेकर निकलें ॥ ९ ॥ वीरकुलमें उत्पन्न हुए, कम्बुवंशी, दौर्हृद, कालक, कालकेय मौर्य और धौम्र करोड़ोंकी संख्यामें युद्ध करनेके लिये चलें १० असुरपति प्रतापवान् सिंधुपुत्र इस प्रकार आज्ञा देकर करोड़ों दैत्योंको साथ ले अपने नगरसे चल पड़ा ॥ ११ ॥ उस समय उसके आगे कटे हुए शिर वाला राहु चलने लगा, उसका मुकुट पृथिवी पर गिर पड़ा और वह स्वयं लड़खड़ाने लगा ॥ १२ ॥ आकाश वर्षा ऋतुकी समान बादलोंसे छागया, इस प्रकार महानिद्रा (मृत्यु) को सूचित करने वाले बहुतसे कुशकुन होने लगे ॥ १३ ॥ उसके उद्योगको देख कर इन्द्र आदि देवता गुप्तरूपसे शंकरके स्थान कैलास पर पहुँचे ॥ १४ ॥ तहाँ पहुँच उन्होंने शिवका दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया फिर इन्द्र आदि देवता कन्धोंको झुका हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥ देवताओंने कहा, कि–हे देवदेव महादेव करुणाकर महेशान शंकर ! हम शरणागतोंकी आप रक्षा करिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हम जलन्धरके उपद्रवसे बड़े

गतान् ॥ १६ ॥ विह्वलाः वयमत्युग्रं जलन्धरकृतात्प्रभो । उपद्रवात्सदेवेन्द्राः स्थानभ्रष्टाः क्षितिस्थिताः ॥ १७ ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां प्रभो । तस्मान्नो रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ १८ ॥ अस्माकं रक्षणार्थाय यत्पूर्वं गरुडध्वजः । नियोजितस्त्वया नाथ न क्षमस्सोऽद्य रक्षितुम् ॥ १९ ॥ तदधीनो गृहे तस्य तिष्ठत्यद्य मया सह । वयं च तत्र तिष्ठामस्तदाज्ञावशगास्सुराः ॥ २० ॥ अलक्षिता वयं चात्रागताश्शम्भो त्वदन्तिकम् । स आयाति त्वया कर्तुं रणं सिन्धुसुतो बली ॥ २१ ॥ अतस्स्वामिन्रणे त्वं तमविलम्बं जलन्धरम् । हन्तुमर्हसि सर्वज्ञ पाहि नश्शरणागतान् ॥ २२ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा ते सुरास्सर्वे प्रभुं नत्वा सवासवाः । पादौ निरीक्ष्य सन्तस्थुर्महेशस्य विनम्रकाः ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः । द्रुतं विष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् । ईश्वर उवाच । हृषीकेश महाविष्णो देवाश्चात्र समागताः । जलन्धरकृतापीडाश्शरणं मेऽतिविह्वलाः ॥ २५ ॥ जलन्धरः कथं विष्णो सङ्गरे न हतस्त्वया । तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ २६ ॥ मया नियोजितस्त्वं हि साधुसंरक्षणाय च । निग्रहाय खलानां च स्वतन्त्रेण विहारिणा ॥ २७ ॥ सन

विह्वल होरहे हैं, उसने इन्द्र तकको भी स्थानसे हटा दिया है, अतः हम पृथिवी पर मारे मारे फिरते हैं ॥ १७ ॥ हे स्वामिन् ! आप देवताओंकी इस आपत्ति को क्यों नहीं जानते, अतः हमारी रक्षाके लिये आप इस समुद्रनन्दनका वध करिये ॥ १८ ॥ हे नाथ ! हमारी रक्षाके लिये, आपने जिन गरुडध्वजको नियत किया था, वह इस समय हमारी रक्षा नहीं कर सके ॥१९॥ वह तो उस दैत्यके वशमें हो लक्ष्मीके साथ उसके घरमें ही रह रहे हैं और हम भी उनकी आज्ञामें चलनेके कारण जलन्धरपुरमें ही पड़े हुए हैं ॥ २० ॥ हे शम्भो ! हम छिप कर यहाँ आपके पास आये हैं, वह बलवान् सिंधुनन्दन आपसे भी युद्ध करनेके लिये यहाँ को आरहा है ॥२१॥ अतः हे सर्वज्ञ स्वामिन् ! आप शीघ्र ही उस जलन्धरका संहार कर हम शरणागतोंकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इस प्रकार कह कर इन्द्र आदि सकल देवताओंने शंकर के चरणोंमें प्रणाम किया, फिर उनकी ओर देखते हुए नम्रतापूर्वक खड़े हो गए ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—देवताओंके इस वचनको सुन कर शंकरने शीघ्र ही विष्णुको बुलाया और उनसे हँस कर कहने लगे ॥ २४ ॥ ईश्वरने कहा, कि—हे महाविष्णु हृषीकेश ! ये देवता जलन्धरके पीड़ा देनेसे अतिविह्वल हो मेरी शरणमें आये हैं ॥ २५ ॥ हे विष्णो ! तुमने संग्राममें जलन्धरको मार क्यों न डाला और अपने वैकुण्ठको त्याग कर तुम उसके द्वार पर क्यों चले गए हो ? ।२६। मैं स्वतंत्र हूँ मैंने अपने आप विहार करनेकी इच्छासे तुमको साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंको दण्ड देनेके काम पर नियुक्त

त्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं गरुडध्वजः । प्रत्युवाच विनीतात्मा नतकस्साञ्जलिर्हरिः ॥ २८ ॥ विष्णुरुवाच । तवांशसम्भवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः । मया न निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥२९। महाबलो महावीरो जेयस्सर्वदिवौकसाम् । अन्येषां चापि देवेश सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ ३० ॥ मया कृतो रणस्तेन चिरं देवान्वितेन वै । मदुपायो न प्रवृत्तस्तस्मिन्दानवपुंगवे ॥३१॥ तत्पराक्रमतस्तुष्टो वरं ब्रूहीत्यहं खलु । इति मद्वचनं श्रुत्वा स वव्रे वरमुत्तमम् ॥३२॥ मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे ससुरो वस । मदधीनो महाविष्णो इत्यहं तद्गृहं गतः ॥३३॥ सनत्कुमार उवाच । इति विष्णोर्वचश्श्रुत्वा शंकरस्य महेश्वरः । विहस्योवाच सुप्रीतस्सदयो भक्तवत्सलः ॥ ३४ ॥ महेश्वर उवाच । हे विष्णो सुरवर्य त्वं शृणु मद्वाक्यमादरात् । जलन्धरं महादैत्यं हनिष्यामि न संशयः ॥ ३५ ॥ स्वस्थानं गच्छ निर्भीतो देवा गच्छन्त्वपि ध्रुवम् । निर्भया वीतसन्देहा हतं मत्वाऽसुराधिपम् ॥३६॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा महेशस्य वचनं स रमापतिः । सनिर्जरो जगामाशु स्वस्थानं गतसंशयः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यास

किया था ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–महेशके इस वचनको सुनकर विष्णु शिर झुका हाथ जोड़ विनम्र चित्तसे उत्तर देने लगे ॥ २८ ॥ विष्णुने कहा, कि—वह दैत्य आपके अंशसे उत्पन्न हुआ है और लक्ष्मीका भाई है, इस लिये मैंने उसको युद्धमें नहीं मारा, आप उस दानवका संहार करें ।२९। हे देवेश ! वह दैत्य महाबली है, महावीर है, उसने सब देवताओंको जीत लिया है तथा वह औरोंको भी जीत सकता है, यह बात मैं आपसे सत्य कहता हूँ ३० मैंने देवताओंको साथमें लेकर बहुत समय तक उससे युद्ध किया था, परन्तु उस दानवश्रेष्ठ पर मेरा एक भी उपाय न चला ॥ ३१ ॥ तब मैंने उसके पराक्रमसे संतुष्ट होकर कहा, कि–वर माँग ! मेरे इस वचनको सुन कर उसने उत्तम वर माँगा, कि—॥ ३२ ॥ हे महाविष्णो ! तुम मेरी बहिन और देवताओं सहित मेरे अधीन होकर मेरे घरमें रहो, इस कारण मैं उसके घर चला गया हूँ ॥ ३३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—विष्णुके इस वचनको सुन कर भक्तवत्सल महेश्वर शंकर दया कर प्रीतिपूर्वक हँस कर कहने लगे ।३४। महेश्वरने कहा, कि–हे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णो ! तुम मेरे वचनको आदरपूर्वक सुनो, कि–मैं महादैत्य जलन्धरको अवश्य मारूँगा ॥ ३५ ॥ अब तुम निडर होकर अपने स्थान पर जाओ और देवता भी जलन्धरको मरा हुआ समझ कर निर्भय और सन्देहरहित होकर अपने स्थानको प्रस्थान करें ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—महेशके इस वचनको सुन कर रमापतिको कुछ सन्देह नहीं रहा और वह देवताओंको साथमें लेकर अपने स्थानको चले गए३७ हे व्यासजी ! इसी समय वह परमपराक्रमी दैत्येन्द्र भी तयार असुरोंको साथमें

स दैत्येन्द्रोऽतिविक्रमः । सन्नद्धैरसुरैस्सार्द्धं शैलप्रान्तं ययौ बली ॥ ३८ ॥ कैलासमवरुध्याथ महत्या सेनया युतः । संतस्थौ कालसंकाशः कुर्वन्सिंहरवं महा ॥ ३९ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा दैत्यनादसमुद्भवम् । चुक्रोधातिमहेशानो महालीलः खलान्तकः ॥ ४० ॥ समादिदेश संख्याय स्वगणान्स महाबलान् । नंद्यादिकान्महादेवो महोतिः कौतुकी हरः ॥ नन्दीभमुखसेनानीमुखास्सर्वे शिवाज्ञया । गणाश्च समनह्यन्त युद्धायातित्वरान्विताः ॥४२॥ अवतेरुर्गणास्सर्वे कैलासात्क्रोधदुर्मदाः । वल्गन्तो रणशब्दांश्च महावीरा रणाय हि ॥४३॥ ततस्समभवद् युद्धं कैलासोपत्यकासु वै । प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥४४॥ भेरीमृदंगशंखौघैर्निस्स्वानैर्वीरहर्षणैः । गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥ ४५ ॥ शक्तितोमरबाणौघैर्मुसलैः प्राशपट्टिशैः । व्यराजत नभः पूर्णं मुक्ताभिरिव संवृतम् ॥४६॥ निहतैरिव नागाश्वैः पत्तिभिर्भूर्व्यराजत । वज्राहतैः पर्वतेन्द्रैः पूर्वमासीत्सुसंवृता ॥४७॥ प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा । वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याभवत्तदा ॥ ४८ ॥ प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवस्सम जीवयत् । युद्धे पुनः पुनश्चैव मृतसञ्जीवनीबलात् ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा व्याकुलितास्तांस्तु गणास्सर्वे भयार्दिताः । शशंसुर्देवदेवाय सर्वं शुक्रविचेष्टितम् ॥५०॥

लेकर पर्वतकी तलैटीमें आपहुँचा ॥ ३८ ॥ और बड़ी भारी सेनासे कैलासको रोक, वह कालकी समान असुर सिंहकी समान दहाड़ता हुआ खड़ा होगया ३९ जब बड़ी लीला करने वाले दुष्टोंके नाशक महेशने दैत्यके नादसे उत्पन्न हुए कोलाहलको सुना तब वह बड़े कुपित हुए ॥ ४० ॥ फिर परमरक्षक कौतुकी हरने अपने नन्दी आदि बड़े २ बलवान् गणोंको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ।४१। शिवकी आज्ञा पाते ही, नन्दी, गणेश, स्वामी कार्तिकेय आदि बड़े २ गण युद्ध करनेके लिये तयार होगए ॥ ४२ ॥ क्रोधदुर्मद वे महावीर गण युद्ध करनेके लिये रण-शब्द करते हुए कैलाससे उतरने लगे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर कैलासकी तलैटियोंमें शिवगणोंका और दैत्योंका अस्त्र शस्त्रोंसे सङ्कुल घोर युद्ध होने लगा ॥ ४४ ॥ उस समय भेरी मृदङ्ग और शङ्खोंके, वीरोंको हर्षित करने वाले शब्दोंसे और हाथी घोड़े तथा रथके शब्दोंसे झन्नाती हुई पृथ्वी काँप उठी ४५ शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, प्राश, पट्टिश आदिसे व्याप्त पृथ्वी मोतियोंसे गछे हुए आकाशकी समान शोभा पाने लगी ॥ ४६ ॥ मरे हुए हाथी घोड़े और पैदलोंसे भरी हुई पृथ्वी, वज्रसे टूटे हुए पर्वतोंसे गछी हुईसी दीखने लगी ४७ शिवगणोंसे मारे हुए दैत्योंकी और दैत्योंके मारे हुए गणोंकी चरबी रक्त और मांसकी कीचसे पृथ्वी अगम्य होगई ॥ ४८ ॥ उस समय शिवगणोंसे मारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्य मृतसञ्जीवनी विद्याके बलसे बारम्बार जीवित कर देते थे ॥ ४९ ॥ उनको बारम्बार जीवित होते देख गण भयभीत और व्याकुल होगए और उन्होंने देवदेव शिवके पास जा उनसे शुक्रकी

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रश्चकार क्रोधमुल्बणम् । भयङ्करोऽतिरौद्रश्च बभूव प्रज्वलन्दिशः ।५१। अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीवभीषणा । तालजङ्घा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ।५२। सा युद्धभूमिं तरसाससाद मुनिसत्तम । विचचार महाभीमा भक्षयन्ती महासुरान् ।५३। अथ सा रणमध्ये हि जगाम गतभीर्द्रुतम् । यत्रास्ते संवृतो दैत्यवरेन्द्रैस्स हि भार्गवः ५४ स्वतेजसा नभो व्याप्य भूमिं कृत्वा च सा मुने । भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥ ५५ ॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणास्तथा । प्रम्लानवदना युद्धान्निर्जग्मुर्युद्धदुर्मदाः ॥५६॥ अथोऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता । वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥ ५७ ॥ भग्नां गणभयाद्दैत्यसेनां दृष्ट्वातिमर्षिताः । निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च चुक्रुधुः ॥५८॥ त्रयस्ते वरयामासुर्गणसेनां महाबलाः । मुञ्चन्तश्शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥ ५९ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः । रुरुधुः खं दिशस्सर्वा गणसेनामकम्पयन् ॥ ६० । गणाश्शरशतैर्भिन्नारुधिरासारवर्षिणः । वसन्तकिंशुकाभासा न प्राजानन्हि किञ्चन ॥ ६१ ॥ ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य नन्द्यादि-

करनी वर्णन की ॥ ५० ॥ इस बातको सुनकर भगवान् रुद्रने बड़ा भयंकर क्रोध किया, तब उनका रूप भयंकर और परम रौद्र होगया उससे दिशाएँ जलनेसी लगीं ॥ ५१ ॥ उस समय रुद्रके मुखसे एक परम भयंकर कृत्या प्रकट हुई, उसकी जाँघें ताड़की सी थीं, मुख गुफाकासा था और उसके स्तनों के टकरानेसे पेड़ टूटे पड़ते थे ॥ ५२ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह शीघ्र ही युद्ध भूमिमें पहुँच गई फिर वह भयंकर कृत्या बड़े २ असुरोंका भक्षण करती हुई रणमें विचरण करने लगी ॥ ५३ ॥ फिर वह निर्भय हो रणके मध्यमें श्रेष्ठ २ दैत्योंसे घिरे हुए शुक्राचार्यके पास फुर्तीसे जा पहुँची ॥ ५४ ॥ और हे मुने ! अपने तेजसे आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर शुक्राचार्यको अपनी योनिमें धर आकाशमें ही अन्तर्धान होगई ॥५५॥ शुक्राचार्यको कैद हुआ देखकर दानवों की युद्धदुर्मदसेनाओंके मुख उतर गए और वे युद्धक्षेत्रसे हटने लगे ॥ ५६ ॥ जैसे आँधीसे उड़कर तिनके तित्तर बित्तर होते हुए दीखते हैं तैसे गणोंसे भयभीत हुई दैत्योंकी सेनामें भागी पड़ गई ॥ ५७ ॥ गणोंके भयसे दैत्योंकी सेनामें भग्गी पड़ी हुई देख कर असहनशील शुम्भ निशुम्भ और कालनेमि नामक असुरसेनापतियोंको क्रोध आगया ॥ ५८ ॥ वे तीनों महाबली वर्षाकालके मेघोंकी समान शरवर्षा कर गणोंकी सेनाको हराने लगे ॥ ५९ ॥ उन दैत्योंके बाण टीड़ीदलकी समान आकाश और सकल दिशाओंको रोक कर गणसेनाको कँपाने लगे ॥६०॥ उस समय सैंकड़ों बाणोंसे बिंध जानेके कारण गणोंके शरीरमेंसे रुधिरके फुहारे छूटने लगे और वे टेसूके फूलोंकी समान दीखने लगे और कुछ नहीं प्रतीत होते थे ॥६१॥ तब अपने सेनादलको भग्न

लम्बोदरकार्तिकेयाः । त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षणास्ते ॥ ६२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने सामान्यागणासुरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सनत्कुमार उवाच । ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् । अमर्षादभ्यधावंत द्वंद्वयुद्धाय दानवाः ॥ १ ॥ नन्दिनं कालनेमिश्च शुंभो लंबोदरं तथा । निशुंभः षण्मुख देवमभ्यधावत शंकितः ॥ २ ॥ निशुंभः कार्तिकेयस्य मयूरं पंचभिश्शरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्छितस्स पपात ह ॥ ३ ॥ ततः शक्तिधरः क्रुद्धो बाणैः पंचभिरेव च । विव्याध स्यंदने तस्य हयान्यन्तारमेव च ॥ ४ ॥ शरेणान्येन तीक्ष्णेन निशुंभं देववैरिणम् । जघान तरसा वीरो जगर्ज रणदुर्मदः ॥ ५ ॥ असुरोऽपि निशुम्भाख्यो महावीरोऽतिवीर्यवान् । जघान कार्तिकेयं तं गर्जंतं स्वेषुणा रणे ॥ ६ ॥ तावच्छक्तिं कार्तिकेयो यावज्जग्राह रोषतः । तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या समपातयत् ॥ ७ ॥ एवं बभूव तत्रैव कार्तिकेयनिशुम्भयोः । आहवो हि महान्व्यास वीरशब्दं प्रगर्जतोः ॥ ८ ॥ ततो नन्दीश्वरो बाणैः कालनेमिमविध्यत । सप्तभिश्च हयान्केतुं रथं सारथिमाच्छिनत् ॥ ९ ॥ कालनेमिश्च संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । स्वशरासननिर्मुक्तैर्महातीक्ष्णैश्शिलीमुखैः ॥ १० ॥ अथ नन्दीश्वरो

हुआ देख कर असहनशील नन्दी गणेश और कार्तिकेय फुर्तीके साथ श्रेष्ठ २ दैत्योंको हटाने लगे ॥ ६२ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ❀

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-जब दैत्योंने गणाधिपति नन्दी गणेश और कार्तिकेयको देखा तब वे क्रोध कर उनसे द्वन्द्व युद्ध करनेके लिये चल पड़े १ कालनेमि नन्दीसे भिड़ गया, शुम्भ गणेशजीसे अड़ पड़ा और निशुम्भ मनमें शंका रखता हुआ स्वामी कार्तिकेय पर झपटा ॥ २ ॥ तदनन्तर निशुम्भने कार्तिकेयके मोरकी छातीमें पाँच बाण जोरसे मारे तब वह मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥ ३ ॥ तब कार्तिकेयने क्रोधमें भर कर उसके घोड़ोंको और रथमें बैठे हुए सारथीको पाँच बाणोंसे घायल कर डाला ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन्होंने एक और तीखा बाण लेकर देवताओंके वैरी निशुम्भके मारा और रणदुर्मद वीर कार्तिकेय गर्ज उठे, तब महावीर्यवान् अतिबली निशुम्भने भी गरजते हुए स्वामी कार्तिकेयके बाण मारा ॥५॥६॥ तदनन्तर जब तक कार्तिकेय रोषमें भर कर शक्तिको उठा रहे थे, कि-निशुम्भने वेगके साथ अपनी शक्तिसे उसको गिरा दिया ॥ ७ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार वीर शब्दोंमें गर्जना करते हुए कार्तिकेय और निशुम्भमें बड़ा युद्ध होने लगा ॥८॥ दूसरी ओर नन्दीश्वरने सात बाणोंसे कालनेमिको बींधा फिर उसके घोड़े रथ और सारथिको भी काट डाला ॥९ ॥ तदनन्तर कालनेमिने क्रोधमें भर कर अपने धनुषसे तीक्ष्ण बाण छोड़ कर नन्दीके धनुषको काट डाला ॥ १० ॥ तब वीर नन्दीश्वरने उस

वीरः कालनेमिं महासुरम् । तमपास्य च शूलेन वक्षस्यभ्यहनद् दृढम् ॥११॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेः शिखरमुत्पाट्य नन्दिनं समताडयत् ॥१२॥ अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ । युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥१३॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा । सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले १४ ततोऽतिक्रुद्धश्शुम्भोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम् । मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥१५॥ मूषकश्शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः । लम्बोदरश्चापतितः पदातिरभवत्स हि ॥१६॥ ततो लम्बोदरश्शुम्भं हत्वा परशुना हृदि । अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुरोह सः ॥१७॥ समरायोद्यतश्चाभूत्पुनर्गजमुखो विभुः । प्रहस्याजघ्नतुः क्रोधात्तोत्रेणैव महाद्विपम् ॥१८॥ कालनेमिर्निशुम्भश्च ह्युभौ लंबोदरं शरैः । युगपच्चघ्नतुः क्रोधादाशीविषसमैर्द्रुतम् ॥१९॥ तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः । अभ्यधावत वेगेन कोटिभूतयुतस्तथा ॥२०॥ कूष्मांडा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः । पिशाचा डाकिनीसंघा गणाश्चापि समं ययुः ॥२१॥ ततः किलकिलाशब्दैस्सिंहनादैस्सघर्घरैः । विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकंपत ॥ २२ ॥ ततो भूताः प्रधावंतो भक्षयंति स्म दानवान् । उत्पत्य

धनुषको दूर फेंक कर महासुर कालनेमिकी छातीमें जोरसे शूल मारा ॥११॥ शूलसे उसका हृदय घायल होगया, उसके घोड़े और सारथि मारे गए थे अतः उसने पर्वतका शिखर उठा कर नन्दी पर दे मारा ॥१२॥ उधर रथ और चूहे पर चढ़ेहुए शुम्भ और गणेशने बाणोंसे युद्ध कर परस्परको घायल कर डाला १३ तदनन्तर गणेशने शुम्भके हृदयमें एक बाण मारा और तीन बाण मार कर सारथिको पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१४॥ तब शुम्भ भी बड़े भारी क्रोधमें भर बड़ी भारी बाणोंकी बौछारसे गणेशको घायल कर और चूहेको तीन बाणोंसे बींध कर मेघकी समान गर्जना करने लगा ॥ १५ ॥ बाणोंसे अङ्गोंके घायल होने पर मूषकको बड़ी वेदना हुई अतः वह काँप उठा और लम्बोदर पृथ्वी पर आपड़े और पैदल होगए ॥ १६ ॥ तब लम्बोदरने शुम्भके हृदयमें फरसा मार कर उसको भूमिमें गिरा दिया और चूहे पर चढ़ बैठे ॥१७॥ फिर विभु गजवदन समरके लिये उद्यत होगए, तदनन्तर कालनेमि और निशुम्भ हँस कर जिस प्रकार हाथीको कोड़ोंसे पीटा जाय इस प्रकार लम्बोदरको सर्पकी समान बाणोंसे मारने लगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ गणेशको पीड़ित देख कर महाबली वीरभद्र करोड़ों भूतोंको साथमें लेकर दौड़ा ॥२०॥ तब कूष्माण्ड, भैरव, बेताल योगिनियोंके झुण्ड, पिशाच, डाकिनियोंके झुण्ड और बहुतसे गण भी साथमें आगए ॥ २१ ॥ उस समय किलकिल शब्दोंसे, घर्घर शब्दोंके साथ होते हुए सिंहनादोंसे और डमरुओंके शब्दसे गूँजती हुई पृथ्वी काँप उठी ॥२२॥ तब भूत दौड़ कर दानवोंको खाने लगे और रणाङ्गणमें उछल कर दानवोंको

पातयन्ति स्म ननृतुश्च रणांगणे ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यासाभूतां नन्दी गुहश्च तौ । उत्थितावाप्तसंज्ञौ हि जगर्जतुरलं रणे ॥२४॥ स नन्दी कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ । जघ्नतुश्च रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥ २५ ॥ छिन्नैर्भिन्नैर्हतैर्दैत्यैः पातितैर्भक्षितैस्तथा । व्याकुला साभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥२६॥ एवं नन्दी कार्तिकेयो विकटश्च प्रतापवान् । वीरभद्रो गणाश्चान्ये जगर्जुस्समरेऽधिकम् ॥२७॥ निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ सिन्धुपुत्रस्य तौ तथा । कालनेमिर्महादैत्योऽसुराश्चान्ये पराजिताः ॥ २८ ॥ प्रविध्वस्तां ततस्सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः । रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥२९॥ ततः पराजिता दैत्या व्यभूवन्महोत्सवाः । जगर्जुरधिकं व्यास समरायोद्यतास्तदा ॥ ३० ॥ सर्वे रुद्रगणाश्चापि जगर्जुर्जयशालिनः । नन्दि-कार्तिकदंत्यास्यवीरभद्रादिका मुने ॥३१॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादशंखभेरीरवस्तथा । अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तथा ॥ ३२ ॥ जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव । द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥३३॥ शैलादिं पंचभिर्विद्ध्वा गणेशं पंच-भिश्शरैः । वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥ ३४ ॥ कार्तिकेयस्ततो दैत्यं

गिराने लगे और नाचने लगे ॥ २३ ॥ हे व्यासजी ! इसी समय नन्दी और कार्तिकेय होशमें आकर उठ बैठे और युद्धभूमिमें गर्जना करने लगे ॥ २४ ॥ फिर नन्दी और कार्तिकेय फुर्तीके साथ युद्धभूमिमें आ अनवरत बाणवर्षा कर दैत्योंको मारने लगे ॥ २५ ॥ दैत्योंके छिन्न भिन्न होने पर, मारे जाने पर, गिराये जाने पर और खाये जाने पर वह सेना व्याकुल होगई उसके सैनिकों का मुख उतर गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार नन्दी, कार्तिकेय, प्रतापी गणेश, वीरभद्र तथा दूसरे गण समरमें बड़ी गर्जना करने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार सिन्धुनन्दनके सेनापति शुम्भ निशुम्भ और कालनेमि तथा दूसरे असुर भी पराजित होगए ॥ २८ ॥ अपनी सेनाको धुँगली हुई देख कर बलवान् सिंधु-नन्दन बहुतसी झण्डियों वाले रथमें बैठ कर गणों पर झपटा ॥ २९ ॥ हे व्यासजी ! उस समय हारे हुए दैत्योंमें भी बड़ा उत्साह फैल गया और वे समरके लिये उद्यत होकर बड़ी गर्जना करने लगे ॥ ३० ॥ हे मुने ! उधर नन्दी, कार्तिकेय, गणेश, वीरभद्र आदि विजयी रुद्रगण भी गर्जना करने लगे ३१ दोनों सेनाओंमें हाथी घोड़े और रथोंका शब्द, शङ्ख और भेरीका शब्द तथा सिंहनाद होने लगा ॥ ३२ ॥ उस समय पालेकी समान जलन्धरके बाणोंसे आकाश और पृथ्वीका बीचका भाग भर गया ॥ ३३ ॥ उसने स्वामी कार्ति-केयको पाँच बाणोंसे घायल किया, गणेशके भी पाँच बाण मारे, वीरभद्रके भी बीस बाण मारे और मेघकी समान स्वरमें गर्जना करने लगा ॥ ३४ ॥ तब

शक्त्या विव्याध सत्वरम् । जलन्धरं महावीरो रुद्रपुत्रो ननाद च ।३५॥ स घूर्णनयनो दैत्यशक्तिनिर्भिन्नदेहकः । पपात भूमौ त्वरितमुदतिष्ठन्महाबलः ॥३६। ततः क्रोधपरीता मा कार्तिकेयं जलन्धरः । गदया ताडयामास हृदये दैत्यपुंगवः ॥ ३७ ॥ गदाप्रभावं सफलं दर्शयञ्छंकरात्मजः । विधिदत्तवराद् व्यास स तूर्णं भूतलेऽपतत् तथैव नन्दी ह्यपतद्भूतले गदया हतः । महावीरोऽपि रिपुहा किंचिद्व्याकुलमानसः ततो गणेश्वरः क्रुद्धस्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । संप्राप्यातिबलो दैत्यगदां परशुनाच्छिनत् ॥ ४० ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् । सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥४१॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रश्शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् । गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥ ४२ ॥ अभ्यगादथ वेगेन स दैत्येन्द्रो महाबलः । विगणय्य हृदा तं वै वीरभद्रं रुषान्वितः ॥ ४३ ॥ वीरभद्रं जघानाशु तीक्ष्णेनाशीविषेण तम् । ननाद च महावीरो दैत्यराजो जलन्धरः ॥४४॥ वीरभद्रोऽपि संक्रुद्धस्सितधारेण चेषुणा । चिच्छेद तच्छरं चैव तं विव्याध महेषुणा ॥ ४५ ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् । नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च चिरं वीरवरोत्तमौ ॥४६॥

महावीर रुद्रपुत्र कार्तिकेयने जलन्धरको घायल कर डाला और गर्जना करने लगे ॥ ३५ ॥ शक्तिसे देह घायल होनेसे दैत्यके नेत्र घूम गए और वह भूमि में गिर पड़ा फिर वह महाबली शीघ्र ही भूमि परसे उठ बैठा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए दैत्यपुङ्गव जलन्धरने कार्तिकेयके हृदयमें गदा मारी ३७ हे व्यासजी ! उस समय ब्रह्माजीके वरदानके कारण गदाके प्रभावकी सफलता को दिखानेके लिये शङ्करपुत्र शीघ्र ही पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार शत्रुघ्न महावीर नन्दी भी गदासे पिट, हृदयमें व्याकुल हो भूतल पर गिर पड़े ३९ तदनन्तर गणपतिने क्रोधमें भर कर शिवके चरणकमलोंका स्मरण किया, फिर उन अतिबलीने दैत्यके समीप पहुँच फरसेसे उसकी गदाको काट डाला ।४०। तदनन्तर वीरभद्रने दानवकी छातीको तीन बाणोंसे घायल कर दिया फिर सात बाणोंसे घोड़े पताका और छत्रको काट डाला ॥ ४१ ॥ तदनन्तर दैत्येन्द्रने क्रोधमें भर कर दारुण शक्ति उठाकर गणेशके मारी और दूसरे रथ पर सवार होगया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर महाबली दैत्यराज अपने हृदयमें वीरभद्रको कुछ न समझ उन पर क्रोधमें भर कर दौड़ा ॥ ४३ ॥ और वीरभद्र पर एक सर्पकी समान तीखा बाण छोड़ कर महावीर दैत्यराज जलन्धर गर्जना करने लगा ४४ तब वीरभद्रने भी क्रोधमें भर कर तीखी धार वाले बाणसे उस बाणको काट डाला और उस दैत्यको भी घायल किया ॥ ४५ ॥ फिर वे सूर्यकी समान प्रतापी वीरवर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे चिरकाल तक युद्ध करते रहे ४६ तदनन्तर वीरभद्रने उसके घोड़ोंको बाणोंसे गिरा दिया, धनुषको काट डाला

वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् । धनुश्चिच्छेद रथिनः पताकां चापि वेगतः अथो स दैत्यराजो हि पुप्लुवे परिघायुधः । वीरभद्रोपकंठं स द्रुतमाप महाबलः ॥ परिघेणातिमहता वीरभद्रं जघान ह । महाबलोऽब्धितनयो मूर्ध्नि वीरो जगर्ज च ॥ ४९ ॥ परिघेणातिमहता भिन्नमूर्द्धा गणाधिपः । वीरभद्रः पपातोर्व्यां मुमोच रुधिरं बहु ॥ ५० ॥ पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् । अपागच्छन् रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः । निजपार्श्वस्थितान् वीरानपृच्छद्गणसत्तमान् ॥ ५२ ॥ शंकर उवाच । किमर्थं मद्गणानां हि महाकोलाहलोऽभवत् । विचार्यतां महावीराश्शांतिः कार्या मया ध्रुवम् ॥ इति यावत्स देवेशो गणान्पप्रच्छ सादरम् । तावद्गणवरास्ते हि समायाता प्रभुं प्रति ॥ ५४ ॥ तान्दृष्ट्वा विकलान् रुद्रः पप्रच्छ कुशलं प्रभुः । यथावत्ते गणा वृत्तं समाचख्युश्च विस्तरात् ॥५५॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः । अभयं दत्तवांस्तेभ्यो महोत्साहं प्रवर्द्धयन् ॥ ५६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरोपाख्याने विशेषयुद्धवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथ वीरगणै रुद्रो रौद्ररूपो महाप्रभुः । अभ्यगाद् वृष-

---

और वेगपूर्वक पताकाको भी काट डाला ॥ ४७ ॥ तब वह महाबली दैत्यराज हाथमें परिघको लेकर उछला और शीघ्र ही वीरभद्रके समीप पहुँच गया ।४८। फिर उस महाबली वीर समुद्रनन्दनने उस बड़े भारी परिघको वीरभद्रके शिर पर मारा और गर्जना करने लगा ॥ ४९ ॥ उस बड़े भारी परिघसे गणराज वीरभद्रका शिर फट गया और वह बहुतसा रुधिर बहाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ५० ॥ वीरभद्रको गिरा हुआ देख कर रुद्रके गणोंमें भय छागया और वह रणको छोड़ कर महादेवको पुकारते हुए भाग चले ॥५१ ॥ उधर चन्द्रशेखर शिवने भी गणोंके कोलाहलको सुन कर अपने समीप खड़े हुए श्रेष्ठ २ गणोंसे बूझा ॥ ५२ ॥ शंकरने कहा, कि-हे महावीरो ! मेरे गणोंमें यह बड़ा भारी कोलाहल क्यों होरहा है, इसका विचार करो, मैं इसको अवश्य शान्त करूँगा ॥ ५३ ॥ वे इस प्रकार गणोंसे आदरपूर्वक बूझ रहे थे, कि-वे श्रेष्ठ गण भी अपने स्वामीके पास आपहुँचे ॥ ५४ ॥ उनको विकल देख कर प्रभु रुद्रने उनसे कुशल समाचार बूझा, तब उन गणोंने सम्पूर्ण वृत्तान्त यथावत् सुना दिया ॥५५॥ इस घटनाको सुन कर महालीला करने वाले भगवान् रुद्रने उनको अभय देते हुए उनका उत्साह बढ़ाया ॥५६॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-तदनन्तर रौद्ररूपी महाप्रभु रुद्र बैल पर चढ़ वीरगणोंके साथ संग्राममें मुस्कुराते हुए पहुँच गए ॥ १ ॥ जिन शिवगणों

मारूढस्संग्रामं प्रहसन्निव ॥ १ ॥ रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः । निवृत्तास्संगरे रौद्रा ये हि पूर्वं पराजिताः ॥२॥ वीरशब्दं च कुर्वन्तस्तेऽप्यन्ये शांकरा गणाः । सोत्साहास्सायुधा दैत्यान्निजघ्नुश्शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ दैत्या हि भीषणं रुद्रं सर्वे दृष्ट्वा विदुद्रुवुः । शांकरं पुरुषं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥ ४ ॥ अथो जलन्धरो दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्य संगरे । अभ्यधावत्स चंडीशं मुञ्चन्बाणान्सहस्रशः ॥५॥ निशुम्भशुम्भप्रमुखा दैत्येन्द्राश्च सहस्रशः । अभिजग्मुश्शिवं वेगात्क्रोधात्संदष्टच्छदाः कालनेमिस्तथा वीरः खड्गरोमा बलाहकः । घस्मरश्च प्रचंडश्चापरे चापि शिवं ययुः ॥ ७ ॥ बाणैस्संछादयामासुर्द्रुतं रुद्रगणांश्च ते । अंगानि चिच्छिदुर्वीरा शुम्भाद्या निखिला मुने ॥८॥ बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं हरः । तद्बाणजालमाच्छिद्य बाणैराववृते नभः ॥ ९ ॥ दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा । प्रचंडबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥ १० ॥ खड्गरोमशिरः कायात्तथा परशुनाच्छिनत् । बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद् द्विधा ॥ ११ ॥ स बद्ध्वा घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि । महावीरं प्रचण्डं च चकर्त्त त्रिशिखेन ह ॥ १२ ॥ वृषभेण हताः केचित्केचिद्बाणैर्निपातिताः । न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिता

का पहिले पराजय होगया था, वे गण भी रुद्रको आते देख सिंहनाद करते हुए फिर रणभूमिमें लौट आये ॥ २ ॥ शंकरके वे गण तथा दूसरे और गण भी हर्षमें भर दैत्योंको बाण वर्षा कर मारने लगे ॥ ३ ॥ इधर भीषण रुद्रको देख दैत्य भी, शिवभक्तका दर्शन पाने पर भागने वाले पापोंकी समान भागने लगे ॥ ४ ॥ तब जलन्धर दैत्य, दैत्योंको युद्धसे भागता हुआ देख गिरिजाधीश पर हजारों बाण छोड़ता हुआ दौड़ा ॥ ५ ॥ और निशुम्भ शुम्भ आदि हजारों दैत्येन्द्र भी क्रोधसे ओठोंको काट शिव पर दौड़े ॥ ६ ॥ कालनेमि, वीर खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर, प्रचण्ड और भी बहुतसे दैत्य शिव पर दौड़े ॥७॥ हे मुने ! फिर उन शुम्भ आदिने रुद्रके गणोंको बाणोंसे छा दिया और उनके अंगोंको काटने लगे ॥ ८ ॥ शिवने अपने गणदलको बाणान्धकारसे घिरा हुआ देख उनके बाणजालको काट कर आकाशको अपने बाणों से छा दिया ॥ ९ ॥ और दैत्योंको भी बाणोंकी आँधी चला कर पीड़ित कर डाला और प्रचण्ड बाणोंके जालमें बाँध कर उनको पृथ्वीमें पटकने लगे।१०। उन्होंने खड्गरोमाके शिरको फरसेसे धड़से काट दिया और बलाहकके शिरके खट्वांगसे दो टुकड़े कर दिये ॥ ११ ॥ उन्होंने घस्मर दैत्यको पाशसे बाँध कर भूमिमें पटक कर मार डाला और महावीर प्रचण्डको भी त्रिशूलसे काट डाला ॥ १२ ॥ कुछ दैत्य शिवजीके बैलने मार डाले कुछका बाणोंसे संहार होगया, उस समय वे दैत्य सिंहसे पीड़ित हाथियोंकी समान रणमें खड़े न रह

इव ॥ १३ ॥ ततः क्रोधपरीतात्मा दैत्यान्धिक् कृतवान् रणे । शुम्भादिकान्महादैत्यः प्रहसन्प्राह धैर्यवान् ॥१४॥ जलन्धर उवाच । किं व उच्यते तैर्मातुर्गाबद्भिः पृष्ठतो हतैः । न हि भीतवधः श्लाघ्यः स्वर्गदः शूरमानिनाम् ॥१५॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारो वा क्षुल्लका हृदि । अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥१६॥ रणे मृत्युर्वरश्चास्ति सर्वकामफलप्रदः । यशःप्रदो विशेषेण मोक्षदोऽपि प्रकीर्त्तितः ॥१७॥ सूर्यस्य मण्डलं भित्त्वा यायाद्वै परमं पदम् । परिव्राट् परमज्ञानी रणे यस्संमुखे हतः ॥१८॥ मृत्योर्भयं न कर्तव्यं कदाचित्कुत्रचिद् बुधैः । अनिवार्यो यतो ह्येष उपायैर्निखिलैरपि ॥ १९ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीरा देहेन सह जायते । अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥२०॥ तन्मृत्युभयमुत्सार्य युध्यध्वं समरे मुदा । सर्वथा परमानन्द इहामुत्रापि संशयः ॥ २१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा बोधयामास स्ववीरान्बहुशस्स हि । धैर्यं दधुर्न ते भीता अपलायन्त रणाद् द्रुतम् ॥ २२ ॥ अथ दृष्ट्वा स्वसैन्यं तत्पलायनपरायणम् । चुक्रोधाति महावीरस्सिन्धुपुत्रो जलंधरः

सके ॥ १३ ॥ तब महादैत्य जलन्धर क्रोधमें भर कर रणमें दैत्योंको धिक्कार देने लगा, फिर उसने धैर्य धारण कर शुम्भ आदिसे हँसते हुए कहा ॥१४॥ जलन्धरने कहा, कि-तुम अपनी पीठ पर मार खा अपनी माताओंके सामने जाकर क्या कहोगे, डरे हुओंको मारना प्रशंसनीय नहीं माना जाता, वह शूरमानियोंको स्वर्गदायक नहीं माना जाता ॥ १५ ॥ अरे क्षुद्र पुरुषों! यदि तुम्हारी युद्धमें श्रद्धा हो, यदि तुम्हारे हृदयमें कुछ बल हो और यदि तुम्हें ग्राम्यसुखकी इच्छा न हो तो तुम केवल मेरे आगे ही खड़े रहो ॥ १६ ॥ रणमें मृत्यु पाना अच्छा माना जाता है, उससे सब कामनायें पूर्ण होती हैं, यश मिलता है और विशेषरूपसे रणमें मरनेको मोक्ष देने वाला भी कहा है १७ जो संन्यासी परमज्ञानी होता है और जो रणमें सामने खड़ा होकर मारा जाता है ये दोनों सूर्यमण्डलको भेद कर परमपदको पाते हैं ॥१८॥ बुद्धिमानोंको तो मृत्युका भय कहीं पर भी कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि-अनेक प्रकारके उपाय करने पर भी इसको हटाया तो जा ही नहीं सकता ॥ १९ ॥ हे वीरों! मृत्यु तो जन्मवालोंके साथ ही उत्पन्न होती है, आज हो, चाहें सौ वर्ष बाद हो, प्राणियोंकी मृत्यु तो अवश्य होती है ॥ २० ॥ अतः तुम मृत्युके भयको छोड़ कर समरमें आनन्दपूर्वक युद्ध करो, युद्धसे इस लोकमें और परलोकमें सर्वत्र ही आनन्द मिलता है ॥ २१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-इसप्रकार उसने अपने वीरोंको बहुत समझाया, किन्तु उन्होंने धीरज न रखा और वे डर कर युद्धभूमिसे भागते ही रहे ॥२२॥ तब अपनी सेनाको भागती हुई ही देख कर महावीर सिंधुपुत्र जलन्धर बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥२३॥ तब उसका चित्त

ततः क्रोधपरीतात्मा क्रोधाद्रुद्रं जलन्धरः। आह्वापयामास रणे तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २४ ॥ जलन्धर उवाच । युद्धस्वाद्य मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव । यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा बाणसप्तत्या जघान वृषभध्वजम् । जलन्धरो महादैत्यश्शम्भुमक्लिष्टकारिणम् ॥ २६ ॥ तानप्राप्तान्महादेवो जलन्धरशरान्द्रुतम् । निजैर्हि निशितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः । जलन्धरस्य दैत्यस्य न तच्चित्रं हरे मुने स छिन्नधन्वा विरथः पाथोधिनन्दनोऽसुरः । अभ्यधावच्छिवं क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगवान् ॥ २९ ॥ प्रभुर्गदां च तत्क्षिप्तां सहसैव महेश्वरः । पाराशर्य्य महालोलो द्रुतं बाणैर्द्विधाकरोत् ॥३०॥ तथापि मुष्टिमुद्यम्य महाक्रुद्धो महासुरः । अभ्युद्ययौ महावेगाद्रुद्रं तं तज्जिघांसया ॥ ३१ ॥ तावदेवेश्वरेणाशु बाणौघैस्स जलन्धरः । अक्लिष्टकर्मकारेण क्रोशमात्रमपाकृतः ॥ ३२ ॥ ततो जलन्धरो दैत्यो रुद्रं मत्वा बलाधिकम् । ससर्ज मायां गांधर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥ ३३ ॥ तस्य मायाप्रभावात्तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः । आविर्भूता अनेके च रुद्रमोहनहेतवः ॥ ३४ ॥ ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः । तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्ति स्म चापरे ।३५।

क्रोधसे भर गया और उसने कड़कती हुई बिजलीकी समान स्वरमें क्रोधपूर्वक रुद्रको युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥ २४॥ जलन्धरने कहा, कि-अरे ! इनको मारनेसे क्या ? तू आज मेरे साथ युद्ध कर, अरे जटाधर ! तुझमें जितना बल हो उसको मुझे दिखा ॥ २५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-महादैत्य जलंधरने सरलतासे कर्म करने वाले वृषभध्वज शम्भुसे इस प्रकार कह कर उनके सत्तर बाण मारे ॥ २६ ॥ तब महादेवजीने मुस्कुरा कर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन बाणोंको बीचमें ही काट डाला ॥ २७ ॥ हे मुने ! फिर उन्होंने जलन्धर दैत्यके घोड़े ध्वजा छत्र और धनुषको सात बाणोंसे काट डाला, इसमें कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ २८ ॥ धनुषके टूटने पर रथहीन हुआ समुद्रपुत्र जलंधर गदाको उठा कर वेगसे रुद्र पर झपटा ॥ २९ ॥ हे व्यासजी ! फिर महेश्वरने सहसा फैंकी हुई उस गदाके बाणोंसे दो टुकड़े कर डाले ॥ ३० ॥ तब भी वह महादैत्य क्रोधमें भर मुक्का तान रुद्रको मारनेकी इच्छासे उन पर झपटा ॥ ३१ ॥ उसी समय सरलतासे कर्म करने वाले ईश्वर शिवने बाण मार कर उसको कोस भर दूर धकेल दिया ॥३२॥ तब जलन्धर दैत्यने रुद्रको अधिक बल वाला मान कर रुद्रको मोहित करनेके लिये अद्भुत गांधर्वी मायाको रचा ॥ ३३ ॥ उस मायाके प्रभावसे रुद्रको मोहित करनेके लिये गंधर्व और अप्सराओंके झुण्ड प्रकट हुए ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वे गंधर्व और अप्सराओं के टोले नाचने और गाने लगे और कुछ ताल वीन और मृदङ्गोंकी बजाने

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गणो रुद्रो विमोहितः । पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥ ३६ ॥ एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः । कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताभवत् ॥३७॥ युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ । दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ ३८ ॥ महावृषभमारूढस्सर्वथा रुद्रसंनिभः । आसुर्या मायया व्यास स बभूव जलन्धरः ॥ ३९ ॥ अथ रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा । अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ ४० ॥ यावद्दर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः । तावत्स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥४१॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला । जगामांतर्हिता वेगात्स तदोत्तरमानसम् ॥ ४२ ॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव । जवेनागात्पुनर्योद्धुं यत्र देवो महेश्वरः ॥ ४३ ॥ पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा । तावद्ददर्श तं देवं सोपविष्टं समीपगम् ॥ ४४ ॥ तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं जगन्माता शिवप्रिया । प्रसन्नमनसोवाच प्रणमन्तं कृतांजलिम् ॥ ४५ ॥ पार्वत्युवाच । विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् । तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ ४६ ॥

लगे ॥ ३५ ॥ इस बड़े भारी आश्चर्यको देख कर रुद्र और उनके गण मोहमें पड़ गए हाथसे गिरे हुए शस्त्रोंका भी उन्हें बोध न रहा ॥३६॥ रुद्रको एकाग्र देख कर दैत्य जलन्धर कामवश हो जहाँ गौरी थीं, तहाँ को चल दिया ।३७। हे व्यासजी ! वह युद्धमें महाबली शुंभ और निशुम्भको नियुक्त कर आसुरी मायासे अपना दश भुजा, पाँच मुख, तीन नेत्र और जटा वाला शिवजीकासा रूप बना महावृषभ पर चढ़ पार्वतीके पासको चला ॥३८ ॥ ३९॥ इधर शिवप्रिया पार्वतीने भी जब रुद्रको आते हुए देखा, तब वह सखियोंमेंसे निकलकर उसकी दृष्टिके सामने पड़ीं ॥ ४० ॥ उस दैत्यने सुन्दर अंगों वाली पार्वतीको देखा, कि–उसका वीर्यस्राव होगया और उसके अंग जड़ होगये ॥ ४१ ॥ उस समय गौरीने समझा कि–यह तो दानव है, अतः वह भयभीत हो अन्तर्धान हो उत्तरमानस पर पहुँच गईं ॥ ४२ ॥ बिजलीकी समान क्षणभरमें ही पार्वतीके अदृश्य होजाने पर वह दैत्य जहाँ शिव थे, तहाँ युद्ध करनेके लिये फिर पहुँच गया ॥ ४३ ॥ उस समय पार्वतीने भी अपने मनमें महाविष्णुका स्मरण किया फिर उन देवको अपने पासमें ही बैठे हुए देखा ॥ ४४ ॥ उनको देख जगन्माता शिवप्रिया पार्वती हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए, विष्णुसे मनमें प्रसन्न होकर कहने लगी ॥ ४५ ॥ पार्वतीने कहा, कि—हे विष्णो ! जलन्धर दैत्यने जो अद्भुत बात की, उस दुर्मतिकी उस करतूतका क्या तुम्हें कुछ पता नहीं है ? ॥ ४६ ॥ जगदम्बाके इस वचनको सुन गरुड़ध्वज गर्दन

तच्छ्रुत्वा जगदम्बाया वचनं गरुडध्वजः । प्रत्युवाच शिवां नत्वा सांजलिर्नम्रकंधरः श्रीभगवानुवाच भवत्या कृपया देवि तद् वृत्तं विदितं मया । यदाज्ञापय मां मातस्तत्कुर्यां त्वदनुज्ञया ॥४८॥ सनत्कुमार उवाच । तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं पुनरप्याह पार्वती । हृषीकेशं जगन्माता धर्मनीतिं सुशिक्षयन् । ४९ ॥ पार्वत्युवाच । तेनैव दर्शितः पन्था बुध्यस्व त्वं तथैव हि । तत्स्त्रीपातिव्रतं धर्मं भ्रष्टं कुरु मदाज्ञया ॥ ५० ॥ नान्यथा स महादैत्यो भवेद्वध्यो रमेश्वर । पातिव्रतसमो नान्यो धर्मोऽस्ति पृथ्वीतले ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्यनुज्ञां समाकर्ण्य शिरसा धाय तां हरिः । छलं कर्तुं जगामाशु पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलधरवधोपाख्याने जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ वद त्वं वदतां वर । किमकार्षीद्धरिस्तत्र धर्मं तत्याज सा कथम् ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । विष्णुर्जालन्धरं गत्वा दैत्यस्य पुटभेदनम् । पातिव्रत्यस्य भंगाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥२॥ वृंदां स दर्शयामास स्वप्नं मायाविनां वरः । स्वयं तन्नगरोद्यानमास्थितोऽद्भुतविग्रहः ।३। अथ वृंदा तदा देवी तत्पत्नी निशि सुव्रता । हरेर्मायाप्रभावात्तु दुस्स्वप्नं सा ददर्श ह ॥ ४ ॥ स्वप्न-

---

झुका, हाथ जोड़ शिवाको प्रणाम करके कहने लगे ॥ ४७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि- हे देवि ! आपकी कृपासे वह वृत्तान्त मुझे विदित होगया है, इस लिये हे मातः ! अब आप जैसी आज्ञा दें मैं तैसा करूँ ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार जो कहते हैं, कि-जगन्माता पार्वतीने विष्णुके इस वचनको सुन उनको धर्मनीतिकी शिक्षा देते हुए फिर कहा, कि-॥४९॥ उस दैत्यने जो मार्ग दिखाया है, तुम उसी मार्गको ग्रहण करो अर्थात् मेरी आज्ञासे उसकी स्त्रीके पातिव्रत धर्मको भ्रष्ट करो ॥५०॥ हे रमेश्वर ! इसके विना वह दैत्य नहीं मारा जावेगा क्योंकि-इस पृथ्वी पर पातिव्रतकी समान और कोई धर्म नहीं है ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-पार्वतीकी इस आज्ञाको सुन हरि उसको शिर पर चढ़ा कर फिर जलन्धरपुरको चल दिये ॥ ५२ ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजीने कहा, कि-हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! हरिने फिर क्या किया और वृन्दाने धर्मको किस प्रकार छोड़ा था, उसका आप वर्णन करिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—विष्णुने जलन्धर दैत्यके नगरमें पहुँच कर वृन्दाके पातिव्रत धर्मको भंग करनेका विचार किया ॥ २ ॥ उन अद्भुत शरीर वाले विष्णुने स्वयं उस नगरके बगीचेमें रह माया करके वृन्दाको स्वप्न दिया ॥ ३ ॥ तब हरिकी मायाके प्रभावसे जलन्धरकी पत्नी सुन्दर व्रत वाली वृन्दाने रात्रिके समय स्वप्न देखा ॥ ४ ॥ उसने विष्णुकी मायासे स्वप्न

मध्ये हि सा विष्णुमायया प्रददर्श ह । भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥ ५ ॥
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् । दक्षिणाशां गतं मुण्डं तमसा च वृतं तदा ।६।
स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह । इत्यादि बहुदुस्स्वप्नान्निशान्ते सा ददर्श ह ॥७॥
ततः प्रबुध्य सा बाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्वती । ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः
तदनिष्टमिदं ज्ञात्वा रुदन्ती भयविह्वला । कुत्रचिन्नाप सा शर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ९ ॥
ततस्सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् । तथापि सा गता बाला न प्राप कुत्रचित्सुखम् ॥
ततो जलन्धरस्त्री सा निर्विण्णोद्विग्नमानसा । वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मना तदा
भ्रमती सा ततो बाला ददर्शातीव भीषणौ । राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्रादशनभासुरौ ॥१२॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा । ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् १३
ततस्तत्कंठमासाद्य निजां बाहुलतां भयात् । मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत ॥१४॥
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा । हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ द्रुतम् १५

में देखा, कि-उसका स्वामी भैंसे पर सवार हो शरीर पर तेल लगा, नंगा हो, काले फूलोंसे विभूषित हो, राक्षसोंके साथ दक्षिणकी ओर जारहा है, उसका शिर मुँडा हुआ है, फिर वह अन्धकारसे ढक गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ फिर उसने अपनेको और सारे नगरको समुद्रमें डूबते हुए देखा, इस प्रकार बहुतसे दुःस्वप्नों को उसने रात्रिके अन्तमें देखा ॥ ७ ॥ वह बाला जागनेके अनन्तर इस स्वप्न पर विचार कर रही थी, कि-उसने देखा, कि उदय होते हुए सूर्यमें छिद्र हो गया और सूर्य निष्प्रभ होगया ॥ ८ ॥ इस घटनावलिको कुशकुन समझ वह भयसे विह्वल होकर रोने लगी, द्वार और अटारियोंमें उसको कहीं भी शान्ति नहीं मिली ॥ ९ ॥ तब फिर वह अपनी दो सखियोंको लेकर नगरके बगीचे में आई परन्तु उस बालाको वहाँ भी कुछ सुख न मिला ॥ १० ॥ उस समय जलन्धरकी स्त्रीका चित्त घबड़ा रहा था और खिन्न होरहा था, इस लिये एक वनसे दूसरे वनमें घूमने पर भी उसको अपने आपेकी कुछ सुध नहीं आती थी ॥ ११ ॥ उस बालाने घूमते २ सिंहकी समान मुख वाले और जिनके डाढ़ दाँत चमक रहे थे ऐसे दो भीषण राक्षसोंको देखा ॥ १२ ॥ उन दोनों को देख कर वह विह्वल होकर भागने लगी, कि-उसने शिष्यके साथ मौन हो बैठे हुए एक शान्त तपस्वीको देखा ॥ १३ ॥ फिर भयपूर्वक उनके गलेमें अपनी भुजा-लताका स्पर्श कर कहने लगी, कि—हे मुने ! मेरी रक्षा करिये मैं आपकी शरणागत हूँ ॥ १४ ॥ मुनिने उसको विह्वल देख कर और उसके पीछे दो राक्षसोंको देख कर, "हुम्" शब्दसे ही उन दोनों राक्षसोंको भगा दिया ॥ १५ ॥ हे मुने ! उनकी हुङ्कारसे ही उन दोनों राक्षसोंको

तद्धुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ। विस्मितातीव दैत्येन्द्रपत्नी साभून्मुने हृदि १६ ततस्सा मुनिनाथं तं भयान्मुक्ता कृतांजलिः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत्॥ वृन्दोवाच। मुनिनाथ दयासिन्धो परपीडानिवारक। रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्खलोद्भवात्॥१८॥ समर्थस्सर्वथा त्वं हि सर्वज्ञोऽपि कृपानिधे। किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय॥ १९॥ जलन्धरो हि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो। स तत्रास्ते कथं युद्धे यन्मे कथय सुव्रत॥ २०॥ सनत्कुमार उवाच। मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य मौनं कपटमास्थितः। कर्त्तुं स्वार्थं विधानज्ञः कृपयोर्द्ध्वमवैक्षत॥ २१॥ तावत्कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ। ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ॥२२॥ नीत्वा क्षणार्द्धमागत्य पुनस्तस्याग्रतः स्थितौ। तस्यैव कं कबन्धं च हस्तावास्तां मुनीश्वर॥२३॥ शिरः कबन्धं हस्तौ तौ दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा। पपात मूर्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता॥२४॥ वृन्दोवाच। यः पुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां प्रभो। स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम्॥२५॥ येन देवास्सगंधर्वा निर्जिता विष्णुना सह। स कथं तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः॥२६॥ नांगीकृतं हि मे वाक्यं रुद्रतत्त्वमजानता। परं ब्रह्म शिवश्चेति वद-

घबड़ा कर भागते हुए देख, वह दैत्येन्द्र—पत्नी अपने मनमें बड़ी विस्मित हुई॥ १६॥ भयसे छूटने पर वृन्दाने उन मुनिनाथको हाथ जोड़ पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणाम करके कहा॥ १७॥ वृन्दाने कहा, कि—हे दूसरोंकी पीड़ाको दूर करने वाले दयासिन्धो मुनिनाथ! इन दुष्टोंके भयंकर भयसे आपने मेरी रक्षा की है॥ १८॥ इस लिये हे कृपानिधे! आप समर्थ हैं और सर्वज्ञ हैं, इस कारण मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, उसको आप कृपा कर सुनिये॥ १९॥ हे सुव्रत! मेरे स्वामी जलन्धर रुद्रसे युद्ध करनेको गए हैं उनकी युद्धमें क्या दशा है, इसका हे प्रभो! आप मुझसे वर्णन करिये।२०। सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उसके वचनको सुन कपट करके बैठे हुए स्वार्थके विधानको जाननेमें चतुर मुनिने कृपा करके ऊपरको देखा॥ २१॥ उसी समय दो कपीश आये और उनको प्रणाम कर उनके सामने खड़े होगए और उनकी भौंके इशारेसे नियुक्त होकर आकाशमेंको चले गये॥ २२॥ और हे मुनीश्वर! आधे क्षणमें ही जलन्धरके मस्तक धड़ और दोनों भुजाओंको लेकर उनके सामने खड़े होगए॥२३॥ वह सिंधुनन्दनके शिर धड़ और भुजाओंको देख स्वामीके दुःखसे दुःखित हो विलाप करने लगी॥२४॥ वृन्दाने कहा कि—हे प्रभो! आप पहिले सुखकी बातें सुना कर मुझे प्रसन्न करते थे वही आप आज अपनी निरपराध प्रिय स्त्रीसे क्यों नहीं बोलते॥ २५॥ अहो! जिन्होंने पहिले गन्धर्व और देवता तथा विष्णुको भी जीत लिया था, वह त्रिलोकविजयी आज तपस्वीसे कैसे मारे गये॥ २६॥ हे दैत्यसत्तम! मैंने आपसे

न्त्या दैत्यसत्तम ॥ २७ ॥ ततस्त्वं हि मया ज्ञातस्तव सेवाप्रभावतः । गर्वितेन त्वया नैव कुसंगवशगेन हि ॥२८॥ इत्थं प्रभाष्य बहुधा स्वधर्मस्था च तत्प्रिया । विललाप विचित्रं सा हृदयेन विदूयता ॥ २९ ॥ ततस्सा धैर्यमालम्ब्य दुःखोच्छ्वासान्विमुंचती । उवाच मुनिवर्यं तं सुप्रणम्य कृतांजलिः ॥ ३० ॥ वृन्दोवाच । कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ परोपकरणादर । मयि कृत्वा कृपां साधो जीवयैनं मम प्रभुम् ॥ ३१ ॥ यत्त्वमस्य पुनश्शक्तो जीवनाय मतो मम । अतस्संजीवयैनं मे प्राणनाथं मुनीश्वर ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा दैत्यपत्नी सा पातिव्रत्यपरायणा । पादयोः पतिता तस्य दुःखश्वासान् विमुञ्चती ॥ ३३ ॥ मुनिरुवाच । नायं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि । रुद्रेण निहता युद्धे न जीवन्ति कदाचन ॥ ३४ ॥ तथापि कृपयाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् । रक्ष्याश्शरणगाश्चेति जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा स मुनिस्तस्य जीवयित्वा पतिं मुने । अन्तर्दधे ततो विष्णुस्सर्वमायाविनां वरः ॥ ३६ ॥ द्रुतं स जीवितस्तेनोत्थितः सागरनन्दनः । वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः ॥ ३७ ॥

कहा था, कि-शिव परब्रह्म हैं परन्तु आपने रुद्रके तत्त्वको न जान कर मेरे उस वाक्यको अंगीकार नहीं किया ॥ २७ ॥ आपकी सेवा करनेके प्रभावसे मैंने जान लिया था, कि—आप कुसंग और गर्ववश ही मेरी बातको नहीं समझ रहे हैं ॥ २८ ॥ अपने धर्ममें परायण जलन्धरपत्नी इस प्रकार कह दुःखित हृदयसे अनेक प्रकारका विलाप करने लगी ॥ २९ ॥ तदनन्तर दुःखसे आहें भरते २ उसने धैर्य धारण कर हाथ जोड़ उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके कहा, कि—॥ ३० ॥ हे परोपकारी कृपानिधि मुनिश्रेष्ठ ! हे साधो ! आप मुझ पर कृपा कर मेरे इन पतिको जीवित कर दीजिये ॥३१॥ हे मुनीश्वर ! मैं समझती हूँ, कि-आप इनको फिर जीवित कर सकते हैं, अतः आप मेरे इन प्राणनाथको जीवित कर दीजिये ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-पतिव्रतधर्ममें परायण वह दैत्यपत्नी इस प्रकार कह कर दुःखभरे श्वासोंको छोड़ती हुई उनके चरणोंमें गिर पड़ी ॥३३॥ मुनिने कहा, कि-इसको युद्धमें रुद्रने मार डाला है अतः इसको जीवित नहीं किया जासकता, क्योंकि-युद्धमें रुद्रके मारे हुए प्राणी कभी जीवित नहीं होते ॥ ३४ ॥ तथापि शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये, इस शाश्वत धर्मको जाननेके कारण कृपा कर मैं इसको फिर जीवित किये देता हूँ ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे मुने ! माया वालोंमें श्रेष्ठ मुनिरूपी विष्णु इस प्रकार कह उसके पतिको जीवित कर अन्तर्धान होगए ।३६। वह सागरनन्दन भी उनके जीवित करने पर उठ कर चित्तमें प्रसन्न हो वृन्दा का आलिंगन कर उसके मुखका चुम्बन करने लगा ॥ ३७ ॥ और वृन्दा भी

अथ वृन्दापि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा । जहौ शोकं च निखिलं स्वप्नवद्धृद्यमन्यत ३८ अथ प्रसन्नहृदया सा हि संजातहृच्छया रेमे तद्वनगध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरान् ३९ कदाचित्सुरतस्यांते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि । निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ४० वृन्दोवाच । धिक् तदेवं हरेः शीलं परदाराभिगामिनः । ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यग्मायी प्रत्यक्षतापसः ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा क्रोधमापन्ना दर्शयन्ती स्वतेजसम् । शशाप केशवं व्यास पातिव्रत्यरता च सा ॥ ४२ ॥ रे महाधम दैत्यारे परधर्मविदूषक । गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं सर्वविषोल्बणम् ॥ ४३ ॥ यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम । तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ ४४ ॥ त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् । भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् । विष्णुना वार्यमाणापि तस्मिंतासक्तचेतसा ॥४६॥ तस्मिन्नवसरे देवा ब्रह्माद्या निखिला मुने । आगताः खे समं दारैः सद्गतिं वै दिदृक्षवः ॥ ४७ ॥ अथ दैत्येन्द्रपत्न्यास्तु तज्ज्योतिः परमं महत् ।

अपने स्वामीको देख चित्तमें प्रसन्न हुई उसका सम्पूर्ण दुःख जाता रहा और इस घटनाको उसने स्वप्नकी समान समझा ॥३८॥ फिर वह कामका उदय होने पर प्रसन्नचित्तसे उस वनमें उसके साथ बहुत दिन तक रमण करती रही ।३९। एक समय मैथुनके अन्तमें उसको विष्णुके रूपमें देख वृन्दा उसको धमका क्रुद्ध हो कहने लगी ॥ ४० ॥ वृन्दाने कहा, कि–अरे परस्त्रीगामी हरि तेरे शीलको धिक्कार है, अरे मायावी ! मैंने जान लिया. कि–तूने ही तपस्वीका रूप धारण कर लिया था ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे व्यासजी ! पतिव्रता वृन्दाने इस प्रकार कह क्रोधमें भर अपना तेज दिखानेके लिये विष्णुको शाप दिया, कि–॥ ४२ ॥ अरे दूसरोंका धर्म बिगाड़ने वाले, महा–अधम, दैत्योंके शत्रु ! रे शठ ! तू मेरे दिये हुए विषकी समान तीक्ष्ण शापको ग्रहण कर ४३ तूने मायासे जिन अपने दो पुरुषोंको दिखाया था, वे ही राक्षस बन कर तेरी स्त्रीको हर लेंगे ॥ ४४ ॥ और तू भी भार्याके दुःखसे बन्दरोंकी सहायता ले वनमें टकराता फिरेगा और जो यह सर्पेश्वर (शेष) तेरा शिष्य बना था, इसको भी तेरे साथ घूमना पड़ेगा ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—वृन्दा इस प्रकार कहकर अग्निमें प्रवेश कर गई और विष्णु उसको मना करते ही रह गए ॥ ४६ ॥ हे मुने ! उस समय उसकी सद्गतिको देखनेके लिये ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता अपनी २ स्त्रियोंको साथमें लेकर आकाशमें आकर खड़े होगए ॥ ४७ ॥ उस समय दैत्येन्द्रपत्नीकी वह परम महत् ज्योति सब देवताओंके देखते २ ही अदृष्ट होगई और पार्वतीके शरीरमें जाकर प्रविष्ट हो

पश्यतां सर्वदेवानामलोकमगमद् द्रुतम् ॥ ४८ ॥ शिवातनौ विलीनं तद् वृन्दातेजो बभूव ह । आसीज्जयजयारावः खस्थितामरपंक्तिषु ॥ ४९ ॥ एवं वृन्दा महाराज्ञी कालनेमि-सुतोत्तमा । पातिव्रत्यप्रभावाच्च मुक्तिं प्राप परां मुने ॥ ५० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मर-न्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोवगुंठितः । तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघकैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शांतिम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धर वधोपाख्याने वृन्दापतिव्रतभंगदेहत्यागवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

व्यास उवाच । विधेः श्रेष्ठसुत प्राज्ञ कथेयं श्राविताद्भुता । ततश्च किमभूद्राजौ कथं दैत्यो हतो वद ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । अदृष्ट्वा गिरिजां तत्र दैत्येन्द्रे रणमागते । गांधर्वे च विलीने हि चैतन्योऽभूद् वृषध्वजः ॥ २ ॥ अन्तर्धानगतां मायां दृष्ट्वा बुद्धो हि शंकरः । चुकोपातीव संहारी लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ ३ ॥ ततश्शिवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा । स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैस्समवा-किरद्रणे ॥ ४ ॥ चिप्तं प्रभुस्तं शरजालमुग्रं जलन्धरेणातिबलीयसा हरः । द्रुतं प्रचि-च्छेद शरैर्वरैर्निजैर्न चित्रमत्र त्रिभवप्रहन्तुः ॥५॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्र-

गई, उस समय आकाशमें खड़े हुए देवताओंने जय जयकी ध्वनि की ॥४८।४९ हे मुने ! इस प्रकार कालनेमिकी पुत्री महारानी वृन्दा पातिव्रत्यके प्रभावसे मुक्तिको प्राप्त होगई ॥ ५० ॥ उस समय हरि उसका स्मरण कर उसको चिताकी धूलमें भर गए और देवता तथा सिद्धोंके ज्ञान देने पर भी उनको कुछ शांति न मिली ॥ ५१ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ ॥ ❀

व्यासजीने कहा, कि—हे ब्रह्माजीके श्रेष्ठ पुत्र सनत्कुमारजी ! आपने यह अद्भुत कथा सुनाई अब यह बताइये, कि—फिर युद्धमें क्या हुआ था और वह दैत्य किस प्रकार मारा गया था ? ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि—जब वह दैत्येन्द्र गिरिजाको न देख रणमें लौट आया और जब गांधर्वी माया लीन होगई, तब वृषभध्वज शंकरको चैतन्य हुआ ॥ २ ॥ मायाको अन्तर्धान हुई देख कर जब शंकरको ज्ञान हुआ, तब संहारी शंकर लौकिक गतिका आश्रय लेकर बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ३ ॥ फिर शिव चित्तमें विस्मित हो क्रोधमें भर जलन्धरसे युद्ध करनेको चल दिये और वह दैत्य भी शिवजीको फिर आते देख उन पर बाणोंकी बौछार करने लगा ॥ ४ ॥ अतिबलवान् जलन्धरके छोड़े हुए उस भयंकर बाणजालको हरने अपने श्रेष्ठ २ बाण छोड़ कर शीघ्र ही काट डाला ! अहो ! त्रिलोकीका संहार करने वाले शिवके लिये यह कुछ अचरजकी भी बात नहीं है ॥ ५ ॥ तब जलन्धरने रुद्रके अद्भुत बलको देख

गम् । चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव ॥ ६ ॥ रथोपरि गतां बद्धां रुदन्तीं पार्वतीं शिवः । निशुम्भशुम्भदैत्यैश्च बध्यमानां ददर्श सः ॥ ७ ॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा लौकिकीं दर्शयन्गतिम् । बभूव प्राकृत इव शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ ८ ॥ अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं नानालीलाविशारदः । शिथिलांगो विषण्णात्मा विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥९॥ ततो जलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः । आपुंखमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे १० ततो रुद्रो महालीलो ज्ञानतत्त्वः क्षणात्प्रभुः । रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ११ तस्यातीव महारौद्ररूपं दृष्ट्वा महासुराः । न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश १२ निशुम्भशुम्भावपि यौ विख्यातौ वीरसत्तमौ । अपि तौ शेकतुर्नैव रणे स्थातुं मुनीश्वर १३ जलन्धरकृता मायांतर्हिताभूच्च तत्क्षणम् । हाहाकारो महानासीत्संग्रामे सर्वतोमुखे १४ ततश्शापं ददौ रुद्रस्तयोश्शुम्भनिशुम्भयोः । पलायमानौ तौ दृष्ट्वा धिक्कृत्य क्रोधसंयुतः ॥ १५ ॥ रुद्र उवाच । युवां दुष्टावतिखलावपराधकरौ मम । पार्वतीदण्डदातारौ रणादस्मात्पराङ्मुखौ ॥ १६ ॥ पराङ्मुखो न हन्तव्य इति बध्यौ न मे युवाम् । मम युद्धादतिक्रांतौ गौर्य्या बध्यौ भविष्यतः ॥१७॥ एवं वदति गौरीशे सिन्धुपुत्रो जलंधरः ।

कर शिवको मोहमें डालनेके लिये मायाकी पार्वतीको रचा ॥ ६ ॥ तब शिवने देखा, कि-पार्वती रथमें बँधी हुई पड़ी है और रोरही है तथा शुम्भ निशुम्भ आदि दैत्य उनको मार रहे हैं ॥ ७ ॥ गौरीकी यह दशा देख कर शिवजी भी लौकिकगति दिखाते हुए साधारण पुरुषकी समान चित्तमें घबड़ाने लगे ८ अनेक लीलाओंको करनेमें चतुर शिव नीचेको मुख कर चुपचाप खड़े होगए, उनके अंग शिथिल पड़ गए चित्त खिन्न होगया और वह अपने पराक्रमको भूल गए ॥ ९ ॥ तब जलन्धरने तीन बाणोंसे शिवको बींधा, वे बाण रुद्रके शिर छाती और पेटमें वेगके साथ पूँछ तक घुस गए ॥ १० ॥ तब बड़ी भारी लीला करने वाले ज्ञानतत्त्व प्रभु रुद्र क्षणभरमें ही ज्वालामालाओंसे परम भीषण रौद्र रूप वाले होगए ॥ ११ ॥ उनके परम भयंकर रूपको देख कर, बड़े बड़े असुर भी उनके सामने खड़े न रह सके और दशों दिशाओंमेंको भाग चले १२ और हे मुनीश्वर ! जो प्रसिद्ध वीर शुंभ और निशुंभ थे वे भी रणमें खड़े न रह सके ॥१३॥ जलन्धरकी माया भी उसी क्षण अन्तर्धान होगई, उस समय संग्राममें चारों ओर हाहाकार मच रहा था ॥१४॥ उस समय क्रोधमें भरे हुए रुद्रने शुम्भको भागते हुए देख उनको धिक्कार देकर शाप दिया ॥१५॥ रुद्रने कहा, कि-तुम दोनों बड़े दुष्ट हो, तुमने मेरा अपराध किया है, पार्वतीको दण्ड दिया है परन्तु अब इस रणसे पराङ्मुख होकर भागे जारहे हो ॥१६॥ अतः 'पराङ्मुखको नहीं मरना चाहिये" इस कारणसे मैं तुम्हें मारनेसे छोड़े देता हूँ, परन्तु मेरे युद्धसे छूटने पर अब गौरी तुम्हें मारेगी ॥ १७ ॥ जब पार्वतीके

चुक्रोधातीव रुद्राय ज्वलज्ज्वलनसन्निभः ॥ १८ ॥ रुद्रे रणे महावेगाद्ववर्ष निशितांछ्रगान् । बाणान्धकारसंछन्नं तथा भूमितलं ह्यभूत् ॥ १९ ॥ यावद्रुद्रः प्रचिच्छेद तस्य बाणगणान्द्रुतम् । तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥ २० ॥ वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणांगणात् । रुद्रेण कृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥ २१ ॥ अथ लोके महारुद्रस्स्वीयं तेजोऽतिदुस्सहम् । दर्शयामास सर्वस्मै सत्यमेतन्मुनीश्वर ॥२२॥ ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः । प्रलयानलवद् घोरो बभूव सहसा प्रभुः ॥२३॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं दैत्यं मेरुकूटमिव स्थितम् । अवध्यत्वमपि श्रुत्वाप्यन्यैरभ्युद्यतोऽभवत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मणो वचनं रक्षन्रक्षको जगतां प्रभुः । हृदानुग्रहमातन्वंस्तद्वधाय मनोदधत् ॥ २५ ॥ कोपं कृत्वा परं शूलं पादांगुष्ठेन लीलया । महांभसि चकार स्तु रथांगं रौद्रमद्भुतम् ॥ २६ ॥ कृत्वार्णवांभसि शितं भगवान्रथांगं स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हतं पुरारिः । दक्षान्धकांतकपुरत्रययज्ञहंता लोकत्रयान्तककरः प्रहसन्नुवाच ॥२७॥ महारुद्र उवाच । पादेन निर्मितं चक्रं जलन्धर महाम्भसि । बलवान्यदि चोद्धर्त्तुं तिष्ठन्योद्धुं न चान्यथा ॥२८। सन-

---

स्वामी इस प्रकार कह चुके तब सिंधुनन्दन जलन्धर रुद्र पर बड़ा कुपित हुआ और क्रोधके कारण धधकती हुई अग्निसा दीखने लगा ॥ १८ ॥ फिर वह महावेगसे रणमें रुद्र पर बाणवर्षा करने लगा, तथा आकाश (और पृथ्वी) में बाणोंसे अंधकार छागया ।। १९ ॥ रुद्र जब तक उसके बाणोंको शीघ्रता से काटें, तब तक उस बलीने वृषभके परिघ मारा ॥२०॥ वृषभ उस प्रहारके कारण युद्धभूमिसे लौट चला और रुद्रके खेंचने पर भी रणभूमिमें खड़ा न रह सका ॥२१॥ हे मुनीश्वर ! उस समय महारुद्रने संसारमें सबको अपना अतिदुःसह तेज दिखाया ।२२। कि—वह प्रभु रुद्र सहसा परम क्रोधमें भर प्रलयानलकी समान परमरौद्र और घोर होगए ॥२३॥ सुमेरुपर्वतके शिखरकी समान उस दैत्यको आगे खड़ा देख दूसरोंसे उसके अवध्य होनेका वृत्तान्त सुन कर भी स्वयं उसको मारनेके लिये उद्यत होगए ॥ २४ ॥ जगत्के प्रभु और रक्षक शिव ब्रह्माजीके वचनकी रक्षा करते हुए हृदयमें अनुग्रह रख कर उसके वध करनेका मनमें विचार करने लगे ॥ २५ ॥ शूलधारी शिवने कोप करके खेल ही खेलमें जलमें पैरके अँगूठेसे एक परम अद्भुत रथांग (रथके पहिये, चक्र) को बना लिया, वह बड़ा रौद्र था ॥२६ । भगवान् शिवने उस रथांगको समुद्रके जलमें तेज कर उससे त्रिलोकीका भी संहार होसकता है, ऐसा स्मरण किया, फिर दक्षके यज्ञ, अंधकासुर और त्रिपुरका संहार करने वाले और तीनों लोकों का संहार कर सकने वाले शिवने हँस कर कहा ।२७॥ महारुद्रने कहा, कि-हे जलन्धर ! मैंने बड़े जलमें अपने पैरसे एक चक्र बना लिया है, यदि तू उसको

कुमार उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः । प्रदहन्निव चक्षुर्भ्यां प्राहालोक्य स शङ्करम् ॥२९॥ जलन्धर उवाच . रेखामुद्धृत्य हत्वा च सगणं त्वां हि शंकर । हत्वा लोकान्सुरैस्सार्द्धं स्वभागं गरुडो यथा ॥३०॥ हन्तुं चराचरं सर्वं समर्थोऽहं सवासवम् । को महेश्वर मद्बाणैरभेद्यो भुवनत्रये ॥ ३१ ॥ बालभावेन भगवांस्तपसैव विनिर्जितः । ब्रह्मा बलिष्ठः स्थाने मे मुनिभिस्सुरपुङ्गवैः ॥ ३२ । दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । तपसा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि ॥ ३३ ॥ इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः । न सेहिरे यथा नागा गन्धं पक्षिपतेरिव ॥३४॥ न लब्धं दिवि भूमौ च वाहनं मम शङ्कर । समस्तान्पर्वतान्प्राप्य धर्षिताश्च गणेश्वराः ॥३५॥ गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुस्सुशोभनः । धर्षितो बाहुदण्डेन कण्डूवा उत्सर्पणाय मे ॥ ३६ ॥ गङ्गा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलया हिमवद्गिरौ । अरीणां मम भृत्यैश्च जयो लब्धो दिवौकसाम् ॥ वडवाया मुखं बद्धं गृहीत्वा तां करेण तु । तत्क्षणादेव सकलमेकार्णवमभूत्तदा ॥ ३८ ॥

उठानेमें समर्थ होगा, तो मेरे सामने युद्धमें डट सकेगा, अन्यथा खड़ा नहीं रह सकेगा ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–शंकरके इस वचनको सुन कर जलन्धरके नेत्र क्रोधके कारण दमकने लगे, वह आँखोंसे भस्मसा करता हुआ शंकरकी ओर देख कर कहने लगा ॥२९॥ जलन्धरने कहा, कि–हे शंकर ! जैसे गरुड़ अपने भागको हर कर लेजाता है, ऐसे ही मैं तुम्हारी उस चक्ररेखाको उखाड़ सकता हूँ, तुम्हें और देवताओं सहित लोकोंको नष्ट कर सकता हूँ, मैं इन्द्र सहित स्थावर जंगमका नाश करनेमें समर्थ हूँ, अरे महेश्वर ! त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो मेरे बाणोंसे अभेद्य रह सके ॥३०॥३१॥ भगवान् ब्रह्माजीको मैंने बालकपनमें ही जीत लिया था, बड़े २ देवताओं और मुनियोंको मैंने तपसे जीत लिया था ॥ ३२ ॥ मैंने क्षण भरमें ही सारी त्रिलोकीको अपने तपसे तपा दिया था, अरे रुद्र ! तेरी तो बिसात ही क्या है, मैंने भगवान् विष्णुको भी जीत लिया है ॥ ३३ ॥ जैसे सर्प गरुड़की गंधको नहीं सह सकते, इसी प्रकार इन्द्र अग्नि यम कुबेर पवन और वरुण मेरी गंधको नहीं सह सकते ॥ ३४ ॥ हे शंकर ! स्वर्ग वा भूमि कहीं पर भी मुझे मेरा वाहन (बोझा सह सकने वाला) नहीं मिला, मैंने समस्त पर्वतों पर जाकर बहुतसे गणेश्वरोंको दबाया है ॥३५॥ मैंने अपने भुजदण्डोंकी खुजली मिटानेके लिये गिरिराज मन्दर, श्रीमान् नीलपर्वत और सुशोभन मेरुपर्वतको खूब रगड़ा है ३६ मैंने हिमाचलमें खेल ही खेलमें गंगाको अपनी भुजाओंसे रोक दिया था और शत्रु देवताओंको तो मेरे भृत्योंने ही जीत लिया था ॥ ३७ ॥ मैंने वड़वाके मुखको हाथसे बन्द कर दिया था, उस समय सर्वत्र जल ही जल फैल गया

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि । सरथो भगवानिन्द्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम् ॥ ३६ ॥ गरुडोऽपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना । उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहांतरम् ॥ ४० ॥ मां न जानासि रुद्र त्वं त्रैलोक्यजयकारिणम् । जलन्धरं महादैत्यं सिन्धुपुत्रं महाबलम् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वाथ महादेवं तदा वारिधिनन्दनः । न चचाल न सस्मार निहतान्दानवान्युधि ॥४२॥ दुर्मदेनाविनीतेन दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात् । तिरस्कृतो महादेवो वचनैः कटुकाक्षरैः ॥ तच्छ्रुत्वा दैत्यवचनममङ्गलमतीरितम् । विजहास महादेवः परमं क्रोधमादधे ४४ सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं पादांगुष्ठविनिर्मितम् । जग्राह तत्करे रुद्रस्तेन हन्तुं समुद्यतः ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं चिक्षेप भगवान्हरः । कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥ प्रदहद्रोदसी वेगात्तदासाद्य जलन्धरम् । जहार तच्छिरो वेगान्महदायतलोचनम् ॥ रथात्कायः पपातोर्व्यां नादयन्वसुधातलम् । शिरश्चाब्धिपुत्रस्य हाहाकारो महानभूत् ॥ ४८ ॥ द्विधा पपात तद्देहो ह्यंजनाद्रिरिवाचलः । कुलिशेन यथा वारांनिधौ गिरिवरो द्विधा ॥ ४६ ॥ तस्य रौद्रेण रक्तेन सम्पूर्णमभवज्जगत् । ततस्स-

था ॥ ३८ ॥ मैंने ऐरावत आदि हाथियोंको समुद्रके जलमें फेंक दिया था और इन्द्रको भी उनके रथसहित उठा कर मैं चारसौ कोस तक फेंक चुका हूँ ॥ ३९ ॥ मैंने गरुड़सहित विष्णुको भी नागपाशसे बाँध लिया था और उर्वशी आदि अप्सराएँ मेरे जेलखानेमें पड़ी हुई हैं ॥४०॥ अरे रुद्र ! क्या तू मुझ त्रिलोकविजयी सिंधुपुत्र महाबली जलन्धर दैत्यको नहीं जानता है ? ४१ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—समुद्रनन्दन महादेवसे इस प्रकार कह कर विचलित नहीं हुआ, क्योंकि—उसे महादेवजीने जिन दैत्योंको पहिले मार डाला था, उनका स्मरण भी नहीं हुआ ॥ ४२ ॥ उस दुर्विनीत दुर्मदने इस प्रकार कटु अक्षरोंका उच्चारण कर अपनी भुजाओं पर थापदेकर महादेवजीका तिरस्कार किया ॥ ४३ ॥ दैत्यके इस अमंगल वचनको सुन महादेवजी बड़े क्रोधमें भर कर हँसे ॥४४॥ शिवजीने पैरके अँगूठेसे जो सुदर्शन नाम वाला चक्र बनाया था अब उसको हाथमें उठा लिया और उससे उस दैत्यको मारनेके लिये उद्यत होगए ॥ ४५ ॥ तदनन्तर भगवान् हरने करोड़ों सूर्योंकी समान और प्रलयाग्निकी समान सुदर्शन चक्रको फैंका ॥४६॥ वह अपने वेगसे आकाश और पृथिवीको जलाता हुआ जलन्धरके पास पहुँचा और उसके विशाल नेत्रोंवाले शिरको वेगसे काट डाला ॥४७॥ तब रथ परसे समुद्रकुमारका धड़ और शिर पृथिवीको दहलाता हुआ गिर पड़ा, उससमय बड़ा भारी हाहाकार मचगया ४८ जिस प्रकार वज्रसे दो टूक होकर अञ्जनका पर्वत गिरे, तिस प्रकार उसका शरीर दो टूक होकर समुद्रमें गिर पड़ा ॥ ४९ ॥ हे मुनीश्वर ! उसके भयंकर

मस्ता पृथिवी विकृताभून्मुनीश्वर ॥ ५० ॥ तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च । महारौरवमासाद्य रक्तकुण्डमभूदिह ॥ ५१ ॥ तत्तेजो निर्गतं देहाद्रुद्रे च लयमागमत् । वृन्दादेहोद्भवं यद्वद्गौर्य्यां हि विलयं गतम् ॥ ५२ ॥ जलन्धरं हतं दृष्ट्वा देवगन्धर्वपन्नगाः । अभवन्सुप्रसन्नाश्च साधुदेवेति च ब्रुवन् ॥ ५३ ॥ सर्वे प्रसन्नतां याता देवसिद्धमुनीश्वराः । पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणास्तद्यशो जगुरुच्चकैः ॥५४॥ देवांगना महामोदान्ननृतुः प्रेमविह्वलाः । कलस्वराः कलपदं किन्नरैस्सह संजगुः ॥५५॥ दिशः प्रसेदुस्सर्वाश्च हते वृन्दापतौ मुने । ववुः पुण्यास्सुखस्पर्शा वायवश्चित्रिविधा अपि ॥ ५६ ॥ चन्द्रमाः शीततां यातो रविस्तेपे सुतेजसा । अग्नयो जज्वलुश्शांता बभूवाविकृतं नभः ॥५७॥ एवं त्रैलोक्यमखिलं स्वास्थ्यमापाधिकं मुने । हतेऽब्धितनये तस्मिन् हरेणानन्तमूर्तिना ॥ ५८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलन्धरवधवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथ ब्रह्मादया देवा मुनयश्चाखिलास्तथा । तुष्टुवुर्देवदेवेशं वाग्भिरिष्टाभिरानताः ॥१॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।

रक्तसे सारा जगत् रँग गया, उससे सारी पृथिवी विकराल दीखने लगी ५० रुद्रकी आज्ञाके अनुसार उस रक्त और मांससे महारौरव नरकका एक रक्तकुंड भरा गया ।५१। और जिस प्रकार वृन्दाके देहका तेज गौरीमें विलीन होगया था, इसी प्रकार जलन्धरके देहका तेज निकल कर रुद्रमें लीन होगया ।५२। जलन्धरको मरा हुआ देख कर देवता गन्धर्व और पन्नग बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे, कि- हे देव ! आपने बहुत अच्छा किया ।५३। देवता सिद्ध और मुनीश्वर सबको ही उस समय प्रसन्नता हुई और वे पुष्पवृष्टि करके उनके यश को उच्चस्वरसे गाने लगे ।५४। देवांगनाएँ प्रेमविह्वल हो बड़े आनन्दके साथ नाचने लगीं, फिर वे मधुर स्वर वाली देवांगनायें किन्नरोंके साथ मनोहर पद गाने लगीं ।।५५।। हे मुने ! वृन्दाके स्वामी जलन्धरके मारे जाने पर दिशायें निर्मल होगई और शीतल मन्द सुगंध पवित्र वायु सुखदायक स्पर्श देते हुए बहने लगे ५६ और उस समय चन्द्रमा शीतल होगया, सूर्य सुन्दर तेजसे तपने लगा, अग्नियें शान्त रूपसे प्रज्वलित होने लगीं और आकाश निर्मल होगया ५७ हे मुने ! अनन्त मूर्तियोंमें व्याप्त रहने वाले शिवने जब समुद्रकुमारको मार डाला तब सारी त्रिलोकी ही बड़ी स्वस्थ हुई थी ।।५८।। चौबीसवाँ अध्याय समाप्त २४

सनत्कुमारने कहा, कि—तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवता और सकल मुनि नम्र हो देवेश शिवकी इष्ट-वाणियोंसे स्तुति करने लगे ।। १ ।। देवताओंने कहा, कि—हे शरणागतवत्सल, देवदेव, महादेव ! आप सज्जनोंको आनन्द

साधुसौख्यप्रदस्त्वं हि सर्वदा भक्तदुःखहा ॥२॥ त्वं महाद्भुतसल्लीलो भक्तिगम्यो दुरासदः। दुराराध्योऽसतां नाथ प्रसन्नस्सर्वदा भव ॥ ३ ॥ वेदोऽपि महिमानं ते न जानाति हि तत्त्वतः। यथामति महात्मानस्सर्वे गायंति सद्यशः ॥ ४ ॥ माहात्म्यमतिगूढं ते सहस्रवदनादयः। सदा गायंति सुप्रीत्या पुनन्ति स्वगिरं हि ते ५ कृपया तव देवेश ब्रह्मज्ञानी भवेज्जडः। भक्तिगम्यस्सदा त्वं वा इति वेदा ब्रुवन्ति हि ॥ ६ ॥ त्वं वै दीनदयालुश्च सर्वत्र व्यापकस्सदा। आविर्भवसि सद्भक्त्या निर्विकारस्सतां गतिः। ७॥ भक्त्यैव ते महेशान बहवस्सिद्धिमागताः। इह सर्वसुखं भुक्त्वा दुःखिता निर्विकारतः ॥ ८ ॥ पुरा यदुपतिर्भक्तो दाशार्हस्सिद्धिमागतः। कलावती च तत्पत्नी भक्त्यैव परमां प्रभो ॥९॥ तथा मित्रसहो राजा मदयन्ती च तत्प्रिया। भक्त्यैव तव देवेश कैवल्यं परमं ययौ ॥ १० ॥ सौमिनी नाम तनया कैकेयाग्रभुवस्तथा। तव भक्त्या सुखं प्राप परं सद्योगिदुर्लभम् ॥ ११ ॥ विमर्षणो नृपवरस्सप्तजन्मावधि प्रभो। भुक्त्वा भोगांश्च विविधांस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् ॥ १२ ॥ चन्द्रसेनो नृपवरस्त्वद्भक्त्या सर्वभोगभुक् । दुःखमुक्तः सुखं

दिया करते हैं और अपने भक्तोंके दुःखको सदा दूर करते रहते हैं ॥ २ ॥ आपकी श्रेष्ठ लीलायें परम अद्भुत हैं भक्तिके द्वारा आपकी प्राप्ति होसकती है, वैसे आपको पाना बड़ा कठिन है, असज्जन पुरुष आपकी आराधना करें, यह बात बड़ी कठिन है। अतः हे नाथ! आप सदा हम पर प्रसन्न रहिये ॥३॥ वेद भी आपकी महिमाको ठीक २ नहीं जानते, सकल महात्मा अपनी २ बुद्धिके अनुसार आपके श्रेष्ठ यशका गान करते हैं ॥ ४ ॥ सहस्र मुख वाले शेष आदि आपके परम गूढ़ माहात्म्यको प्रीतिपूर्वक गाकर अपनी वाणीको पवित्र करते रहते हैं ॥ ५ ॥ हे देवेश ! आपकी कृपासे जड़ पुरुष भी ज्ञानी होजाता है, आप सदा भक्तिसे ही वशमें होते हैं, इस प्रकार वेद कहते हैं ॥ ६ ॥ आप दीनदयालु हैं, सदा सर्वत्र व्यापक रहते हैं, आप निर्विकार हैं, सज्जनोंकी गतिरूप हैं और सद्भक्तिके वशमें होकर प्रकट होते हैं ॥ ७ ॥ हे महेशान ! बहुत से दुःखी पुरुषोंको आपकी भक्तिसे सिद्धि मिली है और वे सब सुखोंको भोग दुःखके विकारसे छूट गए हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! पहिले दाशार्हवंशी भक्त यदुपति और उसकी पत्नी कलावती आपकी भक्तिसे परमसिद्धिको प्राप्त हुए थे ९, हे देवेश ! इसी प्रकार मित्रसह राजा और उसकी मदयन्ती आपकी भक्तिसे ही कैवल्य मोक्षको प्राप्त हुई थी ॥१०॥ और कैकेय ब्राह्मणकी सौमिनी नाम वाली पुत्री आपकी भक्ति करनेसे योगियोंको भी दुर्लभ सुखको प्राप्त हुई थी ॥ ११ ॥ और हे प्रभो ! राजा विमर्षण आपकी भक्ति करने पर सात जन्म तक अनेक सुखोंको भोग सद्गतिको प्राप्त हुआ था ॥१२॥ राजा चन्द्र-

प्राप परमत्र परत्र च ॥ १३ ॥ गोपीपुत्रः श्रीकरस्ते भक्त्या भुक्त्वेह सद्गतिम् । परं सुखं महावीरशिष्यः प्राप परत्र वै ॥ १४ ॥ त्वं सत्यरथभूजानेर्दुःखहर्ता गतिप्रदः । धर्मगुप्तं राजपुत्रमतार्षीस्सुखिनं त्विह ॥ १५ ॥ तथा शुचिव्रतं विप्रमदरिद्रं महाप्रभो । त्वद्भक्तिवर्तिनं मात्रा ज्ञानिनं कृपयाऽकरोः ॥ १६ ॥ चित्रवर्मा नृपवरस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् । इह लोके सदा भुक्त्वा भोगानमरदुर्लभान् ॥ १७ ॥ चन्द्रांगदो राजपुत्रस्सीमन्तिन्या स्त्रिया सह । विहाय सकलं दुःखं सुखी प्राप महागतिम् ॥ १८ ॥ द्विजो मदरनामापि वेश्यागामी खलोऽधमः । त्वद्भक्तां शिव संपूज्य तया सह गतिं गतः ॥ १९ ॥ भद्रायुस्ते नृपसुतस्सुखमाप गतव्यथः । त्वद्भक्तकृपया मात्रा गतिं च परमां प्रभो ॥ २० ॥ सर्वस्त्रीभोगनिरतो दुर्जनस्तव सेवया । विमुक्तोऽभूदपि सदाभक्ष्यभोजी महेश्वर ॥ २१ ॥ शम्बरश्शंकरो भक्तश्चिताभस्मधरस्सदा । नियमाद्भस्मनश्शम्भो स्वस्त्रिया ते पुरं गतः ॥ २२ ॥ भद्रसेनस्य तनयस्तथा मन्त्रिसुतः प्रभो । सुधर्मशुभकर्माणौ सदा रुद्राक्षधारिणौ ॥ २३ ॥ त्वत्कृपा-

---

सेनने आपकी भक्तिके प्रभावसे सब भोग भोगे थे और दुःखमुक्त होकर इस लोकमें तथा परलोकमें सुख भोगे थे ॥ १३ ॥ महावीरका शिष्य गोपीपुत्र श्रीकर आपकी भक्तिके प्रभावसे यहाँ परम सुख भोग परलोकमें भी सद्गतिको प्राप्त हुआ था ॥१४॥ आपने राजा सत्यरथके दुःखको दूर कर उनको सद्गति दी थी और आपने राजपुत्र धर्मगुप्तको सुखी कर उसको संसारसागरसे तारा था ॥ १५ ॥ हे महाप्रभो ! इसी प्रकार आपने अपनी भक्ति करने वाले धनी विप्र शुचिव्रतको माताके द्वारा ज्ञान दिया था ॥१६॥ राजा चित्रवर्माको आपकी भक्तिके कारण सद्गति प्राप्त हुई थी उसने इस लोकमें भी देवताओंकेसे दुर्लभ भोगोंको भोगा था ॥ १७ ॥ राजपुत्र चन्द्रांगद भी अपनी सौभाग्यवती स्त्रीसहित दुःखरहित हो आपकी भक्ति करनेसे ही सकल सुखोंको प्राप्त हुआ था १८ मदर नामक ब्राह्मण वेश्यागामी, दुष्ट और अधम था, हे शिव ! वह आपकी भक्त स्त्रीका सत्कार कर उसके साथ ही सद्गतिको प्राप्त हुआ था ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! आपकी भक्त माताके उपदेशसे राजकुमार भद्रायुकी व्यथा जाती रही और उसको सुख प्राप्त हुआ था तथा उसको परमगति मिली था ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! सदा अभक्ष्य भक्षण करने वाला और सब स्त्रियोंको भोगनेमें परायण रहने वाला दुर्जन भी आपकी सेवासे मुक्त होगया था ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! आपका भक्त शंबर सदा चिताकी भस्म धारण करता रहता था परन्तु नियमपूर्वक आपकी भस्म धारण करनेके कारण अपनी स्त्रीसहित वह आपके लोकमें आया था ॥२२॥ हे प्रभो ! पूर्वजन्मके बन्दर और मुर्गे जो इस जन्ममें भद्रसेनके पुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र शुभकर्मा नामसे उत्पन्न हुए थे वे रुद्राक्ष

तथ्व तौ मुक्तावास्तां भुक्त्वेह सत्सुखम् । पूर्वजन्मनि यौ कोशकुक्कुटौ रुद्रभूषणौ ॥ पिंगला च महानन्दा वेश्ये द्वे तव भक्तितः । सद्गतिं प्रापतुर्नाथ भक्तोद्धारपरायण ॥ शारदा विप्रतनया बालवैधव्यमागता । तव भक्तेः प्रभावात्तु पुत्रसौभाग्यवत्यभूत ॥२६॥ बिंदुगो द्विजमात्रो हि वेश्याभोगी च तत्प्रिया । चंचुला त्वद्यशः श्रुत्वा परमां गतिमाययौ ॥ २७ ॥ इत्यादि बहवस्सिद्धिं गता जीवास्तव प्रभो । भक्तिभावान्महेशान दीनबन्धो कृपालय ॥ २८ ॥ त्वं परः प्रकृतेर्ब्रह्म पुरुषात्परमेश्वर । निर्गुणस्त्रिगुणाधारो ब्रह्मविष्णुहरात्मकः ॥२९॥ नानाकर्मकरो नित्यं निर्विकारोऽखिलेश्वरः । वयं ब्रह्मादयस्सर्वे तव दासा महेश्वर ॥ ३० ॥ प्रसन्नो भव देवेश रक्षास्मान्सर्वदा शिव । त्वत्प्रजाश्च वयं नाथ सदा त्वच्छरणं गताः ॥३१॥ सनत्कुमार उवाच । इति स्तुत्वा च ते देवा ब्रह्माद्यास्समुनीश्वराः । तूष्णीं बभूवुर्हि तदा शिवांघ्रिद्वन्द्वचेतसः ॥ ३२ ॥ अथ शम्भुर्महेशानः श्रुत्वा देवस्तुतिं शुभाम् । दत्वा वरान्वरान्सद्यस्तत्रैवांतर्दधे प्रभुः ॥३३॥ देवास्सर्वेऽपि मुदिता ब्रह्माद्या हतशत्रवः । स्वं स्वं धाम ययुः प्रीता गायन्तः शिवसद्यशः ॥३४॥ इदं परममाख्यानं जलन्धर-

---

धारण करनेसे आपकी कृपा पा इस लोकमें श्रेष्ठ सुख भोग कर अन्तमें मुक्त होगए थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे भक्तोंका उद्धार करनेमें परायण रहने वाले नाथ! पिंगला और महानन्दा नामकी दो वैश्याएँ आपकी भक्तिसे सद्गतिको प्राप्त हुई थीं ॥ २५ ॥ ब्राह्मणकन्या शारदा बालविधवा थी, आपकी भक्तिके प्रभावसे वह पुत्रवती और सौभाग्यवती हुई थी ॥२६॥ नाममात्रका ब्राह्मण वेश्याभोगी विन्दुग और उसकी प्रिया चञ्चुला आपके यशको सुन परमगतिको प्राप्त होगई थी ॥ २७ ॥ हे दीनबन्धु कृपालय महेश्वर! हे प्रभो! इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे जीव आपके भक्तिभावसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ २८ ॥ हे परमेश्वर! आप ही प्रकृति और पुरुषसे पर ब्रह्म हैं, निर्गुण हैं और त्रिगुणके आधार हैं और आप ही ब्रह्मा विष्णु और हरमें व्याप्त हैं ॥ २९ ॥ आप सबके ईश्वर हैं, निर्विकार हैं और नित्य अनेक कर्म करते रहते हैं और हे महेश्वर! हम ब्रह्मा आदि तो आपके दास हैं ॥ ३० ॥ हे देवेश! आप प्रसन्न हूजिये, हे शिव! आप हमारी सदा रक्षा करिये, हे नाथ! हम आपकी प्रजा हैं, अतः सदा आपकी शरणमें ही रहते हैं ॥३१॥ सनत्कुमारने कहा, कि–ब्रह्मा आदि देवता और मुनीश्वर इस प्रकार कहकर चुप होगए और शिवके दोनों चरणकमलोंका ध्यान करनेमें उन्होंने मन लगा दिया ॥ ३२ ॥ देवताओंकी स्तुतिको सुन कर महेश्वर शम्भु भी उनको श्रेष्ठ २ वर देकर तत्काल वहाँ ही अंतर्धान होगए ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मा आदि सब देवता भी शत्रुओंके मारे जानेसे प्रसन्न हो शिवजीके यशका गान करते हुए अपने २ धामको चल दिये ३४

विमर्दनम् । महेशचरितं पुण्यं महाघौघविनाशनम् ॥ ३५ ॥ देवस्तुतिरियं पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वसौख्यप्रदा नित्यं महेशानन्ददायिनी ॥ ३६॥ यः पठेत्पाठयेद्वापि समाख्यानमिदं द्वयम् । स भुक्त्वेह परं सौख्यं गाणपत्यमवाप्नुयात् ।३७।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरोपाख्याने देवस्तुतिवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

व्यास उवाच । ब्रह्मपुत्र नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तम । यच्छ्राविता महादिव्या कथेयं शांकरी शुभा ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वैष्णवं मुने । स वृन्दां मोहयित्वा तु किमकार्षीत्कुतो गतः ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाप्राज्ञ शैवप्रवर सत्तम । वैष्णवं चरितं शम्भुचरिताढ्यं सुनिर्मलम् ॥ ३ ॥ मौनीभूतेषु देवेषु ब्रह्मादिषु महेश्वरः । सुप्रसन्नोऽवदच्छम्भुश्शरणागतवत्सलः ।४। शम्भुरुवाच । ब्रह्मन्देववरास्सर्वे भवदर्थे मया हतः । जलन्धरो मदंशोऽपि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ५ ॥ सुखमापुर्न वा तातास्सत्यं ब्रूतामराः खलु । भवत्कृते हि मे लीला निर्विकारस्य सर्वदा ।६। सनत्कुमार उवाच । अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः । प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः ।

यह जलन्धरके वधसे भरा हुआ शिवचरित्र पुण्यमय श्रेष्ठ आख्यान है और महापातकोंको दूर करने वाला है ॥ ३५ ॥ यह पुण्यमय देवस्तुति सब पापोंका नाश करने वाली है और सब प्रकारका सुख देने वाली है, क्योंकि इससे महेशको प्रसन्नता होती है ॥ ३६ ॥ जो इन दोनों आख्यानोंको पढ़ता है वा पढ़ाता है, वह इस लोकमें परम सुख भोग कर अन्तमें शिवका गण बनता है ॥ ३७ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ❀ ॥

व्यासजीने कहा, कि-हे ब्रह्मपुत्र ! आपको प्रणाम है, हे शैवसत्तम ! आप धन्य हैं क्योंकि-आपने यह शंकरकी महादिव्य और शुभ कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे मुने ! अब आप प्रीतिपूर्वक विष्णुके चरित्रको सुनाइये, कि-वह वृन्दाको मोहमें डाल कर कहाँ गए और उन्होंने क्या किया ॥ २ ॥ सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि-हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् व्यासजी ! शम्भुके चरित्रसे भरे हुए निर्मल विष्णुचरित्रको सुनिये ॥३॥ जब ब्रह्मा आदि देवता मौन होगए तब शरणागतवत्सल शम्भुने कहा, कि-॥४॥ हे ब्रह्मन् ! और हे सब देवताओं ! जलन्धर मेरा अंश था, तो भी आप सबके लिये ही मैंने उसका संहार कर डाला, यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ ॥ ५ ॥ हे देवताओं ! अब तुम सत्य सत्य कहो, कि-तुम्हें सुख मिला या नहीं, क्योंकि-स्वयं निर्विकार होने पर भी मेरी जो लीला है, वह सब तुम्हारे ही लिये है ॥६॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उस समय ब्रह्मा आदि देवताओंके नेत्र प्रसन्नताके कारण खिल उठे

महादेव त्वया देव रक्षिताश्शत्रुजाद् भयात् । किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवा-
महे ॥ ८ ॥ वृन्दा विमोहिता नाथ विष्णुना हि प्रयत्नतः । भस्मीभूता द्रुतं वह्नौ
परमां गतिमागता ॥९॥ वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः । तच्चिता-
भस्मसंधारी तव मायाविमोहितः ॥ १० ॥ स सिद्धमुनिसंघैश्च बोधितोऽस्माभि-
रादरात् । न बुध्यते हरिस्सोऽथ तव मायाविमोहितः ॥ ११ ॥ कृपां कुरु महेशान
विष्णुं बोधय बोधय । त्वदधीनमिदं सर्वं प्राकृतं सचराचरम् ॥१२॥ सनत्कुमार
उवाच । इत्याकर्ण्य महेशो हि वचनं त्रिदिवौकसाम् । प्रत्युवाच महलीलस्स्व-
च्छन्दस्तान्कृताञ्जलीन् ॥ १३ ॥ महेश उवाच । हे ब्रह्मन्हे सुरास्सर्वे मद्वाक्यं शृणु-
तादरात् । मोहिनी सर्वलोकानां मम माया दुरत्यया ॥ १४ ॥ तदधीनं जगत्सर्वं
यद्देवासुरमानुषम् । तयैव मोहितो विष्णुः कामाधीनोऽभवद्धरिः ॥ १५ ॥ उमाख्या
सा महादेवी त्रिदेवजननी परा । मूलप्रकृतिराख्याता सुरामा गिरिजात्मिका १६
गच्छध्वं शरणं देवा विष्णुमोहापनुत्तये । शरण्यां मोहिनीं मायां शिवाख्यां सर्व-

और उन्होंने शिर झुका रुद्रको प्रणाम कर विष्णुका सब वृत्तान्त सुनाया ।७। देवताओंने कहा, कि—हे महादेव ! आपने शत्रुके भयसे तो हमारी रक्षा की, किन्तु हे देव ! एक और बात होगई है, उसका हम क्या करें ? ॥ ८ ॥ हे नाथ ! विष्णुने वृन्दाको मोहमें डाल दिया था और वह भस्म होकर शीघ्र ही परमगतिको प्राप्त होगई ॥९॥ परन्तु विष्णु वृन्दाके लावण्यसे मोहमें पड़ भ्रान्त होरहे हैं, वह आपकी मायासे मोहित हो उसकी चिताकी भस्मको लपेटे फिरते हैं ॥१०॥ हमने और सिद्ध तथा मुनियोंने उन्हें आदरपूर्वक अपने स्वरूपमें स्थिर करना चाहा, परन्तु आपकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें ज्ञान होता ही नहीं ॥११॥ इस लिये हे महेश्वर ! आप कृपा करके विष्णुको सावधान करिये, क्योंकि—यह चराचर प्राकृत जगत् आपके ही वशमें है ॥१२॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—देवताओंके इस वचनको सुन स्वच्छन्द और अद्भुत लीला करने वाले महेश हाथ जोड़ कर खड़े हुए देवताओंसे कहने लगे ।१३। महेशने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! और हे देवताओं ! आप मेरे वचनको आदर-पूर्वक सुनो, मेरी माया बड़ी गहन है, वह सब लोकोंको मोहमें डालने वाली है ॥ १४ ॥ यह देवता, असुर और मनुष्यों सहित सारा जगत् उसीके अधीन है, उसी मायासे मोहित होकर विष्णु कामाधीन होगए हैं ॥ १५ ॥ उस परा देवीका नाम उमा है वह तीनों देवोंकी जननी मूलप्रकृति कहलाती है, वह सुन्दर नारी गिरिजाके रूपमें विराजमान रहती है ॥ १६ ॥ हे देवताओं तुम विष्णुके मोहको दूर करनेके लिये उन ही सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली शरणागतोंकी रक्षा करने वाली, शिवा नाम वाली मोहिनी मायाकी शरण

कामदाम् ॥ १७ ॥ स्तुतिं कुरुत तस्याश्च मच्छक्तेस्तोषकारिणीम् । सुप्रसन्ना यदि च सा सर्वं कार्यं करिष्यति ॥१८॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा तान्सुराञ्शम्भुः पञ्चास्यो भगवान्हरः । अन्तर्दधे द्रुतं व्यास सर्वैश्च स्वगणैस्सह ॥ १९ ॥ देवाश्च शासनाच्छंभोर्ब्रह्माद्या हि सवासवाः । मनसा तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् २० देवा ऊचुः । यदुद्भवास्सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसविधानकारकाः । यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ पाहि त्रयोविंशगुणान् सुशब्दिताञ्जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा । यद्रूपकर्माणि जगत्त्रयेऽपि ते विदुर्न मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २२ ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यमोहात्ययसंभवादीन् । न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२३॥ कुरु कार्यं महादेवि देवानां नः परेश्वरि । विष्णुमोहं हर शिवे दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥ जलन्धरस्य शम्भोश्च रणे कैलासवासिनः । प्रवृत्ते तद्वधार्थाय गौरीशासनतश्शिवे ॥ २५ ॥ वृन्दा विमोहिता देवी विष्णुना हि प्रयत्नतः । स्ववृषात्त्याजिता वह्नौ भस्मीभूता गतिं गता ॥ २६ ॥ जलन्धरो हतो युद्धे तद्भया-

लो ॥ १७ ॥ तुम प्राणियोंको सन्तुष्ट करने वाली मेरी उस शक्तिकी स्तुति करो, वह यदि प्रसन्न होजावेंगी, तो तुम्हारे सब कामोंको सिद्ध कर देंगी ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे व्यासजी ! पञ्चमुखी भगवान् हर देवताओंसे इस प्रकार कह अपने सब गणोंके साथ अन्तर्धान होगए थे १९ शम्भुकी आज्ञा पाकर इन्द्र और ब्रह्मा आदि देवता भी भक्तवत्सल मूलप्रकृति की मनमें स्तुति करने लगे ॥२०॥ देवताओंने कहा, कि-उत्पत्ति स्थिति और संहार करने वाले सत्त्व रज और तमोगुण जिनसे प्रकट होते हैं, जिनकी इच्छा से यह सारा जगत् चल रहा है और जिनकी इच्छासे संसार और मोक्ष होता है, उन मूलप्रकृतिको हम प्रणाम करते हैं ॥२१॥ हे मूलप्रकृति ! आप तेईस गुणोंकी रक्षा करिये, सम्पूर्ण जगत्में एक परा प्रकृति ही अधिष्ठित है, तीनों लोकके प्राणी भी जिनके रूप और कर्मोंको नहीं जान सकते, उन मूलप्रकृति को हम प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ जिनकी भक्ति करने वाले पुरुष कभी दरिद्रता मोह और नाश आदिके दुःखको नहीं भोगते, उन भक्तवत्सला मूलप्रकृति को हम प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ हे शिवे ! हे दुर्गे ! हे परमेश्वरी ! हे महादेवि ! आप विष्णुका मोह दूर कर देवताओंका काम करिये ॥२४॥ हे शिवे ! कैलासवासी शम्भुका और जलन्धरका युद्ध होरहा था, जब वह उसका वध करनेके लिये प्रवृत्त हुए, तब गौरीकी आज्ञासे विष्णुने वृन्दाको मोहमें डाल दिया था और उसको अपने धर्मसे भ्रष्ट कर दिया था, तब वह भस्म होकर सद्गतिको प्राप्त होगई ॥ २५ ॥ २६ ॥ भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने वाले

न्मोचिता वयम् । गिरिशेन कृपां कृत्वा भक्तानुग्रहकारिणा ॥ २७ ॥ तदाज्ञया वयं सर्वे शरणं ते समागताः । त्वं हि शम्भुर्युवां देवि भक्तोद्धारपरायणौ ॥ २८ ॥ वृन्दालावण्य-संभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति तत्र वै । तच्चितामस्मसंधारी ज्ञानभ्रष्टो विमोहितः ॥२९॥ संसिद्ध-सुरसंघैश्च बाधितोऽपि महेश्वरि । न बुध्यते हरिस्सोऽथ तव मायाविमोहितः ॥ ३० ॥ कृपां कुरु महादेवि हरिं बोधय बोधय । यथा स्वलोकं पायात्स सुचित्तस्सुरकार्यकृत् ।३१। इति स्तुवंतस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम् । ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।३२। तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः । अमराश्शुश्रुवुर्व्योम कामदां व्योमचारिणीम् आकाशवाण्युवाच । अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः । गौरी लक्ष्मीः सुरा ज्योती रजस्सत्त्वतमोगुणैः ॥ ३४ ॥ तत्र गच्छत यूयं वै तासामन्तिक आदरात् । मदाज्ञया प्रसन्नास्ता विधास्यन्ते तदीप्सितम् ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्द्धानमगान्महः । देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा मुने ॥३६॥ ततस्सर्वेऽपि ते देवाः श्रुत्वा तद्वाक्यमादरात् । गौरीं लक्ष्मीं सुरां चैव नेमुस्तद्वाक्यचोदिताः ३७ तुष्टुवुश्च महाभक्त्या देवीस्तास्सकलास्सुराः । नानाविधाभिर्वाग्भिस्ते ब्रह्माद्या नतमस्तकाः

शिवने जलन्धरको युद्धमें मार कर उसके भयसे हमें छुड़ा दिया है ॥२७॥ और उनकी ही आज्ञासे हम सब आपकी शरणमें आये हैं, क्योंकि-हे देवि! शंभु और आप दोनों ही भक्तोंका उद्धार करनेमें लग रहे हैं ॥ २८ ॥ तहाँ पर विष्णु वृन्दाके लावण्य पर मुग्ध हो, उसकी चिताकी भस्मको लपेट, ज्ञानभ्रष्ट हो मोहमें पड़े हुए हैं ॥२९॥ हे महेश्वरि! वह आपकी मायासे मोहित होनेके कारण देवताओंके उद्बोधित करने पर भी उद्बोधित नहीं होते ॥ ३० ॥ हे महादेव! इस लिये आप हरिको स्वरूपमें स्थित करिये, जिससे, कि—वह अपने लोककी रक्षा कर सकें ॥ ३१ ॥ वे देवता इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, कि—उन्होंने आकाशमें एक प्रज्वलित तेजोमण्डलको देखा ॥ ३२ ॥ हे व्यासजी! उसके मध्यमेंसे ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवताओंने मनोरथ पूर्ण करने वाली आकाशवाणीको सुना ॥ ३३ ॥ आकाशवाणीने कहा, कि—हे देवताओं! मैं ज्योति ही सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंसे भिन्न २ होकर गौरी लक्ष्मी और सुरा (ब्रह्माणी) नामसे स्थित रहती हूँ ॥३४॥ तुम मेरी आज्ञासे उनके ही पास जाओ, वे प्रसन्न होकर तुम्हारा मनचीता कार्य कर देंगी ३५ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुने! देवता विस्मित नेत्रोंसे इस बातको सुन रहे थे, कि—वह तेज अन्तर्धान होगया ॥ ३६ ॥ फिर उन देवताओंने उस वाणीके कथनानुसार गौरी लक्ष्मी और सुराको प्रणाम किया ॥ ३७ ॥ फिर वे ब्रह्मा आदिक सकल देवता मस्तक झुका महाभक्तिसे अनेक प्रकारकी वाणियोंमें उन सब देवियोंकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी! तब

ततोऽरं व्यास देव्यस्ता आविर्भूताश्च तत्पुरः। महाद्भुतैस्स्वतेजोभिर्भासयन्त्यो दिगंतरम् ॥ अथ ता अमरा दृष्ट्वा सुप्रसन्नेन चेतसा। प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या स्वकार्यं च न्यवेदयन्॥ ततश्चैतास्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान् भक्तवत्सलाः। बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यमूचुश्च सादरम्४१ देव्य ऊचुः। इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठति। निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥ ४२ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा तास्ततो देव्योऽन्तर्हिता अभवन्मुने। रुद्रविष्णुविधीनां हि शक्तयस्त्रिगुणात्मिकाः ॥४३॥ ततस्तुष्टाः सुरास्सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः। तानि बीजानि संगृह्य ययुर्यत्र हरिः स्थितः ॥ ४४ ॥ वृन्दाचितामूमितले चिक्षिपुस्तानि ते सुराः। स्मृत्वा तास्संस्थित स्तत्र शिवशक्त्यंशका मुने ॥ ४५ ॥ निक्षिप्तेभ्यश्च बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्। धात्री च मालती चैव तुलसी च मुनीश्वर ॥४६॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता। गौरीभवा च तुलसी तमस्सत्त्वरजोगुणाः ४७ विष्णुर्वनस्पतीर्दृष्ट्वा तदा स्त्रीरूपिणीर्मुने। उदतिष्ठत्तदा तासु रागातिशयविभ्रमः ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा स याचते मोहात्कामासक्तेन चेतसा। तं चापि तुलसी धात्री रागेनैवावलोकताम्४९ यच्च बीजं पुरा लक्ष्म्या माययैव समर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापरा

वह देवियें अपनी कांतिसे दिशाओंमें उजाला फैलाती हुई उनके सामने प्रकट होगई ।३९। तब देवताओंने उनका दर्शन पा भक्तिपूर्वक प्रसन्नचितसे उनको प्रणाम कर उनकी स्तुति की और अपना कार्य भी कहा ॥ ४० ॥ तब उन भक्तवत्सल देवियोंने देवताओंको नम्र देख कर कुछ बीज दिये और आदरपूर्वक यह बात कही, कि—॥ ४१ ॥ देवियोंने कहा, कि--जहाँ पर विष्णु हैं, तहाँ पर तुम इन बीजोंको बोओ, तो तुम्हारा कार्य सिद्ध होजावेगा ४२ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुने ! रुद्र विष्णु और ब्रह्माजीकी वे त्रिगुणात्मिका शक्तियें इस प्रकार कह कर अन्तर्धान होगईं ॥ ४३ ॥ तब इन्द्र और ब्रह्मा आदि सकल देवता प्रसन्नतापूर्वक उन बीजोंको ग्रहण कर जहाँ पर हरि थे, तहाँको चल दिये ॥४४॥ हे मुने ! फिर उन्होंने वृन्दाकी चिताके भूमितलमें स्थित हो उन शिवशक्तिके अंश वाली देवियोंका स्मरण कर वे बीज फेंक दिये ।४५। हे मुनीश्वर ! उन फेंके हुए बीजोंसे तीन वनस्पतियें उत्पन्न हुईं, धात्री, मालती और तुलसी ॥ ४६ ॥ जो धात्री (ब्रह्माणी) से प्रकट हुई थी वह धात्री कहलाती है और लक्ष्मीके दिये हुए बीजोंसे मालती प्रकट हुई तथा गौरीके दिये हुए बीजोंसे तुलसी प्रकट हुई, ये तीनों सत्त्व रज और तमोगुणात्मिका हैं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! विष्णु, स्त्रीरूपिणी वनस्पतियोंको देख रागवश भ्रान्त हो उठ खड़े हुए ।४८। और वह मोहमें पड़ कामासक्त चित्तसे उनसे याचना करने लगे, उनमेंसे तुलसी और धात्रीने उनको रागपूर्वक देखा ॥ ४९ ॥ और लक्ष्मीने बीज पहिले माया करके दिया था अतः उससे

भवत् ॥ ५० ॥ अतस्सा बर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिताम् । धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥ ५१ ॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु । वैकुण्ठमगमत्तुष्टस्सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥ ५२ ॥ कार्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्री च तुलसी सदा । सर्वदेवप्रिया ज्ञेया विष्णोश्चैव विशेषतः ॥ ५३ ॥ तत्रापि तुलसी धन्यातीव श्रेष्ठा महामुने । त्यक्त्वा गणेशं सर्वेषां प्रीतिदा सर्वकामदा ५४ वैकुण्ठस्थं हरिं दृष्ट्वा ब्रह्मेन्द्राद्याश्च तेऽमराः । नत्वा स्तुत्वा महाविष्णुं स्वस्वधामानि वै ययुः ॥ ५५ ॥ वैकुण्ठोऽपि स्वलोकस्थो भ्रष्टमोहस्सुबोधवान् । सुखी चाभून्मुनिश्रेष्ठ पूर्ववत्संस्मरञ्छिवम् ॥ ५६ ॥ इत्याख्यानमघौघघ्नं सर्वकामप्रदं नृणाम् । सर्वकामविकारघ्नं सर्वविज्ञानवर्द्धनम् ॥ ५७ ॥ य इदं हि पठेन्नित्यं पाठयेद्वापि भक्तिमान् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ५८ ॥ पठित्वा य इदं धीमानाख्यानं परमोत्तमम् । संग्रामं प्रविशेद्वीरो विजयी स्यान्न संशयः ॥ विप्राणां ब्रह्मविद्यादं क्षत्रियाणां जयप्रदम् । वैश्यानां सर्वधनदं शूद्राणां सुखदं त्विदम् ॥

प्रकट हुई नारी ईर्ष्यालु हुई ॥५०॥ अतः उसका बर्बरी ऐसा निन्दित नाम हुआ, धात्री और तुलसी उनसे राग करने वाली होनेसे उनको सदा प्रसन्न करती हैं ॥ ५१ ॥ तब विष्णु दुःखको भूल सब देवताओंसे नमस्कार पाते हुए सन्तुष्ट हो उन स्त्रियोंके साथ वैकुण्ठको चले गए ॥ ५२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! कार्तिकके मासमें धात्री (आँवला) और तुलसी सब देवताओंको प्रिय लगती है और विष्णुको विशेषरूपसे प्रिय लगती है ॥ ५३ ॥ हे मुने ! उनमें भी तुलसी परमधन्य और श्रेष्ठ है, गणेशको छोड़कर यह सबको प्रसन्न करने वाली है और सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाली है ॥ ५४ ॥ ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता, हरिको वैकुण्ठमें विराजमान देख उन महाविष्णुकी स्तुति कर और उनको प्रणाम कर अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ ५५ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् विष्णु भी अपने लोकमें पहुँच मोहभ्रष्ट तथा ज्ञानवान् हो पूर्ववत् शिवका स्मरण करते हुए सुखी रहने लगे ॥ ५६ ॥ यह आख्यान पापका नाश करने वाला है, मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है, कामके विकारको पूर्णरीतिसे दूर करने वाला है और सकल प्रकारके ज्ञानकी वृद्धि करने वाला है ॥ ५७ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक नित्य इसको पढ़ता है, वा पढ़ाता है, सुनता है वा सुनाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥५८॥ जो बुद्धिमान् वीर पुरुष इस कथाको सुन कर युद्धमें प्रवेश करता है, उसको अवश्य विजय मिलती है ॥ ५९ ॥ यह आख्यान ब्राह्मणोंको ब्रह्मविद्या देने वाला है, क्षत्रियोंको विजय देने वाला है और वैश्योंको सब प्रकारका धन देने वाला है तथा शूद्रोंको सुख देने वाला है ॥ ६० ॥ हे व्यासजी ! यह

शम्भुभक्तिप्रदं व्यास सर्वेषां पापनाशनम् । इह लोके परत्रापि सदा सद्गतिदायकम् ६१

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधानन्तरदेवीस्तुतिविष्णुमोहविध्वंसवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथान्यच्छम्भुचरितं प्रेमतः शृणु त्वं मुने यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥ शंखचूडाभिधो वीरो दानवो देवकंटकः । यथा शिवेन निहतो रणमूर्ध्नि त्रिशूलतः ॥ २ ॥ तच्छम्भुचरितं दिव्यं पवित्रं पापनाशनम् । शृणु व्यास सुसंप्रीत्या वच्मि सुस्नेहतस्तव ॥ ३ ॥ मरीचेस्तनयो धातुः पुत्रो यः कश्यपो मुनिः । स धर्मिष्ठस्सृष्टिकर्त्ता विद्यावान्प्रजापतिः ॥ ४ ॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश । तासां प्रसूतिः प्रसभं न कथ्या बहुविस्तृता ॥ ५ ॥ यत्र देवादिनिखिलं चराचरमभूज्जगत् । विस्तरात्तत्प्रवक्तुं च कः क्षमोऽस्ति त्रिलोकके ॥ ६ ॥ प्रस्तुतं शृणु वृत्तान्तं शम्भुलीलान्वितं च यत् । तदेव कथयाम्यद्य शृणु भक्तिप्रवर्द्धनम् ॥ ७ ॥ तासु कश्यपपत्नीषु दनुस्त्वेका वरांगना । महारूपवती साध्वी पतिसौभाग्यवर्द्धिता ॥ ८ ॥ आसंस्तस्या दनोः पुत्रा: बहवो बलवत्तराः । तेषां नामानि नोच्यन्ते विस्तारभयतो मुने ॥ ९ ॥ तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः

आख्यान शम्भुकी भक्तिको देने वाला और सब पापोंको दूर करने वाला है, इस कथासे इस लोकमें और परलोकमें भी सद्गति प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सनत्कुमारजीने कहा, कि–हे मुने ! शम्भुके दूसरे चरित्रको अब प्रेमपूर्वक सुनो, इसको सुननेसे शिवभक्ति दृढ़ होजाती है ॥ १ ॥ शंखचूड़ नामवाला वीर दानव देवताओंको काँटासा खटकता था, शिवने उसको रणके मुहाने पर त्रिशूलसे मार डाला था, शम्भुके उस पापनाशक दिव्य चरित्रको सुनो, हे व्यासजी ! तुम्हारे ऊपर स्नेह होनेसे मैं उसको प्रीतिपूर्वक कहता हूँ ॥२॥३॥ मरीचिके पुत्र धाताके कश्यप-मुनि नामक पुत्र हुए, वह धर्मात्मा, सृष्टिकर्ता, विद्यावान् और प्रजापति थे ॥ ४ ॥ दक्षने प्रीतिपूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ उनको विवाह दीं, उनकी सन्तान बहुत हैं, उनका कोई हठ करके वर्णन नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ उनसे त्रिलोकोमें देवता आदि सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकट हुआ है, उसको विस्तारपूर्वक कौन कह सकता है ॥ ६ ॥ अब तुम शम्भुकी लीलासे भरे हुए भक्तिवर्धक प्रस्तुत वृत्तान्तको ही सुनो, उसको ही मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥ उन कश्यपकी पत्नियोंमें दनु नामकी एक श्रेष्ठ स्त्री थी, वह बड़ी रूप वाली, साध्वी और पतिके सौभाग्यसे बढ़ती हुई थी ॥ ८ ॥ हे मुने ! उस दनुके बहुतसे बलवान् पुत्र हुए, विस्तारभयसे उनके नामोंका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता है ॥ ९ ॥ उनमें विप्रचित्ति नामक एक दैत्य महाबली और

नासीत्तत्तनयो वीरस्ततश्चिंतापरोऽभवत् । शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णमन्त्रमवाप्य च ॥
तपश्चकार परमं पुष्करे लक्षवर्षकम् । कृष्णमन्त्रं जजापैव दृढं बद्ध्वासनं चिरम् ।१२।
तपः प्रकुर्वतस्तस्य मूर्ध्नो निस्सृत्य प्रज्वलत् । विससार च सर्वत्र तत्तेजो हि सुदुस्सहम्
तेन तप्तास्सुरास्सर्वे मुनयो मनवस्तथा । सुनासीरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥१४॥
प्रणम्य च विधातारं दातारं सर्वसंपदाम् । तुष्टुवुर्विकलाः प्रोचुः स्ववृत्तांतं विशेषतः १५
तदाकर्ण्य विधातापि वैकुण्ठं तैर्ययौ सह । तदेव विज्ञापयितुं निखिलेन हि विष्णवे ॥
तत्र गत्वा त्रिलोकेशं विष्णुं रक्षाकरं परम् । प्रणम्य तुष्टुवुस्सर्वे करौ बद्ध्वा विनम्रकाः
देवा ऊचुः । देवदेव न जानीमो जातं किं कारणं विद् । संतप्तास्सकला जातास्तेजसा
केन तद्वद ॥ १८ ॥ तप्तात्मनां त्वमविता दीनबन्धोऽनुजीविनाम् । रक्ष रक्ष रमानाथ
शरण्यश्शरणागतान् ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा वचो विष्णुर्ब्रह्मादीनां
दिवौकसाम् । उवाच विहसन्प्रेम्णा शरणागतवत्सलः ॥ २० ॥ विष्णुरुवाच । सुस्वस्था
भवताऽव्यग्रा न भयं कुरुतामराः । नोपप्लवा भविष्यन्ते लयकालो न विद्यते ॥ २१ ॥

पराक्रमी था, उसका पुत्र दम्भ हुआ, वह धार्मिक विष्णुभक्त और जितेन्द्रिय था ॥ १० ॥ उसके कोई पुत्र नहीं हुआ अतः वह वीर चिन्ता करने लगा, तदनन्तर उसने शुक्राचार्यको गुरु बना कर उनसे कृष्णमन्त्र प्राप्त किया ११ और पुष्करमें जाकर तप करने लगा उसने दृढ़ आसन बाँध कृष्णमन्त्रका जप करते हुए एक लाख वर्ष बिता दिये ॥ १२ ॥ तप करते २ उसके मस्तकमें से प्रज्वलित तेज निकलने लगा और वह दुःसह तेज सर्वत्र फैल गया ।१३। उससे मुनि मनु और सकल देवता संतप्त होने लगे और इन्द्रको साथमें लेकर ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे ॥१४॥ और सकल सम्पत्तियोंको देने वाले विधाता को प्रणाम और स्तुति कर विकलतापूर्वक उनसे अपना सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ १५ ॥ इस बातको सुन विधाता भी उनको साथ ले विष्णुको सब समाचार देनेके लिये वैकुण्ठको चल दिये ॥ १६ ॥ वहाँ पहुँच परम रक्षक त्रिलोकेश विष्णुको शिर झुका प्रणाम कर सब हाथ जोड़ स्तुति करने लगे १७ देवताओंने कहा, कि-हम नहीं जानते, कि-क्या हुआ, हम सब संतप्त होरहे हैं, हे देवदेव ! किस तेजसे ऐसा होरहा है, आप उसको बताइये ॥ १८ ॥ हे दीनबन्धो ! हम तपे हुए सेवकोंके आप ही रक्षक हैं, हे शरण लेने योग्य रमानाथ ! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करें ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-शरणागतवत्सल विष्णु ब्रह्मा आदि देवताओंके इस वचनको सुन हँस कर प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥ २० ॥ विष्णुने कहा, कि-हे देवताओं ! तुम स्वस्थ हो घबड़ाओ मत ! कोई उपद्रव नहीं होगा, अभी प्रलयका समय नहीं आया

दानवो दम्भनामा हि मद्भक्तः कुरुते तपः । पुत्रार्थी शमयिष्यामि तमहं वरदानतः २२
सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तास्ते सुरास्सर्वे धैर्यमालम्ब्य वै मुने । ययुर्ब्रह्मादयस्सुस्थास्स्व-
स्वधामानि सर्वशः ॥२३॥ अच्युतोऽपि वरं दातुं पुष्करं संजगाम ह । तपश्चरति यत्रासौ
दम्भनामा हि दानवः ॥ २४ ॥ तत्र गत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच परिसांत्वयन् । गिरा सूनृतया
भक्तं जपन्तं स्वमनुं हरिः ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दृष्ट्वा तं च पुरः स्थितम् ।
प्रणनाम महाभक्त्या तुष्टाव च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ दम्भ उवाच । देवदेव नमस्तेऽस्तु
पुंडरीकविलोचन । रमानाथ त्रिलोकेश कृपां कुरु ममोपरि ॥ २७ ॥ स्वभक्तं तनयं देहि
महाबलपराक्रमम् । त्रिलोकजयिनं वीरमजेयं च दिवौकसाम् ॥२८॥ सनत्कुमार उवाच।
इत्युक्तो दानवेन्द्रेण तं वरं प्रददौ हरिः । निवर्त्य चोग्रतपसस्ततस्सोऽन्तरधान्मुने ॥ २९ ॥
गते हरौ दानवेन्द्रः कृत्वा तस्यै दिशे नमः । जगाम स्वगृहं सिद्धतपाः पूर्णमनोरथः ।३०।
कालेनाल्पेन तत्पत्नी सगर्भा भाग्यवत्यभूत् । रराज तेजसात्यन्तं रोचयन्ती गृहांतरम् ॥
सुदामा नाम गोपो यः कृष्णस्य पार्षदाग्रणीः । तस्या गर्भे विवेशासौ राधाशप्तश्च यन्मुने

है ॥ २१ ॥ मेरा भक्त दंभ नामक दानव, पुत्र पानेके लिये तप कर रहा है, उसको मैं वरदान देकर शान्त किये देता हूँ ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-मुने ! व्यासजी ! इस प्रकार कहने पर वे सब ब्रह्मा आदि देवता धैर्य धारण कर स्वस्थतापूर्वक अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ २३ ॥ तब अच्युत भी जहाँ पुष्करमें दम्भ नामक दानव तप कर रहा था तहाँ उसको वर देनेके लिये चल दिये ॥२४॥ तहाँ पहुँच हरिने अपने मन्त्रका जप करते हुए भक्त दम्भको मधुर वाणीमें ढाढ़स देकर कहा, कि-वर माँग ॥२५॥ विष्णुके इस वचनको सुन और उनको सामने खड़ा हुआ देख दम्भ बड़ी भक्तिके साथ उनको प्रणाम कर वारम्बार स्तुति करने लगा ॥ २६ ॥ दम्भने कहा, कि-हे देवदेव पुण्डरीकाक्ष ! आपको प्रणाम है हे त्रिलोकीके स्वामी रमानाथ ! आप मुझ पर कृपा करिये ॥२७॥ आप मुझे महाबली विष्णुभक्त पुत्र दीजिये, वह त्रिलोकीको जीत लेय और देवता उसको न जीत सकें ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-दानवराजके इस प्रकार कहने पर हरिने उसको वरदान देदिया, इस प्रकार हे मुने ! उसको उग्र तपसे निवृत्त करके अंतर्धान होगए ॥ २९ ॥ हरिके प्रस्थान करने पर दानवराजने उस दिशाको प्रणाम किया और तपमें सिद्धि पा, पूर्णमनोरथ हो अपने घरको चल दिया ॥३०॥ थोड़े ही समयमें उसकी भाग्यवती पत्नी गर्भवती होगई और वह अपने घरके भीतरी भागको तेजसे दमकाती हुई दमकने लगी ॥ ३१ ॥ हे मुने ! कृष्णके पार्षदोंमें अग्रणी जो सुदामा नामका गोप था उसको राधाने शाप दिया था, उसने उसके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ उस साध्वीने समय आने पर उस

असूत समये साध्वी सुप्रभं तनयं ततः । जातकं सुचकारासौ पिताहूय मुनीन्बहून् ।३३।
उत्सवस्सुमहानासीत्तस्मिञ्जाते द्विजोत्तम । नाम चक्रे पिता तस्य शंखचूडेति सद्दिने ॥
पितुर्गेहे स ववृधे शुक्लाच्चे यथा शशी । शैशवेऽभ्यस्तविद्यस्तु स बभूव सुदीप्तिमान् ।३५।
स बालक्रीडया नित्यं पित्रोर्हर्षं ततान ह । प्रियो बभूव सर्वेषां कुलजानां विशेषतः ॥३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सनत्कुमार उवाच । ततश्च शंखचूडोऽसौ जैगीषव्योपदेशतः । तपश्चकार सुप्रीत्या ब्रह्मणः पुष्करे चिरम् ॥ १ ॥ गुरुदत्तां ब्रह्मविद्यां जजाप नियतेन्द्रियः । स एकाग्रमना भूत्वा करणानि निगृह्य च ॥ २ ॥ तपन्तं पुष्करे तं वै शंखचूडं च दानवम् । वरं दातुं जगामाशु ब्रह्मा लोकगुरुर्विभुः ॥३॥ वरं ब्रूहीति प्रोवाच दानवेन्द्रं विधिस्तदा । स दृष्ट्वा तं ननामातिनम्रस्तुष्टाव सद्गिरा ॥४॥ वरं ययाचे ब्रह्माणमजेयत्वं दिवौकसाम् । तथेत्याह विधिस्तं वै सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णकवचं दिव्यं जगन्मङ्गलमङ्गलम् । दत्तवाञ्शंखचूडाय सर्वत्र विजयप्रदम् ॥ ६ ॥ बदरीं संप्रयाहि त्वं तुलस्या सह तत्र वै । विवाहं कुरु तत्रैव सा तपस्यति कामतः ॥७॥ धर्मध्वजसुता सेति संदिदेश च तं विधिः ।

सुन्दर कान्ति वाले पुत्रको उत्पन्न किया, तब पिताने बहुतसे मुनियोंको बुला कर उसका जातकर्मसंस्कार किया ॥३३॥ हे द्विजोत्तम ! उसके उत्पन्न होने पर बड़ा भारी उत्सव हुआ और श्रेष्ठ दिनमें पिताने उसका शङ्खचूड़ नाम रखा३४ वह पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान बढ़ने लगा और शैशवमें विद्या का अभ्यास कर दीप्तिमान् होगया ॥ ३५ ॥ वह बालक्रीड़ासे माता पिताके हर्षको बढ़ाने लगा और अपने कुल वालोंका बड़ा प्रिय होगया ॥ ३६ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ❀ । ❀ ॥

सनत्कुमारजीने कहा, कि—तदनन्तर शङ्खचूड़ जैगीषव्यके उपदेशसे पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीके लिये प्रीतिपूर्वक तप करने लगा ॥ १ ॥ वह इन्द्रियोंको वश में कर और चित्तको एकाग्र कर गुरुकी दी हुई ब्रह्मविद्याका जप करने लगा२ तब संसारके गुरु विभु ब्रह्माजी पुष्करमें तप करते हुए शंखचूड़ दानवको वर देनेके लिये शीघ्र ही आये ॥ ३ ॥ और उस दानवेन्द्रसे कहा, कि—वर माँग, उसने ब्रह्माजीको देख नम्रतापूर्वक उनको प्रणाम किया और फिर श्रेष्ठ वाणी में उनकी स्तुति करने लगा ॥ ४ ॥ फिर उसने ब्रह्माजीसे वर माँगा, कि—मैं देवताओंसे अजेय रहूँ, तब ब्रह्माजीने प्रसन्न चित्तसे कहा, कि—"तथास्तु" ५ और शङ्खचूड़को जगन्मङ्गलमङ्गल सर्वत्र विजय देने वाला दिव्य श्रीकृष्णकवच दिया ॥ ६ ॥ और कहा, कि—तुम बदरिकाश्रमको जाओ और वहाँ तुलसीके साथ विवाह करो, वह वहाँ पर सकामभावसे तप कर रही है ॥७॥ वह धर्मध्वज

अन्तर्धानं जगामाशु पश्यतस्तस्य तत्क्षणात् ॥८॥ ततस्स शंखचूडो हि तपः सिद्धोऽतिपुष्करे। गले बबन्ध कवचं जगन्मङ्गलमङ्गलम् ॥ ९ ॥ आज्ञया ब्रह्मणस्सोऽपि तपःसिद्धमनोरथः। समाययौ प्रहृष्टास्यस्तूर्णं बदरिकाश्रमम् ॥ १० ॥ यदृच्छया गतस्तत्र शंखचूडश्च दानवः। तपश्चरन्ती तुलसी यत्र धर्मध्वजात्मजा ॥११॥ सुरूपा सुस्मिता तन्वी शुभभूषणभूषिता। सकटाक्षं ददर्शासौ तमेव पुरुषं परम् ॥१२॥ दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्। उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः ॥ १३ ॥ शंखचूड उवाच। का त्वं कस्य सुता त्वं हि किं करोषि स्थितात्र किम्। मौनीभूता किंकरं मां संभावितुमिहार्हसि ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामं तमुवाच सा ॥ १५ ॥ तुलस्युवाच। धर्मध्वजसुताहं च तपस्यामि तपस्विनी। तपोवने च तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥ १६ ॥ नारीजातिर्मोहिनी च ब्रह्मादीनां विषोपमा। निन्द्या दोषकरी माया शृङ्खला ह्यनुशायिनाम्। १७ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा तुलसी तं च सरसं विरराम ह। दृष्ट्वा तां सस्मितां सोऽपि प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १८ ॥ शंखचूड उवाच। त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्। किञ्चित्सत्यमलीकं च

की पुत्री है, इस प्रकार उसको संदेश देकर ब्रह्माजी उसके सामने ही तत्काल अन्तर्धान होगए ॥ ८ ॥ तब उस तपःसिद्ध शङ्खचूड़ने उस जगन्मङ्गलमंगल कवचको पुष्करक्षेत्रमें अपने गलेमें बाँध लिया ॥९॥ फिर तपसे सिद्ध होगया है मनोरथ जिसका ऐसा शङ्खचूड़ ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार प्रसन्नमुखसे बदरिकाश्रमको चल दिया ॥ १० ॥ और जहाँ पर धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी, तहाँ पर अकस्मात् जापहुँचा ॥११॥ उस सुन्दर रूप और सुन्दर हास्य वाली सूक्ष्म अंग और शुभ आभूषणोंसे विभूषित स्त्रीने भी कटाक्षपूर्वक उस ही श्रेष्ठ पुरुषको देखा, १२ उस ललित रमणीय सुशील सुन्दरी सतीको देख शङ्खचूड़ उसके समीप जा मधुर वाणीमें कहने लगा ॥१३॥ शङ्खचूड़ने कहा, कि-तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो और यहाँ चुपचाप किस लिये खड़ी हो, तुम मुझे अपना किंकर समझो ॥१४॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-इस प्रकार की बातें सुन तुलसीने उस सकाम शङ्खचूड़से कहा ॥ १५ ॥ तुलसीने कहा, कि-मैं धर्मध्वजकी तपस्विनी पुत्री हूँ और यहाँ तपोवनमें तप कर रही हूँ, तुम कौन हो, सुखपूर्वक अपने स्थानको चले जाओ ॥ १६ ॥ क्योंकि-नारी जाति ब्रह्मा आदिको भी मोहमें डालने वाली है, विषकी समान (त्यागने योग्य) है, निन्दनीय है, दूषित करने वाली है और जो कर्मके जालसे पश्चात्ताप करके छूटना चाहते हैं, उनके लिये बेड़ीकी समान है ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-तुलसी इस प्रकार उससे रसभरी बात कह कर चुप होगई, फिर वह भी उसको मुस्कुराती हुई देख कर कहने लगा ॥ १८ ॥ शंखचूड़ने कहा,

किञ्चिन्मत्तो निशामय ॥ १६ ॥ पतिव्रताः स्त्रियो याश्च तासां मध्ये त्वमग्रणीः । न चाहं पापदृक्कामो तथा त्वं नेति धीर्मम ॥ २० ॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना । गांधर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥ २१ ॥ शंखचूडोऽहमेवास्मि देवविद्रावकारकः । मां न जानासि किं भद्रे न श्रुतोऽहं कदाचन ॥ २२ ॥ दनुवंश्यो विशेषेण दम्भपुत्रश्च दानवः । सुदामा नाम गोपोऽहं पार्षदश्च हरेः पुरा अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः । जातिस्मरोऽहं जानामि सर्वं कृष्णप्रभावतः ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच । एवमुक्त्वा शंखचूडो विरराम च तत्पुरः । दानवेन्द्रेण सेत्युक्ता वचनं सत्यमादरात् । सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे तुलस्युवाच । त्वयाहमधुना सत्त्वविचारेण पराजिता । स धन्यः पुरुषो लोके न स्त्रिया यः पराजितः ॥ २६ ॥ सत्क्रियोऽप्यशुचिर्नित्यं स पुमान्यः स्त्रिया जितः । निन्दन्ति पितरो देवा मानवास्सकलाश्च तम् ॥ २७ ॥ शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतसूतके । क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहतः ॥ २८ ॥ शूद्रो मासेन शुद्ध्येत्तु इति वेदानुशासनम् । न शुचिः स्त्रीजितः क्वापि चितादाहं विना पुमान् ॥ २६ ॥

कि-हे देवि ! तुमने जो बातें कहीं, वह सर्वांशमें असत्य नहीं हैं, उनमें कुछ सत्य हैं, कुछ असत्य हैं और कुछ तुम मुझसे सुनो ॥ १९ ॥ जो पतिव्रता स्त्रियें हैं, उनमें तुम अग्रणी हो और मैं भी पापदर्शी कामी नहीं हूँ और इसी प्रकार तुम भी पापिनी नहीं हो, ऐसा मेरा विचार है ॥२०॥ मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ और हे शोभने ! मैं तुमको गान्धर्वविवाहकी विधिसे विवाहूँगा ॥ २१ ॥ देवताओंको भगाने वाला शंखचूड़ मैं ही हूँ, हे भद्रे ! क्या तू मुझे नहीं जानती ? क्या तूने कभी मेरा नाम नहीं सुना ? ॥ २२ ॥ मैं दनु के वंशमें उत्पन्न हुआ दम्भका पुत्र दानव हूँ, पहिले मैं हरिका पार्षद सुदामा नाम का गोप था ॥ २३ ॥ अब मैं राधिकाके शापसे दानवेन्द्र बना हुआ हूँ कृष्ण के प्रभावसे मुझे अपने पूर्वजन्मका सारा स्मरण है ॥ २४ ॥ सनत्कुमार कहते हैं, कि-शंखचूड़ उससे इस प्रकार कह कर चुप होगया दानवेन्द्रके इस प्रकार आदरपूर्वक सत्य वचन कहनेसे तुलसी सन्तुष्ट हुई और मुस्कुरा कर कहने लगी ॥ २५ ॥ तुलसीने कहा, कि-तुमने मुझे आज अपने सात्त्विक विचार से पराजित कर दिया संसारमें वह पुरुष धन्य है, कि-स्त्री जिसका पराजय नहीं करती ॥ २६ ॥ जिस पुरुषको स्त्री जीत लेती है वह पुरुष सत्कर्म करने पर भी अपवित्र ही रहता है, पितर देवता मनुष्य सब ही उसकी निन्दा करते हैं ॥ २७ ॥ विप्र जननाशौचमें और मरणाशौचमें दश दिनमें शुद्ध होजाता है, क्षत्रिय बारह दिनमें शुद्ध होजाता है और वैश्य पन्द्रह दिनमें शुद्ध होजाता है ॥ २८ ॥ और शूद्र महीने भरमें शुद्ध होता है तथा स्त्रीसे पराजित हुआ

न गृह्णतीच्छया तस्मात्पितरः पिंडतर्पणम्। न गृह्णन्ति सुरास्तेन दत्तं पुष्पफलादिकम् ॥३०॥ तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः। विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ३१ ॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः। कृत्वा कांतपरीक्षां वै वृणुयात्कामिनी वरम् ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्येवं प्रवदंत्यां तु तुलस्यां तत्क्षणे विधिः। तत्राजगाम संस्रष्टा प्रोवाच वचनं ततः ॥३३। ब्रह्मोवाच। किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह। गांधर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु ३४ त्वं वै पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं च त्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान् भवेत् ॥ ३५ ॥ निर्विरोधं सुखं राजन् को वा त्यजति दुर्लभम्। योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥३६॥ किं त्वं परीक्षसे कांतमीदृशं गुणिनं सती। देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥३७॥ अनेन सार्द्धं सुचिरं विहारं कुरु सर्वदा। स्थाने स्थाने यथेच्छं च सर्वलोकेषु सुन्दरि ॥ ३८ ॥ अन्ते प्राप्स्यति गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव सः। चतुर्भुजं च वैकुण्ठे मृते तस्मिन् त्वमाप्स्यसि ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्येवमाशिषं दत्वा स्वालयं तु ययौ विधिः। गांधर्वेण विवाहेन

पुरुष चितामें भस्म होकर ही शुद्ध होता है वैसे शुद्ध नहीं होता ॥ २९ ॥ उससे पितर इच्छापूर्वक पिण्ड और तर्पणको ग्रहण नहीं करते और उसके दिये हुए पुष्प फल आदिको देवता भी ग्रहण नहीं करते हैं ॥३०॥ स्त्रियोंसे जिसका मन दूषित होजाता है उसके ज्ञान तप जप होम पूजन विद्या और दान से क्या है ? ॥ ३१ ॥ तुम्हारे ज्ञान विद्या और प्रभावको जाननेके लिये मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, क्योंकि–कामिनीको चाहिये, कि–परीक्षा करके कांत को वरण करे ॥३२॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–तुलसी इस प्रकार कह रही थी, कि–ब्रह्माजी तत्काल वहाँ आगए और कहने लगे ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे शंखचूड़ ! तुम इसके साथ सम्वाद क्या कर रहे हो, तुम तो गांधर्वविवाहसे इसको ग्रहण करलो ॥ ३४ ॥ तुम पुरुषरत्न हो और यह सती स्त्रीरत्न है, अतः चतुरका चतुराके साथ समागम गुणवान् ही होगा ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! विरोधरहित निर्भय सुखको कौन त्यागा करता है, जो निर्विरोध सुखको त्याग देता है, वह पशु ही है ॥ ३६ ॥ हे सति ! तू ऐसे गुणी स्वामी की क्या परीक्षा कर रही है, यह तो देवता असुर और दानवोंके भी मर्दन करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ हे सुन्दरि ! तुम इनके साथ सब लोकोंमें स्थान २ पर अपनी इच्छानुसार यथेष्ट विहार करो ॥३८॥ यह अन्तमें गोलोकमें श्रीकृष्ण को प्राप्त होंगे और तुम भी इनके मरने पर वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान्में लीन होजाओगी ॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-ब्रह्माजी इस प्रकार आशीर्वाद देकर अपने लोकको चले गए और दानवने भी उसको गान्धर्वविवाहसे

जगृहे तां च दानवः ॥ ४० ॥ एवं विवाह्य तुलसीं पितुः स्थानं जगाम ह । स रेमे रमया सार्द्धं वासगेहे मनोरमे ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडतपःकरणविवाहवर्णनं नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

सनत्कुमार उवाच । स्वगेहमागते तस्मिञ्शंखचूडे विवाहिते । तपः कृत्वा वरं प्राप्य मुमुदुर्दानवादयः ॥ १ ॥ स्वलोकादाशु निर्गत्य गुरुणा स्वेन संयुताः । सर्वेऽसुरास्संमिलितास्समाजग्मुस्तदन्तिकम् ॥ २ ॥ प्रणम्य तं सविनयं संस्तुत्य विविधादरात् । स्थितास्तत्रैव सुप्रीत्या मत्वा तेजस्विनं विभुम् ॥ ३ ॥ सोऽपि दम्भात्मजो दृष्ट्वागतं कुलगुरुं च तम् । प्रणनाम महाभक्त्या साष्टांगं परमादरात् ॥ ४ ॥ अथ शुक्रः कुलाचार्यो दत्त्वाशिषमनुत्तमम् । वृत्तांतं कथयामास देवदानवयोस्तदा ५ स्वाभाविकं च तद्वैरमसुराणां पराभवम् । विजयं निर्जराणां च जीवसाहाय्यमेव च ॥ ६ ॥ ततस्स सम्मतं कृत्वाऽसुरैस्सर्वैस्समुत्सवम् । दानवाद्यसुराणां तमधिपं विदधे गुरुः ॥ ७ ॥ तदा समुत्सवो जातोऽसुराणां मुदितात्मनाम् । उपायनानि सुप्रीत्या ददुस्तस्मै च तेऽखिलाः ॥ ८ ॥ अथ दम्भात्मजो वीरश्शंखचूडः प्रतापवान् । राज्याभिषेकमासाद्य संरेजेऽसुरराट् तदा ॥ ९ ॥ स सेनां महतीं कर्षन्दैत्य-

---

ग्रहण कर लिया ॥ ४० ॥ वह इस प्रकार तुलसीसे विवाह कर अपने पिताके घर चला गया और रमणीय भवनमें रह कर उस स्त्रीके साथ विहार करने लगा ॥ ४१ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ ❀ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जब शंखचूड़ तप कर, वर पा विवाह कर अपने घर आगया, तब दानव और दैत्य प्रसन्न होने लगे ॥ १ ॥ सब असुर अपने अपने घरोंसे निकल गुरु शुक्राचार्यको साथ ले उसके पास आये ॥ २ ॥ और विनयपूर्वक उसको प्रणाम कर और आदरपूर्वक उसकी प्रशंसा कर उसको अपना तेजस्वी प्रभु मान प्रीतिपूर्वक वहाँ खड़े होगए ॥ ३ ॥ तब उस दम्भपुत्रने भी अपने कुलगुरुको आया देख बड़े आदर और भक्तिके साथ उनको साष्टांग प्रणाम किया ॥ ४ ॥ तब कुलगुरु शुक्राचार्य उसको उत्तम आशीर्वाद दे देवता और दानवोंके वृत्तान्तको कहने लगे ॥ ५ ॥ उन्होंने देवता और असुरोंके स्वाभाविक वैरका वर्णन किया और बृहस्पतिकी सहायतावश असुरों के पराभव और देवताओंकी विजयका वृत्तान्त कहा ॥ ६ ॥ तदनन्तर गुरु शुक्राचार्यने सब असुरोंसे सम्मति करके उसको दानवोंका और असुरोंका स्वामी बना दिया ॥ ७ ॥ उस समय प्रसन्न चित्त वाले असुरोंने बड़ा उत्सव मनाया, प्रीतिपूर्वक उसको भेंटें दीं ॥ ८ ॥ तब दम्भपुत्र वीर प्रतापी शंखचूड़ राज्याभिषेक होने पर असुरराज बन कर शोभा पाने लगा ॥९॥ फिर वह दैत्य दानव

दानवरक्षसाम् । रथमास्थाय तरसा जेतुं शक्रपुरीं ययौ ॥ १० ॥ गच्छन्स दानवेन्द्रस्तु तेषां सेवनकुर्वताम् । विरेजे शशिवन्नृणां ग्रहाणां ग्रहराडिव ॥ ११ ॥ आगच्छन्तं शंखचूडमाकर्ण्याखंडलस्स्वराट् । निखिलैरमरैस्सार्द्धं तेन योद्धुं समुद्यतः ॥१२॥ तदाऽसुरैस्सुराणां च संग्रामस्तुमुलो ह्यभूत् । वीराऽऽनन्दकरः क्लीबभयदो रोमहर्षणः ॥१३॥ महान्कोलाहलो जातो वीराणां गर्जतां रणे । वाद्यध्वनिस्तथा चाऽऽसीत्तत्र वीरत्ववर्द्धिनी ॥ १४ ॥ देवाः प्रकुप्य युयुधुरसुरैर्बलवत्तराः । पराजयं च संप्रापुरसुरा दुद्रुवुर्भयात् ॥१५॥ पलायमानांस्तान्दृष्ट्वा शंखचूडस्स्वयं प्रभुः । युयुधे निर्जरैस्सार्कं सिंहनादं प्रगर्ज्य च ॥ १६ ॥ तरसा सहसा चक्रे कदनं त्रिदिवौकसाम् । प्रदुद्रुवुस्सुरास्सर्वे तत्सुतेजो न सेहिरे ॥ १७ ॥ यत्र तत्र स्थिता दीना गिरीणां कन्दरासु च । तदधीना न स्वतंत्रा निःप्रभाः सागरा यथा ॥ १८ ॥ सोऽपि दम्भात्मजश्शूरो दानवेन्द्रः प्रतापवान् । सुराधिकारान्संजह्रे सर्वाल्लोकान्विजित्य च ॥१९॥ त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे यज्ञभागांश्च कृत्स्नशः । स्वयमिंद्रो बभूवापि शासितं निखिलं जगत् ॥ २० ॥ कौबेरमैन्द्वं सौर्यमाग्नेयं याम्यमेव च ।

और राक्षसोंकी बड़ी भारी सेनाको साथमें ले, रथ पर चढ़ अमरावतीको जीतनेके लिये चल दिया ॥ १० ॥ दानवेन्द्र शंखचूड़ सेवक राक्षसोंके साथ चलता हुआ नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान चन्द्रमाकी समान और ग्रहोंमें सूर्यकी समान शोभा पाने लगा ॥ ११ ॥ शंखचूड़को आता हुआ सुन इन्द्र समस्त देवताओंको साथमें लेकर लड़नेके लिये उद्यत होगया ॥१२॥ तब देवताओंका असुरोंके साथ रोमहर्षण तुमुल संग्राम होने लगा, उससे वीरोंको आनन्द होता था और भीरु पुरुषोंको भय लगता था ॥ १३ ॥ उस समय वीरत्वको बढ़ाने वाले मारू बाजेके बजनेसे रणमें गर्जते हुए योधाओंका बड़ा कोलाहल होने लगा १४ उस समय बलवान् देवता क्रोधमें भर कर असुरोंसे लड़ने लगे, तब असुर हार गए और डर कर भाग चले ॥ १५ ॥ असुरोंको भागते देख प्रभु शंखचूड़ सिंहनाद कर स्वयं देवताओंसे भिड़ गया ॥ १६ ॥ उसने सहसा देवताओंका संहार करना आरम्भ कर दिया, तब उसके तेजको न सह कर देवता भाग निकले ॥१७॥ और दीन हो जहाँ तहाँ पर्वतोंकी गुफाओंमें जाकर रहने लगे, वह स्वतन्त्र नहीं रहे, उसके अधीन होनेसे निष्प्रभ होगए ॥ १८ ॥ इधर शूरवीर प्रतापी दम्भात्मजने भी सब लोकोंको जीत देवताओंके सब अधिकारोंको हर लिया ॥ १९ ॥ वह त्रिलोकीको अपने वशमें कर सकल यज्ञभागोंको हरने लगा, स्वयं इन्द्र बन गया और सकल जगत्का शासन करने लगा ॥ २० ॥ वह अपने बलसे कुबेर चन्द्रमा सूर्य अग्नि यम और वायुके अधिकारका उप-

कारयामास वायव्यमधिकारं स्वशक्तितः ॥ २१ ॥ देवानामसुराणां च दानवानां च रक्षसाम् । गन्धर्वाणां च नागानां किन्नराणां रसौकसाम् ॥ २२ ॥ त्रिलोकस्य परेषां च सकलानामधीश्वरः । स बभूव महावीरश्शंखचूडो महाबली ॥२३॥ एवं स बुभुजे राज्यं राजराजेश्वरो महान् । सर्वेषां भुवनानां च शंखचूडश्चिरं समाः २४ तस्य राज्ये न दुर्भिक्षं न मारी नाशुभग्रहाः । आधयो व्याधयो नैव सुखिन्यश्च प्रजाः सदा ॥ २५ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी ददौ सस्यान्यनेकशः । ओषध्यो विविधाश्चासन्सफलास्सरसाः सदा ॥२६॥ मण्याकराश्च नितरां रत्नखन्यश्च सागराः । सदा पुष्पफला वृक्षा नद्यस्सुसलिलावहाः ॥ २७ ॥ देवान् विनाखिला जीवास्सुखिनो निर्विकारकाः । स्वस्वधर्मस्थितास्सर्वे चतुर्वर्णाश्रमाः परे ॥ २८ ॥ तस्मिञ्छासति त्रैलोक्ये न कश्चिद् दुःखितोऽभवत् । भ्रातृवैरत्वमाश्रित्य केवलं दुःखिनोऽमराः ॥ २९ ॥ स शंखचूडः प्रबलः कृष्णस्य परमस्सखा । कृष्णभक्तिरतस्साधुस्सदा गोलोकवासिनः ॥ ३० ॥ पूर्वशापप्रभावेण दानवीं योनिमाश्रितः । न दानवमतिस्सोऽभूद्दानवत्वेऽपि वै मुने ॥ ३१ ॥ ततस्सुरगणास्सर्वे हृतराज्याः परा-

भोग करने लगा ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह महाबली महावीर शंखचूड़ देवता, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर, जलवासी त्रिलोकी (के जीवों) का तथा दूसरोंका भी स्वामी होगया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस प्रकार उसने महान् राजराजेश्वर बन कर बहुत वर्षों तक सकल भुवनोंका राज्य भोगा ॥ २४ ॥ उसके राज्यमें न दुर्भिक्ष होता था, न महामारी पड़ती थी, न किसी अशुभ ग्रह (पुच्छल तारे आदि) का उदय होता था, न आधि थी न व्याधि, उसके राज्यकी प्रजा सदा सुखी रहती थी ॥ २५ ॥ पृथ्वी बिना जोते हुए ही अनेक प्रकारके धान्योंको देती थी और उसके राज्यमें फल वाली और रस वाली विविध प्रकारकी औषधियें होती थीं ॥ २६ ॥ उसके राज्यमें मणियोंकी खानें थीं, समुद्र भी रत्नोंको उगलता रहता था, वृक्ष सदा पुष्प और फल देते रहते थे और नदियोंमें सुन्दर नीर बहता था ॥ २७ ॥ देवताओंको छोड़कर बाकी सब ही जीव सुखी रहते थे, उनमें कोई विकार घर नहीं करता था, चारों वर्ण और आश्रम अपने २ धर्ममें स्थित रहते थे ॥ २८ ॥ जब वह त्रिलोकीका शासन कर रहा था, तब कोई भी दुःखी नहीं रहता था, केवल देवता ही भ्रातृत्व के वैरवश दुःखी रहते थे ॥ २९ ॥ वह शंखचूड़ कृष्णका बड़ा भारी मित्र था अतः वह गोलोकवासी कृष्णकी भक्तिमें सदा परायण रहता था ॥ ३० ॥ हे मुने ! वह शापके प्रभावसे दानवोंकी योनिमें आगया था, परन्तु दानवयोनिमें भी उसकी दानवकीसी बुद्धि नहीं हुई ॥ ३१ ॥ हे तात ! फिर जिनका राज्य

जिताः। सम्मन्त्र्य सर्षयस्तात प्रययुर्ब्रह्मणस्सभाम्॥ ३२॥ तत्र दृष्ट्वा विधातारं नत्वा स्तुत्वा विशेषतः। ब्रह्मणे कथयामासुस्सर्वं वृत्तान्तमाकुलाः॥ ३३॥ ब्रह्मा तदा समाश्वास्य सुरान् सर्वान्मुनीनपि। तैश्च सार्द्धं ययौ लोकं वैकुण्ठं सुखदं सताम्॥ ३४॥ ददर्श तत्र लक्ष्मीशं ब्रह्मा देवगणैस्सह। किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम्॥३५॥ शंखचक्रगदापद्मवरं देवं चतुर्भुजम्। सनन्दनाद्यैः सिद्धैश्च सेवितं पीतवाससम्॥ ३६॥ दृष्ट्वा विष्णुं सुरास्सर्वे ब्रह्माद्यास्समुनीश्वराः। प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या बद्धाञ्जलिकरा विभुम्॥३७॥ देवा ऊचुः। देवदेव जगन्नाथ वैकुंठाधिपते प्रभो। रक्षास्माञ्शरणापन्नाञ्छ्रीहरे त्रिजगद्गुरो॥ ३८॥ त्वमेव जगतां पाता त्रिलोकेशाच्युत प्रभो। लक्ष्मीनिवास गोविन्द भक्तप्राण नमोऽस्तु ते॥३९॥ इति स्तुत्वा सुरास्सर्वे रुरुदुः पुरतो हरेः। तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥ ४०॥ विष्णुरुवाच। किमर्थमागतोऽसि त्वं वैकुंठं योगिदुर्लभम्। किं कष्टं ते समुद्भूतं तत्त्वं वद ममाग्रतः॥४१॥ सनत्कुमार उवाच। इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं

छिन गया था और जो हार गए थे, उन सब देवता और ऋषियोंने मन्त्रणा की और ब्रह्माजीकी सभाको चल दिये॥ ३२॥ तहाँ उन्होंने विधाताके दर्शन कर उनको प्रणाम किया, फिर उनकी विशेषरूपसे स्तुति कर व्याकुलतापूर्वक उनको सब वृत्तान्त सुना दिया॥ ३३॥ तब ब्रह्माजीने उन देवता और सकल मुनियोंको ढाढस दिया और उनको साथमें लेकर सज्जनोंको सुख देने वाले वैकुण्ठलोकको चल दिये॥ ३४॥ तहाँ देवताओंने और ब्रह्माजीने लक्ष्मीके स्वामी विष्णुके दर्शन किये, वह किरीट कुण्डल और वनमालासे विभूषित थे और वह देव अपनी चारों भुजाओंमें शंख चक्र गदा और कमल धारण कर रहे थे, पीताम्बर ओढ़ रहे थे और सनन्दन आदि सिद्ध उनकी सेवा कर रहे थे॥ ३५॥ ३६॥ ब्रह्मा, मुनीश्वर और सकल देवता विष्णुका दर्शन कर उनको प्रणाम कर भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे॥ ३७॥ देवताओंने कहा, कि—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे वैकुण्ठके स्वामिन्! हे प्रभो! हे त्रिलोकीके गुरो! हम आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारी रक्षा करिये ३८ हे त्रिलोकीके स्वामी प्रभु अच्युत! आप ही जगत्के रक्षक हैं हे लक्ष्मीनिवास! हे गोविन्द! हे भक्तप्राण! आपको प्रणाम है॥ ३९॥ इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर सब देवता विष्णुके आगे रो पड़े, इन बातोंको सुन कर भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे यह बात कहने लगे॥ ४०॥ विष्णुने कहा, कि—तुम योगियोंको भी कठिनतासे प्राप्त होने वाले वैकुण्ठमें किस लिये आये हो, तुम्हें क्या कष्ट होरहा है, उस सबको तुम मेरे आगे कहो॥ ४१॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हरिके इस वचनको सुन ब्रह्माजीने उनको वारम्वार प्रणाम किया

प्रणम्य च मुहुर्मुहुः । बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः ॥ ४२ ॥ वृत्तान्तं कथयामास शंखचूडकृतं तदा । देवकष्टसमाख्यानं पुरो विष्णोः परात्मनः ४३ हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वतस्सर्वभाववित् । प्रहस्योवाच भगवांस्तद्रहस्यं विधिं प्रति ॥ श्रीभगवानुवाच । शंखचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥४५॥ शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम् । सन्देहो नैव कर्तव्यश्शं करिष्यति शङ्करः ॥ ४६ ॥ सर्वोपरि च यस्यास्ति शिवलोकः परात्परः । यत्र संराजते शम्भुः परब्रह्म परेश्वरः ॥ ४७ ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि योऽधिष्ठाता त्रिशक्तिधृक् । निर्गुणस्सगुणस्सोऽपि परं ज्योतिः स्वरूपवान् ॥४८॥ यस्यांगजास्तु वै ब्रह्मंस्त्रयस्सृष्ट्यादिकारकाः । सत्त्वादिगुणसम्पन्ना विष्णुब्रह्महराभिधाः ॥४६॥ स एव परमात्मा हि विहरत्युमया सह । यत्र मायाविनिर्मुक्तो नित्यानित्यप्रकल्पकः ॥ ५० ॥ तत्समीपे च गोलोको गोशाला शङ्करस्य वै । तस्येच्छया च मद्रूपः कृष्णो वसति तत्र ह ॥ ५१ ॥ तद्गवां रक्षणार्थाय तेनाज्ञप्तस्सदा सुखी । तत्संप्राप्तसुखस्सोऽपि संक्रीडति विहारवित् ॥ ५२ ॥ तस्य नारी समाख्याता राधेति जगदम्बिका । प्रकृतेः परमा मूर्तिः पञ्चमी सुविहारिणी ॥ ५३ ॥ बहुगोपाश्च गोप्यश्च

और विनयपूर्वक गर्दन झुका हाथ जोड़ देवताओंके कष्टसे भरे हुए शंखचूड़के वृत्तान्तको परमात्मा विष्णुसे कहने लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सबके भावको जानने वाले भगवान् हरि इस वचनको सुन हँसे और ब्रह्माजीसे इसका रहस्य कहने लगे ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! मैं शंखचूड़के सब वृत्तांत को जानता हूँ, वह पहिले मेरा भक्त था और महातेजस्वी गोप था ॥ ४५ ॥ इसके प्राचीन वृत्तान्तको तुम सुनो, इसमें कुछ सन्देह न करो, भगवान् शंकर कल्याण ही करेंगे ॥ ४६ ॥ उनका शिवलोक सबसे ऊपर है, वह परात्पर शम्भु परब्रह्म परमेश्वर तहाँ पर विराज रहे हैं ॥ ४७ ॥ वह प्रकृति और पुरुषके भी अधिष्ठाता हैं, वह तीनों शक्तियोंको धारण करने वाले हैं, वह निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं और परम ज्योतिःस्वरूप हैं हे ब्रह्मन् ! सत्त्व रज और तमोगुणसे सम्पन्न सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले ब्रह्मा विष्णु और हर नामक तीनों देवता भी उनके ही देहसे प्रकट हुए हैं ॥४९॥ वह परमात्मा तहाँ उमाके साथ विहार करते रहते हैं, वह मायासे रहित हैं और नित्य अनित्यकी कल्पना करने वाले हैं ॥ ५० ॥ उनके पासमें ही गोलोक है और तहाँ ही शंकरकी गोशाला है, उनकी इच्छासे मेरे रूप कृष्ण तहाँ रहते हैं ॥ ५१ ॥ वह उनकी आज्ञासे उनकी गौओंकी रक्षा करनेके लिये तहाँ रहते हैं, वह विहारवेत्ता सुख पा तहाँ क्रीड़ा करते रहते हैं ॥ ५२ ॥ उनकी नारीका नाम राधा है, वह जगदम्बिका है, वह प्रकृतिकी (पञ्चमी) सुविहारिणी परम मूर्ति है५३

तत्र सन्ति तदङ्गजाः । सुविहारपरा नित्यं राधाकृष्णानुवर्तिनः ॥ ५४ ॥ स एव लीलया शम्भोरिदानीं मोहितोऽनया । संप्राप्तो दानवीं योनिं मुधा शापात्स्वदुःखदाम् ॥५५॥ रुद्रशूलेन तन्मृत्युः कृष्णेन विहितः पुरा । ततस्स्वदेहमुत्सृज्य पार्षदस्स भविष्यति ॥ ५६ ॥ इति विज्ञाय देवेश न भयं कर्तुमर्हसि । शङ्करं शरणं यावस्स सद्यश्शं विधास्यति ॥ अहं त्वं चामरास्सर्वे तिष्ठन्तीह विसाध्वसाः ५८ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा सविधिर्विष्णुः शिवलोकं जगाम ह । संस्मरन्मनसा शम्भुं सर्वेशं भक्तवत्सलम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शङ्खचूडवधोपाख्याने शङ्खचूडराज्यकरणवर्णनपूर्वकतत्पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सनत्कुमार उवाच । गत्वा तदैव सविधिस्तदा व्यास रमेश्वरः । शिवलोकं महादिव्यं निराधारमभौतिकम् ॥ १ ॥ साह्लादोऽभ्यन्तरं विष्णुर्जगाम मुदिताननः । नानारत्नपरिक्षिप्तं विलसन्तं महोज्ज्वलम् ॥२॥ संप्राप्य प्रथमं द्वारं विचित्रं गणसेवितम् । शोभितं परया लक्ष्म्या महोच्चमतिसुन्दरम् ॥३॥ ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् । शोभितान्श्वेतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ ४ ॥ पञ्चवक्-

---

उनके अंगभूत बहुतसे गोप और गोपियें तहाँ रहते हैं, वह नित्य राधाकृष्णके अनुकूल चलते हैं ॥ ५४ ॥ वह शंखचूड़ शम्भुकी लीलासे मोहित हो शापवश दुःखदायक दानवी योनिको प्राप्त होगया है ॥ ५५ ॥ पहिले कृष्णने उसकी मृत्यु रुद्रशूलसे निश्चित की थी, इस प्रकार वह अपने देहको त्याग कर फिर उनका पार्षद होजावेगा ॥ ५६ ॥ हे देवेश ! इन सब बातोंको जानकर तुम डरो मत, चलो हम दोनों शंकरकी शरणमें चलें वह शीघ्र ही हमारा कल्याण करेंगे ॥ ५७ ॥ हमें तुम्हें और सकल देवताओंको अब भय नहीं करना चाहिये ॥ ५८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–विष्णु ब्रह्माजीसे इस प्रकार कह ब्रह्माजीको साथ ले मनमें भक्तवत्सल शम्भुका स्मरण करते हुए शिवलोकको चल दिये ॥ ५९ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ ❀

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे व्यासजी ! विष्णु ब्रह्माजीको साथमें ले निराधार अभौतिक महादिव्य शिवलोकके पास पहुँचे ॥ १ ॥ फिर प्रसन्न मुखसे अनेक रत्नोंसे दमकते हुए परम उज्ज्वल शिवलोकके भीतर आनन्दपूर्वक घुसे ॥ २ ॥ वह जब परमशोभासम्पन्न महोच्च परम सुन्दर पहिली ड्योढ़ी पर पहुँचे तो उन्होंने रत्नोंके सिंहासनों पर बैठे हुए द्वारपालोंको देखा वह श्वेत वस्त्र पहिर रहे थे और रत्नजटित आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उन

त्रिनयनान्गौरसुन्दरविग्रहान् । त्रिशूलादिधरान्वीरान् भस्मरुद्राक्षशोभितान् ॥ ५ ॥ स ब्रह्मापि रमेशश्च तान् प्रणम्य विनम्रकः । कथयामास वृत्तांतं प्रभुसंदर्शनार्थकम् ॥ ६ ॥ तदाज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया । परं द्वारं महारम्यं विचित्रं परमप्रभम् ॥ ७ ॥ प्रभुसंदर्शनार्थं वृत्तान्तं संन्यवेदयत् । तद् द्वारपाय चाज्ञप्तस्तेनाग्र्यं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ एवं पंचदशद्वारान्प्रविश्य कमलोद्भवः । महाद्वारं गतस्तत्र नन्दिनं प्रददर्श ह ॥ ९ ॥ सम्यक् नत्वा च तं स्तुत्वा पूर्ववत्तेन नन्दिना । आज्ञप्तश्च शनैर्विष्णुर्विवेशाभ्यन्तरं मुदा ददर्श गत्वा तत्रोच्चैस्सभां शम्भोस्समुत्प्रभाम् । तां पार्षदैः परिवृतां लसद्देहैस्सुभूषिताम् ॥ ११ ॥ महेश्वरस्य रूपैश्च दिग्भुजैश्शुभकांतिभिः । पञ्चवक्त्रैस्त्रिनयनैश्शितिकंठैर्महोज्ज्वलैः ॥१२॥ सद्रत्नयुक्तरुद्राक्षभस्माभरणभूषितैः । नवेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् ॥ १३ ॥ मणीन्द्रहारनिर्माणहीरसारसुशोभिताम् । अमूल्यरत्नरचितां पद्मपत्रैश्च शोभिताम् ॥ १४ ॥ माणिक्यजालमालाभिर्नानाचित्रविचित्रताम् । पद्मरागेन्द्ररचितामद्भुतां शङ्करेच्छया ॥ १५ ॥ सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः । स्वर्णसूत्र-

---

के पाँच मुख और तीन २ नेत्र थे और उनका शरीर सुन्दर गोरा था, वे वीर त्रिशूल धारण कर रहे थे और भस्म तथा रुद्राक्षसे सुशोभित थे ॥ ५ ॥ ब्रह्मा और विष्णुने मस्तक झुका कर उनको प्रणाम किया और फिर प्रभुसे मिलना है, यह अपना काम बताया ॥ ६ ॥ उन्होंने द्वारमें प्रवेश करनेकी आज्ञा देदी, तब उनकी आज्ञासे ब्रह्मा और विष्णु परम रमणीय विचित्र प्रभा वाली दूसरी ड्योढ़ीमें घुसे ॥ ७ ॥ तहाँ भी द्वारपालसे उन्होंने प्रभुसे मिलनेका काम बताया उनके आज्ञा देने पर विष्णु (और ब्रह्मा) आनन्दपूर्वक उसके भीतर घुसे ८ इस प्रकार पन्द्रह ड्योढ़ियोंमें प्रवेश करनेके अनन्तर महाद्वारके पास पहुँच ब्रह्मा (और विष्णु) ने नन्दीको देखा ॥ ९ ॥ विष्णुने उनको प्रणाम किया और स्तुति की तदनन्तर पहिलेकी समान नन्दीसे आज्ञा पा विष्णु (और ब्रह्मा) उस ड्योढ़ीमें आनन्दपूर्वक घुस गए ॥ १० ॥ तहाँ जाकर उन्होंने शम्भुकी सभाके दर्शन किये, वह सभा ऊँची थी और प्रभावती थी, उसमें दमकते हुए शरीर वाले पार्षद बैठे थे ॥ ११ ॥ उनका रूप महेश्वरको समान था और कान्ति भी शिवकी समान थी, भुजायें दश दश थीं और मुख पाँच पाँच थे, प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र थे और कण्ठ नीला तथा परम उज्ज्वल था ।१२। तथा वे श्रेष्ठ रत्न, रुद्राक्ष, भस्म और गहनोंसे विभूषित थे, वह सभा नवीन चन्द्रमण्डलके आकारकी चौकोनी और मनोहर थी ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ मणियोंके हार और श्रेष्ठ २ हीरोंसे सुशोभित थी तथा अमूल्य रत्न और कमलपत्रोंसे सुशोभित थी ॥ १४ ॥ उसमें मणियोंके मालाकार झरोखे बन रहे थे तथा उसमें अनेक प्रकारकी विचित्र चित्रकारी होरही थी तथा उसमें पद्मराग मणियें

ग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥१६॥ इन्द्रनीलमणिस्तंभैर्वेष्टितां सुमनोहराम्। सुसंस्कृतां च सर्वत्र वासितां गन्धवायुना ॥ १७ ॥ सहस्रयोजनायामां सुपूर्णां बहुकिंकरैः। ददर्श शङ्करं साम्बं तत्र विष्णुस्सुरेश्वरः ॥ १८ ॥ वसन्तं मध्यदेशे च यथेन्दुं तारकावृतम्। अ स्वररत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ १९ ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं रत्नमालाविभूषितम्। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम् ॥ २० ॥ पुरतो गीतनृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥ २१ ॥ शान्तं प्रसन्नमनसमुमाकान्तं महोल्लसम्। देव्या प्रदत्ततांबूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥ २२ ॥ गणैश्च परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः। स्तूयमानं च सिद्धैश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥२३॥ गुणातीतं परेशानं त्रिदेवजनकं विभुम्। निर्विकल्पं निराकारं साकारं स्वेच्छया शिवम् ॥ २४ ॥ अमायमजमाद्यञ्च मायाधीशं परात्परम्। प्रकृतेः पुरुषस्यापि परमं स्वप्रभुं सदा ॥ २५ ॥ एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं समम्। विष्णुर्ब्रह्मा तुष्टुवतुः प्रणम्य सुकृतांजली ॥ २६ ॥ विष्णुविधी ऊचतुः। देवदेव महादेव परब्रह्माखिलेश्वर। त्रिगुणातीत निर्व्यग्र त्रिदेवजनक प्रभो ॥ २७ ॥ वयं

जड़ी हुई थीं और शंकरकी इच्छासे उस अद्भुत सभामें स्यमन्तक मणिकी सौ सीढ़ियें बनी हुई थीं और तहाँ इन्द्रनील मणिके खम्भोंमें सोनेकी डोरीसे गुथे हुए सुन्दर चन्दनवृक्षोंके पत्ते लटक रहे थे, वह सभा सर्वत्र संस्कृत थी और सुगन्धित पवनसे महक रही थी, वह सहस्र योजन लम्बी थी और बहुतसे किंकरोंसे भरी हुई थी, देवराज विष्णुने उसके मध्यदेशमें विराजमान शंकर और उमाको देखा, बहुमूल्य विचित्र रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान शंभु तारोंके बीचमें बैठे हुए चन्द्रमाकी समान लगते थे ॥ १५–१९ ॥ वह किरीट कुण्डल और रत्नमालासे विभूषित थे तथा उनके शरीर पर भस्म लग रही थी और खेल खेलमें कमल लिये हुए थे ॥२०॥ और सामने होते हुए गीत नृत्य को मुस्कुरा कर देख रहे थे ॥ २१ ॥ उल्लासमें भरे हुए शान्त और प्रसन्न मन वाले उमानाथको देवी पार्वती सुगन्धित ताम्बूल दे रही थी और वह उस का भक्षण कर रहे थे ॥ २२ ॥ गण श्वेत चामरोंसे परम भक्तिपूर्वक उनकी सेवा कर रहे थे और सिद्ध भक्तिवश शिर झुका कर उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ २३ ॥ वह शिव गुणातीत, परमेश्वर, ब्रह्मा विष्णु और महेश इन तीनों देवताओंके जनक, विभु, निर्विकल्प, निराकार और अपनी इच्छासे साकार होने वाले हैं ॥ २४ ॥ वह मायारहित, अजन्मा, आद्य, मायाधीश, प्रकृति और पुरुषसे भी परात्पर और स्वप्रभु हैं ॥ २५ ॥ ऐसे परिपूर्ण शिवको देख कर ब्रह्मा और विष्णु हाथ जोड़ प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ विष्णु और ब्रह्माने कहा, कि–हे देवदेव महादेव, सबके ईश्वर, परब्रह्म, त्रिगुणातीत निर्व्यग्र, तीनों देवोंके जनक, प्रभो, विभो, परमेश्वर ! हम शंखचूड़के दुःखसे

ते शरणापन्ना रक्षास्मान्दुःखितान्विभो । शंखचूडार्दितान्क्लिष्टान्सन्नाथान्परमेश्वर २८
अयं योऽधिष्ठितो लोको गोलोक इति स स्मृतः । अधिष्ठाता तस्य विभुः कृष्णोऽयं त्वदधिष्ठितः ॥२९॥ पार्षदप्रवरस्तस्य सुदामा दैवयन्त्रितः । राधाशप्तो बभूवाथ शंखचूडश्च दानवः ॥ ३० ॥ तेन निस्सारिताः शम्भो पीडयमानाः समन्ततः । हृताधिकारास्त्रिदशा विचरन्ति महीतले ॥ ३१ ॥ त्वां विना न स वध्यश्च सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् । तं घातय महेशान लोकानां सुखमावह ॥ ३२ ॥ त्वमेव निर्गुणस्सत्योऽनन्तोऽनन्तपराक्रमः । सगुणश्च सन्निवेशः प्रकृतेः पुरुषात्परः ॥ ॥ ३३ ॥ रजसा सृष्टिसमये त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृत्प्रभो । सत्त्वेन पालने विष्णुस्त्रिभुवनकारक ॥३४॥ तमसा प्रलये रुद्रो जगत्संहारकारकः । निस्त्रैगुण्ये शिवाख्यातस्तुर्य्यो ज्योतिःस्वरूपकः ॥३५॥ त्वं दीक्षया च गोलोके त्वं गवां परिपालकः । त्वद्गोशालामध्यगश्च कृष्णः क्रीडत्यहर्निशम् ॥३६॥ त्वं सर्वकारणं स्वामिन् विधिविष्णवीश्वरः परम् । निर्विकारी सदा साक्षी परमात्मा परेश्वरः ॥ ३७ ॥ दीनानाथसहायी च दीनानां प्रतिपालकः । दीनबन्धुस्त्रिलोकेशश्शरणागतवत्सलः ॥३८॥

दुःखित हो आपकी शरणमें आये हैं, हे विभो ! हम आपसे नाथके होने पर भी दुःखित होरहे हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ आपका जो गोलोक नामका लोक है और आपने उसमें जिन विभु कृष्णको अधिष्ठित कर दिया है ॥ २९ ॥ उनका श्रेष्ठ पार्षद सुदामा प्रारब्धके चक्रमें पड़ राधाके शापवश शंखचूड़ नामका दानव होगया है ॥ ३० ॥ उसने देवताओंको पीड़ित कर रखा है और अपने अपने लोकोंसे निकाल कर उनके पदों पर अपना अधिकार जमा लिया है, अतः देवता पृथ्वी पर विचरते फिरते हैं ॥ ३१ ॥ आपके बिना वह किसी देवतासे नहीं मारा जासकता; आप उसको मारकर हम लोगोंको सुख दीजिये ३२ आप ही निर्गुण हैं, सत्य हैं, अनन्त हैं, अनन्त पराक्रम हैं, सगुण हैं, संनिवेश हैं, प्रकृति और पुरुषसे पर हैं ॥ ३३ ॥ हे त्रिभुवनकी रक्षा करने वाले प्रभो ! आप सृष्टिके समय रजोगुणका आश्रय ले सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बन जाते हैं और हे प्रभो ! पालनके समय आप सत्त्वगुणका आश्रय ले विष्णु बन जाते हैं ॥ ३४ ॥ और प्रलयके समय तमोगुणका आश्रय ले जगत्का संहार करने वाले रुद्र बन जाते हैं और त्रिगुणरहित अवस्थामें शिवनामक ज्योतिःस्वरूप तुर्य बन जाते हैं ॥ ३५ ॥ आप ही दीक्षासे दीक्षित होते हैं, गोलोकमें गौओं का पालन करने वाले आप ही हैं, आपकी गोशालामें कृष्ण सदा क्रीड़ा करते रहते हैं ॥३६॥ हे स्वामिन् ! आप सबके कारण हैं, ब्रह्मा और विष्णुके भी ईश्वर हैं, निर्विकार हैं, सदा साक्षी हैं, परमात्मा हैं और परेश्वर हैं ॥३७॥ दीन और अनाथोंकी सहायता करने वाले हैं तथा दीनोंका प्रतिपालन करने वाले हैं, दीनबन्धु हैं, त्रिलोकीके स्वामी हैं और शरणागतवत्सल हैं ॥३८॥

अस्मानुद्धर गौरीश प्रसीद परमेश्वर । त्वदधीना वयं नाथ यदिच्छसि तथा कुरु ।३९। सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा तौ सुरौ व्यास हरिर्ब्रह्मा च तौ तदा । विरेमतुः शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा विनीतकौ ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूड-वधे देवदेवस्तुतिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सनत्कुमार उवाच । अथाकर्ण्य वचश्शम्भुर्हरिविध्योस्सुदीनयोः । उवाच विहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥१॥ शिव उवाच । हे हरे वत्स हे ब्रह्मंस्त्यजतं सर्वशो भयम् । शंखचूडोद्भवं भद्रं संभविष्यत्यसंशयम् ॥२ । शंखचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि तत्त्वतः । कृष्णभक्तस्य गोपस्य सुदाम्नश्च पुरा प्रभो ॥ ३ ॥ मदाज्ञया हृषीकेशो कृष्णरूपं विधाय च । गोशालायां स्थितो रम्ये गोलोके मदधिष्ठिते ॥ ४ ॥ स्वतन्त्रोऽहमिति स्वं स मोहं मत्वा गतः पुरा । क्रीडास्समकरोद्बह्वीस्स्वैरवर्तीव मोहितः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा मोहमत्युग्रं तस्याहं मायया स्वया । तेषां संहृत्य सद्बुद्धिं शापं दापितवान् किल ॥ ६ ॥ इत्थं कृत्वा स्वलीलां तां मायां संहृतवाहनम् । ज्ञानयुक्तास्तदा ते तु मुक्तमोहास्सुबुद्धयः ॥७॥ समीपमागतास्ते ये दीनीभूय प्रणम्य माम् । अकुर्वन्स्तुतिं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥८॥

हे गौरीश ! हे परमेश्वर ! आप हमारा उद्धार करिये, हम पर प्रसन्न हूजिये, हे नाथ ! हम आपके अधीन हैं, अब आप जैसी इच्छा हो तैसा करिये ।३९। सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे व्यासजी ! वे दोनों देवता हरि और ब्रह्मा इस प्रकार कह, हाथ जोड़, शिर झुका, शिवको प्रणाम कर चुप होगए ॥ ४० ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ❀ छ ❀ छ

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—दीन बने हुए ब्रह्मा और विष्णुके वचनको सुन कर शम्भु हँसे और मेघके गरजनेकी समान गंभीर वाणीमें कहने लगे १ शिवने कहा, कि-हे हरे ! हे ब्रह्मन् ! हे वत्स ! तुम शंखचूड़के भयको त्याग दो, तुम्हारा कल्याण ही होगा ॥२॥ प्राचीन कालके कृष्णभक्त गोप सुदामा, शङ्खचूड़के समस्त वृत्तान्तको मैं जानता हूँ ॥३॥ मेरी आज्ञासे हृषीकेश कृष्ण का रूप धारण कर मुझसे अधिष्ठित गोलोककी रमणीय गोशालामें स्थित रहते हैं ॥४॥ पहिले वह अपनेको स्वतंत्र समझ कर मोहमें पड़ गए थे और मोहित होकर स्वेच्छाचारीकी समान बहुतसी क्रीड़ाओंमें मग्न होगए ।५। उनको बड़े भारी मोहमें पड़े हुए देख कर मैंने अपनी मायासे उनकी सद्बुद्धिका हरण कर उनसे शाप दिला दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार अपनी लीला करके मैंने मायाको खींच लिया, तब उनका मोह जाता रहा ज्ञान होगया और सद्बुद्धि आई ॥ ७ ॥ फिर वह दीनतापूर्वक मेरे पास आये और हाथ जोड़, मस्तक झुका मुझे प्रणाम कर स्तुति करने लगे ।८। और लज्जित होकर सकल वृत्तान्त कहने लगे और मेरे

वृत्तान्तमवदन् सर्वं लज्जाकुलितमानसाः । ऊचुर्मत्पुरतो दीना रक्षरक्षेति वै गिरः ॥९॥
तदा त्वहं भवस्तेषां संतुष्टः प्रोक्तवान् वचः । भयं त्यजत हे कृष्ण यूयं सर्वे मदाज्ञया १०
रक्षकोऽहं सदा प्रीत्या सुभद्रं वो भविष्यति । मदिच्छयाऽखिलं जातमिदं सर्वं न संशयः॥
स्वस्थानं गच्छ त्वं सार्द्धं राधया पार्षदेन च । दानवस्तु भवेत्सोऽयं भारतेऽत्र न संशयः ॥
शापोद्धारं करिष्येऽहं युवयोस्समये खलु । मदुक्तमिति संधार्य शिरसा राधया सह ॥१३॥
श्रीकृष्णोऽमोददत्यन्तं स्वस्थानमगमत्सुधीः । न्यष्ठातां सभयं तत्र मदाराधनतत्परौ १४॥
मत्वाखिलं मदधीनमस्वतन्त्रं निजं च वै । स सुदामाऽभवद्राधाशापतो दानवेश्वरः १५
शङ्खचूडाभिधो देवद्रोही धर्मविचक्षणः । क्लिश्नाति सुबलात्कृत्स्नं सदा देवगणं कुधीः १६
मन्मायामोहितस्सोऽतिदुष्टमन्त्रिसहायवान् । तद्भयं त्यजताश्वेव मयि शास्तरि वै सति॥
सनत्कुमार उवाच । इत्यूचिवाञ्छिवो यावद्धरिब्रह्मपुरः कथाम् । अभवत्तावदन्यच्च
चरित्रं तन्मुने शृणु ॥ १८ ॥ तस्मिन्नेवान्तरे कृष्णो राधया पार्षदैः सह । सद्गोपैरायर्यौ
शम्भुमनुकूलयितुं प्रभुम् ॥ १९ ॥ प्रभुं प्रणम्य सद्भक्त्या मिलित्वा हरिमादरात् । संमतो

सामने दीन होकर रक्षा करिये २ कहने लगे ।९। तब मैंने सन्तुष्ट होकर यह बात कही, कि—हे कृष्ण ! डरो मत ! तुम सब मेरी आज्ञासे ही काम करते हो ।१०। मैं सदा प्रीतिपूर्वक तुम्हारी रक्षा करता रहता हूँ, तुम्हारा कल्याण ही होगा, यह जो कुछ हुआ है यह सब मेरी इच्छासे ही हुआ है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥११॥ तुम राधा और पार्षदोंको साथमें लेकर अपने स्थानको जाओ, यह दानव तो भारतवर्षमें दानव होगा,इसमें कुछ सन्देह नहीं है १२ समय आनेपर मैं तुम दोनों (राधाकृष्ण) का शापोद्धार करूँगा, तब बुद्धिमान् श्रीकृष्ण मेरी आज्ञा को शिरोधार्य कर राधाको साथ ले प्रसन्न होते हुए अपने स्थानको चले गए, और तहाँ सबको मेरे अधीन और अपनेको परतन्त्र समझ मेरी आराधनामें परायण हो भयके साथ तहाँ रहने लगे और वह सुदामा तो राधाके शापवश देव-द्रोही धर्मविचक्षण शङ्खचूड़ नामका दानव हुआ है और दुर्बुद्धिवश अपने बल से सम्पूर्ण देवताओंको क्लेश देरहा है ॥ १३ ॥ १६ ॥ और मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वह बड़े २ दुष्ट मन्त्रियोंकी सहायता ले रहा है, किन्तु मुझसे राजाके होने पर तुम उस भयको छोड़ दो ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुने ! ब्रह्मा और विष्णुसे शिव यह बात कह ही रहे थे, कि—उस समय तहाँ जो दूसरा चरित्र हुआ था, उसको तुम सुनो ॥ १८ ॥ उस समय कृष्ण, राधा और पार्षदोंको साथमें ले प्रभु शम्भुको अनुकूल करनेके लिये आपहुँचे१९ उन्होंने प्रभुको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हरिसे आदरपूर्वक मिले, फिर ब्रह्माने प्रीतिपूर्वक उनका सम्मान किया, तदनन्तर वह शिवकी आज्ञा पा बैठ

विधिना प्रीत्या संतस्थौ शिवशासनात् ॥ २० ॥ ततः शम्भुं पुनर्नत्वा तुष्टाव विहितांजलिः । श्रीकृष्णो मोहनिर्मुक्तो ज्ञात्वा तत्त्वं शिवस्य हि ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । देवदेव महादेव परब्रह्म सतां गते । क्षमस्व चापराधं मे प्रसाद परमेश्वर ॥ २२ ॥ त्वत्तः शर्व च सर्वं च त्वयि सर्वं महेश्वर । सर्वं त्वं निखिलाधीश प्रसीद परमेश्वर ॥ २३ ॥ त्वं ज्योतिः परमं साक्षात्सर्वव्यापी सनातनः । त्वया नाथेन गौरीश सनाथास्सकला वयम् २४ सर्वोपरि निजं मत्वा विहरन्मोहमाश्रितः । तत्फलं प्राप्तवानस्मि शापं प्राप्तस्सवामकः २५ पार्षदप्रवरो यो मे सुदामा नाम गोपकः । स राधाशापतः स्वामिन्दानवीं योनिमाश्रितः ॥ अस्मानुद्धर दुर्गेश प्रसीद परमेश्वर । शापोद्धारं कुरुष्वाद्य पाहि नश्शरणागतान् ॥२७॥ इत्युक्त्वा विररामैव श्रीकृष्णो राधया सह । प्रसन्नोऽभूच्छिवस्तत्र शरणागतवत्सलः २८ श्रीशिव उवाच । हे कृष्ण गोपिकानाथ भयं त्यज सुखी भव । मयानुगृह्णता तात सर्वमाचरितं त्विदम् ॥ २९ ॥ संभविष्यति ते भद्रं गच्छ स्वस्थानमुत्तमम् । स्थातव्यं स्वाधिकारे च सावधानतया सदा ॥ ३० ॥ विहरस्व यथाकामं मां विज्ञाय परात्परम् । स्वकार्यं कुरु निर्व्यग्रं राधया पार्षदैः खलु ॥ ३१ ॥ वाराहे प्रवरे कल्पे तरुण्या राधया सह ।

गए ॥ २० ॥ फिर मोहमुक्त शम्भु शिवके तत्त्वको जान हाथ जोड़ शम्भुको प्रणाम कर फिर शम्भुकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे देवदेव महादेव ! हे सज्जनोंकी गति परब्रह्म ! आप मेरे अपराधको क्षमा करिये, हे परमेश्वर ! प्रसन्न हूजिये ! ॥ २२ ॥ हे शर्व ! सब संसार आपसे ही प्रकट हुआ है और हे महेश्वर ! सब जगत् आपमें ही स्थित है, हे सबके ईश्वर ! आप ही सब कुछ हैं, हे परमेश्वर ! प्रसन्न हूजिये !! २३ ॥ आप साक्षात् परमज्योति हैं, सर्वव्यापी हैं, सनातन हैं, हे गौरीश ! आपसे नाथसे हम सब सनाथ हैं ॥ २४ ॥ मैं मोहवश अपनेको सर्वोपरि मान कर विहार कर रहा था उसका फल मैंने पालिया, कि—स्त्री सहित मुझे शाप प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ और मेरा श्रेष्ठ पार्षद जो सुदामा नाम वाला गोप था, हे स्वामिन् ! वह राधाके शापवश दानवी योनिमें पड़ा हुआ है ॥२६॥ हे दुर्गेश ! अब हमारा उद्धार करिये, हे परमेश्वर ! प्रसन्न हूजिये, शापोद्धार कर हम शरणागतोंकी रक्षा करिये ॥ २७ ॥ इस प्रकार कह कर राधाके साथ आये हुए श्रीकृष्ण चुप होगए और शरणागतवत्सल शिव भी प्रसन्न होगए श्री शिवने कहा कि—हे गोपिकानाथ श्रीकृष्ण ! तुम भयको त्याग दो और सुखी हो, हे तात ! मैंने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही यह सब चरित किया है ॥ २९ ॥ अब तुम अपने उत्तम स्थानको जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा और सदा अपने अधिकार पर सावधानतापूर्वक डटे रहो ॥ ३० ॥ मुझे परात्पर जान कर इच्छानुसार विहार करते रहो, राधा और पार्षदोंको साथमें लेकर

शापप्रभावं भुक्त्वा वै पुनरागास्यसि स्वकम् ॥ ३२ ॥ सुदामा पार्षदो यो हि तव कृष्ण प्रियप्रियः । दानवीं योनिमाश्रित्येदानीं क्लिश्नाति वै जगत् ॥ ३३ ॥ शापप्रभावाद्राधाया देवशत्रुश्च दानवः । शङ्खचूडाभिधस्सोऽसि दैत्यपक्षी सुरद्रुहः ॥ ३४ ॥ तेन निस्सारिता देवास्सेन्द्रा नित्यं प्रपीडिताः । हृताधिकारा विकृतास्सर्वे याता दिशो दश ॥ ३५ ॥ ब्रह्माच्युतौ तदर्थं हीहागतौ शरणं मम । तेषां क्लेशविनिर्मोचं करिष्ये नात्र संशयः ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा शङ्करः कृष्णं पुनः प्रोवाच सादरम् । हरिं विधिं समाभाष्य वचनं क्लेशनाशनम् ॥ ३७ ॥ शिव उवाच । हे हरे हे विधे प्रीत्या ममेदं वचनं शृणु । गच्छतं त्वरितं तातौ देवानन्दाय निर्भयम् ॥ ३८ ॥ कैलासवासिनं रुद्रं मद्रूपं पूर्णमुत्तमम् । देवकार्यार्थमुद्भूतं पृथगाकृतिधारिणम् ॥३९॥ एतदर्थं हि मद्रूपः परिपूर्णतमः प्रभुः । कैलासे भक्तवशतस्संतिष्ठति गिरौ हरे ॥ ४० ॥ अस्तरत्वत्तो न भेदोऽस्ति युवयोस्सेव्य एव सः । चराचराणां सर्वेषां सुरादीनां च सर्वदा ॥ ४१ ॥ आवयोर्भेदकर्ता यस्स नरो

अपने कार्यको व्यग्रता छोड़ कर करते रहो ॥ ३१ ॥ तुम वाराह कल्पमें अपनी रमणी राधाके साथ शापके प्रभावको भुगत फिर अपने स्थान पर आजाओगे ३२ हे कृष्ण ! तुम्हारा परम भक्त जो सुदामा नामका पार्षद है, वह आज कल दानवीयोनिमें पड़ कर जगत्को कष्ट देरहा है ॥ ३३ ॥ वह राधाके शापके प्रभावसे देवताओंका शत्रु शङ्खचूड़ नाम वाला दानव बन गया है, वह दैत्योंका पक्ष ले रहा है और देवताओंसे द्रोह कर रहा है ।।३४।। उसने इन्द्र आदि देवताओं को निकाल दिया है और वह देवताओंके अधिकारको हर उन्हें सदा पीड़ा देरहा है, इस लिये देवता विकृत होकर दशों दिशाओंमें भागते फिरते हैं ३५ इसी लिये ब्रह्मा और अच्युत मेरी शरण आये हैं अतः मैं उनके क्लेशको दूर कर दूँगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—शंकर कृष्णसे इस प्रकार आदरपूर्वक वार्तालाप कर हरि और विधिसे क्लेशनाशन वचन कहने लगे ॥ ३७ ॥ शिवने कहा, कि—हे हरे ! और हे विधे ! देवताओंको आनन्द देने वाले मेरे इस वचनको तुम प्रीतिपूर्वक सुनो ! अब तुम मेरे रूप पूर्ण उत्तम कैलासवासी रुद्रके पास जाओ, देवताओंका कार्य करनेके लिये ही मैं वहाँ पृथक् आकार धारण कर रहता हूँ ।।३८ ।। ३९।। हे हरे ! मेरा वह रूप भक्तोंके वशमें हो ऐसे ही कामोंको करनेके लिये वहाँ रहता है, वह रूप परिपूर्ण और प्रभु है ।। ४० ।। मुझमें और उनमें कोई भेद नहीं है, तुमको, देवताओंको और चराचर सबको ही उनकी सेवा करनी चाहिये ४१ जो हम दोनों (रुद्र शिव) में भेदबुद्धि समझता है, वह नरकमें पड़ता है और पुत्र पौत्रोंसे शून्य होकर उसको इस लोकमें भी कष्ट भोगना पड़ता

नरकं व्रजेत् । इहापि प्राप्नुयात्कष्टं पुत्रपौत्रविवर्जितः ॥ ४२ ॥ इत्युक्तवन्तं दुर्गेशं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः । राधया सहितः कृष्णः स्वस्थानं सगणो ययौ ॥ ४३ ॥ हरिर्ब्रह्मा च तौ व्यास सानन्दौ गतसाध्वसौ । मुहुर्मुहुः प्रणम्येशं वैकुण्ठं ययतुर्द्रुतम् ॥ ४४ ॥ तत्रागत्याखिलं वृत्तं देवेभ्यो विनिवेद्य तौ । तानादाय ब्रह्मविष्णू कैलासं ययतुर्गिरिम् ॥ ४५ ॥ तत्र दृष्ट्वा महेशानं पार्वतीवल्लभं प्रभुम् । दीनरक्षात्तदेहं च सगुणं देवनायकम् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुः पूर्ववत्सर्वे भक्त्या गद्गदया गिरा । करौ बद्ध्वा नतस्कन्धा विनयेन समन्विताः ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव गिरिजानाथ शंकर । वयं त्वां शरणापन्ना रक्ष देवान्भयाकुलान् ॥ ४८ ॥ शङ्खचूडं दानवेन्द्रं जहि देवनिषूदनम् । तेन विद्राविता देवाः संग्रामे च पराजिताः ॥ ४९ ॥ हृताधिकाराः कुतले विचरन्ति यथा नराः । देवलोको हि दुर्दृश्यस्तेषामासीच्च तद्भयात् ॥ ५० ॥ दीनोद्धर कृपासिन्धो देवानुद्धर संकटात् । शक्रं भयान् महेशान हत्वा तं दानवाधिपम् ॥ ५१ ॥ इति श्रुत्वा वचश्शम्भुर्देवानां भक्तवत्सलः । उवाच विहसन् वाचया मेघनादगभीरया ॥ ५२ ॥ श्रीशङ्कर उवाच । हे हरे हे विधे देवाः स्वस्थानं गच्छत ध्रुवम् । शङ्खचडं वधिष्यामि सगणं नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ सनत्कुमार

है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कहते हुए दुर्गेशको प्रणाम कर श्रीकृष्ण अपने पार्षद और राधाको साथमें लेकर अपने स्थानको चले गये ॥४३॥ हे व्यास ! तब हरि और ब्रह्मा भी शिवको वारम्बार प्रणामकर निर्भय हो आनन्दपूर्वक वैकुंठको चल दिये तहाँ पहुँच उन्होंने देवताओंसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और उनको लेकर कैलासपर्वतको चल दिये ॥ ४५ ॥ तहाँ उन्होंने दीनोंकी रक्षा करनेके लिये सगुण हो देह धारण करने वाले देवताओंके नायक पार्वतीके स्वामी प्रभु महेशानको देखा ॥ ४६ ॥ फिर सब पहिलेकी समान भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ गद्गद वाणीमें स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे देवदेव महादेव गिरिजानाथ शंकर ! हम आपकी शरणमें हैं, हम शरणागतोंकी आप रक्षा करिये ॥४८॥ आप देवताओंको कष्ट देनेवाले दानवेन्द्र शङ्खचूड़का वध करिये उसने देवताओंको घबड़ा रखा है और वह संग्राममें देवताओंको हरा चुका है ॥४९॥ उसने देवताओंके पद छीन लिये हैं, इस लिये देवता मनुष्योंकी समान भूतल पर विचरते फिरते हैं, शंखचूड़के भयसे देवताओंको देवलोकका दर्शन होना कठिन पड़ रहा है ॥ ५० ॥ हे दीनबन्धु कृपासिंधु महेश्वर ! आप उस दानवराजको मार कर देवताओंको संकटमेंसे उबारिये और इन्द्रको भयसे छुड़ाइये ॥ ५१ ॥ भक्तवत्सल शम्भु देवताओंके इस वचनको सुन कर हँसे और मेघके गरजनेकी समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे ॥ ५२ ॥ श्रीशङ्करने कहा, कि—हे हरे ! हे विधे ! और हे देवताओ ! तुम अब अपने स्थानोंको जाओ, मैं सैनिकों सहित शङ्खचूड़का वध कर डालूँगा, इसमें कुछ सन्देह

उवाच । इत्थमाकर्ण्य महेशस्य वचः पीयूषसंनिभम् । ते सर्वे प्रमुदा ह्यासन्नष्टं मत्वा च दानवम् ॥ ५४ ॥ हरिर्जगाम वैकुण्ठं सत्यलोके विधिस्तदा । प्रणिपत्य महेशं च सुराद्याः स्वपदं ययुः ॥ ५५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे शिवोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार उवाच । अथेशानो महारुद्रो दुष्टकालस्सतां गतिः । शङ्खचूडवधं चित्ते निश्चिकाय सुरेच्छया ॥१॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिके मुदा ।२। सर्वेश्वराज्ञया दूतो ययौ तन्नगरं च सः । महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ३॥ गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् । राजितं द्वादशैर्द्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा पुष्पदन्तस्तु वरं द्वारं ददर्श सः । कथयामास वृत्तान्तं द्वारपालाय निर्भयः ॥ ५ ॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरे मुदा । अतीव सुन्दरं रम्यं विस्तीर्णं समलंकृतम् ॥ ६ ॥ स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श दनुजाधिपम् । वीरमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ।७। दानवेन्द्रैः परिवृतं सेवितं च त्रिकोटिभिः । शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिश्शस्त्रपाणिभिः ८

नहीं है । ५३॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—महेशके इस अमृतसमान वचनको सुन कर, वे सब दानवको मरा हुआ समझ कर प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ उस समय महेशको प्रणाम करके हरि वैकुण्ठको चले गये और ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गए तथा देवता भी अपने २ लोकको चले गए ॥ ५५ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ ❀ छ ❀ छ ❀

सनत्कुमारजीने कहा, कि—तदनन्तर सज्जनोंकी गति और दुष्टोंके काल ईश्वर महारुद्रने देवताओंकी इच्छासे चित्तमें शङ्खचूड़के वध करनेका विचार किया ॥१॥ उन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त) को दूत बनाकर आनन्दपूर्वक शङ्खचूड़के पास भेजा ॥ २ ॥ सबके ईश्वर शिवकी आज्ञा पा वह दूत इन्द्रके नगरसे भी श्रेष्ठ और कुबेरके भवनसे भी अधिक शोभासम्पन्न उसके नगरको चल दिया ॥ ३ ॥ तहाँ पहुँच कर उन्होंने नगरके बीचमें शङ्खचूड़के श्रेष्ठ भवनको देखा, उसमें बारह फाटक थे और प्रत्येक फाटक पर द्वारपाल बैठे हुए थे ॥ ४ ॥ उनको देखते हुए पुष्पदन्त श्रेष्ठ द्वार पर जा पहुँचे और निर्भयतापूर्वक द्वारपालसे अपना वृत्तान्त कहा ॥ ५ ॥ और उस ड्योढ़ीको प्रसन्नतापूर्वक लाँघ परम सुन्दर विस्तीर्ण अलंकृत आँगनमें पहुँच गये ॥६॥ तहाँ पहुँच कर उन्होंने दनुजराज शङ्खचूड़को वीरमण्डलीके बीचमें रत्नसिंहासन पर बैठे हुए देखा ॥७॥ तीन करोड़ दानव उसके चारों ओर बैठ उसकी सेवा कर रहे थे और सौ करोड़ दानव हाथमें शस्त्र लेकर चारों ओर घूम रहे

एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तस्सविस्मयः । उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ।९।
पुष्पदन्त उवाच । राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो । यदुक्तं शङ्करेणैव
तच्छृणु त्वां ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ शिव उवाच । राज्यं देहि च देवानामधिकारं हि
सांप्रतम् । नो चेत्कुरु रणं सार्द्धं परेण च महाऽसुर ॥ ११ ॥ देवा मां शरणापन्ना
देवेशं शङ्करं निजम् । अहं क्रुद्धो महारुद्रस्त्वां वधिष्याम्यसंशयम् ॥ १२ ॥ हरोऽ-
स्मि सर्वदेवेभ्यो ह्यभयं दत्तवानहम् । खलदण्डधरोऽहं वै शरणागतवत्सलः १३।
राज्यं दास्यसि किं वा त्वं करिष्यसि रणं च किम् । तत्त्वं ब्रूहि द्वयोरेकं दानवेन्द्र
विचार्य वै ॥ १४ ॥ पुष्पदन्त उवाच । इत्युक्तं यन्महेशेन तुभ्यं तन्मे निवेदितम् ।
वितथं शम्भुवाक्यं न कदापि दनुजाधिप ॥ १५ ॥ अहं स्वस्वामिनं गन्तुमिच्छामि
त्वरितं हरम् । गत्वा वदामि किं शम्भोस्तथा त्वं वद मामिह ॥ १६ । सनत्कुमार
उवाच । इत्थं च पुष्पदन्तस्य शिवदूतस्य सत्पतेः । आकर्ण्य वचनं राजा हसित्वा
तमुवाच सः ॥ १७ ॥ शङ्खचूड उवाच । राज्यं दास्ये न देवेभ्यो वीरभोग्या वसुं-
धरा । रणं दास्यामि ते रुद्र देवानां पक्षपातिने ॥ १८ ॥ यस्योपरि प्रयायी स्यात्स

थे ॥ ८ ॥ ऐसे शङ्खचूड़को देख पुष्पदन्तको विस्मय हुआ और उन्होंने शंकर ने जो रणवृत्तान्त कहा था, वह कहा ॥ ९ ॥ पुष्पदन्तने कहा, कि-हे प्रभो! हे राजेन्द्र! मैं शिवका दूत हूँ, मेरा नाम पुष्पदन्त है, शंकरने जो कुछ कहा है उसको मैं कहता हूँ, सुनो ॥ १० ॥ श्रीशिवने कहा है, कि-तुम देवताओंको उनका राज्य और अधिकार देदो, अन्यथा हे असुर! तुम मुझे अपना शत्रु समझ कर मेरे साथ युद्ध करो ॥ ११ ॥ देवता मुझको अपना समझ और देवेश समझ कर मेरी शरणमें आये हैं, अतः महारुद्र मैं क्रोधमें भर तुम्हें मार ही डालूँगा ॥ १२ ॥ मैं हर हूँ और मैं सकल देवताओंको अभय दे चुका हूँ तथा मैं दुष्टोंको दण्ड देने वाला और शरणागतवत्सल हूँ ॥ १३ ॥ इस लिये हे दानवेंद्र! तुम राज्य दोगे वा रण करोगे, इन दोनोंमेंसे एक बातको विचार कर कहो ॥ १४ ॥ पुष्पदन्तने कहा, कि- महेशने जो बात कही है, वह मैंने तुमसे कह दी, हे दनुजाधिप! शम्भुका वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता है १५ मैं अपने स्वामी शम्भुके पास शीघ्र ही जाना चाहता हूँ, अतः मैं उनके पास जाकर क्या कहूँ इसको तुम बताओ ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-श्रेष्ठ स्वामी वाले शिवदूत पुष्पदन्तके इस प्रकारके वचनको सुन वह राजा हँस कर उनसे कहने लगा ॥ १७ ॥ शङ्खचूडने कहा, कि-मैं देवताओंको राज्य नहीं दूँगा, यह पृथ्वी तो वीरोंके भोगनेकी होती है अतः हे रुद्र! मैं तुमसे युद्ध करूँगा, क्योंकि- तुम देवताओंका पक्ष करते हो ॥ १८ ॥ जिसके ऊपर दूसरा चढ़ कर आवे, वह वीर संसारमें अधम माना जाता है, अतः हे रुद्र! मैं पहिले

वीरो भुवनेऽधमः । अतः पूर्वमहं रुद्र त्वां गमिष्याम्यसंशयम् ॥१९॥ प्रभाते आगमिष्यामि वीरयात्राविचारतः । त्वं गच्छाचक्ष्व रुद्राय हीदृशं वचनं मम ॥ २० ॥ इति श्रुत्वा शङ्खचूडवचनं सुप्रहस्य सः । उवाच दानवेन्द्रं स शम्भुदूतस्तु गर्वितम् अन्येषामपि राजेन्द्र गणानां शङ्करस्य च । न स्थातुं सम्मुखे योग्यः किं पुनस्तस्य सम्मुखम् ॥२२॥ स त्वं देहि च देवानामधिकाराणि सर्वशः । त्वमरं गच्छ पातालं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २३ ॥ सामान्यममरं तं नो विद्धि दानवसत्तम । शङ्करः परमात्मा हि सर्वेषामीश्वरेश्वरः ॥ २४ ॥ इन्द्राद्यास्सकला देवा यस्याज्ञावर्तिनस्सदा । सप्रजापतयस्सिद्धा मुनयश्चाप्यहीश्वराः ॥ २५ ॥ हरेर्विधेश्च स स्वामी निर्गुणस्सगुणस्स हि । यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण सर्वेषां प्रलयो भवेत् ॥ २६ ॥ शिवो हि पूर्णरूपश्च लोकसंहारकारकः । सतां गतिर्दुष्टहन्ता निर्विकारः परात्परः ॥ २७ ॥ ब्रह्मणोऽधिपतिस्सोऽपि हरेरपि महेश्वरः । अवमान्यं न वै तस्य शासनं दानवर्षभ किं बहूक्तेन राजेन्द्र मनसा संविचार्य च । रुद्रं विद्धि महेशानं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ॥२९॥ देहि राज्यं हि देवानामधिकारांश्च सर्वशः । एवं ते कुशलं तात भवि-

---

तेरे ऊपर चढ़ाई कर दूँगा ॥ १९ ॥ मैं विचार कर प्रातःकाल वीरयात्राका विचार करूँगा, तुम रुद्रसे जाकर मेरे इस वचनको कह देना ॥ २० ॥ शंखचूडके इस वचनको सुन कर वह दूत हँसा और उस गर्वमें भरे हुएसे हँसकर इस प्रकार कहने लगा ॥ २१ ॥ उनके गणोंके भी सामने खड़े होनेकी शक्ति तुममें नहीं है, फिर उन शंकरके सामने खड़े होनेकी योग्यता तो तुममें आई ही कहाँ से ॥ २२ ॥ इस लिये यदि तुम जीवित रहना चाहो तो देवताओंके अधिकार देवताओंको देकर स्वयं पातालमेंको भाग जाओ ॥२३॥ हे दानवसत्तम ! तुम शंकरको सामान्य देवता मत समझो, क्योंकि-शंकर परमात्मा हैं और सकल ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं ॥ २४ ॥ इन्द्र आदि सकल देवता जिनकी आज्ञामें चलते हैं, प्रजापति सिद्ध मुनि, सर्पपति जिनकी आज्ञामें चलते हैं २५ जो हरि और विधिके स्वामी हैं, वह शंकर सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं, उनके भ्रुकुटि विलाससे ही सबका प्रलय होसकता है ॥ २६ ॥ शिव पूर्णरूप हैं, संसारका संहार करने वाले हैं, निर्विकार हैं और परात्पर हैं ॥ २७ ॥ वह ब्रह्माजीके भी स्वामी हैं और हरिके भी ईश्वर हैं, इस लिये हे दानवर्षभ ! उनकी आज्ञाका तुम्हें अपमान नहीं करना चाहिये ॥२८॥ हे राजेन्द्र ! अधिक कहनेसे क्या, तुम अपने मनमें ही विचार करो और रुद्रको परब्रह्म चिदात्मा और महेश्वर समझो ॥ २९ ॥ अतः देवताओंको उनका राज्य और सिंहासन अर्पण करनेसे ही तुम्हारा कल्याण होसकता है, हे तात ! अन्यथा तुम पर

ष्यत्यन्यथा भयम् ॥ ३० ॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा दानवेन्द्रः शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच शिवदूतं तं भवितव्यविमोहितः ॥३१॥ शङ्खचूड उवाच । स्वतो राज्यं न दास्यामि नाधिकारान् विनिश्चयात् । विना युद्धं महेशेन सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ३२ ॥ कालाधीनं जगत्सर्वं विज्ञेयं सचराचरम् । कालाद्भवति सर्वं हि विनश्यति च कालतः ॥ ३३ ॥ त्वं गच्छ शङ्करं रुद्रं मयोक्तं वद तत्त्वतः । स च युक्तं करोत्वेवं बहुवार्तां कुरुष्व नो ॥३४॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा शिवदूतोऽसौ जगाम स्वामिनं निजम् । यथार्थं कथयामास पुष्पदन्तश्च सन्मुने ॥ ३५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे दूतगमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सनत्कुमार उवाच । तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः । सक्रोधः प्राह गिरिशो वीरभद्रादिकान्गणान् ॥१॥ रुद्र उवाच हे वीरभद्र हे नन्दिन्क्षेत्रपालाष्टभैरवाः । सर्वे गणाश्च सन्नद्धास्सायुधा बलशालिनः ॥ २ ॥ कुमाराभ्यां सहैवाद्य निर्गच्छन्तु ममाज्ञया । स्वसेनया भद्रकाली निर्गच्छतु रणाय च । शङ्खचूडवधार्थाय निर्गच्छाम्यद्य सत्वरम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याज्ञाप्य महेशानो निर्ययौ

बड़ा भारी भय पड़ेगा ॥३०॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि–प्रतापवान् दानवराज शंखचूड इस वचनको सुन होनहारके चक्रमें पड़ शिवदूतसे कहने लगा ॥३१॥ शंखचूडने कहा, कि–मैं महेशसे युद्ध किये बिना वैसे ही राज्य और अधिकार अर्पण नहीं करूँगा, यह बात मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ३२ ॥ चराचर संपूर्ण जगत्को कालके अधीन ही समझना चाहिये, कालसे ही सब कुछ होता है और काल आने पर ही सब कुछ नष्ट होजाता है ॥ ३३ ॥ अतः तू शंकर रुद्रके पास चला जा और मेरी कही हुई बातको ठीक २ कहदे, वह जैसा ठीक समझेगा तैसा करेगा, तू बहुत बात मत कर ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजी कहते, हैं, कि-शिवदूत इस प्रकार वार्तालाप कर अपने स्वामी शंकरके पास चला गया और उसने शिवजीसे सब बात ठीक २ कह दी ॥ ३५ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ * छ * छ *

सनत्कुमारजीने कहा, कि–दूतके इस वचनको सुन कर देवताओंके स्वामी गिरिश शिव क्रोधमें भर वीरभद्र आदि गणोंसे कहने लगे ॥ १ ॥ रुद्रने कहा कि–हे वीरभद्र ! हे नन्दिन् ! हे आठों भैरव क्षेत्रपालो ! सब ही बलवान् गण आयुध ले कुमारोंको साथ ले मेरी आज्ञासे युद्ध करनेके लिये आज ही प्रस्थान करें, भद्रकाली भी अपनी सेनाको साथमें लेकर रण करनेके लिये निकलें, मैं भी शंखचूडका वध करनेके लिये अब शीघ्रतापूर्वक निकलता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–महेश इस प्रकार आज्ञा दे सेनाको साथमें ले निकल

सैन्यसंयुतः । सर्वे वीरगणास्तस्यानुययुस्सम्प्रहर्षिताः ॥४॥ एतस्मिन्नन्तरे स्कंद-गणेशौ सर्वसैन्यपौ । ययतुर्मुदितौ नद्धौ सायुधौ च शिवान्तिके ॥ ५ ॥ वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालस्सुभद्रकः । विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकम्पनः ॥ ६ ॥ विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः । कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकारस्ताम्रलोचनः ॥७॥ कालङ्करो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः । बलोन्मत्तो रणश्लाघ्यो दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥ ८ ॥ इत्यादयो गणेशानास्सैन्यानां पतयो वराः । तेषां च गणनां वच्मि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ शङ्खकर्णः कोटिगणैर्युतः परविमर्दकः । दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ॥ १० ॥ चतुष्षष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः । षड्भिस्सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः ॥११॥ जालको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः । सप्तभिस्समदः श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च ॥ १२ ॥ पञ्चभिश्च करालाक्षः षड्भिस्संदारको वरः । कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेह गणपस्सर्वसत्तमः । पिप्पलश्च सहस्रेण संनादश्च तथाविधः ॥ आवेशनस्तथाष्टाभिस्त्वष्टाभिश्चन्द्रतापनः । महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः ॥ १५ ॥ कुंडी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतकश्शुभः । कालश्च कालकश्चैव महा-

पड़े, तब उनके सब वीर भी प्रसन्न हो उनके पीछे २ चलने लगे ॥४॥ उस समय सम्पूर्ण सेनाओंके अध्यक्ष स्कंद और गणेश कवच पहिर आयुध ले शिवके पास पास चलने लगे ॥ ५ ॥ वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकर, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघ्य, दुर्जय, दुर्गम इत्यादि गणोंकी सेनाओंके सेनापति चल दिये, अब मैं संख्या को कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ६-९॥ शत्रुओंका मर्दन करने वाला शंखकर्ण करोड़ गणोंको साथमें लेकर चला, केकराक्ष दश करोड़ और विकृत आठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चला ॥१०॥ विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नौ करोड़, सर्वान्तक और श्रीमान् विकृतानन छः छः करोड़ गणोंको साथ लेकर चले ॥ ११ ॥ गणपुंगव जालक बारह करोड़, समद सात करोड और श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चला ॥१२॥ करालाक्ष पाँच करोड़ सन्दारक छः करोड़, कन्दुक और कुण्डक एक एक करोड़, विष्टम्भ आठ करोड़ और सब गणाध्यक्षोंमें श्रेष्ठ पिप्पल और सन्नाद हजार हजार करोड़ गणोंको साथ लेकर चले ॥ १३ ॥ १४ ॥ आवेशन और चन्द्रतापन नामक गणाध्यक्ष आठ २ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले और गणाध्यक्ष महाकेश हजार करोड़ गणोंको साथ लेकर चला ॥१५॥ वीर कुण्डी और शुभ पर्वतक बारह करोड़, काल, कालक और महाकाल सौ सौ करोड़ गणोंको साथमें लेकर चले ॥१६॥

कालश्शतेन वै ॥ १६ ॥ अग्निकश्शतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च । आदित्यो ह्यर्द्धकोट्या च तथा चैवं घनावहः ॥ १७ ॥ सनाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा । अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या सुमन्त्रकः ॥१८॥ काकपादः कोटिषष्ट्या षष्ट्या सन्तानकस्तथा । महाबलश्च नवभिः पञ्चभिर्मधुपिंगलः ॥१९॥ नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च । कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्रो महाबलः ॥२०॥ कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिस्तथा । तत्राजग्मुस्तथा वीरास्ते सर्वे रणोत्सवे । भूतकोटिसहस्रेण प्रमथैः कोटिभिस्त्रिभिः । वीरभद्रश्चतुष्षष्ट्या लोमजानां त्रिकोटिभिः ॥२२॥ काष्ठारूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा । विरूपाक्षश्च भगवांश्चतुःषष्ट्या सनातनः ॥२३॥ तालकेतुः षडास्यश्च पंचास्यश्च प्रतापवान् । संवर्तकस्तथा चैत्रो लंकुलीशस्स्वयं प्रभुः ॥ २४ ॥ लोकांतकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तकः प्रभुः । देवो भृङ्गी रिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा ॥ २५ ॥ अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः । कंकालः कालकः कालो नन्दी सर्वान्तकस्तथा ॥ २६ ॥ एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः । युद्धार्थं निर्ययुः प्रीत्या शंखचूडेन निर्भयाः ॥ २७ ॥ सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः । चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकंठास्त्रिलोचनाः ॥ रुद्राक्षाभरणास्सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः । हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः २८

अग्निक सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्य और घनावह पचास पचास लाख गणोंको साथमें लेकर चले ॥ १७ ॥ सनाह सौ, कुमुद करोड़, अमोघ, कोकिल और सुमन्त्रक सौ सौ करोड़ गणोंको साथमें लेकर चले ॥ १८ ॥ काकपाद साठ करोड़, सन्तानक साठ करोड़, महाबल नौ करोड़, मधुपिंगल पाँच करोड़, नील, देवेश और पूर्णभद्र नब्भै करोड़ और महाबली चतुर्वक्त्र सात करोड़ गणोंको साथमें लेकर चले ॥ १९ ॥ २० ॥ इस प्रकार वे सब वीर रण-महोत्सवमें २०००००००००००००००० गणोंको साथमें लेकर आगए ।२१। १०००००००००००० भूत, ३०००००० प्रमथ उस रणभूमिमें आये थे, वीरभद्र ६४०००००० गण और तीन करोड़ लोमजोंको साथमें लेकर आये २२ काष्ठारूढ़, सुकेश वृषभ, विरूपाक्ष, भगवान् सनातन चौंसठ २ करोड़ गणोंको साथमें लेकर चले ॥ २३ ॥ तालकेतु, षडानन, प्रतापवान् पञ्चमुख, संवर्तक चैत्र, स्वयंप्रभु लकुलीश, दीप्तात्मा लोकान्तक, प्रभु दैत्यान्तक, देव भृङ्गी, रिटि, श्रीमान् देवदेवप्रिय, चौंसठ हजार गणोंसहित अशनि और भानुक, कंकाल, कालक, नन्दी, सर्वान्तक ये तथा और भी असंख्य महाबली गणाध्यक्ष निर्भय हो शंखचूड़से युद्ध करनेके लिये प्रीतिपूर्वक चल पड़े ॥ २४–२७ ॥ सबके हजारों हाथ थे, वे जटाओंका मुकुट धारण कर रहे थे, कण्ठ नील था और सबके नेत्र तीन २ थे ॥ २८ ॥ सब रुद्राक्ष और सद्भस्म धारण कर रहे थे,

ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशा अणिमादिगुणैर्वृताः । सूर्यकोटिप्रतीकाशाः प्रवीणा युद्धकर्मणि ॥ ३० ॥ पृथिवीचारिणः केचित्केचित्पातालचारिणः । केचिद् व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने ॥३१॥ किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः । ययुश्शिवगणास्सर्वे युद्धार्थं दानवैस्सह ॥३२॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशाश्च ये । वसवोऽष्टौ वासवश्चादित्या द्वादश ते द्रुतम् ॥३३॥ हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ । कुबेरश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्नलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलश्च वै । ग्रहाश्चान्ये महेशेन कामदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्रश्चोग्रदण्डः कोरटः कोटभस्तथा । स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली महेश्वरी ।३६। रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता । रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा । अभयं ददती स्वेभ्यो भयं चारिभ्य एव सा ॥ ३८ ॥ बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् । शंखचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुश्शरान् ॥ ३९ ॥ खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम् । त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम् ॥४०॥ मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुल्बणम्।

हार, कुण्डल, बाजूबन्द और मुकुट आदिसे अलंकृत थे ॥ २९ ॥ ब्रह्मा इन्द्र और विष्णुकी समान अणिमा आदि गुणोंसे विभूषित थे, करोड़ों सूर्योंकी समान दमक रहे थे और युद्धकर्ममें प्रवीण थे ॥ ३० ॥ हे मुने ! उनमेंसे कोई पृथिवी पर विचरने वाले थे, कोई पातालचारी थे, कोई आकाशचारी और कोई स्वर्गविहारी थे ॥ ३१ ॥ हे देवर्षे ! अधिक कहनेसे क्या ? शिवलोकोंमें रहनेवाले शिवगण दानवोंसे युद्ध करनेके लिये चल पड़े ॥ ३२ ॥ आठों भैरव, भयंकर एकादश रुद्र, आठों वसु इन्द्र, बारह आदित्य, अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु वरुण बुध, मंगल तथा और ग्रह और वीर्यवान् कामदेव भी महादेवजीके साथ चले ॥ ३३—३५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरटः कोटभ और स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली महेश्वरी भी महादेवजीके साथ चलीं ॥३६॥ वह श्रेष्ठ रत्नोंसे बने हुए विमान पर बैठी हुई थीं, रक्त वस्त्र पहिर रही थीं और रक्तचन्दन लगा रही थीं ॥ ३७ ॥ वह नाच रही थीं, हँस रही थीं और आनन्दमें भर सुन्दर स्वरसे गा रही थीं, इस प्रकार अपने पुरुषोंको अभय देरही थीं और शत्रुओंको भय देरही थीं ॥३८॥ उनकी योजन भरकी विकट जिह्वा सुन्दर लीला कर रही थी, वह शंख, चक्र, गदा पद्म, खड्ग, ढाल, धनुष और बाणोंको धारण कर रही थीं ॥३९॥ उनका गहरा गोल खप्पर योजन भर चौड़ा था, त्रिशूल आकाशको छूरहा था, और शक्ति योजन-भरकी थी, वह मुद्गर, मूसल, वज्र, खड्ग, तीखा फलका, वैष्णवास्त्र,

वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वायव्यं नागपाशकम् ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा। पार्जन्यं च पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम् ॥ ४२ ॥ महावीरं च सौरं च कालकालं महानलम्। महेश्वरास्त्रं याम्यं च दंडं संमोहनं तथा ॥ ४३ ॥ समर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम्। बिभ्रती च करैस्सर्वैरन्यान्यपि च सा तदा ॥ ४४ ॥ आगत्य तस्थौ सा तत्र योगिनीनां त्रिकोटिभिः। सार्द्धं च डाकिनीनां वै विकटानां त्रिकोटिभिः ॥४५॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव सकिन्नराः ॥ ४६ ॥ तैश्चैवाभिवृतः स्कंदः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्। पितुः पार्श्वे सहायो यः समुवास तदाज्ञया ॥४७॥ अथ शंभुस्समानीय स्वसैन्यं सकलं तदा। युद्धार्थमगमद्रुद्रश्शंखचूडेन निर्भयः ॥४८॥ चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥ ४९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शङ्खचूडवधे महादेवयुद्धयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच। विधितात महाबुद्धे मुने जीव चिरं समाः। कथितं सुमहच्चित्रं चरितं चन्द्रमौलिनः ॥१॥ शिवदूते गते तत्र शंखचूडश्च दानवः। किं चकार प्रतापी स तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच। अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान्। उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव ताम् ॥ ३ ॥ शंखचूड उवाच।

वारुणास्त्र, पवनास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गान्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, महावीर, सौर, कालकाल, महानल, माहेश्वरास्त्र, यमदण्ड, सम्मोहनास्त्र, दिव्य समर्थ-अस्त्र दूसरे दिव्यास्त्रशतकको सब हाथोंमें ले रही थीं इनके अतिरिक्त और अस्त्र भी उनके हाथमें थे ४०-४४ वह तीन करोड़ योगनियोंको और साढ़े तीन करोड़ विकट डाकिनियोंको साथमें ले आकर खड़ी होगई ॥ ४५ ॥ और स्कन्द भी भूत प्रेत पिशाच कूष्माण्ड ब्रह्मराक्षस बेताल, राक्षस यक्ष और किन्नरोंसे घिर कर पिताके पास में आकर खड़े होगए और उनको प्रणाम किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर शम्भु अपनी सकल सेनाको बुला निर्भयतापूर्वक शंखचूड़से युद्ध करनेके लिये चल पड़े ॥ ४८ ॥ और देवताओंका निस्तार करनेके लिये चन्द्रभागा नदी के तट पर मनोहर वटवृक्षके नीचे खड़े होगए ॥४९॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३३

व्यासजीने कहा, कि हे महाबुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र मुने! आपने चन्द्रमौलिका विशाल और विचित्र चरित्र सुनाया, अतः आप अनेक वर्षों तक जीवित रहें। १। अब आप यह बताइये, कि-शिवदूतके चले जाने पर प्रतापी शंखचूड़ने फिर क्या किया था, उसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-दूतके चले जाने पर प्रतापी शंखचूड़ने अन्तःपुरमें जाकर तुलसीसे

शम्भुदूतमुखाद्देवी युद्धार्थं समुद्यतः । तेन गच्छाम्यहं याद्धुं शासनं कुरु मे ध्रुवम् ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्त्वा स ज्ञानी नानाबोधनतः प्रियम् । क्रीडां चकार हर्षेण तमनादृत्य शङ्करम् ॥५॥ तौ दम्पती चिक्रीडाते निमग्नौ सुखसागरे । नानाकामकलाभिश्च निशि चाटुशतैरपि ॥ ६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च । नित्यकार्यं च कृत्वादौ ददौ दानमनन्तकम् ॥ ७ ॥ पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च । पुत्रे समर्प्य भार्यां च स राज्यं सर्वसम्पदम् ॥ ८ ॥ प्रियामाश्वासयामास स राजा रुदतीं पुनः । निषेधन्तीं च गमने नानावार्त्तां प्रकथ्य च ॥ ९ ॥ निजसेनापतिं वीरं समाहूय समादृतः । आदिदेश स संनद्धः संग्रामं कर्तुमुद्यतः १० शंखचूड उवाच । अद्य सेनापते वीरास्सर्वे समरशालिनः । सन्नद्धाखिलकर्माणो निर्गच्छन्तु रणाय च ॥ ११ ॥ दैत्याश्च दानवाः शूराः षडशीतिरुदायुधाः । कंकानां बलिनां शीघ्रं सेना निर्यान्तु निर्भयाः ॥१२॥ पंचाशदसुराणां हि निर्गच्छन्तु कुलानि वै । कोटिवीर्याणि युद्धार्थं शम्भुना देवपक्षिणा ॥ १३ ॥ संनद्धानि च धौम्राणां कुलानि च शतं द्रुतम् । निर्गच्छन्तु रणार्थं हि शम्भुना मम शासनात् ॥१४॥ कालकेयाश्च मौर्याश्च दौर्हृदाः कालकास्तथा । सज्जा निर्यान्तु युद्धाय रुद्रेण मम शास-

सब बात कही ॥ ३ ॥ शंखचूड़ने कहा, कि-हे देवि ! मैं शम्भुके दूतके मुखसे बात सुन युद्धके लिये उद्यत होगया हूँ, अतः मैं उनसे युद्ध करनेको जारहा हूँ, तुम मेरी आज्ञाको मानो ॥ ४ । इस प्रकार कहकर उस ज्ञानीने अनेक प्रकार से अपनी स्त्रीको बोध दिया और शंकरका अनादर कर हर्षपूर्वक अपनी सेना के साथ क्रीडा करने लगा ॥ ५ ॥ वे दोनों दम्पति रात्रिमें नाना प्रकारकी कामकलाओंसे और प्यारी २ बातोंसे सुखसागरमें मग्न हो क्रीड़ा करने लगे ।६। फिर शंखचूड़ने प्रातःकालमें उठ प्रातःकालीन कृत्य करके नित्यकर्म किया फिर बहुतसा दान दिया ॥ ७ ॥ फिर पुत्रको सब दानवोंके राजापद पर अभिषेक किया और पुत्रको भार्या तथा सब राज्यसम्पत्ति अर्पण करदी ॥ ८ ॥ फिर जब उसकी रानी रोकर जानेके लिये मना करने लगी तब उसने अनेक प्रकार की बातें कह कर उसको समझाया ॥९॥ फिर उस आदरणीय दैत्यने संग्राम के लिये उद्यत हो अपने वीर सेनापतिको बुलाकर संग्राम करनेके लिये तयारी की आज्ञा दी ॥ १० ॥ शंखचूड़ने कहा, कि-हे सेनापते ! आज सब समरशाली वीर सब कार्योंसे निबट कर रण करनेके लिये निकलें ॥ ११ ॥ और छियासी सशस्त्र शूर बलवान् कंक दानव निर्भय होकर सेनाका सञ्चालन करें ॥ १२ ॥ और असुरोंके पचास कुल भी जिनके पास करोड़ों सेनाएँ हैं देवताओंका पक्ष लेने वाले शम्भुसे युद्ध करनेके लिये चलें ॥ १३ ॥ और मेरी आज्ञा है, कि-धौम्रोंके सौ कुल भी शम्भुसे युद्ध करनेके लिये चलें ।१४।

नात् ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याज्ञाप्यासुरपतिर्दानवेन्द्रो महाबलः । निर्जगाम महासैन्यः सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ १६ ॥ तस्य सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः । महारथो महावीरो रथिनां प्रवरो रणे ॥१७॥ त्रिलक्षाक्षौहिणीयुक्तो मांडल्यं च चकार ह । बहिर्बभूव शिबिराद्रणे वीरभयङ्करः ॥ १८ ॥ रत्नेन्द्रं सारनिर्माणं विमानमभिरुह्य सः । गुरुवर्गं पुरस्कृत्य रणार्थं प्रययौ किल ॥१९॥ पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाश्रमे च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं सुसिद्धिदम् ॥ २० ॥ कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते । पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य हि पश्चिमे श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णे दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा । पुष्पभद्रा नदी रम्या जलपूर्णा सरस्वती ॥ २३ ॥ लवणोदधिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता । सरस्वतीसंश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥ २४ ॥ गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ । तत्र गत्वा शंखचूडः शिवसेनां ददर्श ह ॥ २५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडयात्रावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

कालकेय, मौर्य, दौर्हृद, कालक तयार हो शंकरसे युद्ध करनेके लिये चलें१५ सनत्कुमारजीने कहा, कि-महाबली असुरपति दानवेन्द्र इस प्रकार आज्ञा दे हजारों सैनिकोंसे भरी हुई बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर निकल पड़ा ॥ १६ ॥ उसका सेनापति भी युद्धशास्त्रमें विशारद, महारथो, महावीर और रथियोंमें श्रेष्ठ था ॥ १७ ॥ इस प्रकार रणमें वीरोंको भय देने वाला शंखचूड़ तीन लाख अक्षौहिणियों पर शासन करता हुआ छावनीमेंसे चला ॥ १८ ॥ वह बड़ोंका सत्कार कर बहुमूल्य रत्नोंसे जड़े हुए विमान पर चढ़ रण करनेके लिये निकला ॥१९॥ पुष्पभद्रा नदीके तट पर जहाँ शुभ अक्षय बट था सिद्धाश्रममें सिद्धोंको सिद्धि देने वाला सिद्धिक्षेत्र था और भारतवर्षमें पश्चिमोत्तर समुद्रके पूर्वमें और मलयाचलके पश्चिममें जहाँ कपिलका तपःस्थान है, जहाँ श्रीशैलके उत्तरभागमें और गन्धमादनके दक्षिणी भागमें पाँच योजन चौड़ा और पाँच सौ योजन लम्बा भूभाग है और जहाँ भारतमें शुद्ध स्फटिककी समान जल वाली पुण्य देने वाली जलपूर्ण पुष्पभद्रा नदी है और सरस्वती नदी है, वह लवणसमुद्रकी प्रिय भार्या सदासुहागन पुष्पभद्रा सरस्वतीके साथ २ हिमालयसे निकली है ॥ २० ॥ २४ ॥ वह गोमन्त पर्वतको बाईं ओर करती हुई पश्चिमसमुद्रमें गिरी है, तहाँ पर शङ्खचूड़ने शिवसेनाको देखा ।२५। चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ * छ * छ

सनत्कुमार उवाच । तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् । दूतं कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम् ॥१॥ स तत्र गत्वा दूतश्च चंद्रभालं ददर्श ह । वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २ ॥ कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्तं च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥ ३ ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् । भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकान्तं त्रिलोचनम् ॥ ४ ॥ तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसम्पदाम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ५ ॥ विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् । विश्वेश्वरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ।६। कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् । ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ७ अवरुह्य रथाद् दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः । शंकरं सुकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः ८ वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् । लोकाशिषं ददौ तस्मै काली स्कंदश्च शंकरः ॥९॥ अथासौ शङ्खचूडश्च दूतः परमशास्त्रवित् । उवाच शङ्करं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ॥ १० ॥ दूत उवाच । शंखचूडस्य दूतोऽहं त्वत्सकाशमिहागतः । वर्तते ते किमिच्छाद्य तत्त्वं ब्रूहि महेश्वर ॥ ११ ॥ सनत्कुमार उवाच । इति श्रुत्वा

सनत्कुमारने कहा, कि—दानवेन्द्रने तहाँ पर स्थित होकर एक महाबुद्धिमान् बड़े दानवेश्वरको दूत बना कर शंकरके पास भेजा ॥ १ ॥ दूतने तहाँ पहुँच कर बटकी जड़में योगासनसे बैठे हुए, करोड़ों सूर्यकी समान प्रभा वाले मुद्रा युक्त दृष्टिसे मुस्कुराते हुए, शुद्ध स्फटिककी समान गौरवर्ण, ब्रह्मतेजसे, दमकते हुए, त्रिशूल और पट्टिशको धारण करने वाले, भक्तोंकी मृत्युका हरण करने वाले व्याघ्रचर्मधारी, शान्त, गौरीकान्त त्रिलोचन, तपका फल देने वाले, सब संपत्तियोंके कर्ता, शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले, प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करनेके लिये कातर रहने वाले, विश्वके नाथ, विश्वके बीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वेश्वर, विश्वकर, विश्वसंहारकारण, कारणोंके भी कारण, नरकसमुद्रसे उद्धार करने वाले, ज्ञान देने वाले, ज्ञानबीज, ज्ञानानन्द सनातन चन्द्रभालको देखा ॥ २–७ ॥ वह दानवेश्वर दूत शंकरका दर्शन करते ही रथ परसे उतर पड़ा और उसने कुमारसहित शंकरको शिर झुका कर प्रणाम किया ॥ ८ ॥ उसने वामभागमें बैठी हुई भद्रकालीको और उनके सामने बठे हुए स्कन्दको प्रणाम किया, तब काली, स्कन्द और शंकरने उसको लोकाशीर्वाद दिया ।९। फिर वह शंखचूड़का परमशास्त्रवेत्ता दूत शंकरको प्रणाम कर हाथ जोड़ शुभ वचन कहने लगा ॥ १० ॥ दूतने कहा, कि—हे महेश्वर ! मैं शंखचूड़का दूत हूँ और आपके पास आया हूँ, आपकी क्या इच्छा है, हे शंकर ! उस बातको आप ठीक २ कहिये ॥ ११ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि—शंखचूड़के इस वचन को सुन कर शंकरका चित्त प्रसन्न होगया अतः वह भगवान् महादेव उससे

च वचनं शंखचूडस्य शङ्करः । प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ १२ ॥ महादेव उवाच । शृणु दूत महाप्राज्ञ वचो मम सुखावहम् । कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च ॥१३॥ विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् । मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १४॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश । तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ॥१५॥ चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः । तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ॥ १६ ॥ तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो दानवेन्द्रो महामतिः । तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ॥ १७ ॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वेव च धार्मिकः । अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः ॥ १८ ॥ दानवीं योनिमायातस्तत्त्वतो न हि दानवः । निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाधुना ॥१९॥ द्रोहं न कुरु तैस्सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम् । नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ॥२०॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव । निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठन्तु स्वपदे सुराः ॥२१॥ अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः । कुलीनाः शुद्धकर्माणः सर्वे काश्यपवंशजाः ॥ २२ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हन्ति

कहने लगे ॥१२॥ महादेवजीने कहा, कि—हे महाबुद्धिमान् दूत ! मेरे सुखदायक वचनको तुम सुनो और उस निर्विवाद बात पर विचार कर उस बातको शंखचूड़से कहना ॥१३॥ ब्रह्माजी जगत्के विधाता हैं, धर्मवेत्ता हैं और सबके धर्मपिता हैं, मरीचि उनके पुत्र हैं और उनके पुत्र कश्यप हैं ॥ १४ ॥ दक्षने अपनी तेरह कन्याओंको प्रीतिपूर्वक उनको विवाह दिया था, उनमें साध्वी दनु भी उनकी एक सौभाग्यवती पत्नी है ॥१५॥ उस दनुके परम तेजस्वी चार पुत्र हुए, उनमें एक विप्रचित्ति महाबली और महापराक्रमी हुआ ॥ १६ ॥ उसका पुत्र महामति दानवेन्द्र धार्मिक दम्भ हुआ उसके ही तुम श्रेष्ठ धर्मात्मा दानवेन्द्र पुत्र हो ॥ १७ ॥ पहिले तुम गोप-पार्षद थे और गोपोंमें भी धार्मिक थे अब तुमको राधिकाके शापवश दानवेश्वर होना पड़ा है ॥१८॥ तुम दानवी योनिमें आपड़े हो, वास्तवमें दानव नहीं हो, अतः अब अपने पहिले वृत्तान्तको जान कर देवताओंसे वैर करना छोड़ दो ॥ १९ ॥ उनके साथ द्रोह न करो और अपने पदको आदरके साथ भोगो, विचार करके विकार—युक्त अधिक राज्यको न करो ॥२०॥ हे दानव ! तुम देवताओंको राज्य देकर मेरी प्रीतिकी रक्षा करो, अपने राज्यमें सुखपूर्वक रहो और देवता अपने पद पर प्रतिष्ठित रहें ॥२१॥ प्राणिमात्रसे विरोध करना अच्छा नहीं है, फिर देवताओंके द्रोह की तो बात ही क्या है ? तुम सब तो कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए हो, कुलीन हो और शुद्ध कर्म करने वाले हो ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं,

षोडशीम् ॥२३॥ सनत्कुमार उवाच । इत्यादिबहुवार्त्तां च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम् । प्रोवाच शङ्करस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ॥ २४ ॥ शिक्षितश्शङ्खचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः । उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः ॥ २५ ॥ दूत उवाच । त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः । तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ॥ ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् । तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो ॥ २७ ॥ सर्वेषामिति चेत्तर्हि तदा वच्मि विचार्य च । निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु सन्देहभञ्जनम् ॥ २८ ॥ मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे । शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री महेश्वर ॥ २९ ॥ त्रिपुरैस्सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः । भवाश्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम् ॥३०॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः । सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः ॥ ३१ ॥ सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः । शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः ॥३२॥ पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः । क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥ ३३ ॥ क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः । स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥ ३४ ॥

वे सब ज्ञातिद्रोहसे होने वाले पापको सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं।२३। सनत्कुमारजीने कहा, कि-इस प्रकार शंकरने उसको समझाते हुए श्रुतिस्मृति-सम्मत और भी बहुतसी बातें कहीं ॥२४॥ परन्तु शंखचूड़का सिखाया हुआ वह दूत होनहारसे मोहमें पड़ नम्रतापूर्वक कहने लगा ॥२५॥ दूतने कहा, कि-आपने जो बात कही, हे देव ! वह बात ठीक है, असत्य नहीं है, फिर भी कुछ यथार्थ और सच्ची बात मैं आपसे निवेदन करता हूँ, सुनिये ॥ २६ ॥ अभी आपने ज्ञातिद्रोहमें जो बड़ा भारी पाप बताया, तो क्या हे ईश ! वह क्या असुरोंको ही लगता है, देवताओंको नहीं लगता, हे प्रभो ! इसको आप मुझे बताइये ॥ २७ ॥ यदि यह सबको लगता हो तो मैं जो बात कहता हूँ उस पर विचार करके आज सन्देहको दूर करनेके लिये उत्तर दीजिये ॥२८॥ हे महेश्वर ! प्रलयार्णवमें दैत्यवर मधुकैटभसे युद्ध करते समय चक्रधारी विष्णुने उनके शिरको क्यों काट डाला था ॥ २९ ॥ और हे गिरिश ! देवताओंका पक्ष लेकर आपने त्रिपुरके साथ युद्ध करके उनको भस्म कर दिया था, यह क्या बात है ॥३०॥ बलिके सर्वस्वको छीनकर उसको कहाँ भेज दिया गया ? क्या उसको सुतल आदिका उद्धार करनेके लिये भेजा गया है? अब गदाधर उसके द्वार पर ही डटे रहते हैं ॥३१॥ हिरण्याक्ष और उसके भ्राताको देवताओंने क्यों मरवा दिया ? शुम्भ आदि असुरोंका भी देवताओंने क्यों नाश कराया ? ॥३२॥ पहिले समुद्रमथनके समय देवताओंने अमृत पी लिया और हम सबने फलमें क्लेश ही भोगा ॥ ३३ ॥ यह विश्व तो परमात्माका क्रीड़ा-

देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा । पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ॥ तवानयोर्विरोधे च ऽगमनं निष्फलं भवेत् । समसम्बन्धिनां तद्धि रोचते नेश्वरस्य ते ॥३६॥ सुरासुराणां सर्वेषामीश्वरस्य महात्मनः । इयं ते ह्यहिता लज्जा स्पर्द्धास्माभिस्सहाधुना ॥ ३७ ॥ यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये । तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ॥ ३८ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा संप्रहस्य त्रिलोचनः। यथोचितं च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥३९॥ महेश उवाच । वयं भक्तपराधीना न स्वतंत्राः कदापि हि । तदिच्छया तत्कर्माणः न कस्यापि च पक्षिणः ॥ ४० ॥ पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि । मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ॥ ४१ ॥ देवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा । प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ॥४२॥ त्रिपुरैस्सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः । देवप्रार्थनयाकारि मयापि च पुरा श्रुतम् ॥ ४३ ॥ सर्वेश्वर्यास्सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा । आसीच्छुम्भादिभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ॥४४॥ अद्यापि त्रिदशास्सर्वे ब्रह्माणं

पात्र है, वह जिस समय जिसको देते हैं, उसी समय उसका ऐश्वर्य होजाता है ॥ ३४ ॥ तब देवता और दानवोंका वैर तो नैमित्तिक है, सदा होता रहता है, उनकी हार जीत तो कालके अधीन है और वह सदा होती रहती है ।३५। समान संबन्ध वाले इन दोनोंके विरोधमें आपका जाना निष्फल होगा, इसमें आपका पड़ना उचित भी नहीं मालूम होता ॥ ३६ ॥ आप तो देवता और असुर सबके ही ईश्वर हैं; अतः आपसे महात्माका हमसे स्पर्धा करना लज्जा की बात है और आपका इससे अहित होसकता है ।।३७।। क्योंकि—पराजय होने पर कीर्तिकी बड़ी हानि होती है और यह बात आपके लिये विपरीत बात होगी, अतः इसका मनमें विचार तो करिये ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—इस वचनको सुन त्रिलोचन हँसे और दानवेश्वरसे यथोचित मधुर वचन कहने लगे ॥ ३९ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हम तो भक्तोंके अधीन हैं, कभी स्वतन्त्र नहीं रहते, उनकी इच्छासे ही उनके कर्म किया करते हैं, हम किसीका पक्ष नहीं लेते ॥ ४० ॥ पहिले भी ब्रह्माजीके प्रार्थना करने पर प्रलयसमुद्रमें दैत्यश्रेष्ठ मधुकैटभके साथ हरिका युद्ध हुआ था ॥ ४१ ॥ और उन भक्तहितकारी विष्णुने देवताओंके प्रार्थना करने पर प्रह्लादके लिये हिरण्यकशिपु का वध किया था ।।४२।। और मैंने भी पहिले जो त्रिपुरके साथ युद्ध करके उसको भस्म किया था, वह भी देवताओंकी प्रार्थनासे ही किया था ।।४३।। और सबकी ईश्वरी और सबकी माताका शुंभ आदिके साथ जो युद्ध हुआ था, वह भी देवताओंकी प्रार्थनासे ही हुआ था, उसमें देवीने युद्धमें उनको मार डाला था ॥ ४४ ॥ और अब भी सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गए थे,

शरणं ययुः । स सदेवो हरिर्मां च देवशशरणमागतः ॥ ४५ ॥ हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम् । सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु ॥ ४६ ॥ पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्णस्य च महात्मनः । ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपि त्वया समाः ४७ का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह । देवकार्यार्थमीशोऽहं विनयेन च प्रेषितः ॥ ४८ ॥ गच्छ त्वं शंखचूडे वै कथनीयं च मे वचः । स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम महेश्वरः । उत्तस्थौ शङ्खचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदन्तिकम् ॥ ५० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शङ्खचूडवधे शिवदूतसंवादो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार उवाच । स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह । सविस्तरं यथार्थञ्च निश्चयं तस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा शङ्खचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् । अङ्गीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ॥२॥ समारुरोह यानञ्च सहामात्यैश्च सत्वरः । आदिदेश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शङ्करेण च ॥३॥ शिवस्स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः । स्वयमप्यखिलेशोऽपि सन्नद्धोऽभूच्च लीलया ॥ ४ ॥ युद्धारंभो

वह देवताओंको और हरिको साथ लेकर मेरी शरणमें आये थे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार हे दूत ! हरि ब्रह्मा आदिकी प्रार्थनावश देवेश होनेसे मैं युद्ध करनेके लिये आया हूँ ॥ ४६ ॥ और तुम भी महात्मा कृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो, अतः जो २ दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी समान नहीं हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या लज्जा होगी ? देवताओंने अपना कार्य साधनेके लिये विनय करके मुझे भेजा है ॥ ४८ ॥ तू शंखचूड़के पास जाकर मेरे वचनको कह, वह जो ठीक समझेगा, उसको करेगा, मैं भी देवताओंका कार्य करता हूँ ॥ ४९ ॥ इस प्रकार कहकर शंकर चुप होगए, फिर शंखचूड़का दूत भी उठ कर उसके पासको चला गया ॥ ५० ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उस दूतने तहाँ पहुँच कर शिवके वाक्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया ॥ १ ॥ उसको सुन कर प्रतापवान् दानव दानवेन्द्र शङ्खचूड़ने रण करना ही प्रीतिपूर्वक अंगीकार किया ॥ २ ॥ वह अपने मन्त्रियोंसहित शीघ्र ही सवारियों पर बैठ गया और उसने अपनी सेनाओंको शंकरसे युद्ध करनेकी आज्ञा देदी ॥ ३ ॥ शिव स्वयं सबके स्वामी होने पर भी लीला करनेके लिये तयार होगए और अपनी सेनाका तथा देवताओंका शीघ्रतापूर्वक सञ्चालन करने लगे ॥ ४ ॥ शीघ्र ही युद्ध आरम्भ होगया, बाजे

बभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः । कोलाहलश्च सञ्जातो वीरशब्दस्तथैव च ॥ ५ ॥
देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने । धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवयोर्गणः ॥ ६ ॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धञ्च वृषपर्वणा। भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह धर्मतः ७
दम्भेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम् । कालासुरेण कालश्च गोकर्णेन हुता-
शनः ॥ ८ ॥ कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण
यमस्तथा ॥ ९ ॥ कालाम्बिकेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः । बुधश्च घटपृष्ठेन रक्ता-
क्षेण शनैश्चरः ॥ १० ॥ जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः । अश्विनौ दीप्ति-
मद्भ्यां च धूम्रेण नलकूबरः ॥ ११ ॥ धुरन्धरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मङ्गलः । शोभा-
करेण वैश्वानः पिपिटेन च मन्मथः ॥ १२ ॥ गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्नाऽसुरेण
च । धूम्रेण संहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना ॥ १३ ॥ पलाशेन द्वादशाऽर्का युयुधु-
र्धर्मतः परे । असुरैरमरास्सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः ॥ १४ ॥ एकादश महारुद्र-
श्चैकादशभयङ्करैः । असुरैर्युयुधुर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः ॥ १५ ॥ महामणिश्च युयुधे
चोग्रचण्डादिभिस्सह । राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ॥ १६ ॥ नन्दी-
श्वरादयस्सर्वे दानवप्रवरैस्सह । युयुधुश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक् ॥ १७॥

बजने लगे, कोलाहल और वीरशब्द होने लगा ५ हे मुने ! इस प्रकार देव दानवों का परस्परमें धर्मयुद्ध होने लगा, उस समय देवता और दानवोंकी सेना धर्म-पूर्वक लड़ रही थी ॥ ६ ॥ इन्द्र वृषपर्वाके साथ युद्ध करने लगे और भास्कर विप्रचित्तिके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ विष्णु दम्भके साथ महा युद्ध करने लगे, काल कालासुरके साथ और हुताशन गोकर्णके साथ युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ कुबेर कालकेयके साथ, विश्वकर्मा मयके साथ, मृत्यु भयंकरके साथ और यम संहारसे युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ वरुण कालाम्बिकसे, समीरण चञ्चलसे, बुध घटपृष्ठसे, और शनैश्चर रक्ताक्षसे युद्ध करने लगे ॥१०॥ जयन्त रत्नसारसे, वसु वर्चस्-गणोंसे, दोनों अश्विनीकुमार दोनों दीप्तिमानों से और नलकूबर धूम्रसे अड़ गये ॥११॥ धर्म धुरन्धरसे, मङ्गल गणकाक्षसे, वैश्वानर शोभाकरसे और मन्मथ पिपिटसे भिड़ गए ॥१२॥ गोकामुख, चूर्ण, खड्ग-असुर, धूम्र, संहल, विश्व, प्रतापी, और पलाशसे बारहों आदित्य युद्ध करने लगे और शिवकी सहायता वाले दूसरे देवता भी असुरोंके साथ धर्म-पूर्वक युद्ध करने लगे ॥१३॥१४॥ एकादश महारुद्र परम बल और विक्रम-संपन्न भयंकर वीर ग्यारह असुरोंसे युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ महामणि उग्र चंड आदिके साथ युद्ध करने लगे, चन्द्रमा राहुके साथ और बृहस्पति धर्म पूर्वक शुक्राचार्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ और नन्दीश्वर आदि सब ही श्रेष्ठ २ दानवोंसे युद्ध करने लगे, उनका विस्तारभयसे पृथक् २ कीर्तन

वटमूले तदा शम्भुस्तस्थौ कालयसुतेन च । सर्वं च युयुधुः सैन्यसमूहास्सततं मुने ॥ रत्नसिंहासने रम्ये कोटिदानवसंयुतः । उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ।१६। महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः । नानायुधानि दिव्यानि चक्रन्ति स्म महामृधे ॥ २० ॥ गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुण्डिप्रासमुद्गराः । निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखपरश्वधाः ॥ २१ ॥ शरतोमरखड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रशः । भिंदिपालाद्यश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥२२॥ शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः । वीराणामुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥ २३॥ गजास्तुरङ्गा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः । सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखण्डिताः ॥२४॥ निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगांघ्रयः । संछिन्नध्वजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥ २५ ॥ समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिस्सह कुण्डलैः । संरम्भनष्टैरास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥ २६ ॥ महाभुजैस्साभरणैस्संछिन्नैस्सायुधैस्तथा । अंगैरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ।२७। मृधे भटाः प्रधावन्तः कबन्धान् स्वशिरोक्षिभिः । पश्यन्तस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥ २८ ॥ वल्गन्तोऽतितरां घोरा युयुधुश्च परस्परम् । शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र

नहीं किया है ॥ १७ ॥ हे मुने ! उस समय शम्भु कालयसुतके साथ वटमूल में विराजमान थे और सब सेनायें निरन्तर युद्ध कर रहीं थीं ॥ १८ ॥ उधर रत्नजटित आभूषणोंसे भूषित शंखचूड़ भी करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नजटित सिंहासन पर बैठा था ॥ १९ ॥ तब देवता और असुरोंको पीड़ा पहुँचने वाला परम भयंकर युद्ध होने लगा और उस महायुद्धमें दिव्य आयुधों का प्रयोग होने लगा ॥ २० ॥ गदा, ऋष्टि, पटे, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, तलवार, भाले, परिघ, शक्ति वाले फरसे, बाण, तोमर, खड्ग, हजारों तोप, भिन्दिपाल, आदि वीरोंके हाथोंमें शोभा पाने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ वीरगण उल्लासमें भर दोनों सेनाओंमें गर्जना करते हुए वीरोंके शिरोंको काटने लगे २३ बहुतसे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, अपने सवारों सहित ही तहाँ पर दो टूक होगए ॥ २४ ॥ कटी हुई भुजा ऊरु, हाथ, कमर, कान, चरण और छिन्न भिन्न ध्वजा बाण, काले कवचरूपी भूषणोंसे (पृथ्वी पट गई) ॥ २५ ॥ कुण्डल और उठे हुए किरीटवाले शिरोंसे और हाथीको सूँडकी समान ऊरुओं से व्याप्त पृथ्वी शोभा पाने लगी ॥२६॥ भूषण और आयुधों सहित कटी हुई भुजा और अन्य अङ्गोंसे गछी हुई पृथ्वी शहदकी मक्खियोंसे घिरे हुए छत्तों की समान शोभा पारही थी ॥ २७ ॥ हाथमें श्रेष्ठ आयुधोंको उठा कर दौड़ते हुए वीर अपने मस्तकके नेत्रोंसे अपने कबन्धोंको देखते हुए झपटने लगे २८ बल और पराक्रमसम्पन्न वीर बड़ी २ बातें कर अनेक प्रकारके शस्त्र अस्त्रोंसे

महाबलपराक्रमाः ॥ २९ ॥ केचित्स्वर्णपुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे । व्यन्दन् वीरसंन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥३०॥ सर्वतश्शरकूटेन वीरस्सरथसारथिम् । वीरं संछादयामास प्रावृट्सूर्यमिवांबुदः ॥३१॥ अन्योन्यमभिहत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः। आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे क्षिपन्तो मर्मभिद्गिरः ॥ ३२ ॥ सर्वतो वारसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः । व्यदृश्यन्त महासंख्ये कुर्वतः सिंहसंरवम् ॥ ३३ ॥ महारवान् स्वशङ्खांश्च विदध्मुर्वै पृथक् पृथक् । वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥३४॥ एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् । बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम् ३५ महाप्रभोश्च लीलेयं शङ्करस्य परात्मनः । यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शङ्खचूडवधे परस्परयुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार उवाच । तदा देवगणास्सर्वे दानवैश्च पराजिताः । दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥ १ ॥ ते परावृत्य विश्वेशं शङ्करं शरणं ययुः । त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥२॥ दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शङ्करः । सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥ ३ ॥ निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चा-

---

परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ कोई २ वीर सुवर्णकी समान मुख वाले बाणोंसे युद्धमें वीरोंको मार, जलभरे बादलोंकी समान वीरगर्जन करने लगे ३० जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ सूर्यको छा लेता है, इसी प्रकार वीर पुरुष रथ और सारथिसहित वीर पुरुषोंको बाणोंकी बौछारसे ढकने लगे ॥३१॥ योधा एक दूसरेके पास सरक कर द्वन्द्व युद्ध करने लगे, आगे घुस, बुला २, मर्मभेदी वाक्योंकी बोछार कर, भुजाओंमें झण्डे और आयुधोंको पकड़े हुए योधा युद्धमें सिंहनाद करते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे परम शब्द करने वाले अपने शंखोंको अलग २ बजाने लगे इससे महावीर हर्षमें भर नाना प्रकारके शब्द करने लगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार बहुत समय तक देव दानवोंमें वीरोंको हर्ष देने वाला विकराल युद्ध होता रहा ॥ ३५ ॥ यह सब महाप्रभु परमात्मा शङ्करकी ही लीला है उसने देवता असुर और मनुष्योंसहित सारे जगत्को मोहमें डाल रखा है ॥ ३६ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—तदनन्तर शस्त्र और अस्त्रोंसे देवताओंका शरीर घायल होगया और वह दानवोंसे हार भयभीत हो भाग चले ॥ १ ॥ वे लौट कर विश्वेश शंकरकी शरणमें पहुँचे और भयविह्वल वाणीमें कहने लगे, हे सर्वेश ! हमारी रक्षा करिये ॥ २ ॥ शङ्कर देवताओंके पराजयको देख और उनके भय भरे वचनको सुन बड़े क्रोधमें भर गए ॥ ३ ॥ उन्होंने देवताओंको

भयं ददौ । बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ॥४॥ शिवाज्ञप्तस्तदा स्कंदो दानवानां गणैस्सह । युयुधे निर्भयस्संख्ये महावीरो हरात्मजः ॥ ५ ॥ कृत्वा क्रोधं वीरशब्दं देवो यस्तारकांतकः । अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ॥ ६ ॥ रुधिरं पातयामास काली कमललोचना । तेषां शिरांसि संछिद्य बभक्ष सहसा च सा ॥ ७ ॥ पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समन्ततः । युद्धं चकार विविधं सुर-दानवभीषणम् ॥ ८ ॥ शतलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं नृणां तथा । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ ९ ॥ कबन्धानां सहस्रं च सन्ननर्त रणे बहु । महान् कोलाहलो जातः क्लीबानां च भयङ्करः ॥१०॥ पुनः स्कन्दः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षं चकार ह । पातयामास त्वयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥११॥ दानवाः शरजालेन स्कंदस्य क्षतविग्रहाः । भीताः प्रदुद्रुवुस्सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥१२॥ वृषपर्वा विप्रचित्ति-र्दण्डश्चापि विकम्पनः । स्कन्देन युयुधुस्सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥ १३ ॥ महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी । बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कंदशक्तिप्रपीडिताः ॥ १४ ॥ महामारीस्कंदयोश्च विजयोऽभूत्तदा मुने । नेदुर्दुन्दुभयस्स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥

कृपादृष्टिसे देख उनको अभय दिया और अपने तेजसे अपने गणोंका बल बढ़ाने लगे ॥ ४ ॥ तब शिवकी आज्ञा पा महावीर शङ्करपुत्र स्कन्द दानवोंके साथ युद्धमें निर्भय होकर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ तारकासुरका संहार करने वाले देव स्कन्दने क्रोधपूर्वक वीर शब्द कर समरमें सौ अक्षौहिणी सेनाओंका संहार कर डाला ॥ ६ ॥ कमललोचना काली असुरोंके शिरोंको काट उनका रुधिर गिराने लगीं और उन शिरोंका भक्षण करने लगीं ॥७॥ वह दानवोंके रुधिर को पीने लगीं और देवता तथा दानवोंको भयभीत करने वाले भयंकर युद्धको करने लगीं ॥ ८ ॥ वह एक ही हाथसे सैंकड़ों लाखों हाथियोंको और सैंकड़ों लाखों मनुष्योंको पकड़ अपने मुखमें खेलसा करती हुई डालने लगीं ॥ ९ ॥ उस समय युद्धमें हजारों कबन्ध नाचने लगे और बड़ा भारी कोलाहल होने लगा उससे भीरुओंको भय लगने लगा ॥ १० ॥ फिर स्कन्द क्रोधमें भर शरवर्षा कर क्षीण होते हुए करोड़ों असुरनायकोंको गिराने लगे ॥११॥ तब स्कन्दके बाणजालसे अंगोंके घायल होने पर असुर मरणसे डर कर भागने लगे ॥ १२ ॥ तब क्रमशः वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दण्ड और विकम्पनने स्कन्दसे युद्ध किया १३ ॥ उस समय महामारी भी युद्ध करने लगी और वह पराङ्मुख नहीं हुई तथा स्कन्दकी शक्तिसे पीड़ित होकर उनके अंग घायल होगए १४ हे मुने ! उस समय महामारी और स्कन्दकी रणमें विजय हुई, तब आकाशमें देवदुन्दुभियें बजने लगीं, स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ १५ ॥ स्कन्दके उस

स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम्। दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम्॥ महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम्। चुकोपातीव सहसा संनद्धोऽभूत्स्वयं तदा॥ वरं विमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम्। अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम्॥ महावीरैश्शङ्खचूडो जगाम रणमध्यतः। धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम्१९ तस्य सा शरवृष्टिश्च दुर्निवार्या भयङ्करी। महाघोरान्धकारश्च वधस्थाने बभूव ह॥ देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः। एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि॥२१। पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा। राजा चकार वृष्टिञ्च दुर्निवार्यां भयङ्करीम्॥ २२॥ तद्वृष्ट्या प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः। नीहारेण च सान्द्रेण संवृतो भास्करो यथा॥ २३॥ नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम्। तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम॥२४। तदैव शङ्खचूडश्च महामायी महाबलः। शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै॥२५। बभञ्ज तद्रथं दिव्यं चिच्छेद रथरक्षकान्। मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः॥२६॥ शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम्। मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम्

महारौद्र परम अद्भुत प्रलयकालकी समान दानवोंका क्षय करने वाले युद्धको देख कर और महामारीके किये हुए विनाशकारक उपद्रवको देख कर शङ्खचूड़ क्रोधमें भर गया और स्वयं युद्ध करनेके लिये तयार होगया॥ १६॥ १७॥ वह महावीर अनेक प्रकारकी रत्नमय गद्दी वाले तथा अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे भरे हुए श्रेष्ठ विमान पर चढ़ सब वीरोंको अभय देता हुआ रणके बीचमें आ गया और धनुषको कान तक खेंच बाणवर्षा करने लगा॥ १८॥ १९॥ उसकी वह बाणोंकी बौछार बड़ी भयंकर थी, उसको हटाना कठिन था, उससे उस वधस्थानमें महाघोर अंधकार छा गया॥ २०॥ सब देवता और नन्दीश्वर आदि भाग निकले अकेले कार्तिकेय ही रणके मुहाने पर डटे रहे।२१। तब वह दैत्यराज पर्वत सर्प हाथी और वृक्षोंकी दुर्निवार भयंकर वृष्टि करने लगा॥ २२॥ उसकी वृष्टिसे शिवनन्दन स्कन्द, घने कुहरेसे ढके हुए सूर्य की समान ढक गए॥२३॥ हे मुनिसत्तम! उसने मयकी सिखाई हुई अनेक प्रकारकी अपनी माया दिखाई, उसको न कोई देवता समझ सका और न कोई गण समझ सका॥ २४॥ उसी समय महामायावी महाबली शङ्खचूड़ने एक दिव्य बाणसे स्कन्दके धनुषको काट डाला॥ २५॥ उसने उनके दिव्य रथको तोड़ डाला, रथके रक्षकोंको काट डाला और दिव्य अस्त्रसे मोरको भी जर्जर कर दिया॥ २६॥ और उनके वक्षःस्थल पर सूर्यकी समान दमकती हुई एक घातिनी शक्ति छोड़ी, उसके प्रहारसे स्कन्दको क्षणभरके लिये सहसा

पुनश्च चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ॥ स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः । शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम् ॥ २९ ॥ सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥ ३० ॥ वह्निं निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥ ३१ ॥ सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः ॥ ३२ ॥ चिक्षेप शक्तिं सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि । तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छां दीर्घतमेन च ॥ ३३ ॥ मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महाबलः । चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम् । स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ॥३५॥ काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ । ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया ॥ ३६ ॥ ददौ बलमनन्तञ्च समुत्तस्थौ प्रतापवान् । गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो वीरभद्रो महाबलः । शङ्खचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ॥३८॥ ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यानि च दानवः । चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैश्शरैः ॥ ३९ ॥ दिव्या-

---

मूर्छा आगई ।। २७ ।। शत्रुओंके वीरोंका संहार करने वाले कार्तिकेय थोड़ी ही देरमें होशमें हो श्रेष्ठ रत्नों वाले अपने वाहन पर चढ़ गए ।। २८ ।। फिर उन्होंने अंबिका और महेशके चरणोंका ध्यान कर शस्त्र अस्त्रोंको ले भयंकर संहार करना आरंभ कर दिया ।। २९ ।। शिवनन्दनने कोपमें भर दिव्य अस्त्रसे सर्प पर्वत वृक्ष आदि सबको ही काट डाला ।।३०।। पार्जन्य बाण मार कर अग्नि को शान्त कर दिया, फिर खेल ही खेलमें शंखचूड़के रथ और धनुषको काट डाला ।। ३१ ।। सब वाहनोंको, कवचको, उज्ज्वल मुकुटको भी काट डाला और फिर वीर शब्द कर बारम्बार गर्जना करने लगे ।। ३२ ।। और सूर्यकी समान दमकती हुई एक शक्ति राक्षसेन्द्रके वक्षःस्थल पर फैंकी, उसके बड़े प्रहारसे उसको मूर्छा आगई ।। ३३ ।। इन्द्रकी समान तेजस्वी और महाबली वह दानवेन्द्र क्षणमात्रमें ही उस क्लेशको कुछ न मान चैतन्य हो गर्जना करता हुआ उठ बैठा ।। ३४ ।। और महाबली कार्तिकेयके एक शक्ति मारी, ब्रह्मा जीकी दी हुई उस शक्तिको सफल करनेके लिये कार्तिकेय पृथ्वी पर गिर पड़े ।।३५।। तब काली उनको गोदमें भर कर शिवके पास लेगई और शिवने लीला ही लीलामें ज्ञानके द्वारा उनको जीवित कर दिया ।।३६।। और उनको अनन्त बल दिया, तब वह प्रतापवान् शिवनन्दन फिर चलनेका विचार करने लगे ।।३७।।३८।। इसी समय महाबली वीर वीरभद्र बलवान् शंखचूड़से समर में युद्ध कर रहे थे ।। ३९ ।। दानवेश्वरने सैंकड़ों दिव्य अस्त्रोंको छोड़ा, किंतु

न्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः। तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ अथातीव चुकोपोच्चैः शंखचूडः प्रतापवान्। शक्त्या जघानोरसि तं स चकंपे पपात कौ ॥ ४१ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः। जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे काली जगाम समरं पुनः। भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छया ॥ ४३ ॥ वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः। सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ॥ ४४ ॥ वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः। पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः ॥ ४५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे ससैन्यशंखचूडयुद्धवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सनत्कुमार उवाच। सा च गत्वा हि संग्रामं सिंहनादं चकार ह। देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छामापुश्च दानवाः ॥ १ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः। तदा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्धनि ॥ २ ॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु। अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ॥ ३ ॥ महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा। जहृषुर्बहुगर्जन्तस्सर्वे सुरगणादयः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा कालीं शंखचूडश्शीघ्रमाजौ समाययौ। दानवाश्च भयं प्राप्ता राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ५ ॥

प्रतापवान् वीरने उनको बाणोंसे काट डाला ॥ ४० ॥ तब प्रतापी शंखचूड़को बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने उनकी छातीमें शक्ति मारी, तब वह काँपकर पृथ्वी में गिर पड़े ॥ ४१ ॥ फिर गणेश्वर वीरभद्र क्षण भरमें ही चेतनाको पाकर उठ खड़े हुए, फिर उन गणोंमें अग्रणी वीरभद्रने फिर धनुषको उठा लिया ४२ इसी समय काली कार्तिकेयकी इच्छासे दानवोंका भक्षण करनेके लिये और अपने पक्ष वालोंकी रक्षा करनेके लिये फिर युद्धमें पधारीं ॥ ४३ ॥ उस समय नन्दीश्वर आदि वीर सब देवता गन्धर्व यक्ष राक्षस और पन्नग उनके पीछे २ चल रहे थे ॥ ४४ ॥ दोनों ओरसे बहुतसे बजानेके पात्र और सैंकड़ों मधुवाहक वीर फिर उद्यत होगए ॥ ४५ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-कालीने संग्राममें पहुँच कर फिर सिंहनाद किया, देवीके उस नादसे दानवोंको मूर्छा आगई ॥ १ ॥ फिर वह वारम्वार अमांगलिक अट्टहास्य करने लगीं और मधुको पीकर रणमें नाचने लगीं ॥ २ ॥ उस समय उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी तथा अन्य भी बहुतसी देवियोंने मधुपान किया तथा और भी देवियें युद्धभूमिमें मधु पीकर नाचने लगीं ॥ ३ ॥ उस समय गणोंके और देवताओंके दलमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा, देवता और गण बड़ी भारी गर्जना करते हुए हर्षित होने लगे ॥ ४ ॥ कालीको देख कर शंखचूड़ शीघ्र ही युद्धमें आगया, उस समय दानव भयभीत होरहे थे राजा

काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् । राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवांकितलीलया ॥ ६ ॥ नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम् । वृद्धिं जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम् ॥ ७ ॥ तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात दंडवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ८ ॥ निवृत्तिं प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् । ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् ॥९॥ तं दृष्ट्वा प्रज्ज्वलन्तं च प्रणम्य भुवि संस्थितः । ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिर्वारं चकार ह ॥ १० ॥ अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा । चिक्षेप दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मन्त्रपूर्वकम् ॥ ११ ॥ आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम् । जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥ १२ ॥ काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायताम् । देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डं चकार सा ॥१३॥ स च वैष्णवमस्त्रं च चिक्षेप चंडिकोपरि । माहेश्वरेण काली च विनिर्वारं चकार सा ॥ १४ ॥ एवं चिरतरं युद्धमन्योन्यं सम्बभूव ह । प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ॥ १५ ॥ अथ क्रुद्धा महादेवी काली कालसमा रणे । जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ॥ १६ ॥ क्षेपात्पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवा-

---

ने उनको अभय दिया ॥ ५ ॥ कालीने प्रलयकालीन अग्निशिखाकी समान अग्निको फैंका, राजाने वैष्णवांकित लीलासे उसको शीघ्र ही शान्त कर दिया ॥ ६ ॥ फिर देवीने उसके ऊपर नारायणास्त्र फैंका, वह अस्त्र दानव-शत्रुको देख शीघ्र ही वृद्धि पाने लगा ॥ ७ ॥ शंखचूड़ने प्रलयकालीन अग्निशिखाकी समान उस अस्त्रको दे भूमिमें दण्डेकी समान गिर बारम्बार प्रणाम किया॥८॥ तब वह शस्त्र उस दानवको नम्र हुआ देख निवृत्त होगया, तब देवीने मन्त्र पढ़ ब्रह्मास्त्र चलाया, उसको प्रज्वलित हुआ देख दानवेन्द्र भूमिमें खड़ा होगया और उसको प्रणाम करने लगा, फिर उसने ब्रह्मास्त्रसे उसको लौटा दिया ॥ ९ ॥ फिर दानवेन्द्रने क्रोधमें भर धनुषको वेगपूर्वक खेंचा और देवी पर समन्त्रक दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ११ ॥ तब देवी अपना लम्बा मुख फैला कर उन सबको निगल गई और अट्टहास्य करने लगी, उस से देवताओंको बड़ा भय लगा ॥ १२ ॥ फिर उसने सौ योजन लम्बी शक्ति कालीके मारी, देवीने दिव्य अस्त्रोंकी बौछार कर उसके सौ टुकड़े कर डाले १३ फिर उसने चण्डिकाके ऊपर वैष्णवास्त्र फैंका, कालीने माहेश्वर अस्त्रसे उस को हटा दिया ॥ १४ ॥ इस प्रकार आपसमें चिरकाल तक युद्ध होता रहा, तब देवता और दानव दर्शक बन कर उस युद्धको देखने लगे ॥१५॥ तदनन्तर रणमें क्रुद्ध कालकी समान महादेवी कालीने मन्त्रपूत पाशुपत अस्त्रको क्रोधमें भर कर उठा लिया ॥ १६ ॥ यह उसका प्रयोग करना चाहती थीं, कि—

शरीरिणी । न क्षिपास्त्रमिमं देवि शङ्खचूडाय वै रुषा ॥ १७ ॥ मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघादपि च चंडिके । शङ्खचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय ॥ १८ ॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् । शतलक्षं दानवानां जघास लीलया क्षुधा अत्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयंकरी । दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् । ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यन्तभीकरम् ॥ २१ ॥ सा काली तं समालोक्यायान्तं प्रज्ज्वलितं रुषा । प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ॥ २२ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिक्षेप दानवेश्वरः । प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखण्डानि तानि च ॥ २३ ॥ पुनरत्तुं महादेवी वेगतस्तं जगाम ह । सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानन्तर्धानं चकार सः ॥२४॥ वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् । बभञ्ज च रथं तस्य जघान किल सारथिम् ॥ २५ ॥ अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः । भद्रकाल्यै शङ्खचूडः प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥ सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेन लीलया । जग्राह स्वमुखे नैवाहारं चक्रे रुषा द्रुतम् ॥ मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः । बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप

आकाशवाणी हुई, हे देवि ! तुम क्रोधके कारण इस अस्त्रको शङ्खचूड़ पर मत फेंको ॥ १७ ॥ हे चण्डिके ! यह पाशुपत यद्यपि अमोघ है, तथापि इससे इस की मृत्यु नहीं लिखी है, अतः वीर शङ्खचूड़का वध करनेके लिये किसी दूसरे उपायका विचार करो ॥ १८ ॥ भद्रकालीने यह सुन कर उस अस्त्रको नहीं फेंका और भूखके कारण सैंकड़ों लाखों दानवोंको खाने लगीं ॥ १९ ॥ फिर वह भयावनी देवी शङ्खचूड़को खानेके लिये झपटीं तब दानवने रौद्र दिव्य अस्त्रसे उनको हटा दिया ॥ २० ॥ फिर दानवेन्द्रने क्रोधमें भरकर एक अस्त्र फेंका, वह ग्रीष्मके सूर्यकी समान था, उसकी धार बड़ी तेज थी अतः वह बड़ा डरावना था ॥ २१ ॥ कालीने उस दमकते हुए शस्त्रको आते देख क्रोधसे मुखको फैला उस दानवके देखते देखते ही उस शस्त्रका चबेना कर डाला २२ तब दानवेन्द्रने और दिव्य अस्त्र छोड़े, परन्तु देवीने अपने पास आनेसे पहिले ही उनके सैंकड़ों टुकड़े कर डाले ॥२३॥ देवी फिर उसको खानेके लिये बढ़ीं कि-सर्वसिद्धेश्वर वह श्रीमान् दानव अन्तर्धान होगया ॥ २४ ॥ देवीने दानव को न देख अपनी मुट्ठीसे उसके रथको तोड़ डाला और उसके सारथिको भी मार डाला ॥ २५ ॥ उस समय मायावी शङ्खचूड़ने प्रकट होकर भद्रकालीके ऊपर वेगसे प्रलयाग्निकी समान एक चक्र फैंका ॥ २६ ॥ देवी उस चक्रको बाएँ हाथसे पकड़ लीला ही लीलामें अपने मुखसे उसका भक्षण करने लगी २७ देवीने कोपमें भर उसके मुक्का मारा तब वह दानवेन्द्र चक्कर खाने लगा और

सः ॥ २८ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य स चोत्तस्थौ प्रतापवान् । न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह ॥ २९ ॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥३०॥ उत्पपात च वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् । निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥ ३१ ॥ रत्नेन्द्रसाररचितमणिविमानं सुमनोहरम् । आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे ॥ ३२ ॥ दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना । उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुंक्ष्व चेश्वरि॥ संग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं न कुरु मानसम् । अवध्योऽयं शङ्खचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममण्डलात् । दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥ ३६ ॥ भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शङ्करांतिकमाययौ । उवाच रणवृत्तांतं पौर्वापर्येण सक्रमम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शङ्खचूडवधे कालीयुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच । श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् । तत्त्वं वद महाप्राज्ञ परं कौतूहलं मम ॥१॥ सनत्कुमार उवाच । काल्युक्तं वचनं श्रुत्वा शङ्करः

क्षण भरके लिये मूर्छित होगया ।।२८।। वह प्रतापवान् क्षणभरमें चेतना पाकर उठा, परन्तु उसने मातृबुद्धिके कारण देवीसे बाहुयुद्ध नहीं किया ।। २९ ।। देवी ने उस दानवको पकड़ क्रोधमें भर वेगसे घुमाया और ऊपरको उछाल दिया ।।३०।। प्रतापवान् शङ्खचूड वेगसे ऊपरको उछल गया और उसने पृथ्वी में गिर उठ कर भद्रकालिकाको प्रणाम किया ।। ३१ ।। फिर वह रणमें कुछ भ्रममें न पड़ प्रसन्न चित्तसे अपने रत्नजटित मनोहर विमानमें चढ़ गया ३२ और वह कालिका भूखी होकर दानवोंके रुधिरका पान करने लगी, इसी समय आकाशवाणी हुई, कि—।। ३३ ।। हे ईश्वरि ! अब रणमें केवल डेढ़ लाख ही उद्धत द्वन्द्व मचाने वाले दानवेन्द्र बचे हैं, इस लिये तुम उनका भक्षण कर डालो ।।३४।। और संग्राममें इस दानवेन्द्रको मारनेके लिये मन न चलाओ क्योंकि-यह शङ्खचूड तुमसे अवध्य है, यह बात निश्चित है ।। ३५ ।। आकाश-मण्डलसे प्रकट हुए इस वचनको सुन कर देवी बहुतसे दानवोंके मांस और रुधिरका भक्षण और पान कर शङ्करके पास पहुँच गई और शङ्करको रणका समस्त वृत्तान्त ब्यौरेवार सुना दिया ।३६।३७।। अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त

व्यासजी कहते हैं, कि—हे परम बुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! कालीके वचनको सुन कर महेशने क्या कहा था और क्या किया था, उसका आप मुझसे वर्णन करिये, मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है ।। १ ।। सनत्कुमारजीने कहा, कि—काली-

परमेश्वरः । महालीलाकरश्शम्भुर्जहासाश्वासयञ्च ताम् ॥ २ ॥ व्योमवाणीं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयं च समरे स्वगणैस्सह शङ्करः ॥ ३ ॥ महावृषभमहारूढो वीरभद्रादिसंयुतः । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैस्समन्वितः ॥ ४ ॥ रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च । विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवान्तकः ५. शङ्खचूडश्शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः । ननाम परया भक्त्या शिरसा दण्डवद्भुवि तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः । तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह सेषुकम् शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह । बाणवर्षमिवोग्रं तद्वर्षतोर्मोघयोस्तदा ॥ ८ ॥ शङ्खचूडो महावीरश्शरांश्चिक्षेप दारुणान् । चिच्छेद शङ्करस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥ ९ ॥ तदङ्गेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः । महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डस्सतां गतिः ॥ १० ॥ दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वेगवान् । वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥ ११ ॥ ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया । खड्गं चिच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥ छिन्नेऽसौ चर्मणि तदा शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः । द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां सम्मुखागताम् ॥ १३ ॥ कोपा-

बड़ी लीलाएँ करने वाले परमेश्वर शंकर कालीके वचनको सुन उनको ढाढस देते हुए हँसने लगे ॥ २ ॥ तत्त्वज्ञानविशारद शंकर आकाशवाणीको सुन अपने गणोंको साथमें ले स्वयं रणस्थलको चल दिये ॥३॥ वह अपनी समान भैरव क्षेत्रपाल और वीरभद्र आदिको साथमें ले महावृषभ पर चढ़कर चल दिये ।४। रणमें आकर महेशने वीररूप धारण किया, उस समय वह रुद्र मूर्तिमान् काल की समान दीखने लगे ॥ ५ ॥ शिवको देखते ही शङ्खचूड़ विमानसे उतर पड़ा और उसने बड़ी भक्तिके साथ शिर झुका कर शिवको बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार प्रणाम करनेके अनन्तर वह विमान पर चढ़ गया और धनुषबाणको उठा लिया ॥ ७ ॥ उस समय निष्फल बाणवर्षा करते हुए शिव और दानवका सौ वर्ष तक उग्र युद्ध हुआ ॥ ८ ॥ महावीर शङ्खचूड़ दारुण बाणोंको छोड़ता था और शङ्कर लीला ही लीलामें अपने बाण छोड़ कर उन बाणोंको काट डालते थे ॥ ९ ॥ दुष्टोंको दण्ड देने वाले सज्जनोंकी गति विरूपाक्ष महारुद्र कोपमें भर उसके अंगोंको शस्त्रावलि वर्षा कर पीड़ित करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर वेगवान् दानवने तेज तलवार और ढाल लेकर शिवजीके श्रेष्ठ वाहन वृषभके शिर पर प्रहार किया ॥ ११ ॥ वाहनके ताड़ित होने पर रुद्रने लीला ही लीलामें उसके उज्ज्वल खड्ग और ढालको क्षुरप्र नामक बाणसे काट डाला ॥१२॥ ढालके कटने पर असुरने शक्ति फेंकी, हरने अपने सामने आई हुई उस शक्तिके बाणसे दो टुकड़े कर डाले ॥ १३ ॥ तब कोप में भरे हुए शङ्खचूड़ दानवने चक्र फेंका, हरने मुट्ठी मार कर सहसा उसका भी

भ्रातश्शङ्खचूडः चक्रं चिक्षेप दानवः । मुष्टिपातेन तच्चाप्यचूर्णयत्सहसा हरः ।१४। गदामाविध्य तरसा सञ्चिक्षेप हरं प्रति । शम्भुना सापि सहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ।१५। ततः परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः । धावति स्म हरं वेगाच्छङ्खचूडः क्रुधाकुलः ॥ १६ ॥ समाहृत्य स्वबाणौघैरपातयत शङ्करः । द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयासुरम् ॥१७॥ ततः क्षणेन सम्प्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम् । धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ॥१८॥ आयान्तं तं निरीक्ष्यैव डमरुध्वनिमादरात् । चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुस्सहं हरः ॥१९॥ पूरयामास ककुभः शृङ्गनादेन च प्रभुः । स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा ॥ २० ॥ त्याजितेभमहागर्वैर्महानादैर्वृषेश्वरः । पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ॥२१॥ महाकालस्समुत्पत्य ताडयद्गां तथा नभः । कराभ्यां तन्निनादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः ॥ २२ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह । भैरवोऽपि महानादं स चकार महाहवे ॥२३॥ महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयङ्करः । वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समन्ततः ।२४। संत्रेसुर्दानवास्सर्वे तैश्शब्दैर्भयदैः खरैः । चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥

चूरा कर डाला ॥ १४ ॥ तब उसने गदाको घुमा कर सहसा हरके ऊपर फेंका, शम्भुने सहसा उसको तोड़ कर उसकी भस्म उड़ादी ॥ १५ ॥ तब दानवेश्वर शङ्खचूड़ क्रोधमें भर हाथमें फरसा पकड़ हरके ऊपर दौड़ा ॥ १६ ॥ तब शंकर ने हाथमें फरसे वाले उस असुरको बाण मार कर खेल ही खेलमें भूतल पर गिरा दिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर क्षण भरमें चैतन्य होनेके बाद वह श्रेष्ठ रथमें चढ़, दिव्य आयुध और बाणोंको धारण कर समस्त आकाशमें व्यापतासा हुआ शोभा पाने लगा ॥ १८ ॥ हर उसको आता हुआ देख कर डमरू बजाने लगे और धनुषका दुःसह शब्द करने लगे ॥ १९ ॥ फिर पर्वतोंमें शयन करने वाले प्रभु शङ्कर सींग (नरसिंहा) बजा कर दिशाओंको गुञ्जारने लगे और स्वयं गर्जना करने लगे, इससे असुर त्रस्त होने लगे ॥ २० ॥ शंकर हाथियों का भी गर्व झाड़ने वाले महानादको कर आकाश पृथ्वी और आठों दिशाओं को गुञ्जारने लगे ॥ २१ ॥ फिर महाकालने उछल कर अपने दोनों हाथोंसे आकाश और पृथिवीको ताड़ित किया, उस शब्दसे पहिले सब शब्द दब गए २२ इधर क्षेत्रपाल भी अमांगलिक अट्टहास्य करने लगे और युद्धमें भैरवने भी महानाद किया ॥ २३ ॥ उस समय रणके बीचमें भयंकर महाकोलाहल मच रहा था, और गणोंमें चारों ओर वीर शब्द होरहा था ॥ २४ ॥ उन भयदायक तीक्ष्ण शब्दोंसे सकल दानव भयभीत होगए तब महाबली दानवेन्द्र इन शब्दों को सुन परम कुपित हुआ ॥ २५ ॥ हरने जब कहा, कि—अरे दुष्टात्मन्! खड़ा

तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन्व्याजहार यदा हरः। देवैर्गणैश्च तैश्शीघ्रमुक्तं जय जयेति च २६
अथागत्य स दम्भस्य तनयस्सुप्रतापवान्। शक्तिं चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम् ॥ २७ ॥ वह्निकूटप्रभायांती क्षेत्रपालेन सत्वरम्। निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥२८॥ पुनः प्रववृते युद्धं शिवदानवयोर्महत्। चकम्पे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥ २९ ॥ दाम्भिमुक्ताञ्छरान्शम्भुश्शरांस्तत्प्रहितान्स च। सहस्रशश्शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा ॥ ३० ॥ ततश्शम्भुः त्रिशूलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह। तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्च्छितः॥३१॥ ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च तदासुरः। आजघान शरै रुद्रं तान् सर्वानात्तकार्मुकः ॥ ३२ ॥ बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शङ्करम्। चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः प्रतापवान् ॥३३॥ ततो दुर्गापतिः क्रुद्धो रुद्रो दुर्गार्तिनाशनः। तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैरुत्तमैर्द्रुतम् ॥ ३४ ॥ ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः। अभ्यधावत वै हन्तुं बहुसेनावृतो हरम् ॥ ३५ ॥ गदां चिच्छेद तस्याऽऽशु पततः सोऽसिना हरः। शितधारेण संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥३६॥ छिन्नायां स्वगदायां च क्रुकोपातीव दानवः

रह ! खड़ा रह !! तब देवता और गण शीघ्रतापूर्वक बोल उठे, कि जय हो ! जय हो !! तदनन्तर दम्भके प्रतापी पुत्रने आकर लपटोंके कारण एक परम भीषण शक्ति रुद्रके ऊपर फेंकी ॥२७॥ अग्निके पुञ्जकी प्रभाकी समान आती हुई उस शक्ति को क्षेत्रपालने युद्धमें बढ़ कर अपने मुखसे उत्पन्न की हुई बड़ी भारी उल्कासे हटा दिया ॥२८॥ तब शिव और दानवका महायुद्ध फिर चलने लगा, उससे आकाश तथा पर्वत, समुद्र और जलाशय सहित पृथ्वी काँपने लगी ॥ २९ ॥ उस समय दम्भपुत्रके छोड़े हुए बाणोंके शम्भु उग्र बाणोंसे सैंकड़ों टुकड़े उड़ा रहे थे और वह दैत्य भी शम्भुके बाणोंके धुर्रे उड़ा रहा था ॥३०॥ तब शंभुने क्रोधमें भर कर उसके त्रिशूल मारा, उस प्रहारको वह झेल न सका और शीघ्र ही मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ क्षण भरमें ही उस असुर की मूर्छा जाती रही और वह धनुषको उठा रुद्रको तथा सब गणोंको बाणोंसे ताड़ित करने लगा ॥३२॥ उसने अपनी दश हजार भुजा बनालीं फिर प्रतापवान् शङ्खचूड़ने दश हजार चक्रोंसे शंकरको पाट दिया ॥ ३३ ॥ तब दुर्गति और पीड़ाका नाश करने वाले दुर्गापति रुद्रने क्रोधमें भर कर अपने उत्तम बाणोंसे शीघ्र ही उन चक्रोंको काट डाला ॥३४॥ तब बहुतसी सेनासे घिरा हुआ वह दानव सहसा गदाको ले हरको मारनेके लिये दौड़ा ॥ ३५ ॥ तब दुष्टोंके गर्वको दूर करने वाले हरने झपट कर आते हुए उस दैत्यकी गदाको क्रोधमें भर अपनी तलवारसे काट डाला ॥ ३६ ॥ गदाके छिन्न भिन्न होनेसे

शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुस्सहं ज्वलत् ॥ ३७ ॥ सुदर्शनं शूलहस्तमायांतं दानवेश्वरम् । स्वत्रिशूलेन विव्याध हृदि तं वेगतो हरः ॥ ३८ ॥ त्रिशूलभिन्नहृदयान्निष्क्रान्तः पुरुषः परः । तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान् ॥३९॥ निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः । चिच्छेद च शिरो भीममसिना सोऽपतद्भुवि॥ ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् । असुरांस्तान् बहून् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा ॥ ४१ ॥ क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्यान्क्रुधाकुलः । केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथापरे ॥ ४२ ॥ वीरभद्रोऽपरान्वीरान्बहून् क्रोधादनाशयत् । नन्दीश्वरो जघानान्यान्बहूनमरमर्दकान् ॥ ४३ ॥ एवं बहुगणा वीरास्तदा संनह्य कोपतः । व्यनाशयन्बहून्दैत्यानसुरान् देवमर्दकान् ॥ ४४ ॥ इत्थं बहुतरं तत्र यस्य सैन्यं ननाश तत् । विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ॥ ४५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडसैन्यवधवर्णनं नाम नवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार उवाच । स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः । तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ॥ १ ॥ उवाच वचनं शंभुं तिष्ठास्याजौ स्थिरो भव ।

उस दानवको बड़ा क्रोध चढ़ा अतः उस तेजस्वीने शत्रुओंके लिये दुःसह दपकते हुए शूलको उठा लिया ॥३७॥ शूल हाथमें लेकर दौड़ते हुए उस दानव का दृश्य बड़ा अच्छा लगता था, हरने वेगसे उसकी छातीमें अपना त्रिशूल मारा ॥ ३८ ॥ उस त्रिशूलसे शङ्खचूड़का हृदय फट गया, परन्तु फटे हुए हृदयमेंसे एक वीर्यवान् पुरुष निकल कर कहने लगा, कि-खड़ा रह ! खड़ा रह !! ॥ ३९ ॥ उसके निकलते ही शंकरने जोरसे हँस कर उसके भयावने मस्तकको तलवारसे काट डाला, तब वह भूमिमें गिर पड़ा ॥४०॥ तब काली क्रोधपूर्वक अपने मुखको फैला, बहुतसे असुरोंको अपनी डाढ़से उनका धड़ चूर २ कर खाने लगी ॥ ४१ ॥ क्षेत्रपाल भी क्रोधमें भर कर और बहुतसे दैत्योंको खाने लगे तब भैरवके अस्त्रसे छिन्न भिन्न होकर बहुतसे दैत्य भाग भी चले ॥ ४२ ॥ इधर वीरभद्रने भी क्रोधपूर्वक बहुतसे वीरोंका नाश कर डाला और नन्दीश्वरने भी बहुतसे देवमर्दकोंका संहार कर डाला ॥४३॥ इस प्रकार उस समय बहुतसे वीरगण कोपमें भर देवताओंका मर्दन करने वाले बहुतसे दैत्य और असुरोंका संहार करने लगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सेनाके मारे जाने पर बड़ा भारी सेनादल भाग चला, बहुतसे वीर भयकातर होकर भाग चले ॥ ४५ ॥ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ ❀

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-अपने बहुतसे सेनादलको तथा प्राणकी समान वीरोंको नष्ट हुआ देख कर दानवको क्रोध चढ़ा ॥१॥ वह शम्भुसे कहने लगा,

किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य सम्मुखे समरं कुरु ॥२॥ इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धस्समरे मुने । अगच्छन्निश्चयं कृत्वाभिमुखं शंकरस्य च ॥३॥ दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः । चकार शरवृष्टिश्च तोयवृष्टिं यथा घनः ॥४॥ मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः । अप्रतर्क्या सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ॥ ५ ॥ ता दृष्ट्वा शङ्करस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया । माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ॥ ६ ॥ तेजसा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा । दिव्यान्यस्त्राणि तान्येव निस्तेजांस्यभवन्नपि ॥ ७ ॥ अथ युद्धे महेशानस्तद्वधाय महाबलः । शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम् ॥ ८ ॥ तदैव तन्निषेद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी । क्षिप शूलं न चेदानीं प्रार्थनां शृणु शंकर ॥ ९ ॥ सर्वथा त्वं समर्थो हि क्षणाद् ब्रह्माण्डनाशने । किमेकदानवस्येश शंखचूडस्य सांप्रतम् ॥ १० ॥ तथापि देवमर्यादा न नाश्या स्वामिना त्वया । तां शृणुष्व महादेव सफलं कुरु सत्यतः ॥ ११ ॥ यावदस्य करेऽस्त्युग्रं कवचं परमं हरेः । यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्या अप्यस्य योषितः ॥ १२ ॥ तावदस्य जरामृत्युश्शंखचूडस्य शंकर । नास्तीत्यवितथं नाथ विधेहि ब्रह्मणो वचः१३

कि—युद्धमें संभल कर खड़ा हो, इनके मारनेसे क्या, तू आज मेरे सामने डट ।२। हे मुने ! दानवेन्द्र इस प्रकार कहकर तयार होगया और निश्चय करके शंभुके सामनेको बढ़ा ॥ ३ ॥ और जिस प्रकार बादल जलकी वर्षा करता है, इसी प्रकार उसने महारुद्र पर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनी आरम्भ कर दी ॥ ४ ॥ और सकल देवता भी जिसकी तर्कना न कर सकें ऐसी भयावनी अनेक अदृश्य मायाओंको करने लगा ॥ ५ ॥ उन मायाओंको देख कर शंकरने लीला ही लीलामें सकल मायाओंको नष्ट करने वाला महादिव्य माहेश्वर अस्त्र चलाया ६ उससे वे सब मायाएँ नष्ट होगईं और सकल दिव्य अस्त्र भी निस्तेज होगए ।७। तदनन्तर महाबली महेश्वरने तेजस्वियोंसे भी दुर्निवार्य शूलको उसका वध करनेके लिये उठाया ॥ ८ ॥ उस समय उनको रोकनेके लिये आकाशवाणी हुई, कि—हे शंकर ! प्रार्थनाको सुनो ! इस समय इस शूलका प्रयोग न करो ९ आप क्षण भरमें ही समस्त ब्रह्माण्डका नाश कर सकते हैं, फिर हे ईश ! इस शङ्खचूड़को नष्ट करनेकी तो बात ही क्या है ? ।१०। तथापि आप स्वामी हैं अतः देव-मर्यादाका आपको उल्लंघन नहीं करना चाहिये, हे महादेव ! उसको आप सुनिये और सुनकर सत्य करिये ॥ ११ ॥ जब तक इसके हाथमें हरिका उग्र कवच विद्यमान है और जब तक इसकी स्त्रीका सतीत्व अखण्डित है ॥ १२ ॥ तब तक इस शङ्खचूडको बुढ़ापा या मृत्यु नहीं दबा सकेगी, हे नाथ ! ब्रह्माजीके इस वचनको आप सत्य करिये ॥ १३ ॥ इस आकाशवाणीको सुन कर हरने

इत्याकर्ण्य नभोवाणीं तथेत्युक्ते हरे तदा। हरेच्छया गतो विष्णुस्तं दिदेश सतां गतिः ॥ १४ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण विष्णुर्मायाविनां वरः। शंखचूडोपकण्ठं च गत्वोवाच स तं तदा ॥ १५ ॥ वृद्धब्राह्मण उवाच। देहि भिक्षां दानवेन्द्र मह्यं प्रासाय सांप्रतम् ॥१६॥ नेदानीं कथयिष्यामि प्रकटं दीनवत्सलम्। पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुनस्सत्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥ ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः। कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचेति सच्छलात् ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रोऽसौ ब्रह्मण्यः सत्यवाग्विभुः। तद्ददौ कवचं दिव्यं विप्राय प्राणसंमितम् ॥ १९ ॥ माययेत्थं तु कवचं तस्माज्जग्राह वै हरिः। शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥ २० ॥ गत्वा तत्र हरिस्तस्या योनौ मायाविशारदः। वीर्याधानं चकाराशु देवकार्यार्थमीश्वरः ॥२१॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुमीरयन् स्ववचः प्रभुः। शंखचूडवधार्थाय शूलं जग्राह प्रज्वलत् ॥२२॥ तच्छूलं विजयं नाम शंकरस्य परात्मनः। सप्रकाशे दिशस्सर्वा रोदसी सम्प्रकाशयत् ॥ २३ ॥ कोटिमध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम्। दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥२४॥ तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रसायकम्। सुरा-

---

कहा 'तथास्तु" फिर हरकी इच्छासे सज्जनोंकी गति विष्णु चल दिये ॥१४॥ मायावियोंमें श्रेष्ठ विष्णु वृद्ध ब्राह्मणका रूप बना शङ्खचूड़के पास जा उससे कहने लगे ॥ १५ ॥ वृद्ध ब्राह्मणने कहा, कि—हे दानवेन्द्र ! मैं आपके पास आया हूँ, मुझे भिक्षा दीजिये ॥१६॥ आप दीनवत्सल हैं अतः मैं आपसे अपनी प्रार्थित वस्तु अभी नहीं बताऊँगा, जब आप देना स्वीकार कर लेंगे, तो आपसे कहूँगा और आप उसको सत्य कर देना ॥ १७ ॥ तब उस राजेन्द्रने प्रसन्न नेत्र और प्रसन्न मुखसे कहा 'बहुत अच्छा' तदनन्तर उस ब्राह्मणने छल करके कहा, कि-मैं कवच चाहता हूँ ॥१८॥ इसको सुन कर सत्यभाषी ब्रह्मण्य विभु दानवेन्द्रने अपने प्राणकी समान दिव्य कवचको ब्राह्मणको देदिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार माया करके शङ्खचूड़ने उससे कवच लेलिया, फिर वह शङ्खचूड़का रूप बना कर तुलसीके पास पहुँचे ॥ २० ॥ मायाविशारद ईश्वर हरिने उसके पास पहुँच उसको सतीत्वसे भ्रष्ट किया (हरिका यह चरित्र नीतिसम्मत होसकता है, परन्तु धर्मसम्मत नहीं है) ॥ २१ ॥ इसी समय प्रभु हरिने शंभुसे यह बात कही और शम्भुने शङ्खचूड़का वध करनेके लिये दमकते हुए शूलको उठा लिया ॥ २२ ॥ परमात्मा शंकरका वह विजय नामक शूल आकाश पृथ्वी और सकल दिशाओंको दमकाता हुआ चमक उठा ॥ २३ ॥ वह शूल मध्यान्हके करोड़ों सूर्य और प्रलयकालीन अग्निशिखाकी समान था, वैरियोंका संहार करने वाला, दुर्निवार्य, दुर्धर्ष, अव्यर्थ था ॥ २४ ॥ वह तेजोंका

सुराणां सर्वेषां दुस्सहं च भयङ्करम् ॥२५॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमवलंब्य च लीलया । संस्थितं परमं तत्र एकत्रीभूय विज्वलत् ॥ २६ ॥ धनुस्सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् । जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥ २७ ॥ विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शंखचूडोपरि क्षणात् । चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात् ॥ २८ ॥ अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शंकरम् । ययौ विहायसा विप्र मनोयायि स्वकार्यकृत् २९ नेदुर्दुंदुभयस्स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः । तुष्टुवुर्मुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।३०। बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् । प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा३१ शंखचूडो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा । शापमुक्तो बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह ३२ अस्थिभिश्शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह । प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना ॥ विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महत्प्रियम् । सम्बंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ॥३४॥ तमित्थं शंकरो हत्वा शिवलोकं जगाम सः । सुहृष्टो वृषभारूढः सोमः स्कन्दगणैर्वृतः ॥३५॥ हरिर्जगाम वैकुण्ठं कृष्णस्स्वस्थो बभूव ह । सुरास्स्वविषयं

परम उग्र चक्र था, सकल शस्त्र और अस्त्रोंमें भी बाधारूप था, उस भयदायक शूलको देवता और असुर सब ही कठिनतासे सह सकते थे ॥ २५ ॥ वह लीलाका अवलंबन कर सकल ब्रह्माण्डको ही भस्म करनेके लिये खड़ा हो, इस प्रकार दमकने लगा ॥ २६ ॥ वह दीर्घतामें हजार धनुष था प्रस्थमें सौ हाथ था, वह नित्यरूप अनिर्मित जीवब्रह्मस्वरूप था ॥ २७ ॥ आकाशमें घूमते हुए उस शूलने शिवकी आज्ञासे शङ्खचूड़के ऊपर गिर कर क्षण भरमें ही उसको भस्म कर डाला ॥२८॥ हे विप्र ! फिर वह शूल शीघ्र ही महेशके पास आया और अपने कार्यमें पूर्ण उतरा हुआ मनके अनुकूल चलनेवाला वह शूल फिर आकाशमार्गमेंको चला गया ॥२९॥ उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियें बजने लगीं, गन्धर्व और किन्नर गाने लगे, मुनि और देवता स्तुति करने लगे तथा अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ३० ॥ शिवके ऊपर अनवरत पुष्पवर्षा होने लगी, हरि ब्रह्मा इन्द्र और मुनि शङ्करकी प्रशंसा करने लगे ॥३१॥ और शिवकी कृपासे दानवेन्द्र शंखचूड़ भी शापमुक्त होकर पूर्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ३२ ॥ शंखचूड़की हड्डियोंसे शङ्ख प्रकट हुए, शंकरके अतिरिक्त और सबके लिये शंखका जल प्रशस्त (श्रेष्ठ) है ॥ ३३ ॥ हरि और लक्ष्मीको तो शङ्खका जल परम प्रिय है और उनसे संबन्ध रखने वालोंको भी शंखजल परमप्रिय है, किन्तु हे मुने ! शिवको शंखजल प्रिय नहीं है ॥ ३४ ॥ शंकर इस प्रकार उसको मार प्रसन्नतापूर्वक वृषभ पर आरूढ़ हो, उमा स्कन्द और गणोंको साथ ले शिवलोकको चल दिये ॥ ३५ ॥ हरि वैकुण्ठको चले गए, कृष्ण स्वस्थ होगए

प्राप्तः परमानन्दसंयुताः ॥ ३६ ॥ जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वे निर्विघ्नमारकम्। निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिस्सर्वा सुमंगला ॥३७॥ इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमदावहम्। सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ॥३८॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम्। भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३९ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं चरितं शशिमौलिनः। श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ॥ ४० ॥ धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न संशयः। सर्वान्कामानवाप्नोति शिवभक्तिं विशेषतः ॥ इदमाख्यानमतुलं सर्वोपद्रवनाशनम्। परमज्ञानजननं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥४२॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् धनाढयो वैश्यजश्शूद्रश्शृण्वन् सत्तमतामियात् ॥ ४३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

व्यास उवाच। नारायणश्च भगवान् वीर्याधानं चकार ह। तुलस्याः केन यत्नेन योनौ तद्वक्तुमर्हसि ॥१॥ सनत्कुमार उवाच। नारायणो हि देवानां कार्यकर्ता सतां गतिः। शंखचूडस्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥ २ ॥ तदेव शृणु

और देवता परम आनन्दमें भर अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ ३६ ॥ जगत् में स्वस्थता फैल गई, निर्विघ्न रीतिसे सुख मिलने लगा आकाश निर्मल होगया और पृथिवी पर सर्वत्र मङ्गलाचार होने लगे ॥ ३७ ॥ मैंने तुमसे यह महेश का आनन्दप्रद चरित्र कहा यह सब दुःखोंको हरने वाला है, लक्ष्मी देने वाला है और सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ ३८ ॥ धन यश आयु देने वाला है तथा सब विघ्नोंको निवारण करने वाला है, भोग और मुक्ति देने वाला है तथा सब कामनाओंका फल देने वाला है ॥ ३९ ॥ जो पुरुष चन्द्रमौलिके इस चरित्रको सुनता है वा सुनाता है, पढ़ता है वा पढ़ाता है, उस बुद्धिमान् पुरुषको धन धान्य पुत्र और सकल कामनायें प्राप्त होती हैं और शिवभक्ति विशेषरूपसे प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यह आख्यान अनुपम है, सब उपद्रवोंको नष्ट करने वाला है, परम ज्ञानका देने वाला है और शिवभक्तिको बढ़ाने वाला है ॥४२॥ इसको सुननेसे ब्राह्मणको ब्रह्मतेज मिलता है, क्षत्रिय को विजय प्राप्त होती है, वैश्य धनाढ्य होजाता है और शूद्र भी श्रेष्ठ माना जाने लगता है ॥४३॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ ❀

व्यासजीने कहा, कि—नारायणने तुलसीको किस प्रकार सतीत्वसे च्युत किया था, उसका आप वर्णन करिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि—सज्जनों की गति और देवताओंका कार्य करने वाले नारायणने शङ्खचूड़का रूप धारण कर उसकी स्त्रीके साथ रमण किया था ॥ २ ॥ शिवकी आज्ञा मानने वाले

विष्णोश्च चरितं प्रमुदावहम् । शिवशासनकर्तुश्च मातुश्च जगतां हरेः ॥ ३ ॥ रण-
मध्ये व्योमवचः श्रुत्वा देवेन शंभुना । प्रेरितश्शंखचूडस्य गृहीत्वा कवचं परम् ॥४॥
विप्ररूपेण त्वरितं मायया निजया हरिः । जगाम शंखचूडस्य रूपेण तुलसीगृहम्॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्देन तत्रैव बोधयामास सुन्द-
रीम् ॥६॥ तच्छ्रुत्वा चैव सा साध्वी परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श
परमादरात् ॥७॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा कारयामास मंगलम् । द्रुतं चकार शृंगारं
ज्ञात्वायातं निजं पतिम् ॥ ८ ॥ अवरुह्य रथाद्विष्णुस्तद्देव्या भवनं ययौ । शंख-
चूडस्वरूपः स मायावी देवकार्यकृत् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तं च पुरः प्राप्तं स्वकांतं सा
मुदान्विता । तत्पादौ क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥१०॥ रत्नसिंहासने रम्ये
वासयामास मंगलम् । ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥११॥ अद्य मे
सफलं जन्म जीवनं संबभूव ह । रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥ १२ ॥
इत्युक्त्वा सकटाक्षं सा निरीक्ष्य सस्मितं मुदा । पप्रच्छ रणवृत्तांतं कांतं मधुरया
गिरा ॥ १३ ॥ तुलस्युवाच । असंख्यविश्वसंहर्ता स देवप्रवरः प्रभुः । यस्याज्ञा-
वर्त्तिनो देवा विष्णुब्रह्मादयस्सदा ॥ १४ ॥ त्रिदेवजनकस्सोऽत्र त्रिगुणात्मा च

और जगत्का पालन करने वाले हरिके उस आनन्दप्रद चरित्रको तुम सुनो ३
रणमें आकाशवाणीको सुन कर शम्भुने विष्णुको भेजा, तब उन्होंने ब्राह्मण
का रूप धारण कर शङ्खचूड़के श्रेष्ठ कवचको हर लिया और शङ्खचूड़के रूपमें
तुलसीके घरको चल दिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वह तुलसीके द्वार पर पहुँच दुंदुभि
बजाने लगे और जयशब्दसे उन्होंने सुन्दरीको अपने आनेका ज्ञान कराया ६
उसको सुन कर वह साध्वी बड़े आनन्दमें भर गई और झरोखेमेंसे राजमार्ग
को बड़े चावसे देखने लगी ॥ ७ ॥ उसने अपने पतिको आया हुआ समझ
कर ब्राह्मणोंको धन देकर मङ्गलाचार कराया और अपना शृंगार किया ।८।
तब देवताओंका कार्य करने वाले, मायासे शङ्खचूड़का रूप धारण करने वाले
विष्णु रथसे उतर कर उस देवीके भवनमें गये ॥ ९ ॥ अपने स्वामीको सामने
आया हुआ देखकर वह हर्षमें भर गई, उसने रो रोकर उनके पैर धो डाले१०
उसने रमणीय रत्नसिंहासन पर उनको मङ्गलाचारपूर्वक बैठाया और कपूर
आदिसे सुगन्धित पान उनको दिया ॥ ११ ॥ आज मैं रणमें गए हुए स्वामी
को फिर घरमें लौटा हुआ देख रही हूँ, इससे मेरा जन्म आज सफल होगया १२
यह कह उसने आनन्दके साथ मुस्कुरा कर कटाक्षपूर्वक स्वामीकी ओर देखा,
फिर मधुर वाणीमें रणका वृत्तान्त बूझने लगी ॥ १३ ॥ तुलसीने कहा, कि
वह शम्भु तो असंख्य ब्रह्माण्डोंका संहार कर सकते हैं देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, ब्रह्मा
विष्णु आदि देवता सदा ही उन प्रभुकी आज्ञामें चला करते हैं ॥ १४ ॥ तीनों

निर्गुणः । भक्तेच्छया च सगुणो हरिब्रह्मप्रवर्तकः ॥ १५ ॥ कुबेरस्य प्रार्थनया गुणरूपधरो हरः । कैलासवासी गणपः परब्रह्म स तां गतिः ॥१६॥ यस्यैकपलमात्रेण कोटिब्रह्मांडसंक्षयः । विष्णुब्रह्मादयोऽतीता बहवः क्षणमात्रतः ॥ १७ ॥ कर्तुं सार्द्धं च तेनैव समरं त्वं गतः प्रभो । कथं बभूव संग्रामस्तेन देवसहायिना ॥ १८ ॥ कुशली त्वमिहायातस्तं जित्वा परमेश्वरम् । कथं बभूव विजयस्तव ब्रूहि तदेव मे ॥ १९ ॥ श्रुत्वेत्थं तुलसीवाक्यं स विहस्य रमापतिः । शंखचूडरूपधरस्तामुवाचामृतं वचः ।२०। भगवानुवाच । यदाहं रणभूमौ च जगाम समरप्रियः । कोलाहलो महान् यातः प्रवृत्तोऽभून्महारणः ॥ २१ ॥ देवदानवयोर्युद्धं संबभूव जयैषिणोः । दैत्याः पराजितास्तत्र निर्जरैर्बलगर्वितैः ।२२। तदाहं समरं तत्राकार्षं देवैर्बलोत्कटैः । पराजिताश्च ते देवाश्शंकरं शरणं ययुः ॥२३॥ रुद्रोऽपि तत्सहायार्थमाजगाम रणं प्रति । तेनाहं वै चिरं कालमयोत्स्सं बलदर्पितः ॥ २४ ॥ आवयोस्समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषामसुराणां च कामिनि ॥२५। प्रीतिं च कार-

देवताओंके जनक हैं, त्रिगुणात्मा हैं और निर्गुण हैं, भक्तकी इच्छासे सगुण होजाते हैं और हरि तथा ब्रह्माको प्रवृत्त करने वाले हैं ॥ १५ ॥ उन हरने कुबेरको प्रार्थनासे गुणमय रूप धारण कर कैलासमें वसना स्वीकार किया था, वह गणोंका पालन करने वाले हैं परब्रह्म हैं और सज्जनोंकी गति हैं ।१६। जिनके एक पलमात्रमें ही करोड़ों ब्रह्माण्डोंका क्षय होजाता है और क्षणमात्र में बहुतसे ब्रह्मा विष्णु आदिक बीत जाते हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभु ! तुम उनके साथ ही समर करनेको गए थे उन देवताओंकी सहायता करने वालेके साथ तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ था ? ॥१८॥ तुम उन परमेश्वरको जीत कर कुशलपूर्वक यहाँ आगए हो, अतः तुम्हारी विजय किस प्रकार हुई, उसका तुम मुझसे वर्णन करो ॥ १९ ॥ तुलसीके इस वचनको सुन शंखचूड़का रूप धारण करने वाले रमापति हँसे और अमृतमय वचन कहने लगे ॥ २० ॥ भगवान्ने कहा, कि-मुझे रण बड़ा प्रिय लगता है, इस लिये जब मैं रणभूमिमें पहुँचा तब बड़ा भारी कोलाहल मच कर महायुद्ध आरम्भ होगया ॥ २१ ॥ विजयाभिलाषी देवता और दानवोंमें युद्ध होने लगा, पहिले बलगर्वित देवताओंने दैत्योंको हरा दिया ॥ २२ ॥ तब मैंने बलवान् देवताओंसे समर किया और उनको हरा दिया, इस प्रकार वे हार कर शंकरकी शरणमें पहुँचे ॥ २३ ॥ तब रुद्र भी उनकी सहायता करनेके लिये रणमें आगए और मैंने बलके घमण्ड में उनसे चिरकाल तक युद्ध किया ॥ २४ ॥ हे कान्ते ! हमारा समर पूरे वर्षों तक चलता रहा और हे कामिनि ! उसमें सकल असुरोंका नाश होगया २५ उस समय ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रीति करादी तब मैंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे

यामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः । देवानामधिकाराश्च प्रदत्ता ब्रह्मशासनात् ॥२६॥ मयागतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः । सर्वस्वास्थ्यमतीवाप दूरीभूतो ह्युपद्रवः॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह । रेमे रमापतिस्तत्र रमया स तया मुदा ।२८॥ सा साध्वी सुखसंभावाकर्षणस्य व्यतिक्रमात् । सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच । को वा त्वं वद मामाशु भुक्ताहं मायया त्वया । दूरीकृतं यत्सतीत्वमथ त्वां वै शपाम्यहम् ॥३०॥ सनत्कुमार उवाच । तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिश्शापभयेन च । दधार लीलया ब्रह्मन्स्वमूर्तिं सुमनोहराम् ॥३१॥ तद् दृष्ट्वा तुलसी रूपं ज्ञात्वा विष्णुं तु चिह्नतः । पातिव्रत्यपरित्यागात् क्रुद्धा सा तमुवाच ह ॥ ३२ ॥ तुलस्युवाच । हे विष्णो ते दया नास्ति पाषाणसदृशं मनः । पतिधर्मस्य भंगेन मम स्वामी हतः खलु ॥३३। पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः खलः । तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं मच्छापेन भवाधुना॥ ये वदंति दयासिन्धुं त्वां भ्रांतास्ते न संशयः । भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा तुलसी सा वै शंखचूडप्रिया सती । भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप भृशं मुहुः ॥ ३६ ॥ ततस्तां रुदतीं दृष्ट्वा स विष्णुः

देवताओंके अधिकार लौटा दिये ॥२६॥ मैं अपने घरको चला आया और शिव अपने लोकको चले गए, सब परम स्वस्थ होगए और उपद्रव दूर होगया ।२७। सनत्कुमारजीने कहा, कि–जगन्नाथने इस प्रकार कह कर शयन किया, फिर रमणीके साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगे ॥ २८ ॥ तब उस साध्वीने सुख, भाव और आकर्षणमें भेद देख कर सब कुछ समझ लिया और कहा, कि–तू कौन है ? तुलसीने कहा, कि–अरे तू कौन है, यह मुझे शीघ्र बता, तूने मुझे मायासे भोग कर मेरा सतीत्व दूर कर दिया, अतः मैं तुझे शाप देती हूँ ३० सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–हे ब्रह्मन् ! तुलसीके वचनको सुन हरिने शापके भयसे अपनी मनोहर मूर्ति धारण करली ॥ ३१ ॥ तुलसी उस रूपको देख चिह्नोंसे उनको विष्णु समझ पातिव्रत्यसे भ्रष्ट होनेके कारण क्रुद्ध होकर उन से कहने लगी ॥ ३२ ॥ तुलसीने कहा; कि–हे विष्णो ! तुम्हें कुछ दया नहीं है, तुम्हारा मन पत्थरकी समान है, मेरे पतिधर्मका भंग होनेसे मेरे स्वामी अवश्य ही मारे गए होंगे ॥ ३३ ॥ क्योंकि–तुम पाषाणकी समान दयाहीन हो, दुष्ट हो अतः अब तुम मेरे शापसे पाषाणरूप ही होजाओ ॥ ३४ ॥ जो तुम्हें दयासिन्धु बताते हैं, वे भ्रममें ही पड़े हुए हैं, तुमने दूसरेके लिये अपने निरपराध भक्तको कैसे मार डाला ? ॥३५॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शंखचूड़की प्रिया वह सती इस प्रकार कह शोकार्त हो रोने लगी और बड़ा विलाप करने लगी ॥ ३६ ॥ उसको रोती हुई देख कर परमेश्वर विष्णुने शंकरका

परमेश्वरः । सस्मार शंकरं देवं येन संमोहितं जगत् ॥ ३७ ॥ ततः प्रादुर्बभूवाथ शंकरो भक्तवत्सलः । हरिणा प्रणतश्चासीत्संनुतो विनयेन सः ॥ ३८ ॥ शोकाकुलं हरिं दृष्ट्वा विलपन्तीं च तत्प्रियाम् । नयेन बोधयामास तं तां करुणवत्सलाम् ।३९। शंकर उवाच । मा रोदीस्तुलसि त्वं हि भुंक्ते कर्मफलं जनः । सुखदुःखदो न कोऽप्यस्ति संसारे कर्मसागरे ॥ ४० ॥ प्रस्तुतं शृणु निर्दुःखं शृणोतु सुमना हरिः । द्वयोस्सुखकरं यत्तद् ब्रवीमि सुखहेतवे ॥४१॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे तस्यैव तपसः फलम् । तदन्यथा कथं स्याद्धि जातं त्वयि तथा च तत् ॥४२॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च । रमस्व हरिणा नित्यं रमया सदृशी भव ॥ ४३ ॥ तवेयं तनुरुत्सृष्टा नदीरूपा भवेदिह । भारते पुण्यरूपा सा गण्डकीति च विश्रुता ।४४। कियत्कालं महादेवि देवपूजनसाधने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरेण मे ४५ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तिष्ठ त्वं हरिसन्निधौ । भव त्वं तुलसीवृक्षो वरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥ ४६ ॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं वैकुंठे दिव्यरूपिणी । सार्द्धं रहसि हरिणा नित्यं क्रीडां करिष्यसि ॥ ४७ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते बहुपुण्यदा । लवणो-

स्मरण किया, उन्होंने सम्पूर्ण जगत्को मोहमें डाल रखा है ॥ ३७ ॥ तब भक्तवत्सल शङ्कर प्रकट होगए, हरिने उनको प्रणाम किया और विनयपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हरिको शोकाकुल और शंखचूड़की प्रिया को बिलखती हुई देख कर शंकरने दोनोंको नीतिपूर्वक समझाया ॥ ३९ ॥ शङ्करने कहा, कि—हे तुलसि ! तू रो मत ! सब प्राणी अपने २ कर्मफलको भोगते हैं इस कर्मसागर संसारमें कोई किसीको सुख दुःख देने वाला नहीं है ॥ ४० ॥ अब इस समय दुःखको दूर करने वाली बात सुनो और हे हरे ! तुम भी मनको स्वस्थ करके सुनो, मैं तुम दोनोंको सुख पहुँचानेके लिये जो बात कहता हूँ, उस सुखदायक बातको तुम सुनो ॥ ४१ ॥ हे भद्रे ! तुमने जो (जिस इच्छासे) तप किया, उसीका यह फल है, वह अन्यथा किस प्रकार होसकता है, इस लिये वह तुम पर तैसा ही घट गया ॥ ४२ ॥ तुम अब इस शरीरको त्याग दिव्य देहको धारण कर हरिके साथ नित्य रमण करो और रमाकी समान होजाओ ॥ ४३ ॥ तुम्हारा यह छोड़ा हुआ शरीर नदीरूप हो जायगा, यह भारतवर्षमें पुण्यनदी गण्डकीके नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ हे महादेवि ! तू मेरे वरसे कुछ समयमें देवताओंकी पूजाकी प्रधान साधन तुलसी होजावेगी ॥ ४५ ॥ तू स्वर्ग मर्त्य और पातालमें हरिके पास ही विराजमान रह, हे सुन्दरी ! तू पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुलसीका वृक्ष होजायगी ॥ ४६ ॥ तुम वैकुंठ में दिव्य रूपवाली वृक्षाधिष्ठात्री देवी बन हरिके साथ नित्य एकान्तमें क्रीड़ा करना ॥ ४७ ॥ और भारतमें जो नदीकी अधिष्ठात्री देवी होगी, वह हरिके

द्रस्य पत्नी सा ह्यंशस्य भविष्यसि ॥४८॥ हरिर्वै शैलरूपी च गंडकीनीरसंनिधौ। संकरिष्यत्यधिष्ठानं भारते तव शापतः ॥ ४९ ॥ तत्र कोटयाश्च कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्रा भयंकराः। तच्छित्वा कुहरे चक्रं करिष्यंति तदीयकम् ॥ ५० ॥ शालग्रामशिला सा हि तद्भेदादतिपुण्यदा। लक्ष्मीनारायणाख्यादिश्चक्रभेदाद्भविष्यति ॥ ५१ ॥ शालग्रामशिला विष्णोस्तुलस्यास्तव संगमः। सदा सादृश्यरूपा या बहुपुण्यविवर्द्धिनी ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे भद्रे स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥५३॥ तुलसी पत्रविच्छेदं शंखं हित्वा करोति यः। भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी स्यात्सप्तजन्मसु ॥५४॥ शालग्रामश्च तुलसी शंखं चैकत्र एव हि। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः ॥५५॥ त्वं प्रियः शंखचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि। शंखेन सार्द्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र माहात्म्यमूचिवांस्तदा। शालग्रामशिलायाश्च तुलस्या बहुपुण्यदम् ५७ ततश्चांतर्हितो भूत्वा मोदयित्वा हरिं च ताम्। जगाम स्वालयं शंभुः शर्मदो हि सदा सताम् ॥ ५८ ॥ इति श्रुत्वा वचश्शंभोः प्रसन्ना तु तुलस्यभूत्। तद्देहं च परित्यज्य दिव्यरूपा बभूव ह ॥ ५९ ॥ प्रजगाम तया सार्द्धं वैकुण्ठं कमलापतिः।

अंश लवणसमुद्रकी पत्नी होगी और परमपुण्य देने वाली होगी ॥ ४८ ॥ और हरि भी तुम्हारे शापवश गण्डकीके किनारे पत्थरके रूपमें भारतवर्षमें अधिष्ठान करेंगे ॥ ४९ ॥ तहाँ पर तीखी डाढ़ वाले भयंकर कीड़े उस पत्थरके किनारे पर छेद कर उसमें चक्र बनावेंगे ॥ ५० ॥ इस भेदसे वह परमपुण्य देने वाली शिला शालग्राम कहावेगी और चक्रके भेदसे लक्ष्मीनारायण आदि भी उसके नाम होंगे ॥ ५१ ॥ विष्णुकी शालग्राम शिलाका और (वृक्षरूपिणी) तुम तुलसीका संगम परम पुण्य देने वाला होगा ॥ ५२ ॥ हे भद्रे! जो शालग्रामकी शिलासे तुलसीपत्रको हटावेगा उसको दूसरे जन्ममें स्त्रीवियोग सहना पड़ेगा ॥ ५३ ॥ जो कोई शंख और तुलसीपत्रका विच्छेद करेगा वह भी रँडुआ होजावेगा और सात जन्म तक रोगी रहेगा ॥ ५४ ॥ जो पुरुष शालग्राम तुलसी और शंखकी एकत्र ही रक्षा करता है, वह महाज्ञानी लक्ष्मीनारायणका प्रिय होता है ॥ ५५ ॥ तुम एक मन्वन्तर तक शंखचूड़की प्रिया रहीं, शंखके साथ तुम्हारा जो भेद है, वही तुमको दुःख देता है ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–शंकरने इस प्रकार कह कर शालग्रामकी शिला और तुलसीके परमपुण्यदायक माहात्म्यका वर्णन किया ॥ ५७ ॥ और हरिको तथा तुलसीको प्रसन्न कर अन्तर्धान होगए इस प्रकार सज्जनोंका कल्याण करने वाले शम्भु अपने स्थानको चले गए ॥ ५८ ॥ शम्भुके इस वचनको सुन कर तुलसी प्रसन्न हुई और उस देहको त्याग कर उसने दिव्य रूप धारण किया ॥५९॥

सद्यस्तद्देहजा न च बभूव गण्डकी नदी ॥ ६० ॥ शैलोऽभूदच्युतस्सोऽपि तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् । कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च छिद्रं बहुविधं मुने ॥ ६१ ॥ जले पतन्ति यास्तत्र शिलास्तास्त्वतिपुण्यदाः । स्थलस्था पिंगला ज्ञेयाश्चोपतापाय चैव हि ६२ इत्येवं कथितं सर्वं तव प्रश्नानुसारतः । चरितं पुण्यदं शम्भोः सर्वकामप्रदं नृणाम् आख्यानमिदमाख्यातं विष्णुमाहात्म्यमिश्रितम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूड़वधोपाख्याने तुलसीशापवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

नारद उवाच । शङ्खचूडवधं श्रुत्वा चरितं शशिमौलिनः । अहं तृप्तोऽस्मि नो त्वत्तोऽमृतं पीत्वा यथा जनः ॥ १ ॥ ब्रह्मन्यच्चरितं तस्य महेशस्य महात्मनः । मायामाश्रित्य सल्लीलां कुर्वतो भक्तमोददाम् ॥२॥ ब्रह्मोवाच । जलन्धरवधं श्रुत्वा व्यासस्सत्यवतीसुतः । अप्राक्षीदिममेवार्थं ब्रह्मपुत्रं मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार प्रोवाच व्यासं सत्यवती सुतम् । सुप्रशंस्य महेशस्य चरितं मङ्गलायनम् ॥ ४ ॥

तब कमलापति उसके साथ वैकुण्ठको चले गए, इधर उसके देहसे तत्काल ही गण्डकी नदी प्रकट होगई ॥ ६० ॥ और अच्युत भी उसके तट पर मनुष्योंको पुण्य देने वाले पत्थर होगए, हे मुने ! तहाँ पर कीड़े उनमें अनेक प्रकारका छिद्र करते रहते हैं ॥ ६१ ॥ उनमेंसे जो शिलायें जलमें गिरती हैं, वह परम पुण्य देने वाली हैं और जो स्थलमें गिरती हैं वह पिंगलवर्णकी होती हैं और प्राणियोंको सन्ताप देने वाली होती हैं ॥ ६२ ॥ इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला शम्भुका यह पुण्यप्रद सारा चरित्र तुमसे कह दिया ॥ ६३ ॥ विष्णुके माहात्म्यसे मिश्रित भोग और मोक्ष देने वाला यह पवित्र आख्यान तुमसे कह दिया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ ❀

नारदजीने कहा, कि—जैसे मनुष्य अमृत पीता हुआ तृप्त नहीं होता है, इसी प्रकार मैं तुमसे शंखचूड़के वधको सुन चन्द्रमौलिके चरित्रसे अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! भक्तोंको आनन्द देने वाली लीलाको, मायाका आश्रय लेकर करने वाले महात्मा महेशके जो चरित्र हैं, (उनको सुनते २ मुझे तृप्ति नहीं होती) ॥ २ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—जलन्धरके वधको सुन कर सत्यवतीके पुत्र व्यासजीसे ब्रह्माजीने पुत्र मुनीश्वर सनत्कुमारसे ऐसा ही प्रश्न बूझा था ॥ ३ ॥ तब सनत्कुमारजीने सत्यवतीके पुत्र व्यासजीसे महेशके मङ्गलमय चरित्रकी प्रशंसा करके उसका वर्णन किया था ॥ ४ ॥ सनत्कुमार

सनत्कुमार उवाच। शृणु व्यास महेशस्य चरितं मङ्गलायनम्। यथान्धको गाणपत्यं प्राप शम्भोः परात्मनः ॥ ५ ॥ कृत्वा परमसंग्रामं तेन पूर्वं मुनीश्वर। प्रसाद्य तं महेशानं सत्त्वभावात्पुनः पुनः ॥ ६ ॥ माहात्म्यमद्भुतं शम्भोश्शरणागतरक्षिणः। सुभक्तवत्सलस्यैव नानालीलाविहारिणः ॥७॥ माहात्म्यमेतद् वृषभध्वजस्य श्रुत्वा मुनिर्गन्धवतीसुतो हि। वचो महार्थं प्रणिपत्य भक्त्या ह्युवाच तं ब्रह्मसुतं मुनीन्द्रम् ॥८॥ व्यास उवाच। को ह्यन्धको वै भगवन्मुनीश कस्यान्वये वीर्यवतः पृथिव्याम्। जातो महात्मा बलवान् प्रधानः किमात्मकः कस्य सुतोऽन्धकश्च ॥ ९ ॥ एतत्समस्तं सरहस्यमद्य ब्रवीहि मे ब्रह्मसुतप्रसादात्। स्कन्दान्मया वै विदितं हि सम्यक् महेशपुत्रादमितावबोधात् ॥१०॥ गाणपत्यं कथं प्राप शंभोः परमतेजसः। सोऽन्धको धन्य एवाति यो बभूव गणेश्वरः ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच। व्यासस्य चैतद् वचनं निशम्य प्रोवाच स ब्रह्मसुतस्तदानीम्। महेश्वरोतीः परमात्तलक्ष्मीस्संश्रोतुकामं जनकं शुकस्य ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच। पुराऽऽगतो भक्तकृपाकरोऽसौ कैलासतश्शैलसुतागणाढ्यः। विहर्तुकामा किल काशिकां वै स्वशैलतो निर्जरचक्र-

---

जीने कहा, कि—हे व्यासजी ! जिस प्रकार अन्धक परमात्मा शम्भुके गाणपत्य (गणोंके अध्यक्ष पद) को प्राप्त हुआ था, महेशके उस मंगलमय चरित्रको तुम सुनो ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! उस अन्धकने पहिले उनसे बड़ा भारी संग्राम किया था, फिर सात्त्विक भावके कारण उनको बारम्बार प्रसन्न कर (गणों का अध्यक्ष बन गया था) ॥ ६ ॥ भक्तवत्सल, अनेक प्रकारकी लीलायें करने वाले शरणागतरक्षक शम्भुका माहात्म्य परम अद्भुत है ॥ ७ ॥ गन्धवतीके पुत्र मुनि व्यासजीने वृषभध्वजके इस माहात्म्यको सुन उन ब्रह्मपुत्र मुनींद्रको प्रणाम कर भक्तिपूर्वक यह अर्थ भरा वचन कहा था ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा, कि—हे मुनीश ! हे भगवन् ! वह अन्धक कौन था और पृथ्वी पर किस वीर्यवान् के कुलमें प्रकट हुआ था, वह महात्मा बलवान् अन्धक कैसा था और किसका पुत्र था ॥ ९ ॥ परमज्ञानी महेशके पुत्र स्कन्दसे मुझे विदित हुआ है, कि—ब्रह्मपुत्रके प्रसादसे आप सब कुछ कह सकते हैं अतः इस घटनाका मुझसे रहस्यसहित वर्णन करिये ॥ १० ॥ वह परमतेजस्वी शम्भुका गणाध्यक्ष किस प्रकार हुआ था, जो गणाध्यक्ष होगया था उस अन्धकको तो परम धन्य समझना चाहिये ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—महेश्वरसे संरक्षित शोभासम्पन्न सनत्कुमार व्यासजीके इस वचनको सुन कर शुकके पिता व्यासजीसे बोले १२ सनत्कुमारजीने कहा, कि—भक्तों पर कृपा करने वाले देवताओंके चक्रवर्ती सम्राट् शिव एक समय विहार करनेकी इच्छासे कैलाससे चल कर पार्वती और गणों

वर्ती ॥ १३ ॥ स राजधानीं च विधाय तस्यां चक्रे परीतोः सुखदा जनानाम् । तद्रक्षकं भैरवनामवीरं कृत्वा समं शैलजया हि यह्वीः ॥१४॥ स एकदा मन्दरनामधेयं गतो नगं तद्वरसुप्रभावात्। तत्रापि नानागणवीरमुख्यैः शिवासमेतो विजहार भूरि ॥१५॥ पूर्वे दिशि मन्दरशैलसंस्था कपर्दिनश्चंडपराक्रमस्य । चक्रे ततो नेत्रनिमीलनं तु सा पार्वती नर्मयुतं सलीलम् ॥१६॥ प्रवालहेमाब्जधृतप्रभाभ्यां कराम्बुजाभ्यां निमिमील नेत्रे। हरस्य नेत्रेषु निमीलितेषु क्षणेन जातः सुमहान्धकारः १७ तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य करौ च तस्याः स्खलितं मदाम्भः । शंभोर्ललाटे क्षणवह्नितप्तो विनिर्गतो भूरि जलस्य बिन्दुः ॥१८॥ गर्भो बभूवाथ करालवक्त्रो भयंकरः क्रोधपरः कृतघ्नः। अन्धो विरूपी जटिलश्च कृष्णो नरेतरो वैकृतिकस्सुरोमा १९ गायन्हसन्प्ररुदन्नृत्यमानो विलेलिहानो घरघोरघोषः। जातेन तेनाद्भुतदर्शनेन गौरीं भवोऽसौ स्मितपूर्वमाह ॥ २० ॥ श्रीमहेश उवाच । निमील्य नेत्राणि कृतं च कर्म बिभेषि साऽस्मात्प्रियते कथं त्वम् । गौरी हरात्तद्वचनं निशम्य विहस्यमाना प्रमुमोच नेत्रे ॥ २१ ॥ जाते प्रकाशे सति घोररूपो जातोऽन्धकारादपि नेत्रहीनः ।

के साथ काशीपुरीमें पहुँचे ॥ १३ ॥ वह उसको राजधानी बना उसमें भैरव नामक वीरको रक्षक नियुक्त कर गिरिजाके साथ मनुष्योंको सुख पहुँचाने वाली परम रक्षामयी लीलाओंको करने लगे ॥१४॥ एक समय वह वरदानके प्रभाववश मन्दराचल पर अनेकों वीर, गण और पार्वतीको साथ लेकर गए और वहाँ विहार करने लगे ॥ १५ ॥ प्रचण्ड पराक्रमी शिव मन्दराचल पर पूर्व दिशाकी ओर बैठे थे, कि–पार्वतीने नर्मक्रीड़ामें खेल ही खेलमें शिवजीके नेत्रों को मीच लिया ॥१६॥ उन्होंने जब मूँगा सुवर्ण और कमलकीसी कान्ति वाले अपने करकमलोंसे शिवके नेत्र मीचे तब हरके नेत्रोंके बन्द होने पर क्षण भरमें ही बड़ा अन्धकार होगया ॥१७॥ पार्वतीके हाथोंका स्पर्श होनेसे शम्भुके ललाट में मदजल प्रकट हुआ और क्षण भरमें ही उसकी गर्मीसे जलकी बूँद गिरी १८ उससे एक गर्भ प्रकट हुआ, उसका मुख भयंकर था, वह स्वयं भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अन्धा, विरूप, जटाधारी, काला, मनुष्यसे भिन्न, बेडौल, सुन्दर बालों वाला और घोर घर २ घोष कर रहा था, अपने जबाड़ोंको चाट रहा था, गारहा था, हँस रहा था, रोरहा था और नाच रहा था, उस अद्भुत दृश्य वालेके प्रकट होने पर शिवने गौरीसे मुस्करा कर कहा, कि–॥ १९ ॥ २० ॥ तुमने मेरे नेत्रोंको मीच कर यह कर्म कर डाला है, सो हे प्रिये ! अब तुम इससे क्यों डर रही हो, गौरीने हरके इस वचनको सुन हँस कर शिवके नेत्रों परसे हाथ हटा लिये ॥ २१ ॥ प्रकाश होने पर भी उसका रूप घोर ही रहा अन्धकार से प्रकट होनेके कारण उसके नेत्र अन्धे थे, ऐसे प्राणीको प्रकट हुआ देखकर

ताहग्विधं तं च निरीक्ष्य भूतं पप्रच्छ गौरी पुरुषं महेशम् ॥ २२ ॥ गौर्य्युवाच । काऽयं विरूपो भगवन्हि जातो नावग्रतो घोरभयंकरश्च । वदस्व सत्यं मम किं निमित्तं सृष्टोऽथ वा केन च कस्य पुत्रः ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वा हरस्तद्वचनं प्रियाया लीलाकरस्सृष्टिकृतोऽधरूपम् । लीलाकरायास्त्रिजगज्जनन्या विहस्य किञ्चिद्भगवानुवाच ॥ २४ ॥ महेश उवाच । शृणवम्बिके ह्यद्भुतवृत्तकारे उत्पन्न एषोऽद्भुतचण्डवीर्यः । निमीलिते चक्षुषि मे भवत्या स स्वेदजो मेऽन्धकनामधेयः ॥ २५ ॥ त्वं चास्य कर्तासि यथानुरूपं त्वया ससख्या दयया गणेभ्यः । स रक्षितव्यस्त्वयि तं हि चैकं विचार्य बुद्ध्या करणीयमार्ये ।२६। सनत्कुमार उवाच । गौरी ततो भर्तृवचो निशम्य कारुण्यभावात्सहिता सखीभिः । नानाप्रकारैर्बहुभिर्ह्युपायैश्चकार रक्षां स्वसुतस्य यद्वत् ॥२७॥ कालेऽथ तस्मिञ्शिशिरे प्रयातो हिरण्यनेत्रस्त्वथ पुत्रकामः । स्वज्येष्ठबन्धास्तनयप्रतानं संवीक्ष्य चासीत्प्रियया नियुक्तः २८ अरण्यमाश्रित्य तपश्चकारासुरस्तदा कश्यपजस्तुलार्थम् । काष्ठोपमोऽसौ जितरोषदोषस्संदर्शनार्थं तु महेश्वरस्य ॥ २९ ॥ तुष्टः पिनाकी तपसास्य सम्यग्वरप्रदा-

गौरीने महेशसे बूझा ॥ २२ ॥ गौरीने कहा, कि-हे भगवन् ! हम दोनोंके सामने यह कौन बेडौल प्राणी प्रकट हुआ है, यह बड़ा घोर और भयंकर है, मुझे सत्य बताइये, कि-इसको किसने किस लिये रचा है और यह किसका पुत्र है ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-लीला करने वाले भगवान् शिव, लीला करने वाली तीनों लोकोंकी जननी अपनी प्रियाके सृष्टिकर्ताकी अन्धी सृष्टिके विषयमें प्रश्न करने पर कुछ हँस कर कहने लगे ॥२४॥ महेशने कहा, कि-हे अद्भुत चरित्र करने वाली अम्बिके ! सुनो ! तुमने जो मेरे नेत्र मूँदे थे उसके स्वेदसे यह अद्भुत और चण्डवीर्य वाला प्राणी प्रकट हुआ है, यह मेरा अंधक नाम वाला (अंश) है ॥ २५ ॥ तुम ही इसको रचने वाली हो, अतः तुम्हें और तुम्हारी सखियोंको दया करके गणोंसे इसकी रक्षा करती रहना चाहिये । हे आर्ये ! इस प्रकार विचार कर तुम्हें बुद्धिपूर्वक काम करना चाहिये ॥ २६ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-तब गौरी स्वामीके वचनको सुन करुणापूर्वक अपनी सखियोंसहित उसकी अपने पुत्रकी समान अनेक उपायों से रक्षा करने लगीं ॥ २७ ॥ उस समय हिरण्याक्ष पुत्रकी कामनासे शिशिर ऋतुमें (वनमें) आया था, उसकी स्त्रीने अपने जेठकी सन्तानोंको देख कर उसको सन्तान पानेके लिये प्रेरित किया था ॥ २८ ॥ तब वह कश्यपनन्दन असुर वनमें जा रोषके दोषको जीत काठकी समान बन महेश्वरका दर्शन पाने के लिये तप करने लगा ॥ २९ ॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर शिव उसको वरदान देनेके लिये चले और उसके स्थान पर पहुँचकर वृषभध्वज महेश उस

नाय ययौ द्विजेन्द्रः। तत्स्थानमासाद्य वृषध्वजोऽसौ जगाद दैत्यप्रवरं महेशः।३०। महेश उवाच। हे दैत्यनाथ कुरु नेन्द्रियसंघपातं किमर्थमेतद् व्रतमाश्रितं ते। प्रब्रूहि कामं वरदो भवोऽहं यदिच्छसि त्वं सकलं ददामि ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार उवाच। सरस्यमाकर्ण्य महेशवाक्यं ह्यतिप्रसन्नः कनकाक्षदैत्यः। कृतांजलिर्नम्रशिरा उवाच स्तुत्या च नत्वा विविधं गिरीशम् ॥ ३२ ॥ हिरण्याक्ष उवाच। पुत्रस्तु मे चन्द्र-ललाट नास्ति सुवीर्यवान्दैत्यकुलानुरूपी। तदर्थमेतद् व्रतमास्थितोऽहं तं देहि देवेश सुवीर्यवंतम् ॥३३॥ यस्माच्च मद्भ्रातुरनंतवीर्याः प्रल्हादपूर्वा अपि पंच पुत्राः। ममेह नास्तीति गतान्वयोऽहं को मामकं राज्यमिदं बुभूषेत् ॥ ३४ ॥ राज्यं परस्य स्वबलेन हृत्वा भुंक्तेऽथवा स्वं पितुरेव दृष्टम्। स प्रोच्यते पुत्र इह त्वमुत्र पुत्री स तेनापि भवेत्पितासौ ॥ ३५ ॥ ऊर्द्ध्वं गतिः पुत्रवतां निरुक्ता मनीषिभिर्धर्मभृतां वरिष्ठैः। सर्वाणि भूतानि तदर्थमेव मतौ प्रवर्तंत पशून् स्वतेजः ॥ ३६ ॥ निरन्वयस्याथ न संति लोकास्तदर्थमिच्छंति जनाः सुरेभ्यः। सदा समाराध्य सुरांघ्रिपंकजं याचंत इत्थं सुतमेकमेव ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच। एतन्द्रवस्तद्वचनं निशम्य कृपाकरो दैत्यनृपस्य तुष्टः। तमाह दैत्याधिप नास्ति पुत्रस्त्वद्वीर्यजः किंतु

दैत्यप्रवरसे कहने लगे ॥ ३० ॥ महेशने कहा, कि—हे दैत्यनाथ! तुम अपनी इन्द्रियोंको कष्ट मत दो, तुम किस लिये इस व्रतको कर रहे हो, तुम अपनी इच्छाको बताओ, मैं तुमको अभिलषित वर दूँगा ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—महेशके रस-भरे वचनको सुन हिरण्याक्ष परम प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ शिर झुका अनेक प्रकारसे गिरीशकी स्तुति कर कहने लगा।३२। हिरण्याक्षने कहा, कि—हे चन्द्रमौलि! मेरे दैत्यकुलके योग्य वीर्यवान् पुत्र नहीं है इस लिये मैंने यह व्रत किया है, अतः हे देवेश! ऐसे वीर्यवान् पुत्रको मुझे दीजिये ॥ ३३ ॥ क्योंकि—मेरे भाईके अनन्त वीर्य वाले प्रह्लाद आदि पाँच पुत्र हैं, परन्तु मेरे कोई पुत्र नहीं है, यदि मैं निर्वंश रहूँगा, तो कौन मेरे इस राज्यको बुभूषित करेगा ॥३४॥ जो दूसरेके राज्यको अपने बलसे हरकर वा अपने पिताके राज्यको ही भोगता है, वह इस लोकमें और परलोकमें पुत्र कहलाता है और पिता भी उससे पुत्र वाला कहलाता है ॥३५॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ विद्वानोंने पुत्र वालोंकी ऊर्ध्वगति कही है, इसी लिये सब प्राणी पुत्रके लिये चेष्टा करते हैं और पशुओंमें तो अपना तेज ही प्रवृत्त रहता है ॥३६॥ जो वंशहीन होता है, उसको शुभ लोक नहीं मिलते इस लिये प्राणी देवताओंसे पुत्र पाना चाहते हैं, वे देवताओंके चरणकमलोंकी याचना करके एक पुत्रकी याचना अवश्य करते हैं ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—कृपालु शंकर दैत्यराजके इस वचनको सुन कर उस पर प्रसन्न होगये और कहने लगे, कि-

ददामि पुत्रम् ॥ ३८ ॥ ममात्मजं त्वंधकनामधेयं त्वत्तुल्यवीर्यं त्वपराजितं च । वृणीष्व पुत्रं सकलं विहाय दुःखं प्रतीच्छस्व सुतं त्वमेव ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्येवमुक्त्वा प्रददौ स तस्मै हिरण्यनेत्राय सुतं प्रसन्नः । हरस्तु गौर्या सहितो महात्मा भूतादिनाथस्त्रिपुरारिरुग्रः ॥ ४० ॥ ततो हरात्प्राप्य सुतं स दैत्यः प्रदक्षिणीकृत्य यथाक्रमेण । स्तोत्रैरनेकैरभिपूज्य रुद्रं तुष्टस्स्वराज्यं गतवान्महात्मा ॥ ४१ ॥ ततस्तु पुत्रं गिरिशादवाप्य रसातलं चंडपराक्रमस्तु । इमां धरित्रीमनयत्स्वदेशं दैत्यो विजित्वा त्रिदशानशेषान् ॥ ४२ ॥ ततस्तु देवैर्मुनिभिश्च सिद्धैः सर्वात्मकं यज्ञमयं करालम् । वाराहमाश्रित्य वपुः प्रधानमाराधितो विष्णुरनंतवीर्यः ॥४३॥ घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं विदार्य पातालतलं प्रविश्य । तुंडेन दैत्यांश्शतशो विचूर्ण्य दंष्ट्राभिरग्र्याभिरखंडिताभिः ॥४४॥ पादप्रहारैरशनिप्रकाशैरुन्मथ्य सैन्यानि निशाचराणाम् । मार्तंडकोटिप्रतिमेन पश्चात्सुदर्शनेनाद्भुतचंडतेजाः ॥ ४५ ॥ हिरण्यनेत्रस्य शिरो ज्वलंतं चिच्छेद दैत्यांश्च ददाह दुष्टान् । ततः प्रहृष्टोऽदितीजेन्द्रराजस्तमंधकं तत्र स चाभ्यषिंचत् ॥४६॥ स्वस्थामनागत्य ततो

हे दैत्यराज ! तुम्हारे (भाग्यमें तुम्हारे) वीर्यसे उत्पन्न होने वाला कोई पुत्र तो है नहीं, किन्तु मैं तुम्हें एक पुत्र देता हूँ ॥ ३८ ॥ मेरा एक अंधक नाम वाला पुत्र है, वह तुम्हारी समान वीर्यवान् है और अपराजित है, तुम सकल दुःखोंको छोड़ कर उसको पुत्ररूपमें वरण करो और इस प्रकार पुत्रको प्राप्त करो ॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—इस प्रकार कहकर गौरीके साथ विराजमान त्रिपुरारि, भूतादिनाथ उग्र महात्मा हरने प्रसन्न होकर हिरण्याक्ष को पुत्र दिया ॥ ४० ॥ इस कारण हरसे पुत्र प्राप्त कर वह महात्मा दैत्य शिवकी प्रदक्षिणा कर और अनेक स्तोत्रोंसे उनका पूजन कर सन्तुष्ट हो अपने राज्यको चला गया ॥ ४१ ॥ शंकरसे पुत्र पानेके अनन्तर वह प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य सकल देवताओंको जीत कर पृथिवीको अपने देश रसातलमें लेगया ॥ ४२ ॥ तब देवता मुनि और सिद्धोंने अनन्त वीर्य वाले विष्णुकी आराधना की, तब वह सर्वात्मक यज्ञमय कराल वाराहरूपको धारण कर अपनी थूथड़ीसे विदीर्ण करते हुए पातालमें घुसे और अपनी अखण्डित डाढ़ और थूथड़ीसे सैंकड़ों दैत्योंका चूरा कर डाला और वज्रकी समान पड़ने वाले अपने पैरोंसे निशाचरोंकी सेनाको विदीर्ण करने लगे, फिर प्रचण्ड तेज वाले विष्णुने करोड़ों सूर्योंकी समान अपने सुदर्शनचक्रसे हिरण्याक्षके दमकते हुए शिरको काट डाला और दुष्ट दैत्योंको भस्म कर डाला, फिर अदितिसे उत्पन्न हुए, इन्द्रने प्रसन्न होकर तहाँ अंधकका अभिषेक किया ॥४३–४६॥ फिर महात्मा इन्द्र पातालतलसे विष्णुको डाढ़से पृथिवीको लाते हुए देख कर प्रसन्न हुए

धरित्री दंष्ट्राङ्कुरेणोद्धरतः प्रहृष्टः । भूमिं च पातालतलान्महात्मा पुपोष भागं स्वयं पूर्वकं तु ॥ ४७ ॥ देवैस्समस्तैर्मुनिभिः प्रहृष्टैरभिष्टुतः पद्मभुवा च तेन । ययौ स्वलोकं हरिरुग्रकायो वाराहरूपस्तु सुकार्यकर्त्ता ॥ ४८ ॥ हिरण्यनेत्रेऽथ हतेऽसुरेशे वराहरूपेण सुरेण देवाः । देवास्समस्ता मुनयश्च सर्वे परे च जीवास्सुखिनो बभूवुः ॥ ४९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे हिरण्याक्षवधो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ हते तस्मिन्सुरद्रुहि । किमकार्षीत्ततस्तस्य ज्येष्ठभ्राता महासुरः ॥ १ ॥ कुतूहलमिति श्रोतुं ममाऽस्तीह मुनीश्वर । तच्छ्रावय कृपां कृत्वा ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ॥२॥ ब्रह्मोवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः । सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना । हिरण्यकशिपुर्व्यास पर्यतप्यक्रुधा शुचा ॥ ४ ॥ ततः प्रजानां कदनं विधातुं कदनप्रियान् । निर्दिदेशाऽसुरान्वीरान्हरिवैरप्रियो हि सः ॥५॥ अथ ते भर्तुसंदेशमादाय शिरसाऽसुराः । देवप्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥६॥ ततो विप्रकृते लोकेऽसुरैस्तैर्दुष्टमानसैः दिवं देवाः

और पहिलेकी समान अपने भागसे पुष्ट होने लगे ॥४७॥ फिर उग्र शरीर वाले और सुन्दर कार्य करने वाले वाराहरूपधारी हरि भी समस्त देवता मुनि ब्रह्मा और इन्द्रके स्तुति करने पर प्रसन्न होकर अपने लोकको चले गए ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वराहरूपधारी विष्णुके द्वारा दैत्यराज हिरण्याक्षके मारे जाने पर सम्पूर्ण देवता मुनि तथा दूसरे भी सब जीव परम प्रसन्न हुए ॥ ४९ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

व्यासजीने कहा, कि—हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! जब वह देवताओंसे द्वेष रखने वाला मारा गया, तब उसके बड़े भाई महान् असुर हिरण्यकशिपुने क्या किया ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! मुझे इस बातको सुननेका कुतूहल है, इस लिये आप कृपा करके सुनाइये, हे ब्रह्मपुत्र ! आपको प्रणाम है ॥२॥ ब्रह्माजी कहते हैं कि मुनीश्वर सनत्कुमार व्यासजीके इस वचनको सुन शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे ॥३॥ सनत्कुमारने कहा, कि-हे व्यासजी ! जब सूअरकी मूर्ति धारण करने वाले हरिने भाईको मार डाला तब रोष और शोकके कारण हिरण्यकशिपु सन्तप्त होने लगा ॥ ४ ॥ तदनन्तर उस हरिसे वैर रखनेमें प्रसन्न रहने वाले हिरण्यकशिपुने संहारमें प्रसन्न होने वाले वीर असुरोंको प्रजाका कतलेआम करनेकी आज्ञा देदी ॥ ५ ॥ तब वे संहारप्रिय असुर स्वामीकी आज्ञाको शिर पर चढ़ा कर देवप्रजाओंका संहार करने लगे ६

परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुस्संपरेतस्य दुःखितः। कृत्वा करोदकादीनि तत्कलत्राद्यसांत्वयत् ॥ ८ ॥ ततस्स दैत्यराजेन्द्रो ह्यजेयमजरामरम्। आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराज्यं व्यधित्सत ॥९॥ स तेपे मंदरद्रोण्यां तपः परमदारुणम्। ऊर्द्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥१०॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवास्सर्वे बलान्विताः। दैत्यान्सर्वान्विनिर्जित्य स्वानि स्थानानि भेजिरे ११ तस्य मूर्द्धनस्समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः। तिर्यगूर्द्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ १२ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुस्सुराः। धात्रे विज्ञापयामासुस्तत्तपोविकृताननाः ॥१३॥ अथ विज्ञापितो देवैर्व्यास तैरात्मभूर्विधिः। परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥ प्रताप्य लोकानखिलांस्ततोऽसौ समागतं पद्मभवं ददर्श। वरं हि दातुं तमुवाच धाता वरं वृणीष्वेति पितामहोऽपि। निशम्य वाचं मधुरां विधातुर्वचोऽब्रवीदेवममूढबुद्धिः ॥ १५ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच। मृत्योर्भयं मे भगवन्प्रजेश पितामहाभून्न कदापि देव। शस्त्रास्त्रपाशाशनिशुष्कवृ-

जब दूषित चित्त वाले असुरोंने संसारमें देवताओंका तिरस्कार किया, तब देवता स्वर्गको त्याग कर पृथिवी पर गुप्तरूपसे विचरण करने लगे ।७। उधर भाईके मरनेसे दुःखित हिरण्यकशिपुने भाईका तर्पण आदि कर उसकी स्त्री आदिको ढाढ़स दिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर वह दैत्यराज मैं अजेय और अजर अमर रहूँ तथा मेरा प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) कोई न रहे, यह इच्छा करने लगा ९ तदनन्तर वह मन्दराचलकी तलैटीमें जा ऊपरको भुजा उठा, आकाशकी ओर दृष्टि लगा, पैरके अँगूठे पर खड़ा हो परम दारुण तप करने लगा ॥१०॥ जब वह तप कर रहा था, तब सब देवता बलवान् बन कर सकल दैत्योंको जीत अपने २ पदोंका उपभोग करने लगे ॥ ११ ॥ तब उसके मस्तकसे धूम वाला तपोमय अग्नि निकलने लगा और वह ऊपर नीचे तिरछा इस प्रकार चारों ओर फैल कर लोकोंको पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥ तब उससे तप्त होकर देवता स्वर्गलोकको त्याग ब्रह्मलोकको भाग निकले, उस समय उसके तपके कारण देवताओंका मुख बिगड़ रहा था–इस दशामें उन्होंने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा ॥ १३ ॥ हे व्यास ! उनके कहने पर अज ब्रह्मा भृगु और दक्ष आदिके साथ दैत्येश्वरके आश्रमकी ओर चले ॥१४॥ इधर अपने तपसे सकल लोकोंको सन्तप्त करते हुए हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीको आये हुए देखा उधर ब्रह्माजीने भी उसको वर देनेके लिये कहा, कि—वर माँग, ब्रह्माजीकी मधुर वाणीको सुन जिसकी बुद्धि मोहमें नहीं पड़ी थी उस असुरने यह बात कही १५ हिरण्यकशिपुने कहा, कि—हे भगवन् ! हे प्रजेश ! हे पितामह ! हे देव ! मुझे मृत्युका डर कभी न हो, शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, शुष्क वृक्ष, पर्वत,

र्नगिरीन्द्रतोयाग्निरिपुप्रहारैः ॥ १६ ॥ देवैश्च दैत्यैर्मुनिभिश्च सिद्धैस्त्वत्सृष्टजीवै-
र्बहुवाक्यतः किम्। स्वर्गे धरण्यां दिवसे निशायां नैवोर्द्ध्वतो नाप्यधतः प्रजेश १७
सनत्कुमार उवाच । तस्यैतदीदृग्वचनं निशम्य दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि लभस्व सर्वम्।
प्रणम्य विष्णुं मनसा तमाह दयान्वितोऽसाविति पद्मयोनिः ॥ १८ ॥ अलं तपस्ते
परिपूर्णकामस्समाः सहस्राणि च पण्णवत्यः । उत्तिष्ठ राज्यं कुरु दानवानां श्रुत्वा
गिरं तत्सुमुखो बभूव ॥ १९ ॥ राज्याभिषिक्तः प्रपितामहेन त्रैलोक्यनाशाय मतिं
चकार । उत्साद्य धर्मान् सकलान्प्रमत्तो जित्वाहवे सोऽपि सुरान्समस्तान् ॥२०॥
ततो भयादिंद्रमुखाश्च देवाः पितामहाज्ञां समवाप्य सर्वे । उपद्रुता दैत्यवरेण
जाताः क्षीरोदधिं यत्र हरिस्तु शेते ॥ २१ ॥ आराधयामासुरतीव विष्णुं स्तुत्वा
वचोभिस्सुखदं हि मत्वा । निवेदयामासुरथो प्रसन्नं दुःखं स्वकीयं सकलं हि ते
ते ॥ २२ ॥ श्रुत्वा तदीयं सकलं हि दुःखं तुष्टो रमेशः प्रददौ वरांस्तु । उत्थाय
तस्माच्छयनादुपेन्द्रो निजानुरूपैर्विविधैर्वचोभिः ॥ २३ ॥ आश्वास्य देवानखिला-
न्मुनीन्वा उवाच वैश्वानरतुल्यतेजाः । दैत्यं हनिष्ये प्रसभं सुरेशाः प्रयात धामानि

जल, अग्नि और शत्रुके प्रहार इनमेंसे किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो ॥१६॥
देवता, दैत्य मुनि और सिद्ध इनमेंसे किसीसे मेरा मरण न हो, हे प्रजेश !
अधिक कहनेसे क्या ? स्वर्गमें, पृथिवीमें, दिनमें, रातमें, ऊपर वा नीचे आपके
रचे जीवोंसे मेरा वध न हो ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उसके
इस वचनको सुन, कमलयोनि ब्रह्माजीके मनमें दया आगई फिर उन्होंने मन
ही मन विष्णुको प्रणाम कर कहा, कि—हे दैत्येन्द्र ! मैं प्रसन्न हूँ, जा तुझे
सब वस्तुएँ प्राप्त होंगी ॥ १८ ॥ तुम छियानवे हजार वर्ष तक तप कर चुके
अब तप पूर्ण होचुका, अब तो तुम पूर्णकाम होकर दानवों पर राज्य करो,
ब्रह्माजीकी इस बातको सुन कर उस दैत्यका मुख प्रसन्न होगया ॥ १९ ॥
ब्रह्माजी जब इस प्रकार उसको राज्याभिषिक्त कर चुके, तब वह मदमत्त हो
युद्धमें सकल देवताओंको जीत, सकल धर्मोंका नाश कर त्रिलोकीको नष्ट
करनेका विचार करने लगा ॥ २० ॥ तब इन्द्र आदि सब देवता उस दैत्य-
वरके भयसे भाग खड़े हुए और पितामहकी आज्ञा पा, जहाँ हरि शयन करते
हैं उस क्षीरसमुद्रके तट पर पहुँचे ॥ २१ ॥ और विष्णुको अपना सुखदाता
समझ भगवान् विष्णुकी बड़ी स्तुति करने लगे, फिर जब वह प्रसन्न होगए,
तब सबने अपना अपना दुखड़ा उनसे रोया ॥ २२ ॥ उनकी सब दुःखभरी
बातोंको सुनकर उपेन्द्र उस अपने शयनसे उठे और प्रसन्न हो अपने अनुरूप
अनेक प्रकारके वचन कह देवताओंको वर दिये ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण देवता और
मुनियोंको ढाढ़स देनेके अनन्तर अग्निकी समान नेत्र वाले विष्णुने कहा, कि

निजानि तुष्टाः ॥ २४ ॥ श्रुत्वा रमेशस्य वचस्सुरेशाः शक्रादिकास्ते निखिला हि तुष्टाः । ययुः स्वधामानि हिरण्यनेत्रानुजं च मत्वा निहतं मुनीश ॥ २५ ॥ आश्रित्य रूपं जटिलं करालं दंष्ट्रायुधं तीक्ष्णनखं सुनासम् । सिंहं च नारं सुविदारितास्यं मार्तंडकोटिप्रतिमं सुघोरम् ॥ २६ ॥ युगान्तकालाग्निसमप्रभावं जगन्मयं किं बहुभिर्वचोभिः । अस्तं रवौ सोऽपि हि गच्छतीशो गतोऽसुराणां नगरीं महात्मा २७ कृत्वा च युद्धं प्रबलैस्स दैत्यैर्हत्वाथ तान्दैत्यगणान्गृहीत्वा । चक्राम तत्राद्भुतविक्रमश्च बभंज तांस्तानसुरान्नृसिंहः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वस्स दैत्यैरतुलप्रभावस्ते रेमिरे ते हि तथैव सर्वे । सिंहं च ते सर्वमयं निरीक्ष्य प्रह्लादनामा क्षितिजेन्द्रपुत्रः । उवाच राजानमयं मृगेन्द्रो जगन्मयः किं समुपागतश्च।२९। प्रह्लाद उवाच । एष प्रविष्टो भगवाननंतो नृसिंहमाश्रो नगरं त्वदंतः । निवृत्य युद्धाच्छरणं प्रयाहि पश्यामि सिंहस्य करालमूर्तिम् ॥ ३० ॥ यस्मान्न योद्धा भुवनत्रयेऽपि कुरुष्व राज्यं विनमन्मृगेन्द्रम् । श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचो दुरात्मा तमाह भीतोऽसि किमत्र पुत्र ॥३१॥ उक्त्वेति पुत्रं दितिजाधिनाथो दैत्यर्षभान्वीरवरान्स राजा । मृह्णंतु वै सिंहमुं

हे देवताओं ! मैं उस दैत्यको बलपूर्वक मार डालूँगा, तुम अब सन्तुष्ट हे.कर अपने २ धामोंको जाओ ॥ २४ ॥ हे मुनीश ! रमेशके इस वचनको सुन इन्द्र आदि सकल देवता परम प्रसन्न हुए और हिरण्याक्षके छोटे भाईको मरा हुआ समझ अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ २५ ॥ तदनन्तर महात्मा ईश विष्णु जटा वाले, कराल, डाढ़रूपी आयुध वाले, तीखे नख और सुन्दर नासिकासे युक्त, सिंह और मनुष्यके सम्मिलित आकार वाले, फटे हुए मुखके करोड़ों सूर्यकी समान, घोर, प्रलयकालीन अग्निकी समान प्रभाव वाले, अधिक बातों से क्या, जगत्की समस्त वस्तुओंसे भरे रूपको धारण कर सूर्यके अस्त होने पर असुरोंकी नगरीमें घुसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ और उन्होंने दैत्योंसे प्रबल युद्ध करके उन दैत्योंको पकड़ कर मार डाला, इस प्रकार वह अद्भुत पराक्रमी नृसिंह इधर उधर घूम कर असुरोंको मारने लगे ॥ २८ ॥ उन अतुल प्रभाव वाले नृसिंहको देख कर सब दैत्योंको क्रोध चढ़ा, दैत्येन्द्रके प्रह्लाद नामक पुत्र उस सर्वमय सिंहको देख कर राजासे कहने लगा, कि–यह सर्वमय क्या है ? २९ प्रह्लादने कहा, कि–यह भगवान् अनन्त ही नृसिंहका रूप धारण कर नगरमें तुम्हारे पास आये प्रतीत होते हैं, मुझे इन सिंहकी मूर्ति कराल लग रही है अतः तुम युद्धसे हट कर इनकी शरण लो ॥ ३० ॥ जिनसे अधिक योद्धा त्रिलोकीमें और कोई नहीं है, उन मृगेन्द्रको प्रणाम करके तुम राज्य भोगते रहो, अपने पुत्रके वचनको सुन कर उस दुरात्माने कहा, कि–अरे लड़के ! क्या तू डर गया ॥ ३१ ॥ अपने पुत्रसे इस प्रकार कह कर उस दैत्यराज

भवंतो वीरा विरूपभ्रुकुटीक्षणं तु ॥३२॥ तस्याज्ञया दैत्यवरास्ततस्ते ग्रहीतुकामा विविशुर्मृगेन्द्रम्। क्षणेन दग्धाश्शलभा इवाग्निं रूपाभिलाषात्प्रविविक्षवो वै ३३ दैत्येषु दग्धेष्वपि दैत्यराजश्चकार युद्धं स मृगाधिपेन। शस्त्रैस्समग्रैरखिलैस्तथास्त्रै-श्शक्त्यृष्टिपाशांकुशपावकाद्यैः ॥ ३४ ॥ संयुध्यतोरेव तयोर्जगाम ब्राह्मं दिनं व्यास हि शस्त्रपाण्योः। प्रवीरयोर्वीररवेण गर्जतोः परस्परं क्रोधसुयुक्तचेतसोः ॥ ३५ ॥ ततः स दैत्यस्सहसा बहूंश्च कृत्वा भुजाञ्छस्त्रयुतान्निरीक्ष्य। नृसिंहरूपं प्रययौ मृगेन्द्रं संयुध्यमानं सहसा समंतात् ॥ ३६ ॥ ततस्सुयुद्धं त्वतिदुस्सहं तु शस्त्रैस्स-मस्तैश्च तथाखिलास्त्रैः। कृत्वा महादैत्यवरो नृसिंहं स्वयं गतैश्शूलधरोऽभ्युपा-यात् ॥३७॥ ततो गृहीतस्स मृगाधिपेन भुजैरनेकैर्गिरिसारवद्भिः। निधाय जानौ स भुजांतरेषु नखांकुरैर्दानवमर्मभिद्भिः ॥ ३८ ॥ नखाग्रहृत्पद्ममसृग्विमिश्रमुत्पाद्य जीवाद्विगतः क्षणेन। त्यक्तस्तदानीं स तु काष्ठभूतः पुनः पुनश्चूर्णितसर्वगात्रः ३९ तस्मिन्हते देवरिपौ प्रसन्नः प्रह्लादमामंत्र्य कृतप्रणामम्। राज्येऽभिषिच्याद्भुतवीर्य-विष्णुस्ततः प्रयातो गतिमप्रतर्क्याम् ॥ ४० ॥ ततोऽतिहृष्टास्सकलास्सुरेशाः प्रणम्य

राजाने श्रेष्ठ २ वीर दैत्योंको आज्ञा दी, कि—आप वीर हैं, अतः इस बेडौल भौं और नेत्र वाले सिंहको पकड़ लो ॥ ३२ ॥ उसकी आज्ञासे श्रेष्ठ श्रेष्ठ दैत्य मृगेन्द्रको पकड़नेकी इच्छासे युद्धभूमिमें घुसे परन्तु रूपकी अभिलाषासे, जैसे भुनगे अग्निमें घुस कर भस्म होजाते हैं इसी प्रकार क्षणभरमें भस्म होगए ३३ दैत्योंके भस्म होने पर दैत्यराज मृगाधिपके साथ सकल अस्त्र, सम्पूर्ण शस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अङ्कुश, पावक आदिसे युद्ध करने लगे ॥३४॥ हे व्यास जी ! क्रोधमें भरे हुए चित्त वाले और वीरशब्दसे गर्जना कर युद्ध करते हुए उन दोनों शस्त्रपाणियोंको ब्राह्मदिन बीतनेको आगया ॥ ३५ ॥ तब वह दैत्य सहसा बहुतसी भुजा बना उनमें शस्त्र धारण कर, लड़ते हुए नृसिंहरूप मृगेंद्र की ओर देख सहसा झपटा ॥ ३६ ॥ और जब उसके समस्त अस्त्र शस्त्र युद्ध करते २ समाप्त होगए, तब वह महादैत्य शूल लेकर नृसिंह पर झपटा ३७ उस समय मृगराजने अपनी लोहेकी समान अनेक भुजाओंसे उसको पकड़ लिया और घुटनों पर दानवके मर्मको बींधने वाले नाखूनोंसे उसके रक्तमिश्रित हृदयकमलको उखाड़ लिया, तब वह क्षणभरमें ही मर गया, तदनन्तर जिसके समस्त अंगोंका चूरा चूरा होगया है ऐसे उस काठ (की समान अकड़े हुए) को उन्होंने त्याग दिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उस देवशत्रुके मारे जाने पर विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रह्लादको बुलाया प्रह्लादने आकर उनको प्रणाम किया, तब वह अद्भुत वीर्यवाले विष्णु प्रह्लादका राज्य पर अभिषेक कर अपनी अप्रतर्क्य गतिको प्राप्त होगए ॥ ४० ॥ हे विप्र ! तब ब्रह्मा आदि सब देवता

विष्णुं दिशि विप्र तस्याम् । ययुः स्वधामानि पितामहाद्याः कृतस्वकार्यं भगवंतमीड्यम् ॥ ४१ ॥ प्रवर्णितं त्वंधकजन्म रुद्राद्धिरण्यनेत्रस्य मृतिर्वराहात् । नृसिंहतस्तत्सहजस्य नाशः प्रल्हादराज्याप्तिरिति प्रसंगात् ॥४२॥ शृणु त्विदानीं द्विजवर्य मत्तोऽधकप्रभावं भवकृत्प्रलब्धम् । हरेण युद्धं खलु तस्य पश्चाद्गणाधिपत्यं गिरिशस्य तस्य ॥ ४३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे गणाधिपत्यप्राप्त्यंधकजन्महिरण्यनेत्रहिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

सनत्कुमार उवाच। ततो हिरण्याक्षसुतः कदाचित्संश्राविता नमयुतैर्मदांधैः। तैर्भ्रातृभिस्संप्रयुनो विहारे किमंध राज्येन तवाद्य कार्यम् ॥ १ ॥ हिरण्यनेत्रस्तु बभूव मूढः कलिप्रियं नेत्रविहीनमेव । यो लब्धवांस्त्वां विकृतं विरूपं घोरैस्तपोभिर्गिरिशं प्रसाद्य ॥ २ ॥ स त्वं न भागी खलु राज्यकस्य किमन्यजातोऽपि लभेत राज्यम् । विचार्यतां तद्भवतैव नूनं वयं तु तद्भागिन एव सत्यम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । तेषां तु वाक्यानि निशम्य तानि विचार्य बुध्या स्वयमेव दीनः । तान्सांत्वयित्वा विविधैर्वचोभिर्गतस्त्वरण्यं निशि निर्जनं तु ॥ ४ ॥ वर्षायुतं तत्र तपश्चचार जजाप जाप्यं विधृतैकपादः । आहारहीनो नियमोद्ध्र्वबाहुः कर्तुं न

अपना कार्य करने वाले पूजनीय भगवान् विष्णुको उस दिशामें प्रणाम कर अपने २ धामको चले गए ॥ ४१ ॥ मैंने प्रसंगवश तुमसे रुद्रसे अन्धकका जन्म, वराहावतारसे हिरण्याक्षका वध, नृसिंह भगवान्से उसके भाईका नाश और प्रल्हादको राज्य प्राप्त होना कह दिया ॥ ४२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अब तुम शिवजीकी कृपासे प्राप्त हुए अन्धकके प्रभावको मुझसे सुनो उसने हरसे जो युद्ध किया था उसको सुनो, तथा वह फिर किस प्रकार शिवका गणाध्यक्ष बना था, उसको सुनो ॥ ४३ ॥ तैतीलीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—एक समय विहारकालमें कामासक्त मदान्ध भाइयोंने हिरण्याक्षके पुत्रसे कहा, कि—अरे अन्धे ! तुझे राज्यसे क्या काम ? ।१। हिरण्याक्ष तो मूढ़ था जो उसने बड़े घोर तपसे शिवको प्रसन्न कर तुझसा बेडौल कलिप्रिय अन्धा पुत्र पाया ॥ २ ॥ तू राज्यका हिस्सेदार नहीं हो सकता, क्या दूसरेसे उत्पन्न हुआ भी राज्यको पा सकता है ? तू अपने आप ही विचार कर, इस राज्यके भागी तो हम ही हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उनके वचनोंको सुन कर उसने विचार किया और विचार करके बड़ा दीन हुआ, फिर अनेक प्रकारके वचनोंसे उनको शांत कर रात्रिके समय निर्जन वनमें चला गया ॥ ४ ॥ तदनन्तर उसने देवता और असुरोंसे भी न होसकने वाले तपको करना आरम्भ किया, उसने भोजन करना छोड़ दिया,

शक्यं हि सुरासुरैर्दत् ॥ ५ ॥ प्रज्वाल्य वह्निं स्म जुहोति गात्रमांसं सरक्तं खलु वर्षमात्रम् । तीक्ष्णेन शस्त्रेण निकृत्य देहात्समंत्रकं प्रत्यहमेव हुत्वा ॥ ६ ॥ स्नाय्वस्थिशेषं कुणपं तदासौ क्षयं गतं शोणितमेव सर्वम् । यदास्य मांसानि न संति देहे प्रक्षेप्तुकामस्तु हुताशनाय ॥ ७ ॥ ततः स दृष्ट्वस्त्रिदशालयैर्जनैः सुविस्मितैर्भीतियुतैस्समस्तैः । अथामरैश्शीघ्रतरं प्रसादितो बभूव धाता नुतिभिर्नुतो हि ॥ ८ ॥ निवारयित्वाथ पितामहस्तं ह्युवाच त्वं चाद्य वरं वृणीष्व । यस्याभिकामस्तव सर्वलोके सुदुर्लभं दानव तं गृहाण ॥ ९ ॥ स पद्मयोनेस्तु वचो निशम्य प्रोवाच दीनः प्रणतस्तु दैत्यः । यैर्निष्ठुरैर्मे प्रहृतं तु राज्यं प्रल्हादमुख्या मम संतु भृत्याः ॥१०॥ अंधस्य दिव्यं हि तथास्तु चक्षुरिन्द्रादयो मे करदा भवंतु । मृत्युस्तु माभून्मम देवदैत्यगंधर्वयक्षोरगमानुषेभ्यः ॥ ११ ॥ नारायणाद्वा दितिजेन्द्रशत्रोस्सर्वाज्जनात्सर्वमयाच्च शर्वात् । श्रुत्वा वचस्तस्य सुदारुणं तत्सुशंकितः पद्मभवस्तमाह १२ ब्रह्मोवाच । दैत्यैन्द्र सर्वं भविता तदेतद्विनाशहेतुं च गृहाण किंचित् । यस्मान्न जातो न जनिष्यते वा यो न प्रविष्टो मुखमंतकस्य ॥ १३ ॥ अत्यन्तदीर्घं खलु

ऊपरको भुजा उठा ली, एक पैरसे खड़ा होगया और दश हजार वर्ष तक जप करता रहा ॥५॥ फिर वह वर्ष भरमें अग्निको प्रज्वलित कर अपने रक्त और मांसका होम करने लगा, फिर प्रतिदिन मन्त्रपूर्वक शस्त्रसे मांसको काट कर होमने लगा ॥ ६ ॥ फिर जब उसके शरीरमें नसें और हड्डियें ही बाकी रह गईं, सारा रक्त समाप्त होगया, शरीरमें मांसका नाम भी न रहा, तब उसने अग्निमें अपने शरीरको फेंकना चाहा ॥ ७ ॥ तब स्वर्गवासी देवता इस दृश्य से विस्मित और भयभीत हुए और उन्होंने शीघ्र ही स्तुति करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजीने उसको शरीर होमनेसे रोक कर कहा, कि–हे दानव ! तुम वर माँगो, सब लोकोंमें दुर्लभ जिस वरको तुम्हारी माँगने की इच्छा हो उस दुर्लभ वरको माँगो ॥९॥ कमलयोनि ब्रह्माजीके इस वचन को सुन कर वह दैत्य नम्रता और दीनतापूर्वक कहने लगा, कि–जिन निष्ठुर प्रह्लाद आदिने मेरा राज्य छीन लिया है, वे मेरे भृत्य बन जावें ॥ १० ॥ मुझ अन्धेको दिव्य नेत्र मिले, इन्द्र आदि मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, मनुष्य, राक्षसोंके शत्रु नारायण, सर्वमय शङ्कर तथा और सबसे भी मेरी मृत्यु न हो, उसके इस दारुण वचनको सुन कर ब्रह्माजी सहम उठे और कहने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे दैत्येंद्र ! ये सब बातें होजावेंगी, परन्तु किसी विनाशके हेतुको भी स्वीकार करो, क्योंकि ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ है और न होगा जो यमराजके मुखमें जानेसे बचे ॥ १३ ॥ तुमसे सत्पुरुषोंको तो बहुत लम्बे जीवनका विचार त्याग देना

जीवितं तु भवादृशास्सत्पुरुषास्त्यजंतु । एतद्वचस्सानुनयं निशम्य पितामहात्प्राह पुनस्स दैत्यः ॥१४॥ अंधक उवाच । कालत्रये याश्च भवंति नार्यः श्रेष्ठाश्च मध्याश्च तथा कनिष्ठाः । तासां च मध्ये खलु रत्नभूता ममापि नित्यं जननीव काचित् १५ कायेन वाचा मनसाप्यगम्या नारी नृलोकस्य च दुर्लभा या। तां कामयानस्य ममास्तु नाशो दैत्येन्द्रभावाद्भगवान्स्वयंभूः ॥ १६ ॥ वाक्यं तदाकर्ण्य स पद्मयोनिः सुविस्मितश्शंकरपादपद्मम् । सस्मार संप्राप्य निदेशमाशु शंभोस्तु तं प्राह ततोऽधकं वै ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच । यत्कांक्षसे दैत्यवरास्तु ते वै सर्वं भवत्येव वचस्तथा मम् । उत्तिष्ठ दैत्येन्द्र लभस्व कामं सदैव वीरैस्तु कुरुष्व युद्धम् ॥ १८ ॥ श्रुत्वा तदेतद्वचनं मुनीश विधातुराशु प्रणिपत्य भक्त्या । लोकेश्वरं हाटकनेत्रपुत्रः स्नाय्वस्थिशेषस्तु तमाह देवम् ॥ १९ ॥ अंधक उवाच । कथं विभो वैरिबलं प्रविश्य ह्यनेन देहेन करोमि युद्धम् । स्नाय्वस्थिशेषं कुरु मांसपुष्टं करेण पुण्येन च मां स्पृशाद्य २० सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वा वचस्तस्य स पद्मयोनिः करेण संस्पृश्य च तच्छरीरम् । गतस्सुरेन्द्रैस्सहितः स्वधाम संपूज्यमानो मुनिसिद्धसंघैः ॥ २१ ॥ संस्पृष्टमात्रस्स च दैत्यराजस्सम्पूर्णदेहो बलवान्बभूव । संजातनेत्रस्सुभगो बभूव ह्यष्टस्तथैवं नगरं

चाहिये । ब्रह्माजीके इस अनुनय भरे वचनको सुन कर वह दैत्यराज फिर बोला ॥ १४ ॥ अन्धकने कहा, कि–भूत भविष्यत् और वर्तमानमें जो श्रेष्ठ मध्य और कनिष्ठ नारियें हैं उनमेंसे कोई रत्नभूत रमणी मेरी भी जननी होगी ॥ १५ ॥ मन वाणी और शरीरसे अगम्य और नृलोकमें दुर्लभ उस नारीकी कामना करते समय मेरा नाश हो, स्वयम्भू भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा उसके इस वचनको सुन उसके दैत्येन्द्रभावसे बड़े विस्मत हुए, फिर उन्होंने शङ्करके चरणोंका स्मरण करके शंकरसे आज्ञा पा अंधकसे कहा ॥१६।१७॥ ब्रह्माजीने कहा, कि –हे दैत्यवर ! तुम जो कुछ चाहते हो, तुम्हारे वह सब वचन सफल होंगे, हे दैत्येन्द्र ! तुम अपनी कामनाओंको पाओ, उठो ! उठो !! और वीरोंके साथ सदा युद्ध करते रहो ॥ १८ ॥ हे मुनीश ! विधाताके इस वचनको सुन, नसें और हड्डीमात्र बचे हुए हिरण्याक्षके पुत्रने लोकेश्वर ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक दण्डवत् कर यह बात कही ॥ १९ ॥ अंधकने कहा, कि—हे विभो ! मैं अपने नसें और हड्डीमात्र बचे हुए शरीरसे शत्रुओंकी सेनामें किस प्रकार घुस कर युद्ध कर सकूँगा, अतः आप अपने पवित्र हाथका स्पर्श कर मेरे शरीरको मांससे पुष्ट करिये ॥ २० ॥ सनत्कुमारने कहा, कि–उसके इस वचनको सुन ब्रह्माजी उसके शरीरको अपने हाथसे स्पर्श कर देवता इन्द्र मुनि और सिद्धोंसे प्रशंसा पाते हुए अपने धामको चले गए ॥२१॥ इधर ब्रह्माजीके छूते ही उस दैत्यराजका देह पूर्ण होगया तथा वह बली होगया और नेत्र

विवेश ॥ २२ ॥ उत्सृज्य राज्यं सकलं च तस्मै प्रह्लादमुख्यास्त्वथ दानवेन्द्राः । समागतं लब्धवरं च मत्वा भृत्या बभूवुर्वशगास्तु तस्य ॥ २३ ॥ ततोऽन्धकः स्वर्गमगाद्विजेतुं सेनाभियुक्तस्सहभृत्यवर्गः । विजित्य लेखान्प्रधने समस्तान्करप्रदं वज्रधरं चकार ॥ २४ ॥ नागान्सुपर्णान्वरराक्षसांश्च गंधर्वयक्षानपि मानुषांस्तु । गिरीन्द्रवृक्षान्समरेषु सर्वांश्चतुष्पदः सिंहमुखान्विजिग्ये ॥२५॥ त्रैलोक्यमेतद्धि चराचरं वै वशं चकारात्मनि संनियोज्य । ततोऽनुकूलानि सुदर्शनानि नारीसहस्राणि बहूनि गत्वा ॥२६॥ रसातले चैव तथा धरायां त्रिविष्टपे याः प्रमदाः सुरूपाः । ताभिर्युतोऽन्येषु स पर्वतेषु रराम रम्येषु नदीतटेषु ॥२७॥ क्रीडायमानस्स तु मध्यवर्ती तासां प्रहर्षादथ दानवेन्द्रः । तत्पीतशिष्टानि पिबन्प्रवृत्त्यै दिव्यानि पेयानि सुमानुषाणि ।२८। अन्यानि दिव्यानि तु यद्रसानि फलानि मूलानि सुगंधवंति । संप्राप्यमानानि सुवाहनानि मयेन सृष्टानि गृहोत्तमानि ॥ २९ ॥ पुष्पार्घधूपान्नविलेपनैश्च सुशोभितान्यद्भुतदर्शनैश्च । संक्रीडमानस्य गतानि तस्य वर्षायुतानीह तथांधकस्य ॥३०॥ जानाति किंचिन्न शुभं परत्र यदात्मनस्सौख्यकरं भवेद्धि । सदान्धको दैत्यवरस्स मूढो मदांधबुद्धिः कृतदुष्टसंगः ॥ ३१ ॥ ततः प्रमत्तस्तु सुतान्प्रधाना-

होनेसे वह सुन्दर दीखने लगा, अतः प्रसन्न होता हुआ अपने नगरमें घुसा २२ उधर प्रह्लाद आदि दानवेन्द्रोंने उसको जब वर पाकर आते हुए सुना तो वे सब उसको अपना राज्य अर्पण कर उसके वशीभूत होगए ॥ २३ ॥ तदनन्तर अंधक सेना और भृत्योंको साथ ले स्वर्गको जीतनेके लिये चला और उसने समस्त देवताओंको युद्धमें जीत कर इन्द्रको खिराज़ (कर) देने वाला बना दिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर उसने अनेक युद्ध कर नाग, पक्षी, श्रेष्ठ २ राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, बड़े २ पर्वत, वृक्ष, चौपाये सिंह आदिको भी अपने वशमें कर लिया ॥ २५ ॥ इस प्रकार उसने चराचर त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया, फिर रसातल पृथ्वी और स्वर्गमें जितनी सुन्दर स्त्रियें थीं, उनमेंसे हजारों दर्शनीय योग्य स्त्रियोंका संग्रह कर उनके साथ पर्वतोंके शिखरों पर और नदियोंके रमणीय तटों पर रमण करने लगा ॥२६॥२७॥ वह दानवेन्द्र उनके बीचमें क्रीड़ा करता हुआ हर्षमें भर उन रमणियोंको हर्षित करनेके लिये उनके पीनेसे बचे हुए दिव्य और मानुषी शर्बतोंको पीने लगा २८ इसी प्रकार दूसरे दिव्य रस, सुगन्धित फल मूल, मयके रचे हुए उत्तम घर सवारियें, पुष्प अन्न धूप अर्घ और दर्शनीय अद्भुत चन्दनोंसे क्रीड़ा करते २ अंधकको दश हजार वर्ष बीत गए ॥ २९ ॥ ३० ॥ मदसे अंधबुद्धि वाला वह दैत्यश्रेष्ठ दुष्टोंके संगमें पड़ कर, परलोकमें आत्माको सुख देने वाला भी कोई कर्म करना चाहिये, इसको भूल ही गया, इस प्रकार वह अंधक मोहमें पड़

न्कुतर्कवादैरभिभूय सर्वान्। चचार दैत्यैस्सहितो महात्मा विनाशयन्वैदिकसर्वधर्मान् ॥३२॥ वेदान्द्विजान्वित्तमदाभिभूतो न मन्यते स्माप्यमरान्गुरूंश्च। रेमे तथा दैवगतो हतायुः स्वैरैरहोभिर्गमयन्वयश्च ॥ ३३ ॥ ततः कदाचिद्गतवान्ससैन्यो बहुप्रयाता पृथिवीतलेऽस्मिन्। अनेकसंख्या अपि वर्षकोट्यः प्रहर्षितो मंदरपर्वतं तु ३४ स्वर्णोपमां तत्र निरीक्ष्य शोभां बभ्राम सैन्यैस्सह मानमत्तः। क्रीडार्थमासाद्य च तं गिरीन्द्रं मतिं स वासाय चकार मोहात्॥ ३५ ॥ शुभं दृढं तत्र पुरं स कृत्वा मुदास्थितो दैत्यपतिः प्रभावात्। निवेशयामास पुनः क्रमेण अत्यद्भुतं मन्दरशैलसानौ ॥३६॥ दुर्योधनो वैधसहस्तिसंज्ञौ तन्मन्त्रिणो दानवसत्तमस्य। ते वै कदाचिद्गिरिसुस्थले हि नारीं सुरूपां ददृशुस्त्रयोऽपि ॥ ३७ ॥ ते शीघ्रगा दैत्यवरास्तु हर्षाद् द्रुतं महादैत्यपतिं समेत्य॥ ऊचुर्यथादृष्टमतीव प्रीत्या तथान्धकं वीरवरं हि सर्वे ॥ ३८ ॥ मंत्रिण ऊचुः। गुहांतरे ध्याननिमीलिताक्षो दैत्येन्द्र कश्चिन्मुनिरत्र दृष्टः। रूपान्वितश्चन्द्रकलार्द्धचूडः कटिस्थले बद्धगजेन्द्रकृत्तिः ॥ ३९ ॥ नागेन्द्रभोगावृतसर्वगात्रः कपालमालाभरणो जटालः। स शूलहस्तश्शरतूणधारी महाधनु-

---

गया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मदमें भर कर वह महात्मा दैत्य अपने प्रधान २ पुत्रोंको कुतर्कोंसे दबा कर सकल वैदिक धर्मोंका नाश करता हुआ विचरण करने लगा ॥ ३२ ॥ वह धनके मदमें भर वेद द्विज देवता और गुरु किसीको भी नहीं मानता था और प्रारब्धवश आयुके पूर्ण होजाने पर स्वेच्छाचारमें अपनी आयु बिता रहा था ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उसको पृथिवीतलमें बहुतसे करोड़ों वर्ष बीत गए, फिर वह एक समय अपनी सेनाको ले हर्षमें भर मन्दराचलकी ओर चला ॥ ३४ ॥ वहाँ बड़ी भारी सुवर्णोपम शोभाको देख मानसे मत्त हो वह अपने सैनिकोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ तहाँ भ्रमण करने लगा, फिर उसने मोहवश उस पर्वतराज पर रहनेका विचार किया ॥ ३५ ॥ फिर वह दैत्यपति अपने प्रभावसे उस पर्वतके शिखर पर एक शुभ दृढ परमाद्भुत नगरको बसा कर आनन्दपूर्वक तहाँ रहने लगा ॥३६॥ एक समय उस दानवश्रेष्ठके दुर्योधन वैधस और हस्ती इन तीन मन्त्रियोंने उस पर्वतके एक सुन्दर स्थानमें सुन्दर रूप वाली एक नारीको देखा ॥ ३७ ॥ तब वे दैत्यश्रेष्ठ हर्षमें भर शीघ्रतासे महादैत्यपतिके पास पहुँचे और वीरवर अंधकसे प्रीतिपूर्वक देखी हुई घटनाका वर्णन करने लगे ॥ ३८ ॥ मन्त्रियोंने कहा, कि—हे दैत्येन्द्र ! हमने गुफाके भीतर एक मुनिको देखा, वह ध्यानमें होनेके कारण नेत्रोंको मीच रहा है, उसकी कमरमें गजेन्द्रकी खाल बँध रही है और उस रूपवान्के मस्तक पर चन्द्रमाकी कला है ॥ ३९ ॥ सर्पोंने उसके सारे शरीरको लपेट रखा है, मनुष्योंकी खोपड़ियोंकी मालाका उसके पास गहना है और उसके

श्चान्विवृताक्षसूत्रः ।४०। खड्गी त्रिशूली लकुटी कपर्दी चतुर्भुजो गौरतराकृतिर्हि ।
भस्मानुलिप्तो विलसत्सुतेजास्तपस्विवर्योऽद्भुतसर्ववेषः ॥ ४१ ॥ तस्याविदूरे पुरुषश्च
दृष्टस्स वानरो घोरमुखः करालः । सर्वायुधो रूक्षकरश्च रक्षन्स्थितो जरच्छोवृषभश्च
शुक्लः ॥ ४२ ॥ तस्योपविष्टस्य तपस्विनोऽपि सुचारुरूपा तरुणी मनोज्ञा ।
नारी शुभा पार्श्वगता हि तस्य दृष्टा च काचिद्भुवि रत्नभूता ॥ ४३ ॥ प्रवालमुक्ता-
मणिहेमरत्नवस्त्रावृता माल्यशुभोपगूढा । सा येन दृष्टा स च दृष्टिमान्स्यात् दृष्टेन
चान्येन किमत्र कार्यम् ॥ ४४ ॥ मान्या महेशस्य च दिव्यनारी भार्या मुनेः पुण्य-
वतः प्रिया सा । योग्या हि द्रष्टुं भवतश्च सम्यगानाय्य दैत्येन्द्र सुरत्नभोक्तः ।४५।
सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वेति तेषां वचनानि तानि कामातुरो घूर्णितसर्वगात्रः ।
विसर्जयामास मुनेस्सकाशं दुर्योधनादीन्सहसा स दैत्यः ॥ ४६ ॥ आसाद्य ते तं
मुनिमप्रमेयं बृहद्व्रतं मन्त्रिवरा हि तस्य । सुराजनीतिप्रवणा मुनीश प्रणम्य तं

बड़ी २ जटायें हैं, उसके हाथमें शूल है तथा पासमें बाण और भाथा है, तथा एक बड़ा भारी धनुष भी है और अक्षसूत्र भी उसके पास है ॥ ४० ॥ उसके पास खड्ग त्रिशूल लकड़ी और बड़ी २ जटायें हैं, चार भुजाए हैं और उसकी आकृति बड़ी गोरी है, शरीर पर भस्म रमी हुई है, तेजके कारण वह दमक रहा है, इस प्रकार उस श्रेष्ठ तपस्वीका सारा वेष ही अद्भुत है ॥ ४१ ॥ उसके पासमें ही एक पुरुष और है वह बन्दरसा है उसका मुख बड़ा कराल और घोर है, उसके पास सब आयुध हैं, किंतु उसके हाथ बड़े रूखे हैं, वह उस योगीकी रक्षा कर रहा है और उस जोगीके पास एक बुड्ढा सफेद बैल बैठा हुआ है ॥ ४२ ॥ और उस बैठे हुए तपस्वीकी एक करवटमें हमने एक शुभ स्त्रीको बैठे हुए देखा, उसका रूप बड़ा ही सुन्दर है वह तरुणी होनेके कारण मनको हरे लेती है, वह पृथिवीमें रत्नरूप है ॥ ४३ ॥ वह मूँगे मोती मणि सुवर्ण रत्न और वस्त्रोंसे अलंकृत है और शुभ मालाएँ उसका आलिंगन कर रही हैं, उस स्त्रीको जो देख लेता है, उसको नेत्र वाला होनेका फल मिल जाता है, इस लोकमें उसको और वस्तुओंको देखनेका कुछ प्रयोजन नहीं रहता ॥ ४४ ॥ वह दिव्य नारी पुण्यात्मा मुनि महेशकी मान्य प्रिया है, हे दैत्येन्द्र ! हे सुन्दर रत्नोंका उपभोग करने वाले ! उसको लाकर आप भी उसको भली प्रकार देखें, वह ऐसी ही योग्य है ॥४५॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-अपने मन्त्रियोंकी ऐसी बातें सुन कर अंधक कामातुर होगया, उसका सारा शरीर घूमने लगा, अतः उस दैत्यने सहसा दुर्योधन आदिको उन मुनिके पास भेजा ॥ ४६ ॥ उसके श्रेष्ठ मन्त्रियोंने उन अप्रमेय मुनिके पास पहुँच

दैत्यनिदेशमाहुः ॥ ४७ ॥ मन्त्रिण ऊचुः । हिरण्यनेत्रस्य सुतो महात्मा दैत्याधिराधिराजोऽन्धकनामधेयः। त्रैलोक्यनाथो भवकृन्निदेशादिहोपविष्टोऽद्य विहारशाली तन्मिन्त्रणो वै वयमङ्ग वीरास्तथोपकण्ठं च समागताः स्म। तत्प्रेषितास्त्वां यदुवाच तद्वै शृणुष्व संदत्तमनास्तपस्विन् ॥ ४९ ॥ त्वं कस्य पुत्रोऽसि किमर्थमत्र सुखोपविष्टो मुनिवर्य धीमन्। तस्येयमीदक्तरुणी सुरूपा देया शुभा दैत्यपतेर्मुनीन्द्र ॥५०॥ क्वेदं शरीरं तव भस्मदिग्धं कपालमालाभरणं विरूपम्। तूणीरसत्कार्मुकबाणखड्गभुशुण्डिशूलाशनितोमराणि ॥ ५१ ॥ क जाह्नवी पुण्यतमा जटाग्रे कार्यं शशी वा कुणपास्थिखण्डम्। विषानलो दीर्घमुखः क सर्पः क सङ्गमः पीनपयोधरायाः ॥ ५२ ॥ जरद्गवारोहणमप्रशस्तं क्षमावतस्तस्य न दर्शनं च। सन्ध्याप्रणामः क्वचिदेष धर्मः क भोजनं लोकविरुद्धमेतत् ॥५३॥ प्रयच्छ नारीं मम सान्त्वपूर्वं स्त्रिया तपः किं कुरुषे विमूढ। अयुक्तमेतत्त्व य नानुरूपं यस्मादहं रत्नपतिस्त्रिलोके ॥५४॥ विमुञ्च शस्त्राणि मयाद्य चोक्तः कुरुष्व पश्चात्तप एव शुद्धम्। उल्लंघ्य

कर राजनीतिमें प्रवीण होनेके कारण उन विशाल व्रत वाले मुनीशको प्रणाम कर दैत्यकी आज्ञा सुनानी आरम्भ की ।। ४७ ।। मन्त्रियोंने कहा, कि—हिरण्याक्षके दैत्यराज महात्मा पुत्रका नाम अंधक है, वह त्रिलोकीके स्वामी हैं और संसारको रचने वाले ब्रह्माजीकी आज्ञासे ही वह विहार करते हुए आगए हैं ४८ हम उनके मन्त्री हैं और उनके भेजने पर आपके पास आये हैं, हे तपस्विन्! उन्होंने जो कुछ कहा है उसको आप ध्यान लगा कर सुनिये ।। ४९ ।। हे बुद्धिमान् मुनिवर्य! आप किसके पुत्र हैं और यहाँ पर किस लिये सुखपूर्वक बैठे हुए हैं, हे मुनीन्द्र! उन दैत्यपतिको तुम यह सुन्दर रूप वाली शुभ तरुणी देदो ।। ५० ।। कहाँ तो तुम्हारा यह भस्म रमा हुआ, खोपड़ियोंके मालाके गहनोंसे विभूषित बेडौल शरीर और भाथे, धनुष, बाण, खड्ग भुशुण्डी, शूल, वज्र तथा तोमर ।। ५१ ।। और कहाँ यह जटाओंके अग्रभागमें पवित्र गङ्गा, कहाँ यह चन्द्रमा और कहाँ ये लहाशकी हड्डियोंके टुकड़े, कहाँ यह लम्बे मुखका विषकी फुंकारें भरने वाला सर्प और कहाँ इस स्थूल स्तनों वाली स्त्रीका संग ५२ कहाँ बुड्ढे बैल पर खोटी सवारी, ऐसे क्षमा वालेका तो दर्शन भी नहीं करना चाहिये, संध्याके समय प्रणाम यह कहाँका धर्म है और कहाँ यह लोकविरुद्ध भोजन ।। ५३ ।। अरे मूढ़! तू स्त्रीको साथमें रख कर कैसा तप कर रहा है अतः तू समझौते ही समझौतेमें अपनी स्त्री मुझे देदे, तेरे पास स्त्रीका रहना ठीक भी नहीं है, क्योंकि—त्रिलोकीमें रत्नोंका स्वामी तो मैं हूँ अतः यह तो मेरे ही योग्य है ।। ५४ ।। तू मेरे कहनेसे शस्त्रोंको त्याग कर शुद्ध तप ही

मच्छासनमप्रधृष्यं विमोक्ष्यसे सर्वमिदं शरीरम् ॥५५॥ मत्वांधकं दुष्टमतिं प्रधानो महेश्वरो लौकिकभावशीलः । प्रोवाच दैत्यं स्मितपूर्वमेवमाकर्ण्य सर्वं त्वथ दूतवाक्यम् ॥५६॥ शिव उवाच । यद्यस्मि रुद्रस्तव किं मया स्यात् किमर्थमेवं वदसीति मिथ्या । शृणु प्रभावं मम दैत्यनाथ न्याय्यं न वक्तुं वचनं त्वयैवम् ५७ नाहं क्वचित्स्वं पितरं स्मरामि गुहांतरे घोरमनन्यचीर्णम् । एतद् व्रतं पाशुपतं चरामि न मातरं त्वज्ञतमो विरूपः ॥५८॥ अमूलमेतन्मयि तु प्रसिद्धं सुदुस्त्यजं सर्वमिदं ममास्ति । भार्या ममेयं तरुणी सुरूपा सर्वंसहा सर्वगतस्य सिद्धिः ५९ एतर्हि यद्यद्रुचितं तवास्ति गृहाण तद्वै खलु राक्षस त्वम् । एतावदुक्त्वा विरराम शंभुस्तपस्विवेषः पुरतस्तु तेषाम् ॥ ६० ॥ सनत्कुमार उवाच । गंभीरमेतद्वचनं निशम्य ते दानवास्तं प्रणिपत्य मूर्द्धर्ना । जग्मुस्ततो दैत्यवरस्य सूनुं त्रैलोक्यनाशाय कृतप्रतिज्ञम् ॥ ६१ ॥ बभाषिरे दैत्यपतिं प्रमत्तं प्रणम्य राजानमदीनसत्त्वाः । ते तत्र सर्वे जयशब्दपूर्वं रुद्रेण यत्तत्स्मितपूर्वमुक्तम् ॥६२॥ मंत्रिण ऊचुः । निशा-

---

तप, यदि तू मेरी आज्ञाको न मानेगा, तो शरीर और सकल प्रपञ्चसे तुझे हाथ धोना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ दूतकी सारी बातोंको सुन शंभुने अंधककी बुद्धिको दूषित हुई समझा फिर सांसारिक लीला करनेके स्वभाव वाले शम्भु मुस्करा कर दैत्यसे यह बात कहने लगे ॥ ५६ ॥ शिवजीने कहा, कि-मैं रुद्र हूँ, तेरा मुझसे क्या बिगड़ सकता है ? परन्तु तू ऐसी मिथ्या बातें क्यों बना रहा है, हे दैत्यनाथ ! तू मेरे प्रभावको सुन, पहिले तो तुझे ऐसी अन्यायभरी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ ५७ ॥ मेरा पिता कौन है, यह मुझे स्मरण नहीं आता और न मैं अपनी माताको जानता हूँ, मैं तो जिसके माता पिताका कुछ भी पता नहीं है ऐसा अज्ञ और विरूप (बेडौल रूप वाला) हूँ और यहाँ गुफाके भीतर जिस व्रतको कोई नहीं करता है, उस पाशुपत व्रतका पालन कर रहा हूँ ॥५८॥ यह मेरी भार्या तरुणी है, सुन्दर रूप वाली है, सब कुछ सह लेती है, और सब में सिद्धिके रूपमें विराजमान है यह जो सब तू मेरे पास देख रहा है, यह कहाँ से आया इसका कुछ पता नहीं है, कि कहाँसे आया, परन्तु इनमेंसे किसीको छोड़ना मेरे लिये कठिन है, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ५९ ॥ इनमेंसे जो तुझे अच्छा लगे, उसको तू ग्रहण कर ले, क्योंकि—तू राक्षस है उनके सामने इस प्रकार कहकर तपस्वियोंका वेष धारण करनेवाले शंभु चुप होगए ॥ ६० ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उन दानवोंने शम्भुके इन गम्भीर वचनोंको सुन उनको शिर झुका कर प्रणाम किया, फिर त्रिलोकीका नाश करनेकी जिसने प्रतिज्ञा की थी उस दैत्यकुमारके पासको चल दिये ६१ उन उदार मन वालोंने जय जय करके प्रमत्त दैत्यपतिको प्रणाम किया और फिर शंकरने जो बातें मुस्कुरा

चरश्चंचलशौर्यधैर्यः क्व दानवः कृपणस्सत्त्वहीनः। क्रूरः कृतघ्नश्च सदैव पापी क्व दानवः सूर्यसुताद्बिभेति ॥ ६३ ॥ राजंस्त्वमुकोऽखिलदैत्यनाथ तपस्विना तन्मुनिना विहस्य। मत्वा स्वबुद्ध्या तृणवत्त्रिलोकं महौजसा वीरवरेण नूनम् ६४ क्वाहं च शस्त्राणि च दारुणानि मृत्योश्च सत्रासकरं क्व युद्धम्। क्व वीरको वानरवक्त्रतुल्यो निशाचरो जरसा जर्जरांगः ॥ ६५ ॥ क्वायं स्वरूपः क्व च मन्दभाग्यो बलं त्वदीयं क च वीरघो वा। शक्तोऽपि चेत्त्वं प्रयतस्व युद्धं कर्तुं तदा ह्येहि कुरुष्व किंचित् ॥ ६६ ॥ वज्राशनेस्तुल्यमिहास्ति शस्त्रं भवादृशां नाशकरं च घोरम्। क्व ते शरीरं मृदुपद्मतुल्यं विचार्य चैवं कुरु रोचते यत् ॥ ६७ ॥ मंत्रिण ऊचुः। इत्येवमादीनि वचांसि भद्रे तपस्विनोक्तानि च दानवेश। युक्तं न ते तेन सहात्र युद्धं त्वामाह राजन् स्मयमान एव ॥ ६८ ॥ विचस्तुशल्यैर्बहुभिः प्रलापैरस्माभिरुक्तैर्यदि बुध्यसे त्वम्। तपाभियुक्तेन तपस्विना वै स्मर्तासि पश्चान्मुनिस्वाक्यमेतत् ॥ ६९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततस्स तेषां वचनं निशम्य जज्वाल रोषेण स मन्दबुद्धिः। आज्यावसिक्तास्त्विव कृष्णवर्मा सत्यं हितं तत्कुटिलं सुती-

कर कहीं थी, वे सब कहने लगे ॥ ६२ ॥ मन्त्रियोंने कहा, कि—उन महाबलवान् वीरवर तपस्वी मुनिने अपनी बुद्धिसे त्रिलोकीको तिनकेकी समान समझ मुस्कराकर आपके लिये ये बातें कही कि—यह कृपण सत्त्वहीन निशाचर दानव क्या है ? उसकी शूरता और धीरता तो अस्थिर है, वह तो क्रूर, कृतघ्न और सदाका पापी है, वह दानव क्या सूर्यपुत्र यमसे नहीं डरता है ? हे सम्पूर्ण दैत्योंके नाथ ! हे राजन् ! इस प्रकार उसने आपके लिये बातें कही हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ कहाँ तो मैं और दारुण शस्त्र तथा मृत्युको भी डराने वाला युद्ध और कहाँ वह बुढ़ापेसे जर्जर अंग वाला बन्दरकी समान मुख वाला तुच्छ वीर निशाचर और कहाँ मेरा वीरक नाम वाला गण ? ॥ ६५ ॥ तेरा स्वरूप क्या अच्छा है तू तो मन्दभाग्य है, तेरे और मेरे बलकी क्या समानता यदि तू समर्थ है तो आ युद्ध कर कुछ करतूत दिखा ॥ ६६ ॥ मेरे पास तुझ सरीखोंका नाश करने वाला वज्रकी समान भयंकर शस्त्र है और तेरा शरीर तो कोमल कमलकी समान है। इन सब बातोंको विचार कर जो तुझे अच्छा लगे सो कर ॥ ६७ ॥ मन्त्री बोले, कि–हे दानवेश ! उस तपस्वीने इस प्रकार अनेक बातें बकीं हे राजन् ! उसने मुस्कुराते हुए आपसे कहा कि—तुझे मेरे साथ लड़ना उचित नहीं है ॥ ६८ ॥ यदि तू मेरे सार वाले वचनोंसे समझ जायगा तो मुझ तपःसम्पन्न तपस्वीके वचनोंको याद किया करेगा ॥ ६९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–उनके सत्य हितकारी तीखे और अस्पष्ट वचनोंको सुनकर वह मन्दबुद्धि दैत्य क्रोधसे जल उठा ॥ ७० ॥ वरदानसे मत्त हुये

त्तणम् ॥७०॥ गृहीतखड्गो वरदानमत्तः प्रचण्डवातानुकृतिं च कुर्वन् । गंतुं च तत्र स्मरबाणविद्धस्समुद्यतोऽभूद्विपरीतदैवः ॥ ७१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकगाणपत्यलाभोपाख्याने दूतसंवादो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सनत्कुमार उवाच । गतस्ततो मत्तगजेन्द्रगामी पीत्वा सुरां घूर्णितलोचनश्च । महानुभावो बहुसैन्ययुक्तः प्रचण्डवीरो वरवीरयायी ॥ १ ॥ ददर्श दैत्यः स्मरबाणविद्धो गुहां ततो वीरकरुद्धमार्गाम् । स्निग्धं यथा वीक्ष्य पतंगसंघः दशाप्रदीपं च कृमिह्र्पैत्य ॥ २ ॥ तथा प्रदर्श्याशु पुनः पुनश्च सम्पीड्यमानोऽपि स वीरकेण । बभूव कामाग्निसुदग्धदेहोऽधको महादैत्यपतिः स मूढः ॥३॥ पाषाणवृक्षाशनितोयवह्निभुजंगशस्त्रास्त्रविभीषिकाभिः । स्पीडितोऽसौ न पुनः प्रपीड्यः पृष्टश्च कस्त्वं समुपागतोऽसि ॥ ४ ॥ निशम्य तद्वां स्वमतं स तस्मै चकार युद्धं स तु वीरकेण । मुहूर्तमाश्चर्यवदप्रमेयं संख्ये जितो वीरतरेण दैत्यः ॥५॥ ततस्तु संग्रामशिरो विहाय क्षुत्क्षामकंठस्तृषितो गतोऽभूत् । चूर्णीकृते खड्गवरे च खिन्ने पलायमानो गतविस्मयः सः ॥६॥ चक्रुस्तदाजिं सह वीरकेण प्रल्हादमुख्या दिति-

उस दैत्यने आँधीका अनुकरण करते हुये खड्ग उठा लिया तथा जिसका प्रारब्ध विपरीत होरहा था ऐसा वह कामके बाणोंसे बिंधा हुआ दैत्य शिवके पास जानेके लिये उद्यत होगया ॥ ७१ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—फिर उस बहुतसी सेनासे घिरे हुये और श्रेष्ठ वीर जिसके पीछे पीछे चला करते थे उस दैत्यने शराब पी, नशेसे उसके नेत्र घूमने लगे और वह मतवाले हाथीकी समान चलने लगा ॥ १ ॥ तदनन्तर उस कामबाणसे बिंधे हुये दैत्यने वीरक जिसके मार्ग पर पहिरा दे रहे थे ऐसी गुफाको देखा और जिस प्रकार तेल पड़े हुये प्रज्वलित दीपकको पतंगा देखता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार उस गुफाको देखा और वीरकके बारम्बार रोकने पर भी महादैत्यपति दृढ अंधकका देह कामाग्निसे धधकता ही गया ॥ ३ ॥ गणोंने उसको पत्थर, वृक्ष, वज्र, जल, आग, सर्प शस्त्र अस्त्र आदि डरावनी चीजोंसे डराया, तदनन्तर उन्होंने उसको पीड़ित करना छोड़ कर बूझा, कि—तू कौन है ॥४॥ इस वाणीको सुन वह अपनी इच्छानुसार वीरकके साथ युद्ध करने लगा, इस समय परम वीर वीरकने मुहूर्तभर तक आश्चर्यजनक रीतिसे युद्ध कर उस दैत्यको युद्धमें हरा दिया ॥ ५ ॥ उस समय उस दैत्यका गला सूखने लगा और खड्ग टूटने पर वह खिन्न होगया और विस्मयको छोड़ कर संग्रामके मुहानेसे भाग खड़ा हुआ ॥ ६ ॥ तब प्रह्लाद आदि मुख्य मुख्य दैत्य लज्जारूपी अंकुशसे पीड़ित हो अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे दारुणतापूर्वक वीरक (नन्दी

जप्रधानाः । लज्जांकुशाकृष्टधियो बभूवुसुदारुणाः शस्त्रशतैरनेकैः ॥ ७ ॥ विरोचनस्तत्र चकार युद्धं बलिश्च बाणश्च सहस्रबाहुः । भजिः कुजंभस्त्वथ शंबरश्च वृत्रादयश्चाप्यथ वीर्यवंतः ॥ ८ ॥ ते युद्धयमाना विजिताः समंताद् द्विधाकृता वै गणवीरकेण । शेषे हतानां बहुदानवानाममुक्तं जयत्येव हि सिद्धसंघैः ॥९॥ भेरंडानामभिनयप्रवृत्ते मेदोवसामांसशुपूयमध्ये । क्रव्यादसंघातसमाकुले तु भयंकरे शोणितकर्दमे तु ॥१०॥ भग्नैस्तु दैत्यैर्भगवान् पिनाकी व्रतं महापाशुपतं सुघोरम् । प्रिये मया यत्कृतपूर्वमासीद्दाक्षायणीं प्राह सुसांत्वयित्वा ॥ ११ ॥ शिव उवाच । तस्माद्बलं यन्मम तत्प्रणष्टं मर्त्यैरमर्त्यस्य यतः प्रपातः । पुण्यक्षयाही ग्रह एव जातो दिवानिशं देवि तव प्रसंगात् ॥ १२ ॥ उत्पाद्य दिव्यं परमाद्भुतं तु पुनर्वनं घोरतरं च गत्वा । तस्माद् व्रतं घोरतरं चरामि सुनिर्भया सुन्दरि वै विशोका ॥१३॥ सनत्कुमार उवाच । एतावदुक्त्वा वचनं महात्मा उत्पाद्य घोषं शनकैश्चकार । स तत्र गत्वा व्रतमुग्रदीप्तो गतो वनं पुण्यतमं सुघोरम् । ॥ १४ ॥ चर्तुं हि शक्यं तु सुरासुरैर्यन्न तादृशं वर्षसहस्रमात्रम् । सा पार्वती मन्दरपर्वतस्था प्रतीक्ष्यमाणागमनं भवस्य ॥१५॥ पतिव्रता शीलगुणोपपन्ना एकाकिनी नित्यमथो बिभीता ।

श्वर) के साथ युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ तथा विरोचन, बलि, बाण, सहस्रबाहु भजि, कुजंभ, शम्बर और वीर्यवान् वृत्र आदि वीरकसे युद्ध करने लगे ॥८॥ तब वीरक नाम वाले गणने उन युद्ध करने वालोंको जीत लिया, तब मरनेसे बचे हुये बहुतसे दानवोंको देख सिद्धोंने वीरककी जय जयकार की ॥ ९ ॥ उस समय युद्धमें बाजोंका अभिनय आरंभ होगया, चर्बी मांस आदिकी कीच मच गई, कच्चे मांसका भक्षण करने वाले प्राणियोंसे रणांगण गछ गया और रक्तकी भयंकर कींच मच गई ॥ १० ॥ और दैत्य भाग खड़े हुये । उस समय शिव पार्वतीको ढाढस देते हुये कहने लगे, कि—हे प्रिये ? मैंने पहिले घोर महापाशुपत नामक व्रतकी दीक्षा ली थी ॥ ११ ॥ परन्तु अब तुम्हारे निमित्त यह मरणधर्मियोंका अमरणधर्मियों पर धावारूप पुण्यक्षय करने वाला एक ग्रहसा ही आ पड़ा, इसमें मेरे दलको बड़ा कष्ट हुआ है (इस प्रकार व्रतमें विघ्न पड़ गया है) ॥ १२ ॥ अतः अब मैं फिर इस परम अद्भुत दिव्य व्रत की दीक्षा ले एक घोर वनमें जाकर इस व्रतका अनुष्ठान करूँगा, हे सुन्दरी ! तुम शोकरहित हो निर्भयतापूर्वक यहाँ ही रहो ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—महात्मा शङ्करने यह बात कह कर अपना नरसिंहा बजाया, फिर परम पवित्र भयङ्कर वनमें जाकर देवता और असुरोंसे अशक्य महापाशुपंत व्रतका एक हजार वर्षके लिये अनुष्ठान करने लगे और इधर पार्वती मन्दराचल पर विराजमान हो शङ्करके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥१४।१५॥ वह शील

गुहांतरे दुःखपरा बभूव संरक्षिता सा सुतवीरकेण ॥ १६ ॥ ततस्स दैत्यो वरदानमत्तस्तैर्योधमुख्यैस्सहितो गुहां ताम्। विभिन्नधैर्यः पुनराजगाम शिलीमुखैर्मारसमुद्भवैश्च ॥ १७ ॥ अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं हित्वा तदा भोजनपाननिद्राः। रात्रिंदिवं पञ्चशतानि पञ्च क्रुद्धस्ससैन्यस्सह वीरकेण ॥ १८ ॥ खड्गैस्सकुंतैः सह भिंदिपालैर्गदाभुशुंडीभिरथो प्रकांडैः। शिलीमुखैरर्द्धशशीभिरुग्रैर्वितस्तिभिः कूर्ममुखैर्ज्वलद्भिः ॥१९॥ नाराचमुख्यैर्निशितैश्च शूलैः परश्वधैस्तोमरमुद्गरैश्च। खड्गैर्गुडैः पर्वतपादपैश्च दिव्यैरथास्त्रैरपि दैत्यसंघैः ॥ २० ॥ नदीश्वरो विभिन्नतनुः पपात द्वारं गुहायाः पिहितं समस्तम्। तैरायुधैर्दैत्यभुजप्रयुक्तैर्गुहामुखे मूर्छितं एव पश्चात् ॥२१॥ आच्छादितं वीरकमस्त्रजालैर्दैत्यैश्च सर्वैस्तु मुहूर्तमात्रम्। अपावृतं कर्तुमशक्यमासीन्निरीक्ष्य देवी दितिजान् सुघोरान् ॥ २२ ॥ भयेन सस्मार पितामहन्तु देवी सखीभिस्सहिता च विष्णुम्। सैन्यं च नंदीश्वरस्य सर्वं स स्मारयामास गुहांतरस्था ॥२३॥ ब्रह्मा तया संस्मृतमात्र एव स्त्रीरूपधारी भगवांश्च विष्णुः। इन्द्रैश्च सर्वैः सह सैन्यकैश्च स्त्रीरूपमास्थाय समागतास्ते ॥ २४ ॥ भूत्वा स्त्रियस्ते विविशुस्तदानीं मुनीन्द्रसंघाश्च महानुभावाः। सिद्धाश्च नागास्त्वथ गुह्यकाश्च गुहां-

वती पतिव्रता गुफाके भीतर एकाकिनी रहनेसे नित्य डरती रहती थीं और दुःखित रहती थीं, तहाँ पर पुत्र स्थानीय गण वीरक उनकी रक्षा करते रहते थे ॥१६॥ इधर जब उस दैत्य का कामदेवके बाणोंसे फिर धैर्य टूटा तब वह वरदानसे मत्त होनेके कारण अपने मुख्य २ योद्धाओंके साथमें लेकर फिर तहाँ आचढ़ा ॥ १७॥ तब अपनी सेनाको साथमें ले वीरकके साथ पाँचसौ पाँच रात दिन तक क्रोधमें भर कर अद्भुत युद्ध करता रहा ॥ १८ ॥ और उसमें तलवार, भाले, गोफन, गदा, तोप, बड़े २ बाण, अर्धचन्द्राकार बाण, बिलस्त भरके कछुएकी समान मुख वाले दमकते हुए बाण, तीखे नाराच नामक बाण, शूल, फरसे, तोमर, मुद्गर, खड्ग, मट्टीके गोले, पत्थर, वृक्ष, दिव्य अस्त्र और दैत्योंसे भी उस दैत्यने वीरक पर प्रहार किया था ॥ १९ ॥ २० ॥ तब दैत्योंकी भुजाओंसे छूटे हुए उन आयुधोंके प्रहारोंसे नन्दीश्वर मूर्च्छित होकर गुफाके द्वार पर ही गिर पड़े और उनसे गुफाका समस्तद्वार घिर गया ॥२१॥ अस्त्रजालसे बिंधे हुए वीरकसे ढके हुए गुफाके मुखको दैत्य मुहूर्तभर तक न खोल सके, उस समय भयंकर दैत्योंको देख कर देवी पार्वतीने पितामहका और विष्णुका स्मरण किया और गुफाके भीतर विराजमान अपनी सखियोंसे भी वीरवर नन्दीश्वर का और उनकी सेनाका वृत्तान्त भी स्मरण कराया ॥ २२ ॥ २३ ॥ उनके स्मरण करते ही ब्रह्माजी, भगवान् विष्णु और सेनाओं सहित इन्द्र सब ही स्त्रीका रूप धारण कर तहाँ आ पहुँचे ॥२४॥ उस समय महानुभाव मुनियों

तरं पर्वतराजपुत्र्याः ॥ २५ ॥ यस्मात्सुराज्यासनसंस्थितानामन्तःपुरे संगमनं विरुद्धम् । ततस्सहस्राणि नितम्बिनीनामनन्तसंख्यान्यपि दर्शयन्त्यः ॥ २६ ॥ रूपाणि दिव्यानि महाद्भुतानि गौर्यं गुहान्तरं तु सखीरकार्यैः । स्त्रियः प्रहृष्टा गिरिराजकन्या-गुहान्तरं पर्वतराजपुत्र्या ॥ २७ ॥ स्त्रीभिस्सहस्रैश्च शतैरनेकैर्नेदुश्च कल्पान्तरमेघघाताः । भेर्यश्च संग्रामजयप्रदास्तु ध्माताश्च शंखाः सुनितम्बिनीभिः ॥२८॥ मूर्छां विहायाद्भुतचंडवीर्यस्स वीरको वै पुरतः स्थितस्तु । प्रगृह्य शस्त्राणि महारथानां तैरेव शस्त्रैर्दितिजं जघान ॥ २९ ॥ ब्राह्मी ततो दंडकरा विरुद्धा गौरी तदा क्रोधपरीतचेताः । नारायणी शङ्खगदासुचक्रधनुर्धरा पूरितबाहुदण्डा ॥ ३० ॥ विनिर्ययौ लांगलदण्डहस्ता व्योमालका कांचनतुल्यवर्णा । धारासहस्राकुलमुग्रवेगं वैडोजसी वज्रकरा तदानीम् ॥३१॥ सहस्रनेत्रा युधि सुस्थिरा च सुदुर्जया दैत्यशतैरधृष्या । वैश्वानरी शक्तिरसोम्यवक्त्रा याम्या च दण्डोद्यतपाणिरुग्रा ॥३२॥ सुतीक्ष्णखड्गोद्यतपाणिरूपा समाययौ नैर्ऋतिर्घोरचापा । तोयालिकावारुणपाशहस्ता विनिर्गता युद्धमभीप्समाना ॥ ३३ ॥ प्रचण्डशलप्रभवा च देवी क्षुधा वद्-

के कूष्मण्ड, सिद्ध, नाग और गुह्यक भी स्त्रियोंका रूप धारण कर पार्वतीकी गुफामें घुसे ॥ २५ ॥ (स्त्रीरूप धारण करनेका कारण यह था, कि-) अन्तःपुरमें राज्यासन पर विराजमान (पुरुषों) का जाना उचित नहीं है । इस लिये हजारों स्त्रियें दिव्यरूप धारण कर प्रसन्न होती हुई गिरिराजकुमारीकी गुफा में आगईं ॥ २६ ॥ २७ ॥ तब उन सहस्रों स्त्रियोंने प्रलयके मेघोंकी समान शब्द करने वाले सैंकडों नगाड़े बजाये और संग्राममें विजय देने वाले शंख बजाये ॥ २८ ॥ इन शब्दोंसे अद्भुत और प्रचण्ड वीर्यवाले नन्दीश्वरकी मूर्च्छा भी दूर गई और वह उनके सामने खड़े हो महारथियोंके अस्त्रों को छीन उन अस्त्रों से दैत्यनन्दन को मारने लगे ॥ २९ ॥ तदनन्तर स्त्रीरूप धारिणी गौरवर्णकी ब्राह्मीशक्ति क्रुद्ध हो हाथमें दण्ड ले बाहर निकलीं, नारायणी शंख चक्र गदा पद्म लेकर बाहर निकलीं ॥ ३० ॥ और आकाशकी समान वर्णवाली (संकर्षणकी) शक्ति अपने हाथमें हल लेकर तहाँ पर आईं और इन्द्राणीं सैंकड़ों धारी वाले वज्रको हाथमें लेकर बाहर निकलीं ॥ ३१ ॥ उस समय उनके सहस्र नेत्र थे, सैंकड़ों दैत्य भी उनको दबा नहीं सकते थे इस प्रकार वह युद्धमें आकर खड़ी होगईं, वैश्वानरी शक्ति भी तहाँ आगइ और याम्या शक्ति भी हाथमें दण्ड धारण कर तहाँ पर आगईं ॥ ३२ ॥ और नैर्ऋति शक्ति भी हाथमें भयंकर धनुप और तीक्ष्ण खड्ग उठाये हुए तहाँ आगईं और युद्ध करना चाहने वालीं वारुणी शक्ति हाथमें पाश लेकर निकल आईं ॥ ३३ ॥ और वायवी शक्ति हाथमें अंकुश

त्वंकुशपाणिरेव । कल्पान्तवह्निप्रतिमां गदां च पाणौ गृहीत्वा धनदोद्भवा च ३४ यक्षेश्वरी तीक्ष्णमुखा विरूपा नखायुधा नागभयंकरी च । एताम्तथान्याश्शतशो हि देव्यः सु निर्गता संकुलयुद्धभूमिम् ।३५। दृष्ट्वा च तत्सैन्यमनन्तपारं विवर्णवर्णाश्च सुविस्मिताश्च । सशंकुलास्सञ्चकिता भयाद्वै दैत्या बभूवुः कलुषीनसत्त्वाः ॥३६॥ चक्रुस्समाधाय मनस्समस्तास्ता देववध्वो विधिशक्तिमुख्याः । मुख्यं मतत्वेन गिरीन्द्र-पुत्र्याः सेनापतिं वीरसुघोरवीर्यम् ३७ चक्रुर्महायुद्धमभूतपूर्वं निधाय बुद्धौ दितिजाः प्रधानाः । निवर्तनं मृत्युमथात्मनश्च नारीभिरन्यं वरदानसत्याः ॥ ३८ ॥ अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं गौरी तदानीं सहिता सखीभिः । कृत्वा रणे चाद्भुतबुद्धिशौण्डं सेनापतिं वीरकघोरवीर्यम् ॥ ३९ ॥ हिरण्यनेत्रात्मज एव भूपश्चक्रे महाव्यूहमरं सुकर्मा । सम्भाव्य विष्णुं च निरीक्ष्य याम्यां सुराकृतं तद्गिलनामधेयम् ॥ ४० ॥ मुखं करालं विनिवेशयास्य तस्मिन् कृते भगवानाजगाम । कल्पान्तघोरार्कसहस्र-कान्तिकीर्णश्च वै कुपितः कृत्तिवासाः ४१ गते ततो वर्षसहस्रमात्रे तमागतं प्रेक्ष्य महेश्वरं च । चक्रुर्महायुद्धमतीवमात्रं नार्यः प्रहृष्टास्सह वीरकेण ॥ ४२ ॥ प्रणम्य

ले भूखी ही तहाँ आकर खड़ी होगई और कौबेरी शक्ति प्रलयकालकी अग्नि के समान गदाको हाथमें लेकर तहाँ निकल आई ॥ ३४ ॥ तीक्ष्णमुख वाली यक्षेश्वरी शक्ति और सर्पोंको भयभीत करने वाली नाखूनके आयुध वाली गारुडी शक्ति भी तहाँ आगई, ये तथा और भी सैंकड़ों देवियें भयंकर रणा-ङ्गणमें आ डटीं ॥३५॥ उस अनन्त सेनाको देख कर दैत्य विस्मित हुए और उनका रंग फीका पड़ गया, भयके कारण उनका मन बैठ गया और वे चकित रह गए ॥ ३६ ॥ फिर ब्रह्माणी आदि उन देववधुओंने गिरिजासे सम्मति कर परम भयंकर वीर्य वाले वीरक (नन्दीश्वर) को सेनापति बनाया ।३७। तब उन वरदान पाने वाले दैत्योंने समझा, कि नारियोंसे हमारी मृत्यु निश्चित है, इसको हटाया नहीं जा सकता, वरदानकी इस बातका विचार कर वे दैत्य अभूतपूर्व युद्ध करने लगे ॥३८॥ और सखियों सहित गौरी भी युद्धमें अद्भुत बुद्धिचातुरी दिखाने वाले नन्दीश्वरको सेनापति बना परम अद्भुत युद्ध करने लगीं ॥ ३९ ॥ तब श्रेष्ठतापूर्वक कर्म करने वाले राजा अंधकने विष्णुशक्ति और याम्या शक्तिको देख ब्रह्माजीकी सेवासे प्राप्त हुए अपने गिल नामक कराल मुखको बनाया । इसी समय प्रलयकालीन सूर्यकी कान्तिसे सम्पन्न कृत्तिवासा भगवान् शिव भी क्रोधमें भरे तहाँ आ पहुँचे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ सहस्र वर्षके पीछे उन महेश्वरको आया हुआ देख कर नारियें और वीरक प्रसन्न होकर महायुद्ध मचाने लगे ॥ ४२ ॥ उस समय अपनी शूरता दिखा युद्ध करती हुई गौरीने स्वामीके चरणोंमें शिर झुका कर प्रणाम किय, तब

गौरी गिरिशं च मूर्ध्ना संदर्शयन् भर्तुरतीव शौर्य्यम् । गौरी प्रयुद्धं च चकार दृष्ट्वा हरस्ततः पर्वतराजपुत्रीम् ॥४३॥ कण्ठे गृहीत्वा तु गुहां प्रविष्टो रमासहस्राणि विसर्जितानि । गौर्या च सन्मानशतैः प्रपूज्य गुहामुखे वीरक एव स्थापितः ॥४४॥ ततो न गौरीं गिरिशं च दृष्ट्वासुरेश्वरो नीतिविचक्षणो हि । दूतं स्वदूतं विघसाख्यमेव स प्रेषयामास शिवापकण्ठम् ४५ तैस्तैः प्रहारैरपि जर्जरांगस्तस्मिन् रणे देवगणैरितैर्यः । जगाद वाक्यं तु सगर्वमुग्रं प्रविश्य शम्भुं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।४६। दूत उवाच । संप्रेषितोहं विविशे गुहां तु ह्येषोऽन्धकस्त्वां समुवाच वाक्यम् । नार्या न कार्यं तव किञ्चिदस्ति विमुञ्च नारीं तरुणीं सुरूपाम् ४७ प्रायो भवांस्तापसतज्जुषस्व क्षान्तं मया यत्कमनीयमन्तः । मुनिर्निरोधस्य इति प्रचिन्त्य न त्वं मुनिस्तापस किन्तु शत्रुः ॥ ४८ ॥ अतीव दैत्येषु महाविरोधी युध्यस्व वेगेन मया प्रमथ्य । नयामि पातालतलानुरूपं यमक्षयं तापसधूर्त्त हि त्वाम् ॥४९॥ सनत्कुमार उवाच एतद्वचो दूतमुखान्निशम्य कपालमाली तमुवाच कोपात् । ज्वलन्विषादेन महांस्त्रिनेत्रस्सतां गतिर्दुष्टमदप्रहर्ता ॥ ५० ॥ शिव उवाच । व्यक्तं वचस्ते तदतीव चोग्रं

महादेव प्रसन्न हो पार्वतीके कण्ठमें हाथ डाल गुफाके भीतर घुसने लगे, उस समय गौरीने बड़े सत्कारके साथ नन्दीश्वरको गुफाके द्वार पर नियुक्त किया और सब स्त्रियोंको भी विदा कर कर दिया ॥ ४३ ॥ इधर जब उस असुरेश्वरने न गौरीको देखा न गिरिश (शंकर) को देखा, तब उस नीतिचतुरने शिवजीके पास विघस नाम वाले दूतको ही भेजा ॥ ४५ ॥ यद्यपि देवताओंके किये हुए प्रहारोंसे विघसका शरीर जर्जर होरहा था, तब भी वह गुफामें प्रवेश कर शम्भुको शिर झुका प्रणाम कर गर्वपूर्वक उग्रवचन कहने लगा ४६ दूतने कहा, कि मुझे अंधकने गुफामें भेजा है, अंधकने आपसे यह बात कही है, कि-तुझे नारीसे क्या काम ? तू इस तरुणी सुन्दरी नारीको छोड़ दे ४७ तू तो तपस्वी है, अतः तपका ही सेवन कर, तूने मनोहर बातोंको हृदयमें (विचार कर जो तपस्वियोंके कर्मका उल्लंघन किया है उसको) मैं क्षमा करता हूँ और मैं राजा हूँ इस लिये मुनिको इस अधर्मसे रोकना चाहता हूँ । यदि तू नहीं मानेगा, तो तू तपस्वी नहीं, किन्तु मेरा शत्रु हो जावेगा ॥ ४८ ॥ (अधिक क्या) तू दैत्योंसे बड़ा विरोध करता रहता है, अतः तू वेगपूर्वक मेरे साथ युद्ध कर अरे तपस्वियोंमें धूर्त ! मैं तुझे पातालतलकी समान यमराजके घर ही भेज दूँगा ॥ ४९ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-दूतके मुखसे इन वचनोंको सुन कपालमाली त्रिनेत्र, जो कि—सज्जनोंकी गति हैं और दुष्टोंका मद उतारने वाले हैं वह विषादमें भर कोपसे जलते हुएसे उस दूतसे कहने लगे ॥ ५० ॥ शिवजीने कहा, कि-(अरे दूत !) तूने जो बात कही,

प्रोक्तं हि तत्त्वं त्वरितं प्रयाहि । कुरुष्व युद्धं हि मया प्रसह्य यदि प्रशक्तोऽसि बलेन हि त्वम् ॥ ५१ ॥ यः स्यादशक्तो भुवि तस्य कोऽर्थो दारैर्धनैर्वा सुमनोहरैश्च । आयान्तु दैत्याश्च बलेन मत्ता विचार्यमेवं तु कृतं मयैतत् ॥ ५२ ॥ शरीरयात्रापि कुतस्त्वशक्तेः कुर्वन्तु यद्यद्विहितं तु तेषाम् । ममापि यद्यत्करणीयमस्ति तत्तत्करिष्यामि न संशयोऽत्र ५३ सनत्कुमार उवाच । एतच्छ्रुत्वा चाद्विघसोऽपि तस्माच्छ्रुत्वा हरान्निर्गत एव हृष्टः । प्रागात्ततो गर्जितहुंकृतानि कुर्वंस्ततो दैत्यपतेस्सकाशम् ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे युद्धप्रारम्भदूत-सम्वादवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सनत्कुमार उवाच । तस्येंगितज्ञश्च स दैत्यराजो गदां गृहीत्वा त्वरितस्सैन्यः । कृत्वाग्रतः सोऽग्रे गिलनामधेयं सुदारुणं दैवतरैरभेद्यम् ॥ १ ॥ गुहामुखं प्राप्य महेश्वरस्य बिभेद शस्त्रैरशनिप्रकाशैः । अन्ये ततो वीरकमेव शस्त्रैरवाकिरञ्छैलसुतां तथान्ये ॥ २ ॥ द्वारं हि केचिद्रुचिरं बभंजुः पुष्पाणि पत्राणि विनाशयेयुः । फलानि मूलानि जलं च हृद्यमुद्यानमार्गानपि खंडयेयुः ॥ ३ ॥ विलोडयेयुर्मुदिताश्च केचिच्छृंगाणि शैलस्य च भानुमंति । ततो हरस्संस्मृतवान्स्वसैन्यं समाह्वयन्कु-

---

वह बहुत स्पष्ट और कड़ी है अब तू फुर्तीसे चला जा (और अंधकसे कह कि) यदि तुझमें शक्ति है तो बलपूर्वक मुझसे युद्ध कर ॥ ५१ ॥ क्योंकि-पृथ्वी पर जो अशक्त होता है, उसको स्त्री और धन तथा मनोहर पदार्थोंसे क्या प्रयोजन ? यदि दैत्य बलसे मत्त होरहे हैं, तो यहाँ आवें, मैंने यही विचार किया है ॥ ५२ ॥ अरे ! जो अशक्त होता है, वह अपने शरीरको भी किस प्रकार चला सकता है, इस लिये जो उसका विचार हो वह करे और मुझे भी जो करना है, उसको मैं अवश्य करूँगा ॥ ५३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शिवके इस वचनको सुन विघस भी प्रसन्न हो गर्जना और हुँकार आदि करता हुआ दैत्यपतिके समीपमें चल दिया ॥५४॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-उनके इस इंगित (चेष्टा) को देख वह दैत्यराज गदाको फुर्तीसे उठाकर चल दिया, सेना भी उसके पीछेर चली और देवताओंसे भी अभेद्य गिल नाम वाले दारुण (सिंह) को आगे करके वह चला ॥१॥ वह महेश्वरकी गुफाके पास पहुँच वज्रकी समान बाणोंसे उन (शम्भु) को घायल करने लगा, कुछ दैत्य नन्दीश्वर पर बाणोंकी बौछार करने लगे और कुछ पार्वतीको पीड़ित करने लगे ॥२॥ कोई मनोहर द्वारको तोड़ने लगे और कोई पुष्प पत्रोंको रेड़ लगाने लगे और कुछ दैत्य फल मूल और मनोहर जल तथा बगीचेके मार्गको भ्रष्ट करने लगे ३ और कुछ दैत्य प्रसन्न हो पर्वतके दमकते हुए शिखरोंको हिलाने लगे, तब शूलपाणि हरने क्रोधमें भर कर अपनी सेना

पिनः शूलपाणिः ॥ ४ ॥ भूतानि चान्यानि सुदारुणानि देवान्ससैन्यान्सह विष्णुमुख्यान् । आहूतमात्रागणास्ससैन्या रथैर्गजैर्वाजिवृषैश्च गोभिः ॥५॥ उष्ट्रैः खरैः पक्षिवरैश्च सिंहैस्ते सर्वदेवाः सहभूतसंघैः । व्याघ्रैर्मृगैस्सूकरसारसैश्च समीनमत्स्यैश्शिशुमारमुख्यैः ॥ ६ ॥ अन्यैश्च नानाविधजीवसंघैर्विशीर्णदंष्ट्राः स्फुटितैस्स्मशानैः । भुजंगमैः प्रेतशतैः पिशाचैर्दिव्यैर्विमानैः कमलाकरैश्च ॥ ७ ॥ नदीनदैः पर्वतवाहनैश्च समागताः प्रांजलयः प्रणम्य । कपर्दिनं तस्थुरदीनसत्त्वास्सेनापतिं वीरकमेव कृत्वा ॥ ८ ॥ विसर्जयामास रणाय देवान्विश्रांतवाहानथ तत्पिनाकी । युद्धे स्थिरं लब्धजयं प्रधानं संप्रेषितास्ते तु महेश्वरेण ॥ ९ ॥ चक्रुर्युगांतप्रतिमं च युद्धं मर्यादहीनं सगिलेन सर्वं । दैत्येन्द्रसैन्येन सदैव घोरं क्रोधान्निगीर्णास्त्रिदशास्तु संख्ये ॥१०॥ तस्मिन्क्षणे युध्यमानाश्च सर्वे ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वर्कशशांकमुख्याः । आसन्निगीर्णा विघसेन तेन सैन्ये निगीर्णेऽस्ति तु वीरको हि ॥ ११ ॥ विहाय संग्रामशिरो गुहां तां प्रविश्य शर्वं प्रणिपत्य मूर्ध्ना । प्रोवाच दुःखाभिहतः स्मरारिं सुवीरको वाग्मिवरोऽथ वृत्तम् ॥ १२ ॥ निगीर्णं ते सैन्यं विघसदितिजेनाद्य भगवन्निगीर्णोऽसौ विष्णुस्त्रिभुवनगुरुर्दैत्यदलनः । निगीर्णौ चन्द्रार्कौ द्रुहि-

का स्मरण कर उसका आह्वान किया ॥ ४ ॥ उन्होंने बहुतसे दारुण भूतों को और विष्णु आदि देवताओंको सेना सहित बुलाया, वे बुलाते ही अपने गण और सेनादलको साथमें ले रथ हाथी घोड़े, बैल, साँड, ऊँट गधे, श्रेष्ठ पक्षी और सिंहों पर बैठ कर आने लगे तथा बहुतसे देवता और भूत व्याघ्र मृग सूअर सारस मछली मच्छ गोह पर सवार होकर आने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ कोई बहुतसे जीवोंको साथ लेकर आये बहुतसे टूटे हुये डङ्क वाले प्राणी श्मशानोंसे आगये, बहुतसे देवता साँप, सैंकड़ों प्रेत, पिशाच, दिव्य विमान, सरोवर नद नदी आदिके अधिष्ठात्री देवताओंको साथमें लेकर आये और कुछ शिलाओं पर चढ़ कर आये और हाथ जोड़ कर कपर्दी शङ्करके समीप खड़े होगये, जब देवताओंके वाहन विश्राम लेचुके तब महेश्वरने युद्धमें विजय पाने वाले और स्थिर रहने वाले नन्दीश्वरको सेनापति बना कर देवताओं को युद्ध करनेके लिये भेज दिया ॥ ७-९ ॥ फिर उन्होंने प्रलयकालकी समान मर्यादाहीन युद्ध किया, उस समय गिल सहित दैत्येन्द्रसेनाने क्रोधमें भर कर युद्धमें देवताओंको निगलना आरंभ कर दिया ॥ १० ॥ उस समय विघसने युद्ध करते हुये ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु सूर्य, चन्द्र आदि सबको निगल लिया उस समय बोलने वालोंमें श्रेष्ठ नन्दीश्वर सेनाके मुहानेको छोड़, गुफामें घुस कामदेवके शत्रु शिवको प्रणाम कर दुःखित हो वृत्तान्त सुनाने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! आज विघस नामक दैत्यने आपकी सेनाको निगल लिया है, अहो

णमघवानौ च वरदौ निगीर्णास्ते सर्वे यमवरुणवाताश्च धनदः ॥ १३ ॥ स्थितोऽस्म्येकः प्रह्वः किमिह करणीयं भवतु मे। अजेयो दैत्येन्द्रः प्रमुदितमना दैत्यसंहितः ॥१४॥ अजेयं त्वां प्राप्तः प्रतिभयमना मारुतगतिस्स्वयं विष्णुर्देवः कनककशिपुं कश्यपसुतम्। नखैस्तीक्ष्णैर्भक्त्या तदपि भगवान् दुष्टवशगः। प्रवृत्तस्त्रैलोक्यं विग्रसितुमलं व्यात्तवदनः ॥ १५ ॥ वसिष्ठाद्यैश्शप्तो भुवनपतिभिस्सप्तमुनिभिस्तथाभूते भूयस्त्वमिति सुचिरं दैत्यसहितः ॥ १६ ॥ ततस्तेनोक्तास्ते प्रणयवचनैरात्मनि हितैः कदास्माद्वै घोराद्भवति मम मोक्षो मुनिवराः। यतः क्रुद्धैरुक्तो मनुजहरणाद्युद्धसमये ततो घोरैर्बाणैर्विदलितमुखे मुष्टिभिरलम् । १७ ॥ बदर्याख्यारण्ये ननु हरिगृहे पुण्यवसतौ निरस्तभ्यात्मानं विगतकलुषो यास्यसि परम्। ततस्तेषां वाक्यात्प्रतिदिनमसौ दैत्यगिलनः क्षुधार्तस्संग्रामाद्भ्रमति पुनरामोदमुदितः ॥ १८ ॥ तमःस्वेदं घोरं जगदुदितयोस्सूर्यशशिनोर्यथा शुक्रस्तुभ्यं परमरिपुरत्यंतविकरः। हतान्देवैर्दैत्यान्पुनरमृतविद्यास्तुतिपदैस्सवीर्यान्संहृष्टान्व्रणशतवियुक्तान्प्रकुरुते १९ वरं प्राणास्त्याज्यास्तव मम तु संग्रामसमये भवान्साक्षीभूतः क्षणमपि वृतः कार्य-

त्रिलोकीके गुरु, दैत्योंका दलन करने वाले विष्णु भी निगले गये, चन्द्रमा, सूर्य और वरदान देने वाले ब्रह्मा और इन्द्र, यम वरुण वायु और कुबेर सबको ही दैत्योंने निगल लिया है ॥ १३ ॥ किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ एक मैं ही खडा हुआ हूँ, अब मुझे क्या करना चाहिये, वह दैत्येन्द्र तो मुझे अजेय मालूम होता है वह दैत्योंके साथ अपने मनमें प्रसन्न हो रहा है ॥ १४ ॥ भगवान् विष्णुने हिरण्यकशिपुको मारनेके लिये भक्तिवश नृसिंहका रूप धारण कर उसको नखों से विदीर्ण कर डाला था, वह भगवान् भी इस दुष्टके वशमें पड़ गये, अब वह वायुवेगसे मुख फाड़ कर त्रिलोकीको निगलनेके लिये उद्यत हो आप अजेय के पास पहुँचा ही चाहता है ॥ १५ ॥ पहिले वसिष्ठ आदि सात लोकरक्षक मुनियोंने इसको शाप दिया था कि-तू दैत्य हो जा ॥ १६ ॥ तब इसने अपना हित करनेवाले नम्र वचन कह कर कहा, कि-हे मुनियो ! मेरा इस घोर शाप से उद्धार कब होगा, तब उन्होंने कहा, कि-जब तू मनुष्यमात्रका भक्षण करने लगेगा तब तेरे मुख पर बाण और मुक्के पड़ेंगे, तब तू बदरीवनमें हरिके पवित्र घरमें निष्पाप होकर मुक्त होजावेगा, उस दिनसे यह गिल दैत्य संग्राममें क्षुधार्त हो आनन्दपूर्वक घूमता फिरता है और उसने आकाशमें अंधकार फैला कर उदित हुए सूर्य और चन्द्रमाको भी हर लिया है, और शुक्रजो तो आपके बड़े वैरी होरहे हैं, वह तो देवताओंके मारे हुये दैत्योंको अमृतविद्यासे वीर्यवान्, प्रहृष्ट और घावरहित कर देते हैं अब मैं आपके सामने ही रणमें क्षण भरमें ही उससे युद्ध कर अपने प्राण त्यागनेका विचार कर रहा हूँ ॥ १७-२० ॥

करणे ॥ २० ॥ सनत्कुमार उवाच । इतीदं सत्पुत्रात्प्रमथपतिराकर्ण्य कुपितश्चिरं ध्यात्वा चक्रे त्रिभुवनपतिः प्रागनुपमम् । प्रगायत्सामाख्यं दिनकरकराकारवपुषा प्रहासात्सन्नाम्ना तदनु निरतं तेन च तमः॥२१॥ प्रकाशेऽस्मिल्लोके पुनरपि महायुद्धमकरोद्गणो दैत्यैस्सार्द्धं विकृतवदनैर्वीरकमुनिः । शिलाच्चूर्णं भुक्त्वा प्रवरमुनिना यस्तु जनितस्स कृत्वा संग्रामं पुनरपि पुरा यश्च जितवान् ॥२२॥ महारुद्रस्सद्यः स खलु दितिजेनातिगिलितस्ततश्चासौ नन्दी निशितशरशूलासिसहितः । प्रधानो योधानां मुनिवरशतानामपि महान्निवासो विद्यानां शमदमधैर्यसहितः ॥२३॥ निरीक्ष्यैवं पश्चाद्वृषभवरमारुह्य भगवान्कपर्दी युद्धार्थी विघसदितिजं सम्मुखमुखः । जपन्दिव्यं मन्त्रं निगलनविधानोद्गिलनकं स्थितस्सज्जं कृत्वा धनुरशनिकल्पानपि शरान् ॥२४॥ ततो निष्क्रान्तोऽसौ विघसवदनाद्वीरकमुनिर्गृहीत्वा तत्सर्वं स्वबलमतुलं विष्णुसहिताः । समुद्भूतास्सर्वे कमलजबलारीन्दुदिनपाः प्रहृष्टं तत्सैन्यं पुनरपि महायुद्धमकरोत् ॥२५॥ जिते तस्मिञ्छुक्रस्तदनु दितिजान्युद्धनिहतान् यदा विद्यावीर्यात्पुनरपि सजीवान्प्रकुरुते । तदा बद्ध्वानीतः पशुरिव गणैर्भूतपतये

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—पुत्रस्थानीय नन्दीश्वरसे यह बात सुन कर प्रमथ नामक गणोंके अधिपति महादेवजीको क्रोध आगया, फिर उन त्रिभुवनपतिने चिरकाल तक ध्यान करके सूर्यकी किरणोंकी समान शरीरसे सामका गान किया और अन्धकारका नाश कर डाला ॥ २१ ॥ इस संसारमें फिर प्रकाश फैलने पर नन्दीश्वर बेडौल मुख वाले राक्षसोंसे फिर महायुद्ध करने लगे, उस समय त्रिपुरको जीतने वाले महेशके बनाये पत्थरके चूर्णको खाकर नन्दीश्वरको समय काटना पड़ा ॥ २२ ॥ इसी समय विघसने आकर तीक्ष्ण बाण शूल और तलवार सहित नन्दीश्वरको निगल लिया, तब शिवजी विचारने लगे, कि—अहो जो मुनियोंमें और देवताओंमें प्रधान हैं, विद्याओंके निवासस्थान हैं, शम दम और परम धैर्यसम्पन्न हैं उसको भी विघसने निगल लिया ॥ २३ ॥ फिर भगवान् कपर्दी युद्ध करनेकी इच्छासे निगले हुयेको उगलवा देने वाले दिव्य मन्त्रका जप करते हुये विघस दैत्यके सम्मुख श्रेष्ठ वृषभ पर चढ़ कर चले । उस समय उन्होंने वज्रकी समान बाण और धनुषको भी तयार कर लिया था ॥ २४ ॥ तब विघसके मुखसे नन्दीश्वर निकल पड़े, विष्णु भी निकल पड़े, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा और सूर्य भी निकल पड़े, सेना भी निकल पड़ी, और वह सेना फिर हर्षमें भर कर युद्ध करने लगी ॥२५॥ विघसको जब हरा दिया गया, तब युद्धमें जो दैत्य मारे गये थे उनको जब शुक्राचार्यजी फिर अपनी विद्याके वीर्यसे जीवित करने लगे, तब गण उनको पशुकी समान बाँध कर भूतपति शिवजीके पास ले आये तब शिवजी शुक्रा-

निगीर्णस्तेनासौ त्रिपुरविजुरा दानवगुरुः ॥ २६ ॥ विनष्टे शुक्राख्ये सुररिपुनिवास-
स्तदखिलो जितो ध्वस्तो भग्नो भुजगमपि सुरैश्चापि दलितम् । प्रभूतैर्भूतौघैर्दितिज-
कुणपग्रासरसिकैस्तरुण्डैर्नृत्यद्भिर्निशितशरशक्त्युद्धृतकरैः ॥ २७ ॥ प्रमत्तैर्वेताल-
स्त्रुटदृढकरतुंडैरपि खगैर्वृतैर्दीनाङ्गैर्दैत्यकुणपप्रणीस्यकवलैः । विकीर्णे संग्रामे
ह्यनेककशिपोर्वंशजनकश्चिरं युद्धं कृत्वा हरिहरमहेन्द्रैश्च विजितः ॥ २८ ॥ प्रविष्टे
पाताले गिरिजलधिरन्ध्रं प्रविशति तथा ततः सैन्ये क्षीणे दितिजवृषभश्चांधकवरः ।
प्रकोपे देवानां कदनदवरो विश्वकदनो गदाघातैर्घोरैर्विदलितमदश्चापि हरिणा २९
न वै यस्संग्रामं त्यजति वरलब्धः किल यतस्तदा ताडैर्घोरैस्त्रिदशपतिना पीडित-
तनुः । ततश्शस्त्रास्त्रौघैस्तरुगिरिजलैश्चाशु विबुधाञ्जित्वायोच्चैर्गर्जन्प्रमथपतिमाहूय
शनकैः ॥ ३० ॥ स्थितो युद्धं कुर्वन्रणपतितशस्त्रैर्बहुविधैः परिक्षीणोऽस्त्रैर्वै तदनु
गिरिजारुद्रमनुदत् । तथा वृक्षान्सर्पान्कुलिशविटैः शस्त्रपटलैर्विरूपैर्मायाभिः कपट-
रचनाशाम्बरशतैः ॥ ३१ ॥ विजेतुं गौरीशं कुहकमपरं तत्र कृतवान्महासत्त्वो वीर-
स्त्रिपुररिपुतुल्यश्च मतिमान् । स वध्यो देवानां वरशतमदोन्मादविवशः प्रभूतैश्च-

---

चार्यको निगल गये ॥ २६ ॥ जब शुक्राचार्यजी लुप्त होगये तब देवताओंने असुरोंकी छावनीको जीत लिया मार डाला और तोड़ फोड डाला, फिर राक्षसोंकी लहाशोंका ग्रास बनानेके रसिक बहुतसे भूतोंने और रुण्डोंने हाथोंमें तीक्ष्ण तलवार और शक्ति उठा कर नाच नाच कर राक्षसोंका संहार किया तथा मतवाले वेतालोंने, दृढ़ चोंच वाले पक्षियोंने लहाशोंके टुकड़े २ करके मुखमें डाल लिये इस प्रकार संग्राममें दैत्य तित्तर वित्तर होगये और हरि हर तथा महेन्द्रने चिरकाल तक युद्ध कर हिरण्यकशिपुके वंशज अंधकको जीत लिया ॥ २८ ॥ जब दैत्य पातालमें घुस गए, पर्वत समुद्र गुफा आदिमें घुस गए और सेनाको क्षीण करते हुए देवता कोपमें भर गए तब भी कत्ल करने वालोंमें श्रेष्ठ, विश्वका दलन करने वाले, दैत्यश्रेष्ठ अन्धकने हरिकी गदाके प्रहारोंसे मद उतर जाने पर भी वरदानके प्रभावसे संग्रामको नहीं छोड़ा और इन्द्रके पीड़ा देने पर शस्त्र अस्त्र वृक्ष पत्थर और जलकी वर्षा कर देवताओंको जीत कर गर्जना करने लगा, फिर धीरेसे प्रथमनाथ शिवको बुला रणमें पड़े हुए अनेक प्रकारके टूटे फूटे शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा फिर उसने गिरिजा और रुद्रको पीड़ित किया, वह वृक्ष सर्प वज्र शस्त्र विरूप–माया, शम्बरासुरकी सैंकड़ों रचना करके गिरिजा और रुद्रको मोहमें डालनेकी चेष्टा करने लगा ॥ २९–३१ ॥ तदनन्तर उसने शिवजीको जीतनेके लिये दूसरा जाल रचा । वह महाबलवान् था, वीर था और त्रिपुर शत्रुकी समान बुद्धिमान् था, वह देवताओंसे अवध्य था, सैंकड़ों वरोंसे उन्मत्त होनेके कारण

स्त्रास्त्रैस्सपदि दितिजो जर्जरतनुः ॥ ३२ ॥ तदा याद्विष्यन्दात्क्षितितलगतैरन्धकगणैरतिव्याप्तं घोरं विकृतवदनं स्वात्मसदृशम्। दधत्कल्पांताग्निप्रतिमवपुषा भूतपतिना त्रिशूलेनोद्भिन्नस्त्रिपुररिपुणा दारुणतरम् ॥३३॥ यदा सैन्यात्सैन्यं पशुपतिहतादन्यदभवद्व्रणोत्थैरत्युष्णैः पिशितनिसृतैर्बिन्दुभिरलम्। तदा विष्णुर्योगात्प्रमथपतिमाहूय मतिमान् चकारोग्रं रूपं विकृतवदनं स्त्रैणमजितम् ॥३४॥ करालं संशुष्कं बहुभुजलताक्रांतकुपितो विनिष्क्रांता कर्णाद्रणशिरसि शंभोश्च भगवान् ३५ रणस्था सा देवी चरणयुगुलालंकृतमही स्तुता देवैस्सर्वैस्तदनु भगवान् प्रेरितमतिः। क्षुधार्ता तत्सैन्यं दितिजनिसृतं तच्च रुधिरं पपौ सात्युष्णं तद्रणशिरसि सूत्कर्दममलम् ॥ ३६ ॥ ततस्त्वेको दैत्यस्तदपि युयुधे शुष्करुधिरस्तलाघातैर्घोरैरशनिसदृशैर्जानुचरणैः। नखैर्वज्राकारैर्मुखभुजशिरोभिश्च गिरिशं स्मरन् क्षात्रं धर्मं स्वकुलविहितं शाश्वतमजम् ॥ ३७ ॥ रणे शांतः पश्चात्प्रमथपतिना भिन्नहृदयस्त्रिशूले संप्रोतो नभसि विधृतस्स्थाणुसदृशः। अधः कायश्शुष्कस्तपनकिरणैर्गलिततनुमाश्लासारैर्मेघैः पवनसहितैः क्लेदितवपुः ॥ ३८ ॥ विशीर्णशीतांशोस्तुहिनश

विवश होरहा था, जब अनेक शस्त्र अस्त्रोंसे उसका शरीर जर्जर होगया ३२ तब पृथ्वी पर गिरे हुए उसके रक्तकणोंसे बहुतसे अन्धक प्रकट होने लगे, तब अन्धकोंसे रणभूमि छागई, उस समय प्रलयकालीन भस्म करती हुई अग्निकी समान शरीर वाले भूतपति शम्भुने उस विकराल मुख वाले दैत्यको शूलसे बींध डाला ॥ ३३ ॥ जब पशुपतिकी मारी हुई सेनाके घावके गरम रुधिरसे दूसरी सेनायें प्रकट होने लगीं, तब मतिमान् विष्णुने अवसर देख प्रथमपति शिवको बुला अजित स्त्रीका विकृत कराल सूखे मुख वाला उग्र रूप बनाया, वह शिवजीके कानसे प्रकट हुई थी, भगवान् शिव भी उसकी भुजारूपी लताओं से कुपित हो दैत्योंका संहार करने लगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जब रणमें विराजमान उस देवीने अपने दोनों चरणोंसे पृथ्वीको अलंकृत किया, तब सब देवता उनकी स्तुति करने लगे । और भगवान् शम्भु उसकी मतिको प्रेरित करते हुए उसके साथ २ रहे, तब क्षुधापीड़ित उस देवीने उस सेनाको और असुरोंके निकलते हुए गरम रुधिरको पीना आरम्भ कर दिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर एक दैत्य अन्धक बचा, वह रुधिर सूख जाने पर भी स्वकुलोचित क्षात्रधर्मका स्मरण कर शिवके साथ अपने वज्रकी समान घोर थप्पड़ोंसे, जानुसे तथा चरणोंसे वज्राकार नाखूनोंसे, मुखसे, भुजाओं और मस्तकसे युद्ध करने लगा ॥३७॥ तब प्रमथपतिने उसको रणमें दबा उसकी छातीमें त्रिशूल भोंक उसको त्रिशूल पर ठूँठकी समान आकाशमें उठा लिया, उसका शरीर सूर्यकी किरणोंसे झुलस कर सूख गया, वायु और मेघोंने उसके शरीरको पिलपिला कर दिया, चन्द्रमा

कलाकारशकलैस्तथाभूतः प्राणांस्तदपि न जहौ दैत्यवृषभः। तदा तुष्टश्शंभुः परमकरुणावारिधिरसौ ददौ तस्मै प्रीत्या गणपतिपदं तेन विनुतः ॥३६॥ ततो युद्धस्यांते भुवनपतयस्सार्थरमणैःस्तवैर्नानाभेदैः प्रमथपतिमभ्यर्च्य विधिवत्। हरिब्रह्माद्यास्ते परमनुतिभिस्तुष्टुवुरलं नतस्कन्धाः प्रीता जय जय गिरं प्रोच्य सुखिताः॥४०। हरस्तैस्तैस्सार्द्धं गिरिवरगुहायां प्रमुदितो विसृज्यैतानंशान् विविधबलिना पूज्यदेवान्। चकाराग्र्यां क्रीडां गिरिवरसुतां प्राप्य मुदितां तथा पुत्रं घोराद्विघसवदनान्मुक्तमनघम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे अंधकवधोपाख्याने अंधकयुद्धवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यास उवाच। तस्मिन्महति संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे। शुक्रो दैत्यपतिर्विद्वान्भक्षितस्त्रिपुरारिणा ॥ १ ॥ इति श्रुतं समासान्मे तत्पुनर्ब्रूहि विस्तरात्। किं चकार महायोगी जठरस्थः पिनाकिनः ॥२॥ न ददाह कथं शम्भोश्शुक्रं तं जठरानलः। कल्पान्तदहनः कालो दीप्ततेजाश्च भार्गवः ॥ ३ ॥ विनिष्क्रांतः कथं धीमाञ्छंभोर्जठर पंजरात्। कथमाराधयामास कियत्कालं स भार्गवः ॥ ४ ॥ अथ च लब्धवान्विद्यां तां मृत्युशमनीं पराम्। का सा विद्या परा तात यया मृत्युर्हि

की समान किरणोंने भी उसको ऐंठा, तब भी उस दैत्यश्रेष्ठने अपने प्राण नहीं त्यागे, तब उसके स्तुति करने पर करुणाके समुद्र शिवने प्रसन्न होकर उसको गणपति (गणोंके अध्यक्षका) पद देदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तदनन्तर युद्धका अन्त होने पर लोकपालोंने अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे शिवकी विधिवत् पूजा की, और हरि ब्रह्मा आदिने भी प्रसन्न हो कन्धे झुका बड़े २ स्तोत्रोंसे शिवकी स्तुति की और फिर जय जय कर सुखी हुए ॥ ४० ॥ और शिवने उनके साथ पर्वतश्रेष्ठकी गुफामें जा अपने ही एक अंश उन पूज्य देवताओंका अनेक प्रकारकी भेटोंसे सत्कार किया फिर उनको अपने २ स्थान पर भेज दिया और आप गिरिवरसुतासे और विघसके मुखसे छूटे हुए पुत्र (नन्दीश्वर) से मिल कर श्रेष्ठ क्रीड़ा करने लगे ॥४१॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त

व्यासजीने कहा, कि-उस दारुण लोमहर्षण महासंग्राममें शम्भुने विद्वान् दैत्यगुरु शुक्राचार्यको निगल लिया ॥ १ ॥ यह बात मैंने संक्षेपसे सुनी, इस लिये आप उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये, कि-उन महायोगीने शम्भुके उदरमें जाने पर क्या किया ॥ २ ॥ और शम्भुकी जठराग्निने शुक्रको भस्म क्यों नहीं किया, भार्गव भी कल्पान्तकी अग्निकी समान थे, प्रचण्ड तेजस्वी, वह शम्भुके पेटरूपी पींजरेसे कैसे निकले थे और उन्होंने कितने समय तक शम्भुकी आराधना की थी ॥ ३ ॥ ४ ॥ और मृत्युका शमन करने वाली जो

प्रार्थते ॥ ५ ॥ लेभेऽन्धको गाणपत्यं कथं शुक्राद्विनिर्गतः। देवदेवस्य वै शंभोर्मुने-र्लीलाविहारिणः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वमशेषेण महाधीमन् कृपां कुरु। शिवलीलामृतं तात शृण्वतः कथयस्व मे ॥७॥ ब्रह्मोवाच। इति तस्य वचः श्रुत्वा व्यासस्यामित-तेजसः। सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ ८ ॥ सनत्कुमार उवाच। शृणु व्यास महाबुद्धे शिवलीलामृतं परम्। धन्यस्त्वं शैवमुख्योऽसि ममानन्दकरः स्वतः ॥९॥ प्रवर्तमाने समरे शंकरांधकयोस्तयोः। अनिर्भेद्यपविव्यूहगिरिव्यूहाधि-नाथयोः ॥ १० ॥ पुरा जयो बभूवापि दैत्यानां बलशालिनाम्। शिवप्रभावाद-भवत्प्रमथानां मुने जयः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वासीद्विवर्णो हि महादैत्योऽन्धकोसुरः। कथं स्यान्मे जय इति चिन्तापरोऽभवत् ॥१२॥ अपसृत्य ततो युद्धादंधकः पर-बुद्धिमान्। द्रुतमभ्यगमद्वीर एकलश्शुक्रसन्निधिम् ॥ १३ ॥ प्रणम्य स्वगुरुं काव्य-मवरुह्य रथाच्च सः। बभाषेदं विचार्याथ सांजलिर्नीतिवित्तमः ॥ १४ ॥ अंधक उवाच। भगवंस्त्वामुपाश्रित्य गुरोर्भावं वहामहे। पराजिता भवामो नो सर्वदा जयशालिनः ॥ १५ ॥ त्वत्प्रभावात्सदा देवान्समस्तान्सानुगान्वयम्। मन्यामहे

श्रेष्ठ विद्या शुक्रके पास थी वह मृत्युको दूर हटाने वाली विद्या क्या है ॥५॥ और लीलावश विहार करने वाले देवदेव शम्भुके गणोंके अध्यक्ष पदको अंधक ने किस प्रकार पाया था ॥ ६ ॥ हे महाधीमन् ! हे तात ! मैं शिवलीलामृत को सुनना चाहता हूँ, अतः इस सबका भली प्रकार मुझसे वर्णन करिये ७ ब्रह्माजीने कहा, कि—अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनको सुन कर सन-त्कुमारजी शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे ॥ ८ ॥ सनत्कुमार जीने कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् व्यासजी ! श्रेष्ठ शिवलीलाको सुनिये, आप शिवभक्तोंमें मुख्य हैं, अतः स्वतः मुझे बड़ा आनन्द देते हैं ॥९॥ जब शंकर अनिर्भेद्य पविव्यूह और अंधक गिरिव्यूह बना कर युद्ध कर रहे थे ॥ १० ॥ तब पहिले बली दैत्योंकी कुछ विजय भी हुई परन्तु हे मुने ! फिर शिवजी के प्रभाववश प्रमथोंकी विजय होने लगी ॥११॥ इन बातोंको सुन कर महादैत्य अंधकासुर विचारने लगा, कि-मेरी विजय किस प्रकार होगी ॥१२॥ फिर परमबुद्धिमान् वीर अंधक युद्धसे हट कर अकेला ही शुक्राचार्यके पास पहुँचा १३ उसने रथसे उतर कर अपने गुरु शुक्राचार्यजीको प्रणाम किया, फिर वह नीतिचतुर हाथ जोड़ कर शुक्राचार्यसे कहने लगा ॥ १४ ॥ अंधकने कहा कि—हे भगवन् ! हम आपको गुरु समझते हैं हम आपकी कृपासे सदा जीतते रहते हैं, कभी पराजित नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ हम आपके प्रभाववश शिव और इन्द्र आदि सब देवताओंको और उनके अनुयायियोंको तुच्छ तिनकेकी

हरोपेन्द्रमुखानपि हि कस्मात् ॥१६॥ अस्मत्तो बिभ्यति सुरास्सदा भवदनुग्रहात् गजा इव हरिभ्यश्च तार्क्ष्येभ्य इव पन्नगाः ॥ १७ ॥ अनिर्भेद्यं पविव्यूहं विविशुर्दैत्यदानवाः । प्रमथानीकमखिलं विधूय त्वदनुग्रहात् ॥ १८ ॥ वयं त्वच्छरणा भूत्वा सदा गा इव निश्चलाः । स्थित्वा चरामो निश्शंकमाजावपि हि भार्गव १९ रक्ष रक्षामितो विप्र प्रवव्य शरणागतान् । असुरान्शत्रुभिर्वीरैरर्दितांश्च मृतानपि २० प्रमथैर्भीमविक्रांतैः क्रांतान्मृत्युमप्राथिभिः । सूदितान्पतितान्पश्य हुंडादीन्मद्रणाग्रगान् ॥ २१ ॥ यः पीत्वा कणधूमं वै सहस्रं शरदां पुरा । त्वया प्राप्ता वरा विद्या तस्याः कालोऽयमागतः ॥ २२ ॥ अद्य विद्याफलं तत्ते सर्वे पश्यंतु भार्गव । प्रमथा असुरान्सर्वान्कृपया जीवयिष्यतः ॥२३॥ सनत्कुमार उवाच । इत्थमन्धकवाक्यं स श्रुत्वा धीरो हि भार्गवः । तदा विचारयामास दूयमानेन चेतसा ॥ २४ ॥ किं कर्तव्यं मयाद्यापि क्षेमं मे स्यात्कथं त्विति । सञ्जीवनीप्रयोगस्तु सर्वथानुचितो मम ॥ २५ ॥ विद्येयं शङ्करात्प्राप्ता तद्गणान् प्रति योजये । तद्रणे मर्दितान्वीरैः प्रमथैश्शंकरानुगैः ॥ २६ ॥ शरणागतधर्मोऽथ प्रवरस्सर्वतो हृदा । विचार्य शुक्रेण धिया तद्वाणी स्वीकृता तदा ॥ २७ ॥ किंचित्स्मितं तदा कृत्वा सोऽब्रवीद्दानवा-

समान समझते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सिंहोंसे हाथी डरते हैं और गरुड़से सर्प डरते हैं इसी प्रकार आपकी कृपाके कारण देवता सदा हमसे डरते रहते हैं १७ आपकी कृपासे दैत्य और दानव प्रमथोंकी सेनाको धुंगलकर अटूट पविव्यूहमें घुस गए थे ॥ १८ ॥ हे भार्गव ! इस प्रकार हम आपकी शरण लेकर युद्धमें भी सदा साँडोंकी समान निर्भय खड़े रहते हैं ॥ १९ ॥ परन्तु हे विप्र ! वीर शत्रुओंने जिन असुरोंको घायल कर दिया है और मार डाला है, उनको बचाकर हम युद्धस्थलसे भागे हुए शरणागतोंकी आप रक्षा करिये ॥२०॥ मृत्युको भी मसल डालने वाले भयंकर पराक्रमी प्रमथोंके द्वारा मारे और गिराये हुए मेरे श्रेष्ठ २ योधा हुण्ड आदिको देखिये ॥ २१ ॥ आपने हजारों वर्ष तक कणधूम पीकर जो विद्या (मृतसंजीवनी) पाई है, अब उसको दिखानेका समय आगया है ॥ २२ ॥ हे भार्गव ! प्रमथगण आज कृपापूर्वक असुरोंको जीवित करते हुये आपकी विद्याके फलोंको देखें ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी कहते कि-अंधकके इन वचनोंको सुन धैर्यवान् शुक्राचार्य दुःखित चित्तसे विचारने लगे कि-॥ २४ ॥ मुझे अब क्या करना चाहिये, मेरा कल्याण किस प्रकार होगा, यह विद्या मैंने शंकरसे प्राप्त की है, रणमें वीर शङ्करके गणोंसे मारे हुये राक्षसगणोंके ऊपर इस संजीविनी विद्याका प्रयोग करना मेरे लिये सर्वथा अनुचित है ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर शुक्राचार्यने शरणागत धर्मको सबसे श्रेष्ठ समझा और बुद्धिपूर्वक विचार कर इसी मनोवाणीको ठीक समझा ॥ २७ ॥

धिपम्। भार्गवश्शिवपादाब्जं स्मृत्वा स्वस्थेन चेतसा ॥ २८ ॥ शुक्र उवाच। यत्त्वया भाषितं तात तत्सर्वं तथ्यमेव हि। एतद्विद्योपार्जनं हि दानवार्थं कृतं मया॥२९॥ दुस्सहं कणधूमं वै पीत्वा वर्षसहस्रकम्। विद्येयमीश्वरात्प्राप्ता बंधूनां सुखदा सदा॥ ३० ॥ प्रमथैर्मथितान्दैत्यान्गणेऽहं विद्ययानया। उत्थापयिष्ये म्लानानि शस्यानि जलदस्तथा ॥ ३१ ॥ निर्व्रणान्नीरुजः स्वस्थान्सुप्तानेव पुनरुत्थितान्। मुहूर्तेऽस्मिन् हि द्रष्टासि दैत्यांस्तानुत्थितान्निजान् ३२ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्त्वा सोऽथकं शुक्रो विद्यामावर्तयत्कविः। एकैकं दैत्यमुद्दिश्य स्मृत्वा विद्येशमादरात् ॥ ३३ ॥ विद्यावर्तनमात्रेण ते सर्वे दैत्यदानवाः। उत्तस्थुर्युगपद्धोराः सुप्ता इव धृतायुधाः ॥ ३४ ॥ सदाभ्यस्ता यथा वेदास्समरे वा यथाम्बुदाः। श्रद्धयार्थास्तथा दत्ता ब्राह्मणेभ्यो यथापदि ॥३५॥ उज्जीवितांस्तु तान्दृष्ट्वा हुण्डादींश्च महासुरान्। विनेदुरसुरास्सर्वे जलपूर्णा इवांबुदाः ॥३६॥ रणोद्यताः पुनश्चासन्गर्जंतो विकटाननाः। प्रमथैस्सह निर्भीता महाबलपराक्रमाः ॥३७॥ शुक्रेणोज्जीवितान्दृष्ट्वा प्रमथा दैत्यदानवान्। विसिस्मिरे ततस्सर्वे नन्द्याद्या युद्ध-

फिर शुक्राचार्य स्वस्थ चित्तसे शिवजीके चरणकमलोंका स्पर्श कर मुस्कुरा कर दानवराजसे कहने लगे ॥ २८ ॥ शुक्राचार्यने कहा, कि-हे तात ! तुमने जो कहा, वह सत्य ही है, मैंने इस विद्या को दानवोंके लिये ही प्राप्त किया है॥ २९ ॥ मैंने दुःसह कणधूमको सहस्र वर्ष तक पीकर बन्धुओंको सुख देनेके लिये यह विद्या ईश्वर (शिव) से प्राप्त की है ॥ ३० ॥ इस विद्या के प्रभावसे मैं प्रमथ गणोंके मारे हुये दैत्योंको रणमें इस प्रकार उठाऊँगा जिस प्रकार मुरझाये हुये पौधोंको जलकी वर्षा करनेवाला मेघ उठाता है।३१। जिस प्रकार कोई सोतेसे उठता है, इसी प्रकार तुम अपने दैत्योंको घाव और रोगरहित अवस्थामें स्वस्थ हो इसी मुहूर्तमें उठते हुये देखोगे ॥३२॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-अन्धकसे इस प्रकार कह कर चतुर शुक्राचार्य आदरपूर्वक विद्या के स्वामी शङ्करका स्मरण करके एक एक दैत्य पर मृतसंजीवनीका प्रयोग करने लगे ॥ ३३ ॥ वे दैत्य दानव विद्याका प्रयोग करते ही सोये हुये की समान आयुध ले एक साथ उठ खड़े हुये ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार भली प्रकार अभ्यास किये हुये वेद उठ आते हैं और आकाशमें मेघ आजाते हैं और ब्राह्मणोंको दिया हुआ धन जैसे आपत्तिके समय काम आता है ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार असुर हुण्ड आदि बड़े२ असुरोंको फिर जीवित हुआ देखकर, जल से भरे हुये मेघोंकी समान गरजने लगे ॥३६॥ वे परम पराक्रमी दैत्य निर्भय हो विकट गर्जना करते हुये प्रमथोंके साथ फिर लड़नेके लिये उद्यत हो गये ३७ युद्धदुर्मद नन्दी आदि प्रमथगण शुक्राचार्यके द्वारा फिर जीवित किये हुए

दुर्मदाः ॥ ३८ ॥ विज्ञाप्यमेतं कर्मैतद्देवेशे शंकरेऽखिलम् । विचार्य बुद्धिमंतश्च ह्येवं तेऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ ३९ ॥ आश्चर्यभूते प्रमथेश्वराणां तस्मिंस्तथा वर्तति युद्धयज्ञे । असर्दितो भार्गवकर्म दृष्ट्वा शिलादपुत्रोऽभ्यगमन्महेशम् ।४०। जयेति चोक्त्वा जय-शीलमुग्रमुवाच नंदी कनकावदातम् । गणेश्वराणां रणकर्म देव देवैश्च लोकेश्वरैर् दुष्करं यत् ॥ ४१ ॥ तद्भार्गवेणाद्य कृतं वृथा नस्संजीवितांस्तान्हि मृतान्विपक्षान् । आवर्त्य विद्यां मृतजीवदात्रीमेकैकमुद्दिश्य सहेलमीश ।४२। तुहुण्डहुण्डादिककुंभ-जंभविपाकपाकादिमहासुरेन्द्राः यमालयादद्य पुनर्निवृत्ता विद्रावयंतः प्रमथांश्च-रंति ॥४३॥ यदि ह्यसौ दैत्यवराान्निरस्तान्संजीवयेद्वै पुनः पुनस्तान् । जयः कुतो नो भविता महेश गणेश्वराणां कुत एव शांतिः ॥ ४४ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्ये-वमुक्तः प्रमथेश्वरेण स नंदिना वै प्रमथेश्वरेशः । उवाच देवः प्रहसंस्तदानीं तं नंदिनं सर्वगणेश्वराणाम् ॥ ४५ ॥ शिव उवाच । नन्दिन्प्रयाहि त्वमितोऽतिमात्रं द्विजेन्द्रवर्यं दितिजांस्तमध्यात् । मध्यात्समुद्धृत्य तथानयाशु श्येनो यथा लावक-मंडजातम् ॥ ४६ ॥ सनत्कुमार उवाच । स एवमुक्तो वृषभध्वजेन ननाद नन्दी

दैत्यदानवोंको देख विस्मयमें पड़ गये ॥३८॥ वे बुद्धिमान् विचार कर आपस में कहने लगे, कि यह सारी करतूत देवेश शंकरसे कहनी चाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बड़े २ प्रमथाधीशोंको आश्चर्यमें डालने वाला रणयज्ञ चल रहा था, उस समय शुक्राचार्यके कर्मको न सह सकनेके कारण नन्दीश्वर शिवके पास चल दिये ॥ ४० ॥ फिर नन्दी जयके कारण शिवजीकी जय जय कर गण-राजोंके, इन्द्र आदिक देवताओंसे भी दुष्कर सुवर्णकी समान शुद्ध कर्मोंका वर्णन करने लगे ॥४१॥ फिर उन्होंने कहा, कि-हे ईश ! हमारे इस कर्मको शुक्राचार्यने मरे हुए विपक्षियोंमेंसे एक २ पर मृतजीवदात्री विद्याका प्रयोग कर उनको जीवित कर व्यर्थ कर दिया है ॥ ४२ ॥ तुहुंड, हुंड, कुम्भ, जम्भ, विपाक, पाक आदि बड़े बड़े असुरपति आज यमालयसे लौट कर प्रमथोंको भगाते हुए फिर रहे हैं ॥ ४३ ॥ अतः हे महेश ! यदि यह मारे हुए श्रेष्ठ २ दैत्यों को बारम्बार जीवित कर देंगे तो हमारी विजय किस प्रकार होसकेगी और गणेश्वरोंको सुख कैसे मिलेगा ॥ ४४ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-प्रमथनामक गणोंके अधिपति नन्दीने जब प्रमथेश्वरेश शिवसे इस प्रकार कहा, तब वह देव हँस उन सब गणोंके अधिपतिसे कहने लगे ॥ ४५ ॥ शिवजीने कहा, कि-हे नन्दिन् ! तुम शीघ्र जाओ ! और बाज जैसे लवा पक्षीको झपट कर उड़ता है, इसी प्रकार तुम द्विजेन्द्रवर्य शुक्राचार्यको दैत्योंके बीचसे झपट कर शीघ्र ही ले आओ ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-वृषभध्वजके इस प्रकार कहने पर नन्दी साँडकी समान रँभाये और सेनाको झंझोड़ कर जहाँ

वृषसिंहनादः । जगाम तूर्णं च विगाह्य सेनां यत्राभवद्भार्गववंशदीपः ॥ ४७ ॥ तं रक्ष्यमाणं दितिजैस्समस्तैः पाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः । विक्षोभ्य दैत्यान्बलवाञ्जहार काव्यं स नन्दी शरभो यथेभम् ॥ ४८ ॥ स्रस्तांबरं विच्युतभूषणं च विमुक्तकेशं बलिना गृहीतम् । विमोचयिष्यंत इवानुजग्मुः सुरारयस्सिंहरवांस्त्यजंतः ४९ दंभोलिशूलासिपरश्वधानामुद्दण्डचक्रोपलकंपनानाम् । नन्दीश्वरस्योपरि दानवेन्द्रा वर्षं ववर्षुर्जलदा इवोग्रम् ॥ ५० ॥ तं भार्गवं प्राप्य गणाधिराजो मुखाग्निना शस्त्रशतानि दग्ध्वा । आयात्प्रवृद्धेऽसुरदेवयुद्धे भवस्य पार्श्वे व्यथितारिपक्षः ५१ अयं स शुक्रो भगवन्नितीदं निवेदयामास भवाय शीघ्रम् । जग्राह शुक्रं स च देवदेवो यथोपहारं शुचिना प्रदत्तम् ॥ ५२ ॥ न किंचिदुक्त्वा स हि भूतगोप्ता चिक्षेप वक्त्रे फलवत्कवीन्द्रम् । हाहारवस्तैरसुरैस्समस्तैरुच्चैर्विमुक्तो हहहेति भूरि ॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे अंधकयुद्धे शुक्रनिगीर्णवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

व्यास उवाच । शुक्रे निगीर्णे रुद्रेण किमकार्षुश्च दानवाः । अंधकेशा महावीरा वद तत्त्वं महामुने ॥१॥ सनत्कुमार उवाच । काव्ये निगीर्णे गिरिजेश्वरेण

भार्गववंशप्रदीप शुक्राचार्य थे तहाँ पहुँच गए ॥ ४७ ॥ तहाँ बहुतसे दैत्य हाथमें पाश तलवार वृक्ष पत्थर लेकर शुक्राचार्यकी रक्षा कर रहे थे बलवान् नन्दी उन सबको क्षुब्ध कर शरभ जैसे हाथीको उठा कर ले चलता है, तैसे शुक्राचार्यको उठा कर चलने लगे ॥ ४८ ॥ उस समय शुक्राचार्यका वस्त्र खिसक गया, आभूषण गिरने लगे, केश खुल गये थे ऐसे शुक्राचार्यको छुटाने के लिये दैत्य सिंहोंकी समान दहाड़ते हुये चले ॥ ४९ ॥ दानवेन्द्र वज्र, शूल, तलवार, फरशे बरेंटी और गोफनको नन्दीश्वरके ऊपर मेघोंकी समान उग्र वर्षा बरसाने लगे ॥ ५० ॥ परन्तु गणाधिराजने भार्गवको दबोचनेके बाद भयङ्कर देवासुरसंग्राममें अपने मुखकी अग्निसे सैकड़ों शस्त्रोंको भस्म कर डाला और शत्रुपक्षको व्यथित करते हुये शिवके समीप आपहुँचे ॥ ५१ ॥ और शीघ्र ही शिवसे कहा, कि-हे भगवन् ! यह वह शुक्राचार्य हैं ! तब उन देवदेवने पवित्र पुरुषकी दी हुई भेंटकी समान शुक्रको ग्रहण कर लिया ॥५२॥ और कुछ न कह कर प्राणियोंके रक्षक शिवने फलकी समान कवीन्द्र शुक्राचार्यको मुखमें डाल लिया उस समय समस्त असुरोंने चीख चीख कर हाय हाय ह ह कहा ॥ ५३ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ ❀ ॥

व्यासजीने कहा, कि—हे महामुने ! अंधक जिनका स्वामी था, उन महावीर दैत्योंने उस समय क्या किया, जब कि—महादेवजी शुक्राचार्यको निगल गये थे ॥ १ ॥ सनत्कुमार जीने उत्तर दिया, कि—सूँड कट जाने पर

दैत्या जयाशारहिता बभूवुः। हस्तैर्विमुक्ता इव वारणेन्द्राः शृङ्गैर्विहीना इव गोवृषाश्च ॥२॥ शिरोविहीना इव देहसंघा द्विजा यथा चाध्ययनेन हीनाः। निरुद्यमास्सत्त्वगणा यथा वै यथोद्यमा भाग्यविवर्जिताश्च ॥ ३ ॥ पत्या विहीनाश्च यथैव यावा यथा विपत्त्राः खलु मार्गणौघाः। आयूंषि हीनानि यथैव पुण्यैर्व्रतैर्विहीनानि यथा श्रुतानि ॥ ४ ॥ विना यथा वैभवशक्तिमेकां भवंति हीनास्स्व फलैः क्रियौघाः। यथा विशूराः खलु क्षत्रियाश्च सत्यं विना धर्मगणो यथैव ॥५॥ नंदिना च हृते शुक्रे गिलिते च विषादिना। विषादमगमन्दैत्या यतमानरणोत्सवाः ॥६॥ तान् वीक्ष्य विगतोत्साहानंधकः प्रत्यभाषत। दैत्यांस्तुहुण्डहुण्डादीन्महाधीरपराक्रमः ॥ ७ ॥ अंधक उवाच। कवि विक्रम्य नयता नन्दिना वंचिता वयम्। तनुर्विना कृताः प्राणास्सर्वेषामद्य नो ननु ॥ ८ ॥ धैर्यं वीर्यं गतिः कीर्तिस्सत्त्वं तेजः पराक्रमः। युगपन्नो हृतं सर्वमेकस्मिन् भार्गवे हृते ॥ ९ ॥ धिगस्मान् कुलपूज्यो यैरेकोऽपि कुलसत्तमः। गुरुस्सर्वसमर्थश्च त्राता त्रातो न चापदि ॥ १० ॥ तद्यूयमविलंब्येह युध्यध्वमरिभिस्सह। वीरैस्तैः प्रमथैर्वीराः स्मृत्वा गुरुपदांबुजम् ॥११॥

हाथियोंकी जो दशा होती है, सींग टूट जाने पर साँडोंकी जो दशा होती है, शिर कट जाने पर धड़की जो दशा होती है, अध्ययन छोड़ने वाले द्विजोंकी जो दशा होती है, उद्यमहीन प्राणियोंकी जो दशा होती है, उद्यम करने वाले भाग्यहीनोंकी जो दशा होती है, पतिरहित हुई विधवा नारियोंकी जो दशा होती है, फलके रहित बाणोंकी जो दशा होती है, पुण्यहीन अवस्थाकी जो दशा होती है, अनुष्ठानरहित वेदाध्ययनकी जो दशा है, वैभवहीन कर्मोंकी जो दशा होती है, शूरतारहित क्षत्रियोंकी जो दशा होती है और सत्यरहित धर्मकी जो दशा होती है, इसी प्रकार जब गिरिजानाथने शुक्राचार्यको निगल लिया, तब दैत्य जयकी आशा छोड़ बैठे और उनकी दशा बड़ी दीन होगई २-५ रणोत्सव मनाते हुये दैत्य, जब नन्दी शुक्राचार्यको छीनकर लेगये और शिवजी उनको निगल गए तब बड़े खिन्न हुए ॥ ६ ॥ उनको उत्साहरहित देख कर बड़ा धैर्य रखकर पराक्रम करनेवाला अंधक तुहुण्ड हुण्ड आदि दैत्योंसे कहने लगा ।७। अंधकने कहा, कि—नन्दीने शुक्राचार्यजीको उठाकर हमें ठग लिया, हमारी दशा प्राणहीन शरीरोंकी सी होरही है ॥८॥ एक शुक्राचार्यजीके चले जानेसे एक साथ ही हमारा धैर्य, वीर्य, गति, कीर्ति, सत्त्व, तेज, पराक्रम, सब ही कुछ चला गया ॥ ९ ॥ हमैं धिक्कार है, कि—जो हमारे कुलपूज्य थे एक ही थे, कुलसत्तम थे और सर्वसमर्थ गुरु थे तथा हमारे रक्षक थे, आपत्ति पड़ने पर हम उनकी रक्षा न कर सके ॥१०॥ अब हे वीरों ! तुम गुरुजीके चरणकमलोंका स्मरण कर विना विलम्ब शत्रु वीर प्रमथोंके साथ युद्ध करो ।११।

गुरोः काव्यस्य सुखदौ स्मृत्वा चरणपंकजौ । सूदयिष्याम्यहं सर्वान् प्रमथान् सह नन्दिना ॥ १२ ॥ अथैतान् विवशान् हत्वा सहदेवैः सवासवैः । मोचयिष्यामि जीवं योगीव कर्मतः ॥१३॥ स चापि योगी योगेन यदि नाम स्वयं प्रभुः । शरीरात्तस्य निर्गच्छेद्रक्ष्माकं शेषपालिताः ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्यन्धकवचः श्रुत्वा दानवा मेघनिःस्वनाः । प्रमथा निर्दयाः प्राहुर्मर्तुं कृतनिश्चयाः १५ सत्यायुषि न नो जातु शक्ताः स्युः प्रमथा बलात् । अनायुषि किं गत्वा त्यक्त्वा स्वामिनमाहवे ॥ १६ ॥ ये स्वामिनं विहायाजौ बहुमानधना नराः यान्ति ते यान्ति नियतमन्धतामिस्रमालयम् ॥ १७ ॥ अयशस्तमसा ख्यातिं मलिनीकृत्य भूमिनः । इहामुत्रापि सुखिनो न स्युर्भग्ना रणाजिरे ॥१८॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किं तीर्थपरिमज्जनैः । धरातीर्थे यदि स्नानं पुनर्भवमलापहे ॥ १९ ॥ संधार्यैतन्महाकार्यं दैत्यास्ते दनुजास्तथा । ममंथुः प्रमथानाजौ रणभेरीं निनाद्य च २०॥ तत्र बाणासिवज्रौघैः कठिनैश्च शिलामयैः । भुशुण्डिभिंदिपालैश्च शक्तिभल्लपरश्वधैः ॥ २१ ॥ खट्वांगैः पट्टिशैश्शूलैर्लकुटैर्मुशलैरलम् । परस्परमभिघ्नन्तः प्रचक्रुः कदनं महत् २२

मैं सुखदायक गुरु शुक्राचार्यजीके चरणकमलोंका स्मरण करके नन्दीसहित सकल प्रमथोंको मार डालूँगा ॥ १२ ॥ और मैं आज इन्द्र सहित सब देवताओंको विवश कर मार डालूँगा और जिस प्रकार योगी जीवको कर्मबन्धनसे छुड़ा देता है इसी प्रकार शुक्राचार्यको छुड़ा लूँगा ॥ १३ ॥ वह शुक्राचार्य भी योगी हैं, इस लिये वह प्रभु यदि योगके प्रभावसे शिवके शरीरसे निकल आये तो हममेंसे जो बचे हुए हैं, उन सबकी रक्षा होजायगी ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-अंधककी इन बातोंको सुनकर दानव मेघोंकी समान गर्जना करने लगे और उन्होंने मरनेका निश्चय कर लिया और कहा, कि—यद्यपि प्रमथ बड़े निर्दय हैं, तथापि यदि हमारी आयु बाकी है तो प्रमथ हमसे कभी बली न पड़ेंगे और यदि हमारी आयु नहीं रही है, तो भी हमें स्वामीको युद्धमें छोड़ कर जानेसे क्या मिलेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ बहुतसे मान और धनसे सम्पन्न जो प्राणी स्वामीको छोड़ कर जाते हैं वे अंधतामिस्र नरकमें पड़ते हैं ॥ १७ ॥ जो रणभूमिको छोड़ कर भाग जाते हैं वे अपकीर्तिकी कालिमासे अपनी प्रसिद्धिको मलिन कर लेते हैं, उनको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ॥ १८ ॥ यदि पुनर्जन्मको दूर करने वाले धरातीर्थमें—(रणतीर्थमें)-स्नान कर लिया जाय तो दान तप और तीर्थस्नानका फल मिल जाता है ॥ १९ ॥ उनके इस वचनको मानकर दैत्य और दानव रणमें रणभेरी बजा प्रमथोंको मारने लगे ॥ २० ॥ और बाण तलवार, कड़े पत्थरके वज्र, गोफन, तोप, साँग, भाले, फरसे, खट्वांग, पटे, शूल, लकड़ी और मूसलों

कार्मुकाणां विकृष्टानां पतता च पतत्रिणाम् । भिन्दिपालभुशुण्डीनां क्षेपिणीनां रवोऽभवत् ॥ २३ ॥ रणतूर्यनिनादैश्च गजानां बृंहितैः । हेषारवैर्हयानां च महान् कोलाहलोऽभवत् ॥ २४ ॥ आतस्थे स्वनैरवापूरि द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । अभीरूणां च भीरूणां महारोमोद्गमोऽभवत् ॥२५॥ गजवाजिमहारावस्फुटशब्दश्रुतिनि च । भग्नध्वजपताकानि क्षीणप्रहरणानि च ॥ २६ ॥ रुधिरोद्गारचित्राणि व्यश्वहस्तिरथानि च । पिपासितानि सैन्यानि मुमूर्च्छुरुभयत्र वै ॥ २७ ॥ अथ ते प्रमथा वीरा नंदिप्रभृतयस्तदा । बलेन जघ्नुरसुरान्सर्वान्प्रापुर्जयं मुने ॥२८॥ दृष्ट्वा सैन्यं च प्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः । दुद्राव रथम स्थाय स्वयमेवांधको गणान् ॥ २९ ॥ शरावात-प्रभुक्तैस्तैर्वज्र हतैर्गणा इव । प्रमथा नेशिरे च क्षीणतोया इव तोयदाः ॥ ३० ॥ यांतमायांतमालोक्य दूरस्थं निकटस्थितम् । प्रत्येकं रामसंख्या भिविव्याधेषुभिः रन्धकः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा सैन्यं भज्यमानमन्धकेन बलीयसा स्कन्दो विनायको नन्दी सोमनन्द्यादयः परे ॥ ३२ ॥ प्रमथाः प्रबला वीराश्शंकरस्य गणा निजाः । चुक्रुधुस्समरं चक्रुर्विचित्रं च महाबलाः ॥३३॥ विनायकेन स्कन्देन नन्दिना सामनन्दिना ।

से प्रहार करते हुए घोर संहार करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ खिचते हुए धनुषोंका, गिरते हुए बाणोंका, छूटती हुई गोफन और तोपोंका शब्द होने लगा २३ रणकी तुरहियोंके बजनेसे, हाथियोंकी चिघाड़ोंसे और घोड़ोंके हिनहिनानेसे बड़ा कोलाहल होने लगा ॥ २४ ॥ इन बड़े २ शब्दोंसे स्वर्ग और भूमिके बीचका भाग भर गया उस समय डरपोक और शूर दोनोंके रोंगटे खड़े हो गए ॥ २५ ॥ दोनों ओरकी पियासी सेनाएँ हाथी घोड़ोंके बड़े २ सन्नाटा करने वाले शब्दोंसे टूटी हुई ध्वजा पताका और आयुधोंसे, रुधिरके विचित्र फुहारोंसे और हाथी घोड़े तथा रथोंसे रहित होजानेके कारण मूर्छित होने लगीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे मुने ! इसके पीछे नन्दी आदि प्रमथ वीर बल पूर्वक सब असुरोंको मारने लगे और जीतने लगे ॥२८॥ जब अंधकने देखा कि-प्रमथ सेनाको भगा रहे हैं, तब वह अपने आप ही रथ पर चढ़ कर शिवगणों पर झपटा ॥ २९ ॥ जैसे वज्रपातसे पर्वत नष्ट होने लगते हैं, इसी प्रकार प्रमथ जलहीन मेघोंकी समान, उस बाणवर्षाके कारण युद्धस्थलसे नष्ट होने लगे ॥ ३० ॥ अंधक जाते हुए, आते हुए, दूर खड़े हुए और पास खड़े हुये को देख उनके रोम रोमको बाणवर्षासे बींधने लगा ॥३१॥ बलवान् अंधकके द्वारा सेनाको भग्न होती देख स्कन्द विनायक नन्दी सोमनन्दी तथा दूसरे प्रबल प्रमथवीर जो शंकरके निजगण थे वे महाबली क्रोधमें भर कर विचित्र युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥३३॥ विनायक स्कन्द नन्दी सोमनन्दी वीर नैगमेय बली-वैशाख आदि उग्रगणोंने त्रिशूल शक्ति बाणकी धाराबाही वर्षा कर

वं रेण नैगमेयेन वैशाखेन बलीयसः ॥ ३४ ॥ इत्याद्यैस्तु गणैरुग्रैरंधकोऽप्यन्धकीकृतः । त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासंपातपातिभिः ॥ ३५ ॥ ततः कोलाहलो जातः प्रमथासुरसैन्ययोः । तेन शब्देन महता शुक्रश्शम्भूदरे स्थितः ॥ ३६ ॥ छिद्रान्वेषी भ्रमन्सोऽथ विनिकेतो यथानिलः । सप्तलोकान्सपातालान् रुद्रदेहे व्यलोकयत् ३७ ब्रह्मनारायणेन्द्राणां सादित्याप्सरसां तथा । भुवनानि विचित्राणि युद्धं च प्रमथासुरम् ॥३८॥ स वर्षाणां शतं कुक्षौ भ्रमन्नपि परितो भ्रमन् । न तस्य ददृशे रंध्रं शुचे रंध्रं खलो यथा ॥३९॥ शांभवेनाथ योगेन शुक्ररूपेण भार्गवः । इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शम्भोर्जठरपञ्जरात् ॥ ४० ॥ निष्क्रान्तो लिङ्गमार्गेण प्रणनाम ततश्शिवम् । गौर्या गृहीतः पुत्रार्थं तद्विघ्नेश्वरीकृतः ॥४१॥ अथ काव्यं विनिष्क्रान्तं शुक्रमार्गेण भार्गवम् । दृष्ट्वोवाच महेशानो विहस्य करुणानिधिः ॥ ४२ ॥ महेश्वर उवाच । शुक्रवन्निस्सृतो यस्माल्लिंगान्मे भृगुनन्दन । कर्मणा तेन शुक्रस्त्वं मम पुत्रोऽसि गम्यताम् ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्येवमुक्तो देवेन शुक्रोऽर्कसदृशद्युतिः । प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव विहिताञ्जलिः ॥ ४४ ॥ शुक्र उवाच । अनन्तपादस्त्वमनन्त-

---

अंधकको अंधा कर दिया ॥ ३४ ॥ उस समय प्रमथ और असुरोंकी सेनाओं में बड़ा भारी कोलाहल मचा, उस बड़े भारी शब्दसे शम्भुके पेटमें पड़े हुए शुक्राचार्य घरहीन वायुकी समान छिद्र ढूंढते हुये शम्भुके उदरमें चक्कर काटने लगे, तहाँ उन्होंने रुद्रके देहमें पातालसहित सातों लोकोंको देखा ॥ ३५–३७ ॥ तथा ब्रह्मा नारायण इन्द्र और आदित्य तथा अप्सराओंके भी विचित्र भुवनोंको देखा तथा प्रमथासुरयुद्धको भी देखा ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार दुष्ट पुरुषको पवित्र पुरुषका कोई छिद्र नहीं दीखता, इसी प्रकार सौ वर्ष तक घूमने पर शंभुके पटमें भी शुक्राचार्यको कोई छिद्र न मिला ॥ ३९ ॥ फिर शुक्राचार्यने शांभव योगसे एक श्रेष्ठ मन्त्रका जप किया और शुक्ररूपसे शंभुके पेट-पींजरेमेंसे लिंगमार्गके द्वारा निकल आये, तब उन्होंने शिवको प्रणाम किया उन्होंने उनको मंगलोंका ईश्वर बना दिया तब गौरीने उनको पुत्ररूप में ग्रहण कर लिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ करुणानिधि शंकर वीर्यमार्गसे भार्गव को निकला हुआ देख हँस कर कहने लगे ॥ ४२ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे भृगुनन्दन ! तुम शुक्रकी समान मेरे लिंगसे निकले हो, इस कर्मसे तुम शुक्र कहलाओगे, अब तुम मेरे पुत्र होगये अतः अब यथेष्ट चले जाओ ॥ ४३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जब महादेवजीने इस प्रकार कहा, तब सूर्यकी समान कान्तिमान् शुक्राचार्य शिवको प्रणाम कर हाथ जोड़ शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा, कि—आपके अनन्त पैर हैं और सकल मूर्तियोंमें आप व्याप्त हैं आपके अनेक शिर हाथ और नेत्र हैं, मैं आपकी

मूर्तिरनन्तमूर्द्धाक्षिकरशिरश्च ह्यनन्तबाहुः कथमीदृशं त्वां स्तोष्ये ह नुत्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ ४५ ॥ त्वमष्टमूर्त्तिस्त्वमनन्तमूर्त्तिस्त्वमिष्टदः सर्वसुरासुराणाम् । अनिष्टदृष्टश्च विमर्दकश्च स्तोष्ये ह नुत्यं कथमीदृशं त्वाम् ॥४६॥ सनत्कुमार उवाच । इति स्तुत्वा शिवं शुक्रः प्रणम्य शिवाज्ञया । विवेश दानवानीकं मेघमालां यथा शशी ॥ निगीर्णनमिति प्रोक्तं शङ्करेण कवे रणे । शृणु मन्त्रं च तं जप्तो यश्शंभोः कविनोदरे ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शुक्रनिगीर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार उवाच । ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिंगललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहंत्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे वेदान्तगाय तपोंतगाय पशुपतये व्यंगाय

किस प्रकार स्तुति करूँ, मैं तो आपको शिर झुकाकर स्तुति करता हूँ ॥४५॥ आपकी आठ मूर्तियें हैं अनन्त मूर्तियें हैं आप देवता और असुर सबको ही इष्ट वस्तुएँ देते हैं और अनिष्टदृष्टिसे देखने पर आप संहार कर डालते हैं, ऐसे स्तुत्य आपकी मैं किस प्रकार स्तुति करूँ ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-शुक्राचार्य इस प्रकार शिवस्तुति कर शिवकी आज्ञा पा उनको प्रणाम कर मेघमालामें चन्द्रमाके प्रवेश करनेकी समान फिर दानवसेनामें चले गये ४७ शङ्कर रणमें शुक्राचार्यको जिस प्रकार निगल गये थे, वह सब तुमसे कहा, अब शुक्राचार्यने शम्भुके उदरमें जिस मन्त्रका जप किया था उसको तुम सुनो ॥४८॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सनत्कुमारजीने कहा, कि-ॐ देवताओंके ईश्वर, सुर और असुरोंके वन्दनीय, भूत और भविष्यत्के महादेव, हरित और पिंगल नेत्रोंसे अलंकृत, प्रबल बुद्धिमान् व्याघ्रका चर्म ओढ़ने वाले, अग्निस्वरूप, तीनों लोकोंके उत्पत्तिस्थान ईश्वर, पापोंका हरण करने वाले, हरिनेत्र, प्रलयाग्निरूप, गणोंके ईश्वर, लोकोंका पालन करनेवाले, महाभुज, महाहस्त, शूलको धारण करनेवाले बड़ी २ डाढवाले, महेश्वर, काल, अव्यय, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सबकी आत्मा, सबको उत्पन्न करने वाले, सर्वव्यापी, मृत्युको दूर करनेवाले, पारियात्र-पर्वत पर व्रत धारण करने वाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपके अन्त तक पहुँचनेवाले पशु-(जीवोंके)-अधिपति, विशिष्ट अङ्गवाले, शूलपाणि, वृषकेतु, पापहरण करने वाले, जटाधारी, शिखण्डको धारण करने

शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखंडिने लकुटिने महायशसे भूतेश्वराय गुहा-वासिने वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्यनिभाय स्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिन्दमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णो दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशांपतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तंभकाय वसूनां स्तंभकाय क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेतिसमाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्वताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्यनिनादिने सर्वबाधाविमोचनाय बंधनाय सर्वधारिणे धर्मोत्तमाय पुष्पदंतायापि भागाय मुखाय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीमपराक्रमाय ॐ नमो नमः ॥ सनत्कुमार उवाच । इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शुक्रो जठरपंजरात् । निष्क्रान्तो लिंगमार्गेण शम्भोश्शुक्रमिवोत्कटम् ॥ १ ॥ गौर्या गृहीतः पुत्रार्थं विश्वेशेन ततः कृतः ।

वाले लकुटको धारण करनेवाले, महाकीर्तिमान , भूतेश्वर, अन्तःकरणरूपी गुफा में रहने वाले, वीणा और पणवकी ताल वाले, मृत्युरहित, दर्शनीय, बालसूर्य की समान रूपवान्, श्मशानवासी, भगवान्, उमापति शत्रुका दमन करने वाले, भगकी आँखका नाश करने वाले, पूषाके दाँत तोड़ने वाले, क्रूर कतरनी वाले, पाशधारी, प्रलयके काल, उल्कामुख, अग्निकेतन, मुनि, दीप्त, प्रजापति उन्नति देने वाले सब लोकोंकी उत्पत्ति करने वाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकसत्तम, वामदेव, वाणीको चतुरता प्रदान करने वाले, वाममार्गमें भिक्षुरूप शुद्ध भिक्षुक, जटाधारी, ब्रह्मचारी, इन्द्रके हाथको सुन्न करने वाले, वसुको स्तंभित करने वाले, यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल मेधावी, मधुकर, चल, वनमें रहने वाले; वाजसनेतिसमाश्रमपूजित जगद्धाता जगत्कर्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूलोक भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहने वाले, पञ्चमहाभूत तथा उनकी तन्मात्राओंके कर्ता, सूर्य चन्द्र अग्निस्वरूप तीन नेत्र वाले, अनेक रूपोंमें व्याप्त, दशहजार सूर्योंकी समान तेजस्वी, सब प्रकारके बाजोंको बजाने वाले सब, प्रकारकी बाधाओंसे मुक्त करने वाले, बन्धन, सबको धारण करने वाले उत्तम धर्म वाले, पुष्पदन्त, भागरूप, मुख्य, सर्वहर सुवर्णकी समान कान वाले, मुक्तिके द्वाररूप, भीम और भीमपराक्रमी शङ्करको प्रणाम हो ॥ सनत्कुमार जी कहते हैं, कि—भार्गव इस मन्त्रश्रेष्ठको जप कर शंभुके पेटपींजरेसे लिंगमार्गके द्वारा शुक्रकी समान निकले थे ॥ १ ॥ गौरीने उनको पुत्ररूपमें ग्रहण किया था और विश्वेश शिवने उनको अजर और अमर कर

अजरश्चामरः श्रीमान्द्वितीय इव शंकरः ॥ २ ॥ त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु समतीतैर्मही-
तले । महेश्वरात्पुनर्जातः शुक्रो वेदनिधिर्मुनिः ॥ ३ ॥ ददर्श शूले संशुष्कं ध्यायंतं
परमेश्वरम् । अंधकं धैर्यसंपन्नं दानवेशं तपस्विनम् ॥ ४ ॥ महादेवं विरूपाक्षं
चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् । अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकंठं पिनाकिनम् ॥ ५ ॥ वृषभाक्षं
महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम् । कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम् ॥ ६ ॥ विरूपं
गिरिशं भीमं स्रुक्किणं रक्तवाससम् । योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम् ७
गूढव्रतं गुप्तमंत्रं गंभीरं भावगोचरम् । अणिमादिगुणाधार त्रिलोकैश्वर्यदाय-
कम् ॥ ८ ॥ वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम् । महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै
महेश्वरम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यद्रावणं लुब्धं लुब्धकं यज्ञसूदनम् । कृत्तिकानां सुतैर्युक्त-
मुन्मत्तं कृत्तिवाससम् ॥ १० ॥ गजकृत्तिपरीधानं क्षुब्धं भुजगभूषणम् । दत्तालंबं
च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम् ॥ ११ ॥ अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम् ।
भस्मांगं जटिलं शुद्धं भेरुंडशतसेवितम् ॥ १२ ॥ भूतेश्वरं भूतनाथं पंचभूताश्रितं
खगम् । क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चंडीशं चण्डिकाप्रियम् ॥ १३ ॥ चण्डतुंडं गरुत्मंतं

दिया था। तब वह श्रीमान् शुक्राचार्य दूसरे शङ्करकी समान शोभा लगे थे २ जब तीन सहस्र वर्ष बीत गए तब महेश्वरसे शुक्राचार्य पृथ्वी पर फिर प्रकट हुए थे और वेदनिधि मुनि होगये थे ॥ ३ ॥ उन्होंने देखा, कि—अंधक शूल पर टँगा हुआ है, और वह धैर्यवान् तपस्वी दानवेश परमेश्वर शिवका ध्यान कर रहा है, सूख गया है॥ ४ ॥ (वह १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण कर रहा था) महादेव, विरूपाक्ष, चन्द्रशेखर, अमृत, शाश्वत, स्थाणु, नीलकण्ठ, पिनाकी, वृषभाक्ष, महाज्ञेय, पुरुष, सर्वकामद, कामारि, कामदहन, कामरूप, कपर्दी, विरूप, गिरीश भीम, स्रक्की, रक्तवासा, योगी, कालदहन, त्रिपुरघ्न, कपाली, गूढ़व्रत, गुप्तमन्त्र, गम्भीर, भावगोचर, अणिमादिगुणाधार, त्रिलोकैश्वर्यदायक, वीर, वीरहण, घोर, विरूप, मांसल पटु, महामांसाद उन्मत्त भैरव, महेश्वर, त्रैलोक्यद्रावण, लुब्ध लुब्धक, यज्ञसूदन कृत्तिकापुत्रसे युक्त, उन्मत्त, कृत्तिवासा, गजकृत्तिपरीधान, क्षुब्ध भुजङ्ग, भूषण दत्तालम्ब, वेताल घोर शाकिनीपूजित, अघोर, घोरदैत्यघ्न, घोरघोष वनस्पति, भस्माङ्ग, जटिल शुद्ध, भेरुण्डशतसेवित, भूतेश्वर, भूतनाथ, पञ्चभूताश्रित, खग, क्रोधित, निष्ठुर चण्ड, चण्डीश, चण्डिकाप्रिय, चंडतुंड, गरुत्मान्, निस्त्रिंश, शवभोजन, लेलिहान, महारौद्र, मृत्यु, मृत्युके अगोचर, मृत्युकी भी मृत्यु, महासेन, श्मशानवासी, अरण्यवासी, राग, विराग, रागांध, वीतराग शतार्चिष, सत्त्व, रज, तम, धर्म, अधर्म, वासवानुज, सत्य, असत्य, सद्रूप, असद्रूप, अहेतुक, अर्धनारीश्वर, भानु, भानुकोटिशतप्रभ, यज्ञ, यज्ञपति, रुद्र, ईशान, वरद, शिव

निस्त्रिंशं शवभोजनम्। लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योरगोचरम् ॥ १४ ॥ मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम्। रागं विरागं रागांधं वीतरागं शतार्चिषम् ॥ १५ ॥ सत्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम्। सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम् ॥ १६ ॥ अर्द्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्। यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम् ॥ १७ ॥ अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः। शिवस्य दानवो ध्यायन्मुक्तस्तस्मान्महाभयात् ॥ १८ ॥ दिव्येनामृतवर्षेण सोऽभिषिक्तः कपर्दिना। तुष्टेन मोचितं तस्माच्छूलाग्रादवरोपितः ॥ १९ ॥ उक्तश्चाथ महादैत्यो महेशानेन सोऽन्धकः। असुरस्तोत्यपूर्वं यत्कृतं सर्वं महात्मना ॥२०॥ ईश्वर उवाच भो भो दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि नियमेन नियमेन च। शौर्येण तव धैर्येण वरं वरय सुव्रत २१ आराधितस्त्वया नित्यं सर्वनिर्धूतकल्मषः। वरदोऽहं वरार्हस्त्वं महादैत्येन्द्रसत्तम ॥२२॥ प्राणसंधारणादस्ति यच्च पुण्यफलं तव। त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु तेनास्तु तव निर्वृतिः ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच। एतच्छ्रुत्वांधकः प्राह वेपमानः कृतांजलिः। भूमौ जानुद्वयं कृत्वा भगवंतमुमापतिम् ॥ २४ ॥ अंधक उवाच। भगवन्त्यन्मयोक्तोऽस्मि दीनो हीनः परात्परः। हर्षगद्गदया वाचा मया पूर्वं रणाजिरे २५ यद्यत्कृतं विमूढत्वात्कर्म लोकेषु गर्हितम्। अजानता त्वां तत्सर्वं प्रभो मनसि मा कृथाः ॥२६॥ पार्वत्यामपि दुष्टं यत्कामदोषात्कृतं मया। क्षम्यतां मे महादेव कृपणो

इस प्रकार वह दानव परमात्माकी एक सौ आठ मूर्तियोंका ध्यान करता हुआ महाभयसे मुक्त होगया ॥ ५—१८ ॥ शङ्करने प्रसन्न होकर उसको अमृतमयी दृष्टिसे देखा और सन्तुष्ट होकर उसको शूलकी नोक परसे उतार लिया ॥ १९ ॥ फिर महात्मा महेश उस महादैत्यको समझा कर सब बातें कहने लगे ॥ २० ॥ ईश्वरने कहा, कि-हे दैत्येन्द्र ! मैं तुम्हारे दम नियम शूरता और धीरतासे सन्तुष्ट हुआ हूँ, अतः हे सुव्रत ! तुम वर माँग लो ॥ २१ ॥ तुमने मेरी आराधना कर अपने सब पापोंको नष्ट कर लिया है, इस लिये हे महादैत्येन्द्रसत्तम ! मैं तुम्हें वरदानके योग्य समझ कर वरदान देना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ तुमने तीन हजार वर्ष तक प्राणधारण किये रह कर जो पुण्य प्राप्त किया है उससे तुम्हें सुख मिलना चाहिये ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-इस बातको सुन कर उस दैत्यने पृथ्वीमें दोनों घुटने टेक दिये और हाथ जोड़ कर काँपता हुआ भगवान् उमापतिसे कहने लगा ॥ २४ ॥ अंधकने हर्षगद्गद वाणीमें कहा, कि-हे भगवन् ! मैं बड़ा दीन हीन हूँ और आप श्रेष्ठ हैं, मैंने पहिले रणभूमिमें मूढतावश जो लोकनिन्दित कर्म किया, हे प्रभो ! उस सबको आप मनमें मत लाइये ॥ २५ ॥ २६ ॥ और हे महादेव ! कामदोषवश पार्वती पर भी जो दूषित भाव मैंने दिखाया था, उसकी आप क्षमा दीजिये, मैं बड़ा दुःखी और कृपण होरहा हूँ ॥ २७ ॥ आपको दीन भक्त

दुःखितो भृशम् ॥ २७ ॥ दुःखितस्य दया कार्या कृपणस्य विशेषतः । दीनस्य भक्तियुक्तस्य भवता नित्यमेव हि ॥ २८ ॥ सोऽहं दीनो भक्तियुक्त आगतश्शरणं तव । रक्षा मयि विधातव्या रचितोऽयं मयांजलिः ॥ २९ ॥ इयं देवी जगन्माता परितुष्टा ममोपरि । क्रोधं विहाय सकलं प्रसन्ना मां निरीक्षताम् ॥३०॥ क्वास्याः क्रोधः क्व कृपणो दैत्योऽहं चन्द्रशेखर । तत्सोढा नाहमर्द्धेन्दुचूड शम्भो महेश्वर ॥ ३१ ॥ क्व भवान्परमोदारः क्व चाहं विवशीकृतः । कामक्रोधादिभिर्दोषैर्जरसा मृत्युना तथा ॥३२॥ अयं ते वीरकः पुत्रो युद्धशौंडो महाबलः । कृपणं मां समालक्ष्य मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ३३ ॥ तुषारहारशीतांशुशंखकुन्देन्दुवर्णभाक् । पश्येयं पार्वतीं नित्यं मातरं गुरुगौरवात् ॥३४॥ नित्यं भवद्भ्यां भक्तस्तु निर्वैरो दैवतैः सह । निवसेयं गणैस्सार्द्धं शांतात्मा योगचिंतकः ॥ ३५ ॥ मा स्मरेयं पुनर्जातिं विरुद्धं दानवोद्भवम् । त्वत्कृपातो महेशान देहीनद्वरमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच । एतावदुक्त्वा वचनं दैत्येन्द्रो मौनमास्थितः । ध्यायंस्त्रिलोचनं देवं पार्वतीं प्रेक्ष्य मातरम् ॥ ३७ ॥ ततो दृष्टस्तु रुद्रेण प्रसन्नेनैव चक्षुषा । स्मृतवान्पूर्ववृतांतमात्मनो जन्म चाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्स्मृते च वृत्तांते ततः पूर्ण-

---

कृपण दुःखितके ऊपर कृपा सदा करनी चाहिये ॥ २८ ॥ मैं ऐसा ही दीन भक्त आपकी शरणमें आया हूँ, आपके हाथ जोड़ रहा हूँ आप मेरी रक्षा करिये ॥ २९ ॥ और यह जगन्माता देवी पार्वती भी क्रोध छोड़ सन्तुष्ट हो मेरे ऊपर कृपादृष्टि करें ॥ ३० ॥ हे चन्द्रशेखर ! कहाँ मैं तुच्छ दैत्य और कहाँ इन जगदम्बिकाका क्रोध ? हे अर्धेन्दुचूड शंभो महेश्वर ! मैं इनके कोप को कैसे सह सकता हूँ ॥ ३१ ॥ उदार चरित्र वाले आप कहाँ ? और काम के अधीन हुआ मैं कहाँ ? मुझमें क्रोध आदि दोष भरे हुये हैं और मैं मृत्यु और बुढ़ापेके चक्रमें हूँ, ऐसे मुझ पर यह आपके युद्धचतुर महाबली नन्दीश्वर पुत्र क्रोध न करें ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इनका वर्ण तो पाले, हार, चन्द्रमा, शङ्ख, चमेली और चन्द्रमाकी समान है मैं इन पार्वतीको गौरववश अब मातृदृष्टिसे देखता हूँ ॥ ३४ ॥ मैं आप दोनोंका भक्त रहूँ, देवताओंसे वैर न रखूँ और शान्तचित्तसे योगचिन्तवन करता हुआ आपके गणोंके साथ रहूँ ३५ हे महेशान ! आपकी कृपा से मुझै इस दानवभावका फिर स्मरण न आवे, यही उत्तम वर मुझे दीजिये ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–इतनी बात कह कर वह दैत्येन्द्र माता पार्वतीकी ओर देख त्रिलोचनका ध्यान करता हुआ चुप होगया ॥ ३७ ॥ तब रुद्रने उसको कृपादृष्टिसे देखा कि—उसको अपना पहिला वृत्तान्त और अद्भुत जन्म याद आगया ॥ ३८ ॥ उस वृत्तान्त का स्मरण आने पर उसका मनोरथ पूर्ण होगया और वह माता पिताको

मनोरथः । प्रणम्य मातापितरौ कृतकृत्योऽभवत्ततः ॥ ३९ ॥ पार्वत्या मूर्ध्न्युपाघ्रातः शंकरेण च धीमता । ईप्सितं लेभे तुष्टाद्बालेन्दुशेखरात् ॥ ४० ॥ एतत्सर्वमाख्यातमन्धकस्य पुरातनम् । गाणपत्यं महादेवप्रसादात्परसौख्यदम् ४१ मृत्युंजयश्च कथितो मंत्रो मृत्युविनाशनः । पठितव्यः प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदः ४२

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे अंधकगणजीवितप्राप्तिवर्णनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सनत्कुमार उवाच। शृणु व्यास यथा प्राप्ता मृत्युप्रशमनी परा। विद्या काव्येन मुनिना शिवान्मृत्युञ्जयाभिधात् ॥१॥ पुरासौ भृगुदायादो गत्वा वाराणसीं पुरीम् बहुकालं तपस्तेपे ध्यायन्विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ २ ॥ स्थापयामास तत्रैव लिंगं शम्भोः परात्मनः । कूपं चकार सद्रम्यं वेदव्यास तदग्रतः ॥ ३ ॥ पंचामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वः प्रयत्नतः । स्नापयामास देवेशं सुगंधस्नपनैर्बहु ॥ ४ ॥ सहस्रकृत्वो देवेशं चन्दनैर्यक्षकर्दमैः । समालिलिंप सुप्रीत्या सुगन्धोद्वर्तनान्यनु ॥ ५ ॥ राजचंपकधत्तूरैः करवीरकुशेशयैः । मालतीकर्णिकारैश्च कदंबैर्बकुलोत्पलैः ॥६॥ मल्लिका-

प्रणाम कर कृतकृत्य होगया ॥ ३९ ॥ पार्वतीने और बुद्धिमान् शंकरने उसके शिरको सूँघा, इस प्रकार उसने प्रसन्न हुये चन्द्रशेखरसे अपना मनोरथ पूरा किया ॥ ४० ॥ महादेवकी कृपासे अंधकको जिस प्रकार गणपतिपद प्राप्त हुआ था वह श्रेष्ठ सुख देने वाला सब प्राचीन वृत्तान्त आपसे कह दिया ४१ और मृत्युको दूर करने वाले मृत्युञ्जय मन्त्रका भी आपसे वर्णन कर दिया यह मन्त्र सब मनोरथोंको पूर्ण करने वाला है, इसको यत्नपूर्वक पढ़ना चाहिये उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ ❋ ❋ ❋ ❋

सनत्कुमारजीने कहा, कि-हे व्यासजी ! अब आप मुनि शुक्राचार्यने मृत्युंजय शिवसे मृत्युको शान्त करने वाली विद्या जिस प्रकार पाई थी उसको सुनिये ॥ १ ॥ इन भृगुनन्दनने वाराणसी नगरमें जाकर बहुत समय तक शिवका ध्यान करते हुये तपस्या की थी ॥२॥ हे वेदव्यासजी ! तहाँ इन्होंने परमात्मा शम्भुके लिंगको स्थापित किया और उसके सामने एक कूप बनाया ३ फिर उन्होंने देवेश शंकरको एक लाख बार द्रोण भर पञ्चामृतसे तथा सुगंधित द्रव्योंसे स्नान कराया ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने हजार बार चन्दन, यक्षकर्दम (कपूर अगर कस्तूरी और कंकोलसे मिला हुआ उबटना) और भी बहुतसे सुगन्धित उबटनोंसे प्रीतिपूर्वक शिवका अनुलिम्पन किया ॥५॥ तथा उन्होंने सावधानीके साथ प्रीतिपूर्वक राजचम्पक, धतूरा, कनेर, मालती, कर्णिकार, मालती, सेवती गुलाब, इन्द्राणी, ढाक, गुलदुपहरियाके फूल, श्वेतकमल, नागकेशर, केशर, वासन्ती पुष्पलता, चिबिल्लिक, कुन्द, मोतिया, मन्दार,

शतपत्रोभिस्सिन्धुवारैस्सकिंशुकैः। बन्धूकपुष्पैः पुन्नागैर्नागकेशरकेशरैः ॥७॥ नव-मल्लीचिविलिकैः कुंदैस्समुचुकुन्दकैः। मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च द्रोणैर्मरुवकैर्वृकैः। ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैः सुरम्यैश्चूतपल्लवैः ॥८॥ तुलसीदेवगंधारीबृहत्पत्रीकुशांकुरैः। नंद्यावर्तैरगस्त्यैश्च सशालैर्देवदारुभिः ॥ ९ ॥ कांचनारैः कुरबकैर्दूर्वांकुरकुरंटकैः। प्रत्येकमेभिः कुसुमैः पल्लवैरपरैरपि ॥ १० ॥ पत्रैः सहस्रपत्रैश्च रम्यैर्नानाविधैश्शुभैः। सावधानेन सुप्रीत्या स समानर्च शंकरम् ॥ ११ ॥ गीतनृत्योपहारैश्च संस्तुतः स्तुतिभिर्बहु। नाम्नां सहस्रैरन्यैश्च स्तोत्रैस्तुष्टाव शंकरम् ॥१२॥ सहस्रं पञ्चशरदामित्थं शुक्रो महेश्वरम्। नानाप्रकारविधिना महेशं स समर्चयत् ॥१३॥ यदा देवं नानुलोके मनागपि वरोन्मुखम्। तदान्यं नियमं घोरं जग्राहातीव दुस्सहम् ॥ १४ ॥ प्रक्षाल्य चेतसोऽत्यंतं चांचल्याख्यं महामलम्। भावनावारिभिरसकृदिन्द्रियैस्सहितस्य च ॥ १५ ॥ निर्मलीकृत्य तच्चेतोरत्नं दत्वा पिनाकिने। प्रययौ कणधूममोघं सहस्रं शरदां कविः ॥ १६ ॥ काव्यमित्थं तपो घोरं कुर्वन्तं दृढमानसम्। प्रससाद स तं वीक्ष्य भार्गवाय महेश्वरः ॥ १७ ॥ तस्माल्लिंगाद्विनिर्गत्य सहस्रार्काधिकद्युतिः। उवाच तं विरूपाक्षस्साक्षाद्दाक्षायणीपतिः ॥ १८ ॥ महेश्वर उवाच। तपोनिधे महाभाग भृगुपुत्र महामुने। तपसानेन ते नित्यं प्रसन्नोऽहं विशेषतः ॥ १९ ॥ मनोभिलषितं सर्वं वरं वरय भार्गव। प्रीत्या दास्येऽखिलान्कामान्नादेयं विद्यते तव ॥ २० ॥ सनत्कुमार उवाच। निशम्येति वचश्शंभोर्महानु-

बिल्वपत्र, सूमा, महुआ, ढाक, गठिवन, दवनाफूल, सुन्दर आम्रपत्र, तुलसी, देवजरासा, बृहत्पत्री कुशाकुर, नन्द्यावर्त, अगस्त्य, साल, देवदार, कचनार, गुलजेरा, श्वेत दूब घासके अंकुर, करसैला के फूल और पत्तोंसे और अनेक प्रकारके सहस्रदल कमलोंसे शिवका पूजन किया ॥ ६—११ ॥ तथा शिव-सहस्र नामसे, गाकर, नाचकर और भी अनेक स्तोत्रोंसे शिवकी स्तुति की ॥ इस प्रकार शुक्राचार्यने पाँच हजार वर्ष तक अनेक प्रकारकी विधिसे शिव-पूजन किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर जब उन्होंने शिवको थोड़ासा भी वर देनेके लिये उद्यत न देखा, तो उन्होंने एक परम भयंकर दुःसह नियमका आश्रय लिया ॥ १४ ॥ उन्होंने भावनारूपी जलसे चित्तके और इन्द्रियोंके चञ्चलता रूपी मलको धोकर उस निर्मल चित्तरत्नको शिवके अर्पण कर दिया और सहस्रवर्ष तक कणधूमका पान करते रहे ॥ १५ ॥ १६ ॥ भार्गवको इस प्रकार दृढ़ चित्तसे घोर तप करते देख कर महादेवजी प्रसन्न होगये ॥ १७ ॥ और दाक्षायणीके पति विरूपाक्ष शिव सहस्रों सूर्योंसे अधिक कान्तिमान् हो उस लिंगमेंसे प्रकट हो शुक्राचार्यसे कहने लगे ॥ १८ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे महाभाग भृगुपुत्र तपोनिधे ! मैं तुम्हारे इस तपसे बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ १९ हे भार्गव ! तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो, मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारे सब

खकरं परम् । स बभूव कविस्तुष्टो निमग्नस्सुखवारिधौ ॥ २१ ॥ उद्यदानंदसंदोह-रोमांचांचितविग्रहः । प्रणनाम मुदा शंभुमंभोजनयनो द्विजः ॥ २२ ॥ तुष्टावाप्तनुं तुष्टः प्रफुल्लनयनांजलिः । मौलावंजलिमाधाय वद्जयजयेति च ॥ २३ ॥ भार्गव उवाच । त्वं भाभिराभिरभिभूय तमस्समस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम् । देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते ॥२४॥ लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोर्मिभिर्निर्मासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः । विद्राविताखिलतमास्तुतमो हिमांशो पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते ॥२५॥ त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह । स्तब्धप्रभंजनविवर्द्धितसर्वजंतोः संतोषिताहिकुल सर्वग वै नमस्ते ॥ २६ ॥ विश्वैकपावक नतावक पावकैक शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम् । प्राणिष्यदो जगदहो जगदंतरात्मंस्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते ॥ २७ ॥ पानीयरूप परमेश जगत्पवित्रचित्रविचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम् । विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ पानीयगाह-

मनोरथोंको पूर्ण करूँगा, तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—शंभुके इन परमसुखदायक वचनोंको सुन कर शुक्राचार्य परम प्रसन्न हो सुखसमुद्रमें मग्न होगये ॥ २१ ॥ उस समय कमलपत्राक्ष द्विज शुक्राचार्यके रोम आनन्दके कारण खड़े होगये तब उन्होंने शिवको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ फिर उन्होंने प्रसन्न नेत्रोंसे मस्तक पर अञ्जलि रख जय जय कह अष्टमूर्ति शिवकी स्तुति की ॥ २३ ॥ भार्गवने कहा, कि—हे जगदीश्वर ! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये अपनी कान्तिसे समस्त अंधकारको दूर कर सूर्यरूपमें आकाशमें दमकने लगते हैं निशाचरोंके मनोरथको नष्ट कर देते हैं ऐसे आपको प्रणाम है ।२४। आप चन्द्रमारूपमें सम्पूर्ण लोकके नेत्ररूप हैं और समुद्रकी बड़ी २ लहरोंसे समुद्रीय किनारेको लँघवा देते हैं, इस प्रकार समुद्रसे पृथ्वी और आकाशमें मर्यादा उल्लङ्घन करवा देते हैं सकल अंधकारको दूर कर देते हैं, ऐसे हे अमृतके प्रवाहसे परिपूर्ण आपको प्रणाम है २५ आप पवित्र (योग) मार्गमें उपास्य (पवन) हैं, हे भुवनजीवन ! आपके बिना इस संसारमें कौन जीवित रह सकता है, आपसे सब जन्तु बढ़ने लगते हैं, हे सर्पोंको सन्तुष्ट करने वाले सर्वव्यापिन् आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे विश्वानररूप ! आप नमन करने वालोंकी रक्षा करते है, हे परमशक्तिसम्पन्न पावकस्वरूप ! आपके बिना मृत्यु वालोंका अमृत (जीवित) रहनेका दिव्य कार्य नहीं होसकता । हे जगदन्तरात्मन् ! आप प्राणशक्ति प्रदान करने वाले हैं, प्रतिपदमें कल्याण करने वाले हैं, आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे जलस्वरूप परमेश्वर ! आप जगत्को पवित्र करते हैं, विचित्र और सुचरित्र करने वाले

नत एतद्रतो नतोऽस्मि ॥ २८ ॥ आकाशरूप बहिरंतरुतावकाशदानाद्विकस्वर-मिहेश्वरविश्वमेतत् । त्वत्तस्सदा सदय संश्वसिति स्वभावात्संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम् ॥ २९ ॥ विश्वंभरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः । स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम् ॥ ३० ॥ आत्मस्वरूप तव रूपपरंपराभिराभिस्ततं हर चराचररूपमेतत् । सर्वांतरात्मनिलयप्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते ॥ ३१ ॥ इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबंधबंधो युक्तो करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते । एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच । अष्टमूर्त्यष्टकेनेत्थं परिष्टुत्येति भार्गवः । भर्गं भूमिमिलन्मौलिः प्रणनाम पुनःपुनः ॥३३॥ इति स्तुतो महादेवो भार्गवेणातितेजसा । उत्थाय भूमेर्बाहुभ्यां धृत्वा तं प्रणतं द्विजम् ॥ ३४ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मेघनादगभीरया । सुप्रीत्या दशनज्योत्स्नाप्रद्योतितदिगंतरः ॥ ३५ ॥ महादेव उवाच । विप्रवर्य कवे तात मम भक्तोऽसि पावनः । अनेनात्युग्रतपसा स्वजन्याचरितेन च ३६

हैं आप अवगाहन करनेसे समस्त जगत्को निर्मल और पवित्र करते हैं, अतः हे विश्वनाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ हे आकाशरूप ! विकाशशील जगत् आपके भीतर और बाहर अवकाश देनेसे सदा श्वास लेता है और संकोचको प्राप्त होता है हे दयावान् ईश्वर ! इस लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ हे विश्वंभरात्मक ! हे विश्वनाथ ! आप इस विश्वका भरण करते हैं, आपके अतिरिक्त और कौन अज्ञानांधकार दूर करनेवाला है । हे सर्पसे विभूषित ! आप मेरे अज्ञानांधकारका नाश करिये ! आप परम श्रेष्ठ हैं, इस लिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥ हे आत्मस्वरूप हर ! आपकी रूपपरम्पराओंसे यह चराचर जगत् व्याप्त है । हे सबके चित्तमें रहनेवाले ! हे प्रत्येक रूपमें व्याप्त ! हे श्रेष्ठ नन ! हे अष्टमूर्ते ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे विश्वजनीनमूर्ते ! इन आठ मूर्तियोंके द्वारा, आप इस संसारको भली प्रकार विस्तृत करते हैं, हे मुक्त पुरुषके बंधुरूप ! हे प्रणतप्रणीत ! हे सर्वार्थसार परमार्थ ! इस कारण मैं आपको प्रणाम करता हूँ ३२ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—शुक्राचार्यने इस प्रकार अष्टमूर्त्यष्टकस्तोत्रसे शिवकी स्तुतिकर पृथ्वीमें मस्तक झुका उनको बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ अमिततेजस्वी भार्गवने जब इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति की तब वह उन नम्र द्विजको भुजाओंके द्वारा भूमि परसे उठा कर मेघकी समान गम्भीर मधुर वाणीमें दाँतोंकी कान्तिसे दिशाओंमें प्रकाश फैलाते हुये प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ महादेवजीने कहा, कि—हे विप्रवर्य भृगुवंशी तात !

लिंगस्थापनपुण्येन लिंगस्याराधनेन च । कृतचित्तोपहारेण शुचिना निश्चलेन च ३७
अविमुक्तमहाक्षेत्रपवित्राचरणेन च । त्वां सुतेन प्रपश्यामि तस्माद्देयं न किंचन ॥ ३८ ॥
अनेनैव शरीरेण ममोदरदरीगतः । मच्छ्रेष्ठेन्द्रियमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेष्यसि ॥ ३९ ॥
यच्छाम्यहं वरं तेऽद्य दुष्प्रापं पार्षदैरपि । हरेर्हिरण्यगर्भस्य प्रायशोऽहं जुगोप
यम् ॥ ४० ॥ मृतसंजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला । तपोबलेन महता मयैव
परिनिर्मिता ॥ ४१ ॥ त्वां तां तु प्रापयाम्यद्य मन्त्ररूपां महाशुचे । योग्यता तेऽस्ति
विद्यायास्तस्याश्शुचितपोनिधे ॥ ४२ ॥ यं यमुद्दिश्य नियतमेतामावर्तयिष्यसि ।
विद्यां विद्येश्वरश्रेष्ठां सत्यं प्राणिष्यसि ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ अत्यर्कमत्यग्नि च ते तेजो
व्योम्नि च तारकम् । देदीप्यमानं भविता ग्रहाणां प्रवरो भव ॥ ४४ ॥ अभि च त्वां
करिष्यंति यात्रां नार्यो नरोऽपि वा । तेषां त्वद्दृष्टिपातेन सर्वं कार्यं प्रणश्यति ४५ ।
तवोदये भविष्यंति विवाहादीनि सुव्रत । सर्वाणि धर्मकार्याणि फलवंति नृणा-
मिह ॥ ४६ ॥ सर्वाश्च तिथयो नन्दास्तव संयोगतश्शुभाः । तव भक्ता भविष्यंति
बहुशुक्रा बहुप्रजाः ॥ ४७ ॥ त्वयेदं स्थापितं लिंगं शुक्रेशमिति संज्ञितम् । येऽर्चयि-

---

तुम मेरे पवित्र भक्त हो, तुम्हारे इस उग्र तपसे, आचरणसे, लिंगकी स्थापना करनेके पुण्यसे, लिंगकी आराधना करनेसे, चित्तको भेंट चढ़ानेसे, पवित्र अटल भावसे तथा काशीक्षेत्रमें पवित्र आचरण करनेसे मैं तुमको पुत्रभावसे ही देखता हूँ, मुझे तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है ॥ ३६–३८ ॥ तुम इसी शरीरसे मेरी उदररूपी गुफामें पहुँच कर, मेरे इन्द्रियमार्गसे निकल कर मेरे पुत्रका जन्म ग्रहण करोगे ॥ ३९ ॥ मैं आज तुम्हें एक और वर देता हूँ, यह वर मेरे पार्षदोंको भी कठिनतासे मिल सकता है, इसको मैं ब्रह्मा और विष्णुसे भी प्रायः सुरक्षित (गुप्त) रखता हूँ ॥ ४० ॥ मेरे पास निर्मल मृतसंजीविनी नामक विद्या है, उसको बड़े भारी तपोबलसे मैंने ही रचा है हे महाशुचे ! उस मंत्ररूपा विद्याको मैं आज तुम्हें दूँगा, क्योंकि—हे पवित्र तपोनिधे ! आपमें उस विद्याकी योग्यता है ॥ ४२ ॥ तुम इस श्रेष्ठ विद्या का जिसके ऊपर प्रयोग करोगे, उसको अवश्य ही पुनर्जीवित कर सकोगे ४३ आकाशमें तुम्हारे तारेका तेज सूर्य और अग्निसे भी अधिक दमकेगा, तुम ग्रहोंमें श्रेष्ठ ग्रह होजाओ ॥ ४४ ॥ जो स्त्रियें वा पुरुष तुमको सम्मुख रख कर यात्रा करेंगे, तुम्हारी दृष्टि पड़ने पर उनका सब कार्य नष्ट होजायगा ४५ हे सुव्रत ! तुम्हारा उदय होने पर मनुष्योंके विवाह आदिक सकल धर्मकार्य सफल हुआ करेंगे ॥ ४६ ॥ शुक्रवारकी नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी एकादशी) तिथियें तुम्हारे संयोगसे शुभ हुआ करेंगी, और जो प्रजाएँ तुम्हारी भक्त होंगी, वे वीर्यसम्पन्न होंगी ॥ ४७ ॥ तुमने जो लिंग स्थापित किया है, इसका नाम

पर्यंति मनुजास्तेषां सिद्धिर्भविष्यति ॥४८॥ आवर्षं प्रतिघस्रां ये नक्तव्रतपरायणाः । त्वांहने शुक्रकूपे ये कृतसर्वोदकक्रियाः ॥ ४९ ॥ शुक्रेशमर्चयिष्यंति शृणु ते मां तु यत्फलम् । अवन्ध्यशुक्रास्ते मर्त्याः पुत्रवंतोऽतिरेतसः ॥५०॥ पुंस्त्वसौभाग्यसंपन्ना भविष्यंति न संशयः । अपेतविद्यास्ते सर्वे जना स्युः सुखभागिनः ॥ ५१ ॥ इति दत्त्वा वरान्देवस्तत्र लिंगे लयं ययौ । भार्गवोऽपि निजं धाम प्राप संतुष्टमानसः ५२ इति ते कथितं व्यास यथा प्राप्ता तपोबलात् । मृत्युंजयाभिधा विद्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे मृतसंजीविनीविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

व्यास उवाच। सनत्कुमार सर्वज्ञ श्राविता सुकथाद्भुता । भवतानुग्रहात्प्रीत्या शंभ्वनुग्रहनिर्भरा ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः । गाणपत्यं ददौ प्रीत्या यथा बाणासुराय वै ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच। शृणु व्यासादरात्तां वै कथां शंभोः परमात्मनः । गाणपत्यं यथा प्रीत्या ददौ बाणासुराय हि ॥ ३ ॥ अत्रैव सुचरित्रं च शंकरस्य महाप्रभोः । कृष्णेन समरोऽप्यत्र शंभोर्बाणानुगृह्णतः ४

शुक्रेश (महादेव) पड़ेगा, जो मनुष्य इस लिंगका पूजन करेंगे, उनको सिद्धि प्राप्त होगी ॥ ४८ ॥ वर्षभर तक शुक्रवारके दिन रात्रिको व्रत रख कर जो पुरुष शुक्रकूपके जलसे सब क्रियाओंको करेंगे और शुक्रेश लिंगका अर्चन करेंगे उनको जो फल मिलेगा, उसको तुम सुनो, उन पुरुषोंका वीर्य अवंध्य होगा और उनके परबवीर्यसाल् पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे पुंस्त्व के सौभाग्यसे विभूषित होंगे और विद्याहीन होनेपर भी उनको सब प्रकारका सुख मिलेगा ॥ ५१ ॥ महादेवजी इस प्रकार वर देकर उस लिंगमें ही लीन होगये और शुक्राचार्य भी चित्तमें प्रसन्न होकर अपने स्थानको चले गए ५२ हे व्यासजी ! इस प्रकार शुक्राचार्यने तपोबलसे जिस प्रकार मृत्युञ्जय विद्या प्राप्त की थी वह सब वृत्तान्त कह दिया अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ५३ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

व्यासजीने कहा, कि–हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने अनुग्रह कर प्रीतिपूर्वक शंभुका अनुग्रह दिखाने वाली यह अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ अब मैं चन्द्रमौलिके उस चरित्रको सुनना चाहता हूँ जिसमें उन्होंने बाणासुरको गणोंका अध्यक्ष बनाया है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि–हे व्यासजी ! परमात्मा शंभुने बाणासुरको गणोंका अध्यक्ष पद जिस प्रकार दिया था, उस कथाको आप प्रीतिपूर्वक सुनिये ॥ ३ ॥ इसी सम्बन्धमें बाणासुर पर अनुग्रह कर महाप्रभु शङ्करने कृष्णसे जो युद्ध किया था, उस सुन्दर चरित्रको आप

अत्रानुरूपं शृणु मे शिवलीलान्वितं परम् । इतिहासं महापुण्यं मनःश्रोत्रसुखाव-
हम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मपुत्रो मरीचिर्यो मुनिरासीन्महामतिः । मानसस्सर्वपुत्रेषु ज्येष्ठः
श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥ ६ ॥ तस्य पुत्रो महात्मासीत्कश्यपो मुनिसत्तमः । सृष्टिप्रवृद्ध-
कोऽत्यंतं पितुभक्तो विधेरपि ॥ ७ ॥ तस्य त्रयोदश मिता दक्षकन्यास्सुशीलिकाः ।
कश्यपस्य मुनेर्व्यास पत्न्याश्चासन्पतिव्रताः ॥ ८ ॥ तत्र ज्येष्ठा दितिश्चासीद्दैत्या-
स्तत्तनयास्स्मृताः । अन्यासां च सुता जाता देवाद्यास्सचराचराः ॥९॥ ज्येष्ठायाः
प्रथमौ पुत्रौ दितेश्चास्तां महाबलौ । हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः १०
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारो दैत्यसत्तमाः । ह्रादानुह्रादसंह्रादप्रह्रादाश्चेत्यनुक्र-
मात् ॥ ११ ॥ प्रह्रादस्तत्र हि महान्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः । यं नाशितुं न शक्ता-
स्तेऽभवन्दैत्याश्च केऽपि ह ॥ १२ ॥ विरोचनः सुतस्तस्य महादानवरोऽभवत् ।
शक्राय स्वशिरो योऽदाद्याचमानाय विप्रतः ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रो बलिश्चासीन्महा-
दानी शिवप्रियः । येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ १४ ॥ तस्यौरसः सुतो
बाणशिवभक्तो बभूव ह । मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधस्सहस्रदः ॥ १५ ॥
शोणिताख्ये पुरे स्थित्वा स राज्यमकरोत्पुरा । त्रैलोक्यं च बलाज्जित्वा तन्नाथा-

सुनिये ॥ ४ ॥ शिवलीलासे भरा हुआ यह इतिहास परम पुण्य देने वाला, मन और कानोंको सुख देने वाला है, इस इतिहासको आप मुझसे सुनिये ५ ब्रह्माजीके मरीचि नाम वाले जो महाबुद्धिमान् मानस पुत्र हैं, वह सब पुत्रोंमें बड़े और श्रेष्ठ प्रजापति हैं ॥ ६ ॥ उनके पुत्र कश्यप हुये, वे मुनियोंमें श्रेष्ठ महात्मा हैं, उन्होंने सृष्टिको बहुत बढ़ाया है, वह अपने पिता मरीचिके भी बड़े भक्त हैं ॥ ७ ॥ हे व्यासजी ! उन कश्यप मुनिने दक्षकी तेरह सुशील कन्याओंसे विवाह किया, वे कन्याएँ पतिव्रता थीं ॥ ८ ॥ उनमें दिति बड़ी थी, उसके पुत्र दैत्य कहलाते हैं, दूसरी कन्याओंके भी देवता आदि चर अचर पुत्ररूपमें उत्पन्न हुये ॥ ९ ॥ बड़ी पुत्री दितिके पहिले दो पुत्र हुये, वे महाबली थे, उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा था और हिरण्याक्ष उसका छोटा भाई था ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुके ह्राद, अनुह्राद, संह्राद और प्रह्लाद नामक चार दैत्यश्रेष्ठ पुत्र हुए ॥ ११ ॥ इनमें प्रह्लाद बड़े विष्णुभक्त और जितेन्द्रिय थे, कोई दैत्य उनका नाश न कर सके ॥ १२ ॥ उनके पुत्र विरोचन परमदानी हुये, इन्द्रने ब्राह्मणोंका रूप धर कर उनसे उनका शिर माँगा, उन्होंने उसको भी दे दिया था ॥ १३ ॥ उनके पुत्र महादानी बलि हुए, ये शिव भक्त थे इन्होंने वामनका रूप धारण कर आये हुए विष्णुको पृथ्वीका दान दिया था ॥१४॥ उनके औरस पुत्रका नाम बाणासुर था, ये शिव—भक्त थे, तथा ये मान्य, वदान्य, धीमान्, सत्यप्रतिज्ञ और हजारोंका दान देने वाले थे ॥१५॥

नसुरेश्वरः ॥ १६ ॥ तस्य बाणासुरस्यैव शिवभक्तस्य चामराः । शंकरस्य प्रसादेन किंकरा इव तेऽभवन् ॥ १७ ॥ तस्य राज्येऽमरान्हित्वा नाभवन्दुःखिताः प्रजाः । सापत्न्याद् खितास्ते हि परधर्मप्रवर्तिनः ॥ १८ ॥ सहस्रबाहुवाद्येन स कदाचिन्महासुरः । तांडवेन हि नृत्येनातोषयत्तं महेश्वरम् ॥ १९ ॥ तेन नृत्येन संतुष्टस्सुप्रसन्नो बभूव ह । ददर्श कृपया दृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २० ॥ भगवान्सर्वलोकेशश्शरण्यो भक्तकामदः। वरेण च्छंदयामास बालेयं तं महासुरम्॥२१॥सनत्कुमार उवाच । बालेयः स महादैत्यो बाणो भक्तवरस्सुधीः । प्रणम्य शंकरं भक्त्या तुनाव परमेश्वरम् ॥ २२ ॥ बाणासुर उवाच । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । संतुष्टोऽसि महेशान ममोपरि विभो यदि ॥२३॥ मद्रक्षको भव सदा मदुपस्थः पुराधिपः । सर्वथा प्रीतिकृन्मे हि ससुतस्सगणः प्रभो ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच । बलिपुत्रस्स वै बाणो मोहितश्शिवमायया । मुक्तिप्रदं महेशानं दुराराध्यमपि प्रभुम् ॥२५॥ स भक्तवत्सलः शंभुर्दत्त्वा तस्मै वरांश्च तान् । तत्रोवास तथा प्रीत्या सगणस्ससुतः प्रभु ॥२६॥ स कदाचिच्छोणपुरे चक्रे देवासुरैस्सह । नदीतीरे हरः

इन्होंने शोणितपुरमें रह कर राज्य किया था और इन असुरेश्वरने त्रिलोकी को बलपूर्वक जीत लिया था ॥ १६ ॥ शंकरकी कृपासे देवता शिवभक्त बाणासुरके चाकरसे होगए थे ॥ १७ ॥ देवताओंको छोड़कर उसके राज्यमें कोई प्रजा दुःखित नहीं थी, देवता तो शत्रुतावश दुःखित रहते थे, क्योंकि-वे उससे शत्रुधर्मका वर्ताव करना चाहते थे ॥ १८ ॥ एक समय उस महासुरने अपनी हजार भुजाओंका बाजा बजा ताण्डव नृत्य कर महेश्वरको प्रसन्न किया ॥ १९ ॥ भक्तवत्सल शङ्कर उसके उस नृत्यसे संतुष्ट और प्रसन्न हुए और उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा ॥ २० ॥ सब लोकोंके स्वामी, भक्तोंकी कामना पूर्ण करने वाले और शरणागत रक्षक शिवने उस महान् असुर बलिपुत्रको वर देना चाहा ॥ २१ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-भक्तोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् महादैत्य बलिपुत्र परमेश्वर शंकरको प्रणाम कर भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगा ॥ २२ ॥ बाणासुरने कहा, कि-हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव महेश्वर ! हे विभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं ॥ २३ ॥ तो आप सदा मेरे रक्षक रहिये, हे प्रभो ! आप गण और पुत्रों सहित सर्वदा मुझ पर प्रसन्न रहते हुये मेरे नगरके अध्यक्ष बन मेरे समीप ही रहिये ॥२४॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—बलिका पुत्र बाणासुर शिवकी मायासे मोहमें ही पड़ गया था, तभी उसने मुक्ति तक प्रदान करने वाले, कठिनतासे आराधना करने योग्य महेशसे ऐसी बात कही ॥ २५ ॥ परन्तु भक्तवत्सल प्रभु शंभु उसको ये सब वर देकर गणों और पुत्रोंको लेकर तहाँ रहने लगे ॥ २६ ॥

क्रीडां रम्ये शोणितकाह्वये ॥ २७ ॥ ननृतुर्जहसुश्चापि गंधर्वाप्सरसस्तथा । जेयुः प्रणेमुर्मुनय आनर्चुस्तुष्टुवुश्च तम् ॥ २८ ॥ ववल्गुः प्रमथास्सर्वे ऋषयो जुहुवुस्तथा । आययुःसिद्धसंघाश्च द्रष्टुश्शांकरीं रतिम् ॥ २९ ॥ कुतार्किका विनेशुश्च म्लेच्छाश्च परिपंथिनः । मातरोऽभिमुखास्तस्थुर्विनेशुश्च विभीषिकाः ॥ ३० ॥ रुद्रसद्भावभक्तानां भवदोषाश्च विस्तृताः । तस्मिन्दृष्टे प्रजास्सर्वाः सुप्रीतिं परमां ययुः॥३१॥ ववल्गुर्मुनयस्सिद्धाः स्त्रीणां दृष्ट्वा विचेष्टितम् । पुपुषुश्चापि ऋतवस्स्वभावं तु तत्र च ॥३२॥ ववुर्वाताश्च मृदवः पुष्पकेसरधूसराः । चुकूजुः पक्षिसंघाश्च शाखिनां मधुलम्पटाः ॥३३॥ पुष्पभारावनम्राणां रावयंश्च कोकिलाः । मधुरं कामजननं वनेषूपवनेषु च ॥ ३४ ॥ ततः क्रीडाविहारे तु मत्तो बालेन्दुशेखरः । अनिर्जितेन कामेन दृष्टः प्रोवाच नन्दिनम् ॥ ३५ ॥ चन्द्रशेखर उवाच । वामामानय गौरीं त्वं कैलासात्कृतमंडनाम् । शीघ्रमस्माद्वनाद्गत्वा ह्युक्त्वा कृष्णामिहानय ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच । स तथेति प्रतिज्ञाय गत्वा तत्राह पार्वतीम् । सुप्रणम्य रहो दूतश्शंकरस्य कृतांजलिः ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । द्रष्टुमिच्छति देवि त्वां देवदेवो

एक समय तहाँ बाणासुरके शोणितपुरमें हर रमणीय नदीतट पर देवता और असुरोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ उस समय गंधर्व नाचने लगे, अप्सरायें हँसने लगीं और मुनि उनकी जय जयकार करने लगे, प्रणाम करने लगे, पूजन करने लगे और उनके स्तोत्र पढ़ने लगे ॥ २८ ॥ उस समय शंकरकी रतिको देखनेके लिये सिद्ध आगए, प्रमथगण बलबलाने लगे और ऋषि आहुति देने लगे ॥ २९ ॥ उस समय कुतार्किक म्लेच्छ और डाँकू भाग गये षोडश मातृकायें उनके सामने आकर खड़ी होगईं और विभीषिकाएँ नष्ट होगईं ॥ ३० ॥ उस समय रुद्रके सद्भावोंके भक्तोंके सांसारिक दोष बढ़ने लगे, उन शिवका दर्शन होने पर प्रजायें बड़ी प्रसन्न हुईं ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंकी चेष्टाओंको देखकर मुनि और सिद्ध मधुर शब्द करने लगे, ऋतुएँ भी अपने स्वभावको पुष्ट करने लगीं ॥ ३२ ॥ वायु पुष्पोंके परागको उड़ाता हुआ मन्द मन्द गतिसे चलने लगा और मधुलम्पट पक्षी वृक्षों पर शब्द करने लगे ३३ वन और बगीचोंमें पुष्पभारसे झुके हुए वृक्षों पर कोकिलाएँ कामोत्पादक मधुर शब्द करने लगीं ॥ ३४ ॥ तदनन्तर जब बालेन्दुशेखर शंकर क्रीड़ा विहारमें मत्त होगए, तब अजेय कामको दृष्टि पड़ने पर नन्दीसे कहने लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रशेखरने कहा, कि–तुम इस वनसे शीघ्र ही जाकर कैलाससे विभूषित गौरीको बुला कर ले आओ ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि–वह बहुत अच्छा कह कर कैलास पर पहुँचा और वह शंकरका दूत हाथ जोड़ करके कहने लगा ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—हे देवि ! देवदेव महेश्वर

महेश्वरः । स्वस्वल्लभां रूपकृतां मयोक्तं तन्निदेशतः ॥ ३८ ॥ सनत्कुमार उवाच । ततस्तद्वचनाद्गौरी मंडनं कर्तुमादरात् । उद्यता द्विजशार्दूल पतिव्रतपरायणा ।३९। आगच्छामि प्रभुं गच्छ वद तं त्वं ममाज्ञया । आजगाम ततो नन्दी रुद्रासन्नं मनोगतिः ॥ ४० ॥ पुनराह ततो रुद्रो नन्दिनं ससविभ्रमः । पुनर्गच्छ ततस्तात क्षिप्रमानय पार्वतीम् ॥४१॥ बाढमुक्त्वा स तां गत्वा गौरीमाह सुलोचनाम् । द्रष्टुमिच्छति ते भर्ता कृतवेषां मनोरमाम् ॥४२॥ शंकरो बहुधा देवि विहर्तुं संप्रतीक्षते । एवं पतौ सुकामार्ते गम्यतां गिरिनंदिनि ॥ ४३ ॥ अप्सरोभिस्समग्राभिरन्योन्यमभिमंत्रितम् । लब्धभावो यथा रुद्रः पार्वत्या दर्शनोत्सुकः ॥४४॥ अयं पिनाकी कामारिः गृह्णीयाद्यां नितंबिनीम् । सर्वासां दिव्यनारीणां राज्ञी भवति वै ध्रुवम् ४५ वीक्षणं गौरिरूपेण क्रीडयेन्मन्मथैर्गणैः । कामोऽयं हंति कामारिमूचुरन्योन्यमादृताः ॥४६॥ स्पष्टुं शक्नोति या काचिद्दते दाक्षायणीं स्त्रियम् । सागच्छेत्तत्र निशंकं मोहयेत्पार्वतीपतिम् ॥ ४७ ॥ कूष्मांडतनया तत्र शंकरं स्प्रष्टुमुत्सहे । अहं गौरीसुरूपेण चित्रलेखा वचोऽब्रवीत् ॥ ४८ ॥ चित्रलेखोवाच । बद्ध्वा मोहिनीरूपं

अपनी प्रिया तुमको रूपमयी अवस्था में देखना चाहते हैं, उनकी आज्ञासे मैं तुमसे यह बात कह रहा हूँ ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि–उसके वचन से हे मुनिश्रेष्ठ ! पतिव्रता पार्वती शृंगार करनेमें लग गईं ॥ ३९ ॥ और नन्दीसे कहा, कि—तू मेरी आज्ञासे प्रभुसे जाकर कह कि—मैं आरही हूँ, तब मनकी समान गतिवाले नन्दी रुद्रके पास पहुँच गए ॥ ४० ॥ तदनन्तर जिनके विभ्रम होरहा था, उन रुद्रने नन्दीसे फिर कहा, कि—हे तात ! तुम फिर जाओ और शीघ्रतासे पार्वतीको लिवा लाओ ॥ ४१ ॥ वह बहुत अच्छा कह सुलोचना गौरीके पास जाकर कहने लगा, कि–आपके स्वामी आपको सजी हुई देखना चाहते हैं ॥ ४२ ॥ हे देवि ! शंकर विहार करनेके लिए बाट देख रहे हैं, हे गिरिनन्दिनि ! ऐसे कामार्त पतिके पास तुमको चलना चाहिये ॥ ४३ ॥ जब शिवको पार्वतीका दर्शन करनेके लिए उत्सुक देखा, तब समग्र अप्सरायें शंकरके भावको समझ पार्वतीको चिलानेके लिए आपसमें सलाह करने लगीं ॥ ४४ ॥ इस समय यह कामारि पिनाकी जिस स्त्रीको (पार्वतीके धोखेमें) ग्रहण कर लें, उसको सब दिव्य नारियोंकी रानी समझना चाहिये ॥ ४५ ॥ यह तो कामके गणोंसे क्रीड़ा कर रहे हैं, अब काम इन कामारि पर प्रहार करना चाहता है, इस प्रकार वह चावसे आपसमें बातें कर रही थीं ॥ ४६ इन दक्षकुमारीके अतिरिक्त जो उन शंकरका स्पर्श करने को समर्थ हो वह अब वहाँ जाकर पार्वतीपतिको मोहमें डाले ॥ ४७ ॥ उस समय कूष्माण्डकी पुत्री चित्रलेखाने कहा, कि—मैं गौरीकासा रूप बना कर

केशवो मोहनेच्छया । पुरा तद्वैष्णवं योगमाश्रित्य परमार्थतः ॥ ४९ ॥ उर्वश्याश्च ततो दृष्ट्वा रूपस्य परिवर्तनम् । कालीरूपं घृताची तु विश्वाची चांडिकं वपुः ५० सावित्रिरूप रंभा च गायत्रं मेनका तथा । सहजन्या जयारूपं वैजयं पुंजकस्थली ५१ मातृणामप्यनुक्तानामनुक्ताश्चाप्सरोवराः । यत्नाद्रूपाणि ताश्चक्रुस्स्वविद्यासंयुता अनु ॥५२॥ ततस्तासां तु रूपाणि दृष्ट्वा कुंभांडनंदिनी । वैष्णवादात्मयोगाच्च विज्ञातार्थां व्यडंबयत् ॥ ५३ ॥ ऊषा बाणासुरसुता दिव्ययोगविशारदा । चकार रूपं पार्वत्या दिव्यमत्यद्भुतं शुभम् ॥ ५४ ॥ महारक्ताब्जसंकाशं चरणं चोत्तमप्रभम् । दिव्यलक्षणसंयुक्तं मनोऽभीष्टार्थदायकम् ॥५५॥ तस्या रमणसंकल्पं विज्ञाय गिरिजा ततः । उवाच सर्वविज्ञाना सर्वान्तर्यामिनी शिवा ॥५६॥ गिरिजोवाच । यतो मम स्वरूपं वै धृतमूषे सखि त्वया । सकामत्वेन समये संप्राप्ते सति मानिनि ॥ ५७ ॥ अस्मिंस्तु कार्तिके मासि ऋतुधर्मोस्तु माधवे । द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तु घोरे निशागमे ॥५८॥ कृतोपवासां त्वां भोक्ता सुप्तामंतःपुरे नरः । स ते भर्ता कृतो देवैस्तेन सार्द्धं रमिष्यसि ॥ ५९ ॥ आबाल्याद्विष्णुभक्तासि यतोऽनिशमतंद्रिता । एव-

---

शंकरको स्पर्श करनेका उत्साह करती हूँ ॥ ४८ ॥ चित्रलेखाने कहा, कि—पहिले विष्णुने मोहमें डालनेकी इच्छासे वैष्णवयोगका आश्रय लेकर परमार्थवश जो मोहिनीरूप धारण किया था, उसीको मैं धारण करती हूँ ॥ ४९ ॥ उस समय उर्वशीके रूप परिवर्तनको देखकर घृताची अप्सराने कालीका रूप बना लिया और विश्वाची अप्सराने चण्डिकाका रूप धारण कर लिया ५० रंभाने सावित्रीका रूप बनाया और मेनकाने गायत्रीका रूप बनाया, सहजन्या अप्सराने जयाका रूप बनाया और पुञ्जकस्थलीने विजयाका रूप बनाया ५१ अन्य भी जिन मातृकाओंका यहाँ वर्णन नहीं हुआ है, उनका और अप्सराओंने अपनी विद्यासे यत्नपूर्वक रूप बना लिया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर कुंभाण्डनन्दिनीने अपने वैष्णव योगसे उनके रूप और प्रयोजनको देख उनकी विडम्बना की ५३ उस समय दिव्य योगमें चतुर बाणासुरकी पुत्री ऊषाने पार्वतीका परम अद्भुत शुभ रूप बना लिया था ॥ ५४ ॥ उस समय उसके चरण लाल कमलकी समान उत्तम प्रभासे युक्त थे, दिव्य लक्षण वाले और अभीष्ट फल देने वाले थे ॥ ५५ ॥ तब विज्ञानवती सर्वान्तर्यामिनी पार्वती उसके रमण करनेके संकल्पको जान कर कहने लगीं ॥ ५६ ॥ गिरिजाने कहा, कि—हे मानिनि सखि ऊषे ! तुमने इस समय समय आने पर सकामभावसे जो मेरा स्वरूप धारण किया है ॥ ५७ ॥ अतः इस कार्तिकके महीनेमें तुम्हें ऋतुधर्म होगा और वैशाख मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीमें घोररात्रिके समय, उपवास करके अन्तःपुरमें सोती हुई तुम्हारे साथ जो मनुष्य स्वप्नमें भोग करेगा, उसको

मस्त्विति सा प्राह मनसा लज्जितानना । ६० ॥ अथ सा पार्वती देवी कृतकौतुकमंडना । रुद्रसंनिधिमागत्य चिक्रीडे तेन शंभुना ॥ ६१ ॥ ततो रतांते भगवान्रुद्रश्चादर्शनं ययौ । सदारः सगणश्चापि सहितो दैवतैर्मुने ॥ ६२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णनं शिवशिवा विहारवर्णनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१

सनत्कुमार उवाच । शृणुवान्यच्चरित्रं च शिवस्य परमात्मनः । भक्तवात्सल्यसंगर्भि परमानन्ददायकम् ॥ १ ॥ पुरा बाणासुरो नाम दैवदोषाच्च गर्वितः । कृत्वा तांडवनृत्यं च तोषयामास शंकरम् ॥२॥ ज्ञात्वा संतुष्टमनसं पार्वतीवल्लभं शिवम् । उवाच चासुरो बाणो नतस्कन्धः कृतांजलिः ॥ ३ ॥ बाण उवाच । देवदेव महादेव सर्वदेवशिरोमणे । त्वत्प्रसादाद्बली चाहं शृणु मे परमं वचः ॥ ४ ॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् । त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ५ ॥ हे देव किमनेनापि सहस्रेण करोम्यहम् । बाहूनां गिरितुल्यानां विना युद्धं वृषध्वज ॥ ६ ॥ कडून्त्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् । पुराण्यचूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ७ ॥ मया यमः कृतो योद्धा वह्निश्च कृतको महान् । वरुणश्चापि गोपालो गवां पालयिता तथा ॥ ८ ॥ यक्षाध्यक्षः कुबेरस्तु

देवताओंने तुम्हारा भर्ता बनाया है उसीके साथ तुम रमण करोगी ।५८।५९। क्योंकि-तुम बालकपन से ही विष्णुभक्त हो, तब उसका मुख लज्जासे नीचे होगया और उसने अपने मनमें कहा, ऐसा ही हो ॥ ६० ॥ तदनन्तर पार्वती देवी सजधज कर रुद्रके पास आईं और शंभुके साथ विहार करने लगीं ६१ हे मुने ! फिर क्रीड़ा करनेके अनन्तर भगवान् रुद्र अपने गण स्त्री और देवताओं सहित तहाँ ही अन्तर्धान होगये ॥ ६२ ॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

सनत्कुमारजीने कहा, कि-परमात्मा शिवके परमानन्ददायक भक्तवत्सलतासे भरे हुए एक दूसरे चरित्रको सुनो ॥ १ ॥ पहिले दैवदोषवश गर्वमें भरे हुए बाणासुरने ताण्डवनृत्य करके शंकरको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ तदनन्तर पार्वतीवल्लभ शिवको सन्तुष्ट समझकर बाणासुर कन्धे झुका हाथ जोड़कर कहने लगा ३ बाणासुरने कहा, कि—हे सब देवताओंमें शिरोमणि देवदेव महादेव ! आप की कृपासे मैं बलवान् हूँ, आप मेरी पुकार सुनिये ॥ ४ ॥ आपने जो मुझे सहस्र भुजायें दी हैं, वे अब मुझे भार लगती हैं, मुझे त्रिलोकीमें आपको समान अपनी जोड़का और कोई नहीं दीखता ॥ ५ ॥ हे वृषभध्वज देव ! युद्धके विना इन पर्वतकी समान सहस्र भुजाओंका मैं क्या करूँ ॥ ६ ॥ मैंने अपनी भुजाओं की खुजली मिटानेके लिये नगर और पर्वतोंका चूरा कर डाला और दिग्गजोंसे लड़नेकी इच्छा की, परन्तु वे भी भयभीत होकर भाग गये ७

सैरन्ध्री चापि निर्ऋतिः । जितश्चाखंडलो लोके करदायी सदा कृतः ॥ ६ ॥ युद्ध-स्यागमनं ब्रूहि यत्रैते बाहवो मम । शत्रुहस्तप्रयुक्तैश्च शस्त्रास्त्रैर्जर्जरीकृताः ॥१०॥ पतंतु शत्रुहस्ताद्वा पातयन्तु सहस्रधा । एतन्मनोरथं मे हि पूर्णं कुरु महेश्वर ११ सनत्कुमार उवाच । तच्छ्रुत्वा कुपितो रुद्रस्त्वट्टहासं महाद्भुतम् । कृत्वाऽब्रवीन्महाम-युर्भक्तबाधाऽपहारकः ॥ १२ ॥ रुद्र उवाच । धिग्धिक् त्वं सर्वतो गर्विन्सर्वदैत्यकुलाधम । बलिपुत्रस्य भक्तस्य नोचितं वच ईदृशम् ॥१३॥ दर्पस्यास्य प्रशमनं लप्स्यसे चाशु दारुणम् । महायुद्धमकस्माद्वै बलिना मत्समेन हि ॥ १४ ॥ तत्र ते गिरिसंकाशा बाहवोऽनलकाष्ठवत् । छिन्ना भूमौ पतिष्यंति शस्त्रास्त्रैः कदलीकृताः१५ यदेव मानुषशिरो मयूरसहितो ध्वजः । विद्यते तव दुष्टात्मंस्तस्य स्यात्पतनं यदा ॥ १६ ॥ स्थापितस्यायुधागारे विना वातकृतं भयम् । तदा युद्धं महाघोरं संप्राप्तमिति चेतसि ॥ १७ ॥ निधाय घोरं संग्रामं गच्छेथाः सर्वसैन्यवान् । सांप्रतं गच्छ तद्वेश्म यतस्तद्विद्यते शिवः ॥ १८ ॥ तथा तान्स्वमहोत्पातांस्तत्र द्रष्टासि दुर्मते । इत्युक्त्वा विरराामाथ गर्वहृद्भक्तवत्सलः ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच । तच्छ्रुत्वा रुद्रमभ्यर्च्य दिव्यैरंजलिकुड्मलैः । प्रणम्य च महादेवं बाणश्च स्वगृहं

मैंने यमसे अग्निसे, वरुणसे, गोपालसे, गोपतिसे भी युद्ध कर लिया ॥ ८ ॥ यक्षाध्यक्ष कुबेर, सैरंध्री, निर्ऋती और इन्द्रको भी जीत कर मैंने करद बना लिया है ॥ ९ ॥ अब ऐसे युद्धको बताइये, जिसमें मेरी ये भुजायें शत्रुके हाथ से छोड़ हुये अस्त्र शस्त्रोंसे जर्जर होकर गिरें अथवा हजारों प्रकारसे गिरावें हे महेश्वर ! मेरे इस मनोरथको आप पूर्ण करिये ॥ १० ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—इस बातको सुन कर रुद्रने कुपित होकर परम अद्भुत अट्टहास्य किया, फिर वह भक्तकी बाधा हरने वाले शिव परम कुपित हो कहने लगे ॥ १२ ॥ रुद्रने कहा, कि—अरे गर्वमें चूर ! तुझे धिक्कार है, अरे दैत्यकुलाधम ! तू बलिका पुत्र है, मेरा भक्त है, अतः तुझे ऐसी बात कहना उचित नहीं है ॥ १३ ॥ तेरा यह दर्प दारुण रीतिसे शीघ्र ही शान्त हो-जायगा, मेरे समान ही बलीसे अकस्मात् ही तेरा महायुद्ध होगा ॥ १४ ॥ उस युद्धमें तेरी यह पर्वतकी समान भुजायें शस्त्र अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो कर अग्निमें गिरने वाले काष्ठोंकी समान नष्ट होजावेंगी ॥ १५ ॥ रे दुष्टात्मन् जब यह तेरे शस्त्रागार पर लगा हुआ मनुष्यके शिर वाला मयूरध्वज बिना आँधीके ही गिर पड़े तब तू अपने चित्तमें घोर युद्धको आया समझ अपनी सब सेनाको साथमें लेकर युद्ध करनेके लिये निकलना, अब तू अपने शिवा-लयमें चला जा ॥१६॥१८॥ हे दुर्मते ! तहाँ ही तुझे बड़े २ उत्पात दीखेंगे गर्वहारी भक्तवत्सल भगवान् इस प्रकार कह कर चुप होगये ॥ १९ ॥ सन-

गतः ॥ २० ॥ कुंभाण्डाय यथावृत्तं पृष्टः प्रोवाच हर्षितः । पर्यैक्षत्तिथासुरो बाणस्तं योगं ह्युत्सुकस्सदा ॥ २१ ॥ अथ दैवात्कदाचित्स स्वयं भग्नं ध्वजं च तम् । दृष्ट्वा तत्रासुरो बाणो हृष्टो युद्धाय निर्ययौ ॥ २२ ॥ स स्वसैन्यं समाहूय संयुक्तः साष्ट-भिर्गणैः । इष्टिं सांग्रामिकीं कृत्वा दृष्ट्वा सांग्रामिकं मधु ॥ २३ ॥ ककुभां मंगलं सर्वं संप्रेक्ष्य प्रस्थितोऽभवत् । महोत्साहो महावीरो बलिपुत्रो महारथः ॥ २४ ॥ इति हृत्कमले कृत्वा कः कस्मादागमिष्यति । योद्धा रणप्रियो यस्तु नानाशस्त्रास्त्र-पारगः ॥ २५ ॥ यस्तु बाहुसहस्रं मे छिनत्त्यनलकाष्ठवत् । तथा शस्त्रैर्महातीक्ष्णै-श्छिनत्ति शतशस्त्विह ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरे कालः संप्राप्तश्शंकरेण हि । यत्र सा बाणदुहिता सुजाता कृतमंगला ॥२७॥ माधवं माधवे मासि पूजयित्वा महानिशि । सुप्ता चांतःपुरे गुप्ते स्त्रीभावमुपलंभिता ॥२८॥ गौर्या संप्रेषितेनापि व्याकृष्टा दिव्य-मायया । कृष्णात्मजात्मजेनाथ रुदंती सा ह्यनाथवत् ॥ २९ ॥ स चापि तां बलाद्भु-क्त्वा पार्वत्याः सखिभिः पुनः । नीतस्तु दिव्ययोगेन द्वारकां निमिषांतरात् ॥३०॥ मुदिता सा तदोत्थाय रुदंती विविधा गिरः । सखीभ्यः कथयित्वा तु देहत्यागे

त्कुमारजीने कहा, कि—बाणासुरने इस बातको सुन दिव्य अञ्जलिकलियोंसे शिवका पूजन किया और उनको प्रणाम कर अपने घर चला आया ॥२०॥ और कुंभाण्डके बूझने पर उसने हर्षमें भर कर सब वृत्तान्त कह दिया, फिर वह असुर उत्सुकतापूर्वक उस समयकी बाट देखने लगा ॥ २१ ॥ फिर एक समय दैववश उस ध्वजाको अपने आप टूटी देख कर बाणासुर प्रसन्न हो युद्धके लिये उद्यत हुआ ॥ २२ ॥ उसने अपने आठ गणों सहित अपनी सेनाको बुलाया और सांग्रामिका इष्टि कर, सांग्रामिक मधु, उत्तर दिशा, और मांगलिक वस्तुओंको देख महोत्साह महावीर महारथी बलिपुत्र युद्धके लिये तयार होगया ॥ २३ ॥ २४ ॥ वह अपने मनमें विचारने लगा, कि—कौन रणप्रिय योद्धा किधरसे आवेगा, जो कि–अनेक शस्त्र अस्त्रोंका पारगामी होगा और मेरी हजार भुजाओंको ईंधनकी समान काट डालेगा और मुझे जिसके सामने सैंकड़ों तीक्ष्ण शस्त्रोंसे युद्धसे करनेका अवसर मिलेगा २५।२६ इसी समय शङ्करकी कृपासे वह समय आगया कि बाणपुत्रीने मांगलिक कार्य किये ॥ २७ ॥ वह वैशाखमासमें माधवका पूजन कर रात्रिके समय अन्तःपुरमें सो रही थी, कि—स्त्री भावको प्राप्त होगई ॥ २८ ॥ गौरीने दिव्य-मायासे श्रीकृष्णके पौत्रको खेंच कर तहाँ ला दिया और उसने उस अनाथकी समान रोती हुई के साथ बलपूर्वक भोग किया, फिर पार्वतीने और पार्वतीकी सखियोंने दिव्ययोगसे निमिषभरमें ही उसे फिर द्वारकाको भेज दिया २९।३० तब वह रोती हुई उठी और अपनी सखियोंसे सब वृत्तान्त कह देह त्यागनेके

कृतक्षणा ॥ ३१ ॥ सख्या कृतात्मनो दोषं सा ज्ञात्वा स्मारिता पुनः । सर्वं तत्पूर्व-वृत्तान्तं ततो दृष्ट्वा च साभवत् ॥ ३२ ॥ अब्रवीच्चित्रलेखा च ततो मधुरया गिरा । ऊषा बाणस्य तनया कुंभांडतनयां मुने ॥ ३३ ॥ ऊषोवाच । सखि यद्येष मे भर्ता पार्वत्या विहितः पुरा । केनोपायेन ते गुप्तः प्राप्यते विधिवन्मया ॥ ३४ ॥ कस्मिन्कुले स वा जातो मम येन हृतं मनः । इत्यूषावचनं श्रुत्वा सखी प्रोवाच तां तदा ॥ ३५ ॥ चित्रलेखोवाच । त्वया स्वप्ने च यो दृष्टः पुरुषो देवि तं कथम् । अहं समानयिष्यामि न विज्ञातस्तु यो मम ॥ ३६ ॥ दैत्यकन्या तदुक्ते तु रागांधा मरणोत्सुका । रक्षिता च तया सख्या प्रथमे दिवसे ततः ॥ ३७ ॥ पुनः प्रोवाच सोषां वै चित्रलेखा महामतिः । कुंभांडस्य सुता बाणतनयां मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ चित्रलेखोवाच । व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते । समानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥३९॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा वस्त्रपुटके देवान्दैत्यांश्च दानवान् । गन्धर्वसिद्धनागांश्च यक्षादींश्च तथालिखत् ॥ ४० ॥ तथा नरांस्तेषु वृष्णीञ्शूरमानकदुंदुभिम् । व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं नरसत्तमम् ॥ ४१ ॥ अनिरुद्धं विलिखितं प्राद्युम्निं वीक्ष्य लज्जिता । आसीदवाङ्मुखी चोषा हृदये हर्ष-

लिये उद्यत होगई ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय सखी चित्रलेखाने उसको उसके अपराधका (पार्वतीको चितानेसे मिले हुये शापका) वृत्तान्त स्मरण कराया, उस सब वृत्तान्तका स्मरण आने पर वह प्रकृतिस्थ होगई ॥३२॥ हे मुने ! फिर कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखाने बाणकी पुत्री ऊषासे मधुर वाणीमें बातें कहीं फिर ऊषा चित्रलेखासे कहने लगी ॥ ३३ ॥ हे सखि ! यदि पार्वतीने इनको पहिलेसे ही मेरा भर्ता बना दिया है तो मैं इन गुप्त पुरुषको किस प्रकार पासकूँगी ३४ जिन्होंने मेरे मनको हर लिया है, वह किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं, ऊषाके इस वचनको सुन कर सखी उससे कहने लगी ॥ ३५ ॥ चित्रलेखाने कहा, कि हे देवि ! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसको मैं कैसे लासकती हूँ, क्योंकि मैं उसको जानती नहीं ॥ ३६ ॥ यह कहने पर दैत्यकन्या प्रेमांध होकर मरनेके लिये उत्सुक होगई, तब पहिले दिन सखीने उसकी रक्षाकी ३७ फिर उस कुंभाण्डनन्दिनी परमबुद्धिमती चित्रलेखा ने बाणकी पुत्री से कहा ॥ ३८ ॥ चित्रलेखाने कहा, कि—जिसने तुम्हारे मनको हरा है । वह पुरुष यदि त्रिलोकीमें है तो मैं उसको लाकर तुम्हारे दुःखको दूर कर दूँगी ॥३९॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—यह कह कर उसने वस्त्रके परदे पर देवता दैत्य दानव गन्धर्व सिद्ध नाग और यक्ष आदिका चित्र खींचा ४० फिर उसने मनुष्योंका चित्र लिखना आरम्भ किया, लिखते २ उसने वसुदेव राम कृष्ण नरश्रेष्ठ प्रद्युम्न और अनिरुद्धका चित्र खींचा ॥ ४१ ॥ चित्रलिखित

पूरिता ॥ ४२ ॥ ऊषा प्रोवाच चौरोऽसौ मया प्राप्तस्तु यो निशि । पुरुषः सखि येनाशु चेतोरत्नं हृतं मम ॥ ४३ ॥ यस्य संस्पर्शनादेवं मोहिताहं तथाभवम् । तमहं ज्ञातुमिच्छामि वद सर्वं च भामिनि ॥ ४४ ॥ कस्यायमन्वये जातो नाम किं चास्य विद्यते । इत्युक्ता साब्रवीन्नाम योगिनी तस्य चान्वयम् ॥ ४५ ॥ सर्वमाकर्ण्य सा तस्य कुलादि मुनिसत्तम । उत्सुका बाणतनया बभाषे सा तु कामिनी ॥ ४६ ॥ ऊषोवाच । उपायं रचय प्रोत्या तत्प्राप्त्यै सखि तत्क्षणात् । येनोपायेन तं कान्तं लभेयं प्राणवल्लभम् ॥ ४७ ॥ यं विनाहं क्षणं नैकं सखि जीवितुमुत्सहे । तमानयेह सद्यत्नात्सुखिनीं कुरु मां सखि ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्ता सा तया बाणात्मजयामंत्रिकन्यका विस्मिताभून्मुनिश्रेष्ठ सुविचारपराऽभवत् ॥ ४९ ॥ ततस्सखीं समाश्वास्य चित्रलेखा मनोजवा । बुद्ध्वा तं कृष्णपौत्रं सा द्वारकां गंतुमुद्यता ॥५०॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तृतीये तु गतेऽहनि । आप्रभातान्मुहूर्ते तु संप्राप्ता द्वारकां पुरीम् ॥५१॥ एकेन क्षणमात्रेण नभसा दिव्ययोगिनी । ततश्चांतः पुरोद्याने प्रद्युम्निर्ददृशे तया ॥ ५२ ॥ क्रीडन्नारीजनैस्सार्द्धं प्रापिबन्माधवीमधु । सर्वांग-

अनिरुद्धको देख कर ऊषा लज्जित होगई उसने मुख नीचा कर लिया और उसका हृदय हर्षसे भर गया ॥ ४२ ॥ ऊषाने कहा, कि—यह वही चोर है जो मेरे पास रातको आया था, हे सखि ! इसने मेरे चित्तरत्नको चुरा लिया है ॥ ४३ ॥ इनके स्पर्शसे मैं मोहित होगई हूँ, इनको मैं पूर्णरूपसे जानना चाहती हूँ अतः हे भामिनि ! इनका आप यथार्थरीतिसे वर्णन करिये ।४४। ये किनके कुलमें उत्पन्न हुए हैं, इनका नाम क्या है ? तब उस योगिनीने उनके नाम और वंशका वर्णन किया ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तम ! उनके कुल आदिका वर्णन सुन कर कामिनी ऊषा उत्सुक होकर कहने लगी ॥ ४६ ॥ ऊषाने कहा, कि हे सखि ! अब तत्काल ही ऐसा उपाय करो, जिससे मुझे यह प्राणवल्लभ पति मिलें ॥ ४७ ॥ हे सखि ! मैं इनके विना एक क्षण भर भी जीवित रहना अच्छा नहीं समझती, अतः इनको यत्नपूर्वक लाकर मुझे सुखी करो ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-हे मुनिश्रेष्ठ ! बाणपुत्रीके इस प्रकार कहने पर वह मन्त्रीकी कन्या विस्मित होकर विचारमें पड़ गई ४९ फिर उसने सखीको ढाढ़स दिया, तदनन्तर मनकी समान गति वाली चित्रलेखा उनको कृष्णका पौत्र जान कर द्वारका जानेके लिये गुप्त होगई ॥५०॥ जब ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दशीके दिनका प्रभातसे तीसरा पहर बीत गया, तब वह द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ ५१ ॥ वह दिव्य योगिनी एक क्षणमात्रमें ही आकाशमार्गसे अन्तःपुरके उद्यानमें पहुँच गई, तहाँ उसने प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धको देखा ॥ ५२ ॥ वह माधवी मधु पीकर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे, सर्वांग

सुन्दरश्यामः सुस्मितो नवयौवनः ॥५३॥ ततः खट्वां समारूढमंधकारपटेन सा। आच्छादयित्वा योगेन तामसेन च माधवम् ॥ ५४ ॥ ततस्सा मूर्ध्नि तां खट्वां गृहीत्वा निमिषांतरात्। संप्राप्ता शोणितपुरं यत्र सा बाणनंदिनी ॥ ५५ ॥ कामार्ता विविधान्भावाञ्चकारोन्मत्तमानसा। आनीतमथ तं दृष्ट्वा हृष्टा भीता च साभवत् ॥५६ अंतःपुरे सुगुप्ते च नवे तस्मिन्समागमे। यावत्क्रीडितुमारब्धं तावज्ज्ञातं च तत्क्षणात् ॥५७॥ अंत पुरद्वारगतैर्वेत्रजर्जरपाणिभिः। इंगितैरनुमानैश्च कन्यादौःशील्य-माचरन् ॥ ५८ ॥ स चापि दृष्टस्तैस्तत्र नरो दिव्यवपुर्धरः। तरुणो दर्शनीयस्तु साहसी समरप्रियः ॥ ५९ ॥ तं दृष्ट्वा सर्वमाचख्युर्बाणाय बलिसूनवे। पुरुषास्ते महावीराः कन्यान्तःपुररक्षकाः ॥ ६० ॥ द्वारपाला ऊचुः। देव कश्चिन्न जानीते गुप्तश्चांतःपुरे बलात्। शक्रस्तु तव कन्यां वै स्वरूपाहादधर्षयत् ॥ ६१ ॥ दानवेन्द्र महाबाहो पश्य पश्यैनमत्र च। यद्युक्तं स्यात्तत्कुरुष्व न दुष्टा वयमित्युत ॥ ६२ ॥ सनत्कुमार उवाच। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः। विस्मितोऽभून्मुनि-श्रेष्ठ कन्यायाः श्रुतदूषणः ॥ ६३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे ऊषाचरित्रवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

सुन्दर श्यामवर्णके थे, नवीन यौवन वाले थे और मुस्कुरा रहे थे ॥ ५३ ॥ उन खट्वा पर बैठे हुएको चित्रलेखाने तामसयोगसे अंधकारमय वस्त्रसे ढक लिया ॥५४॥ फिर वह उस खाटको मस्तक पर रख निमेषमात्रमें ही शोणित पुरमें बाणनन्दिनीके पास गई ॥ ५५ ॥ उनको आये हुए देख कामार्त और कामसे उन्मत्त चित्त वाली ऊषाने अनेक प्रकारके भाव दिखाये, फिर वह (बात खुल जानेके भयसे) डरने लगी ॥ ५६ ॥ उस परमगुप्त अन्तःपुरमें नवीन समागमके समय क्रीड़ा होने पर यह बात फैल गई ॥ ५७ ॥ अन्तःपुर के द्वारकी रक्षा करने वाले वेतधारी पहिरेदारोंने चेष्टाओंसे और अनुमानसे इस बातको जान लिया, उन्होंने कन्याके साथ दुःशीलताका आचरण करते हुए दिव्य शरीर वाले तरुण दर्शनीय साहसी समरप्रिय मनुष्यको देखा ५८।५९ कन्याके अंतःपुरकी रक्षा करने वाले उन महावीर पुरुषोंने यह सब करतून देख कर बलिपुत्र बाणासुरसे सब बातें कहीं ॥ ६० ॥ द्वारपालोंने कहा, कि-हे देव ! मालूम नहीं आपके अन्तःपुरमें बलपूर्वक घुस कर कौन छिपा हुआ है, अनुमान होता है, इन्द्र ही दूसरा शरीर धर कर आपकी कन्याको भोग रहा है ॥६१॥ हे महाभुज दानवेन्द्र ! देखिये ! देखिये !! जो उचित समझिये उसको करिये, हमारा अब कोई दोष नहीं है ॥ ६२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-हे मुनिश्रेष्ठ ! महाबली दानवेन्द्र उनके इस वचनको सुन कन्याके दूषणकी बात सुननेसे विस्मित हुआ ॥ ६३ ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ५२

सनत्कुमार उवाच । अथ बाणासुरः क्रुद्धस्तत्र गत्वा ददर्श तम् । दिव्य-लीलास्तनुं प्रथमे वयसि स्थितम् ॥१॥ तं दृष्ट्वा विस्मितं वाक्यं किं कारणमथा-ब्रवीत् । बाणः क्रोधपरीतात्मा युधि शौंडो हसन्निव ॥ २ ॥ अहो मनुष्यो रूपा-ढ्यस्साहसी धैर्यवानिति । कोऽयमागतकालश्च दुष्टभाग्यो विमूढधीः ॥ ३ ॥ येन मे कुलचारित्रं दूषितं दुहिता हिता । तं मारयध्वं कुपिताश्शीघ्रं शस्त्रैस्सुदारुणैः ४ दुराचारं च तं बद्ध्वा घोरे कारागृहे ततः । रक्षध्वं विकटे वीरा बहुकालं विशेषतः ५ न जाने कोऽयममयः को वा घोरपराक्रमः । विचार्येति महाबुद्धिस्संदिग्धोऽभू-च्छरासुरः ॥ ६ ॥ ततो दैत्येन सैन्यं तु दशसाहस्रकं शनैः । वधाय तस्य वीरस्य व्यादिष्टं पापबुद्धिना ॥ ७ ॥ तदादिष्टास्तु ते वीराः सर्वतोऽन्तःपुरं द्रुतम् । छाद-यामासुरत्युग्राश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥ ८ ॥ शत्रुसैन्यं ततो दृष्ट्वा गर्जमानः स यादवः । अंतःपुरं द्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम् ॥९॥ निष्क्रांतो भवनात्तस्माद्वज्र-हस्त इवांतकः । तेन तान्किंकरान् हत्वा पुनश्चांतःपुरं ययौ ॥ १० ॥ एवं दशस-हस्राणि सैन्यानि मुनिसत्तम । जघान रोषरक्ताक्षो वर्द्धितशिवतेजसा ॥११॥ लक्षे

सनत्कुमारजीने कहा, कि—तदनन्तर बाणासुर क्रोधमें भर वहाँ पहुँचा और उसने प्रथम अवस्थामें वर्तमान दिव्यशरीरधारी अनिरुद्धको देखा ॥१॥ उसको देख कर युद्धचतुर बाणासुर क्रोधपूर्वक मुस्करा विस्मित होता हुआ कहने लगा क्या कारण है ? (यह कैसे यहाँ आपहुँचा) ॥२॥ अरे यहाँ यह कौन रूपवान् साहसी धैर्यवान् पुरुष यहाँ आगया, अरे इस मूढबुद्धि दुर्भाग्यका काल ही यहाँ घसीट लाया है ॥ ३ ॥ जो इसने मेरे कुलके प्रभावको और कन्याको दूषित कर डाला अतः तुम क्रोधमें भर कर शीघ्र ही इसको दारुण शस्त्रोंसे मार डालो ॥४॥ अथवा इस दुराचारको बाँध कर भयंकर कारागारमें डालदो और हे वीरों ! उस विकट कारागार पर बहुत समय तक पहिरा देते रहो ५ फिर वह परमबुद्धिमान् बाणासुर इस संदेहमें पड़ गया, कि—यह निर्भीक पुरुष कौन है ? इसका पराक्रम क्या प्रचण्ड है ॥ ६ ॥ फिर उस दैत्यने पापमय विचार कर उस वीरको मारनेके लिये दश हजार सेनाको आज्ञा दी ॥ ७ ॥ उसके आज्ञा देने पर वे उग्र वीर मारो काटो कहते हुए रनवासको चारों ओर से (बाणवर्षासे) छाने लगे ॥ ८ ॥ शत्रुसेनाको गर्जती देख कर यदुनन्दन अनिरुद्ध भी अन्तःपुरके दरवाजे पर पड़े हुए परिघको उठा गर्जना करते हुए उस भवनसे वज्रधारी यमकी समान निकले और उस परिघसे उन किंकरों को मार फिर अन्तःपुरमें घुस गए ॥ ९ ॥ १० ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार शिवके तेजसे बढ़े हुए अनिरुद्धने क्रोधसे आँखें लाल लाल कर दश हजार सैनिकोंको मार डाला ॥११॥ इस प्रकार जब (युद्ध करते २) लाखों योधा

हतेऽथ योधानां ततो बाणासुरो रुषा । कुंभांडं स गृहीत्वा तु युद्धे शौंडं समाह्वयत् ॥ १२ ॥ अनिरुद्धं महाबुद्धिं द्वन्द्वयुद्धे महाहवे । प्राद्युम्निं रक्षितं शैवतेजसा प्रज्वलत्तनुम् ॥ १३ ॥ ततो दशसहस्राणि तुरंगाणां रथोत्तमान् युद्धप्राप्तेन खड्गेन दैत्येन्द्रस्य जघान सः ॥१४॥ तद्वधाय ततश्शक्तिं कालवैश्वानरोपमाम् । अनिरुद्धो गृहीत्वा तां तया तं निजघान ह ॥ १५ रथोपस्थे ततो बाणहतेन शक्त्या हतो दृढम् । स साश्वस्तत्क्षणं वीरस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६ ॥ तस्मिंस्त्वदर्शनं प्राप्ते प्राद्युम्निरपराजितम् । आलोक्य ककुभस्सर्वास्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १७ ॥ अदृश्यमानस्तु तदा कूटयोधस्स दानवः । नानाशस्त्रसहस्रैस्तं जघान हि पुनः पुनः ॥१८॥ छद्मना नागपाशैस्तं बबंध स महाबलः । बलिपुत्रो महावीरश्शिवभक्तश्शरासुरः ॥ १९ ॥ तं बद्ध्वा पंजरान्तस्थं कृत्वा युद्धादुपारमत् । उवाच बाणः संक्रुद्धस्सूतपुत्रं महाबलम् ॥ २० ॥ बाणासुर उवाच । सूतपुत्र शिरश्छिंधि पुरुषस्यास्य वै लघु । येन मे दूषितं पूतं बलाद्दुष्टेन सत्कुलम् ॥२१॥ छित्त्वा तु सर्वगात्राणि राक्षसेभ्यः प्रयच्छ भोः । अथास्य रक्तमांसानि क्रव्यादा अपि भुंजताम् ॥ २२ ॥ अगाधे तृणसंकीर्णे कूपे पातकिनं जहि । किं बहुकथया सूतपुत्र मारणीयो हि सर्वथा ॥२३॥ सनत्कुमार

मर चुके तब बाणासुर क्रोधमें भर गया और वह कुम्भाण्डको साथमें लेकर उस युद्धचतुर महाबुद्धिमान् शिवतेजसे रक्षित प्रकाशित शरीर वाले अनिरुद्ध को द्वन्द्वयुद्धके लिये बुलाने लगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब उसने युद्धमें मिले हुए खड्गसे दैत्येन्द्रके दश हजार घुड़सवार रथियोंको मार डाला ॥ १४ ॥ तदनन्तर अनिरुद्धने कालाग्निकी समान शक्ति उसके वधके लिये ग्रहणकी और उसका बाणासुर पर प्रहार किया ॥ १५ ॥ उस शक्तिसे दृढ़तासे पिटने पर बाणासुर रथकी बैठक पर बैठा हुआ घोड़ों सहित तहाँ ही अन्तर्धान होगया १६ तब उसके गुप्त होजाने पर अनिरुद्ध उस अपराजितको सब दिशाओंमें देखता हुआ पर्वतकी समान अचल होकर खड़ा होगया ॥ १७ ॥ फिर उस कूटयोधी दानवने अदृश्य रह कर अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे अनिरुद्धको बारम्बार घायल करना आरम्भ कर दिया ॥१८॥ तदनन्तर महावीर शिवभक्त बलिपुत्र बाणासुरने कपट कर नागपाशसे अनिरुद्धको बाँध लिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार अनिरुद्धको बाणपञ्जरमें कैद कर वह युद्ध करनेसे हट गया, फिर वह क्रोधमें भर महाबली सूतपुत्रसे कहने लगा ॥ २० ॥ बाणासुरने कहा, कि-अरे सूतपुत्र! इस दुष्टने मेरे पवित्र कन्याकुलको दूषित कर दिया है अतः इसके शिरको शीघ्र ही काट डाल ॥ २१ ॥ और इसके सारे अङ्गोंको काट कर राक्षसोंको डाल दे, इसके रक्त मांसका राक्षसोंको भी भोग लगाना चाहिये ॥ २२ ॥ हे सूतपुत्र! घाससे भरे हुए गहरे कुएमें इस पापीको डाल, अधिक क्या कहूँ,

उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मबुद्धिर्निशाचरः। कुभांडस्त्वब्रवीद्वाक्यं बाणं सन्मंत्रिसत्तमम् ॥२४॥ कुभांड उवाच। नैतत्कर्तुं समुचितं कर्म देव विचार्यताम्। अस्मिन् हते हतो ह्यात्मा भवेदिति मतिर्मम ॥ २५ ॥ अयं तु दृश्यते देव तुल्यो विष्णोः पराक्रमैः। वर्धितश्चन्द्रचूडस्य त्वद्दुष्टस्य सुतेजसा ॥ २६ ॥ अथ चन्द्रललाटस्य साहसेन समस्त्व मू। इमामवस्थां प्राप्तोऽपि पौरुषे संव्यवस्थितः २७ अयं शिवप्रसादाद्धि कृष्णपौत्रो महाबलः। अस्मांस्तृणोपमान् वेत्ति दष्टोऽपि भुजगैर्बलात् ॥२८॥ सनत्कुमार उवाच। एतद्वाक्यं तु बाणाय कथयित्वा स दानवः। अनिरुद्धमुवाचेदं राजनीतिविदुत्तमः ॥ २९ कुभांड उवाच। कोऽसि कस्यासि रे वीर सत्यं वद ममाग्रतः। केन वा त्वमिहानीतो दुराचार नराधम ॥ ३० ॥ दैत्येन्द्रं स्तुहि वीरं त्वं कुरु बद्धाञ्जलिः। जितोऽस्मीति वचो दीनं कथयित्वा पुनः पुनः ॥३१। एवं कृते तु मोक्षस्स्यादन्यथा बंधनादि च। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रतिवाक्यमुवाच सः ॥ ३२ ॥ अनिरुद्ध उवाच। रे रे दैत्याऽधमसखे कर्पिंडोपजीवक। निशाचर दुराचार शत्रुधर्मं न वेत्सि भोः ॥ ३३ ॥ दैन्यं पलायनं चाथ

इसको चाहे जिस प्रकारसे मार डाल ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—उसके इस वचनको सुन कर धर्मबुद्धि निशाचर कुम्भाण्ड, श्रेष्ठ मंत्री रखने वाले बाणासुरसे कहने लगा ॥ २४ ॥ कुंभाण्डने कहा, कि—हे देव ! विचार तो कीजिये, इसको मारना तो अपनेको ही मारना है, मेरा तो यह विचार है कि—इस कामको करना उचित नहीं है ॥ २५ ॥ हे देव ! यह तो पराक्रममें विष्णुकी समान लगता है, ऐसा मालूम होता है, कि—शिवने तुम पर कुपित होकर ही अपने तेजसे इसको बढ़ा दिया है ॥ २६ ॥ यह साहसमें तो शिवकी समान दीखता है। यह इस अवस्थामें पड़ने पर भी पुरुषार्थ किये ही जाता है ॥ २७ ॥ इसको साँप बलपूर्वक डस रहे हैं तब भी यह महाबली कृष्णपौत्र शिवकी कृपा से हमें तृणकी समान ही समझ रहा है ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—बाणासुरसे यह बात कह कर राजनीति जानने वालोंमें श्रेष्ठ उस दानवने अनिरुद्धसे यह बात कही, कि-२९ कुम्भाण्डने कहा कि—हे वीर ! तू मुझसे सच २ कह, कि-तू कौन है ? तेरे पिता पितामहका क्या नाम है और अरे दुराचारी नराधम ! तुझे यहाँ कौन लाया है ॥ ३० ॥ अब तू हाथ जोड़ कर वीर दैत्येन्द्रकी स्तुति कर और दीनतापूर्वक कह कि—मैं हार गया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बारंबार कहने पर ही तेरा छुटकारा होसकता है, नहीं तो तुझे बन्धन आदिका दण्ड भोगना पड़ेगा, इस बातको सुन कर अनिरुद्धने प्रत्युत्तर दिया ॥ ३२ ॥ अनिरुद्धने कहा, कि—अरे टैक्सके टुकड़े पर जीवन चलाने वाले ! अधम दैत्यके

शूरस्य मरणाधिकम् । विरुद्धं चोपशल्यं च भवेदिति मतिर्मम ॥ ३४ ॥ क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सन्मुखो सदा । न वीरमानिनो भूमौ दीनस्येव कृतांजलिः ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्यादि वीरवाक्यानि बहूनि स जगाद ह । तदाकर्ण्य स बाणोऽसौ विस्मितोऽभूच्चुकोप च ॥ ३६ ॥ तदोवाच नभोवाणी बाणस्याश्वासनाय हि । श्रृण्वतां सर्ववीराणामनिरुद्धस्य मन्त्रिणः ॥ ३७ ॥ व्योमवाण्युवाच । भो भो बाण महावीर न क्रोधं कर्तुमर्हसि । बलिपुत्रोऽसि सुमते शिवभक्त विचार्यताम् ॥ ३८ ॥ शिवस्सर्वेश्वरस्साक्षी कर्मणां परमेश्वरः । तदधीनमिदं सर्वं जगद्वै सचराचरम् ॥ ३९ ॥ स एव कर्ता भर्ता च संहर्ता जगतां सदा । रजस्सत्त्वतमोधारी विधिविष्णुहरात्मकः ॥ ४० ॥ सर्वस्यांतर्गतः स्वामी प्रेरकस्सर्वतः परः । निर्विकार्यव्ययो नित्यो मायाधीशोऽपि निर्गुणः ॥४१॥ तस्येच्छयाऽबलो ज्ञेयो बली बलिवरात्मज । इति विज्ञाय मनसि स्वस्थो भव महामते ॥४२॥ गर्वापहारी भगवान्नानालीलाविशारदः । नाशयिष्यति ते गर्वमिदानीं भक्तवत्सलः ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याभाष्य नभोवाणी विरराम महामुने । बाणासुरस्तच्छ्रुत्वा-

मित्र दुराचारी निशाचर ! क्या तू शत्रुके धर्मको नहीं जानता ॥ ३३ ॥ दीनता दिखाना और भाग जाना तो शूरके लिये मरणसे भी अधिक दुःख देने वाले हैं और विरुद्धाचरण बाणकी समान दुःखदायी होता है, मेरा ऐसा विचार है, कि—॥ ३४ ॥ वीरमानी पुरुषको दीन बन कर हाथ जोड़नेकी अपेक्षा सन्मुख रह कर रणमें मर जाना अच्छा है ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—अनिरुद्धने इस प्रकार अनेक वीरताकी बातें कीं, उनको सुन बाणासुर विस्मित हुआ और उसको क्रोध भी आया ॥ ३६ ॥ उस समय बाणासुरको ढाढस देनेके लिये सब वीरोंके, अनिरुद्धके, और मन्त्रियोंके सामने ही आकाशवाणी हुई, कि—॥ ३७ ॥ हे महावीर बाणासुर ! क्रोध मत करो हे बुद्धिमान् शिवभक्त ! तुम बलिके पुत्र हो, अतः विचार करो ॥ ३८ ॥ परमेश्वर शिव सबके ईश्वर हैं, कर्मोंके साक्षी हैं यह जङ्गम और स्थावर सकल जगत् शिवके ही आधीन है ॥ ३९ ॥ वही इस जगत्को रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं और ब्रह्मा विष्णु और शिवके रूप रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुणको धारण करने वाले हैं ॥ ४० ॥ वह स्वामी सबके हृदयमें विराजमान हैं, सबके प्रेरक हैं और सर्वश्रेष्ठ हैं, विकाररहित हैं, अव्यय हैं नित्य हैं और मायाके स्वामी होने पर भी निर्गुण हैं ॥ ४१ ॥ हे बलिके श्रेष्ठ पुत्र ! उनकी इच्छासे निर्बल पुरुष भी बलवान् होजाता है, मनमें इस बातको समझ कर हे महामते ! तू स्वस्थ हो जा ॥ ४२ ॥ अनेक लीलाओं को करनेमें चतुर गर्वगञ्जन भक्तवत्सल भगवान् शिव अब तेरे गर्वको उता-

लादनिरुद्धं न जघान सः ॥ ४४ ॥ किन्तु स्वान्तःपुरं गत्वा पपौ पानमनुत्तमम् । रमयामास ... विजहार विरुद्धधीः ॥ ४५ ॥ ततोऽनिरुद्धो बद्धस्तु नागबाणैर्विषाग्निभिः । प्रियायाऽतृप्तचेतास्तु दुर्गां सस्मार तत्क्षणात् ॥ ४६ ॥ अनिरुद्ध उवाच । शरण्ये देवि बद्धोऽस्मि दह्यमानस्तु पन्नगैः । आगच्छ मे ... यशोदे चण्डरूपिणि ॥ ४७ ॥ शिवभक्ते महादेवि सृष्टिस्थित्यंतकारिणि । त्वं शिवा रक्षणी ... तस्मात्त्वं शिवे हि माम् ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच । ... काली भिन्नाञ्जनप्रभा । ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां संप्राप्तासीन्महानिशि ॥ ४९ ॥ मुष्टिभिर्दारयामास पंजरम् । शरांस्तान्भस्मसात्कृत्वा सर्पपाशं व्यपाकान ॥ ५० ॥ मोचयित्वानिरुद्धं तु तमन्तःपुरं ततः । प्रवेशयित्वा दुर्गा तु तदन्तर्धानं गता ॥५१॥ इत्थं देव्याः प्रसादात्तु शिवशक्तेर्मुनीश्वर । कृच्छ्रमुक्तो निरुद्धोऽभूत्सुखी चैव गतव्यथः ॥ ५२ ॥ अथ लब्धजयो भूत्वानिरुद्धः शिवशक्तितः । प्राद्युम्निर्बाणतनयां प्रियां प्राप्य मुमोद च ॥ ५३ ॥ पूर्ववद्विजहारासौ तथा स्वप्रियया मुदा । पीतपानस्तु रक्ताक्ष बाणसुतया ततः ॥ ५४ ॥

रंगे ॥ ४३ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे महामुने ! वह आकाशवाणी इस प्रकार कह कर बन्द होगई तब बाणासुरने उसके कहनेसे अनिरुद्धका बध नहीं किया ॥ ४४ ॥ और अन्तःपुरमें जाकर श्रेष्ठ शरबत पिया, और तथा वह विरुद्ध बुद्धि वाला असुर आकाशवाणीका विस्मरण कर विहार करने लगा ॥ ४५ ॥ उधर अनिरुद्ध विषैले सर्पोंसे बँधे हुये थे, प्रियासे उनका चित्त तृप्त नहीं हुआ था अतः वे उस समय दुर्गाका स्मरण करने लगे, ४६ अनिरुद्धने कहा, कि—हे शरणागतकी रक्षा करने वाली देवि ! मैं बँधा हुआ हूँ सर्पोंकी विषज्वालासे सन्तप्त होरहा हूँ, हे यश प्रदान करने वाली चण्डरोपिणि दुर्गे ! आइये ! मेरी रक्षा करिये ॥ ४७ ॥ हे शिवकी भक्त महादेवि ! आप सृष्टि स्थिति और अन्त करने वाली है, आप अनुपमरूपसे रक्षा करने वाली हैं, हे शिवे ! इसलिये आप मेरी रक्षा करिये ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं कि-जब पिसे हुए अञ्जनकी समान कान्ति वाली कालीको अनिरुद्धने इस प्रकार सन्तुष्ट किया तब वह ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिमें तहाँ पधारीं ॥ ४९ ॥ उन्होंने अपने भयंकर मुक्कोंसे सर्पपाशको तोड़ डाला और उन बाणरूप भयानक सर्पोंको भस्म कर दिया ॥५०॥ इस प्रकार अनिरुद्धको छुड़ानेके अनन्तर उसको अन्तःपुरमें घुसा कर दुर्गा देवी तहाँ ही अन्तर्धान होगईं ॥५१॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार शिवकी शक्ति देवीकी कृपासे अनिरुद्ध कष्टसे छूट गया, उसकी व्यथा जाती रही ॥ ५२ ॥ इस प्रकार शिवशक्तिके प्रतापसे जय पाकर प्रद्युम्नका पुत्र अनिरुद्ध अपनी प्रिया बाणकी पुत्रीके पास जाकर प्रसन्न होने लगा ॥५३॥ वह पहिलेकी समान शरबत पी रक्तवर्णकी आँखें कर अपनी प्रियाके साथ विहार कर सुखी होने लगा ५४ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त

व्यास उवाच । अनिरुद्धे हृते पौत्रे कृष्णस्य मुनिसत्तम । कुंभांडसुतया कृष्णः किमकार्षीद्धि तद्वद ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । ततो गतेऽनिरुद्धे तु तत्स्त्रीणां रोदनस्वनम् । श्रुत्वा च व्यथितः कृष्णो बभूव मुनिसत्तम ॥ २ ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां हरेस्तथा । चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥३॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च । आसन्सुव्यथितास्सर्वे वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ ४ ॥ कृष्णस्तद्वृत्तमखिलं श्रुत्वा युद्धं च चादरात् । जगाम शोणितपुरं तार्क्ष्यमाहूय तत्क्षणात् ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गतस्सांबोऽथ सारणः । नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ६ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिस्समेतास्सर्वतो दिशम् । रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ७ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् । वीक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्याभिनिर्ययौ ॥ ८ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रस्ससुतः प्रमथैर्वृतः । आरुह्य नन्दिवृषभं युद्धं कर्त्तुं समाययौ ॥ ९ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । कृष्णादिकानां तैस्तत्र रुद्राद्यैर्बाणरक्षकैः ॥१०॥

व्यासजीने कहा, कि—हे मुनिश्रेष्ठ ! जब कृष्णके पौत्र अनिरुद्धको कुम्भांडकी पुत्री चित्रलेखा हर कर लेगई, तब कृष्णने क्या किया था, उसका वर्णन करिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि-हे मुनिसत्तम ! अनिरुद्धके गुप्त होजाने पर उसकी स्त्रियोंके रोनेके शब्दको सुन कर कृष्ण व्यथित हुये ॥२॥ वर्षाके चार महीने तक श्रीकृष्णको और उनके बंधुओंको खोजते २ बती गए परन्तु अनिरुद्धका कुछ पता न लगा और वह अनिरुद्धके विषयमें शोक कर रहे थे, कि—॥ ३ ॥ नारदजीने उन्हें अनिरुद्धका समाचार सुनाया कि—उसने कैद होजाने पर क्या किया है, इसको सुन कर कृष्णको देवता मानने वाले सब वृष्णिवंशी बड़े व्याकुल हुए ॥ ४ ॥ कृष्णने इस सकल वृत्तान्तको सुन कर आदरपूर्वक गरुड़को बुलाया और तत्काल युद्ध करनेके लिये शोणितपुरको चल दिये ॥ ५ ॥ राम और कृष्णके पीछे प्रद्युम्न युयुधान, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द भद्र आदि भी चले ॥ ६ ॥ फिर उन श्रेष्ठ सात्वतवंशियोंने शोणितपुरको बारह अक्षौहिणी सेनासे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥ जब बाणासुरने नगर, बाग, महल, नगरद्वार (फाटक) आदिको टूटते हुए देखा तो बाणासुर भी क्रोधमें भर बारह अक्षौहिणी सेनाको साथमें लेकर निकल आया ॥ ८ ॥ बाणकी हिमायत लेकर भगवान् रुद्र भी अपने नन्दी नामक वृषभ पर चढ़ पुत्र और प्रमथगणोंको साथ लेकर युद्धके लिये निकल आये ॥ ९ ॥ तब कृष्ण आदिका बाणके रक्षक रुद्र आदिके साथ अद्भुत तुमुल युद्ध हुआ उससे प्राणियोंके रोम खड़े होगये १०

कृष्णशङ्करयोरासीत्प्रद्युम्नगुहयोरपि । कूष्मांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ११
सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः । नन्दिना गरुडस्यापि परेषां च परैरपि १२
ब्रह्माद्यस्सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः । गंधर्वाप्सरसो यानैर्विमानैर्द्रष्टुमागमन ॥ १३ ॥ प्रमथैर्विविधाकारै रेवत्यंतैः सुदारुणम् । युद्धं बभूव विप्रेन्द्र तेषां च यदुवंशिनाम् ॥ १४ ॥ भ्रात्रा रामेण सहितः प्रद्युम्नेन च धीमता । कृष्णश्चकार समरमतुलं प्रमथैस्सह ॥ १५ ॥ तत्राग्निनाऽभवद्युद्धं यमेन वरुणेन च । विमुखेन त्रिपादेन ज्वरेण च गुहेन च ॥ १६ ॥ प्रमथैर्विविधाकारैस्तेषामत्यंतदारुणम् । युद्धं बभूव विकटं वृष्णीनां रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥ विभीषिकाभिर्बह्वीभिः कोटरीभिः पदेपदे । निर्लज्जाभिश्च नारीभिः प्रबलाभिरदूरतः ॥ १८ ॥ शंकरानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् । द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ १९ ॥ एवं प्रद्युम्नप्रमुखा वीरा युद्धमहोत्सवाः । चक्रुर्युद्धं महाघोरं शत्रुसैन्यं विनाशयन् ।२०। विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा रुद्रोऽप्यमर्षणः । क्रोधं चकार सुमहन्ननाद च महोल्वणम् ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा शंकरगणा विनेदुर्युयुधुश्च ते । मर्दयन्प्रतियोद्धारं वर्द्धिताश्शंभुतेजसा ॥ २२ ॥ पृथग्विधानि चापुंक्त शार्ङ्गास्त्राणि पिनाकिने । प्रत्यस्त्रैश्शम-

कृष्ण और शंकरकी, प्रद्युम्न और कार्तिकेयकी और कूष्माण्ड कूपकर्णके साथ बलदेवजीकी जोड़ी जुट गई ॥ ११ ॥ साम्ब बाणपुत्रके साथ युद्ध करने लगे, सात्यकि बाणासुरके साथ जुट गये, नन्दीके साथ गरुड़का युद्ध होने लगा और दूसरोंका भी दूसरोंके साथ युद्ध होने लगा ॥ १२ ॥ उस युद्धको देखने के लिये विमानोंमें चढ़ कर ब्रह्मा आदि देवस्वामी, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व और अप्सरा आगये ॥ १३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! यदुवंशियोंका अनेक प्रकारके आकार वाले प्रमथोंसे दारुण युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण भाई बलराम और बुद्धिमान् प्रद्युम्नको साथ लेकर प्रमथगणोंके साथ घोर संग्राम करने लगे ॥ तब वृष्णियोंके साथ पद पद पर अनेक प्रकारके प्रमथ, अग्नि, यम, वरुण, विमुख, त्रिपाद ज्वर, कार्तिकेय अनेक प्रकारकी विभीषिकायें और निर्लज्ज प्रबल डोकरी नारियें रोमहर्षण विकट युद्ध करने लगीं ॥ १६—१८ ॥ श्रीकृष्ण शार्ङ्ग धनुषसे तीखे फलके वाले बाण छोड़ कर शङ्करके अनुचर भूत प्रमथ और गुह्यकोंको भगाने लगे ॥ १९ ॥ इसी प्रकार युद्धमहोत्सव मनाने वाले प्रद्युम्न आदि मुख्य मुख्य वीर शत्रुकी सेनाका विनाश करते हुये महाघोर युद्ध करने लगे ॥ २० ॥ अपनी सेनाको नष्ट होती देख रुद्र चुप न रह सके उन्होंने क्रोधपूर्वक बड़ा भारी नाद किया ॥ २१ ॥ उसको सुन कर शम्भुके तेजसे वृद्धिको प्राप्त हुये शंकरके गण भी गर्जन कर शत्रुओंको मसलते हुये युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण शार्ङ्गधनुषसे अनेक प्रकारके

यामास शूलपाणिर्नविस्मितः ॥ २३ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्। आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं नारायणस्य च ॥ २४ ॥ कृष्णसैन्यं विद्रुद्रुतं व प्रतिवीरेण निर्जितम्। न तस्थौ समरे व्यास पूर्णरुद्रसुतेजसा ॥ २५ ॥ विद्राविते स्वसैन्ये तु श्रीकृष्णश्च परंतपः। एवं ज्वरं शीतलाख्यं हि व्यसृजद्दारुणं मुने ॥२६॥ विद्राविते कृष्णसैन्ये कृष्णस्य शीतलज्वरः। अभ्यपद्यत तं रुद्रं मुने दश दिशो दहन् ॥ २७॥ महेश्वरोऽथ तं दृष्ट्वा यांतं स्वं विसृजज्ज्वरम्। माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २८ ॥ वैष्णवोऽथ समाक्रंदन्माहेश्वरबलार्दितः। अलब्ध्वाभयमन्यत्र तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ २९ ॥ अथ प्रसन्नो भगवान्विष्णुज्वरनुतो हरः। विष्णुशीतज्वरं प्राह शरणागतवत्सलः ॥ ३० ॥ महेश्वर उवाच। शीतज्वर प्रसन्नोऽहं व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्। यो नौ स्मरति संवादं तस्य न स्याज्ज्वराद्भयम् ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्युक्तो रुद्रमानम्य गतो नारायणज्वरः। तं दृष्ट्वा चरितं कृष्णो विस्मयमाय भयान्वितः ॥ ३२ ॥ स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्दमा-

अस्त्र शिव पर चलाने लगे, किन्तु शूलपाणि महादेव कुछ भी विस्मित न हो उन अस्त्रोंको शान्त करने लगे ॥२३॥ उन्होंने श्रीकृष्णके ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यास्त्रको पार्वतास्त्रसे, आग्नेय अस्त्रको पार्जन्यास्त्रसे और नारायणास्त्रको पाशुपत अस्त्रसे खुटला कर दिया ॥ २४ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार कृष्णकी सेना प्रतिवीर (शत्रुवीर) से हार कर समरमें खड़ी न रह सकी भाग चली ॥ २५ ॥ हे मुने ! अपनी सेनामें भग्गी डालने पर परन्तप श्रीकृष्णने दारुणज्वर—शीतज्वरको छोड़ा ॥ २६ ॥ हे मुने ! इस प्रकार कृष्णकी सेनाके भगाने पर वह शीत ज्वर दशों दिशाओंको दहकाता हुआ रुद्रके पास पहुँचा ॥ २७ ॥ उस ज्वरको आते देख महेश्वरने अपना ज्वर छोड़ा, तब वे माहेश्वर और वैष्णव ज्वर आपसमें गुँथ कर युद्ध करने लगे २८ माहेश्वर ज्वरके बलसे पीड़ित होकर वैष्णव ज्वर डकराने लगा तथा और कहीं अभय मिलता न देख वृषभध्वजकी स्तुति करने लगा ॥ २९ ॥ विष्णुज्वरके स्तुति करने पर भगवान् हर प्रसन्न होगये, फिर शरणागतवत्सल हर विष्णु शीतज्वरसे कहने लगे ॥ ३० ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे शीतज्वर ! मैं प्रसन्न हूँ, मेरे ज्वरसे अब तुझे डरना न पड़ेगा, और जो हम दोनोंके सम्बादको सुनेगा उसको ज्वरसे भय नहीं लगेगा ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—इस प्रकार कहने पर नारायण ज्वर रुद्रको प्रणाम कर चला गया, इस चरित्रको देखकर श्रीकृष्णको भय लगा और वे विस्मित होने लगे ३२ स्कन्द प्रद्युम्नके बाणोंसे पीड़ा पाकर क्रोधमें भर गए और दैत्योंका संहार

नेऽथ कोपितः । जघान शक्त्या प्रद्युम्नं दैत्यसंघात्यमर्षणः ॥ ३३ ॥ स्कंदशक्तिहतस्तत्र प्रद्युम्नः प्रबलोऽपि हि । असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यो बलेनापाक्रमद्रणात् ॥ ३४ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां नानास्त्रैश्च समाहतः । दुद्राव बलभद्रोऽपि न तस्थेऽपि रणे बली ३५ ॥ कृत्वा सहस्रं कायानां पीत्वा तोयं महार्णवात् । गरुडो नाशयत्यथाऽऽवर्तमेघार्णवांबुभिः ॥ ३६ ॥ अथ क्रुद्धो महेशस्य वाहनो वृषभो बली । वेगेन महतारं वै शृंगाभ्यां निजघान तम् ॥ ३७ ॥ शृंगघातविशीर्णांगो गरुडोऽपीव विस्मितः । विदुद्राव रणात्तूर्णं विहाय च जनार्दनम् ॥ ३८ ॥ एवं जाते चरित्रे तु भगवान्देवकीसुतः । उवाच सारथिं शीघ्रं रुद्रतेजोऽतिविस्मितः ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । हे सूत शृणु मद्वाक्यं रथं मे वाहय द्रुतम् । महादेवसमीपस्थो यथा स्यां गदितुं वचः ॥ ४० ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तो हरिणा सूतो दारुकस्स्वगुणाग्रणीः । द्रुतं तं वाहयामास रथं रुद्रसमीपतः ॥ ४१ ॥ अथ विज्ञापयामास नतो भूत्वा कृतांजलिः । श्रीकृष्णः शंकरं भक्त्या प्रपन्नो भक्तवत्सलम् ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । नमामि त्वाऽनंतशक्तिं सर्वात्मानं परेश्वरम् ॥ ४३ ॥ विश्वोत्पत्तिस्थितिनाशहेतुं सज्ज्ञप्तिमात्रकम् । ब्रह्मलिंगं परं शांतं

करने वाले स्कन्दने असहनशीलतावश प्रद्युम्नके शक्ति मारी ॥ ३३ ॥ प्रद्युम्न बड़े बलवान् थे तथापि स्कन्दकी शक्तिके प्रहारसे उनके अंगोंमेंसे रुधिर बहने लगा और वह युद्धमेंसे भाग खड़े हुये ॥ ३४ ॥ बलवान् बलभद्र भी कुम्भांड और कूपकर्णके अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे घायल होने पर रणमें ठहर न सके भाग खड़े हुये ॥ ३५ ॥ गरुड़ अपने हजारों शरीर बना महासमुद्रके जल पीकर मेघ और समुद्रके जलकी बाढ़से शिवसेनाको नष्ट कर रहे थे, कि—३६ महेशके बली वाहन वृषभने क्रोधमें भर बड़े वेगसे अपने सींगोंसे गरुड़को मारा ॥ ३७ ॥ सींगोंके प्रहारसे गरुड़के अंग टूट गये और वह विस्मित हो जनार्दनको छोड़ कर रणसे भाग खड़े हुये ॥ ३८ ॥ देवकीनन्दन भगवान इस चरित्रके होने पर रुद्रके तेजसे बड़े विस्मयमें हुए और सारथीसे शीघ्रता पूर्वक कहने लगे ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे सूत ! तू मेरे वचनको सुन तू शीघ्रतासे महादेवजीके पास मेरे रथको लेचल, जिससे मैं उनसे कुछ बात कर सकूँ ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—हरिके इस प्रकार कहने पर अपने गुणमें अग्रणी दारुक सूत रथको शीघ्र ही रुद्रके समीप लेचला ४१ भक्तवत्सल शंकरके पास पहुँचनेपर श्रीकृष्ण नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ कर भक्तिपूर्वक शंकरसे कहने लगे ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे शरणागत वत्सल देवदेव महादेव ! मैं अनन्त शक्ति वाले सर्वात्मा परमेश्वर आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ आप विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और नाशके कारण

केवलं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ कालो दैवं कर्म जीवस्स्वभावो द्रव्यमेव च । क्षेत्रं च प्राण आत्मा च विकारस्तत्समूहकः ॥ ४५ ॥ बीजरोहप्रवाहस्तु त्वन्मायैषा जगत्प्रभो । तन्निबन्धं प्रपद्येह त्वामहं परमेश्वरम् ॥ ४६ ॥ नानाभावैर्लीलयैव स्वीकृतैर्निर्जरादिकान् । लोकेशा नूनं बिभर्षि हंस्युन्मार्गान्स्वभावतः ॥४७॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये । यं पश्यंत्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥४८॥ त्वमेव चाद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्य आत्मदृक् । ईशो हेतुरहेतुश्च सविकारः प्रतीयसे ॥ ४९ ॥ स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै भगवन्प्रभो । सर्वान्वितः प्रभिन्नश्च सर्वतस्त्वं महेश्वर ॥ ५० ॥ यथैव सूर्यो पिहितश्छायारूपाणि च प्रभो । स्वच्छायया संचकास्ति ह्ययं परमदृग्भवान् ॥५१॥ गुणेनापिहितोऽपि त्वं गुणेनैव गुणान् विभो । स्वप्रदीपश्चकास्सि त्वं भूमन् गिरिश शंकर ॥ ५२ ॥ त्वन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु । उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ५३ ॥ दैवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः । यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शाच्यो ह्यात्मवंचकः ।५४।

है, सत्-ज्ञान मात्र हैं, ब्रह्मलिंग हैं, परम शान्त केवल और परमेश्वर हैं ४४ हे जगत्प्रभो ! काल, दैव, कर्म, जीवस्वभाव, द्रव्य, क्षेत्र (देह) प्राण, आत्मा और विकारसमूह और बीज तथा वृक्षका प्रवाह यह सब आपकी ही माया है, इसी कारण परमेश्वर आपकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ आप अपनी लीलावश देवता आदिक अनेक रूपोंको धारण कर सन्मार्गकी रक्षा करते हैं और उन्मार्गोंका स्वभावसे ही नाश करते हैं ॥ ४७ ॥ आप ही परमज्योति ब्रह्म हैं, वाङ्मय ब्रह्म (वेद) में आप ही छिपे हुये हैं, निर्मल चित्तवाले, पुरुष आपको आकाशकी समान (निर्लेप देखते हैं ॥४८॥ आप ही आदिपुरुष हैं, अद्वितीय हैं तुर्यावस्थारूप हैं आत्मदर्शी हैं, ईश हैं, सबके कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है आप विकारीसे लगते हैं (परन्तु निर्विकार हैं) ४९ हे भगवन् ! हे प्रभो ! हे महेश्वर ! आप सब गुणोंको प्रसिद्ध करनेके लिये चारों ओरसे सबमें व्याप्त हैं और सबसे भिन्न भी हैं ॥५०॥ हे प्रभो ! जैसे ढका हुआ सूर्य छायारूपको अपनी छायासे प्रकाशित करता है, यही बात परमार्थदर्शी आपके सम्बन्धमें है ॥ ५१ ॥ हे भूमन् ! हे गिरिश ! हे शंकर ! आप गुणसे आच्छादित होकर उस गुणके द्वारा ही अन्य गुणोंको प्रकाशित करते हैं, हे विभो ! आप स्वप्रकाश हैं ॥ ५२ ॥ आपकी मायासे मोहित होकर ही जीव पुत्र स्त्री गृह आदिमें आसक्त हो पापसमुद्रमें डूबते उतराते रहते हैं ॥ ५३ ॥ प्रारब्धवश प्राप्त हुये इस मनुष्यजन्मको पाकर जो पुरुष जितेन्द्रियतापूर्वक आपके चरणकमलोंकी सेवा नहीं करता, वह आत्मवंचक है, शोक करने योग्य है ५४

त्वदाज्ञयाहं भगवन्बाणदोश्छेत्तुमागतः । त्वयैव शप्तो बाणोऽयं गर्वितो गर्वहारिणा ॥ ५५ ॥ निवर्त्तस्व रणादेव त्वच्छापो न वृथा भवेत् । आज्ञां देहि प्रभो मे त्वं बाणस्य भुजकृंतने ॥५६॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचश्शंभुः श्रीकृष्णस्य मुनीश्वर । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा कृष्णस्तुत्या महेश्वरः ॥ ५७ ॥ महेश्वर उवाच । सत्यमुक्तं त्वया तात मया शप्तो हि दैत्यराट् । मदाज्ञया भवान्प्राप्तो बाणदोर्दंडकृन्तने ॥ ५८ ॥ किं करोमि रमानाथ भक्ताधीनस्सदा हरे । पश्यतो मे कथं वीर स्याद्बाणभुजकृन्तनम् ॥ ५९ ॥ अतस्त्वं जृम्भणास्त्रेण मां जृम्भय मदाज्ञया । ततस्त्वं कुरु कार्यं स्वं यथेष्टं च सुखीभव ॥६०॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्तश्शंकरेणाथ शार्ङ्गपाणिस्सुविस्मितः । स्वरणस्थानमागत्य मुमोद स मुनीश्वर ६१ जृम्भणास्त्रं मुमोचाथ संधाय धनुषि द्रुतम् । पिनाकपाणये व्यास नानास्त्रकुशलो हरिः ६२ मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् । बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदर्ष्टिभिः ॥ ६३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे बाणाऽसुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

हे भगवन् ! मैं यहाँ आपकी आज्ञासे ही बाणासुरकी भुजायें काटनेके लिये आया हूँ आप गर्वको उतारने वाले हैं, इस गर्वमें भरे हुये बाणासुरको आपने ही तो शाप दिया था ॥ ५५ ॥ अतः हे देव ! आप इस रणभूमिसे हट जाइये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न जाय और हे प्रभो ! बाणासुरकी भुजा काटनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुनीश्वर ! शंभु श्रीकृष्णके इस वचनको सुन कृष्णकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ५७ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे तात ! तुमने सत्य कहा, मैंने इस दैत्यराजको शाप दे दिया था और मेरी आज्ञासे ही आप यहाँ बाणासुरकी भुजायें काटनेको आये हैं ॥ ५८ ॥ किन्तु हे रमानाथ हरे ! मैं क्या करूँ, मैं तो सदा भक्तके अधीन रहता हूँ, हे वीर ! मेरे सामने ही बाणासुरकी भुजायें कैसे कट सकती हैं ॥ ५९ ॥ अतः तुम मेरी आज्ञासे जृंभणास्त्र चलाकर मुझे जृंभित कर दो, फिर अपने कार्यको यथेष्ट रीतिसे कर सुखी होओ ६० सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—हे मुनीश्वर ! शंकरके इस प्रकार कहने पर शार्ङ्गपाणि बहुत विस्मित हुये ॥ ६१ ॥ हे व्यासजी ! तदनन्तर अनेक प्रकारके अस्त्रोंमें कुशल हरिने धनुष पर जृम्भणास्त्र चढ़ा कर शिव पर छोड़ा ॥६२॥ फिर जृम्भणास्त्रसे जँभाई लेते हुये गिरिशको मोहमें डाल कर श्रीकृष्ण गदा और ऋष्टियोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करके लगे ॥ ६३ ॥ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

व्यास उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते । अद्भुतेयं कथा तात श्राविता मे त्वया मुने ॥ १ ॥ जृम्भिते जृम्भणास्त्रेण हरिणा समरे हरे । हते बाणबले बाणः किमकार्षीश्च तद्वद ॥ २ ॥ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वरः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाप्राज्ञ कथां च परमाद्भुताम् । कृष्णशङ्करयोस्तात लोकलीलानुसारिणोः ॥ ४ ॥ शयिते लीलया रुद्रे सपुत्रे सगणे सति । बाणो विनिर्गतो युद्धं कर्तुं कृष्णेन दैत्यराट् ॥ ५ ॥ कुम्भाण्डसंगृहीताश्वो नानाशस्त्रास्त्रधृक् ततः । चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महाबलः ॥६॥ दृष्ट्वा निजबलं नष्टं स दैत्येंद्रोऽत्यमर्षितः । चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महाबलः ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णोऽपि महावीरो गिरिशाप्तमहाबलः । उच्चैर्जगर्ज तत्राजौ बाणं मत्वा तृणोपमम् ॥८॥ धनुष्टंकारयामास शार्ङ्गाख्यं निजमद्भुतम् । त्रासयन्बाणसैन्यं तदवशिष्टं मुनीश्वर ॥ ९ ॥ तेन नादेन महता धनुष्टङ्कारजेन हि । द्यावाभूम्योरन्तरं वै व्याप्तमासीदनन्तरम् ॥१०॥ चिक्षेप विविधान्बाणान्बाणाय कुपितो हरिः । कर्णान्तं तद्विकृष्याथ तीक्ष्णानाशी-

व्यासजीने कहा, कि-हे सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजी ! हे तात ! हे मुने ! आपने मुझे यह अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ जब कृष्णने जृंभणास्त्रसे महादेवजीको जमुहाई लिवा दीं, तब अपनी सेनाके नष्ट होने पर बाणासुरने क्या किया, उसका आप वर्णन करिये ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि-अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनको सुन कर ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर सनत्कुमार प्रसन्न चित्तसे उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् व्यासजी ! सांसारिक लीला करने वाले कृष्ण और शंकरकी परम अद्भुत कथाको आप सुनिये ॥ ४ ॥ जब लीलावश रुद्र पुत्र और गणोंसहित ऊँघने लगे, तब दैत्यराज बाणासुर श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये चला ॥ ५ ॥ उस समय कुम्भाण्ड उसके घोड़ोंकी रासें पकड़ रहा था इस प्रकार बलिके महाबली पुत्र बाणने अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे अतुल युद्ध किया ॥६॥ अपनी सेनाका नष्ट होना दैत्येंद्रसे सहा नहीं गया अतः महाबली बलिपुत्र भीषण युद्ध करने लगा ॥ ७ ॥ उधर महावीर श्रीकृष्ण भी महादेवजीसे बल पा बाणासुरको तृणकी समान समझ ऊँचे स्वरसे गरजने लगे ॥८॥ हे मुनीश्वर ! वह अपने शार्ङ्ग नामक उत्तम धनुषको टङ्कारने लगे, अतः बाणासुरकी बाकी बची हुई सेनामें त्रास फैल गया ॥९॥ धनुषकी उस बड़ी भारी टङ्कारध्वनिसे आकाश और भूमिके बीचका भाग भन्ना उठा ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण कोपमें भर धनुषको कान तक खेंच बाणासुर पर सर्पकी समान तीखे बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ११ ॥ बलिनन्दन बाणासुरने उन बाणोंको आते देख उनके पहुँचनेसे

विषोपमान् ॥ ११ ॥ आयातस्तान्निरीक्ष्याऽथ स बाणो बलिनन्दनः । अप्राप्तानेव चिच्छेद स्वशरैस्स्वधनुश्च्युतैः ॥ १२ ॥ पुनर्जगर्ज स विभुर्बाणो वैरिगणार्दनः । तत्रसुर्वृष्णयस्सर्वे कृष्णात्मानो विचेतसः ॥ १३ ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं चिक्षेप निजसायकान् । स कृष्णायातिशूराय । महागर्वो बलेस्सुतः ॥१४॥ कृष्णोऽपि तानसम्प्राप्तानच्छिनत्स्वशरैर्द्रुतम् । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजमसुरारिर्महाबलः ॥ १५ ॥ रामादयो वृष्णयश्च स्वं स्वं योद्धारमाह्वे । निजघ्नुर्बलिनस्सर्वे कृत्वा क्रोधं समाकुलाः ॥ १६ ॥ इत्थं चिरतरं तत्र बलिनोश्च द्वयोरपि । बभूव तुमुलं युद्धं श्रृण्वतां विस्मयावहम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र क्रोधं कृत्वाऽतिपक्षिराट् । बाणासुरबलं सर्वं पक्षाघातैरमर्दयत् ॥ १८ ॥ मर्दितं स्वबलं दृष्ट्वा मर्दयन्तं च तं बली । चुकोपाति बलेः पुत्रः शैवराट् दितिजेश्वरः ॥१९॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं सहस्रभुजवान्द्रुतम् । महत्पराक्रमं चक्रे वैरिणां दुस्सहं स वै ॥ २० ॥ चिक्षेप युगपद् बाणानमितांस्तत्र वीरहा । कृष्णादिसर्वयदुषु गरुडे च पृथक् पृथक् ॥२१॥ जघानैकेन गरुडं कृष्णमेकेन पत्रिणा । बलमेकेन च मुने परानपि तथा बली ॥ २२ ॥ ततः कृष्णो महावीर्यो विष्णुरूपस्सुरारिहा । चुकोपाति रणे तस्मिञ्जगर्ज च महे-

---

पहिले ही अपने धनुपसे बाण छोड़ कर काट डाला ॥ १२ ॥ तब वैरियोंके झुण्डको मसलने वाला विभु बाणासुर गर्जने लगा, इससे वृष्णिवंशियोंको बड़ा त्रास लगा और उनका चित्त घबड़ा कर श्रीकृष्णका स्मरण करने लगा १३ बड़ा गर्व करने वाला बलिका पुत्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण कर परमशूर श्रीकृष्ण पर बाणवर्षा करने लगा ॥ १४ ॥ महाबली असुरारि श्रीकृष्ण भी शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर उन बाणोंको शीघ्रता कर बीचमेंसे ही काटने लगे ॥ १५ ॥ बलराम आदि बली वृष्णि भी अपने २ जोड़ीदारको क्रोधपूर्वक पीटने लगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार उन दोनों बलवानोंका चिरकाल तक तुमुल युद्ध होने लगा, उसको सुनने पर भी विस्मय लगता था ॥१७॥ उस समय पक्षिराज गरुड़ बड़ा क्रोध कर बाणासुरके समस्त सेनादल पर अपने पंखोंका प्रहार करने लगे ॥१८॥ अपने सेनादलको पिटता हुआ और गरुड़को पीटता हुआ देखकर परम-शैव दितिजेश्वर बलिपुत्र बली बाणासुर बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥ १९ ॥ फिर वह हजार भुजा वाला शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर बड़ा पराक्रम करने लगा, उस पराक्रमको सहना वैरियोंको दुःसह होगया ॥ २० ॥ वीरोंका संहार करने वाला बाणासुर कृष्ण आदि सब यादवों पर और गरुड़ पर पृथक् पृथक् अनन्त बाणोंकी वर्षा करने लगा २१ हे मुने ! उस बलवान्ने गरुड़के एक, कृष्णके एक, बलरामके एक तथा दूसरोंके भी एक एक बाण मारे ॥ २२ ॥ तब विष्णुके अवतार, असुरोंका संहार

श्वरः ॥ २३ ॥ जघान बाणं तरसा शार्ङ्गनिस्सृतसच्छरैः। अति तद्बलमत्युग्रं युगपत्स्मृतशंकरः ॥ २४ ॥ चिच्छेद तद्धनुश्शीघ्रं छत्रादिकमनाकुलः। हयांश्च पातयामास हत्वा तान्स्वशरैर्हरिः ॥ २५ ॥ बाणोऽपि च महावीरो जगर्जाति प्रकुप्य ह। कृष्णं जघान गदया सोऽपतद्धरणीतले ॥ २६ ॥ उत्थायारं ततः कृष्णो युयुधे तेन शत्रुणा। शिवभक्तेन देवर्षे लोकलीलानुसारतः ॥ २७ ॥ एवं द्वयोश्चिरं कालं बभूव सुमहान्रणः। शिवरूपो हरिः कृष्णः स च शैवोत्तमो बली ॥ २८ ॥ कृष्णोऽथ कृत्वा समरं चिरं बाणेन वीर्यवान्। शिवाऽऽज्ञया प्राप्तबलश्चुकोपाति मुनीश्वर ॥२९॥ ततस्सुदर्शनेनाशु कृष्णो बाणभुजान्बहून्। चिच्छेद भगवाञ्शम्भुशासनात्परवीरहा ॥ ३० ॥ अवशिष्टा भुजास्तस्य चत्वारोऽतीव सुन्दराः। गतव्यथो बभूवाशु शङ्करस्य प्रसादतः ॥३१॥ गतस्मृतिर्यदा बाणः शिरश्छेत्तुं समुद्यतः। कृष्णो वीरत्वमापन्नस्तदा रुद्रस्समुत्थितः ॥ ३२ ॥ रुद्र उवाच। भगवन्देवकीपुत्र यदाज्ञप्तं मया पुरा। तत्कृतं च त्वया विप्र मदाज्ञाकारिणा सदा ॥ ३३ ॥ मा बाणस्य

करनेवाले महेश्वर महावीर्यवान् श्रीकृष्ण क्रोधमें भर रणमें गरजने लगे २३ फिर वह शार्ङ्ग धनुषसे बाण छोड़ साथ ही शंकरका स्मरण कर बाणकी सेनाको उग्ररूपसे पीटने लगे ।। २४ ।। फिर विष्णुने किसी प्रकारकी व्याकुलता न दिखा कर उसके छत्र धनुष आदिको शीघ्रता पूर्वक काट डाला और अपने बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार कर गिरा दिया ॥ २५ ॥ तब महावीर बाणासुर भी कोपमें भर कर गरजा और कृष्णके गदा मारी, तब श्री कृष्ण पृथ्वी पर गिर पड़े ।। २६ ।। हे देवर्षे ! तब श्रीकृष्ण सांसारिक लीला करनेके लिये उठे और उस शिवभक्त शत्रुसे युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका चिरकाल तक महायुद्ध होता रहा, क्योंकि—विष्णुके अवतार कृष्ण शिवरूप ही थे और वह बलवान् भी उत्तम शैव था ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! वीर्यवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार चिरकाल तक बाणासुरसे युद्ध कर शिवकी आज्ञासे बल पा कोपमें भर गये ॥ २९ ॥ शत्रुके वीरोंका संहार करने वाले कृष्ण शंभुके शासनसे सुदर्शन चक्रके द्वारा बाणासुरकी बहुतसी भुजाओंको काटने लगे ।। ३० ।। अन्तमें उसकी चार सुन्दर भुजायें बच रहीं, और शंकरकी कृपासे उसकी व्यथा भी शीघ्र ही जाती रही ।। ३१ ।। जब बाणासुरकी स्मृति लुप्त होगई तब वीरतामें भर श्रीकृष्ण उसका शिर काटने को उद्यत हुये, इसी समय रुद्र प्रकट होगये ।। ३२ ।। रुद्रने कहा, कि—हे देवकीपुत्र भगवन् कृष्ण ! तुम सदा मेरी आज्ञाका पालन करते रहते हो, इस समय भी जो मेरी आज्ञा थी, उस सबका तुमने पालन किया ।। ३३ ।। अब तुम बाणासुरका शिर न काटो और सुदर्शन चक्रका प्रत्याहार कर लो, मेरी

शिरश्छिन्धि संहरस्व सुदर्शनम् । मदाऽऽज्ञया चक्रमिदममोघं मज्जने सदा ॥३४॥ दत्तं मया पुरा तुभ्यमनिवार्यं रणे तव । चक्रं जयं च गोविन्द निवर्तस्व रणात्ततः ॥ दधीचे रावणे वीरे तारकादिपुरेष्वपि । विना मदाज्ञां लक्ष्मीश रथाङ्गं नामुचः पुरा ॥ ३६ ॥ त्वं तु योगीश्वरस्साक्षात्परमात्मा जनार्दन । विचार्यतां स्वमनसा सर्वभूतहिते रतः ॥ ३७ ॥ वरमस्य मया दत्तं न मृत्युभयमस्ति वै । तन्मे वचस्सदा सत्यं परितुष्टोऽस्म्यहं तव ॥ ३८ ॥ पुराऽयं गर्वितो मत्तो युद्धं देहीति मेऽब्रवीत् । भुजान्कण्डूयमानस्तु विस्मृतात्मगतिर्हरे ॥ ३९ ॥ तदाहमशपं तं वै भुजच्छेत्ताऽऽगमिष्यति । अचिरेणातिकालेन गतगर्वो भविष्यति ॥४०॥ मदाज्ञया हरिः प्राप्तो भुजच्छेत्ता तवाऽथ वै । निवर्तस्व रणाद्गच्छ स्वगृहं सवधूवरः ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा स तयोर्मैत्रीं कारयित्वा महेश्वरः । तदनुज्ञाप्य सगणः सपुत्रः स्वालयं ययौ ॥ ४२ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोस्संहृत्य च सुदर्शनम् । अक्षतांगस्तु विजयी तत्कृष्णोऽन्तःपुरं ययौ ॥ ४३ ॥ अनिरुद्धं समाश्वास्य सहितं

आज्ञासे यह चक्र मेरे भक्तों पर सदा अमोघ रहता है ॥ ३४ ॥ मैंने आपको रणमें पीछेको न हटने वाला चक्र और जय दे दी है अतः हे गोविन्द ! अब आप रणसे हट जाइये ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मीश ! पहिले भी तुमने मेरी आज्ञा मान कर दधीच पर, रावण पर, और तारकपुर आदि पर सुदर्शन चक्रका प्रयोग नहीं किया है ॥ ३६ ॥ हे जनार्दन ! तुम तो योगीश्वर हो साक्षात् परमात्मा हो, सब भूतोंके हितमें परायण रहते हो अतः अपने मनमें कुछ विचार करो ॥ ३७ ॥ मैंने इसको वर दे रखा है, कि—तुझे मृत्युका भय नहीं होगा, वह मेरा वचन सदा सत्य रहना चाहिये, बस मैं तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न हूँ ॥ ३८ ॥ हे हरे ! पहिले यह अपने आपेको भूल कर गर्वमें भर भुजा खुजलाता हुआ मुझसे कहने लगा, कि—मेरे साथ युद्ध करो ।३९। तब मैंने इसको शाप दिया था, कि—तेरी भुजाओंको काटने वाला भी आवेगा और शीघ्र ही तेरा गर्व भी दूर होजावेगा ॥ ४० ॥ (बाणासुरसे) मेरी आज्ञासे ही यह हरि तेरी भुजाएँ काटनेको आये हैं (श्रीकृष्णसे) अब तुम रण करना छोड़ वधू और वरको लेकर अपने घरको लौट जाओ ॥ ४१ ॥ महेश्वर इस प्रकार कह उन दोनोंकी मित्रता करा और विवाह आदिकी आज्ञा दे अपने पुत्र और गणोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गए ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—शम्भुके इस वचनको सुन श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रको लौटा लिया और विजय पा अक्षतशरीरसे बाणासुरके अंतःपुरमें पधारे ४३ तहाँ जाकर उन्होंने अनिरुद्धको और उसकी भार्याको ढाढस दिया, फिर

भार्यया पुनः । जग्राह रत्नसंघातं बाणदत्तमनेकशः ॥ ४४ ॥ तत्सखीं चित्रलेखां च गृहीत्वा परयोगिनीम् । प्रसन्नोऽभूत्ततः कृष्णः कृतकार्यः शिवाज्ञया ॥ ४५ ॥ हृदा प्रणम्य गिरिशमामन्त्र्य च बलेस्सुतम् । परिवारसमेतस्तु जगाम स्वपुरीं हरिः ॥ ४६ ॥ पथि जित्वा च वरुणं विरुद्धं तमनेकधा । द्वारकां च पुरीं प्राप्तस्त्वमुत्सवसमन्वितः ॥ ४७ ॥ विसर्जयित्वा गरुडं सखीन्वीक्ष्योपहस्य च । द्वारकायां ततो हृष्टः कामचारी चचार ह ॥ ४८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे बाणभुजकृन्तनगर्वापहारवर्णनं नाम पञ्चपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

नारद उवाच । कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया । अकार्षीत्किं ततो बाणस्तत्त्वं वद महामुने ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया । दुःखितोऽभूत्ततो बाणस्स्वाज्ञानं संस्मरन्हृदा ॥ २ ॥ ततो नन्दी शिवगणो बाणं प्रोवाच दुःखितम् । दैत्यं शोणितदिग्धांगमनुतापसमन्वितम् ॥३॥ नन्दीश्वर उवाच । बाण शङ्करसद्भक्त मानुतापं कुरुष्व भोः । भक्तानुकम्पी शंभुर्वै भक्तवत्सलनामधृक् ॥ ४ ॥ तदिच्छया च यज्जातं तज्जातमिति चेतसा । मन्यस्व

बाणासुरके दिये हुये बहुतसे रत्नोंको ग्रहण किया ॥ ४४ ॥ और शिवकी आज्ञासे उन्होंने परम योगिनी चित्रलेखा नाम वाली ऊषाकी सखीको भी ग्रहण किया ॥ ४५ ॥ फिर हृदयमें शिवको प्रणाम कर बलिके पुत्रसे वार्तालाप कर हरि परिवारसहित अपनी पुरीको पधार गये ॥ ४६ ॥ रास्तेमें वरुणने उनके साथ विरुद्ध आचरण किया सो उसको भी अनेक प्रकारसे जीत कर द्वारकापुरीमें उत्सव मनाते हुये पहुँच गये ॥ ४७ ॥ वहाँ उन्होंने गरुड़का विसर्जन कर दिया अपने मित्रोंका दर्शन कर हँसे, फिर द्वारकामें इच्छानुसार आचरण करने लगे ॥ ४८ ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

नारदजीने कहा, कि—जब अनिरुद्धको और उसकी भार्याको लेकर कृष्ण द्वारकापुरीको चले गए, तब बाणासुरने क्या किया, इसका हे महामुने ! आप मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—जब अनिरुद्धको और उसकी भार्याको लेकर कृष्ण द्वारकापुरीको चले गए तब बाणासुर हृदयमें अपने अज्ञानका विचार कर बड़ा दुःखित हुआ ॥२॥ तब शिवके गण नन्दी रक्तसे सने हुये अंग वाले अनुताप करते हुए दुःखित दैत्य बाणासुरसे कहने लगे ॥ ३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—हे शंकरके सद्भक्त बाणासुर ! अनुताप न करो, भक्तवत्सल शम्भु भक्तों पर सदा अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ हे भक्तशार्दूल ! उनकी इच्छासे जो कुछ होगया वह होगया, यह विचार कर चित्तमें

भक्तशार्दूल शिवं स्मर पुनः पुनः ॥५॥ मन आद्ये समाधाय कुरु नित्यं महोत्सवम् भक्तानुकम्पनश्चाऽस्य शङ्करस्य पुनः पुनः ॥६॥ नन्दिवाक्यात्ततो बाणो द्विषा शीर्षकमात्रकः । शिवस्थानं जगामाशु धृत्वा धैर्यं महामनाः ॥ ७ ॥ गत्वा तत्र प्रभुं नत्वा रुरोदातीव विह्वलः । गतगर्वव्रजो बाणः प्रेमाकुलितमानसः ॥ ८ ॥ संस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैस्संनमन्नुतितस्तथा । यथोचितं पादघातं कुर्वन्विक्षेपयन्करान् ॥ ९ ॥ ननर्त ताण्डवं मुख्यं प्रत्यालीढादिशोभितम् । स्थानकैर्विविधाकारैरालीढप्रमुखैरपि ॥ १० ॥ मुखवादसहस्राणि भ्रूक्षेपसहितान्यपि । शिरःकम्पसहस्राणि प्राणनीकः सहस्रशः ॥११॥ वारीश्च विविधाकारा दर्शयित्वा शनैश्शनैः । तथा शोणितधाराभिस्सिञ्चयित्वा महीतलम् ॥ १२ ॥ रुद्रं प्रसादयामास शूलिनं चन्द्रशेखरम् । बाणासुरो महाभक्तो विस्मृतात्मगतिर्नतः ॥ १३ ॥ ततो नृत्यं महत्कृत्वा भगवान् भक्तवत्सलः । उवाच बाणं संहृष्टो नृत्यगीतप्रियो हरः ॥ १४ ॥ रुद्र उवाच । बाण तात बलेः पुत्र संतुष्टो नर्तनेन ते । वरं गृहाण दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोर्दैत्येन्द्रेण तदा मुने । बाणेन संवृणोतोऽभूद्वरस्तु व्रणरोपणे ॥१६॥ बाहुयुद्धस्य चोद्धत्तिर्गाणपत्यमथाक्षयम् । उषापुत्रस्य

वारम्वार शिवका स्मरण करो ॥ ५ ॥ आद्यगुरु शंकरमें मन लगा कर शंकरका वारम्वार महोत्सव करो ॥ ६ ॥ शत्रुके द्वारा शिरमात्र बचा हुआ महामनस्वी बाणासुर नन्दीके वाक्यसे धैर्य धारण कर शीघ्र ही शिवस्थानकी ओर चला ७ तहाँ पहुँच वह शिवको प्रणाम कर गर्वरहित हो प्रेमभरे चित्तसे विह्वल होकर रोने लगा ॥८॥ वह अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगा, स्तुति पढ़ कर प्रणाम करने लगा, यथोचित्त रीतिसे ठुमकी लगाने लगा और हाथ नचाने लगा ९ अनेक प्रकारके आकारवाले आलीढ़ आदि मुख्य मुख्य स्थानकोंसे और प्रत्यालीढ़से शोभित मुख्य ताण्डव नृत्यका नाच नाचने लगा ।१०। भौं मटका कर हजारों प्रकारसे मुख बजाने लगा और हजारों प्रकारसे शिर कँपाने लगा ॥ ११ ॥ उसने धीरे २ अनेक प्रकारकी वारी दिखाई और रक्तधाराओं से पृथ्वी पर छिड़काव कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार अपनी गतिको भूल कर नृत्य करते हुये महाभक्त बाणासुरने शूलधारी चन्द्रशेखर रुद्रको प्रसन्न किया ॥ तब नृत्य और गीतसे प्रसन्न होने वाले भक्तवत्सल भगवान् हर प्रसन्न हो बड़ा भारी नृत्य कर बाणासुरसे कहने लगे ॥१४॥ रुद्रने कहा, कि हे बलिके पुत्र तात बाण ! मैं तेरे नृत्यसे प्रसन्न हुआ हूँ, हे दैत्येन्द्र ! तेरे मनमें जो हो उस वरको तू माँग ले ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि— हे मुने ! शंभुके इस वचनको सुन दैत्येन्द्र बाणासुरने वर माँगा, कि मेरे घाव भर जायँ ॥ १६ ॥ मेरा बाहुयुद्ध उद्धत रहे, और मुझे अक्षय गणपतिपद

राज्यं तु तस्मिञ्शोणितकाह्वये ॥ १७ ॥ निर्वैरता च विबुधैर्विष्णुना च विशेषतः । न पुनर्दैत्यता दुष्टा रजसा तमसा युता ॥१८॥ शम्भुभक्तिर्विशेषेण निर्विकारा सदा मुने । शिवभक्तेषु च स्नेहो दया सर्वेषु जन्तुषु ॥ १९ ॥ इति कृत्वा वराञ्शम्भो-र्बलिपुत्रो महाऽसुरः । प्रेम्णाऽश्रुनयनो रुद्रं तुष्टाव सुकृताञ्जलिः ॥ २० ॥ बाण उवाच । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । त्वां नमामि महेशान दीनबन्धो दयानिधे ॥२१॥ कृता मयि कृपालीव कृपासागर शङ्कर । गर्वोपहारितस्सर्वः प्रसन्नेन मम प्रभो ॥ २२ ॥ त्वं ब्रह्म परमात्मा हि सर्वव्याप्यखिलेश्वरः । ब्रह्माण्डतनुरुग्रेशो विराट् सर्वान्वितः परः ॥ २३ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्वदनमम्बुरेतो दिशः श्रुतिः । द्यौ-श्शीर्षमङ्घ्रिरुर्वी ते मनश्चन्द्रस्तव प्रभो ॥ २४ ॥ दृगर्को जठरं वार्द्धिर्भुजेन्द्रो धिषणा विधिः । प्रजापतिर्विसर्गश्च धर्म्मो हि हृदयं तव ॥२५॥ रोमाण्यौषधयो वाथ केशा जलमुचस्तव । गुणास्त्रयस्त्रिनेत्राणि सर्वात्मा पुरुषो भवान् ॥२६॥ ब्राह्मणं ते मुखं प्राहुर्बाहुं क्षत्रियमेव च । ऊरुजं वैश्यमाहुस्ते पादजं शूद्रमेव च ॥ २७ ॥ त्वमेव

मिले और इस शोणितपुरमें उषापुत्रका राज्य रहे ॥ १७ ॥ विष्णुसे और देवताओंसे मेरा कुछ बैर न रहे, रजोगुण और तमोगुणसे भरी हुई दूषित दैत्यताका मुझमें उदय न हो ॥ १८ ॥ और हे मुने ! मुझमें सदा निर्विकार शम्भुभक्ति रहे, शिवभक्तोंसे मेरा स्नेह रहे, और सब प्राणियों पर मैं दया करता रहूँ ॥ १९ ॥ बलिका पुत्र महान् असुर बलिपुत्र बाणासुर शम्भुसे इस प्रकार वर माँग हाथ जोड़ कर रुद्रकी स्तुति करने लगा ॥ २० ॥ बाणासुरने कहा, कि-हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव ! हे दीनबंधो दयानिधे महेशान ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २१ ॥ हे कृपासागर शङ्कर ! जो आपने प्रसन्न होकर मेरा गर्व उतार दिया हे प्रभो ! यह आपने मुझ पर बड़ी कृपा की ॥ २२ ॥ आप ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, सर्वव्यापी हैं, सबके ईश्वर हैं, सारा ब्रह्माण्ड ही आपका शरीर है, आप उग्र ईश हैं, विराट् हैं, सबमें व्यापक हैं श्रेष्ठ हैं २३ आकाश आपकी नाभि है अग्नि आपका मुख है जल आपका वीर्य है, दिशायें आपके कान हैं, द्युलोक आपका शिर है, पृथिवी आपके चरण हैं और हे प्रभो ! चन्द्रमा आपका मन है ॥ २४ ॥ सूर्य आपका नेत्र है, वार्द्धि आपका जठर हैं, विधि आपकी बुद्धि है, प्रजापति आपका विसर्ग है और धर्म आपका हृदय है ॥ २५ ॥ औषधियें आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, तीनों गुण आपके तीनों नेत्र हैं आप सर्वात्मा पुरुष हैं ॥२६॥ ब्राह्मणको आपका मुख कहते हैं (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्), क्षत्रियको आपकी भुजा बताया है (बाहू राजन्यः कृतः), वैश्यको आपकी ऊरुसे प्रकट हुआ कहते हैं (ऊरू तदस्य यद्वैश्यः) और शूद्रको आपके चरणोंसे प्रकट हुआ बताते हैं (पद्भ्यां

सर्वज्ञोपास्यस्सर्वैर्जीवैर्महेश्वर । त्वां भजन्परमां मुक्तिं लभते पुरुषो ध्रुवम् ॥२८॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् । विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥२९॥ विष्णुर्ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः । सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वां शङ्करं प्रियमीश्वरम् ॥ ३० ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा बलिपुत्रस्तु विरराम शरासुरः । प्रेमप्रफुल्लितांगश्च प्रणम्य स महेश्वरम् ॥३१॥ इति श्रुत्वा स्वभक्तस्य बाणस्य भगवान्भवः । सर्वं लभिष्यसीत्युक्त्वा तत्रैवांतरधीयत ॥३२॥ ततश्शंभोः प्रसादेन महाकालत्वमागतः । रुद्रस्यानुचरो बाणो महाप्रमुदितोऽभवत् ॥ ३३ ॥ इति किल शरनाम्ना शङ्करस्यापि वृत्तं सकलगुरुजनानां सद्गुरोश्शूलपाणेः । कथितमिह वरिष्ठं श्रोत्ररम्यैर्वचोभिस्सकलभुवनमध्ये क्रीडमानस्य नित्यम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे बाणासुरगणपतित्वप्राप्तिवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास महाप्रेम्णा चरितं शशिमौलिनः । यथाऽवधीत्त्रिशूलेन दानवेन्द्रं गजासुरम् ॥ १ ॥ दानवे निहते देव्या समरे महिषासुरे । देवानां च हितार्थाय पुरा देवा सुखं ययुः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रो महावीरो मुनीश्वर

शूद्रो अजायत) [जहाँसे कि—गङ्गाजी निकली हैं] ॥२७॥ हे महेश्वर ! सब जीवोंको सदा आपकी ही उपासना करनी चाहिये, आपका भजन करनेसे मनुष्यको नित्यमुक्ति मिलती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष आत्मस्वरूप प्रिय ईश्वर आपका त्याग करता है, वह अमृतको त्याग कर इन्द्रियोंके अर्थमें विपर्यय डालने वाले विषका ही भक्षण करता है ॥ २९ ॥ आप प्रिय ईश्वर शंकरकी निर्मलचित्त वाले मुनि देवता ब्रह्मा और विष्णु सब ही पूर्णरूपसे शरण लेते हैं ॥ ३० ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—बलिका पुत्र बाणासुर इस प्रकार स्तुति कर महेश्वरको प्रणाम करनेके बाद चुप होगया इस समय प्रेमके कारण उसके सब अंग प्रफुल्लित होरहे थे ॥ ३१ ॥ अपने भक्त बाणासुरके इस वार्तालापको सुन कर शिव "तुझे सब बातें मिलेंगी" कह कर तहाँ ही अन्तर्धान होगये ॥ ३२ ॥ तब शम्भुकी कृपासे महाकालत्वको प्राप्त हुआ रुद्रका अनुचर बाणासुर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३३ ॥ सकल भुवनोंमें नित्य क्रीड़ा करने वाले सकल गुरुओंमें सद्गुरु शङ्करका बाणासुरविषयक श्रेष्ठ चरित्र भी श्रुतिमधुर वचनोंमें वर्णन कर दिया ॥ ३४ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त

सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे व्यासजी ! महादेवजीने दानवेन्द्र गजासुरका त्रिशूलके द्वारा जिस प्रकार वध किया था, उस चरित्रको तुम प्रेमपूर्वक सुनो ॥ १ ॥ पहिले जब देवीने देवताओंका हित करनेके लिये समरमें महिषासुरको मार डाला था तब देवताओंको चैन पड़ा था ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर !

गजासुरः । पितुर्वधं हि संस्मृत्य कृतं देव्या सुरार्थनात् ॥ ३ ॥ स तद्वैरमनुस्मृत्य तपोर्थं गतवान्वने । समुद्दिश्य विधिं प्रीत्या तताप परमं तपः ॥ ४ ॥ अवध्योऽहं भविष्यामि स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः । संविचार्येति मनसाऽभूत्तपोरतमानसः ॥ ५ ॥ स तेपे हिमवद्द्रोण्यां तपः परमदारुणम् । ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ ६ ॥ जटाभारैस्स वै रेजे प्रलयार्क इवांशुभिः । महिषासुरपुत्रोऽसौ गजासुर उदारधीः ॥ ७ ॥ तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतस्सधूमोऽग्निस्तपोमयः । तिर्यगूर्ध्वमधोलोकांस्तापयन्विष्वगीरितः ॥ ८ ॥ चुक्षुभुर्नद्यश्चाऽग्नेर्मूर्ध्नस्समुद्भवात् । निपेतुस्सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ९ ॥ तेन तप्तास्सुरास्सर्वे दिवं त्यक्त्वा सवासवाः । ब्रह्मलोकं ययुर्विज्ञापयामासुश्चचाल भूः ॥ १० ॥ देवा ऊचुः । विधे गजासुरतपस्तप्ता वयमथाऽऽकुलाः । न शक्नुमो दिवि स्थातुमतस्ते शरणं गताः ॥ ११ ॥ विधेह्युपशमं तस्य चान्याञ्जीवयितुं कृपा । लोका नंक्ष्यन्त्यन्यथा हि सत्यं सत्यं ब्रुवामहे ॥ १२ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्वासवाद्यैस्स आत्मभूः । भृगुदक्षादिभिर्ब्रह्मा

उसका पुत्र महावीर्यवान् गजासुर हुआ, उसने सुना, कि—देवताओंके प्रार्थना करने पर देवीने मेरे पिताको मार डाला था ॥ ३ ॥ उस वैरका स्मरण करके वह तप करनेके लिये वनको चल दिया, और ब्रह्माजीका दर्शन पानेके लिये परम तप करने लगा ॥ ४ ॥ "मैं कामके वशमें होने वाले स्त्री पुरुषोंसे अवध्य हो जाऊँ" यह मनमें धर कर वह तप करता था ॥ ५ ॥ वह हिमाचलकी तलैटीमें ऊपरको भुजा कर, आकाशकी ओर दृष्टि लगा पैरके अँगूटेके बल पृथ्वी पर खड़ा हो दारुण तप करने लगा ॥ ६ ॥ महिषासुरका पुत्र महाबुद्धि गजासुर अपनी जटाओंसे प्रलयकालीन सूर्य जैसे किरणोंसे दीखता है, तैसे शोभा पाने लगा ॥ ७ ॥ उसके मस्तकसे धुएँ वाला तपोमय अग्नि निकलने लगा वह ऊपर नीचे और तिरछी ओरके समस्त लोकोंको ताप देने लगा ॥ ८ ॥ उसके मस्तकसे निकलती हुई अग्निसे नदियें और समुद्र क्षुब्ध होने लगे, ग्रह और तारे गिरने लगे, दशों दिशाओंमें आगसी लग गई ॥ ९ ॥ उससे तपने पर इन्द्र आदि देवता स्वर्गको त्याग कर ब्रह्मलोकमें प्रार्थना करनेके लिये पहुँचे, उस समय उसके तपोबलसे पृथ्वी हिल उठी ॥ १० ॥ देवताओंने तहाँ पहुँच कर कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! हम गजासुरके तपसे सन्तप्त होकर व्याकुल होरहे हैं, स्वर्गमें हमसे टिका नहीं जाता, अतः हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप दूसरोंको जीवित रखनेके लिये इसको शान्त करिये, नहीं तो लोक नष्ट होजावेंगे, यह हम सत्य सत्य कह रहे हैं ॥ १२ ॥ जब इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा, तब

ययौ दैत्यवराश्रमम् ॥ १३ ॥ तपंतं तपसा लोकान्यथाऽभ्रापिहितं दिवि । विलक्ष्य विस्मितः प्राह विहसन्सृष्टिकारकः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दैत्येन्द्र तपःसिद्धोऽसि माहिषे । प्राप्तोऽहं वरदस्तात वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच । उत्थायोत्थाय दैत्येन्द्र ईक्षमाणो दृशा विभुम् । गिरा गद्गदया प्रीतोऽगृणाद्देवं स माहिषः ॥ १६ ॥ गजासुर उवाच । नमस्ते देवदेवेश यदि दास्यसि मे वरम् । अवध्योऽहं भवेयं वै स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ॥१७॥ महाबलो महावीर्योऽजेयो देवादिभिस्सदा । सर्वेषां लोकपालानां निखिलर्द्धिसुभुग्विभो १८ सनत्कुमार उवाच । एवं वृतश्शतधृतिर्दानवेन स तेन वै । प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरं तस्य सुदुर्लभम् ॥ १९ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो माहिषिश्च गजासुरः । सुप्रसन्नमनास्सोऽथ स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ स विजित्य दिशस्सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः । देवासुरमनुष्येन्द्रान्गंधर्वगरुडोरगान् ॥ २१ ॥ इत्यादीन्निखिलाञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् । जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ।२२। देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् । महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्व-

---

वह भृगु दक्ष आदिको साथमें लेकर उस दैत्यश्रेष्ठके आश्रमको चले ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीने जब देखा, कि—बादलोंकी समान उसके तपोधूमसे स्वर्ग छा रहा है, तब वह विस्मित हो हँस कर तप करते हुए गजासुरसे कहने लगे ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे महिषनन्दन दैत्येन्द्र ! अब तुम तपःसिद्ध होगए हो, अतः उठो, हे तात ! मैं तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आया हूँ तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि—उस दैत्येन्द्रने उठकर अपनी दृष्टिसे विभु ब्रह्माजीको ओर देखा, फिर वह महिषनन्दन प्रसन्न होकर गद्गद वाणीमें ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगा ॥ १६ ॥ गजासुरने कहा, कि—हे देवदेवेश ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं कामके वशमें होनेवाले स्त्री और पुरुषोंसे अवध्य रहूँ १७ हे विभो ! मैं महाबली और महावीर्यवान् बन जाऊँ और हे विभो ! देवताओंसे और लोकपालोंसे अजेय रहूँ और सब ऋद्धियोंका उपभोग करता रहूँ १८ सनत्कुमारजी कहते हैं कि—जब उस दानवने ब्रह्माजीसे यह वर माँगा, तो उसके तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने वह वर उसे दे दिया ॥ १९ ॥ वह महिषनन्दन गजासुर इस प्रकार वर पा चित्तमें प्रसन्न होता हुआ अपने धामको चला गया ॥ २० ॥ फिर उस दैत्यने सब दिशाओंको और तीनों लोकोंको जीत लिया देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड़, और सर्प इत्यादि सबको जीतकर उस विश्वजित्ने लोकपालोंके स्थान पर कब्जा जमा लिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ देवताओंके उद्यान (नन्दन) वनकी शोभासे संपन्न

कर्मणा ॥ २३ ॥ तस्मिन्महेन्द्रस्य गृहे महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् । रेमेऽभिवंद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः ॥ २४ ॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान् । यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः । काले व्यतीते महति पापबुद्धिरभूत्ततः ॥ २६ ॥ महिषासुरपुत्रोऽसौ संचिक्लेश द्विजान्वरान् । तापसान्नितरां पृथ्व्यां दानवस्सुरमर्दनः ॥ २७ ॥ सुरान्नरांश्च प्रमथान्सर्वांश्चिक्लेश दुर्मतिः । धर्मान्वितान्विशेषेण पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २८ ॥ एकस्मिन्समये तात दानवोऽसौ महाबलः । अगच्छद्राजधानीं वै शंकरस्य गजासुरः ॥ २९ ॥ समागतेऽसुरेन्द्रे हि महान्कलकलो मुने । त्रात त्रातेति तत्रासीदानंदवनवासिनाम् ॥ ३० ॥ महिषासुरपुत्रोऽसौ यदा पुर्यां समागतः । प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नवसरे देवाश्शक्राद्यास्तत्पराजिताः । शिवस्य शरणं जग्मुर्नत्वा तुष्टुवुरादरात् ॥ ३२ ॥ न्यवेदयन्दानवस्य तस्य काश्यां समागमम् । क्लेशाधिक्यं तत्रत्यानां तन्नाथानां विशेषतः ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव तव पुर्यां गतो-

---

स्वर्ग पर अधिकार कर लिया और इन्द्रका भवन जिसको, कि—साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था, वह महाबली और महामनस्वी सम्पूर्ण लोकोंको जीत उस भवनमें रमण करने लगा, तहाँ उसके बढे हुये प्रचण्ड शासनसे सन्तप्त होकर देवता उसके चरणोंकी वन्दना करते थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस प्रकार वह दिशाओंको जीत प्रिय विषयोंको इच्छानुसार भोगने लगा, परन्तु उस अजितेन्द्रियकी इन्द्रियें तृप्त नहीं हुईं ॥ २५ ॥ इस प्रकार ऐश्वर्यमें मत्त होकर वह शास्त्रविरुद्ध आचरण करने लगा और घमण्डमें भर गया, इस प्रकार बहुतसा समय बीत जाने पर उसके मनमें पापमय विचार प्रकट हुआ २६ कि—वह देवताओंका मर्दन करने वाला श्रेष्ठ श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणोंको बड़ा कष्ट देने लगा ॥ २७ ॥ वह दुर्मति पहिले वैरका स्मरण कर देवता मनुष्य, प्रमथ और विशेषतः धर्मिष्ठोंको अधिक कष्ट देने लगा ॥ २८ ॥ हे तात ! एक समय यह महाबली दानव गजासुर शंकरकी राजधानीमें पहुँच गया २९ हे मुने ! उस असुरराजके आने पर आनन्दवनमें रहने वाले प्राणियोंमें बड़ा कोलाहल मच गया, वह रक्षा करो रक्षा करो की प्रार्थना करने लगे ॥ ३० ॥ जब महिषासुरका पुत्र अपने वीर्यके मदसे उद्धत होकर प्रमथ गणोंका मथन करता हुआ उस पुरीमें घँसा ॥ ३१ ॥ उसी समय उससे हारे हुये देवताओंने भी शिवकी शरण ली और वे उनको प्रणाम कर आदरपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥ और उन्होंने काशीमें दानवका आना आदि कहा और काशीमें बसने वालोंके अधिक कष्टोंका भी वर्णन किया, और कहा,

ऽसुरः। कष्टं दत्ते त्वज्जनानां तं जहि त्वं कृपानिधे ॥ ३४ ॥ यत्रयत्र धरायां च चरणं प्रमिणोति हि। अचलां सचलां तत्र करोति निजभारतः ॥ ३५ ॥ ऊरुवेगेन तरवः पतंति शिखरैस्सह। यस्य दोर्दंडघातेन चूर्णी स्युश्च शिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥ यस्य मौलिजसंघर्षाद्धना व्योम त्यजंत्यपि। नीलिमानं न चाद्यापि जहुस्तत्केशसंगजम् ॥ ३७ ॥ यस्य निश्वाससंभारैरुत्तरंगा महाब्धयः। नद्योऽप्यमन्दकल्लोला भवंति तिमिभिस्सह ॥ ३८ ॥ योजनानां सहस्राणि नव यस्य समुच्छ्रयः। तावानेव हि विस्तारस्तनोर्मायाविनोऽस्य हि ॥ ३९॥ यन्नेत्रयोः पिंगलिमा तथा तरलिमा पुनः। विद्युता नोह्यतेऽद्यापि सोऽयं समाऽऽयाति सत्वरम् ॥ ४० ॥ यां तां दिशं समभ्येति सोऽयं दुस्सहदानवः। अवध्योऽहं भवामीति स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ४१ इत्येवं चेष्टितं तस्य दानवस्य निवेदितम्। रक्षस्व भक्तान्देवेश काशीरक्षणतत्परः ॥ ४२ ॥ सनत्कुमार उवाच। इति संप्रार्थितो देवैर्भक्तरक्षणतत्परः। तत्राऽऽजगाम सोऽरं तद्वधकामनया हरः ॥ ४३ ॥ आगतं तं समालोक्य शंकरं भक्त-

---

कि—आप ही उनके नाथ हैं ॥ ३३ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे देवदेव महादेव! वह महादैत्य आपकी नगरीमें घुस गया है आपके जनोंको कष्ट दे रहा है, हे कृपानिधे! आप उसका संहार करिये ॥ ३४ ॥ यह असुर पृथ्वी पर जहाँ भी चरण रखता है तहाँ की अचला (पृथ्वी) इसके भारसे सचला होजाती है, धमकने लगती है ॥ ३५ ॥ उसकी टाँगोंके वेगसे वृक्ष गिर पड़ते हैं और भुजाओंके प्रहारसे शिखरों सहित पर्वतोंका चूरा होजाता है ३६ उसके शिरके बालोंसे टकरा कर आकाशमेंसे मेघ पलायन कर जाते हैं और उसके बालोंके संगसे उनमें जो नीलिमा आगई है, उसको उन्होंने अभी तक नहीं त्यागा है ॥ ३७ ॥ उसके श्वास लेनेसे समुद्रमें तरंगें उठने लगती हैं, नदियोंकी तरंगों और मछलियोंकी चाल चञ्चल होजाती है ॥ ३८ ॥ वह नौ हजार योजन ऊँचा है और उस मायावीके शरीरका विस्तार भी इतना ही है ॥ ३९ ॥ जिसके नेत्रोंका पीलापन और तरलपन आज तक बिजलीमें भी नहीं है, वह दैत्य शीघ्रतापूर्वक आरहा है ॥ ४० ॥ मैं कामके वशमें होने वाले स्त्री पुरुषोंसे अवध्य हूँ, यह समझ कर वह दुःसह दानव चाहे तिस दिशामें चला जाता है ॥ ४१ ॥ हे देवेश! उस दानवकी यह सब चेष्टायें आपसे कह दीं, आप काशीकी रक्षामें तत्पर रहते हैं अतः अपने भक्तोंकी रक्षा करिये ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—जब देवताओंने भक्तोंकी रक्षा करनेमें परायण शिवसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब हर उसका वध करनेकी इच्छासे तहाँ आये ॥ ४३ ॥ भक्तवत्सल शंकरको हाथमें त्रिशूल लिये आते

वत्सलम्। त्रिशूलहस्तं गर्जंतं जगर्ज स गजासुरः ॥ ४४ ॥ ततस्तयोर्महानासीत्समरो दारुणोऽद्भुतः। नानास्त्रशस्त्रसंपातैर्वीरारावं प्रकुर्वतोः ॥४५॥ गजासुरोऽतितेजस्वी महाबलपराक्रमः। विव्याध गिरिशं बाणैस्तीक्ष्णैर्दानवघातिनम् ॥४६॥ अथ रुद्रो रौद्रतनुः स्वशरैरतिदारुणैः। तच्छरांश्चिच्छिदे पूर्णमप्राप्तांस्तिलशो मुने ॥ ४७ ॥ ततो गजासुरः क्रुद्धोऽभ्यधावत्तं महेश्वरम्। खड्गहस्तः प्रगर्ज्योच्चैर्हतोऽसीत्यद्य वै मया ॥ ४८ ॥ तत्तमाशूलहेतिस्तमायांतं दैत्यपुंगवम्। विज्ञायावध्यमन्येन शूलेनाभिजघान तम् ॥ ४९ ॥ प्रोतस्तेनत्रिशूलेन स च दैत्यो गजासुरः। छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमानो जगौ हरम् ॥५०॥ गजासुर उवाच। देवदेव महादेव तव भक्तोऽस्मि सर्वथा। जाने त्वां त्रिदिवेशान त्रिशूलिन्स्मरहारिणम् ॥५१॥ तव हस्ते मम वधो महाश्रेयस्करो मतः। अन्धकारे महेशान त्रिपुरान्तक सर्वग ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि तच्छृणुष्व कृपाकर। सत्यं ब्रवीमि नाऽसत्यं मृत्युञ्जय विचारय ॥ ५३ ॥ त्वमेको जगतां वन्द्यो विश्वस्योपरि संस्थितः। कालेन सर्वैर्मर्तव्यं श्रेयसे मृत्युरीदृशः ॥ ५४ ॥ सनत्कुमार उवाच। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शङ्करः

देख वह गजासुर गरजने लगा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वीर शब्द करते हुये शंकरमें और गजासुरमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी बौछारवाला तुमुल युद्ध हुआ ॥ ४५ ॥ महाबली और परमतेजस्वी गजासुर दानवोंका संहार करने वाले महादेवजीको जब तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करने लगा, तब हे मुने! रौद्र शरीर वाले रुद्रने अपने अतिदारुण बाणोंसे उन बाणोंको बीचमेंसे ही काट डाला ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जब गजासुर क्रोधमें भर हाथमें अस्त्र ले "आज मैं तुझे मार डालूँगा" कह कर शिव पर दौड़ा ॥ ४८ ॥ तब हाथमें त्रिशूल लेकर आते हुये उस दैत्यपुङ्गवको यह दूसरेसे अवध्य है समझ कर शिवने उसके त्रिशूल मारा ॥४९॥ उस त्रिशूलमें पुरा हुआ गजासुर दैत्य अपनेको छतरी बना हुआ समझ हरकी स्तुति करने लगा ॥ ५० ॥ गजासुरने कहा, कि—हे देवदेव महादेव! हे स्वर्गाध्यक्ष! हे त्रिशूलिन्! मैं आपको कामको वशमें करनेवाला समझता हूँ ॥५१॥ हे त्रिपुरका नाश करने वाले सर्वव्यापी महेश्वर! मैं अंधकारमें पड़ा हुआ था, आपके हाथसे मेरा वध बहुत ही कल्याण करने वाला हुआ है ॥ ५२ ॥ हे कृपाकर! मैं कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ, मैं सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं कहूँगा, हे मृत्युञ्जय! विचार कीजियेगा ५३ आप ही जगत्में वन्दनीय हैं, विश्वके ऊपर आप ही स्थित हैं, कालवश मरना तो सबको ही है, परन्तु ऐसी मृत्यु पाना तो कल्याणकारी ही है ॥ ५४ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—उसके इस वचनको सुन करुणानिधि शंकर हँस कर महिषनन्दन गजासुरसे कहने लगे ॥ ५५ ॥ ईश्वरने कहा, कि—हे परा-

करुणानिधिः । प्रहस्य प्रत्युवाचेशो माहिषेयं गजासुरम् ॥ ५५ ॥ ईश्वर उवाच । महापराक्रमनिधे दानवोत्तम सन्मते । गजासुर प्रसन्नोऽस्मि स्वानुकूलं वरं वृणु॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं वरदस्य हि । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दानवेन्द्रो गजासुरः ॥ ५७ ॥ गजासुर उवाच । यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे । इमां कृत्तिं महेशान त्वत्त्रिशूलाग्निपाविताम् ॥ ५८ ॥ स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणांगणपणीकृताम् । दर्शनीयां महादिव्यां सर्वदैवसुखावहाम् ॥५९॥ इष्टगन्धिस्सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला । सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमण्डना ॥ ६० ॥ महातपोनलज्वालां प्राप्यापि सुचिरं विभो । न दग्धा कृत्तिरेषा मे पुण्यगन्धनिधेस्ततः ॥ ६१ ॥ यदि पुण्यवती नैषा मम कृत्तिर्दिगम्बर । तदा त्वदंगसंगोऽस्याः कथं जातो रणांगणे ॥ ६२ ॥ अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शङ्कर । नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम् ॥६३॥ सनत्कुमार उवाच । श्रुत्वेति स वचस्तस्य शङ्करो भक्तवत्सलः । तथेत्युवाच सुप्रीतो महिषासुरजं च तम् ॥ ६४ ॥ पुनः प्रोवाच प्रीतात्मा दानवं तं गजासुरम् । भक्तप्रियो महेशानो भक्तिनिर्मलमानसम् ॥६५॥ ईश्वर उवाच । इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽऽ-

---

क्रमनिधे सन्मते दानवोत्तम गजासुर ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, तु अपने अनुकूल वरको सुन ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—महेशके वरदान देने वाले वचनको सुन दानवेन्द्र गजासुर चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगा ।५७। गजासुरने कहा, कि-हे महेशान ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो हे दिग्वासः ! मेरी जो खाल आपके त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र होगई है, उसको आप सदा धारण करिये ॥ ५८ ॥ मेरी यह खाल जितनी ओढ़ी जायगी, उतना ही सुख देगी, रणभूमिमें इसको दाँव पर रखा जाचुका है यह दर्शनीय है, महादिव्य है और सदा सुख देने वाली है ॥ ५९ ॥ इसकी गन्ध सदा अच्छी लगती है, यह सदा कोमल रहती है और यह सदैव निर्मल रहेगी और सदा सुशोभित रहेगी ॥ ६० ॥ हे विभो ! यह पुण्यगन्धनिधिका चर्म है, अतः यह महातपकी ज्वालाको बहुत काल सहकर भी भस्म नहीं हुआ ६१ हे दिगम्बर ! यदि यह मेरा चर्म पुण्यमय नहीं है, तो रणांगणमें इसको आपके अंगका संग कैसे मिल सकता था ॥ ६२ ॥ हे शंकर ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यह वर और दीजिये, कि-आजसे आपका नाम कृत्तिवासा प्रसिद्ध हो ॥ ६३ ॥ सनत्कुमारजीने कहा, कि-भक्तवत्सल शंकर महिषासुर के पुत्रके इस वचनको सुन प्रसन्नतापूर्वक कह उठे, कि—अच्छा ऐसा ही होगा ॥ ६४ ॥ फिर भक्तप्रिय महेशान जिसका भक्तिके कारण चित्त निर्मल होगया था उस गजासुरसे फिर कहने लगे ॥ ६५ ॥ ईश्वरने कहा, कि—

स्मिन्मुक्तिसाधने । मम लिंगं भवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम् ॥ ६६ ॥ कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम् । सर्वेषामेव लिंगानां शिरोभूतं विमुक्तिदम् ॥६७॥ कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिं परिगृह्य च । गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धि दिगम्बरः ॥ महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नह्नि मुनीश्वर । हर्षमापुर्जनास्सर्वे काशीस्थाः प्रमथास्तथा ॥ ६९ ॥ हरिब्रह्मादयो देवा हर्षनिर्भरमानसाः । तुष्टुवुस्तं महेशानं नत्वा सांजलयस्ततः ॥ ७० ॥ हते तस्मिन्दानवेशे माहिषे हि गजासुरे । स्वस्थानं भेजिरे देवा जगत्स्वास्थ्यमवाप च ॥ ७१ ॥ इत्युक्तं चरितं शम्भोर्भक्तवात्सल्यसूचकम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥ य इदं शृणुयात्प्रीत्या श्रावयेद्वा शुचिव्रतः । स भुक्त्वा च महासौख्यं लभेतांते परं सुखम् ॥ ७३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायांरुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे गजाऽसुरवधो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः । यथा दुंदुभिनिर्ह्रादमवधीद्दितिजं हरः ॥ १ ॥ हिरण्याक्षे हते दैत्ये दितिपुत्रे महाबले । विष्णुदेवेन कालेन प्राप दुःखं महद्दितिः ॥२॥ दैत्यो दुन्दुभिनिर्ह्रादो दुष्टः प्रह्लाद-

---

तेरा यह पवित्र हुआ शरीर मेरे इस मुक्तिसाधन क्षेत्रमें सबको मुक्ति देने वाले मेरे लिंगके रूपमें रहेगा ॥ ६६ ॥ इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा, इससे बड़े २ पातक नष्ट होजावेंगे, यह सब लिङ्गोंमें मुख्य होगा और मुक्ति देने वाला होगा ॥ ६७ ॥ दिगम्बर देवेश शिवने इस प्रकार कह कर गजासुरके विशाल चर्मको लेकर ओढ़ लिया ॥ ६८ ॥ हे मुनीश्वर ! उस दिन बड़ा उत्सव हुआ, काशीमें रहने वाले सब मनुष्योंको और प्रमथगणोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ६९ ॥ तदनन्तर हरि ब्रह्मा आदिक देवता प्रसन्नता भरे हुये चित्तसे हाथ जोड़ कर शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ७० ॥ उस दानवेश महिषासुरनन्दन गजासुरके मरने पर देवता अपने पदों पर प्रतिष्ठित हुए और जगत्में शान्ति फैल गई ॥ ७१ ॥ यह शंभुका भक्तों पर वत्सलता सूचित करने वाला, स्वर्ग यश और आयु देने वाला और धन धान्यकी वृद्धि करने वाला चरित्र कह दिया ॥ ७२ ॥ जो पवित्र व्रत करने वाला पुरुष प्रीतिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है, वह परम सुखको भोग कर अंतमें भी परम सुखको पाता है ॥ ७३ ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ ❀

सनत्कुमारजीने कहा, कि—हे व्यासजी ! मैं अब चन्द्रमौलिके दुन्दुभिनिर्ह्रादके बधके वर्णनसे भरे हुये चरित्रको कहता हूँ ॥ १ ॥ जब दितिपुत्र महाबली हिरण्याक्ष दैत्य विष्णुके द्वारा मारा गया तब दितिको बड़ा दुःख हुआ ॥ २ ॥ तब प्रह्लादके मामा, देवताओंको दुःख देने वाले दुष्ट दैत्य

मातुलः । सान्त्वयामास तां चाभिदुःखितां देवदुःखदः ॥३॥ अथ दैत्यस्स मायावी विनिमाश्वास्य दैत्यराट् । देवाः कथं सुजेयाः स्युरित्युपायमचिन्तयत् ॥४॥ देवैश्च घातिता वीरो हिरण्याक्षो महासुरः । विष्णुना च सह भ्रात्रा सच्छलैर्दैत्यवैरिभिः किंबलाश्च किमाधाराः किमाहाराः हि निर्जराः । मया कथं सुजेयास्स्युरित्युपायमचिन्तयत् ६ विचार्य बहुशो दैत्यस्तत्त्वं विज्ञाय निश्चितम् । अवश्यमग्रजन्मानो हेतवोऽत्र विचारतः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणान्हंतुमसकृदन्वधावत वै ततः । दैत्यो दुन्दुभिनिर्ह्रादो देववैरी महाखलः ॥ ८ ॥ यतः क्रतुभुजो देवाः क्रतवो वेदसंभवाः । ते वेदा ब्राह्मणाधारास्ततो देवबलं द्विजाः ॥ ९ ॥ निश्चितं ब्राह्मणाधारास्सर्वे वेदास्सवासवाः । गीर्वाणा ब्राह्मणबला नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ ब्राह्मणा यदि नष्टास्स्युर्वेदा नष्टास्ततस्स्वयम् । अतस्तेषु प्रणष्टेषु विनष्टाः सततं सुराः ॥ ११ ॥ यज्ञेषु नाशं गच्छत्सु हताहारास्ततस्सुराः । निर्बलास्सुखजय्याः स्युर्निर्जितेषु सुरेष्वथ ॥ १२ ॥ अहमेव भविष्यामि मान्यस्त्रिजगतीपतिः । आहरिष्यामि देवानामक्षयास्सर्वसंपदः ॥ १३ ॥ निर्वेक्ष्यामि सुखान्येव राज्ये निहतकंटके । इति

दुन्दुभिनिर्ह्रादने उसको बातें कहकर ढाढस दिया ॥ ३ ॥ वह मायावी दैत्यराज दैत्य दितिको इस प्रकार ढाढस देनेके बाद विचारने लगा, कि—देवताओंको किस प्रकार जीता जा सकता है ॥ ४ ॥ दैत्योंके वैरी देवताओंने और विष्णुने छल बल करके महादैत्य हिरण्याक्ष दैत्य और उसके भाईको मार डाला ॥ ५ ॥ देवताओंका बल क्या है? वह किस वस्तुका आहार करते हैं, उन्हें किसका आधार हैं मैं उनको किस प्रकार जीत सकूँगा, इस उपाय का वह विचार करने लगा ॥ ६ ॥ दैत्यने बहुत विचार करके जान लिया, कि—ब्राह्मण ही इसका कारण हैं ॥ ७ ॥ तब वह देववैरी महादुष्ट दुन्दुभिनिर्ह्राद दैत्य ब्राह्मणोंका वध करनेके लिये विचार करने लगा ॥ ८ ॥ क्योंकि—देवता यज्ञ की (हवि) का भक्षण करते हैं और यज्ञोंका वर्णन वेदमें है, और वे वेद इन ब्राह्मणोंके आधार पर हैं, अतः ब्राह्मण ही देवताओं का बल हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रसहित सब देवता ब्राह्मणोंके ही आधार पर हैं, इसमें कुछ विचार करनेकी बात नहीं है, कि—देवताओंको ब्राह्मणोंका ही बल है १० ब्राह्मणोंके नष्ट होने पर वेद अपने आप नष्ट होजावेंगे और उनके नष्ट होने पर देवता सदाके लिये नष्ट हुये ही हैं ॥ ११ ॥ यज्ञोंका लोप होने पर देवताओंको आहार मिलना बन्द होजायगा अतः वे निर्बल होजावेंगे, तब मैं उनको सुखपूर्वक जीत लूँगा, देवताओंके हारने पर मैं ही त्रिलोकीमें मान्य और त्रिलोकीका स्वामी होजाऊँगा, तब मैं देवताओंकी अक्षयसम्पत्तियोंको छीन लूँगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस प्रकार कण्टकरहित राज्यमें मैं सुखपूर्वक

निश्चित्य दुर्बुद्धिः पुनश्चिंतितवान्खलः ॥ १४ ॥ द्विजाः क्व संति भूयांसो ब्रह्मतेजो-ऽतिबृंहिताः । श्रुत्यध्ययनसंपन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १५ ॥ भूयसां ब्राह्मणानां तु स्थानं वाराणसी खलु । तामादावुपसंहृत्य यायां तीर्थांतरं ततः ॥ १६ ॥ यत्र यत्र हि तीर्थेषु यत्र यत्राश्रमेषु च । संति सर्वेऽग्रजन्मानस्ते मयाद्यास्समंततः १७ इति दुन्दुभिनिर्ह्रादो मतिं कृत्वा कुलोचिताम् । आप्यापि काशीं दुर्वृत्तो मायावी न्यवधीद्द्विजान् ॥ १८ ॥ समित्कुशान्समादातुं यत्र यांति द्विजोत्तमाः । अरण्ये तत्र तान्सर्वान्स भक्षयति दुर्मतिः ॥ १९ ॥ यथा कोऽपि न वेत्त्येवं तथाऽऽच्छन्नोऽभवत्पुनः । वने वनेचरो भूत्वा यादोरूपो जलाशये ॥ २० ॥ अदृश्यरूपी मायावी देवानामप्यगोचरः । दिवा ध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः ॥ २१ ॥ प्रवेशमुटजानां च निर्गमं हि विलोकयन् । यामिन्यां व्याघ्ररूपेणाभक्षयद् ब्राह्मणान्बहून् ॥ २२ ॥ निश्शंकमभक्षयत्येव न त्यजत्यपि कीकसम् । इत्थं निपातितास्तेन विप्रा दुष्टेन भूरिशः ॥ २३ ॥ एकदा शिवरात्रौ तु भक्तस्त्वेको निजोटजे । सपर्यां देवदेवस्य कृत्वा ध्यानस्थितोऽभवत् ॥ २४ ॥ स च दुन्दुभिनिर्ह्रादो दैत्येन्द्रो बलदर्पितः । व्याघ्ररूपं समास्थाय तमादातुं मतिं दधे ॥ २५ ॥ तं भक्तं ध्यानसम्पन्नं

रहूँगा, यह निर्णय करनेके बाद वह दुर्बुद्धि खल फिर विचारने लगा, कि-१४ वेदाध्ययन करनेवाले, तपस्वी, ब्रह्मतेजसे समृद्ध बहुतसे ब्राह्मण कहाँ रहते होंगे ? ॥ १५ ॥ हाँ ऐसे बहुतसे ब्राह्मणोंके रहनेका स्थान बनारस ही है पहिले वहाँ हीके ब्राह्मणोंका सर्वसमेटा कर फिर दूसरे तीर्थको जाऊँगा १६ जहाँ जहाँ तीर्थोंमें और आश्रमोंमें जो ब्राह्मण रहते हों, उन सबका ही मुझे भक्षण कर डालना चाहिये ॥ १७ ॥ दुन्दुभिनिर्ह्राद इस प्रकार कुलोचित विचार करके काशीमें पहुँचा और काशीमें पहुँचकर भी वह दुर्बुद्धि ब्राह्मणोंका वध करने लगा ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ २ ब्राह्मण वनमें जैसे समिधा और कुशा लेनेको पहुँचते थे, कि—वह दुर्मति उनका भक्षण कर जाता था ॥ १९ ॥ फिर कोई जान न सके इस लिये वह जलचारी प्राणीका रूप धारण कर जलाशयमें छिप जाता था ॥ २० ॥ इस प्रकार वह मायावी देवताओंसे भी अदृश्य रहता था, वह दिनमें तो मुनियोंके बीचमें जा मुनियोंकी समान ध्यानमग्न रहता था ॥ २१ ॥ और कुटियोंमें आने जानेको देखता रहता था और रात्रिमें व्याघ्रका रूप धारण कर बहुतसे ब्राह्मणोंको खा जाता था २२ वह उनको वेखटक खाजाता था हड्डी भी बाकी नहीं छोड़ता था इस प्रकार उस दुष्टने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार डाला ॥ २३ ॥ एक समय शिवरात्रिमें एक भक्त अपनी कुटियामें देवदेवकी पूजा कर ध्यान कर रहा था ॥ २४ ॥ तब उस बलदर्पित दैत्येन्द्र दुन्दुभिनिर्ह्रादने व्याघ्रका रूप धारण कर उस पर

दृढचित्तं शिवेक्षणे । कृतास्त्रमन्त्रविन्यासं तं क्रांतुमशकन्न सः ॥ २६ ॥ अथ सर्वगतश्शम्भुर्ज्ञात्वा तस्याशयं हरः । दैत्यस्य दुष्टरूपस्य वधाय विदधे धियम् ।२७। यावदाक्रिन्सति व्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः । जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षो भक्तरक्षणदक्षधीः ॥२८॥ रुद्रमायांतमालोक्य तद्भक्तार्चितलिंगतः । दैत्यस्तेनैव रूपेण ववृधे भूधरोपमः ॥ २९ ॥ सावज्ञमथ सर्वज्ञं यावत्पश्यति दानवः । तावदायांतमादाय कक्षायंत्रे न्यपीडयत् ॥३०॥ पंचास्यस्त्वथ पंचास्यं मुष्ट्या मूर्द्ध्न्यताडयत् । भक्तवत्सलनामासौ वज्रादपि कठोरया ॥३१॥ स तेन मुष्टिघातेन कक्षानिपेषणेन च । अत्यार्तमारटद्व्याघ्रो रोदसीं पूरयन्मृतः ॥ ३२ ॥ तेन नादेन महता संप्रवेपितमानसाः । तपोधनास्समाजग्मुर्निशि शब्दानुसारतः ॥ ३३ ॥ अथेश्वरं समालोक्य कक्षीकृतमधेश्वरम् । तुष्टुवुः प्रणतास्सर्वे शर्वञ्जयजयाक्षरैः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः परित्राताः परित्राताः प्रत्यूहाद्दारुणादितः । अनुग्रहं कुरुष्वेश तिष्ठात्रैव जगद्गुरो ॥ ३५ ॥ अनेनैव स्वरूपेण व्याघ्रेश इति नामतः । कुरु रक्षां महादेव ज्येष्ठस्थानस्य सर्वदा ॥ ३६ ॥ अन्येभ्यो ह्युपसर्गेभ्यो रक्ष नस्तीर्थवासिनः । दुष्टान-

---

झपाटा मारना चाहा ॥ २५ ॥ वह भक्त दृढ़चित्तसे ध्यानमें शिवदर्शन कर रहा था, मंत्ररूपी अस्त्रका विन्यास करनेके कारण वह दैत्य उस मुनिको झपट न सका ॥ २६ ॥ इधर सर्वव्यापी शंभुने उसके आशयको समझ उस दूषित रूप वाले दैत्यका वध करनेका विचार किया ॥ २७ ॥ वह व्याघ्र झपटना चाहता ही था, कि—भक्तकी रक्षा करनेका विचार करते हुये जगत् रक्षामणि त्रिलोचन शम्भु तहाँ प्रकट होगये ॥ २८ ॥ भक्तके पूजे हुये लिंगसे रुद्रको आता हुआ देख, वह दैत्य उसी रूपसे पर्वतकी समान बढ़ने लगा ॥ २९ ॥ वह दानव तिरस्कारके साथ सर्वज्ञ शिवकी ओर देख रहा था, कि—उस झपटते हुयेको शिवने बगलमें दबाकर दबोचना आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर भक्तवत्सल नाम वाले पञ्चमुखी महादेवने उस सिंहके मस्तक पर अपनी वज्रसे भी कठोर मुट्ठी मारी ॥ ३१ ॥ उस मुष्टिप्रहार से और बगलमें दबानेसे वह व्याघ्र अपनी दहाड़से आकाश और पृथ्वीको गुंजारता हुआ मर गया ॥ ३२ ॥ उस बड़े भारी नादसे तपोधन ब्राह्मणों का चित्त काँपने लगा और वे उस शब्द पर रात्रिमें तहाँ पहुँचे ॥ ३३ ॥ यहाँ पर बगलमें पापिराजको दबोचे हुये शिवको देख ऋषि शिवकी जय २ कह नम्रतापूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा, कि—हे जगद्गुरो ! आपने इस दारुण विघ्नसे हमारी रक्षाकी, हे ईश ! कृपा कर अब यहाँ ही रहिये ॥ ३५ ॥ हे महादेव ! इसी स्वरूपसे यहाँ व्याघ्रेश नाम धारण कर आप इस श्रेष्ठ स्थानकी सदा रक्षा करिये ॥ ३६ ॥ दूसरे भी जो उप-

पास्य गौरीश भक्तेभ्यो देहि चाभयम् ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तेषां भक्तानां चन्द्रशेखरः । तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह स भक्तान्भक्तवत्सलः ३८ महेश्वर उवाच । यो मामनेन रूपेण द्रक्ष्यति श्रद्धयात्र वै । तस्योपसर्गसंधानं पातयिष्याम्यसंशयम् ॥३९॥ मच्चरित्रमिदं श्रुत्वा स्मृत्वा लिंगमिदं हृदि । संग्रामे प्रविशन्मर्त्यो जयमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरे देवास्समाजग्मुस्सवा-सवाः । जयेति शब्दं कुर्वन्तो महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य शंकरं प्रेम्णा सर्वे सांजलयस्सुराः । नतस्कंधाः सुवाग्भिस्ते तुष्टुवुर्भक्तवत्सलम् ॥ ४२ ॥ देवा ऊचुः । जय शंकर देवेश प्रणतार्तिहर प्रभो । एतद्दुन्दुभिनिर्ह्रादवधात्त्राता वयं सुराः ॥ ४३ ॥ सदा रक्षा प्रकर्तव्या भक्तानां भक्तवत्सल । वध्याः खलाश्च देवेश त्वया सर्वेश्वर प्रभो ॥ ४४ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां परमेश्वरः । तथेत्यु-क्त्वा प्रसन्नात्मा तस्मिंल्लिङ्गे लयं ययौ ॥ ४५ ॥ सविस्मयास्ततो देवास्स्वं स्वं धाम ययुर्मुदा । तेऽपि विप्रा महाहर्षात्पुनर्याता यथागतम् ॥ ४६ ॥ इदं चरित्रं परमं व्याघ्रेश्वरसमुद्भवम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि पठेद्वा पाठयेत्तथा ॥ ४७ ॥

दूर हों इनसे हम तीर्थवासियोंकी आप रक्षा करिये, हे गौरीश ! दुष्टोंको दूर कर भक्तोंको अभय दीजिये ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी कहते हैं, कि-वह भक्त-वत्सल चन्द्रशेखर भक्तोंके इस वचनको सुन तथास्तु कह कर उन भक्तोंसे फिर कहने लगे ॥ ३८ ॥ महेश्वरने कहा, कि—जो श्रद्धापूर्वक यहाँ पर इस रूपमें मेरा दर्शन करेगा उसके लगे हुये उपद्रवोंको मैं अवश्य नष्ट कर दूँगा ॥ ३९ ॥ मेरे इस चरित्रको सुनकर और इस लिंगका हृदयमें स्मरण करके संग्राममें प्रवेश करने वाला मनुष्य अवश्य विजय पाता है ॥ ४० ॥ इसी समय इन्द्र आदि देवता बड़े उत्सवके साथ जय जय करते हुये आगये ४१ देवता हाथ जोड़ प्रेमपूर्वक शंकरको प्रणाम कर कन्धा झुका सुन्दर वाणियोंसे भक्तवत्सल शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४२ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे नम्र भक्तोंकी पीड़ाको दूर करने वाले प्रभो देवेश शंकर ! आपकी जय हो, इस दुन्दुभिनिर्ह्रादका वधकर आपने हमारी रक्षा करली ॥ ४३ ॥ हे भक्त-वत्सल ! आप सदा इसी प्रकार भक्तोंकी रक्षा करते रहिये, हे सर्वेश्वर देवेश प्रभो ! दुष्टोंका मारना तो आपका कर्तव्य ही है ॥ ४४ ॥ देवताओंके इस वचनको सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न चित्तसे तथास्तु कह उसी लिंगमें लीन होगये ॥ ४५ ॥ तब देवता विस्मित हो आनन्दपूर्वक अपने अपने धामको पधार गये, और वे विप्र भी जहाँसे आये थे तहाँको परम हर्षपूर्वक लौट गये ४६ जो पुरुष व्याघ्रेश्वर महादेवके प्रकट होनेके इस श्रेष्ठ चरित्रको सुनता है, सुनाता है अथवा पढ़ता है वा पढ़ाता है ॥ ४७ ॥ उस मनुष्यको अपने

न्कामानवाप्नोति नरस्त्वमनसेप्सितान् । परत्र लभते मोक्षं सर्वदुःखविव-
ः ॥ ४८ ॥ इदमाख्यानमतुलं शिवलीलामृताक्षरम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं
ौत्रप्रवर्द्धनम् ॥ ४९ ॥ परं भक्तिप्रदं धन्यं शिवप्रीतिकरं शिवम् । परमज्ञानदं
विकारहरणं परम् ॥ ५० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डेदुन्दुभि
निर्ह्राददैत्यवधवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

सनत्कुमार उवाच । शृणु व्यास सुसंप्रीत्या चरितं परमेशितुः । यथावधीत्
यया दैत्यमुद्दिश्य संज्ञया ॥१॥ आस्तां पुरा महादैत्यौ विदलोत्पलसंज्ञकौ ।
वध्यौ महावीरौ सुदृप्तौ वरतो विधेः ॥ २ ॥ तृणीकृतत्रिजगती पुरुषाभ्यां
र्बलात् । ताभ्यां सर्वे सुरा ब्रह्मन् दैत्याभ्यां निर्जिता रणे ॥ ३ ॥ ताभ्यां परा-
देवा विधेस्ते शरणं गताः । नत्वा तं विधिवत्सर्वे कथयामासुरादरात् ॥४॥
ब्रह्मा ह्यवोचात्तन् देव्या वध्यौ च तौ ध्रुवम् । धैर्यं कुरुत संस्मृत्य सशिवं
मादरात् । भक्तवत्सलनामासौ सशिवश्शंकरश्शिवः ।शं करिष्यत्यदीर्घेण कालेन
श्वरः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच । इत्युक्त्वा तांस्ततो ब्रह्मा तूष्णीमासीच्छिवं

ी सकल कामनाएँ प्राप्त होती हैं किसी प्रकार दुःख नहीं होता और
कमें मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ यह शिवलीलाके अमृतमय अक्षरोंसे
हुआ अनुपम आख्यान स्वर्ग यश और आयु देने वाला है तथा पुत्र
पौत्रोंको बढ़ाने वाला है ॥ ४९ ॥ यह आख्यान भक्ति बढ़ाने वाला,
देने वाला, शिवको प्रसन्न करने वाला, परमज्ञान देने वाला, रमणीय,
रोंको हरने वाला, कल्याणमय श्रेष्ठ आख्यान है ॥ ५० ॥ अट्ठावनवाँ
ाय समाप्त ॥ ५८ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सनत्कुमारजी कहते हैं कि—हे व्यास ! परमेश्वरने दैत्यको अपनी
के द्वारा इशारेसे जिस प्रकार मरवाया था उसको आप सुनिये ॥ १ ॥
े विदल और उत्पल नाम वाले दो महादैत्य थे, ब्रह्माजीसे उन्होंने
पुरुषसे न मरनेका वर पाया था अतः वे गर्वमें भरे रहते थे ॥ २ ॥
नों पुरुष अपने भुजबलके सामने त्रिलोकीको तिनकेकी समान गिनते थे
ह्मन् ! उन दोनों दैत्योंने रणमें सब देवताओंको जीत लिया था ॥ ३ ॥
उन दोनोंसे हारकर ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे और विधिपूर्वक उनको
म कर आदरपूर्वक उनसे सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजी
नसे कहा, कि—वह अवश्य ही देवीसे मारे जावेंगे तुम शिव और शिवा
ादरपूर्वक स्मरण करके धैर्य धारण करो ॥ ५ ॥ वह भक्तवत्सल नाम
शिवासहित शिवशंकर शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ६ ॥ सन-

स्मरन् । तेऽपि देवा मुदं प्राप्य स्वंस्वं धाम ययुस्तदा ॥ ७ ॥ अथ नारददेवर्षिः शिवप्रेरणया तदा । गत्वा तदीयभवनं शिवासौंदर्यमाजगौ ॥८॥ श्रुत्वा तद्वचनं दैत्यावास्तां मायाविमोहितौ । देवीं परिजिहीर्षू तौ विषमेषुप्रपीडितौ ॥ ९ ॥ विचारयामासतुस्तौ कदा कुत्र शिवा च सा । भविष्यति विधेः प्राप्तोदयाग्नाविति सर्वदा ॥१०॥ एकस्मिन्समये शम्भुर्विजहार सुलीलया । कौतुकेनैव चिक्रीडे शिवा कन्दुकलीलया ॥ ११ ॥ सखीभिस्सह सुप्रीत्या कौतुकाच्छिवसन्निधौ १२ उदञ्चन्त्यञ्चदङ्गानां लाघवं परितन्वती । निश्श्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा ॥ भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्वपुरीकृतभूमिका । स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्रवदम्बुकणोज्ज्वला ॥ १४ ॥ स्फुटच्चोलांशुकपथतिर्यदङ्गप्रभावृता । उल्लसत्कन्दुकास्फालातिशोणितकराम्बुजा कन्दुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलताञ्चला । मृडानी किल खेलती ददृशे जगदम्बिका ॥१६॥ अन्तरिक्षचराभ्यां च दितिजाभ्यां कटाक्षिता । क्रोडीकृताभ्यामिव वै समुपस्थितमृत्युना ॥ १६ ॥ विदलोत्पलसंज्ञाभ्यां दृप्ताभ्यां वरतो विधेः । तृणीकृतत्रिजगती पुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात् ॥ १८ ॥ देवीं तां संजि-

सनत्कुमारजी कहते हैं, कि—इस प्रकार उनसे कह कर ब्रह्माजी शिवका स्मरण कर चुप होगये और वे देवता भी आनन्दित होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ७ ॥ तदनन्तर शिवकी प्रेरणासे नारद ऋषि उन दोनों दैत्योंके घर पहुँचे और पार्वतीके सौन्दर्यका वर्णन करने लगे ॥ ८ ॥ नारदजीके वचनको सुन दैत्य मायाके चक्रमें पड (कामके) विषमबाणोंसे पीड़ित हो देवीका अपहरण करना चाहने लगे ॥ ९ ॥ वे विचारने लगे, कि—कब प्रारब्धोदय होने पर वह पार्वती हमको प्राप्त होगी ॥ १० ॥ एक समय शंभु लीलावश विहार करने लगे और पार्वती भी कौतुकवश गेंद खेलने लगीं ११ वह शिवके पास अपनी सखियोंके साथ कौतुकवश गेंद खेल रही थीं ॥१२॥ वह उछलकर अपने अंगोंकी फुरती दिखाती थीं, उनके श्वासकी सुगन्धिसे भौंरें प्रसन्न होकर उनके नेत्रों पर टूटे पड़ते थे ॥ १३ ॥ उनकी चुटियामेंसे जो फूल गिरते थे, उससे उन्होंने तहाँकी भूमिको अपनी पुरीकीसी भूमि बना लिया था और उनके कपोलों पर पसीनेकी बूँदें आरही थीं ॥ १४ ॥ उनके फड़कते हुये वस्त्रमेंसे उनके शरीरकी कान्ति दमक रही थी, गेंदके उछलनेके समय उनके नितम्ब और करकमल भी उछल रहे थे ॥ १५ ॥ गेंदके साथ उनकी दृष्टि और भौंहें नाच रही थीं, इस प्रकार जगदम्बिका क्रीड़ा करती हुई दिखाई दी ॥ १६ ॥ जैसे किसीकी मृत्यु आकर उसको गोदमें बैठाले इसी प्रकार उनको अन्तरिक्षमें घूमते हुये उन दोनों दैत्योंने देखा ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण वे विदल और उत्पल घमण्डमें भर अपने भुज

हीर्षन्तौ विषयेषुप्रपीडितौ । दिव उत्तेरतुः क्षिप्रं मायां स्वीकृत्य शाम्बरीम् ॥१६॥ भूत्वा पारिषदौ मायामायातावम्बिकांतिकम् । तावत्यन्तं मुहुर्मुहुश्चातिचञ्चल-मानसौ ॥ २० ॥ अथ दुष्टनिहंत्रा वै सावज्ञेन हरेण तौ । विज्ञातौ च क्षणाद्दुर्गां चांचल्यान्लोचनोद्भवात् ॥ २१ ॥ कटाक्षिताथ देवेन दुर्गा दुर्गतिघातिनी । दैत्या-विमाविति गणौ नेति सर्वस्वरूपिणा ॥ २२ ॥ अथ सा नेत्रसंज्ञां स्वस्वामिनस्तां बुबोध ह । महाकौतुकिनस्तात शङ्करस्य परेशितुः २३ ततो विज्ञाय संज्ञां तां सर्व-ज्ञार्द्धशरीरिणी । तेनैव कन्दुकेनाथ युगपन्निर्जघान ता ॥ २४ ॥ महाबलौ महा-देव्या कन्दुकेन समाहतौ । परिभ्रम्य परिभ्रम्य तौ दुष्टौ विनिपेततुः ॥२५॥ वृन्ता-दिव फले पक्वे तालेनानिललोलिते । दम्भोलिना परिहते शृङ्गे इव महागिरेः२६ तौ निपात्य महादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ । ततः परिणतिं यातो लिङ्गरूपेण कन्दुकः कन्दुकेश्वरसंज्ञं च तल्लिङ्गमभवत्तदा । ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु सर्वदुष्टनिवारणम्२८ एतस्मिन्नेव समये हरिब्रह्मादयस्सुराः । शिवाविर्भावमाज्ञाय ऋषयश्च समाययुः॥ अथ सर्वे सुराश्शम्भोर्वरान्प्राप्य तदाज्ञया । स्वधामानि ययुः प्रीतास्तथा काशी-

---

बलके सामने त्रिलोकीको तिनकेसे भी तुच्छ समझते थे ॥ १८ ॥ वे काम-बाणसे पीड़ित हो देवीका अपहरण करनेकी इच्छासे शम्बरासुरकी मायाको स्वीकृत कर आकाशमें विचरने लगे ॥ १९ ॥ उन दुराचारियोंका मन अत्यन्त चञ्चल हो रहा था, वे गणोंका रूप धारण कर अम्बिकाके पास आने लगे २० उन दोनोंके नेत्रोंकी चञ्चलतासे दुष्टोंका वध करने वाले हरने उनको क्षणभर में पहिचान लिया ॥ २१ ॥ तब सर्वस्वरूपी देवने दुर्गतिका संहार करनेवाली दुर्गासे कटाक्ष करके कहा, कि ये दैत्य हैं, गण नहीं हैं ॥ २२ ॥ हे तात ! तब उन्होंने महा कौतुकी अपने स्वामी परमेश्वर शंकरके नेत्रके इशारेको समझ लिया ॥ २३ ॥ तब सर्वज्ञकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीने उस इशारेको समझ कर उन दोनोंके गेंद मारी ॥ २४ ॥ वे महाबली दुष्ट देवीकी गेंदसे पिट चक्कर खाते हुये गिर पड़े ॥ २५ ॥ जिस प्रकार आँधीसे हिलते हुये दो पके हुये फल ताड़से पिटकर डण्ठलसे गिर पड़ते हैं और जिस प्रकार वज्रसे महापर्वत के दो शिखर गिर पड़ते हैं इसी प्रकार वह गेंद अकार्य करनेको उद्यत हुए उन दोनों महादैत्योंको गिरा कर लिंगरूपमें बदल गयी ॥ २६ ॥ २७ ॥ और वह ज्येष्ठेश्वरके समीप सब दुष्टोंको निवारण करनेवाला कन्दुकेश्वर नाम वाला लिंग होगया ॥ २८ ॥ इसी समय शिवके आविर्भावको जान कर हरि ब्रह्मा आदिक देवता और ऋषि वहाँ आये ॥ २९ ॥ तब सब देवता और काशीनिवासी शंभुसे उनकी आज्ञानुसार वर पाकर अपने अपने धामोंको प्रसन्न होते हुये चले गये ॥ ३० ॥ अम्बिकासहित शंकरको देख कर वे

निवासिनः ॥३०॥ साम्बिकं शङ्करं दृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटाश्च ते। प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ ३१ ॥ साम्बिकोऽपि शिवो व्यास क्रीडित्वा सुविहारवित्। जगाम स्वालयं प्रीतस्सगणो भक्तवत्सलः।३२। कन्दुकेश्वरलिङ्गं च काश्यां दुष्टनिवर्हणम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं सर्वदा सताम् ॥ ३३ ॥ इदमाख्यानमतुलं शृणुयाद्यो मुदान्वितः। श्रावयेद्वा पठेद्यश्च तस्य दुःखभयं कुतः ॥ ३४ ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा नानाविधमनुत्तमम्। परत्र लभते दिव्यां गतिं वै देवदुर्लभाम् ॥३५॥ इति ते वर्णितं तात चरितं परमाद्भुतम्। शिवयोर्भक्तवात्सल्यसूचकं शिवदं सताम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच। इत्युक्त्वामंत्र्य तं व्यासं तन्नुतो ब्रह्मात्मजः। ययौ विहायसा काशीं चरितं शशिमौलिनः ॥ ३७ ॥ युद्धखण्डमिदं प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम। रौद्रीयसंहितामध्ये सर्वकामफलप्रदम् ॥३८॥ इयं हि संहिता राद्री सम्पूर्णा वर्णिता मया। सदा शिवप्रियतरा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥३९॥ इमां यश्च पठेन्नित्यं शत्रुबाधानिवारिकाम्। सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेत ना ४० सूत उवाच। इति ब्रह्मसुतश्श्रुत्वा पित्रा शिवयशः परम् शतनामाप्य शंभोश्च

हाथ जोड़ प्रणाम कर भक्ति और आदरके साथ शिवकी स्तुति करने लगे थे ॥ ३१ ॥ और हे व्यासजी ! विहारवेत्ता भक्तवत्सल शिव भी अपने गणों को साथ ले अम्बिकाके साथ क्रीड़ा करते हुये अपने धामको प्रसन्नतापूर्वक चले गये ॥ ३२ ॥ यह दुष्टोंको नष्ट करने वाला कन्दुकेश्वर लिंग काशीमें प्रतिष्ठित है, सज्जनोंकी सब कामनाएँ पूर्ण करने वाला है, भोग तथा मोक्षका दाता है ॥ ३३ ॥ जो इस अनुपम आख्यानको प्रसन्नतापूर्वक सुनता है, सुनाता है अथवा पढ़ता है, उसको दुःखका भय कहाँ होसकता है ॥ ३४ ॥ वह इस लोकमें अनेक प्रकारके सुखोंको भोग कर, परलोकमें देवदुर्लभ दिव्य गतिको पाता है ॥ ३५ ॥ हे तात ! इस प्रकार यह तुमसे परम अद्भुत चरित्र कह दिया यह शिव और शिवाका भक्तवत्सलता सूचित करने वाला चरित्र, सज्जनोंका कल्याण करने वाला है ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी कहते हैं, कि—सनत्कुमारजीने इस प्रकार व्यासजीसे शिवचरित्रोंका वर्णन किया तब व्यासजीने उनकी स्तुति की, तब सनत्कुमारजी आकाशमार्गसे काशीको चले गये ३७ हे मुनिसत्तम ! यह रुद्रसंहिताके बीचमें सब कामनाओंका पूर्ण करने वाला युद्धखण्ड आपसे कह दिया ॥ ३८ ॥ अब यह सम्पूर्ण रुद्रसंहिताका वर्णन होचुका, यह शिवको सदा परम प्रिय है और भोग तथा मोक्षरूप फल देने वाली है ॥ ३९ ॥ जो इसका नित्य पाठ करता है उसकी शत्रुसम्बन्धी बाधाएँ दूर होजाती हैं सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होजाती हैं तदनन्तर उसको मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥ ४० ॥ सूतजी कहते हैं, कि—इस प्रकार पिताजीसे

कृतार्थोऽभूच्छिवानुगः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मनारदसम्वादः सम्पूर्णः कथितो मया । शिवः सर्वप्रधानो हि किं भूयश्श्रोतुमिच्छसि ॥ ४२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे विदलोत्पल-दैत्यवधवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितान्तर्गतो युद्धखण्डः ॥ ५ ॥

समाप्ता रुद्रसंहिता ॥ २ ॥

शिवजीके श्रेष्ठ यशको सुन शिवजीके सैंकड़ों नामोंको पा नारदजी कृतार्थ होगए और शिवके अनुयायी बन गए ॥ ४१ ॥ इस प्रकार मैंने तुमसे यह ब्रह्माजी और नारदजीका पूर्णसंवाद कह दिया शिवजी सर्वप्रधान हैं, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ४२ ॥ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

रुद्रसंहितामें पञ्चम युद्धखण्ड समाप्त ॥ ५ ॥

रुद्रसंहिता समाप्त ॥ २ ॥

मिलनेका पता—

प० रामचन्द्र शर्मा

सनातनधर्म यन्त्रालय

मुरादाबाद ।

॥ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥



अथ—

श्रीशिवमहापुराण

शतरुद्र-संहिता

वन्दे महानन्दमनन्तलीलम्महेश्वरं सर्व्वविभुम्महान्तम्। गौरीप्रियं कार्तिक-विघ्नराजसमुद्भवं शंकरमादिदेवम् ॥ * ॥ शौनक उवाच। व्यासशिष्य महाभाग सूत ज्ञानदयानिधे। वद शंभ्वतारांश्च यैरकार्षीत्सतां शिवम् ॥ १ ॥ सूत उवाच। मुने शौनक सद्भक्त्या दत्तचित्तो जितेन्द्रियः। अवताराञ्छिवस्याहं वच्मि ते मुनये शृणु ॥ २ ॥ एतत्पृष्टः पुरा नन्दी शिवमूर्तिस्सतां गतिः। सनत्कुमारेण मुने तमुवाच शिवं स्मरन् ॥३॥ नन्दीश्वर उवाच। असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्व्वेश्वरस्य वै। अवतारास्तथापीह वच्म्यहं तान्यथामति ॥४॥ एकोन-

* श्रीहरिः *

परम आनन्दमय, अनन्त लीलाएँ करने वाले महेश्वर, सर्वविभु, महान् गौरी-प्रिय, स्वामि कार्तिकेय और गणेशजीके उत्पादक आदि-देव शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ॥ * ॥ शौनकजीने कहा, कि—हे ज्ञान और दयाके सागर महाभाग व्यास-शिष्य सूतजी! शंभुने अपने जिन अवतारोंमें सज्जनों का कल्याण किया हो, उनका वर्णन करिये॥ १ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे मुने शौनक! आप तो मनन करने वाले हैं, मैं आपसे शिवके अवतारोंका वर्णन करता हूँ आप इन्द्रियोंको वशमें रख भक्तिपूर्वक दत्तचित्त हो सुनिये ॥२॥ हे मुने! पहिले सनत्कुमारजीने सज्जनोंकी गति और शिवजीकी (दूसरी) मूर्ति नन्दीसे यह प्रश्न किया था, उस समय उन्होंने शिवजीका स्मरण करके कहा था ॥३॥ नन्दीश्वरका भाषण-सर्वेश्वर प्रभु शंकरके कल्प कल्पान्तरोंमें असङ्ख्य अवतार हुए हैं, तथापि मैं यथामति (कुछ) अवतारोंका वर्णन करूँगा ॥ ४ ॥ उन्नीसवें श्वेतलोहित कल्पमें सद्योजात अवतार हुआ है,

विंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः । सद्योजातावतारस्तु प्रथमः परिकीर्तितः ५
तस्मिंस्तत्परमं ब्रह्म ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा । उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेत-
लोहितः ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा ब्रह्मरूपिणमीश्वरम् । ज्ञात्वा ध्यात्वा स हृदये
ववन्दे प्रवताञ्जलिः ॥७॥ सद्योजातं शिवं बुद्ध्वा जहर्ष भुवनेश्वरः । मुहुर्मुहुश्च
सद्बुद्धया परं तं समचिन्तयत् ॥ ८ ॥ ततोऽस्य ध्यायतः श्वेताः प्रादुर्भूता
यशस्विनः । कुमाराः परविज्ञानपरब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९ ॥ सुनन्दो नन्दनश्चैव
विश्वनन्दोपनन्दनौ । शिष्यास्तस्य महात्मानो यैस्तद् ब्रह्म समावृतम् ॥ १० ॥
सद्योजातश्च वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे । सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमे-
श्वरः ॥ ११ ॥ (इति सद्योजातावतारः १) ततो विंशतिमः कल्पो रक्तो नाम
प्रकीर्तितः । ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥ १२ ॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य
प्रादुर्भूतो विधेस्सुतः । रक्तमाल्याम्बरधरो रक्ताक्षो रक्तभूषणः ॥ १३ ॥ स तं
दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं ध्यानमाश्रितः । वामदेवं शिवं ज्ञात्वा प्रणनाम कृतांजलिः १४
ततस्तस्य सुता ह्यासंश्चत्वारो रक्तवाससः । विरजाश्च विवाहश्च विशोको
विश्वभावनः ॥ १५ ॥ वामदेवः स वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे । सर्गशक्तिमपि

यह प्रथम अवतार प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ उस समय ब्रह्माजी परम ब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, कि--शिखायुक्त श्वेत--लोहित कुमार उत्पन्न हुआ ॥६॥ ब्रह्माजी उस पुरुषको देख इनको ब्रह्मरूपी ईश्वर समझ हृदयमें उनका ध्यान धर हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे ॥ ७ ॥ भुवनेश्वर ब्रह्मा सद्योजातको शिव समझ परम प्रसन्न हुए और बारम्बार सद्बुद्धिसे उनका चिन्तवन करने लगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी ध्यान कर रहे थे, कि—यशस्वी श्वेत--कुमार प्रकट हुए वे परविज्ञान परब्रह्मस्वरूप थे ॥ ९ ॥ वे महात्मा सुनन्द नन्दन विश्व-नन्द और उपनन्द उनके शिष्य हुए उनसे ब्रह्मलोक बसा हुआ था ॥१०॥ तदनन्तर सद्योजात शंभु परमेश्वरने प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको ज्ञान और सृष्टिरचनाकी शक्ति दी (यह पहिला सद्योजातावतार हुआ) ११ तदनन्तर रक्त नामसे प्रसिद्ध बीसवाँ कल्प आया, उसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्तवर्ण धारण किया था ॥ १२ ॥ पुत्रकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यान कर रहे थे कि—उनके समान रक्त माला वस्त्र और आभूषणधारी पुत्र प्रकट हुआ १३ ब्रह्माजी उस महात्मा कुमारको देख कर ध्यानमग्न होगए यह वामदेव शिव हैं, तब उन्होंने हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उनके रक्तवस्त्रधारी विरजा विवाह विशोक और विश्वभावन नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ तब परमेश्वर वामदेव शंभुने प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको प्रीति-पूर्वक ज्ञान और सृष्टि रचनेकी शक्ति प्रदान की (यह दूसरा वामदेवावतार

प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ १६ ॥ (इति वामदेवावतारः २) एकविंशतिमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः । ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥ १७ ॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य विधेर्जातः कुमारकः । पीतवस्त्रादि-प्रौढो महातेजा महाभुजः ॥ १८ ॥ तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ज्ञात्वा तत्पुरुषं शिवम् । प्रणनाम ततो बुद्ध्या गायत्रीं शांकरीं विधिः ।१९। जपित्वा तु महादेवीं सर्व्वलोकनमस्कृताम् । प्रसन्नस्तु महादेवो ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥ २० ॥ ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः । पीतवस्त्रा हि सकला योगमार्गप्रवर्तकाः ॥ २१ ॥ (इति तत्पुरुषावतारः ३) ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः । पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्ना शिवस्तु सः ॥२२॥ एकार्णवे सम्व्यतीते दिव्यवर्षसहस्रके । स्रष्टु-कामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ २३ ॥ ततोऽपश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् । कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२४॥ धृतकृष्णाम्बरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् । कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्नानानुलेपनम् ॥ २५ ॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् । ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिंगलम् ॥२६॥ अघोरन्तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपस्व्यचिन्तयत् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्तवत्सल-मव्ययम् ॥ २७ ॥ अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्नानानुलेपनाः । चत्वारस्तु

हुआ) ॥१६॥ इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा कहा है, उसमें महाभाग ब्रह्माजी पीतवस्त्रधारी थे ॥ १७ ॥ पुत्रकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यान कर रहे थे, कि—महातेजस्वी महाभुज पीतवस्त्र आदिसे प्रौढ कुमार प्रकट हुआ ॥१८॥ उस ध्यानमग्न बालकको देख उसको तत्पुरुष शिव समझा, तदनन्तर ब्रह्माजीने अपनी बुद्धिसे सब लोकोंमें वन्दनीय महादेवी शाङ्करी गायत्री (तत्पु-पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि) का जप कर उनको प्रणाम किया, तब ध्यानमग्न चित्तसे महादेव प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर उनके पार्श्व-देशसे पीतवस्त्रधारी दिव्य कुमार प्रकट हुए, वे सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए (यह तीसरा तत्पुरुषावतार हुआ) ॥ २१ ॥ तदनन्तर उन ब्रह्माजीके पीतवर्ण कल्पके बीतने पर, दूसरा शिव नामक कल्प चला ॥ २२ ॥ जब एकसमुद्रमय दशामें हजार दिव्य वर्ष वीत गए तब प्रजाओंको रचनेकी इच्छा वाले ब्रह्माजी खिन्न हो विचार रहे थे, कि—॥ २३ ॥ उन महातेजस्वीने कृष्ण-वर्ण वाले महावीर्यवान् अपने तेजसे दमकते हुए, काले वस्त्र काली पगड़ी, काला यज्ञोपवीत, काला मुकुट और काला स्नानानुलेपन (चन्दन) लगाये हुए कुमारको प्रकट होते देखा ॥ २४ ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने उन घोर विक्रमी अघोर देवदेवेश अद्भुत कृष्णपिङ्गल महात्माको देखते ही प्रणाम किया ॥२६॥ तदनन्तर ब्रह्माजी उन अघोरको ब्रह्मरूप समझ उन अव्यय

महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः ॥ २८ ॥ कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्ण-कण्ठधृक् । इति तेऽव्यक्तनामानः शिवरूपाः सुतेजसः ॥२६॥ एवंभूता महात्मानो ब्रह्मणः सृष्टिहेतवे । योगं प्रवर्त्तयामासुर्घोराख्यं महदद्भुतम् ॥ ३० ॥ (इत्यघोरावतारश्चतुर्थः ४) अथान्यो ब्रह्मणः कल्पः प्रावर्त्तत मुनीश्वराः। विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतो मनसा शिवम् । प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥ ३२ ॥ तथाविधः स भगवानीशानः परमेश्वरः । शुद्धस्फटिकसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ॥३३॥ तं दृष्ट्वा प्रणनामासौ ब्रह्मेशानमजं विभुम् । सर्वगं सर्वदं सर्वं सुरूपं रूपवर्जितम् ॥ ३४ ॥ ईशानोऽपि तथादिश्य सन्मार्गं ब्रह्मणे विभुः । सशक्तिः कल्पयांचक्रे स बालांश्चतुरः शुभान् ३५ जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे। योगेनादिश्य सद्धर्मं कृत्वा योगगतिं गताः ॥ ३६ ॥ (इतीशानावतारः पञ्चमः ५) एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः । सनत्कुमार सर्वज्ञ लोकानां हितकाम्यया ॥ ३७ ॥ अथ तेषां महाप्राज्ञ व्यवहारं यथायथम् । त्रिलोकहितकारं हि सर्वं ब्रह्माण्डसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ ईशानः

भक्तवत्सलकी इष्ट वचनोंसे स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर उनके पार्श्वस्थानसे कृष्ण कृष्ण-चन्दनधारी चार महात्मा कुमार प्रकट हुए ॥२८॥ उन शिवकेसे रूप वाले अव्यक्त नाम वाले तेजस्वियोंका नाम कृष्ण कृष्ण-शिख कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक् था ॥ २६ ॥ उन महात्माओंने ब्रह्मा-जीकी सृष्टिके कारण घोर नामक परम अद्भुत योगका प्रचार किया (यह चतुर्थ अघोरावतारका वर्णन हुआ) ॥ ३० ॥ हे मुनीश्वरों ! फिर ब्रह्माजीका एक और कल्प प्रवृत्त हुआ, उस परम अद्भुत कल्पका नाम विश्वरूप था ॥ ३ ॥ पुत्रकी कामनासे ब्रह्माजी मनमें शिवका ध्यान कर रहे थे, कि-महानादा विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई ॥ ३२ ॥ और सब आभरणोंसे विभूषित शुद्ध स्फटिककी समान ईशान भगवान् परमेश्वर प्रकट हुए ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीने उन अज विभु सर्वग सर्वद सर्व सुरूप रूपवर्जित ईशानको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माजीको सन्मार्गका उपदेश देकर चार शुभ बालकोंकी कल्पना की ॥ ३५ ॥ उनका नाम जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड था, वह योगपूर्वक सद्धर्मका पालन कर योगगतिको प्राप्त होगए (यह पंचम ईशानावतार हुआ) ॥ ३६ ॥ हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! संसारका हित करनेकी इच्छासे यह सद्य आदिक अवतारोंका संक्षेपसे वर्णन कर दिया ॥ ३७ ॥ हे महाप्राज्ञ ! उनका त्रिलोकी का हित करने वाला व्यवहार ब्रह्माण्डमें स्थित है ॥ ३८ ॥ ईशान, पुरुष,

पुरुषो घोरो वामसंज्ञस्तथैव च । ब्रह्मसंज्ञा महेशस्य मूर्तयः पंच विश्रुताः ॥३६॥ ईशानः शिवरूपश्च गरीयान्प्रथमः स्मृतः । भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ॥ ४० ॥ शैवस्तत्पुरुषाख्यश्च स्वरूपो हि द्वितीयकः । गुणाश्रयात्मकं भोग्यं सर्वज्ञमधितिष्ठति ॥ ४१ ॥ धर्माय स्वांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः । अघोराख्यस्वरूपो यस्तिष्ठत्यंतस्तृतीयकः ॥ ४२ ॥ वामदेवाह्वयो रूपश्चतुर्थः शंकरस्य हि । अहंकृतेरधिष्ठानो बहुकार्यकरः सदा ॥ ४३ ॥ ईशानाह्वस्वरूपो हि शंकरस्येश्वरः सदा । श्रोत्रस्य वचसश्चापि विभोर्व्योम्नस्तथैव च ॥ ४४ ॥ त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरं रूपमैश्वरम् । पुरुषाख्यं विचारज्ञा मतिमन्तः प्रचक्षते ॥४५॥ वपुषश्च रसस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च । अघोराख्यमधिष्ठानं रूपमाहुर्मनीषिणः ॥ ४६ ॥ रसनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च।ईश्वरं वामदेवाख्यं स्वरूपं शांकरं स्मृतम् ४७ घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गन्धस्य च भुवस्तथा । सद्योजाताह्वयं रूपमीश्वरं शांकरं विदुः ॥ ४८ ॥ इमे स्वरूपाः शंभोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः । श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥४६॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम् । स भुक्त्वा सकलान्कामान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ५० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्य पञ्चब्रह्मावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

घोर, वामदेव और ब्रह्म महेशकी ये पाँच प्रसिद्ध मूर्तियें हैं ॥ ३६ ॥ ईशान शिवरूप प्रथम और गरीयान् है, वह प्रकृतिका भोक्ता है और क्षेत्रज्ञमें अधिष्ठित होकर रहता है ॥४०॥ तत्पुरुष नाम वाला शैवरूप दूसरा है, वह गुणाश्रय, भोग्य सर्वज्ञमें अधिष्ठित है ॥ ४१ ॥ पिनाकीका बुद्धितत्त्व अंगसंयुक्त धर्मके लिये अघोर नामक तीसरे स्वरूपमें भीतर विराजमान रहता है ॥४२॥ शंकरका वामदेव नाम वाला चौथा रूप अहंकृतिका अधिष्ठान है, सदा अनेक प्रकारके कार्य करता है ॥ ४३ ॥ शंकरका ईशान नामक स्वरूप सदा ईश्वर ही है, वह कर्ण, वाणी, विभु आकाश त्वक्, पाणि, स्पर्श, वायुका ईश्वर-रूप ऐश्वररूप है, विचार करने वाले बुद्धिमान् उसको पुरुष कहते हैं ।४४।४५। शरीरका रसका अग्निका रूपका अधिष्ठान अघोर है ॥ ४६ ॥ रसना, पायु, रस और जलका वामदेव नाम वाला शंकरस्वरूप है ४७ (ज्ञानी) प्राण उपस्थ गंध और भूके सद्योजात नामक शांकर ईश्वर रूपको जानते हैं ॥ ४८ ॥ श्रेय चाहने वाले पुरुष श्रेयके अनुपम कारण शंभुके इन रूपोंकी सदा प्रयत्न-पूर्वक वन्दना करें ॥ ४६ ॥ जो इन सद्यादिककी उत्पत्तिको सुनता है वा पढ़ता है वह सकल भोगोंको भोग कर परम-गति पाता है ॥ ५० ॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वर उवाच । शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो । सर्वकार्यकराँल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ॥ १ ॥ तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् । तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ २ ॥ शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः । ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः ॥ ३ ॥ भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः । अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि ॥४॥ धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् । शंकरस्य महेशस्य शास्त्रस्यैवेति निश्चयः ५ संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् । भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ॥ ६ ॥ बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दते स्वयम् । उग्र इत्युच्यते सद्भो रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ॥ ७ ॥ सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम् । रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्य भेदकम् ॥ ८ ॥ सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् । रूपं पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥ संदीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम् । ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥१०॥ आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः । महादेवस्य तद्रूपं महादेवस्य चाह्वयम् ॥११॥ आत्मा

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे प्रभो ! हे मुने ! हे तात ! अब आप महेशके श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन सुनिये, ये लोकमें सबके कामको सिद्ध करते हैं अतः सबको सुख देते हैं ॥ १ ॥ यह जगत् परमेश्वर शम्भुकी आठ मूर्तियों वाला है, जैसे डोरेमें मणियें पुरी होती हैं, इसी प्रकार सकल विश्व उन (को इन आठ मूर्तियों) में पुरा हुआ है ॥ २ ॥ शर्व भव रुद्र उग्र भीम पशुपति ईशान और महादेव ये शम्भुकी आठ प्रसिद्ध मूर्तियें हैं ॥ ३ ॥ भूमि जल अग्नि वायु आकाश क्षेत्रज्ञ सूर्य और चन्द्रमा शिवके शर्व आदि आठ रूपोंसे अधिष्ठित हैं ॥ ४ ॥ शास्त्रका यह निश्चय है, कि—चराचर विश्व महेश शङ्करके विश्वंभर रूपको ही धारण किये हुए है ॥ ५ ॥ समस्त जगत्को जीवन देने वाला जल परमात्मा भवका भव-रूप कहाता है ॥ ६ ॥ और हे सत्-प्रभो ! जो भीतरी बाहरी 'जगत्भरको पुष्ट करता है और स्वयं स्पन्दन करता है, सज्जन उग्र शंकरके उस रूपको उग्र कहते हैं (जल) ॥७॥ सबको अवकाश देने वाला सर्वव्यापक आकाश, भूपवृन्दका भेदक है यह भीम महादेवका भीम नामक रूप है ॥ ८ ॥ और सब आत्माओंका अधिष्ठान और सकल क्षेत्रोंमें निवास करने वाला पशुपाशको काटने वाला पशुपति का रूप है ॥ ९ ॥ समस्त जगत्को दमकाने वाला, दिवाकर नामक ईशान-महेशका रूप द्युलोकमें भ्रमण करता है ॥ १० ॥ अमृतमयी किरणों वाला जो चन्द्रमा समस्त जगत्को आप्यायित करता है वह महादेवका महादेव

तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः । व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥ १२ ॥ शाखाः पुष्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् । तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्यते च शिवार्चनात् ॥ १३ ॥ यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥ १४ ॥ क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः । अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः ॥ १५ ॥ अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् । भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥ १६ ॥ इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टविश्रुताः । सर्वोपकारनिरताः सेव्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥ १७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नन्दीश्वर उवाच । शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् । अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥ १ ॥ यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धत वेधसा । तदा चिन्ताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुःखितः ॥ २ ॥ नभोवाणी तदाभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु । तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ ३ ॥ नारीणां कुलमीशाना-

---

नामक रूप है ॥ ११ ॥ आत्मा परमात्मा शिवका आठवाँ रूप है, यह दूसरी मूर्तियोंका व्यापक है, इस प्रकार सकल विश्व शिवमय है ॥ १२ ॥ वृक्षकी जड़ सींचनेसे वृक्षकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, इसी प्रकार शिवपूजन करनेसे इनका शरीर विश्व पुष्ट होता है ॥ १३ ॥ जैसे लोकमें पुत्र पौत्र आदिके प्रसन्न होने पर पिता प्रसन्न होता है, इसी प्रकार विश्वके प्रसन्न होने पर शंकर प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ यदि किसी देहधारीको दण्ड दिया तो अष्टमूर्तिधारी शिवका ही अनिष्ट कर लिया ॥ १५ ॥ तुम सब प्रकारसे आठ मूर्तियोंसे समस्त जगत्को अधिष्ठित करके स्थित परम कारण रुद्र शिवका भजन करो ॥१६॥ हे विधिपुत्र ! इस प्रकार तुमसे यह सबका उपकार करने वाले शंकरके प्रसिद्ध आठ रूप कहे, इनका श्रेयोऽभिलाषी पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ॥ १७ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ * ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे महाबुद्धिमान् तात ! अब आप सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले अर्धनारीनर नामक शिवके श्रेष्ठ रूपको सुनिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजीकी रची हुई सब प्रजायें जब बढ़ न सकीं तब वह इस दुःखसे दुःखित दुःखित हो चिन्तामें पड़ गए ॥ २ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई, कि—मिथुनजा सृष्टि करो, उसको सुनकर ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया ॥ ३ ॥ परन्तु नारियोंका कुल तब तक ईशानसे प्रकट नहीं था, अतः

न्निर्गतं न पुरा यतः। ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शेके न पद्मभूः ॥ ४ ॥ प्रभावेण विना शंभोर्न जायेरन्निमाः प्रजाः। एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥५॥ शिवया परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम्। संचिंत्य हृदये प्रीत्या तपेशं परमं तपः ॥६॥ तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः। अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥७॥ ततः पूर्णचिदांशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम्। अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या परमयान्वितम्। प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥९॥ अथ देवो महादेवो वाचा मेघगम्भीरया। संबभाषे सुसंप्रीतो विश्वकर्ता महेश्वरः १० ईश्वर उवाच। वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह। ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ११ प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना। तपसा तेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम् ॥१२॥ इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः। पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम्। प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच। देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे। प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शंभुना परमात्मना ॥१५॥ मनसा निर्मिताः

ब्रह्मा मैथुनी सृष्टि न कर सके ४ उस समय ब्रह्माजीने विचारा कि-शिवजीकी कृपाके विना ऐसी प्रजा नहीं होसकती अतः वह तप करनेके लिये उद्यत हो गए ॥ ५ ॥ और हृदयमें परमशक्तिसे सुशोभित परमेश्वर शिवका प्रीतिपूर्वक ध्यान धर परम तप करने लगे ॥ ६ ॥ तीव्र तप करते हुए ब्रह्माजी पर शीघ्र ही थोड़े ही समयमें शिव प्रसन्न होगए ॥ ७ ॥ फिर हर पूर्ण सच्चिदानन्दकी मनोरथ पूर्ण करने वाली मूर्तिमें प्रवेश कर अर्धनारीनरके रूपमें ब्रह्माजीके सामने प्रकट हुए ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी शङ्कर देवको परमशक्तिके साथ प्रकट हुए देख हाथ जोड़ दण्डवत् प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर विश्वकर्ता देव महेश्वर महादेव ब्रह्माजी पर प्रसन्न हो मेघगंभीर स्वरमें कहने लगे ॥ १० ॥ ईश्वरने कहा, कि—हे महाभाग वत्स! मेरे पुत्र पितामह वत्स! मैंने तुम्हारा मनोरथ भली भाँति समझ लिया ॥ ११ ॥ तुमने इस समय प्रजाकी वृद्धिके लिये ही तप किया है उस तपसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार परम उदारस्वभाव शिवने मधुर वचन कहकर अपने शरीरके भाग से देवी शिवाको अलग कर दिया ॥ १३ ॥ उन शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई परमशक्तिको देख ब्रह्माजी उनको प्रणाम कर विनीत चित्त से प्रार्थना करने लगे ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे शिवे! आरंभमें

सर्वं शिवे देवादयो मया । न वृद्धिमु गच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ १६ ॥ मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् । संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥ १७ ॥ न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् । तेन नारीकुलं स्रष्टुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ १८ ॥ सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः । तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ॥ १९ ॥ शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिं देहि नमोऽस्तु ते । चराचरं जगद्वृद्धि हेतोर्मातः शिवप्रिये ॥ २० ॥ अन्यं त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि । देहि मे त्वं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥२१॥ चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सर्वगे । दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके २२ एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी । तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ ॥ २३ ॥ तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी । शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ॥ २४॥ तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्तिं देववरो हरः । कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ॥२५॥ शिव उवाच । तपसाराधिता

तुम्हारे देवदेव पतिने मेरी रचनाकी थी, तदनन्तर परमात्मा शंभुने सब प्रजाओंको (मेरे द्वारा) नियुक्त (करनेका विचार) किया ॥ १५ ॥ परन्तु हे शिवे ! मैं अपने मनसे वारंवार देवता आदिकी रचना करता हूँ परन्तु वह बढ़ती नहीं ॥ १६ ॥ अतः अब आगेको मैं मिथुन (जोड़े) से उत्पन्न होने वाली सृष्टि कर अपनी सब प्रजाओंको बढ़ाना चाहता हूँ ॥ १७ ॥ आप से नारियोंका अनन्त कुल अब तक प्रकट नहीं हुआ है अतः मुझमें नारियों का कुल रचनेकी शक्ति फुरती नहीं ॥ १८ ॥ और क्योंकि—आपसे ही सकल शक्तियोंका निकास है अतः सबकी ईश्वरी परम-शक्ति आपकी ही मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ १९ ॥ हे शिवे ! मैं आपको प्रणाम करके कहता हूँ, कि—मुझे नारीकुलको रचनेकी शक्ति दीजिये, क्योंकि—हे शिवप्रिये ! चराचर जगत्का यही हेतु होगा ॥ २० ॥ तथा हे वरदायिनि ईश्वरि ! मैं एक दूसरा वर आपसे मागता हूँ, हे जगन्मातः ! आप कृपा कर उस वरको मुझे दें ॥ २१ ॥ कि—हे अम्बिके ! हे सर्वगे ! आप चर अचरकी वृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थरूपसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री बनें ॥ २२ ॥ जब ब्रह्माजी ने परमेश्वरी देवीकी इस प्रकार याचना की तब देवीने तथास्तु कहकर वह शक्ति ब्रह्माजीको प्रदान की ॥ २३ ॥ फिर ब्रह्माजीको वरदान देनेके कारण जगन्मयी शिवशक्ति शिवा देवीने अपनी भौहोंके मध्यदेशसे अपनी समान प्रभा वाली एक शक्तिकी रचनाकी ॥ २४ ॥ लीलाकारी कृपासिंधु महेशान

देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ॥ २६ ॥ त्वाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा । ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत् ॥ २७ ॥ दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे सा शिवा मुने । विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ॥ २८ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः । आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी ॥ २९ ॥ एतत्ते कथितं तात शिवरूपं महात्तमम् । अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामंगलदं सताम् ॥ ३० ॥ एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छृणुयादपि । स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्री शिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्यार्द्धनारीश्वरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा । रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा ॥ १ ॥ शिव उवाच । सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे । कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः ॥२॥ मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति । तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे ॥ ३ ॥ अनुग्रहार्थं

देवदेव हर उस भवाम्बिका (जगन्माता) शक्तिको देख हँस कर बोले २५ शिवजीने कहा, कि—हे देवि ! परमेष्ठी ब्रह्माने तुम्हारा तप कर आराधन किया है, अतः उन पर प्रसन्न होकर उनके सकल मनोरथ पूर्ण करो ॥२६॥ तब वह शक्ति परमेश्वरकी आज्ञाको शिर पर चढ़ा ब्रह्माजीके वचनानुसार दक्षकी पुत्री बनी हैं ॥ २७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार वह शिवा ब्रह्माजीको अतुल शक्ति दे शंभुके देहमें प्रविष्ट होगईं, तदनन्तर प्रभु शंभु भी अन्तर्धान हो गये ॥ २८ ॥ उस दिनसे इस संसारमें स्त्रीका भाग (देह) रचा गया है, ब्रह्माजीको उससे परम आनन्द हुआ था और तबसे ही मैथुनी सृष्टि चली है ॥ २९ ॥ हे तात ! इस प्रकार तुमसे शिवजीका परमोत्तम अर्धनारीनर नामक परम उत्तम शिवरूप कहा, इससे सज्जनोंको महामंगल प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ इस निष्पाप करने वाले आख्यानको जो पढ़ता है वा सुनता है वह सकल भोगोंको भोग परम-गति पाता है ॥ ३१ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! रुद्रने ब्रह्माजीसे प्रीतिपूर्वक शांकर-चरित्र कहा था वह सुखदायक है ॥१॥ शिवजीने कहा था कि—वाराह कल्पके सातवें मन्वन्तरमें कल्पेश्वर भगवान् सर्वलोकप्रकाशन तुम्हारे प्रपौत्र (विवस्वानके पुत्र) वैवस्वतमनुके पुत्र होंगे, हे विधे ! उस मन्वन्तरकी चौयुगियोंमें लोकों पर अनुग्रह करनेके लिये और ब्राह्मणोंका हित करनेके

लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च । उत्पत्स्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके ॥ ४ ॥ युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे । द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयं प्रभुः ॥ ५ ॥ तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके । भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ॥६॥ हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे । तत्र शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यंति विधे मम ॥ ७ ॥ श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः। चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ॥ ८ ॥ ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् । जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ॥ ९ ॥ द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहं ऋते ध्यानात्पितामह। दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैःकर्महेतुभिः॥१०॥ द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः । तदा तदा भविष्यामि सुतारो नामतः कलौ ॥ ११ ॥ तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः । दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ॥ १२ ॥ चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम । ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ १३ ॥ तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः । तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ॥ १४ ॥ तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः । विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापना-

---

लिये मैं द्वापरयुगके अन्तमें प्रकट हुआ करूँगा ॥ २–४ ॥ उस मन्वन्तरकी पहिली चतुर्युगीके द्वापरमें हे ब्रह्मन्! जब व्यासजी स्वयं प्रभु होंगे ॥ ५ ॥ तब मैं ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये उस चतुर्युगीके अन्तिम युग कलियुगमें अपनी शिवाको साथ ले श्वेत मुनिके नामसे अवतार लूँगा ॥ ६ ॥ हे विधे! उस समय हिमालयके शिखर पर्वतोत्तम रमणीय छागल पर्वत पर मेरे शिखाधारी श्वेत श्वेतशिख श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक चार शिष्य होंगे और वे चारों ही ध्यानयोगसे मेरे लोकको प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ वे मुझको अव्यय समझ मेरे भक्त बनेंगे, और परब्रह्ममें समाधि लगा जन्म मृत्यु और जरासे हीन होजावेंगे ॥ ९ ॥ हे पितामह! उस समय ध्यानके अतिरिक्त दानधर्म आदि कर्महेतुक साधनोंसे मनुष्य मुझे नहीं देख सकेंगे १० दूसरे द्वापरमें सत्य नामक व्यास होंगे, उस समय कलियुगमें सुतार नामक प्रजापति हूँगा ॥ ११ ॥ उस समय भी मेरे वेदवेत्ता द्विज शिष्य दुन्दुभि शतरूप हृषीक और केतुमान् होंगे ॥ १२ ॥ वे चारों ध्यानयोगसे मेरे पुरको प्राप्त होंगे, मुझ अव्ययको तत्त्वपूर्वक जानकर मुक्त होजावेंगे ॥ १३ ॥ तीसरे द्वापरमें जब भार्गव नामक व्यास होंगे, तब नगरके समीप ही मैं भी दमन नामसे प्रकट हूँगा ॥ १४ ॥ उस समय मेरे विशोक विशेष विपाप और पापनाशन नामक चार पुत्र होंगे ॥ १५ ॥ हे चतुरानन! मैं अपने शिष्योंको

शनः ॥ १५ ॥ शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन । निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्तयिष्ये कलाविह ॥१६॥ चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः । तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ॥१७॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः । भविष्यंति महात्मानस्तन्नामानि ब्रुवे विधे ॥ १८ ॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दर्भो दुरतिक्रमः । शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ॥१९॥ पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः । तदा योगी भविष्यामि कंको नाम महातपाः ॥ २० ॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः । भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि शृणुष्व मे ॥ २१ ॥ सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः । विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृतिः ॥ २२ ॥ तत्रापि कंकनामाहं साहाय्यं सवितुर्विधे । व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ॥२३॥ परिवृत्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः । कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ॥ २४ ॥ तदाप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः । व्यासस्य सुसाहाय्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ॥ २५ ॥ तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः । सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ॥२६॥ सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः । तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ॥२७॥ यागं संदृढयिष्यामि

साथ ले व्यासजीकी सहायता करूँगा और कलियुगमें निवृत्तिमार्गको सुदृढ़ करूँगा ॥ १६ । चौथे द्वापरमें जब अङ्गिरा नामक व्यास होंगे, तब मैं भी सुहोत्र नामसे प्रकट हूँगा ॥ १७ ॥ उस समय भी मेरे चार पुत्र होंगे, वे महात्मा योगका साधन करेंगे हे विधे ! मैं उनके नामोंका वर्णन करता हूँ १८ हे विधे ! उन सुमुख दुर्मुख दुर्दर्भ और दुरतिक्रम नामक पुत्रों--शिष्योंके साथ मैं व्यासजीकी सहायता करूँगा । १९ ॥ पाँचवें द्वापरमें सविता नामक व्यास होंगे, उस समय मैं कंक नामक महातपस्वी योगी हूँगा ॥ २० ॥ उस समय भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे, उनके नामको आप सुनें ॥ २१ । सनातन--सनक, प्रभु--सनन्दन, विभु-सनत्कुमार और निर्मल--निरहंकृति ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय भी कंक नामधारी मैं सविता व्यासजीकी निवृत्तिमार्गको बढ़ानेके लिये सहायता करूँगा ॥ २२ ॥ फिर छठे द्वापरके आने पर जब व्यास लोककारक मृत्यु होंगे और वेदोंका विभाग करेंगे ॥ २४ ॥ उस समय मैं लोकाक्षिके नामसे प्रकटूँगा और व्यासकी सहायता करता हुआ निवृत्तिमार्गको बढ़ाऊँगा ॥ २५ ॥ उस समय भी मेरे चार दृढ़व्रत शिष्य होंगे, उनका नाम सुधामा, विरजा, सञ्जय और विजय होगा ॥ २६ ॥ और हे विधे ! जब सातवें द्वापरमें शतक्रतु नामक व्यास

महायोगविचक्षणः । काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ॥ २८ ॥ साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः । उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ॥ २९ ॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे । सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ॥ ३० ॥ अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः । कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ॥ ३१ ॥ तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः । व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम ॥ ३२ ॥ कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः । चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ॥ ३३ ॥ नवमे परिवर्त्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे । भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ॥ ३४ ॥ व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये । तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ॥ ३५ ॥ पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा । चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ ३६ ॥ तैः सार्कं द्रढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते । करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ॥ ३७ ॥ तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे । उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ३८ सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यस्सुयोगकृत् । सारस्वतव्यासमनः पर्त्ता

होंगे तब मैं जैगीषव्य नामसे अवतार लूँगा ॥ २७ ॥ और महायोगमें चतुर हो काशीमें गुफाके भीतर बैठ दिव्यदेशमें कुशासन बिछा योगको दृढ़ करूँगा ॥ २८ ॥ हे विधे ! मैं शतक्रतु व्यासकी सहायता करूँगा और संसारभयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा ॥ २९ ॥ उस अवतारमें भी मेरे सारस्वत योगीश मेघवाह और सुवाहन नामक चार पुत्र होंगे ॥३०॥ आठवीं चौयुगीमें मुनिसत्तम वसिष्ठ वेदविभागकर्ता वेदव्यास होंगे ॥३१॥ हे योगवित्तम ! उस समय भी मैं दधिवाहन नाम धारण कर व्यासजीकी सहायता करूँगा ॥ ३२ ॥ उस समय कपिल आसुरि पञ्चशिख और शाल्वलपूर्वक नामक मेरी समान ही मेरे चार योगी पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ हे विधे ! नवमी चतुर्युगीमें मुनिश्रेष्ठ व्यास सारस्वत नामसे प्रकट होंगे ॥३४॥ जब व्यासजी निवृत्तिपथकी वृद्धिके लिये विचार करने लगेंगे उस समय मैं ऋषभनामसे प्रकट हूँगा ॥ ३५ ॥ उस अवतारमें मेरे पराशर गर्ग भार्गव और गिरिश नामक चार योगी शिष्य होंगे ॥ ३६ ॥ हे सन्मुने ! हे प्रजापते ! उनको साथ में लेकर मैं योगमार्गको दृढ़ करूँगा और वेदव्यासकी सहायता करूँगा ३७ हे विधे ! उस जन्ममें मैं दयाकी खान बन बहुतसे दुःखी भक्तोंका संसार से उद्धार करूँगा ॥ ३८ ॥ हे विधे ! वह मेरा ऋषभ नामका अवतार योगमार्गका प्रवर्तक होगा और सारस्वत व्यासके मनको तृप्त करने वाला और

नानोतिकारकः ॥ ३९ ॥ अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः । जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ॥ ४० ॥ प्राप्तेऽस्य षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः । ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ॥ ४१ ॥ पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधिः । उपादिदेश तद्धर्मान्राजयोग्यान्प्रजापते ॥ ४२ ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् । ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ ४३ ॥ तदङ्गं भस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः । स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ॥ ४४ ॥ इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम् । ययौ स्वैरगतस्ताभ्यां पूजितो ऋषभः प्रभुः ॥ ४५ ॥ भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे । राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्तिमालिनीम् ॥ ४६ ॥ इत्थं प्रभाव ऋषभोऽवतारः शंकरस्य मे । सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ॥ ४७ ॥ ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ऋषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारसे रक्षा करने वाला होगा ॥ ३९ ॥ उस अवतारमें मैं विषके दोषसे मरे हुए अतएव पिताके द्वारा छोड़े हुए नृप--बालक भद्रायुको जीवित करूँगा ॥ ४० ॥ फिर सोलहवाँ वर्ष आने पर उस राजपुत्रके घरमें ऋषभ ऋषि जो कि--मेरे अवतार होंगे फिर पहुँचेंगे ॥ ४१ ॥ हे प्रजापते ! वह भद्रायु उन कृपानिधि मुनिकी पूजा करेगा और मुनि भी उसको राजाके अनुरूप उपदेश देंगे ॥ ४२ ॥ फिर वह ऋषभ ऋषि चित्तमें प्रसन्न होकर उसको दिव्य कवच शंख और दमकता हुआ सकल शत्रुओंका नाशक खड्ग देंगे ॥ ४३ ॥ वह दीनवत्सल मुनि कृपापूर्वक राजकुमारके शरीर पर भस्म मल उसको बारह हजार हाथियोंका बल प्रदान करेंगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार भद्रायुको तथा उसकी माताको भली भाँति आश्वासन देकर और उन दोनों के द्वारा सत्कार पाकर प्रभु ऋषभ अपनी इच्छानुसार चल देंगे ॥ ४५ ॥ हे विधे ! तब राजर्षि भद्रायु भी शत्रुदलोंको जीत कीर्तिमालिनी से धर्मानुसार विवाह कर राज्य करेगा ॥ ४६ ॥ मेरा ऋषभ नामक अवतार ऐसे प्रभाव से सम्पन्न होगा, सज्जनोंकी गति और दीनोंका बंधु होगा, इस प्रकार मैंने तुमसे यह नवाँ अवतार कह दिया ४७ यह ऋषभ--चरित्र परम--पावन उदार है यश आयु और स्वर्गको देने वाला है अतः यत्नपूर्वक सुनना चाहिये ४८ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

शिव उवाच। दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामतो मुनिः। हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे ॥ १ ॥ तत्रापि मम पुत्राश्च भृङ्गाद्याः श्रुतिसंमिताः। बलबन्धुर्नरामित्रः केतुश्रृंगस्तपोधनः ॥ २ ॥ एकादशे द्वापरे तु व्यासश्च त्रिवृतो यदा। गंगाद्वारे कलौ नाम्ना तपोऽहं भविता तदा ॥ ३ ॥ लम्बोदरश्च लम्बाक्षः केशलम्बः प्रलम्बकः। तत्रापि पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ ४ ॥ द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजाश्च वेदकृत्। तत्राप्यहं भविष्यामि द्वापरान्ते कलाविह ॥ ५ ॥ हेमकंचुकमासाद्य नाम्ना ह्यत्रिः परिप्लुतः। व्यासस्यैव सहायार्थं निवृत्तिपथरोपणः ॥ ६ ॥ सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः शर्वः सुयोगिनः। तत्रेति पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति महामुने ॥ ७ ॥ त्रयोदशे युगे तस्मिन्धर्मो नारायणः सदा। व्यासस्तदाहं भविता बलिर्नाम महामुनिः ॥ ८ ॥ बालखिल्याश्रमे गंधमादने पर्वतोत्तमे। सुधामा काश्यपश्चैव वशिष्ठो विरजाः शुभाः ॥ ९ ॥ यदा व्यासस्तु रक्षाख्यः पर्याये तु चतुर्दशे। वंशे आङ्गिरसे तत्र भविताहं च गौतमः ॥ १० ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा। अत्रिश्च वशदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्कटः ॥ ११ ॥ व्यासः पञ्चदशे त्रय्यारुणिर्वै द्वापरे यदा। तदाहं

शिवजीने कहा, कि—दशवें द्वापरमें व्यास त्रिधामा नाम वाले मुनि होंगे और हिमाचलके रमणीय शिखर नगोत्तम भृगुतुङ्ग पर रहेंगे ॥ १ ॥ तहाँ भी मेरे श्रुतिसम्मित भृंग बलबन्धु, नरामित्र और तपोधन केतुशृङ्ग नामक पुत्र होंगे ॥ २ ॥ ग्यारहवें द्वापरमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, तब कलियुगमें मैं गंगाद्वार पर तप नामसे अवतार लूँगा ॥३॥ उस अवतारमें भी मेरे लम्बोदर लम्बाक्ष केशलम्ब और प्रलम्बक नामक चार दृढ़व्रत पुत्र होंगे ४ और बारहवीं चतुर्युगीमें द्वापरके अंतमें शततेजा नामक व्यास होंगे और मैं भी कलियुगमें हेमकञ्चुक नगरमें अत्रि नामसे अवतार लूँगा और व्यासजी की सहायता करता हुआ निवृत्तिमार्गको प्रतिष्ठित करूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे महामुने ! उस अवतारमें मेरे सर्वज्ञ समबुद्धि साध्य और शर्व नामक चार योगी पुत्र होंगे ॥ ७ ॥ तेरहवीं चतुर्युगीमें धर्म सदा होता रहेगा उस समय व्यास नारायण होंगे, उस समय मैं बलि नामक महामुनि हूँगा ॥ ८ ॥ और पर्वतोत्तम गंधमादन पर बालखिल्याश्रममें सुधामा काश्यप वसिष्ठ और विरजा नामक मेरे शुभ पुत्र होंगे ॥ ९ ॥ जब चौदहवीं चतुर्युगीमें रक्षः नामक व्यास होंगे, तब मैं अङ्गिरा गोत्रमें गौतम नामसे उत्पन्न हूँगा ॥ १० ॥ उस अवतामें भी मेरे अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्कट नामक पुत्र होंगे ॥११॥ पन्द्रहवीं चतुर्युगीके द्वापरमें जब त्रय्यारुणि व्यास होंगे तब मैं वेदशिरा नाम

भविता वेदशिरा वेदशिरस्तथा ॥ १२ ॥ महावीर्यं तदस्त्रं च वेदशीर्षश्च पर्वतः। हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे ॥१३॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता दृढाः। कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥ १४ ॥ व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवा भविष्यति। तदा योगप्रदानाय गोकर्णो भविताह्यहम् ॥१५॥ तत्रैव च सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम् । तत्रापि योगिनः पुत्रा भविष्यन्त्यम्बु-संमिताः ॥ १६ ॥ काश्यपोऽप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः । तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति शिवालयम् ॥ १७ ॥ परिवर्त्ते सप्तदशे व्यासो देवकृतंजयः। गुहावासीति नाम्नाहं हिमवच्छिखरे शुभे ॥ १८ ॥ महालये महोत्तुङ्गे शिवक्षेत्रं हिमालयम् । उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः ॥ १९ ॥ परिवर्त्तेऽष्टादशे तु यदा व्यास ऋतंजयः । शिखण्डीनामतोऽहं तद्धिमवच्छिखरे शुभे ॥ २० ॥ सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः । शिखण्डिनो वनं चापि यत्र सिद्धनिषेवितम् ॥ २१ ॥ वाचःश्रवा रुचीकश्च स्याधास्यश्च यतीश्वरः। एते पुत्रा भविष्यन्ति तत्रापि च तपोधनाः ॥ २२ ॥ एकोनविंशे व्यासस्तु भरद्वाजो महामुनिः । तदाप्यहं भविष्यामि जटी माली च नामतः ॥ २३ ॥ हिमवच्छिखरे

वाला अवतार धारण करूँगा, उस समय मेरा अस्त्र महावीर्यवान् वेदशिर होगा और हिमाचलके पृष्ठदेशके वेदशीर्ष पर्वत पर सरस्वतीके उत्तर तट पर मेरे कुणि कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक नामक चार पुत्र होंगे ॥१२-१४॥ जब सोलहवें द्वापरयुगमें देव नामक व्यास होंगे, तब मैं योग-प्रदान करनेके लिये गोकर्ण नामसे प्रकट हूँगा ॥ १५ ॥ तहाँ गोकर्ण नामक पवित्र वनमें जलकी समान निर्मल काश्यप उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक मेरे योगी पुत्र होंगे वे भो इसी योगमार्गसे शिवलोकको प्राप्त होंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ सत्रहवीं चतुर्युगीमें देवकृतञ्जय व्यास होंगे, उस समय हिमाचलके बहुत ऊँचे महालय शिखर पर मैं गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा और शिवक्षेत्र हिमालय पर उतथ्य वामदेव महायोग और महाबल नामक (मेरे चार पुत्र होंगे) ॥१८॥ १९॥ अठारहवीं चतुर्युगीमें जब ऋतञ्जय नामक व्यास होंगे, तब मैं शिखण्डी नामसे हिमालयके शुभ शिखर पर अवतार धारण करूँगा ॥ २० ॥ महापुण्यमय सिद्ध क्षेत्रमें शिखण्डी नामक पर्वत है और तहाँ ही सिद्धोंसे सेवित शिखण्डीका वन है ॥२१॥ तहाँ मेरे तपोधन वाचःश्रवा, रुचीक, स्धावास्य और यतीश्वर ये पुत्र होंगे ॥ २२ ॥ उन्नीसवें द्वापरमें भरद्वाज महामुनि व्यास होंगे, तब मैं माली नाम वाला जटाधारी हूँगा ॥ २३ ॥ तहाँ हिमालयके शिखर पर मेरे चार

तत्र पुत्रा मेऽम्बुधिर्संमिताः। हिरण्यनामा कौशल्यो लोकाक्षी प्रधिमिस्तथा॥२४॥ परिवर्त्ते विंशतिमे भविता व्यासगौतमः । तत्राट्टहासनामाहमट्टहासप्रिया नराः ॥ २५ ॥ तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः। देवमनुष्ययक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः ॥ २६ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः । सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान् कबंधः कुशिकन्धरः ॥ २७ ॥ एकविंशे युगे तस्मिन् व्यासो वाचःश्रवा यदा । तदाहं दारुको नाम तस्माद्दारुवनं शुभम् ॥ २८ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः । प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ॥ २९ ॥ द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा । तदाऽहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥ ३० ॥ नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः । द्रक्ष्यंति मां कलौ तस्मिन्भवं चैव हलायुधम् ॥ ३१ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति सुधार्मिकाः । भल्लवी मधु पिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ३२ ॥ परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणविन्दुर्यदा मुनिः । श्वेतो नाम तदाहं वै गिरौ कालंजरे शुभे ॥ ३३ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥३४॥ परिवर्त्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः । शूली नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे

हिरण्यनामा कौशल्य लोकाक्षी और प्रधिमि नामक पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ बीसवीं चतुर्युगीमें गौतम नामक व्यास होंगे, उस समय मैं अट्टहास नाम से अवतार धारण करूँगा, उस समयके मनुष्य अट्टहासप्रिय होंगे ॥ २५ ॥ तहाँ ही हिमाचलकी पीठपर अट्टहास नामक महागिरि है, उस पर देवता मनुष्य यक्षेन्द्र सिद्ध और चारण रहते हैं ॥२६॥ उस अवतारमें भी मेरे सुमन्तु बर्बरि विद्वान्-कबंध और कुशिकन्धर नामक चार योगी पुत्र होंगे ॥ २७ ॥ जब इक्कीसवें युगमें वाचःश्रवा नामक व्यास होंगे, उस समय मैं दारुक नामक अवतार धारण करूँगा, इस कारण उस शुभस्थानका नाम दारुवन होगा ॥२८॥ तहाँ मेरे प्लक्ष, दार्भायणि केतुमान् और गौतम नामक योगी पुत्र होंगे ॥ २९ ॥ बाईसवीं चौयुगीमें जब शुष्मायण व्यास होंगे, तब मैं बनारसमें लांगली भीम नामक महामुनि हूँगा, उस कलियुगमें इन्द्र आदि देवता मुझ हलायुध शिवका दर्शन करेंगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस अवतारमें भी मेरे भल्लवी मधु पिङ्ग श्वेतकेतु धार्मिक पुत्र होंगे ॥ ३२ ॥ तेईसवीं चतुर्युगीमें जब तृणविन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं श्वेत नामसे शुभ कालञ्जर गिरि पर प्रकट हूँगा ॥ ३३ ॥ तहाँ पर भी मेरे उशिक बृहदश्व देवल और कवि नामक तपस्वी पुत्र होंगे ॥ ३४ ॥ चौबीसवीं चौयुगीमें जब विभु यक्ष व्यास होंगे उस युगमें मैं नैमिष क्षेत्रमें शूली नाम वाला महायोगी हूँगा ॥३५॥

तदा ॥ ३५ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः । शालिहोत्रोऽग्नि-वेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥३६॥ पंचविंशे यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति । तदाप्यहं महायोगी दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ ३७ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः । छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भाण्डश्च प्रवाहकः ॥३८॥ व्यासः पराशरो यर्हि षड्विंशे भविताप्यहम् । पुरं भद्रवटं प्राप्य सहिष्णुर्नाम नामतः ३९ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः । उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको श्वाश्वलायनः ॥ ४० ॥ सप्तविंशे यदा व्यासो जातूकर्ण्यो भविष्यति । प्रभासतीर्थमाश्रित्य सोमशर्मा तदाप्यहम् ॥४१॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः । अक्षपादः कुमारश्चोलूको वत्सस्तथैव च ॥ ४२ ॥ अष्टाविंशे द्वापरे तु पराशरसुतो हरिः । यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः ॥ ४३ ॥ तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः । वसुदेवसुतश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥ ४४ ॥ तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया । लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥ ४५ ॥ श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम् । ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया ॥४६॥ दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धं च विष्णुना । भविष्यामि तदा ब्रह्मल्लँकुलो नाम नामतः ॥ ४७ ॥ कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं

उस अवतारमें भी मेरे तपस्वी शिष्य शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु होंगे ॥ ३६ ॥ जब पचीसवीं चतुर्युगीमें शक्ति नाम वाले व्यास होंगे, तब मैं भी महायोगी दण्डी मुण्डीश्वर प्रभु हूँगा ॥ ३७ ॥ उस समय भी मेरे तपस्वी शिष्य छगल कुण्डकर्ण कुम्भाण्ड और प्रवाह होंगे ॥३८॥ जब छब्बीसवें द्वापरमें परासर नामक व्यास होंगे, तब मैं भद्रवट नगरमें सहिष्णु नाम धारण कर प्रकट हूँगा ३९ उस अवतारमें भी मेरे तपस्वी शिष्य उलूक विद्युत, शम्बूक और आश्वलायन होंगे ४० जब सत्ताईसवीं चतुर्युगीमें जातूकर्ण्य हूँगा व्यास होंगे, तब मैं प्रभासतीर्थमें सोमशर्मा हूँगा ४१ उस अवतारमें भी अक्षपाद कुमार उलूक और वत्स मेरे तपस्वी शिष्य होंगे ४२ और अट्ठाईसवें द्वापर में जब हरि पराशरके पुत्र बन व्यास प्रभु द्वैपायन होंगे ॥ ४३ ॥ तब पुरुषसत्तम कृष्ण छठे अंशसे वसुदेवपुत्र वासुदेव होंगे ॥ ४४ ॥ उस समय योगात्मा मैं भी योगमायासे लोकोंको विस्मित करनेके लिये ब्रह्मचारीका शरीर धारण करूँगा ॥ ४५ ॥ और श्मशानसे मरेहुए छोड़े हुए अनामय शरीरको देख ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये योगमायासे उसमें प्रवेश करूँगा ॥ ४६ ॥ उस समयमें तुम्हारे और विष्णुके साथ मेरु पर्वतकी पवित्र और दिव्यगुफामें प्रवेश करूँगा, हे ब्रह्मन् ! उस समय मेरा नाम

परं तदा। भविष्यति सुविख्यातं यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ४८ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः। कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः तौरुष्य एव च ॥४९॥ योगिनो ब्राह्मणा वेदपारगा ऊर्ध्वरेतसः। प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यंति शिवं पुरम् ॥ ५० ॥ वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना। योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः ॥ ५१ ॥ व्यासाश्चैवाष्टविंशत्का द्वापरे द्वापरे विभो। योगेश्वरावताराश्च प्रारंभे च कलौ कलौ ॥५२॥ योगेश्वरावताराणां योगमार्गप्रवर्द्धकाः। महाशैवाश्च चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः ॥ ५३ ॥ एते पाशुपताः शिष्या भस्मोद्धूलितविग्रहाः। रुद्राक्षमालाभरणाः त्रिपुण्ड्रांकितमस्तकाः ॥ ५४ ॥ शिष्या धर्मरताः सर्वे वेदवेदांगपारगाः। लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः ५५ भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः। संख्यया द्वादशाधिकयशतं च गणिता बुधैः ॥ ५६ ॥ इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्। मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशद्युगक्रमात् ॥ ५७ ॥ तत्र श्रुतिसमूहानां विधानं ब्रह्मलक्षणम्। भवि-

---

लकुली होगा ॥ ४७ ॥ यह मेरा सिद्धक्षेत्र कायावतार जब तक भूमि रहेगी तब तक परम—प्रसिद्ध होगा ॥ ४८ ॥ इस अवतारमें भी मेरे कुशिक, गर्ग, मित्र और तौरुष्य नामक तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ४९ ॥ ये वेद पारगामी ऊर्ध्वरेता योगी ब्राह्मण माहेश्वर योगको पा शिवपुरको जावेंगे ॥ ५० ॥ परमात्माने वैवस्वत मन्वन्तरके ये सकल चतुर्युगियोंके सुव्रत योगेश्वरावतार कहे ॥५१॥ हे विभो ! अट्ठाईस व्यास जब जब द्वापर आवेगा तब तब होंगे और योगेश्वरावतार प्रत्येक कलिके आरंभमें होगा ॥ ५२ ॥ और प्रत्येक योगेश्वरावतारोंके योगमार्गको बढ़ाने वाले महाशैव चार चार शिष्य होंगे ॥ ५३ ॥ ये पाशुपत शिष्य शरीर पर भस्म रमावेंगे, रुद्राक्षकी मालाका आभूषण धारण करेंगे और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र लगावेंगे ॥ ५४ ॥ ये सब शिष्य धर्मपरायण, वेदवेदाङ्कके पारगामी, भीतर और बाहरसे लिंगार्चन करनेवाले होंगे ॥ ५५ ॥ ये मुझमें भक्ति रख योगसे मेरा ध्यान करेंगे और जितेन्द्रिय होंगे इनकी संख्या विद्वानोंने एकसौ बारह कही है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार मैंने अवतारोंका लक्षण कहा, मनुसे लेकर ये कृष्ण तकके अट्ठाईस युगोंके अनुसार कहे ॥ ५७ ॥ जब श्रुतियोंका ब्रह्म-(वेद)-लक्षण विधान होगा, तब कल्प में कृष्णद्वैपायन होंगे ॥५८॥ महेश्वर ब्रह्माजीसे इस

ष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा ॥ ५८ ॥ इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः । पुनः संप्रेक्ष्य देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवावतारोपाख्याने एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति द्विचत्वारिंशावताराः ४२ अथ नन्दीश्वरावतारमाह । सनत्कुमार उवाच भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवांशजः शिवम् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१॥ नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ सावधानतया शृणु । यथाहं च शिवं प्राप्तो महादेवांशजो मुने ॥२॥ प्रजाकामः शिलादोऽभूदुक्तः पितृभिरादरात् । तदुद्धर्तुमना भक्त्या समुद्धारमभीप्सुभिः ॥ ३ ॥ अयोऽङ्घ्रिः सुधर्मात्मा शिलादो नाम वीर्यवान् । तस्यासीन्मुनिकैर्वृत्तिः शिवलोके च सोऽगमत् ॥४॥ शक्रमुद्दिश्य स मुनिस्तपस्तेपे सुदुःसहम् । निश्चलात्मा शिलादाख्यो बहुकालं दृढव्रतः ॥ ५ ॥ ततस्तस्य तपसा संतुष्टोऽभूच्छतक्रतुः । जगाम च वरं दातुं सर्वदेवप्रभुस्तदा ६ शिलादमाह सुप्रीत्या शक्रस्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ । तेन त्वं मुनिशार्दूल वरयस्व वरानिति ॥ ७ ॥ ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् । शिलादो मुनि-

---

प्रकार कह उनपर अनुग्रह कर तथा उनकी ओर दृष्टि कर तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ ५६ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

यह बयालीस अवतारोंका वर्णन होचुका, अब नन्दीश्वरावतारका वर्णन करते हैं । सनत्कुमारने कहा, कि-हे प्रभो ! आप महादेवके अंशसे प्रकट हो फिर शिवको किस प्रकार प्राप्त हुए थे, यह मैं सुनना चाहता हूँ, इस सब वृत्तान्तका आप मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ नन्दीश्वरने कहा कि हे मुने ! सर्वज्ञ सनत्कुमार ! महादेवके अंशसे प्राप्त हुआ मैं जिस प्रकार शिवको प्राप्त हुआ हूँ उसको आप सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥ शिलाद मुनि प्रजाकी इच्छा करने लगे, क्योंकि-अपना उद्धार चाहनेवाले पितरोंने उनसे आदरपूर्वक यह बात कही थी अतः भक्तिके कारण वह सन्तान चाहने लगे ॥ ३ ॥ वीर्यवान् धर्मात्मा शिलाद नीचेको दृष्टि कर मुनिके आचरणों से वृत्ति करते थे, वह शिवलोकमें पहुँचे ॥४॥ तहाँ दृढव्रत शिलाद चित्तको निश्चल कर इन्द्रको लक्ष्यमें रख दुःसह तप करने लगे ॥५॥ उनके तप करने पर उनके तपसे इन्द्र प्रसन्न होगए और सब देवताओंके प्रभु उनको वर देनेके लिये पहुँचे ॥ ६ ॥ फिर इन्द्रने शिलाद मुनिसे प्रसन्न होकर कहा, कि-हे निष्पाप ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ अतः हे मुनिशार्दूल ! तुम वर माँगो ॥ ७ ॥ तब मुनिशार्दूल शिलाद आदरपूर्वक स्तुतियोंसे देवेशकी स्तुतिकर हाथ

शादू लस्तमाह सुकृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ शिलाद उवाच । शतक्रतो सुरेशान सन्तुष्टो यदि मे प्रभो । अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रतम् ॥ ९ ॥ शक्र उवाच । पुत्रं दास्यामि पुत्रार्थिन्योनिजं मृत्युसंयुतम् । अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै ॥ १० ॥ न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम् । हरिर्विरिञ्चिश्च भगवान्किमुतान्ये महामुने ॥ ११ ॥ तावपि त्रिपुरारेरंगसम्भवौ मरणान्वितौ । तयोरप्यायुषां मानं कथितं निगमे पृथक् ॥ १२ ॥ तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः । परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मसमं सुतम् ॥१३॥ किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः । सुदुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः ॥ १४ ॥ अहं च विष्णुर्भगवान्द्रुहिणश्च महामुने । अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रं दातुं न शक्नुमः ॥१५॥ आराधय महादेवन्तत्पुत्रविनिकाम्यया । सर्वेश्वरो महाशक्तः स ते पुत्रं प्रदास्यति ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी । देवैर्वृतः सुरेशानस्स्वलोकं समगान्मुने ॥ १७ ॥ गते तस्मिंश्च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः । आराधयन्महादेवं तपसातोषयद्भवम् ।१८। अथ तस्य तमतिशान्ततप-

---

जोड़कर कहने लगे ॥ ८ ॥ शिलादका भाषण-हे देवताओंके स्वामिन् प्रभो इन्द्र ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हों तो मैं अयोनिज सुव्रत मृत्युहीन पुत्रको चाहता हूँ ॥ ९ ॥ शक्रने कहा, कि—मैं तुम्हें योनिज मृत्युसम्पन्न पुत्र दे सकता हूँ, और किसी प्रकारका पुत्र नहीं दे सकता, क्योंकि—मृत्युहीन (प्राणी) नहीं होसकते ॥ १० ॥ अतः मैं तुम्हें मृत्युहीन अयोनिज पुत्र नहीं देसकता, हे महामुने ! दूसरोंकी बात ही क्या ? भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी भी जो शिवके अंगसे उत्पन्न हुए हैं मरणधर्म वाले हैं, शास्त्र में इनकी आयुका भी मान कहा है ॥ ११ ॥ १२ ॥ अतः हे विप्रेन्द्र ! मृत्युहीन अयोनिज पुत्रकी आशा आप छोड़ दें और अपने योग्य पुत्रको आप मांगलें ॥ १३ ॥ किन्तु (एक बात है) यदि देवेश्वर रुद्र महेश आप पर प्रसन्न होजाँय तो मृत्युहीन दुर्लभ अयोनिज पुत्र आपको देदें तो देदें ॥ १४ ॥ हे मुने ! मैं और विष्णु भगवान् तथा ब्रह्मा ये अयोनिज पुत्र देनेकी शक्ति नहीं रखते ॥ १५ ॥ अतः ऐसा पुत्र पानेकी उत्कट उत्कण्ठा हो तो महादेवकी आराधना करो, वह सर्वेश्वर महाशक्तिसम्पन्न हैं, वह आपको ऐसा पुत्र दे सकते हैं ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरने फिर कहा, कि—हे मुने ! दयालु इन्द्र इस प्रकार विप्रेन्द्रसे भाषण कर और उन पर अनुग्रह कर देवताओंके साथ अपने लोकको चले गए ॥ १७ ॥ वरदाता सहस्राक्षके चले जाने पर शिलाद महादेवकी आराधना रूप तप कर उन्हें प्रसन्न करने लगे १८

रस्य द्विजस्य वै। दिव्यस्त्वर्षसहस्रन्तु गतं क्षणमिवाद्भुतम् ॥ १९ ॥ वल्मीकेन वृतांगश्च लक्षकीटगणैर्मुनिः। वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तभुग्भिश्च सर्वतः ॥ २० ॥ निर्मांसरुधिरत्वग्वै विले तस्मिन्नवस्थितः। अस्थिशेषोऽभवत्पश्चाच्छिलादो मुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ तुष्टः प्रभुस्तदा तस्मै दर्शयामास स्वां तनुम्। दिव्यां दिव्यगुणैर्युक्तामलभ्यां बालबुद्धिभिः ॥ २२ ॥ दिव्यवर्षसहस्रेणतप्यमानाय शूलधृक्। सर्वदेवाधिपस्तस्मै वरदोस्मीत्यभाषत ॥ २३ ॥ महासमाधिसंलीनस्स शिलादो महामुनिः। नाशृणोत्तद्गिरं शम्भोर्भक्त्यधीनतरस्य वै २४ यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण त्रिपुरारिणा। तदैव मुनिशार्दूल उत्ससर्ज तपःक्रमम् ॥ २५ ॥ अथोन्मील्य मुनिर्नेत्रे सोमं शम्भुं विलोकयन्। द्रुतं प्रणम्य स मुदा पादयोर्न्यपतन्मुने ॥२६॥ हर्षगद्गदया वाचा नतस्कंधः कृताञ्जलिः। प्रसन्नात्मा शिलादस्स तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ २७ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवस्त्रिलोचनः। वरदोऽस्मीति तम्प्राह शिलादं मुनिपुंगवम् ॥ २८ ॥ तपसानेन किं कार्यं भवतो हि महामते। ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥ २९ ॥ ततः प्रणम्य देवेशं तच्छ्रुत्वा च शिला-

---

इस प्रकार निरन्तर शिवमें तत्पर रहने वाले द्विजको दिव्य सहस्र वर्ष क्षण की समान अद्भुतरूपसे बीत गए ॥१९॥ उनके शरीर पर बमई होगई लाखों कीड़े जो वज्र और सुईकी समान मुखवाले थे और रक्तभोजी थे वे मुनिको चारों ओरसे लिपट गए । २० ॥ मांस त्वचा और रुधिररहित बमईमें स्थित मुनिसत्तम शिलाद हड्डोके ढाँचेमात्र ही रह गए ॥ २१ ॥ तब प्रभु शङ्करने उनको अपना स्वरूप दिखाया वह स्वरूप दिव्य था और दिव्य गुणोंसे युक्त था और शङ्करसे जिनकी बुद्धि दूर भागती है उन्हें उस स्वरूप का दर्शन पाना अलभ्य है ॥ २२ ॥ हजार दिव्य वर्षोंसे तप करते हुए शिलादसे सकल देवताओंके राजा शंकर कहने लगे, कि--"मैं वर देना चाहता हूँ" ॥ २३ ॥ परन्तु महामुनि शिलाद तो महासमाधिमें मग्न थे अतः भक्तिके अधीन रहने वाले शंभुकी वाणी उनको सुनाई न दी ॥ २४ ॥ अतः त्रिपुरारिने अपने हाथसे उनके शरीरको थपथपाया, तब उन मुनिशार्दूलका तपःप्रवाह रुका ॥ २५ ॥ हे मुने ! तब उन मुनिने नेत्रोंको खोलते ही उमासहित शम्भुको देख आनन्दमें भर फुर्तीसे चरणोंमें लोट कर प्रणाम किया २६ शिलाद मुनिकी वाणी हर्षके कारण गद्गद होगई चित्त प्रसन्नतासे भर उठा और वह कंधा झुका हाथ जोड़कर परमेश्वरकी स्तुति करने लगे २७ तब देवदेव भगवान् त्रिलोचन मुनिपुङ्गव शिलाद पर प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—"मैं वर देना चाहता हूँ" ॥ २८ ॥ हे महामते ! अब तुम तप

शनैः। हर्षगद्गदया वाचोवाच सोमविभूषणम् ॥ ३० ॥ शिलाद उवाच। महेश यदि तुष्टोऽसि यदि वा वरदश्च मे। इच्छामि त्वत्समं पुत्रं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥ ३१ नन्दीश्वर उवाच। एवमुक्तस्ततो देवस्त्र्यम्बकस्तेन शंकरः। प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शिलादं मुनिसत्तमम् ॥ ३२ ॥ शिव उवाच। पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन। तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः ॥ ३३ ॥ तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नाम्ना त्वयोनिजः। पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच। एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं घृणी। सोमस्तूर्णं तमादिश्य तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥३५॥ गते तस्मिन्महादेवे स शिलादो महामुनिः। स्वमाश्रममुपागम्य ऋषिभ्योऽकथयत्ततः ॥ ३६ ॥ कियता चैव कालेन तदासौ जनकः स मे। यज्ञांगणं चकर्षाशु यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः ॥ ३७ ॥ ततः क्षणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया। स जातः पूर्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ३८ ॥ अवर्षंस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः खेचरा किन्नराः सिद्धसाध्याः। शिलादात्मजत्वं

करके क्या करोगे ? मैं तुम्हें सब शास्त्रोंके अर्थका पारगामी सर्वज्ञ पुत्र दूँगा २९ शिलाद मुनिने यह सुनकर देवेशको प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें चन्द्रमाका आभूषण धारण करने वाले (चन्द्रशेखर) से कहने लगे ॥ ३० ॥ शिलादका भाषण- हे महेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो मैं आपकी समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्रको चाहता हूँ ॥३१॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—जब शिलादने त्रिनेत्र शंकरसे इस प्रकार कहा, तब वह देव प्रसन्न होकर मुनिसत्तम शिलादसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ शिवने कहा, कि—हे तपोधन विप्र ! पहिले ब्रह्माजीने मुनियोंने और श्रेष्ठ श्रेष्ठ देवताओंने अवतार धारण करनेके लिये तपके द्वारा मेरी आराधना की थी ॥ ३३ ॥ हे मुने ! मैं नन्दी नाम धारण कर तुम्हारा अयोनिज पुत्र बनूँगा मैं जगत्का पिता हूँ, परंतु आप मेरे पिता होंगे ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—दयालु शङ्कर प्रणाम कर सामने खड़े हुए शिलादको इस प्रकार आज्ञा दे और उनकी ओर (कृपादृष्टिसे) देख उमासहित तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ ३५ ॥ जब महादेवजी चले गए, तब महामुनि शिलादने अपने आश्रममें आकर ऋषियों से यह सब वृत्तान्त कहा ॥ ३६ ॥ कुछ समय बीतने पर मेरे याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ पिताने यज्ञके लिये यज्ञके आँगनको (जोता) ठीक किया ॥ ३७ ॥ उसी समय शंभुकी आज्ञासे मैं शिलाद मुनिका पुत्र बन उनके शरीरसे प्रलयकालीन अग्निकी समान प्रभा वाला होकर प्रकट होगया ॥ ३८ ॥ तब पुष्करावर्त

गते मह्यृषीन्द्रास्समन्ताच्च वृष्टिं व्यधुः कौसुमीं ते ॥ ३६ ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा देवपत्न्यश्च सर्वशः । तत्राजग्मुश्च सुप्रीत्या हरिश्चैव शिवोऽम्बिका ॥ ४० ॥ तदोत्सवो महानासीन्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । आदृत्य मां तथा लिंगं तुष्टुवुर्हर्षिताश्च ते ॥ ४१ ॥ सुप्रशस्य शिलादं तं स्तुत्वा च सुस्तवैः शिवौ । सर्वे जग्मुश्च धामानि शिवावप्यखिलेश्वरौ ॥ ४२ ॥ शिलादोऽपि च मां दृष्ट्वा कालसूर्यानलप्रभम् । त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं जटामुकुटधारिणम् ॥ ४३ ॥ त्रिशूलाद्यायुधं दीप्तं सर्वथा रुद्ररूपिणम् । महानन्दभरः प्रीत्या प्रणम्यं प्रणनाम च ॥ ४४ ॥ शिलाद उवाच । त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर । तस्मात्त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम् ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । मया सह पिता हृष्टः सुप्रणम्य महेश्वरम् । उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः ॥ ४६ ॥ यदा गतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने । तदाहं तादृशं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥ ४७ ॥ मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः । विललापातिदुःखार्त्तः स्वजनैश्च समावृतः ॥ ४८ ॥ जातकर्मादिकान्येव सर्वाण्यपि चकार मे । शालंकायनपुत्रो वै

आदि मेघ वर्षा करने लगे, खेचर किन्नर सिद्ध और साध्य गाने लगे और मेरे शिलादपुत्र बनने पर ऋषीन्द्र मुझ पर चारों ओरसे पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा आदिक देवता और देवपत्नियें हरि शिव तथा अम्बिका प्रीतिवश तहाँ आये ॥ ४० ॥ उस समय बड़ी धूम मची अप्सरायें नाचने लगीं, मुझे तथा लिंगको आलिंगन कर वे प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥ शिलाद मुनिकी भी बड़ी प्रशंसा हुई, तदनन्तर शिव और भवानीकी स्तोत्रोंसे स्तुति की गई, फिर सबके ईश्वर उमा और शङ्कर तथा सकल देवता अपने २ लोकोंको चले गए ॥ ४२ ॥ शिलादने भी मुझे काल सूर्य और अग्निकी समान दमकता हुआ, त्रिनेत्रधारी, चतुर्भुज बालक, जटामुकटधारी, त्रिशूल आदि आयुधधारी, दमकता हुआ सर्वथा रुद्ररूप ही पाया अतः वह प्रीतिपूर्वक बड़े आनन्दमें भर मुझ प्रणाम करने योग्यको प्रणाम करने लगे ॥ ४४ ॥ फिर शिलादने कहा, कि—हे सुरेश्वर ! तुमने मुझे आनन्द दिया है अतः तुम्हारा नाम नन्दी होगा, मैं तुम आनन्द देव जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—तदनन्तर पिता, महेश्वरको प्रणाम कर मुझे साथमें ले निर्धनको जैसे खजाना मिल जाय इस प्रकार प्रसन्न होते हुए अपनी कुटियाको लौटे ॥ ४६ ॥ जब मैं महामुनि शिलादकी कुटी पर पहुँचा, तो उस रूपको छोड़ मनुष्य बन गया ॥ ४७ ॥ मेरे लोकपूजित पिता मुझे मनुष्यरूपमें बदला हुआ देख कर बड़े दुःखी हुए

शिलादः पुत्रवत्सलः ॥ ४६ ॥ वेदानध्यापयामास सांगोपांगानशेषतः । शास्त्राण्यन्यान्यपि तथा पञ्चवर्षे पिता च माम् ॥ ५० ॥ सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे मित्रावरुणसंज्ञकौ । मुनी तस्याश्रमं प्राप्तौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः ॥ ५१ ॥ सत्कृतौ मुनिना तेन सूपविष्टौ महामुनी । ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः ॥ ५२ ॥ मित्रावरुणावूचतुः । तात नन्दी त्वल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः । न दृष्टमेव चापश्यं ह्यायुर्वर्षादतः परम् ॥ ५३ ॥ इत्युक्तवतोर्विप्रयोः शिलादः पुत्रवत्सलः । तमालिङ्ग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम् ॥ ५४ ॥ मृतवत्पतितं दृष्ट्वा पितरं च पितामहम् । प्रत्यवोचत्प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५५ ॥ केन त्वं तात दुःखेन वेपमानश्च रोदिषि । दुःखं ते कुत उत्पन्नं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ५६ पितोवाच । तवाल्पमृत्युदुःखेन दुःखितोऽतीव पुत्रक । को मे दुःखं हरतु वै शरणं तं प्रयामि हि ॥ ५७ ॥ पुत्र उवाच । देवो वा दानवो वापि यमः कालोऽथवापि हि सर्वेऽपि यदि ह्येते मामन्येऽपि जनास्तथा ॥ ५८ ॥ अथापि चाल्पमृत्युर्मे न

और विलाप करनेलगे, उस समय उनके बन्धु बान्धवोंने उनको घेर लिया ४८ तदनन्तर शालङ्कायनके पुत्र पुत्रवत्सल शिलादने मेरे जातकर्म आदि सकल संस्कार किये ॥ ४६ ॥ पाँच वर्षमें पिताने अंग प्रत्यङ्ग सहित समस्त वेद और शास्त्र पढ़ा दिये ॥ ५० ॥ जब सातवाँ वर्ष पूरा होरहा था, कि-विभु शिवकी आज्ञासे मित्र और वरुण नाम वाले दो ऋषि मुझे देखनेके लिये पिताजीके आश्रममें पधारे ।५१॥ शिलाद मुनिके सत्कार करने पर वे दोनों महामुनी भली प्रकार बैठ गए, तदनन्तर उन दोनों महात्माओंने मुझे बारम्बार देख कर कहा ॥ ५२ ॥ मित्र और वरुणने कहा, कि--हे तात ! इस सब शास्त्रोंके पारगामी तुम्हारे नन्दीकी आयु अल्प है, हमने बहुत देखा, परन्तु इसकी आयु वर्ष भरसे अधिक नहीं दीखती ॥ ५३ ॥ उन विप्रोंके इस प्रकार कहने पर पुत्रवत्सल शिलाद दुःखित हो मुझसे लिपट कर विकृत स्वरमें रो उठे ॥५४॥ मैं अपने पिता और पितामहको मुरदेको समान गिरा देख शिवजीके चरणोंका स्मरण कर चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगा ।५५। हे तात ! तुम्हें ऐसा क्या दुःख है, जो तुम काँप रहे हो और रो रहे हो, आपको किस कारण इतना दुःख होरहा है, इसका तत्त्व मैं जानना चाहता हूँ ॥५६॥ पिताने कहा, कि-अरे बेटे ! तेरी अल्पमृत्युके दुःखसे मुझे बड़ा दुःख होरहा है, अरे ! ऐसा कौन है, जो मुझे इस दुःखसे बचावे ? मैं उसकी शरण लेलूँ ॥५७॥ पुत्रने कहा, कि-देवता दानव यम काल तथा और सब प्राणी

भविष्यति मा शुचः । सत्यं ब्रवीमि जनकं शपथन्ते करोम्यहम् ॥५९॥ पितोवाच । किं तपः किं परिज्ञानं को योगश्च प्रभुश्च ते । येन त्वं दारुणं दुःखं वञ्चयिष्यसि पुत्र मे ॥ ६० ॥ पुत्र उवाच । न तात तपसा मृत्युं वंचयिष्ये न विद्यया । महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वाहं पितुः पादौ प्रणम्य शिरसा मुने । प्रदक्षिणीकृत्य च तमगच्छं वनमुत्तमम् ॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच । तत्र गत्वा मुनेऽहं वै स्थित्वैकान्तस्थले सुधीः । अतपं तप उग्रं सन्मुनीनामपि दुष्करम् ॥ १ ॥ हृत्पुण्डरीकसुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम् । त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम् ॥ २ ॥ रुद्रजाप्यसमायुक्तः परमध्यानमास्थितः । सरितश्चोत्तरे पुण्ये ह्येकचित्तः समाहितः ॥ ३ ॥ तस्मिञ्जप्येऽथ संप्रीतः स्थितं मां परमेश्वरः । तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्द्धभूषणः ॥ ४ ॥ शिव उवाच । शैलादे वरदोऽहं ते तपसानेन तोषितः । साधु तप्तं त्वया धीमन् ब्रूहि यत्ते मनोगतम् ॥ ५ ॥ स एवमुक्तो देवेन शिरसा पादयोर्नतः । अस्तवं

भी यदि मुझे मारें ॥ ५८ ॥ तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होसकती, आप मेरे पिता हैं, मैं आपकी शपथ खाकर यह सत्य बात कह रहा हूँ, आप दुःखित न हों ॥ ५९ ॥ पिताने कहा कि-हे पुत्र ! तू किस तपसे, किस ज्ञान से, किस योगसे और कौनसे प्रभुके बल पर इस दारुण दुःखको ठेलना चाहता है ॥ ६० ॥ पुत्रने कहा, कि-हे तात ! मैं तप अथवा विद्यासे मृत्युको वञ्चित नहीं करूँगा, किन्तु महादेवके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा ॥६१॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुने ! मैं पितासे इस प्रकार कह उनके चरणोंमें प्रणाम कर और उनकी प्रदक्षिणा कर उत्तम वनमें चला गया ॥ ६२ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

नन्दिकेश्वरने कहा, कि-हे मुने ! वनके एकान्तस्थानमें पहुँच मैं सुन्दर बुद्धिसे मुनियोंके लिये भी दुष्कर उग्र तप करने लगा ॥ १ ॥ मैं हृदयकमल में तीन नेत्र दश भुजा और पाँच मुख वाले शान्त सदाशिवका ध्यान धरने लगा ॥ २ ॥ और नदीके पवित्र उत्तर तट पर चित्तको सावधान कर परमध्यान लगा रुद्रमन्त्रका जप करने लगा ॥३॥ उस जपसे परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न होगए और वह अर्धचन्द्रका आभूषण धारण करने वाले महादेव प्रसन्न हो उमासहित तहाँ पधार कर मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥ शिवने कहा, कि-हे शिलाद पुत्र ! इस तपसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, हे

परमेशानं जराशोकविनाशनम् ॥ ६॥ अथ मां नन्दिनं शम्भुर्भक्त्या परमया युतम् । अश्रुपूर्णेक्षणं सम्यक् पादयोः शिरसा नतम् ॥ ७ ॥ उत्थाप्य परमेशानः पस्पर्श परमार्तिहा । कराभ्यां संमुखाभ्यान्तु संगृह्य वृषभध्वजः ॥ ८॥ निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम् । उवाच मां कृपादृष्ट्या समीक्ष्य जगतांपतिः ॥ ९ ॥ वत्स नन्दिन्महाप्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्तव । मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः १० अमरो जरया त्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा । अव्ययश्चाक्षयश्चेष्टः स पिता स सुहृज्जनः ॥ ११ ॥ मद्बलः पार्श्वगो नित्यं ममेष्टो भविताऽनिशम् । न जरा जन्म मृत्युर्वै मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्त्वा शिरोमालां कुशेशयमयीं निजाम् । समुन्मुच्य बबन्धाशु मम कण्ठे कृपानिधिः ॥ १३ ॥ तयाहं मालया विप्र शुभया कण्ठसक्तया । त्र्यक्षो दशभुजश्चासं द्वितीय इव शङ्करः ॥१४॥ तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः । उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम् ॥ १५ ॥ ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा हारनिर्मलम् । उक्त्वा नन्दी भवेतीह विससर्ज वृषध्वजः ॥ १६ ॥ ततः पञ्चमिता नद्यः प्रावर्तन्त शुभावहाः । सुतोयाश्च

धीमन् ! तुमने बहुत अच्छी तरह तप किया, तुम्हारा जो मनोरथ हो कहो ! ॥ ५ ॥ जब देवने इस प्रकार कहा, तब मैं उनके चरणोंमें गिरपड़ा और बुढ़ापा तथा शोक दूर करने वाले परमेशानकी स्तुति करने लगा ॥६॥ तब आँखोंमें आँसू भर चरणोंमें शिर झुकायेहुए परमभक्त मुझ नन्दीको ॥७॥ घोर दुःखको दूर करनेवाले परमेशान वृषभध्वजने दोनों हाथोंसे मुझे छूकर उठाया ॥८॥ फिर गणाध्यक्षोंकी, हिमाचलकुमारीकी और मेरी ओर कृपादृष्टिसे देख जगत्पति कहनेलगे ९ हे महाबुद्धिमान् वत्स नन्दिन् ! मृत्युका डर तुझे कहाँसे आया, उन दोनों विप्रोंको तो मैंने भेजा था, तू तो मेरी समान है १० अतः अमर है, वृद्धत्वसे रहित है, दुःखरहित है और सदा गणपति है, अव्यय अक्षय, इष्ट, पालक और सुहृज्जन है ११ तू तो मेरा बल है, पार्श्वचर है और सदा मेरा प्रिय रहेगा, तुझे मेरी कृपासे बुढ़ापा और मृत्यु न दबासकेंगे १२ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार कहकर कृपानिधि शंकरने अपनी कमलोंकी शिरोमालाको उतार कर मेरे गलेमें पहिरा दिया ॥ १३ ॥ हे विप्र ! उस कण्ठमें पड़ी हुई शुभ मालासे मैं त्रिनेत्र दशभुजाधारी दूसरा शंकरसा होगया ॥१४॥ तदनन्तर परमेश्वरने हाथ पकड़कर मुझसे कहा, कि-बता ! मैं तुझे कौनसा उत्तम वर दूँ ॥ १५ ॥ तदनन्तर वृषध्वजने जटाओंके हार निर्मल जलको लेकर नन्दी हो जा कहकर छोड़ दिया ॥१६॥ तब तो सुन्दर जल, बड़े वेग, दिव्य रूप और सुन्दर दीखती हुई पाँच नदियें निकल

महावेगा दिव्यरूपा च सुन्दरी ॥ १७ ॥ जटोदका त्रिस्रोताश्च वृषध्वनिरितीव हि । स्वर्णोदका जम्बुनदी पञ्चनद्यः प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ एतत्पञ्चनदं नाम शिवपृष्ठतमं शुभम् । जपेश्वरसमीपे तु पवित्रं परमं मुने ॥ १९ ॥ यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् । पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः ॥ २० ॥ अथ शम्भुरुवाचोमामभिषेक्ष्यामि नन्दिनम् । गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये ॥ २१ ॥ उमोवाच । दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर । महाप्रियतमो नाथ शैलादिस्तनयो मम ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । ततस्स शङ्करः स्वीयान्सस्मार गणपान्वरान् । स्वतन्त्रः परमेशानस्सर्वदो भक्तवत्सलः ॥ २३ ॥ स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः । असङ्ख्याता महामोदाश्शङ्कराकृतयोऽखिलाः ॥ २४ ॥ ते गणेशाशिवं देवीं प्रणम्याहुः शुभं वचः । ते प्रणम्य करौ बद्ध्वा नतस्कंधा महाबलाः ॥ २५ ॥ गणेशा ऊचुः । किमर्थं च स्मृता देव ह्याज्ञापय महाप्रभो । किङ्करान्नः समायातांस्त्रिपुरार्दन कामद ॥२६॥ किं सागराञ्छोषयामो यमं वा सह किंकरैः । हन्मो मृत्युं महामृत्युं विशेषं वृद्धपद्मजम् ॥२७॥ बद्ध्वेन्द्रं सह देवैश्च विष्णुं वा पार्षदैः सह । आनयामः सुसंक्रुद्धान्दैत्यान्वा दानवैः

पड़ीं ॥ १७ ॥ जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बु नदी ये पाँच नदियें कहाती हैं ॥ १८ ॥ हे मुने ! ये पञ्चनदियोंके नाम हैं, शिवपृष्ठकी समान शुभ हैं, इन परमपवित्र नामोंका ईश्वरके समीप जप करना चाहिये ॥ १९ ॥ जो पञ्चनद पर जा स्नानकर, ईश्वरोंके ईश्वर शिवका जप कर पूजन करता है, वह शिवसायुज्यको प्राप्त होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥२०॥ तदनन्तर शंभुने उमासे कहा, कि-मैं नन्दीका गणेन्द्र पदपर अभिषेक करना चाहता हूँ, अथवा हे अव्यये ! तुम और कुछ करना चाहती हो ॥२१॥ उमाने कहा, कि-हे परमेश्वर ! हे देवेश ! हे नाथ ! यह शिलादनन्दन तो मेरा बड़ा प्रिय है, इस नन्दीको आप सब कुछ दे सकते हैं ॥२२॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--तदनन्तर स्वतन्त्र, सर्वदाता, भक्तवत्सल, परमेश्वर शंकरने अपने श्रेष्ठ गणोंका स्मरण किया ॥ २३ ॥ रुद्रके स्मरण करते ही शंकरकी समान आकृति वाले असंख्य गणराज आनन्दमें भर तहाँ आपहुँचे ॥ २४ ॥ वे महाबली गणेश कंधे झुका हाथ जोड़ शिव और उमाको प्रणाम कर शुभ वचन कहने लगे ॥ २५ ॥ गणोंके अध्यक्षोंने कहा कि-हे त्रिपुरार्दन ! हे मनोरथ पूर्ण करने वाले ! हे महाप्रभो ! आपने हमारा किस कारण आवाहन किया है, हम सेवक आपहुँचे हैं, आज्ञा दीजिये ॥ २६ ॥ क्या हम समुद्रोंको सोख लें अथवा किंकरों सहित यमको तथा मृत्युको

सह ॥ २८ ॥ कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया । कस्य चाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गणानां वीरवादिनाम् । उवाच तान्स प्रशंस्य गणेशान्परमेश्वरः ॥ ३० ॥ शिव उवाच । नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो मे सर्वेषामीश्वरेश्वरः । प्रियो गणाग्रणीरस्सर्वैः क्रियतां वचनं मम ॥ ३१ ॥ सर्वे प्रीत्याभिषिञ्चध्वं मद्गणानां गतिस्त्वतिम् । अद्यप्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्ताः शंकरेण गणपास्सर्व एव ते । एवमस्त्विति सम्प्रोच्य सम्भारानाहरँस्ततः ॥३३॥ ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा । मुनयः सर्वतो लोका आजग्मुर्मुदिताननाः ३४ पितामहोऽपि भगवन्नियोगाच्छंकरस्य वै । चकार नंदिनस्सर्वमभिषेकं समाहितः ३५ततो विष्णुस्ततश्शक्रो लोकपालास्तथैव च । ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः३६स्तुनिमत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः। शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव च समाहितः ॥३७॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च । ततो गणाधिपाः

और महामृत्युको मार डालें, अथवा बुड्ढे ब्रह्माको, देवताओं सहित इन्द्रको पार्षदों सहित विष्णुको अथवा दानवों सहित क्रोधमें भरे दैत्योंको बाँधकर घसीट लावें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे देव ! आज हम आपकी आज्ञासे किसको घोर विपत्तिमें डालदें और किसकी सब कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये उसके यहाँ उत्सव मचादें ॥ २९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार वीरोक्ति कहने वाले, गणोंकी शंकरने प्रशंसा की, फिर वह परमेश्वर उनसे कहने लगे ॥ ३० ॥ शिवजीने कहा, कि-यह नन्दीश्वर मेरा प्रिय पुत्र है, अतः तुम मेरे बचनसे इसको गणोंमें अग्रणी और सब गणराजोंका गणराज बनाओ ॥ ३१ ॥ तुम सब प्रीतिपूर्वक मेरे सकल गणोंके अधिपति पद पर इनका अभिषेक करो आजसे यह नन्दीश्वर आप सबके प्रभु होवें ॥३२॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-शंकरके इस प्रकार कहते ही वे सब गण बोल उठे बहुत ठीक ! फिर वे सामग्री एकत्रित करनेमें जुट गए ॥ ३३ ॥ तदनंतर इन्द्रसहित देवता नारायण मुनि और भी सब लोग प्रसन्न मुखमुद्रासे तहाँ पधारने लगे ॥ ३४ ॥ शंकरकी आज्ञासे भगवान् ब्रह्माजीने भी सावधानीसे नन्दीके अभिषेकके सब कर्म करने आरंभ कर दिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर विष्णु, इन्द्र, लोकपाल पितामह तथा ऋषि स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ वे सब स्तुति कर रहे थे, कि-सब जगत्के स्वामी विष्णु शिर पर अञ्जलि रख सावधानतापूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ फिर उन्होंने नम्रतापूर्वक हाथ

सर्व्वे ततो देवास्ततोऽसुराः ३८ एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैस्सब्रह्मकैस्तदा। नंदीश्वरोऽहं विप्रेन्द्र नियोगात्परमेशितुः ॥ ३९ ॥ उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः। महोत्सवयुतः प्रीत्या विष्णुब्रह्मादिभिर्मम ॥ ४० ॥ मरुतां च सुता देवी सुयशा स्तु मनोहरा। पत्नी जा मेऽभवद्दिव्या मनोनयननन्दिनी ॥ ४१ ॥ लब्धं शशिप्रभं छत्रं तथा तत्र विभूषितम् । चामरैश्चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युतम् ४२ सिंहासनं च परमं तथा अधिष्ठितं मया। अलंकृतो महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैस्सुभूषणैः ॥ ४३ ॥ लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा। वृषेन्द्रश्च शितो नागस्सिंह सिंहध्वजस्तथा ॥ ४४ ॥ रथश्च हेमहारश्च चन्द्रबिंबसमः शुभः। अन्या यानि च वस्तूनि लब्धानि हि मया मुने ॥ ४५ ॥ एवं कृतविवाहोऽहं तया पत्न्या महामुने। पादौ ववन्दे शम्भोश्च शिवायाः ब्रह्मणो हरेः ॥ ४६ ॥ तदाभिर्धं त्रिलोकेशस्स तदा किं च सास्वभुः। प्रोवाच परया प्रीत्या स शिवो भक्तवत्सलः ४७ ईश्वर उवाच। शृणु सत्पुत्र तातस्त्वं सुयशेयन्तव प्रिया। ददामि ते वरम्प्रीत्या यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ । सदाहन्तव नन्दीश सन्तुष्टोऽस्मि गणेश्वर।

जोड़कर जय २ शब्द किया, तदनन्तर सब महाराजोंने सकल देवताओंने फिर सकल असुरोंने जय २ शब्द किया ३८ हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार परमेश्वर शम्भु की आज्ञासे ब्रह्माजी सहित देवताओंने मुझ नन्दीश्वरकी स्तुति की और मेरा अभिषेक किया ॥ ३९ ॥ और परमेष्ठीकी आज्ञा पा विष्णु और ब्रह्मा आदिने बड़े समारोहके साथ मेरे विवाहका कार्य भी आरंभ कर दिया ॥४०॥ मरुतोंकी पुत्री सुयशा बड़ी मनोहर थी, वह मन और नयनोंको आनन्द देने वाली मनोहर दिव्य कन्या मेरी पत्नी हुई ॥४१ ॥ उसको तहाँ चन्द्रमाकी समान प्रभा वाला विभूषित छत्र मिला, उसके नीचे हाथोंमें चमर लिये हुए स्त्रियोंके झुण्ड खड़े थे ॥ ४२ ॥ फिर हम दोनों मुकुट आदि सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासन पर बैठे। ४३। हमैं देवीके कण्ठका श्रेष्ठ हार मिला, एक बैल मिला, तीखा नाग मिला, सिंह मिला और सिंहध्वजा मिली ॥ ४४ ॥ हे महामुने! रथ, चन्द्रबिम्बकी समान सुवर्ण का हार और भी बहुतसी वस्तुएँ मुझे मिली ॥ ४५ । हे महामुने! इस प्रकार विवाह होने पर मैंने और मेरी पत्नीने शंभुके शिवाके ब्रह्माजीके और विष्णुके चरणोंमें प्रणाम किया । ४६ ॥ तब भक्तवत्सल त्रिलोकेश प्रभु शिवने परम प्रीतिके साथ मुझसे कहा ॥ ४७ ॥ ईश्वरने कहा, कि हे सत्पुत्र तात! यह सुयशा तुम्हारी प्रिया है मैं तुमको तुम्हारा मनोवाञ्छित वर देता हूँ ॥४८॥ हे गणेश्वर नन्दीश! मैं सदा तुम पर प्रसन्न हूँ और हे वत्स! यह उमा

देव्या च सहितो वत्स शृणु मे परमं वचः ॥ ४६ ॥ सदेष्टश्च विशिष्टश्च परमैश्वर्यसंयुतः । महायोगी महेष्वासः सपिता सपितामहः ॥ ५० ॥ अजेयस्सर्वजेता च सदा पूज्यो महाबलः । अहं यत्र भवांस्तत्र यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥ ५१ ॥ अयं च ते पिता पुत्र परमैश्वर्यसंयुतः । भविष्यति गणाध्यक्षो मम भक्तो महाबलः ॥ ५२ ॥ पितामहोऽपि ते वत्स तथास्तु नियमा इमे । मत्समीपं गमिष्यन्ति मया दत्तवरास्तथा ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । ततो देवी महाभागा नन्दिनं वरदाब्रवीत् । वरं ब्रूहीति मत्पुत्र सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ५४ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः प्रावोचत्प्राञ्जलिस्तदा । भक्तिर्भवतु मे देवी पादयोस्ते सदा वरा ॥ ५५ ॥ श्रुत्वा मम वचो देवी ह्येवमस्त्विति साब्रवीत् । सुयशां ताञ्च सुप्रीत्या नन्दिप्रियतमां शिवा ॥ ५६ ॥ देव्युवाच । वत्से वरं यथेष्टं हि त्रिनेत्रा जन्मवर्जिता । पुत्रपौत्रैस्तु भक्तिर्मे तथा च भर्तुरेव हि ॥५७॥ नन्द्युवाच । तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च सर्वे देवगणाश्च वै । ताभ्याम्वरान्ददुः प्रीत्या सुप्रसन्नाश्शिवाज्ञया ॥५८॥ सान्वयं तां गृहीत्वेशस्ततस्सम्बन्धिबान्धवैः । आरुह्य वृषमीशानो

देवी भी तुम पर प्रसन्न हैं, तुम मेरे श्रेष्ठ वचनको सुनो ॥४९॥ तुम सदा मुझे इष्ट रहोगे परम-ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहोगे, महायोगी और महेष्वास होगे और तुम्हारे पिता पितामहकी यही गति होगी५० तथा तुम अजेय रहोगे सब को जीत सकोगे,सदा पूज्य रहोगे और महाबली होगे मैं जहाँ रहूँगा वहाँ तुम रहोगे, और जहाँ तुम रहोगे तहाँ मैं रहूँगा ।५१। और हे पुत्र ! तुम्हारे यह पिता भी परम-ऐश्वर्य पावेंगे तथा मेरे भक्त महाबली गणाध्यक्ष होंगे ॥५२॥ और हे वत्स ! तुम्हारे पितामहके लिये भी यही नियम लागू होगा, ये सब मुझसे वर पाकर मेरे समीप आवेंगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--तदनन्तर महाभागा देवी पार्वतीने वर देनेकी इच्छासे मुझसे कहा, कि--हे पुत्र ! वर माँग, तेरे मनमें जितने वर माँगनेकी इच्छा हो माँग ॥ ५४ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर मैंने हाथ जोड़कर कहा, कि-हे देवि ! आपके चरणकमलोंमें मेरी सदा भक्ति रहे ।५५॥ मेरे वचनको सुन देवीने कहा, कि--"एवमस्तु" फिर मेरी प्रियतमा सुयशासे शिवा प्रेमपूर्वक कहने लगीं ॥ ५६ ॥ देवीने कहा, कि--हे वत्से ! तुम यथेष्ट वर माँग सकती हो, तुम्हारे नेत्र तीन होंगे और तुम जन्मरहित होगी, पुत्र पौत्रोंसे सम्पन्न होगी तथा तुम्हारी मुझमें और अपने स्वामीमें भक्ति होगी ॥ ५७ ॥ नन्दीने कहा, कि--तदनन्तर ब्रह्माने विष्णुने तथा अन्य सकल देवताओंने शिवकी आज्ञासे हम दोनोंको प्रीतिपूर्वक वर दिये ॥ ५८ ॥ ईश शंकर इस मुझ पर और मेरे कुटुम्ब पर

गतो देव्या निजं गृहम् ॥ ५६ ॥ विष्ण्वादयः सुरास्सर्व्वे प्रशंसन्तो ह्यमी तदा । स्वधामानि ययुः प्रीत्या संस्तुवन्तः शिवं शिवाम् ॥ ६० ॥ इति ते कथितो वत्स स्वावतारो महामुने । सदानन्दकरः पुंसां शिवभक्तिप्रवर्द्धनः ॥ ६१ ॥ य इदन्नन्दिनो जन्म वरदानन्तथा मम । अभिषेकं विवाहं च श्रृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ॥ ६२ ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रद्धावान्भक्तिसंयुतः । इह सर्व्वसुखम्भुक्त्वा परत्र लभते गतिम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति त्रिचत्वारिंशावतारः ॥ ४३ ॥ अथ भैरवावतारमाह । नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्व्वज्ञ श्रृणु त्वं भैरवीं कथाम् । यस्याः श्रवणमात्रेण शैवी भक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥ भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः । मूढास्तं वै न जानन्ति मोहिताश्शिवमायया ॥ २ ॥ सनत्कुमार नो वेत्ति महिमानं महेशितुः । चतुर्भुजोऽपि विष्णुर्वै चतुर्व्वक्त्रोऽपि वै विधिः ॥ ३ ॥ चित्रमत्र न किञ्चिद्वै दुर्ज्ञेया खलु शाम्भवी । तया सम्मोहितास्सर्वे नार्चयन्त्यपि तत्परम् ॥४॥ वेद चेद्यदि वात्मानं

अनुग्रहकर देवीके साथ वृषभ पर चढ़ सम्बंधी और बांधवों सहित अपने घरको पधार गए ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि सब देवताभी हमारी प्रशंसाकर प्रीतिपूर्वक शिव और शिवाकी स्तुति करते हुए अपने अपने धामोंको चल दिये ॥ ६० ॥ हे महामुने ! हे वत्स ! इस प्रकार तुमसे मैंने अपना अवतार कहा, वह शिवभक्ति बढ़ाने वाला और पुरुषोंको सदा प्रसन्न करने वाला है ॥ ६१ ॥ जो इस नन्दीके जन्म, मेरे वरदान, अभिषेक और विवाहको सुनेगा वा सुनावेगा ॥ ६२ ॥ अथवा श्रद्धाभक्तिपूर्वक पढ़ेगा अथवा पढ़ावेगा, वह इस लोकमें सकल सुखोंको भोग. परलोकमें सद्गति पावेगा ॥ ६३ ॥ सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

यह तैंतालीसवें अवतारका वर्णन होचुका, अब भैरवावतारका वर्णन करते हैं। नन्दीश्वरने कहा, कि—हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! अब आप भैरवावतारकी कथाका वर्णन सुनिये, इसके श्रवणमात्रसे ही शिवभक्ति दृढ़ होजाती है ॥१॥ भैरव परमात्मा शङ्करके पूर्ण-रूप हैं, शिवकी मायासे मोहमें पड़े होनेके कारण मूढ़ पुरुष इस बातको नहीं समझ पाते ॥ २ ॥ हे सनत्कुमारजी ! महेशकी महिमाको विष्णु चतुर्भुज होने पर भी नहीं जानते और ब्रह्माजी चार मुख पाने पर भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥ इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि शिवकी माया दुर्ज्ञेय है, उससे मोहमें पड़कर उन परमात्माकी कोई

स एव परमेश्वरः। तदा विदन्ति ते सर्वे स्वेच्छया न हि केऽपि तम् ॥ ५ ॥ सर्वगोऽपि महेशानो नेक्ष्यते मूढबुद्धिभिः। दैववद् बुध्यते लोके योऽतीतो मनसां गिराम् ॥६॥ अत्रेतिहासं वक्ष्येऽहं परमर्षे पुरातनम्। शृणु तं श्रद्धया तात परमं ज्ञानकारणम् ॥ ७ ॥ मेरुशृङ्गेऽद्भुते रम्ये स्थितमब्रह्माणमीश्वरम्। जग्मुर्देवर्षयः सर्वे सुतत्त्वं ज्ञातुमिच्छया ॥ ८ ॥ तत्रागत्य विधिं नत्वा पप्रच्छुस्ते महादरात्। कृताञ्जलिपुटास्सर्वे नतस्कन्धा मुनीश्वराः ॥ ९ ॥ देवर्षय ऊचुः। देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकृल्लोकनायक। तत्त्वतो वद चास्मभ्यं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच। स मायया महेशस्य मोहितः पद्मसम्भवः। अविज्ञाय परम्भावं स्वम्भावं प्रत्युवाच ह ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच। हे सुरा ऋषयः सर्वे सुमत्या शृणुतादरात्। वच्म्यहं परमं तत्त्वमव्ययं वै यथार्थतः ॥१२॥ जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः। अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः ॥१३॥ प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्तकः। संप्रवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित्सुरोत्तमाः ॥१४॥

पूजा नहीं करता ॥ ४ ॥ वह परमात्मा ही यदि अपने स्वरूपको समझाना चाहते हैं, तो ये सब उनके स्वरूपका आभास पाते हैं, अपनी इच्छासे तो कोई उनको समझ ही नहीं सकता ॥ ५ ॥ महेश्वर सर्वव्यापी हैं, तब भी मोहमें पड़ी हुई बुद्धि वाले उनको देख नहीं पाते, जो मन और वाणीके अगोचर है, उसको संसारी (साधारण) देवता समझते हैं ॥ ६ ॥ हे परमर्षे ! इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, हे तात ! उस ज्ञान प्राप्तिके उत्तम कारण इतिहासको आप सुनिये ॥ ७ ॥ सकल देवता और ऋषि सुन्दर तत्त्वको जाननेकी इच्छासे रमणीय और अद्भुत मेरु-शिखर पर विराजमान ईश्वर--ब्रह्माजीके पास पहुँचे ॥ ८ ॥ वहाँ पहुँच कर उन सकल मुनीश्वरोंने कंधे झुका हाथ जोड़ आदरपूर्वक ब्रह्माजीको प्रणाम किया और बूझने लगे ॥ ९ ॥ देवर्षियोंने कहा, कि–हे देवदेव प्रजानाथ ! हे सृष्टिकर्ता लोक-नायक ! हमें आप निश्चय करके बताइये कि–एक अव्यय तत्त्व क्या है ? ॥ १० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–तब महेशकी मायासे मोहमें पड़े ब्रह्मा परभावको न जान संभावका वर्णन करने लगे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–हे सकल देवता और ऋषियों ! आप सद्बुद्धि और आदरपूर्वक सुनिये, मैं आपसे अव्यय परम-तत्त्वका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ १२ ॥ मैं धाता जगद्योनि स्वयंभू अज ईश्वर अनादिभाक् ब्रह्म एक आत्मा निरञ्जन हूँ ॥ १३ ॥ मैं ही जगत्का प्रवर्तक और निवर्तक हूँ, हे श्रेष्ठ देवताओं !

नन्दीश्वर उवाच । तस्यैवं वदतो धातुर्विष्णुस्तत्र स्थितो मुने । प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं संक्रुद्धो मोहितोऽजया ॥१५॥ न चैतदुचितं ब्रह्मन्योगयुक्तस्य मूर्खता । अविज्ञाय परं तत्त्वं वृथैतत्ते निगद्यते ॥ १६ ॥ कर्ताहं सर्वलोकानां परमात्मा परः पुमान् । यज्ञो नारायणो देवो मायाधीशः परा गतिः ॥ १७ ॥ ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन्सृष्टिरेषा विधीयते । जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम् ॥ १८ ॥ एवं त्रिप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ । प्रोचतुर्निगमांश्चात्र प्रमाणे सर्वथा तनौ ॥१९॥ प्रष्टव्यास्ते विशेषेण स्थिता मूर्तिधराश्च ते । पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानित्युक्त्वा चतुरोऽपि तान् ॥ २० ॥ विधिविष्णू ऊचतुः । वेदाः प्रमाणं सर्वत्र प्रतिष्ठा परमा मिताः । यूयं वदत विश्रब्धं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यं पुनस्ते हि ऋगादयः । अवदंस्तत्त्वतः सर्वे परेशं संस्मरप्रभुम् ॥२२॥ यदि मान्या वयन्देवौ सृष्टिस्थितिकरौ विभू । तदा प्रमाणं वदयामो भवत्सन्देहभेदकम् ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । श्रुत्युक्तविधिमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ

मुझसे अधिक संवर्तक और कोई नहीं है ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--हे मुने ! जब ब्रह्माजी इस प्रकार कह रहे थे, तो तहाँ बैठे हुए विष्णु मायासे मोहित हो क्रोधमें भर हँसते हुए कहने लगे ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम तो योगयुक्त हो, ऐसी मूर्खता होना तुममें उचित नहीं है, तुम परतत्त्वको समझे विना यह व्यर्थ बात कह रहे हो ॥ १६ ॥ क्योंकि--मैं सब लोकोंका कर्ता हूँ, परमात्मा हूँ और परम पुरुष हूँ, यज्ञात्मक नारायण देव मायापति और परा गति हूँ ॥१७॥ ब्रह्माजी ! तुम मेरी आज्ञासे ही तो सृष्टि रचते हो ! मैं ईश्वर हूँ, मेरा अनादर करनेसे जगत्का जीवन नहीं रह सकता ॥ १८ ॥ इस प्रकार सात्त्विक राजसिक और तामसिक प्रकृतिके शारीरक प्रमाण वाले वे मोहवश एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे वेदोंको प्रमाण माननेके लिये उद्यत होगए ॥१९॥ और प्रमाण जानने वालोंसे बूझा तो उन्होंने कहा, कि--यहाँ चारों वेद मूर्ति धारण कर स्थित हैं, उनसे बूझिये ॥२०॥ तब ब्रह्मा और विष्णुने कहा, कि--सर्वत्र वेद ही प्रमाण माने जाते हैं आपकी परम प्रतिष्ठा है, अतः आप निश्चित बात बताइये, कि -एक अव्यय परम तत्त्व क्या है ? ॥ २१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--ऋग्वेद आदिने उन दोनोंकी बात सुन परमेश्वर प्रभुका स्मरण कर तत्त्व बात कही ॥ २२ ॥ हे सृष्टि स्थिति करने वाले विभु देवताओं ! यदि हम मान्य हैं तो आपके सन्देहको दूर करने वाला प्रमाण कहते हैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--वेदोक्त विधिको सुन

सुरौ श्रुतीः। युष्मदुक्तं प्रमाणं नौ किन्तत्त्वं सम्यगुच्यताम् ॥ २४ ॥ ऋग्वेद उवाच। यदन्तस्स्थानि भूतानि यतस्सर्वम्प्रवर्त्तते। यदाहुः परमं तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एव हि ॥ २५ ॥ यजुर्वेद उवाच। यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समिज्यते। येन प्रमाणं खलु नस्स एकस्सर्वदृक्छिवः ॥ २६ ॥ सामवेद उवाच। येनेदम्भ्रम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते। यद्भासा भासते विश्वं स एकस्त्र्यम्बकः परः ॥ २७ ॥ अथर्वणवेद उवाच। यं प्रपश्यन्ति देवेशम्भक्त्यनुग्रहिणो जनाः। तमाहुरेकं कैवल्यं शंकरं दुःखतः परम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच। अत्युक्तमिदमाकर्ण्यातीवमायाविमोहितौ। स्मित्वाहतुर्विधिहरी निगमांस्तान्विचेतनौ ॥२९॥ विधिहरी ऊचतुः। हे वेदाः किमिदं यूयम्भाषन्ते गतचेतनाः। किञ्जातं वोऽद्य सर्वं हि नष्टं सुवयुनं परम् ॥ ३० ॥ कथम्प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम्। दिगम्बरः पीतवर्णो शिवया धूलधूसरः ॥ ३१ ॥ विरूपवेषो जटिलो वृषगो व्यालभूषणः। परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्व च तत्संगवर्जितम् ॥ ३२ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य

वे दोनों देवता वेदोंसे कहने लगे आपका कहना हम दोनोंको प्रमाण होगा, बताइये तत्त्व क्या है ॥ २४ ॥ ऋग्वेदने कहा, कि–जिसके भीतर सब भूत स्थित हैं और जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है और जिसको परम तत्त्व कहते हैं, वह एक रुद्र ही (परम तत्त्व) हैं ॥ २५ ॥ यजुर्वेदने कहा, कि–जिस ईशकी यज्ञोंसे और योगसे पूजा की जाती है और जिनसे हमारा प्रमाणता है, वह सर्वद्रष्टा एकमात्र शिव हैं ॥ २६ ॥ सामवेदने कहा, कि–जिन पर यह विश्व भ्रमण कर रहा है और योगी जिनका चिन्तवन करते हैं और जिन की कान्तिसे समस्त विश्व भासित होता है वह परतत्त्व एकमात्र त्र्यम्बक हैं २७ अथर्ववेदने कहा, कि–भक्तिके कारण जिन पर अनुग्रह होता है वे जिन देवेशका दर्शन पाते हैं उन शंकर देवको दुःखसे पर कहते हैं ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–ब्रह्मा और विष्णु तो मायाके बड़े भारी चक्रमें फँसे हुए थे अतः वेदोंकी बात सुन मुस्करा कर वे उनसे कहनेलगे २९ ब्रह्मा और विष्णुने उनसे कहा, कि–हे वेदों! तुम अचेतनतावश यह क्या बात कह रहे हो, यह तुम्हें क्या होगया, तुम्हारा सब श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट तो नहीं होगया है ॥३०॥ यह प्रमथों का स्वामी दिगम्बर और पीतवर्ण है और भस्म रमा सदा पार्वतीसे रमण करता रहता है, यह कैसे (परब्रह्म होसकता है) ॥ ३१ ॥ इसका वेष अटपटा है, जटायें बढ़ रही हैं, बैल पर चढ़ा फिरता है, साँपोंका आभूषण रखता है, यह पर ब्रह्मत्वको कैसे प्राप्त होसकता है, कहाँ संगरहित

प्रणवः सर्वगस्तयोः । अमूर्त्तो मूर्तिमान्प्रीत्या जृम्भमाण उवाच तौ ॥ ३३ ॥ प्रणव उवाच । न हीशो भगवांछक्त्या ह्यात्मनो व्यतिरिक्तया । कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरो हरः ॥ ३४ ॥ असौ हि परमेशानस्स्वयंज्योतिस्सनातनः । आनंदरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येवमुक्तोऽपि तदा विधेर्विष्णोश्च वै तदा । नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया ॥ ३६ ॥ प्रादुरासीत्ततो ज्योतिरुभयोरन्तरे महत् । पूरयन्निजया भासा द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः । विधिक्रतुभ्यां तत्रैव महाद्भुततनुर्मुने ॥ ३८ ॥ प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । आवयोरन्तरे कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम् ॥ ३९ ॥ विधिः सम्भावयेद्यावत्तावत्स त्रिविलोचनः । दृष्टः क्षणेन च महापुरुषो नीललोहितः ॥ ४० ॥ त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः । हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा विहसन्नाह मोहितः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच । नीललोहित जाने त्वां माभैशीश्चन्द्रशेखर । भालस्य मत्तस्त्वं पुरा रुद्रः प्रादुरभूद्भवान् ॥ ४२ ॥ रोदनाद्रुद्रनामापि योजितोऽसि मया पुरा । मामेव शरणं याहि पुत्र

परब्रह्मत्व और कहाँ वह ? ॥ ३२ ॥ सर्वगामी प्रणव उन दोनोंके इस भाषणको सुन अमूर्त होने पर भी मूर्ति धारणकर जँभाई ले प्रीतिपूर्वक कहने लगा ॥ ३३ ॥ प्रणवने कहा, कि–हर तो लीलावश रूप धारण करते हैं, यह ईश भगवान् रुद्र अपनेसे भिन्न किसी और शक्तिसे रमण नहीं करते ॥ ३४ ॥ यह शिव परमेश्वर, स्वयंज्योति और सनातन हैं और यह शिवा उनकी आनन्दरूपा शक्ति है, और कहींसे आई हुई शक्ति नहीं है ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार कहने पर भी, श्रीकण्ठकी माया के कारण ब्रह्मा और विष्णुका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय दोनोंके बीचमें एक महाज्योति प्रकट हुई उसकी कान्तिसे द्युलोक और भूलोकके बीचका भाग दमक उठा ॥ ३७ ॥ हे मुने ! उस समय ब्रह्मा और विष्णुने उस ज्योतिर्मण्डलके बीचमें एक परम अद्भुत शरीर वाली पुरुषकी आकृति देखी ॥ ३८ ॥ उस समय ब्रह्माजीका पाँचवाँ शिर हम दोनोंके बीचमें यह कौन पुरुषाकारको धारण करनेकी धृष्टता करता है, समझकर क्रोधसे तमतमा उठा ॥३९॥ ब्रह्माजी विचार ही रहे थे, कि-उसी क्षण वह महापुरुष त्रिविलोचन नीललोहित, त्रिशूलपाणि भालनेत्र, नाग और चन्द्रमाका आभूषणधारी (शंकरके रूपमें) स्पष्ट हुआ, ब्रह्माजी उनको देख मोहमें पड़ गए अतएव हँसते हुए कहने लगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने कहा, कि-अरे ! मैं जानता हूँ तू नीललोहित शंकर है, अरे ! चन्द्रशेखर !

रक्षां करोमि ते ॥ ४३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वा गर्ववतीं गिरम् । चुकोपातीव च तदा कुर्वन्निव लयम्मुने ॥ ४४ ॥ स कोपतस्समुत्पाद्य पुरुषं भैरवं क्वचित् । प्रज्वलन्तं सुमहसा प्रीत्या च परमेश्वरः ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच । प्राक्च पंकजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव । कालवद्राजसे साक्षात्कालराजस्ततो भवान् ॥ ४६ ॥ विश्वं भर्त्तुं समर्थोऽसि भीषणाद्भैरवः स्मृतः । त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः ॥ ४७ ॥ आमर्दयिष्यति भवान्रुष्टो दुष्टात्मनो यतः । आमर्दक इति ख्यातिं ततस्सर्वत्र यास्यसि ॥ ४८ ॥ यतः पापानि भक्तानां भक्षयिष्यसि तत्क्षणात् । पापभक्षण इत्येव तव नाम भविष्यति ॥ ४९ ॥ या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽपि गरीयसी । आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि ॥ ५० ॥ तत्र ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि । शुभाशुभं च तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति ॥ ५१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एतान्वरान्प्रगृह्याथ तत्क्षणात्कालभैरवः । वामांगुलिनखाग्रेण चकर्त्त च विधेश्शिरः ॥ ५२ ॥ यदङ्ग-

---

तू डर मत ! तू रुद्र तो मेरे भाल-देशसे ही तो पहिले प्रकट हुआ था ॥४२ । रोनेके कारण तेरा रुद्रनाम मैंने निश्चित कर दिया था, अतः अरे बेटे ! तू मेरी शरण ले मैं तेरी रक्षा करूँगा ॥४३॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुने ! ब्रह्माजीके गर्व भरे वचन सुन भगवान् शंकर मानों प्रलय हो कर डालेंगे, इस प्रकार कोपमें भर गए ॥ ४४ ॥ और उन ईश्वरने अपने कोपसे एक भैरव पुरुषको उत्पन्न किया वह तेज और प्रीतिसे दमक रहा था ॥४५॥ ईश्वरने कहा कि-ओ कालभैरव ! पहिले इस ब्रह्माको तुम दण्ड देओ, तुम कालकी समान दमक रहे हो अतः तुम साक्षात् कालराज ही हो ॥४६ । तुम विश्वका भरण करनेमें समर्थ हो और भीषण होनेसे भैरव कहाओगे, तुमसे कालभी डरेगा अतः तुम कालभैरव कहाओगे ॥४७॥ तुम रुष्ट होने पर दुष्टात्माओंको मसल डालोगे अतः तुम सर्वत्र आमर्दक नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ४८ ॥ तुम भक्तोंके पापोंका तत्क्षण भक्षण करजाओगे अतः तुम्हारा नाम पापभक्षण प्रसिद्ध होगा ॥ ४९ ॥ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी सब पुरियोंमें श्रेष्ठ है, हे कालराज ! उस पर सदा तुम्हारा आधिपत्य रहेगा ॥५०॥ तहाँ जो पातकी मनुष्य होंगे, तुम उन सबके शासक होगे और उनके सकल शुभ अशुभ कार्योंको चित्रगुप्त लिखेंगे ॥ ५१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-कालभैरवने इन वरोंको ग्रहण कर तत्क्षण ही बाईं अंगुलिके नखके अग्रभागसे ब्रह्माके शिरको काट डाला ॥ ५२ ॥ जो अंग अपराध करता है उसीको दण्ड देना उचित

मपराधनोति कथं तस्यैव शासनम् । अतो येन कृता निन्दा तच्छिन्नमपञ्चमं शिरः ॥ ५३ ॥ अथ छिन्नं विधिशिरो दृष्ट्वा भीततरो हरिः । शातरुद्रियमन्त्रैश्च भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥ ५४ ॥ भीतो हिरण्यगर्भोऽपि जजाप शतरुद्रियम् । इत्थं तौ गतगर्वौ हि संजातौ तत्क्षणान्मुने ॥ ५५ ॥ परब्रह्म शिवः साक्षात्सच्चिदानंद-लक्षणः । परमात्मा गुणातीत इति ज्ञानमवापतुः ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु मे परमं शुभम् । यावद्गर्वो भवेत्तावज्ज्ञानगुप्तिर्विशेषतः ॥ ५७ ॥ त्यक्त्वाभिमानं पुरुषो जानाति परमेश्वरम् । गर्विणं हन्ति विश्वेशो जातो गर्वापहारकः ॥ ५८ ॥ अथ विष्णुविधी ज्ञात्वा विगर्वौ परमेश्वरः । प्रसन्नोऽभून्महादेवोऽकरोत्साचभयौ प्रभुः ।।५९।। आश्वास्य तौ महादेवः प्रीतः प्रणतवत्सलः । प्राह स्वां मूर्तिमपरां भैरवन्तं कपर्दिनम् ॥ ६० ॥ महादेव उवाच । त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम् । कपालस्यैघसस्त्वापि नीललोहित धारय ॥ ६१ ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शय । चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य तेजोरूपः शिवोऽन्तर्दधे । उत्पाद्य चैकां कन्यान्तु ब्रह्महत्याभिविश्रु-

---

है अतः जिस पाँचवें मुखसे निन्दा की थी उसी मुखको काट डाला । ५३॥ ब्रह्माके शिरको कटा देख, विष्णु सहम गए और शतरुद्रियके मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शङ्करकी स्तुति करने लगे ॥५४॥ और ब्रह्मा भी डर कर शतरुद्रियका जप करने लगे, हे मुने ! इस प्रकार तत्क्षण ही उन दोनोंका गर्व झड़ गया ॥ ५५ ॥ उस समय उनको ज्ञान हुआ, कि-शिव परब्रह्म हैं साक्षात् सच्चिदानन्द लक्षण गुणातीत परमात्मा हैं ॥ ५६ ॥ हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! मेरे परम शुभ वचनको सुनो ! जब तक गर्व रहता है, तब तक ज्ञान गुप्त रहता है ॥ ५७ ॥ अभिमानको त्यागने पर पुरुषको परमेश्वरका ज्ञान होता है, विश्वेश्वर गर्व करने वालेका नाश कर डालते हैं, क्योंकि-वह गर्वापहारी-रूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ ५८ ॥ फिर परमेश्वर महादेव प्रभु ब्रह्मा और विष्णुको गर्वहीन समझकर प्रसन्न हुए और उनको अभयदान दिया ॥५९॥ प्रणतवत्सल महादेवने प्रसन्न होकर उन दोनोंको ढाढ़स दिया, फिर अपनी दूसरी मूर्ति कपर्दी भैरवसे कहने लगे ॥ ६० ॥ महादेवजीने कहा, कि तुम इन विष्णुका और ब्रह्माजीका आदर करते रहना और हे नीललोहित ब्रह्माजीके इस कपालको तुम धारण करो ॥ ६१ । संसारको ब्रह्महत्या दूर करने वाला व्रत दिखाओ, कपाल व्रतका आश्रय लेकर सदा भिक्षा माँगो॥६२॥ इस प्रकार कहकर तेजोरूप शिव उनके सामने ही ब्रह्महत्या नाम वाली

ताम् ॥ ६३ ॥ यावद्वाराणसीन्दिव्य म्पुरीमेषा गमिष्यति । तावत्त्वं भीषणे कालमनुगच्छोग्ररूपिणम् ॥ ६४ ॥ सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम् । वाराणसीं यदा गच्छेत्तन्मुक्ता भव तत्क्षणात् ॥६५॥ नन्दीश्वर उवाच । नियोज्य तामिति तदा ब्रह्महत्यां च तामप्रभुः । महाद्भुतश्च स शिवोऽप्यन्तर्धानमगात्ततः ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ भैरवीमपरां कथाम् । शृणु प्रीत्या महादोषसंहर्त्रीम्भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ १ ॥ तत्सान्निध्यं भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालनः । स देवदेववाक्येन बिभ्रत्कापालिकं व्रतम् ॥ २ ॥ कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् । नात्याक्षीच्चापि तं देवं ब्रह्महत्यापि दारुणा ॥ ३ ॥ प्रतितीर्थं भ्रमन्नपि विमुक्तो ब्रह्महत्यया । अतः कामारिमहिमा सर्वोऽपि ह्यवगम्यताम् ॥४॥ प्रमथैः सेव्यमानोऽपि ह्येकदा विहरन्हरः । कापालिको ययौ स्वैरी नारायणनिकेतनम् ॥ ५ ॥ अथायान्तं महाकालं त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् । महादेवांशसम्भूतं पूर्णाकारं च भैरवम् ॥ ६ ॥ पपात दण्डवद् भूमौ तं दृष्ट्वा गरुडध्वजः । देवाश्च

कन्या उत्पन्न कर कहने लगे ॥ ६३ ॥ हे भीषणे ! जब तक यह कालभैरव वाराणसी-पुरीमें जावें तब तक तुम इन उग्र रूपवाले कालभैरवके पीछे २ घूमो ॥ ६४ ॥ एक वाराणसी पुरीके अतिरिक्त और सर्वत्र तुम्हारा प्रवेश होगा और जब तुम वाराणसीमें पहुँचोगी तभी तुम्हारी मुक्ति होजावेगी ॥ ६५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-ब्रह्महत्या को इस प्रकार नियुक्त कर परम अद्भुत प्रभु शंकर अन्तर्धान होगए ॥६६॥ अष्टम अध्याय समाप्त ८

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! भैरव संबंधी एक दूसरी कथाको प्रीतिपूर्वक सुनो, यह महादोषको दूर करने वाली और भक्ति बढ़ाने वाली है ॥ १ ॥ देवदेवके वाक्यसे कापालिकव्रतको धारण किये हुए कालभैरव भी कालकालन होगए ॥ २ ॥ विश्वात्मा कालभैरव हाथमें कपाल लेकर त्रिलोकीमें घूमने लगे और ब्रह्महत्याने भी उन देवका पीछा नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥ वह प्रत्येक तीर्थमें भ्रमण कर ब्रह्महत्यासे मुक्त हुए थे, अतः सब कामारिकी महिमा समझनी चाहिये ॥ ४ ॥ एक समय वह कपालधारी (भैरव) हर प्रमथोंके साथ स्वेच्छानुसार घूमते हुए नारायणके स्थान पर पहुँचे ॥ ५ ॥ त्रिनेत्रधारी, सर्पके कुण्डलों वाले महादेवके अंशसे प्रकट हुए पूर्णाकार महाकाल भैरवको आते देख, गरुड़ध्वजने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया उस समय चारों ओरसे देवता मुनि और देवनारियोंने भी उनकी

मुनयश्चैव देवनाद्यः समन्ततः ॥ ७ ॥ अथ विष्णुः प्रणम्यैनं प्रयातः कमलापतिः । शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥ ८ ॥ सानन्दोऽथ हरिः प्राह प्रसन्नात्मा महामुने । क्षीरोदमथनोद्भूतां पद्मां पद्मालयां मुदा ॥ ९ ॥ विष्णुरुवाच । प्रिये पश्याब्जनयने धन्यासि सुभगेऽनघे । धन्योऽहं देवि सुश्रोणि यत्पश्यावो जगत्पतिम् ॥१०॥ अयन्धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः । अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसम्मितः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञः सर्वयोगीशस्सर्वभूतैकनायकः । सर्वभूतान्तरात्मायं सर्वेषां सर्वदः सदा ॥ १२ ॥ ये विनिद्रा विनिश्वासाः शान्ता ध्यानपरायणाः । धिया पश्यन्ति हृदये सोऽयं पद्मे समीक्षताम् ॥ १३ ॥ यं विदुर्वेदतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः । अरूपो रूपवान्भूत्वा सोऽयमायाति सर्वगः १४ अहो विचित्रं देवस्य चेष्टितम्परमेष्ठिनः । यस्याख्यां ब्रुवतो नित्यं न देहः सोऽपि देहभृत् ॥१५॥ यं दृष्ट्वा न पुनर्जन्म लभ्यते मानवैर्भुवि । सोयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकश्शशिभूषणः ॥१६॥ पुण्डरीकदलायामे धन्ये मेऽद्य विलोचने। यद्दृश्यते महादेवो ह्याभ्यां लक्ष्मि महेश्वरः ॥ १७ ॥ धिग्धिक्पदन्तु देवानां परं दृष्ट्वा न

अभ्यर्थना की ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब कमलापति विष्णु इनको प्रणाम कर चुके तब शिर पर हाथ जोड़ अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ हे महामुने ! फिर हरिने चित्तमें प्रसन्न होकर क्षीर समुद्रके मथनसे प्रकट हुई पद्मालया पद्मासे आनन्दके साथ कहा ॥ ९ ॥ विष्णुने कहा, कि–हे कमलनयने सुभगे निष्पापे प्रिये ! तुम धन्य हो, हे देवि ! मैं भी धन्य हूँ, हे सुश्रोणि ! क्योंकि--हम दोनों जगत्पतिको देख रहे हैं ॥ १० ॥ यह प्रभु ईश्वर लोकोंके धाता और विधाता हैं, अनादि हैं, शरण हैं, शान्त हैं और छब्बीस तत्त्वोंसे पहिले हैं ॥ ११ ॥ तथा यह सर्वज्ञ हैं, सर्वयोगीश हैं, सब भूतोंके अनन्य प्रभु हैं, सब भूतोंकी अन्तरात्मा हैं और सबको सदा सब कुछ देने वाले हैं ॥ १२ ॥ जो निद्रा और श्वासको जीतते हैं तथा शान्त और ध्यानपरायण रहते हैं वे बुद्धिसे जिनका दर्शन पाते हैं उनका अब हृदयकमलमें दर्शन करो ॥ १३ ॥ योगी चित्तको वशमें रखने पर जिनका तत्त्व समझते हैं, वही सर्वव्यापक रूपरहित रूपवान् होकर आरहे हैं ।१४। अहो ! परमेष्ठी देवकी चेष्टा विचित्र है जिनकी कथा कहनेसे देहप्राप्ति नहीं होती वही देहधारी होकर आरहे हैं ॥१५॥ जिनका दर्शन पाने पर मनुष्यों को फिर पृथ्वी पर जन्म लेना नहीं पड़ता, वही यह शशिभूषण भगवान् त्र्यम्बक आरहे हैं ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मि ! मेरे ये कमलपत्रकी समान विशाल नेत्र आज धन्य होगए, क्योंकि–इनसे महादेव महेश्वरका दर्शन होरहा है १७

शंकरम् । लभ्यते यत्र निर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तु यत् ॥ १८ ॥ देवत्वादशुभं किञ्चि-
द्देवलोके न विद्यते । दृष्ट्वापि सर्वे देवेशं यन्मुक्तिन्न लभामहे ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा
हृषीकेशस्संप्रहृष्टतनूरुहः । प्रणिपत्य महादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ २० ॥ विष्णु-
रुवाच । किमिदन्देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो । क्रियते जगतां धात्रा सर्वपाप-
हराव्यय ॥ २१ ॥ कोऽयं क्रीडेयन्तव देवेश त्रिलोचन महामते । किं कारणं विरूपाक्ष
चेष्टितन्ते स्मरार्दन ॥ २२ ॥ किमर्थं भगवञ्छम्भो भिक्षाश्चरसि शक्तिप । संशयो
मे जगन्नाथ तत्त्रैलोक्यराज्यद ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्तस्ततः शम्भु-
र्विष्णुना भैरवो हरः । प्रत्युवाचाद्भुतोतिस्म विष्णुं हि विहसन्प्रभुः ॥ २४ ॥ भैरव
उवाच । ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्नमङ्गुल्यग्रनखेन ह । तदघप्रतिहन्तुं हि चराम्ये-
तद्व्रतं शुभम् ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्तो महेशेन भैरवेण रमापतिः ।
स्मृत्वा किञ्चिन्नतशिराः पुनरेवमजिज्ञपत् ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच । यथेच्छसि
तथा क्रीड सर्वविघ्नापनोदक । मायया मां महादेव नाच्छादयितुमर्हसि ॥ २७ ॥

देवताओंके पदको धिक्कार है जिसमें शंकरको देखे बिना सकल दुःखोंका अन्त करने वाला निर्वाण पद मिल जाता है ॥१८॥ इस देवलोकमें देवत्व से अधिक और कुछ अशुभ नहीं है, क्योंकि—हम सब देवेशको देख कर भी मुक्त नहीं होरहे हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहते २ हर्षके कारण हृषीकेशके रोंगटे खड़े होगए और वह वृषभध्वज महादेवको प्रणाम कर कहने लगे २० विष्णुने कहा कि—हे सकल पापोंको हरने वाले अव्यय प्रभो ! आप तो देव-देव सर्वज्ञ और जगत्के धाता हैं तो फिर यह आप क्या कर रहे हैं ।२१। हे महामते त्रिलोचन देवेश ! आप यह खेल कर रहे हैं, हे स्मरार्दन ! हे विरूपाक्ष ! आपकी इस चेष्टाका क्या कारण है ? ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! हे शम्भो ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिलोकी तकका राज्य दे डालने वाले ! हे शक्ति-पते ! आप भीख क्यों माँग रहे हैं, इससे मैं बड़े सन्देहमें पड़ गया हूँ २३ नन्दीश्वरने कहा, कि—जब विष्णुने भैरव हर शम्भुसे इस प्रकार कहा, तब अद्भुतरीतिसे (धर्मकी) रक्षा करने वाले वह प्रभु हँस कर विष्णुको प्रत्युत्तर देने लगे ॥ २४ ॥ भैरवका भाषण—मैंने अँगुलिके नखसे ब्रह्माजीका शिर काट डाला था, उस पापको दूर करनेके लिये मैं यह शुभ व्रत (प्राय-श्चित्त) कर रहा हूँ ॥ २५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—जब महेश भैरवने इस प्रकार कहा, तब रमापति विष्णु शिर झुका कुछ स्मरण कर फिर निवेदन करने लगे ॥ २६ ॥ विष्णुने कहा, कि—हे सकल विघ्नोंको दूर करने वाले !

नाभीकमलकोशात्तु कोटिशः कमलासनाः। कल्पे कल्पे पुरा ह्यासन्सत्यं योगबला-द्विभो ।२८। त्यज मायामिमान्देव दुस्तरामकृतात्मभिः। ब्रह्मादयो महादेव मायया तव मोहिताः॥ २६ ॥ यथावदनुगच्छामि चेष्टितन्ते शिवापते। तवैवानुग्रहाच्छम्भो सर्वेश्वर सतां गते॥ ३०॥ संहारकाले संप्राप्ते स देवान्निखिलान्मुनीन्। लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदा हर॥ ३१॥ तदा कृते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम्। पारतन्त्र्यं न ते शम्भो स्वैरं क्रीडत्यतो भवान्॥ ३२॥ अर्थीव ब्रह्मणो ह्यस्थ्नां स्त्रक्कण्ठे तव भासते। तथाप्यनुगता शम्भो ब्रह्महत्या तवानघ॥ ३३॥ कृत्वापि सुमहत्पापं यस्त्वां स्मरति मानवः। आधारं जगतामीश तस्य पापं विलीयते॥ ३४॥ यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः तथैव तव यो भक्तः पापं तस्य व्रजेत् क्षयम्॥ ३५॥ यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाम्बुजद्वयम्। ब्रह्महत्याकृतमपि पापं तस्य व्रजेत् क्षयम्॥ ३६॥ तव नामानुरक्ता वाग्यस्य पुंसो जगत्पते। अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुबाधते॥ ३७॥ परमा-

---

आपकी जैसी इच्छा हो वैसी क्रीड़ा करिये! परन्तु हे महादेव! आपकी माया मुझे मोहमें न डाल सके॥ २७॥ हे विभो! प्रत्येक कल्पमें योगबलसे नाभिकमलसे करोड़ों ब्रह्मा उत्पन्न होचुके हैं॥ २८॥ हे देव! साधारण प्राणियोंकी समझमें न आने वाली इस मायाको आप छोड़ दीजिये, हे महादेव! आपकी इस मायासे ब्रह्मा आदि भी मोहमें पड़ जाते हैं॥ २६॥ हे सर्वेश्वर! हे सज्जनोंकी गति! हे शिवापते! आपके अनुग्रहसे ही मैं इस मायाके यथार्थरूपको जानता हूँ॥ ३०॥ हे महादेव! संहारकाल आने पर जब आप समस्त देवता और मुनियोंका तथा वर्णाश्रमधर्मका पालन करने वाले मनुष्योंका संहार करते हैं, उस समय क्या ब्रह्महत्या आपको नहीं लगती! हे प्रभो! आप परतन्त्र नहीं हैं, अतः हे शम्भो! आप इच्छानुसार विहार करते हैं॥ ३१॥ ३२॥ हे शम्भो! आपके कण्ठमें ब्रह्माकी हड्डियोंका हार अर्थीको समान भास रहा है, तो भी हे निष्पाप! ब्रह्महत्या आपके पीछे लगी हुई है!॥ ३३॥ हे ईश! जो मनुष्य घोर पाप करके भी जगत्के आधार आपका स्मरण करता है उसका पाप क्षीण होजाता है॥ ३४॥ जैसे सूर्यके पास अंधकार नहीं ठहर सकता इसीप्रकार जो आपका भक्त है उसका पाप विलीन होजाता है ३५ जो पुण्यात्मा आपके दोनों चरणकमलोंका ध्यान करता है, उसका ब्रह्महत्याका पाप भी क्षीण होजाता है॥ ३६॥ हे जगत्पते! जिस पुरुषकी

त्मन्परन्धाम स्वेच्छाभिधृतविग्रह । कुतूहलं तवेशेदं कृपणाधीनतेश्वर ॥ ३८ ॥ अद्य धन्योऽस्मि देवेश यन्न पश्यंति योगिनः । पश्यामि तं जगन्मूर्त्तिं परमेश्वरमव्ययम् ॥३९॥ अद्य मे परमो लाभस्त्वद्य मे मगलं परम् । तं दृष्ट्वामृततृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गकम् ॥ ४० ॥ इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मया तया । मनोरथवती नाम भिक्षा पात्रे समर्पिता ॥ ४१ ॥ भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा । अन्यत्रापि महादेवो भैरवाश्रात्तविग्रहः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वानुयायिनीं तान्तु समाहूय जनार्दनः । संप्रार्थयद् ब्रह्महत्यां विमुंच त्वं त्रिशूलिनम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्योवाच । अनेनापि मिषेणाहं संसेव्यामुं वृषध्वजम् । आत्मानम्पावयिष्यामि त्वपुनर्भवदर्शनम् ॥४४॥ नन्दीश्वर उवाच । सा तत्याज न तत्पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा । तमूचेऽथ हरिं शंभुः स्मेरास्यो भैरवो वचः ॥ ४५ ॥ भैरव उवाच । त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहु मानद । स्वभावोऽयं हि साधूनां यत्त्वं वदसि मापते ४६ वरं वृणीष्व गोविंद वरदोऽस्मि तवानघ । अग्रणीर्मम भक्तानां त्वं हरे निर्विकार-

---

वाणी आपके नाममें लगी रहती है, उसको पर्वतके शिखरके समान भी पाप बाधा नहीं देता ॥ ३७ ॥ हे परमात्मन् ! हे परधाम ! हे अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करने वाले आपको यह भक्ताधीनता भी एक कुतूहल है ३८ आज मैं धन्य हूँ, क्योंकि–हे देवेश ! योगी भी जिनका दर्शन नहीं पाते, उन परमेश्वर अव्यय जगन्मूर्तिको मैं देख रहा हूँ ॥ ३९ ॥ आज मुझे परम लाभ होरहा है, आज मेरा बड़ा मंगल होरहा है, क्योंकि--आपरूपी अमृतसे तृप्त हुएको स्वर्ग और मोक्ष भी तिनकेकी समान है ॥४०॥ गोविन्द इस प्रकार कह रहे थे, कि--पद्माने मनोरथवती नाम वाली विमला भिक्षा पात्रमें डाल दी ॥४१॥ तब भैरवशरीरधारी महादेव परमानन्दमें भर अन्यत्र भिक्षा माँगनेके लिये चल पड़े ॥ ४२ ॥ उस समय ब्रह्महत्याको उनका पीछा करते देख जनार्दनने ब्रह्महत्याको बुला कर कहा कि–तू त्रिशूलधारीका पिण्ड छोड़ दे ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्याने कहा, कि–इस बहानेसे मैं जिनका दर्शन करनेसे फिर जन्म नहीं मिलता ऐसे इन वृषभध्वजकी सेवा कर अपनेको पवित्र कर रही हूँ ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–जब मुरारीके कहने पर भी ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोड़ा तब भैरव--शंभु मुस्कुरा कर हरिसे कहने लगे ॥ ४५ ॥ भैरवने कहा, कि–हे मानद ! तुम्हारे वचनामृतका पान कर मैं तृप्त होगया, हे रमापते ! आप साधुओंके स्वभावके अनुरूप ही भाषण कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ हे गोविन्द ! तुम वर माँगो ! हे निष्पाप ! मैं

वान् ॥ ४७ ॥ नो माद्यन्ति तथा भैक्ष्यैर्भिक्षवोऽप्यतिसंस्कृतैः । यथा मानसुधापानैर्नु भिक्षाटनज्वराः ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य वचः शंभोर्भैरवस्य परात्मनः । सुप्रसन्नतरो भूत्वा समवोचन्महेश्वरम् ॥४९ विष्णुरुवाच । एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम् । पश्यामि त्वान्देवदेवं मनोवाणीपथातिगम् ५० अदभ्रेयं सुधादृष्टिरनया मे महोत्सवः । अयत्ननिधिलाभोऽयं दीक्षणं हर ते सताम् ॥ ५१ ॥ अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदंघ्रियुगलेन वै । एष एव वरः शंभो नान्यं कञ्चिद् वृणे वरम् ॥५२॥ श्री भैरव उवाच । एवम्भवतु ते तात यत्त्वयोक्तं महामते । सर्वेषामपि देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । अनुगृह्येति दैत्यारिं कैद्राद्रिभुवनेचरम् । भेजे विमुक्तनगरीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम् ॥ ५४ ॥ क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ । हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्या पातालं चाविशत्तदा ॥ ५५ ॥ कपालं ब्रह्मणः सद्यो भैरवस्य कराम्बुजात् । पपात भुवि तत्तीर्थमभूत्कापालमोचनम् ॥५६॥ कपालं ब्रह्मणो रुद्रस्सर्वेषामेव पश्यताम् ।

तुम्हें वर देना चाहता हूँ, हे विकाररहित हरे ! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रणी रहोगे ॥ ४७ ॥ भिक्षाटनरूपी ज्वर जिनको चढ़ा हुआ है वह भिक्षु मान-सुधाका पान कर जैसी तृप्ति पाते हैं, तैसी तृप्ति मसालेदार भिक्षासे भी नहीं मिलती ॥४८॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--परमात्मा शंभुके अवतार भैरवके इन वचनोंको सुनकर विष्णु परम--प्रसन्न हो कहने लगे ॥ ४९ ॥ विष्णुने कहा, कि--मुझे तो यही श्रेष्ठ वर मिल गया, जो कि--हे देवदेव ! मैं मन और वाणीके अगोचर देवताओंके स्वामी आपका दर्शन पारहा हूँ ॥५०॥ आपकी जो अमृतमयी पूर्ण दृष्टि पड़ रही है, इसीसे मेरे यहाँ महोत्सव हो रहा है, हे हरे ! सज्जनोंको तो आपका दर्शन विना यत्नके खजाना मिल जाना है ।।५१॥ हे देव ! आपके चरणकमलोंसे मेरा वियोग न हो, हे शंभो ! यही मेरा वर है, मैं और कुछ वर माँगना नहीं चाहता ॥ ५२ ॥ श्रीभैरवका भाषण--हे महामते तात ! जैसा आप कहते हैं, ऐसा ही हो ! तुम सब देवताओंको वरदान देने वाले होगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--सुमेरुपर्वत पर विचरण करने वाले दैत्यारि (विष्णु) को इस प्रकार अनुगृहीत कर भैरव विमुक्तनगरी वाराणसी पुरीकी ओर चल दिये ॥ ५४ ॥ भीषण आकार-वाले भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करते ही ब्रह्महत्या हाहाकार कर पातालमें धँस गई ॥ ५५ ॥ और तत्क्षण हो भैरवके करकमलोंसे ब्रह्माका कपाल छूटकर, पृथ्वी पर गिर पड़ा अतः वह तीर्थ कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध

हस्तात्पतन्तमालोक्य ननर्त परया मुदा ॥५७॥ विधेः कपालं नाम्ना चैतत्करं अत्यन्त-दुस्सहम्। परस्य भ्रमतः क्वापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत् ॥५८॥ शूलिनो ब्रह्मणो हत्या नापैति स च या क्वचित्। सा काश्यां क्षणतो नष्टा तस्मात्सेव्या हि काशिका ॥५९॥ कपालमोचनं काश्यां यः स्मरेत्तीर्थमुत्तमम्। इहान्यत्रापि यत्पापं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥६०॥ आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः। तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥६१॥ कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः। तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम् ॥६२॥ कृष्णाष्टम्यान्तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः। आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सताम्प्रियः ॥ ६३ ॥ मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ। उपोष्य जागरं कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते ६४ अन्यत्रापि नरो भक्त्या तद्व्रतं यः करिष्यति। स जागरं महापापैर्मुक्तो यास्यति सद्गतिम् ॥ ६५ ॥ अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम्। तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात् ॥ ६६ ॥ कालभैरवभक्तानां पातकानि करोति यः। स मूढो दुःखितो भूत्वा पुनर्दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ विश्वेश्वरेऽपि ये भक्ता नो भक्ताः

हुआ ॥ ५६ ॥ अपने हाथसे ब्रह्माके कपालको गिरता देख रुद्र सबके सामने ही परमानन्दसे नाचने लगे ॥ ५७ । ब्रह्माजीका कपाल जो अत्यन्त दुःसह परमेश्वरके हाथसे नहीं छूटता था वह काशीमें क्षणभरमें ही गिर पड़ा ५८ रुद्रकी ब्रह्महत्या जो कहीं नहीं छूटती थी वह काशीमें आते ही क्षण भरमें ही नष्ट होगई, अतः काशीका सेवन करना चाहिये ॥ ५९ ॥ जो काशीके उत्तम तीर्थ कपालमोचनका स्मरण करता है उसका इस लोकका वा परलोकका जो कुछ पाप होता है वह तत्क्षण नष्ट होजाता है ॥ ६० ॥ इस तीर्थप्रवरमें आ विधानके अनुसार स्नान कर पितर और देवताओंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छूट जाता है ॥ ६१ ॥ भैरव कपालमोचन तीर्थको प्रस्तुत करके भक्तोंके पापका भक्षण करते हुए वहाँ ही विराजमान होगए । ६२ ॥ सज्जनोंके प्रिय भैरवात्मा शिव परमेश्वर लीला करनेके लिये मार्गशीर्षमास की कृष्ण पक्षकी अष्टमीके दिन आविर्भूत हुए थे ॥ ६३ ॥ जो मार्गशीर्षमास की कृष्णा अष्टमीके दिन कालभैरवके समीप उपवास करता हुआ जागरण करता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ६४ ॥ दूसरे स्थान पर भी जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको कर जागरण करता है, वह महापापोंसे बचता हुआ सद्गति पाता है ॥ ६५ ॥ काशीके लाखों जन्मोंके पाप काल-भैरवका दर्शन करनेसे लुप्त होजाते हैं । ६६ ॥ जो कालभैरवके भक्तोंका अपराध करता है वह मूढ़ दुःख पाकर दुर्गति भोगता है ॥ ६७ ॥ जो काशी

कालभैरवे। ते लभन्ते महादुःखं काश्यां चैव विशेषतः॥ ६८ ॥ वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः। तस्य पापानि वर्द्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६९॥ कालराजं न यः काश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम्। भजेत्तस्य क्षयं पुण्यं कृष्णपक्षे यथा शशी ॥ ७० ॥ श्रुत्वाख्यानमिदं पुण्यं ब्रह्महत्यापनोदनम्। भैरवोत्पत्तिसंज्ञं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७१ ॥ बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्तोऽपि विपदम्पराम्। प्रादुर्भावं भैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात् ॥ ७२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नन्दीश्वर उवाच। विध्वंसी दक्षयज्ञस्य वीरभद्राह्वयः प्रभो। अवतारश्च विज्ञेयः शिवस्य परमात्मनः॥ १ ॥ सतीचरित्रे कथितं चरितं तस्य कृत्स्नशः। श्रुतं त्वयापि बहुधा नातः प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥ २ ॥ अतः परं मुनिश्रेष्ठ भवत्स्नेहाद् ब्रवीमि तत्। शार्दूलाख्यावतारं च शङ्करस्य प्रभोः शृणु ॥ ३ ॥ सदाशिवेन देवानां हितार्थं रूपमद्भुतम्। धारितं च धृतं दिव्यं ज्वलज्ज्वालासमप्रभम् ॥ ४ ॥ शिवावतारा असंख्याताः सद्भक्तहितकारकाः। सङ्ख्या न शक्यते कर्तुं तेषां च

में रह विश्वेश्वरकी भक्ति करते हैं और कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, वे विशेषरूपसे महादुःख पाते हैं॥ ६८ ॥ जो पुरुष काशीमें रहकर कालभैरवका भजन नहीं करता उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान बढ़ते हैं।६९। जो भौमवारकी भूताष्टमीके दिन काशीमें कालराजका भजन नहीं करता है उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी समान क्षीण होजाता है॥ ७० ॥ इस ब्रह्महत्याको दूर करने वाले भैरवकी उत्पत्तिसे भरे पवित्र आख्यानको सुन प्राणी सकल पापोंसे मुक्त होजाता है॥ ७१ ॥ जेलखानेमें पड़ा हुआ वा घोर कष्टमें फँसा हुआ भैरवकी उत्पत्तिको सुन संकटसे छूट जाता है।॥७२॥ नवम अध्याय समाप्त॥ ९ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे प्रभो! दक्षके यज्ञको नष्ट करने वाला वीरभद्र नामका एक परमात्मा शिवका अवतार हुआ है ऐसा समझना चाहिये ॥१॥ सतीचरित्रमें उनका पूर्ण चरित्र कहा है और तुमने भी अनेक वार उसको सुना है, अतः उसको यहाँ विस्तारपूर्वक नहीं कहा ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आपके स्नेहसे मैं अब इससे अगले प्रभु शङ्करके शार्दूलावतारका वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥ सदाशिवने देवताओंका हित करनेके लिये धधकती हुई अग्निकी समान दमकता हुआ सिंहका अद्भुतरूप धारण किया था ॥ ४॥ हे मुनिसत्तमो! सद्भक्तोंका हित करनेके लिये शिवके असंख्य अवतार हुए

मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥ आकाशस्य च ताराणां रेणुकानां क्षितेस्तथा। आसाराणां च वृद्धेन बहुकल्पैः कदापि हि ॥६॥ सङ्ख्या विशक्यते कर्तुं सुप्राज्ञैर्बहुजन्मभिः। शिवावताराणां नैव सत्यं जानीहि मद्वचः ॥ ७ ॥ तथापि च यथाबुद्ध्या कथयामि यथाश्रुतम्। चरित्रं शारभं दिव्यं परमैश्वर्यसूचकम् ॥८॥ जयश्च विजयश्चैव भवद्भिः शापितौ यदा। तदा दितिसुतौ द्वौ तावभूतां कश्यपान्मुने ॥ ९ ॥ हिरण्यकशिपुश्चाद्यो हिरण्याक्षोऽनुजो बली। देवर्षिपार्षदौ जातौ तौ द्वावपि दितेस्सुतौ ॥ १० ॥ पृथ्व्युद्धारे विधात्रा वै प्रार्थितो हि पुरा प्रभुः। हिरण्याक्षं जघानासौ विष्णुर्वाराहरूपधृक् ॥ ११ ॥ तं श्रुत्वा भ्रातरं वीरं निहतं प्राणसन्निभम्। चुकोप हरयेऽतीव हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १२ ॥ वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप सः। न कश्चिन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविति तुष्टतः ॥ १३ ॥ शोणिताख्यपुरं गत्वा देवानाहूय सर्वतः। त्रिलोकीं स्ववशे कृत्वा चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ १४ ॥ देवर्षिकदनं चक्रे सर्वधर्मविलोपकः। द्विजपीडाकरः पापी हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १५ ॥ प्रह्लादेन स्वपुत्रेण हरिभक्तेन दैत्यराट्। यदा विद्वेषमकरोद्धरिवैरी विशेषतः ॥ १६ ॥

हैं, उनकी गिनती नहीं की जासकती ॥ ५ ॥ आकाशके तारोंकी, पृथ्वीके कणोंको, वर्षाकी बूँदोंकी चाहें वृद्ध पुरुष बहुतसे कल्पोंमें गिनती करलें ।६। परन्तु शिवके अवतारोंकी गिनती बुद्धिमान् पुरुष बहुतसे जन्मोंमें भी नहीं कर सकते, मेरे इस वचनको आप सत्य समझना ॥७॥ तब भी यथाबुद्धि यथाश्रुत परम ऐश्वर्यकी सूचना देने वाले दिव्य शार्दूलावतारका वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥ हे मुने ! जब जय और विजयको आपने शाप दे दिया था तब वे कश्यपके द्वारा दितिके दो पुत्र बन कर उत्पन्न हुए थे ।९॥ पहिला हिरण्यकशिपु था और उसका छोटा भाई बली हिरण्याक्ष था, वे देवर्षि-पार्षद दितिके दो पुत्र बनकर उत्पन्न हुए थे ॥ १० ॥ जब पृथ्वीके उद्धार के लिये प्रभुसे प्रार्थना की गई थी तब वाराहरूपधारी विष्णुने हिरण्याक्षको मार डाला था ॥ ११ ॥ प्राणप्रिय वीर भाईको मरा सुन, हे मुने ! हिरण्यकशिपु विष्णु पर परम कुपित हुआ ॥ १२ ॥ उसने दश हजार वर्ष तक तप कर प्रसन्न हुए ब्रह्माजीसे वर पाया, कि-आपकी सृष्टिमें मुझे कोई न मार सके ॥ १३ ॥ तब वह शोणितपुरमें चारों ओरसे देवताओंको आह्वान कर (उनको जीत) त्रिलोकीको अपने वशमें कर निष्कण्टक राज्य करने लगा ॥ १४ ॥ हे मुने ! वह पापी हिरण्यकशिपु सब धर्मोंको लुप्त करने लगा, देवता और ऋषियोंका संहार करने लगा और द्विजोंको पीड़ा देने लगा ॥ १५ ॥ जब दैत्यराज हरिको विशेष वैरी समझ अपने हरिभक्त

सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविर्द्धतम्मुने । सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा ततः ॥ १७ ॥ सर्वथा मुनिशार्दूल करालं नृहरेर्वपुः । प्रजज्वालातिभयदं त्रासदन्दैत्यसत्तमान् ॥ १८ ॥ नृसिंहेन तदा दैत्या निहताश्चैव तत्क्षणम् । हिरण्यकशिपुश्चाथ युद्धञ्चक्रे सुदारुणम् ॥ १९ ॥ महायुद्धं तयोरासीन्मुहूर्त्तम्मुनिसत्तमाः । विकरालं च भयदं सर्वेषां रोमहर्षणम् ॥ २० ॥ सायं चकर्ष देवेशो देहल्यान्दैत्यपुङ्गवम् । व्योम्नि देवेषु पश्यत्सु नृसिंहश्च रमेश्वरः ॥ २१ ॥ अथोत्संगे च तं कृत्वा नखैस्तदुदरन्द्रुतम् । विदार्य मारयामास पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ हते हिरण्यकशिपौ नृसिंहेनैव विष्णुना । जगत्स्वास्थ्यन्तदा लेभे न वै देवा विशेषतः ॥ २३ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः प्रह्लादो विस्मयं गतः । लक्ष्मीश्च विस्मयं प्राप्ता रूपं दृष्ट्वाद्भुतं हरेः ॥ २४ ॥ हतो यद्यपि दैत्येन्द्रस्तथापि न परं सुखम् । ययुर्देवा नृसिंहस्य ज्वाला सा न निवर्तिता ॥ २५ ॥ तया च व्याकुलं जातं सर्वं चैव जगत्पुनः । देवाश्च दुःखमापन्नाः किम्भविष्यति वा पुनः ॥२६॥ इत्येवं च वदन्तस्ते भयाद् दूरमुपस्थिताः । नृसिंहक्रोधजज्वालाव्याकुलाः पद्मभूमुखाः ॥२७॥ प्रह्लादं

पुत्र प्रह्लादसे द्वेष करने लगा ॥ १६ ॥ तब हे मुने ! विष्णु क्रोधमें भर संध्याके समय सभाके खंभेमेंसे नृसिंहशरीर धारण कर झटसे प्रकट हुए थे ॥१७॥ हे मुनिशार्दूल ! नृसिंहका शरीर सर्वथा कराल था वह भयदायकरूप दैत्योंको त्रास देनेके लिये विकट हो उठा ॥ १८ ॥ तत्काल ही नृसिंह ने दैत्योंको मार डाला तब हिरण्यकशिपु दारुण युद्ध करने लगा ॥ १९ ॥ हे मुनिसत्तमों ! उन दोनोंमें मुहूर्त भर तक सबके रोंगटे खड़े करने वाला भयदायक विकराल युद्ध हुआ ॥ २० ॥ देवता आकाशमेंसे देख रहे थे, कि सायंकालका समय आने पर देवेश रमेश्वर नृसिंहने सायंकालके समय देहलीमें खेंचा ॥ २१ ॥ और उसको गोदीमें धर देवताओंके देखते देखते नखोंसे उसके पेटको झटपट चीर डाला ॥ २२ ॥ नृसिंहावतारधारी विष्णु के द्वारा हिरण्यकशिपुके मारे जाने पर जगत् तो स्वस्थ होगया, परन्तु देवता शान्त न हुए ॥ २३ ॥ हरिके अद्भुत रूपको देख देवताओंकी दुन्दुभियें बजने लगीं, प्रह्लाद विस्मयमें पड़ गया और लक्ष्मीजीको भी बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४ ॥ यद्यपि दैत्येन्द्र मर गया, परन्तु नृसिंहकी ज्वाला शान्त न होनेसे देवताओंको सुख न मिला ॥ २५ ॥ उस ज्वालासे सकल जगत् बेचैन होउठा और देवता भी अब और क्या होगा ? विचार कर दुःखित होने लगे ॥ २६ ॥ नृसिंहके क्रोधकी ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदि देवता इस प्रकार कहकर भयसे दूर हट गए ॥ २७ ॥ उन्होंने क्रोधको शान्त करने

प्रेषयामासुस्तच्छान्त्यै निकटं हरेः । सर्वान्मिलित्वा प्रह्लादः प्रार्थितो गतवांस्तदा ॥ २८ ॥ उरसा लिंगयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः । हृदयं शीतलं जातं रुड्ज्वाला न निवर्तिता ॥२६॥ तथापि न निवृत्ता रुड्ज्वाला नरहरेर्यदा । दुखं प्राप्तास्ततो देवाश्शंकरं शरणं ययुः ॥ ३० ॥ तत्र गत्वा सुरास्सर्वे ब्रह्माद्या मुनयस्तथा । शंकरं स्तवयामासुर्लोकानां सुखहेतवे ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । पाहि नः शरणापन्नान्सर्वान्देवाञ्जगन्ति च ॥३२॥ नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सदाशिव । पूर्वं दुःखं यदा जातं तदा ते रक्षिता वयम् ॥ ३३ ॥ समुद्रो मथितश्चैव रत्नानां च विभागशः । कृते देवैस्तदा शंभो गृहीतं गरलन्त्वया ॥ ३४ ॥ रक्षिताः स्म तदा नाथ नीलकण्ठ इति श्रुतः । विषं पास्यसि नो चेत्त्वं भस्मीभूतास्तदाखिलाः ॥ ३५ ॥ प्रसिद्धं च यदा यस्य दुःखं च जायते प्रभो । तदा त्वन्नाममात्रेण सर्वदुःखं विलीयते ॥ ३६ ॥ इदानीं नृहरिज्वालापीड़िताननस्सदाशिव । तां त्वं शमयितुं देव शक्तोऽसीति सुनिश्चितम् ॥३७॥ नन्दीश्वर उवाच । इति स्तुतस्तदा देवैश्शंकरो भक्तवत्सलः । प्रत्युवाच प्रसन्ना-

---

के लिये प्रल्हादको उनके पास भेजना चाहा, जब सबने मिलकर प्रल्हाद से प्रार्थनाकी तब प्रह्लाद उनके पास गए ॥ २८ ॥ तब कृपानिधि नृसिंहने प्रह्लादको छातीसे लगा लिया, इस प्रकार उनका हृदय तो शीतल होगया, परन्तु उनके क्रोधकी ज्वाला शान्त न हुई ॥ २६ ॥ जब तब भी नरहरिकी क्रोधज्वाला निवृत्त न हुई तो दुःखित होते हुए देवता शंकरकी शरणमें पहुँचे ॥३०॥ तहाँ पहुँच कर ब्रह्मा आदि देवताओंने और मुनियोंने संसार को सुख देनेके लिये शंकरकी स्तुति करना आरंभ कर दी ॥३१॥ देवताओं ने कहा, कि–हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव ! हम सब शरणागत देवताओंकी और जगत् भरकी आप रक्षा करिये ॥३२॥ हे सदाशिव ! आपको प्रणाम है ! प्रणाम है !! प्रणाम है !!! पहिले जब जब हम पर दुःख पड़ा है आपने हमारी रक्षा की है ॥ ३३ ॥ जब समुद्र मथा गया और रत्नोंका विभाग होरहा था तब देवताओंके लिये आपने विष ग्रहण किया था ॥३४॥ हे नाथ ! उस समय आपने हमारी रक्षा की थी, उस समयसे आप नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हैं, यदि उस समय आप विष नहीं पीते तो हम सब भस्म ही होगए थे ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! जब किसी पर प्रसिद्ध दुःख पड़ा है उस समय आपके नाममात्रसे ही वह दुःख नष्ट होजाता है ॥३६॥ हे सदाशिव ! इस समय हम नरहरिकी ज्वालासे उत्पीड़ित होरहे हैं, हे देव ! यह पक्की बात है, कि–उस ज्वालाको आप शान्त कर सकते हैं ॥ ३७ ॥

स्मादभयन्दत्वा परं प्रभुः ॥ ३८ ॥ शंकर उवाच । स्वस्वस्थानं गच्छत सुरास्सर्वे ब्रह्मादयोऽभयाः । शमयिष्यामि यद्दुःखं सर्वथा हि व्रतम्मम ॥३९॥ गतो मच्छरणं यस्तु तस्य दुःखं क्षयं गतम् । मत्प्रियः शरणापन्नः प्राणेभ्योऽपि न संशयः ४० नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा तदा देवा ह्यानन्दम्परमं गताः । यथागतं तथा जग्मुस्स्मरन्तश्शंकरं मुदा ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शार्दूलावतारे नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

नन्दीश्वर उवाच । एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः । महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्त्तुं परमेश्वरः ॥ १ ॥ तदूर्ध्वं स्मृतवान्रुद्रो वीरभद्रम्महाबलम् । आत्मनो भैरवं रूपं प्राह प्रलयकारकम् ॥ २ ॥ आजगाम ततस्सद्यो गणानामग्रणीर्हसन् । साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः ॥३॥ नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिःपरिवारितः । माद्यद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः ॥ ४ ॥ क्रीडद्भिश्च महावीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव । अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः ॥ ५ ॥ कल्पान्तज्वलनज्वालो

नन्दीश्वरने कहा, कि–जब देवताओंने भक्तवत्सल शंकरकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम–प्रभुने प्रसन्नचित्तसे अभय देकर कहा ॥ ३८ ॥ शंकरका भाषण–हे ब्रह्मा आदि सब देवताओं ! आप निर्भय होकर अपने स्थानको पधारिये, आपको जो दुःख है, उसको मैं शान्त कर दूँगा, क्योंकि–यह तो मेरा प्रधान व्रत है ॥ ३९ ॥ जो मेरी शरणमें आया उसका दुःख क्षीण होगया, जो मेरी शरणमें आता है, वह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होजाता है ॥ ४० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–इस अभयदानको सुन देवताओंमें बड़ा आनन्द छागया और वह शङ्करका स्मरण कर आनन्दित होते हुए जैसे आए थे, तैसे लौट गए ॥ ४१ ॥ दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि—जब देवताओंने इस प्रकार प्रार्थना की, तब कृपालु परमेश्वरने महातेजस्वी नरसिंह–रूपके संहृत करनेका विचार किया १ तदनन्तर रुद्रने महाबली वीरभद्रका स्मरण किया और अपने उस प्रलयङ्कर भैरव–रूपसे वार्तालाप करना चाहा ॥ २ ॥ तब वह गणोंका अग्रगामी नेता शीघ्र ही तहाँ हँसता हुआ प्रकट हुआ उसके चारों ओर बहुतसे श्रेष्ठ गण अट्टहास्य कर उछल कूद रहे थे ॥ ३ ॥ और वीर प्रसन्नतामें भर मदमाते हो नृसिंहकी समान रूपधारी करोड़ों नाच नाच कर वीरभद्रको घेरे हुए थे ४ बहुतसे महावीर ब्रह्मा आदिसे गेंदकी समान खेल रहे थे इस प्रकार और भी बहुतसे पहिले न देखे हुए महावीर वीरभद्रको वन्दना कर रहे थे ॥५॥

विलसल्लोचनत्रयः । अशस्त्रो हि जटाजूटी ज्वलद्बालेन्दुमण्डितः ॥ ६ ॥ बालेन्दुवलयाकारतीक्ष्णदंष्ट्रांकुरद्वयः । आखण्डलधनुः खण्डाशनिभभ्रूलतान्वितः ॥ ७ ॥ महाप्रचण्डहुँकारबधिरीकृतदिङ्मुखः । नीलमेघाञ्जनश्यामो भीषणः श्मश्रुलोऽद्भुतः ॥ ८ ॥ वाद्यखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः । वीरभद्रोऽपि भगवान्वीरशक्तिविजृम्भितः ॥ ९ ॥ स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम् । आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियताम्मयि ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य महेशानो वीरभद्रोक्तमादरात् । विलोक्य वचनम्प्रीत्या प्रोवाच खलदण्डधृक् ॥ ११ ॥ शंकर उवाच । अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम् । ज्वलितस्तस्य नृसिंहाग्निश्शमयैनं दुरासदम् ॥१२॥ सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किन्नोपशाम्यति । ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय ॥ १३ ॥ सूक्ष्मं संहृत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा । वक्त्रमानय कृत्तिं च वीरभद्र ममाज्ञया ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति दिष्टो गणाध्यक्षो प्रशान्तं वपुरास्थितः । जगाम रहसा तत्र

उसके खुले हुए तीनों नेत्रोंमेंसे प्रलयकालकी अग्निकी समान ज्वालायें निकल रहीं थीं ऐसा शस्त्रहीन जटाजूटधारी वीरभद्र चाँदनी छिटकाते हुए बालचन्द्रसे सुशोभित था ॥ ६ ॥ बालचन्द्रके घेरेकी समान उसकी दोनों तीखी डाढ़ोंके अग्रभाग थे, और इन्द्रधनुषके खण्डकी समान वज्र सरीखी कान्ति वाली उसकी भौंहें होरहीं थीं ॥ ७ ॥ उसकी महाप्रचण्ड हुंकारोंसे दिशाएँ बहरी होरहीं थीं, शरीर नीले मेघ और अञ्जनकी समान श्याम था और उस भयावने वीरभद्रकी डाढ़ी मूँछें भी अद्भुत थीं ॥ ८ ॥ त्रिशूलको वार म्वार घुमा रहे थे और वह वाद्य-खण्डको अखण्डोंसे बजा रहे थे ऐसे वीरशक्तिसे जँभाई लेते हुए वीरभद्र भगवान्ने अपने आप निवेदन किया, कि-हे जगत्-स्वामिन् ! मुझे स्मरण करनेका क्या कारण है ? आज्ञा देकर मुझ पर कृपा करिये ॥ ९ ॥ १० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-खलोंको दण्ड देने वाले महेश्वरने वीरभद्रके वचनको इस प्रकार सुन उनकी ओर आदरपूर्वक देख प्रीतिके साथ कहा ॥ ११ ॥ शंकरने कहा, कि-असमयमें ही देवताओं पर भैरव दुःख आपड़ा है, नृसिंहरूपी अग्नि धाँय धाँय कर रही है, इस दुरासद अग्निको तुम शान्त करो ॥ १२ ॥ पहिले समझा कर देखो यदि शान्त करने पर भी न मानें, तब तुम मेरे परम भाव भैरव—भावको दिखाना ॥ १३ ॥ और हे वीरभद्र ! तुम सूक्ष्मसे सूक्ष्म तेजको और स्थूलसे स्थूल तेजको संहृत कर मेरो आज्ञानुसार उनके मुख और चर्मको ले आना ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस प्रकार आज्ञा पा गणाध्यक्ष

यत्रास्ते नरकेसरी ॥ १५ ॥ ततस्तम्बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम् । उवाच वाक्यमीशानः पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १६ ॥ वीरभद्र उवाच । जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव । स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोऽसि परेशः परमेष्ठिना ॥ १७ ॥ जन्तुचक्रं भगवता प्रच्छिन्नं मत्स्यरूपिणा। पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा ॥ १८ ॥ बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही । अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १९ ॥ वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः। त्वमेव सर्व्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः ॥ २० ॥ यदा यदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजायते । तदा तदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम् ॥ २१ ॥ नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायणः । त्वया वेदाश्च धर्माश्च शुभमार्गे प्रतिष्ठिताः ॥ २२ ॥ यदर्थमवतारोऽयं निहतस्स हि दानवः । हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोऽपि सुरक्षितः ॥ २३ ॥ अतीव घोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव । उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ २४ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा । ततोऽधिकं महा-

---

वीरभद्र शान्त भाव वाला शरीर बना, जहाँ नरसिंह थे तहाँ को चल दिया ॥१५॥ तब वीरभद्र-हर ईशानने पिता जैसे औरस-पुत्रको समझावे, तिस प्रकार बात की ॥ १६ ॥ वीरभद्रने कहा, कि हे भगवन् ! हे माधव ! आपने जगत्को सुख देनेके लिये अवतार धारण किया है, क्यों कि परेश परमेष्ठीने आपको स्थितिके कार्य पर नियुक्त किया है ॥ १७ ॥ आप मेरे ही स्वरूप हैं आप पहिले कूर्मरूपमें एकसमुद्रमयी दशामें अपनी पूँछमें जन्तुचक्रको बाँधकर घूमे थे इस प्रकार आपने इस संसारका पालन किया था, वाराह अवतार धारण कर आपने पृथिवीका उद्धार किया था और अब इस नरसिंह—अवतारको धारण कर आपने हिरण्यकशिपुका संहार किया है ॥ १८ ॥ १९ ॥ और आपने वामनावतार धारण कर चरणोंसे नाप कर बलिको बाँध लिया था, इस प्रकार आप सब प्राणियोंके उत्पत्ति-स्थान अव्यय प्रभु हैं ॥२०॥ जब जब इस संसार पर दुःख पड़ा करता है तब तब आप अवतार धारण कर इस संसारको उस आपत्तिसे छुड़ाते हैं-निरामय कर देते हैं ॥ २१ ॥ हे हरे ! आपको बराबर वा आपसे अधिक शिव-परायण और कोई नहीं है आपने वेद और धर्मोंसे शुभ—मार्गकी प्रतिष्ठा की है ॥ २२ ॥ आपने जिस हिरण्यकशिपुके लिये यह अवतार धारण किया था, वह दानव हिरण्यकशिपु मारा जाचुका है, प्रह्लादकी भी सुरक्षा होचुकी है ॥२३॥ हे भगवन् ! आपका यह नृसिंह—शरीर परम—घोर है अतः हे विश्वात्मन् ! आप इसका मेरे सामने उपसंहार करिये ॥२४॥ नन्दी-

घोरं कोपश्चक्रे महामदः ॥ २५ ॥ उवाच च महाघोरं कठिनं वचनन्तदा । वीर-भद्रम्महावीरं दंष्ट्राभिर्भीषयन्मुने ॥ २६ ॥ नृसिंह उवाच । आगतोऽसि यतस्तत्र गच्छ त्वम्मा हितं वद । इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २७ ॥ संहर्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा । शासितम्मम सर्व्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते ॥ २८ ॥ मत्प्रसादेन सकलमभयं हि प्रवर्त्तते । अहं हि सर्व्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥ २९ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम तेजोविजृम्भितम् ॥३०॥ देवतापरमार्थज्ञं मामेव परमं विदुः । मदंशाश्शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयस्सुराः ॥ ३१ ॥ मन्नाभिकमलाज्जातः पुरा ब्रह्मा जगत्करः । सर्वाधिकस्स्वतन्त्रश्च कर्त्ता हर्त्ताखिलेश्वरः ॥ ३२ ॥ इदन्तु मत्परं तेजः किं पुनः श्रोतुमिच्छसि । अतो मां शरणम्प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥३३॥ अवेहि परमं भावमिदम्भूतं गणेश्वर । मामकं सकलं विश्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३४॥ कालोऽस्म्यहं लोकविनाशहेतुर्लोकान्समाहर्तुमहम्प्रवृत्तः । मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीर-

श्वरने कहा, कि-वीरभद्रने इस प्रकार शान्त वाणीमें कहा, परन्तु नृसिंहको तो महामद चढ़ रहा था अतः वह और भी महाघोर कोपमें भर गए ॥२५॥ और हे मुने ! अपनी डाढ़ोंसे महावीर वीरभद्रको डराते हुए महाघोर कड़ी बात कहने लगे २६ नृसिंहका भाषण-अरे ! तू जहाँसे आया है, तहाँको हो लौट जा, मुझे हितकी बातें न बता, इस समय मैं इस चराचर जगत्का संहार करना चाहता हूँ २७ मुझ संहार करने वालेका स्वतः वा परतःसंहार नहीं रचा गया है, सर्वत्र मेरा ही शासन चलता है, कोई और मेरा शासन करने वाला नहीं है ॥ २८ ॥ मेरी कृपासे सर्वत्र अभय हुआ करता है, मैं ही सब शक्तियोंका प्रवर्तक और निवर्तक हूँ ॥२९॥ अरे गणाध्यक्ष ! इस संसार में जो कुछ विभूति वाला, श्रीसम्पन्न अथवा बलवान् सत्त्व दीखता है उसको तुम मेरे तेजसे ही बढ़ा हुआ समझो ॥३०॥ देवता मुझको ही परमार्थको जानने वाला और परात्पर समझते हैं, ये ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता मेरे ही अंशसे शक्तिशाली बने हुए हैं ॥ ३१ ॥ यह जगत्—कर्ता ब्रह्मा जो, कि-सबसे अधिक स्वतन्त्र हर्ता कर्ता सर्वेश्वर समझे जाते हैं यह भी तो मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२ ॥ यह (नृसिंहावतार) तो मेरा परम-तेजोमय स्वरूप है, अतः अब तू और क्या सुनना चाहता है, अब तू मेरी शरण लेकर निश्चित होजा और लौटजा ॥ ३३ ॥ हे गणेश्वर ! देवता असुर तथा मनुष्यों सहित सकल जगत् मेरा ही परम भाव समझ ॥३४॥ मैं लोकोंके विनाशका हेतु काल हूँ और लोकोंका समाहार करनेके लिये

भद्र जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । साहंकारं वचः श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः । विहस्योवाच सावज्ञन्ततो विस्फुरिताधरः ॥ ३६ ॥ वीरभद्र उवाच । किन्न जानासि विश्वेशं संहर्तारम्पिनाकिनम् । असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः ॥ ३७ ॥ तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम् । कृतानि येन केनैव कथाशेषो भविष्यति ॥ ३८ ॥ दोषं तं वद येन त्वमवस्थामीदृशीं गतः । तेन संहारदक्षेण दक्षिणाशेषमेष्यसि ॥३९॥ प्रकृतिस्त्वं पुमान्रुद्रस्त्वयि वीर्यं समाहितम् । त्वन्नाभिपंकजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः ४० जगत्त्रयीसर्जनार्थं शंकरं नीललोहितम् । ललाटेऽचिन्तयत्सोऽयन्तपस्युग्रे च संस्थितः ॥ ४१ ॥ तल्ललाटादभूच्छम्भुः सृष्ट्यर्थे तेन भूषणम् । अतोऽहं देवदेवस्य तस्य भैरवरूपिणः ॥ ४२ ॥ त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च । देवदेवेन रुद्रेण सकलप्रभुणा हरे ॥ ४३ ॥ एकं रक्षो विदार्यैव तच्छक्तिकलया युतः । अहङ्कारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः ॥४४॥ उपकारो हि साधूनां सुखाय

उद्यत होचुका हूँ, मुझे तुम मृत्युको भी मृत्यु समझो, हे वीरभद्र ! यह देवता तो मेरी कृपासे ही जीरहे हैं ॥३५॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—हरिके तिरस्कार और अहंकारसे भरे वचन सुन अमितविक्रमी वीरभद्रके ओठ फड़फड़ा उठे और वह हँसकर कहने लगे ॥ ३६ ॥ वीरभद्रने कहा, कि—क्या तुम संहर्ता पिनाकधनुषधारी विश्वेशको भूल गए, यह असद्वाद और विवाद कहीं तुम्हारा नाश ही न कर डाले ॥३७॥ अब तुम्हारे और कौनसे और अवतार होने बाकी हैं, बहुतसे अवतार होचुके, अब किसी अवतारसे तुम्हारी कथा भी पूर्ण होनी चाहिये ॥ ३८ ॥ ऐसा क्या दोष तुममें घुस गया है, बताओ तो सही, जिससे तुम्हारी ऐसी दशा होगई है, अब उस संहार करनेमें दक्ष पुरुषसे आपको अंतिम दक्षिणा मिलना चाहती है ३९ आप तो प्रकृति हैं और रुद्र पुरुष हैं, तुममें वीर्य स्थापित किया जाता है, पञ्चमुखी ब्रह्माजी तुम्हारे ही नाभिकमलसे प्रकट हुए हैं ॥४०॥ वही ब्रह्मा तीनों लोकोंको रचनेके लिये अपने ललाट देशमें नीललोहित शंकरका ध्यान करते हुए उग्र तप करने लगे ॥ ४१ ॥ तब उनके ललाटसे सृष्टिकी विधि बतानेके लिये शंभु प्रकट हुये थे, इस प्रकार भूषण-रूपमें ब्रह्माजीने उनको धारण किया है, हे हरे ! मुझे उन ही सबके प्रभु देव-देव रुद्रने अपने देवदेव भैरवस्वरूपके बल और विनयसे भर कर आपका संहार करनेके लिये नियुक्त किया है ॥४२॥४३॥ तुम उनही शिवकी शक्तिके सोलहवें भाग केवलसे एक ही राक्षस संहार कर अहंकारमें भर गर्जना कर रहे हो ॥४४॥

किल संमतः । उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥ ४५ ॥ यन्नृसिंह महेशानं पुनर्भूतं तु मन्यसे । तदज्ञानो महागर्वी विकारी सर्वथा भवान् ॥ ४६ ॥ न त्वं स्रष्टा न संहर्ता भर्तापि न नृसिंहक । परतंत्रो विमूढात्मा न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित् ॥ ४७ ॥ कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोऽसि पिनाकिना । नानावतारकर्त्ता त्वं तदधीनस्सदा हरे ॥ ४८ ॥ अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः । हरहारलतामध्ये दग्धः कश्चिन्न वध्यते ॥ ४९ ॥ विस्मृतिः किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितम् । वाराह विग्नहस्तेऽद्य याक्रोशन्तारकारिणा ॥ ५० ॥ दग्धोऽसि पश्य शूलाग्नेर्विष्वक्सेनच्छलाद्भवान् । दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया तेजःस्वरूपिणा ॥५१॥ अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । छिन्नं न सज्जितं भूयो हरे तद्विस्मृतन्त्वया ॥ ५२ ॥ निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्गणः । कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया ॥ ५३ ॥ चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम् । कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम् ॥ ५४ ॥ ये मया सकला लोका गृहीतास्त्वं

साधुओंका उपकार सुख देने वाला माना गया है और असाधुओं पर उपकार तो केवल अपकार करने वाला ही होता है ॥ ४५ ॥ हे नृसिंह ! तुम महेशको जो फिर हुआ समझते हो तो तुम अज्ञानी महागर्वी विकारी ही हो ॥४६॥ अरे नृसिंह ! तुम न संहार करने वाले हो न रचने वाले और न पालन करने वाले हो परन्तु परतन्त्र हो और चित्तके मोहमें फँसे होनेसे यह नहीं समझते, कि मैं किसी बातमें भी स्वतन्त्र नहीं हूँ ॥४७॥ हे हरे ! पिनाकधनुषधारी शिवने तुमको कुम्हारके चाककी समान चला दिया है, अनेक अवतार धारण करने वाले तुम उन शिवके ही अधीन हो ॥ ४८ ॥ कूर्मरूप द्वारा तुम्हारा कपाल आज भी हरकी हाररूपी लतामें विद्यमान है, झुलसा हुआ कोई नहीं मारा जाता ॥ ४९ ॥ उनके अंश तारकासुरका नाश करने वालेसे वाराह रूपमें तुम्हारा जो विघ्न नाश किया गया था और डाढ़से उखालने पर जो चीख लगी थीं, उसकी क्या विस्मृति होगई ॥ ५० ॥ देखो ! विश्वक्सेनछलसे तुम शूलाग्निसे झुलस चुके हो, मैंने तेजःस्वरूप धारण कर दक्षयज्ञमें तुम्हारा शिर काटा था ॥ ५१ ॥ और हे हरे ! अब भी तुम्हारे पुत्र ब्रह्माका पाँचवाँ शिर कट चुका है, वह अभी जुड़ा नहीं है, क्या तुम उसको भूल गए ॥ ५२ ॥ शिर खुजाने पर दधीचने तुमको मरुद्गणों सहित जीत लिया था उसको क्या तुम भूल गए ॥ ५३ ॥ और हे चक्रपाणे ! तुम जिस प्रिय चक्रको घुमाया करते हो, उस सुदर्शन चक्रको तुमने किससे पाया है और वह किसका बनाया हुआ है, क्या इसको भी

पयोनिधौ । निद्रापरवशश्शेषे स कथं सात्त्विको भवान् ।५५। त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृम्भितम् । शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलात्त्वं विमोहितः ॥५६॥ तत्ते-जसो हि माहात्म्यं पुमान्द्रष्टुन्न हि क्षमः । अस्थूला ये प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमम्पदम् ॥५७॥ द्यावापृथिव्यो इन्द्राग्नेर्यमस्य वरुणस्य च । ध्वान्तोदरे शशांके च जनित्वा परमेश्वरः ॥५८॥ कालोसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वरः । अतस्त्व-मुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि ॥५९॥ स्थिरोद्य त्वक्षरो वीरो वीरो विश्वाधिकः प्रभुः । उपहन्ता ज्वरं भीमो मृगः पक्षी हिरण्मयः ॥ ६० ॥ शास्ता शेषस्य जगत-स्तत्त्वं नैव चतुर्मुखः । नान्ये च केवलं शम्भुस्सर्वशास्ता न संशयः ६१ इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना । विनष्टन्त्वमात्मनात्मानं कुरु हे नृहरे बुध ॥६२॥ नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः । वज्राशनिरिव स्थाणौ त्वयि मृत्युः पतिष्यति ॥६३॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा वीरभद्रोऽपि विरराम कुतोभयः । दृष्ट्वा नृसिंहाभिप्रायं क्रोधमूर्त्तिश्शिवस्य सः ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शलभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

तुम भूल गए ॥ ५४ ॥ मैंने तो सकल लोकोंको धारण कर रखा है और तुम तो क्षीरसमुद्रमें निद्राधीन हो सोते रहते हो, ऐसे तुम सात्विक कैसे हो ? ॥ ५५ ॥ तुमसे लेकर स्तम्ब तक सब ही रुद्रशक्तिसे विजृम्भित है तुम और शक्तिमान् चारों ओर व्याप्त हैं, इस समय तो तुम व्राई आनेसे मोहमें पड़ रहे हो ॥ ५६ ॥ पुरुष उन रुद्रके तेजके माहात्म्यको देखनेका पात्र नहीं है, सूक्ष्मदर्शी जिसको देखते हैं वह विष्णुका परम पद है ॥५७॥ द्यावापृथिवीमें, इन्द्र अग्नि यम वरुण और सूर्य तथा चन्द्रमामें वही परमेश्वर प्रकट होरहे हैं ॥ ५८ ॥ तुम काल हो तो महेश्वर कालके भी काल महा-काल हैं, तुम उनकी ही उग्रकलासे अपनेको मृत्युकी भी मृत्यु समझते हो ५९ अक्षर वीर विश्वकी रक्षा करने वाले उपहन्ता मृग पक्षी हिरण्मय ज्वर भीम (शंकर) ॥ ६० ॥ इस सकल जगत्के शास्ता हैं, ब्रह्मा और दूसरे तत्त्व नहीं हैं, एक शंभु ही सर्वशास्ता हैं ॥ ६१ ॥ हे बुध नरसिंह ! इन सब बातोंका विचार कर तुम अपनेको अपने आप नष्ट करलो—अपना उपसंहार कर लो ॥ ६२ ॥ नहीं तो ठूँठ पर जैसे बिजली गिरती है, इसी प्रकार महाभैरवरूपी शंकरके क्रोधका रूप मृत्यु तुम पर पड़ती है ॥ ६३ ॥ नन्दी-श्वरने कहा, कि—नृसिंहके अभिप्रायको भाँप शिवकी क्रोधमूर्ति वीरभद्र इस प्रकार कह निर्भयतापूर्वक विरामको प्राप्त होगए ॥ ६४ ॥ (इस अध्याय

सनत्कुमार उवाच । नन्दीश्वर महाप्राज्ञ विज्ञातन्तदनन्तरम् । ममोपरि कृपां कृत्वा प्रीत्या त्वन्तद्वदाधुना ॥ १ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः । निनदन्नरवेगेन तं ग्रहीतुम्प्रचक्रमे ॥ २ ॥ अत्रान्तरे महाघोरं प्रत्यक्षभयकारणम् गगनव्यापि दुर्धर्षं शैवतेजस्समुद्भवम् ॥ ३ ॥ वीरभद्रस्य तद्रूपमदृश्यन्तु ततः क्षणात् । तद्धै हिरण्मयं सौम्यं न सौरन्नाग्निसम्भवम् ॥ ४ ॥ न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यमहेश्वरम् । तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिँल्लीनानि शङ्करे ।५। न तद्व्योमं महत्तेजो व्यक्तान्तश्चाभवत्ततः । रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति ॥ ६ ॥ ततस्संहाररूपेण सुव्यक्तं परमेश्वरः । पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः ॥ ७ ॥ सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः । समृद्धोग्रशरीरेण पक्षाभ्याञ्चञ्चुना द्विजः ॥ ८ ॥ अतितीक्ष्णो महादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः । कण्ठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसन्निभः ॥९॥ युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिस्वनः ।

के ४९–५०–५१–५७ और ६० वें श्लोक छूट हैं) ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

सनत्कुमारने कहा, कि–हे महाबुद्धिमान् नन्दीश्वर ! उसके बादका जो वृत्तान्त आपको विदित हुआ हो अब मुझ पर कृपा कर उसको कहिये ॥१॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–वीरभद्रके इस प्रकार कहने पर नृसिंह क्रोधसे विह्वल होगए और बड़ी जोरसे दहाड़ कर उनको पकड़नेको दौड़े ॥ २ ॥ उसी समय महाघोर प्रत्यक्ष भयका कारण शिवके तेजसे उद्भूत वीरभद्रका दुर्धर्ष गगनव्यापी रूप क्षणभरके लिये अदृश्य होगया(फिर जो रूप प्रकट हुआ) वह हिरण्मय था वह चन्द्र सूर्य और अग्निके तेजसे विलक्षण था, वह रूप बिजली और चन्द्रमासे भी विलक्षण अनुपम माहेश्वर तेज था, उस समय उन शंकरमें समस्त तेज लीन होरहे थे, उस महत्तेजकी उपमा आकाशसे भी नहीं दी जासकती वह तेज प्रकट कालरूप ही था तथा कुपित आकृति वाले रुद्रके साधारण लक्षणोंसे सम्पन्न था, इस प्रकार परमेश्वर संहाररूपसे सब देवताओंके सामने प्रकट हुए तब देवता जय जय आदि माङ्गलिक शब्द करने लगे, उस रूपमें हजार भुजाएँ थीं, जटायें थीं और अर्धचन्द्रका आभूषण था उस द्विजका उग्र–शरीर पंख और चोंचसे बढ़ता जारहा था ३–८ उसकी बड़ी २ डाढ़े तीखीं थीं, नखूनोंके आयुध वज्र-सरीखे थे, कण्ठमें कुण्डल पड़ा हुआ था भुजाएँ बड़ी २ थीं, चार पैर थे और अग्निकी समान दमक रहा था और स्वर प्रलयकालमें उठे हुए बादल के भीम—गम्भीर

महाकुपितकृत्याग्निर्व्यावृत्तनयनत्रयः ॥ १० ॥ स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठश्च हुंकारस्संयुतो हरः । ईदृग्विधस्वरूपश्च ह्युग्र आविर्बभूव ह ॥ ११ ॥ हरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः । बिभ्रद्धाम सहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम् ॥ १२ ॥ अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादान्विदारयन् । पादानवबंध पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम् १३ भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यान्निजग्राह हरो हरिम् । ततो जगाम गगनन्देवैस्सह महर्षिभिः ॥१४॥ सहसैवाभयाद्विष्णुं स हि श्येन इवोरगम् । उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपत्य च ।१५। उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षघातविमोहितम् । हरिं हरस्तं वृषभं विवेशानन्त ईश्वरः ॥ १६ ॥ अनुयांतं सुरास्सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः । प्रणेमुस्सादरं प्रीत्या ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः ॥१७॥ नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः । तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः ॥ १८ ॥ नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वा तम्मृडमेव च । पुनश्च प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम् ॥ १९ ॥ यदा यदा ममाज्ञेयं मतिस्स्याद्गर्वदूषिता । तदा तदाऽपनेतव्या त्वयैव परमेश्वर ।२०।

गर्जनकी समान था, खुले हुए तीनों नेत्रोंमें क्रोधमें भरी कृत्याग्नि भर रही थी ॥ ९ ॥ १० ॥ उसकी डाढ़ें और ओठ स्पष्ट दीख रहीं थीं और वह हुङ्कार कर रहा था, इस प्रकारके उग्र शरीरको धारण कर हर प्रकट हुए ११ उस रूपको देखते ही नृसिंहका बल विक्रम जाता रहा और वह मानों सूर्यके नीचे पटवीजना घूम रहा हो ऐसे दीखने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर पंखोंके बल पर घूम कर शंकरने नाभि और पैरोंको विदीर्ण करना आरम्भ कर दिया, पूँछसे पैरोंको बाँध लिया और भुजाओंसे भुजाओंको बाँध लिया १३ हरने हरिकी छाती नोचते हुए उनको भुजाओंसे दबोच लिया और आकाशमें उड़े उस समय देवता और महर्षि उनके साथ गए ॥ १४ ॥ फिर शिव निर्भयतापूर्वक गरुड़ जैसे साँप पर आक्रमण करे इस प्रकार विष्णुको उछल उछल कर दबोच कर, गिरा कर, गिर कर ॥ १५ ॥ उड़ उड़ कर पंखोंकी चपेटसे मोहित करने लगे, इस प्रकार भगवान् ईश्वर अनन्त हर उन हरिके भीतर घुस गए ॥ १६ ॥ उस समय ब्रह्मा आदि सकल देवता और मुनीश्वर नमो नमः कह उनकी स्तुति करने लगे तथा आदर और प्रीतिपूर्वक प्रणाम करने लगे ॥ १७ ॥ उस समय पराधीन हो खिचड़ते हुए हरिका मुख उतर गया और वह हाथ जोड़ कर ललित अक्षरोंमें परमेशान हरको स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ नृसिंह एक सौ आठ नामोंसे उनकी स्तुति कर फिर सर्वेश्वर मृडकी प्रार्थना करने लगे ॥ १९ ॥ हे परमेश्वर ! जब जब मेरी बुद्धि गर्वसे दूषित होजाया करे, तब तब आप उसको ठीक कर दिया

नन्दीश्वर उवाच। एवं विज्ञापयन्प्रीत्या शङ्करं नरकेसरी। नत्वा शक्तोऽभव-द्विष्णुर्जीवितान्तपराजितः ॥ २१ ॥ तद्वक्त्रं शेषगात्रान्तं कृत्वा सर्वस्वविग्रहम्। शक्तियुक्तं तदीयांगं वीरभद्रः क्षणात्ततः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच। अथ ब्रह्मा-दयो देवाश्शारभं रूपमास्थितम्। तुष्टुवुः शंकरं देवं सर्वलोकैकशंकरम् ॥ २३ ॥ देवा ऊचुः। ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रादिसुराः सर्वे महर्षयः। दितिजाद्याः सम्प्रसूता-स्त्वत्तस्सर्वे महेश्वर ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेन्द्रांश्च सूर्याद्यानसुरान्सुरान्। त्वं वै सृजसि पास्यत्सि त्वमेव सकलेश्वर ॥ २५ ॥ यतो हरसि संसारं हर इत्युच्यते बुधैः। निगृहीतो हरिर्यस्माद्धर इत्युच्यते बुधैः ॥ २६ ॥ यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा। अतोऽस्मान्पाहि भगवन् सुरादानैरभीप्सितैः ॥ २७ ॥ त्वं महापुरुषः शम्भुः सर्वेशस्सुरनायकः। निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सतां गतिः ॥२८॥ दीनबन्धुर्दयासिन्धुरद्भुतोतिः परात्मदृक्। प्राज्ञो विराट् विभुस्सत्यः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्याकर्ण्य वचः शम्भुर्देवानां परमेश्वरः। उवाच तान् सुरान्देवमहर्षींश्च पुरातनान् ॥ ३० ॥ यथा जलं जले

करें ॥ २० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—वह नरकेसरी विष्णु इस प्रकार शंकर से प्रीतिपूर्वक प्रार्थना कर अशक्त हो प्राणत्यागरूपमें हार गए ॥२१॥ तब शिवने क्षण भरमें ही उनके सर्वस्व-विग्रह शक्तियुक्त अङ्गमेंसे मुख वाला भाग अलग कर लिया ॥ २२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-तब सब लोकोंमें एकमात्र शान्तिके फैलाने वाले शरभरूपधारी शङ्कर देवकी ब्रह्मा आदि स्तुति करने लगे ॥२३॥ देवताओंने कहा, कि—हे महेश्वर! ये ब्रह्मा विष्णु इन्द्र चन्द्र आदि देवता, सकल महर्षि और सब दैत्य आपसे ही प्रकट हुए हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वेश्वर! आप ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य आदि देवता और असुरोंको रचते हैं, पालते हैं और लीन करते हैं ॥२५॥ आप संसार को हरते हैं इस लिये विद्वान् आपको हर कहते हैं और आपने हरिका निग्रह किया है, इस लिये भी आपको हर कहते हैं ॥ २६ ॥ आप आठ प्रकारसे अपने शरीरका विभाग कर सबका भरण पोषण करते हैं, अतः हे भगवन्! हे सुर! हमको मनचाहे वरदान देकर बचाइये ॥ २७ ॥ आप महापुरुष शंभु सर्वेश सुरनायक निःस्वात्मा निर्विकार चित्तवाले परब्रह्म हैं तथा सज्जनोंकी गति हैं ॥२८॥ तथा आप दीनबन्धु दयासिंधु अद्भुत रक्षक परात्मदर्शी, प्राज्ञ, विराट, विभु, सत्य और सच्चिदानन्दलक्षण हैं ॥२९॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—परमेश्वर शंभुने देवताओंके इस वचनको सुन उन प्राचीन देवता और देवर्षियोंसे कहा ॥ ३० ॥ जैसे जलमें डाला जल, क्षीर

क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्। एक एव तदा विष्णुः शिवे लीनो न चान्यथा ।३१। एको विष्णुर्नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः। जगत्संहारकरणे प्रवृत्तो नरकेसरी ३२ प्रार्थनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तैःसिद्धिकारिभिः। मद्भक्तप्रवरश्चैव मद्भक्तवरदायकः ३३ नन्दीश्वर उवाच। एतावदुक्त्वा भगवान् पक्षिराजो महाबलः। पश्यतां सर्वदेवानान्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४॥ वीरभद्रोऽपि भगवान्गणाध्यक्षो महाबलः। नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्य समादाय ययौ गिरिम् ॥ ३५ ॥ नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शंकरः। तद्वक्त्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥ ३६ ॥ ततो देवा निरातंकाः कीर्त्तयन्तः कथामिमाम्। विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥ ३७ ॥ य इदम्परमाख्यानं पुण्यं वेदरसान्वितम्। पठति शृणुयाच्चैव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३८॥ धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यम्पुष्टिवर्द्धनम्। सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥ दुःखप्रशमनं वाञ्छासिद्धिदं मंगलालयम्। अपमृत्युहरं बुद्धिप्रदं शत्रुविनाशनम् ॥ ४० ॥ इदन्तु शरभाकारं परं

में डाला क्षीर और घृतमें डाला घृत एक ही होता है, इसी प्रकार शिवमें लीन हुए विष्णु भी एक ही हैं, यह बात असत्य नहीं है (हम दोनों अभिन्न हैं) ॥ ३१ ॥ वही एक विष्णु नृसिंहका रूप धारण कर जगत्के संहार करनेमें दर्पवश प्रवृत्त होगए थे ॥३२॥ सिद्धि चाहने वाले मेरे भक्तोंको उन की प्रार्थना करनी चाहिये, मेरे श्रेष्ठ भक्तोंको भी उनकी प्रार्थना करनी चाहिये, उनको प्रणाम है, वह तो मेरे भक्तोंको वर देने वाले हैं ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-वह महाबली पक्षिराज भगवान् इस प्रकार कह, सब देवताओंके देखते २ तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ ३४ ॥ तब महाबली गणाध्यक्ष भगवान् वीरभद्र भी नृसिंहकी खालको खेंच पर्वत परको चल दिये ३५ तबसे शंकर नृसिंहचर्मवस्त्रधारी हैं और नृसिंहका मुख उनकी मुण्डमालामें नायकरूपसे पड़ा हुआ है ॥ ३६ ॥ तब सब देवता आतंकरहित हो विस्मय भरे नेत्रोंसे (इस दृश्यको देख) इस कथाका वर्णन करते हुए जैसे आये थे तैसे लौट चले ॥ ३७ ॥ जो इस वेदकासा रस देनेवाले परम पवित्र आख्यानको पढ़ता है वा सुनता है, उसकी सब कामनायें सिद्ध होती हैं ३८ यह कथा धन यश आयु और आरोग्य देने वाली है तथा पुष्टिको बढ़ाने वाली है सकल विघ्नोंको शान्त करने वाली तथा सकल व्याधियोंको दूर करने वाली है ॥३९॥ तथा दुःखको शान्त करने वाली, अपमृत्युको हटाने वाली, मनोरथ पूर्ण करने वाली, मंगलोंकी आगार बुद्धि बढ़ाने वाली और शत्रुओंका विनाश करने वाली है ॥४०॥ पिनाकीके इस श्रेष्ठ शरभावतार

रूपस्य पिनाकिनः। प्रकाशनीयं भक्तेषु शंकरस्य चरेषु वै ॥ ४१ ॥ तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः। नवधा भक्तिदं दिव्यमन्तःकरणबुद्धिदम् ॥ ४२ ॥ शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च। पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु शिवसन्निधिकारणम् ४३ चौरव्याघ्रनृसिंहात्मकृतराजभयेषु च। अन्येषूत्पातभूकम्पदस्य्वादिपांशुवृष्टिषु ४४ उल्कापाते महावाते विनावृष्ट्यतिवृष्टिषु। पठेद्यः प्रयतो विद्वान्शिवभक्तो दृढव्रतः ॥४५॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि निष्कामो व्रतमैश्वरम्। रुद्रलोकं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥४६। रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते। ततस्सायुज्यमाप्नोति शिवस्य कृपया मुने ॥ ४७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

[अथ गृहपत्यवतारकथा।] नन्दीश्वर उवाच। शृणु ब्रह्मसुत प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः। सोऽवतीर्णो यथा प्रीत्या विश्वानरगृहे शिवः ।१। नाम्ना गृहपतिः सोऽभूदग्निलोकपतिर्मुने। अग्निरूपस्तैजसश्च सर्वात्मा परमः प्रभुः ॥ २॥ नर्मदा-

---

की कथाको शंकरके भक्तों और सेवकोंके सामने प्रकाशित करना चाहिये ४१ और उन ही शिवस्वरूप भक्तोंको यह पढ़नी और सुननी चाहिये, यह दिव्य कथा नौ प्रकारकी भक्ति देने वाली, अन्तःकरण तथा बुद्धिको निर्मल करने वाली है ॥ ४२ ॥ तथा इस कथाको चतुर्दशी तथा अष्टमीके सकल शिव-उत्सवों पर तथा शिवकी प्रतिष्ठाके समय पढ़ना चाहिये, क्योंकि--जहाँ यह कथा होती है शिव वहाँ अवश्य पधारते हैं ॥ ४३ ॥ चोर व्याघ्र मनुष्य सिंह तथा अपने किये राजभयके अवसरों पर तथा भूकम्प डाँकू आँधी आदि अन्य उत्पातोंके अवसर पर, उल्कापात होने पर, धूलकी वर्षा होने पर, अवृष्टि होने पर वा अतिवृष्टि होने पर जो विद्वान् शिवभक्त व्रतमें दृढ़ रहता हुआ सावधानीके साथ इस कथाका पाठ करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अथवा जो निष्काम भावसे शिवव्रत करता हुआ इस कथाको पढ़ता है वा सुनता है वह रुद्रलोकमें जा शिवभक्त होता है ॥ ४६ ॥ और हे मुने ! रुद्रलोकमें जा रुद्रके साथ आनन्द करता है और शिवकी कृपासे सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ ४७ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

(अब गृहपति अवतारकी कथा वर्णन की जाती है) नन्दीश्वरने कहा, कि--हे ब्रह्मसुत ! शिव विश्वानरके घरमें जिस प्रकार अवतीर्ण हुए थे, शशिमौलिके उस चरित्रको तुम प्रेमपूर्वक सुनो ॥ १ ॥ सर्वात्मा परम-प्रभु अग्निरूप तैजस अग्निलोकपति वह गृहपति नामसे प्रकट हुए थे ॥२॥ पहिले

यास्तटे रम्ये पुरे नर्मपुरे पुरा । पुरारिभक्तः पुण्यात्मासीद्विश्वानरो मुनिः ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्य्याश्रमे निष्ठो ब्रह्मयज्ञरतस्सदा । शाण्डिल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजो-निधिर्वशी ॥ ४ ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थस्सदाचाररतस्सदा । शैवाचारप्रवीणोऽति लौकिकाचारविद्बुधः ॥५॥ चित्ते विचार्य्य गृहिणीगुणान्विश्वानरः शुभान् । उदुवाह विधानेन स्वोचितङ्कालकन्यकाम् ॥ ६ ॥ अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञ-परायणः । षट्कर्मनिरतो नित्यं देवपित्रतिथिप्रियः ॥ ७ ॥ एवम्बहुतिथे काले गते तस्याग्रजन्मनः । भार्य्या शुचिष्मती नाम भर्तारम्प्राह सुव्रता ॥ ८ ॥ नाथ भोगा मया सर्वे भुक्ता वै त्वत्प्रसादतः । स्त्रीणां समुचिता ये स्युस्त्वां समेत्य मुदावहाः ॥ ९ ॥ एकम्मे प्रार्थितन्नाथ चिराय हृदि संस्थितम् । गृहस्थानां समुचितं त्वमेतद्दातुमर्हसि ॥ १० ॥ विश्वानर उवाच । किमदेयं हि सुश्रोणि तव प्रियहितैषिणि । तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्यविलम्बितम् ॥११॥ महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम् । इहामुत्र च कल्याणि सर्वकल्याणकारिणः ॥१२॥

नर्मदाके रमणीय तट पर नर्मपुरमें पुरारिके भक्त पुण्यात्मा विश्वानर मुनि रहते थे ॥ ३ ॥ वह ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करते थे सदा ब्रह्मयज्ञ करते रहते थे, उनका गोत्र शाण्डिल्य था, इन्द्रियोंको जीतने वाले पवित्रतासम्पन्न वह मुनि ब्रह्मतेजके खजाने थे ॥ ४ ॥ उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ ज्ञात थे, वह सदाचारमें परायण रहते थे, शैव-आचारमें प्रवीण थे और वह सज्जन लौकिक-आचारको भी जानते थे ॥ ५ ॥ विश्वानरने अपने चित्तमें गृहिणी के गुणोंका विचार कर विधानके अनुसार अपने योग्य कालकन्यकासे विवाह किया ॥६॥ और अग्निहोत्र, पञ्चयज्ञ, षट्कर्म करने लगे, इस प्रकार वह देवता पितर और अतिथियोंको प्रिय होगए ॥ ७ ॥ इस प्रकार बहुतसा समय व्यतीत होने पर उन ब्राह्मणकी शुचिष्मती नामवाली व्रतचारिणी भार्या ने अपने स्वामीसे कहा ॥ ८ ॥ हे नाथ ! स्त्रियोंके योग्य स्त्रियोंको आनन्द देने वाले जितने भोग हैं वे सब भोग आपकी पत्नी बन आपकी कृपासे मैंने सब ही भोग लिये ॥ ९ ॥ हे नाथ ! अब मेरी प्रार्थना है, कि-मेरे चित्तमें बहुत दिनसे एक बात है वह गृहस्थियोंके योग्य है, क्या आप उसको मुझे देंगे ॥१०॥ विश्वानरने कहा, कि--हे प्रिय और हित चाहने वाली सुश्रोणि ! तुम्हारे लिये न देने योग्य क्या वस्तु होसकती है ? हे महाभागे ! तुम्हारी जो इच्छा हो प्रकट करो, मैं अविलम्ब वह वस्तु दूँगा ॥११॥ हे कल्याणि ! सब प्रकारका कल्याण करने वाले महेशकी कृपासे मुझे इस लोककी वा परलोककी कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ १२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-

नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य वचः पत्युस्तस्य सा पतिदेवता । उवाच हृष्टवदना करौ बद्ध्वा विनीतिका ॥ १३ ॥ शुचिष्मत्युवाच । वरयोग्यास्मि चेन्नाथ यदि देयो वरो मम । महेशसदृशम्पुत्रन्देहि नान्यं वरं वृणे ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तस्या वचश्श्रुत्वा ब्राह्मणस्स शुचिव्रतः । क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्सञ्चिन्तयत् ॥ १५ ॥ अहो किं मे तया तन्व्या प्रार्थितं ह्यतिदुर्लभम् । मनोरथपथाद्दूरमस्तु वा स हि सर्व्वकृत् ॥ १६ ॥ तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शम्भुना । व्याहृतं कोऽन्यथा कर्त्तुमुत्सहेत भवेदिदम् ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति सञ्चिंत्य स मुनिर्विश्वानर उदारधीः । ततः प्रोवाच ताम्पत्नीमेकपत्नीव्रते स्थितः ॥१८॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्थमाश्वास्य तान्पत्नींजगाम तपसे मुनिः । यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधितिष्ठति ॥ १९ ॥ प्राप्य वाराणसीं तूर्णं दृष्ट्वा ताम्मणिकर्णिकाम् । तत्याज तापत्रितयमपि जन्मशतार्जितम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा सर्वाणि लिंगानि विश्वेशप्रमुखानि च । स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥ २१ ॥ नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीं शर्वां प्रणम्य च

पतिके इस वचनको सुन उस पतिदेवता नारीका मुख खिल उठा, वह विनीतभावसे हाथ जोड़ कर कहने लगी ॥ १३ ॥ शुचिष्मतीने कहा, कि—हे नाथ ! यदि मैं वरको पात्र होऊँ, यदि आप मुझे वर देना चाहें तो मुझे महेशकी समान पुत्र दीजिये, मैं और कुछ वर माँगना नहीं चाहती ॥१४॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—उसके इस वचनको सुन वह पवित्रव्रतधारी ब्राह्मण क्षण भरके लिये समाधि लगा हृदयमें विचारने लगे ॥ १५ ॥ अहो ! मेरी इस सूक्ष्माङ्गी पत्नीने यह क्या अतिदुर्लभ बात माँगी, इसका तो मेरे मनमें विचार भी नहीं उठ सकता था, अच्छा ! वह शिव तो सब कुछ कर सकते हैं ॥ १६ । उन्होंने ही इसके मुखमें स्थित हो इसकी वाणी बन यह बात कही है, अन्यथा ऐसा कहनेको यह कैसे उत्साहित होसकती थी ॥ १७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—एकपत्नीव्रतमें स्थित उदारबुद्धि मुनि विश्वानर इस प्रकार विचार कर अपनी पत्नीसे बोले ॥ १८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि वह मुनि पत्नीको ढाढ़स दे जहाँ विश्वेश्वर साक्षात् काशीनाथ विराजमान हैं तहाँ तप करनेके लिये चल दिये ॥ १९ ॥ और शीघ्र ही बनारसमें मणिकर्णिकाके दर्शन कर सैंकड़ों जन्मोंके आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक तापोंसे मुक्त होगए ॥ २० ॥ उन्होंने विश्वेश आदि लिंगोंके दर्शन कर, सब कुण्डोंमें, बावड़ियोंमें, कूपों पर और सरोवरोंमें स्नान किया २१ फिर सकल विनायकोंको, गौरीको शर्वाको प्रणाम किया, फिर पापभक्षण

सम्पूज्य कालराजञ्च भैरवम्पापभक्षणम् ॥ २२ ॥ दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः । आदिकेशवमुख्यांश्च केशवान्परितोष्य च ॥२३॥ लोलार्कमुखसूर्यांश्च प्रणम्य स पुनः पुनः । कृत्वा च पिण्डदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥ २४ ॥ सहस्रभोजनाद्यैश्च मुनीन्विप्रान्प्रतर्प्य च । महापूजोपचारैश्च लिंगान्यभ्यर्च्य भक्तितः ॥ २५ ॥ असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम् । यत्र निश्चलतामेति तपस्तनयकाम्यया ॥२६॥ क्षणं विचार्य स मुनिरिति विश्वानरस्सुधीः । क्षिप्रम्पुत्रप्रदं लिंगं वीरेशम्प्रशशंस ह ॥२७॥ असंख्यातास्सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिं गतास्ततः । सिद्धलिंगमिति ख्यातं तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ २८ ॥ वीरेश्वरम्महालिंगमब्दमभ्यर्च्य भक्तितः । आयुर्मनोरथं सर्वं पुत्रादिकमनेकशः ॥२९॥ अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्य त्रिकालतः । आशु पुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितं स्त्रिया ३० नन्दीश्वर उवाच । इति कृत्वा मतिन्धीरो विप्रो विश्वानरः कृती । चन्द्रकूपजले स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती ॥३१॥ एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्ताशनोऽभवत् ।

भैरव काल-राजकी पूजा की ॥ २२ ॥ फिर दण्डनायक आदि मुख्य गणों की प्रयत्नपूर्वक स्तुति की आदिकेशव और केशवको सन्तुष्ट किया ॥ २३ ॥ और लोलार्क आदि मुख्य सूर्योंको बारम्बार प्रणाम किया, फिर तन्द्रा छोड़ कर सब तीर्थोंमें पिण्डदान किया ॥ २४ ॥ सहस्र सहस्र मुनियोंको और ब्राह्मणोंको भोजन करा कर तृप्त किया तथा पूजाकी बड़ी बड़ी सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक लिंगोंका पूजन किया ॥ २५ ॥ और बारम्बार विचार किया, कि-कौन लिंग शीघ्र ही सिद्धि देने वाला है ? जहाँ पुत्रकी कामनासे निश्चल तप किया जासके ॥ २६ ॥ सुबुद्धि मुनि विश्वानरने इस प्रकार क्षण भर विचार कर वीरेश लिंगको शीघ्र ही पुत्र देने वाला निश्चित कर उसकी प्रशंसा की ॥ २७ ॥ कि-इस लिंग पर असंख्यों हजारों सिद्धों ने सिद्धि पाई है, अतएव यह वीरेश्वर नामका श्रेष्ठ लिंग सिद्ध-लिङ्ग नामसे प्रसिद्ध है ॥ २८ ॥ इन वीरेश्वर महालिंगका वर्ष भर तक भक्तिपूर्वक पूजन करके आयु मनोरथ और पुत्र अनेक वार (प्राप्त हुए हैं) ॥ २९ ॥ मैं भी यहाँ तीनों समय वीरेशकी आराधना कर भार्याके चाहे हुए पुत्रको शीघ्र ही पाऊँगा ॥ ३० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् धीर कार्यकुशल व्रत करनेके स्वभाव वाले विप्र विश्वानरने चन्द्रकूपके जलसे स्नान कर (शिवपूजनका) नियम ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ वह एक मास तक एक समय भोजन करते रहे, एक मास तक रात्रिमें भोजन करते रहे एक मास बिना माँगे जो कुछ मिल जाता था उसको खाते रहे

अयाचिताशनो मासम्मासन्त्यक्ताशनः पुनः ॥ ३२ ॥ पयोव्रतोऽभवन्मासम्मासं शाकफलाशनः । मासम्मुष्टितिलाहारो मासं पानीयभोजनः ॥३३॥ पञ्चगव्याशनो मासम्मासश्चान्द्रायणव्रती । मासं कुशाग्रजलभुग्मासं श्वसनभक्षणः ॥ ३४ ॥ एवमब्दमितं कालन्ततप स तपोऽद्भुतम् । त्रिकालमर्चयद्भक्त्या वीरेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ अथ त्रयोदशे मासि स्नात्वा त्रिपथगाम्भसि । प्रत्यूष एव वीरेशं यावदायाति स द्विजः ॥ ३६ ॥ तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्ये लिंगन्तपोधनः । विभूतिभूषणम्बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ॥ ३७ ॥ आकर्णायतनेत्रञ्च सुरक्तदशनच्छदम् । चारुपिंगजटामौलिन्नग्नम्प्रहसिताननम् ॥ ३८ ॥ शैशवोचितनेपथ्यधारिणञ्चितिधारिणम् । पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ॥३९॥ तमालोक्य मुदम्प्राप्य रोमकञ्चुकितो मुनिः । प्रोच्चचार हृदालापान्नमोऽस्त्विति पुनः पुनः४० अभिलाषप्रदैः पद्यैरष्टभिर्बालरूपिणम् । तुष्टाव परमानन्दं शंभुं विश्वानरः कृती ॥ ४१ ॥ विश्वानर उवाच । एकम्ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह

और एक मास तक निराहार रहकर व्रत करते रहे ॥ ३२ ॥ फिर एक मास तक दुग्ध पीते रहे, फिर एक मास तक शाक और फल खाते रहे, महीने भर तक मुट्ठी भर तिल ही खाते रहे, फिर मास भर तक जल पर ही निर्वाह करते रहे ॥ ३३ ॥ फिर एक मास तक पञ्चगव्यका भक्षण कर व्रत करते रहे, फिर एक मास तक चान्द्रायण व्रत कर शिवपूजन करते रहे, फिर एक मास तक कुशके अग्रभागसे टपके जलको पीकर शिवपूजन करते रहे फिर एक मास तक वायुभक्षण कर शिव--पूजा करते रहे ॥३४॥ इस प्रकार उन्होंने एक वर्ष तक तीनों समय भक्तिपूर्वक वीरेश नामक उत्तम लिंगका पूजन करते हुए अद्भुत तप किया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर तेरहवाँ महीना आने पर गंगाजलमें स्नान कर वह द्विज जैसे ही प्रत्यूषके समय मन्दिरमें आये ॥ ३६ ॥ कि—उन तपोधनने लिंगके मध्यमें आठ वर्षकी आकृति वाले विभूतिसे भूषित एक बालकको देखा ॥ ३७ ॥ उस बालकके नेत्र कानों तक चौड़े थे, ओठ लाल २ थे मस्तक पर सुन्दर पीली जटायें थीं, शरीर नग्न था मुख हँस रहा था ॥ ३८ ॥ शैशवके योग्य अलंकारोंसे अलंकृत था और भस्म धारण किये हुए था, श्रुतिसूक्तोंका पाठ कर रहा था और खेल खेलमें हँस रहा था ॥ ३९ ॥ उनको देख मुनिके रोम हर्षके कारण खड़े होगए तब वह नमो नमः कह अपने हृदयके उद्गारोंको प्रकट करने लगे ॥४०॥ कर्मकुशल विश्वानरने बालरूपधारी परमानन्द शम्भुकी अभिलाषाको पूर्ण करने वाले आठ पद्योंसे स्तुति की ॥ ४१ ॥ विश्वानरने कहा, कि—एक

नानास्ति किञ्चित् । एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकन्त्वामप्रपद्ये महेशम् ४२
कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः । यद्वत्प्रत्यग्धर्म
एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यन्त्वां विनेशम्प्रपद्ये ॥ ४३ ॥ रज्जौ सर्पश्शुक्तिकायां च
रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ । यद्वत्सद्विद्विष्वगेव प्रपञ्चो यस्मिञ्ज्ञाते
तम्प्रपद्ये महेशम् ॥ ४४ ॥ तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ
प्रसादः । पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छंभो त्वं ततस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४५ ॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रस्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात् । व्यक्षः पश्येस्त्वं
रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४६ ॥ नो वेद त्वामीश
साक्षाद्धि वेदो नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य । नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च
देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ नो ते गोत्रं नो सजन्मापि नाशा नो
वा रूपं नैव शीलन्न देशः । इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्यास्सर्वान्कामान्पूर-

ब्रह्म ही अद्वितीय है, यह बात सत्य है, कि-इस संसारमें नानात्व नहीं है, एकमात्र ब्रह्ममें ही सब प्रपञ्च दीख रहा है, वह ब्रह्म एक रुद्रस्वरूप ही है, दूसरा कोई इस प्रकारका नहीं है, अतः मैं अनुपम एक आपकी ही शरण लेता हूँ ॥ ४२ ॥ हे शंभो ! आपही सबके कर्ता हर्ता हैं, अनेक रूपोंमें एक आपका ही रूप है, तब भी आप रूपरहित हैं, जैसे प्रत्यक् (आत्म) धर्म एक होने पर भी अनेक है, अतः और किसीकी शरण न लेकर एकमात्र आपकी ही मैं शरण लेता हूँ ॥ ४३ ॥ रज्जुमें साँप, सीपीमें चाँदी, मृग-मरीचिकामें जलप्रवाह जिस प्रकार ज्ञान होने पर निश्चय होता है, इसी प्रकार यह प्रपञ्च जिनका ज्ञान होने पर खुलता है उन महेशकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ४४ ॥ जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें प्रसन्नता, पुष्पमें गंध और दुग्धमें घी जिस प्रकार व्याप्त है, हे शंभो ! इसी प्रकार जगत्में आप व्याप्त हैं, अतएव मैं आपकी शरण लेता हूँ ॥ ४५ ॥ आप कानरहित होने पर भी शब्दको ग्रहण करते हैं, नाकरहित होने पर भी सूँघते हैं, चरणरहित होने पर भी दूर दौड़े चले आते हैं, नेत्रहीन होने पर भी आप देखते हैं, आप जिह्वाहीन होने पर भी रसको जानते हैं, ऐसे आपके रूपको भली प्रकार कौन जान सकता है, ऐसे आपकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ४६ ॥ हे ईश ! साक्षात्-रूपसे तो वेद भी आपको नहीं पहिचान पाता, विष्णु और सबके विधाता ब्रह्मा, योगीन्द्र तथा इन्द्र आदि देवता भी आपके पूर्ण रहस्यको नहीं जानते, परन्तु भक्तकी समझमें आपका रहस्य आता है, अतः मैं आपकी शरण लेता हूँ ॥ ४७ ॥ न कोई आपका

येस्त्वं भजे त्वाम् ॥ ४८ ॥ त्वत्तस्सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः । त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्त्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम् ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ संबद्धपाणिर्भवतीह यावत् । तावत्स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेवमतःव हृष्टः ५० बाल उवाच । विश्वानर मुनिश्रेष्ठ भूदेवाहं त्वयाद्य वै । तोषितस्सुप्रसन्नात्मा वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती । प्रत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः शंकरम्बालरूपिणम् ॥५२॥ विश्वानर उवाच । महेश्वर किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो । सर्वान्तरात्मा भगवाञ्छर्वस्सर्वप्रदो भवान् ॥५३॥ याच्ञाम्प्रति नियुक्तम्मां किं ब्रूषे दैन्यकारिणीम् । इति ज्ञात्वा महेशान यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य हि । शुचिश्शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ ५५ ॥ त्वया शुचे शुचिष्मत्यां

गोत्र है, न कोई आपका सजन्मा (सजातीय) है न आपको कोई आशा है, न आपका कोई रूप है, न आपका कोई शील है, न आपका कोई देश है, ऐसे होने पर भी आप त्रिलोकीके ईश्वर हैं अतः सब कामनाओंको पूर्ण कर सकते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ४८ ॥ यह सब प्रपञ्च आपसे ही प्रकट हुआ है हे स्मरारे ! आप ही सब हैं, आप गौरीश हैं, आप नग्न हैं तब भी परम शांत हैं, आप ही वृद्ध हैं, युवा हैं और बालक हैं, ऐसा कोई तत्त्व नहीं है जो अन्यसे हो, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ ४९ नन्दीश्वरने कहा, कि--वह ब्राह्मण इस प्रकार स्तुति कर हाथ जोड़ भूमिमें गिरे कि--सम्पूर्ण वृद्धोंके भी वृद्ध उस बालकने परमप्रसन्न होकर उन भूदेव से कहा ॥ ५० ॥ बालशिवने कहा, कि--हे मुनिश्रेष्ठ भूदेव विश्वानर ! आज आपने मेरे चित्तको प्रसन्न और सन्तुष्ट कर दिया, अतः उत्तम वर माँगो ॥ ५१ ॥ तब कृतकार्य हुए मुनिश्रेष्ठ मुनि विश्वानर चित्तमें प्रसन्न होते हुए उठे और बालरूपी शंकरसे कहने लगे ॥ ५२ ॥ विश्वानरने कहा, कि--हे सर्वज्ञ प्रभो महेश्वर ! आपसे क्या बात छिपी हुई है आप सबकी आत्मा हैं, कल्याणकारक और सर्वदायक हैं ॥ ५३ ॥ आप मुझसे दीनता दिखाने वाली याच्ञा करनेको क्यों विवश करते हैं ? हे महेशान ! इन सब बातोंको समझ आपकी जैसी इच्छा हो तैसा करिये ॥ ५४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--उनके इस वचनको सुन वह शिशु--रूपी पवित्र देव उस शुचिव्रतसे पवित्रतापूर्वक हँसकर कहने लगे ।५५। कि--हे पवित्रात्मन् ! आप शुचिष्मती नारीसे अपने हृदयमें जो अभिलाषा रखते हैं वह कामना शीघ्र ही पूर्ण

योऽभिलापः कृतो हृदि । अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम् ॥ ५६ ॥ तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते । ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्वामरप्रियः॥५७॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् । अब्दत्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ ॥ ५८ ॥ एतत्स्तोत्रस्यपठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम् । सर्वशान्तिकरञ्चापि सर्वापत्तिविनाशनम् ॥ ५९ ॥ स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकन्नात्र संशयः । सर्वस्तोत्रसमं ह्येतत्सर्वकामप्रदं सदा ॥ ६० ॥ प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाम्भवम् । वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ॥६१॥ अभिलाषाष्टकमिदन्न देयं यस्य कस्यचित् । गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ ६२ ॥ स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ । अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रम्पुत्रदन्नात्र संशयः ६३ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्बालरूपः सतां गतिः । सोऽपि विश्वानरो विप्रो हृष्टात्मा स्वगृहं ययौ ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर उवाच । स विप्रो गृहमागत्य महाहर्षसमन्वितः । प्रियायै कथया-

---

होगी ॥ ५६ ॥ हे महामते ! मैं सकल देवताओंके प्रिय पवित्र गृहपति नाम को धारण कर शुचिष्मतीसे तुम्हारा पुत्र बनकर प्रकट हूँगा ॥ ५७ ॥ तुम्हारा कहा हुआ यह पवित्र अभिलाषाष्टक नामक स्तोत्र शिवके समीप तीनों समय वर्ष भर तक पढ़ा जायेगा तो सकल कामनाओंको पूर्ण करेगा ॥ ५८ ॥ इस स्तोत्रका पाठ पुत्र पौत्र तथा धन देने वाला, सब प्रकारकी शान्ति रखने वाला तथा सब आपत्तियोंका नाश करने वाला है ॥ ५९ ॥ तथा स्वर्ग और मोक्षरूप सम्पत्ति देने वाला और सब स्तोत्रोंकी समान सदा सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ ६० ॥ पुत्रहीन पुरुष प्रतिदिन वर्ष भर तक प्रातः काल उठ स्नानकर शंभुके लिंगका पूजन कर इस स्तोत्रका पाठ करता है तो पुत्र पाता है।६१। इस महावन्ध्याओंको भी संतान देने वाले स्तोत्रकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये इस अभिलाषाष्टकको हर एकको नहीं बताना चाहिये ॥ ६२ ॥ स्त्री हो वा पुरुष जो शिवलिंगके पास इस स्तोत्रका पाठ करता है उसको पुत्रकी प्राप्ति होती है, इसमें संदेह करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--सज्जनोंकी गति बालरूपी शंकर इस प्रकार कह कर अन्तर्धान होगए, तब विप्र विश्वानरभी चित्तमें प्रसन्न हो अपने घरको चल दिये ६४ तेरहवाँ अध्यायसमाप्त। १३॥

नन्दीश्वरने कहा, कि--तदनन्तर वह ब्राह्मण घरको लौटे और उन्होंने

मास तद्वृत्तान्तमशेषतः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रपत्नी सा मुदम्प्राप शुचिष्मती । अतीव प्रेमसंयुक्ता प्रशशंस विधिन्निजम् ॥ २ ॥ अथ कालेन तयोर्विदन्तर्वत्नी बभूव ह । विधिवद्विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्म्मणि ॥३॥ ततः पुंसवनन्तेन स्पन्दनात्प्राग्विपश्चिता । गृह्योक्तविधिना सम्यक्कृतम्पुंस्त्वविवृद्धये ॥ ४ ॥ सीमन्तोऽथाष्टमे मासे गर्भरूपसमृद्धिकृत् । सुखप्रसवसिद्ध्यै च तेनाकारि कृपाविदा ॥५॥ अथातश्शुभताराधु ताराधिपवरानन: । केन्द्रे गुरौ शुभे लग्ने सुग्रहेषु युगेषु च ॥६॥ अरिष्टदीपनिर्वाणस्सर्वारिष्टविनाशकृत् । तनयो न म तस्यान्तु शुचिष्मत्याम्बभूव ह ॥ ७ ॥ शर्वस्समस्तसुखदो भूर्भुवःस्वर्निवासिनाम् । गन्धवाहनवाहाश्च दिग्वधूमुखवाससः ॥ ८ ॥ इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववृषुस्ते घनाघनाः । देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुस्सर्वतो दिशः ॥ ९ ॥ परितस्सरितस्स्वच्छा भूतानां मानसैस्सह । तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥ १० ॥ सत्त्वास्सत्वसमायुक्ताः सुधावृष्टिर्बभूव वै । कल्याणी सर्वथा वाणी प्राणिनः प्रियवत्यभूत् ॥ ११ ॥ रंभामुख्या अप्सरसो मङ्गलद्रव्यपाणयः । विद्याधर्य्यश्च किन्नर्य्य-

बड़े हर्षके साथ सारा वृत्तान्त प्रियासे कहा ॥ १ ॥ इस बातको सुन कर विप्रपत्नी शुचिष्मती प्रसन्न हो प्रेममें भर अपने प्रारब्धकी प्रशंसा करने लगी ॥ २ ॥ तदनन्तर समय आनेपर विधि विधानसे गर्भाधानकर्म करने पर उस स्त्रीने गर्भ धारण किया ॥ ३ ॥ फिर उन ब्राह्मणने पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गृह्यसूत्रमें वर्णन की हुई विधिके अनुसार गर्भच्युतिसे पहिले पुंसवन संस्कार किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन कृपालु मुनिने गर्भके रूपकी समृद्धि करने वाले सीमन्त संस्कारको सुखपूर्वक प्रसवके अभिप्रायसे आठवें महीनेमें किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर शुभ ग्रहोंके योगमें केन्द्रमें गुरु शुभ लग्न और चार शुभ ग्रहोंके योगमें चन्द्रमाकी समान श्रेष्ठ मुख वाले ॥ ६ ॥ अरिष्टस्वरूप दीपकको बुझाने वाले और सकल अरिष्टोंको नष्ट करने वाले, भूलोक भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहने वालोंको समस्त सुख देने वाले शंकर उस शुचिष्मतीके पुत्र बन कर प्रकट हुए, उस समय गंधवाहन (वायु) के वाहन (मेघ) दिशारूपी वधूके मुखके वस्त्र बन गए और वे घनघोर बादल इष्टगंध वाले पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा उस समय देवदुन्दुभियें बजने लगीं तदनन्तर सब दिशायें निर्मल होगईं ॥ ७–९ ॥ मनुष्योंके मन और नदियें चारों ओरसे निर्मल होगईं, सारा अंधकार दूर होगया रजकण भी निर्मल होगए ॥ १० ॥ प्राणियोंमें सत्त्वगुणका संचार होने लगा तथा अमृतकी वर्षा होने लगी तथा प्राणियोंकी वाणी कल्याणी और प्रिय-

स्तथामर्त्यस्सहस्रशः ॥ १२ ॥ गन्धर्वोरगयक्षाणां सुमानिन्यः शुभस्वराः । गायन्त्यो मंगलं गीतन्तत्राजग्मुरनेकशः ॥ १३ ॥ मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः । वसिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो विभाण्डो माण्डवीसुतः ॥ १४ ॥ लोमशो रोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः । भृगुस्तु गालवो गर्गो जातूकर्णः पराशरः १५ आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यो दक्षवाल्मीकिमुद्गलाः । शातातपश्च लिखितश्शिलादः शंख उञ्छभुक् ॥१६॥ जमदग्निश्च संवर्तो मतंगो भरतोंशुमान् । व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकस्सुश्रुतश्शुकः ॥ १७ ॥ ऋष्यश्रृङ्गोऽथ दुर्वासाश्शुचिर्नारद्तुम्बुरू । उत्तंको वामदेवश्च पवनोऽशितदेवलौ ॥ १८ ॥ सालंकायनहारीतौ विश्वामित्रोऽथ भार्गवः । मृकण्डस्सह पुत्रेण पर्वतो दारुकस्तथा ॥ १९ ॥ धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः । तच्छान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम् ॥ २० ॥ ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः । नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्य्या सह वृषध्वजः ॥ २१ ॥ महेन्द्रमुख्या गीर्वाणा नागाः पातालवासिनः । रत्नान्यादाय बहुशस्ससरित्का महाब्धयः ॥ २२ ॥ स्थावरा जंगमं रूपं धृत्वायातास्सहस्रशः । महामहोत्सवे तस्मिन्नभूवाकालकौमुदी ॥ २३ ॥ जातकर्म स्वयं

भाषिणी हो उठी ॥ ११ ॥ तथा रंभा आदि अप्सरायें मंगलद्रव्योंको हाथ में ले तहाँ उपस्थित हुई, तथा हजारों विद्याधरियें, किन्नरियें, देवपत्नियें गंधर्व नाग और यक्षोंकी मानिनी पत्नियें शुभ-स्वरमें मांगलिक गीत गातीं हुईं तहाँ पधारीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ तथा तहाँ शान्तिपाठ करनेके लिये मरीचि अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, माण्डवीसुत-विभाण्ड, लोमश, रोमचरण भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, उञ्छ--भोक्ता--शङ्ख, जमदग्नि, सम्वर्त, मतङ्ग, भरत, अंशुमान् व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृङ्ग, दुर्वासा, शुचि नारद, तुम्बुरु, उत्तंक वामदेव, पवन अशित, देवल, सालङ्कायन, हारीत विश्वामित्र, भार्गव, पुत्रसहित मृकण्ड, पर्वत दारुक, धौम्य उपमन्यु, वत्स आदि मुनि तथा मुनिकन्याएँ आईं, इस प्रकार विश्वानरका आश्रम धन्य होगया ॥ १४--२० ॥ ब्रह्मा और बृहस्पतिको साथ ले गरुडवाहन विष्णु तहाँ पधारे, तथा नन्दी, भृंगी और गौरीके साथ वृषभध्वज भी तहाँ पधारे ॥ २१ ॥ इन्द्र आदि देवता, पातालवासी नाग तथा नदियों सहित समुद्र बहुतसे रत्नोंको लेकर तहाँ पधारे ॥ २२ ॥ हजारों स्थावर जंगमरूपोंको धारण कर तहाँ पधारे, इस प्रकार उस महामहोत्सवमें असमय

तस्य कृतवान्विधिरानतः । श्रुतिं विचार्य्य तद्रूपन्नाम्ना गृहपतिस्त्वयम् ॥२४॥ इति नाम ददौ तस्मै देयमेकादशेऽहनि । नामकर्मविधानेन तदर्थं श्रुतिमुच्चरन् ॥ २५ ॥ चतुर्निगमन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च । समयाद्धंसमारुह्य सर्वेषाञ्च पितामहः ॥ २६ ॥ कृत्वा बालोचितां रक्षां लौकिकीं गतिमाश्रितः । आरुह्य यानं स्वन्धाम हरोऽपि हरिणा ययौ ॥२७॥ अहो रूपमहो तेजस्त्वहो सर्वाङ्गलक्षणम् । अहो शुचिष्मतो भाग्यमाविरासीत्स्वयं हरः ॥ २८ ॥ अथ वा किमिदं चित्रं सर्वभक्तजनेष्वहो । स्वयमाविरभूद्रुद्रो यतो रुद्रस्तदर्चितः ॥ २९ ॥ इति स्तुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहाः । विश्वानरं समापृच्छ्य जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥३०॥ अतः पुत्रं समीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः । पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३१ ॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनं वृथा । अपुत्रस्य तपश्छिन्नं नोपवित्रत्यपुत्रतः ॥ ३२ ॥ न पुत्रात्परमो लाभो न पुत्रात्परमं सुखम् । न पुत्रात्परमं मित्रम्परत्रेह च कुत्रचित् ॥३३॥ निष्क्रमोऽथ चतुर्थेऽस्य मासि विना

में ही चाँदनी फैल गई ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीने नम्रतापूर्वक स्वयं ही उसका जातकर्म संस्कार किया और उस बालकके रूप तथा वेदका विचार करके कहा, कि--इस बालकका गृहपति नाम रखता हूँ, नामकर्मके विधानसे ग्यारहवें दिन यही इसका नाम धरना चाहिये, इसके लिये उन्होंने श्रुति भी पढ़ी ॥ २४ ॥ २५ ॥ फिर ब्रह्माजी चारों वेदोंके मन्त्रोंसे आशीर्वाद दे तथा अभिनन्दन कर हंस पर चढ़ सबके देखते देखते पधार गए ॥ २६ ॥ और लोकाचार दिखानेके लिये हर भी उस बालककी बालोचित रक्षा करके अपनी सवारी पर सवार हो अपने धामको चल दिये, इसी प्रकार हरि भी चल दिये ॥ २७ ॥ (और सब भी) अहो, इस बालकका कैसा रूप है. अहो! इसका तेज कैसा विलक्षण है, अहो! इसके सकल अङ्गोंमें कैसे सुलक्षण हैं शुचिष्मतीका अहोभाग्य है, कि--इसके यहाँ स्वयं हर अवतीर्ण हुए हैं ॥२८॥ अथवा भक्तोंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, इन्होंने रुद्रकी पूजाकी थी, अतः रुद्रने स्वयं ही इनके यहाँ अवतार लिया है, इस प्रकार आपसमें प्रशंसा करते हुए रोमाञ्चितशरीर वाले वे विश्वानरसे बूझ कर अपने अपने घरोंको जाने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सनातनी श्रुति है, कि--पुत्रसे लोकोंको जीता जाता है, इसीलिये गृहस्थाश्रमी पुत्रकी अभिलाषा किया करते हैं ।३१। अपुत्रका घर सूना है अपुत्रका सञ्चय करना व्यर्थ है, अपुत्रका तप करना व्यर्थ है पुत्र रहित पुरुष पवित्र नहीं होसकता ३२ कोई लाभ पुत्रलाभसे श्रेष्ठ नहीं है, पुत्रसुखसे अधिक कोई सुख नहीं

कृतो गृहात्। अन्नप्राशनमब्दाहे चूडाङ्कं चार्थवत्कृता ॥ ३४ ॥ कर्णवेधन्ततः कृत्वा श्रवणर्क्षे स कर्मवित्। ब्रह्मतेजोभिवृद्धयर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतन्ददौ ॥ ३५ ॥ उपाकर्म ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः। अब्दं वेदान्स विधिनाऽध्यैष्ट सांगपद-क्रमात् ॥ ३६ ॥ विद्याजातं समस्तं च साक्षिमात्रं गुरोर्मुखात्। विनयादिगुणा-नाविष्कुर्वञ्जग्राह शक्तिमान् ॥ ३७ ॥ ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोश्शुश्रूषणे रतम्। वैश्वानरं गृहपतिं द्रष्टुमायाच्च नारदः ॥ ३८ ॥ विश्वानरोटजम्प्राप्य देवर्षिस्तं तु कौतुकी। अपृच्छत्कुशलन्तत्र गृहीतार्धासनः क्रमात् ॥ ३९ ॥ ततः सर्वं च तद्भाग्यं पुत्रधर्मं च सम्मुखे। वैश्वानरं समवदत्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः। प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाविशत् ॥ ४१ ॥ वैश्वानर समभ्येहि ममोत्संगे निषीद भोः। लक्षणानीपरीक्षेऽहं पाणिन्दर्शय दक्षिणम् ॥ ४२ ॥ ततो दृष्ट्वा तु सर्वं हि तालुजिह्वादि नारदः। विश्वानरं समवदच्छिवप्रेरणया सुधीः ॥ ४३ ॥ नारद

है तथा इस लोकमें वा परलोकमें पुत्रसे अधिक कोई मित्र नहीं है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर चौथे महीनेमें पिताने इनका घरसे निष्क्रमणसंस्कार किया, वर्ष-गाँठके दिन अन्नप्राशन किया फिर आधा समय और व्यतीत होने पर अन्वर्थक चूडाकर्मसंस्कार किया, फिर उन कर्मवेत्ता मुनिने श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध--संस्कार किया, फिर ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षमें उपनयन किया ॥ ३४ । ३५ ॥ फिर उपाकर्म कर वेदोंको पढ़ाया, तदनन्तर वह सुधी बालक पद क्रम आदिसहित विधिपूर्वक वेदोंको वर्ष भरमें पढ़ने लगा ॥ ३६ ॥ फिर उस समर्थ बालकने विनयादि गुणोंको प्रकट कर साक्षीरूपमें गुरुको रख उनके मुखसे समस्त विद्याओंको ग्रहण कर लिया ३७ तदनन्तर नवम वर्ष आने पर माता पिताकी सेवामें परायण विश्वानर—पुत्र गृहपतिको देखनेके लिये नारदजी पधारे ॥ ३८ ॥ देवर्षि नारद तो कौतुकी हैं अत एव उन्होंने विश्वानरकी कुटियामें जा उनके साथ आधे आसन पर बैठ कुशलसमाचार बूझा ॥ ३९ ॥ फिर वह शिवके चरणकमलका स्मरण कर गृहपतिके सामने उसके भाग्यका और पुत्रधर्मका वर्णन करना चाहने लगे ॥ ४० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—मुनिके कहने पर वह बालक माता पिताकी आज्ञासे नारदजीको प्रणाम कर भक्ति भरे चित्तसे प्रसन्न होता हुआ उनके पास बैठ गया ॥ ४१ ॥ (नारदजीने कहा, कि—) अरे बेटा वैश्वानर ! आ मेरी गोदीमें बैठ ! अपना दाहिना हाथ तो दिखा, मैं तेरे लक्षणोंकी परीक्षा करूँ ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सुधी नारद बालककी जिह्वा तालु आदि

उवाच । विश्वानरमुने वच्मि शृणु पुत्रांकमादरात् । सर्वांगस्वंकवान्पुत्रो महालक्षणवानयम् ॥ ४४ ॥ किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् । सम्पूर्णनिर्मलकलं पालयेद्विधुवद्विधिः ॥ ४५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्त्वसौ शिशुः । गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥ ४६ ॥ शंकेऽस्य द्वादशे वर्षे प्रत्यूहो विद्युदग्नितः । इत्युक्त्वा नारदोऽगच्छद्देवलोकं यथागतम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर उवाच । विश्वानरस्सपत्नीकस्तच्छ्रुत्वा नारदेरितम् । तदेवस्मन्यमानोऽभूद्वज्रपातं सुदारुणम् ॥ १ ॥ हा हतोऽस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् । मूर्च्छामवाप महतीं पुत्रशोकसमाकुलः ॥ २ ॥ शुचिष्मत्यपि दुःखार्त्ता रुरोदातीव दुस्सहम् । अतिस्वरेण हारावैरत्यन्तं व्याकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥ श्रुत्वार्त्तनादमिति विश्वनरोऽपि मोहं हित्वोत्थितः किमित किमिति किं किमेतत् । उच्चैर्वदन् गृहपतिः क स मे वहिस्थः प्राणोन्तरात्मनिलयस्सकलेन्द्रियेशः ॥ ४ ॥ ततो दृष्ट्वा

को देख शिवकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहने लगे ॥ ४३ ॥ नारदजीका भाषण—हे विश्वानर मुने ! पुत्रके भाग्यका वर्णन आदरपूर्वक सुनो ! इसके सब अंगोंमें शुभ—लक्षण हैं, यह पुत्र परम भाग्यवान् है ॥ ४४ ॥ किंतु सर्वगुणसम्पन्न तथा सकल शुभ लक्षणोंसे मण्डित पूर्ण निर्मल कलाओं वाले चन्द्रमाकी समान इस बालककी विधाता ही रक्षा करें ॥ ४५ ॥ अतः सब प्रकारका यत्न कर इस बालककी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि—विधाताके टेढ़े होने पर यह सब गुण भी दोष बन सकते हैं ॥ ४६ ॥ मुझे शंका है, कि-बारहवें वर्षमें कहीं इस पर अग्नि वा बिजली न गिरे, नारदजी इस प्रकार कह जैसे आये थे तैसे ही देवलोकको लौट गए ॥ ४७ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि--विश्वानरने और उनकी पत्नीने जब यह बात सुनी तो उन्होंने अपने ऊपर दारुण वज्रपात होने वाला समझा ॥ १ ॥ और उन्होंने हाय ! मैं मारा गया कह कर अपना हृदय कूट डाला, और पुत्रके शोकसे मूर्छित होगए ॥ २ ॥ उस समय शुचिष्मतीकी इन्द्रियें भी अकुला उठीं अतः वह भी दुःखित हो हाहाकार कर डीख फोड़ कर रोने लगी ॥ ३ ॥ आर्तनादसे विश्वानरकी मूर्छा भंग होगई और क्या है ? क्या है ? क्या है ? कहते हुए वह उठ बैठे और जोरसे बोल उठे, -कि—वह मेरा बाहर घूमने वाला प्राण, वह मेरे चित्तका विश्रामस्थान, वह मेरी सकल

स पितरौ बहुशोकसमावृतौ । स्मितश्चोवाच गृहप तिस्सबालश्शंकरांशजः ॥ ५ ॥ गृहपतिरुवाच । हे मातस्तात किं जातं कारणन्तद्वदाधुना । किमर्थं रुदितोऽस्यर्थं त्रासस्तादृक्कुतो हि वाम् ॥ ६ ॥ न मां कृतत्रपुस्त्राणस्भवच्चरणरेणुभिः । कालः कलयितुं शक्तो वराकी चञ्चलाल्पिका ॥ ७ ॥ प्रतिज्ञां शृणुतान्तातौ यदि वान्तनयो ह्यहम् । करिष्येऽहं तथा येन मृत्युस्त्रस्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ मृत्युं जयं समाराध्य सर्वज्ञं सर्वदं सताम् । जयिष्यामि महाकालं सत्यं तातौ वदाम्यहम् ९ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य जारितौ द्विजदम्पती । अकालामृत-वर्षौघैर्गततापौ तवोचतुः ॥ १० ॥ द्विजदम्पती ऊचतुः । पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक् कीदृक् पुनर्वद । कालः कलयितुन्नालं वराकी चञ्चलास्ति का ॥ ११ ॥ आवयो-स्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः । मृत्युंजयाख्यदेवस्य समाराधनलक्षणः ॥ १२ ॥ तद्दूच्च शरणं शम्भोर्नातः परतरं हि तत् । मनोरथपथातीतकारिणः पापहारिणः १३

इन्द्रियोंका स्वामी गृहपति कहाँ है ? ॥ ४ ॥ शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ वह बालक गृहपति माता पिताको अतीव शोकाकुल देख मुस्कुरा कर कहने लगा ॥ ५ ॥ गृहपतिने कहा, कि--हे मातः ! हे पितः ! क्या हुआ, किस लिये ऐसी रोवा रिटाई होरही है, वह ऐसा क्या कारण है जिससे ऐसा त्रास फैल रहा है ? ॥ ६ ॥ जब मैं आपके चरणकमलोंकी रेणुसे अपने शरीरकी रक्षा कर लूँ तो काल मुझ पर अपना सिक्का नहीं जमा सकता, कहीं वराकी (शिवशक्ति) पर अल्प बल वाली मृत्यु धौंस जमा सकती है ॥ ७ ॥ हे मातः ! हे पितः ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनिये ! यदि मैं आप दोनों का पुत्र हूँ, तो मैं ऐसा उपाय करूँगा, कि--मृत्यु भी सहम जावेगी ॥ ८ ॥ मैं सज्जनोंको सब कुछ देने वाले सर्वज्ञ मृत्युञ्जयकी आराधना कर महाकाल को भी जीत लूँगा, हे तात ! हे मातः ! यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--उसके इस वचनको सुन मुरझाये हुए वे द्विजदम्पती अकालमें हुई अमृतवर्षासे तापरहित हो कहने लगे ॥ १० ॥ द्विजदम्पती बोल उठे फिर कह ! फिर कह !! फिर कह !!! क्या बात है ? क्या बात है जिसको काल भी वशमें नहीं कर सकता वह वराकी और चञ्चला क्या है ॥ ११ ॥ हम दोनोंके सन्तापको दूर करनेके लिये मृत्युञ्जयदेवकी आराधनारूप बड़ा भारी उपाय तो तू नहीं बता रहा है ? ॥ १२ ॥ जिस बातका प्राणी मनोरथ भी नहीं कर सकता उस बातको भी देने वाले पाप-हारी शंभुकी शरण लेनेकी समान वा उससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है ॥ १३ ॥ हे तात ! क्या तूने नहीं सुना, कि--कालकी फाँसीमें फँसे हुए

किन्न श्रुतन्त्वया तात श्वेतकेतुं यथा पुरा । पाशितं कालपाशेन ररक्ष त्रिपुरान्तकः ॥ १४ ॥ शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्दमात्रकम् । शिवो निजजनञ्चक्रे नन्दिनं विश्वनंदिनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् । पीत्वा हालाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ जलन्धरं महादर्पं हतत्रैलोक्यसम्पदम् । रुचिरांगुष्ठरेखोत्थचक्रेण निजघान यः ॥ १७ ॥ य एकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरम्पुरा । त्रैलोक्यैश्वर्य्यसम्मूढं शोषयामास भानुना ॥ १८ ॥ कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् । निनायानंगपदवीं वीक्षमाणेष्वजादिषु ॥ १९ ॥ तं ब्रह्माद्यैककर्तारम्मेघवाहनमच्युतम् । प्रयाहि पुत्र शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम् २० नन्दीश्वर उवाच । पित्रोरनुज्ञामप्राप्येति प्रणम्य चरणौ तयोः । प्रादक्षिण्यमुपावृत्य बह्वाश्वास्य विनिर्ययौ ॥२१॥ सम्प्राप्य काशीं दुष्प्रापाम्ब्रह्मनारायणादिभिः । महासंवर्त्तसन्तापहन्त्रीं विश्वेशपालिताम् ॥२२॥ स्वर्धुन्या हारयष्ट्येव राजितां कण्ठभूमिषु । विचित्रगुणशालिन्या हरपत्न्या विराजिताम् ॥ २३ ॥ तत्र प्राप्य स विप्रेशः प्रागयौ मणिकर्णिकाम् । तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरम्प्रभुम् २४

श्वेतकेतुकी त्रिपुरान्तकने रक्षाकी थी ॥ १४ ॥ और शिलादके आठ वर्षकी ही अवस्था वाले मृत्युग्रस्त पुत्रको शिवने विश्वको आनन्द देने वाला नन्दी नामक अपना जन बना लिया था ॥ १५ ॥ और उन्होंने क्षीरसमुद्रके मथने से प्रकट हुए प्रलयाग्निकी समान घोर हलाहलको पीकर त्रिलोकीकी रक्षा की थी ॥१६॥ और त्रिलोकोकी सम्पत्ति हड़पने वाले महाघमण्डी जलंधरको अपने रुचिर अँगूठेकी रेखासे उठे हुए चक्रसे मार डाला था ॥ १७ ॥ और इन शिवने त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहमें पड़े त्रिपुरको पहिले एक ही बाणकी टक्करसे प्रकट हुई अग्निकी किरणसे सोख लिया था ॥१८॥ और त्रिलोकी को जीत कर इतराते हुए कामदेवको दृष्टि डाल कर ही ब्रह्मादिके सामने अनङ्ग (अंगरहित) बना दिया था ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! उन विश्वरक्षामणि, ब्रह्मा आदिके भी कर्ता मेघवाहन अच्युत शंकरकी तुम शरण लो ॥ २० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--माता पिताकी आज्ञा पा (बालक गृहपति) उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा कर तथा उनको आश्वासन देकर चल दिया ॥२१॥ और ब्रह्मा नारायण आदिको भी कठिनतासे प्राप्त होने वाली, महाप्रलयके भी सन्तापको शान्त करने वाली विश्वेश्वरकी पालित काशीपुरीमें पहुँचा ॥ २२ ॥ वह काशीपुरी गंगाजीसे पुष्पमालाकी समान घाटों पर शोभा पारही थी, विचित्रगुणों वाली हरपत्नी (गंगा) से सुशोभित थी ॥ २३ ॥ तहाँ पहुँच कर वह विप्रेश पहिले मणिकर्णिका पर

साञ्जलिर्नतशीर्षोऽसौ महानन्दान्वितस्सुधीः । त्रैलोक्यस्य प्राणसन्त्राणकारिणं प्रणनाम ह ॥ २५ ॥ आलोक्यालोक्य तल्लिंगं तुतोष हृदये मुहुः । परमानन्दकंदाढ्यं स्फुटमेतन्न संशयः ॥ २६ ॥ अहो न मत्तो धन्योऽस्ति त्रैलोक्ये सचराचरे । यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥ २७ ॥ मम भाग्योदयायैव नारदेन महर्षिणा । पुरागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योस्म्यहन्ततः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्यानन्दामृतरसैर्विधाय स हि पारणम् । तत शुभेऽह्नि संस्थाप्य लिंगं सर्व्वहितप्रदम् ॥२९॥ जग्राह नियमान्घोरान् दुष्करानकृतात्मभिः । अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णैर्गङ्गाम्भसा शुभैः ॥ ३० ॥ संस्नाप्य वाससा पूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम् । नीलोत्पलमयीं मालां समर्पयति सोऽन्वहम् ॥३१॥ अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् । स पक्षे वाथ वा मासे कन्दमूलफलाशनः३२ शीर्णपर्णाशनैर्धीरः षण्मासं सम्बभूव सः । षण्म सं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जलबिन्दुभुक् ॥ ३३ ॥ एवं वर्षद्वयस्तस्य व्यतिक्रांतं महात्मनः । शिवैकमनसो विप्रास्तप्यमानस्य नारद ॥ ३४ ॥ जन्मतो द्वादशे वर्षे तद्वचो नारदेरितम् ।

पहुँचे और शास्त्रमें वर्णित रीतिसे स्नान कर विश्वेश्वर प्रभुके दर्शन किये २४ फिर परमानन्दमें भरे बुद्धिमान् गृहपतिने हाथ जोड़ मस्तक झुका त्रिलोकीके प्राणोंकी रक्षा करने वाले शिवको प्रणाम किया ॥ २५ । और परमानन्दकन्द शिवलिंगका वारम्बार दर्शन कर प्रसन्न होने लगा ॥ २६ ॥ कि--इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे अधिक धन्य और कोई है, ही नहीं क्योंकि श्रीमद्विश्वेश्वर प्रभुका दर्शन कर रहा हूँ ।२७॥ मेरा भाग्योदय होनेसे ही नारदमुनिने आकर यह बात कही थी, उसीके कारण मैं कृतकृत्य होरहा हूँ २८ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार आनन्दामृत--रसोंसे पारणा कर उसने शुभ दिनमें सर्वहितकारी शिवलिंगकी स्थापना की ॥२९॥ और साधारण मनुष्योंके लिये दुष्कर नियमोंका पालन करने लगा, कि--एक सौ आठ घड़ोंको गंगाजलसे भर लेता था, फिर उन पर छन्ना रख पवित्र चित्तसे प्रतिदिन शिवको स्नान कराता था, फिर नील-कमलकी माला अर्पण करता था ॥ ३० ॥ उस मालामें एक हजार आठ फूल गुँथे हुए होते थे, इस प्रकार वह (बालमुनि) पखवाड़ेमें वा एक माहमें कन्द मूल फल खाने लगे, छः महीने तक गिरे हुए पत्तोंको खाते रहे, फिर उन धीर मुनिने छः महीने तक वायु ही पीकर विता दिये, फिर छः महीने जलविन्दुओंके आधार पर विता दिये॥ ३१-३३ ॥ हे नारद ! इस प्रकार एकमात्र शिवमें ही मन लगा कर तप करते हुए उन महात्माको वर्षों पूर्ण होगये ॥ ३४ ॥

सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः ॥ ३५ ॥ उवाच च वरं ब्रूहि द्विज त्वन्मनसि स्थितम् । अहं शतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोऽस्मि शुभव्रतैः ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्य वाक्यम्मुनिकुमारकः । उवाच मधुरन्धीरः कीर्तयन्मधुराक्षरम् ॥ ३७ ॥ गृहपतिरुवाच । मघवन् वृत्रशत्रो त्वां जाने कुलिशपाणिनम् । नाहं वृणे वरन्त्वत्तश्शंकरो वरदोऽस्ति मे ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच । न मत्तश्शंकरस्त्वन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो । विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मा चिरम् ॥ ३९ ॥ गृहपतिरुवाच । गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारे पाकशासन । न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः । उद्यम्य कुलिशं घोरमभीषयामास बालकम् ॥४१॥ स दृष्ट्वा बालको वज्रं विद्युज्ज्वालासमाकुलम् । स्मरन्नारदवाक्यं च मुमूर्च्छ भयविह्वलः ॥ ४२ ॥ अथ गौरीपतिश्शम्भुराविरासीत्तमोनुदः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते स्पर्शैस्संजीवयन्निव ॥ ४३ ॥ उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिनक्षये । अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम् ॥ ४४ ॥ भाले लोचनमालोक्य कण्ठे

तदनन्तर जन्मसे बारहवें वर्षमें नारदजीके कहे वचनको सत्यसा करते हुए वज्रधारी इन्द्र तहाँ पधारे ॥३५॥ और कहने लगे, कि—हे विप्र ! वर माँगो, तुम्हारा जो मनोरथ हो उसको मैं पूर्ण करूँगा, मैं तुम्हारे शुभव्रतोंसे प्रसन्न हूँ ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—वह मुनिकुमार महेन्द्रके इस वचनको सुन धीर बना रहा और मधुरता भरे मधुर अक्षर कहने लगा ३७ गृहपतिने कहा, कि—हे वृत्रके शत्रु मघवन् ! मैं जानता हूँ, आप वज्रधारी इन्द्र हैं, मैं आपसे वर माँगना नहीं चाहता, मुझे तो शिवजी ही वर देंगे ॥ ३८ ॥ इन्द्रने कहा, कि—शंकर मुझसे दूसरे नहीं हैं, हे शिशो ! मैं देवदेव हूँ, अतः तू बालकपनको छोड़ कर मुझसे वर माँग ।३९। गृहपतिने कहा, कि—अरे ! अहल्याके यार दुष्ट पर्वत-शत्रु पाकशासन ! जा, मैं पशुपतिके अतिरिक्त और किसीसे वर माँगना नहीं चाहता ॥ ४० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस वचनको सुन इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल लाल होगए और वह घोर वज्रको उठा बालकको धमकाने लगे ॥ ४१ ॥ वह बालक बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देख नारदके वाक्यका स्मरण कर भयभीत हो मूर्छित होगया ॥४२॥ तब गौरी-पति शम्भु अंधकारको दूर करते हुए प्रकट हुए और अपने हस्तस्पर्शसे उसे जीवित करते हुए से कहने लगे, कि—तेरा कल्याण हो ! उठ ! उठ !! ॥४३॥ तब उसने संध्याके समय सोये हुए कमलोंकी समान अपने दोनों नेत्रोंको खोल दिया और

कालं वृषध्वजम् । वामाङ्गलग्निविशाङ्कितनयं चन्द्रशेखरम् ॥ ४५ ॥ कपर्दे न विराजंतं त्रिशूलाजगवायुधम् । स्फुरत्कर्पूरगौरांगं परिणद्धगजाजिनम् ॥ ४६ ॥ परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात् । हर्षबाष्पाकुलासन्नकण्ठरोमाञ्च-कञ्चुकः ॥४७॥ क्षणं च गिरिवत्तस्थौ चित्रकूटत्रिपुत्रकः । यथा तथा सुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मानमेव च ॥ ४८ ॥ न स्तोतुं न नमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तुमेव च । यदा स न शशाकालं तदा स्मित्वाह शंकरः ॥४९॥ ईश्वर उवाच । शिशो गृहपते शक्राद्वज्रोद्यतकराद्दहो । ज्ञातं भीतोऽसि मा भैषीर्जिज्ञासा ते मया कृता ॥ ५० ॥ मम भक्तस्य नो शक्रो न वज्रं चान्तकोऽपि च । प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वम्वि-भीषितः ॥ ५१ ॥ वरन्ददामि ते भद्र त्वमग्निपदभाग्भव । सर्वेषामेव देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५२ ॥ सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरो भव । धर्म-राजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि ॥ ५३ ॥ त्वयेदं स्थापितं लिंगं तव नाम्ना भविष्यति । अग्नीश्वर इति ख्यातं सर्वतेजोविवृंहणम् ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निभिः । अग्निमांद्यभयं नैव नाकालमरणं क्वचित् ॥ ५५ ॥

उठकर सैकड़ों सूर्योंसे अधिक (तेजस्वी) शंभुको देखा । ४४ ॥ मस्तक पर नेत्र, कण्ठमें कालकूट, वृषकी ध्वजा, वामाङ्गमें विराजमान पार्वती, जटाजूट की शोभा, भाल पर चन्द्रमा, त्रिशूल तथा आजगव नामक धनुष, फड़कता हुआ कपूरकी समान गोरा अंग, बँधी हुई गजचर्मको देख गुरुके वाक्योंसे और शास्त्रसे गृहपतिने समझा यह महादेव हैं तब तो हर्षसे उसका कण्ठ रुँध गया, रोमाञ्च होगया ॥ ४५-४७ ॥ वह चित्रकूटत्रिपुत्रक अपने आपे को भूल क्षणभरके लिये पर्वत सा चुप खड़ा रह गया ॥ ४८ ॥ जब वह कोई स्तुति नमस्कार और प्रार्थना न कर सका तब शंकर मुस्कुरा कर कहने लगे ॥४९॥ ईश्वरने कहा, कि-हे गृहपति ! मालूम होता है, तू वज्र उठाने वाले इन्द्रसे सहम गया है, हे वत्स ! तू डर मत ! यह तो मैंने तुझे जाँचा था ॥ ५० ॥ मेरे भक्तको वज्र इन्द्र और यमराज कोई भी नहीं दबा सकते, मैंने ही इन्द्रका रूप धारण कर तुझे डराया था ॥५१॥ हे भद्र ! मैं तुझे वर देता हूँ, तू अग्निपद धारण कर, तू ही सब ही देवताओंको वर दे सकेगा ५२ हे अग्ने ! तू सब ही प्राणियोंके भीतर रहने वाला बन, धर्मराज और इन्द्रके मध्यमें दिगीश बन राज्य पा ॥ ५३ ॥ तेरा यह स्थापित किया लिंग तेरे ही नामसे प्रसिद्ध होगा, इसका नाम सकल तेजोंको बढ़ाने वाला अग्नी-श्वर-लिंग होगा ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वरके भक्तोंको बिजली वा अग्निसे भय नहीं होगा, न अग्निमान्द्यका भय होगा तथा न उनका कभी अकालमरण

अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यां सर्वसमृद्धिदम् । अन्यत्रापि मृतो दैवाद्वह्निलोके महीयते ॥ ५६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वानीय तद्बन्धून्पित्रोश्च परिपश्यतोः । दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्र लिंगे शिवोऽविशत् ॥ ५७ ॥ इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः । नाम्ना गृहपतिस्तात शंकरस्य परात्मनः ॥५८॥ चित्रहोत्रपुरी रम्या सुखदार्चिष्मती वरा । ज्ञानवेदसि ये भक्ता ते तत्र निवसन्ति वै ॥५९॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्दृढसत्त्वा जितेन्द्रियाः । स्त्रियो वा सत्त्वसम्पन्नास्ते सर्वेऽप्यग्नितेजसः ॥ ६० ॥ अग्निहोत्ररता विप्राः स्थापिता ब्रह्मचारिणः । पञ्चाग्निवर्तिनोऽप्येवमग्निलोकेऽग्निवर्चसः ॥ ६१ ॥ शीते शीतापनुत्त्यै यस्त्वेधोभारान्प्रयच्छति । कुर्याद्वाग्निष्टिकां वाथ स वसेदग्निसन्निधौ ॥ ६२ ॥ अनाथस्याग्निसंस्कारं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः । अशक्तः प्रेरयेदन्यं सोऽग्निलोके महीयते ६३ अग्निरेको द्विजातीनां निश्श्रेयसकरः परः । गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम् ॥ ६४ ॥ अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्षणात् । पावनानि भवन्त्येव तस्मादयः पावकः स्मृतः ॥ ६५ ॥ अन्तरात्मा ह्ययं साक्षान्निश्चयो ह्याशुशुक्षणिः ।

होगा ॥ ५५ ॥ जो काशीमें सकल समृद्धियोंके देने वाले अग्नीश्वरका पूजन कर दैववश अन्य स्थानमें भी शरीर छोड़ेगा वह भी अग्निलोकमें प्रतिष्ठा पावेगा ॥ ५६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–इस प्रकार कह शिव उसके बांधवों को बुला उसके माता पिताके सामने उस अग्निका दिक्पति-पद पर अभिषेक कर वहाँ हो लिंगमें अन्तर्धान होगए ॥ ५७ ॥ इस प्रकार मैंने तुमसे यह परमात्मा शङ्करका गृहपति नामक दुर्जनोंको पीड़ा देने वाला अवतार कहा ५८ चित्रहोत्रपुरी रमणीय है तथा अर्चिष्मती नगरी सुख देने वाली और श्रेष्ठ है जो अग्निके भक्त होते हैं वे इन नगरियोंमें रहते हैं ॥५९॥ जो दृढ़निश्चय वाले जितेन्द्रिय पुरुष अग्निप्रवेश करते हैं तथा जो स्त्रियें सत्त्व–सम्पन्न होती हैं वे सब अग्निकी समान तेजस्वी होजाते हैं ॥ ६० ॥ इसी प्रकार अग्निहोत्रमें परायण रहने वाले विप्र, ब्रह्मचारी और पञ्चाग्निके उपासक भी अग्निलोकमें अग्निकी समान तेजस्वी बन विचरण करते हैं ॥ ६१ ॥ जो शीतकालमें शीत हटानेके लिये काठके भारोंको देता है अथवा अग्निकी इष्टि करता है, वह भी अग्निके समीप वसता है । ६२ ॥ जो श्रद्धापूर्वक अनाथ का अग्निसंस्कार करता है अथवा शक्ति न होने पर दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें सत्कार पाता है ॥ ६३ ॥ एक अग्नि ही द्विजातियोंका परम कल्याण कर सकता है, गुरु देव व्रत तीर्थ सब अग्नि ही है ॥ ६४ ॥ सकल अपवित्र वस्तुएँ अग्निके संसर्गसे पावन होजाती हैं, इसी लिये उनका

मांसग्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम् ॥ ६६ ॥ तैजसी शाम्भवी मूर्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका । कर्त्री हर्त्री पालयित्री विनैतां किं विलोक्यते ॥ ६७ ॥ चित्रभानुरयं साक्षान्नेत्रन्त्रिभुवनेशितुः । अन्धन्तमोमये लोके विनैनं कः प्रकाशनः ॥ ६८ ॥ धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदध्यिघृतेक्षवम् । एतद्भुक्तं निषेवन्ते सर्वे दिवि दिवौकसः ॥ ६९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

नन्दीश्वर उवाच । यक्षेश्वरावतारं च शृणु शंभोर्मुनीश्वर । गर्विणं गर्वहन्तारं सतामभक्तिविवर्द्धनम् ॥१॥ पुरा देवाश्च दैत्याश्च पीयूषार्थम्महाबलाः । क्षीरोदधिं ममन्थुस्ते सुकृतस्वार्थसन्धयः ॥ २ ॥ मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीराब्धेस्सुरदानवैः । अग्नेः समुत्थितं तस्माद्विषं कालानलप्रभम् ॥ ३ ॥ तं दृष्ट्वा निखिला देवा दैत्याश्च भयविह्वलाः । विद्रुत्य तरसा तात शंभोस्ते शरणं ययुः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तं शंकरं सर्वे सर्वदेवशिखामणिम् । प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या साच्युता नतमस्तकाः ५ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो भक्तवत्सलः । पपौ विषं महाघोरं सुरासुरगणार्दनम् ॥ ६ ॥ पीतं तं विषमं कण्ठे निदधे विषमुल्बणम् । रेजे तेनाति स विभु-

---

नाम पावक है ॥ ६५ ॥ यह आशुशुक्षणि (शीघ्र ही सुखाने वाला) अग्नि वास्तवमें सबका अन्तरात्मा है, यह मांसके ग्रासोंको पका डालता है, परन्तु स्त्रियोंके कुक्षिकी मांसपेशिकाको नहीं पकाता ॥ ६६ ॥ शम्भुकी प्रत्यक्ष तेजोमयी मूर्ति दहनात्मिका है, यह कर्त्री हर्त्री और पालन करने वाली है, इसके विना क्या देखा जासकता है ॥ ६७ ॥ यह चित्रभानु त्रिभुवनके स्वामी का साक्षात् नेत्र है अँधेरे तमोमय स्थानमें इनके विना और कौन प्रकाश करता है ॥ ६८ ॥ इनके भक्षण किये हुए धूप प्रदीप नैवेद्य दूध दही घी और खाँडको सकल देवता स्वर्गमें भोगते हैं ॥ ६९ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

हे मुनीश्वर ! अब आप घमण्डियोंका गर्व उतारने वाले तथा सज्जनोंको भक्ति बढ़ाने वाले शम्भुके यक्षेश्वरावतारकी कथा सुनिये ॥ १ ॥ पहिले महाबली देवता और दैत्य अमृतके लिये स्वार्थवश संधिकर क्षीरसमुद्रको मथने लगे ॥ २ ॥ जब देवता और दानव अमृतके लिये क्षीरसमुद्रको मथ रहे थे, कि-एक लपट उठी और कालानलकी प्रभा वाला विष प्रकट हुआ ३ उसको देख देवता और दैत्य भयविह्वल हो हे तात ! झपट कर शंभुकी शरणमें पहुंचे ॥ ४ ॥ उन सकल देवताओंके चूड़ामणि शंकरका दर्शन कर अच्युत सहित सकल देवताओंने उनको शिर झुका कर प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ तब भक्तवत्सल शङ्कर भगवान् प्रसन्न

नीलकण्ठो बभूव ह ॥ ७ ॥ ततः सुरासुरगणा ममन्थुः पुनरेव तम् । विषदाह-विनिर्मुक्ताः शिवानुग्रहतोऽखिलाः ॥ ८ ॥ ततो बहूनि रत्नानि निस्सृतानि ततो मुने । अमृतं च पदार्थं हि सुरदानवयोर्मुने ॥ ९ ॥ तत्पपुः केवलन्देवा नासुराः कृपया हरेः । ततो बभूव सुमहान् रत्नं तेषां मिथोऽकरम् ॥ १० ॥ द्वन्द्वयुद्धम्बभूवाथ देवदानवयोर्मुने । तत्र राहुभयाच्चन्द्रो विद्रुद्राव तदर्दितः ॥११॥ जगाम सदनं शंभोः शरणम्भयविह्वलः । सुप्रणम्य च तुष्टाव पाहि पाहीति संवदन् १२ ततस्सतामभयदः शंकरो भक्तवत्सलः । दध्रे शिरसि चन्द्रं स विभुश्शरणमागतम् ॥ १३ ॥ अथागतस्तदा राहुस्तुष्टाव सुप्रणम्य तम् । शंकरं सकलाधीशं वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ १४ ॥ शंभुस्तन्मतमाज्ञाय तच्छिरांस्यच्युतेन ह । पुरा छिन्नानि वै केतुसंज्ञानि निदधे गले ॥ १५ ॥ ततो युद्धेऽसुराः सर्वे दैवैश्चैव पराजिताः । पीत्वामृतं सुरास्सर्वे जयम्प्रापुर्महाबलाः ॥ १६ ॥ विष्णुप्रभृतयः सर्वे बभूवुश्चातिगर्विताः । बलानि चाकुरंस्तत्र शिवमायाविमोहिताः ॥ १७ ॥ ततस्स शंकरो देवः सर्वाधीशोऽथ गर्वहा । यक्षो भूत्वा जगामाशु यत्र देवाः

होकर देवता और असुरोंको पीड़ित करने वाले महाघोर विषको पीगए ॥६॥ उन्होंने उस उग्र विषम विषको पी अपने कण्ठमें रोक लिया, अतः वह विभु दमक उठे और उनका नाम नीलकण्ठ होगया ॥७॥ और शिवके अनुग्रहवश विषदाहसे मुक्त हुए सकल देवता और असुर समुद्रको फिर मथने लगे ॥८॥ हे मुने ! तब बहुतसे रत्न प्रकट हुए और देव दानवोंके बीचमें अमृत नामक पदार्थ भी प्रकट हुआ ॥ ९ ॥ उसको हरिकी कृपासे केवल देवताओंने ही पिया, इस प्रकार वह महारत्न आपसमें दुःखदायक होपड़ा ॥ १० ॥ और हे मुने ! देव दानवोंमें द्वन्द्व-युद्ध होने लगा, उस युद्धमें चन्द्रमा राहुके भयसे पीड़ित हो भाग चला ॥ ११ ॥ और भयविह्वल हो शम्भुकी शरणमें पहुँचा और प्रणाम कर रक्षा करो रक्षा करो कह कर स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ तब सज्जनोंको अभय देने वाले भक्तवत्सल विभु शंकरने शरणागत चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण कर लिया ॥ १३ ॥ उस समय तहाँ राहु भी पहुँचे और सबके ईश्वर शंकरको प्रणाम कर इष्ट वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ तब शंभुने उसकी सम्मतिसे अच्युतने उसके जो शिर पहिले काट डाले थे उन केतु नामक शिरोंको अपने कण्ठमें डाल लिया ॥१५॥ तब युद्ध होने पर देवताओंने सब असुरोंको हरा दिया, इस प्रकार अमृत पीकर महाबली हुए देवताओंने विजय पाई थी १६ तदनन्तर शिवकी मायासे मोहमें पड़ विष्णु आदि सब देवता बल बखानते हुए गर्वमें भर गए १७ हे मुने !

स्थिता मुने ॥ १८ ॥ सर्वान्दृष्ट्वाच्युतमुखान्देवान्यज्ञपतिस्स वै । महागर्वाढ्यमनसः महेशः प्राह गर्वहा ॥ १९ ॥ यक्षेश्वर उवाच । किमर्थं संस्थिता यूयमत्र सर्वे सुरा मिथः । किमु कार्याखिलम्ब्रूत कारणं मेऽनुपृच्छते ॥२०॥ देवा ऊचुः । अभूदत्र महान्देवरणः परमदारुणः । असुरा नाशितास्सर्वेऽवशिष्टा विद्रुता गताः ॥२१॥ वयं सर्वे महावीरा दैत्यघ्ना बलवत्तराः । अग्रेऽस्माकं कियन्तस्ते दैत्याः क्षुद्रबलास्सदा ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुराणां गर्वगर्भितम् । गर्वहासौ महादेवो यक्षरूपो वचोऽब्रवीत् ॥२३॥ यक्षेश्वर उवाच । हे सुरा निखिला यूयं मद्वचश्शृणुतादरात् । यथार्थं वच्मि नासत्यं सर्वगर्वापहारकम् ॥२४॥ गर्वमेनं न कुरुत कर्ता हर्ताऽपरः प्रभुः । विस्मृताश्च महेशानं कथमेवं वृथाकराः ॥ २५ ॥ युष्माकञ्चेत्तु हि मदो जानतां स्वबलम्महत् । मत्स्थापितं तृणमिदं छिन्त स्वास्त्रैश्च वै सुराः ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वैकतृणन्तेषां निचिक्षेप पुरस्ततः । जह्रे सर्वमदं यक्षरूप ईशस्सतां गतिः ॥ २७ ॥ अथ सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखा वीरमानिनः । कृत्वा स्वपौरुषन्तत्र स्वायुधानि विचिक्षिपुः ॥२८॥ तत्रासन्विफलान्याशु तान्यस्त्राणि दिवौकसाम् ।

तब गर्वापहारी सबके ईश्वर शंकर देव यक्ष बन कर जहाँ देवता थे तहाँ पहुँचे १८ और गर्वहारक महेश--यज्ञपतिने अच्युत आदि देवताओंके मनको बड़े गर्वमें भरे देखकर कहा १९ यक्षेश्वरने कहा, कि--हे सब देवताओं! तुम यहाँ किस विषय पर विचार करनेके लिये एकत्रित हुए हो ॥२०॥ देवताओंने कहा, कि-यहाँ परम-दारुण देव-युद्ध हुआ था, हमने सब असुरोंको मारा और बचे हुए भाग गए ॥ २१ ॥ हम सब महावीर हैं, दैत्योंको मारने वाले और परम बली हैं, ऐसे हमारे सामने उन क्षुद्र-बली दैत्योंकी क्या बिसात थी २२ नन्दीश्वरने कहा, कि—देवताओंके इस वचनको सुन गर्वापहारी यक्षरूपधारी महादेव बोले ॥ २३ ॥ यक्षेश्वरने कहा, कि--हे सकल देवताओं! आप मेरे वचनको आदरपूर्वक सुनें, मैं सबके गर्वको दूर करने वाली यथार्थ बात कहूँगा, असत्य बात नहीं कहूँगा ॥ २४ ॥ कि-ऐसा घमण्ड न करो, कर्ता हर्ता तो दूसरे प्रभु हैं, तुम महेशको भूल कर क्यों व्यर्थकी बातें कर रहे हो, तुम तो निर्बल हो ॥ २५ ॥ यदि तुम्हें यह मद हो, कि--यह हमारा ही महाबल था, तो हे सुरो! इस मेरे रखे हुए तिनुकेको अपने अस्त्रोंसे तोड़ो तो ॥ २६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार कह कर उन्होंने एक तिनका उनके सामने फेंक दिया, इस प्रकार सज्जनोंकी गति यक्षरूपधारी ईशने सबके मदको उतारनेका विचार किया ॥ २७ ॥ तब वीरमानी विष्णु आदि सकल देवताओंने अपना अपना पुरुषार्थ दिखानेके लिये उस तृण पर

शिवप्रभावतस्तेषां मूढगर्वापहारिणः ॥ २९ ॥ अथासीत्तु नभोवाणी देवविस्मयहारिणी । यक्षोऽयं शंकरो देवाः सर्वगर्वापहारकः ॥ ३० ॥ कर्ता हर्ता तथा भर्त्ताऽयमेव परमेश्वरः । एतद्बलेन बलिनो जीवाः सर्वेऽन्यथा न हि ॥ ३१ ॥ अस्य मायाप्रभावाद्वै मोहिताः स्वप्रभुं शिवम् । मदतो बुबुधुर्नैवाद्यापि बोधतनुम्प्रभुम् ॥३२॥ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा नभोवाणीं बुबुधुस्ते गतस्मयाः । यक्षेश्वरम्प्रणेमुश्च तुष्टुवुश्च तमीश्वरम् ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव सर्वगर्वापहारक । यक्षेश्वर महालील माया तेत्यद्भुता प्रभो ॥ ३४ ॥ मोहिता माययाद्यापि तव यक्षस्वरूपिणः । अगर्वमभिमापन्नस्त्वत्पुरो हि पृथग्भयाः ३५ इदानीं ज्ञानमायातन्तवैव कृपया प्रभो । कर्ता हर्ता च भर्ता च त्वमेवान्यो न शंकर ॥ ३६ ॥ त्वमेव सर्वशक्तीनां सर्वेषां हि प्रवर्तकः । निवर्तकश्च सर्वेशः परमात्माऽव्ययोऽद्वयः ॥ ३७ ॥ यक्षेश्वरस्वरूपेण सर्वेषां नो मदो हृतः । कृतो मन्यामहे तत्तेऽनुग्रहो हि कृपालुना ॥३८॥ अथो स यक्षनाथोऽनुगृह्य वै सकलान्सुरान् । विबोध्य विविधैर्वाक्यैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥ इत्थं स वर्णितः

आयुध फेंके ॥ २८ ॥ परन्तु मूढ़ोंके गर्वको दूर करने वाले शिवके प्रभावसे देवताओंके अस्त्र खुटले होगए ॥ २९ ॥ उसी समय देवताओंके विस्मयको टालती हुई आकाश-वाणी हुई कि- हे देवताओं ! यह यक्ष सबके गर्वको दूर करने वाले भगवान् शंकर हैं ॥ ३० ॥ यह परमेश्वर ही कर्ता हर्ता तथा भर्ता हैं, इनके बलसे ही सब वली हैं और जीवित हैं ॥ ३१ ॥ इनकी ही मायाके प्रभावसे मोहमें पड़े हुए आप मदके कारण अपने प्रभु ज्ञानात्मक शिवको अब तक नहीं पहिचान सके ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस आकाशवाणीको सुन देवताओंका विस्मय जाता रहा और उन्होंने शिवको पहिचाना तब उन यक्षेश्वर ईश्वरको प्रणाम कर उनको स्तुति करने लगे ।३३। देवताओंने कहा, कि—हे सबका गर्व उतारने वाले देवदेव महादेव ! हे महालीला करने वाले यक्षेश्वर प्रभो ! आपकी माया परम अद्भुत है ॥३४॥ आज भी इस मायाने हमें मोहमें डाल दिया था, तभी तो हम अपनेको आपसे पृथक् समझ आप यक्षरूपधारीके सामने घमण्डमें भर बातें कर रहे थे ॥३५॥ हे प्रभो ! इस समय आपकी ही कृपासे हमें यह ज्ञान हुआ है, कि— हे शंकर ! आप ही कर्ता हर्ता और भर्ता हैं, अन्य किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है ॥३६॥ आप ही सकल शक्तियोंके और सबके प्रवर्तक हैं तथा निवर्तक सर्वेश परमात्मा अव्यय और अद्वय हैं ॥ ३७ ॥ आपने जो यक्षेश्वरका स्वरूप धारण कर हम सबका गर्व उतार दिया, हे कृपालो ! इसको हम आपका अनुग्रह ही समझते हैं ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वह यक्षनाथ उन सकल देवताओं पर

शम्भोरवतारः सुखावहः । यक्षेश्वराख्यस्सुखदस्सतान्तुष्टोऽभयंकरः ॥ ४० ॥ इदमाख्यानममलं सर्वगर्वापहारकम् । सतां सुशान्तिदन्नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४१ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा सुधीः पुमान् । सर्वकामानवाप्नोति ततश्च लभते गतिम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथाथो गिरिशस्याद्यावतारान् दशसंख्यकान् । महाकालमुखान् भक्त्योपासनाकाण्डसेवितान् ॥ १ ॥ तत्राद्यो हि महाकालो भुक्तिमुक्तिप्रदस्सताम् । शक्तिस्तत्र महाकाली भक्तेप्सितफलप्रदा ॥ २ ॥ तारनामा द्वितीयश्च तारा शक्तिस्तथैव सा । भुक्तिमुक्तिप्रदौ चोभौ स्वसेवकसुखप्रदौ ॥ ३ ॥ भुवनेशो हि बालाह्वस्तृतीयः परिकीर्तितः । भुवनेशी शिवा तत्र बालाह्वा सुखदा सताम् ॥४॥ श्रीविद्येशः षोडशाह्वः श्रीविद्या षोडशी शिवा । चतुर्थो भक्तसुखदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५ ॥ पञ्चमो भैरवः ख्यातः सर्वदा भक्तकामदः । भैरवी गिरिजा तत्र तदुपासककामदा ॥ ६ ॥ छिन्नमस्तकनामासौ शिवः षष्ठः प्रकीर्तितः । भक्त-

---

अनुग्रह कर तथा उनको अनेक प्रकारके वाक्योंसे समझा कर तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ ३६ ॥ इस प्रकार तुमसे यह शंभुका सुखद यक्ष अवतार कहा यह यक्षेश्वर नामक अवतार साधुओंको सुख और अभय देता है ॥ ४० ॥ यह निष्पाप आख्यान गर्वको हटाने वाला, सज्जनोंको शान्ति पहुँचाने वाला तथा मनुष्योंको भोग मोक्ष देने वाला है ॥ ४१ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष भक्तिपूर्वक इसको सुनता है वा सुनाता है उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं तथा सद्-गति मिलती है ॥ ४२ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ छ छ

अब गिरिशके उपासना–काण्डसे सेवित महाकाल आदि दश अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनो ॥१॥ इनमें पहिले अवतारका नाम महाकाल है, यह सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष देने वाला है, इस अवतारकी शक्ति महाकाली भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करती है ॥ २ ॥ इनके दूसरे अवतारका नाम तार है और शक्ति तारा है, ये दोनों भोग तथा मोक्ष देने वाले हैं तथा अपने सेवकोंको सुख देने वाले हैं ॥ ३ ॥ तीसरा अवतार भुवनेश बालाह्व है और शिवाका नाम भुवनेशी बालाह्वा है, यह साधुओंको सुख प्रदान करने वाली है ॥ ४ ॥ चौथे भक्तोंको सुख देने वाले तथा भोग तथा मोक्ष देने वाले अवतारका नाम षोडश श्रीविद्येश है और शिवाका नाम षोडशी श्री–विद्या है ॥ ५ ॥ पाँचवें अवतारका नाम भैरव है, यह सदा भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं, और गिरिजा भैरवी हैं यह सज्जन उपासकोंके मनोरथ पूर्ण करते हैं ॥६॥

कामप्रदा चैव गिरिजा छिन्नमस्तका ॥ ७ ॥ धूमवान् सप्तमः शम्भुस्सर्वकाम-फलप्रदः । धूमावती शिवा तत्र सदुपासककामदा ॥ ८ ॥ शिवावतारः सुखदो ह्यष्टमो बगलामुखः । शक्तिस्तत्र महानन्दा विख्याता बगलामुखी ॥ ९ ॥ शिवा-वतारो मातंगो नवमः परिकीर्तितः । मातंगी तत्र शर्वाणी सर्वकामफलप्रदा १० दशमः कमलः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । कमला गिरिजा तत्र स्वभक्तपरि-पालिनी ॥ ११ ॥ एते दशमिताः शैवा अवतारास्सुखप्रदाः । भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैव भक्तानां सर्वदास्सताम् ॥ १२ ॥ एते दशावतारा हि शंकरस्य महात्मनः । नानासुखप्रदा नित्यं सेवतां निर्विकारतः ॥ १३ ॥ एतद्दशावताराणां माहात्म्यं वर्णितं मुने । सर्वकामप्रदं ज्ञेयं तंत्रशास्त्रादिगर्भितम् ॥ १४ ॥ एतासामपि शक्तीनामद्भुतो महिमा मुने । सर्वकामप्रदो ज्ञेयस्तंत्रशास्त्रादिगर्भितः ॥ १५ ॥ शत्रुमारणकार्यादौ तच्छक्तिः परा मता । खलदण्डकरी नित्यं ब्रह्मतेजोविव-र्द्धिनी ॥ १६ ॥ इत्युक्तास्ते मया ब्रह्मन्नवतारा महेशितुः । सशक्तिका दशमिता महाकालमुखाश्शुभाः ॥ १७ ॥ शैवपर्वसु सर्वेषु योऽधीते भक्तितत्परः । एतदा-

---

छठे शिवका नाम छिन्नमस्तक है और भक्तोंकी कामना पूर्ण करने वाली शिवाका नाम छिन्नमस्तका है ॥ ७ ॥ शम्भुका धूमवान् नामका सातवाँ अव-तार सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है, इस अवतारको शिवाको नाम धूमावती है, यह सज्जन उपासकोंका मनोरथ पूर्ण करने वाली हैं ॥ ८ ॥ शिवका सुखदायक आठवाँ अवतार बगलामुख है, इसकी महानन्दमयी शक्ति बगलामुखी विख्यात हैं ॥ ९ ॥ शिवके नवम अवतारका नाम मातङ्ग है, इस अवतारकी सब मनोरथ पूर्ण करने वाली शर्वाणीका नाम मातंगी है १० शंभुके भोग मोक्षरूप फल देने वाले दशम अवतारका नाम कमल है और अपने भक्तोंका पालन करने वाली इस अवतारकी गिरिजाका नाम कमला है ॥ ११ ॥ यह सज्जन भक्तोंको भोग मोक्ष आदि सब कुछ देने वाले सुख-दायक दश शिव–अवतार हैं ॥ १२ ॥ ये शङ्करके दश अवतार निर्विकार-भावसे सेवा करने वालोंको नित्य अनेक प्रकारका सुख देते हैं ॥ १३ ॥ हे मुने ! इन दश अवतारोंका माहात्म्य कह दिया, तन्त्रशास्त्रमें इनको सब मनोरथ सिद्ध करने वाला कहा है ॥ १४ ॥ हे मुने ! इन शक्तियोंकी भी महिमा अद्भुत है तन्त्र आदिक–शास्त्रोंमें इनकी सब मनोरथोंको पूर्ण करने वाली महिमा कही है ॥ १५ ॥ शत्रुमारण आदि कार्योंमें ये शक्तियें श्रेष्ठ मानी हैं, ये शक्तियें दुष्टोंको दण्ड देने वालीं और ब्रह्मतेजको बढ़ाने वाली हैं ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे यह महेशके महाकाल आदि

ख्यानममलं सोऽतिशम्भुप्रियो भवेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् । धनाधिपो हि वैश्यः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१९॥ शांकरा निजधर्मस्थाः शृण्वन्तश्चरितन्त्विदम् । सुखिनः स्युर्विशेषेण शिवभक्ता भवन्तु च

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नन्दीश्वर उवाच । एकादशावतारान्वै शृणुथो शांकरान्वरान् । याञ्छ्रुत्वा न हि बाध्येत बाधासत्यादिसम्भवा ॥ १ ॥ पुरा सर्वे सुराश्शक्रमुखा दैत्यपराजिताः । त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ॥ २ ॥ दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्ते कश्यपान्तिकम् । बद्ध्वा करान्नतस्कंधा प्रणेमुस्तं सुविह्वलम् ॥३॥ सुनुत्वा तं सुरास्सर्वे कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् । सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखन्तत्पराजयम् ॥ ४ ॥ ततस्स कश्यपस्तात तत्पिता शिवसक्तधीः । तदाकर्ण्यामराकं वै दुःखितोऽभून्न चाधिकम् ॥ ५ ॥ तानाश्वास्य मुनिस्सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः । काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ॥ ६ ॥ गंगाम्भसि ततः स्नात्वा कृत्वा तं विधिनादरात् । विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरम्प्रभुम् ७ शिवलिंगं सुसंस्थाप्य चकार विपुलन्तपः । शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां

शक्ति-सम्पन्न दश शुभ अवतारोंका वर्णन किया ॥ १७ ॥ शैव पर्वोंमें जो भक्तिपूर्वक इस निर्मल कथाको सुनता है वह शंभुका परम प्यारा होता है १८ (इस कथाके प्रभावसे) ब्राह्मण ब्रह्मतेज पाता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धनपति होता है और शूद्र सुख पाता है ॥ १९ ॥ अपने धर्ममें परायण शिवभक्त इस चरित्रको सुन कर परम-सुख पाते हैं और उनकी शिवभक्ति बढ़ती है ॥ २० ॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि-अब शंकरके एकादश अवतारोंका वर्णन सुनो इनको सुननेसे असत्यसे होने वाली बाधा पीड़ा नहीं देती है ॥ १ ॥ पहिले इन्द्र आदि सब देवता दैत्योंसे पराजित होकर अपनी नगरी अमरावती त्याग भयभीत हो भाग चले ॥ २ ॥ दैत्योंसे पीड़ित हुए देवता कश्यपके पास पहुँचे और कंधा झुका हाथ जोड़ उनको प्रणाम करने लगे ॥ ३ ॥ सब देवता उनकी भली प्रकार स्तुति कर अपने पराजयका दुःख उन्हें आदरपूर्वक सुनाने लगे ॥ ४ ॥ उनके पिता शिवभक्त कश्यप अमरोंके दुःखकी बात सुन अधिक दुःखी न हुए ॥ ५ ॥ और हे मुने ! वह देवताओंको ढाढस दे धैर्य धारण कर शांत बुद्धिसे प्रीतिपूर्वक विश्वेश्वरपुरी काशीको चल दिये ॥ ६ ॥ तहाँ गंगामें स्नान कर विधिपूर्वक सर्वेश्वर प्रभु विश्वेश्वरकी और अम्बिकाकी पूजा की ॥ ७ ॥ और शिवलिंगको स्थापित कर देवताओं

हितकाम्यया ॥ ८ ॥ महान्कालो व्यतीयाय तपतस्तस्य वै मुने । शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्यशालिनः ॥ ९ ॥ अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वरन्दातुन्तदर्षये । स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुस्सतां गतिः ॥ १० ॥ वरस्व हीति चोवाच सुप्रसन्नो महेश्वरः । कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाथ तं महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः । तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः ॥ १२ ॥ कश्यप उवाच । देवदेव महेशान शरणागतवत्सल । सर्वेश्वरः परात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः ॥ १३ ॥ खलनिग्रहकर्त्ता त्वं महेश्वर सतां गतिः । दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १४ ॥ एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः । दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ॥ १५ ॥ असमर्थो रमेशोऽपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः । अतो सुरा मच्छरणात्रेदयन्तोसुखं च तत् ॥ १६ ॥ तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशकः । तत्पूरितं तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवास्थम् ॥ १७ ॥ शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाहं महेश्वर । कामं मे पूरया स्वामिन्देवदुःखं विनाशय ॥ १८ ॥ पुत्रदुःखैश्च देवेश दुःखितोऽहं विशेषतः । सुखिनं कुरु मामीश

के हितकी कामनासे प्रीतिपूर्वक विपुल तप करने लगे ॥८॥ हे मुने ! शिवके चरण-कमलोंमें मन लगा कर तप करते हुए उन धैर्यधारी मुनिको बहुत समय बीत गया ॥ ९ ॥ तब सज्जनोंकी गति दीनबंधु शंकर अपने चरण-कमलोंमें मन लगाने वाले उन ऋषिको वर देनेके लिये प्रकट हुए ॥ १० ॥ भक्तवत्सल महेश्वरने प्रसन्न होकर अपने भक्त मुनिशार्दूल कश्यपसे कहा, कि—वर मांगो ॥ ११ ॥ महेशको देखते ही उन्होंने हाथ जोड़ कर उनको प्रणाम किया, फिर देवताओंके पिता कश्यप प्रसन्न हो प्रसन्न चित्तसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ कश्यपने कहा, कि-हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव ! आप सर्वेश्वर परमात्मा ध्यानसे जाननेमें आने वाले अद्वय और अव्यय हैं ॥ १३ ॥ हे महेश्वर ! आप सज्जनोंकी गति, खलका निग्रह करने वाले दीनबंधु दयासिंधु हैं तथा आपकी बुद्धि भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष है ॥१४॥ हे प्रभो ! इन देवताओंको आप अपने ही समझें ये तो विशेषतः आपके ही भक्त हैं, ये आज दैत्योंसे पराजित होकर दुःखी होरहे हैं, इनकी आप रक्षा करिये ॥ १५ ॥ यह रमेश भी असमर्थ होनेके कारण वारवार आपको ही दुःख दिया करते हैं इसलिये देवताओंने मेरी शरणमें आकर यह दुःखगाथा निवेदन की है ॥ १६ ॥ हे देवताओंके दुःखको नष्ट करने वाले देवदेवेश ! उनकी उस बातको पूर्ण करनेके लिए आपको प्रसन्न करने की इच्छासे मैं तप करता था ॥ १७ ॥ हे महेश्वर ! मैं सर्वथा आपका शरणागत हूँ,

सह यस्त्वन्दिवौकसाम् ॥ १६ ॥ भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः । दैत्यैर्महाबलैशम्भो सुरानन्दप्रभो भव ॥ २० ॥ सदैवास्तु महेशान सर्वलेख-सहायकृत् । यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो ॥२१॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्य तु सर्वेशस्तथेति प्रोच्य शंकरः । पश्यतस्तस्य भगवान्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ २२ ॥ कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद् द्रुतम् । देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात् ॥ २३ ॥ ततस्स शंकरश्शर्वस्सत्यं कर्तुं स्वकं वचः । सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञ एकादशस्वरूपवान् ॥ २४ ॥ महोत्सवस्तदासीद्वै सर्वं शिवमयं त्वभूत् । आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना कश्यपेन च ॥२५॥ कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरूपाक्षो ४ विलोहितः ५ । शास्ताऽ ६ जपाद ७ हिर्बुध्न्य ८ श्शंभु ६ श्चण्डो १० भवस्तथा ११ ॥ २६ ॥ एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः । देवकार्यार्थमुत्पन्नाश्शिवरूपास्सुखास्पदम् ॥ २७ ॥ ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः ॥ २८ ॥ तद्रुद्र-कृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः । चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थ-

---

हे स्वामिन् ! देवताओंके दुःखको नष्ट कर मेरा मनोरथ पूर्ण करिये ॥ १८ ॥ हे देवेश ! मैं पुत्रोंके कलहसे दुःखित होरहा हूँ अतः हे ईश ! आप मुझे सुखी करिये, क्योंकि—आप देवताओंके सहायक हैं ॥ १६ ॥ हे नाथ ! हे शम्भो ! देवताओंको तथा यक्षोंको जो महाबलीदैत्योंने हरा दिया है (उसके लिये) आप मेरे पुत्र बनकर प्रकट हों और देवताओंको आनन्द दें ॥ २० ॥ हे महेशान ! आप सदा सब देवताओंकी सहायता करते रहें, हे प्रभो ! तो दैत्योंकी डाली हुई बाधा देवताओंको पीड़ित न कर सकेगी २१ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार कहने पर सर्वेश शंकरने तथास्तु कहा, फिर उन मुनिके सामने भगवान् हर वहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ २२ ॥ तद्-नन्तर कश्यप भी परम प्रसन्न होते हुए अपने स्थान पर शीघ्रतापूर्वक पहुँचे और देवताओंसे सब वृत्तान्त आदरपूर्वक कहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर वह शर्व शङ्कर अपना वचन सत्य करनेके लिये सुरभीसे कश्यपके द्वारा ग्यारह रूपों में प्रकट हुए ॥ २४ ॥ उस समय बड़ा उत्सव मचा, सब शिवमय होगया अतः मुनि कश्यप-सहित देवता प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ कपाली पिंगल भीम विरूपाक्ष विलोहित शास्ता अजपाद् अहिर्बुध्न्य शम्भु चण्ड और भव ॥२६॥ ये ग्यारह रुद्र सुरभीके पुत्र कहाते हैं, ये शिवके सुखस्वरूप रूप देवताओंके कार्यके लिये प्रकट हुए हैं ॥ २७ ॥ महाबली और पराक्रमी इन कश्यपपुत्र वीर रुद्रोंने देवताओंको सहायता करनेके लिये संग्राममें दैत्योंको मारा २८ इस प्रकार रुद्रोंकी कृपासे दैत्योंके हारने पर इन्द्र आदि देवता निर्भयतापूर्वक

मानसाः ॥ २६ ॥ अद्यापि ते महारुद्रास्सर्वे शिवस्वरूपकाः । देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ॥ ३० ॥ ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः । विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ॥ ३१ ॥ तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः । सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभि भागशः ॥ ३२ ॥ इति ते वर्णितास्तातावताराश्शंकरस्य वै । एकादशमिता रुद्रास्सर्वलोकसुखावहाः ॥ ३३ ॥ इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ ३४ ॥ य इदं शृणुयात्तात श्रावयेद्वै समाहितः । इह सर्वसुखम्भुक्त्वा ततो मुक्तिं लभेत सः ॥ ३५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर उवाच । अथान्यच्चरितं शम्भोश्शृणु प्रीत्या महामुने । यथा बभूव दुर्वासाश्शंकरो धर्महेतवे ॥ १ ॥ ब्रह्मपुत्रो बभूवातितपस्वी ब्रह्मवित्प्रभुः । अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः ॥ २ ॥ मुनिर्देशाद् ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया । स ऋक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ॥ ३ ॥ प्राणानायम्य विधिवन्निर्विन्ध्यातटिनीतटे । तपश्चचार सुमहद्द्वन्द्वोऽब्दशतम्मुनिः ॥ ४ ॥ य

स्वस्थचित्तसे अपना राज्यकार्य चलाने लगे ॥ २६ ॥ अब तक भी वे शिवस्वरूप महारुद्र देवताओंकी रक्षा करनेके लिये सदा स्वर्गमें विराजते हैं ३० भक्तवत्सल तथा अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेमें चतुर ये रुद्र ऐशानीपुरीमें वस तहाँ सदा विराम करते रहते हैं ॥ ३१ ॥ उनके अनुचर रुद्र करोड़ों हैं और वह त्रिलोकीमें विभागानुसार सर्वत्र रहते हैं ॥३२॥ हे तात! इस प्रकार आपसे शंकरके अवतार सब लोकोंको सुख देने वाले ग्यारह रुद्रों का वर्णन कर दिया ॥३३॥ यह निर्मल आख्यान सब पापोंका नाशक, धन यश आयु और सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ ३४ ॥ हे तात! सावधानतापूर्वक जो इसको सुनता है वा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारके सुखोंको भोग कर मुक्ति पाता है ॥ ३५ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे महामुने! शम्भुके एक और चरित्रको प्रीतिपूर्वक सुनो, कि-इसमें धर्मके कारण शंकर दुर्वासाके रूपमें प्रकट हुए हैं १ ब्रह्माजीके पुत्र परम-तपस्वी ब्रह्मवेत्ता प्रभु (अत्रि) अनसूयाके स्वामी हैं, वह बुद्धिमान् (मुनि) ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ २ ॥ वह ब्रह्माजीकी सम्मतिके अनुसार पुत्रकी कामनासे अपनी स्त्रीको साथमें लेकर ऋक्षकुल नामक पर्वत पर तप करनेके लिये पहुँचे ॥ ३ ॥ उन मुनिने

एक ईश्वरः कश्चिदविकारी महाप्रभुः । स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ५ बहुकालो व्यतीयाय तस्मिंस्तपति सत्तपः । आविर्बभूव तत्कात्तु शुचिज्ज्वाला महीयसी ॥ ६ ॥ तयासन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः । तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ॥ ७ ॥ अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने । ब्रह्मस्थानं ययुश्शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥ ८ ॥ नुत्वा नुत्वा विधिन्देवास्तत्स्वदुःखन्यवेदयन् । ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोकं ययावरम् ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा रमानाथं नुत्वा नुत्वा विधिस्सुरैः । स्वदुःखन्तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ॥ १० ॥ विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् । हरं प्रणम्य तत्रैत्य तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ११ ॥ स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदुःखं च न्यवेदयत् । शर्वं ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ॥ १२ ॥ अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । मुने संमंत्रयाञ्चक्रुरन्योऽन्यं जगतां हितम् ॥ १३ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः । जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरन्दातुन्तदर्षये ॥१४॥ स्वचिह्नचिह्नितांस्तां स दृष्ट्वात्रिमुनिसत्तमः । प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् १५

निर्विन्ध्या नदीके तट पर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्ष तक प्राणायाम चढ़ाकर विधिवत् घोर तप किया ॥ ४ ॥ उन्होंने अपने मनमें निश्चय किया था, कि--जो कोई एक ईश्वर अविकारी महाप्रभु हो, वह मुझे पुत्ररूप वर दे ॥ ५ ॥ जब उन्हें इस प्रकार तप करते हुए बहुतसा समय वीत गया तब उनके शिरसे परम--पवित्र बड़ी ज्वाला निकलने लगी ॥ ६ ॥ उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक और मुनीश्वर झुलसने गए, इन्द्र तथा सकल देवर्षि भी पीड़ित होगए ।७। हे मुने ! उस ज्वालासे परमपीड़ित होने पर इन्द्र आदि सकल देवता और मुनि शीघ्रतासे ब्रह्मलोकमें पहुँचे ॥ ८ ॥ देवताओंने ब्रह्माजीकी वारम्वार स्तुति कर अपना दुःखड़ा रोया, हे तात ! तब ब्रह्माजी उनको साथमें लेकर विष्णुलोकको चल दिये ॥ ९ ॥ हे मुने ! तहाँ पहुँच कर ब्रह्माजीने देवताओंके साथ रमानाथकी स्तुति करके विष्णुसे घोर दुःखका वर्णन करा १० तब विष्णु भी ब्रह्माजी और देवताओंके साथ तुरत ही रुद्रलोकमें पहुँचे और परमेश्वर हरको प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ विष्णुने बहुत बहुत स्तुति कर अत्रि ऋषिकी तपःज्वालासे होने वाले अपने दुःखका वर्णन किया ॥१२॥ हे मुने ! तब तहाँ ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर एकत्रित होकर जगत्का हित किस प्रकार हो इस पर विचार करने लगे ॥१३॥ तब वर देने वालोंमें श्रेष्ठ वे ब्रह्मा आदि तीनों देवता उन ऋषिको वर देनेके के लिये शीघ्र ही उनके आश्रम पर पहुँचे ॥ १४ ॥ मुनिसत्तम अत्रि अपने चिह्नसे चिह्नित उन देवताओंको देख प्रणाम कर इष्ट वचनसे स्तुति करने

ततस्स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः । ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥ १६ ॥ अत्रिरुवाच । हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः । प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्षासंहारकारकाः ॥ १७ ॥ एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे । यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वास्त्रया सह ॥ १८ ॥ यूयं त्रयस्सुराः कस्मादागता वरदर्षभाः । एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥ १९ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः । यादृक्कृतस्ते संकल्पस्तथैवाभून्मुनीश्वर ॥ २० ॥ वयं त्रयो भवेशानास्समाना वरदर्षभाः । अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ॥ २१ ॥ विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः । इत्युक्त्वा ते त्रयो देवास्स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ २२ ॥ वरं लब्ध्वा मुनिस्सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा । युतोऽनसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥ २३ ॥ अथ ब्रह्मा हरिश्शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः । पुत्ररूपैः प्रसन्नात्मनानालीलाप्रकाशकाः ॥ २४ ॥ विधेरंशाद्विधुर्जज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात् । आविर्भूत्वोदधितः क्षितो देवैस्स एव हि ॥ २५ ॥ विष्णोरंशात्स्त्रियान्तस्यामत्रेर्दत्तो

लगे ॥१५॥ तदनन्तर वह विनीत चित्तवाले ब्रह्मपुत्र विप्र विस्मित हो हाथ जोड़ उन ब्रह्मा विष्णु और शिव नामक देवताओंसे कहने लगे ॥ १६ ॥ अत्रिका भाषण--हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे रुद्र ! आप तो त्रिलोकीके पूज्य और माननीय हैं तथा प्रभु ईश्वर सृष्टि रक्षा और संहार करने वाले हैं १७ परन्तु मैंने और मेरी स्त्रीने जो कोई जगत्का एक ही ईश्वर हो उस एकका ही ध्यान किया था ॥ १८ ॥ फिर आप तीनों ही वरदर्षभ क्यों आए हैं ? मेरे इस संदेहको दूर कर वर दीजिये ॥ १९ ॥ उन ऋषिके वचन सुन कर उन तीनों देवताओंने प्रत्युत्तर दिया, कि–हे मुनीश्वर ! तुमने जैसा संकल्प किया था, वैसा ही होरहा है ॥ २० ॥ हम तीनों ही संसारके ईश्वर हैं समानरूपसे वरदान देने वालोंमें श्रेष्ठ हैं अतः हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे ॥ २१ ॥ वे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होंगे और माता पिताकी कीर्ति बढ़ावेंगे वे तीनों देवता इस प्रकार कह अपने लोकोंको आनन्दपूर्वक लौट गए २२ हे मुने ! वर पाकर वह ब्रह्मानन्द देने वाले मुनि अनसूयाके साथ प्रसन्न हो अपने आश्रमको लौट चले ॥ २३ ॥ तदनन्तर अत्रि ऋषिकी अनसूया पत्नीमें ब्रह्मा विष्णु और शिव पुत्ररूपसे उत्पन्न हो प्रसन्न चित्तसे अनेक प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करने लगे ॥ २४ ॥ मुनीश्वर कश्यपसे अनसूयामें ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, उसीको देवताओंने समुद्रमें डाल दिया था अतः वह समुद्रसे प्रकट हुआ था ॥ २५ ॥ विष्णुके अंशसे अत्रिपत्नीमें दत्त उत्पन्न हुए, हे मुने ! उन्होंने श्रेष्ठ संन्यासपद्धति प्रचलित की थी २६

ह्यजायत । संन्यासरुद्र तयेन वर्द्धिता परमा मुने । ॥२६॥ दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तम । जज्ञे नरश्रेष्ठ स्त्रिया-श्रेष्ठधर्मप्रवर्तकः ॥ २७ ॥ भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः । चक्रे धर्मपरीक्षाश्च बहूनां स दयापरः ॥२८॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत् । तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ॥ २९ ॥ सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपवसापतिः । नियमं हि चकारासावेकादश्या व्रते दृढम् ॥ ३० ॥ एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम् । करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः ॥३१॥ ज्ञात्वा तन्नियमन्तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः । तदन्तिकं गतश्शिष्यैर्बहुभिश्शंकरांशजः ॥ ३२ ॥ पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् । कर्त्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ॥३३॥ ततः स्नानार्थमगमद् दुर्वासाः शिष्यसंयुतः । विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥ ३४ ॥ धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् । जलम्प्राश्यास्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः । कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥ ३६ ॥ चुक्रोधाति नृप तस्मिन्परी

तथा हे मुनिसत्तम ! शिवके अंशसे अत्रिपत्नीमें मुनि शार्दूल दुर्वासा उत्पन्न हुए, इन्होंने श्रेष्ठ धर्मका प्रचार किया था ॥ २७ ॥ रुद्र ब्रह्मतेजको बढ़ाते हुए दुर्वासा बन दयालुतावश अनेकोंके धर्मकी परीक्षा लेने लगे ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! उन्होंने सूर्यवंशी राजा अम्बरीषकी परीक्षा ली थी उसको तुम सुनो ॥ २९ ॥ सातों द्वीपोंकी भूमिके स्वामी नृपवर अम्बरीषने एकादशीके व्रतका दृढ़ नियम धारण किया था ॥ ३० ॥ राजाका दृढ़ संकल्प था, कि-एकादशीका व्रत कर द्वादशीमें पारणा करा करूँगा ॥ ३१ ॥ उसके इस नियमको जान कर शंकरके अंश मुनिसत्तम दुर्वासा अपने बहुतसे शिष्योंको साथ ले उसके पास गए ॥ ३२ ॥ राजा पारणामें थोड़ीसी द्वादशी शेष जान भोजन करना चाहता ही था, कि-उसे अतिथि ऋषिको निमंत्रण देना पड़ा ॥ ३३ ॥ तब तो दुर्वासा अपने शिष्योंको साथ ले स्नान करनेके लिये चल दिये और वह मुनि राजाकी परीक्षा करनेके लिये बड़ा विलम्ब लगाने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय (पारणा न करनेसे) धर्मविघ्न होजायगा, इस शंकासे राजा शास्त्रकी आज्ञानुसार जलका आचमन कर उन ऋषिके आने की बाट देखने लगा ॥ ३५ ॥ इसी समय तहाँ दुर्वासा मुनि प्रकट होगए और राजाने पारणा करली है यह जान कर उन्होंने परीक्षा करनेके लिये (विकट) आकृति धारण कर ली ॥ ३६ ॥ शंकरके अंशसे उत्पन्न हुए उन मुनिने राजाके धर्मकी परीक्षा करनेके लिये बड़े क्रोधके साथ उससे उग्र वचन कहने आरंभ कर दिये ३७ दुर्वासाने कहा, कि-रे अधम

न्नार्थं वृषस्य सः। प्रोवाच वचनन्तूग्रं स मुनिश्शंकरांशजः ॥ ३७ ॥ दुर्वासा उवाच। मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतन्त्वयाधम। दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥३८॥ इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समुद्यतः। समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्रस्थं रक्षार्थमैश्वरम् ॥ ३९ ॥ प्रजज्वालाति तच्चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम्। शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी। अम्बरीषम्महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥ ४१ ॥ व्योमवाण्युवाच। सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनार्पितम्। शांतं कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥४२॥ दुर्वासायं शिवः साक्षाद्यच्चक्रं हरयेऽर्पितम्। एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम ॥ ४३ ॥ तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः। शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर। अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥ ४५ ॥ अम्बरीष उवाच। यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः। कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥ ४६ ॥ यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो

अभोज्य नृप! मुझे निमंत्रण देकर तूने जल पीलिया, अतः मैं तुझे उसका फल दिखाता हूँ, क्योंकि-मुझमें दुष्टोंको दण्ड देनेकी शक्ति है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कह क्रोधसे लालचोल नेत्रों वाले वह ऋषि राजाको भस्म करनेके लिये उद्यत होगए, कि--उसकी रक्षाके लिये विराजमान ईश्वरीय चक्र सुदर्शन शीघ्र ही प्रकट हुआ ॥ ३९ ॥ तब वह चक्र शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उनके शिवस्वरूपको न जान मुनिको भस्म करनेके लिये उद्यत होगया ॥ ४० ॥ इसी समय ब्राह्मणभक्त वैष्णव महात्मा अम्बरीषको अशरीरिणी आकाशवाणी सुनाई दी ॥ ४१ ॥ आकाशवाणीने कहा, कि-हे नृप! शम्भुने इस सुदर्शन चक्रको विष्णुको दिया था, दुर्वासा पर प्रज्वलित हुए इस चक्रको तुम शान्त करो ॥४२॥ यह दुर्वासा साक्षात् शिव हैं, इन्होंने ही हरिको यह सुदर्शन चक्र दिया था अतः हे नृपोत्तम! तुम इन मुनिको साधारण ऋषि न समझो ॥ ४३ ॥ यह मुनीश्वर आपके धर्मको परीक्षा लेनेके लिये आये थे अतः तुम इनकी शरण लो अन्यथा प्रलय हो जावेगा ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--हे मुनोश्वर! इस प्रकार कह कर आकाशवाणी बन्द होगई और अम्बरीष भी आदरपूर्वक हरके अंशकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ अम्बरीषका भाषण--यदि मैंने दान दिया हो इष्ट कर्म किया हो, अपने धर्मका पालन किया हो और यदि हमारा कुल ब्राह्मणोंको देवता मानता हो तो यह हरिका अस्त्र शान्त होजाय ॥ ४६ ॥ मैं जिनका भक्त हूँ वह भक्तवत्सल भगवान् यदि मुझ पर प्रसन्न हों तो यह सुदर्शन

भक्तवत्सलः । सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ॥४७॥ नन्दीश्वर उवाच । इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम् । अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धधीः ॥ ४८ ॥ अथाम्बरीषस्स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम् । शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥ ४९ ॥ सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजः । भुक्त्वा तस्मै वरं दत्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥ ५० ॥ अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितम्मुने । प्रोक्तमन्यच्चरित्रन्त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥ ५१ ॥ पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै । मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥ ५२ ॥ तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् । तन्तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं प्रणवशान्मुने ॥ ५३ ॥ सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदिता । नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥५४॥ नियमं सुदृढं दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः । दुर्वासास्सुप्रसन्नात्मा वरन्तस्मै प्रदत्तवान् ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णनियमस्यापि परीक्षां स चकार ह । तां शृणु त्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत् । धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥५७॥

चक्र शान्त होजाय ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार स्तुति करने पर वह शिवका दिया सुदर्शनचक्र उन मुनिको शिवांश समझ सद्बुद्धि आने पर शान्त होगया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर राजा अंबरीषने उन शिवावतार मुनिको अपनी परीक्षाके लिये आया समझ कर उनको प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ तब शङ्करके अंशसे उत्पन्न हुए उन मुनिने प्रसन्न होकर भोजन किया और राजा को अभीष्ट वर देकर अपनी कुटियाको चले गए ॥५०॥ हे मुने ! दुर्वासाका अम्बरीषकी परीक्षाविषयक चरित्र कहा, हे मुनीश्वर ! उनके दूसरे चरित्रको अब आप सुनें ।५१। फिर उन्होंने दशरथनन्दन रामकी नियमविषयक परीक्षा ली थी हे मुने ! कालने मुनिका रूप धारण कर नियम बाँध दिया था ॥५२॥ उसी समय उन मुनिने सुमित्रानन्दनको हठपूर्वक भेजा, हे मुने ! तब रामने प्रणके कारण बन्धु लक्ष्मणको तत्काल त्याग दिया था ॥ ५३ ॥ यह कथा जगत्-प्रसिद्ध है, मुनियोंने इसका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, अतः मैंने उसका यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया है, क्योंकि--विद्वान् उसको भली भाँति जानते हैं ॥ ५४ ॥ नियमको दृढ़ देख दुर्वासा मुनि प्रसन्न हुए तथा उन्होंने प्रसन्नचित्तसे उनको वर दिया ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णके नियमकी भी दुर्वासा मुनिने परीक्षा ली थी हे मुनिश्रेष्ठ ! उस कथाका मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनिये ॥५६॥ ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विष्णु पृथ्वीका भार उतारने के लिये और साधुओंकी रक्षा करनेके लिये वसुदेवके पुत्र बनकर प्रकट हुए थे ॥ ५७ ॥ उन्होंने कृष्ण नाम धारण कर ब्रह्मद्रोही दुष्ट महापापियों

हत्वा दुष्टान्महापापान्ब्रह्मद्रोहकरान्खलान्। ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मभक्तिं चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः। नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥५९॥ ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात्। संद्रष्टुकामस्स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ॥ ६० ॥ रुक्मिणीसहितं कृष्णं मग्नं कृत्वा रथे स्वयम्। संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ॥ ६१ ॥ मुनी रथात्समुत्तीर्य दृष्ट्वा तां दृढताम्पराम्। तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरन्ददौ ॥ ६२ ॥ युनद्य मेकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो बभूव ह। लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ॥ ६३ ॥ तज्ज्ञात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात्। तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वाञ्चलदानतः ॥ ६४ ॥ तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः। तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ॥ ६५ ॥ द्रौपद्यै च वरम्प्रादात्सदश्चत्रविवर्द्धनम्। पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ॥ ६६ ॥ हंसडिम्भौ नृपौ कौचित्सर्वावमानकरौ खलौ। दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ॥६७॥ ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयन्स भूतले। संन्यासपद्धतिञ्चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ॥ ६८ ॥ वह्नुनुद्धारयामास सूर्यदेशं विबोध्य च। ज्ञानन्दत्त्वा

का संहार कर सकल साधु ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी ॥ ५८ ॥ वह वसुदेवपुत्र कृष्ण बड़ी ब्राह्मणभक्ति करने लगे, ब्राह्मणोंको नित्य ही रसमय भोजन कराने लगे ॥ ५९ ॥ तब संसारमें उनका यश फैल गया, कि—श्रीकृष्ण बड़े ब्राह्मणभक्त हैं, हे मुने! तब वह मुनि दर्शनकी इच्छासे कृष्णके पास पहुँचे ॥ ६० ॥ उन्होंने रुक्मिणी और कृष्णको रथमें जोता और स्वयं उस रथ पर सवार हुए, तब श्रीकृष्णजी प्रसन्नतापूर्वक उनको सवारी देने लगे ॥ ६१ ॥ तब तो मुनि उनकी दृढ़ताको देख रथसे उतर पड़े और उन पर प्रसन्न होकर उनको वज्रकी समान कड़े अङ्ग होनेका वरदान दिया ६२ हे मुने! एक समय कौतुकी दुर्वासा मुनि गंगाजीमें स्नान करते समय नग्न रह जानेके कारण लज्जित होरहे थे, कि—॥६३॥ तहाँ ही द्रौपदी भी स्नान कर रही थी उसने इस बातको भाँप कर अपना वस्त्र फाड़ कर उनको देदिया और उनकी लज्जा रखी थी ॥ ६४ ॥ प्रवाहमें बहते बहते जब वह वस्त्र मुनिके पास पहुँचा तब उस वस्त्रसे अपने गुह्यदेशको ढक कर वह मुनि द्रौपदी पर प्रसन्न हुए ॥ ६५ ॥ और द्रौपदीको वस्त्रवृद्धिका वर दिया उस वरके प्रभावसे द्रौपदीने (चीरहरणके समय) पाण्डवोंको सुखी किया था ॥ ६६ ॥ हंस और डिम्भ नामक दो दुष्ट राजा थे, हरिकी आज्ञा देकर मुनिने उनका नाश कर डाला ॥ ६७ ॥ और उन्होंने शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार विशेष ब्रह्मतेजस्वियोंके लिये संन्यासपद्धतिका प्रचार किया ॥ ६८ ॥

विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥ ६९ ॥ इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितम्बहु । धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतस्सर्वकामदम् ॥ ७० ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितम्मुदा । श्रावयेद्वा परान्यश्च स सुखीह परत्र च ॥ ७१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां दुर्वाससश्चरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

नन्दीश्वर उवाच । अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितम्मुने । यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः ॥ १ ॥ चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वरः । तत्सर्वं चरितं विप्र शृणु सर्वसुखावहम् ॥ २ ॥ एकस्मिन्समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः । ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोस्स हि वसद्गुणः ॥ ३ ॥ चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामवाणहतो यथा । स्वस्वीर्यम्पातयामास रामकार्य्यार्थमीश्वरः ॥ ४ ॥ तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते । प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात् ॥ ५ ॥ तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः । कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥ ६ ॥ ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक् । शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः ॥ ७ ॥ हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः । रवि-

---

उन्होंने उपदेश देकर अनेकोंका उद्धार किया और ज्ञान देकर अनेकोंको मुक्त कर दिया ॥ ६९ ॥ इस प्रकार दुर्वासा मुनिने बहुतसे विचित्र चरित्र किये हैं, वे चरित्र सुनने वालोंके धन यश आयु आदि सब मनोरथ पूर्ण करते हैं ॥ ७० ॥ जो पुरुष दुर्वासाके इन चरित्रोंको आदरपूर्वक सुनता है और दूसरोंको सुनाता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें सुख पाता है ॥ ७१ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे मुने ! अब आप प्रीतिपूर्वक हनुमच्चरितको सुनो, हरने इस रूपमें श्रेष्ठ लीलाएँ की हैं ॥ १ ॥ हे विप्र ! परमेश्वरने रामका हित प्रीतिपूर्वक किया था, सबको सुख देने वाले उस सब चरित्रको आप प्रेमपूर्वक सुनें ॥ २ ॥ एक समय अद्भुत रक्षक शम्भुने विष्णुके गुणमय मोहिनीरूपको देखा ॥ ३ ॥ ईश्वर शम्भुने रामका काय करनेके लिये कामवाणसे घायल हुए की समान अपनेको क्षुभित करके अपना वीर्यपात किया ॥४॥ तदनन्तर शम्भुने मन ही मनमें आदरपूर्वक रामकार्य करनेके लिये सप्तर्षियोंको वहाँ भेजा उन्होंने उस वीर्यको पत्तेमें स्थापित किया ॥ ५ ॥ उन सप्तर्षियोंने वह शम्भुका वीर्य रामका कार्य करनेके लिये गौतमकी पुत्री अञ्जनीके कानमें डाल दिया ॥६॥ तदनन्तर समय आने पर शम्भु महाबलपराक्रमी कपिशरीरधारी हनूमान् नाम धारण कर उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ महाबली कपीश्वर हनुमान् जब शिशु थे तो यह अतिप्रातःकालके समय सूर्यबिम्बको फल जानकर उसका

बिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा लघुफलम्प्रभो ॥ ८ ॥ देवप्रार्थनया तं सोऽत्यजज्ज्ञात्वा महाबलम् । शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान्सुरर्षिभिः ॥ ९ ॥ स्वजनन्यन्तिकम्प्रागादथ सोऽति प्रहर्षितः । हनूमान्सर्वमाचख्यौ तस्यै तद्वृत्तमादरात् ॥१०॥ तदाज्ञया ततो धीरस्सर्वविद्यामयत्नतः । सूर्यात्पपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम् ॥ ११ ॥ सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ । मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥ १२ ॥ ज्येष्ठभ्रात्रा वालिना हि स्वस्त्रीभोक्त्रा तिरस्कृतः । ऋष्यमूकगिरौ तेन न्यवसत्स हनूमता ॥ १३ ॥ ततोऽभूत्स सुकण्ठस्य मंत्री कपिवरस्सुधीः । सर्वथा सुहितं चक्रे सुग्रीवस्य हरांशजः ॥ १४ ॥ तत्रागतेन सभ्रात्रा हृतभार्येण दुःखिना । कारयामास रामेण तस्य सख्यं सुखावहम् ॥१५॥ घातयामास रामश्च वालिनं कपिकुञ्जरम् । भ्रातृपत्न्याश्च भोक्तारं पापिनं वीरमानिनम् ॥१६॥ ततो रामाऽऽज्ञया तात हनुमान्वानरेश्वरः । स सीतान्वेषणञ्चक्रे बहुभिर्वानरैस्सुधीः ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा लंकागतां सीतां गतस्तत्र कपीश्वरः । द्रुतमुल्लंघ्य सिंधुं तमनिस्तीर्य्यं परैस्स वै ॥ १८ ॥ चक्रेऽद्भुतचरित्रं स तत्र विक्रमसंयुतम् । अभिज्ञानं ददौ प्रीत्या सीतायै स्वप्रभोर्वरम् ॥ १९ ॥ सीता शोकं

भक्षण करने लगे ॥ ८ ॥ परन्तु देवताओंके प्रार्थना करने पर शिवावतार हनुमान्ने उसको महाबली सूर्य समझ कर छोड़ दिया और देवर्षियोंसे वर पाये ॥ ९ ॥ तदनन्तर हनुमान् अपनी माताके पास पहुँचे और प्रसन्नतापूर्वक सब वृत्तान्त अपनी मातासे कहा ॥ १० ॥ फिर माताकी आज्ञासे धीर कपि हनुमान् नित्य सूर्यके पास जा उनसे विद्या पढ़ने लगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर कपिसत्तम रुद्रांश हनुमान् सूर्यकी आज्ञासे सूर्यके अंश सुग्रीवके पास पहुँचे उन्होंने इस विषयकी सम्मति अपनी मातासे भी ले ली थी ॥ १२ ॥ सुग्रीव के बड़े भाई वालीने सुग्रीवकी स्त्रीको भोगा था अतः उस तिरस्कृत सुग्रीवके साथ हनुमान् ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे ॥ १३ ॥ तदनन्तर वह बुद्धिमान् हरांश कपिवर हनुमान् सुग्रीवके मन्त्री बन सदा उसका हित करने लगे ।१४। तहाँ जब जिनकी भार्या हरली गई थी ऐसे राम जब दुःखित होते हुए अपने भाईके साथ तहाँ पहुँचे तब हनुमान्ने रामके साथ सुग्रीवकी सुख देने वाली मित्रता कराई थी ॥ १५ ॥ तब रामने भाईकी पत्नीके भोक्ता वीरमानी पापी कपिकुञ्जर वालीका संहार करा दिया ॥ १६ ॥ हे तात ! तदनन्तर बुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमान्ने रामकी आज्ञासे बहुतसे वानरोंको साथ लेकर सीताकी खोज की ॥ १७ ॥ सीता लंकामें हैं इसका पता पाकर कपीश्वर हनुमान् दूसरे जिसको न लाँघ सकें ऐसे समुद्रको फुर्तीसे लाँघ कर तहाँ पहुँचे ॥१८॥ तहाँ उन्होंने पराक्रमके साथ अद्भुत चरित्र किया और सीताको अपने प्रभुकी श्रेष्ठ

जहाराशु स वीरः कपिनायकः । आवदित्वा रामवृत्तं तत्प्राणावनकारकम् ॥२०॥ तदभिज्ञानमादाय निवृत्तो रामसन्निधिम् । रावणारामभाहत्य जघान बहुराक्षसान् ॥ २१ ॥ तदैव रावणसुतं हत्वा सबहुराक्षसम् । स महोपद्रवं चक्रे महोतिस्तत्र निर्भयः ॥ २२ ॥ यदा दग्धो रावणेनावगुंठ्य वसनानि च । तैलाभ्यक्तानि सुदृढं महाबलवता मुने ॥ २३ ॥ उत्प्लुत्योत्प्लुत्य च तदा महादेवांशजः कपिः । ददाह लंकां निखिलां कृत्वा व्याजन्तमेव हि ॥ २४ ॥ दग्ध्वा लंकां वंचयित्वा विभीषणगृहं ततः । अपतद्वारिधौ वीरस्ततस्स कपिकुञ्जरः ॥२५॥ स्वपुच्छं तत्र निर्वाप्य प्राप तस्य परं तटम् । अखिन्नस्स ययौ रामसन्निधिं गिरिशांशजः२६ अविलंबेन सुजवो हनूमान् कपिसत्तमः । रामोपकण्ठमागत्य ददौ सीताशिरोमणिम् ॥ २७ ॥ ततस्तदाज्ञया वीरस्सबधो सेतुमबंधयत् । वानरैस्स समानीय बहून्गिरिवरान्बली ॥२८॥ गत्वा तत्र ततो रामस्ततुं कामो यथा ततः । शिवलिंगं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेप्सया ॥२९॥ तद्वरात्स जयं प्राप्य वरं तीर्त्वोदधिं ततः । लंकामावृत्य कपिभी रणं चक्रे स राक्षसैः ॥३०॥ जघानाथासुरान्वीरो रामसैन्यं

निशानी (अँगूठी) दी ॥ १९ ॥ तदनन्तर वीर कपिनायकने सीताको उनके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये रामका वृत्तान्त सुना कर उनके शोकको दूर किया ॥ २० ॥ तदनन्तर सीताकी निशानी (चूड़ामणि) लेकर रामके पासको लौटने लगे उस समय उन्होंने रावणका बगीचा उजाड़ कर बहुतसे राक्षसोंको मार डाला ॥ २१ ॥ तदनन्तर परमरक्षक निर्भय हनुमानने रावणके पुत्र (अक्षयकुमार) को और बहुतसे राक्षसोंका मार कर लंकामें बड़ा उपद्रव मचा डाला ॥ २२ ॥ हे मुने ! तदनन्तर जब महाबली रावणने तेलमें भीगे हुए वस्त्रोंसे हनुमान्को दृढ़तासे जकड़ दिया ॥२३॥ तब महादेवके अंशसे प्रकट हुए कपिने इसी बहानेसे उछल उछल कर सारी लंकाको जला डाला ॥ २४ ॥ वह वीर कपिकुञ्जर एक विभीषणके घरको छोड़ लंका भरको भस्म कर समुद्रमें कूद पड़े ॥ २५ ॥ वहाँ अपनी पूँछको बुझा कर समुद्रके दूसरे किनारे पर पहुँच गए, इस प्रकार वह गिरिशांशज हनूमान् कुछ भी खिन्न न हो रामके पास चले ॥ २६ ॥ इस प्रकार कपिसत्तम हनुमान्ने बड़े वेगसे रामके पास आ उनका सीताकी चूड़ामणि दी ॥ २७ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे बली हनुमान्ने वानरोंसे बहुतसे पत्थर मँगा कर समुद्र पर पुल बाँधा ॥ २८ ॥ समुद्रतट पर पहुँच कर रामने समुद्रको तरने की और विजय पानेकी इच्छासे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा कर उसका पूजन किया ॥ २९ ॥ उनके प्रसादसे रामने समुद्र तरकर जय पाई, उन्होंने वानरोंसे लंकाको घेर कर राक्षसोंसे युद्ध

रक्ष सः । शक्तिक्षतं लक्ष्मणं च संजीविन्या ह्यजीवयत् ॥ ३१ ॥ सर्वथा सुखिनं चक्रे सरामं लक्ष्मणं हि सः । सर्व्वसैन्यं ररक्षासौ महादेवात्मजः प्रभुः ॥ ३२ ॥ रावणं परिवाराढ्यं नाशयामास विश्रमः । सुखीचकार देवान्स महाबलगृङ्ः कपिः ॥ ३३ ॥ महीरावणसंज्ञं स हत्वा रामं सलक्ष्मणम् । तत्स्थानादानयामास स्वस्थानम्परिपाल्य च ॥ ३४ ॥ रामकार्यं चकाराशु सर्व्वथा कपिपुंगवः । असुरान्नमयामास नानालीलां चकार च ॥ ३५ ॥ स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः । स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणप्राणदाता च सर्वदेवमदापहः । रुद्रावतारो भगवान्भक्तोद्धारकरस्स वै ॥ ३७ ॥ हनुमान्स महावीरो रामकार्य्यकरस्सदा । रामदूताभिधो लोके दैत्यघ्नो भक्तवत्सलः ॥३८॥ इति ते कथितं तात हनुमच्चरितं वरम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ३९ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । स भुक्त्वेहाखिलान्कामानन्ते मोक्षं लभेत्परम् ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

किया ॥ ३० ॥ वीर हनुमान्ने वहाँ असुरोंको मार कर रामसेनाकी रक्षा की और शक्तिसे घायल हुए लक्ष्मणको संजीवनोसे जीवित किया ॥ ३१ ॥ उन महादेवात्मज प्रभु हनुमान्ने सारी सेनाकी रक्षा कर लक्ष्मण और रामको सर्वथा सुखी किया था ॥ ३२ ॥ रावणको उसके परिवारसहित मार डाला तब भी उनको कुछ श्रम नहीं मालूम दिया, इस प्रकार महाबली कपिने देवताओंको सुखी किया था ॥ ३३ ॥ वह महिरावणको मार राम और लक्ष्मणको उसके स्थानसे ले आये थे और अपनी छावनोकी उन्होंने रक्षाकी थी ॥३४॥ कपि-पुङ्गवने रामका कार्य सर्वथा किया असुरोंको नमा कर उन्होंने अनेक लीलायें की थीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने भूलोकमें रामभक्तिकी स्थापना की तथा वह कपीश्वर स्वयं भी सीतारामके सुखदायक भक्त बने थे ॥ ३६ ॥ वह लक्ष्मणके प्राणदाता, सब देवताओंका मद झाड़ने वाले रुद्रावतार भगवान् भक्तोंका उद्धार करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ वह महावीर्य हनुमान् सदा रामका कार्य करते हैं, संसारमें रामदूत नामसे प्रसिद्ध हैं, दैत्यसंहारक और भक्तवत्सल हैं ३८ हे तात ! इस प्रकार आपसे धन यश आयु देनेवाला तथा सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला हनुमान्जीका श्रेष्ठ चरित्र कह दिया ॥ ३९ ॥ जो इस आख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है वा सावधानतापूर्वक सुनाता है तो वह इस लोकमें सकल सुखोंको भोग अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ ४० ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

नन्दीश्वर उवाच । अथ प्रीत्या शृणु सुतावतारं परमं प्रभोः । शंकरस्यात्मभूपुत्र श्रवणतां सर्वकामदम् ॥ १ ॥ एकदा मुनिशार्दूल गिरिजाशंकरावुभौ । विहर्तुकामौ संजातौ स्वेच्छया परमेश्वरौ ॥ २ ॥ भैरवं द्वारपालं च कृत्वाभ्यन्तरमागतौ । नानासखिगणैः प्रीत्या सेवितौ नरशीलितौ ॥ ३ ॥ चिरं विहृत्य तत्र द्वौ स्वतन्त्रौ परमेश्वरौ । बभूवतुः प्रसन्नौ तौ नानालीलाकरौ मुने ॥ ४ ॥ अथोन्मत्ताकृतिर्देवी स्वतन्त्रा लीलया शिवा । आगता द्वारि तद्रूपा प्रभोराज्ञामवाप सा ॥ ५ ॥ तां देवीं भैरवस्सोऽथ नारीदृष्ट्या विलोक्य च । निषिषेध बहिर्गन्तुं तद्रूपेण विमोहितः ॥ ६ ॥ नारीदृष्ट्या सुदृष्टा सा भैरवेण यदा मुने । क्रुद्धाऽभवच्छिवा देवी तं शशाप तदाम्बिका ॥ ७ ॥ शिवोवाच । नारीदृष्ट्या पश्यसि त्वं यतो मां पुरुषाधम । अतो भव धरायां हि मानुषस्त्वं च भैरव ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्थं यदाऽभवच्छप्तो भैरवश्शिवया मुने । हाहाकारो महानासीद् दुःखमाप स लीलया ॥ ९ ॥ ततश्च शंकरः शीघ्रं तमागत्य मुनीश्वर । आश्वासयद्भैरवं हि नानाऽनुनयकोविदः ॥ १० ॥ तच्छापाद्भैरवस्सोऽथ क्षिताववतरन्मुने । मनुष्ययोन्यां वैतालसंज्ञकश्शंकरेच्छया ॥ ११ ॥ तत्स्नेहतः शिवः सोऽपि

नन्दीश्वरने कहा, कि–हे ब्रह्मपुत्र मुने ! अब आप शंकरके श्रोताओंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाले एक श्रेष्ठ अवतारको सुनें ॥ १ ॥ हे मुनिशार्दूल ! एक समय गिरिजा और शंकर दोनों परमेश्वरोंको विहार करनेकी अभिलाषा हुई ॥ २ ॥ तब वे भैरवको द्वारपाल बनाकर भीतर आये और मनुष्योंका सा स्वभाव दिखानेके लिये अनेक सखियें प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करने लगीं ॥३॥ हे मुने ! अनेक प्रकारकी लीला करने वाले वे दोनों परमेश्वर स्वतन्त्र थे अतः चिरकाल तक विहार कर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ तदनन्तर स्वतन्त्र शिवा प्रभुकी आज्ञा पा लीला करनेके लिये उन्मत्तकी सी आकृति बना द्वार पर पहुँची ॥ ५ ॥ परन्तु उनके इस रूपसे मोहमें पड़े भैरवने उन देवीको नारीदृष्टिसे देखकर उन्हें बाहर जानेसे रोका ॥ ६ ॥ हे मुने ! जब भैरवने नारीदृष्टिसे अंबिकाको देखा तब देवी क्रोधमें भर उनको शाप देने लगीं ॥७॥ शिवाने कहा, कि–अरे पुरुषाधम भैरव ! तू जो मुझे नारीदृष्टिसे देख रहा है अतः तू पृथ्वी पर मनुष्य बन जा ॥ ८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–हे मुने ! जब शिवाने इस प्रकार भैरवको शाप दिया तब बड़ा हाहाकार मचा और लीला दिखानेके लिये भैरव भी महादुःखी हुए ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वर ! तब तो अनुनय करनेमें चतुर शंकर शीघ्र ही तहाँ पहुँचे और भैरवको आश्वासन देने लगे ॥ १० ॥ हे मुने ! उनके शापवश भरव शंकरकी इच्छासे मनुष्ययोनि में वैताल नामसे पृथ्वी पर उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ और उनके स्नेहसे विभु

क्षितावचतरद्विभुः। शिवया सह सल्लीलो लौकिकीङ्गतिमाश्रितः ॥१२॥ महेशाह्वः शिवश्चासीच्छारदा गिरिजामुने। सुलीलां चक्रतुः प्रीत्या नानालीलाविशारदौ१३ इति ते कथितं तात महेशचरितं वरम्। धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्१४ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः। स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

नन्दीश्वर उवाच। शृणु ब्रह्मसुत प्राज्ञ वृषेशाख्यं मुनीश्वर। शिवावतारं सल्लीलं हरिगर्वहरं वरम् ॥ १ ॥ पुरा देवासुराः सर्वे जरामृत्युभयार्दिताः। परस्परं च संधाय रत्नान्यादित्सवोऽभवन् ॥ २ ॥ ततः सुरासुराः सर्वे क्षीरोदं सागरोत्तमम्। उद्यता मथितुं तं च बभूवुर्मुनिनन्दन ॥ ३ ॥ आसन्शुचिस्मितास्सर्वे केनेदं मन्थनं भवेत्। स्वकार्य्यसिद्धये तस्य ब्रह्मन्निति सुरासुराः ॥४॥ तदा नभोगता वाणी मेघगम्भीरनिस्स्वना। उवाच देवान्दैत्यांश्च श्वासयन्तीश्वराज्ञया ॥ ५ ॥ नभोवाण्युवाच। हे देवा असुराश्चैव मन्थध्वं क्षीरसागरम्। भवतामबलबुद्धिर्हि भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ मन्दरं चैव मन्थानं रज्जुं कुरुत

शिव भी संसारीगतिका आश्रय ले श्रेष्ठ लीलायें करनेके लिये शिवाके साथ पृथ्वी पर उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ हे मुने! उस समय शिवका नाम महेश था और गिरिजाका नाम शारदा था, अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें चतुर उन दोनोंने प्रेमपूर्वक श्रेष्ठ लीलाएँ की ॥१३॥ हे तात! इस प्रकार आपसे महेशका धन यश आयु और सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला श्रेष्ठ चरित्र कहा ॥ १४ ॥ जो भक्तिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है वा सावधानतासे सुनाता है, वह इस लोकमें सकल भोगोंको भोगता है और अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १५ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २१ ॥ ❀ ❀

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुनीश्वर ब्रह्मसुत! शिवके वृषेश नामक श्रेष्ठ लीलाओंसे भरे हरिका गर्व उतारने वाले श्रेष्ठ अवतारकी कथाको सुनो ॥ १॥ पहिले सुर असुर आदि सब जरा और मृत्युके भयसे पीड़ित हो परस्पर संधि कर रत्न ग्रहण करना चाहने लगे ॥ २ ॥ हे मुनिनन्दन! तब देवता और असुर उत्तम क्षीर-समुद्रको मथनेके लिये उद्यत होगए ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन्! उस समय देवता और असुर मुस्कुरा कर यह विचारने लगे, कि- इसका मंथन किससे करें ॥ ४ ॥ उस समय ईश्वरकी आज्ञासे देवता और दैत्योंको ढाढस देती हुई आकाशवाणी मेघगंभीर स्वरमें कहने लगी ॥ ५ ॥ आकाशवाणीने कहा, कि- हे देवता और असुरो! तुम क्षीरसमुद्रको मथो, तुममें बल बुद्धि आ ही

वासुकिम् । मिथस्सर्वे मिलित्वा तु मथनं कुरुतादरात् ॥७॥ नन्दीश्वर उवाच । नभोगतां तदा वाणीं निशम्याथ सुरासुराः । उद्योगं चक्रिरे सर्वे तत्कर्तुं मुनिसत्तम ॥ ८ ॥ सुसन्धायाखिलास्ते वै मन्दरं पर्वतोत्तमम् । कनकाभं च सरलं नानाशोभार्चितं ययुः ॥ ९ ॥ सुप्रसाद्य गिरीशं तं तदाज्ञप्ताः सुरासुराः । बलादुत्पाटयामासुर्नेतुकामाः पयोऽर्णवम् ॥ १० ॥ भुजैरुत्पाट्य ते सर्वे जग्मुः क्षीरार्णवं मुने । अशक्ता अभवंस्तत्र तमानेतुं हतौजसः ॥ ११ ॥ तद्भुजैस्स परिभ्रष्टः पतितो मन्दरो गिरिः । सहसातिगुरुस्सद्यो देवदैत्योपरि ध्रुवम् ॥ १२ ॥ एवमभोद्यमा भग्नाः सम्बभूवुस्सुरासुराः । चेतनां प्राप्य च ततस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् १३ तदिच्छयोद्यतास्सर्वे पुनरुत्थाप्य तं गिरिम् । निचिक्षिपुर्जले नीत्वा क्षीरोदस्योत्तरे तटे ॥ १४ ॥ ततस्सुरासुरगणा रज्जुं कृत्वा च वासुकिम् । रत्नान्यादातुकामास्ते ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदे मथ्यमाने तु श्रीस्स्वर्लोकमहेश्वरी । समुद्भूता समुद्राच्च भृगुपुत्री हरिप्रिया ॥ १६ ॥ धन्वन्तरिः शशांकश्च पारिजातो महाद्रुमः । उच्चैश्श्रवाश्च तुरगो गज ऐरावतस्तथा ॥ १७ ॥ सुरा हरिधनुश्शंखो गावः कामदुघास्ततः । कौस्तुभाख्यो मणिश्चैव तथा पीयूषमेव

जावेगी ॥ ६ ॥ तुम मंदराचलको रई बनाओ और वासुकिको रस्सी बनाओ इस प्रकार सब मिल कर मथो ॥ ७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुनिसत्तम ! आकाशवाणीको सुन देवता तथा असुर वैसा ही करनेके लिये उद्योग करने लगे ॥८॥ वे सब परस्पर सलाह कर अनेक प्रकारकी शोभासे सम्पन्न सुवर्णकी समान दमकते हुए पर्वतोत्तम सरल मन्दराचल पर पहुँचे ॥ ९ ॥ और उस पर्वतराजको भलीभाँति प्रसन्न कर उसकी सम्मतिसे क्षीरसमुद्र पर ले जानेके लिये उसको बलपूर्वक उखाड़ने लगे ॥ १० ॥ हे मुने ! उसको अपनी भुजाओंसे उखाड़ कर वे सब क्षीरसमुद्रकी ओर चले, परन्तु उनका बल कम होगया और वे उसको लेचलनेमें असमर्थ होपड़े ॥ ११ ॥ सहसा वह मन्दर पर्वत बहुत भारी होकर उनकी भुजाओंसे छूट कर उन देवता और दैत्योंके ऊपर ही गिरने लगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार उद्यम व्यर्थ जानेसे देवता और असुरोंका मन टूट गया और वे होशमें आ जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे १३ फिर शंकरकी इच्छासे वे सब उस पर्वतको फिर उठाकर चले और उन्होंने उसको क्षीरसमुद्रके उत्तर तट पर जाकर रख दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर रत्नोंको लेना चाहने वाले सुर तथा असुर वासुकिको रस्सी बना कर क्षीरसमुद्रको मथने लगे ॥ १५ ॥ क्षीरसमुद्रके मथने पर स्वर्गलोककी महेश्वरी भृगुपुत्री हरिप्रिया लक्ष्मी समुद्रसे प्रकट हुई ॥ १६ ॥ इसी प्रकार धन्वन्तरि, चन्द्रमा, पारिजात वृक्ष, उच्चैःश्रवा घोड़ा, और ऐरावत हाथी प्रकट हुए ॥ १७ ॥

च ॥ १८ ॥ पुनश्च मथ्यमाने तु कालकूटं महाविषम् । युगान्तानलभं जातं सुरासुरासुरभयावहम् ॥ १९ ॥ पीयूषजन्मकाले तु बिन्दवो ये बहिर्गताः । तेभ्यः कान्ता समुद्भूता बह्वयो ह्यद्भुतदर्शनाः ॥ २० ॥ शरत्पूर्णेन्दुवदनास्तडित्सूर्यानलप्रभाः । हारकेयूरकटकैर्दिव्यरत्नैरलंकृताः ॥२१॥ लावण्यामृततोयेन तासिंचन्त्यो दिशो दश । जगदुन्मादयन्त्येव भ्रूभंगायतवीक्षणाः ॥ २२ ॥ कोटिशस्तास्समुत्पन्नास्त्वमृतात्काममिस्सृताः । ततोऽमृतं समुत्पन्नं जरामृत्युनिवारणम् ॥२३॥ लक्ष्मीं शंखं कौस्तुभं च खड्गं जग्राह केशवः । जग्राहार्को हयं दिव्यमुच्चैःश्रवसमादरात् ॥ २४ ॥ पारिजातं तरुवरमैरावतमिभेश्वरम् । शचीपतिश्च जग्राह निर्जरेशो महादरात् ॥ २५ ॥ कालकूटं शशांकं च देवत्राणाय शंकरः । स्वकण्ठे धृतवाञ्छम्भुस्स्वेच्छया भक्तवत्सलः ॥ २६ ॥ दैत्यास्सुराख्यां रमणीमीश्वराजविमोहिताः । जगृहुः सकला व्यास सर्वे धन्वन्तरिं जनाः ॥ २७ ॥ जगृहुर्मुनयस्सर्वे कामधेनुम्मुनीश्वराः । सामान्यतस्त्रियस्ताश्च स्थिता आसन्विमोहिकाः ॥ २८ ॥ अमृतार्थं महायुद्धं संबभूव जयैषिणाम् । सुराणामसुराणां च

फिर सुरा, हरिधनुष, शंख, कामधेनु, कौस्तुभमणि तथा अमृत प्रकट हुआ १८ फिर मथने पर प्रलयकालकी अग्निकी समान आभा वाला देवता और असुरों को भय देने वाला कालकूट महाविष निकला ॥ १९ ॥ अमृत प्रकट होते समय उसकी जो बूँदें बाहर गिर पड़ीं थीं उनसे अद्भुत दिखाव वाली बहुतसी रमणियें निकलीं ॥ २० ॥ उनका मुख शरद् ऋतुकी पूर्णिमाके समान था और छबि सूर्य और अग्निकी समान थी तथा वे हार बाजूबन्द तागड़ी तथा दिव्य रत्नोंसे अलंकृत थीं ॥२१॥ वे भौं मटका कर देखती हुईं स्त्रियें अपने लावण्यरूपी अमृतजलसे दशों दिशाओंको छिड़क कर जगत्को उन्मत्त बनाने लगीं २२ वे अमृतमेंसे करोड़ोंकी संख्यामें अपनी इच्छानुसार उठ खड़ी हुईं, इस प्रकार बुढ़ापे और मृत्युको भगाने वाला अमृत प्रकट हुआ था ॥ २३ ॥ उस समय केशवने लक्ष्मी शंख और कौस्तुभ नामक खड्गको लेलिया तथा सूर्यने उच्चैःश्रवाको बड़े आदरपूर्वक लेलिया ॥ २४ ॥ और देवताओंके स्वामी इन्द्रने कल्पवृक्ष और गजराज ऐरावतको आदरपूर्वक ग्रहण कर लिया ॥ २५ ॥ और भक्तवत्सल शम्भुने स्वेच्छासे ही चन्द्रमाको तथा कालकूटको लेलिया और देवताओंकी रक्षा करनेके लिये कालकूटको अपने कण्ठमें धारण कर लिया २६ ईश्वरकी मायासे मोहमें पड़ दैत्योंने सुराको ग्रहण किया और सब मनुष्योंने धन्वन्तरिको ग्रहण किया ॥ २७ ॥ तथा मुनीश्वर मुनियोंने कामधेनुको ग्रहण किया और वे स्त्रियें मोहमें पड़ सामान्यरूपसे खड़ी रहीं ॥ २८ ॥

मिथः संघर्षश्चेतसाम् ॥ २९ ॥ हृतं सोमं च दैतेयैर्बलाद्देवान्विजित्य च । बलिप्रभृतिभिर्वीरैः युगान्ताग्न्यर्कसुप्रभैः ॥३०॥ देवाश्शंकरमापन्ना विह्वलाश्शिवमायया । सर्वे शक्रादयस्तात दैतेयैरर्दिता बलात् ॥ ३१ ॥ ततस्तदमृतं यत्नात्स्त्रीस्वरूपेण मायया । शिवाज्ञया रमेशेन दैत्येभ्यश्च हृतम्मुने ॥ ३२ ॥ अपाययत्सुरांस्तांश्च मोहिनी स्त्रीस्वरूपधृक् । मोहयित्वासुरान्सर्वान्हरिर्मायाविनां वरः ॥३३॥ गत्वा निकटमेतस्य ऊचिरे दैत्यपुङ्गवाः । पाययस्व सुधामेतां माभूद्भेदोऽत्र पंक्तिषु ॥३४॥ एतदुक्त्वा ददुस्तस्मै विष्णवे छलरूपिणे । ते दैत्या दानवाः सर्वे शिवमायाविमोहिताः ३५ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा स्त्रियो दानवपुङ्गवाः । अनयन्नमृतोद्भूता यथास्थानं यथासुखम् ॥ ३६ ॥ तासां पुराणि दिव्यानि स्वर्गाच्छतगुणान्यपि । घोरैर्यन्त्रैस्सुगुप्तानि मयमायाकृतानि च ॥३७॥ सुरक्षितानि सर्वाणि कृत्वा युद्धाय निर्ययुः । अस्पृष्टवक्षसो दैत्याः कृत्वा समयमेव हि ॥ ३८ ॥ न स्पृशामः स्त्रियश्चेमा यदि देवैर्विनिर्जिताः । इत्युक्त्वा ते महावीरा दैत्यास्सर्वे युयुत्सवः ॥३९॥ सिंहनादं ततश्चक्रुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् । पूरयन्त इवाकाशं

अमृतके कारण देवता और असुरोंके बीचमें मनमुटाव होकर महायुद्ध होने लगा ॥२९॥ बलि आदि प्रलयाग्नि और सूर्यकी समान कान्ति वाले दैत्योंने देवताओंको बलपूर्वक जीतकर अमृत छीन लिया ॥ ३० ॥ हे तात! जब दैत्योंने बलपूर्वक इन्द्र आदि देवताओंको पीड़ित किया, तब वे विह्वल हो शंकरको शरणमें पहुँचे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर शिवकी आज्ञासे रमेशने मायासे स्त्रीका रूप धारण कर दैत्योंसे यत्नपूर्वक लेलिया ॥ ३२ ॥ उस समय श्रेष्ठ माया वाले हरिने सब असुरोंको मोहमें डाल दिया था और मोहिनी स्त्रीका रूप धारण कर देवताओंको अमृत पिला दिया था ॥ ३३ ॥ बड़े बड़े दैत्य इसके पास पहुँचकर कहने लगे, कि-तुम हमें यह अमृत पिलाओ, देखो पंक्ति-भेद न हो ॥ ३४ ॥ यह कहकर शिवकी मायासे मोहमें पड़े दैत्य और दानवोंने वह अमृत छलसे मोहिनीका रूप धारण करने वाले विष्णुको देदिया था ॥ ३५ ॥ इसी समय दानवपुंगवोंने अमृतसे प्रकट हुई स्त्रियोंको देखा और सुखपूर्वक उनको यथोचित स्थानों पर लेजाने लगे ॥ ३६ ॥ दैत्योंने उनको स्वर्गसे भी सौगुणे रमणीय घोर यन्त्रोंसे रक्षित मयकी मायासे बने नगरोंमें रखा ॥ ३७ ॥ उन सब नगरोंको सुरक्षित करके दैत्य स्त्रियोंसे वक्षःस्थल मिलाये बिना प्रतिज्ञा करके चल दिये ॥ ३८ ॥ कि-यदि हम देवताओंसे हार जावेंगे, तो इन स्त्रियोंका स्पर्श न करेंगे, इस प्रकार कहकर उन युद्धाभिलाषी महावीर दैत्योंने सिंहनाद किया और शंख बजाने

तर्पयन्तो बलाहकान् ॥ ४० ॥ युद्धं बभूव देवानामसुरैस्सह भीकरम् । देवासुरा ख्यमतुलं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥४१॥ जयं प्रापुस्सुरास्सर्वे विष्णुना परिरक्षिताः । दैत्याः पलायितास्तत्र हताः सामरविष्णुना ॥ ४२ ॥ दैत्याः संमोहिता देवैर्विष्णुना च महात्मना । हतावशिष्टाः पातालं विविशुर्विवराणि च ॥ ४३ ॥ अनुवव्राज तान्विष्णुश्चक्रपाणिर्महाबलः । पातालं परमं गत्वा संस्थितान्भीतभीतवत् ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्ददर्शामृतसम्भवाः । कान्ताः पूर्णेन्दुवदना दिव्यलावण्यगर्विताः ॥४५॥ संमोहितः कामबाणैर्लेभे तत्रैव निर्वृतिम् । ताभिश्च वरनारीभिः क्रीडमानो बभूव ह ॥ ४६ ॥ ताभ्यः पुत्रानजनयद्विष्णुर्वरपराक्रमान् । महीं सर्वां कम्पयतो नानायुद्धविशारदान् ॥ ४७ ॥ ततो वै हरिपुत्रास्ते महाबलपराक्रमाः । महोपद्रवमाचेरुस्स्वर्गे भुवि च दुःखदम् ॥ ४८ ॥ लोकोपद्रवमालक्ष्य निर्जरा मुनयोऽथ वै । चक्रुर्निवेदनन्तेषां ब्रह्मणे प्रणिपत्य च ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वादाय तान्ब्रह्मा ययौ कैलासपर्वतम् । तत्र दृष्ट्वा शिवं देवैः प्रणनाम पुनः पुनः ५० तुष्टाव विविधैस्स्तोत्रैर्नतस्कन्धः कृताञ्जलिः । जय देव महादेव सर्वस्वामिन्निति

लगे, उस शंखध्वनिसे आकाश भर गया और मेघ भी तृप्त होगए।३९।४०। तब देवताओंका असुरोंके साथ भयदायक युद्ध होने लगा, यह अनुपम युद्ध त्रिलोकीमें देवासुर नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४१ ॥ उस समय विष्णुकी रक्षामें खड़े होकर देवताओंने विजय पाई, विष्णु और देवताओंसे पिटे हुए दैत्य तहाँसे भाग पड़े ॥ ४२ ॥ महात्मा विष्णुने और देवताओंने दैत्योंको मोह में डाल दिया, उस समय जो मरनेसे बाकी बचे वे पातालमें और गड्ढोंमें घुस गए ॥ ४३ ॥ महाबली चक्रपाणि विष्णुने उनका पीछा किया और पातालमें डरे हुए दैत्योंके पीछे पहुँच गए ॥४४॥ इसी समय विष्णुने अमृत से प्रकट हुई दिव्य सौन्दर्यसे गर्वमें भरीं, पूर्णचन्द्रकी समान मुख वालीं कान्ताओंको देखा ॥ ४५ ॥ और कामबाणोंसे मोहमें पड़ तहां ही सुख मानने लगे, उन श्रेष्ठ स्त्रियोंसे क्रीड़ा करने लगे ॥ ४६ ॥ विष्णुने उनमें श्रेष्ठ पराक्रम वाले पुत्रोंको उत्पन्न किया वे पुत्र अनेक प्रकारका युद्ध करने में चतुर होगए और सकल पृथ्वीको कँपानेकी शक्ति उनमें आगई ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वे महाबली हरिपुत्र स्वर्ग तथा पृथ्वी पर बड़ा उपद्रव मचा कर दुःख देने लगे ॥४८॥ देवता और मुनियोंने बड़ा उपद्रव मचा देख ब्रह्माजी को प्रणाम कर उनकी करतूत कही ॥४९॥ इस बातको सुन ब्रह्माजी उनको साथ ले कैलासपर्वतको चले तहाँ शिवका दर्शन कर ब्रह्माने और देवताओं ने उन्हें वारंवार प्रणाम किया ॥ ५० ॥ फिर ब्रह्माजी कंधा झुका हाथ

प्रणवन् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच । देवदेव महादेव लोकान्रक्षाखिलान्प्रभो । उपद्रुतान्विष्णुपुत्रैः पातालस्थैर्विकारिभिः ॥ ५२ ॥ नारीष्वमृतभूतासु संसक्तात्मा हरिर्विभो । पाताले तिष्ठतीदानीं रमते हि विकारवान् ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्थं बहु स्तुतः शम्भुर्ब्रह्मणा सर्षिनिर्जरैः । लोकसंरक्षणार्थाय विष्णोरानयनाय च ॥ ५४ ॥ ततस्स भगवाञ्छम्भुः कृपासिन्धुर्महेश्वरः । तदुपद्रवमाज्ञाय वृषरूपो बभूव ह ॥ ५५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां विष्णूपद्रववृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर उवाच । ततो वृषभरूपेण गर्जमानः पिनाकधृक् । प्रविष्टो विवरं तत्र निनदन्भैरवाननवान् ॥ १ ॥ निपेतुस्तस्य निनदैः पुराणि नगराणि च । प्रकंपो हि बभूवाथ सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ २ ॥ ततो वृषो हरेः पुत्रान्संग्रामोद्यतकार्मुकान् । शिवमायाविमूढात्ममहाबलपराक्रमान् ॥ ३ ॥ हरिपुत्रास्ततस्तेऽथ प्राकुप्यन्मुनिसत्तम । प्रदुद्रुवुः प्रगर्ज्योच्चैर्वीराश्शंकरसन्मुखम् ॥ ४ ॥ आयातांस्तान्हरेः पुत्रान् रुद्रो वृषभरूपधृक् । प्राकुप्यद्विष्णुपुत्रांश्च खुरैश्शृङ्गैर्व्यदारयत् ॥५॥ विदारितांगा रुद्रेण सर्वे हरिसुताश्च ते । नष्टा द्रुतं सम्बभूवुर्गतप्राणा विचेतसः६

जोड़ "हे सबके स्वामिन् महादेव देव ! आपकी जय हो" कहकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—पातालमें स्थित विष्णुके पुत्रोंने चित्तमें विकार आनेसे सब लोकोंमें उथल-पुथल मचा रखी है, हे प्रभो ! हे देवदेव महादेव ! आप उनकी रक्षा करिये ५२ हे प्रभो ! अमृतसे प्रकट हुईं नारियोंमें हरिका चित्त फँस रहा है वे आज कल विकारको प्राप्त हो रमण करते हुए पातालमें विराजमान हैं ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस प्रकार संसारकी रक्षा करनेके लिये और विष्णु को लौटानेके लिये ब्रह्मा ऋषि तथा देवताओंने शम्भुकी बहुत बहुत स्तुति की ॥ ५४ ॥ तब इस उपद्रवको जान कृपासिंधु महेश्वर भगवान् शम्भु वृषभरूपधारी होगए ॥ ५५ ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि—तब पिनाकधारी शङ्कर वृषभरूपसे गर्जने लगे और रंभाते हुए पाताल-विवरमें घुसे ॥ १ ॥ उनके रंभानेसे नगर और नगरियें गिरनेसी लगीं और सब नगरनिवासी काँप उठे ॥ २ ॥ तब शिवकी माया से चित्तके मोहित होजाने पर महाबली हरिपुत्रोंने संग्राममें वृष पर धनुष ताना ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! वे वीर हरिपुत्र कोपमें भर गर्जना कर शङ्करके ऊपर झपटे ॥ ४ ॥ तब वृषभरूपधारी रुद्र भी उनके सामने आकर डटे हुए हरिपुत्रों पर कुपित हो उनको खुर और सींगोंसे मारने लगे ॥ ५ ॥ जब रुद्र

हतेषु तेषु पुत्रेषु विष्णुर्बलवतां वरः। निष्क्रम्याथ प्रणम्योच्चैर्ययौ शीघ्रं हरान्तिकम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा रुद्रं प्रव्रजन्तं हतविष्णुसुतं वृषम्। शरैस्सन्ताडयामास दिव्यैरस्त्रैश्च केशवः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महादेवो वृषरूपी महाबलः। अस्त्राणि तानि विष्णोश्च जग्रास गिरिगोचरः ॥ ९ ॥ अथ कृत्वा महाकोपं वृषात्मा स महेश्वरः। चिननाद महाघोरं कम्पयंस्त्रिजगन्मुने ॥ १० ॥ तत उत्प्लुत्य तरसा खुरैश्शृङ्गैर्व्यदारयत्। विष्णुं क्रोधाकुलं मूढमजानन्तं निजं हरिम् ॥ ११ ॥ ततस्स शिथिलात्मा हि व्यथितांगो बभूव ह। तत्प्रहारमसह्यात्तु हरिर्मायाविमोहितः ॥ १२ ॥ गतगर्वो हरिश्चैव विचेता गतचेतनः। ज्ञातवान्परमेशानं विहरन्तं वृषात्मना ॥ १३ ॥ अथ विज्ञाय गौरीशमागतं वृषरूपतः। प्राह गम्भीरया वाचा नतस्कन्धः कृतांजलिः ॥ १४ ॥ हरिरुवाच। देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो। मायया ते महेशान मोहितोऽहं विमूढधीः ॥ १५ ॥ कृतं युद्धं त्वयेशेन स्वनाथेन मया प्रभो। कृपां कृत्वा मयि स्वामिन्सोऽपराधो हि सह्यताम् ॥ १६ ॥

हरिपुत्रोंके अंगोंको विदीर्ण करने लगे तब उनका चित्त दौड़ा गया प्राण निकल गए, इस प्रकार वे शीघ्र ही नष्ट होगए ॥ ६ ॥ उन पुत्रोंके मारे जाने पर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु निकले और उच्चस्वरसे प्रणाम कर शीघ्र ही हरके पास पहुँचे ॥ ७ ॥ जिसने अपने पुत्रोंको मार डाला था ऐसे वृषरूपधारी रुद्रको आता देख केशवने वृष पर दिव्य अस्त्र बरसाये ।८। तब तो वृषरूपधारी गिरिगोचर महाबली महादेव क्रोधमें भर विष्णुके अस्त्रोंको ग्रसने लगे ॥९॥ हे मुने ! तदनन्तर वृषरूपधारी महेश्वर बड़े क्रोधमें भर त्रिलोकीको कँपाते हुए महाघोर गर्जना करने लगे ॥ १० ॥ फिर फुर्तीसे उछले और अपनेको भूले हुए क्रोधाकुल विष्णुको खुर और सींगोंसे विदीर्ण करने लगे ॥ ११ ॥ तब तो मायावश मोहमें पड़े विष्णु उस प्रहारको न सहनेसे ढीले पड़ गए उनके अंगोंमें दर्द होने लगा चित्तका उत्साह जाता रहा ॥ १२ ॥ जब हरि का गर्व झड़ गया, चित्त अस्वस्थ होगया, चेतना लुप्त होने लगी, तब उन्होंने समझा, कि-यह परमेश्वर ही वृषके रूपमें विहार कर रहे हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार वृषभके रूपमें गौरीशको आया समझ विष्णु हाथ जोड़ कंधा झुका गंभीर वाणीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ विष्णुने कहा, कि-हे देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो महेशान ! आपकी मायाने मुझे मोहमें डाल दिया, इसी कारण मेरी बुद्धि कुण्ठित होगई थी ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! तभी तो मैंने अपने नाथ आपके साथ युद्ध किया हे स्वामिन् ! मुझ पर कृपा कर मेरे इस अपराधको सहिये ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुने ! हरिके ऐसे दीन

नन्दीश्वर उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरेर्दीनतया मुने। भगवाञ्छंकरः प्राह रमेशं भक्तवत्सलः॥ १७॥ हे विष्णो हे महाबुद्धे कथं मां नावजानासि हि। युद्धं कृतं कुतस्तेऽद्य ज्ञानं सर्वं च विस्मृतम्॥ १८॥ आत्मानं किन्न जानासि मदधीनपराक्रमम्। त्वया नात्र रतिः कार्या निवर्तस्व कुचारतः॥ १९॥ कामाधीनं कथं ज्ञानं स्त्रीषु सक्तो विहारकृत्। नोचितस्तव देवेश स्मरणं विश्वतारणम् २० तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं विज्ञानप्रदमादरात्। व्रीडयन्स्वमनसा विष्णुः प्राह वाचं महेश्वरम्॥ २१॥ विष्णुरुवाच। ममात्र विद्यते चक्रं तद्गृहीत्वैतदादरात्। गमिष्यामि स्वलोकन्तत्त्वदाज्ञापरिपालकः॥२२॥ नन्दीश्वर उवाच। तदाकर्ण्य महेशानो वचनं वैष्णवं हरः। प्रत्युवाच वृषात्मा हि वृषरक्षः पुनर्हरिम्॥ २३॥ न विलम्बः प्रकर्त्तव्यो गन्तव्यमित आशु ते। मदाज्ञानाद्धरे लोके चक्रमत्रैव तिष्ठताम्॥२४॥ मत्तानादित्यसंस्थानाच्छिवस्य वचनादपि। अहं घोरतरं तस्माच्चक्रमन्यद्ददामि ते॥२५॥ नन्दीश्वर उवाच। एतदुक्त्वा हरोऽहोलीहिग्यं काला-

---

वचनोंको सुन भक्तवत्सल भगवान् शंकर रमेशसे कहने लगे॥ १७॥ हे विष्णो! आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, फिर भी आप मुझे न पहिचान सके! तुमने सब ज्ञानको अलग रख कर युद्ध कैसे कर डाला॥ १८॥ तुम्हारा सारा पराक्रम तो मेरे अधीन है, क्या तुम्हें अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं रहा? ऐसी कुत्सित आचरणमें तो आपका मन नहीं होना चाहिये था, अस्तु! अब इस (स्त्रीलम्पटतारूप) दुराचारसे हटो॥ १९॥ जो कामके अधीन होजाता है उसमें ज्ञान नहीं रहता, तुम स्त्रियोंमें आसक्त होकर विहार करने लगे, हे देवेश! तुम्हारा स्मरण तो संसारसे उद्धार करने वाला है, अतः आपका ऐसा कृत्य उचित नहीं है॥ २०॥ शम्भुके विज्ञानसे भरे इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर विष्णु अपने मनमें लज्जित हो महेशसे बोले॥ २१॥ विष्णुने कहा, कि--यहाँ पर मेरा चक्र पड़ा हुआ है उसको लेकर आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं अपने लोकको चला जाऊँगा॥ २२॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--धर्मरक्षक वृषभरूपधारी महेश्वर हर विष्णुके इस वचनको सुन फिर हरिसे कहने लगे॥ २३॥ हे हरे! तुम देर न लगाओ यहाँसे शीघ्र ही चले जाओ और मेरी आज्ञासे अपने इस चक्रको इस लोकमें ही विराजमान रहने दो॥ २४॥ कल्याणमय अपने भाषणके कारण मैं विस्तृत होने वाले तथा एक स्थान पर ही न पड़े रहने वाले एक दूसरे घोर चक्रको आपको देता हूँ॥ २५॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--हरने इस प्रकार कहकर सब दुष्टोंका नाश करने वाले, कालानलकीसी दमक

नलप्रभम्। पर चक्र प्रदीप्तं हि सर्वदुष्टविनाशनम् ॥ २६ ॥ विष्णवे प्रददौ चक्रं घोरार्कायुतसुप्रभम् । सर्वामरमुनीन्द्राणां रक्षकाय महात्मने ॥ २७ ॥ लब्ध्वा सुदर्शनं चान्यच्चक्रं परमदीप्तिमत् । उवाच विबुधांस्तत्र विष्णुर्बुद्धिमतां वरः २८ सर्वदेववरा यूयं मद्वाक्यं शृणुतादरात् । कर्तव्यन्तत्तथा शीघ्रं ततश्शं वो भविष्यति ॥२९॥ दिव्याम्बरांगनास्सन्ति पाताले यौवनान्विताः । ताभिः सार्द्धं महाक्रीडां यः करोतु करोतु सः ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वा केशवाद्वाक्यं शूरास्त्रिदशयोनयः । प्रवेष्टुकामाः पातालम्बभूवुर्विष्णुना सह ॥ ३१ ॥ विचारमथ विज्ञाय तन्तदा भगवान्हरः । क्रोधाच्छापन्ददौ घोरं देवयोन्यष्टकस्य च ॥ ३२ ॥ हर उवाच । वर्जयित्वा मुनिं शान्तं दानवान्वा मदंशजम् । इदं यः प्रविशेत्स्थानं तस्य स्यान्निधनं क्षणात् ॥३३॥ श्रुत्वावासमिदं घोरं मनुष्यहितवर्धनम् । प्रत्याख्यातास्तु रुद्रेण देवास्स्वगृहमाययुः ॥३४॥ एवं स्त्रीलः परो विष्णुश्शिवेन प्रतिशासितः । स्वर्लोकमगमद्व्यास स्वास्थ्यं प्राप जगच्च तत् ॥ ३५ ॥ वृषेश्वरोऽपि भगवाञ्छङ्करो भक्तवत्सलः । इत्थं कृत्वा देवकार्यं जगाम स्वगिरीश्वरम् ॥३६॥ वृषेश्वरावतारस्तु वर्णितश्शंकरस्य च । विष्णुमोहहरश्शर्वस्त्रैलोक्यसुखकारकः ॥३७॥

वाले एक दूसरे प्रदीप्त चक्रका स्मरण किया २६ और वह भयंकर दशहजार सूर्योंकी समान कांति वाला चक्र सब देवता तथा मुनीन्द्रोंके रक्षक महात्मा विष्णुको देदिया ॥ २७ ॥ बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णु परमकान्तिमान् उस दूसरे सुदर्शन चक्रको पाकर देवताओंसे कहने लगे ॥ २८ ॥ हे सकल श्रेष्ठ देवताओं! तुम मेरे वचनको आदरपूर्वक सुनो, यदि तुम शीघ्र ही मेरे कथनानुसार चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा २९ पातालमें यौवन वालीं दिव्य वस्त्रधारिणी रमणियें हैं, उनके साथ जो महाक्रीड़ा करना चाहे कर सकता है ३० केशवसे इस वचनको सुन शूर देवता और विष्णु पातालमें घुसना चाहने लगे ३१ भगवान् हरने इस विचारको जानकर क्रोधमें भर आठों देवयोनियोंको घोर शाप दिया ३२ हरने कहा, कि--मेरे अंशसे उत्पन्न हुए शान्त मुनि (कपिल) को छोड़ कर और दानवोंको छोड़कर और जो कोई भी इस स्थानमें प्रवेश करेगा उसकी मृत्यु तत्क्षण होजावेगी ॥३३॥ इस प्रकार उस स्थानको भयंकर हुआ तथा मनुष्योंका हित बढ़ाने वाला हुआ सुनकर रुद्रसे हटाये हुए देवता अपने घरोंको चले ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्त्रियोंमें मग्न हुए विष्णुका शंकरने शासन किया था और वे स्वर्गमें लौट कर आए थे, तब जगत् स्वस्थ हुआ था ॥ ३५ ॥ भक्तवत्सल वृषेश्वर भगवान् शंकर भी इस प्रकार देवकार्य कर अपने पर्वत पर आए थे ॥ ३६ ॥ यह आपसे विष्णुके मोहको हटाने वाला और त्रिलोकीको सुख पहुँचाने वाला शंकरका वृषेश्वरावतार

पवित्रमिदमाख्यानं शत्रुबाधाहरम्परम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ३८ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वै समाहितः । स भुक्त्वा सकलान्कामानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् । तथा पठति यो हीदं पाठयेत्सुधियो नरान् ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां कुबेश्वरसंज्ञकशिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

नन्दीश्वर उवाच । पिप्पलादाख्यपरममवतारं महेशितुः । शृणु प्राज्ञ महाप्रीत्या भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ १ ॥ यः पुरा गदितो विप्रो दधीचिर्मुनिसत्तमः । महाशैवस्सुप्रतापो च्यवननिर्भृगुवंशजः ॥ २ ॥ क्षुवेण सह संग्रामे येन विष्णुः पराजितः । सनिर्जरोऽथ संशप्तो महेश्वरसहायिना ॥ ३ ॥ तस्य पत्नी महाभागा सुवर्चा नाम नामतः । महापतिव्रता साध्वी यया शप्ता दिवौकसः ॥ ४ ॥ तस्मात्तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः । प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः ५ सूत उवाच । इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो नन्दीश्वरवचोऽद्भुतम् । सनत्कुमारः प्रोवाच नतस्कन्धः कृतांजलिः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच । नन्दीश्वर महाप्राज्ञ साक्षाद्रुद्रस्वरूपधृक् । धन्यस्त्वं सद्गुरुस्तात श्राविते यं कथाद्भुता ॥७॥ क्षुवेण सह संग्रामे

कहा ॥ ३७ ॥ यह पवित्र आख्यान शत्रुओंकी बाधाको हटाता है तथा सज्जनोंको स्वर्ग यश आयु भोग तथा मोक्ष देता है ॥ ३८ ॥ जो इसको भक्तिपूर्वक सुनता है वा चित्तको सावधान रख दूसरोंको सुनाता है वह सकल भोगोंको भोग अन्तमें मोक्ष पाता है, इसीप्रकार जो पुरुष इसका पाठ करता है तथा बुद्धिमान् मनुष्योंको सुनाता है वह भी भोग और मोक्ष दोनोंको पाता है ॥ ३६ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि--हे महाबुद्धिमान् ! अब आप महेशके भक्ति बढ़ाने वाले पिप्पलाद नामक श्रेष्ठ अवतारको प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥ पहिले जिन मुनिसत्तम विप्र महाशैव प्रतापवान् दधीचि ऋषिका वर्णन आचुका है, वह च्यवनके पुत्र तथा भृगुवंशी थे ॥ २ ॥ महेश्वरके उपासक इन दधीचि ऋषिने क्षुबके साथ संग्राम होने पर विष्णुको हरा दिया था और देवताओंसहित विष्णुको शाप देदिया था ॥ ३ ॥ इनकी पत्नी परम सौभाग्यवती थी उसका नाम सुवर्चा था, वह परमपतिव्रता और साध्वी थी उसने देवताओंको शाप दिया था ॥ ४ ॥ उन दधीचि ऋषिसे सुवर्चामें अनेक लीला करनेमें चतुर महादेव तेजस्वी पिप्पलाद नामसे प्रकट हुए थे ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा, कि- मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार नन्दीश्वरके इस अद्भुत वचनको सुन कंधा झुका हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ६ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि--हे महाप्राज्ञ नन्दीश्वर ! आप साक्षात् रुद्ररूप हैं, आपसे सद्गुरुको धन्य है, आपने यह अद्भुत कथा

श्रुतो विष्णुपराजयः। ब्रह्मणा मे पुरा तात तत्पुत्रश्च शिलादज ॥ ८ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि देवशापं सुवर्चया। दत्तं पश्चात्पिप्पलादचरितं मङ्गलायनम् ॥९॥ सूत उवाच। इति श्रुत्वाथ शैलादिर्विधिपुत्रवचश्शुभम्। प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच। एकदा निर्जरास्सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर। वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ॥ ११ ॥ स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः। निःक्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः ॥ १२ ॥ तदा सर्वे सुरास्सेन्द्रा वध्यमानास्तथर्षयः। ब्रह्मलोकं गताश्शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः। सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्टुश्चैव चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्रायं तपसासुरः। वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ॥१५॥ अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा। तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ॥ १६ ॥ महामुनिर्दधीचिर्यस्स तपस्वी जितेन्द्रियः। लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरम्पुरा ॥ १७ ॥ तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः। निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच। तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो

सुनाई ॥ ७ ॥ हे तात शिलादपुत्र! मैंने ब्रह्माजीसे युद्ध-युद्धमें विष्णुका पराजय सुना है ॥८॥ अब मैं सुवर्चाने जिस प्रकार देवताओंको शाप दिया था उसको सुनना चाहता हूँ, फिर पिप्पलादके मङ्गलमय चरित्रको सुनना चाहता हूँ ॥९॥ सूतजीने कहा, कि—ब्रह्मपुत्रके इस शुभ वचनको सुन नन्दीश्वर प्रसन्न चित्तसे शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर उत्तर देने लगे १० नन्दीश्वरने कहा, कि—हे मुनीश्वर! एक समय दैत्योंने वृत्रासुरकी सहायता लेकर इन्द्र आदि सब देवताओंको हरा दिया था ॥११॥ तब सम्पूर्ण देवता अपने अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंको दधीचिके आश्रममें सहसा छोड़ कर पराजित होगए थे ॥ १२ ॥ उस समय मार खाते हुए इन्द्र आदि देवता और ऋषि शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें पहुँचे और अपना दुःख निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ देवताओंकी बात सुन लोकपितामह ब्रह्माजीने तत्त्वकी बात कहदी, कि— यह सब त्वष्टाकी करतूत है ॥ १४ ॥ तुम्हारा वध करनेके लिये त्वष्टाने तप करके इस सब दैत्योंके महाराज महातेजस्वी वृत्रासुरको उत्पन्न किया है ॥१५॥ अतः अब ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे उसका वध हो, अतः हे प्राज्ञ! धर्मके कारण मैं उसके वधका उपाय कहता हूँ, तुम सुनो ॥ १६ ॥ दधीचि नामके महामुनि तपस्वी और जितेन्द्रिय हैं उन्होंने पहिले शिवकी आराधना कर वज्रकी समान अस्थियें होनेका वर पाया है १७ उनसे उनकी अस्थियें (हड्डियें) माँगो वे अवश्य देदेंगे, उन हड्डियोंसे

गुरुसमन्वितः। आगच्छत्तासरस्सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात्। ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्च तम् २० तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः। स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम् ॥ २१ ॥ ततस्त देवराजश्च सामरः स्वार्थसाधकः। अर्थशास्त्रपरो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शक्र उवाच। त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयन्देवास्तथर्षयः। शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥ २३ ॥ स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि। त्वस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ॥२४॥ इत्युक्तस्तेन स मुनिः परोपकरणे रतः। ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्ज कलेवरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोकं गतस्सद्यस्स मुनिर्ध्वस्तबन्धनः। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागताः ॥ २६ ॥ अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत्। अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्रं निर्दिदेश तदस्थिभिः ॥ २७ ॥ विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चक्लृपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः। तदस्थिभिर्वज्रमयैस्सुदृढैश्शिववर्चसा ॥ २८ ॥ तस्य वंशोद्भवं वज्रं

दण्डरज्ज बना कर वृत्रासुरको मार डालो ॥ १८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-ब्रह्माजीकी इस बातको सुन इन्द्र बृहस्पतिजीको तथा देवताओंको साथमें ले दधीचिके उत्तम आश्रम पर तत्क्षण पहुँच गए ॥ १९ ॥ इन्द्रने वहाँ सुवर्चाके साथ बैठे हुए मुनिको देखकर हाथ जोड़कर उनको आदरपूर्वक प्रणाम किया, इसी प्रकार नम्रतापूर्वक गुरु और देवताओंने भी उनको प्रणाम किया ॥२०॥ विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनि उनके अभिप्रायको समझ गए अतः उन्होंने अपनी पत्नी सुवर्चाको अपने आश्रमसे हटा दिया ॥ २१ ॥ तब देवताओंके साथ आए इन्द्रने अपना स्वार्थ साधनेके लिये अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मुनीशसे कहा २२ इन्द्रने कहा, कि-त्वष्टाने हम देवताओंका तथा ऋषियोंका बड़ा अपमान किया है और आप शरणागतरक्षक दाता महाशैव हैं इस लिये हम आपकी शरण लेते हैं ॥ २३ ॥ हे विप्र ! आप मुझे वज्रकी समान कड़ी अपनी हड्डियें दे दें तो मैं आपकी हड्डीसे वज्र बना कर उस देवताओंके द्रोहीका संहार कर डालूँ ॥ २४ ॥ इस प्रकार कहने पर परोपकारमें परायण उन मुनिने अपने नाथ शिवका ध्यान कर शरीरको छोड़ दिया ॥ २५ ॥ इस प्रकार समस्त बंधनोंसे छूटकर वह तत्काल ब्रह्मलोकको पधार गए, उस समय उन पर पुष्पवृष्टि हुई इससे सबको विस्मय हुआ ॥२६॥ तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुला उससे चटवाया और विश्वकर्माको उनकी हड्डियोंसे अस्त्र बनाने की विश्वकर्माको आज्ञा दी ॥२७॥ इन्द्रकी आज्ञा पा विश्वकर्माने शिवके तेजसे दृढ़ हुई ऋषिकी वज्रमय हड्डियोंसे सकल अस्त्र बनाये ॥२८॥ उनकी रीढ़

शरो ब्रह्मशिरस्तथा। अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥ २९॥ तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववर्चसा। वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥३०॥ ततः शक्रस्तु सन्नद्धस्तेन वज्रेण स द्रुतम्। उच्चकर्त शिरो वार्त्रं गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥ ३१ ॥ तदा समुत्सवस्तात बभूव त्रिदिवौकसाम्। तुष्टुवुर्निर्जराश्शक्रम्पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३२ ॥ इति ते कथितन्तात प्रसंगाच्चरितन्त्विदम्। पिप्पलादावतारम्मे शृणु शम्भोर्महादरात् ॥ ३३ ॥ सुवर्चा सा मुनेः पत्नी दधीचस्य महात्मनः। ययौ स्वमाश्रमाभ्यन्तरस्तदाज्ञया पतिव्रता ॥ ३४ ॥ आगत्य तत्र सा दृष्ट्वा न पतिं स्वन्तपस्विनी। गृहकार्यं च सा कृत्वाखिलम्भर्तृनिदेशतः ॥ ३५ ॥ आजगाम पुनस्तत्र पश्यंती बहुशोभनम्। देवांश्च तान्मुनिश्रेष्ठ सुवर्चा विस्मिता भवत् ॥ ३६ ॥ ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां कृत्यं तदानीञ्च चुकोप साध्वी। ददौ तदा शापमतीव रुष्टा तेषां सुवर्चा ऋषिवर्य्यभार्या ॥ ३७ ॥ सुवर्चोवाच। अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे स्वकार्य्यदक्षा ह्यबुधाश्च लुब्धाः। तस्माच्च सर्वे पशवो भवन्तु सेन्द्राश्च मेऽद्य प्रभृतीत्युवाच ॥ ३८ ॥ एवं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी। सशक्राणां च सर्वेषां सुवर्चा मुनिकामिनी ॥ ३९ ॥ अनु-

---

की हड्डीसे वज्र और ब्रह्मशिर नामक बाण बनाया दूसरी हड्डियोंसे अपने तथा दूसरोंके बहुतसे अस्त्र बनाये ॥ २९ ॥ उस वज्रको धारण कर शिवके तेजसे वृद्धिको प्राप्त हुआ इन्द्र, रुद्र जिस प्रकार यम पर झपटे थे, इसी प्रकार क्रोधमें भर वृत्र पर दौड़ा ॥ ३० ॥ तदनन्तर सुसज्जित हुए इन्द्रने उस वज्रसे पर्वतके शिखर सरीखे वृत्रासुरके शिरको काट डाला ॥ ३१ ॥ हे तात ! उस समय देवताओंमें उत्सव मचने लगा, देवता पुष्पोंकी वर्षा कर इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥३२॥ हे तात ! प्रसंगवश मैंने तुमसे यह चरित्र कहा अब आप आदरपूर्वक शम्भुके पिप्पलादावतारका वर्णन सुनिये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर महात्मा दधीचि मुनिकी पत्नी पतिव्रता सुवर्चा अपने आश्रमके भीतर गई ३४ तहाँ वह तपस्विनी अपने पतिको न देख घरका सम्पूर्ण कार्य पतिकी आज्ञानुसार करती रही ॥३५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर सुवर्चाको बहुतसे अशोभन (कुशकुन) दीखे, फिर तहाँ देवताओंकोको देख सुवर्चाको विस्मय हुआ ॥३६॥ और देवताओंकी सारी करतूतको जान वह साध्वी कोपमें भर गई और ऋषिवर्य दधीचिकी भार्या सुवर्चा बड़ी रुष्ट हो उनको शाप देने लगी ॥ ३७ ॥ सुवर्चाने कहा, कि—अहो ! देवता दुष्ट हैं, अपना कार्य साधनेमें ही चतुर हैं, मूर्ख और लोभी हैं अतः इन्द्रसहित सब देवता मेरे शापसे पशु होजायँ ॥३८॥ इस प्रकार उस तपस्विनी मुनिकामिनी सुवर्चाने इन्द्रसहित सब देवताओंको शाप दिया था ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उस मनस्विनी पतिव्रताने पतिके लोकको

गन्तुम्पतेर्लोकमथैचक्रुत्सा पतिव्रता । चितां चक्रे समेधोभिः सुपवित्रैर्मनस्विनी ॥ ४० ॥ ततो नभोगिरा प्राह सुवर्चान्ताम्मुनिप्रियाम् । आश्वासयन्ती गिरिशप्रेरिता सुखदायिनी ॥ ४१ ॥ आकाशवाण्युवाच । साहसं न कुरु प्राज्ञे शृणु मे परमं वचः । मुनितेजस्त्वदुदरे तदुत्पादय यत्नतः ॥ ४२ ॥ ततः स्वाभीष्टचरणन्देवि कर्तुन्त्वमर्हसि । सगर्भा न दहेद्गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम् ॥ ४३ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा सा नभोवाणी विरराम मुनीश्वर । तां श्रुत्वा सा मुनेः पत्नी विस्मिताभूत्क्षणं च सा ॥ ४४ ॥ सुवर्चा सा महासाध्वी पतिलोकमभीप्सती । उपविश्याश्मना भूयः सोदरं विददार ह ॥४५॥ निर्गतो जठरात्तस्या गर्भो मुनिवरस्य सः । महादिव्यतनुर्दीप्तो भासयंश्च दिशो दश ॥ ४६ ॥ साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ दधीचवरतेजसः । प्रादुर्भूतस्स्वयन्तात स्वलीलाकरणे क्षमः ४७ तन्दृष्ट्वा स्वसुतन्दिव्यस्वरूपम्मुनिकामिनी । सुवर्चाज्ञाय मनसा साक्षाद्रुद्रावतारकम् ॥ ४८ ॥ प्रहृष्टाभून्महासाध्वी प्रणम्याशु नुनाव सा । स्वहृदि स्थापयामास तत्स्वरूपम्मुनीश्वर ॥ ४९ ॥ सुवर्चा तनयं तं च प्रहस्य विमलेक्षणा । जननी प्राह सुप्रीत्या पतिलोकमभीप्सती ॥ ५० ॥ सुवर्चोवाच । हे तात परमेशान चिरं

जानेका विचार कर पवित्र काठोंको एकत्रित कर चिता बनाई ॥ ४० ॥ तदनन्तर गिरिशकी प्रेरणासे आकाशवाणी मुनिपत्नी सुवर्चाको सुख देनेके लिये ढाढस देती हुई कहने लगी ॥४१॥ आकाशवाणीने कहा, कि–हे बुद्धिमति ! तुम साहस न करो और मेरे श्रेष्ठ वचनको सुनो, कि–तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज विराजमान है, उसको यत्नपूर्वक उत्पन्न करो ॥ ४२ ॥ हे देवि ! तदनन्तर तुम अपने मनके अनुसार आचरण करना और शास्त्रकी भी यही आज्ञा है, कि—गर्भवती स्त्रीको अपना शरीर भस्म नहीं करना चाहिये–सती न होना चाहिये ॥ ४३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–हे मुनीश्वर ! इस प्रकार कहकर वह आकाशवाणी मौन होगई, उस आकाशवाणीको सुन वह मुनिपत्नी क्षणभरके लिये विस्मयमें पड़ गई ॥४४॥ तदनन्तर पतिलोकको चाहने वाली महासाध्वी सुवर्चाने अलग बैठ कर पत्थरसे अपना पेट चीर डाला ४५ तब उसके उदरसे वह मुनिवरका तेज दशों दिशाओंको प्रकाशित करने वाले महादिव्य स्वरूपको धारण कर प्रकट हुआ ॥ ४६ ॥ हे तात ! दधीचिके श्रेष्ठ तेजसे लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रने ही अवतार धारण किया ॥ ४७ ॥ मुनिकामिनी सुवर्चाने अपने पुत्रके दिव्य स्वरूपको देखकर समझ लिया, कि–यह साक्षात् रुद्रने ही अवतार धारण किया है ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! तब उस महासाध्वीने प्रसन्न होकर प्रणाम किया और उस स्वरूपको अपने हृदय में धारण कर लिया ॥ ४९ ॥ फिर पतिलोकको चाहने वाली निर्मल नेत्रों

तिष्ठास्य सन्निधौ । अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सुखदो भवेः ॥ ५१ ॥ मामाज्ञापय सुप्रीत्या पतिलोकाय चाधुना । तत्रस्थाहं च पतिना त्वां ध्यास्ये रुद्ररूपिणम् ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येवं सा बभाषेऽथ सुवर्चा तनयम्प्रति । पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना ॥ ५३ ॥ एवन्दधीचपत्नी सा पतिना संगता मुने । शिवलोकं समासाद्य सिषेवे शंकरम्मुदा ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवास्सेन्द्राश्च मुनिभिस्सह । तत्राजग्मुस्त्वरा तात आहूता इव हर्षिताः ॥५५॥ हरिर्ब्रह्मा च सुप्रीत्यावतीर्णं शंकरं भुवि । सुवर्चायां दधीचाद्वा ययतुस्स्वगणैस्सह ॥५६॥ तत्र दृष्ट्वावतीर्णन्तं मुनिपुत्रत्वमागतम् । रुद्रं सर्वे प्रणेमुश्च तुष्टुवुर्बद्धपाणयः ५७ तदोत्सवो महानासीद्देवानां मुनिसत्तम । नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ५८ ॥ जगुर्गन्धर्वपुत्राश्च किन्नरा वाद्यवादकाः । वादयामासुरमराः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ ५९ ॥ पिप्पलस्य शर्वपितुर्विलसन्तं सुतं च तम् । संस्कृत्य विधिवत्सर्वे विष्णवाद्यास्तुष्टुवुः पुनः ॥ ६० ॥ पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः । प्रसन्नो भव देवेश इत्यूचे हरिणा सुरैः ॥६१॥ इत्युक्त्वा तमनुज्ञाय

वाली जननी सुवर्चाने पुत्रकी ओर देख प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ५० ॥ सुवर्चाने कहा, कि—हे महाभाग महेशान परमेशान ! तुम चिरकाल तक इस अश्वत्थके नीचे विराजो और सबको सुख दो ॥ ५१ ॥ और अब मुझे प्रीतिपूर्वक पतिलोकको जानेकी आज्ञा दो, तहाँ मैं पतिके साथ रह आप रुद्ररूपका ध्यान करती रहूँगी ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-साध्वी सुवर्चा इस प्रकार पुत्रके लिये कह परमसमाधिसे पतिके पीछे चली गई ॥५३॥ हे मुने ! इस प्रकार वह दधीचिपत्नी शिवलोकमें पतिसे मिलकर आनन्दपूर्वक शंकरकी सेवा करने लगी ॥५४॥ हे तात ! इसी समय मुनियोंसहित देवता और इन्द्र निमन्त्रितकी समान तहाँ पधारे ॥५५॥ हरि और ब्रह्मा दधीचिसे सुवर्चामें शंकरको पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ समझ अपने गणोंसहित प्रीतिपूर्वक तहाँ पधारे ॥५६॥ शंकरको मुनिपुत्र रूपमें अवतार धारण करते देख सबने उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस समय देवताओंमें बड़ा उत्सव मचा, देवदुन्दुभियें बजने लगीं और नर्तकियें आनन्दसे नाचने लगीं ५८ गंधर्वपुत्र गाने लगे, बाजा बजाने वाले किन्नर बजाने लगे तथा देवता पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ५९ ॥ पिप्पल (पालन करनेसे) शर्वका पिता ही था उसके विलास करते हुए पुत्रका विधिवत् संस्कार कर विष्णु आदि उसकी स्तुति करने लगे ॥ ६० ॥ ब्रह्माने प्रसन्नबुद्धिसे उसका नाम पिप्पलाद रखा, तदनन्तर हरिने और देवताओंने कहा, कि—जय देवेश ! प्रसन्न हूजिये ॥६१॥

ब्रह्मा विष्णुस्सुरास्तथा। स्वं स्वं धाम ययुस्सर्वे विधाय च महोत्सवम् ॥६२॥ अथ रुद्रः पिप्पलादोऽश्वत्थमूले महाप्रभुः। ततार सुचिरं कालं लोकानां हितकाम्यया ॥ ६३ ॥ इत्थं सुतपतस्तस्य पिप्पलादस्य सम्मुखे। महाकालो व्यतीयाय लोकचर्यानुसारिणः ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

नन्दीश्वर उवाच। अथ लोके व्यवस्थाय धर्मस्य स्थापनेच्छया। महालीलां चकारेशस्तामहो सन्मुने शृणु ॥ १ ॥ एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः। ददर्श पद्मां युवतीं शिवांशां सुमनोहराम् ॥ २ ॥ तल्लिप्सुस्तत्पितुः स्थानमनरण्यस्य भूपतेः। जगाम भुवनाचारी लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ३ ॥ राजा नराणां तं दृष्ट्वा प्रणम्य च भयाकुलः। मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः ॥ ४ ॥ स्नेहात्सर्वं गृहीत्वा स ययाचे कन्यकां मुनिः। मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥ ५ ॥ मुनिः प्रोवाच नृपतिं कन्यां मे देहि भक्तितः। अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्येऽहं त्वया सह ॥ ६ ॥ अथो बभूवुराच्छन्नाः सर्वे राजजनास्तदा। तेजसा पिप्पलादस्य दाधीचस्य महामुने ॥ ७ ॥ अथ राजा महाभीतो विलप्य

इस प्रकार उनसे कह, परमोत्सव कर ब्रह्मा विष्णु और देवता उनकी अनुमति लेकर अपने अपने धामको चले गए ॥ ६२ ॥ तदनन्तर रुद्रांश महाप्रभु पिप्पलाद लोकोंके हितकी इच्छासे अश्वत्थके नीचे चिरकाल तक तप करते रहे ॥ ६३ ॥ इस प्रकार संसारियोंकीसी चेष्टा करने वाले पिप्पलादको तप करते हुए बहुतसा समय बीत गया ॥ ६४ ॥ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त २४

नन्दीश्वरने कहा, कि हे मुने! तदनन्तर वह ईश लोकमें धर्मस्थापन करनेकी इच्छासे महालीला करने लगे ॥ १ ॥ एक समय वह मुनीश्वर पुष्पभद्रा नदी पर स्नान करनेके लिये गए तहाँ उन्हें शिवाकी अंश मनोहर युवती पद्मा के दर्शन हुए ॥ २ ॥ तब संसारमें भ्रमण करते हुए लोकतत्त्वविचक्षण वह मुनि राजा अनरण्यके स्थान पर पद्माको पानेकी इच्छासे पहुँचे ॥३॥ मनुष्यों का राजा अनरण्य उनको देखते ही भयभीत होगया, उसने उनको प्रणाम कर भक्तिपूर्वक मधुपर्क आदि दे उनका पूजन किया ॥४॥ मुनिने स्नेहपूर्वक सब सामग्री ग्रहण कर राजासे कन्याकी याचना की, तब राजा मौन रहगया कुछ कह न सका ॥ ५ ॥ तब मुनिने राजासे कहा, कि—भक्तिपूर्वक मुझे कन्या देदे, नहीं तो मैं तुझे और सबको भस्म कर दूँगा ॥ ६ ॥ हे महामुने! तब दधीचिपुत्र पिप्पलादके तेजसे राजाके सब मनुष्य निस्तेज पड़ गये ॥ ७ ॥ तब राजाने बहुत भयभीत होकर अपनी कन्या पद्मा अलंकृत कर वृद्ध मुनिको

च मुहुर्मुहुः। कन्यामलंकृतामपद्मां वृद्धाय मुनये ददौ ॥ ८ ॥ पद्मां विवाह्य स मुनिश्शिवांशाम्भूपतेः सुताम्। पिप्पलादो गृहीत्वा तां मुदितः स्वाश्रमं ययौ ९ तत्र गत्वा मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः। उवाच नार्य्या स तया तपस्वी नातिलम्पटः ॥ १० ॥ अथोऽनरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम्। कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥ ११ ॥ इत्थं स पिप्पलादो हि शिवांशो मुनिसत्तमः। रेमे तया युवत्या च युवाभूय स्वलीलया ॥ १२ ॥ दश पुत्रा महात्मानो बभूवुस्सुतपस्विनः। मुनेः पितुस्समाः सर्वे पद्मायाः सुखवर्द्धनाः ॥ १३ ॥ एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः। पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ॥ १४ ॥ येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना। दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम् ॥ १५ ॥ षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा। तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ॥ १६ ॥ अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित्। तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ॥ १७ ॥ इति तद्भयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः। तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद् ग्रहसत्तमः ॥ १८ ॥ इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुने। कथितं सुचरित्रन्ते सर्वकामफलप्रदम् ॥ १९ ॥ गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः। शनैश्च-

---

देदी ॥ ८ ॥ वह मुनि राजपुत्री शिवाकी अंश पद्माके साथ विवाहकर उसको ले प्रसन्न होते हुए अपने आश्रममें आये ॥ ९ ॥ वह मुनि अतिलम्पट नहीं थे, अवस्थाके कारण बड़े जर्जर होरहे थे उन्होंने आश्रममें पहुँच अपनी स्त्रीसे संभाषण करा ॥ १० ॥ तब वह अनरण्यकी कन्या लक्ष्मी जिस प्रकार नारायणकी सेवा करती है इसी प्रकार कर्म मन और वाणीसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी ॥ ११ ॥ तब वह शिवके अंश मुनिसत्तम पिप्पलाद तरुण बनकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे ॥ १२ ॥ तब उनके दश पुत्र हुए वे महात्मा और तपस्वी हुए, वे सब पिताकी समान थे और पद्माके सुखको बढ़ाते थे ॥ १३ ॥ इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलाद अनेक लीला करते थे ॥ १४ ॥ उन्होंने देखा, कि–संसारमें शनिकी पीड़ाको कोई नहीं हटा सकता, अतः उन्होंने दयालुता और प्रेमपूर्वक लोगोंको वरदान दिया, कि–॥ १५ ॥ मेरा यह सत्य वचन है, कि मनुष्योंको जन्मसे सोलहवें वर्ष तक शनिकी पीड़ा नहीं व्यापेगी और शिवभक्तोंको भी शनिकी पीड़ा न होगी ॥ १६ ॥ यदि शनि मेरे वचनका अनादर कर मनुष्योंको पीड़ा देगा तो वह भस्म होजावेगा ॥ १७ ॥ हे तात ! इस भयके कारण बिगड़ा हुआ भी ग्रहसत्तम शनैश्चर मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं देता है ॥ १८ ॥ हे सन्मुने ! इस प्रकार लीलावश मनुष्य बने हुए पिप्पलादका सब कामनाओंको पूर्ण करने

रकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः ॥ २० ॥ पिप्पलादस्य चरितं पद्मचरितसंयुतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुभक्त्या भुवि मानवः ॥ २१ ॥ शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ धन्यो मुनिवरो ज्ञानी महाशैवः सतांप्रियः । अस्य पुत्रो महेशानः पिप्पलाख्य आत्मवान् ॥ २३ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यं कुग्रहदोषहृत् । सर्वकामप्रदन्तात शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ २४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारचरितवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर उवाच । शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः । अवतारं परानन्दं वैश्यनाथाह्वयं मुने ॥ १ ॥ नन्दिग्रामे पुरा कश्चिन्महानन्देति विश्रुता । बभूव वारवनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी ॥ २ ॥ महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोज्ज्वला । नानारत्नपरिच्छिन्नशृंगाररसनिर्भरा ॥ ३ ॥ सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा । तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्ञ्यो राजान एव च ॥ ४ ॥ समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा । शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा ५

वाला चरित्र आपसे कहा ॥ १९ ॥ गाधि कौशिक और महामुनि पिप्पलाद ये तीनों स्मरण करने पर शनिकी पीड़ाका नाश करते हैं ॥ २० ॥ पृथ्वी पर मनुष्य शनिकी पीड़ा दूर करनेके लिये पद्म और पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़े अथवा सुने तो उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ २१॥२२ ॥ वह सज्जनोंके प्रिय महाशैव ज्ञानी मुनिवर दधीचि धन्य हैं, कि—आत्मज्ञानी महेश्वर जिनके पिप्पलाद नामक पुत्र बनकर प्रकट हुए थे ॥ २३ ॥ हे तात ! यह आख्यान पाप दूर करने वाला, स्वर्ग देने वाला, कुग्रहके दोषको हरने वाला, सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाला और शिवभक्तिको बढ़ाने वाला है ॥ २४ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ छ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे तात ! हे मुने ! अब मैं परमात्मा शिवके वैश्यनाथ नामक परमानन्ददायक अवतारका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ पहिले नन्दिग्राममें महानन्दा नामकी एक प्रसिद्ध वारवनिता थी वह सुन्दरी शिवभक्ति करने लगी ॥ २ ॥ उसके पास अतुल सम्पत्ति थी, बड़ा धन था, अनेक रत्नोंसे लदी रहती थी और शृंगाररसमें मग्न थी परम उज्ज्वल थी ॥३॥ संगीतकी सब विद्याओंमें निपुण थी, परम मनोहर थी, उसके गानेसे राजे और रानी भी प्रसन्न होजाते थे ॥ ४ ॥ वह वेश्या आनन्दके साथ अम्बिका और शिवका सदा पूजन करने लगी, भस्म और रुद्राक्षके आभूषणोंको धारण कर शिवनामके जपमें सदा आसक्त रहने लगी ॥५॥ वह जगदीश्वर शिवकी पूजा कर

शिवं सम्पूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम् । ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यशः ॥ ६ ॥ रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् । करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा ॥ ७ ॥ नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा । वेश्या स्म विहसत्युच्चैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता ॥ ८ ॥ रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डना । मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत् ॥ ९ ॥ शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह । नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन् ॥ १० ॥ एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकस्मरमादरात् । शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराऽभवत् ११ शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्यायां मुनिसत्तम । बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः ॥ १२ ॥ एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवस्स्वयम् । परीक्षितुं च तद्भावमाजगाम शुभो व्रती ॥ १३ ॥ त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षाभरणः कृती । शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत् ॥ १४ ॥ स बिभ्रद्भस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम् । महारत्नपरिस्तीर्णं राजते परकौतुकी ॥ १५ ॥ तमागतं सुसंपूज्य सा वेश्या परया मुदा । स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत् ॥ १६ ॥ तत्प्र-

---

सदा उनकी सेवा करती थी फिर शिवकी श्रेष्ठ कथाका गान करती हुई नाचती थी ॥ ६ ॥ उसने एक बन्दरको तथा एक मुरगेको रुद्राक्षोंसे सजाया फिर ताली बजा और गीत गाकर उनको नचाने लगी ॥ ७ ॥ शिवभक्तिमें परायण वह वेश्या उन दोनोंको नाचते देख प्रेममें भर ऊँचे स्वरसे हँसने लगती थी, उसकी सब सखियें भी रुद्राक्षके बाजूबन्द कर्णफूल आदिक आभूषण पहिन लेती थीं, उसका सधाया हुआ बन्दर उसके सामने बालककी समान नाचता था ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखने वालोंका भी हित करता हुआ नृत्यमें कुशल हुआ मुर्गा भी चोटीमें रुद्राक्ष बँधवा बन्दरके साथ नित्य नाचा करता था ॥ १० ॥ इस प्रकार आदरपूर्वक कौतुक करती हुई वह वेश्या शिवभक्तिमें मग्न होकर परम आनन्दित होती थी ॥ ११ ॥ हे मुने ! इस प्रकार परमसुख पूर्वक शिवभक्ति करती हुई वेश्याको बहुत समय बीत गया ॥ १२ ॥ एक समय उसके भावकी परीक्षा लेनेके लिये शुभ व्रती शिव स्वयं एक वैश्यका रूप धर उसके घर पधारे ॥ १३ ॥ उनके मस्तक पर त्रिपुण्ड्र दमक रहा था, रुद्राक्षके आभूषण पहिरे हुए थे और कुशल शिव शिवनामका जप कर रहे थे, जटा धारण किये हुए थे इस प्रकार शिवभक्तका रूप धारण किये हुए थे १४ भस्म धारण किये हुए थे, पहुँचेमें श्रेष्ठ कङ्कण धारण कर रहे थे, महारत्नजठित वस्त्र पहिर शोभा पारहे थे ॥१५॥ उनको आया देख वेश्याने परमप्रेमसे उनका स्वागत किया, तदनन्तर उस सुन्दरीने अपने स्थान पर उनको

कोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम्। तस्मिञ्जातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता ॥ १७ ॥ महानन्दोवाच। महारत्नमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः। मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इति तां नवरत्नाढये सस्पृहां करभूषणे। वादयोदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥ १९ ॥ वैश्यनाथ उवाच। अस्मिन् रत्नवरे दिव्ये सस्पृहं यदि ते मनः। तत्त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ २० ॥ वेश्योवाच। वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः। अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः ॥ २१ ॥ यद्येतदखिलं चित्तं गृह्णाति करभूषणम्। दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम् ॥ २२ ॥ वैश्य उवाच। तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे। ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः ॥२३॥ एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ। त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥ २४ ॥ वेश्योवाच। दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो। सहधर्मं चरामीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ। प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥ २६ ॥ अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्वा रत्नकंक-

बैठाया ॥ १६ ॥ वेश्या उनके पहुँचेमें मनोहर कंकणको देख विस्मित हुई और उसको लेनेकी उसको लालसा होने लगी ॥ १७ ॥ महानंदाने कहा, कि—यह जो महारत्न वाला कंकण आपके हाथमें है, इस पर मेरा मन चलता है, यह तो दिव्य स्त्रियोंके भूषणके योग्य है ॥ १८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–वह उदार बुद्धि वाले वैश्य उस रत्नजटित बाजूबन्द पर वेश्याकी स्पृहा देख मुस्कुरा कर कहने लगे ॥ १९ ॥ वैश्यनाथने कहा, कि–यदि इस दिव्य रत्नके लिये तेरा मन लुभियाता है तो तू ही इसको प्रेमपूर्वक धारण कर, परन्तु इसका मूल्य क्या देगी ॥ २० ॥ वेश्याने कहा, कि–हम तो स्वच्छन्द विचरने वाली वेश्याएँ हैं, पतिव्रता नहीं है, अतः हमारे योग्य धर्म तो व्यभिचार ही है ॥ २१ ॥ यदि मैं इस बाजूबन्दको पाजाऊँ तो तीन दिन रातके लिये आपकी पत्नी बन जाऊँगी ॥ २२ ॥ वैश्यने कहा, कि–हे वीरवल्लभे ! तथास्तु ! यदि तू अपने वचनको सत्य करती है तो मैं तुझे यह रत्नजटित करभूषण देता हूँ तू तीन रात तक मेरी उपपत्नी बन ॥२३॥ इस व्यवहारमें सूर्य और चन्द्रमा साक्षी हैं, हे प्रिये ! तीन बार इस बातकी सत्यप्रतिज्ञा कर मेरे हृदयका स्पर्श कर ॥ २४ ॥ वेश्याने कहा, कि–हे प्रभो ! मैं तीन रात तक आपकी पत्नी बन सहचारिणीके धर्मका आचरण करूँगी, यह सत्य है, सत्य है, सत्य है ॥ २५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–महानन्दाने सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी रख तीन बार प्रीतिपूर्वक प्रतिज्ञा

णम् । लिंगं रत्नमयं तस्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ वैश्यनाथ उवाच । इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम् । रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः २८ नन्दीश्वर उवाच । एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम् । नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद् गृहम् ॥ २९ ॥ सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा । सुखं सुष्वाप पर्यंके मृदुतल्पोपशोभिते ॥३०॥ ततो निशीथसमये मुने वैश्यपतीच्छया । अकस्मादुत्थिता वाणी नृत्यमण्डपिकान्तरे ॥ ३१ ॥ महाप्रज्वलितो वह्निः सुसमीरसहायवान् । नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत् ३२ मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात् । मर्कटं मोचयामास सा वेश्या तत्र बन्धनात् ॥३३॥ स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहातुना । भिया दूरं हि दुद्रुवे विधूयाग्निकणान्बहून् ॥ ३४ ॥ स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम् । दृष्ट्वा वेश्या स वैश्यश्च दुरंतं दुःखमापतुः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा । ज्ञातुन्तद्भावमन्तःस्थम्मरणाय मतिन्दधे ॥ ३६ ॥ निश्चित्येऽतिनरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् । नानालीलो महेशानः कौतुकान्नरदेहवान् ॥३७॥

कर उनके हृदयका स्पर्श किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह वैश्य उसको वह रत्नमय कंकण देकर उसके हाथमें रत्नजटित शिवलिंगको दे यह कहने लगे २७ वैश्यनाथने कहा, कि--यह रत्नमय शिवलिंग मुझे प्राणोंकी समान प्रिय है, हे कान्ते ! तू प्रयत्नपूर्वक इस लिंगकी रक्षा करना, इसको प्रयत्नपूर्वक बचाना ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--वह वेश्या एवमस्तु कह उस रत्नजटित लिङ्गको ले नाट्यमण्डपके बीचमें रख घरमें घुसी ॥ २९ ॥ वह वेश्या रात्रिके समय उस विटधर्मी वैश्यके साथ कोमल वस्त्र बिछे पलंग पर सुखपूर्वक सोई ॥ ३० ॥ हे मुने ! तदनन्तर आधी रात्रिके समय वैश्यपतिकी इच्छासे नृत्यमण्डपमेंसे अकस्मात् शब्द सुनाई दिया ॥ ३१ ॥ और आँधी की सहायतासे अग्नि धाँय धाँय करने लगा, हे तात ! उस अग्निने सहसा नाट्यमण्डपको घेर लिया ॥ ३२ ॥ मण्डपके प्रज्वलित होने पर उस वेश्या ने सहसा उठकर बन्दरको बंधनसे मुक्त कर दिया ॥ ३३ ॥ तब वह बन्दर और मुर्गे बन्धनसे मुक्त हो भयवश बहुतसे अग्निकणोंको झाड़ते हुए दूर भाग चले ॥ ३४ ॥ स्तंभके साथ ही वह शिवलिंग भी जलकर टुकड़े टुकड़े होगया, इस बातको देखकर वेश्या और वैश्यको बड़ा दुःख हुआ ॥ ३५ ॥ उस समय वैश्यपतिने अपने प्राणोंकी समान उस शिवलिङ्गको भस्म हुआ देख उस वेश्याके अन्तःकरणके भावको जाँचनेके लिये मरनेका विचार किया ॥३६॥ कौतुकवश नरदेहको धारण करने वाले अनेक प्रकारकी लीला

वैश्यपतिरुवाच । शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे मत्प्राणवल्लभे । सत्यं वच्मि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३८ ॥ चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु । शिवे मनस्समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ३९ ॥ यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् । तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाम्यसून् ॥४०॥ नन्दीश्वर उवाच । तमेवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता । स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद्बहिः ॥ ४१ ॥ ततस्स वैश्यश्शिव एक एव प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् । विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः ॥४२॥ दृष्ट्वा सा तद्गतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता । अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम ४३ अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । सर्वान्बंधुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः ॥ ४४ ॥ महानन्दोवाच । रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् । दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता ॥ ४५ ॥ कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती । तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥ ४६॥ स्वधर्मचारिणीत्युक्त-

---

करने वाले वैश्यरूपधारी महेश बड़ा खेद कर बैठ गए और दुःख पाती हुई वेश्यासे कहने लगे ॥ ३७ ॥ वैश्यपतिने कहा कि-हे मेरी प्राणप्यारी ! यह शिवलिंग जल कर फट गया, अब मैं सत्य कहता हूँ, कि-मैं अब जीवित नहीं बच सकता ॥ ३८ ॥ हे भद्रे ! इस लिये तू अपने भृत्योंसे मेरे लिये एक छोटीसी चिता बनवा दे, मैं शिवमें मनको लगाकर अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! यदि इस समय ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि भी एकत्रित होकर मुझे रोकनेको आवें तो भी मैं इस समय अग्निप्रवेश कर अपने प्राणोंको त्याग दूँगा ॥४०॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-वैश्यकी इस दृढ़ अड़को देख उस वेश्याने दुःखित हो अपने मकानके बाहर अपने भृत्योंसे चिता चुनवा दी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वह शिवस्वरूपधारी वैश्य प्रदीप्त अग्नि की एक ही प्रदक्षिणा कर मनुष्योंके देखते देखते अग्निमें घुसे, वह धीर और कौतुकी शिव उस वेश्याका भी चितापर साथ चढ़ना चाहते थे ॥ ४२ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह युवती वेश्या महानन्दा इस दृश्यको देख विस्मित हो अनुताप करने लगी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह दुःखमें भरी वेश्या सुनिर्मल धर्म का स्मरण कर अपने सकल बान्धवोंकी ओर देख करुणा भरे वचन कहने लगी ॥ ४४ ॥ महानन्दाने कहा, कि-मैंने रत्नकंकणको लेकर सत्यप्रतिज्ञा की थी, कि-मैं तीन दिन तक इस वैश्यकी माननीय पत्नी बनूँगी ॥ ४५ ॥ मेरे कर्मसे यह शिवव्रती वैश्य मर रहा है, अतः मैं इसके साथ ही अग्निमें प्रवेश करूँगी ॥ ४६ ॥ सत्यवादी आचार्योंने स्वधर्मका पालन करने वाली

माचार्य्यैः सत्यवादिभिः। एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु ॥ ४७ ॥ सत्याश्रयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः। सत्येन स्वर्गमोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इति सा दृढनिर्बन्धा वार्य्यमाणापि बंधुभिः। सत्यलोकपरा नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे ॥ ४९ ॥ सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्वा ध्यात्वा सदाशिवम्। तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत् ॥५०॥ तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम्। वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः ॥५१॥ सा तं विलोक्याखिलदेवदेवन्त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम्। शशांकसूर्य्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥५२॥ तां विह्वलां सुवित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम्। समाश्वास्य गलद्वाष्पां करौ धृत्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ५३ ॥ शिव उवाच। सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम्। परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः ॥ ५४ ॥ माययाग्निं समुद्दीप्य दग्धन्ते नाट्यमण्डपम्। दग्धं कृत्वा रत्नलिंगं प्रविष्टोऽहं हुताशनम् ॥ ५५ ॥ सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह। अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान् ॥ ५६ ॥ यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तदेव हि ददामि ते। त्वद्भक्त्याहं प्रस-

के लिये ऐसा ही कहा है, मेरे प्रीतिपूर्वक ऐसा करने पर मुझमेंसे सत्य भी भ्रष्ट नहीं होगा ॥ ४७ ॥ परम धर्म सत्य पर ही अवलम्बित है, सत्यसे परम-गति प्राप्त होती है, सत्यसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है, सब सत्य से ही टिके हुए हैं ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—उसके बांधवोंने उसको रोका परन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रही, उस सत्यलोकमें परायण नारी ने अपने प्राणोंको ही त्यागनेका विचार किया ॥ ४९ ॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सर्वस्व दे, सदाशिवका ध्यान कर अग्निकी तीन प्रदक्षिणा कर उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई ॥ ५० ॥ अपने चरणोंमें मन लगाने वाली उस वेश्याको प्रदीप्त अग्निमें कूदते देख विश्वात्मा शिवने उसको प्रकट होकर रोका ॥ ५१ ॥ वह वेश्या उन सकल देवताओंके देवता, तीन नेत्र वाले, चन्द्रमाका आभूषण धारण करने वाले, करोड़ों सूर्य चन्द्रमा और अग्निकी समान दमकते हुए शिवको देख सहमी और डरी हुईसी खड़ी रह गई ॥५२॥ भगवान् शंकर उस विह्वल त्रस्त, कांपती हुई, जड़ हुई और जिसका कण्ठ रुँध रहा है ऐसी वेश्याको आश्वासन दे उसके हाथ पकड़ कर कहने लगे ५३ शिवने कहा, कि—मैं तेरे सत्य धर्म धैर्य भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिये वैश्य बन कर आया था । ५४ ॥ मैंने मायासे अग्नि प्रज्वलित कर तेरे नाट्यमण्डपको भस्म कर दिया तथा रत्नलिंगको भस्म कर मैं अग्निप्रवेश करना चाहता था ॥ ५५ ॥ परन्तु तू सत्यका स्मरण कर मेरे साथ अग्निमें प्रवेश

न्नोऽसि तवादेयं न विद्यते ॥५७॥ नन्दीश्वर उवाच । इति ब्रुवति गौरीशे शंकरे भक्तवत्सले । महानन्दा च सा वेश्या शंकरम्प्रत्यभाषत ॥ ५८ ॥ वेश्योवाच । न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले । तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये ॥ ५९ ॥ ये मे भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः । सर्वे त्वद्दर्शनपरास्त्वयि संन्यस्तवृत्तयः ॥ ६० ॥ सर्वानेतान्मया सार्द्धं निनीयात्मपरम्पदम् । पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोऽस्तु ते ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । ततस्स तस्या वचनम्प्रतिनन्द्य महेश्वरः । ताः सर्वाश्च तथा सार्धं निनाय स्वम्परम्पदम् ॥ ६२ ॥ वैश्यनाथावतारस्ते वर्णितः परमो मया । महानन्दासुखकरो भक्तानन्दप्रदस्सदा ॥ ६३ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं सतां च सर्वप्रदमाशु दिव्यम् । शिवावतारस्य विशाम्पतेर्महानन्दामहासौख्यकरं विचित्रम् ॥ ६४ ॥ इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । च्यवते न स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम् ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्यनाथाह्वयशिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

करती थी, अतः मैं तुझे देवताओंको भी दुर्लभ भोग दूँगा ॥ ५६ ॥ हे सुश्रोणि ! तू जो चाहे वही मैं देनेको तयार हूँ, मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, अतः तेरे लिये न देने योग्य कोई वस्तु नहीं है ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--भक्तवत्सल गौरीपति शङ्करके इस प्रकार कहने पर वह वेश्या महानन्दा शङ्करको उत्तर देने लगी ॥ ५८ ॥ वेश्याने कहा, कि--मुझे भूमि स्वर्ग वा रसातलके भोगोंकी इच्छा नहीं है, मैं तो आपके चरणकमलोंके स्पर्शके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती ॥ ५९ ॥ जो मेरे सेवक तथा सेविकायें है और जो मेरे बांधव हैं, सब ही आपका दर्शन कर चुके हैं, सबकी वृत्ति आपमें लग रही है ॥ ६० ॥ इन सबको मेरे साथ परमपद दीजिये, इस प्रकार पुनर्जन्मके घोर भयसे छुड़ाइये, आपको प्रणाम है ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--महेश्वरने उसके वचनका अभिनन्दन किया और उसके साथ उसकी सेविका आदि सबको परम-पदमें पहुँचा दिया ॥ ६२ ॥ मैंने यह महानन्दाको सुख देने वाला वैश्यनाथका श्रेष्ठ अवतार आपसे कह दिया, इससे भक्तोंको सदा आनन्द मिलता है ॥ ६३ ॥ यह चरित्र परम-पवित्र है, दिव्य है, सज्जनोंको सब कुछ देने वाला है, महानन्दाको सुख देने वाला शिवका विचित्र महावैश्य अवतार है ॥ ६४ ॥ जो इस कथाको भक्तिपूर्वक सुनता है वा सावधान होकर सुनाता है वह अपने धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता अतः परलोकमें सद्गति पाता है ॥ ६५ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

(७६) अथ द्विजेश्वरावतारमाह । नन्दीश्वर उवाच । शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः । द्विजेश्वरावतारं च सशिवं सुखदं सताम् ॥ १ ॥ यः पूर्वं वर्णितस्तात भद्रायुर्नृपसत्तमः । यस्मिन्नृषभरूपेणानुग्रहं कृतवाञ्छिवः ॥ २ ॥ तद्धर्मस्य परीक्षार्थं पुनराविर्बभूव सः । द्विजेश्वरस्वरूपेण तदेव कथयाम्यहम् ३ ऋषभस्य प्रभावेण शत्रूञ्जित्वा रणे प्रभुः । प्राप्तसिंहासनस्तात भद्रायुः संबभूव ह ॥ ४ ॥ चन्द्रांगदस्य तनया सीमन्तिन्याः शुभांगजा । पत्नी तस्याभवद् ब्रह्मन् सुसाध्वी कीर्तिमालिनी ॥ ५ ॥ स भद्रायुः कदाचित्स्वप्रियया गहनं वनम् । प्राविशत्संविहारार्थं वसन्तसमये मुने ॥ ६ ॥ अथ तस्मिन्वने रम्ये विजहार स भूपतिः । शरणागतपालिन्या तया स्वप्रियया सह ॥ ७ ॥ अथ तद्धर्मदृढतां प्रतीक्षन्परमेश्वरः । लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः ॥ ८ ॥ शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती । व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया ॥९॥ अथाविदूरे तस्यैव द्रवन्तौ भयविह्वलौ । अन्वीयमानौ व्याघ्रेण रुदन्तौ तौ बभूवतुः ॥ १० ॥ अथ विद्धौ च तौ तात भद्रायुः स महोपतिः । ददर्श क्रन्दमानौ हि शरण्यः क्षत्रियर्षभः ॥ ११ ॥ अथ तौ मुनिशार्दूल स्वमायाद्विजदम्पती ।

अब द्विजेश्वरावतारका वर्णन करते हैं । नन्दीश्वरने कहा, कि–हे तात ! अब मैं परमात्मा शिव और शिवाके द्विजेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ, यह सज्जनोंका कल्याण करने वाला है ॥ १ ॥ हे तात ! पहिले जिन नृपसत्तम भद्रायुका वर्णन होचुका है, उन पर शिवने ऋषभरूपसे अनुग्रह किया था ॥ २ ॥ उस ही राजाके धर्मकी परीक्षा करनेके लिये शिव द्विजेश्वररूपसे फिर प्रकट हुए थे, उसका ही मैं फिर वर्णन करता हूँ ॥३। प्रभु भद्रायु ऋषभके प्रभावसे रणमें शत्रुओंको जीत सिंहासन पर बैठ गया था ॥ ४ ॥ चन्द्राङ्गदकी पुत्री, सोमन्तिनीकी बेटी साध्वी कीर्तिमालिनी उसकी पत्नी हुई थी ॥५॥ हे मुने ! वह भद्रायु एक समय वसन्तके अवसर पर अपनी प्रियाके साथ विहार करनेके लिये गहनवनमें घुसा ॥ ६ ॥ फिर उस रमणीय वनमें वह राजा अपनी शरणागतपालिनी प्रियाके साथ विहार करने लगा ॥ ७ ॥ परमेश्वर शङ्करने भी शिवाको साथ ले उसके धर्मकी दृढ़ताकी परीक्षा लेनेके लिये तहाँ ही लीला रची ॥ ८ ॥ शिवा और शिव दोनों द्विजदम्पती बने और अपनी लीलासे मायामय व्याघ्र बना तहाँ प्रकट हुए ॥ ९ ॥ उस राजासे थोड़ी दूर पर ही वे भयसे विह्वल होकर भागते जाते थे और रोते जाते थे और एक व्याघ्र उनके पीछे झपट रहा था १० हे तात ! तदनन्तर शरणागतरक्षक क्षत्रियश्रेष्ठ राजा भद्रायुने उन दोनोंको घिरे हुए और रोते हुए देखा ॥११॥ तदनन्तर हे मुनिशार्दूल ! मायावश

भद्रायुषं महाराजमूचतुर्भयविह्वलौ ॥१२॥ द्विजदम्पती ऊचतुः। पाहिपाहि महाराज नावुभौ धर्मवित्तम। एष आयाति शार्दूलो जग्धुमावां महाप्रभो ॥ १३ ॥ एष हिंस्रः कालसमः सर्वप्राणिभयङ्करः। यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष धर्मवित् ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा तयोश्च नृपतीश्वरः। अतिशीघ्रं महावीरः स यावद्धनुराददे ॥ १५ ॥ तावदभ्येत्य शार्दूलस्त्वरमाणोऽतिमायिकः। स तस्य द्विजवर्य्यस्य मध्ये जग्राह तां वधूम् ॥१६॥ हे नाथ नाथ हे कान्त हा शम्भो हा जगद्गुरो। इति रोरूयमाणां तां व्याघ्रो जग्रास भीषणः१७ तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत्। न स तैर्विव्यथे किंचिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः ॥ १८ ॥ स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञः स्वैरकृतव्यथः। बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रमत सत्वरः ॥ १९ ॥ व्याघ्रेणापहृतां नारीं वीक्ष्य विप्रोऽति विस्मितः। लौकिकीं गतिमाश्रित्य रुरोदाति मुहुर्मुहुः ॥२०॥ रुदित्वा चिरकालं च स विप्रो माययेश्वरः। भद्रायुषं महीपालं प्रोवाच मदहारकः ॥ २१ ॥ द्विजेश्वर उवाच। राजन्क्व ते महास्त्राणि क्व ते त्राणं महद्धनुः। क्व ते द्वादशसाहस्रमहानागायुत-

---

द्विजदम्पतीका रूप धारण करने वाले उन्होंने भयविह्वल होकर महाराज भद्रायुसे कहा ॥ १२ ॥ द्विजदम्पतीने कहा, कि—हे धर्मको जानने वाले महाराज! हम दोनोंकी रक्षा करिये! रक्षा करिये!! हे महाप्रभो! यह शेर हमें खानेके लिये आरहा है ॥१३॥ यह सब प्राणियोंके लिये भयंकर कालकी समान हिंसक सिंह जब तक हमें दबोच कर खाता नहीं है, हे धर्मवेत्ता! उससे पहिले आप हमें बचाइये ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-वह महावीर राजा उनके इस विलापको सुन शीघ्रतासे धनुष उठा ही रहा था, कि–१५ उसी समय फुर्ती करते हुए मायामय सिंहने आकर उस द्विजश्रेष्ठके पास आ उसकी पत्नीको दबोच लिया ॥ १६ ॥ और वह भयावना व्याघ्र हे नाथ! हे कान्त! हा! जगद्गुरो शम्भो! इस प्रकार कह कर रोती हुई उस ब्राह्मणीको खाने लगा ॥ १७ ॥ इतनेमें राजा तीखे भालोंसे उस व्याघ्रको छेदने लगा, परन्तु वर्षाकी बूँदोंसे जैसे महापर्वत नहीं काँपता, इसी प्रकार उस व्याघ्रको भी कुछ पीड़ा न हुई ॥ १८ ॥ वह महाबली व्याघ्र अपनी इच्छासे राजाको व्यथा पहुँचानेके लिये उस नारीको बलपूर्वक घसीटता हुआ भाग निकला ॥ १९ ॥ अपनी नारीको व्याघ्रसे झपटी हुई देख वह विप्र परम विस्मित हुआ और लौकिक गतिका आश्रय लेकर वारंवार रोने लगा ॥ २० ॥ वह मद दूर करने वाले ईश्वर मायावश विप्ररूपमें चिरकाल तक रोकर महीपाल भद्रायुसे कहने लगे ॥ २१ ॥ द्विजेश्वरने कहा, कि–

न्त्रलम् ॥२२॥ किन्ते खड्गेन शङ्खेन किं ते मंत्रास्त्रविद्यया । किं सत्वेन महास्त्राणां किं प्रभावेण भूयसा ॥ २३ ॥ तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति । यस्त्वं वनौकसां वातं न निवारयितुं क्षमः ॥ २४ ॥ क्षत्रस्यायं परो धर्मो क्षताच्च परिरक्षणम् । तस्मिन्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम् ॥ २५ ॥ आर्तानां शरणासानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः । प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विना च मृतोपमाः ॥ २६ ॥ आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम् । धनिनान्दानहीनानां गार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरम् ॥२७॥ वरं विषाशनं प्राज्ञैर्वरमग्निप्रवेशनम् । कृपणानामनाथानां दीनानामपरक्षणात् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्थं विलपितं तस्य स्ववीर्यस्य च गर्हणम् । निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥ २९ ॥ अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात् । अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकञ्चाप्तमुत्कटम् ॥ ३० ॥ धर्मः कुलोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः । नूनं मे सम्पदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ३१ अद्य चैनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् । हतशोकं करिष्यामि दत्वा प्राणानतिप्रियान् ॥३२॥ इति निश्चित्य मनसा स भद्रायुर्नृपोत्तमः । पतित्वा पादयोस्तस्य

हे राजन् ! तुम्हारे बड़े २ अस्त्र कहाँ हैं, वह तुम्हारा रक्षक महाधनुष भी कहाँ है और तुम्हारा वह बारहहजार हाथियोंका बल भी कहाँको भाग गया २२ तुम्हारे शंख खड्ग और मन्त्रविद्यासे क्या लाभ ? तुम्हारा बल और महास्त्रोंका प्रभाव भी निष्फल है ॥ २३ ॥ ये सब वस्तुएँ तथा और भी जो कुछ तुममें हों, वे सब निष्फल ही सिद्ध हुईं क्योंकि--आप जंगली जानवरोंके आक्रमणको भी नहीं रोक सके ॥ २४ ॥ क्षत्रियका परम धर्म यह है, कि—आपत्तिसे बचावे, उस कुलोचित धर्मके नष्ट होने पर आपके जीवनका क्या लाभ है ॥ २५ ॥ धर्मज्ञ राजे शरणमें आये मनुष्योंकी धन और प्राण देकर भी रक्षा करते हैं, इसके बिना वे तो मुर्देसे हैं ॥ २६ ॥ जो पीड़ितोंकी रक्षा नहीं कर सकते, उनके जीवनसे उनका मरना भला है, दानहीन धनी गृहस्थोंसे भिखारीपन श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ यदि कृपण अनाथ दीनोंकी रक्षा न की जासके तो विष खालेना अथवा अग्निप्रवेश श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि -इस प्रकार उसके विलापको और अपने पराक्रमकी निन्दाको सुन राजा शोकमें भर चित्तमें विचार करने लगा ॥ २९ ॥ आज प्रारब्धके उल्टे होनेसे मेरा पुरुषार्थ नष्ट होगया कीर्ति भी नष्ट होगई और घोर पाप लगा ३० मुझ दुर्मति मन्दभाग्यका कुलोचित धर्म नष्ट होगया, अब मेरी सम्पत्ति, राज्य और आयु सब कुछ नष्ट होजावेगा ॥ ३१ ॥ आज मैं इस स्त्रीके नष्ट होनेसे शोक करते हुए ब्राह्मणको अपने परम प्रिय प्राण देकर भी शोकरहित

बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ ३२ ॥ भद्रायुरुवाच । कृपां कृत्वा मयि ब्रह्मन् क्षत्रबन्धौ हतोजसि । शोकन्त्यज महाप्राज्ञ दास्याम्यद्य तु वाञ्छितम् ॥३४॥ इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदञ्च कलेवरम् । त्वदधीनमिदं सर्वं किन्तेऽभिलषितं वरम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण उवाच। किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्षजीविनः। किम्पुस्तकेन मूढस्य निस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३६ ॥ अतोऽहं हतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित्। इमान्तवाग्रमहिषीं कामये दीयतामिति ॥ ३७ ॥ भ० उ० । दाता रसान्तवित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम्। आत्मदेहस्य कस्यापि कलत्रस्य न कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम् । न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण उवाच । आस्तां ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् । तपसा विधमिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥४०॥ तस्मात्प्रयच्छ भार्यां स्वामिमां कामो न मेऽपरः । अरक्षणाद्भयार्त्तानां गन्तासि निरयन्ध्रुवम् ॥४१॥ नन्दीश्वर उवाच । इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः । अरक्षणान्महापापं पत्नीदानन्ततो वरम् ॥ ४२ ॥ अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्बिषः । सद्यो वह्निं प्रवे-

---

करूँगा ॥ ३२ ॥ नृपोत्तम भद्रायु मनमें यह विचार कर उसके चरणोंमें पड़ उसको ढढ़ास देता हुआ कहने लगा ॥ ३३ ॥ भद्रायुने कहा, कि–हे महामते ब्रह्मन्! मुझ निर्वीर्य क्षत्रबंधु पर कृपा करिये, शोकको त्याग दीजिये, मैं आपका मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥ ३४ ॥ यह राज्य, यह रानी, यह मेरा शरीर, ये सब आपके अधीन है, बताइये आप क्या माँगना चाहते हैं ॥३५॥ ब्राह्मणने कहा, कि–अंधेको दर्पणसे क्या सन्तोष होसकता है? और भिक्षा पर आजीविका करने वालेको घरसे क्या लाभ होसकता है! मूढ़को पुस्तकसे क्या लाभ होसकता है और स्त्रीरहितको धन क्या लाभ पहुँचा सकता है! ३६ मेरी पत्नी मारी गई अभी मैंने भोग नहीं भोगे हैं अतः मैं तुम्हारी इस श्रेष्ठ रानीको चाहता हूँ दीजिये ॥ ३७ ॥ भद्रायुने कहा, कि–मनुष्य पृथ्वी भरका धन देसकता है, राज्य गज घोड़ा और अपना देह भी देदेता है परन्तु स्त्रीको तो कोई नहीं दिया करता ॥ ३८ ॥ परदाराके उपभोगसे जो पाप लगता है वह सैंकड़ों प्रायश्चित्त करनेसे भी नहीं छूट सकता ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणने कहा, कि–मैं घोर ब्रह्मवध और मद्यपानके पापको भी तपसे नष्ट कर सकता हूँ, फिर परदारागमनकी तो बात ही क्या है ॥ ४० ॥ इस लिये मुझे अपनी भार्या दीजिये, मुझे और कोई अभिलाषा नहीं है, नहीं तो भयार्तोंकी रक्षा न करनेसे तुम अवश्य ही नरकमें पड़ोगे ॥४१॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–ब्राह्मण की इस वाणीसे डरा हुआ राजा विचारने लगा, कि–रक्षा न करनेसे महापाप

क्ष्यामि कीर्तिश्च विदिता भवेत् ॥ ४३ ॥ इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् । तमाहूय द्विजं चक्रे पत्नीदानं सहोदकम् ॥४४॥ स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान् । तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः ॥४५॥ तमथाग्निं पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम् । प्रत्यषेधत विश्वेशः प्रादुर्भूतो द्विजेश्वरः ॥४६ तमीश्वरं पञ्चमुखं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् । प्रलम्बपिंगासुजटाकलापं मध्याह्नसूर्यास्करकोटितेजसम् ॥ ४७ ॥ मृणालगौरं गजचर्मवाससं गंगातरंगोक्षितमौलिदेशकम् । नागेन्द्रहारावलिकण्ठभूषणं किरीटकाञ्च्यंगदकंकणोज्ज्वलम् ॥ ४८ ॥ शूलासिखट्वांगकुठारचर्ममृगाभयाष्टांगपिनाकहस्तम् । वृषोपरिस्थं शितिकण्ठभूषणं प्रोद्भूतमग्रे स नृपो ददर्श ॥ ४९ ॥ ततोम्बराद् द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः । प्रणेदुर्देवतूर्याणि देव्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ ५० ॥ तत्राजग्मुस्स्तूयमाना हरिर्ब्रह्मा तथा सुराः । इन्द्रादयो नारदाद्यामुनयश्चापरेऽपि च ५१ तदोत्सवो महानासीत्तत्र भक्तिप्रवर्धनः । सति पश्यति भूपाले भक्तिनम्रीकृतांजलौ ॥ ५२ ॥ तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुविक्लिन्नगात्रः । प्रहृष्ट-

---

लगेगा, इससे तो पत्नीका दान श्रेष्ठ है ४२ अतः मैं इस द्विजश्रेष्ठको पत्नी देकर पापरहित हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश करूँगा इससे मेरी कीर्ति प्रसिद्ध होजायेगी ४३ मनमें ऐसा निश्चय करके राजाने अग्निको प्रदीप्त कर ब्राह्मणको बुला पत्नीदानका संकल्प कर दिया ४४ तदनन्तर स्वयं स्नान कर पवित्र हो देवताओंको प्रणाम किया और अग्निकी तीन प्रदक्षिणा कर शिवका ध्यान करने लगा ४५ अपने चरणमें मन लगा अग्निमें प्रवेश करना चाहने वाले राजाके सामने द्विजेश्वर विश्वेश प्रादुर्भूत होकर निषेध करने लगे ॥ ४६ ॥ राजाने अपने आगे पञ्चमुखी, तीन नेत्र वाले, पिनाक धनुषधारी, चन्द्रकलाका आभूषण धारण करने वाले, लम्बी पीली जटामण्डल वाले, मध्याह्नके करोड़ों सूर्योंकी समान तेज वाले, मृणालकी समान गौर वर्ण वाले, गजचर्मका वस्त्र पहिरने वाले, गंगाकी तरंगोंसे प्रोक्षित मूर्धा वाले, नागेन्द्रकी हारावलिके कण्ठभूषण वाले, किरीट, काञ्ची, अंगद और कंकणोंसे उज्ज्वल शूल तलवार खट्वाङ्ग कुठार चर्म मृग अभय अष्टांग और पिनाक हाथमें लिये, वृषके ऊपर विराजमान, नीलकण्ठके आभूषण वाले शंकरको प्रकट हुए देखा ॥ ४७–४९ ॥ उसी समय आकाशसे दिव्य कुसुमवृष्टि होने लगी, देवताओंके बाजे बजने लगे और देवियें नाचने और गाने लगीं ॥ ५० ॥ उस समय ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि देवता और नारद आदि मुनि भी स्तुति करते हुए पधारे ॥५१॥ उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ते हुए राजाके सामने भक्तिको बढ़ाने वाला

रोमा स हि गद्गदाक्षरस्तुष्टाव गीर्भिमु कुलीकृतांजलिः ॥ ५३ ॥ ततस्तु भगवान् राज्ञा संस्तुतः परमेश्वरः । प्रसन्नः सह पार्वत्या तमुवाच दयानिधिः ॥ ५४ ॥ राजंस्ते परितुष्टोऽहं भक्त्या त्वद्धर्मतोऽधिकम् । वरम्ब्रूहि सपत्नीकस्प्रयच्छामि न संशयः ॥ ५५ ॥ तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः । व्याघ्रेण या परिग्रस्ता साक्षाद्देवी शिवा हि सा ॥५६॥ व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षतविग्रहः । धीरतान्द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम् ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं स भद्रायुर्महीपतिः । पुनः प्रणम्य संस्तूय स्वामिनं नतकोऽब्रवीत् ॥ ५८ ॥ भद्रायुरुवाच । एक एव वरो नाथ यत्त्वाम्परमेश्वरः । भवतापप्रतप्तस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ॥ ५९ ॥ यद्दासि पुनर्नाथ वरं स्वकृपया प्रभो । वृणेऽहं परमं त्वत्तो वरं हि वरदर्षभात् ॥६०॥ वज्रबाहुः पिता मे हि सपत्नीको महेश्वर । सपत्नीकस्त्वहं नाथ सदा त्वत्पादसेवकः ॥ ६१ ॥ वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रस्सनयाभिधः । सर्वानेतान्महेशान सदा त्वं पार्श्वगान्कुरु ॥ ६२ ॥

परम उत्सव हुआ ॥ ५२ ॥ उनके दर्शनसे जिसका हृदय प्रसन्न होरहा था, उमड़ते हुए आँसुओंसे जिसका शरीर भीग रहा था, तथा जिसके रोम खड़े होरहे थे ऐसा राजा हाथ जोड़ गद्गद अक्षरोंमें स्तुति करने लगा ॥ ५३ ॥ इस प्रकार राजाके स्तुति करने पर वह दयानिधि भगवान् परमेश्वर पार्वती सहित प्रसन्न हो उससे कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ और तुम्हारे धर्मसे और भी अधिक प्रसन्न हूँ, अतः तुम वर माँगो, मैं तुम्हें और तुम्हारी पत्नीको वर दूँगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५५ ॥ मैं तुम्हारे भावकी परीक्षा लेनेके लिये ब्राह्मण बन कर आया था और जिसको व्याघ्रने पकड़ लिया था वह साक्षात् पार्वती ही थीं ॥ ५६ ॥ और तुम्हारे बाणोंसे भी जिसका शरीर अक्षत रहा था वह व्याघ्र तो मायाका बना हुआ था, और मैंने तुम्हारी धीरताकी परीक्षा लेनेके लिये तुमसे पत्नीकी याचना की थी ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-प्रभुके इस वचनको सुन वह राजा भद्रायु स्वामीकी स्तुति कर और उनको प्रणाम कर शिर झुकाकर कहने लगा ॥५८॥ भद्रायुने कहा, कि-हे नाथ ! मेरे लिये यह एक ही वर बहुत है, कि-जो आप परमेश्वर मुझ संसारतापसे सन्तप्त हुएके सामने प्रत्यक्ष हुए हैं ॥ ५९ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! यदि आप कृपा कर मुझे फिर वर देना चाहते हैं, तो आप वरदर्षभसे श्रेष्ठ वर माँगता हूँ, कि—॥ ६० ॥ हे महेश्वर ! मेरे पिता सपत्नीक वज्रबाहु और पत्नी सहित मैं सदा आपके चरणोंका सेवक रहूँ ॥ ६१ ॥ और पद्माकर नामक वैश्य और उसका पुत्र सनय, हे महेशान !

नन्दीश्वर उवाच । अथ राज्ञी च तत्पत्नी प्रमत्ता कीर्तिमालिनी । भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ राज्युवाच । चन्द्रांगदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे । तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं मुदा ॥ ६४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः । तयोः कामवरं दत्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ६५ ॥ भद्रायुरपि सुप्रीत्या प्रसादं प्राप्य शूलिनः । सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्बहून् ॥ ६६ ॥ कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतपराक्रमः । राज्यं विन्यस्य तनये जगाम शिवसन्निधिम् ६७ चन्द्रांगदोऽपि राजेन्द्रो राज्ञी सीमन्तिनी च सा । भक्त्या संपूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ६८ ॥ द्विजेश्वरावतारस्ते वर्णितः परमो मया । महेश्वरस्य भद्रायुपरमानन्ददः प्रभो ॥ ६९ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्त्तेः । द्विजेशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि शृण्वन्पठञ्शंभुपदं प्रयाति ॥ ७० ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः । न स्रोतति स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम् ।७१।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां द्विजेशनामशिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इन सबको आप अपने पार्श्वचारी करिये ।। ६२ ।। नन्दीश्वरने कहा, कि-तदनन्तर राजाकी पत्नी रानी कीर्तिमालिनीने प्रसन्न होकर भक्तिभावसे गिरिशको प्रसन्न कर उत्तम वर माँगा ।।६३।। रानीने कहा, कि-हे महादेव ! मेरे पिता चन्द्राङ्गद और मेरी माता सीमन्तिनी इन दोनोंके लिये आपके पासमें रहनेका वर चाहती हूँ ।।६४।। नन्दीश्वरने कहा, कि- तदनन्तर भक्तवत्सल गौरीशने प्रसन्न होकर एवमस्तु कहा इस प्रकार उनको इच्छानुसार वर देकर वह क्षण भरमें ही अन्तर्धान होगए ।।६५।। तदनन्तर भद्रायु भी शूलीकी प्रसन्नता पा कीर्तिमालिनीके साथ प्रीतिपूर्वक बहुतसे विषयोंको भोगता रहा ।६६। वह दश हजार वर्ष तक निष्कण्टक राज्य कर अन्तमें पुत्रको राज्य सौंप शिवलोकको चला गया ।। ६७ ।। राजेन्द्र चन्द्राङ्गद और रानी सीमन्तिनी भक्तिपूर्वक गिरिशका पूजन कर शम्भुके लोकको प्राप्त होगए ।। ६८ ।। हे प्रभो ! मैंने आपसे यह महेश्वरका भद्रायुको परम आनन्द देने वाला श्रेष्ठ द्विजेश्वरावतार कह दिया ।। ६९ ।। पवित्र कीर्ति वाले द्विजेश नामक शिवके अवतारका यह चरित्र परम पवित्र है इस परम अद्भुत चरित्रको सुनने और पढ़नेसे शंभुका पद मिलता है ।। ७० ।। जो सावधानतापूर्वक इसको नित्य सुनता वा सुनाता है वह अपने धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता अतः परलोकमें सद्गति पाता है ।। ७१ ।। सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।। २७ ।। छ छ छ छ

(७७) नन्दीश्वर उवाच । शृणु प्राज्ञ प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः । अवतारं पुरानन्दं यतिनाथाह्वयं मुने ॥ १ ॥ अर्बुदाचलसंज्ञे तु पर्वते भिल्लवंशजः । आहुकश्च तदभ्याले वसति स्म मुनीश्वर ॥ २ ॥ तत्पत्नी ह्याहुका नाम बभूव किल सुव्रता । उभावपि महाशैवावास्तान्तौ शिवपूजकौ ॥ ३ ॥ कस्मिंश्चित्समये भिल्लः शिवभक्तिरतः सदा । आहारार्थं स्वपत्न्याश्च सुदूरं स गतो मुने ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गेहे भिल्लस्य शंकरः । भूत्वा यतिवपुः सायं परीक्षार्थं समाययौ ॥ ५ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्राजगाम स गृहाधिपः । पूजनं च यतीशस्य चकार प्रेमतः सुधीः ॥ ६ ॥ तद्भावस्य परीक्षार्थं यतिरूपस्स शंकरः । महालीलाकरः प्रीत्या भीतः प्रोवाच दीनगीः ॥ ७ ॥ यतिनाथ उवाच । अद्य स्थलं निवासार्थं देहि मे प्रातरेव हि । यास्यामि सर्वथा भिल्ल स्वस्ति स्यात्तव सर्वदा ॥ ८ ॥ भिल्ल उवाच । सत्यम्प्रोक्तं त्वया स्वामिञ्छृणु मद्वचनं च ते । अतिस्वल्पं स्थलं मे हि स्यान्निवासः कथन्तव ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्स यतिस्तेन गमनाय मतिन्दधे । तावद्भिल्लया वचः प्रोक्तं स्वामिनं संविचार्य्य वै ॥ १० ॥ भिल्ल्युवाच । स्वामिन्देहि यतेः स्थानं विमुखं कुरु मातिथिम् । गृहधर्मं विचार्य्य त्वमन्यथा धर्मसंक्षयः ॥ ११ ॥ स्थीयतान्ते गृहाभ्यन्तः सुखेन यतिना सह । अहं

हे बुद्धिमश्रान्न मुने ! मैं परमात्मा शिवके आनन्दसे पूर्ण यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीपमें भिल्लवंशमें उत्पन्न हुआ आहुक रहता था ॥ २ ॥ उसकी पत्नीका नाम आहुका था वह व्रतशीला थी, वे दोनों महाशैव शिवपूजक थे ॥ ३ ॥ हे मुने ! एक समय वह शिवभक्तिपरायण भील अपनी पत्नीके आहारके लिये दूर निकल गया ॥ ४ ॥ इसी समय सायंकालके समय शंकर परीक्षा लेनेके लिये उसके घर यतिके रूपमें पधारे ॥ ५ ॥ इसी अवसर पर वह गृहस्थका स्वामी बुद्धिमान् भील भी वहाँ आपहुँचा और उसने प्रेमपूर्वक यतीशका सत्कार किया ॥ ६ ॥ शंकर तो बड़ी लीलायें करने वाले हैं अतः उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये वह यतिरूपधारी शंकर डर कर दीनवाणीमें प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥ ७ ॥ यतिनाथने कहा, कि–हे भील ! आज मुझे टिकनेके लिये स्थान देदो, मैं प्रातःकाल होते ही चला जाऊँगा आपका सदा कल्याण हो ॥ ८ ॥ भीलने कहा, कि–हे स्वामिन् ! आपने सत्य बात कही, परन्तु मेरी बात भी सुनिये मेरे पास स्थान बहुत छोटा है उसमें आप कैसे रह सकते हैं ९ नन्दीश्वरने कहा, कि भीलके इस प्रकार कहने पर यतिने चलनेका विचार किया इसी समय भीलनीने विचार कर अपने स्वामीसे कहा, ॥ १० ॥ भीलनीने कहा, कि–हे स्वामिन् ! यतिको स्थान देदीजिये, अतिथिको विमुख

बहिःस्थिति कुर्व्यामायुधानि गृहन्त्यपि ॥१२॥ नन्दीश्वर उवाच । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भिल्ल्या धर्मान्वितं शिवम् । स्वपत्न्या मनसा तेन भिल्लेन च विचारितम् ॥ १३ ॥ स्त्रियं बहिश्च निष्कास्य कथं स्थेयं मया गृहे । यतेरन्यत्र गमनमधर्मकरमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वयमप्युचितं नैव सर्वथा गृहमेधिनः । यद्भावि तद्भवेद्वै मया स्थेयं गृहाद्बहिः ॥१५॥ इत्याग्रहं तदा कृत्वा गृहान्तः स्थाप्य तौ मुदा । स्वायुधानि च संस्थाप्य भिल्लोऽतिष्ठद् गृहाद्बहिः॥ १६ ॥ रात्रौ तत्पशवः क्रूरा हिंसकाः समपीडयन् । तेनापि च यथाशक्ति कृतो यत्नो महांस्तदा ॥ १७ ॥ एवं यत्नं प्रकुर्वाणः स भिल्लो बलवानपि । प्रारब्धात्प्रेरितैर्हिंस्रैर्बलादासीच्च भक्षितः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाय स यतिर्दृष्ट्वा हिंस्रैश्च भक्षितम् । भिल्लं वनेचरं तं वै दुःखितोऽभूदतीव हि ॥ १९ ॥ दुःखितं तं यतिन्दृष्ट्वा भिल्ली सा दुःखितापि हि । धैर्यात्सुदुःखं संहृत्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥२०॥ भिल्युवाच । किमर्थं क्रियते दुःखं भद्रं जातं यतेऽधुना । धन्योऽयं कृतकृत्यश्च यज्जातो मृत्युरीदृशः ॥२१॥ अहं चैनं गमिष्यामि भस्मी भूत्वानले यते । चितां कारय सुप्रीत्या स्त्रीणां धर्म्मः

न करिये, गृहस्थधर्मका विचार तो करिये, अन्यथा धर्म क्षीण होगा ॥ ११ ॥ आप यतिके साथ सुखपूर्वक घरके भीतर रहें, मैं बड़े २ आयुधोंको लेकर बाहर खड़ी रहूँगी ॥ १२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—अपनी पत्नी भीलिनीके इस कल्याणकारक धर्ममय वचनको सुनकर भीलने अपने मनमें विचारा १३ स्त्रीको बाहर निकाल कर मेरा घरमें बैठे रहना कैसे उचित होसकता है और यतिका अन्यत्र जाना भी अधर्म ही होगा ॥ १४ ॥ ये दोनों बातें गृहस्थोंके लिये उचित नहीं हैं, अतः मैं घरके बाहर रहूँगा जो कुछ होना है वह हो १५ तब उसने प्रसन्नतापूर्वक आग्रहके साथ उन दोनोंको घरके भीतर रखा और वह भील अपने आप आयुध लेकर घरसे बाहर खड़ा रहा ॥ १६ ॥ रात्रिमें हिंसक क्रूर पशु उसको पीड़ा देने लगे और वह उनके साथ यथाशक्ति (बचने का) बड़ा यत्न करता रहा ॥१७॥ इस प्रकार यत्न करते करते वह बड़ा बली भील प्रारब्धसे आये हुए हिंसकोंके द्वारा बलपूर्वक खा डाला गया ॥ १८ ॥ प्रातःकाल यति उठे तो वह वनचारी भीलको हिंसकोंसे खाया हुआ देख बहुत दुःखी हुए ॥१९॥ यतिको दुःखित होते देख दुःखमें भरी हुई भी वह भीलिनी धैर्यपूर्वक अपने दुःखको रोक यह कहने लगी ॥ २० ॥ भीलनीने कहा, कि—हे यतिजी ! आप क्यों दुःखी होरहे हैं, यह भी एक अच्छी ही बात हुई है, क्योंकि—यह भील ऐसी मृत्यु पाकर कृतकृत्य और धन्य होगए हैं ॥ २१ ॥ और मैं भी अग्निमें भस्म होकर इनके पास चली जाऊँगी, अतः आप प्रसन्नता-

सनातनः ॥२२॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा हितं मत्वा स्वयं यतिः। चितां व्यरचयत्सा हि प्रविवेश स्वधर्मज्ञः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्पुरः प्रादुरभूच्छिवः। धन्ये धन्ये इति प्रीत्या प्रशंसन्तां हरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ हर उवाच। वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि त्वदाचरणतोऽनघे। तवादेयं न वै किंचिद्वशगोऽहं ते विशेषतः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच। तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं परमानन्ददायकम्। सुखं प्राप्तं विशेषेण न किंचित्स्मरणं ययौ ॥२६॥ तस्यास्तद्गतिमालक्ष्य सुप्रसन्नो हरोऽभवत्। उवाच च पुनः शम्भुर्वरं ब्रूहीति ताम्प्रभुः ॥ २७ ॥ शिव उवाच। अयं यतिश्च मद्रूपो हंसरूपो भविष्यति। परजन्मनि वां प्रीत्या संयोगं कारयिष्यति ॥२८॥ भिल्लश्च वीरसेनस्य नैषधे नगरे वरे। महान्पुत्रो नलो नाम भविष्यति न संशयः ॥ २९ ॥ त्वं सुता भीमराजस्य वैदर्भे नगरेऽनघे। दमयन्ती च विख्याता भविष्यसि गुणान्विता ॥ ३० ॥ युवां चोभौ मिलित्वा च राजभोगं सुविस्तरम्। भुक्त्वा मुक्तिं च योगीन्द्रैर्लप्स्येथे दुर्लभां ध्रुवम् ॥३१॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा च स्वयं शम्भुर्लिंगरूपोऽभवत्तदा। तस्मान्न चलितो धर्मादचलेश इति स्मृतः ॥ ३२ ॥

पूर्वक चिता बनाइये, क्योंकि-यह स्त्रियोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ यति ने इस बातको सुन उसको स्वयं भी हितकारक समझ चिता रची तब वह स्वधर्मानुसार चिता पर चढने लगी ॥ २३ ॥ इसी समय शिव अपने रूपमें प्रकट होगए और प्रीतिपूर्वक तू धन्य है ! धन्य है !! कहकर उसकी प्रशंसा करते हुए हर कहने लगे, कि--॥२४॥ हरने कहा, कि--हे निष्पापे ! वर माँग ! मैं तेरे आचरणसे प्रसन्न हूँ, मेरे पास तेरे लिये न देने योग्य कोई वस्तु नहीं है और मैं तो विशेषतः तेरे वशमें हूँ ॥२५॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--शम्भुके इस परमानन्द देने वाले वचनको सुनकर भीलिनीको परम सुख हुआ और उसे कुछ स्मरण न रहा ॥२६॥ उसकी इस गतिको देख हर प्रसन्न हुए और प्रभु शम्भुने उससे फिर कहा, कि—वर माँग ॥ २७ ॥ शिवने कहा, कि- मेरा यह यतिरूप अगले जन्ममें हंसका रूप धारण करेगा और अगले जन्ममें प्रीतिपूर्वक तुम दोनोंका संयोग करायेगा ॥ २८ ॥ और यह भील वीरसेनके नैषध नाम वाले श्रेष्ठ नगरमें नल नामका श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ २९ ॥ और हे पापरहिते ! तू भी विदर्भनगरमें राजा भीमकी दमयन्ती नाम वाली गुणवती पुत्री होगी ॥ ३० ॥ तुम दोनों मिल कर बड़ा भारी राजसुख भोगोगे और अन्तमें योगीन्द्रोंको भी दुर्लभ ध्रुव-मुक्तिको पाओगे ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस प्रकार कह कर शम्भु तहाँ लिंगरूप होगए और तहाँसे चलित नहीं हुए अतः वह अचलेश नामसे प्रसिद्ध होगए ॥ ३२ ॥

स भिल्ल आहुकश्चापि वीरसेनसुतोऽभवत् । नैषधे नगरे तात नलनामा महानृपः ॥ ३३ ॥ आहुका सा महाभिल्ली भीमस्य तनयाऽभवत् । वैदर्भे नगरे राज्ञा दमयन्तीति विश्रुता ॥३४॥ यतिनाथाह्वयस्सोऽपि हंसरूपोऽभवच्छिवः । विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलेन वै ॥ ३५ ॥ पूर्वसत्कारहेतुेण महापुण्येन शंकरः । हंसरूपं विधायैव ताभ्यां सुखमदात्प्रभुः ॥ ३६ ॥ शिवो हंसावतारो हि नानावार्ताविचक्षणः । दमयन्त्या नलस्यापि परमानन्ददायकः ॥ ३७ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः । यतीशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि हंसाह्वयस्यापि विमुक्तिदं हि ॥ ३८ ॥ यतीशब्रह्महंसाख्यावतारचरितं शुभम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि स लभेत परां गतिम् ॥३९॥ इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ ४० ॥ श्रुत्वैतच्चरितं शम्भोर्यतिहंसस्वरूपयोः । इह सर्वसुखम्भुक्त्वा सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यतिनाथब्रह्महंसाह्वयशिवावतारचरितवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार शम्भोस्त्ववतारं परमं शृणु । नभगज्ञानदं कृष्णदर्शनाह्वयमुत्तमम् ॥१॥ इक्ष्वाकुप्रमुखा आसञ्श्राद्धदेवसुताश्च ये । नभगस्तत्र

और हे तात ! वह भील आहुक भी निषध देशमें वीरसेनका पुत्र नल नामक महाराज हुआ ॥ ३३ ॥ और वह आहुका नाम वाली भीलिनी विदर्भ नगर में राजा भीमकी दमयन्ती नामकी प्रसिद्ध पुत्री हुई ॥ ३४ ॥ और वह यतिनाथ शिव भी हंसरूपमें प्रकट हुए थे और उन्होंने दमयन्तीसे नलका विवाह कराया था ॥ ३५ ॥ पूर्व जन्मके सत्काररूप महापुण्यवश प्रभुने हंसरूप धारण कर उन दोनोंको सुख दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक बातोंमें विचक्षण शिवका हंसावतार दमयन्ती और नलको परम आनन्द देने वाला हुआ ॥ ३७ ॥ यह पवित्र कीर्तिवाले शिवके अवतार यतीश और हंसका मुक्तिको देने वाला परम अद्भुत चरित्र परम पवित्र है ॥ ३८ ॥ जो यतीश और ब्रह्महंस अवतारके शुभ चरित्रको सुनता है वा सुनाता है वह परम गति पाता है ॥३९॥ यह आख्यान पाप दूर करने वाला, सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाला, स्वर्ग यश और आयु देने वाला तथा भक्ति बढ़ाने वाला श्रेष्ठ आख्यान है ४० शम्भुके इस यति और हंसके स्वरूपके चरित्रको सुन कर प्राणी इस लोकमें सब प्रकारके सुख भोग अन्तमें शिवपुरको प्रस्थान करता है ॥ ४१ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि -आप शम्भुके नभगको ज्ञान देने वाले कृष्णदर्शन नामक एक श्रेष्ठ अवतारको सुनो ॥ १ ॥ श्राद्धदेवके जो इक्ष्वाकु आदि पुत्र

नवमो नाभगस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २ ॥ अम्बरीषसुतस्तस्य विष्णुभक्तो महायशाः । यस्योपरि प्रसन्नोऽभूद् दुर्वासा ब्रह्मभक्तितः ॥३॥ पितामहोऽम्बरीषस्य नभगो यः प्रकीर्तितः । तच्चरित्रं शृणु मुने यस्म ज्ञानमदाच्छिवः ॥ ४ ॥ नभगो मनुपुत्रस्तु पठनार्थं सुबुद्धिमान् । चक्रे गुरुकुले वासं बहुकालं जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ एतस्मिन्समये ते वा इक्ष्वाकुप्रमुखास्सुताः । तस्मै भागमकल्प्यैव भेजुर्भागान्निजक्रमात् ॥ ६ ॥ स्वं स्वं भागं गृहीत्वा ते बुभुजू राज्यमुत्तमम् । अविषादं महाभागा पित्रादेशात्सुबुद्धयः ॥ ७ ॥ स पश्चादागतस्तत्र ब्रह्मचारी गुरुस्थलात् । नभगोऽधीत्य सर्वाश्च सांगोपांगाः श्रुतीः क्रमात् ॥ ८ ॥ भ्रातॄन्विलोक्य नभगो विभक्तान्सकलान्निजान् । दायार्थी प्राह तान्स्नेहादिक्ष्वाकुप्रमुखान्मुने ॥ ९ ॥ नभग उवाच । भ्रातरोऽभक्तकं मह्यं दायं कृत्वा यथातथम् । सर्वे विभक्तास्सुप्रीत्या स्वदायार्थागताय च ॥ १० ॥ तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं पितरं तव । विभजामो वयं भागं तं गृहाण न संशयः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा भ्रातृवचनं नभगः परविस्मृतः । तदोपकण्ठमागत्य पितरं समभाषत ॥१२॥ नभग उवाच । हे तात भ्रातरः सर्वे त्यक्त्वा मां व्यभजंश्च ते । पठनार्थं गतश्चाहं ब्रह्मचारी गुरोः कुले १३

थे उनमें नभग नवाँ था उसके पुत्रका नाम नाभग था ॥ २ ॥ उसका पुत्र अम्बरीष हुआ वह विष्णुभक्त था, ब्रह्मभक्तिके कारण दुर्वासा मुनि उस पर प्रसन्न हुए थे ॥ ३ ॥ अम्बरीषके पितामहका नाम नभग था उनको शिवने ज्ञान दिया था, हे मुने ! उनके चरित्रको आप सुनिये ॥ ४ ॥ परमबुद्धिमान् मनुपुत्र नभगने पढ़नेके लिये गुरुकुलमें चिरकाल तक जितेन्द्रियतापूर्वक निवास किया था ॥ ५ ॥ इसी समयमें इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने नभगका भाग न निकाल कर अपना अपना हिस्सा बाँट कर लिया ॥ ६ ॥ वे परमबुद्धिमान् और महाभाग्यवान् पुत्र पिताकी आज्ञासे अपने २ भागको ग्रहण कर विषादरहित हो उत्तम राज्य भोगने लगे ॥ ७ ॥ पीछेसे ब्रह्मचारी नभग भी गुरुकुलसे सांगोपांग श्रुतियोंको क्रमपूर्वक पढ़ कर लौटा ॥ ८ ॥ हे मुने ! वह इक्ष्वाकु आदि सकल भाइयोंको बँटे देख उनसे स्नेहपूर्वक अपना हिस्सा देनेके लिये कहने लगा ॥ ९ ॥ नभगने कहा, कि—हे भाइयों ! मैं अपना भाग लेनेके लिये आया हूँ, आप मेरा विस्मरण कर प्रीतिपूर्वक दायभाग करके बैठ गए हैं ॥ १० ॥ (भाइयोंने उत्तर दिया, कि—) हम उस समय भूल गए थे, अब हम तुम्हारे भागमें पिताको देते हैं उनको आप लेलें ॥११॥ भाइयोंके इस वचनको सुनकर नभग बड़ा विस्मित हुआ और पिताके पास पहुँच कर कहने लगा ॥१२॥ नभगने कहा, कि—हे तात ! मैं ब्रह्मचारी बन गुरुके घर पढ़नेको गया था पीछे सब भाइयोंने मेरा हिस्सा निकाले बिना

तत आगत्य मे पृष्टा दायभागार्थमादरात् । ते त्वामूचुर्विभागं मे तदर्थमहमागतः ॥१४॥ नन्दीश्वर उवाच । तदाकर्ण्य वचस्तस्य पिता तं प्राह विस्मितः। आश्वास्य श्राद्धदेवस्तु सत्यधर्मरतं मुने ॥ १५ ॥ मनुरुवाच । तदुक्तं मादथास्तात प्रतारणकरं हि तत् । न ह्यहं परमं दायं सर्वथा भोगसाधनम् ॥ १६ ॥ तथापि दायभावेन दत्तोऽहं तैः प्रतारिभिः । तव वै जीवनोपायं वदामि शृणु तत्त्वतः ॥ १७ ॥ सत्रमांगिरसा विप्राः कुर्वन्त्यद्य सुमेधसः । तत्र कर्मणि मुह्यन्ति षष्ठं षष्ठमहः प्रति ॥ १८ ॥ तत्र त्वं गच्छ नभग तान् शंस महाकवे । सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि सत्रं शुद्धं हि तद्भवेत् ॥ १९ ॥ तत्कर्मणि समाप्ते हि स्वर्यान्तो ब्राह्मणाश्च ते । धनं दास्यन्ति ते तुष्टास्स्वसत्रपरिशेषितम् ॥ २० ॥ नन्दीश्वर उवाच । तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं नभगः सत्यसारवान् । जगाम तत्र सुप्रीत्या यत्र तत्सत्रमुत्तमम् ॥२१॥ तदाहः कर्मणि मुने सत्रे तस्मिन्स मानवः । सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि प्रोवाच स्पष्टतस्सुधीः ॥ २२ ॥ समाप्ते कर्मणि ततो विप्रा आंगिरसाश्च ते । तस्मै दत्वा ययुः स्वर्गं स्वं स्वं सत्रावशेषितम् ॥ २३ ॥ तत्तदा स्वीकरिष्यन्तं सुसत्रपरिशेषितम् । विज्ञाय गिरिशः तत्र आविर्भूतः सदूतिकृत् ॥ २४ ॥

हिस्सा बाँट लिया ॥१३॥ मैंने लौटकर आदरपूर्वक उनसे अपना हिस्सा देने को कहा, उन्होंने आपको मेरा भाग कहा, अतः मैं आपके पास आया हूँ १४ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुने ! उसके इस वचनको सुन पिता विस्मित हुए और उस सत्यधर्मपरायणको धीरज देते हुए पिता श्राद्धदेव कहने लगे १५ मनुने कहा, कि-बेटा ! तुम उनके कथनका आदर मत करो, यह तो धोखा देनेकी बात है, कहीं मैं भोगका साधन तुम्हारा हिस्सा बन सकता हूँ ॥१६॥ तथापि उन धूर्तोंने दायरूपमें मुझे देदिया, अब मैं तुम्हारे जीवनका उपाय कहता हूँ, तुम सुनो ॥१७॥ आङ्गिरस गोत्री बुद्धिमान् ब्राह्मण आजकल यज्ञ कर रहे हैं, उसमें वे छठे दिनके कर्ममें मोहमें पड़ जाते हैं ॥१८॥ हे महाकवे नभग ! तुम तहाँ पहुँचकर उनसे दो वैश्वदेव सूक्तोंका वर्णन करो तो वह सत्र शुद्ध होगा ॥ १९ ॥ उस कर्मके समाप्त होने पर स्वर्गको प्रस्थान करते हुए वे ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर तुझको यज्ञसे बचा हुआ धन देंगे ॥ २० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-पिताके वचनको सुन, सत्य ही जिसके पास सार है ऐसा नभग, जहाँ वह यज्ञ होरहा था, तहाँको प्रेमपूर्वक चला ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस बुद्धिमान् मनुष्यने उस दिनके कर्ममें दो वैश्वदेव सूक्तोंका स्पष्टरूप से उच्चारण किया ॥ २२ ॥ तब उस कर्मके समाप्त होने पर उन आङ्गिरस गोत्री विप्रोंने अपने २ यज्ञमेंसे बचा धन उसको दे स्वर्गको प्रस्थान किया २३ जब नभग उस सुन्दर यज्ञके अवशिष्ट भागको लेरहा था, इस बातको जान

सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीमान्पुरुषः कृष्णदर्शनः । भावं समीक्षितुं भागं दातुं ज्ञानं परं च तत् ॥ २५ ॥ अथो स शंकरः शम्भुः परीक्षाकर ईश्वरः । उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य नभगं तं हि मानवम् ॥२६॥ ईश्वर उवाच । कस्त्वं गृह्णासि पुरुष मदीयं वास्तुकं वसु । प्रेषितः केन तत्सर्वं सत्यं वद ममाग्रतः ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात मानवो नभगः कविः । प्रत्युवाच विनीतात्मा पुरुषं कृष्णदर्शनम् ॥२८॥ नभग उवाच । ममेदमृषिभिर्दत्तं वसु यज्ञगतं खलु । कथं वारयसे मां त्वं गृह्णन्तं कृष्णदर्शन ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । आकर्ण्य नाभगं वाक्यमिदं सत्यमुदीरितम् । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ ३० ॥ कृष्णदर्शन उवाच । विवादेऽस्मिन्हि नौ तात प्रमाणं जनकस्तव । याहि तत्पृच्छ स ब्रूयात्तत्प्रमाणन्तु सत्यतः ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । तदाकर्ण्य वचस्तस्य नभगो मानवः कविः । आगच्छत्पितरं प्रीत्या तदुक्तं पृष्टवान्मुने ॥ ३२ ॥ पुत्रोदितं समाकर्ण्य श्राद्धदेवस्स वै मनुः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्राहस्मृतिरुवाच तम् ॥ ३३ ॥ मनुरुवाच । हे तात शृणु मद्वाक्यं स देवः पुरुषः शिवः । तस्यैव

सज्जनोंकी रक्षा करने वाले गिरिश शीघ्र ही प्रकट होगए ॥ २४ ॥ वह सर्वाङ्गसुन्दर श्रीमान् पुरुष कृष्णदर्शनरूपमें नभगके भावकी परीक्षा लेनेके लिये तथा उसको भाग और श्रेष्ठ ज्ञान देनेके लिये प्रकट होगए ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह परीक्षा लेने वाले ईश्वर शंभु शंकर उत्तरकी ओरसे आ, उस मनुष्य नभगसे कहने लगे ॥ २६ ॥ ईश्वरने कहा, कि--अरे ! आदमी ! तू कौन है, जो मेरे वास्तुक धनको ग्रहण कर रहा है, तुझे यहाँ किसने भेजा है, सब सत्य सत्य बात मुझे बता ॥ २७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--हे तात ! इस बातको सुन वह मानव कवि नभग विनीत चित्तसे कृष्णदर्शन पुरुषको उत्तर देने लगा ॥ २८ ॥ नभगने कहा, कि इस यज्ञके धनको मुझे ऋषियों ने दिया है, हे कृष्णदर्शन ! उसको लेनेमें आप बाधा क्यों डालते हैं ॥२९॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--नभगके कहे इस सत्य वचनको सुन कृष्णदर्शन पुरुष चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ३० ॥ कृष्णदर्शनने कहा, कि--हे तात ! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारे पिताजी ही प्रमाण हों, तुम उनके पास जाकर बूझो वह जो कुछ कहेंगे वह सत्य और प्रमाण होगा ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--हे मुने ! उनके इस वचनको सुनकर उस मानव कवि नभगने पिताके पास पहुँच प्रीतिपूर्वक पितासे कृष्णदर्शनकी बात बूझी ३२ पुत्रकी बात सुन श्राद्धदेव मनुको कुछ स्मरण आया और वह शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर कहने लगे ॥ ३३ ॥ मनुने कहा, कि--हे तात ! तुम मेरी बात सुनो ! वह पुरुष शिव-देव हैं सब वस्तु उनकी ही है, और यज्ञमें

सकलं वस्तु यज्ञप्राप्तं विशेषतः ॥ ३४ ॥ अध्वरोर्वरितं वस्तु रुद्रभागः प्रकीर्तितः । इत्यपि प्राज्ञवादो हि कचिज्जातस्तदिच्छया ॥ ३५ ॥ स देव ईश्वरः सर्वं वस्त्वर्हति न संशयः । यज्ञावशिष्टं किमुत परे तस्यैच्छया विभोः ॥ ३६ ॥ अनुग्रहार्थमायातस्तत्र तद्रूपतः प्रभुः । तत्र त्वं गच्छ नभग प्रसन्नं कुरु सत्यतः ३७ क्षमापय स्वापराधं सुप्रणम्य स्तुतिं कुरु । सर्वप्रभुस्स एवेशो यज्ञाधीशोऽखिलेश्वरः ॥ ३८ ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धास्सर्वर्षयोऽपि हि । तदनुग्रहतस्तात समर्थाः सर्वकर्मणि ॥३९॥ किम्बहूक्त्यात्मजश्रेष्ठ गच्छ तत्राशु मा चिरम् । प्रसादय महादेवं सर्वथा सकलेश्वरम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा स मनुः श्राद्धदेवश्च तनयं द्रुतम् । प्रेष्यामास निकटं शम्भोस्सोऽपि समेत्य तम् ४१ नभगश्च प्रणम्याशु सांजलिर्नतमस्तकः । प्रोवाच सुप्रसन्नात्मा विनयेन महामतिः ॥४२॥ नभग उवाच । इदं तवेश सर्वं हि वस्तु त्रिभुवने हि यत् । इत्याह मे पिता नूनं किमुताध्वरशेषितम् ॥ ४३ ॥ अजानता मया नाथ यदुक्तन्तद्वचो भ्रमात् । अपराधन्त्वं क्षमस्व शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा नभग-

---

प्राप्त हुई वस्तु तो विशेषरूपसे उनको है ॥ ३४ ॥ यज्ञभूमिकी वस्तु रुद्रका भाग कही है, ऐसा विद्वानोंका कथन उनकी ही इच्छासे कहीं पर हुआ था ३५ वह शंकर देव सब वस्तुओंके पात्र हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है तो फिर यज्ञके शेष भागकी तो बात ही क्या ? ॥ ३६ ॥ वह प्रभु तेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही तहाँ पधारे हैं, तू तहाँ जाकर अपने सत्यसे उनको प्रसन्न कर ॥ ३७ ॥ प्रणाम कर अपने अपराधकी क्षमा करा तथा उनकी स्तुति कर, क्योंकि—वह शंकर ईश सर्वप्रभु यज्ञके स्वामी तथा सबके ईश्वर हैं ३८ हे तात ! उनके अनुग्रहसे ही विष्णु ब्रह्मा आदि देवता सिद्ध और सब ऋषि सब कर्मोंके लिये समर्थ होते हैं ॥३९॥ हे श्रेष्ठ पुत्र ! अधिक कहनेसे क्या ? शीघ्र ही तहाँ पहुँचो, विलम्ब न लगाओ, सर्वथा सबके ईश्वर उन महादेवको प्रसन्न करो ॥ ४० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—श्राद्धदेव मनुने इस प्रकार कह कर पुत्रको शिवके पास झट भेजा और नभगने भी उनके पास पहुँच शीघ्र ही प्रणाम किया, तदनन्तर महामति नभग चित्तमें प्रसन्न हो हाथ जोड़ मस्तक झुका विनयपूर्वक कहने लगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ नभगने कहा, कि—हे ईश ! मेरे पिताने कहा, कि—यज्ञमें बचे हुए पदार्थोंकी तो बात ही क्या ? तीनों भुवनोंमें जितनी वस्तुएँ हैं सब आपकी ही हैं ॥ ४३ ॥ हे नाथ ! कुछ ज्ञान न होनेसे मैंने भ्रमवश जो बात कही थी उस अपराधको आप क्षमा करिये मैं शिर झुका कर आपको प्रसन्न करता हूँ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कह कर वह नभग बड़ी दीनतापूर्वक हाथ जोड़ कृष्णदर्शन महेशकी नम्रतापूर्वक

स्सोऽतदीनधीनस्तु कृताञ्जलिः। तुष्टाव तं महेशानं कृष्णदर्शनमाननः ॥ ४५ ॥ श्राद्धदेवोऽपि शुद्धात्मा नतकस्साञ्जलिस्सुधीः। तुष्टाव तं प्रभुं नत्वा स्वापराधं क्षमापयत् ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्ब्रह्माखिलः सुधीः। वासवाद्याः समाजग्मुः सिद्धाश्च मुनयोऽपि हि ॥ ४७ ॥ महोत्सवं प्रकुर्वन्तः सुकृतांजलयोऽखिलाः। तुष्टुवुर्नतका भक्त्या सुप्रणम्य पृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥ अथ रुद्रः प्रसन्नात्मा कृपादृष्ट्या विलोक्य ताम्। उवाच नभगं प्रीत्या सस्मितं कृष्णदर्शनः ४९ कृष्णदर्शन उवाच। यत्ते पितावदद्धर्म्यं वाक्यन्तत्तु तथैव हि। त्वयापि सत्यमुक्तं तत्साधुस्त्वन्नात्र संशयः ॥ ५० ॥ अतोऽहं सुप्रसन्नोऽस्मि सर्वथा सुव्रतेन ते। ददामि कृपया ते हि ज्ञानम्ब्रह्म सनातनम् ॥ ५१ ॥ सद्ज्ञानी भव त्वं हि सविप्रो नभग द्रुतम्। गृहाण वस्त्विदं सर्वं मद्दत्तं कृपयाधुना ॥ ५२ ॥ इह सर्वसुखं भुङ्क्ष्व निर्विकारं महामते। सुगतिं प्राप्स्यसि त्वं हि सविप्रः कृपया मम ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा तात भगवान्स रुद्रः सत्यवत्सलः। सर्वेषाम्पश्यतान्तेषान्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ५४ ॥ विष्णुर्ब्रह्मापि देवाद्यास्सर्वे ते मुनिसत्तम। स्वं स्वं धाम ययुः प्रीत्या तस्यै नत्वा दिशे मुदा ॥ ५५ ॥ सपुत्रः श्राद्धदेवोऽपि

स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ पवित्र चित्त वाले बुद्धिमान् श्राद्धदेव भी मस्तक झुका हाथ जोड़ अपने अपराधकी क्षमा करानेके लिये उन प्रभुको प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ ४६ ॥ इसी समय तहाँ बुद्धिमान् विष्णु ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता सिद्ध और मुनि सबही महोत्सव मचाते हुए आये और सब पृथक् पृथक् मस्तक झुका हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४७॥४८ ॥ तब रुद्रने चित्तमें प्रसन्न होकर उनको कृपादृष्टिसे देखा, फिर कृष्णदर्शन शंकर प्रीतिपूर्वक मुस्कुरा कर नभगसे कहने लगे ४९ कृष्णदर्शनने कहा कि-तुम्हारे पिताने जो धर्मभरी बात कही थी वह वैसी ही है और तुमने भी सत्य कहा, अतः तुम साधु हो, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ५० अतः मैं तेरे इस सुव्रतसे परम प्रसन्न हो कृपा करके तुझे सनातन ब्रह्म-ज्ञान देता हूँ ॥ ५१ ॥ हे नभग ! तुम ब्राह्मणों सहित मेरी कृपासे शीघ्र ही ज्ञानवान् होजाओ और अब मेरी दी हुई इन सब वस्तुओंको ग्रहण करो ॥५२॥ हे महामते ! तुम ब्राह्मणोंसहित निर्विकार भावसे इस लोकमें सकल सुखोंको भोग सद्गति पाओगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-हे तात ! सत्यवत्सल भगवान् रुद्र इस प्रकार कहकर सबके सामने तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥५४॥ हे मुने ! तब विष्णु ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्नतापूर्वक उस दिशाको प्रणाम कर अपने अपने धामको चले गए ॥ ५५ ॥ पुत्रसहित श्राद्धदेव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान पर पहुँचे और बड़े २ भोगोंको भोग अन्तमें

स्वस्थानमगमन्मुदा । भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्सोऽन्ते शिवपुरं ययौ ॥ ५६ ॥ इत्यन्ते कीर्तितो ब्रह्मन्नवतारः शिवस्य हि । कृष्णदर्शननामा वै नभगानन्ददायकः ॥ ५७ ॥ इदमाख्यानमनघं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् । पठतां शृण्वतां वापि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५८ ॥ य एतच्चरितं प्रातस्सायं च स्मरते सुधीः । कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिमन्ते लभेत्पराम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर उवाच । शृणु त्वं ब्रह्मपुत्राद्यावतारं परमेशितुः । अवधूतेश्वराह्वं वै शक्रगर्वापहारकम् ॥१॥ शक्रः पुरा हि सगुरुः सर्वदेवसमन्वितः । दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासमगमन्मुने ॥ २ ॥ अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरस्तयोः । परीक्षितुं च तद्भावं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ३ ॥ अवधूतस्वरूपोऽभून्नानालीलाकरः प्रभुः । दिगम्बरो महाभीमो ज्वलदग्निसमप्रभः ॥४॥ सोऽवधूतस्वरूपो हि मार्गमारुध्य सद्गतिः । लम्बमानपटः शम्भुरतिष्ठच्छोभिताकृतिः ॥ ५ ॥ अथ तौ गुरुशक्रौ च गच्छन्तौ शिवसन्निधिम् । अद्राष्टां पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम् ६

शिवलोकमें चले गए ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार आपसे शिवका नभग को आनन्द देने वाला कृष्णदर्शन नामक अवतार कहा ॥ ५७ ॥ यह पापों से बचाने वाला आख्यान सज्जनोंको भोग और मोक्ष देने वाला है तथा पढ़ने और सुनने वालोंकी भी सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥५८॥ जो बुद्धिमान् पुरुष इस चरित्रका सायंकाल और प्रातःकाल स्मरण करता है वह मन्त्रज्ञ कवि होकर अंतमें परम गति पाता है ॥ ५९ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे ब्रह्मपुत्र ! अब आप परमेश्वरके इन्द्रका गर्व झाड़ने वाले अवधूतेश्वर नामक आद्य अवतारको सुनिये ॥ १ ॥ हे मुने ! पहिले देवराज इन्द्र गुरु और सब देवताओंको साथ ले शंकरका दर्शन करने के लिये कैलासको चला ॥ २ ॥ शंकर उन गुरु और इन्द्रके आगमनको जान, अपना दर्शन करनेके चित्त वाले उन दोनोंके भावकी परीक्षा करनेके लिये अवधूतस्वरूप होगए, वह प्रभु अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं अतः उन्होंने प्रज्वलित अग्निकी समान प्रभा वाला महाभयंकर दिगम्बर वेष बनाया ॥ ३ ॥४॥ वह सज्जनोंकी गति शंकर अवधूतका स्वरूप बना वस्त्र धा शोभायमान आकारमें मार्ग रोक कर खड़े होगए ॥ ५ ॥ तदनन्तर शिव के समीप जाते हुए गुरु और इन्द्रने मार्गके बीचमें अद्भुत आकृति वाले एक भयंकर पुरुषको देखा ॥ ६ ॥ हे मुने ! तदनन्तर अपने अधिकारके दुर्मदमें

अथ शक्रो मुनेऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः । पुरुषं तं स्वमार्गान्तः स्थितमज्ञाय शंकरम् ॥ ७ ॥ शक्र उवाच । कस्त्वं दिगम्बराकारावधूतः कुत आगतः । किन्नाम तव विख्यातं तत्त्वतो वद मेऽचिरम् ॥ ८ ॥ स्वस्थाने संस्थितः शम्भुः किम्वान्यत्र गतोऽधुना । दर्शनार्थं हि तस्याहं गच्छामि सगुरुस्सुरैः ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । शक्रेणेत्थं स पृष्टश्च किंचिन्नोवाच पूरुषः । लीलागृहीतदेहस्स शंकरो मदहा प्रभुः ॥ १० ॥ शक्रः पुनरपृच्छत्तं नोवाच स दिगम्बरः । अविज्ञातगतिश्शम्भुर्महाकौतुककारकः ॥ ११ ॥ पुनः पुरन्दरोऽपृच्छत्त्रैलोक्याधिपतिस्स्वराट् । तूष्णीमास महायोगी महालीलाकरस्स वै ॥ १२ ॥ इत्थं पुनः पुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः । नोवाच किंचिद्भगवाञ्छक्रदर्पजिघांसया ॥१३॥ अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः । उवाच वचनं क्रोधात्तं निर्भर्त्स्य जटाधरम् ॥ १४ ॥ इन्द्र उवाच । पृच्छमानोऽपि रे मूढ नोत्तरं दत्तवानसि । अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५ ॥ इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम् । हन्तुन्दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६ ॥ वज्रहस्तं च तं दृष्ट्वा शक्रं शीघ्रं सदाशिवः । चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः १७

भरे हुए इन्द्रने उनको शंकर न समझ अपने मार्गमेंका एक पुरुष समझ कर कहा ॥ ७ ॥ शंकरने कहा, कि--तू दिगम्बरका आकार धारण करने वाला अवधूत कौन है ? कहाँसे आया है ? तेरा क्या नाम है, शीघ्र ही मुझै सब बात बता ॥ ८ ॥ शंभु अपने स्थान पर स्थित हैं वा कहीं और गए हैं, मैं गुरु और देवताओंको साथ ले उनका दर्शन करने जारहा हूँ ॥९॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इन्द्रके इस प्रकार बूझने पर भी उस पुरुषने कुछ न कहा, क्योंकि--प्रभु शंकरने मद उतारनेके लिये लीलावश यह स्वरूप धारण किया था ॥ १० ॥ शंभुकी गति जानी नहीं जाती, वह तो महाकौतुक करने वाले हैं अतः इन्द्रके फिर बूझने पर भी उन दिगम्बरने कुछ उत्तर नहीं दिया ११ त्रिलोकीके स्वामी स्वराट् इन्द्रने फिर बूझा, परन्तु बड़ी २ लीलायें करने वाले वह महायोगी चुप ही रहे ॥१२॥ इस प्रकार इन्द्रने दिगम्बरसे बारंवार बूझा, परन्तु भगवान् शंकर तो इन्द्रका गर्व झाड़ना चाहते थे अतः उन्होंने कुछ उत्तर ही नहीं दिया ॥ १३ ॥ तब त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे गर्वमें भरे हुए देवराजको क्रोध आगया और वह क्रोधवश उस जटाधारीको धमका कर कहने लगे ॥ १४ ॥ इन्द्रने कहा, कि--रे मूढ़ ! बारम्बार बूझने पर भी तू उत्तर नहीं देता, अतः मैं तुझ पर वज्रका प्रहार करूँगा, रे दुर्मते ! देखूँ, अब कौन तेरी रक्षा करता है ॥१५॥ वज्रधारी इन्द्रने इस प्रकार कह क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखा और उन दिगम्बरको मारनेके लिये वज्र उठा लिया १६

ततः स पुरुषः क्रुद्धः करालाक्षो भयङ्करः । द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १८ ॥ बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तश्शचीपतिः । समदह्यत भोगीव मंत्ररुद्धपराक्रमः ॥१९॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वेनम्प्रज्ज्वलन्तं स्वतेजसा । पुरुषन्तं धियामास प्रणनाम हरं द्रुतम् ॥ २० ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः । दंडवत्क्षौ पुनर्नत्वा प्रभुं तुष्टाव भक्तितः ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । प्रसन्नो भव गौरीश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥२२॥ मायया मोहितास्सर्वे ब्रह्मविष्णवादयोपि ते । त्वां न जानन्ति तत्त्वेन जानन्ति त्वदनुग्रहात् २३ नन्दीश्वर उवाच । बृहस्पतिरिति स्तुत्वा स तदा शंकरम्प्रभुम् । पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥ २४ ॥ ततस्तात सुराचार्य्यः कृतांजलिरुदारधीः । बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः सुधीः ॥ २५ ॥ बृहस्पतिरुवाच । दीननाथ महादेव प्रणतन्तव पादयोः । समुद्धर च मां तस्त्वं क्रोधं न प्रणयं कुरु ॥ २६ ॥ तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम् । वह्निरेष समायाति भालनेत्रसमुद्भवः ।२७। नन्दीश्वर उवाच । इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यमवधूनाकृतिः प्रभुः । उवाच करुणा-

---

सदाशिवने इन्द्रको वज्र उठाये देख उस बज्रपातको स्तम्भित कर दिया १७ तदनन्तर वह कराल नेत्रों वाले भयंकर पुरुष क्रोधमें भर तेजसे भस्मसा करते हुए प्रज्वलित हो उठे ॥ १८ ॥ भुजाके स्तंभित होजानेसे उत्पन्न हुए क्रोधसे इन्द्र अपने अंतःकरणमें मन्त्रसे रुके हुए पराक्रम वाले सर्पकी समान झुलसने लगा ॥ १९ ॥ बृहस्पतिने उन पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होते देख उनको हर समझ झट प्रणाम किया ॥ २० ॥ तदनन्तर उदार बुद्धि वाले बृहस्पति हाथ जोड़ पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणाम कर भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ गुरुने कहा, कि—हे शरणागतवत्सल गौरीश सर्वेश्वर देवदेव महादेव ! प्रसन्न हूजिये आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ आपकी मायासे मोहित होकर ब्रह्मा विष्णु भी वास्तविक रूपसे आपको नहीं समझ पाते उन पर जब आपका अनुग्रह होता है तभी वे आपके स्वरूपको जानते हैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—बृहस्पतिने प्रभु शङ्करकी इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र को उनके चरणोंमें झुका दिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर उदार और श्रेष्ठ बुद्धि वाले, देवताओंके आचार्य बृहस्पति स्नेहवश विनम्र हो कहने लगे ॥ २५ ॥ बृहस्पतिने कहा, कि—हे दीनोंके स्वामिन् महादेव ! यह इन्द्र आपके चरणोंमें लोट रहा है, क्रोधको त्याग कर आप इसका और मेरा उद्धार करिये. क्रोध न करिये, स्नेह दर्शाइये ॥ २६ ॥ हे महादेव ! प्रसन्न होकर इस शरणागत इन्द्रकी रक्षा करिये, यह आपके मस्तकके नेत्रसे प्रकट हुआ अग्नि आरहा है २७

सिंधुर्विहसन् स सदूतिकृत् ॥ २८ ॥ अवधूत उवाच । क्रोधाच्च निस्सृतन्तेजो धारयामि स्वनेत्रतः । कथं हि कंचुकीं सर्परसंधत्ते चोज्झितां पुनः ॥२९॥ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः । उवाच सांजलिर्भूयो भयव्याकुलमानसः ॥ ३० ॥ बृहस्पतिरुवाच । हे देव भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि । भक्तवत्सलनामेति स्वं सत्यं कुरु शङ्कर ॥ ३१ ॥ क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोत्युग्रमर्हसि । उद्धर्ता सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम् ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक् । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यरप्रणतार्तिहा ॥ ३३ ॥ रुद्र उवाच । प्रीतस्तेऽहं सुराचार्य्य ददामि वरमुत्तमम् । इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथाम्व्रज ॥ ३४ ॥ समुद्भूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरासहः । एनन्त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् । भालनेत्रसमुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ॥ ३६ ॥ अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् । क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालो बभूव ह ॥३७॥ स जलन्धरनामाभूत्सिन्धुपुत्रोऽसु-

---

नन्दीश्वरने कहा, कि-बृहस्पतिके इस वचनको सुन वह सज्जनोंके रक्षक करुणासिंधु अवधूतवेशधारी प्रभु शम्भु हँस कर कहने लगे ॥ २८ ॥ अवधूतने कहा, कि-क्रोधवश अपने नेत्रसे प्रकट हुए तेजको कैसे धारण करूँ भला ! साँप छोड़ी हुई केंचुलीको कहीं धारण करता है ॥ २९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-शंकरके इस वचनको सुन बृहस्पतिका चित्त भयसे व्याकुल होगया, परन्तु वह फिर भी हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ३० ॥ बृहस्पतिने कहा, कि-हे देव ! हे भगवन् ! भक्तों पर तो सदा अनुकंपा करनी चाहिये, हे शंकर ! आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य करिये ॥ ३१ ॥ हे देवेश ! आप अपने उग्र तेजको अन्यत्र फेंकिये, आप तो सब भक्तोंका उद्धार करने वाले हैं, अतः इन्द्रका उद्धार करिये ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-जब बृहस्पतिजीने रुद्र से इस प्रकार कहा, तब शरणागतोंकी पीड़ा दूर करने वाले भक्तवत्सल नामधारी शिव चित्तमें प्रसन्न होकर देवताओंके पूज्य बृहस्पतिजीसे कहने लगे ३३ रुद्रने कहा, कि-हे देवताओंके आचार्य ! मैं प्रसन्न होकर आपको उत्तम वर देता हूँ, कि-इन्द्रको जीवदान देनेसे आपका जीव नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३४ ॥ और जो यह मेरे भालनेत्रसे देवताओंके लिये असह्य अग्नि प्रकट हुआ है, इसको मैं दूर छोड़ दूँगा, तो इन्द्रको पीड़ा नहीं होगी ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-शिवने इस प्रकार कह भालनेत्रसे प्रकट हुई अपनी अद्भुत तेजःस्वरूप अग्निको हाथमें लेकर क्षारसमुद्रमें फेंक दिया ॥ ३६ ॥ भालनेत्रसे उत्पन्न हुआ शिवका वह तेज क्षारसमुद्रमें गिर शीघ्र ही बालक बन गया ॥ ३७ ॥

रेश्वरः । तं जघान महेशानो देवप्रार्थनया प्रभुः ॥ ३८ ॥ इत्थं कृत्वा सुचरितं शंकरो लोकशङ्करः । अवधूतस्वरूपेण ततश्चान्तर्हितोऽभवत् ॥३९॥ बभूवुः सकला देवाः सुखिनश्चातिनिर्भयाः । गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥ ४० ॥ यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य तौ । कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अवधूतेश्वराह्वोऽवतारस्ते कथितो मया । परमेशस्य परमानन्ददः खलदण्डदः ॥ ४२ ॥ इदमाख्यानमनघं यशस्यं स्वर्ग्यमेव च । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामफलम् ॥ ४३ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः । इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर उवाच । अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ शम्भोः शृणवतारकम् । स्वभक्तदयया विप्र नारीसंदेहभंजकम् ॥१॥ आसीत्सत्यरथो नाम्ना विदर्भविषये नृपः । धर्मात्मा सत्यशीलश्च महाशैवजनप्रियः ॥ २ ॥ तस्य राज्ञस्सुधर्मेण महीं पालयतो मुने । महान्कालो व्यतीयाय सुखेन शिवधर्मतः ॥ ३ ॥ कदाचित्तस्य राज्ञस्तु

उसका नाम सिंधुपुत्र असुरेश्वर जलन्धर हुआ, प्रभु महेशानने देवताओंके प्रार्थना करने पर उसका संहार किया था ॥ ३८ ॥ संसारका कल्याण करने वाले शंकर अवधूतस्वरूपमें ऐसा सच्चरित्र कर अन्तर्धान होगए ॥ ३९ ॥ उस समय परम निर्भय होनेसे देवताओंको सुख मिला और इन्द्र तथा गुरुने भी भयसे मुक्त होकर उत्तम सुख पाया ॥ ४० ॥ बृहस्पति और इन्द्र जिनका दर्शन पानेके लिये चले थे उनका दर्शन पा कृतार्थ हो अपने स्थानको प्रसन्नतापूर्वक चले गए ॥ ४१ ॥ मैंने आपसे यह परमेश्वरका परम आनन्द देने वाला और दुष्टोंको दण्ड देने वाला अवधूतेश्वर नामक अवतार कहा ॥ ४२ ॥ यह आख्यान निष्पाप कर यश और स्वर्ग देने वाला है, भोग तथा मोक्ष देने वाला है, तथा यह दिव्य आख्यान सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ ४३ ॥ जो नित्य इसको सुनता है जो सावधान होकर सुनाता है वह इस लोकमें सब सुख भोग कर अन्तमें शिवमें लीन होजाता है ॥ ४४ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे विप्र ! हे मुनिश्रेष्ठ ! अब शम्भुके अवतारका वर्णन करता हूँ, इस अवतारमें शिवने अपने भक्तों पर दया कर नारीके संदेहको दूर किया है ॥ १ ॥ विदर्भ देशमें सत्यरथ नामक राजा था, वह धर्मात्मा, सत्यशील और शिवभक्तोंसे प्रेम करने वाला था ॥ २ ॥ हे मुने ! शिवभक्तिके प्रभावसे उस राजाको धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते करते बहुत समय बीत

शाल्वैश्च पुररोधिभिः । महान्रणो बभूवाथ बहुसैन्यैर्बलोद्धतैः ॥ ४ ॥ स विदर्भनृपः कृत्वा सार्द्धं तैर्दारुणं रणम् । प्रनष्टोरुबलः शाल्वैर्निहतो दैवयोगतः ॥ ५ ॥ तस्मिन्नृपे हते युद्धे शाल्वैस्तु भयविह्वलाः । सैनिका हतशेषाश्च मन्त्रिभिस्सह दुद्रुवुः ॥ ६ ॥ अथ तस्य महाराज्ञी रात्रौ स्वपुरतो मुने । संरुद्धा रिपुभिर्यत्नादन्तर्वत्नी बहिर्ययौ ॥ ७ ॥ निर्गता शोकसन्तप्ता सा राजमहिषी शनैः । प्राचीं दिशं ययौ दूरं स्मरन्तीशपदाम्बुजम् ॥ ८ ॥ अथ प्रभाते सा राज्ञी ददर्श विमलं सरः । अतीता दूरमध्वानं दयया शङ्करस्य हि ॥९॥ तत्रागत्य प्रिया राज्ञस्संतप्ता सुकुमारिणी । निवासार्थं सरस्तीरे छायावृक्षमुपाश्रयत् ॥ १० ॥ तत्र दैववशाद्राज्ञी मुहूर्ते सद्गुणान्विते । असूत तनयं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ११ ॥ अथ तज्जननी दैवात्तृषितातिनृपाङ्गना । सरोवतीर्णा पानार्थं ग्रस्ता ग्राहेण पाथसि ॥ १२ ॥ स सुतो जातमात्रस्तु क्षुत्पिपासार्दितो भृशम् । रुरोद च सरस्तीरे विनष्टपितृमातृकः ॥१३॥ तस्मिन्वने क्रन्दमाने जातमात्रे सुते मुने । कृपान्वितो महेशोऽभूदन्तर्यामी स रक्षकः ॥ १४ ॥ प्रेरिता मनसा काचिदीशेन त्रास-

---

गया ॥ ३ ॥ एक समय शाल्व राजाने आकर उस राजाके नगरको रोक लिया तब बलके कारण उद्धत सेनाओंसे राजाने बड़ा युद्ध किया ॥ ४ ॥ विदर्भराजने उनके साथ दारुण युद्ध किया, परन्तु दैवयोगसे अपना परम बल नष्ट होने पर शाल्वसेनाओंने उसको मार डाला ॥ ५ ॥ जब शाल्वोंने युद्धमें राजाको मार डाला, तब मरनेसे बचे हुए सैनिक और मन्त्री भाग निकले ॥ ६ ॥ हे मुने ! शत्रुओंसे घिरी हुई गर्भवती रानी रात्रिमें यत्न कर नगरमेंसे निकल कर चल दी ॥७॥ वहाँसे निकल वह शोकसन्तप्त राजरानी शिवके चरणोंका स्मरण कर पूर्व दिशामें दूर तक चली गई ॥८॥ तदनन्तर प्रातःकालका समय आने पर दूर मार्गमें पहुँची हुई रानीको शंकरकी दयासे एक निर्मल सरोवर दीखा ॥९॥ वहाँ पहुँच सुकुमारी राजरानी विश्राम करनेके विचारसे सरोवरके तटके एक वृक्षकी छायामें बैठी ॥ १० ॥ वहाँ दैववश सद्गुण वाले मुहूर्तमें रानीने सब शुभ लक्षणोंसे चिन्हित दिव्य पुत्रको उत्पन्न किया ॥११॥ दैववश उस राजरानी जच्चाको बड़ी प्यास लगी और वह जल पीनेके लिये तालाब में घुसी तो पानीमें उसको ग्राहने पकड़ लिया ॥ १२ ॥ जिसके माता पिता नष्ट होगए थे ऐसा वह पुत्र भी उत्पन्न होते ही क्षुधा और प्याससे व्याकुल हो सरोवरके तट पर रोने लगा ॥ १३ ॥ हे मुने ! वनमें उत्पन्न होकर जब वह पुत्र रोरहा था, तब अन्तर्यामी महेश कृपा करके उसकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हुए ॥ १४ ॥ त्रासहारी शिवने अपने मनमें विचारा, कि–उनकी प्रेरणा से एक भिक्षा पर आजीविका चलाने वाली स्त्री घूमती घूमती वहाँ अकस्मात्

हारिणा। अकस्मादागता तत्र भ्रमन्ती भैक्ष्यजीविनी ॥ १५ ॥ सा एकहायनं बालं वहन्ती विधवा निजम्। अनाथमेकं क्रन्दन्तं शिशुन्तत्र ददर्श ह ॥ १६ ॥ सा दृष्ट्वा तत्र तम्बालं वने निर्मनुजे मुने। विस्मितातिद्विजस्त्री सा चिचिंत हृदये बहु १७ अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टम्मयाधुना। असम्भाव्यमकथ्यं च सर्वथा मनसा गिरा ॥ १८ ॥ अच्छिन्ननाभिनालोऽयं रसायां केवलं शिशुः। शेते मातृविहीनश्च क्रन्दंस्तेजस्विनां वरः ॥ १९ ॥ अस्य पित्रादयः केऽपि न सन्तीह सहायिनः। कारणं किं बभूवाथ ह्यहो दैवबलं महत् ॥२०॥ न जाने कस्य पुत्रोऽयमस्य ज्ञातात्र कोपि न। यतः पृच्छाम्यस्य जन्म जाता च करुणा मयि ॥ २१ ॥ इच्छाम्येनं पोषितुं हि बालमौरसपुत्रवत्। संप्रष्टुं नोत्सहेऽज्ञात्वा कुलजन्मादि चास्य वै २२ नन्दीश्वर उवाच। इति संचिन्त्यमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम्। कृपां चकार महतीं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ २३ ॥ दध्रे भिक्षुस्वरूपं हि महालीलो महेश्वरः। सर्वथा भक्तसुखदो निरुपाधिः स्वयं सदा ॥ २४ ॥ तत्राजगाम सहसा स भिक्षुः परमेश्वरः। यत्रास्ति संदेहवती द्विजस्त्री ज्ञातुमिच्छती ॥ २५ ॥ भिक्षुवर्य्यस्त्र-

---

आ निकली ॥ १५ ॥ उस विधवा स्त्रीके पास अपना एक वर्षका बालक था, उसने इस एक अनाथ शिशुको वहाँ रोते देखा ॥ १६ ॥ हे मुने! वह द्विज स्त्री उस मनुष्यरहित वनमें बालकको देख विस्मित हुई और हृदयमें अनेक प्रकारका विचार करने लगी ॥ १७ ॥ अहो! इस समय मैं एक बड़ा आश्चर्य देख रही हूँ न मनसे इसकी संभावना होती है और न वाणीसे इसका वर्णन ही किया जा सकता है ॥ १८ ॥ इस तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ शिशुका अभी नाल भी नहीं कटा है, मातासे रहित होनेके कारण यह भूमिमें पड़ा हुआ रोरहा है ॥ १९ ॥ इसको सहायता देने वाले इसके कोई पिता आदि भी यहाँ नहीं दीखते, न जाने इसका क्या कारण है, अहो दैव बड़ा बली है ॥ २० ॥ न जाने यह किसका पुत्र है इसका जानने वाला यहाँ कोई नहीं है, कि-जिससे मैं इसके जन्मका वृत्तान्त बूझूँ, मुझे इस पर करुणा आरही है ॥ २१ ॥ मैं इस बालकका औरस—पुत्रकी समान पोषण करना चाहती हूँ, इसी लिये इन बातोंको बूझना चाहती हूँ, क्योंकि—कुल जन्म आदि बिना जाने, इसका पोषण करनेके लिये मुझे उत्साह नहीं होता ॥ २२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-जब वह विप्रवरकी स्त्री इस प्रकार विचार रही थी, कि—भक्तवत्सल शंकरने उसके ऊपर बड़ी कृपा की ॥ २३ ॥ महेश्वर स्वयं सदा उपाधिरहित हैं, परन्तु भक्तोंको सुख देनेके लिये बड़ी बड़ी लीलायें करते हैं, अतः उन्होंने भिक्षुकका स्वरूप धारण कर लिया ॥ २४ ॥ और वह परमेश्वर भिक्षुके रूपमें सहसा तहाँ आ पहुँचे जहाँ वह द्विजस्त्री संदेहमें पड़कर इस वृत्तान्तको जानना चाहती

रूपोऽसावविज्ञातगतिः प्रभुः। तामाह विप्रवनितां विहस्य करुणानिधिः॥ २६॥ भिक्षुवर्य्य उवाच। सन्देहं कुरु नो चित्ते विप्रभामिनि मा खिद। रक्षैनम्बालकं प्रीत्या सुपवित्रं स्वपुत्रकम्॥२७॥ अनेन शिशुना श्रेयः प्राप्स्यसे न चिरात्परम्। पुष्णीहि सर्वथा ह्येनं महातेजस्विनं शिशुम्॥ २८॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त-वत्तं तं भिक्षुस्वरूपं करुणानिधिम्। सा विप्रवनिता शम्भुं प्रीत्या पप्रच्छ साद-रम्॥ २९॥ विप्रवनितोवाच। त्वदाज्ञयैनं बालं हि रक्षिष्यामि स्वपुत्रवत्। पोषयामि नात्र सन्देहो मद्भाग्यात्त्वमिहागतः ३० तथापि ज्ञातुमिच्छामि विशेषेण तु तत्त्वतः। कोऽयं कस्य सुतश्चायं कस्त्वमत्र समागतः॥३१॥ मुहुर्मम समायाति ज्ञानं भिक्षुवर प्रभो। त्वं शिवः करुणासिन्धुस्त्वद्भक्तोऽयं शिशुः पुरा॥ ३२॥ केनचित्कर्मदोषेण सम्प्राप्तोऽयं दशामिमाम्। तद्भुक्त्वा परमं श्रेयः प्राप्स्यते त्वदनुग्रहात्॥३३॥ त्वन्माययैव साहं वै मार्गभ्रष्टा विमोहिता। आगता प्रेषिता त्वत्तो ह्यस्य रक्षणहेतुतः॥ ३४॥ नन्दीश्वर उवाच। इति तद्दर्शनप्राप्तविज्ञानां विप्रकामिनीम्। ज्ञातुकामां विशेषेण प्रोचे भिक्षुतनुश्शिवः॥ ३५॥ भिक्षुवर्य्य

थी॥२५॥ जिनकी गति जानी नहीं जाती वह करुणानिधि प्रभु भिक्षुकके स्वरूपमें प्रकट हो उस विप्रवनितासे हँस कर कहने लगे॥ २६॥ भिक्षुकने कहा, कि-हे विप्रभामिनि! तुम अपने चित्तमें सन्देह करके खिन्न मत हो इस पवित्र बालक को अपना पुत्र मानकर इसकी प्रीतिपूर्वक रक्षा करो॥ २७॥ इस बालकसे शीघ्रही तुम्हें सुख प्राप्त होगा, अतः इस महातेजस्वी शिशुकी आप प्रयत्नपूर्वक रक्षा करें॥२८॥ नन्दीश्वरने कहा, कि इस प्रकार कहने पर उस विप्रवनिताने भिक्षुस्वरूपधारी करुणानिधि शंकरसे प्रीति और आदरपूर्वक बूझा॥ २९॥ विप्रवनिताने कहा, कि—आपकी आज्ञासे मैं इसका अपने पुत्रकी समान रक्षा और पोषण करूँगी, आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं॥३०॥ तथापि मैं इन बातोंका तत्त्व भली प्रकार जानना चाहती हूँ, कि-यह कौन है? किसका पुत्र है और यहाँ पधारे हुए आप भी कौन हैं?॥ ३१॥ हे भिक्षुवर प्रभो! मुझै वारम्वार ऐसा लगता है, कि-आप करुणासिंधु शंकर हैं और यह शिशु पहिले आपका भक्त था॥ ३२॥ किसी कर्मके दोषसे इसकी यह दशा हुई है, उसको भोगकर आपके अनुग्रहसे यह परम-श्रेय पावेगा॥ ३३॥ आपकी मायासे ही मैं मोहमें पड़ मार्गभ्रष्ट हो इसकी रक्षाके लिये आपकी भेजी हुई ही यहाँ आ निकली हूँ॥ ३४॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस प्रकार दर्शन करने से जिसमें विज्ञान उत्पन्न होरहा था ऐसी उस अपनेको जानना चाहने वाली विप्रकामिनीसे भिक्षुस्वरूपधारी शंकरने कहा॥ ३५॥ भिक्षुकने कहा, कि-

उवाच । शृणु प्रीत्या विप्रपत्नि बालस्यास्य पुरेहितम् । सर्वमन्यस्य सुपूर्वं तथा वक्ष्यते तत्त्वतोऽनघे ॥ ३६ ॥ सुतो विदर्भराजस्य शिवभक्तस्य धीमतः । अयं सत्यरथस्यैव स्वधर्मनिरतस्य हि ॥ ३७ ॥ शृणु सत्यरथो राजा हतः शाल्वै रणे परैः । तत्पत्नी निशि सुव्यग्रा निर्ययौ स्वगृहाद् द्रुतम् ॥ ३८ ॥ असूत तनयं चैनं समायाता प्रगेऽत्र हि । सरोवतीर्णा तृषया ग्रस्ता ग्राहेण दैवतः ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तस्य समुत्पत्तिं तत्पितुः संगरे मृतिम् । तन्मातृमरणं ग्राहात्सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ अथ सा ब्राह्मणी सा हि विस्मितातीव मुनीश्वर । पुनः पप्रच्छ तं भिक्षुं ज्ञानिनं सिद्धरूपकम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण्युवाच । स राज्ञोऽस्य पिता भिक्षो वरभोगान्तरैव हि । कस्माच्छाल्वैस्स्वरिपुभिस्स्वल्पैश्च विघातितः ॥ ४२ ॥ कस्मादस्य शिशोर्माता ग्राहेणाशु सुभक्षिता । कस्मादनाथोऽयं जातो विबन्धुश्चैव जन्मतः ॥ ४३ ॥ कस्मात्सुतो ममापीह सुदरिद्रो हि भिक्षुकः । भवेत्कथं सुखं भिक्षो पुत्रयोरनयोर्वद ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तस्या वचः श्रुत्वा स भिक्षुः परमेश्वरः । विप्रपत्न्याः प्रसन्नात्मा प्रोवाच विहसँश्च ताम् ॥ ४५ ॥ भिक्षुवर्य उवाच । विप्रपत्नि विशेषेण सर्वप्रश्नान्वदामि ते ।

हे पापरहित विप्रपत्नी ! तुम इस बालकके हितकी बात प्रीतिपूर्वक सुनो, और बातें भी पीछे कही जावेंगा ॥३६॥ यह अपने धर्ममें परायण, शिवभक्त बुद्धिमान् विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है ॥ ३७ ॥ राजा सत्यरथको शाल्व नामक शत्रुओंने रणमें मार डाला, उसकी पत्नी व्यग्र हो रात्रिमें अपने घरसे निकल पड़ी ॥ ३८ ॥ उसने यहाँ बहुत प्रातःकाल पहुँच इस पुत्रको उत्पन्न किया था, और प्यासके कारण तालावमें उतरती थी, कि—दैवयोगसे नाकेने उसको पकड़ लिया ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इसप्रकार शंकरने उस ब्राह्मणी से उस बालककी उत्पत्ति, उसके पिताका युद्धमें मरण और ग्राहसे उसकी माताका मरण आदि सब कुछ कह दिया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! तब वह ब्राह्मणी परम विस्मित हो उन सिद्धरूप ज्ञानी भिक्षुकसे फिर बूझने लगी ४१ ब्राह्मणीने कहा, कि -हे भिक्षो ! इस राजाका पिता, विना श्रेष्ठ भोग भोगे शत्रु शाल्वोंके थोड़ी चेष्टा करने पर ही कैसे मारा गया ॥ ४२ ॥ और शिशुकी माताको ग्राह क्यों खागया और यह बालक किस दोषसे जन्मसे ही बंधुरहित और अनाथ उत्पन्न हुआ है ॥४३॥ और मेरा यह पुत्र भी किस पापसे दरिद्र और भिक्षुक हुआ है और हे भिक्षो ! इन दोनोंको सुख किस प्रकार प्राप्त होगा, सो बताइये ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि उस विप्रपत्नीके इस वचन को सुन वह भिक्षुस्वरूपधारी परमेश्वर चित्तमें प्रसन्न हो हँसकर उससे कहने लगे ॥ ४५ ॥ भिक्षुकने कहा, कि—हे विप्रपत्नि ! मैं तुम्हारे सब प्रश्नोंका

शृणु त्वं सावधानेन चरित्रमिदमुत्तमम् ॥४६॥ अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः। पूर्वजन्मनि पाण्ड्योऽसौ बभूव नृपसत्तमः ॥ ४७ ॥ स शम्भुनिरतिर्धर्मात्पालयन्निखिलां महीम्। स्वप्रजा रंजयामास सर्वोपद्रवनाशनः ॥ ४८ ॥ कदाचित्स हि सर्वेशं प्रदोषे पर्यपूजयत्। त्रयोदश्यां निराहारो दिवानक्तव्रती शिवम् ॥ ४९ ॥ तस्य पूजयतः शम्भुं प्रदोषे गिरिशं रते। महाञ्शब्दो बभूवाथ विकटस्सर्वथा पुरे ॥ ५० ॥ तमाकर्ण्य रवं सोऽथ राजा त्यक्तशिवार्चनः। रिप्वागमनशंकातो निर्ययौ भवनाद्बहिः ॥५१॥ एतस्मिन्नेव काले तु तस्यामात्यो महाबली। गृहीतशत्रुसामन्तो राजान्तिकमुपाययौ ॥ ५२ ॥ तन्दृष्ट्वा शत्रुसामन्तं महाक्रोधेन विह्वलः। अविचार्य नृपस्तस्य शिरश्छेदमकारयत् ॥ ५३ ॥ असमाप्येशपूजान्तामशुचिर्नष्टधीर्नृपः। रात्रौ चकार सुप्रीतया भोजनन्नष्टमंगलः ॥ ५४ ॥ विदर्भे सोऽभवद्राजा जन्मनीह शिवव्रती। शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः ॥ ५५ ॥ तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः। अयमेव हृतैश्वर्य्यः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ५६ ॥ अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहरत्। भक्षिता तेन पापेन ग्राहेणास्मिन् भवे हि सा ॥ ५७ ॥ एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै परिकी-

---

उत्तर देता हूँ, तुम सावधान होकर इस उत्तम चरित्रको सुनो ॥ ४६ ॥ इस बालकका पिता वह विदर्भराज पूर्वजन्ममें नृपश्रेष्ठ पाण्ड्य था ॥ ४७ ॥ सकल उपद्रवोंको शान्त करने वाला वह शिवभक्त राजा सकल पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करता हुआ अपनी प्रजाका रंजन करता था ॥ ४८ ॥ एक समय वह त्रयोदशीका दिन रातका निराहार व्रत रख प्रदोषके समय सर्वेश शिवका पूजन कर रहा था ॥ ४९ ॥ जब वह प्रदोषके समय गिरिश शंभुका पूजन कर रहा था, कि--नगरमें एक विकट महाशब्द होने लगा ॥ ५० ॥ वह राजा उस शब्दको सुनते ही शत्रुके आगमनकी शङ्कासे शिवपूजन छोड़ भवनसे बाहर निकल पड़ा ॥ ५१ ॥ इसी समय उस शत्रुराजाका महाबली मंत्री सामन्तों से शस्त्र ले राजाके पास आगया ॥ ५२ ॥ शत्रुके सामन्तको देख राजाने धर्मका कुछ विचार न कर महाक्रोधसे विह्वल हो उसके शिरको काट डाला ॥५३॥ शिवपूजनको समाप्त न कर अपवित्र हुए और दीनबुद्धि हुए उस राजाने रात्रि में प्रीतिपूर्वक भोजन किया अतः उसका मङ्गल नष्ट होगया ॥ ५४ ॥ वह शिवव्रती राजा इस जन्ममें विदर्भदेशमें राजा हुआ था, शिवपूजनके विघ्नके कारण शत्रुओंसे भोग भोगता हुआ ही मारा गया ॥ ५५ ॥ पूर्वजन्ममें जो इसका पुत्र था, वही इस जन्ममें इसका पुत्र हुआ है, शिवपूजाके व्यतिक्रमसे इसका भी ऐश्वर्य जाता रहा है ॥ ५६ ॥ इसकी माताने पहिले जन्ममें अपनी सौत को छलसे हर लिया था इस पापसे इस जन्ममें उसको नाका खागया ५७

र्चिता । अनर्चिता शिवाभक्त्या प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ॥ ५८ ॥ एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः । प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न . यज्ञाद्यैस्सुकर्मभिः ॥ ५९ ॥ अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि । तद्दोषपरिहारार्थं शरणं शंकरं व्रज ॥६०॥ एताभ्यां खलु बालाभ्यां शिवपूजा विधीयताम् । उपवीतानन्तरं हि शिवः श्रेयः करिष्यति ॥६१॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तामुपदिश्याथ भिक्षुवर्य्यतनुः शिवः । स्वरूपं दर्शयामास परमं भक्तवत्सलः ॥ ६२ ॥ अथ सा विप्रवनिता ज्ञात्वा तं शङ्करम्प्रभुम् । सुप्रणम्य हि तुष्टाव प्रेम्णा गद्गदया गिरा ॥ ६३ ॥ ततस्स भगवान् शम्भुर्धृतभिक्षुतनुर्द्रुतम् । पश्यन्त्या विप्रपत्न्यास्तु तत्रैवान्तरधीयत ॥६४॥ अथ तस्मिन् गते भिक्षौ विश्रब्धा ब्राह्मणी च सा । तमर्भकं समादाय सस्वपुत्रा गृहं ययौ ॥ ६५ ॥ एकचक्राह्वये रम्ये ग्रामे कृतनिकेतना । स्वपुत्रं राजपुत्रं च वरान्नैश्च व्यवर्द्धयत् ॥६६॥ ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ कृतोपनयनौ च तौ । ववृधाते स्वगेहे च शिवपूजनतत्परौ ॥ ६७ ॥ तौ शाण्डिल्यमुनेस्तात निदेशान्नियमस्थितौ । प्रदोषे चक्रतुः शम्भोः पूजां कृत्वा व्रतं शुभम् ॥ ६८ ॥ कदाचिद् द्विज-

---

इन सबका यह समाचार आपसे कह दिया, जो शिवकी भक्ति नहीं करते और शिवपूजन नहीं करते वे दरिद्र होते हैं ।। ५८ ।। यह तेरा पुत्र पहिले जन्ममें ब्राह्मण था इसने प्रतिग्रहमें ही अवस्था बिता दी, यज्ञ आदिक कभी किये ही नहीं ।। ५९ ।। हे द्विजभामिनि ! इसलिये यह तुम्हारा पुत्र दरिद्र हुआ है, इसका दोष दूर करनेके लिये शंकरकी शरण लो ।। ६० ।। इन दोनों बालकोंसे शिवपूजन कराओ, तो यज्ञोपवीतके अनन्तर शिव इनका कल्याण करेंगे ६१ नन्दीश्वरने कहा, कि भिक्षुस्वरूपसे इस प्रकार उसको उपदेश दिया तदनन्तर भक्तवत्सल शिवने उसको अपना श्रेष्ठ स्वरूप दिखाया ।। ६२ ।। तब विप्रवनिता शंकर प्रभुको जान प्रणाम कर प्रेम गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगी ।। ६३ ।। तदनन्तर जिन्होंने भिक्षुकका स्वरूप धारण करा था ऐसे भगवान् शंकर विप्रपत्नीके देखते २ ही तहाँसे अन्तर्धान होगए ।। ६४ ।। उनके चले जाने पर वह विश्वस्त ब्राह्मणी उस बालकको साथ ले अपने पुत्रके साथ घरको लौट पड़ी ।। ६५ ।। और एकचक्रा नाम वाले रमणीय ग्राममें घर बना अपने पुत्रका और राजपुत्रका श्रेष्ठ अन्नोंसे पोषण करने लगी ६६ ब्राह्मणोंने उनका संस्कार और यज्ञोपवीत किया और वे शिवपूजन करते हुए अपने घरमें बड़े होने लगे ।। ६७ ।। हे तात ! वे दोनों शाण्डिल्य मुनिके उपदेशके अनुसार नियमका पालन कर शुभ व्रत रख प्रदोषके समय शंभुका पूजन करने लगे ।।६८।। एक समय वह द्विजनंदन द्विजपुत्रके विना, नदी पर स्नान

पुत्रेण विनाऽसौ द्विजनन्दनः । नद्यां स्नातुं गतः प्राप निधानकलशं वरम् ॥६९॥ एवं पूजयतोः शम्भुं राजद्विजकुमारयोः । सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ७० ॥ एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोऽपि परया मुदा । सम्वत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव तयोर्गृहे ॥ ७१ ॥ सम्वत्सरे व्यतिक्रान्ते स राजतनयो मुने । गत्वा वनान्ते विप्रेण शिवस्यानुग्रहाद् विभोः ॥७२॥ अकस्मादागतां तत्र दत्तां तज्जनकेन ह । विवाह्य गन्धर्वसुतां चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ७३ ॥ या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् । सैव माताऽभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ७४ ॥ इत्थमाराध्य देवेशं धर्मगुप्ताह्वयः स वै । विदर्भविषये राज्ञ्या तया भोगं चकार ह ॥ ७५ ॥ भिक्षुवर्यावतारस्ते वर्णितश्च मयाधुना । शिवस्य धर्मगुप्ताह्वनृपबालसुखप्रदः ॥ ७६ ॥ एतदाख्यानमनघं पवित्रं पावनं महत् । धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ॥ ७७ ॥ य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः । स भुक्त्वेहाखिलान् कामान् सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्य्याह्वशिवावतारचरितवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः । सुरेश्वरावतारस्ते धौम्याग्रज-

---

करनेको गया, तहाँ उसे खजाना भरा हुआ एक श्रेष्ठ कलश मिला ॥६९॥ इस प्रकार राजकुमार और द्विजकुमारको शंभुका पूजन करते हुए सुखपूर्वक चार मास बीत गए ॥७०॥ फिर भी परमानन्दसे शिवपूजन करते करते उन दोनों बालकोंको उसी घरमें एक वर्ष और व्यतीत होगया ॥ ७१ ॥ हे मुने ! एक वर्ष बीतने पर वह राजकुमार विप्रके साथ विभु शिवके अनुग्रहसे वनमें पहुँचा ॥ ७२ ॥ तहाँ एक गंधर्वपुत्री अकस्मात् मिली, उसके पिताने वह राजकुमारके अर्पण कर दी, तब राजकुमार उस गंधर्वपुत्रीके साथ विवाह कर निष्कण्टक राज्य करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस ब्राह्मणीने उसका पहिले अपने पुत्रकी समान पालन किया था, वही उसकी माता हुई और वह द्विजनन्दन उसका भाई हुआ ॥ ७४ ॥ इस प्रकार देवेशकी आराधना करके वह धर्मगुप्त विदर्भ देशमें उसी रानीके साथ भोग भोगने लगा ॥ ७५ ॥ यह शिवका धर्मगुप्त नामक बालकको सुख देने वाला भिक्षुवर्य अवतार आपसे कहा ७६ यह पापरहित करने वाला आख्यान परम-पवित्र है, धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन है और सब कामना सफल करने वाला है ॥ ७७ ॥ जो सावधानतापूर्वक नित्य इसको सुनता है वा सुनाता है, वह यहाँ सब मनोरथोंको पा अंतमें शिवपुर जाता है ॥ ७८ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

हे तात ! सुनो ! अब मैं आपसे धौम्यके बड़े भाई (उपमन्यु) का हित

हितावहम् ॥१॥ व्याघ्रपादसुतो धीमानुपमन्युस्सतांप्रियः । जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ २ ॥ उवास मातुलगृहे स मात्रा शिशुरेव हि । उपमन्युर्व्याघ्रपादिस्स्याद्दरिद्रश्च दैवतः ॥ ३ ॥ कदाचित्तातरभल्पपयःपीतवान्मातुलाश्रमे । ययाचे मातरम्प्रीत्या बहुशो दुग्धलालसः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी । सान्तः प्रविश्याथ तदा शुभोपायमथारचत् ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्त्यर्जितान्बीजान्पिष्ट्वालोड्य जलेन तान् । उपलाल्य सुतन्तस्मै सा ददौ कृत्रिमम्पयः ॥६॥ पीत्वा च कृत्रिमं दुग्धं मात्रा दत्तं स बालकः । नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चारुदत्पुनः ॥ ७ ॥ श्रुत्वा सुतस्य रुदितं प्राह सा दुःखिता सुतम् । संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलाकृतिः ॥ ८ ॥ मातोवाच । क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा । प्रसादेन विना शम्भोः पयःप्राप्तिर्भवेन्न हि ॥९॥ पूर्वजन्मनि यत्कृतं शिवमुद्दिश्य हे सुत । तदेव लभ्यते नूनन्नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ इति मातृवचश्श्रुत्वा व्याघ्रपादिस्स बालकः । प्रत्युवाच विशोकात्मा मातरं मातृवत्सलः ॥ ११ ॥ शोकेनालमिमं मातः शम्भुर्यद्यस्ति शङ्करः । त्यज शोकं महाभागे

करने वाले परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ व्याघ्रपादके पुत्र उपमन्यु सज्जनोंके प्रिय थे, पूर्वजन्मके सिद्ध वे मुनिकुमार बन कर उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ व्याघ्रपादके पुत्र उपमन्यु दैववश दरिद्र थे अतः अपनी माताके साथ बालकपनसे ही मामाके घरमें रहते थे ॥ ३ ॥ एक समय मामाके घरमें उन्हें बहुत थोड़ा दूध पीनेको मिला अतः वह दूधकी लालसासे मातासे बारम्बार दूध माँगने लगे ॥ ४ ॥ पुत्रके इस वचनको सुन उसकी तपस्विनी माताने घरके भीतर जा शुभ उपाय रचा ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्तिमें मिले हुए बीजोंको पीस कर उन्हें उसने जलमें घोला और उसमें जल बढ़ा वह नकली दूध बच्चेको पीनेको दिया ॥ ६ ॥ माताके दिये हुए उस बनावटी दूधको पी बालक कहने लगा, कि–यह दूध नहीं है और रोने लगा ॥ ७ ॥ वह पुत्रके रोनेको सुन दुःखित हुई, फिर कमलकीसी आकृति वाली उपमन्युकी माता पुत्रके नेत्रोंको हाथोंसे स्वच्छ कर पुत्रसे कहने लगी ॥ ८ ॥ माताने कहा, कि–हम तो सदा वनमें रहते हैं, अतः हमैं दूध सर्वदा कहाँ से मिले, शंभुकी कृपाके विना दूधकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! पूर्व जन्ममें शिवके निमित्त जो पुण्यकर्म किया जाता है, वही इस जन्ममें मिलता है, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ १० ॥ माताके ऐसे वचन सुन वह व्याघ्रपादका पुत्र मातृवत्सल बालक चित्तमें शोक करना छोड़ कर मातासे बूझने लगा ॥ ११ ॥ हे मातः ! इस शोकसे क्या लाभ ? यदि शंभु शंकर अपने हैं तो हे महाभागे ! आप शोकको त्यागदें, सब कल्याण

सर्वं भद्रम्भविष्यति ॥ १२ ॥ शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्। चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा स शिशुः प्रीत्या शिवं मेऽस्त्विवत्युदीर्य्य च। विसृज्य तां सुप्रणम्य तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ हिमवत्पर्वतगतः वायुभक्षस्समाहितः। अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम् ॥ १५ ॥ तत्रावाह्य शिवं साम्बं भक्त्या पञ्चाक्षरेण ह। पत्रपुष्पादिभिर्वन्यैस्समानर्च शिशुः स वै ॥ १६ ॥ ध्यात्वा शिवं च तं साम्बं जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम्। समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमन्तपः ॥ १७ ॥ तपसा तस्य बालस्य ह्युपमन्योर्महात्मनः। चराचरं च भुवनं प्रदीपितमभून्मुने ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्विष्ण्वाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः। परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपोऽभवत्तदा ॥ १९ ॥ शिवा शचीस्वरूपाभूद्गणाः सर्वेऽभवन्सुराः। ऐरावतगजो नन्दी सर्वमेव च तन्मयम् ॥ २० ॥ ततः साम्बशिवः शक्रस्वरूपस्सगणो द्रुतम्। जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ २१ ॥ परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपधरो हरः। प्राह गम्भीरया वाचा बालकन्तं मुनीश्वर ॥ २२ ॥ सुरेश्वर उवाच।

होगा ॥ १२ ॥ हे मातः ! मेरे वचनको सुनो ! यदि महादेवजी कहीं हैं, तो देरमें वा शीघ्र ही मैं क्षीरसमुद्र पाऊँगा ॥ १३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–वह बालक प्रीतिपूर्वक इस प्रकार कह, मेरा कल्याण हो कह माताको प्रणाम कर और उसको छोड़ कर तप करनेके लिये चल दिया ॥ १४ ॥ वह बालक हिमाचल पर्वत पर पहुँचा और उसने आठ ईंटोंसे मंदिर बनाया और मट्टी का शिवलिंग बनाया, तदनन्तर उसने वायुभक्षण करते हुए साम्बशिवका तहाँ आवाहन किया और भक्तिपूर्वक पंचाक्षरमंत्रसे जंगलके पत्र पुष्प आदि से शिवका पूजन करने लगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ वह अम्बिकासहित शिवका ध्यान कर पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मंत्रका जप कर चिरकाल तक शिवपूजन कर परम तप करता रहा ॥ १७ ॥ हे मुने ! उस महात्मा बालक उपमन्युके तपसे चराचर भवन प्रदीपित हो उठा ॥ १८ ॥ इसी समय विष्णु आदिके प्रार्थना करने पर प्रभु शम्भु उपमन्युकी भक्तिको परीक्षा करनेके लिये इन्द्ररूप होगए ॥ १९ ॥ शिवाने इन्द्राणीका रूप धारण कर लिया और गण देवता बन गए, नन्दी ऐरावत हाथी बन गया, इस प्रकार सब इन्द्रमय होगया ॥२०॥ तदनन्तर अम्बिका और गणों सहित रुद्र इन्द्रका वेष धारण कर उपमन्यु पर अनुग्रह करनेके लिये उनके आश्रम पर पहुँचे ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! इन्द्ररूपधारी हर उपमन्युकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये गम्भीर वाणीमें उस बालकसे कहने लगे ॥ २२ ॥ सुरेश्वरने कहा, कि–हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे इस तपसे सन्तुष्ट होगया, अतः तुम वर माँगलो, मैं तुम्हारे

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत । ददामि चेप्सितान्कामान्सर्वान्नात्रास्ति संशयः ॥ २३ ॥ एवमुक्तः स वै तेन शक्ररूपेण शम्भुना । वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ २४ ॥ तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् । त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२५॥ मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा । ददामि सर्वं भद्रन्ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥२६॥ रुद्रेण निर्गुणेनालं किन्ते कार्यं भविष्यति । देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । तच्छ्रुत्वा स मुनेः पुत्रो जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम् । मन्यमानो धर्मविघ्नम्प्राह तं कर्तुमागतम् ॥ २८ ॥ उपमन्युरुवाच । त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै । प्रसंगाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं पिशाचता ॥ २९ ॥ त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकम्प्रकृतेः परम् ॥३०॥ सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः । नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद् वृणोम्यहम् ३१ हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम् । यमुपासन्ति हि तत्त्वज्ञा वरन्तस्माद् वृणोम्यहम् ॥३२॥ नास्ति शम्भोः परन्तत्त्वं सर्वकारणकारणम् । ब्रह्मविष्ण्वादि-

---

सब मनोरथ पूर्ण कर सकता हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ जब इन्द्ररूपधारी शंभुने उससे इस प्रकार कहा, तब वह हाथ जोड़कर कहने लगा, कि-मैं शिवमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूँ ॥ २४ ॥ इस बातको सुन, इन्द्रने कहा, कि-क्या तुम मुझे नहीं जानते मैं देवताओंका स्वामी और त्रिलोकीका राजा इन्द्र हूँ, सब देवता मुझे प्रणाम करते हैं ॥२५॥ हे विप्रर्षे ! आप मेरे भक्त बन सदा मेरा पूजन करें, मैं तुमको सब कुछ दूँगा और आपका कल्याण करूँगा। अतः तुम गुणहीन रुद्रको त्याग दो ॥ २६ ॥ गुणहीन रुद्रसे आपका क्या कार्य सिद्ध होसकता है, उसको तो देवताओंकी जातिसे निकाल दिया गया है, अतः वह पिशाच होगया है ॥ २७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इस बातको सुन पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए उस मुनिपुत्रने, यह धर्ममें विघ्न डालनेको आया है समझ कर उससे कहा, ॥२८॥ उपमन्युने कहा कि-शिवनिन्दामें परायण आपने ही प्रसंगवश देवदेवको निर्गुण और पिशाच बताया है ॥२९॥ परन्तु आप नहीं जानते, कि रुद्र सकल देवेश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मा विष्णु और महेशके जनक हैं तथा प्रकृतिसे पर हैं ॥३०॥ ब्रह्मवादी जिनको सत् असत् व्यक्त अव्यक्त नित्य एक और अनेक कहते हैं मैं उनसे ही वर माँगूँगा ॥ ३१ ॥ तत्त्ववेत्ता जिनको हेतुवादसे रहित, सांख्य और योगका प्रयोजन पूर्ण करने वाले और पर कहते हैं उनसे मैं वर माँगता हूँ ॥३२॥ शम्भुसे श्रेष्ठ और कोई तत्त्व नहीं है, वह सब कारणोंके भी कारण हैं, ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, मैं उन ही गुणोंसे श्रेष्ठ विभुसे वर

देवानां श्रेष्ठो गुणपराद्भिमोः ॥३३॥ नाहं वृणे वरं त्वत्तो न विष्णोर्ब्रह्मणोऽपि वा। नान्यस्मादमराद्वापि शंकरो वरदोऽस्तु मे ॥३४॥ बहुनात्र किमुक्तेन वच्मि तत्त्वं मतं स्वकम्। न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवादिकं स्फुटम् ॥३५॥ मद्भावं शृणु गोत्रारे मयाद्यानुमितन्त्विदम्। भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा निन्दाम्भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत्। स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥ ३७ ॥ आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरम्प्रति सुराधम। निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥३८॥ नन्दीश्वर उवाच। एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम्। क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः ॥ ३९ ॥ भस्मादाय तदाधारादघोरास्त्राभिमन्त्रितम्। विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा ॥ ४० ॥ स्मृत्वा स्वेष्टपदद्वन्द्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः। आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः ॥ ४१ ॥ एवं व्यवसिते विप्रे भगवाञ्छक्ररूपवान्। धारयामास सौम्येन धारणान्तस्य योगिनः ॥ ४२ ॥ तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नन्दीश्वरनियोगतः। जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभम् ॥ ४३ ॥ स्वरूपमेव भग-

---

माँगना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥ मैं न आपसे वर माँगना चाहता हूँ, न ब्रह्मा विष्णु तथा और किसी देवतासे वर माँगना चाहता हूँ, शंकर ही मुझे वर देंगे ॥ ३४ ॥ अधिक कहनेसे क्या मैं अपना तत्त्व मत कहता हूँ, कि--मैं पशुपतिके अतिरिक्त और किसीसे प्रार्थना नहीं करना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥ हे पर्वतशत्रो ! मेरी बातको सुनिये, मेरा तो यही मत है कि--मैने पूर्वजन्ममें कोई पाप किया होगा, इसीलिये मुझे शिवनिन्दा सुननी पड़ रही है ॥३६॥ शङ्करकी निन्दा सुन, निन्दा करने वालेका संहार कर जो अपने शरीरको शीघ्र ही त्याग देता है, वह शिवलोकको जाता है ॥ ३७ ॥ हे सुराधम ! मेरी जो क्षीरकी इच्छा थी, वह तो वैसी ही रह जावेगी, मैं तो अब तेरा शिवास्त्रसे संहार कर इस शरीरको त्याग देता हूँ ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार कहकर उपमन्यु स्वयं मरनेको तयार होगया और क्षीर की भी अभिलाषाको त्याग कर इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत होगया ॥३९॥ और धूनीमेंसे अघोरास्त्रसे अभिमंत्रित भस्म उठा इन्द्र पर फेंक कर वह मुनि गर्जने लगे ॥४०॥ फिर उपमन्यु अपने इष्टदेवके दोनों चरणोंका स्मरण कर आग्नेयी धारणा कर अपने शरीरको भस्म करनेके लिये उद्यत हो गए ॥ ४१ ॥विप्रके इस प्रकार उद्यत होने पर इन्द्ररूपधारी भगवान् शंकरने उस योगीकी धारणाको सौम्यरूप धारण कर निवारण किया ॥ ४२ ॥ उस प्रयुक्त हुए शंकरके प्रिय अघोर अस्त्रको ईश्वरकी इच्छासे नन्दीने बीच में ही ग्रहण कर लिया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर भगवान् शंकरने अपने बालचन्द्र-

बालस्थाय परमेश्वरः। दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥ ४४ ॥ क्षीरार्णवसहस्रं च दध्यादेरर्णवंस्तथा। भक्ष्यभोज्यार्णवंस्तस्मै दर्शयामास स प्रभुः ४५ एवं स ददृशे शम्भुर्देव्या सार्द्धं वृषोपरि। गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैश्च संवृतः ॥ ४६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह। विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश ॥ ४७ ॥ अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः। पपात दण्डवद् भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः। एह्येहीति समाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ॥४९॥ शिव उवाच। वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि त्वदाचरणतो ऽद्य वै। दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितोऽधुना ॥ ५० ॥ भक्ष्यभोगान्यथाकामं बान्धवैर्भुंक्ष्व सर्वदा। सुखी भव सदा दुःखनिर्मुक्तो भक्तिमान्मम ॥ ५१ ॥ उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती। मया पुत्री कृतो ह्यद्य कुमारत्वं सनातनम् ॥ ५२ ॥ दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाश्च सहस्रशः। भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनामर्णवाश्चाखिलास्तथा ॥ ५३ ॥ तुभ्यं दत्ता मया प्रीत्या त्वं गृहाण महामुने। अमरत्वं तथा दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥ ५४ ॥

शेखर स्वरूपको धारण कर विप्रको दिखाया ॥ ४४ ॥ फिर प्रभुने उसको क्षीर और दधिके हजारों समुद्र दिखाये तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंके भी समुद्र बताये ॥ ४५ ॥ उस समय शंभु देवीके साथ वृषभ पर बैठे हुए थे त्रिशूल आदि दिव्य आयुध धारण किये हुए थे तथा गणेश्वर उनको घेरे हुए थे, ऐसे रूपमें उपमन्युको शिव दीखे ॥ ४६ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभियें बजने लगीं और पुष्पवृष्टि होने लगी तथा ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि देवताओंसे दशों दिशाएँ भर गईं ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उपमन्यु आनन्दसमुद्रकी लहरोंमें उतरा कर भक्तिनम्र चित्तसे भूमिमें दण्डवत् प्रणाम करने लगा ॥ ४८ ॥ इसी समय भगवान् शंकर मुस्कुराये और उपमन्युके मस्तक को सूँघ कर और आ आ कह कर उनको वर देने लगे ॥ ४९ ॥ शिवने कहा, कि–हे वत्स उपमन्यो ! मैं आपके श्रेष्ठ आचरणसे सन्तुष्ट हूँ, हे विप्रर्षे ! मैंने आपको जानना चाहा था, तुम मेरे दृढ़ भक्त सिद्ध हुए ॥५०॥ आप बाँधवोंके साथ भक्ष्य भोग्य पदार्थोंको इच्छानुसार सदा भोगो, आप मेरे भक्त हैं अतः सदा दुःखरहित और सुखी रहें ॥ ५१ ॥ हे महाभाग उपमन्यो ! यह तुम्हारी माता पार्वती हैं, मैंने आपको आज पुत्र मान लिया आपका कुमारत्व सनातन रहेगा ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! दूध दही घृत और शहदके सहस्रों समुद्र तथा भक्ष्य भोज्य आदि वस्तुओंके समुद्र आपको प्रीतिपूर्वक देता हूँ तथा हे दक्ष ! आपको अमरत्व और शाश्वत गणाध्यक्षपद देता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ और जगदम्बिका

पिताहन्ते महादेवो माता ते जगदम्बिका। वराम्बरय सुप्रीत्या मनोभिलषिता-न्वरान् ॥ ५५ ॥ अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः। यशस्वी वरतेजस्वी दिव्यज्ञानी महाप्रभुः ॥ ५६ ॥ अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा स्मृत्वा तस्य तपो महत्। पुनर्ददौ वरान्दिव्यान्मुनये ह्युपमन्यवे ॥ ५७ ॥ व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः। ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वं पाटवं च निजं पदम् ॥ ५८ ॥ एवन्दत्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्। मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥ देवी च श्रुतवती प्रीत्या मूर्ध्नि देशे कराम्बुजम्। विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम् ॥ ६० ॥ क्षीराब्धिमपि साकारं क्षीरस्वादुकरोदधिः। उपास्थाय ददौ तस्मै पिंडे भूतमनश्वरम् ॥ ६१ ॥ योगैश्वर्यं सदा तुष्टब्रह्मविद्यामनश्वराम्। समृद्धिं परमां तस्मै ददौ सन्तुष्टमानसः ॥ ६२ ॥ सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा। तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ॥६३॥ ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः। ययाचे स वरम्प्रीत्या देवदेवान्महेश्वरात् ॥६४॥ उपमन्युरुवाच। प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर। स्वभक्तिन्देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम् ॥६५॥ श्रद्धान्देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा। स्वदास्यं

पार्वती तुम्हारी माता हैं अब तुम अपने मन चाहे श्रेष्ठ वर माँग लो ॥ ५५॥ तुम अजर अमर दुःखरहित हो तथा यशस्वी श्रेष्ठ तेजस्वी दिव्यज्ञानी और महाप्रभु होगे ॥ ५६ ॥ फिर शंभुने चित्तमें प्रसन्न होकर उसके महातपका स्मरण कर मुनि उपमन्युको दिव्य वर दिये ॥ ५७ ॥ पाशुपतव्रत, पाशुपत ज्ञान, व्रतयोग, वक्तृत्वशक्ति, चतुरता और अपना लोक उपमन्युको दिया ५८ महादेवने इस प्रकार उसको वर देकर अपने हाथोंसे उसको आलिंगन कर उसके मस्तकको सूँघा और पार्वती देवीसे यह आपका पुत्र है कह कर उन्हें अर्पण कर दिया ॥ ५९ ॥ देवीने इस बातको सुन, प्रीतिपूर्वक उसके मस्तक पर हाथ रक्खा और उसको अक्षय कुमार-पद दिया ॥ ६० ॥ और पिण्डरूप अविनाशी साकार क्षीरसमुद्रको उपस्थित कर उपमन्युके अर्पण कर दिया ॥ ६१ ॥ सदा सन्तुष्ट रखने वाले योगैश्वर्य अविनाशी ब्रह्मविद्या और परम समृद्धि शिवने मनमें प्रसन्न होकर उपमन्युको दी ॥ ६२ ॥ वह शिवसे और शिवासे दिव्य वर और कुमारत्व पाकर प्रसन्न हुए ॥ ६३ ॥ तदनन्तर उपमन्युने चित्तमें प्रसन्न होकर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और देवदेव महेश्वरसे प्रीतिपूर्वक वर माँगने लगा ॥ ६४ ॥ उपमन्युने कहा, कि-हे देवदेवेश परमेश्वर! प्रसन्न हूजिये और प्रसन्न होकर मुझे अपनी अनन्य दिव्य भक्ति दीजिये ॥ ६५ ॥ हे महादेव! मेरे संबंधियोंकी मुझमें श्रद्धा बनी रहे, मैं आपका सदा दास रहूँ आपसे परम स्नेह पाऊँ और सदा आपके

परमं स्नेहं स्वसान्निध्यं च सर्वदा ॥ ६६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा । तुष्टाव स महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः ॥ ६७ ॥ एवमुक्तश्शिवस्तेन सर्वेषां शृण्वतां प्रभुः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं सकलेश्वरः ॥ ६८ ॥ शिव उवाच । वत्सोपमन्यो धन्यस्त्वं मम भक्तो विशेषतः । सर्वन्दत्तम्मया ते हि यद्वृत्तम्भवतानघ ॥ ६९ ॥ अजरश्चामरश्च त्वं सर्वदा दुःखवर्जितः । सर्वपूज्यो निर्विकारी भक्तानाम्प्रवरो भव ॥ ७० ॥ अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ॥ ७१ ॥ सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव । तिष्ठ वत्स यथा कामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि ॥ ७२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । एवमुक्त्वा स भगवांस्तस्मै दत्त्वा वरान्वरान् । साम्बश्च सगणस्सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ७३ उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य शम्भोर्वरान्वरान् । जगाम जननीस्थानं मात्रे सर्वमवर्णयत् ॥७४॥ तच्छ्रुत्वा तस्य जननी महाहर्षमवाप सा । सर्वपूज्योऽभवत्सोऽपि सुखं प्रापाधिकं सदा ॥ ७५ ॥ इत्थन्ते वर्णितस्तात शिवस्य परमात्मनः । सुरेश्वरावतारो हि सर्वदा सुखदः सताम् ॥ ७६ ॥ इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ७७ ॥ य एतच्छृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । इह

समीप रहूँ ॥६६॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—द्विजोत्तम उपमन्यु हर्षगद्गद वाणी में इस प्रकार कह प्रसन्नचित्तसे महादेवकी स्तुति करने लगा ॥ ६७ ॥ जब उपमन्युने इस प्रकार कहा तब सबके ईश्वर शिव चित्तमें प्रसन्न होकर उपमन्युसे कहने लगे ॥ ६८ ॥ शिवने कहा, कि—हे वत्स उपमन्यो ! तू धन्य है और मेरा परमभक्त है, हे निष्पाप ! तूने जो जो माँगा वह सब मैं तुझे देता हूँ ॥ ६९ ॥ तू अजर अमर, सदा दुःखसे रहित, सर्वपूज्य, निर्विकार और भक्तोंमें श्रेष्ठ हो ॥ ७० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे बांधव कुल और गोत्र सदा बने रहेंगे और मुझमें सदा तुम्हें भक्ति बनी रहेगी ॥ ७१ ॥ हे वत्स ! मैं सदा तुम्हारे आश्रमके समीप रहूँगा, हे वत्स ! तुम इच्छानुसार निवास करो, तुम्हें कुछ उत्कण्ठा नहीं रहेगी ॥७२॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—भगवान् शंकर इस प्रकार उपमन्युको श्रेष्ठ वर देकर अम्बिका और गणोंके साथ तत्काल अन्तर्धान होगए ॥ ७३ ॥ उपमन्यु शंभुसे श्रेष्ठ वर पा चित्तमें प्रसन्न होते हुए माताके पास पहुँचे और मातासे सब वृत्तान्त कहा ॥७४॥ यह समाचार सुन उपमन्युकी माताको महाहर्ष हुआ और उपमन्यु भी सर्वपूज्य हो सदा सुखी रहने लगे ॥७५॥ हे तात ! इस प्रकार आपसे सदा सज्जनोंको सुख देने वाला परमात्मा शिवका सुरेश्वरावतार कह दिया ॥ ७६ ॥ यह सज्जनोंको निष्पाप रखने वाला आख्यान सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला यश आयु स्वर्ग

सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतार-चरित्रवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

(८३) नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः । अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम् ॥ १ ॥ पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुर्मखे । स्वपित्राऽनादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ॥२॥ सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः । शङ्करम्पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥ ३ ॥ तत्तपः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः । तपः स्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ४ ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् । तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥ ५ ॥ तत्रागत्य शिवन्नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत् । तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥ ६ ॥ गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरः स्वयम् । परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः प्रभुः ॥ ७ ॥ सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः । ब्रह्मचार्य्यस्वरूपोऽभूत्तदाद्भुततरः प्रभुः ॥ ८ ॥ अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा । प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ॥ ९ ॥ धृत्वैवं

भोग तथा मोक्ष देने वाला है ॥७७॥ जो सावधानतापूर्वक भक्तिभावसे इसको सुनता है अथवा सुनाता है वह इस लोकमें सब सुखोंको भोगता हुआ अन्त में शिवके पास पहुँचता है ॥ ७८ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि–हे सनत्कुमार! आप प्रीतिपूर्वक प्रभु परमात्मा शिव के जटिल नामक पावन अवतारको सुनें ॥ १ ॥ प्राचीन कालमें दक्षकी कन्या सतीने अपने पिताके यज्ञमें पिताके अनादर करने पर देहको त्याग दिया था वह फिर मेनामें हिमाचलसे प्रकट हुईं थीं ॥ २ ॥ वह शिवा शंकरको पतिरूपमें पानेकी इच्छासे अपनी दो सखियोंको साथ ले गहन वनमें जाकर निर्मल तप करने लगीं ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारकी लीलायें करनेमें चतुर शंकरने उनके तपकी परीक्षा लेनेके लिये सप्तर्षियोंको तपःस्थलमें भेजा था ॥ ४ ॥ वे मुनि वहाँ पहुँच आदरपूर्वक उनकी परीक्षा लेना चाहने लगे, परन्तु इस काममें वे सफल नहीं हुए ॥ ५ ॥ तब वे शिवके समीप पहुँचे और उनसे सब समाचार कह उनकी आज्ञा पा आदरपूर्वक स्वर्गलोकको चले गए ॥ ६ ॥ जब मुनि अपने स्थानको चले गए, तब रक्षक प्रभु शिवने अपने आप ही शिवाके चरित्रकी परीक्षा लेनेका विचार किया ॥ ७ ॥ उन प्रभु ईश्वरने परमप्रसन्न तपस्वी और इच्छाओंको शान्त रखने वाला ब्रह्मचारीका परम अद्भुतरूप बनाया ॥८॥ वह विप्रदेहधारी अपने तेजसे दमक बहुत ही बुड्ढे बन गए उन्होंने मनमें प्रसन्न होकर दण्ड और छाता धारण कर लिया अतः उनका स्वरूप

जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् । अतिप्रीतियुतः शम्भुश्शंकरो भक्तवत्सलः १०
तत्रापश्यत्स्थितान्देवीं सखीभिः परिवारिताम् । वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥ ११ ॥ शम्भुर्निरीक्ष्य तान्देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् । उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्सुखी भक्तवत्सलः ॥ १२ ॥ आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम् । अंगेषु लोमशं शान्तं दण्डचर्मसमन्वितम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मचर्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् । अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ॥ १४ ॥ ततस्सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा । कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् । १५ । ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः । इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः । प्रत्युवाच द्रुतम्प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ॥ १७ ॥ ब्रह्मचार्युवाच । अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजस्स वै । तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः १८ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी स शंकरो भक्तवत्सलः । तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन् रूपमात्मनः ॥ १९ ॥ ब्रह्मचार्युवाच । किम्ब्रवीमि महादेवी कथनीयन्न विद्यते । महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ॥ २० ॥ नवे वयसि

परम उज्ज्वल लगता था ॥ ९ ॥ भक्तवत्सल शंभु शंकर इस प्रकार जटिलका वेश धारण कर परम-प्रेमके साथ गिरिजावनकी ओर चले ॥ १० ॥ वहाँ उन्होंने देखा, कि-देवी शुद्ध हो, वेदी पर सखियोंके साथ बैठी हुई हैं अतः चन्द्रमाकी कल्याणकारिणी कलासी लगती हैं ॥ ११ ॥ भक्तवत्सल शम्भु ब्रह्मचारीके स्वरूपको धारण कर उस देवीको देख प्रेमपूर्वक आगे बढ़े ॥१२॥ शिवाने उन परम अद्भुत तेजस्वी, अंगों पर बाल वाले, शान्त, दण्डचर्मधारी कमण्डलुधारी ब्रह्मचारी वृद्ध जटिल ब्राह्मणकी परमप्रीतिपूर्वक पूजाके सकल द्रव्योंसे पूजा की ॥१३॥१४॥ पार्वती देवी इस प्रकार पूजा करनेके अनन्तर उन ब्रह्मचारीसे आदरपूर्वक कुशल बूझने लगी ॥ १५ ॥ आप ब्रह्मचारीके स्वरूपमें कहाँसे पधार रहे हैं, हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपसे यह वन दमक रहा है, आप मेरे प्रश्नका उत्तर दें ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-जब पार्वतीने इस प्रकार उन ब्रह्मचारी द्विजसे बूझा, तब वह शिवाके भावकी परीक्षा लेनेके लिये प्रीतिपूर्वक उत्तर देने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्मचारीने कहा, कि-मैं इच्छाचारी ब्रह्मचारी तपस्वी ब्राह्मण हूँ, दूसरोंको सुख देता हूँ और उनका उपकार करता हूँ ॥१८॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-वह भक्तवत्सल ब्रह्मचारी शंकर इस प्रकार कह अपने रूपको छिपा गिरिजाके समीप बैठ गए ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारीने कहा, कि-हे देवि! मैं क्या कहूँ, कहनेकी बात नहीं है, बड़ा अनर्थ-

सद्भोगसाधने सुखकारणे । महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि ॥ २१ ॥ का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने। तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥२२॥ नन्दीश्वर उवाच । इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी । उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम् ॥ २३ ॥ पार्वत्युवाच । शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने । जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ॥ २४ ॥ पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शंकरकामिनी । योगेन त्यक्तदेहाहं तातेन पतिनिन्दिना ॥ २५ ॥ अत्र जन्मनि संप्राप्य सुपुण्येन शिवो द्विज । मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ॥२६॥ प्रयाते शंकरे तापाद् व्रीडिताहं पितुर्गृहात् । आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता ॥ २७ ॥ मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः । सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शंकरो मया ॥ २८ ॥ जानामि दुर्लभं वस्तु कथम्प्राप्यं मया भवेत् । तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना ॥ २९ ॥ हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुब्रह्मणावप्यहम् । पतिम्पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ३० नन्दीश्वर उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम् । मुने स जटिलो

कारी, बेढंगा चरित्र दीख रहा है ॥२०॥ इस बड़े बड़े सामानोंसे भोग भोगने योग्य सुखदायक नवीन अवस्थामें आप व्यर्थ ही तप कर रही हैं ॥ २१ ॥ तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो और किस लिये इस निर्जन वनमें चित्तको वशमें रखने वाले मुनियोंसे होसकने वाले तपको कर रही हो ॥ २२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—उसके इस वचनको सुन परमेश्वरी हँसीं और ब्रह्मचारीसे प्रीतिपूर्वक उत्तम वचन कहने लगीं ॥ २३ ॥ पार्वतीने कहा, कि—हे मुने ! हे ब्रह्मचारिन् विप्र ! आप मेरे सकल वृत्तान्तको सुनें, आज कल मेरा जन्म भारतवर्षके हिमालयके घरमें हुआ है ॥ २४ ॥ पहिले मेरा जन्म दक्षके घरमें हुआ था, नाम सती था, मैं शंकरकी स्त्री थी, मेरे पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी अतः मैंने योगसे अपना शरीर छोड़ दिया था ॥ २५ ॥ हे द्विज ! इस जन्ममें शिव पुण्यवश मुझे प्राप्त हुए थे, परन्तु वह कामदेवको भस्म कर मुझे त्याग कर चले गए ॥ २६ ॥ शंकरके चले जानेसे मुझे बड़ा सन्ताप हुआ और मैं लज्जित हो गुरुके वाक्यके अनुसार पिताके घरसे यहाँ तप करनेको चली आई हूँ ॥ २७ ॥ मैंने मन वाणी और कर्मसे शंकरको पतिरूपमें वरण कर लिया है, यह बात सत्य है, मैं असत्य नहीं कहती हूँ ॥ २८ ॥ मैं जानती हूँ, वह दुर्लभ वस्तु मुझे किस प्रकार प्राप्त होगी यथापि मनकी उत्सुकतावश मैं अब तप कर रही हूँ २९ मैं ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि देवताओंको भी छोड़ पिनाकपाणिको पतिरूपसे पाना चाहती हूँ, यह बात मैं सत्य कह रही हूँ ॥ ३० ॥

रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ जटिल उवाच । हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया । रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलन्तपः ॥ ३२ ॥ जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणु त्वम्प्रवदामि ते । वृषध्वजस्स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ३३ एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः । तस्मात्त्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि ॥ ३४ ॥ सर्वं विरुद्धरूपादि तव देवि हरस्य च । मह्यं न रोचते ह्येत-द्यदीच्छसि तथा कुरु ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा च पुना रुद्रो ब्रह्म-चारिस्वरूपवान् । निनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासहम् । प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ॥ एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद् धन्यो भविष्यति । परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो हृश्य-तेऽधुना ॥ ३८ ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः । शिवनिन्दा कृता मूढ त्वया मन्युरभून्मम ॥ ३९ ॥ शिवं त्वं च न जानासि शिवात्त्वं हि बहिर्मुखः । त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुनाऽभवम् ॥ ४० शिवनिन्दां करोतीह तत्त्व-मज्ञाय यः पुमान् । आजन्मसंचितं पुण्यं तस्य भस्मीभवत्युत ॥ ४१ ॥ शिववि-

---

नन्दीश्वरने कहा, कि–पार्वतीके इस निश्चित वचनको सुनकर हे मुने ! वह जटिल रुद्र हँस कर कहने लगे ॥ ३१ ॥ जटिलने कहा, कि–अरी हिमाचल-कुमारी देवीजी ! तुमने कैसी बुद्धि स्वीकार करली है, कि–जो तुम देवताओं को त्याग रुद्रके लिये महातप कर रही हो ॥ ३२ ॥ मैं उन रुद्रको जानता हूँ, उनकी बात मैं आपको सुनाता हूँ, आप सुनिये, उन वृषभध्वज रुद्रका चित्त विक्षिप्त है, वह जटाएँ धारण करते हैं ।३३। वह तो वैराग्यवान् हैं, सदा अकेले घूमते रहते हैं, अतः तुम्हें उन रुद्रमें मन न लगाना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे देवि ! आपका और हरका रूप आदि सब ही विरुद्ध है अतः आपका और उनका संबंध मुझे अच्छा नहीं लगता अतः अब जैसी आपकी इच्छा हो तैसा करो ३५ नन्दीश्वरने कहा, कि–ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करने वाले रुद्रने इस प्रकार कह कर उसकी परीक्षा करनेके लिये अपनी फिर अनेक प्रकारसे निन्दा की ३६ पार्वती देवी ब्राह्मणके इस असह्य वचनको सुन परम कुपित हुईं और उन शिवनिन्दकको उत्तर देने लगीं ॥ ३७ ॥ मैं समझती थी, कि–कोई वधपात्र होगा, परन्तु सब समझने पर आप अवध्य प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ तू ब्रह्म-चारीके स्वरूपमें कोई धूर्त आगया है, हे मूढ़!तूने शिवनिन्दा की अतः मुझे तुझ पर क्रोध आरहा है ॥ ३९ ॥ तू शिवसे बहिर्मुख है, अतः तू उनको नहीं समझ सकता, मैंने तेरा सत्कार किया अतः मुझे पश्चात्ताप होरहा है ॥४०॥ जो पुरुष तत्त्वको न जान शिवनिन्दा करता है, उसका जन्म भरका एकत्रित

द्वेषिणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥४२॥ रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शंकरम् । निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ।४३। यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान् । ममाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सतांप्रियः ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वास्ते शिवा देवी शिवतत्त्वं जगाद सा । यत्र ब्रह्मतपा रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ॥ ४५ ॥ तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः । पुनर्वचनमादातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥४६॥ प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयान्द्रुतम् । शिवासक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥ ४७ ॥ गिरिजोवाच । वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः । पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति ॥ ४८ ॥ न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि । यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ॥४९॥ शिवनिन्दाकरो वध्यस्सर्वथा शिवकिंकरैः । ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद्द्रुतम् ॥ ५० ॥ अयन्दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि । ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥ ५१ ॥ स्थलमेतद्द्रुतं हित्वा यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम् । यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते

किया हुआ पुण्य नष्ट होजाता है ॥ ४१ ॥ शिवद्वेषीका स्पर्श होजाने पर प्रायश्चित्त करे ॥ ४२ ॥ अरे दुष्ट ! तूने कहा, कि–मैं शंकरको जानता हूँ, परन्तु यह निश्चित बात है, कि—तू परम प्रभु शंकरके संबंधमें कुछ नहीं जानता ॥ ४३ ॥ मायावश अनेक रूपोंको धारण करने वाले सज्जनोंके प्रिय निर्विकार रुद्र मेरा अभीष्ट पूर्ण करें ! ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–शिवा देवी इस प्रकार कह शिवतत्व वर्णन करने लगीं, कि–ब्रह्मतपा रुद्र निर्गुण और अव्यय हैं ॥ ४५ ॥ देवीके इस वचनको सुन वह ब्रह्मचारी द्विज जब फिर कुछ बोलना चाहते थे, कि–जिनको मनोवृत्ति शिवमें आसक्त है और जो शिवनिन्दासे पराङ्मुख हैं वह गिरिजा अपनी सखी विजयासे शीघ्र ही कहने लगीं ॥ ४७ ॥ गिरिजाने कहा, कि–हे सखि ! इस द्विजाधमको रोको यह फिर कुछ कहकर शिवनिन्दा करना चाहता है ।४८। केवल शिवकी निन्दा करने वालेको ही पाप नहीं लगता, किंतु जो उनकी निन्दाको सुनता है, उसको भी पाप लगता है ।४९। शिवके किंकरोंको चाहिये, कि शिवकी निन्दा करने वालेको मार ही डालें, और यदि ब्राह्मण हो तो तहाँसे हट अवश्य जावें यह दुष्ट फिर शिवकी निन्दा ही करेगा और यह ब्राह्मण होनेसे अवध्य है अतः त्यागने योग्य है, दर्शन करने योग्य नहीं है ।५१। इस स्थानको छोड़कर शीघ्र ही अन्यत्र चलो चलो, तो फिर इस दुष्टकी बातें न सुननी पड़ेंगी ॥ ५२ ॥

मुने। असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ॥५३॥ कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा। दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ॥५४॥ शिव उवाच। कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वन्त्याज्या मया शिवे। मया परीक्षितासि त्वं दृढभक्तासि मेऽनघे ॥ ५५ ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदीयकम्। तवोपकण्ठमागत्य प्रावोचं विविधं वचः ॥५६॥ प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः। चिरोप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥ ५७ ॥ अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः प्रेमनिर्भरे। कृतोऽस्मि तव सौन्दर्यान्क्षिणः एको युगायते ॥५८॥ त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी। एहि प्रिये त्वया साकं द्रुतं यामि स्वकं गिरिम् ॥५९॥ इत्युक्तवति देवेशे शिवातिमुदमाप सा। तपोदुःखन्तु यत्सर्वं तज्जहौ द्रुतमेव हि ॥ ६० ॥ ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्। प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जयाधोमुखी शिवा ॥ ६१ ॥ शिवोवाच। यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि। पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तश्शिवया शिवः ॥ ६२ ॥ गृहीत्वा विधिवत्पाणिं कैलासं स तया ययौ। पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं

नन्दीश्वरने कहा, कि- हे मुने! उमा इस प्रकार कहकर अन्यत्र जानेके लिये चरण उठाती थीं, कि-शिवने परदा बदल दिया ॥ ५३ ॥ शिवा जिस दिव्य स्वरूपका ध्यान कर रहीं थीं, उसी दिव्य स्वरूपको शिवाके लिये दिखाकर शिव अधोमुखी शिवासे कहने लगे, शिवने कहा, कि -हे शिवे! तुम मुझे त्याग कर कहाँ जाती हो, मैं तुमको छोड़ नहीं सकता, मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, हे निष्पापे! तुम मेरी दृढ भक्त निकलीं ॥ ५५ ॥ मैं तुम्हारा भाव जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचारीका स्वरूप बनाकर आया था और मैंने तुमसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं थीं ॥ ५६ ॥ हे शिवे! मैं तुम्हारी दृढ़ भक्तिसे परम प्रसन्न हूँ, तुम इच्छानुसार वर माँग लो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तुम्हें न दे सकूँ ५७ हे प्रेममें निभर! तुम्हारे तपके कारण आजसे मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम्हारे सुन्दर भावके कारण मुझे एक क्षण भी एक युग सा लग रहा है ५८ तुम लज्जाको त्याग दो, क्योंकि—तुम तो मेरी सनातनकालकी पत्नी हो, आओ प्रिये! मैं तुम्हारे साथ शीघ्र ही अपने पर्वतको चलूँ ॥ ५९ ॥ देवेशके इस प्रकार कहने पर शिवाको परम प्रसन्नता हुई और तप करनेमें जो कष्ट हुआ था, वह शीघ्र ही भूल गई ॥ ६० ॥ शिवके उस दिव्य रूपको देख शिवा प्रसन्न होगई और लज्जासे नीचेको मुख कर प्रभुसे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं ६१ शिवाने कहा, कि-हे देवेश! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझ पर कृपा करते हैं, तो हे देवेश! आप मेरे पति बनिये, जब शिवाने शिवसे इस

चकार सा ॥ ६३ ॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः । शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः ॥ ६४ ॥ इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया । य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥ ६५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इति चतुरशीत्यवताराः (८४) नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः । अवतारं शृणु विभोस्सुनर्तकनटाह्वयम् ॥१॥ यदा हि कालिका देवी पार्वती हिमवत्सुता । तेपे तपस्सुविमलं वनं गत्वा शिवाप्तये ॥ २ ॥ तदा शिवः प्रसन्नोऽभूत्तस्यास्सुतपसो मुने । तद्वृत्तसुपरीक्षार्थं वरं दातुम्मुदा ययौ ॥ ३ ॥ स्वरूपन्दर्शयामास तस्यै सुप्रीतमानसः । वरम्ब्रूहीति चोवाच तां शिवां शंकरो मुने ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् । सुजहर्ष शिवातीव प्राह तं सुप्रणम्य सा ॥५॥ पार्वत्युवाच । यदि प्रसन्नो देवेश मह्यं देयो वरो यदि । पतिर्भव ममेशानः कृपां कुरु ममोपरि ॥ ६ ॥ पितुर्गृहे मया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया । गन्तव्यम्भवता नाथ मत्पितुः पार्श्वतः प्रभो ॥७॥ याचस्व मान्ततो भिक्षुः ख्यापयंश्च यशः शुभम् । पितुर्मे सफलं सर्वं कुरु प्रीत्या गृहाश्रमम् ॥ ८ ॥ ततो यथोक्त-

---

प्रकार कहा ॥ ६२ ॥ तब वह विधिके अनुसार पाणिग्रहण कर उनको साथ ले कैलासको चल दिये गिरजा उनको पतिरूपसे पा देवताओंका कार्य करने लगीं ॥६३ ॥ हे तात ! इस प्रकार मैंने आपसे ब्रह्मचारीके स्वरूपका शिवाके भावकी परीक्षा लेने वाला शिवका अवतार कहा ॥ ६४ ॥ यह पापोंसे दूर रखने वाला श्रेष्ठ आख्यान मैंने आपसे कहा, जो प्रीतिपूर्वक इसको सुनता है, वह श्रेष्ठ गति पाकर सुखी होता है ॥ ६५ ॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! अब आप परमात्मा विभु शिवके सुनर्तक नट नाम वाले अवतारको सुनो ॥ १ ॥ जब हिमाचलकी पुत्री पार्वती कालिकादेवी शिवकी प्राप्तिके लिये वनमें जाकर निर्मल तप करती थीं २ हे मुने ! तब शिव उनके तपसे प्रसन्न होकर उनके आचरणकी परीक्षा कर उनको वर देनेके लिये प्रेमपूर्वक गए थे ॥३॥ हे मुने ! शंकरने मनमें प्रसन्न होकर उन्हें अपना रूप दिखाया था और कहा था, कि-वर माँगो ॥ ४ ॥ शिवा शम्भुके वचन सुन और उनके उत्तम रूपको देख प्रसन्न हो प्रणाम करके कहने लगीं ॥ ५ ॥ पार्वतीने कहा, कि-हे देवेश ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो हे ईशान ! मुझ पर कृपा कर मेरे पति बनिये ॥ ६ ॥ हे नाथ ! मैं आपकी अनुमतिसे पिताके घर जाती हूँ, हे प्रभो ! आप मेरे पिताके पास आवें ॥७॥ और भिक्षुकरूपसे मेरी याचना

विधिना कर्तुमर्हसि भो प्रभो । विवाहं त्वं महेशान देवानां कार्यसिद्धये ॥ ६ ॥ कामं मे पूरय विभो निर्विकारो भवान्सदा । भक्तवत्सलनामा हि तव भक्तास्म्यहं सदा ॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्स तया शम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः । तथास्त्विति वचः प्रोच्यान्तर्हितस्स्वगिरिं ययौ ॥ ११ ॥ पार्वत्यपि ततः प्रीत्या स्वसखीभ्यां वयोन्विता । जगाम स्वपितुर्गेहं रूपं कृत्वा तु सार्थकम् ॥ १२ ॥ पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनया स हिमाचलः । परिवारयुतो द्रष्टुं स्वसुतां तां ययौ मुदा दृष्ट्वा तां सुप्रसन्नास्यामानयामासतुर्गृहम् । कारयामासतुः प्रीत्या महानन्दौ महोत्सवम् ॥ १४ ॥ धनन्ददौ द्विजादिभ्यो मेना गिरिवरस्तथा । मङ्गलं कारयामास सवेदध्वनिमादरात् ॥ १५ ॥ ततः स्वकन्यया सार्द्धमुवास प्रांगणे मुदा । मेना च हिमवांच्छैलः स्नातुं गंगां जगाम सः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सुलीलो भक्तवत्सलः । सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ ॥ १७ ॥ शृङ्गं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुन्तथा । पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः ॥१८॥ ततस्तु नटरूपोऽसौ मेनकाप्रांगणे मुदा । चक्रे स नृत्यं विविधं गानञ्चातिमनोहरम् १६

कर शुभ यश फैलाइये, इस प्रकार मेरे पिताके गृहस्थाश्रमको सफल करिये ८ फिर हे प्रभो ! हे महेशान ! फिर आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये विधिविधानसे विवाह करें ॥ ९ ॥ हे विभो ! आप तो सदा निर्विकार हैं, परन्तु आपका नाम भक्तवत्सल है और मैं आपकी भक्त हूँ, अतः हे प्रभो ! आप मेरी इच्छा पूर्ण करिये ॥ १० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि -उमाके इस प्रकार कहने पर वह भक्तवत्सल महेश शंभु तथास्तु कह अन्तर्धान हो अपने पर्वतको चले गए ॥ ११ ॥ तब अवस्थामें आई हुई पार्वती भी प्रीतिपूर्वक अपनी अपनी सखियोंको साथ ले अपने तपस्वीके वेशके सार्थक कर पिताके घरको चलदीं ॥ १२ ॥ जब हिमाचलने मेनासे पार्वतीके आनेकी बात सुनी तो वह प्रेमवश परिवारको साथ ले अपनी पुत्रीको देखनेके लिये चले ॥ १३ ॥ पुत्रीके प्रसन्नमुखको देख वे उसको घर लाये और प्रीतिपूर्वक आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥ मेना और गिरिवरने ब्राह्मण आदिको आदरपूर्वक धन देकर मांगलिक वेदध्वनि कराई ॥ १५ ॥ तदनन्तर मेना और हिमवान् अपनी कन्याके साथ आँगनमें बैठे फिर हिमवान् गंगास्नान करनेको चल दिये ॥१६॥ इसी समय सुन्दरलीला करने वाले भक्तवत्सल शम्भु सुनर्तक नट बनकर मेनकाके पास पहुँचे ॥ १७ ॥ वह बायें हाथमें नरसिंगा, दाहिनेमें डमरू, पीठ पर झोली पहिरे हुए थे तथा उन नृत्य गानमें चतुर शिवने लाल वस्त्र पहिर लिये थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर नटरूपधारी शिवने मेनकाके आँगनमें आनन्द-

शृङ्गञ्च डमरुन्तत्र वादयामास सुध्वनिम्। मनोनिं विविधाम्प्रीत्या स चकार मनोहराम् ॥ २० ॥ तन्द्रष्टुं नागरास्सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा। आजग्मुस्सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा सुगीतं तन्दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम्। सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने ॥ २२ ॥ ततो मेनाशु रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च। तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतमानसा ॥ २३ ॥ तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां चेते शिवां च ताम्। पुनस्सुनृत्यं गानं च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः ॥ २४ ॥ मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिसुविस्मिता। भिक्षुकम्भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरिराड्ययौ। ददर्श पुरतो भिक्षुं प्रांगणस्थं नराकृतिम् ॥२६॥ श्रुत्वा मेनामुखाद् वृत्तन्तत्सर्वं सुचुकोप सः। आज्ञां च कारानुचरान्बहिः कर्तुं च भिक्षुकम् ॥ २७ ॥ महाग्निमिव दुस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम्। न शशाक बहिः कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम ॥२८॥ ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः। दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥ २९ ॥ शैलो ददर्श तन्तत्र विष्णुरूपधरन्द्रुतम्। ततो ब्रह्मस्वरूपं च सूर्यरूपं ततः क्षणात् ॥ ३० ॥ ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम्। पार्वतीसहितं

पूर्वक अनेक प्रकारका गान किया और मनोहर नाच नाचा ॥ १९ ॥ फिर उन्होंने सुन्दर ध्वनि वाले सींग और डौंरूको बजाया इस प्रकार प्रीतिपूर्वक मनोहर खेल करे ॥ २० ॥ उसको देखनेके लिये आबालवृद्धवनिता आदि नागरिक सहसा आगए ॥ २१ ॥ हे मुने! उस मनोहर गायन वाले नृत्यको देखकर सहसा सब मोहमें पड़ गए, मेना भी मोहमें पड़ गई ॥ २२ ॥ तदनन्तर मेना उनके खेलसे चित्तमें प्रसन्न होकर सुवर्णपात्रमें रत्न भर कर देने को चलीं ॥ २३ ॥ परन्तु नटने उनको स्वीकार नहीं किया और भिक्षामें शिवाको माँगा और कौतुकवश फिर नाचने गानेको उद्यत होगए ॥ २४ ॥ मेना उनके वचनको सुन विस्मित और कुपित हुईं और भिक्षुकको धमका कर बाहर निकालना चाहने लगीं ॥ २५ ॥ इसी समय हिमवान् भी गंगासे लौट आये और उन्होंने आँगनमें मनुष्याकार भिक्षुकको देखा ॥ २६ ॥ मेना के मुखसे सब वृत्तान्त सुन कर हिमाचलको भी क्रोध आगया और उन्होंने अपने किंकरोंको भिक्षुकको बाहर निकाल देनेकी आज्ञा दी ॥२७॥ परन्तु हे मुनिसत्तम! जैसे धधकती हुई तेजस्वी महाग्निको कोई कठिनतासे भी नहीं छू सकता, इसी प्रकार कोई भी उन्हें बाहर न निकाल सका ॥२८॥ हे तात! तदनन्तर उन अनेक प्रकारकी लीला करनेमें चतुर भिक्षुकने पर्वतको अपना अनन्त प्रभाव दिखाना आरंभ किया ॥२९॥ हिमाचलने देखा, कि—उन्होंने क्षणभरमें विष्णुका रूप धर लिया है और दूसरे क्षण ब्रह्माका और तीसरे

रम्यं विहसन्तं सुतेजसम् ॥ ३१ ॥ एवं स बहुरूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः । सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंप्लुतः ॥ ३२ ॥ अथासौ भिक्षुवर्य्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत् । भिक्षां ययाचे दुर्गान्तान्नान्यज्जग्राह किञ्चन ॥ ३३ ॥ ततश्चान्तर्दधे भिक्षुस्वरूपः परमेश्वरः । स्वालयं स जगामाशु दुर्गावाक्यप्रणोदितः ॥ ३४ ॥ तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरपि । आवां शिवो वञ्चयित्वा गतवान्स्वालयं विभुः ॥ ३५ ॥ अस्मै देया स्वकन्येयं पार्वती सुतपस्विनी । एवं विचार्य्य च तयोः शिवभक्तिरभूत्परा ॥ ३६ ॥ अतो रुद्रो महोतिश्च कृत्वा भक्तमुदावहन् । विवाहं कृतवान्प्रीत्या पार्वत्या स विधानतः ॥ ३७ ॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात सुनर्तकनटाह्वयः । शिवावतारो हि मया शिवावाक्यप्रपूरकः ॥३८॥ इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतम्मया । य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात्

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः । अवतारं शृणु विभोस्साधुवेषद्विजाह्वयम् ॥ १ ॥ मेनाहिमालयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा महोत्तमाम् ।

क्षण सूर्यका रूप धारण कर लिया है ॥३०॥ हे तात ! तदनन्तर हिमवान्ने उन तेजस्वीको परम अद्भुत स्वरूपमें पार्वतीके साथ हँसते हुए देखा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उनके बहुतसे रूपोंको देख हिमालय विस्मित हो परमानन्दमें मग्न होगए ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उन रक्षक भिक्षुवर्यने मेना और हिमाचलसे भिक्षा में दुर्गाकी याचना की और कोई भिक्षा स्वीकार नहीं की ॥३३॥ तदनन्तर पार्वतीके वाक्यसे तहाँ आये हुए भिक्षुरूपधारी परमेश्वर अन्तर्धान होकर अपने धामको चले गए ॥ ३४ ॥ तब मेना और शैलेशको ज्ञान हुआ, कि-विभु शिव हमको ठग कर अपने धामको चले गए ॥ ३५ ॥ हमारी कन्या जो यह तपस्विनी पार्वती है यह इनको ही देनी चाहिये, यह विचारनेके अनन्तर उनमें शिवकी श्रेष्ठ भक्तिका उदय हुआ ॥३६॥ तदनन्तर परमरक्षक रुद्रने भक्तोंको आनन्द देनेके लिये पार्वतीके साथ प्रेमपूर्वक विधिविधानसे विवाह किया ॥ ३७ ॥ हे तात ! इस प्रकार शिवाके वाक्यको पूरा करने वाला सुनर्तक नट नामक अवतार आपसे कहा ॥ ३८ ॥ यह पापोंसे बचाने वाला श्रेष्ठ आख्यान आपसे कहा, जो इसको प्रीतिपूर्वक सुनता है वह सुख और सद्-गति पाता है ॥ ३९ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि-हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! विभु परमात्मा शिवके साधुवेषी द्विज नामक अवतारको सुनो ॥ १ ॥ मेना और हिमालयकी शिव में परमोत्तम भक्ति होगई है, यह समाचार जानकर सब देवता चिन्तित हुए

चिन्तामापुस्सुरास्सर्वे मन्त्रयामासुरादरात् ॥ २ ॥ एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां दास्यति शम्भवे । ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः सम्प्राप्स्यति शिवस्य वै ॥ ३ ॥ अनन्तरत्नाधारोऽसौ चेत्प्रयास्यति मोक्षताम् । रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् ॥ ४ ॥ अस्थिरत्वम्परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः । कन्यां शूलभृते दत्वा शिवलोकं गमिष्यति ॥ ५ ॥ महादेवस्य सारूप्यं प्राप्य शम्भोरनुग्रहात् । तत्र भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६ ॥ इत्यालोच्य सुरास्सर्वे जग्मुर्गुरुगृहं मुने । चक्रुर्निवेदनं गत्वा गुरवे स्वार्थसाधकाः ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः । गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्यसिद्धये । कृत्वा निंदां महेशस्य गिरिभक्तिं निवारय ॥८॥ स्वश्रद्धया सुतां दत्वा शिवाय स गिरिर्गुरो । लभेत मुक्तिमत्रैव धरण्यां स हि तिष्ठतु ॥ ९ ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रोवाच च विचार्य तान् ॥ १० ॥ गुरुरुवाच । कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः । सम्पादयेत्स्वाभिमतमहं तत्कर्तुमक्षमः ॥ ११ ॥ अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः । तस्मै वृत्तं कथयत स्वं स वः कार्यं करिष्यति ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । तच्छ्रुत्वा ते समालोक्य जग्मुर्विधिसभां सुराः । सर्वं निवेदयामासुस्तद्वृत्तं पुरतो विधेः १३

और आदरपूर्वक विचार करने लगे ॥ २ ॥ यदि हिमालय अनन्य भक्तिके साथ शिवको कन्यादान देगा तो अवश्य ही मुक्त होजावेगा ॥ ३ ॥ अनन्त रत्नोंका आधार यह पर्वत यदि मुक्त होजावेगा, तो इस पृथ्वीका रत्नगर्भा नाम व्यर्थ होजावेगा ॥ ४ ॥ यह अस्थिरताको त्याग दिव्य रूप धारणकर कन्याको त्रिशूलधारीके अर्पण करनेसे शिवलोकको चला जावेगा ॥ ५ ॥ शम्भुके अनुग्रहसे महादेवके सारूप्यको पा तहाँ अनेक भोगोंको भोग कर मुक्त होजावेगा ॥६॥ सब देवता इस प्रकार विचार कर हे मुने ! बृहस्पतिजी के घर पहुँचे और बृहस्पतिजीसे अपना स्वार्थ साधनेके लिये उन्होंने सब वृत्तान्त कहा ॥७॥ हे गुरो ! आप हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमालय के घर जाइये और महेशकी निन्दा कर पर्वतकी भक्ति डिगाइये ॥ ८ ॥ हे गुरो ! यदि वह श्रद्धापूर्वक अपनी पुत्री शिवके अर्पण कर देगा, तो मुक्त हो जावेगा अतः ऐसा करिये, कि–वह पृथ्वी पर बना रहे ॥ ९ ॥ देवताओंकी इस बातको सुन बृहस्पति विचार कर कहने लगे ॥ १० ॥ बृहस्पतिने कहा, कि–हे देवताओं ! आपमेंसे ही कोई पर्वतके पास जा अपना कार्य सिद्ध कर लेय, मैं तो ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ ॥ ११ ॥ अथवा हे देवताओं ! आप इन्द्रको लेकर ब्रह्मलोकमें जावें और उनसे अपना विचार प्रकट करें, तो वे आपका कार्य सिद्ध कर देंगे ॥ १२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–इस बातको सुन वे देवता विचार करके ब्रह्माजीकी सभाको चले और ब्रह्माजीके सामने

अथोचत्तान्विधिः श्रुत्वा तद्वचः सुविचिन्त्य वै। नाहं करिष्ये तन्निन्दां दुःखदां कष्टदां सदा ॥ १४ ॥ सुरा गच्छत कैलासं सन्तोषयत शङ्करम्। प्रस्थापयत तं देवं हिमालयगृहं प्रति ॥ १५ ॥ स गच्छेद्यथ शैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै। परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच। ततस्ते प्रययुः शीघ्रं कैलासं निखिलास्सुराः। सुप्रणम्य शिवं भक्त्या तद्वृत्तं निखिला जगुः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः। देवान्सुवापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः ॥ १८ ॥ ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः। गन्तुमैच्छच्छैलमूलं मायेशो न विकारवान् ॥ १९ ॥ दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत् ॥२०॥ जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः। हिमाचलं जगामाशु बन्धुवर्गैस्समन्वितम् ॥ २१ ॥ तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः। ननाम दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं विधिपूर्वकम् ॥२२॥ ततः पप्रच्छ शैलेशस्तं द्विजं को भवानिति। उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रस्स योग्यादिमहादरात् ॥ २३ ॥ साधुद्विज उवाच। साधुद्विजाः

सब समाचार कहा ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी उनकी बातको सुन बड़े विचारमें पड़ गए, फिर उन्होंने कहा, कि–शिवकी निन्दा सुख हरने वाली है, अतः मैं उसको नहीं करूँगा ॥ १४ ॥ हे देवताओं! तुम कैलास पर जाकर शंकरको ही संतुष्ट करो और उन शंकरदेवको ही हिमालयके घरकी ओर भेजो १५ यदि शिव तहाँ चले जावें तो अपनी निन्दा करें, क्योंकि–दूसरेकी निन्दा विनाश करती है और अपनी निन्दा यश देती है ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–तदनन्तर वे सब देवता शीघ्र ही कैलासको चल दिये और शिव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्होंने झटपट सब गाथा सुना दी ॥ १७ ॥ देवताओंकी इस बातको सुन महेश्वरने यह बात स्वीकार कर ली और हँस कर देवताओंको ढाढ़स दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर जो मायाके स्वामी हैं और विकारवान् नहीं हैं ऐसे भक्तवत्सल भगवान् शम्भु हिमाचलके पास जानेका विचार करने लगे ॥ १९ ॥ वह दण्ड छत्र और दिव्य वस्त्र पहिर उज्ज्वल तिलक लगा, हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालिग्रामको धारण कर साधु द्विजका रूप धारण कर भक्तिपूर्वक हरिका नाम लेते हुए बंधु बान्धवों के साथ बैठे हुए हिमाचलके पास चले ॥ २० ॥ २१ ॥ उनको देखकर हिमालय और उनके गण खड़े होगए, भूमिमें विधिपूर्वक साष्टांग प्रणाम किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर शैलेशने बूझा आप कौन हैं, तब विप्रेन्द्र योगीने आदरपूर्वक पर्वतको उत्तर दिया ॥ २३ ॥ साधु–द्विजने कहा, कि–हे शैल! मैं परमार्थदर्शी द्विज नामक वैष्णव हूँ, परोपकारी तथा गुरुकी कृपासे सर्व-

शैलाहं वैष्णवः परमार्थद् । परोपकारी सर्वज्ञः सर्वगामी गुरोर्बलात् ॥ २४ ॥ मया ज्ञातं स्वविज्ञानात्स्वस्थाने शैलसत्तम । तच्छृणु प्रीतितो वच्मि हित्वा दम्भन्त्वांतिकम् ॥ २५ ॥ शंकराय सुतान्दातुन्त्वमिच्छसि निजोद्भवाम् । इमाम्पद्मासमां रम्यामज्ञानकुलशीलिने ॥ २६ ॥ इयं मतिस्ते शैलेन्द्र न युक्ता मङ्गलप्रदा । निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव २७ पश्य शैलाधिपस्त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः। बान्धवान्स्वान्प्रयत्नेन पृच्छ मेनां च स्वप्रियाम् २८ सर्वान्संपृच्छ यत्नेन मेनादीन्पार्वतीं विना । रोगिणे नौषधं शैल कुपथ्यं रोचते सदा २९ न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्म्मणि । महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति ॥ ३० ॥ निराश्रयस्सदासङ्गो विरूपो निर्गुणोऽव्ययः । स्मशानवासी विकटो व्यालग्राही दिगम्बरः ॥ ३१ ॥ विभूतिभूषणो व्यालवरावेष्टितमस्तकः । सर्वाश्रमपरिभ्रष्टस्त्वविज्ञातगतिस्सदा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच । इत्याद्युक्त्वा वचस्तथ्यं शिवनिन्दापरं स हि । जगाम स्वालयं शीघ्रन्नानालीलाकरः शिवः ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवचनमभूताञ्च तनू तयोः । विपरीतानर्थपरे किं करिष्यावहे भुवम् ॥ ३४॥ ततो रुद्रो

गामी और सर्वज्ञ हूँ ॥ २४ ॥ हे शैलसत्तम ! मैंने अपने विज्ञानसे अपने स्थान पर जो जाना, उसको मैं दंभ छोड़कर प्रीतिपूर्वक आपसे कहता हूँ २५ आप अपनी लक्ष्मीकी समान रमणीय कन्याको जिनका कुल और शील अविदित है, उन शंकरको देना चाहते हैं ॥ २६ ॥ हे शैलेन्द्र ! आपकी यह बुद्धि मंगल करने वाली और उचित नहीं है, हे नारायणके कुलमें उत्पन्न हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पर्वत ! आप इस बातको सोच समझ लें ॥ २७ ॥ आप अपने शैलेशपनकी ओर देखिये, शिवके तो एक भी बान्धव नहीं है आप अपने बांधवोंसे और अपनी प्रिया मेनासे भी सम्मति लीजिये ॥ २८ ॥ आप पार्वतीको छोड़ मेना आदि सबसे बूझिये, क्योंकि–हे शैल ! रोगीको औषधि अच्छी नहीं लगती, उसको तो सदा कुपथ्य ही अच्छा लगता है २९ पार्वतीके दानकर्ममें पात्र आपके योग्य नहीं है, इन बातोंको सुनते ही बड़े आदमियोंका मुख मुस्कुरा उठेगा ॥ ३० ॥ शंकर तो निराश्रय हैं, सदा संगरहित हैं, रूपरहित निर्गुण तथा अव्यय हैं श्मशानमें रहते हैं, सर्पोंको लिये रहते हैं, दिगम्बर हैं अतः विकट हैं ॥३१॥ विभूति उनका भूषण है, श्रेष्ठ नाग उनके मस्तक पर विराजमान हैं, सकल आश्रमोंसे भ्रष्ट हैं उनकी गति विदित नहीं होती ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–अनेक प्रकारकी लीला करने वाले शिव निन्दा भरे ऐसे तथ्यवचन कहकर शीघ्र ही अपने धामको चले गए ॥३३॥ ब्राह्मणके इस वचनको सुन कर उन दोनोंको सूक्ष्म विचार हुआ, कि–यह तो विपरीत और अनर्थ करने वाली बात है हम क्या करें ३४

महोतिं च कृत्वा भक्तमुदावहाम। विवाहयित्वा गिरिजां देवकार्यं चकार सः ३५ इति प्रोक्तस्तु ते तात साधुवेषो द्विजाह्वः। शिवावतारो हि मया देवकार्यकरः प्रभो ॥ ३६ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यमायुष्यमुत्तमम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षडशीत्यवताराः (८६) नन्दीश्वर उवाच। सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः। अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ॥ १ ॥ बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने। भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ॥ २ ॥ धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिस्सर्वशास्त्रवित्। बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ॥३॥ धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः। वरिष्ठञ्चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥ ४ ॥ कौरवाणां स आचार्य्य आसीत्स्वबलतो द्विज। महारथिषु विख्यातः षट्सु कौरवमध्यतः ॥ ५ ॥ साहाय्यार्थं कौरवाणां स तेपे विपुलन्तपः। शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थे द्रोणाचार्य्यो द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो भक्तवत्सलः। आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वा स द्विजो द्रोण-

---

रुद्रने भक्तोंको आनन्द देने वाली यह लीला रचकर गिरिजाके साथ विवाह करके देवकार्य किया था ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार यह आपसे देवताओंका कार्य साधने वाला साधुवेषी द्विज नामक शिवका अवतार कहा ॥ ३६ ॥ यह निष्पाप रखने वाला श्रेष्ठ आख्यान स्वर्ग और आयु देता है जो इसको पढ़ता है या सुनता है, वह सुखी होकर सद्गति पाता है ॥ ३७ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि—हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! अब आप विभु परमात्मा शिवके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ अवतारको सुनें ॥ १ ॥ हे मुने ! महाबुद्धिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे आत्मवान् अयोनिज द्रोण भरद्वाजसे उत्पन्न हुए थे ॥२॥ विप्रर्षि द्रोण धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ शूर सकल शास्त्रोंको जानने वाले, परमकीर्तिमान् महातेजस्वी और सकल अस्त्रोंको जानने वाले थे ॥३॥ विद्वान् पुरुष द्रोणाचार्यको अपने कुलकी वृद्धि करने वाला, धनुर्वेद तथा वेद में चतुर, श्रेष्ठ और विचित्र कर्म करने वाला समझते थे ॥ ४ ॥ हे द्विज ! वह अपने बलसे कौरवोंके आचार्य होगए थे, छः महारथी कौरवोंमें प्रसिद्ध थे ॥ ५ ॥ द्विजोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायता करनेके लिये पुत्रके उद्देश्यसे विपुल तप किया था ॥ ६ ॥ हे मुनिसत्तम ! तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शंकर द्रोणके सामने प्रकट हुए ॥ ७ ॥ शंकरको देख द्रोणाचार्यका

स्तुष्टावाशु प्रणम्य तम् । महाप्रसन्नहृदयो नतकस्सुकृताञ्जलिः ॥८॥ तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शंकरः प्रभुः । वरम्ब्रूहीति चोवाच द्रोणन्तं भक्तवत्सलः ॥९॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः । स्वांशजन्तनयन्देहि सर्वाजेयम्महाबलम् ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति । अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सुखकृन्मुने ॥ ११ ॥ द्रोणोऽपगच्छत्स्वन्धाम महाहृष्टो गतभ्रमः । स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा ॥१२॥ अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तकः प्रभुः । स्वांशेन तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ॥ १३ ॥ अश्वत्थामेति विख्यातस्स बभूव क्षितौ मुने । प्रवीरः कञ्जपत्राक्षश्शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ १४ ॥ यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च । सहायकृद्बभूवाथ कौरवाणां महाबलः ॥१५ यमाश्रित्य महावीरं कौरवास्तु महाबलाः । भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ॥१६॥ यद्भयात्पाण्डवास्सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः । आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ॥ १७ ॥ कृष्णोपदेशतश्शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् । प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ॥१८॥ अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने । तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ॥ १९ ॥ विनाश्य पाण्डव-

---

हृदय परम-प्रसन्न हुआ तब उन द्विजने हाथ जोड़ मस्तक झुका शीघ्रतासे शिवको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ उनकी स्तुति और तपसे प्रसन्न होकर भक्त-वत्सल प्रभु शंकरने कहा वर मांगो ॥ ९ ॥ शम्भुके इस वचनको सुन द्रोणने परम नम्रतासे कहा, कि–अपने अंशसे एक सबसे अजेय महाबली पुत्र दीजिये ॥ १० ॥ हे मुने ! द्रोणके वचन सुन शंभुने कहा तथास्तु हे तात ! फिर वह कौतुक करके सुख देने वाले शंकर अन्तर्धान होगए ॥ ११ ॥ द्रोणाचार्य भी परम प्रसन्न तथा भ्रमरहित हो अपने घर पहुँचे और अपनी पत्नी से आनन्दपूर्वक सब समाचार कहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर सर्वान्तक प्रभु रुद्र अवसर आने पर अपने अंशसे द्रोणाचार्यके महाबली पुत्र बन कर प्रकट हुए ॥ १३ ॥ हे मुने ! वह वीर पृथ्वी पर अश्वत्थामा नामसे प्रकट हुए, उनके नेत्र कमलपत्रकी समान थे और वह शत्रुपक्षका क्षय करने वाले थे १४ वह पिताकी आज्ञा पा भारतके रणमें कौरवोंके महाबली सहायक हुए थे १५ उन महावीर अश्वत्थामाका आश्रय लेकर महाबली भीष्म आदि कौरव देवताओंसे भी अजेय होगए थे ॥ १६ ॥ उनके भयसे महावीर और चतुर पाण्डव कौरवोंको जीतनेमें असमर्थ रहे ॥ १७ ॥ अर्जुनने कृष्णके उपदेशसे शम्भुका अतिदारुण तप कर शंभुके वरसे अस्त्र पाकर कौरवोंको जीता था ॥१८॥ परन्तु हे मुने ! महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए महावीर अश्वत्थामाने शिवभक्तिके प्रभावसे अपना प्रताप प्रकट किया था ॥ १९ ॥ कृष्ण आदि

सुतान्शिक्षितानपि ह्यजतः। कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः॥ २०॥ पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम्। रथेनाच्युतवंतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत्॥ २१ अस्त्रम्ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि। ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम्॥ २२॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोऽर्जुनः क्लेशसंयुतः। उवाच कृष्णं विकलान्तो नष्टतेजा महाभयः॥ २३॥ अर्जुन उवाच। किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम्। सर्वतोमुखमायाति तेजश्चेदं सुदुस्सहम्॥२४॥ नन्दीश्वर उवाच। श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णश्शैवसत्तमः। दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरात्॥ २५॥ कृष्ण उवाच। वेत्थेदन्द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं महोल्बणम्। न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्षणम्॥२६॥ शिवं स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुम्भक्तरक्षकम्। येन दत्तं हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकरम्परम्॥ २७॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धन्तस्य च्छैवास्त्रतेजसा। इत्युक्त्वा च स्वयं कृष्णश्शिवन्दध्यौ तदर्थकः॥ २८॥ तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थस्स्मृत्वा शिवं हृदि। स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रन्ततो मुने॥ २९॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघञ्चाप्रतिक्रियम्।

महावीर भी अश्वत्थामाके बलको नहीं रोक सकते थे, अश्वत्थामाने पाण्डवों के सुशिक्षित पुत्रोंका भी संहार कर डाला था॥ २०॥ जब अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ रथमें बैठ अश्वत्थामा पर चढ़ा आरहा था, तब उनको देखकर अश्वत्थामा भाग उठा॥ २१॥ तदनन्तर अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर ब्रह्मशिर नाम वाला अस्त्र छोड़ा, तब सब दिशाओंमें प्रचण्ड तेज फैल गया २२ उस समय अर्जुन क्लेश पाने लगा उसका तेज नष्ट होगया उस समय महाभयमें पड़ा हुआ अर्जुन अपने प्राणोंको आपत्तिमें पड़ा देख कृष्णसे कहने लगा॥२३॥ अर्जुनने कहा, कि-हे कृष्ण! यह दुःसह तेज चारों ओरसे बढ़ता हुआ चला आरहा है, हे कृष्ण! यह क्या है और कहाँसे आरहा है, यह कुछ समझमें नहीं आता॥२४। नन्दीश्वरने कहा, कि-अर्जुनकी इस बातको सुन शिवभक्त श्रीकृष्णने उमा और शंकरका ध्यान धर आदरपूर्वक कहा॥२५॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-मालूम होता है, द्रोणपुत्रने अतितीखे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है, इस अस्त्रको दबाने वाला और कोई अस्त्र नहीं है, प्रत्यवकर्षण (उपसंहार) ही इसका उपाय है॥२६॥ अब तुम भक्तरक्षक प्रभु शंभु शिव का शीघ्र ही स्मरण करो, उन्होंने तुमको सकल कार्योंको सिद्ध करने वाला श्रेष्ठ अस्त्र दिया था॥ २७॥ इस अस्त्रके उठते हुए तेजको आप शिवके दिये अस्त्रके तेजसे खींच लें, श्रीकृष्ण स्वयं इस प्रकार कहकर इस कार्यके लिये शिवका स्मरण करने लगे॥ २८॥ हे मुने! श्रीकृष्णके इस वचनको सुन कर पार्थने हृदयमें शिवका स्मरण कर शिवको प्रणाम किया और शीघ्रता-

शैवास्त्रतेजसा सद्यस्समशाम्यन्महामुने ॥ ३० ॥ नस्था मा ह्येतदाश्चर्यं सर्वचित्रमये शिवे । यस्स्वशक्त्याखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ३१ ॥ अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः । शैवान्न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ३२ अथ द्रोणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपांडवम् । उत्तरागर्भगं बालं नाशितुम्मन आदधे ॥३३॥ ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् । उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ॥३४॥ ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा । कृष्णन्तुष्टाव लक्ष्मीशन्दह्य माना तदस्त्रतः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा नुत्वा प्रणम्य च । अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥३६॥ स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा । सुदर्शनेन तस्याश्च व्यध द्रक्षां शिवाज्ञया ॥ ३७ ॥ स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेण ह । कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ॥ ३८ ॥ ततस्स कृष्णः प्रीतात्मा पांडवान्सकलानपि । अपातयत्तदंघ्रयोस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ॥ ३९ ॥

पूर्वक अस्त्रका प्रयोग किया ॥२९॥ हे महामुने ! यद्यपि वह ब्रह्मशिर अस्त्र अमोघ था, उसकी क्रियाको कोई नहीं रोक सकता था, तथापि शिव दिये अस्त्रके तेजसे वह तत्काल शान्त पड़ गया ॥ ३० ॥ इस विषयमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि—शिव विचित्रताओंसे भरे हुए हैं, वह जन्मरहित शिव अपनी शक्तिसे सकल विश्वका उत्पादन पालन और संहार किया करते हैं ३१ हे मुने ! शिवके अंशसे उत्पन्न हुए अश्वत्थामाने इस वृत्तान्तको जानकर शिव की इच्छासे सन्तोष धारण कर लिया, और शिवके दिये अस्त्रसे कुछ व्यथा नहीं पाई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर द्रोणपुत्रने सारे विश्वको पाण्डवहीन करनेके लिये उत्तराके गर्भमें विद्यमान बालकको नष्ट करनेका मनमें विचार किया ३३ उस महाप्रभावशालीने अन्य अस्त्रोंसे जिसको नहीं हटाया जासकता ऐसे ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भको लक्ष्य करके छोड़ा ॥ ३४ ॥ तब उस अस्त्रके तेजसे कुम्हलाती हुई अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा मनमें विकल हो लक्ष्मीपति कृष्णकी स्तुति करने लगी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर कृष्णने हृदयमें शिवका ध्यान किया उनकी स्तुतिको और उनको प्रणाम किया, तब उन्होंने जाना कि—द्रोणकुमारने पृथ्वीसे पाण्डवोंका वंश नष्ट करनेके लिये अस्त्र छोड़ा है ॥३६॥ तदनन्तर अपनी रक्षाके लिये इन्द्रके दिये कान्तिसम्पन्न सुदर्शन चक्रसे शिव की आज्ञानुसार उसकी रक्षाकी ॥ ३७ ॥ शिवभक्त कृष्णने शंकरकी आज्ञासे यह चरित किया है, यह समझ कर अश्वत्थामा धीरे धीरे शान्त होगए ३८ तब शिवभक्त कृष्णने भी चित्तमें प्रसन्न होकर अश्वत्थामाको प्रसन्न करने के लिये सकल पाण्डवोंको उनके चरणोंमें झुका दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर

अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च । नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामानुगृह्य च ॥ ४० ॥ इत्थं महेश्वरस्तात चक्रे लीलाम्परांप्रभुः । अवतीर्य्य क्षितौ द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ॥ ४१ ॥ शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः । त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ॥ ४२ ॥ अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितश्शंकरप्रभोः । सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ ४३ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः । स सिद्धिम्प्राप्नुयादिष्टामन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामश्वत्थामशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

नन्दीश्वर उवाच । शृणु प्राज्ञ किराताख्यमवतारम्पिनाकिनः । मूकं च हतवान्प्रीतो योऽर्जुनाय वरन्ददौ ॥ १ ॥ सुयोधनजितास्ते वै पाण्डवाः प्रवराश्च ते । द्रौपद्या च तया साध्व्या द्वैताख्यं वनमाययुः ॥ २ ॥ तत्रैव सूर्य्यदत्तां वै स्थालीं चाश्रित्य ते तदा । कालं च वाहयामासुस्सुखेन किल पाण्डवाः ॥ ३ ॥ छलार्थं प्रेरितस्तेन दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । सुयोधनेन विप्रेन्द्र पाण्डवान्तिकमादरात् ॥४॥ छात्रैः स्वैर्वायुतैस्सार्द्धं ययाचे तत्र तान्मुदा । भोज्यं चिरेप्सितं वै स तेभ्यश्चैव

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने चित्तमें प्रसन्न होकर कृष्ण पर और पाण्डवों पर अनुग्रह किया और उनको अनेक वर दिये ॥ ४० ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार महेश्वरने द्रोणपुत्ररूपसे पृथ्वी पर अवतार लेकर श्रेष्ठ लीलायें की थीं ॥४१॥ त्रिलोकीको सुख देने वाले शिवके अवतार महाबली और पराक्रमी अश्वत्थामा आजकल भी गंगातट पर रहते हैं ॥ ४२ ॥ आपसे सब सिद्धियोंको देने वाला और भक्तोंको अभीष्ट फल देने वाला प्रभु शंकरका अश्वत्थामावतार कह दिया ॥४३॥ जो इसको सावधानता और भक्तिके साथ सुनता है वा कीर्तन करता है, वह इष्टसिद्धिको पाता है और अन्तमें शिवपुरको जाता है ॥ ४४ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ छ छ छ छ

नन्दीश्वरने कहा, कि–हे प्राज्ञ ! अब आप पिनाक धनुषधारी शिवके किरात नामक अवतारको सुनें, इसमें शिवने प्रसन्न होकर अर्जुनको वर दिया है और मूक दैत्यका वध किया है ॥ १ ॥ जब श्रेष्ठ पाण्डवोंको सुयोधनने जीत लिया, तब वे साध्वी द्रौपदीके साथ द्वैतवनमें आगए थे ॥ २ ॥ तहाँ वे पाण्डव सूर्यनारायणकी दी हुई स्थाली (बटलोई) को पाकर सुखपूर्वक अपना समय विताते थे ॥ ३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! सुयोधनने मुनिपुंगव दुर्वासाको छल करनेके लिये पाण्डवोंके पास आदरपूर्वक भेजा था ॥४॥ उसने याचना की थी, कि–आप अपने दश हजार शिष्योंको लेकर तहाँ जावें और पाण्डवोंसे

समागतः ॥ ५ ॥ स्वीकृत्य पाण्डवैस्तैस्तैः स्नानार्थं प्रेषितास्तदा । दुर्वासः प्रमुखाश्चैव मुनयश्च तपस्विनः ॥ ६ ॥ अथ ते पाण्डवाः सर्वे अन्नाभावान्मुनीश्वर । दुःखिताश्च तदा प्राणांस्त्यक्तुं चित्ते समादधुः ॥ ७ ॥ द्रौपद्या च स्मृतः कृष्ण आगतस्तत्क्षणादपि । शाकं च भक्षयित्वा तु तेषां तृप्तिं समादधत् ॥ ८ ॥ दुर्वासाश्च तदा शिष्यांस्तृप्तान्ज्ञात्वा ययौ पुनः । पाण्डवाः कृच्छ्रनिर्मुक्ताः कृष्णस्य कृपया तदा ॥९॥ अथ ते पाण्डवाः कृष्णं पप्रच्छुः किम्भविष्यति । बलवाञ्छत्रुरस्मन्नः किं कार्य्यमस्मद्वद प्रभो ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति पृष्टस्तदा तैस्तु श्रीकृष्णः पाण्डवैर्मुने । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजौ पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । श्रूयतां पांडवाः श्रेष्ठाः श्रुत्वा कर्तव्यमेव हि । मद्वृत्तान्तं विशेषेण शिवसेवासमन्वितम् ॥ १२ ॥ द्वारकां च मया गत्वा शत्रूणां विजिगीषया । विचार्य्य चोपदेशांश्च उपमन्योर्महात्मनः ॥ १३ ॥ मया ह्याराधितः शम्भुः प्रसन्नः परमेश्वरः । बटुके पर्वतश्रेष्ठे सप्तमासं सुसेवितः ॥ १४ ॥ इष्टान्कामानदान्मह्यं विश्वेशश्च स्वयं स्थितः । तत्प्रभावान्मया सर्वसामर्थ्यं लब्धमुत्तमम् ॥ १५ ॥

इच्छानुसार भोजन माँगें ॥ ५ ॥ तदनन्तर पाण्डवोंने दुर्वासा आदि तपस्वी मुनियोंको स्वीकार करके स्नान करनेके लिये भेज दिया था ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! तदनन्तर वे सब पाण्डव अन्नके अभावसे दुःखित होकर चित्तमें प्राणत्यागका विचार करने लगे ॥ ७ ॥ परन्तु द्रौपदीके स्मरण करने पर कृष्ण तत्काल वहाँ पहुँचे और उन्होंने शाक भक्षण कर उन दुर्वासा और उनके शिष्योंको तृप्त कर दिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर दुर्वासा अपने शिष्योंको तृप्त हुए जानकर वहाँसे भाग खड़े हुए थे, इस प्रकार कृष्णकी कृपासे पाण्डव संकटसे बचे थे ॥ ९ ॥ तदनन्तर पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे बूझा, कि-हे प्रभो ! हमारा शत्रु बलवान् होरहा है, हमें अब क्या करना चाहिये, हमारी क्या गति होगी १० नन्दीश्वरने कहा, कि-हे मुने ! जब पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे इसप्रकार बूझा, तब वह शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर पाण्डवोंसे कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे पाण्डवो ! तुम शिवकी सेवासे भरे मेरे वृत्तान्तको आदरपूर्वक सुनो और सुनकर विशेषरूपसे ऐसा ही करो ॥ १२ ॥ मैं शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे द्वारकामें पहुँचा, तहाँ मैंने महात्मा उपमन्युके उपदेशोंका विचार किया ॥ १३ ॥ और सात मास तक पर्वतश्रेष्ठ बटुक पर्वत पर शंभुकी भली प्रकार आराधनाकी, तब वह परमेश्वर प्रसन्न हुए थे ॥ १४ ॥ और उन विश्वेशने स्वयं मुझे अभिलषित वर दिये थे, उनके प्रभावसे मैंने सर्वसामर्थ्य और उत्तम वस्तुएँ पाई हैं ॥ १५ ॥ उन भोग तथा मोक्षरूप फल देने

इदानीं सेव्यते देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। यूयं सेवत तं शम्भुमपि सर्वसुखावहम्॥ १६॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वान्तर्दधे कृष्ण आश्वास्याथ च पांडवान्। द्वारकामगमच्छीघ्रं स्मरञ्छिवपदाम्बुजम्॥ १७॥ पाण्डवा अथ भिल्लं च प्रेषयामासुरोजसा। गुणानां च परीक्षार्थं तस्य दुर्योधनस्य च॥ १८॥ सोऽपि सर्वं च तत्रत्यन्दुर्योधनगुणोदयम्। समीचनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून्प्रति॥ १९॥ तदुक्तन्ते निशम्यैवं दुःखम्प्रापुर्मुनीश्वर। परस्परं समूचुस्ते पाण्डवा अतिदुःखिताः॥ २०॥ किंकर्तव्यं क्व गन्तव्यमस्माभिरधुना युधि। समर्था अपि वै सर्वे सत्यपाशेन यन्त्रिताः॥ २१॥ नन्दीश्वर उवाच। एतस्मिन्समये व्यासो भस्मभूषितमस्तकः। रुद्राक्षाभरणश्चायाज्जटाजूटविभूषितः॥२२॥ पञ्चाक्षरं जपन्मन्त्रं शिवप्रेमसमाकुलः। तेजसां च स्वयं राशिस्साक्षाद्धर्म इवापरः॥ २३॥ तन्दृष्ट्वा ते तदा प्रीता उत्थाय पुरतः स्थिताः। दत्वासनन्तदा तस्मै कुशाजिनसुशोभितम्॥ २४॥ तत्रोपविष्टं तं व्यासं पूजयन्ति स्म हर्षिताः। स्तुतिं च विविधां कृत्वा धन्याः स्म इति वादिनः॥ २५॥ तपश्चैव सुसन्तप्तं दानानि

वाले देवको मैं अब भी सेवा करता हूँ आप भी उन सब सुख देने वाले शंभु की सेवा करो॥ १६॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—श्रीकृष्ण इस प्रकार कह कर और पाण्डवोंको आश्वासन देकर वहाँसे अन्तर्धान हो शिवके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए शीघ्र ही द्वारकाको चल दिये॥ १७॥ तदनन्तर पाण्डवों ने दुर्योधनके गुणोंकी परीक्षा करनेके लिये एक भीलको भेजा॥ १८॥ वह भी दुर्योधनके सकल गुणोंको अच्छे समझ फिर अपने स्वामियोंके पास आ पहुँचा॥ १९॥ हे मुनीश्वर! इस बातको सुन पाण्डव दुःखित हुए फिर परम दुःखित हुए पाण्डव आपसमें कहने लगे॥ २०॥ हमारा अब कर्तव्य क्या है? हम अब कहाँ जावें, युद्धमें समर्थ होने पर भी हम सत्यके पाशमें बँधे हुए हैं॥२१॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इसी समय वहाँ व्यासजी आगए, उनका मस्तक भस्मसे विभूषित था, रुद्राक्षके आभूषण पहिर रहे थे, तथा वे जटाजूटसे विभूषित थे॥ २२॥ शिवप्रेममें मग्न व्यासजी पञ्चाक्षर (नमः शिवाय मंत्रका) जप कर रहे थे, वह तेजोराशि व्यासजी साक्षात् धर्म ही लगते थे॥ २३॥ उनको देखकर पाण्डव प्रसन्न हो उनके सामने उठकर खड़े हो गए और उनको कुश तथा मृगचर्मसे सुशोभित आसन दिया॥ २४॥ और व्यासजीके बैठने पर हर्षपूर्वक उनकी पूजाकी तथा उनकी अनेक प्रकारकी स्तुति कर कहने लगे, कि—हम धन्य हैं॥ २५॥ हे प्रभो! आपके दर्शनसे हम तृप्त होगए, हमारा तपा हुआ तप और अनेक प्रकारके दान आपका दर्शन

विविधानि च । तत्सर्वं सफलं जातं कृतास्ते दर्शनात्प्रभो ॥ २६ ॥ दुःखं च दूरतो जातन्दर्शनात्ते पितामह । दुष्टैश्चैव महादुःखं दत्तं नः क्रूरकर्मभिः ॥२७॥ श्रीमतान्दर्शने जाते दुःखं चैव गमिष्यति । कदाचिन्न गतं तत्र निश्चयः ऽयं विचारितः ॥ महतामाश्रये प्राप्ते समर्थे सर्वकर्मणि । यदि दुःखं न गच्छेत्तु दैवमेवात्र कारणम् ॥ २८ ॥ निश्चयेनैव गच्छेत्तु दारिद्र्यं दुःखकारणम् । महतां च स्वभावोऽयं कल्पवृक्षसमो मतः ॥ ३० ॥ तद्गुणानेव गणयन्महतो वस्तुमात्रतः । आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो ॥ ३१ ॥ लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्या विचारणा । उत्तमानां स्वभावोऽयं यद्दीनगति पालनम् ॥ ३२ ॥ रंकस्य लक्षणं लोके ह्यतिश्रेयस्करं मतम् । पुरोऽस्य परयत्नो वै सुजनानां च सेवनम् ॥ ३३॥ अतः परं च भाग्यं वै दोषश्चैव न दीयताम् । एतस्मात्कारणात्स्वामिंस्त्वयि दृष्टो शुभन्नदा ॥ ३४ ॥ त्वदागमनमात्रेण सन्तुष्टानि मनांसि नः । दिशोपदेशं येनाशु दुःखं नष्टम्भवेच्च नः ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवानां महामुनिः । प्रसन्नमानसो भूत्वा व्यासश्चैवाब्रवीदिदम् ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवाश्च यूयं वै

मिलनेसे सफल होगए ॥ २६ ॥ हे पितामह ! आपके दर्शनसे हमारा दुःख दूर होजायगा, हमैं क्रूर कर्म करने वाले (दुर्योधन आदि) ने बड़ा दुःख दिया था ॥ २७ ॥ आपका दर्शन होनेसे वह दुःख दूर भाग जावेगा, यदि दुःख दूर न हो तो यह विचार है ॥२८॥ सब कर्मोंको करनेमें समर्थ बड़ोंका आश्रय पाने पर भी यदि दुःख दूर न हो तो इसमें प्रारब्धको कारण समझना चाहिये ॥ २९ ॥ दारिद्रता दुःखका कारण है वह तो (महात्माओंके दर्शनसे) अवश्य नष्ट होजाती है, क्योंकि बड़ोंका स्वभाव कल्पवृक्षकी समान है ॥ ३० ॥ उदार पुरुषोंके गुणोंका ही विचार करना चाहिये (तो अपनेमें भी गुणोंका उदय होता है) हे प्रभो ! आश्रयके वशसे पुरुषमें तुच्छता और उत्कृष्टता आती है, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है, दीनोंका पालन करना उत्तम पुरुषोंका स्वभाव होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ संसारमें रंकोंके लिये यह लक्षण परम कल्याण करने वाला समझा जाता है, इसको सज्जनोंकी सेवा करनेका परम प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ इसके आगे भाग्य है, सज्जनोंको इसमें दोष नहीं दिया जा सकता, हे स्वामिन् ! इस कारणसे हम आपके दर्शन में अपना कल्याण देखते हैं ॥ ३४ ॥ आपके आगमनमात्रसे ही हमारे मन सन्तुष्ट होरहे हैं, अतः अब आप ऐसा उपदेश दीजिये जिससे हमारा दुःख नष्ट होजावे ॥ ३५ ॥ पाण्डवोंके वचन सुन महामुनि व्यास चित्तमें प्रसन्न होकर यह कहने लगे ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवो ! तुम दुःख न मानो, तुमने सत्य

न कष्टं कर्तुमर्हथ। धन्याः स्थ कृतकृत्याः स्थ सत्यं नैव विलोपितम् ॥ ३७ ॥ सुजनानां स्वभावोऽयं प्राणान्तेऽपि सुशोभनः। धर्मं त्यजन्ति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम् ॥ ३८ ॥ अस्माकं चैव यूयं च ते चापि समताङ्गताः। तथापि पक्षपातो वै धर्मिष्ठानां मतो बुधैः ॥ ३९ ॥ धृतराष्ट्रेन दुष्टेन प्रथमं च ह्यचक्षुषा। धर्मस्त्यक्तः स्वयं लोभाद्युष्माकं राज्यमाहृतम् ॥ ४० ॥ तस्य यूयं च ते चापि पुत्रा एव न संशयः। पितर्युपरतेबाला अनुकम्प्या महात्मनः ॥ ४१ ॥ पश्च त्पुत्रश्च तेनैव वारितो न कदाचन। अनर्थो नैव जायेत यच्चैवं च कृतन्तदा ॥४२॥ अतः परं च यज्जातं जातं नान्यथा भवेत्। अयन्दुष्टो भवन्तश्च धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः॥ तस्मादन्ते च तस्यैवाशुभं हि भविता ध्रुवम्। यच्चैव वापितं बीजं तत्प्ररोहो भवेदिह ॥ ४४ ॥ तस्माद् दुःखं न कर्तव्यं भवद्भिः सर्वथा ध्रुवम्। भविष्यति शुभं वो हि नात्र कार्या विचारणा ॥४५॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा पांडवाः सर्वे तेन व्यासेन तोषिताः। युधिष्ठिरमुखास्ते च पुनरेवाब्रुवन्वचः ॥ ४६ ॥ पांडवा ऊचुः। सत्यमुक्तन्त्वया नाथ दुष्टैर्दुःखं निरन्तरम्। दुष्टात्मभिर्वनेचापि दीयते हि मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ तन्नाशयाशुभन्तेऽद्य किंचिद्देयं शुभं विभो। कृष्णेन कथितं

का लोप नहीं किया, अतः तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो ॥३७॥ सज्जनोंका यह सुन्दर स्वभाव होता है, कि—प्राणसंकट आने पर भी धर्मको नहीं त्यागते, सत्य ही उनको सफलता देता है ॥३८॥ हमको तो तुम और वे दोनों एकसे हैं, तब भी बुद्धिमान् पुरुषोंका धर्मात्माओं पर पक्षपात होता है ॥ ३९ ॥ दुष्ट धृतराष्ट्र पहिले ही अंधा था, अब उसने लोभवश आपका राज्य छीनकर धर्म छोड़ दिया ॥ ४० ॥ उसके लिये तो कौरव और पांडव पुत्र ही हैं, पिताके मरने पर महात्माओंका बालकों पर कृपा ही रखनी चाहिये ॥ ४१ ॥ पीछेसे उसने अपने पुत्रोंको भी ऐसा करनेसे नहीं रोका, यदि वह अपने पुत्रोंको डटता तो ऐसा अनर्थ नहीं होता ॥४२॥ इसके अनन्तर जो कुछ हुआ है वह (दैववश) हुआ है, वह लौट नहीं सकता था, वह तो दुष्ट है और सत्यवादी धर्मात्मा हैं ॥ ४३ ॥ अतः अन्तमें उसका अहित ही होगा जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल उगता है ॥ ४४ ॥ अतः आप किसी प्रकार दुःख न मानें, आपका कल्याण होगा, इसमें सन्देहकी कुछ बात नहीं है ॥४५॥ व्यासजी ने इस प्रकार समझा कर युधिष्ठिर आदि सकल पांडवोंको तृप्त किया, तब वे फिर कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे नाथ ! आप सत्य कहते हैं वे दुष्ट अब वनमें भी हमको वार वार निरन्तर दुःख देते रहते हैं ॥ ४७ ॥ हे विभो ! इस दुःख को टालनेके लिये कोई शुभ बात हमें बताइये, पहिले श्रीकृष्णने हमसे कहा

पूर्वमाराधयच्छंकरस्सदा ॥ ४८ ॥ प्रमादश्चाकृतोऽस्माभिस्तद्वचशिथिलीकृतम् । स देवमार्गस्तु पुनरिदानीमुपदिश्यताम् ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो हर्षसमन्वितः । उवाच पांडवान्प्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ५० व्यास उवाच । श्रूयतां वचनं मेऽद्य पाण्डवा धर्मबुद्धयः । सत्यमुक्तन्तु कृष्णेन मया संसेव्यते शिवः ॥५१॥ भवद्भिः सेव्यताम्प्रीत्या सुखं स्यादतुलं सदा । सर्वं दुःखं भवत्येव शिवाऽसेवात एव हि ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । अथ पंचसु तेष्वेव विचार्यं शिवपूजने । अर्जुनं योग्यमुन्वार्य व्यासो मुनिवरस्तथा ॥५३॥ तपःस्थानं विचार्यैवं ततस्स मुनिसत्तमः । पांडवान्धर्मसन्निष्ठान्पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच । श्रूयतामपाण्डवास्सर्वं कथयामि हितं सदा । शिवं सर्वं परं दृष्ट्वा परं ब्रह्म सताङ्गतिम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादित्रिपराधान्तं यत्किञ्चिद्दृश्यते जगत् । तत्सर्वं शिवरूपं च पूज्यन्ध्येयं च तत्पुनः ॥ ५६ ॥ सर्वैषां चैव सेव्योऽसौ शंकरस्सर्वदुःखहा । शिवः स्वल्पेन कालेन संप्रसीदति भक्तितः ॥५७॥ सुप्रसन्नो महेशो हि भक्तेभ्यः सकलप्रदः । भुक्तिं मुक्तिमिहामुत्र यच्छतीति सुनिश्चितम् ५८

था, कि–शंकरकी सदा आराधना करनी चाहिये ॥ ४८ ॥ परन्तु हमने प्रमाद किया उनका वचन पालन करनेमें हम शिथिल रहे, उस देवमार्गको आप इस समय हमें उपदेश दीजिये ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि इस वचनको सुन व्यासजी प्रसन्न होगए और शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर पाण्डवोंसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ५० ॥ व्यासजीने कहा, कि हे धर्मबुद्धि वाले पाण्डवों ! सुनो, कृष्णने सच्ची बात कही है मैं भी शिवकी आराधना करता हूँ ॥५१॥ आप भी प्रीतिपूर्वक शिवकी सेवा करें तो आपको भी सदा सुख मिलेगा, शिव की सेवा न करनेसे ही अनेक प्रकारके दुःख हुआ करते हैं ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--मुनिवर व्यासने फिर पाँचो पाण्डवोंमेंसे शिवपूजनके लिये अर्जुनको ही योग्य समझा ॥५३॥ तदनन्तर वह मुनिसत्तम ! तपके स्थानका विचार कर धर्मनिष्ठ पाण्डवोंसे फिर यह बात कहने लगे ५४ व्यासजीने कहा, कि--हे पाण्डवों ! सुनो, मैं तुमसे हितको बात कहता हूँ, मैं शिवको सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म और सज्जनोंकी गति सदा समझता हूँ ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजीसे लेकर त्रिपरार्ध तकका जितना जगत् दीखता है, वह सब शिवरूप है अतः उनका बारम्बार पूजन और ध्यान करना चाहिये ॥ ५६ ॥ शंकर सब दुःखोंका संहार करने वाले हैं, अतः सबको उनकी सेवा करनी चाहिये, भक्ति करनेसे शिव थोड़े ही समयमें प्रसन्न होजाते हैं ॥ ५७ ॥ महेश्वर प्रसन्न होकर भक्तों को सब कुछ दे डालते हैं, वह यहाँ भोग और परलोकमें मोक्ष देते हैं यह निश्चित बात है ॥ ५८ ॥ अतः भोग मोक्षरूप फल चाहने वालोंको शिवकी

तस्मात्सेव्यस्सदा शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः । पुरुषश्शंकरः साक्षाद् दुष्टहन्ता सतां गतिः ॥५६॥ परन्तु प्रथमं शक्रविद्यां दृढमना जपेत् । क्षत्रियस्य पराख्यस्य चेदमेव समाहितम् ॥ ६० ॥ अतोऽर्जुनश्च प्रथमं शक्रविद्यां जपेद् दृढः । करिष्यति परीक्षामप्राक् संतुष्टस्तद्भविष्यति ॥ ६१ ॥ सुप्रसन्नश्च विघ्नानि संहरिष्यति सर्वदा । पुनश्चैवं शिवस्यैव वरं मन्त्रं प्रदास्यति ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वार्जुनमाहूयोपेन्द्रविद्यामुपादिशत् । स्नात्वा च प्राङ्मुखो भूत्वा जग्राहार्जुन उग्रधीः ॥ ६३ ॥ पार्थिवस्य विधानं च तस्मै मुनिवरो ददौ । प्रत्युवाच च तं व्यासो धनञ्जयमुदारधीः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच । इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीले सुशोभने । जाह्नव्याश्च समीपे वै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु ॥६५॥ अदृश्या चैव विद्या स्यात्सदा ते हितकारिणी । इत्याशिषन्ददौ तस्मै ततः प्रोवाच तान्मुनिः ॥६६॥ धर्ममास्थाय सर्वे वै तिष्ठन्तु नृपसत्तमाः । सिद्धिः स्यात्सर्वथा श्रेष्ठा नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति दत्त्वाशिषन्तेभ्यः पाण्डवेभ्यो मुनीश्वरः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं व्यासश्चान्तर्दधे क्षणात् ॥ ६८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सदा सेवा करनी चाहिये, शंकर साक्षात् दुष्टोंका संहार करने वाले पुरुष हैं और सज्जनोंकी गति हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु पहिले चित्तको दृढ़ करके इन्द्रविद्याका जप करे, श्रेष्ठ क्षत्रियके लिये यही विधि है ॥ ६० ॥ अतः अर्जुन पहिले दृढ़ होकर इन्द्रविद्याका जप करे, तब इन्द्र पहिले परीक्षा लेंगे फिर सन्तुष्ट होंगे ॥ ६१ ॥ और प्रसन्न होकर सदा विघ्नोंका नाश करते रहेंगे फिर शिवके श्रेष्ठ मंत्रको देंगे ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-व्यासजी इसप्रकार कह अर्जुनको बुला इन्द्रविद्याका उपदेश देने लगे और उग्रबुद्धि वाला अर्जुन स्नान कर पूर्वकी ओर मुख कर उस मंत्रविद्याको ग्रहण करने लगा ॥ ६३ ॥ मुनिवरने अर्जुनको पार्थिवका विधान बताया, फिर उदार बुद्धि वाले व्यासजी धनञ्जयसे कहने लगे ॥६४॥ व्यासजीने कहा, कि-हे अर्जुन ! अब तुम यहाँसे सुन्दर इन्द्रकील पर्वत पर जाओ और भागीरथीके समीप बैठ कर भली प्रकार तप करो ॥ ६५ ॥ यह विद्या गुप्त रखनेसे सदा तेरा हित करेगी, इस प्रकार आशीर्वाद देकर वह मुनि फिर पाण्डवोंसे कहने लगे ॥ ६६ ॥ हे नृपसत्तमो ! तुम सब धर्म पर दृढ़ रहो, तुमको सर्वथा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-वह मुनीश्वर पांडवोंको इस प्रकार आशीर्वाद देकर शिवके चरणकमलोंका ध्यान धर तत्क्षण अन्तर्धान होगए ॥ ६८ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

नन्दीश्वर उवाच। अर्जुनोऽपि तदा तत्र दीप्यमानो व्यदृश्यत। मन्त्रेण शिवरूपेण तेजश्चातुलमावहन् ॥ १ ॥ ते सर्वे चार्जुनं दृष्ट्वा पाण्डवा निश्चयं गताः। जयोऽस्माकं ध्रुवश्चानन्तेजश्च विपुलं यतः ॥ २ ॥ इदङ्कार्य्यन्त्वया साध्यन्नान्येन च कदाचन। व्यासस्य वचनाद्भाति सफलं कुरु जीवितम् ॥ ३ ॥ इति प्रोच्यार्जुनन्ते वै विरहौत्सुक्यकातराः। अनिच्छन्तोऽपि तत्रैव प्रेषयामासुरादरात् ॥४॥ द्रौपदी दुःखसंयुक्ता नेत्राश्रूणि निरुध्य च। प्रेषयन्ती शुभं वाक्यन्तदोवाच पतिव्रता ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच। व्यासोपदिष्टं यद्राजंस्त्वया कार्यं प्रयत्नतः। शुभप्रदोऽस्तु ते पन्थाश्शंकरश्शंकरोऽस्तु वै ॥६॥ ते सर्वे चावसंस्तत्र विसृज्यार्जुनमादरात्। अत्यन्तदुःखमापन्ना मिलित्वा पञ्च एव च ॥ ७ ॥ स्थितास्तत्र वदन्ति स्म श्रूयतामृषिसत्तम। दुःखेऽपि प्रियसंगो वै न दुःखाय प्रजायते ॥ ८ ॥ वियोगे द्विगुणन्तस्य दुःखम्भवति नित्यशः। तत्र धैर्य्यधरस्यापि कथन्धैर्य्यम्भवेदिह ॥९॥ नन्दीश्वर उवाच। कुर्वत्स्वेव तदा दुःखम्पाण्डवेषु मुनीश्वरः। कृपासिन्धुश्च स व्यास ऋषिवर्य्यस्समागतः। ॥१०॥ तन्तदा पाण्डवास्ते वै नत्वा सम्पूज्य चाद-

---

नन्दीश्वरने कहा, कि--उस समय शिवके मंत्रसे अर्जुनमें अतुल तेज भर गया अतः वह दिपता हुआ दीखने लगा ॥ १ ॥ अर्जुनको देखकर सब पाण्डवोंको निश्चय होगया, कि--हमारी विजय अवश्य होगी, क्योंकि--अर्जुनमें बड़ा तेज दीखने लगा है ॥ २ ॥ "यह कार्य तुमसे ही सिद्ध होसकता है, और किसीसे सिद्ध नहीं होसकता, ऐसा हमें व्यासजीके कथनसे भासता है अतः अब तुम (अपने और हमारे) जीवनको सफल करो" ॥ ३ ॥ पाण्डवोंने अर्जुनसे इस प्रकार कहा, परन्तु विरह और उत्सुकतासे वे कातर होउठे, फिर इच्छा न होने पर भी उन्होंने अर्जुनको आदरपूर्वक भेजा ही ॥ ४ ॥ उस समय पतिव्रता द्रौपदी दुःखमें भर गई, परन्तु उसने आँसुओंको रोककर शुभ वचन कहा, ॥ ५ ॥ द्रौपदीने कहा, कि--हे राजन्! व्यासजीने जो आपको उपदेश दिया है उसको आप प्रयत्नपूर्वक करना, आपका मार्ग शुभदायक हो, शंकर आपका कल्याण करें ॥ ६ ॥ अर्जुनको आदरपूर्वक बिदाकर वे पाँचों परम दुःखके साथ तहाँ रहने लगे ॥ ७ ॥ हे ऋषिसत्तम! तहाँ रहते रहते उन्होंने विचारा, कि--दुःखमें भी प्रिय पुरुषका संग रहे तो दुःख अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता।८। परन्तु प्रियका वियोग होने पर दुःख दुगना व्यापता है, उसमें धैर्यधारीको भी धैर्य कैसे रह सकता है ॥९॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-- पाण्डव इस प्रकार दुःखित होरहे थे, कि--कृपासिंधु मुनीश्वर ऋषिवर व्यास तहाँ पधारे ॥ १० ॥ पाण्डवोंने आदरपूर्वक उनको प्रणाम करके उनका सत्कार किया और आसन दिया, फिर दुःखमें भरे

रात् । दत्वासनं हि दुःखाढ्याः करौ बद्धा वचोऽब्रुवन् ॥ ११ ॥ पाण्डवा ऊचुः । श्रूयतामृषभश्रेष्ठ दुःखदग्धा वयम्प्रभो । दर्शनन्तेऽद्य सम्प्राप्य ह्यानन्दं प्राप्नुमो मुने ॥ १२ ॥ कियत्कालं वसात्रैव दुःखनाशाय नः प्रभो । दर्शनात्तव विप्रर्षेस्सव-दुःखं विलीयते ॥१३॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा ऋषिश्रेष्ठो न्यवसत्तत्सुखाय वै । कथाभिर्विविधाभिश्च तद्दुखं नोदयंस्तदा ॥ १४ ॥ वार्तायां क्रियमाणायान्तेन व्यासेन सन्मुने । सुप्रणम्य विनीतात्मा धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १५ ॥ धर्मराज उवाच । शृणु त्वं हि ऋषिश्रेष्ठ दुःखशान्तिर्मता मम । पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ कथनीयन्त्वया प्रभो ॥ १६ ॥ ईदृशं चैव दुःखं च पुरा प्राप्तश्च कश्चन । वयमेव परं दुःखं प्राप्ता वै नैव कश्चन ॥ १७ ॥ व्यास उवाच । राज्ञस्तु नलनाम्नो वै निषधाधिपतेः पुरा । भवद्दुःखादिकं दुःखं जातं तस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ हरिश्चन्द्रस्य नृपतेर्जातन्दुखम्महत्तरम् । अकथ्यन्तद्विशेषेण परशोकाव-हन्तथा ॥ १९ ॥ दुःखन्तथैव विज्ञेयं रामस्याप्यथ पाण्डव । यच्छ्रुत्वा स्त्रीनराणां च भ भवेन्मोहो महत्तरः ॥ २० ॥ तस्माद्वर्णयितुन्नैव शक्यते हि मया पुनः । शरीरं दुःखराशिं च मत्वा त्याज्यन्त्वयाधुना ॥ २१ ॥ येनेदञ्च धृतन्तेन

पाण्डव हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ११ ॥ पाण्डवोंने कहा, कि—हे प्रभो! हे मुने! दुःखसे झुलसते हुए हमको आज आपका दर्शन पानेसे आनन्द होरहा है ॥ १२ ॥ हे प्रभो! हमारा दुःख दूर करनेके लिये आप कुछ समय तक यहाँ टिकिये, हे विप्रर्षे! आपके दर्शनसे सारा दुःख विलीन होजाता है ॥ १३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस प्रकार कहने पर वह ऋषिश्रेष्ठ पाण्डवोंको सुख देनेके लिये वहाँ ठहर गए और अनेक प्रकारकी कथाओंसे पाण्डवोंका दुःख कम करने लगे ॥ १४ ॥ हे श्रेष्ठ मुने! जब व्यासजीसे बात होरही थी, तब विनीत चित्त वाले धर्मराज उनको प्रणाम करके कहने लगे ॥ १५ ॥ धर्मराजने कहा, कि—हे ऋषिश्रेष्ठ! सुनिये हे प्रभो! जो बात मैं बूझता हूँ उसको आप कहेंगे, तो मैं समझता हूँ, कि—मेरा दुःख शान्त होजावेगा ॥ १६ ॥ क्या पहिले किसीको ऐसा दुःख प्राप्त हुआ था, और किसीको ऐसा दुःख नहीं हुआ होगा, हमैं ही यह परम दुःख मिल रहा है ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा, कि—पहिले निषध देशके स्वामी महात्मा राजा नलको आपसे भी अधिक दुःख प्राप्त हुआ था ॥१८॥ राजा हरिश्चन्द्रको भी बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ा था, उसका वर्णन करना ही कठिन है, उससे जनता शोकाकुल हो उठती है ॥ १९ ॥ हे पाण्डव! राम पर भी ऐसा ही दुःख पड़ा था, उसको सुनने क्या पुरुष और क्या स्त्री सब ही बड़ेभारी मोहमें पड़ जाते हैं ॥ २० ॥ अतः मैं उसका वर्णन नहीं करूँगा

ध्यातमेव न संशयः। प्रथम्मातृगर्भे वै जन्म दुःखस्य कारणम् ॥२२॥ कौमारेऽपि महादुःखं बाललीलानुसारि यत्। ततोऽपि यौवने कामान्भुंजानो दुःखरूपिणः २३ गतागतैर्दिनानां हि कार्यभारैरनेकशः। आयुश्च क्षीयते नित्यं न जानाति ह तत्पुनः २४ अन्ते च मरणं चैव महादुःखमतः परम्। नानानरकपीडाश्च भुज्यंतेऽज्ञैर्नरैस्तदा ॥ २५ ॥ तस्मादिदमसत्यं च त्वन्तु सत्यं समाचर। येनैव तुष्यते शम्भुस्तथा कार्यं नरेण च ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर उवाच। एवं विविधवार्ताभिः कालनिर्यापणन्तदा। चक्रुस्ते भ्रातरः सर्वे मनोरथपथैः पुनः ॥ २७ ॥ अर्जुनोऽपि स्वयं गच्छन्दुर्गाद्रिषु दृढव्रतः। यक्षं लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघ्नन्ननेकशः ॥२८॥ मनसा हर्षसंयुक्तो जगामाचलमुत्तमम्। तत्र गत्वा च गंगायास्समीपं सुन्दरं स्थलम् २९ अशोककाननं यत्र तिष्ठति स्वर्ग उत्तमः। तत्र तस्थौ स्वयं स्नात्वा नत्वा च गुरुमुत्तमम् ॥ ३० ॥ यथोपदिष्टं वेषादि तथा चैवाकरोत्स्वयम्। इन्द्रियाण्यपकृष्यादौ मनसा संस्थितोऽभवत्। ॥ ३१ ॥ पुनश्च पार्थिवं कृत्वा सुन्दरं समसूत्र-

---

और तुम भी शरीरको दुःखोंका ढेर समझ कर शोक करना छोड़ दो २१ जो इस शरीरको धारण करता है वह दुःखसे व्याप्त होजाता है, पहिले तो माताके उदरसे जन्म लेना ही दुःखको मूल है ॥ २२ ॥ बालकपनमें और कुमारावस्थामें भी महादुःख होता है, फिर तरुणावस्थामें भी कामोंका उपभोग करनेमें दुःख उठाना पड़ता है ॥ २३ ॥ अनेक प्रकारके कार्योंके बोझ से तथा दिनोंके आने जानेसे, मनुष्योंकी आयु नित्य क्षीण होती रहती है, परन्तु मनुष्योंको इस बातका पता नहीं चलता ॥ २४ ॥ तदनन्तर अन्तमें घोर दुःख देने वाला मरण होता है तब अज्ञानी पुरुष नरककी अनेक प्रकार की पीड़ाओंको भोगते हैं ॥ २५॥ अतः तुम इस असत्य (संसार) को छोड़ कर सत्यका आश्रय लो, शंभु जिस प्रकार सन्तुष्ट हों मनुष्यको वही काम करना चाहिये २६ नन्दीश्वरने कहा, कि-वे सब भाई इस प्रकार अनेक प्रकार की बातें कर और मनोरथ बांध कर अपना समय बिताने लगे ॥२७॥ इधर अर्जुन भी दृढ़ व्रत धारण किये हुए दुर्गम पर्वतों पर चला जाता था, तहाँ एक यक्षकी प्राप्ति हुई, उसके द्वारा अर्जुनने अनेक डाँकुओंका संहार करा २८ फिर प्रसन्न मनसे उत्तम पर्वत (इन्द्रकील) की ओर चला, तहाँ पहुँच गंगा के समीप एक सुन्दर स्थलमें ठहरा ॥ २९ ॥ तहाँ अशोकका वन था और समीपमें उत्तम स्वर्ग था, अर्जुनने तहाँ ठहर गुरुको प्रणाम कर स्नान किया ॥ ३० ॥ और जिस प्रकार उपदेश मिला था वैसा ही वेष बनाया और मनसे इन्द्रियोंको खींच कर बैठ गया ॥३१॥ तदनन्तर समसूत्र पार्थिव (शिव-लिंग) को बना, उनके आगे श्रेष्ठ तेजोराशि शंकरका ध्यान करने

कम् । तदग्रे प्रणिदध्यौ स तेजोराशिमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ त्रिकालं चैव सुस्नातः पूजनं विविधन्तदा । चकारोपासनन्तत्र हरस्य च पुनः पुनः ॥३३॥ तस्यैव शिरसस्तेजो निस्सृतन्तच्चरास्तदा । दृष्ट्वा भयं समापन्नाः प्रविष्टश्च कदा ह्ययम् ॥३४॥ पुनस्ते च विचार्यैवं कथनीयं बिडौजसे । इत्युक्त्वा तु गतास्ते वै शक्रस्यान्तिकमञ्जसा ॥ ३५ ॥ चरा ऊचुः । देवो वाथ ऋषिश्चैव सूर्य्यो वाथ विभावसुः । तपश्चरति देवेश न जानीमो वने च तम् ॥ ३६ ॥ तस्यैव तेजसा दग्धा आगतास्तव सन्निधौ । निवेदितश्चरित्रं तत्क्रियतामुचितन्तु यत् ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्तैश्चरैस्सर्वं ज्ञात्वा पुत्रचिकीर्षितम् । सगोत्रपान्विसृज्यैव तत्र गन्तुं मनो दधे ॥ ३८ ॥ स वृद्धब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचारी शचीपतिः । जगाम तत्र विप्रेन्द्र परीक्षार्थं हि तस्य वै ॥ ३९ ॥ तमागतन्तदा दृष्ट्वाकार्षीत्पूजाञ्च पाण्डवः । स्थितोऽग्रे च स्तुतिं कृत्वा क्वायातोऽसि वदाधुना ॥ ४० ॥ इत्युक्तस्तेन देवेशो धैर्यार्थं तस्य प्रीतितः । परीक्षागर्भितं वाक्यं पाण्डवन्तं ततोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण उवाच । नवे वयसि वै तात किन्तपस्यसि साम्प्रतम् । मुक्त्यर्थं वा जयार्थं किं सर्वथैतत्तपस्त्वत्र ॥ ४२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति पृष्टस्तदा तेन सर्वं संवेदि-

---

लगा ॥ ३२ ॥ वह तीनों समय स्नान कर अनेक प्रकारका पूजन कर हरकी बारम्बार उपासना करने लगा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जब अर्जुनके शिरसे तेज निकलने लगा, तब इन्द्रके दूत भयभीत हुए और विचारने लगे, कि—यह यहाँ कब आगया ॥ ३४ ॥ फिर उन्होंने विचार करके कहा, कि—यह बात इन्द्रसे कहनी चाहिये, इस प्रकार कहकर वे शीघ्र ही इन्द्रके समीप पहुँचे ॥ ३५ ॥ चरोंने कहा, कि—हे देवेश ! एक प्राणी वनमें तप कर रहा है, हमें नहीं मालूम वह देवता है अथवा ऋषि, सूर्य है अथवा अग्नि ॥३६॥ उसके तेजसे ही झुलस कर हम आपके पास आये हैं, यह वृत्तान्त आपसे कह दिया, अब आप जैसा उचित समझें तैसा करें ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—दूतोंके इस प्रकार कहने पर इन्द्रने समझ लिया, कि—यह सब मेरे पुत्र (अर्जुन) का ही काम है, अतः वह पर्वतरक्षकोंको विदा कर अर्जुनके पास चलनेका विचार करने लगे ॥ ३८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! शचीपति इन्द्र अर्जुन की परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मण बन कर चले ॥३९॥ पाण्डव ने उनको आया हुआ देख उनकी पूजाकी और आगे खड़ा हो उनकी स्तुति कर कहने लगा, कि—कहिये, आप इस समय कहाँसे आरहे हैं ॥ ४० ॥ अर्जुनके इस प्रकार कहने पर देवेश प्रसन्न हुए और उसके धैर्यके लिये परीक्षासे भरे हुए इस वचनको कहने लगे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणने कहा, कि—हे तात ! तुम इस नवीन अवस्थामें किस लिये तप कर रहे हो, तुम्हारा तप

तम्पुनः । तच्छ्रुत्वा स पुनर्वाक्यमुवाच ब्राह्मणस्तदा ॥४३॥ ब्राह्मण उवाच । युक्तं न क्रियते वीर सुखं प्राप्तुं च यत्तपः । क्षात्रधर्मेण क्रियते मुक्त्यर्थं कुरु सत्तप ४४ इन्द्रस्तु सुखदाता वै मुक्तिदाता भवेन्न हि । तस्मात्त्वं सर्वथा श्रेष्ठ कर्तुमर्हसि सत्तपः ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इदन्तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधं चक्रेऽर्जुनस्तदा । प्रत्युवाच विनीतात्मा तदनादृत्य सुव्रतः ॥ ४६ ॥ अर्जुन उवाच । राज्यार्थं न च मुक्त्यर्थं किमर्थं भाषसे त्विदम् । व्यासस्य वचनेनैव क्रियते तप ईदृशम् ॥४७॥ इतो गच्छ ब्रह्मचारिन्मा पातयितुमिच्छसि । प्रयोजनं किमत्रास्ति तव वै ब्रह्मचारिणः ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तः स प्रसन्नोऽभूत्सुन्दरं रूपमद्भुतम् । स्वोपस्करणसंयुक्तं दर्शयामास वै निजम् ॥४९॥ शक्ररूपन्तदा दृष्ट्वा लज्जितश्चार्जुनस्तदा । स इन्द्रस्तं समाश्वास्य पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥ ५० ॥ इन्द्र उवाच । वरं वृणीष्व हे तात धनञ्जय महामते । यदिच्छसि मनोभीष्टन्नादेयं विद्यते तव ५१ तच्छ्रुत्वा शक्रवचनम्प्रत्युवाचार्जुनस्तदा । विजयन्देहि मे तात शत्रुक्लिष्टस्य सर्वथा ॥ ५२ ॥ शक्र उवाच । बलिष्ठाश्शत्रवस्ते च दुर्योधनपुरः सराः । द्रोणो

मुक्ति अथवा विजय पानेके लिये ही होसकता है ॥ ४२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार बूझने पर अर्जुनने सब बात बता दी, उसको सुन वह ब्राह्मण फिर कहने लगा ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणने कहा, कि--हे वीर ! तुम क्षत्रिय हो, तुम सुख पानेके लिये तप करो यह बात उचित नहीं है, अतः हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम मुक्ति पानेके लिये तप करो ॥ ४४ ॥ इन्द्र सुखके देने वाले हैं, मुक्तिको नहीं देसकते अतः तुम सर्वथा श्रेष्ठ तप करो ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--उनके इस वचनको सुनकर अर्जुनको क्रोध चढ़ आया अतः दृढ़व्रती और नम्र चित्त वाला अर्जुन उनके वचनका अनादर कर कहने लगा ४६ अर्जुनने कहा, कि--राज्यके लिये अथवा मुक्तिके लिये तपकी बात आप क्यों बूझते हैं ? मैं तो व्यासजीके वचनसे इस तपको कर रहा हूँ ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मचारिन् ! आप मुझै मार्गसे भ्रष्ट करना चाहते हैं, अतः आप यहाँसे चले जाइये, आप ब्रह्मचारीका यहाँ प्रयोजन क्या है ? ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार कहने पर इन्द्रदेव प्रसन्न होगए और उन्होंने अपने सर्वैश्वर्यसम्पन्न अद्भुत दिव्य रूपका दर्शन दिया ॥४९॥ इन्द्रके दर्शन कर अर्जुन लज्जित होगया, तब इन्द्रने उसको ढाढस देकर यह बात कही ॥५०॥ इन्द्रने कहा, कि--हे महाबुद्धिमान् तात धनञ्जय ! वर माँगो, जो चाहते हो जो तुम्हारा मनोरथ हो वह माँग लो, तुम्हें न दी जासके ऐसी कोई वस्तु नहीं है ॥ ५१ ॥ इन्द्रकी इस बातको सुन कर अर्जुनने कहा, कि--हे तात ! मैं शत्रुओंसे क्लेश पारहा हूँ, अतः मुझै विजय दीजिये ॥ ५२ ॥ इन्द्रने कहा,

भीष्मश्च कर्णश्च सर्वे ते दुर्जया ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ अश्वत्थामा द्रोणपुत्रो रौद्रोंऽशो दुर्जयोऽति सः । मया साध्या भवेयुस्ते सर्वथा स्वहितं शृणु ॥ ५४ ॥ एतद्वीर जपं कर्तुं न शक्तः कश्चनाधुना । वर्तते हि शिवो वर्यस्तस्माच्छम्भोर्जपोऽधुना ५५ शंकरः सर्वलोकेशश्चराचरपतिः स्वराट् । सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्ति भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५६ ॥ अहमन्ये च ब्रह्माद्या विष्णुः सर्ववरप्रदः । अन्ये जिगीषवो ये च ते सर्वे शिवपूजकाः ॥ ५७ ॥ अद्यप्रभृति तन्मन्त्रं हित्वा भक्त्या शिवं भज । पार्थिवेन विधानेन ध्यानेनैव शिवस्य च ॥ ५८ ॥ उपचारैरनेकैश्च सर्वभावेन भारत । सिद्धिः स्यादचला तेऽद्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ५९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा च चरान्सर्वान्समाहूयाब्रवीदिदम् । सावधानेन वै स्थेयमेतत्संरक्षणे सदा ॥ ६० ॥ प्रबोध्य स्वचरानिन्द्रोऽर्जुनसंरक्षणादिकम् । वात्सल्यपूर्णहृदयः पुनरूचे कपिध्वजम् ॥ ६१ ॥ इन्द्र उवाच । राज्यं त्वया प्रमादाद्वै न कर्त्तव्यं कदाचन । श्रेयसे भद्र विद्येयं भवेत्तव परंतप ॥ ६२ ॥ धैर्यं धार्यं साधकेन सर्वथा रक्षकः शिवः । सम्पत्तीश्च फलन्तुल्यं दास्यते नात्र संशयः ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर

कि-तुम्हारे शत्रु बलवान् हैं दुर्योधन द्रोण भीष्म और कर्ण सब ही दुर्जय हैं ॥ ५३ ॥ रुद्रका अंश द्रोणपुत्र अश्वत्थामा परम दुर्जय है, मुझसे इनका साध्य होना ऐसा ही है, अतः तुम पूर्णरीतिसे अपने हितकी बात सुनो ५४ हे वीर ! इस जपको करनेमें अभी तक कोई समर्थ नहीं हुआ है, शिव श्रेष्ठ हैं, अतः तुम इस समय शंभुका जप करो ॥ ५५ ॥ शंकर स्थावर जंगम सब लोकोंके स्वामी हैं, स्वराट् हैं, सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, वह भोग और मोक्ष दोनों प्रकारका फल देसकते हैं ॥ ५६ ॥ मैं और ब्रह्मा आदि तथा सब वरोंको देने वाले विष्णु तथा अन्य जो कोई विजयाभिलाषी हैं, वे सब ही शिव-पूजक हैं ॥ ५७ ॥ आजसे इन सबके मन्त्रको छोड़, पार्थिव-विधानसे शिवका ध्यान करो भक्तिपूर्वक शिवका भजन करो ॥ ५८ ॥ हे भारत ! अनन्यभावसे और अनेक प्रकारके उपचारोंसे शिवपूजन करो, तो आपको अवश्य ही सिद्धि मिलेगी, इसमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-इन्द्रदेवने इस प्रकार कह अपने सब अनुचरोंको बुलाकर कहा, कि-सदा सावधान होकर इनकी रक्षा करते रहना ॥ ६० ॥ अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षा आदिकी आज्ञा देकर वात्सल्यसे पूर्ण हृदय वाला इन्द्र फिर कपिध्वज अर्जुनसे कहने लगा ६१ इन्द्रने कहा, कि-हे परन्तप ! तुम प्रमादमें राज्य कभी नहीं करना, हे भद्र ! यह विद्या तुम्हारा कल्याण करेगी ॥ ६२ ॥ साधकको धैर्य रखना चाहिये, कि-शिव सब प्रकारसे रक्षा करेंगे, वह सम्पत्ति और बल दोनों देंगे, इसमें

उवाच । इति दत्वा वरं तस्य भारतस्य सुरेश्वरः । स्मरञ्छिवपदाम्भोजञ्जगाम भवनं स्वकम् ॥ ६४ ॥ अर्जुनोऽपि महावीरस्तुप्रणम्य सुरेश्वरम् । तपस्तेपे संयतात्मा शिवमुद्दिश्य तद्विधम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णन-प्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

नन्दीश्वर उवाच । स्नानं स विधिवत्कृत्वा न्यासादि विधिवत्तथा । ध्यानं शिवस्य सद्भक्त्या व्यासोक्तं यत्तथाऽकरोत् ॥ १ ॥ एकपादतलेनैव विष्ठन्मुनिवरो यथा । सूर्ये दृष्टिं निबध्यैकां मन्त्रमावर्तयन्स्थितः ॥ २ ॥ तपस्तेपेऽति संप्रीत्या संस्मरन्मनसा शिवम् । पंचाक्षरं मनुं शम्भोर्जपन्सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ३ ॥ तपसस्तेज एवासीद्यथा देवा विसिस्मियुः । पुनश्चैवं शिवं याताः प्रत्यूचुस्ते समाहिताः ॥४॥ देवा ऊचुः । नरेणैकेन सर्वेश त्वदर्थं तप आहितम् । यदिच्छति नरः सोऽयं किन्न यच्छति तत्प्रभो ॥ ५ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा तु स्तुतिं चक्रुर्विविधान्ते तदा सुराः । तत्पादयोर्दृशः कृत्वा तत्र तस्थुः स्थिराशयः ॥६॥ शिवस्तु तद्वचः श्रुत्वा महाप्रभुरुदारधीः । सुविहस्य प्रसन्नात्मा सुरान्वचनमब्र-

---

कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–सुरेश्वर इन्द्र भरतवंशी अर्जुनको इस प्रकार वर देकर शिवके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको पधार गए ॥ ६४ ॥ तब महावीर अर्जुन भी सुरेश्वरको प्रणाम कर चित्तको वशमें कर इन्द्रके उपदेशके अनुसार शिवके निमित्त तप करने लगा ६६ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि–अर्जुन विधिवत् स्नान और न्यास आदि कर व्यासजीके कथनानुसार भक्तिपूर्वक शिवका ध्यान करने लगा ॥ १ ॥ वह मुनिवरकी समान एक पैरसे ही खड़ा होकर सूर्यमें दृष्टि लगा मंत्रका जप करता हुआ खड़ा होगया ॥ २ ॥ वह मनमें प्रीतिपूर्वक शिवका स्मरण कर शंभुके परमोत्तम पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ परम तप करने लगा ।३। तपः तेजःस्वरूप ही था, उससे देवता विस्मयमें पड़ गए फिर शिवके पास जा सावधानतापूर्वक कहने लगे ॥ ४ ॥ देवताओंने कहा, कि–हे सर्वेश ! एक मनुष्य आपके लिये तप कर रहा है, हे प्रभो ! यह मनुष्य जो कुछ चाहता है उसको आप दे ही क्यों न दें ॥ ५ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–इस प्रकार कहकर देवता अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे और शिवके चरणों की ओर दृष्टि करके खड़े होगए ॥ ६ ॥ उदार बुद्धि वाले महाप्रभु शिवका चित्त इस वचनको सुनकर प्रसन्न होगया अतः देवताओंसे हँसकर कहने लगे ॥ ७ ॥ शिवने कहा, कि–हे देवताओं ! आप सब अपने स्थानको पधारो

वीत् ॥ ७ ॥ शिव उवाच । स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे सत्यन्न संशयः । सर्वथाहं करिष्यामि कार्यं वो नात्र संशयः ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । तच्छ्रुत्वा शंभुवचनन्निश्चयं परमं गताः । परावृत्य गताः सर्वे स्वस्थानं ते हि निर्जराः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो मूकनामागतस्तदा । सौकरं रूपमास्थाय प्रेषितश्च दुरात्मना ॥ १० ॥ दुर्योधनेन विप्रेन्द्र मायिना चार्जुनं तदा । यत्रार्जुनस्थितश्चासीत्तेन मार्गेण वै तदा ॥ ११ ॥ शृङ्गाणि पर्वतस्यैव छिन्दन्वृक्षाननेकशः । शब्दं च विविधं कुर्वन्नतिवेगेन संयुतः ॥१२॥ अर्जुनोऽपि च तं दृष्ट्वा मूकनामासुरन्तदा । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १३ ॥ अर्जुन उवाच । कोऽयं वा कुत आयाति क्रूरकर्मा च दृश्यते । ममानिष्टं ध्रुवं कर्तुं समागच्छत्यसंशयम् ॥ १४ ॥ ममैवं मन आयाति शत्रुरेव न संशयः । मया विनिहताः पूर्वमनेके दैत्यदानवाः ॥१५॥ तदीयः कश्चिदायाति वैरं साधयितुम्पुनः । अथवा च सखा कश्चिद् दुर्योधनहितावहः ॥१६॥ यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद् ध्रुवम् । यस्मिन्दृष्टे तदैव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः ॥ १७ ॥ आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् । वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥ १८ ॥ आका-

---

आपके कार्यको मैं सर्वथा करूँगा, इसमें कुछ सन्देह न करो ॥ ८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—शंभुके इस वचनको सुनकर वे सब देवता चिन्तारहित हो अपने स्थानको चले गए ॥ ९ ॥ इसी समय मूक नामक दैत्य सूअरके रूपमें तहाँ आया हे विप्रेन्द्र! उसको मायावी दुरात्मा दुर्योधनने अर्जुनके पास भेजा था, वह जहाँ अर्जुन था उसी मार्गसे आया ॥१०॥११॥ वह आते समय पर्वतके शिखरोंको ढाने लगा, अनेक वृक्षोंको तोड़ने लगा और बड़े वेगसे झपटता हुआ अनेक प्रकारके शब्द करने लगा ॥ १२ ॥ अर्जुन भी उस मूक नामक असुरको देख शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण कर विचार करने लगा ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा, कि—यह कौन कहाँसे आ रहा है, यह तो कोई क्रूर कर्म करने वाला दीखता है, यह निःसन्देह मेरा अनिष्ट करनेके लिये ही आरहा है ॥१४॥ मेरे मनमें यह बात आती है, कि-यह शत्रु ही है, मैंने पहिले अनेक दैत्य और दानवोंका संहार कर डाला है ॥ १५ ॥ उनका ही वैर निकालनेके लिये कोई आरहा है, अथवा कोई दुर्योधनको सुख पहुँचाने वाला आरहा है ॥ १६ ॥ जिसके दीखने पर अपना मन प्रसन्न हो उसको अपना हितकारी समझना चाहिये और जिसके दीखने पर मन व्याकुल होने लगे उसको शत्रु समझे ॥ १७ ॥ आचरण कुलको बताता है, शरीर भोजनको बताता है, वचन वेदाध्ययनको बताता है और नेत्र स्नेहको सूचित करता है ॥१८॥ आकारसे, गतिसे, चेष्टासे, भाषणोंसे

रेण तथा गत्या चेष्टया भाषितैरपि । नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः १९ उज्ज्वलं सरसञ्चैव वक्रमारक्तकन्तथा । नेत्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तस्य भावं पृथग् बुधाः ॥२०॥ उज्ज्वलं मित्रसंयोगे सरसम्पुत्रदर्शने । वक्रं च कामिनीयोगे आरक्तं शत्रुदर्शने ॥ २१ ॥ अस्मिन्मम तु सर्वाणि कलुषाणीन्द्रियाणि च । अयं शत्रुर्भवेदेव मारणीयो न संशयः ॥ २२ ॥ गुरोश्च वचनं मेऽद्य वर्तते दुःखदस्त्वया । हन्तव्यः सर्वथा राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥ एतदर्थं त्वायुधानि मम चैव न संशयः । विचार्येति च तत्रैव बाणं संस्थाय संस्थितः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र रक्षार्थं ह्यर्जुनस्य वै । तद्भक्तेश्च परीक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २५ ॥ विदग्धभिल्लरूपं हि गणैः सार्द्धं महाद्भुतम् । तस्य दैत्यस्य नाशार्थं द्रुतं कृत्वा समागतः ॥ २६ ॥ बद्धकच्छश्च बस्त्रीभिर्बद्धेशानध्वजस्तदा । शरीरे श्वेतरेखाश्च धनुर्बाणयुतः स्वयम् ॥ २७ ॥ बाणानान्तूणकं पृष्ठे धृत्वा वै स जगाम ह । गणश्चैव तथा जातो भिल्लराजोऽभवच्छिवः ॥ २८ ॥ शब्दांश्च विविधान्कृत्वा निर्ययौ वाहिनीपतिः । शूकरस्य ससाराथ शब्दश्च प्रदिशो दश ॥ २९ ॥ वनेचरेण शब्देन

तथा नेत्र और मुखके विकारोंसे मनके भीतरकी बात पहिचान ली जाती है ॥ १९ ॥ उज्ज्वल, सरस, तिरछा और लाल लाल इस प्रकार नेत्र चार प्रकारका कहा है, विद्वान् इनके आशयको भिन्न भिन्न प्रकारका बताते हैं २० मित्रके संयोगमें नेत्र उज्ज्वल होता है, पुत्रके दर्शनमें सरस होता है, कामिनी के मिलने पर वक्र (तिरछा) होता है और शत्रुका दर्शन होने पर लाल लाल होजाता है ॥ २१ ॥ इसके देखते ही मेरी सब इन्द्रियें कलुषित होरही हैं, अतः यह शत्रु ही होगा अतः मारने योग्य ही है ॥ २२ ॥ और मुझे गुरुकी भी आज्ञा है, कि-हे राजन् ! जो तुझे दुःख दे उसको तू विना विचारे मार ही डालना ॥२३॥ और मेरे आयुध भी तो इसी लिये हैं, यह विचार कर अर्जुन बाण लेकर खड़ा होगया ॥२४॥ इसी समय भक्तवत्सल शंकर अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये तथा उसकी भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिये और उस दैत्यका नाश करनेके लिये अपने गणोंके साथ सुशिक्षित भीलका परम अद्भुत रूप धारण कर तहाँ शीघ्र ही आपहुँचे ॥ २५ ॥ २६ ॥ वह कच्छ बाँधे हुए थे और उनके ईशानध्वजा लग रही थी, शरीरमें श्वेत रेखायें थीं और धनुष बाण धारण कर रहे थे ॥ २७ ॥ वह बाणोंके भाथेको पीठ पर रख कर चले, उनका कटक भी ऐसा ही रूप धारण कर रहा था, इस प्रकार शिव भिल्लराज बने हुए थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार वह वाहिनीपति अनेक प्रकारके शब्द करते हुए चले, उस समय शूकरका शब्द सब दिशाओंमें फैल रहा था ॥ २९ ॥ उस वनेचरके शब्दसे अर्जुन व्याकुल होगया और उन

व्याकुलश्चाशु नस्तदा। पर्वताद्याश्च तैश्शब्दैस्ते सर्वे व्याकुलास्तदा ॥ ३० ॥ अहो किन्नु भवेदेष शिवः शुभकरस्त्विह। मया चैव श्रुतम्पूर्वं कृष्णेन कथितम्पुनः ३१ व्यासेन कथितं चैव स्मृत्वा देवैस्तथा पुनः। शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरस्तथा ॥ ३२ ॥ मुक्तिदश्च स्वयं प्रोक्तो मुक्तिदानान्न संशयः। तन्नामस्मरणात्पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ भजतां सर्वभावेन दुःखं स्वप्नेऽपि नो भवेत्। यदा कदाचिज्जायेत तदा कर्मसमुद्भवम् ॥३४॥ भावि त्द्द्वह्यपि ज्ञेयं नूनमल्पं न संशयः। प्रारब्धस्याथ वा दोषो नूनं ज्ञेयो विशेषतः ॥ ३५ ॥ अथवा बहु चाल्पं हि भोग्यं निस्तीर्य शंकरः। कदाचिदिच्छया तस्य दूरीकुर्यान्न संशयः ॥ विषं चैवामृतं कुर्यादमृतं विषमेव वा। यदिच्छति करोत्येव समर्थः किन्निषिध्यते ॥ ३७ ॥ इत्थं विचार्य्यमाणेऽपि भक्तैरन्यैः पुरातनैः। भाविभिश्च सदा भक्तैर्विधानीय मनः स्थिरम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीर्गच्छेच्चावतिष्ठेन्मरणं निकटे पुरः। निन्दां वाथ प्रकुर्वन्तु स्तुतिं वा दुःखसंक्षयम् ॥३९॥ जायते पुण्यपापाभ्यां शंकरस्सुखदः सदा। कदाचिच्च परीक्षार्थं दुःखं यच्छति च शिवः ॥ ४० ॥ अन्ते च सुखदः

शब्दोंसे पर्वत भी झन्ना उठे ॥ ३० ॥ अहो ! क्या यह शुभ करने वाले शिव तो नहीं हैं, मैंने शंकरको शुभ करने वाला सुना है और श्रीकृष्णजी ने भी शम्भुको शुभ करने वाला कहा है ॥ ३१ ॥ व्यासजीने भी शिवको शुभ करने वाला कहा है तथा देवताओंने भी शिवको सुख देने वाला कहा है ॥ ३२ ॥ शिव मुक्ति देते हैं अतः मुक्तिदाता कहाते हैं, उनके नामका स्मरण करनेसे पुरुषोंका कल्याण अवश्य होता है ॥ ३३ ॥ जो पूर्णभाव से शिवका भजन करते हैं उनको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता, यदि कदाचित् कर्मवश दुःख आ ही पड़ता है तो वह भी थोड़ा ही भोगना पड़ता है, अथवा उसको प्रारब्धका ही दोष समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथवा शंकर थोड़े वा बहुत कर्मफलका भोग करा कर अपनी इच्छासे उसको दूर कर देते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥३६॥ वह विषको अमृत कर सकते हैं अमृतको विष कर सकते हैं, वह जो इच्छा करें वही कर सकते हैं, समर्थ पुरुषसे कौन निषेध कर सकता है ॥ ३७ ॥ प्राचीन भक्तोंका ऐसा विचार है, भविष्यमें भी भक्तोंको इसी विचार पर मन दृढ़ रखना चाहिये ॥३८॥ लक्ष्मी चाहे चली जाय अथवा रहे मरण सामने ही नाचने लगे, मनुष्य निन्दा करें अथवा स्तुति (शंकरके भजनसे सर्वथा) दुःखोंका नाश होता है ॥३९॥ पुण्यात्मा हो वा पापी (अपने भक्तोंको) शंकर सदा सुख देते हैं, यह शंकर कभी परीक्षा लेनेके लिये दुःख देते हैं ॥४०॥ अन्तमें दयालुताके कारण सुख ही पहुँचाते हैं, जैसे शोधा जाने पर सुवर्ण शुद्ध होजाता

प्रोक्तो दयालुस्त्वान्न संशयः । यथा चैव सुवर्णं च शोधितं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥ एवं चैव मया पूर्वं श्रुतं मुनिमुखात्तथा । अतस्तद्भजनेनैव लप्स्येऽहं सुखमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ इत्येवन्तु विचारं स करोति यावदेव हि । तावच्च सूकरः प्राप्तो बाणसम्मोक्षनावधिः ॥४३॥ शिवोऽपि पृष्ठतो लग्नो ह्यायातः शूकरस्य हि । तयोर्मध्ये तदा सोऽयं दृश्यते शृङ्गमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ तस्य प्रोक्तं च माहात्म्यं शिवः शीघ्रतरं गतः । अर्जुनस्य च रक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्समये ताभ्यां कृतं बाणविमोचनम् । शिवबाणस्तु पुच्छे वै ह्यर्जुनस्य मुखे तथा ॥४६॥ शिवस्य पुच्छतो गत्वा मुखान्निस्सृत्य शीघ्रतः । भूमौ विलीनः संयातस्तस्य वै पुच्छतो गतः ॥ ४७ ॥ पपात पार्श्वतश्चैव बाणश्चैवार्जुनस्य च । सूकरस्तत्क्षणं दैत्यो मृतो भूमौ पपात ह ॥४८॥ देवा हर्षं परम्प्रापुः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे । जयपूर्वं स्तुतिकराः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ४९ ॥ शिवस्तुष्टमना आसीदर्जुनः सुखमागतः । दैत्यस्य च तदा दृष्ट्वा क्रूरं रूपं च तौ तदा ॥ ५० ॥ अर्जुनस्तु विशेषेण सुखिना प्राह चेतसा । अहो दैत्यवरश्चायं रूपं तु परमाद्भुतम् ॥ ५१ ॥ कृत्वाऽगतो मद्वधार्थं शिवेनाहं सुरक्षितः । ईश्वरेण ममाद्यैव बुद्धिर्दत्ता न संशयः ५२

है ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार मुनियोंके मुखसे (शम्भुकी परीक्षाके विषयमें) सुना है, अतः मैं उनके भजनसे ही उत्तम सुखको पाऊँगा ॥ ४२ ॥ अर्जुन इस प्रकार विचार ही रहा था, कि-इसी समय शूकर बाण छोड़नेकी अवधि पर आपहुँचा ॥४३॥ शिव भी शूकरके पीछे २ लगे हुए ही आपहुँचे, उनके बीचमें यह पर्वत शिखर अद्भुत दीखता था ॥ ४४ ॥ इस शिखरका माहात्म्य भी कहा है, इधर भक्तवत्सल शंकर अर्जुनकी रक्षाके लिये शीघ्र ही बढ़े ॥ ४५ ॥ इसी समय उन दोनोंने बाण छोड़ा, शिवका बाण पूँछ पर पड़ा और अर्जुनका बाण मुख पर पड़ा ॥ ४६ ॥ शिवका बाण पूछमें को हो मुखमेंको निकल शीघ्र ही भूमिमें घुस गया और अर्जुनका बाण पूँछमें पहुँचा ॥ ४७ ॥ इस प्रकार अर्जुनका बाण पसली पर निकल गया, तब सूकर देहधारी दैत्य मर कर भूमिमें गिर पड़ा ॥४८॥ उस समय देवता हर्षमें भरकर पुष्पवृष्टि करने लगे जय जय करके और प्रणाम करके वारम्वार स्तुति करने लगे ॥ ४९ ॥ उस दैत्यके क्रूर रूपको देख शिवका मन प्रसन्न हुआ और अर्जुनको भी सुख मिला ॥५०॥ अर्जुन तो मनमें परम-सुखी होकर कहने लगा, अहो! यह दैत्यवर तो परम अद्भुत रूप धारण कर मुझे मारनेके लिये आया था, शिवने ही मेरी रक्षा की है, ईश्वरने ही इसको मारनेकी बुद्धि मुझे दी थी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह विचार कर अर्जुन

विचार्य्यैत्यर्जुनस्तत्र जगौ शिवशिवेति च। प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव च पुनःपुनः
इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने मूकदैत्य-
वधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

नन्दीश्वर उवाच । सनत्कुमार सर्वज्ञ श्रृणु लीलाम्परात्मनः । भक्तवात्सल्य-संयुक्तां तद्दृढत्वविदर्भितास् ॥ १ ॥ शिवोऽप्यथ स्वभृत्यं वै प्रेषयामास स द्रुतम् । बाणार्थे च तदा तत्रार्जुनोऽपि समगात्ततः ॥२॥ एकस्मिन् समये प्राप्तौ बाणार्थं तद्गणार्जुनौ । अर्जुनस्तं पराभर्त्स्य स्वबाणं चाग्रहीत्तदा ॥ ३ ॥ गणः प्रोवाच तं तत्र किमर्थं गृह्यते शरः । बाणश्चैवास्मदीयो वै मुच्यतां ऋषिसत्तम ४ इत्युक्तस्तेन भिल्लस्य गणेन मुनिसत्तमः । सोऽर्जुनः शंकरं स्मृत्वा वचनं चतम-ब्रवीत् ॥ ५ ॥ अर्जुन उवाच । अज्ञात्वा किं च वदसि मूर्खोऽसि त्वं वनेचर । बाणश्च मोचितो मेऽद्य त्वदीयश्च कथं पुनः ॥६॥ रेखारूपं च पिच्छानि मन्नामांकित एव च । त्वदीयश्च कथं जातः स्वभावो दुरत्यजस्तव ॥७॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येवन्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य स गणेश्वरः । अर्जुनं ऋषिरूपं तं भिल्लो वाक्यमुपाददे ॥८॥ तापस श्रूयतां रे त्वं न तपः क्रियते त्वया । वेषतश्च तपस्वी त्वं न यथार्थं छलायते ॥९॥ तपस्वी च कथं मिथ्या भाषते कुरुते नरः । नैका-

---

शिव शिव कहने लगा और शिवको प्रणाम कर बारम्बार स्तुति करने लगा ॥ ५३ ॥ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

नन्दीश्वरने कहा, कि–हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आप परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे भरी हुई और उनकी दृढ़ता भरी लीलाको सुनिये ॥ १ ॥ उस समय शिवने बाणके लिये अपने गणको भेजा इधर अर्जुन भी बाण के लिये तहाँ चला ॥ २ ॥ एक ही समयमें गण और अर्जुन बाणके लिये तहाँ पहुँचे, अर्जुनने गणको धमका कर अपना बाण लेलिया ॥ ३ ॥ गण ने कहा, कि–आप किस लिये बाणको लेते हैं, हे ऋषिसत्तम ! यह बाण हमारा है, इसको आप छोड़ दें ॥ ४ ॥ भीलके गणके इस प्रकार कहने पर मुनिसत्तम अर्जुन शिवका स्मरण कर उनसे कहने लगा ॥ ५ ॥ अर्जुनने कहा, कि–हे वनेचर ! तू विना जाने क्या कहता है, बाण मैंने छोड़ा था, फिर यह तेरा बाण कैसे होसकता है ॥ ६ ॥ इसकी रेखाके रूप और पूँछ पर मेरा ही नाम खुदा हुआ है फिर यह बाण तेरा कैसे होगया, वास्तवमें तेरा स्वभाव छूटना कठिन है ॥ ७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–अर्जुनके इस वचन को सुन वह गणेश्वर भील हँसा और ऋषिरूपधारी अर्जुनसे कहने लगा ८ रे तापस ! सुन ! तुम तप नहीं कर रहे हो, केवल वेषके ही तपस्वी हो सच्चे तपस्वी छल नहीं करते ॥ ९ ॥ तपस्वी मनुष्य किस प्रकार छल कर सकता

किन्तं च मां त्वं च जानीहि वाहिनीपतिम् ॥ १० ॥ बहुभिर्वनभिल्लैश्च युक्तः स्वामी स आसते । समर्थः सर्वथा कर्तुं निग्रहानुग्रहौ पुनः ॥ ११ ॥ वर्तते तस्य बाणोयं यो नीतश्च त्वयाऽधुना । अयं बाणश्च ते पार्श्वे न स्थास्यति कदाचन ॥ १२ ॥ तपः फलं कथं त्वं च हातुमिच्छसि तापस । चौर्याच्छलाद्यमानाच्च विस्मयात्सत्यभंजनात् ॥ १३ ॥ तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम् । तस्माच्च तपसस्तेऽद्य भविष्यति फलं कुतः ॥१४॥ तस्माच्च मुच्यते बाणात्कृतघ्नस्त्वं भविष्यसि । ममैव स्वामिनो बाणः स्वार्थे मोचितो ध्रुवम् ॥ १५ ॥ शत्रुश्च मारितस्तेन पुनर्बाणश्च रक्षितः । अत्यन्तं च कृतघ्नोऽसि तपोशुभकरस्तथा १६ सत्यं न भाषसे त्वं च किमतः सिद्धिमिच्छसि । प्रयोजनं चेद्बाणेन स्वामी च याच्यतां मम ॥ १७ ॥ ईदृशांश्च बहून्बाणांस्तदा दातुं क्षमः स्वयम् । राजा च वर्तते मेऽद्य किं त्वेवं याच्यते त्वया ॥ १८ ॥ उपकारं परित्यज्य ह्यपकारं समीहसे । नैतद्युक्तं त्वयाद्य वै क्रियते त्यज चापलम् ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्येवं वचनन्तस्य श्रुत्वा पार्थोऽर्जुनस्तदा । क्रोधं कृत्वा शिवं स्मृत्वा मितं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २० ॥ अर्जुन उवाच । शृणु भिल्ल प्रवक्ष्यामि न सत्यं तव

है, तुम मुझे अकेला न समझो, किन्तु सेनापति समझो ॥ २० ॥ हमारे स्वामी बहुतसे भीलोंके साथ बैठे हुए हैं, वह युद्ध तथा कृपा करनेमें सर्वथा समर्थ और स्वतंत्र हैं ॥ ११ ॥ जिस बाणको आप लिये जाते हैं यह उन का ही बाण है, परन्तु यह बाण कभी आपके पास नहीं रहेगा ॥ १२ ॥ हे तापस ! तुम तपके फलको क्यों छोड़ना चाहते हो, मैंने सुना है, कि-चोरी से छलपूर्वक पीड़ा देनेसे, विस्मय करनेसे और सत्यप्रतिज्ञाको तोड़नेसे प्राणी का तप क्षीण होजाता है, अतः तुमको तपका फल कैसे मिलेगा ॥१३॥१४॥ तुम इस बाणसे तपके फलसे शून्य और कृतघ्न होजाओगे, क्योंकि—मेरे स्वामीने आपके लिये ही यह बाण छोड़ा था ॥ १५ ॥ उन्होंने इस बाणसे शत्रुको मार डाला और बाणको भी सुरक्षित रक्खा, तुम तो बड़े कृतघ्न और तपमें अशुभ करने वाले निकले ॥ १६ ॥ तुम सत्यभाषण नहीं करते, फिर भी सिद्धिकी इच्छा करते हो, यदि तुम्हें बाणसे ही प्रयोजन है, तो मेरे स्वामीसे बाण माँग लो ॥ १७ ॥ वह हमारे राजा स्वयं ऐसे बहुतसे बाण देसकते हैं किन्तु तुम्हें याचना करनी चाहिये ॥ १८ ॥ तुम तो उपकारको त्याग कर अपकार करना चाहते हो, परन्तु यह तुम ठीक नहीं कर रहे हो, चपलताको त्याग दो ॥ १९ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि-पृथापुत्र अर्जुन उस के इस वचनको सुन कुपित हुआ और शिवका स्मरण कर मितवचन कहने लगा ॥ २० ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे भील ! सुन ! तेरा भाषण सत्य नहीं

भाषणम् । यथा जातिस्तथा त्वां च जानामि हि वनेचर ॥२१॥ अहं राजा भवा-श्चोरः कथं युद्धप्रयुक्तता । युद्धं मे सबलैः कार्यं नाधमैर्हि कदाचन ॥ २२ ॥ तस्मात्ते च तथा स्वामी भविष्यति भवादृशः । दातारश्च वयं प्रोक्ताश्चौरा यूयं वनेचराः ॥२३॥ कथं याच्यो मया भिल्लराज एवं च साम्प्रतम् । त्वमेव याचसे नैव बाणं मां किं वनेचर ॥ २४ ॥ ददामि ते तथा बाणान्सन्ति मे बहवो ध्रुवम् । राजा च ग्रहणं चैव न दास्यति तथा भवेत् ॥२५॥ किम्पुनश्च तथा बाणान्प्रय-च्छामि वनेचर । यदि मे या चिकीर्षा स्यात्कथं नागम्यतेऽधुना ॥ २६ ॥ यथा-गच्छतु ते भर्ता किमर्थं भाषतेऽधुना । आगत्य च मया सार्द्धं जित्वा युद्धे च मामुतः ॥ २७ ॥ नीत्वा बाणमिमं भिल्लस्वामी ते वाहिनीपतिः । निजालयं सुखं यातु विलम्बः क्रियते कथम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच । महेश्वरकृपाप्राप्तसद्बल-स्यार्जुनस्य हि । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भिल्लो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २९ ॥ भिल्ल उवाच । अज्ञोऽसि त्वं ऋषिर्नासि मरणं त्वीहसे कथम् । देहि बाणं सुखन्तिष्ठ त्वन्यथा क्लेशभाग्भवेः ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्तेन भिल्लेन शिव-सच्छक्तिशोभिना । गणेन पाण्डवस्तं च प्राह स्मृत्वा च शंकरम् ॥३१॥ अर्जुन

है, हे वनेचर ! तेरी जैसी जाति है उसको मैं जानता हूँ ॥२१॥ मैं राजा हूँ, तू चोर है, हम दोनोंमें युद्ध होना अनुचित है, मुझे सबल पुरुषोंसे युद्ध करना चाहिये, अधम पुरुषोंसे मैं युद्ध नहीं करता ॥ २२ ॥ और तुम्हारा स्वामी भी तुम्हारी ही समान होगा, हम दाता कहलाते हैं और वनमें भटकने वाले तुम चोर कहलाते हो ॥ २३ ॥ इस दशामें मैं भीलराजसे कैसे याचना करूँ, हे वनेचर ! तू ही मुझसे याचना क्यों नहीं कर लेता ॥ २४ ॥ मैं तुझे ऐसे बाण देसकता हूँ, मेरे पास ऐसे बहुतसे बाण हैं, राजा लेगा नहीं, राजा देसकता है ॥ २५ ॥ हे वनेचर ! मैं बाण दे सकता हूँ, यदि मेरी परीक्षा करनेका विचार हो तो वह तेरे स्वामी आते क्यों नहीं ॥ २६ ॥ तुम बातें क्यों बना रहे हो, जिस प्रकार तुम्हारा स्वामी आवे तैसा करो, वह आकर युद्धमें मुझे जीतलें ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह तुम्हारे भीलस्वामी जो सेना-पति हैं इस बाणको लेकर अपने घरको सुखपूर्वक चले जावें, तुम विलम्ब क्यों लगा रहे हो ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--महेश्वरकी कृपासे जिसको श्रेष्ठ बल प्राप्त होरहा था उस अर्जुनके इस वचनको सुन कर वह भील कहने लगा ॥ २९ ॥ भीलने कहा, कि--तुम ऋषि नहीं हो अज्ञ हो, तुम अपना मरण क्यों चाहते हो, तुम बाण देकर सुख भोगो, अन्यथा तुम्हें दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ३० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--उस शिवकी श्रेष्ठ भक्तिसे सुशोभित भीलरूपधारी गणके इस प्रकार कहने पर पाण्डुपुत्र अर्जुन शिवका स्मरण

उवाच । मद्वाक्यन्तस्त्वतो भिल्ल श्रृणु त्वं च वनेचर । आगमिष्यति ते स्वामी दर्शयिष्ये फलन्तदा ॥ ३२ ॥ न शोभते त्वया युद्धं करिष्ये स्वामिना तव । उपहासकरं ज्ञेयं युद्धं सिंहश्रृगालयोः ॥ ३३ ॥ श्रुतं च मद्वचस्तेऽद्य द्रक्ष्यसि त्वं महाबलम् । गच्छस्व स्वामिनं भिल्ल यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्तस्तु गतस्तत्र भिल्लः पार्थेन वै मुने। शिवावतारो यत्रास्ते किरातो वाहिनीपतिः ॥ ३५ ॥ अथार्जुनस्य वचनं भिल्लनाथाय विस्तरात्। सर्वं निवेदयामास तस्मै भिल्लपरात्मने ॥३६॥ स किरातेश्वरः श्रुत्वा तद्वचो हर्षमागतः। आजगाम स्वसैन्येन शंकरो भिल्लरूपधृक् ॥३७॥ अर्जुनश्च तदा सेनां किरातस्य च पाण्डवः। दृष्ट्वा गृहीत्वा सशरन्धनुः सम्मुख आययौ ॥ ३८ ॥ अथो किरातश्च पुनः प्रेषयामास तं चरम्। तन्मुखेन जगौ वाक्यम्भारताय महात्मने ॥ ३९ ॥ किरात उवाच । पश्य सैन्यं तपस्विस्त्वं मुञ्च बाणं व्रजाधुना । मरणं स्वल्पकार्यार्थं कथमिच्छसि साम्प्रतम् ॥४०॥ भ्रातरस्तव दुःखार्त्ताः कलत्रं च ततः परम्। पृथिवी हस्ततस्तेऽद्य यास्यतीति मतिर्मम ॥ ४१ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तं परमेशेन पार्थदार्ढ्यपरीक्षया । सर्वथार्जुनरक्षार्थं धृतरूपेण

कर कहने लगा ॥ ३१ ॥ अर्जुनने कहा, कि–हे वनचारी भील! तू मेरी सार बात सुन, जब तेरा स्वामी आवेगा, तब मैं फल दिखाऊँगा ॥ ३२ ॥ तेरे साथ युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता, मैं तेरे स्वामीके साथ युद्ध करूँगा, क्योंकि–सिंह और गीदड़का युद्ध तो उपहास कराता है ॥ ३३ ॥ तूने मेरा वचन सुन लिया अब तू मेरे बलको भी देख सकेगा, हे भील! अब तू अपने स्वामीके पास चला जा अथवा जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर ।३४। नन्दीश्वरने कहा, कि–हे मुने! पार्थके इस प्रकार कहने पर वह भील, जहाँ वाहिनीपति शिवावतार किरात थे तहाँ पहुँचा ॥३५॥ और उन भीलरूपी परमात्मा भीलनाथसे अर्जुनका वचन विस्तारपूर्वक कहा।।३६॥ वह किरातराज उसके वचनको सुन हर्षमें भर गए और भीलरूपधारी शंकर हर्षमें भर अपनी सेनाके साथ तहाँ आगए ॥ ३७ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुन भी किरातकी सेनाको देख बाण चढ़ा धनुष उठा सामने आकर डट गए ॥ ३८ ॥ फिर किरातने उस दूतको दूसरी वार भेजा और उसके मुखसे भरतवंशी महात्मा अर्जुनसे कहा ॥ ३९ ॥ किरातने कहा, कि–हे तपस्विन्! तुम सेनाको देख बाण छोड़ कर भाग जाओ थोड़ेसे कार्यके लिये अब आप क्यों मरना चाहते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे भाई और स्त्री बड़े दुःखी होंगे और पृथ्वी भी तुम्हारे हाथसे चली जावेगी, ऐसा मेरा विचार है ॥ ४१ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–अर्जुनकी भली भाँति रक्षा करनेके लिये रूप धारण करने वाले शम्भु पर-

शम्भुना ॥ ४२ ॥ इत्युक्तस्तु तदागत्य स गणश्शांकरश्च तत्। विस्तराद् वृत्तमखिलमर्जुनाय न्यवेदयत् ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वा तु पुनः प्राह पार्थस्तं दूतमागतम्। वाहिनीपतये वाच्यं विपरीतं भविष्यति ॥ ४४ ॥ यद्यहं चैव ते बाणं यच्छामि च मदीयकम्। कुलस्य दूषणं चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ ४५ ॥ भ्रातरश्चैव दुःखार्ता भवन्तु च तथा ध्रुवम्। विद्याश्च निष्फला मे स्युस्तस्मादागच्छ वै ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ सिंहश्चैव शृगालाद्वा भीतो नैव मया श्रुतः। तथा वनेचराद्राजा न बिभेति कदाचन ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्तस्तं पुनर्गत्वा स्वामिनं पाण्डवेन सः। सर्वं निवेदयामास तदुक्तं हि विशेषतः ॥ ४८ ॥ अथ सोऽपि किराताख्यो महादेवस्ससैन्यकः। तच्छ्रुत्वा सैन्यसंयुक्तो ह्यर्जुनं चागमत्तदा ४९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

समागतन्ततो दृष्ट्वा ध्यानं कृत्वा शिवस्य सः। गत्वा तत्रार्जुनस्तेन युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ १ ॥ गणश्च विविधैस्तीक्ष्णैरायुधैस्तं न्यपीडयत्। तैस्तदा पीडितः पार्थः सस्मार स्वामिनं शिवम् ॥ २ ॥ अर्जुनश्च तदा तेषां बाणावलिमथाच्छिनत्। यदा युद्धं च तैः क्षिप्तं ततः शर्वं परामृशत् ॥ ३ ॥ पीडितास्ते गणास्तेन

मेश्वरने पार्थकी दृढ़ताकी परीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कहने पर शंकरका गण तहाँ पहुँचा और विस्तारपूर्वक सब बात अर्जुनसे कह दी ॥ ४३ ॥ इस बातको सुन उस आये हुए दूतसे पार्थने फिर कहा, कि—अपने सेनापतिसे कहना कि—उल्टी बात होगी ॥ ४४ ॥ यदि मैं तुम्हें अपना बाण देदूँगा तो मैं कुलको दोष लगाने वाला होजाऊँगा ४५ मेरे भाई चाहें दुःखी हों और चाहें मेरी विद्या निष्फल होजाय, परन्तु तुम बढ़ो तो सही ॥ ४६ ॥ मैंने कभी सिंहको गीदड़से डरता हुआ नहीं सुना, इसी प्रकार वनेचरसे क्षत्रिय कभी डरा नहीं करता ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—इस प्रकार कहने पर वह फिर अपने स्वामीके पास पहुँचा और जो कुछ कहा था वह सब विशेष रूपसे कह दिया ॥ ४८ ॥ इस बातको सुन वह किरातावतारधारी महादेव भी अपनी सेनाके साथ अर्जुन पर चढ़े ॥ ४९ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

अर्जुन किरातवेशधारी महादेवको आये देख शिवका ध्यान कर उनके पास पहुँच उनसे दारुण युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ उस समय महादेव अनेक प्रकारके गणोंसे और तीक्ष्ण आयुधोंसे अर्जुनको पीड़ा देने लगे, तब पीड़ा पाकर पार्थने अपने स्वामी शिवका स्मरण किया ॥ २ ॥ तदनन्तर अर्जुनने उनकी बाणावलिको काट डाला, जब उनसे युद्ध होचुका तब शिव

ययुश्चैव दिशो दश। गणेशा वारितास्ते च नाजग्मुस्स्वामिनं प्रति ॥ ४ ॥ शिवश्चैवार्जुनश्चैव युयुधाते परस्परम्। नानाविधैश्चायुधैर्हि महाबलपराक्रमौ ॥ ५ ॥ शिवोऽपि मनसा नूनं दयां कृत्वार्जुनं ह्यगात्। अर्जुनश्च दृढं तत्र प्रहारं कृतवांस्तदा ॥६॥ आयुधानि शिवस्सो वै ह्यर्जुनस्याछिनत्तदा। कवचानि च सर्वाणि शरीरं केवलं स्थितम् ॥ ७ ॥ तदार्जुनः शिवं स्मृत्वा मल्लयुद्धं चकार सः। वाहिनीपतिना तेन भयात्क्लिष्टोऽपि धैर्यवान् ॥ ८ ॥ तद्युद्धेन मही सर्वा चकम्पे ससमुद्रका। देवा दुःखं समापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवः शिवो गगनमास्थितः। युद्धं चकार तत्रस्थस्सोऽर्जुनश्च तथाऽकरोत् ॥१०॥ उड्डीयोड्डीय तौ युद्धं चक्रतुर्देवपार्थिवौ। देवाश्च विस्मयं प्रापू रणं दृष्ट्वा तदाद्भुतम् ॥ ११ ॥ अथार्जुनोत्तरं ज्ञात्वा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्। दधार पादयोस्तं वै तद्ध्यानादाप्तसद्बलः ॥ १२ ॥ धृत्वा पादौ तदा तस्य भ्रामयामास सोऽर्जुनः। विजहास महादेवो भक्तवत्सल ऊतिकृत् ॥ १३ ॥ दातुं स्वदासतान्तस्मै भक्तवश्यतया मुने। शिवेनैव कृतं ह्येतच्चरितन्नान्यथा भवेत् ॥ १४ ॥ पश्चाद्विहस्य तत्रैव शंकरो रूपमद्भुतम्। दर्शयामास सहसा भक्तवश्यतया शुभम् ॥ १५ ॥

पर झपटा ॥ ३ ॥ उस समय गण अर्जुनसे पीड़ा पाकर दशों दिशाओंमें को भाग रहे थे, अर्जुनने गणेशोंको भी हटा दिया था अतः वे स्वामीके पास फटके नहीं ॥ ४ ॥ तदनन्तर महाबली अर्जुन और परमपराक्रमी शिव भी अनेक प्रकारके आयुधोंसे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ शिवने मनमें दया रखकर अर्जुन पर प्रहार किया और अर्जुनने दृढ़तापूर्वक शिव पर प्रहार किया ॥ ६ ॥ फिर शिवने अर्जुनके कवच और आयुधोंको काट डाला, अर्जुन शरीरमात्रसे ही खड़ा रह गया ॥ ७ ॥ तदनन्तर भयवश क्लेश पाता हुआ अर्जुन धैर्य धरकर शिवका स्मरण कर उन वाहिनीपतिसे युद्ध करने लगा ॥ ८ ॥ उस युद्धसे समुद्र तककी पृथ्वी काँप उठी, देवता दुःखित होकर विचारने लगे, कि—अब क्या होगा ? ॥ ९ ॥ इसी समय शिव आकाशमें खड़े होकर वहाँसे युद्ध करने लगे तब अर्जुनने भी वैसा ही किया ॥ १० ॥ वे देवता और क्षत्रिय जब उड़ उड़ कर युद्ध करने लगे तब उस अद्भुत रणको देखकर देवताओंको विस्मय होने लगा ॥११॥ तदनन्तर अर्जुनने उत्तर (काट) जानकर शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर उस ध्यानसे श्रेष्ठ बल पा उनके पैर पकड़ लिये ॥ १२ ॥ फिर अर्जुन उनके पैर पकड़ उनको घुमाने लगा, तब रक्षक भक्तवत्सल महादेव हँसने लगे ॥१३॥ हे मुने ! भक्तोंके अधीन होनेके कारण अर्जुनको अपनी दासता देनेके लिये शिवने ही यह चरित्र किया था, अन्यथा ऐसा नहीं होसकता था ॥ १४ ॥

यथोक्तं वेदशास्त्रेषु पुराणे पुरुषोत्तम। व्यासोपदिष्टं ध्यानाय तस्य यत्सर्वसि- द्धिदम् ॥१६॥ तद् दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं ध्यानमार्गं शिवस्य तु। बभूव विस्मितोऽतीव ह्यर्जुनो लज्जितः स्वयम् ॥ १७ ॥ अहो शिवः शिवकरोऽयं यो मे प्रभुतया वृतः। त्रिलोकेशः स्वयं साक्षाद्धा कृतं किं मयाऽधुना ॥ १८ ॥ प्रभोर्बलवती माया मायिनामपि मोहिनी। किं कृतं रूपमाच्छाद्य प्रभुणा छलितो ह्यहम् ॥१९॥ धियेति संविचार्यैवं साञ्जलिर्नतमस्तकः। प्रणनाम प्रभुं प्रीत्या तदोवाच स खिन्नधीः॥ अर्जुन उवाच। देवदेव महादेव करुणाकर शंकर। ममापराधं सर्वेश क्षन्तव्यश्च त्वया पुनः ॥ २१ ॥ किं कृतं रूपमाच्छाद्य छलितोऽस्मि त्वयाऽधुना। धिङ् मां समरकर्तारं स्वामिना भवता प्रभो ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्येवं पाण्डव- सतोऽथ पश्चात्तापमवाप सः। पादयोर्निपपाताशु शंकरस्य महाप्रभोः ॥२३॥ अथे- श्वरः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचार्जुनं च तम्। समाश्वासयेति बहुशो महेशो भक्त- वत्सलः ॥ २४ ॥ शंकर उवाच। न खिद्य पार्थ भक्तोऽसि मम त्वं हि विशेषतः। परीक्षार्थं मया तेऽद्य कृतमेवं शुचञ्जहि ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा तं

भक्ताधीन शंकरने हँसनेके उपरान्त सहसा अपना अद्भुत शुभ रूप दिखाया१५ हे पुरुषोत्तम! पुराण और वेदशास्त्रोंमें जैसा रूप बताया है और व्यासजी ने ध्यान करनेके लिये जैसा रूप बताया था उसी सब प्रकारकी सिद्धि देने वाले रूपको शंकरने दिखाया ॥ १६ ॥ अर्जुन जिस सुन्दर रूपका ध्यान करता था उसी रूपको देखकर विस्मित और लज्जित होगया ॥१७॥ अहो! जिनको मैंने प्रभुरूपमें वरण कर लिया था वह कल्याण करनेवाले त्रिलोकी के स्वामी शिव यही हैं, हा! यह मैंने इस समय क्या कर डाला ॥ १८ ॥ अहो! प्रभुकी माया बड़ी प्रबल है यह माया वालोंको भी मोहमें डाल देती है, अहो! प्रभुने मुझे छल लिया, यह रूप छिपा कर प्रभुने क्या किया १९ अपनी बुद्धिसे इस प्रकार विचार कर उसने मस्तक झुका हाथ जोड़कर प्रभु को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और खिन्न बुद्धिसे कहने लगा ॥ २० ॥ अर्जुन ने कहा, कि—हे करुणाकर देवदेव महादेव सर्वेश शंकर! आप मेरे अप- राधको क्षमा करिये ॥२१॥ आपने रूप छिपा कर क्या किया? आपने इस समय मुझे छल लिया, हे प्रभो! आप स्वामीके साथ युद्ध करने वाले मुझे धिक्कार है ॥ २२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—पाण्डुपुत्र अर्जुन इस प्रकार पश्चाताप करके महाप्रभु शंकरके चरणोंमें लोट गया ॥ २३ ॥ तब ईश्वर शिव प्रसन्न होकर अर्जुनसे बोले, भक्तवत्सल महेशने अर्जुनको अनेक प्रकारसे ढाढस दिया ॥ २४ ॥ शंकरने कहा, कि—हे पार्थ! तू खेद न कर तू तो मेरा परम भक्त है, मैंने तेरी परीक्षा लेनेके लिये ही ऐसा किया था

स्वहस्ताभ्यामुत्थाप्य प्रभुरर्जुनम् । विलज्जं कारयामास गणैश्च स्वामिनो गणैः॥ पुनश्शिवोऽर्जुनमाह पाण्डवं वीरसम्मतम्। हर्षयन् सर्वथा प्रीत्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २७ ॥ शिव उवाच । हे पार्थ पाण्डवश्रेष्ठ प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणु। प्रहारैस्ताडनैस्तेऽद्य पूजनम्मानितम्मया ॥ २८ ॥ इच्छया च कृतं मेऽद्य नापराधस्तवाधुना । नादेयम्विद्यते तुभ्यं यदिच्छसि वृणोष्व तत् ॥ २९ ॥ ते शत्रुषु यशोराज्यस्थापनाय शुभं कृतम्। एतद् खं न कर्तव्यं वैकल्यं च त्यजाखिलम् ॥३०॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तेन प्रभुणा शंकरेण सः । उवाच शंकरं भक्त्या सावधानतया स्थितः ॥३१॥ अर्जुन उवाच। भक्तप्रियस्य शम्भोस्ते सुप्रभो किं समीहितम् । दर्शनीयं मया देव कृपालुस्त्वं सदाशिव ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा संस्तुतिं तस्य शंकरस्य महाप्रभोः । चकार पाण्डवस्सोऽथ सद्भक्तिर्वेदसंमताम् ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच । नमस्ते देवदेवाय नमः कैलासवासिने । सदाशिव नमस्तुभ्यं पञ्चवक्त्राय ते नमः ॥ ३४ ॥ कपर्दिने नमस्तुभ्यन्त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते । नमः प्रसन्नरूपाय सहस्रवदनाय च ॥ ३५ ॥ नीलकंठ नमस्ते-

अतः तू शोकको त्याग दे ॥२५॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--इस प्रकार कह कर प्रभु शिवने उसको दोनों हाथोंसे उठाकर उसकी लज्जा दूर की और गणोंमें भी उसकी लज्जा दूरकी ॥२६॥ फिर भक्तवत्सल शंकर शिव वीरोंमें माननीय पाण्डवको सर्वथा प्रीतिपूर्वक हर्षित करते हुए कहने लगे ॥ २७ ॥ शिवने कहा, कि-हे पाण्डवश्रेष्ठ पार्थ ! मैं प्रसन्न हूँ तू वर माँग ! तेरे प्रहारों और ताड़नोंको मैंने पूजन समझ लिया ॥ २८ ॥ तूने इच्छासे मेरा कोई अपराध नहीं किया था, अतः तुम्हें न देने योग्य कोई वस्तु नहीं है, जो चाहे सो वर माँग ले ॥२९॥ तूने शत्रुओंमें यश और राज्य स्थापन करनेके लिये यह शुभ--कर्म किया है अतः तू इस घटनाका दुःख न मान और घबड़ाहट छोड़ दे ॥ ३० ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि--जब प्रभु शंकरने इस प्रकार कहा तब सावधान हुआ अर्जुन भक्तिपूर्वक शङ्करसे कहने लगा ॥ ३१ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे प्रभो ! हे देव ! आपको भक्त प्यारे हैं, आपकी कृपाका मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ ? क्योंकि—हे सदाशिव ! आप कृपालु हैं ॥ ३२ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुन इस प्रकार कहकर महाप्रभु शंकरकी वेदसम्मत भक्तिसे भरी हुई स्तुति करने लगा ॥३३॥ अर्जुनने कहा, कि--हे देवदेव ! आपके लिये प्रणाम है, कैलासमें रहने वालेके लिये प्रणाम है, हे सदाशिव ! आपको प्रणाम है आप पाँच मुख वालेको प्रणाम है ॥३४॥ आप कपर्दीके लिये प्रणाम है त्रिनेत्रको प्रणाम है प्रसन्न रूप वाले और सहस्र मुख वाले आपको प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे नीलकण्ठ ! आपको नमस्कार है,

ऽस्तु सद्योजाताय वै नमः । वृषध्वज नमस्तेऽस्तु वामांगगिरिजाय च ॥ ३६ ॥
दशदोष नमस्तुभ्यन्नमस्ते परमात्मने । डमरुकपालहस्ताय नमस्ते मुण्डमालिने ॥
शुद्धस्फटिकसंकाश शुद्धकर्पूरवर्ष्मणे । पिनाकपाणये तुभ्यन्त्रिशूलवरधारिणे ३७
व्याघ्रचर्मोत्तरीयाय गजाम्बरविधारिणे । नागांगाय नमस्तुभ्यं गंगाधर नमो-
ऽस्तु ते ॥ ३८ ॥ सुपादाय नमस्तेऽस्तु आरक्तचरणाय च । नन्द्यादिगणसेव्याय
गणेशाय च ते नमः ॥ ४० ॥ नमो गणेशरूपाय कार्तिकेयानुगाय च । भक्तिदाय
च भक्तानां मुक्तिदाय नमो नमः ॥ ४१ ॥ अगुणाय नमस्तेऽस्तु सगुणाय नमो-
नमः । अरूपाय सरूपाय सकलायाकलाय च ॥ ४२ ॥ नमः किरातरूपाय मदनु-
ग्रहकारिणे । युद्धप्रियाय वीराणां नानालीलानुकारिणे ॥ ४३ ॥ यत्किंचिद् दृश्यते
रूपन्तत्तेजस्तावकं स्मृतम् । चिद्रूपस्त्वं त्रिलोकेषु रमसेऽन्वयभेदतः ॥ ४४ ॥
गुणानान्ते न संख्यास्ति यथा भूरजसामिह । आकाशे तारकाणां हि कणानाम्बु-
दृष्यपामपि ॥४५॥ न ते गुणांस्तु संख्यातुं वेदा वै सम्भवन्ति हि । मन्दबुद्धिरहं नाथ
वर्णयामि च कम्पुनः ॥४६॥ सोऽसि योऽसि नमस्तेऽस्तु कृपां कर्तुमिहार्हसि ।

सद्योजातके लिये प्रणाम है, हे वृषध्वज ! वामांगमें गिरिजाको धारण करने वाले आपको प्रणाम है ॥३६॥ हे दशभुजा वाले ! आप परमात्माके लिये मैं अभिवादन करता हूँ, मुण्डोंकी माला और हाथमें डमरू तथा कपाल धारण करने वाले आपको प्रणाम है ॥३७॥ हे शुद्ध स्फटिककी समान वर्ण वाले ! शुद्ध कपूरकी समान शरीर वाले, पिनाकपाणि तथा श्रेष्ठ त्रिशूलको धारण करने वाले आपके लिये प्रणाम है॥ ३८ ॥ हे गंगाधर ! व्याघ्रचर्मका उत्तर-पट धारण करने वाले गजासुरका वस्त्र धारण करने वाले, अंगोंमें नाग वाले आपको प्रणाम है ॥ ३६ ॥ सुन्दर लाल लाल चरणों वालोंके लिये प्रणाम है, नन्दी आदि गणोंसे सेवित गणोंके स्वामीके लिये प्रणाम है ४० गणेशरूप, कार्तिकेयानुग तथा भक्तोंको भक्ति और मुक्ति देने वालेके लिये वारम्वार प्रणाम है ॥ ४१ ॥ गुणसम्पन्न, निर्गुण, रूपरहित और रूपवान्, कलारहित और कलासहित महादेवके लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥ मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये किरातरूप धारण करने वाले, वीरोंके युद्धको प्रिय समझने वाले अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने वाले महादेवके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ जो कुछ रूप दीखता है उनका तेज आपका ही तेज है, त्रिलोकीमें चिद्रूप आप ही अन्वयभावसे रमण करते हैं ॥४४॥ जैसे मृत्तिकाके कणोंकी, आकाशके तारोंकी, वर्षाकी बूँदोंकी कोई गिनती नहीं है वैसे ही आपके गुणोंकी भी कोई गिनती नहीं होसकती ॥ ४५ ॥ आपके गुणोंकी गिनती तो वेद भी नहीं कर सकते तो फिर मुझ मन्दबुद्धि

दासोऽहं ते महेशान स्वामी त्वं मे महेश्वर ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः प्रोवाच शंकरः। सुप्रसन्नतरो भूत्वा विहसन्प्रभुरर्जुनम् ॥ शंकर उवाच । वचसा किम्बहूक्तेन शृणुष्व वचनम्मम । शीघ्रं वृणु वरम्पुत्र सर्वन्तच्च ददामि ते । ४६ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्तश्चार्जुनस्तेन प्रणिपत्य सदाशिवम् । साञ्जलिर्नतकः प्रेम्णा प्रोवाच गद्गदाक्षरम् ॥ ५० ॥ अर्जुन उवाच किं ब्रूयां त्वं च सर्वेषामन्तर्यामितया स्थितः । तथापि वर्णितं मेऽद्य श्रूयतां च त्वया विभो ॥ ५१ ॥ शत्रूणां संकटं यच्च तद्गतन्दर्शनात्तव । ऐहिकीं च परां सिद्धिम्प्राप्नुयां वै तथा कुरु ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच । इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य शंकरम्भक्तवत्सलम् । नतस्कन्धोऽर्जुनस्तत्र बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ॥५३॥ शिवोऽपि च तथाभूतञ्ज्ञात्वा पाण्डवमर्जुनम् । निजभक्तवरं स्वामी महातुष्टो बभूव ह ॥ ५४ ॥ अस्त्रम्पाशुपतं स्वीयन्दुर्जयं सर्वदाखिलैः । ददौ तस्मै महेशानो वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ शिव उवाच । स्वं महास्त्रम्मया दत्तन्दुर्जयस्त्वम्भविष्यति । अनेन सर्वशत्रूणां जयकृत्यमवाप्नुहि ॥ ५६ ॥ कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यन्ते करिष्यति । स वै ममात्मभूतश्च मद्भक्तः कार्यकारकः ॥ ५७ ॥ मत्प्र-

---

से उनकी गिनती किस प्रकार होसकती है ॥ ४६ ॥ आप जो कुछ भी हैं आपके लिये प्रणाम है, आपको मुझ पर कृपा करना उचित है, हे महेशान! मैं आपका दास हूँ तथा हे महेश्वर! आप मेरे स्वामी हैं नन्दीश्वरने कहा, कि प्रभु शंकर अर्जुनके इस वचनको सुन परम प्रसन्न हो हँसकर उससे कहने लगे ॥ ४८ ॥ शंकरने कहा, कि–हे वत्स! अधिक कहनेसे क्या? तुम मेरी बात सुनो, शीघ्र वर माँग लो, मैं तुम्हें सब कुछ देसकता हूँ ॥४६॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–इस प्रकार कहने पर अर्जुन हाथ जोड़ मस्तक झुका सदाशिवको प्रणाम कर प्रेमपूर्वक गद्गद अक्षरोंमें कहने लगा ॥ ५० ॥ अर्जुनने कहा, कि–मैं क्या कहूँ, आप तो सबमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं, तथापि हे विभो! आप मेरी बात सुनिये ॥ ५१ ॥ शत्रुओंका जो संकट था वह आपके दर्शनसे दूर होगया, अब मुझे इस लोककी सर्वश्रेष्ठ सिद्धि जिस प्रकार प्राप्त हो वैसा करिये ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि–अर्जुन भक्तवत्सल शंकरसे इस प्रकार कह कंधा झुका हाथ जोड़ प्रणाम कर खड़ा होगया ॥ ५३ ॥ स्वामी शिव भी अर्जुनको ऐसी दशामें देख उसको अपना श्रेष्ठ भक्त जान परम प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ और सदा सबसे अजेय अपने पाशुपत अस्त्रको देकर महेश यह कहने लगे ॥ ५५ ॥ शिवने कहा, कि–मैंने तुझे अपना परमास्त्र देदिया इस अस्त्रसे तू सब शत्रुओंसे दुर्जय होजावेगा तेरी विजय हो ॥ ५६ ॥ मैं श्रीकृष्णसे भी कहूँगा, वह तेरी सहायता करेंगे,

भाव द्वारत त्वं राज्यन्निष्कण्टकं कुरु। धर्मान्नानाविधान्भ्रात्रा कारय त्वं च सर्वदा ॥ ५८ ॥ नन्दीश्वर उवाच। इत्युक्त्वा निजहस्तं च धृत्वा शिरसि तस्य सः। पूजितो ह्यर्जुनेनाशु शंकरोऽन्तरधीयत ।५९॥ अथार्जुनः प्रसन्नात्मा प्राप्यास्त्रं च वरं प्रभोः। जगाम स्वाश्रमे मुख्यं स्मरन्भक्त्या गुरुं शिवम् ॥६०॥ सर्वे ते भ्रातरः प्रीतास्तन्नः प्राणमिवागतम्। मिलित्वा तं सुखं प्रापुर्द्रौपदी चाति सुव्रता ॥ ६१ ॥ शिवं परं च सन्तुष्टम्पाण्डवाः सर्व एव हि। नातृप्यन्स-र्ववृत्तान्तं श्रुत्वा हर्षमुपागताः ॥६२॥ आश्रमे पुष्पवृष्टिश्च चन्दनेन समन्विता। पपात सुकरार्थं च तेषाञ्चैव महात्मनाम् ॥ ६३ ॥ धन्यं च शंकरं चैव नमस्कृत्य शिवम्मुदा। अवधिं चागतं ज्ञात्वा जयश्चैव भविष्यति ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णश्श्रुत्वाऽर्जुनमथागतम्। मेलनाय समायान्श्श्रुत्वा सुखमुपागतः ॥ ६५ ॥ अतश्चैव मयाख्यातः शंकरः सर्वदुःखहा। स सेव्यते मया नित्यं भवद्भिरपि सेव्यताम् । ६६ ॥ इत्युक्तस्ते किरातह्वोऽवतारश्शंकरस्य वै। तं श्रुत्वा श्रावयन्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ इत्यष्टाशीतयवताराः (८८) ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

वह मेरी आत्मा ही हैं, मेरे भक्त हैं और मेरा कार्य करने वाले हैं ॥ ५७ ॥ हे भारत! तुम मेरे प्रभावसे निष्कण्टक राज्य करोगे और अपने भाईसे सदा अनेक प्रकारके धर्म करवाने रहोगे ॥ ५८ ॥ नन्दीश्वरने कहा, कि—शंकर इस प्रकार कह अर्जुनके शिर पर अपना हाथ रख उससे पूजित हो शीघ्र ही अन्तर्धान होगए ॥ ५९ ॥ प्रभुसे अस्त्र और वर पा अर्जुन चित्त में प्रसन्न हो गुरु शिवका मनमें भक्तिपूर्वक स्मरण करता हुआ अपने आश्रम को चला गया ॥ ६० ॥ शरीरमें प्राण आनेकी समान वे सब भाई और सुव्रता द्रौपदी अर्जुनसे मिलकर परम सुखी हुए ॥ ६१ ॥ परमात्मा शिवको सन्तुष्ट हुआ सुन सब पाण्डव तृप्त न हुए तथा सब वृत्तान्तको सुन हर्षको प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ उन महात्माओंका शुभ शकुन करनेके लिये उनके आश्रम में चन्दन मिले पुष्पोंकी वृष्टि हुई ॥ ६३ ॥ उन्होंने धन्यवादके पात्र शिव शंकरको प्रणाम करके अपनी अवधिको आई हुई समझ कहा, कि—हमारी विजय होगी ॥ ६४ ॥ इसी समय श्रीकृष्ण अर्जुनको आया हुआ सुन सुखी हो मिलनेके लिये पधारे ॥ ६५ ॥ और कहने लगे, कि—मैंने इसीलिये कहा था, कि—शंकर सब दुःखोंका नाश करने वाले हैं मैं उनकी सेवा करता हूँ, आप भी उनकी सेवा करें ॥ ६६ ॥ यह मैंने शंकरका किरात नाम वाला अवतार कहा, इस को सुनने और सुनानेसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है ६७ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

* * *

नन्दीश्वर उवाच । अवताराञ्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्परान् । ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै नानोतिकारकान्मुने ॥१॥ सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः। उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥२॥ केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशंकरः । वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥३॥ वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने । सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ॥ ४ ॥ अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः । सर्वानन्दकरं पुंसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने ॥ ५ ॥ तत्राद्यस्सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयंकरः । क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ॥ ६ ॥ शिवावतारस्सोमेशो लिङ्गरूपेण संस्थितः । सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ॥७॥ चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशकम् । तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥ सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम्। दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥ मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारश्शंकरस्य वै । द्वितीयः श्रीगिरौ तात भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥ संस्तुतो लिंगरूपेण सुतदर्शनहेतुतः । गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने ॥ ११ ॥ ज्योतिर्लिंगं द्वितं यत्तद्दर्शनात्पूजनान्मुने । महासुखकरं चान्ते मुक्तिदन्नात्र संशयः १२

नन्दीश्वरने कहा, कि--हे मुने ! अब आप विभु शिवके ज्योतिर्लिङ्ग नामसे प्रसिद्ध अनेक प्रकारकी रक्षा करनेवाले बारह अवतारोंका वर्णन सुनिये १ सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, ओंकारमें अमरेश्वर, हिमाचल पर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, बनारसमें विश्वेश, गौतमीके तट पर त्र्यम्बक चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबंधमें रामेश्वर, शिवालयमें घुश्मेश ॥ २--४ ॥ हे मुने ! परमात्मा शंभुके यह द्वादश अवतार दर्शन और स्पर्शसे मनुष्योंको सब प्रकारका आनन्द प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥ हे मुने ! इनमें पहिले सोमनाथ नामक अवतारने चन्द्रमाके दुःखको क्षीण किया था, यह पूजन करनेसे क्षय कुष्ठ आदि रोगोंका नाश करता है ॥ ६ ॥ पूर्वकालमें चन्द्रमाने शुभ-देश सौराष्ट्रमें लिंगरूपमें स्थित शिवावतार सोमनाथकी पूजा की थी ॥ ७ ॥ तहाँ ही सब पापोंका नाश करने वाला चन्द्रकुण्ड है, उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ परमात्मा शिवके सोमेश्वर महालिंगका दर्शन करके मनुष्य पापसे मुक्त होजाता है और भोग भोगता है ॥ ९ ॥ हे तात ! शंकरके दूसरे अवतारका नाम मल्लिकार्जुन है, वह भक्तोंको अभीष्ट फल देने वाला अवतार श्रीगिरिमें प्रतिष्ठित है ॥ १० ॥ हे मुने ! सुतका दर्शन पानेके लिये उस ज्योतिर्लिंगकी स्तुति की जाती है, शिव अपने पर्वतसे परम प्रीतिपूर्वक तहाँ पधारे हैं ॥ ११ ॥ हे मुने ! यह दूसरा ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजन करने

महाकालाभिधस्तातावतारश्शंकरस्य वै । उज्जयिन्यां नगर्यां च बभूव स्वज-नावनः ॥ १३ ॥ दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् । उज्जयिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम् ॥ १४ ॥ वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् । भस्मसात्कृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम् ॥ १५ ॥ तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः । देवैस्स प्रार्थितोतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ॥ १६ ॥ महाकालाह्वयं लिंगन्दृष्ट्वाभ्यर्च्य प्रयत्नतः । सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ॥१७॥ ओङ्कारः परमेशानो धृतः शम्भोः परात्मनः । अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ।१८। विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिंगात्पार्थिवान्मुने । प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ॥ १९ ॥ देवैस्संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः । भुक्तिमुक्तिप्रदो लिंगरूपो वै भक्तवत्सलः ॥२०॥ प्रणवे चैव चोंकारनामासीलिंलगमुत्तमम् । परमेश्वरनामासीत्पार्थिवश्च मुनीश्वर ॥ २१ ॥ भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेयो योऽपि दृष्टोर्चितो मुने । ज्योतिर्लिंगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ॥ २२ ॥ केदारेशोऽवतारस्तु पंचमः परमश्शिवः । ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण केदारे संस्थितस्स च ॥ २३ ॥

से महासुख देता है और अंतमें मुक्ति देता है ॥ १२ ॥ हे तात ! शंकरका अपने भक्तोंकी रक्षा करने वाला महाकाल नाम वाला तीसरा अवतार उज्जैन में है ॥ १३ ॥ रत्नमालमें रहने वाला दूषण नामका असुर उज्जैनमें जा वेद-धर्मका नाश करता रहता था, विप्रोंसे द्वेष करता था और सब पुण्यकर्मोंमें विघ्न डालता था जब वेदविप्रके पुत्रने ध्यान किया तब शिवने उस असुरको हुंकारसे ही भस्म कर दिया था ॥१४॥१५॥ उसका संहार करनेके अनन्तर देवताओंके प्रार्थना करने पर अपने भक्तोंकी रक्षा करने वाले महादेव तहाँ महाकाल ज्योतिर्लिङ्गरूपसे प्रतिष्ठित होगए ॥१६॥ प्राणी महाकाल नाम वाले लिंगका प्रयत्नपूर्वक दर्शन पूजन करनेसे सब कामनाओंको पाता है और अंत में परम गति पाता है ॥ १७ ॥ भक्तोंको अभीष्ट फल देने वाला परमात्मा परमेश्वर शंभुने चौथा ओंकार नाम वाला अवतार धारण किया है ॥१८॥ हे मुने ! विंध्यके भक्तिपूर्वक स्थापित किये हुए अपने पार्थिव लिंगसे विंध्यकी कामना पूर्ण करनेके लिये महादेव आविर्भूत हुए थे ॥१९॥ लिंगात्मक भक्तवत्सल शम्भु भोग और मोक्ष देने वाले हैं, देवताओंके प्रार्थना करने पर वह दो रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! ओंकारमें ओंकार नामक लिंग हुआ और पार्थिव लिंग परमेश्वर नाम वाला हुआ ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसको दर्शन और पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फल देने वाला समझो, हे महामुने ! आपसे यह दो ज्योतिर्महालिंग कहे ॥ २२ ॥ शिवका केदार

नरनारायणाख्यौ यावबतारौ हरेर्मुने। तत्प्रार्थितशिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ॥ २४ ॥ ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः। भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि ॥ २५ ॥ अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः। सर्वकामप्रदस्तात सोऽवतारश्शिवस्य वै ॥ २६ ॥ भीमशंकरसंज्ञस्तु षष्ठश्शम्भोर्महाप्रभोः। अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः ॥ २७ ॥ सुदक्षिणाभिधम्भक्तङ्कामरूपेश्वरन्नृपम्। यो ररक्षाद्भुतं हत्वासुरन्तं भक्तदुःखदम् ॥ २८ ॥ भीमशंकरनामा स डाकिन्यां संस्थितस्स्वयम्। ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शंकरः२९ विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः। सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ॥३०॥ पूजितस्सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिस्सदा। कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः। स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ॥ ३२ ॥ काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः। निर्लिप्ताः कर्मभिर्न्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ॥ ३३ ॥ त्र्यम्बकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे। प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशि-

---

नामक अवतार पाँचवाँ है, यह केदारमें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित है ॥ २३ ॥ हे मुने! नर नारायण नाम वाले विष्णुके जो अवतार हैं उनके और केदार-निवासियोंके प्रार्थना करने पर वह हिमाचलके केदार नामक शिखर पर प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ २४ ॥ वे दोनों केदारेश्वरलिंगका सदा पूजन किया करते हैं, यह शंभु दर्शन और पूजनसे भक्तोंको अभीष्ट फल दिया करते हैं ॥ २५ ॥ शिव सर्वेश होने पर भी इस खण्डके विशेषरूपसे स्वामी हैं हे तात! यह शंकरका अवतार सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ २६ ॥ बड़ी २ लीला करने वाले महाप्रभु शंकरका छठा अवतार भीम-शंकर है, इसमें शिवने भीमासुरका संहार करा है ॥ २७ ॥ कामरूपके राजा भक्त सुदक्षिणको भक्तों को दुःख देने वाले भीमासुरका संहार कर शिवने बचाया था ॥ २८ ॥ और उस राजाके प्रार्थना करने पर डाकिनीमें भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ २९ ॥ हे मुने! काशीमें विश्वनाथ नामका सातवाँ अवतार है, यह सब ब्रह्माण्डका रूप है तथा भोग और मोक्ष देने वाला है ॥३०॥ सकल देवता विष्णु तथा कैलासपति भैरव इस लिंगका सदा भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं ॥ ३१ ॥ मुक्तिदाता प्रभु शंकर अपनी पुरीमें सिद्ध लिंग ज्योतिर्लिङ्ग-रूपसे प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥ भक्तिपूर्वक काशी और विश्वनाथ नामोंका जप करने वाले कर्मोंसे निर्लेप रहकर कैवल्य पद पाते हैं ॥३३॥ गौतमके प्रार्थना करने पर गौतमीके तट पर चन्द्रमौलिका आठवाँ त्र्यम्बक नामक अवतार हुआ

मौलिनः ॥ ३४ ॥ गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः । स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ॥ ३५ ॥ तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्च महेशितुः । सर्वे कामाः प्रसिद्ध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥३६॥ शिवानुग्रहतस्तत्र गंगानाम्ना तु गौतमी । संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ॥ ३७ ॥ वैद्यनाथावतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः । आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ ३८ ॥ तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः । ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः ॥ वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये । दर्शनात्पूजनाद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि ॥ ४० ॥ वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम् । पठतां शृण्वतां चापि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥ ४१ ॥ नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः । आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदस्सदा ॥ ४२ ॥ हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम् । स्वभक्तं वैश्यनाथं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ॥ ४३ ॥ लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपधृक् । सत्तस्थौ साम्बिकश्शम्भुर्बहुलीलाकरः परः ॥ ४४ ॥ तद् दृष्ट्वा शिवलिंगन्तु मुने नागेश्वराभिधम् । विनश्यन्ति द्रुतं चाशु महापातकराशयः ॥ ४५ ॥ रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः । रामचन्द्रप्रियकरो

है ॥ ३४ ॥ गौतम मुनिकी प्रार्थनासे उन मुनिको प्रसन्न करनेके लिये ज्योतिर्लिङ्गरूपसे शिव वहाँ प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ ३५ ॥ इस शिवलिंगका स्पर्श और दर्शन करनेसे सब काम सिद्ध होजाते हैं, तदनन्तर मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ शिवके अनुग्रहसे शंकरकी प्रिया पवित्र करने वाली गंगा गौतमकी प्रीतिवश गौतमी नामसे स्थित हैं ॥३७॥ इनमें वैद्यनाथ नाम वाला अवतार नवाँ है, प्रभुका अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने वाला यह अवतार वैद्यनाथ नामसे प्रसिद्ध है ॥३८॥ महेश्वर रावणके लाने रूप मिषसे ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे चिताभूमिमें प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ ३९ ॥ यह वैद्यनाथेश्वर नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध हैं और भक्तिपूर्वक दर्शन पूजन करनेसे भोग तथा मोक्ष देते हैं ॥ ४० ॥ हे मुने! वैद्यनाथेश्वर नामक शिवमाहात्म्य पढ़ने और सुनने वालोंको भोग तथा मोक्ष देता है ॥ ४१ ॥ नागेश्वरावतार दशम अवतार है, यह सदा दुष्टोंको दण्ड देता है और अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुआ है ॥ ४२ ॥ इसमें शिवने धर्मघातक दारुक नाम वाले राक्षसका संहार करके अपने भक्त वैश्यनाथ सुप्रियकी रक्षा की है ॥४३॥ फिर अनेक प्रकार की लीला करने वाले शंभु अम्बिकाके साथ लोगोंके उपकारके लिये ज्योतिर्लिङ्गका स्वरूप धारण कर विराजमान होगए हैं ॥ ४४ ॥ हे मुने! इस नागेश्वर नामक शिवलिंगका दर्शन करनेसे और पूजन करनेसे महापातकोंकी

रामसंस्थापितो मुने ॥ ४६ ॥ ददौ जयवरम्प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः । आविर्भूतस्सलिंगस्तु शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः । सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने ॥ ४८ ॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः । भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४९ ॥ तं च गंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यो नरः । रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ५० ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्लभानपि । अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशश्शंकरस्य हि । नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ॥ ५२ ॥ दक्षिणस्यान्दिशि मुने देवशैलसमीपतः । आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभुः ॥ ५३ ॥ सुदेहमारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने । तुष्टस्तद्भक्तितश्शम्भुर्योरक्षद्भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥ तत्प्रार्थितस्स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः । ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः ॥५५॥ तन्दृष्ट्वा शिवलिंगन्तु समभ्यर्च्य च भक्तितः । इह सर्वसुखम्भुक्त्वा ततो मुक्तिं च विन्दति ॥ ५६ ॥ इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिंगावली मया ।

राशि नष्ट होजाती है ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिवका ग्यारहवाँ रामेश्वरावतार है, हे मुने ! इसने रामचन्द्रका प्रिय किया था और यह रामचन्द्रजीका स्थापन किया हुआ है ॥ ४६ ॥ भक्तवत्सल शंकरने रामके सन्तुष्ट करने पर इस लिंग से आविर्भूत होकर प्रीतिपूर्वक रामको जय पानेका वरदान दिया था ॥ ४७ ॥ हे मुने ! रामके प्रार्थना करने पर यह ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे सेतुबंधमें स्थित हैं, रामने इनकी सेवाकी है ॥ ४८ ॥ पृथिवी पर रामेश्वरकी महिमा अतुल है, यह भोग तथा मोक्ष देने वाली है और भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करने वाली है ४९ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गंगाजलसे रामेश्वरको स्नान करावेगा वह जीवन्मुक्त ही है ॥५०॥ वह यहाँ देवताओंके लिये भी दुर्लभ भोगोंको भोग अंतमें परम ज्ञानको पा कैवल्य मोक्षको पाता है ॥ ५१ ॥ घुश्मेश्वरावतार शंकरका बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्गावतार है, यह अवतार भक्तवत्सल अनेक प्रकारकी लीला करने वाला तथा घुश्माको आनन्द देने वाला है ॥ ५२ ॥ हे मुने ! दक्षिण दिशामें देवशैलके पास सरोवरके तट पर घुश्माको आनन्द देनेवाले प्रभु प्रकट हुए हैं ५३ हे मुने ! इसमें सुदेहके मारे हुए घुश्माके पुत्रको घुश्माकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भक्तवत्सल शंभुने बचाया था ॥ ५४ ॥ और कामनाओंको पूर्ण करने वाले शंभु घुश्माके प्रार्थना करने पर उस सरोवर पर घुश्मेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग रूपमें प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ ५५ ॥ इस लिंगका भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे प्राणी इस लोकमें सब सुख भोग कर अन्तमें मुक्ति पाता है ५६

द्वादशप्रमिता दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ५७ ॥ एतां ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ५८ ॥ शतरुद्राभिधा चेयम्वर्णिता संहिता मया । शतावतारसत्कीर्तिस्सर्वकामफलप्रदा ५९ इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः । सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ ६० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे द्वादशज्योतिर्लिंगावतारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

समाप्तेयं तृतीया शतरुद्रसंहिता

इस प्रकार मैंने आपसे भोग और मोक्ष देने वाली दिव्य द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा कही ॥ ५७ ॥ जो इस ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथाको पढ़ता है वा सुनता है' वह सब पापोंसे बचता हुआ भोग और मोक्ष पाता है ॥ ५८ ॥ यह सौ अवतारोंकी कीर्तिसे भरी, सब कामनाओंको सफल करने वाली शतरुद्रसंहिता नामवाली संहिता आपसे कही ॥ ५९ ॥ जो सावधान होकर नित्य इसका पाठ करता है वा सुनता है, वह सब मनोरथोंको पाकर फिर मोक्ष पाता है ६० बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ * * *

शतरुद्रसंहिता समाप्त

मिलनेका पता—

सनातनधर्म प्रेस,

मुरादाबाद ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ-

श्रीमहाशिवपुराण

कोटिरुद्रसंहिता

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ । प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनस्तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥ १ ॥ कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् । करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः । सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया । शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ३ ॥ पुनश्च कथ्यतां तात शिवमाहात्म्यमुत्तमम् । लिंगसंबन्धि सुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥ ४ ॥ शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्ता-

---

नमः शिवाय । जो विकाररहित होने पर भी अपनी मायासे ही संसारके आकारको धारण कर लेते हैं, सज्जन स्वर्ग और मोक्षको जिनके करुणाकटाक्ष का वैभव बताते हैं, योगी जिन प्रत्यग्बोधसुख अद्वितीयका सदा हृदयमें दर्शन करते हैं उन शैलपुत्रीपत्नको प्राप्त अर्धशरीर वाले तेजःस्वरूप शंकरको सदा प्रणाम है ॥ १ ॥ कृपाभरी मनोहर दृष्टि, भयंकर तीनों तापोंको शान्त करने वाला चन्द्रमाकी कलासे उज्ज्वल मुस्कुराहटसे मनोहर मुखकमल, पर्वतपुत्रीकी भुजाओंका कंकणरूप परमसौख्यमय सच्चित्स्वरूप देह वाला हमें मंगलमय कोई उत्सव प्रदान करे ॥ २ ॥ ऋषियोंने कहा, कि-हे सूतजी ! आपने संसारी मनुष्योंके हितकी कामनासे अनेक प्रकारकी कथाओंसे भरा हुआ शिव के अवतारोंका माहात्म्य भलीप्रकार वर्णन किया ॥ ३ ॥ हे तात ! आप शिव के लिंगोंका उत्तम माहात्म्य प्रीतिपूर्वक फिर वर्णन करिये, आप श्रेष्ठ शिवभक्त हैं अतः धन्य हैं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! हम आपके मुखसे शिवयशोरूपी अमृतको

स्मो वयं प्रभो । शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ॥ ५ ॥ पृथिव्यां यानि लिंगानि तीर्थेतीर्थे शुभानि हि । अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ६ तानि तानि च दिव्यानि लिंगानि परमेशितुः । व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥ सूत उवाच, साधुपृष्टमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया । कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः ॥८॥ सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते । सर्वलिंगमयी भूमिः सर्वलिंगमयं जगत् ॥ ९ ॥ लिंगमयानि तीर्थानि सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् । संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद् ब्रवीम्यहम् ॥१०॥ यत्किंचिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत् । तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यद-स्तीति किंचन ॥ ११ ॥ तथापि श्रूयतां प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् । लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥ १२ ॥ पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि । सर्वत्र पूज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ॥ १३ ॥ त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् । अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः १४ अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः । दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा १५

सुन कर अभी तृप्त नहीं हुए हैं अतः इस रमणीय कथाका और वर्णन करिये ॥ ५ ॥ पृथिवी पर प्रत्येक तीर्थमें वा अन्यत्र किसी स्थल पर जो प्रसिद्ध लिंग हों ॥ ६ ॥ हे व्यासजीके शिष्य ! प्राणियोंका हित करनेके लिये परमेश्वर के उन दिव्य लिंगोंका आप वर्णन करिये ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा, कि-हे ऋषियोंमें श्रेष्ठ द्विजो ! आपने प्राणियोंका हित करनेके लिये अच्छी बात बूझी, आपके स्नेहको देखकर मैं उसका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥ हे मुने ! सकल शिव-लिंगोंकी गिनती नहीं की जासकती, क्योंकि-सारी भूमि पर शिवलिंग हैं और सब जगत्-शिवलिंगमय है ॥ ९ ॥ सब तीर्थ लिंगोंसे भरे हुए हैं, सब कुछ लिंगोंमें प्रतिष्ठित है अतः उनकी गिनती नहीं होसकती तथापि मैं उनमेंसे कुछका वर्णन करता हूँ ॥ १० ॥ जो कुछ दृश्य दीखता है, वर्णन किया है और जिसका स्मरण आता है, वह सब शिवरूप ही है और कुछ नहीं है ॥ ११ ॥ तो भी मैं जैसा मैंने सुना है, उसके अनुसार प्रेमपूर्वक कहता हूँ हे श्रेष्ठ ऋषियो ! पृथिवीमें जहाँ तहाँ बहुतसे लिंग हैं ॥१२॥ पाताल स्वर्ग तथा पृथ्वी पर सर्वत्र ही शिवलिंग विराजमान हैं, इस प्रकार शंभु देवता असुर और मनुष्यों द्वारा सर्वत्र पूजे जाते हैं १३ हे श्रेष्ठ ऋषियो ! प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये शिवने देवता मनुष्य और असुरों वाली त्रिलोकी लिंगरूपसे व्याप्त कर रखी है ॥ १४ ॥ महेश्वर प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये तीर्थोंमें तथा अन्य स्थलोंमें अनेक प्रकारके लिंगोंके रूपको धारण कर

यत्र यत्र यदा शम्भुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः । तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥ १६ ॥ लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्यकल्पयत् । तल्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ॥ १७ ॥ पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते । तथापि च प्रधानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः ॥१८॥ प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ १९ ॥ ज्योतिर्लिङ्गानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम । तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥ २० ॥ सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् । उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् । वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २२ ॥ वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने । सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥२३॥ द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥ २४ ॥ यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः । प्राप्स्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः ॥ २५ ॥ ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः । तेषां च जननीगर्भे

रहे हैं ॥ १५ ॥ शिवके भक्तोंने जहाँ जहाँ भक्तिपूर्वक स्मरण किया है, भगवान् तहाँ तहाँ ही अवतार धारण कर कार्य करके प्रतिष्ठित होगए हैं ॥ १६ ॥ लोकों पर उपकार करनेके लिये उन्होंने अपने लिंगोंको शक्तिसम्पन्न कर दिया है, उन लिंगोंका पूजन करनेसे प्राणी सिद्धि पाता है ॥१७॥ हे द्विजो ! पृथिवी पर जितने शिवलिंग हैं उनकी गिनती नहीं की जासकती, तथापि प्रधान २ शिवलिंगोंका मैं वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥ प्रधान स्थानोंमें जो मुख्य शिवलिंग हैं उनका मैं वर्णन करता हूँ, इनकी कथा सुननेसे मनुष्य क्षण भरमें मुक्त होसकता है ॥ १९ ॥ हे सज्जन ! अब मैं इस लोकके मुख्य मुख्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन करता हूँ, उनको सुननेसे मनुष्य पापको दूर कर देता है २० सौराष्ट्रके सोमनाथ, श्रीशैलके मल्लिकार्जुन, उज्जैनके महाकाल, ओंकारके परमेश्वर, हिमाचलके केदार, डाकिनीके भीमशङ्कर, काशीके विश्वेश्वर, गौतमीतटके त्र्यम्बक, चिताभूमिके वैद्यनाथ, दारुकावनके नागेश, सेतुबंधके रामेश्वर और शिवालयके घुश्मेश ॥२१-२३॥ इन बारह नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे बचने लगता है, अतः सब सिद्धियोंके फलको पाने लगता है ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वरो ! श्रेष्ठ मनुष्य जिस जिस कामनासे इन नामोंका पाठ करेंगे उन उन कामनाओंको इस लोकमें और परलोकमें भी पावेंगे ॥२५॥ और जो पवित्र चित्त तथा निष्काम भावसे इस नामावलिका पाठ करेंगे उनको माताके गर्भमें फिर नहीं बसना

नाशो नैव भविष्यति ॥ २६ ॥ एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम् । इहलोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम् ॥ २७ ॥ ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः । तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यन्ति वै क्षणात् ॥ २८ ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः । विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा ॥ २९ ॥ एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम् । तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम् ॥ हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति । तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ॥ ३१ ॥ सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः । शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम् ॥ ३२ ॥ म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः । द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत् ॥३३॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया । ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ३४ ॥ सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम् । मह्यास्सागरसंयोगे तल्लिंगमुपलिंगकम् ॥ ३५ ॥ मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृतम् । रुद्रेश्वरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम् ॥ ३६ ॥ महाकालभवं लिंगं दुग्धेशमिति विश्रुतम् । नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ॥३७॥ ॐकारजं च यल्लिंगं कर्दमेशमिति श्रुतम् ।

पड़ेगा ॥ २६ ॥ इनका पूजन करनेसे ही वर्णधर्मवालोंका दुःख नष्ट होगा, तथा इस लोकमें और परलोकमें मुक्ति प्राप्त होगी ॥२७॥ इनका नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक खाना चाहिये, ऐसा करने वालेके सकल पाप तत्क्षण नष्ट होजाते हैं ॥ २८ ॥ हे द्विजों ! ज्योतिर्लिंगोंका पूर्ण फल ब्रह्मा आदिक तथा दूसरे भी पूर्णरूपसे नहीं वर्णन कर सकते ॥ २९ ॥ जो पुरुष एक ज्योतिर्लिंगका भी निरन्तर छः मास तक पूजन कर लेता है उसको माता की कोखमें होने वाला (पुनर्जन्मरूप) दुःख नहीं भोगना पड़ता ॥ ३० ॥ यदि हीनयोनिमें उत्पन्न हुआ प्राणी ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करता है तो वह निर्मल सत्कुलमें जन्म पाता है ॥३१॥ सत्कुलमें जन्म पाकर धनाढ्य और वेदपारगामी होता है और उस समय शुभ कर्म करके अविनाशी मोक्ष पाता है ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरों ! म्लेच्छ हो अन्त्यज हो वा नपुंसक हो वह ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन से द्विजका जन्म पा मुक्त होजाता है, अतः ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करे ३३ ज्योतिर्लिङ्गोंका थोड़ासा फल मैंने कहा, हे ऋषिसत्तमों ! अब ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिंगोंको सुनिये ॥ ३४ ॥ सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्गका अन्तकेश नामक उपउपलिंग है, यह पृथिवी और समुद्रके संयोग पर प्रतिष्ठित है ॥ ३५ ॥ मल्लिकार्जुनका उपलिंग सुखदायक रुद्रेश्वर है यह भृगुकक्षमें प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ महाकालका उपलिंग दुग्धेश नामसे प्रसिद्ध है, यह नर्मदाके तट पर सब पापों

प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८ ॥ केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे । महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतान्तथा ॥ ३९ ॥ भीमशङ्करसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् । सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् । मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम् ॥४१॥ रामेश्वराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम् । घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्लिङ्गोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः । दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ॥४३॥ एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च । अन्यानि चापि मुख्यानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्योतिर्लिङ्गतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत उवाच । गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा । सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता ॥ १ ॥ लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम् । कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो वृद्धबालकः ॥ २ ॥ तिलभाण्डेश्वरश्चैव दशाश्वमेध एव च । गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः ॥३॥ भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो

का हरने वाला प्रसिद्ध है ॥३७॥ ओंकारका उपलिंग बिन्दुसरोवर पर कर्दमेश नामसे प्रसिद्ध है और सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला है ॥ ३८ ॥ केदारेश्वरका उपलिंग यमुन के तट पर भूतेश है, यह उपलिंग दर्शन और पूजन करने वालोंके महापापोंके हरने वाला है ॥ ३९ ॥ भीमशंकरका उपलिंग भीमेश्वर प्रसिद्ध है, यह सह्य-पर्वत पर महाबलकी वृद्धि करने वाला कहा है ॥ ४० ॥ नागेश्वरका उपलिंग भूतेश्वर कहा है, यह मल्लिका और सरस्वतीके तट पर प्रतिष्ठित है और दर्शन करनेसे पाप हरता है ॥ ४१ ॥ रामेश्वरसे प्रकट हुए उपलिंगका नाम गुप्तेश्वर है और घुश्मेश्वरके उपलिंग का नाम व्याघ्रेश्वर है ॥ ४२ ॥ हे द्विजों ! इस प्रकार मैंने यह ज्योतिर्लिङ्गों के उपलिंगोंका वर्णन कर दिया, ये दर्शन करनेसे पापोंको हरते हैं और सब इच्छाओंको पूर्ण करते हैं ॥४३॥ ये मुख्यताको प्राप्त हुए प्रधान लिंग कह दिये, हे ऋषिसत्तमों ! अब आप दूसरे मुख्यशिवलिंगोंका वर्णन सुनें ४४ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

सूतजीने कहा, कि--गंगाके तट पर मुक्ति देने वाली काशी सुप्रसिद्ध है, यह शिवलिंगोंसे ही गछी हुई है और शिवकी निवासभूमि कहाती है ॥१॥ तहाँ अविमुक्त नामक मुख्य शिवलिंग है तथा कृत्तिवासेश्वर और वृद्धबालक नामक इनकेसे ही शिवलिंग हैं ॥ २ ॥ तिलभाण्डेश्वर और दशाश्वमेध भी मुख्य लिंग हैं, गंगासागरके संगम पर संगमेश नामक शिवलिंग है ॥ ३ ॥

भक्तसर्वार्थदः सदा । नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्याः स समीपगः ॥ ४ ॥ वर्तते गण्डकीतीरे बटुकेश्वर एव सः । पूरेश्वर इति ख्यातः फल्गुतीरे सुखप्रदः ॥ ५ ॥ सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम् । दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा ॥ ६ ॥ शृङ्गेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च । जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ॥ ७ ॥ गोपेश्वरः समाख्यातो रंगेश्वर इति स्मृतः । वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ॥८॥ व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि । भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुंकारेशस्तथैव च ॥ ९ ॥ सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम् । संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः १० ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च । सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ॥ ११ ॥ रामेश्वर इति प्रोक्तो कुम्भेशश्च परो मतः । नन्दीश्वरश्च पुञ्जेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ॥ १२ ॥ ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा । दशाश्वमेधतीर्थे हि चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १३ ॥ तथा सोमेश्वरस्तत्र सर्वापद्विनिवारकः । भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चःप्रवर्द्धकः ॥ १४ ॥ शूलटंकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः । माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ॥१ ॥ नागेशाख्यः प्रसिद्धो

भूतेश्वर लिंग जिसका वर्णन ऊपर आचुका है वह भक्तोंके सकल मनोरथ पूर्ण करने वाला है, नारीश्वर नामका प्रसिद्ध शिवलिंग कौशिकीके समीप है ।।४।। गण्डकीके तट पर बटुकेश्वर नामक शिवलिंग है तथा सुखदायक पूरेश्वर नामक शिवलिंग फल्गुके तट पर प्रसिद्ध है ।। ५ ।। सिद्धनाथेश्वर दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंको सिद्धि देता है, दूरेश्वर शिवलिंग उत्तरकी ओर है ।।६।। शृंगेश्वर, वैद्यनाथ और जप्येश्वर दधीचि रणस्थलमें प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥ गोपेश्वर रंगेश्वर वामेश्वर नागेश कामेश और विमलेश्वर मुख्य शिवलिंग प्रसिद्ध हैं ॥ ८ ॥ व्यासेश्वर सुकेश भाण्डेश्वर और हुंकारेश मुख्य शिवलिंग हैं ॥ ९ ॥ सुरोचन प्रसिद्ध शिवलिंग है, भूतेश्वर भी स्वयं प्रसिद्ध है तथा संगमेश नामक शिवलिंग भी महापातकोंको नष्ट करने वाला है ।१०।। और तप्तका नदीके तट पर कुमारेश्वर शिवलिंग है, तथा सिद्धेश्वर और सेनेश नामक शिवलिंग भी प्रसिद्ध कहे हैं ॥ ११ ॥ रामेश्वर और कुम्भेश भी श्रेष्ठ लिंग माने जाते हैं, नन्दीश्वर पुञ्जेश और पूर्णामें पूर्णक महादेव हैं ।।१२।। ब्रह्माजीने पहिले प्रयागमें दशाश्वमेध तीर्थ पर सिद्धेश्वर शिवलिंगकी स्थापना की है यह धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों प्रकारका फल देने वाला है ।।१३।। वहाँ ही सब आपत्तियोंको दूर करने वाला सोमेश्वर नामक शिव–लिंग है और भारद्वाजेश्वर नामक शिव-लिंग ब्रह्मतेजका संचार करने वाला है ।।१४।। शूलटंकेश्वर शिवलिंग कामना पूर्ण करनेवाला कहा है और

हि साकेतनगरे द्विजाः । सूर्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः ॥ १६ ॥ पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशस्सुसिद्धिदः । लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ॥१७॥ कामेश्वरः शंभुलिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत् । शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ॥ १८ ॥ तथा बटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः । सिन्धुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्वपापहा ॥ १९ ॥ धौतपापेश्वरः साक्षादंशेन परमेश्वरः । भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः ॥२०॥ नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः। नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः ॥२१॥ विमलेश्वरनामा वै कंटकेश्वर एव च । पूर्णसागरसंयोगे धर्तुकेशस्तथैव च ॥ २२ ॥ चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः । सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ॥ २३ ॥ बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च । यत्र वा अन्धको दैत्यः शंकरेण हतः पुरा ॥२४॥ अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शम्भुः पुनः स्थितः। शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदः सदा ॥ २५ ॥ कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटीशश्चार्बुदाचले । अचलेशश्च विख्यातो

तहाँ ही भक्तोंकी रक्षा करने वाला माधवेश नामक शिवलिंग है ॥ १५ ॥ हे द्विजों साकेतनगरमें नागेश नामक प्रसिद्ध शिवलिंग है, यह शिव-लिंग सूर्यवंशियोंको विशेषतः सुख देता है ॥ १६ ॥ पुरुषोत्तमपुरीमें सिद्धि देने वाला भुवनेश नामक शिवलिंग है और सब प्रकारका आनन्द देने वाला लोकेश नामक महालिंग है ॥ १७ ॥ लोकोंके हितकी कामनासे मैंने कामेश्वर गंगेश परशुद्धिकृत्, शक्रेश्वर, शुक्रसिद्ध नामक शिवलिंगोंका वर्णन किया ॥ १८ ॥ इसी प्रकार सब मनोरथोंको सफल करने वाला बटेश्वर नामक शिवलिंग विख्यात है सिन्धुके तट पर कपालेश और वक्त्रेश नामक शिवलिंग सब प्रकारके पापोंको हटाने वाले हैं ॥ १९ ॥ धौतपापेश्वर, परमेश्वर, भीमेश्वर और सूर्येश्वर साक्षात् शिवके अंश ही कहे हैं ॥ २० ॥ नन्देश्वर नामक शिव-लिंग ज्ञानदायक और संसारपूजित है, इसी प्रकार नाकेश्वर नामक शिवलिंग महापुण्यप्रद है और रामेश्वर नामक शिवलिंग भी परमपुण्यदाता है ॥ २१ ॥ विमलेश्वर और कंटकेश्वर नामक शिवलिंग मुख्य लिंग हैं और पूर्णसागरके संयोगमें धर्तुकेश शिवलिंग भी मुख्य है २२ चन्द्रेश्वर शिवलिंग चन्द्रमाकी समान कांतिरूप फल देने वाला है और सिद्धेश्वर नामक शिवलिंग सकल मनोरथोंको पूर्ण करने वाला कहा है २३ बिल्वेश्वर महादेव भी विख्यात शिवलिंग हैं और अन्धकेश भी विख्यात हैं, प्राचीनकालमें यहाँ शंकरने अन्धक दैत्यका संहार किया था ॥२४॥ अपने अंशसे इस स्वरूपको धारण कर शम्भु तहाँ प्रतिष्ठित होगए हैं, और शरणेश्वर नामक शिवलिंग लोगोंको सदा सुखदाता विख्यात हैं ॥ २५ ॥ कर्द-

लोकानां सुखदः सदा ॥ २६ ॥ नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः । अनन्तेश्वरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ॥ २७ ॥ योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथे-श्वरस्तथा । कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः ॥ २८ ॥ भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम् । चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च २९ पूर्वस्यां दिशि जातानि शिवलिंगानि यानि च । सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते ॥ ३० ॥ दक्षिणस्यां दिशि तथा शिवलिंगानि यानि च । संजातानि मुनिश्रेष्ठ तानि ते कथयाम्यहम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूत उवाच । ब्रह्मपुर्यां चित्रकूटे लिंगं मत्तगजेन्द्रकम् । ब्रह्मणा स्थापितं पूर्वं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ १ ॥ तत्पूर्वदिशि कोटीशं लिंगं सर्ववरप्रदम् । गोदावर्याः पश्चिमे तल्लिंगं पशुपतिनायकम् ॥२ ॥ दक्षिणस्यां दिशि वा शिवदत्त्रीश्वर इति स्वयम् । लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च ॥ ३ ॥ प्रादुर्भूतः स्वयं देवो ह्यनावृष्ट्यामजीवयत् । स एव शंकरः साक्षादंशेन स्वयमेव हि ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः । सूत सूत महाभाग कथमत्रीश्वरो हरः । उत्पन्नः परमो दिव्यस्तत्त्वं

मेश और अर्बुदाचलके कोटीश श्रेष्ठ शिवलिंगोंमेंसे हैं और अचलेश नामक शिवलिंग लोगोंको सदा सुख देने वाले विख्यात हैं ॥२६॥ नागेश्वर और अनन्तेश्वर कल्याण और शुभ करने वाले शिवलिंग कौशिकीके तट पर प्रतिष्ठित हैं ॥ २७ ॥ योगेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, कोटीश्वर और सप्तेश्वर यह भी विख्यात शिवलिंग हैं ॥ २८ ॥ भद्रेश्वर, भद्र नामक हर, चण्डीश्वर और संगमेश्वर विख्यात शिवलिंग हैं ॥ २९ ॥ पूर्वदिशाके सामान्य और मुख्य बहुतसे शिवलिंगोंका यहाँ वर्णन कर दिया ॥३०॥ हे मुने ! दक्षिण दिशामें जो शिवलिंग हैं उनका मैं वर्णन करता हूँ ॥ ३१ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सूतजीने कहा, कि—प्राचीनकालमें ब्रह्मपुरीके चित्रकूटमें ब्रह्माजीने सब कामना और समृद्धि देने वाला मत्तगजेन्द्र नामक शिवलिंग प्रतिष्ठित किया था ॥ १ ॥ उससे पूर्वकी ओर कोटीश नामक सब प्रकारका वर दे सकने वाला शिवलिंग है, पशुपति जिसके नायक हैं, ऐसा वह लिंग गोदावरीके पश्चिम तट पर प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ दक्षिणदिशामें एक अत्रीश्वर नामक शिवलिंग है, साक्षात् शंकरने अपने अंशसे स्वयं ही लोकोंका उपकार करनेके लिये और अनसूयाको सुख देनेके लिये तहाँ प्रकट हो अनावृष्टिके समय उनको जीवित रखा था ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऋषियोंने कहा, कि—हे सुव्रत महा-

कथय सुव्रत ॥ ५ ॥ सूत उवाच । साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः कथयामि कथां शुभाम् । यां कथां सततं श्रुत्वा पातकैर्मुच्यते ध्रुवम् ॥ ६॥ दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नाम यद्वनम् । चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम् ॥ ७ ॥ तत्र च ब्रह्मणः पुत्रो ह्यत्रिनामा ऋषिः स्वयम् । तपस्तेपेऽतिकठिनमनसूयासमन्वितः ॥ ८ ॥ पूर्वं कदाचित्तत्रैव ह्यनावृष्टिरभून्मुने । दुःखदा प्राणिनां दैवाद्विकटा शतवार्षिकी ।९। वृक्षा शुष्कास्तदा सर्वे पल्लवानि फलानि च । नित्यार्थं न जलं क्वापि दृश्यमासी-न्मुनीश्वराः ॥ १० ॥ आर्द्रभावो न लभ्येत खरा वाता दिशो दश । हाहाकारो महानासीत्पृथिव्यां दुःखदोऽति हि ॥ ११ ॥ संवर्तं चैव भूतानां दृष्ट्वात्रिगृहिणी प्रिया । साध्वी चैवाब्रवीदत्रिं मया दुःखं न सह्यते ॥ १२ ॥ समाधौ च विलीनो-ऽभूदासने संस्थितः स्वयम् । प्राणायामं त्रिरावृत्त्या कृत्वा मुनिवरस्तदा ॥ १३ ॥ ध्यायति स्म परं ज्योतिरात्मस्थमात्मना च सः । अत्रिर्मुनिवरो ज्ञानी शंकरं निर्विकारकम् ॥ १४ ॥ स्वामिनि ध्यानलीने च शिष्यास्ते दूरतो गताः । अन्नं विना तदा ते तु मुक्त्वा तं स्वगुरुं मुनिम् ॥ १५ ॥ एकाकिनी तदा जाता सान-सूया पतिव्रता । सिषेवे सा च सततं तं मुदा मुनिसत्तमम् ॥ १६ ॥ पार्थिवं

भाग सूतजी ! परम दिव्य अत्रीश्वर महादेव किस प्रकार प्रकट हुए थे, इसका आप वर्णन करिये ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा, कि--हे श्रेष्ठ ऋषियों ! आपने अच्छी बात बूझी, मैं इस शुभ कथाका वर्णन करता हूँ, इस कथा को सुननेसे पाप दूर होजाते हैं ॥ ६ ॥ दक्षिणमें चित्रकूटके पास कामद नामक महावन है, वह तपस्वी साधुओंका हित करने वाला है ॥ ७ ॥ तहाँ पर ब्रह्माजीके पुत्र अत्रि नामक ऋषिने अनसूयाके साथ परम कठिन तप किया था ॥ ८ ॥ एक समय तहाँ दैववश सौ वर्षकी विकट अनावृष्टि हुई, हे मुने ! उसमें प्राणी दुःख पाने लगे ॥ ९ ॥ वृक्ष सूख गए, सब पत्ते और फल भी सूख गए हे मुनीश्वरों ! नित्यकर्मके लिये भी जल कहीं नहीं दीखता था ॥ १० ॥ कहीं गीलापन नहीं दीखता था दशों दिशाओंमें वायु तीखा चलता था उस समय पृथ्वी पर घोर दुःख देने वाला हाहाकार मचने लगा ॥ ११ ॥ प्राणियोंका प्रलयसा होता देख अत्रिकी गृहिणी साध्वी अन-सूया अत्रिसे कहने लगीं मुझसे यह दुःख नहीं देखा जाता ॥ १२ ॥ तब वह मुनिवर आसन पर बैठ तीन वार प्राणायाम कर समाधिमें मग्न होगए १३ और मुनिवर ज्ञानी अत्रि ऋषि अपने चित्तमें परम ज्योति निर्विकार शंकर भगवानका ध्यान करने लगे ॥ १४ ॥ स्वामीके ध्यानमग्न होने पर अत्रि-ऋषिके शिष्य अन्नके न होनेसे अपने गुरु मुनि अत्रिको छोड़ कर दूर चले गए ॥ १५ ॥ तब पतिव्रता अनसूया अकेली रह गई और उन श्रेष्ठ मुनिकी

सुन्दरं कृत्वा मंत्रेण विधिपूर्वकम् ॥१७॥ मानसैरुपचारैश्च पूजयामास शंकरम्। तुष्टाव शंकरं भक्त्या संसेवित्वा मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रक्रम्य स्वामिनं शिवम्। दण्डवत्प्रणिपातेन प्रतिप्रक्रमणं तदा ॥ १९ ॥ चकार सुचरित्रा सानसूया मुनिकामिनी। दैत्याश्च दानवाः सर्वे दृष्ट्वा तु सुन्दरीं तदा ॥ २० ॥ विह्वलाश्चाभवँस्तत्र तेजसा दूरतः स्थिताः। अग्निं दृष्ट्वा यथा दूरे वर्तन्ते तद्वदेव हि ॥ २१ ॥ तथैनां च तदा दृष्ट्वा नायान्तीह समीपगाः। अत्रेश्च तपसश्चैवान-सूयाशिवसेवनम् ॥२२॥ विशिष्यते स्म विप्रेन्द्रा मनोवाक्कायसंस्कृतम्। तावत्कालं तु सा देवी परिचर्यां चकार ह ॥ २३ ॥ यावत्कालं मुनिवरः प्राणायामपरायणः। तौ दम्पती तदा तत्र स्वस्वकार्यपरायणौ ॥ २४ ॥ संस्थितौ मुनिशार्दूल नान्यः कश्चित्परः स्थितः। एवं जाते तदा काले ह्यत्रिश्च ऋषिसत्तमः ॥ २५ ॥ ध्याने च परमे लीनो न व्यबुध्यत किंचन। अनसूयापि सा साध्वी स्वामिनं वै शिवं तथा ॥२६॥ भेजे नान्यत्परं किंचिज्जानीते स्म च सा सति। तस्यैव तपसा सर्वे तस्याश्च भजनेन च ॥२७॥ देवाश्च ऋषयश्चैव गंगाद्यास्सरितस्तथा। दर्शनार्थं तयोः सर्वाः परे प्रीत्या समाययुः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा च तत्तपस्सेवां विस्मयं परमं

आनन्दपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ १६ ॥ और पार्थिव शिवलिङ्ग बना विधि-पूर्वक स्तोत्रोंसे तथा मानसिक उपचारोंसे शंकरका बारंबार भक्तिपूर्वक सेवन कर स्तुति करने लगीं ॥१७॥१८॥ वह हाथ जोड़ कर स्वामीकी और शिव की परिक्रमा करती थीं उनको दण्डवत् प्रणाम करती थीं ॥ १९ ॥ इसप्रकार सच्चरित्र वाली मुनिकामिनी अनसूया शिवपूजन करने लगीं उस समय सकल दैत्य दानव उन सुन्दरीका दर्शन कर उनके तेजसे विह्वल हो, जैसे कोई अग्निसे दूर खड़ा रहता है, तिस प्रकार दूर खड़े रहते थे ॥२०॥२१॥ अनसूयाके पास नहीं आते थे, हे विप्रेन्द्रों! मन वाणी और शरीरसे किया अनसूयाका शिवपूजन और अत्रि ऋषिका तप एक दूसरेसे बढ़कर था जितने समय तक मुनिवर प्राणायाम करते रहे उतने समय तक देवी परिचर्या करती रहीं इस प्रकार वे दोनों दम्पती अपने अपने कार्यमें परायण रहे ॥ २२--२४ ॥ हे मुनिशार्दूल! इस प्रकार उन दोनोंके सिवाय वहाँ कोई तीसरा नहीं था, इस प्रकार बहुत समय बीत गया, परन्तु परम--ध्यान में मग्न ऋषिसत्तम अत्रि समाधिसे जरा भी न उठे, और साध्वी अनसूया भी स्वामीकी और शिवकी सेवा करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाती थी और न कुछ जानती थी, ऋषिके तपसे और मुनिपत्नीके भजनसे देवता और ऋषि तथा गंगा आदिक नदियें परम प्रेमपूर्वक उनका दर्शन करनेके लिये आने लगे ॥ २५--२८ ॥ तथा उनके तप और सेवाको देख

यद्युः। तयोस्तदद्भुतं दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम् ॥ २९ ॥ उभयोः किं विशिष्टं च तपसो भजनस्य च। अत्रेश्चैव तपः प्रोक्तमनसूयानुसेवनम् ॥ ३० ॥ तत्सर्वमुभयोर्दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम्। पूर्वैश्च ऋषिभिश्चैव दुष्करं तु तपः कृतम् ॥३१॥ एतादृशं तु केनापि न कृतं नैतदब्रुवन्। धन्योऽयं च मुनिर्धन्या तथेयमनसूयिका ॥३२॥ यदेताभ्यां परप्रीत्या क्रियते सुतपः पुनः। एतादृशं शुभं चैतत्तपो दुष्करमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ त्रिलोक्यां क्रियते केन साम्प्रतं ज्ञायते न हि। तयोरिव प्रशंसां च कृत्वा ते तु यथागतम् ॥ ३४ ॥ गतास्ते च तदा तत्र गंगा न गिरिशं विना। गंगा तद्भजनप्रीता साध्वी धर्मविमोहिता ॥ ३५ ॥ कृत्वोपकारमेतस्या गमिष्यामीत्युवाच सा। शिवोऽपि ध्यानसम्बद्धो मुनेरत्रेर्मुनीश्वराः॥३६॥ पूर्णांशेन स्थितस्तत्र कैलासं न जगाम ह। पंचाशच्च तथा चात्र चाब्दानि ऋषिसत्तमाः ॥ ३७ ॥ वर्षाणि च गतान्यासन् वृष्टिर्नैवाभवत्तदा। यावच्चाप्यत्रिणा ह्येवं तपसा ध्यानमाश्रितम् ॥ ३८ ॥ एवं च क्रियमाणे हि मुनिना तपसि स्थिते। अनसूया सुभजने यज्जातं श्रूयतामिति ॥ ३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामनसूयात्रितपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कर बड़े विस्मयमें होने लगे और उनके अद्भुत चरित्रको देखकर भजनको श्रेष्ठ बताने लगे २९ और कुछ विचारने लगे, इन दोनोंके तप और भजनमें न जाने कौन श्रेष्ठ है, अत्रि ऋषि तो तप कर रहे हैं और अनसूया सेवा कर रही हैं, इन दोनोंके सब चरित्रको देखकर भजनको श्रेष्ठ बताने लगे, और कहने लगे कि-दुष्कर तप तो पहिले ऋषियोंने भी किया है, परन्तु ऐसा तप किसने कहाँ किया है ? यह मुनि धन्य हैं और इसी प्रकार यह अनसूया भी धन्य हैं । ३०--३२ ।। क्योंकि--ये दोनों परम प्रीतिके साथ तप कर रहे हैं, यह तप दुष्कर है शुभ है और उत्तम है, त्रिलोकीमें आज कल कोई ऐसा नहीं कर रहा है, हमें विदित है, उन दोनोंकी इस प्रकार प्रशंसा करके वे जहाँ जहाँसे आये थे तहाँ तहाँको लौट गए, परन्तु गंगा और महेश तहाँसे न लौटे, गंगा देवी उनके भजनसे प्रसन्न होगईं और साध्वी गंगा उनके धर्मसे मुग्ध हो कहने लगीं, कि--मैं इसका उपकार करके जाऊँगी, तथा हे मुनीश्वरों ! अत्रि मुनिके ध्यानसे शिव तहाँ ही बँध गए, अपने पूर्ण अंशसे तहाँ स्थित होगए, कैलासको नहीं गए--हे श्रेष्ठ ऋषियों ! इस प्रकार चौअन वर्ष बीत गए, परन्तु वृष्टि नहीं हुई और तभी तक अत्रि ऋषि तप करके ध्यान करते रहे ।। ३३--३८ ।। इस प्रकार मुनिके तप करने पर और अनसूयाके भजन करने पर जो कुछ हुआ था उसको सुनिये ।। ३९ ।। तीसरा अध्याय समाप्त ३

सूत उवाच। कदाचित्स ऋषिश्रेष्ठो ह्यत्रिर्ब्रह्मविदां वरः। जागृतश्च जलं देहि प्रत्युवाच प्रियामिति ॥ १ ॥ सापि साध्वी त्ववश्यं च गृहीत्वाथ कमण्डलुम्। जगाम विपिने तत्र जलं मे नीयते कुतः ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कुतो नीयेत वै जलम्। इति विस्मयमापन्ना तां गंगा च ददर्श सा ॥ ३ ॥ तामनुव्रजती यावत् साब्रवीच्च तदा हि ताम्। गंगा सरिद्वरा देवी बिभ्रती सुन्दरां तनुम् ॥ ४ ॥ गङ्गोवाच। प्रसन्नास्मि च ते देवि कुत्र यासि वदाधुना। धन्या त्वं सुभगे सत्यं तवाज्ञां च करोम्यहम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच। तद्वचश्च तदा श्रुत्वा ऋषिपत्नी तपस्विनी। प्रत्युवाच वचः प्रीत्या स्वयं सुचकिता द्विजाः ॥ ६ ॥ अनसूयोवाच। का त्वं कमलपत्राक्षि कुतो वा त्वं समागता। तथ्यं ब्रूहि कृपां कृत्वा साध्वी सुप्रवदा सती ॥ ७॥ सूत उवाच। इत्युक्ते च तया तत्र मुनिपत्न्या मुनीश्वराः। सरिद्वरा दिव्यरूपा गङ्गा वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ गङ्गोवाच। स्वामिनः सेवनं दृष्ट्वा शिवस्य च परात्मनः। साध्वि धर्मं च ते दृष्ट्वा स्थितास्मि तव सन्निधौ ॥ ६ ॥ अहं गङ्गा समायाता भजनात्ते शुचिस्मिते। वशीभूता ह्यहं जाता यदिच्छसि वृणीष्व तत् ॥ १० ॥ सूत उवाच। इत्युक्ते गंगया साध्वी नम-

सूतजीने कहा, कि--एक समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषिश्रेष्ठ अत्रि समाधिमेंसे जागृत होकर अपनी प्रियासे बोले जल दो ॥ १ ॥ तब वह साध्वी कमण्डलुको उठा जंगलमें चली और विचारने लगी, कि--जलको मैं कहींसे अवश्य लाऊँ ॥ २ ॥ मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँसे जल मिलेगा, इस प्रकार वह विस्मयमें पड़ी हुई थीं, उन्हें गंगादेवीके दर्शन हुए ॥ ३ ॥ जब वह गंगाजीके समीप पहुँचीं तब सुन्दर शरीर वाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगादेवीने उनसे कहा ॥ ४ ॥ गंगाजीने कहा, कि--हे देवि ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम इस समय कहाँ जा रही हो, बताओ, हे सुभगे ! तुम धन्य हो ! अतः इस बातको सत्य समझो, कि--मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी ॥५॥ सूतजीने कहा, कि-हे द्विजो ! तपस्विनी ऋषिपत्नी उनके वचनको सुन चकित हुई और प्रीतिपूर्वक प्रत्युत्तर देने लगीं ॥ ६ ॥ अनसूयाने कहा, कि--हे कमलपत्राक्षि ! आप कौन हैं और कहाँसे आई हैं, हे सती साध्वी ! आप मुझ पर कृपा कर यह सब बात सत्य सत्य बता दीजिये ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा, कि--हे मुनीश्वरों ! उन मुनिपत्नीके इस प्रकार कहने पर दिव्यरूपधारिणी सरिद्वरा गंगा यह बात कहने लगी ॥ ८ ॥ गंगाजीने कहा, कि--हे साध्वि ! तुम्हारी स्वामिसेवा और परमात्मा शिवकी पूजारूप धर्मको देख मैं तुम्हारे पास आई हूँ ॥६॥ हे पवित्र हास्य वाली ! तुम्हारे भजनके प्रभाव से मैं गंगा तुम्हारे निकट आई हूँ, मैं तुम्हारे वशमें हूँ तुम जो चाहे वर

कृत्य पुरःस्थिता । उवाचेति जलं देहि चेत्प्रसन्ना ममाधुना ॥ ११ ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गर्तं कुर्विति साऽब्रवीत् । शीघ्रं चागाच्च तत्कृत्वा स्थिता तत्क्षणमात्रतः॥ तत्र सा च प्रविष्टा च जलरूपमभूत्तदा । आश्चर्यं परमं गत्वा गृहीतं च जलं तया ॥१३॥ उवाच वचनं चैतल्लोकानां सुखहेतवे । अनसूया मुनेः पत्नी दिव्यरूपां सरिद्वराम् ॥ १४ ॥ अनसूयेवाच । यदि त्वं सुप्रसन्ना मे वर्तसे च कृपा मयि । स्थातव्यं च त्वया तावन्मत्स्वामी यावदाव्रजेत् ॥१५॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वानसूयाया वचनं सुखदं सताम् । गंगोवाच प्रसन्नाति ह्यत्रेर्दास्यति मेऽनघे॥ इत्युक्ते च तया तत्र ह्यनयापि कृतन्तथा । स्वामिनो तज्जलं दिव्यं दत्वा तत्पुरतः स्थिता ॥ १७ ॥ स ऋषिश्चापि सुप्रीत्या स्वाचम्य विधिपूर्वकम् । पपौ दिव्यं जलं तच्च पीत्वा सुखमवाप ह ॥ १८ ॥ अहो नित्यं जलं यच्च पीयते तज्जलं न हि । विचार्येति च तेनाशु परितश्चावलोकितम् ॥१९॥ शुष्कान्वृक्षान्समालोक्य दिशो रूक्षतरास्तथा । उवाच तामृषिश्रेष्ठो न जातं वर्षणं पुनः ॥ २० ॥ तदुक्तं तत्समा-

---

माँग लो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा, कि-गंगाजीके इस प्रकार कहने पर साध्वी अनसूया उनको प्रणाम कर खड़ी होगईं और कहने लगीं, कि-यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो जल दीजिये ॥ ११ ॥ अनसूयाकी इस बातको सुन गंगाजीने कहा, कि-एक गड्ढा खोदो, जब अनसूयाजी गड्ढा खोदकर शीघ्र ही आकर खड़ी होगईं तब गंगाजी क्षणमात्रमें उसमें प्रवेश कर जलरूप होगईं, तब अनसूया बहुत ही चकित हुईं और उन्होंने जल ग्रहण किया ।१३। तदनन्तर मुनिपत्नी अनसूया लोगोंको सुख देनेके लिये दिव्यरूपधारिणी सरिद्वरा गंगाजीसे यह बात कहने लगीं ॥ १४ ॥ अनसूयाने कहा, कि-यदि आप प्रसन्न हैं, यदि आपको मुझ पर कृपा है तो जब तक मेरे स्वामी यहाँ पधारें तब तक आप यहाँ ही विराजमान रहें ॥ १५ ॥ सूतजीने कहा, कि-अनसूयाके इस सज्जनोंको सुख पहुँचाने वाले वचनको सुनकर गंगाजी परम-प्रसन्न होकर कहने लगीं, कि-हे निष्पापे ! तुम मुझे अत्रि ऋषिको देना ॥ १६ ॥ गंगाजीके इस प्रकार कहने पर अनसूयाने ऐसा ही किया, वह स्वामीको उस दिव्य जलको दे उनके सामने खड़ी होगईं ॥ १७ ॥ वह ऋषि प्रीतिके साथ विधिपूर्वक आचमन कर उस दिव्य जलको पी परम सुखी हुए ॥ १८ ॥ अहो ! नित्य जो जल पिया जाता था, वैसा यह जल नहीं है, यह विचार कर उन्होंने शीघ्रतापूर्वक चारों ओर दृष्टि डाली ॥ १९ ॥ और वृक्षोंको सूखे हुए तथा दिशाओंको रूखी देख वह ऋषिश्रेष्ठ अपनी प्रिया से कहने लगे, कि-वर्षा तो नहीं हुई ॥ २० ॥ तब उनकी पत्नीने कहा, कि-

करार्यं नेति नेति प्रियान्तदा । तामुवाच पुनः सोऽपि जलं नीतं कुतस्त्वया॥२१॥ इत्युक्ते तु तदा तेन विस्मयं परमं गता । अनसूया स्वमनसि सञ्चिन्त्य तु मुनीश्वराः ॥ २२ ॥ निवेद्यते मया चेद्धि तदोत्कर्षो भवेन्मम । निवेद्यते यदा नैव व्रतभङ्गो भवेन्मम ॥ २३ ॥ नोभयं च तथा स्याद्धि निवेद्यं तत्तथा मम । इति यावद्विचार्यैत तावत्पृष्टा पुनः पुनः ॥२४॥ अथानुग्रहतः शम्भोः प्राप्तबुद्धिः पतिव्रता । उवाच श्रूयतां स्वामिन्यज्जातं कथयामि ते ॥ २५ ॥ अनसूयोवाच । शंकरस्य प्रतापाच्च तवैव सुकृतैस्तथा । गङ्गा समागतात्रैव तदीयं सलिलन्त्विदम् ॥२६॥ सूत उवाच । एवं वचस्तदा श्रुत्वा मुनिर्विस्मयमानसः । प्रियामुवाच सुप्रीत्या शंकरं मनसा स्मरन् ॥२७॥ अत्रिरुवाच । प्रिये सुन्दरि त्वं सत्यमथ वाचं व्यलीककाम् । ब्रवीषि च यथार्थं त्वं न मन्ये दुर्लभन्त्विदम् ॥ २८ ॥ असाध्यं योगिभिर्यच्च देवैरपि सदा शुभे । तच्चैवाद्य कथं जातं विस्मयः परमो मम ॥ २९ ॥ यद्येवं दृश्यते चेद्धि तन्मन्येऽहं न चान्यथा । इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पतिं प्रिया ॥ ३० ॥ अनसूयोवाच । आगम्यतां मया सार्द्धं त्वया नाथ महामुने । स र-

---

वर्षा नहीं हुई, इस बातको सुनकर उन्होंने अपनी प्रियासे कहा, कि- तुम जल कहाँसे लाई ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वरो ! उनके इस प्रकार कहने पर अनसूया परम विस्मित हो अपने मनमें चिन्ता करने लगी ॥ २२ ॥ यदि मैं कहती हूँ, तो मेरी बड़ाई सिद्ध होगी, और यदि नहीं कहती हूँ, तो मेरा व्रत भंग हो जावेगा ॥ २३ ॥ ये दोनों बातें जिस प्रकार न हों, तिस प्रकार मुझे कहना चाहिये, जब तक अनसूयाने यह विचार किया, तब तक ऋषिने उससे वारम्बार बूझा ॥२४॥ तब शंभुकी कृपासे अनसूयामें बुद्धिका उदय हुआ और उसने कहा, कि -हे स्वामिन् ! जो घटना घटी है उसको मैं कहती हूँ सुनिये २५ अनसूयाने कहा, कि--शंकरके प्रतापसे और आपके पुण्योंसे गंगाजी यहाँ ही पधारी थीं और यह उनका ही जल है ॥ २६ ॥ सूतजीने कहा, कि- इस बातको सुन मुनिके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अपने मनमें शंकरका स्मरण कर प्रियासे प्रीतिपूर्वक कहा ॥ २७ ॥ अत्रि ऋषिने कहा, कि--हे सुन्दरि ! हे प्रिये ! तुम सत्य बात कह रही हो या मिथ्या, इसका मुझे कुछ निश्चय नहीं होता, क्योंकि यह बात दुर्लभ मालूम होती है ॥ २८ ॥ हे शुभे ! जो बात योगी तथा देवताओंके लिये भी सदा असाध्य है, वह बात आज कैसे होगई, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है ॥ २९ ॥ यदि गंगाजी मुझे दीखें, तो मैं इस बातको मानूँ, वैसे कैसे मानूँ, ऋषिके इस वचनको सुन उनकी प्रियाने अपने पतिको उत्तर दिया ॥ ३० ॥ अनसूयाने कहा, कि--हे नाथ ! हे महामुने ! यदि आपको नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीका दर्शन करनेकी इच्छा है, तो

पुरायां गंगायां द्रष्टुमिच्छा भवेद्यदि ॥ ३१ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा तु समादाय पतिं तं सा पतिव्रता । गता द्रुतं शिवं स्मृत्वा यत्र गङ्गा सरिद्वरा ॥ ३२ ॥ दर्शयामास तां तत्र गङ्गां पत्ये पतिव्रता । गर्ते च संस्थितां तत्र स्वयं दिव्यस्वरूपिणीम् ॥ ३३ ॥ तत्र गत्वा ऋषिश्रेष्ठो गर्तं च जलपूरितम् । आकण्ठं सुन्दरं दृष्ट्वा धन्येयमिति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ किं मदीयं तपश्चैव किमन्येषां पुनस्तदा । इत्युक्तो मुनिशार्दूलो भक्त्या तुष्टाव तां तदा ॥ ३५ ॥ ततो हि स मुनिस्तत्र सुस्नातः सुभगे जले । आचम्य पुनरेवात्र स्तुतिं चक्रे पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ अनसूयापि संस्नाता सुन्दरे तज्जले तदा । नित्यं चक्रे मुनिः कर्म सानसूयापि सुव्रता ॥ ३७ ॥ ततस्तोवाच तां गंगा गम्यते स्वस्थलं मया । इत्युक्ते च पुनः साध्वी तामुवाच सरिद्वराम् ॥३८॥ अनसूयोवाच । यदि प्रसन्ना देवेशि यद्यस्ति च कृपा मयि । त्वया स्थेयं निश्चलत्वादस्मिन्देवि तपोवने ॥ ३९ ॥ महतां च स्वभावश्च नांगीकृत्य परित्यजेत् । इत्युक्त्वा च करौ बद्ध्वा तां तुष्टाव पुनः पुनः ॥ ४० ॥ ऋषिश्चापि तथोवाच त्वया स्थेयं सरिद्वरे । सानुकूला भव त्वं हि सनाथान्देवि नः कुरु ॥ ४१ ॥ तदेयं तद्वचः श्रुत्वा रम्यं गंगा सरिद्वरा । प्रसन्न-

---

आप मेरे साथ चलिये ॥ ३१ ॥ सूतजीने कहा, कि- इस प्रकार कह वह पतिव्रता अपने पतिको साथमें ले जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी थीं, तहाँ शिवका स्मरण करती हुई पहुँचीं ॥३२॥ तहाँ पहुँच पतिव्रता अनसूयाने गर्त (गड्ढे) में विराजमान दिव्यरूपधारिणी गंगाका पतिको दर्शन कराया ॥ ३३ ॥ तहाँ पहुँच कर वह ऋषिश्रेष्ठ सुन्दर गर्तको कण्ठ तक जलसे भरा देख कहने लगे, कि- यह गंगाजी धन्य हैं ॥ ३४ ॥ यह क्या मेरे तपका फल है, अथवा और किसीके तपका प्रभाव है ? वह मुनिशार्दूल इस प्रकार कहकर भक्तिपूर्वक गंगाजीको स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर वह मुनि उस सुन्दर जलमें स्नान कर और आचमन कर बारम्बार स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर अनसूयाने भी उस सुन्दर जलमें स्नान किया फिर मुनिने और सुव्रता अनसूयाने भी अपना नित्यकर्म किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर गंगा अनसूयासे कहने लगीं, कि -अब मैं अपने स्थानको जाऊँ ? इस प्रकार कहने पर वह साध्वी उन नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीसे फिर कहने लगीं ॥ ३८ ॥ अनसूयाने कहा, कि-- हे देवेशि ! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि आपकी मुझ पर कृपा है, तो हे देवि ! इस तपोवनमें आप निश्चल होकर विराजमान रहें ॥ ३९ ॥ बड़ोंका यह स्वभाव है, कि--अंगोकार करके नहीं त्यागते, इस प्रकार कह हाथ जोड़ कर बारंबार स्तुति करने लगीं ॥ ४० ॥ तब ऋषिने भी कहा, कि- हे सरिद्वरे ! आपको यहाँ ठहरना चाहिये, हे देवि ! आप हमारे अनुकूल रहें और हमें सनाथ करें ४१

मानसा गंगाऽनसूयां वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥ गङ्गोवाच । शंकरार्चनसंभूतफलं वर्षस्य यच्छसि । स्वामिनश्च तदा स्थास्ये देवानामुपकारणात् ॥ ४३ ॥ तथा दानैर्न मे तुष्टिस्तीर्थस्नानैस्तथा च वै । यज्ञैस्तथाथवा योगैर्यथा पातिव्रतेन च४४ पतिव्रतां यथा दृष्ट्वा मनसः प्रीणनं भवेत्। तथा नान्यैरुपायैश्च सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४५ ॥ पतिव्रतां स्त्रियं दृष्ट्वा पापनाशो भवेन्मम । शुद्धा जाता विशेषेण गौरीतुल्या पतिव्रता ॥ ४६ ॥ तस्माच्च यदि लोकस्य हिताय तत्प्रयच्छसि । तर्ह्यहं स्थिरतां यास्ये यदि कल्याणमिच्छसि ॥ ४७ ॥ सूत उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वाऽनसूया सा पतिव्रता । गङ्गायै प्रददौ पुण्यं सर्वं तद् वर्षसम्भवम् ॥ ४८ ॥ महतां च स्वभावो हि परेषां हितमावहेत् । सुवर्णं चन्दनं चेक्षुरसस्तत्र निदर्शनम् ॥ ४९ ॥ एतद् दृष्ट्वानसूयं तत्कर्म पातिव्रतं महत् । प्रसन्नोऽभून्महादेवः पार्थिवादाविराशु वै ॥ ५० ॥ शम्भुरुवाच । दृष्ट्वा ते कर्म साध्व्येतत् प्रसन्नोऽस्मि पतिव्रते । वरं ब्रूहि प्रिये मत्तो यतः प्रियतरासि मे ॥ ५१ ॥ अथ तौ दम्पती शम्भुमभूतां सुन्दराकृतिम् । पंचवक्त्रादिसंयुक्तं हरं प्रेक्ष्य सुविस्मितौ ॥ ५२ ॥

उनके इस रमणीय वचनको सुन नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा चित्तमें प्रसन्न होकर अनसूयासे कहने लगीं ॥ ४२ ॥ गंगाजीने कहा, कि—यदि तुम शंकरका और स्वामीका वर्ष भर पूजन करनेका फल मुझे दो तो मैं देवताओंका उपकार करनेके लिये यहाँ ठहर सकती हूँ ॥ ४३ ॥ जैसा सन्तोष मुझे पतिव्रताका दर्शन पाने पर होता है, वैसा सन्तोष दान तीर्थस्नान यज्ञ और योगानुष्ठानसे भी नहीं होता ॥ ४४ ॥ हे सति ! पतिव्रताको देख जैसा मेरा मन प्रसन्न होता है वैसा अन्य उपायोंसे नहीं होता, हे सति ! मैंने यह सत्य बात कह दी ॥ ४५ ॥ पतिव्रता स्त्रीको देख कर मेरे पाप नष्ट होजाते हैं, पतिव्रता गौरीके समान परम शुद्ध होती हैं ॥ ४६ ॥ अतः यदि तुम संसारका हित करनेके लिये अपने पतिसेवाके फलको दो तो मैं यहाँ स्थिर होसकती हूँ, यदि तुम संसारका कल्याण करना चाहो (तो ऐसा करो) ॥४७॥ सूतजीने कहा, कि-गंगाजीकी इस बातको सुन पतिव्रता अनसूयाने अपना वर्ष भरका सम्पूर्ण पुण्य गंगाजीको देदिया ॥४८॥ क्योंकि-दूसरोंका हित चाहना तो बड़ोंका स्वभाव ही होता है, इसमें सुवर्ण चन्दन और गन्नेका उदाहरण देख लो ४९ अनसूयाके पातिव्रतके इस बड़े भारी कर्मको देख महादेव परम प्रसन्न हो पार्थिव लिंगसे शीघ्र ही प्रकट होगए ॥५०॥ शंभुने कहा, कि-हे पतिव्रते ! हे साध्वि ! मैं तुम्हारे इस कर्मसे प्रसन्न हूँ, अतः तुम वर माँग लो, क्योंकि-मुझे तुम परम प्रिय हो ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वे दोनों स्त्रीपुरुष शंकरको पञ्चमुखी सुन्दर आकृतिमें

नत्वा स्तुत्वा करौ बद्ध्वा महाभक्तिसमन्वितौ। अवोचेतां समभ्यर्च्य शंकरं लोकशंकरम् ॥ ५३ ॥ दम्पती ऊचतुः। यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना जगदम्बिका। अस्मिंस्तपोवने तिष्ठ लोकानां सुखदो भव ॥ ५४ ॥ प्रसन्ना च तदा गङ्गा प्रसन्नश्च शिवस्तदा। उभौ तौ च स्थितौ तत्र यत्रासीदृषिसत्तमः ॥ ५५ ॥ अत्रीश्वरश्च नाम्नासीदीश्वरः परदुःखहा। गङ्गा सापि स्थिता तत्र तदा गर्तेऽथ मायया ॥ ५६ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य तत्राक्षय्यजलं सदा। हस्तमात्रे हि तद्गर्ते गङ्गा मन्दाकिनी ह्यभूत् ॥ ५७ ॥ तत्रैव ऋषयो दिव्याः समाजग्मुस्सहांगनाः। तीर्थात्तीर्थाच्च ते सर्वे ये पुरा निर्गता द्विजाः ॥ ५८ ॥ यवाश्च व्रीहयश्चैव यज्ञयागपरायणाः। युक्ता ऋषिवरैस्तैश्च होमं चक्रुश्च ते जनाः ॥ ५९ ॥ कर्मभिस्तैश्च संतुष्टा वृष्टिं चक्रुर्घनास्तदा। आनन्दः परमो लोके बभूवाति मुनीश्वराः ॥ अत्रीश्वरस्य महात्म्यमित्युक्तं वः सुखावहम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं भक्तिवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

देख विस्मयमें पड़ गए ॥ ५२ ॥ तथा परमभक्तिपूर्वक हाथ जोड़ प्रणाम कर तथा स्तुति कर संसारका कल्याण करने वाले शंकरका पूजन कर कहने लगे ॥ ५३ ॥ दम्पतीने कहा, कि- हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, और यदि जगदम्बिका प्रसन्न हैं, तो संसारको सुख देनेके लिये इस तपोवनमें प्रतिष्ठित होजाइये ॥ ५४ ॥ तब जहाँ वह ऋषिसत्तम थे, तहाँ प्रसन्न होकर गंगाजी प्रतिष्ठित होगई और प्रसन्न होकर शिव भी प्रतिष्ठित होगए ॥ ५५ ॥ दूसरों का दुःख दूर करने वाले शंभु तहाँ अत्रीश्वर महादेव नामसे प्रतिष्ठित होगए और गंगाजी भी माया कर तहाँ गर्तमें प्रतिष्ठित होगई ॥ ५६ ॥ उस दिनसे तहाँ अक्षय जल रहता है उस हाथ भरके गड्ढेमें मंदाकिनी गंगा रहती हैं ५७ तदनन्तर तहाँ अपनी पत्नियोंको लेकर दिव्य ऋषि पधारे तथा जो द्विज पहिले तहाँसे भाग गए थे वे अनेक तीर्थोंसे लौटकर तहाँ पधारे ॥ ५८ ॥ तदनन्तर उन ऋषिवरोंने और उन मनुष्योंने यज्ञ यागमें परायण होकर जौ और धानसे होम किया ॥५९॥ हे मुनीश्वरों ! तब इस कर्मसे सन्तुष्ट हुए मेघोंने वर्षा की और संसारमें परम आनन्द छा गया ॥६०॥ यह आपसे अत्रीश्वरका माहात्म्य कहा, यह कथा सुख देने वाली है, इससे भोग और मोक्ष मिलता है, सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और भक्तिकी वृद्धि होती है ॥ ६१ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

सूत उवाच । कालंजरे गिरौ दिव्ये नीलकण्ठो महेश्वरः । लिंगरूपस्सदा चैव भक्तानन्दप्रदः सदा ॥१॥ महिमा तस्य दिव्योऽस्ति श्रुतिस्मृतिप्रकीर्तितः । तीर्थं तदाख्यया तत्र स्नानात्पातकनाशकृत् ॥ २ ॥ रेवातीरे यानि सन्ति शिवलिंगानि सुव्रताः । सर्वसौख्यकराणीह तेषां संख्या न विद्यते ॥ ३ ॥ सा च रुद्रस्वरूपा हि दर्शनात्पापहारिका । तस्यां स्थिताश्च ये केचित्पाषाणाः शिवरूपिणः ॥ ४ ॥ तथापि च प्रवक्ष्यामि यथाज्ञानि मुनीश्वराः । प्रधानशिवलिंगानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ ५ ॥ आर्तेश्वरस्तु नामा हि वर्तते पापहारकः । परमेश्वर इति ख्यातः सिद्धेश्वर इति स्मृतः ॥६॥ शर्मेशश्च तथा चात्र कुमारेश्वर एव च । पुण्डरीकेश्वरः ख्यातो मण्डपेश्वर एव च ॥ ७ ॥ तीक्ष्णेशनामा तत्रासीद्दर्शनात्पापहारकः । धुन्धुरेश्वरनामासीत्पापहा नर्मदातटे ॥८॥ शूलेश्वर इति ख्यातस्तथा कुम्भेश्वरः स्मृतः । कुबेरेश्वरनामापि तथा सोमेश्वरः स्मृतः ॥९॥ नीलकण्ठो मङ्गलेशो मंगलायतनं महान् । महाकपीश्वरो देवः स्थापितो हि हनूमता ॥१०॥ ततश्च नन्दिको देवो हत्याकोटिनिवारकः । सर्वकामार्थदश्चैव मोक्षदो हि प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥ नन्दिकेशं च यश्चैव पूजयेत्परया मुदा । नित्यं तस्याखिला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः ॥

सूतजीने कहा, कि-दिव्य कालञ्जर पर्वत पर नीलकण्ठ महेश्वर लिंगरूपमें विराजमान हैं वह सदा भक्तोंको आनन्द देते हैं ॥ १ ॥ श्रुति और स्मृतियोंमें उनकी दिव्य महिमा है, उनके नामसे ही वह तीर्थ भी प्रसिद्ध है, यहाँ स्नान करनेसे पातकोंका नाश होता है ॥२॥ हे सुव्रतो ! रेवाके तट पर सब प्रकारका सुख देने वाले असंख्य शिवलिंग हैं ॥ ३ ॥ रेवा नदी रुद्रस्वरूप ही है, यह दर्शनमात्रसे पाप हर लेती है, इसके समस्त पाषाण शिवरूप हैं ॥४॥ तथापि हे मुनीश्वरों ! मैं दूसरोंकी समान भोग और मोक्ष देने वाले प्रधान शिवलिंगों का वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ तहाँ आर्तेश्वर नामक पापहारी शिवलिंग है तथा परमेश्वर और सिद्धेश्वर नामक शिवलिंग भी विख्यात हैं ॥ ६ ॥ तथा यहाँ शर्मेश, कुमारेश्वर, पुण्डरीकेश्वर और मण्डपेश्वर नामक विख्यात शिवलिंग हैं ॥ ७ ॥ तीक्ष्णेश नामक शिवलिंग दर्शनमात्रसे पाप हर लेता है तथा नर्मदा के तटका धुन्धुरेश्वर नामक शिवलिंग पाप दूर करने वाला है ॥ ८ ॥ शूलेश्वर, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर और सोमेश्वर नामक शिवलिंग तहाँ कहे हैं ॥ ९ ॥ तथा तहाँ नीलकण्ठ मंगलेश परम मंगलमय हैं, तथा हनुमान्‌जीका स्थापित किया हुआ महाकपीश्वर नामक शिव-लिंग भी तहाँ है ॥ १० ॥ और नन्दिक नामक महादेव करोड़ों हत्याओंको निवारण करने वाले तहाँ प्रतिष्ठित हैं, यह सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले और मोक्ष देने वाले कहे हैं ॥११॥ जो पुरुष परमानन्दके साथ नन्दिकेशका पूजन करता है, उसके पास सदा सम्पूर्ण सिद्धियें

तत्र तीरे च यः स्नाति रेवायां मुनिसत्तमाः । तस्य कामाश्च सिद्ध्यन्ति सर्वं पापं विनश्यति ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः । एवं तस्य च माहात्म्यं कथं तत्र महामते । नन्दिकेशस्य कृपया कथ्यतां च त्वयाधुना ॥ १४ ॥ सूत उवाच । सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च कथयामि यथाश्रुतम् । शौनकाद्याश्च मुनयः सर्वे हि शृणुतादरात् १५ पुरा युधिष्ठिरेणैवं पृष्टश्च ऋषिसत्तमः । यथोवाच तथा वच्मि भवत्स्नेहानुसारतः ॥ १६ ॥ रेवायाः पश्चिमे तीरे कर्णिकी नाम वै पुरी । विराजते सुशोभाढ्या चतुर्वर्णसमाकुला ॥१७॥ तत्र द्विजवरः कश्चिदुत्तस्य कुलसम्भवः । काश्यां गतश्च पुत्राभ्यामर्पयित्वा स्वपत्निकाम् ॥ १८ ॥ तत्रैव स मृतो विप्रः पुत्राभ्यां च श्रुतं तदा । तदीयं चैव तत्कृत्यं चक्राते पुत्रकावुभौ ॥ १९ ॥ पत्नी च पालयामास पुत्रौ पुत्रहितैषिणी । पुत्रौ च वर्जयित्वा च विभक्तं वै धनं त्वया ॥ २० ॥ स्वीयं च रक्षितं किंचिद्धनं मरणहेतवे । ततश्च द्विजपत्नी हि कियत्कालं मृता च सा ॥ कदाचित्क्रियमाणा सा विविधं पुण्यमाचरत् । न मृता दैवयोगेन द्विजपत्नी च सा द्विजाः ॥ २॥ यदा प्राणान्न मुमुचे माता दैवात्तयोश्च सा । तद् दृष्ट्वा जननीकष्टं पुत्रकावूचतुस्तदा ॥ २३ ॥ पुत्रावूचतुः । किं न्यूनं म्रियते मातः कष्टं यन्म्रियते

रहेंगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! तहाँ रेवाके तट पर जो स्नान करता है उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं और सकल पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ ऋषियोंने कहा, कि हे महामते ! तहाँ उन नन्दिकेशका ऐसा माहात्म्य क्यों है, इसको आप कृपा करके कहिये । १४ ॥ सूतजीने कहा, कि--आपने अच्छी बात बूझी, मैंने जैसा सुना है तैसा कहता हूँ, हे शौनक आदि मुनियो ! आप आदरपूर्वक सुनिये ॥ १५ ॥ पहिले समयमें एक ऋषिसत्तमसे युधिष्ठिरने भी प्रश्न किया था, उस समय उन्होंने जो उत्तर दिया था उसको मैं आपके स्नेहवश कहता हूँ ॥ १६ ॥ रेवाके पश्चिम तट पर कर्णिका नाम वाली एक सुशोभित पुरी है उसमें चारों वर्ण रहते हैं ॥ १७ ॥ तहाँ उत्तके कुलमें उत्पन्न हुए एक द्विजवर अपनी पत्नीको दोनों पुत्र अर्पण कर काशीको चले गए थे ॥ १८ ॥ वह तहाँ ही मर गए, जब उनके पुत्रोंने यह बात सुनी तो उन्होंने पिताका अन्तिम कर्म किया ॥ १९ ॥ तब वह विप्रपत्नी पुत्रोंका हित चाहती हुई उनका पालन करने लगी, तदनन्तर उसने पुत्रों से अलग होकर धन बाँट लिया ॥ २० ॥ और कुछ धन अपने मरनेके लिये बचा लिया, तदनन्तर वह ब्राह्मणपत्नी कुछ समय बाद मर गई थी ॥ २१ ॥ एक समय वह अनेक प्रकारका पुण्यकर्म कर रही थी, हे द्विजो ! (अन्तिम समयमें) दैवयोगसे उस द्विजपत्नीके प्राण नहीं निकलते थे ॥ २२ ॥ जब उन दोनों पुत्रोंकी माताने दैववश अपने प्राण नहीं छोड़े, तो माताके कष्टको

महत् । म्रियतां तद् द्रुतं प्रीत्या तदावां करवावहे ॥२४॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वोक्तं तथा तत्र न्यूनं मे विद्यते बहु । तदेव क्रियते चेद्वै सुखेन मरणं भवेत् ॥ २५ ॥ ज्येष्ठपुत्रश्च यस्तस्यास्तेनोक्तं कथ्यतान्त्वया । करिष्यामि तदेतद्धि तया च कथितन्तदा ॥ २६ ॥ द्विजपत्न्युवाच । शृणु पुत्र वचः प्रीत्या पुरासीन्मे मनःस्पृहा । काश्यां गन्तुं तथा नासीदिदानीं म्रियते पुनः ॥ २७ ॥ ममास्थीनि त्वया पुत्र क्षेपणीयान्यतन्द्रितम् । गंगाजले शुभं तेऽद्य भविष्यति न संशयः ॥२८॥ सूत उवाच । इत्युक्ते च तया मात्रा स ज्येष्ठतनयोऽब्रवीत् । मातरं मातृभक्तस्तु सुव्रतां मरणोन्मुखीम् ॥ २९ ॥ पुत्र उवाच । मातस्त्वया सुखेनैव प्राणास्त्याज्या न संशयः । तव कार्यं पुरा कृत्वा पश्चात्कार्यं मदीयकम् ॥ ३० ॥ इति हस्ते जलं दत्त्वा यावत्पुत्रो गृहं गतः । तावत्सा च मृता तत्र हरस्मरणतत्परा ॥ ३१ ॥ तस्याश्चैव तु यत्कृत्यं तत्सर्वं संविधाय सः । मासिकं कर्म कृत्वा तु गमनाय प्रचक्रमे ॥ ३२ ॥ द्वयोः श्रेष्ठतमो यो वै सुवादो नाम विश्रुतः । तदस्थीनि समादाय निस्सृतस्तीर्थकाम्यया ॥३३॥ संगृह्य सेवकं कंचित्तेनैव सहितस्तदा । आश्वास्य भार्य्यापुत्रांश्च

देखकर पुत्रोंने कहा ॥२३॥ पुत्रोंने कहा, कि—हे मातः ! क्या कोई बात न्यून रह गई है जो आपको बड़ा कष्ट होरहा है, आप उसको कहें, हम अवश्य उसको करेंगे २४ सूतजीने कहा, कि—इस बातको सुनकर माताने कहा, कि—कमी तो बहुत है, यदि तुम कर सको तो मैं सुखसे मरूँ ॥ २५ ॥ तब जो उसका बड़ा लड़का था, उसने कहा, कि—आप कहें, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा, तब वह ब्राह्मणी कहने लगी ॥ २६ ॥ द्विजपत्नीने कहा, कि—हे पुत्र ! मेरी बातको प्रीतिपूर्वक सुनो ! पहिले मेरे मनमें काशी जानेकी इच्छा थी, परन्तु मैं काशी नहीं जा सकी और अब मर रही हूँ ॥ २७ ॥ अतः हे पुत्र ! तुम तन्द्राको त्यागकर गंगाजलमें मेरी अस्थियोंको डालना, तो तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ सूतजीने कहा, कि—माताके इस प्रकार कहने पर वह मातृभक्त बड़ा पुत्र अपनी मरनहार सुव्रता मातासे कहने लगा ॥ २९ ॥ पुत्रने कहा, कि—हे मातः ! तुम कुछ सन्देह न रखकर सुखसे प्राणोंको त्यागो, मैं पहिले तुम्हारा कार्य करके फिर अपना कार्य करूँगा ॥३०॥ इस प्रकार हाथ में जल देकर पुत्र हटा, कि—उसकी माता शंकरका स्मरण करती हुई मर गई ३१ तब वह उसके सब कर्मोंको कर तथा मासिककर्म कर गंगाजीको जानेके लिये उद्योग करने लगा ॥ ३२ ॥ इन दोनोंमें श्रेष्ठ जो सुवाद नामसे प्रसिद्ध था, वह उसकी अस्थियोंको ले तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे चलने लगा ।३३। उसने एक सेवक किया और उसको साथ ले भार्या तथा पुत्रोंको ढाढस दे माताका प्रिय

मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ३४ ॥ श्राद्धदानादिकं भोज्यं कृत्वा विधिमनुत्तमम् । मङ्गलस्मरणं कृत्वा निर्जगाम गृहाद् द्विज ॥ ३५ ॥ तद्दिने योजनं गत्वा विंशतिग्रामके शुभे । उवासास्तं गते भानौ गृहे विप्रस्य कस्यचित् ॥३६॥ चक्रे संध्यादि सत्कर्म स द्विजो विधिपूर्वकम् । स्तवादि कृतवांस्तत्र शम्भोरद्भुतकर्मणः ॥३७॥ सेवकेन तदा युक्तो ब्राह्मणः संस्थितस्तदा । यामिनी च गता तत्र मुहूर्तद्वयसंमिता ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्रैकमाश्चर्यमभूत्तदा । शृणुतादरतस्तच्च मुनयो यो वदाम्यहम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीचरणवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूत उवाच । गौश्चैकाऽप्रभवत्तत्र ह्यङ्गणे बन्धिता शुभा । तदैव ब्राह्मणो रात्रावाजगाम बहिर्गतः ॥ १ ॥ स उवाच प्रियां स्वीयां दृष्ट्वा गामङ्गणे स्थिताम् । अदुग्धां खेदनिर्विण्णो दोग्धुकामो मुनीश्वराः ॥ २ ॥ गौः प्रिये नैव दुग्धा ते सेत्युक्ता वत्समानयत् । दोहनार्थं समाहूय स्त्रियं शीघ्रतरं तदा ॥ ३ ॥ वत्सं कीले स्वयं बद्धुं यत्नं चैवाकरोत्तदा । ब्राह्मणस्स गृहस्वामी मुनयो दुग्धलालसः ॥४॥ वत्सोऽपि कर्षमाणश्च पादे वै पादपीडनम् । चकार ब्राह्मणश्चैव कष्टं प्रासश्च सुव्रताः ॥ ५ ॥ तेन पादप्रहारेण स द्विजः क्रोधमूर्च्छितः । वत्सं च ताडयामास

करनेकी इच्छासे ॥ ३४ ॥ श्राद्ध दान और श्रेष्ठ ब्रह्मभोज कर मंगल स्मरण कर घरसे चल दिया ॥ ३५ ॥ और चार कोस चल उस दिन सायंकाल होने पर सूर्यास्त होने पर विंशति नामक ग्राममें एक शुभ ब्राह्मणके घर ठहर गया ॥ ३६ ॥ तहाँ उस द्विजने विधिपूर्वक संध्या आदि सत्कर्म कर अद्भुत कर्म करने वाले शंभुकी स्तुति आदि की ॥ ३७ ॥ फिर दो मुहूर्त रात्रि बीतने पर ब्राह्मण अपने सेवकके साथ तहाँ विश्राम करने लगे ॥३८॥ हे मुनियों ! इसी समय तहाँ एक आश्चर्यजनक घटना घटी उसको आप आदरपूर्वक सुनिये, मैं आपसे कहता हूँ ॥ ३९ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥५॥

सूतजीने कहा, कि—उस आँगनमें एक शुभ गौ बँध रही थी, उसी समय बाहर गया हुआ ब्राह्मण भी रात्रिमें लौट आया ॥ १ ॥ हे मुनीश्वरों ! वह गौको आँगनमें विना दुही हुई खड़ी देख चित्तमें खिन्न हुआ और दुहनेकी इच्छासे अपनी पत्नीसे कहने लगा ॥ २ ॥ कि—हे प्रिये ! तूने गौ नहीं दुही तब वह बछड़ेको लाने लगी तब उसने अपनी स्त्रीको शीघ्रतासे दुहनेके लिये बुला लिया ॥ ३ ॥ और वह गृहस्वामी ब्राह्मण दुग्धकी लालसासे बछड़ेको खूँटेसे बाँधनेका प्रयत्न करने लगा ॥ ४ ॥ खिचने पर बछड़ेने अपना पैर ब्राह्मणके पैर पर रख दिया तब सुव्रत ब्राह्मणको कष्ट हुआ ॥ ५ ॥ उस

कूर्पेद्दढतरैस्तदा ॥६॥ वत्सोऽपि पीडितस्तेन श्रान्तश्चैवाभवत्तदा । दुग्धा गौर्मोचितो वत्सो न क्रोधेन द्विजन्मना ॥ ७ ॥ गौर्दोग्धुं च महाप्रीत्या रोदनं चाकरोत्तदा । दृष्ट्वा च रोदनं तस्या वत्सो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ वत्स उवाच । कथं च रुद्यते मातः किन्ते दुःखमुपस्थितम् । तन्निवेदय मे प्रीत्या तच्छ्रुत्वा गौरवोचत ॥ ६ ॥ श्रूयतां पुत्र मे दुःखं वक्तुं शक्नोम्यहं न हि । दुष्टेन ताडितस्त्वं च तेन दुःखं ममाप्यभूत् ॥ १० ॥ सूत उवाच । स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा स वत्सः प्रत्यबोधयत् । प्रत्युवाच स्वजननीं प्रारब्धपरिनिष्ठितः ॥ ११॥ किं कर्त्तव्यं क्व गंतव्यं कर्मबद्धा वयं यतः । कृतं चैव यथा पूर्वं भुज्यते च तथाधुना ॥१२॥ हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते । दुःखदाता न कोऽप्यस्ति सुखदाता न कश्चन ॥ १३ ॥ सुखदुःखे परो दत्त इत्येषा कुमतिर्मता । अहं च वि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदोच्यते ॥ १४ ॥ स्वकर्मणा भवेद् दुःखं सुखं तेनैव कर्मणा । तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम् ॥ १५ ॥ त्वं चैवाहं च जननी इमे जीवादयश्च ये । ते सर्वे कर्मणा बद्धा न शोच्याः कर्हिचित्त्वया ॥ १६ ॥ सूत उवाच । एवं श्रुत्वा

पादप्रहारसे वह द्विज क्रोधमें भर गया और बछड़ेको मजबूत नालसे पीटने लगा ॥ ६ ॥ बछड़ेको पीटते पीटते वह ब्राह्मण थक गया, तदनन्तर ब्राह्मणने गौ तो दुह ली परन्तु क्रोधके कारण बछड़ा नहीं खोला ॥७। उस समय गौ प्रीतिके कारण रोने लगी, माताको रोते देख बछड़ेने कहा, ॥८। बछड़ेने कहा, कि—हे मातः ! तुम क्यों रोती हो ? तुम्हें क्या दुःख है, तुम्हारी यदि मुझ पर प्रीति हो तो यह बात बताओ, इस बातको सुनकर गौने कहा, कि—। ६ ॥ हे बेटे ! सुन मुझसे अपना दुःख कहा नहीं जाता, दुष्टने तुझे ताड़ना दी, इससे मुझे दुःख होरहा है ॥ १० ॥ सूतजीने कहा, कि—अपनी माताके वचनको सुन प्रारब्ध पर विश्वास रखने वाला वह बछड़ा अपनी माताको बातें कर समझाने लगा, कि—। ११ ॥ हम कर्ममें बँधे हुए हैं, इसलिये क्या करें ? और कहाँ जावें ? प्राणी जैसा कर्म पहिले करता है, वैसा ही इस समय भोगता है ॥ १२ ॥ प्राणी हँसते हँसते कर्म करता है परन्तु रोते रोते कर्मफल भोगता है, न कोई दुःखका देने वाला है और न कोई सुखका देने वाला है ॥ १३ ॥ सुख वा दुःख दूसरा देता है, इसको तो कुमति माना है और मैं करता हूँ, इसको मिथ्याज्ञान कहा है ॥ १४ ॥ अपने कर्मसे दुःख होता है और ऐसे ही अपने कर्मसे ही सुख मिलता है, अतः कर्मकी प्रशंसा है, सब कुछ कर्ममें प्रतिष्ठित है तुम और मैं तथा ये जीव आदि सब ही अपने २ कर्मोंसे बँधे हुए हैं, अतः तुम्हें इनका शोक नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ सूतजीने कहा, कि—अपने पुत्रके इस

स्वपुत्रस्य वचः श्रुत्वा ज्ञानगर्भितम् । पुत्रशोकान्विता दीना सा च गौरब्रवीदिदम् १७ गौरुवाच । वत्स सर्वं विजानामि कर्माधीनाः प्रजा इति । तथापि मायया ग्रस्ता दुःखं प्राप्नोम्यहं पुनः ॥ १८ ॥ रोदनं च कृतं भूरि दुःखशान्तिर्भवेन्न हि । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसूं वत्सोऽब्रवीदिदम् ॥ १९ ॥ वत्स उवाच । यद्येवं च विजानासि पुनश्च रुदनं कुतः । कृत्वा च साध्यते किञ्चित्तस्माद् दुःखं त्यजाधुना २० सूत उवाच । एवं पुत्रवचः श्रुत्वा तन्माता दुःखसंयुता । निःश्वस्याति तदा धेनुर्वत्सं वचनमब्रवीत् ॥२१॥ गौरुवाच । मम दुःखं तदा गच्छेद्यथा दुःखं तथाविधम् । भवेद्धि ब्राह्मणस्यापि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ २२ ॥ प्रातश्चैव मया पुत्र शृङ्गाभ्यां हि हनिष्यते । हतश्च जीवितं सद्यो यास्यत्यस्य न संशयः ॥२३॥ वत्स उवाच । प्रथमं यत्कृतं कर्म तत्फलं भुज्यतेऽधुना । अस्याश्च ब्रह्महत्याया मातः किं फलमाप्स्यसे ॥ २४ ॥ समाभ्यां पुण्यपापाभ्यां भवेज्जन्म च भारते । तयोः क्षये च भोगेन मातर्मुक्तिरवाप्यते ॥२५॥ कदापि कर्मणो नाशः कदा भोगः प्रजायते । तस्माच्च पुनरेवं त्वं कर्म मा कर्तुमुद्यता ॥ २६ ॥ अहं कुतस्ते पुत्रोद्य त्वं माता कुत एव च । वृथाभिमानः पुत्रत्वे मातृत्वे च विचार्य्यताम् ॥ २७ ॥ क्व

ज्ञानभरे वचनको सुनकर पुत्रशोकमें भरी हुई वह दीन गौ यह कहने लगी १७ गौने कहा, कि–हे वत्स ! मैं यह सब जानती हूँ, कि–प्रजाएँ कर्मपाशमें बँधी हुई हैं, तथापि मैं मायामें ग्रस्त होनेसे वारम्बार दुःख पाती हूँ ॥ १८ ॥ मैं बहुत रोचुकी तब भी मेरा दुःख शान्त नहीं होता, यह सुनकर बछड़ा अपनी मातासे कहने लगा ॥ १९ ॥ बछड़ेने कहा, कि–यदि तुम यह सब बातें जानती हो, तो फिर क्यों रोती हो, क्या रोनेसे कुछ काम बनेगा ? अतः दुःख करना छोड़ दो ॥ २० ॥ सूतजीने कहा, कि–पुत्रके इस वचनको सुन उस बछड़ेकी माता वह गौ बड़ा निःश्वास छोड़कर बछड़ेसे कहने लगी २१ गौने कहा, कि–मेरा दुःख तो तब जासकता है, जब इस ब्राह्मणको भी मेरी समान ही दुःख भोगना पड़े, मैं यह बात सत्य कह रही हूँ ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! प्रातःकाल होने पर मैं इसको सींगोंसे मारूँगी, मेरे सींग मारने पर इसके प्राण चले ही जावेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ बछड़ेने कहा, कि–पहिले जो कर्म किया है, उसका फल तो अब भोगना पड़ रहा है, और हे मातः ! इस ब्रह्महत्याका तो न जाने कैसा फल भोगना पड़ेगा ॥ २४ ॥ हे मातः ! पुण्य पाप बराबर होने पर भारतवर्षमें जन्म होता है और भोगवश उनका क्षय होने पर मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २५ ॥ कर्मसे कहीं कर्मका नाश होता है और कहीं भोग होता है, अतः तुम फिर कर्म करनेके लिये उद्यत मत हो ॥ २६ ॥ मैं तुम्हारा पुत्र कहाँसे आया और तुम मेरी माता

माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम् । न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतम्भुजः ॥२८॥ एवं ज्ञात्वा त्वया मातर्दुःखं त्याज्यं सुयत्नतः । सुभगाचरणं कार्यं परलोकसुखेप्सया ॥ २९ ॥ गौरुवाच । एवं जानाम्यहं पुत्र माया मां न जहात्यसौ । त्वद्दुःखेन सुदुःखं मे तस्मै दास्ये तदेव हि ॥ ३० ॥ पुनश्च ब्रह्म-हत्याया नाशो यत्र भवेदिह । तत्स्थलं च मया दृष्टं हत्या मे हि गमिष्यति ।३१। सूत उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा स्वमातुर्गौर्द्विजोत्तमाः । मौनत्वं स्वीकृतं तत्र वत्सेनोक्तं न किञ्चन ॥३२॥ तयोस्तदद्भुतं वृत्तं श्रुत्वा पान्थो द्विजस्तदा । हृदा विचारयामास विस्मितो हि मुनीश्वराः ॥ ३३ ॥ इदमत्यद्भुतं वृत्तं दृष्ट्वा प्रातर्मया खलु । गन्तव्यं पुनरेवातो गन्तव्यं तत्स्थलं पुनः ॥ ३४ ॥ सूत उवाच । विचार्येति हृदा विप्रः स द्विजः सेवकेन च । सुष्वाप तत्र जननीभक्तः परमविस्मितः ॥३५॥ प्रातःकाले तदा जाते गृहस्वामी समुत्थितः । बोधयामास तं पान्थं वचनं चेद-मब्रवीत् ॥ ३६ ॥ द्विज उवाच । स्वपिषि त्वं किमर्थं हि प्रातःकालो भवत्यलम् । स्वयात्रां कुरु तं देशं गमनेच्छा च यत्र ह ॥ ३७ ॥ तेनोक्तं श्रूयतां ब्रह्मञ्छरीरे

कहाँसे आई, विचार करो तो यह मातृत्व और पुत्रत्वका अभिमान व्यर्थ है ॥ २७ ॥ कैसी माता और कैसा पिता, कैसा पति और कैसी पत्नी, कोई भी किसीका नहीं है, सब ही अपने किये हुएको भोगते हैं ॥ २८ ॥ हे मातः! यह जान कर तुम दुःख करना छोड़ दो, प्राणीको परलोकके सुखकी इच्छासे सुन्दर आचरण ही करना चाहिये ॥ २९ ॥ गौने कहा, कि–हे पुत्र! मैं यह जानती हूँ, तथापि माया मुझे नहीं छोड़ती, तेरे दुःखसे मैं उसे यह दुःख अवश्य दूँगी ॥ ३० ॥ और फिर ब्रह्महत्याका जहाँ नाश होता है, वह स्थान मैंने देखा है, अतः मेरी हत्या दूर होजावेगी ३१ सूतजीने कहा, कि–हे द्विजोत्तमों! अपनी माताके इस वचनको सुनकर बछड़ा मौन होगया उसने कुछ न कहा ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरों! उन दोनों के इस अद्भुत वृत्तान्तको सुन वह मुसाफिर ब्राह्मण विस्मित होकर अपने हृदयमें विचारने लगा ॥ ३३ ॥ प्रातःकाल इस अद्भुत वृत्तान्तको देखकर ही मुझे चलना चाहिये और फिर उस ब्रह्महत्या दूर करने वाले स्थान पर भी चलना चाहिये ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा, कि–हे द्विजों! वह मातृभक्त विप्र अपने हृदयमें इस प्रकार विचार कर विस्मित होता हुआ अपने सेवकसहित सोगया ॥ ३५ ॥ फिर प्रातःकाल होने पर गृहस्वामी उठा और उस मुसा-फिरको जगा कर यह बात कहने लगा ॥ ३६ ॥ द्विजने कहा, कि–तुम कैसे सोरहे हो अब काफी प्रातःकाल होगया है अब तुम्हारी जिस देशको जाने की इच्छा हो तहाँकी यात्रा करो ॥ ३७ ॥ उसने कहा, कि–ब्रह्मन्! सुनिये!

सेवकस्य मे । वर्तते हि व्यथा स्थित्वा मुहूर्तं गम्यते ततः ॥ ३८ ॥ सूत उवाच । इत्येवं च मिषं कृत्वा सुष्वाप पुरुषस्तदा । तद् वृत्तमखिलं ज्ञातुमद्भुतं विस्मयावहम् ॥ ३९ ॥ दोहनस्य तदा काले ब्राह्मणः स्वसुतं प्रति । उवाच गन्तुकामश्च कार्यार्थं कुत्रचित्त्र सः ॥ ४० ॥ पितोवाच । मया तु गम्यते पुत्र कार्यार्थं कुत्रचित्पुनः । धेनुर्दोह्या त्वया वत्स सावधानादियं निजा ॥ ४१ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा ब्राह्मणवरस्स जगाम च कुत्रचित् । पुत्रः समुत्थितस्तत्र वत्सं च मुक्तवांस्तदा ॥ ४२ ॥ माता च तस्य दोहार्थमाजगाम स्वयन्तदा । द्विजपुत्रस्तदा वत्सं खिन्नं कीलेन ताडितम् ॥ ४३ ॥ बन्धनार्थं हि गोः पार्श्वमनयद् दुग्धलालसः । पुनर्गौश्च तदा क्रुद्धा शृङ्गेनाताडयच्च तम् ॥ ४४ ॥ पपात मूर्च्छां संप्राप्य सोऽपि मर्मणि ताडितः । लोकाश्च मिलितास्तत्र गवा बालो विहिंसितः ॥३५॥ जलं जलं वदन्तस्ते पित्राद्या यत्र संस्थिताः । यत्नश्च क्रियते यावत्तावद्बालो मृतस्तदा ॥४६॥ मृते च बालके तत्र हाहाकारो महानभूत् । तन्माता दुःखिता ह्यासीद्रुरोद च पुनः पुनः ॥४७। किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति । रुदित्वेति तदा गां च ताडयित्वा व्यमोचयत् ॥३८॥ श्वेतवर्णा तदा

मेरे सेवकके शरीरमें व्यथा है अतः मुहूर्त भर ठहर कर जाऊँगा ॥ ३८ ॥ सूतजीने कहा, कि-वह पुरुष इस प्रकार बहाना कर उस विस्मयमें डालने वाले सकल वृत्तान्तको जाननेकी इच्छासे फिर सोगया ॥ ३९ ॥ तब वह ब्राह्मण दुहनेका समय आनेपर कहीं कामके लिये जानेकी इच्छासे अपने पुत्रसे कहने लगा ॥ ४० ॥ पिताने कहा, कि--हे पुत्र ! मैं कामके लिये कहीं जाता हूँ, अतः हे वत्स ! तुम सावधानतापूर्वक अपनी इस गौको दुह लेना ४१ सूतजीने कहा, कि--इसप्रकार कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहींको चला गया फिर पुत्रने उठकर बछड़ेको खोल दिया ॥ ४२ ॥ और उसकी माता स्वयं दुहनेके लिये आगई, तब दुग्धकी इच्छा वाला वह ब्राह्मणपुत्र डण्डेसे पिटने से खिन्न हुए बछड़ेको बाँधनेके लिये गौके पास लाने लगा तब गौने क्रोध में भर कर उसको सींगोंसे मारा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बालक मर्मस्थलमें चोट लगनेसे मूर्छित होकर गिर पड़ा, तब लोग एकत्रित होकर कहने लगे, कि--गौने बालक पर प्रहार किया है ॥ ४५ ॥ और जल जल पुकारते हुए पिता आदि तहाँ खड़े रहे और जब तक वह यत्न करें, तब तक बालक मर गया ॥ ४६ ॥ बालकके मरने पर तहाँ बड़ा भारी हाहाकार मचा और उसकी माता वारम्वार दुःखित होती हुई रोने लगी ॥ ४७ ॥ हाय ! क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे दुःखको कौन दूर करेगा, इस प्रकार रोपीट कर उसने गौको पीट कर खोल दिया ॥ ४८ ॥ उस समय वह श्वेत वर्ण वाली

सा गौस्तु तं श्यामा ह्यदृश्यत । अहो च दृश्यतां लोकाश्चुक्रुशुश्च परस्परम् ४९
ब्राह्मणश्च तदा पान्थो दृष्ट्वाश्चर्यं विनिर्गतः। यत्र गौश्च गता तत्र तामनु ब्राह्मणो
गतः ॥५०॥ ऊर्ध्वपुच्छं तदा कृत्वा शीघ्रं गौर्नर्मदां प्रति। आगत्य नन्दिकस्यास्य
समीपे नर्मदाजले ॥ ५१ ॥ संनिमज्ज्य त्रिवारं तु श्वेतत्वं च गता हि सा । यथा-
गतं गता सा च ब्राह्मणो विस्मयं गतः ॥ ५२ ॥ अहो धन्यतमं तीर्थं ब्रह्महत्या-
निवारणम् । स्वयं च ह्यवगाहस्तत्र ब्राह्मणस्सेवकस्तथा ॥ ५३ ॥ निमज्ज्य हि गतौ
तौ च प्रशंसन्तौ नदीं च ताम् । मार्गे च मिलिता काचित्सुन्दरी भूषणान्विता ५४
तयोक्तं तं च भोः पान्थ कुतो यासि सुविस्मितः । सत्यं ब्रूहि च्छलं त्यक्त्वा विप्र-
वर्य ममाग्रतः ॥५५॥ सूत उवाच । एवं वचस्तदा श्रुत्वा द्विजेनोक्तं यथातथम् ।
पुनश्चायं द्विजस्तत्र स्त्रियोक्तः स्थीयतां त्वया ॥ ५६ ॥ तयोक्तं च समाकर्ण्य स्थि-
तस्स ब्राह्मणस्ततः । इत्युवाच विनीतात्मा कथ्यते किं वदेति च ॥५७॥ सा चाह
पुनरेवात्र त्वया दृष्टं स्थलं च यत् । तत्राधुना क्षिपास्थीनि मातुः किं गम्यते-
ऽन्यतः ॥ ५८ ॥ तव माता पान्थवर्य साक्षाद्दिव्यमयं वरम् । देहं धृत्वा द्रुतं
साक्षाच्छंभोर्यास्यति सद्गतिम् ॥५९॥ वैशाखे चैव संप्राप्ते सप्तम्यां च दिने शुभे।

गौ शीघ्र ही काली दीखने लगी तब लोग परस्पर कहने लगे, कि—अहो ! इस (आश्चर्यजनक बात) को देखो ॥ ४९ ॥ वह मुसाफिर ब्राह्मण इस आश्चर्यजनक घटनाको देखकर वहाँसे चल दिया और जहाँ गौ जाती थी उसके पीछे २ चल दिया ॥ ५० । और वह गौ ऊपरको पूँछ कर नर्मदाकी ओर चलदी और नन्दिकेशके पास आ नर्मदाके जलमें तीन बार डुबकी लगा श्वेत होगई तथा फिर लौट गई, इसको देख ब्राह्मण विस्मित होगया ।५१।५२। और अहो ! इस ब्रह्महत्याको दूर करने वाले तीर्थको धन्य है, यह कहकर ब्राह्मणने अपने सेवकके साथ उस तीर्थमें स्नान किया ।५३। वे दोनों स्नान कर उस नदीकी प्रशंसा करते हुए चल दिये, मार्गमें उन्हें एक आभूषणोंसे भूषित सुन्दरी मिली ५४ उसने कहा, कि—रे यात्री ! तुम विस्मित होते हुए कहाँको जाते हो, हे विप्रवर्य ! तुम छलको त्याग कर मेरे सामने सत्य बात कहो ५५ सूतजीने कहा, कि—इस बातके कहने पर द्विजने सब बात ठीक ठीक बतादी, तदनन्तर उस स्त्रीने द्विजसे कहा, कि—आप ठहरें ॥५६॥ उसकी बात सुन वह ब्राह्मण खड़ा होगया और विनीत चित्तसे कहने लगा, कि—आप क्या कहती हैं कहिये ॥५७॥ उसने कहा, कि—तुमने जो स्थान देखा है, वहाँ पर अपनी माताकी अस्थियें डाल दो दूसरी जगह क्यों जाते हो ॥५८॥ हे श्रेष्ठ यात्री ! (यहाँ अस्थियें डालनेसे) तुम्हारी माता दिव्य देह धारण कर शंभु

सिते पक्षे सदा गङ्गा ह्यायाति द्विजसत्तम ॥ ६० ॥ अद्यैव सप्तमी या सा गङ्गा रूपान्विता तत्र वै । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी सा गङ्गा मुनिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ निवृत्तश्च द्विजः सोऽपि मात्रस्थ्यर्द्धं स्ववस्त्रतः । क्षिपेद्यावत्तत्र तीर्थे तावच्चित्रमभूत्तदा । दिव्यदेहत्वमापन्ना स्वमाता च व्यदृश्यत । धन्योसि कृतकृत्योसि पवित्रं च कुलं त्वया ॥ ६३ ॥ धनं धान्यं तथा चायुर्वंशो वै वर्द्धतां तव । इत्याशिषं मुहुर्दत्त्वा स्वपुत्राय दिवं गता ॥६४॥ तत्र भुक्त्वा सुखं भूरि चिरकालं महोत्तमम् । शंकरस्य प्रसादेन गता सा ह्युत्तमां गतिम् ॥६५॥ ब्राह्मणश्च सुतस्तस्याः क्षिप्त्वास्थीनि पुनस्ततः । प्रसन्नमानसोऽभूत्स शुद्धात्मा स्वगृहं गतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरलिंगमहात्म्यवर्णनब्राह्मणीस्वर्गगतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः । कथं गङ्गा समायाता वैशाखे सप्तमीदिने । नर्मदायां विशेषेण सूतैतद्वर्णय प्रभो ॥ १ ॥ ईश्वरश्च कथं जातो नन्दिकेशो हि नामतः । वृत्तं तदपि सुप्रीत्या कथय त्वं महामते ॥ २ ॥ सूत उवाच । साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा नन्दिकेशाश्रितं वचः । तदहं कथयाम्यद्य श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणी ऋषिका

की कृपासे शुभगति पावेगी ॥ ५९ ॥ हे द्विजसत्तम ! वैशाख शुक्ला सप्तमी के शुभ दिनमें गंगा सदा यहाँ आया करती हैं ॥६०॥ आज हो वह सप्तमी है और गंगा तहाँ विराजमान हैं, हे द्विजसत्तमों ! वह गङ्गादेवी इस प्रकार कह कर अन्तर्धान होगई ॥ ६१ ॥ तब उस द्विजने लौट कर जैसे ही अपने वस्त्रमेंसे माताकी अस्थियें उस तीर्थमें डालीं कि--तहाँ एक विचित्र घटना घटी ॥ ६२ ॥ कि--उसकी माता दिव्य देहको धारण किये हुए दीखो और तू धन्य है, कृतकृत्य है, तूने कुल पवित्र कर दिया ॥६३॥ तेरा धन धान्य आयु और यश बढ़े, इस प्रकार आशीर्वाद देकर वह स्वर्गको चली गई ६४ और तहाँ चिरकाल तक परमोत्तम सुख भोग कर शंकरकी कृपासे उत्तम गतिको प्राप्त हुई ॥६५॥ और उसका पुत्र वह ब्राह्मण उसकी अस्थियोंको इस प्रकार अर्पण कर पवित्र चित्त हो चित्तमें प्रसन्न होता हुआ अपने घर को चला गया ॥ ६६ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

ऋषियोंने कहा, कि--हे प्रभो ! हे सूतजी ! वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन गंगाजी नर्मदाजीमें कैसे आई थीं, इस बातका अच्छी प्रकारसे वर्णन करिये १ और हे महामते ! भगवान् शंकर भी नन्दिकेश नामसे कैसे प्रतिष्ठित हुए हैं, इस वृत्तान्तको आप प्रीतिपूर्वक वर्णन करिये ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि--ऋषियों ! आपने नन्दिकेशके विषयकी जो बात बूझी यह बहुत अच्छी बात बूझी, इस सुननेसे पुण्य बढाने वाली कथाको मैं अब कहता हूँ ॥३॥

नाम्ना कस्यचिच्च द्विजन्मनः । सुता विवाहिता कस्मैचिद्द्विजाय विधानतः ४
पूर्वकर्मप्रभावेण पत्नी सा हि द्विजन्मनः । सुव्रतापि च विप्रेन्द्रा बालवैधव्यमा-
गता ॥ ५ ॥ अथ सा द्विजपत्नी हि ब्रह्मचर्यव्रतान्विता । पार्थिवार्चनपूर्वं हि तप-
स्तेपे सुदारुणम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्नवसरे दुष्टो मूढनामाऽसुरो बली । ययौ तत्र
महामायी कामबाणेन ताडितः ॥ ७ ॥ तपन्तीं तां समालोक्य सुन्दरीमतिकामि-
नीम् । तदा भोगं ययाचे स नानालोभं प्रदर्शयन् ॥ ८ ॥ अथ सा सुव्रता नारी
शिवध्यानपरायणा । तस्मिन्दृष्टिं दधौ नैव कामदृष्ट्या मुनीश्वराः ॥९॥ न मानि-
तवती तं च ब्राह्मणी सा तपोरता । अतीव हि तपोनिष्ठासीच्छिवध्यानसमाश्रिता॥
अथ मूढः स दैत्येन्द्रः तदा तन्व्या तिरस्कृतः । चुक्रोध विकटं तस्य पश्चाद्रूपम-
दर्शयत् ॥ ११ ॥ अथ प्रोवाच दुष्टात्मा दुर्वचो भयकारकम् । त्रासयामास बहु-
शस्तां च पत्नीं द्विजन्मनः ॥ १२ ॥ तदा सा भयसंत्रस्ता बहुवारं शिवेति च ।
बभाषे स्नेहतस्तन्वी द्विजपत्नी शिवाश्रया ॥ १३ ॥ विह्वलातीव सा नारी शिव
नामप्रभाषिणी । जगाम शरणं शम्भोः स्वधर्मावनहेतवे ॥ १४ ॥ शरणागतरक्षार्थं
किंतु सद्वृत्तमार्हनम् । आनन्दार्थं हि तस्यास्तु शिव आविर्बभूव ह ॥१५॥ अथ

एक ब्राह्मणकी पुत्री स्वापिका नाम वाली थी, विधिविधानसे उस पुत्रीका विवाह एक विप्रके साथ हुआ ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्रों ! पूर्वकर्मके प्रभावसे वह ब्राह्मणपत्नी सुव्रता होने पर भी बालविधवा होगई ॥ ५ ॥ तब ब्रह्मचर्यमें परायण वह द्विजपत्नी शिवके पार्थिव-लिंगका पूजन करती हुई दारुण तप करने लगी ॥ ६ ॥ एक समय मूढ नामवाला महामायावान् बलवान् दुष्ट असुर कामबाणसे पीड़ित हो तहाँ पधारा ॥ ७ ॥ उस अतिकामिनी सुन्दरी को तप करती देख अनेक प्रकारका लोभ दिखा उससे संभोग करनेकी प्रार्थना करने लगा ॥ ८ ॥ परन्तु हे मुनीश्वरों ! उस शिवध्यानमें परायण सुव्रता नारीने उस पर कामदृष्टि की ही नहीं ॥९॥ वह तपमें परायण ब्राह्मणी शिवका ध्यान करती हुई परम तप करती रही, अतः उसने उस दैत्यकी बात न मानी ॥१०॥ उस सूक्ष्मांगीके तिरस्कार करने पर दैत्येन्द्र मूढ़ विकट-रूपसे कुपित हुआ, फिर उसने अपना रूप प्रकट किया ॥ ११ ॥ फिर वह दुष्टात्मा भयदायक दुर्वचन कहने लगा तथा उस द्विजपत्नीको अनेक प्रकार से त्रस्त करने लगा ॥१२॥ तब उस शिवके आसरे पर रहने वाली सूक्ष्मांगी द्विजपत्नीने भयसे त्रस्त हो स्नेहके साथ अनेक वार शिवके नामका स्मरण किया ॥ १३ ॥ तब वह शिव नामका उच्चारण करने वाली नारी अपने धर्मकी रक्षाके लिये परम विह्वल हो शिवकी शरणमें गई ॥ १४ ॥ तब शरणागतकी रक्षा करनेके लिये और श्रेष्ठ आचरण वालीका हित करनेके

तं मूढनामानं दैत्येन्द्रं कामविह्वलम् । चकार भस्मसात्सद्यः शंकरो भक्तवत्सलः॥ ततश्च परमेशानो कृपादृष्ट्या विलोक्य ताम् । वरं ब्रूहीति चोवाच भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १७ ॥ श्रुत्वा महेशवचनं सा साध्वी द्विजकामिनी । ददर्श शांकरं रूपमानन्दजनकं शुभम् ॥ १८ ॥ ततः प्रणम्य तं शंभुं परमेशं सुखावहम् । तुष्टाव साञ्जलिः साध्वी नतस्कन्धा शुभाशया ॥ १९ ॥ ऋषिकोवाच । देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । दीनबंधुस्त्वमीशानो भक्तरक्षाकरः सदा ॥ २० ॥ त्वया मे रक्षितो धर्मो मूढनाम्नोऽसुरादिह । यदयं निहतो दुष्टो जगद्रक्षा कृता त्वया २१ स्वपादयोः परां भक्तिं देहि मे ह्यनपायिनीम् । अयमेव वरो नाथ किमन्यदधिकं ह्यतः ॥ २२ ॥ अन्यच्च शृणु विभो प्रार्थनां मे महेश्वर । लोकानामुपकारार्थमिह त्वं संस्थितो भव ॥ २३ ॥ सूत उवाच । इति स्तुत्वा महादेवमृषिका सा शुभव्रता । तूष्णीमासाथ गिरिशः प्रोवाच करुणाकरः ॥२४॥ गिरिश उवाच । ऋषिके सुचरित्रा त्वं मम भक्ता विशेषतः । दत्ता वराश्च ते सर्वे तुभ्यं ये हि याचिताः॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र हरिब्रह्मादयः सुराः । शिवाविर्भावमाज्ञाय ययुर्हर्षसमन्विताः२६

के लिये तथा उसको आनन्दित करनेके लिये भगवान् शंकर प्रकट होगए १५ और भक्तवत्सल शंकरने कामसे विह्वल मूढ-नामक दैत्येन्द्रको तत्क्षण भस्म कर डाला ॥ १६ ॥ तदनन्तर भक्तकी रक्षा करनेमें चतुर है बुद्धि जिनकी ऐसे परमेश्वर उस नारीको करुणादृष्टिसे देख कर कहने लगे, कि—वर माँग १७ उस साध्वी द्विजकामिनीने महेशके वचनको सुन शंकरके आनन्द देने वाले शुभरूपके दर्शन किये ॥ १८ ॥ तब पवित्र आशय वाली वह साध्वी सुखदायक परमेश्वर शंभुको प्रणाम कर कंधा झुका हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगी १९ ऋषिकाने कहा, कि—हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव ! आप दीनबंधु हैं, ईश्वर हैं और सदा भक्तोंको रक्षा करते हैं ॥ २० ॥ आपने इस मूढ नामक असुरसे मेरे धर्मको बचाया है, इस दुष्टको मारकर आपने जगत्से ही मेरी रक्षा कर ली ॥ २१ ॥ अब आप अपने चरणोंकी अनपायिनी भक्ति दीजिये हे नाथ ! यही मेरा वर है, इससे अधिक और क्या वर होसकता है ॥ २२ ॥ और हे महेश्वर विभो ! एक मेरी प्रार्थना और सुनिये, आप लोगोंका उपकार करनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित होजाइये ॥२३॥ सूतजीने कहा, कि—वह शुभ व्रत धारण करने वाली इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति कर चुप होगई, तब करुणाकर शंकर बोले ॥ २४ ॥ गिरिशने कहा, कि—हे ऋषिके ! तुम सुचरित्र हो और विशेषतः मेरी भक्त हो, अतः जितने वर तुम माँग रही हो, वे सब वर मैं तुमको देता हूँ ॥ २५ ॥ इसी समय तहाँ ब्रह्मा आदि देवता शिवके आविर्भावको जानकर हर्षमें भरकर तहाँ पधारे ॥ २६ ॥ उन सबने शिवको

शिवं प्रणम्य सुप्रीत्या समानर्चुश्च तेऽखिलाः। तुष्टुवुर्नतका विप्राः करौ बद्ध्वा सुचेतसः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्समये गङ्गा साध्वी तां स्वधुनी जगौ। ऋषिकां सुप्रसन्नात्मा प्रशंसन्ती च तद्विधिम् ॥ २८ ॥ गङ्गोवाच। ममार्थं चैव वशाखे मासि देयं त्वया वचः। स्थित्यर्थं दिनमेकं मे सामीप्यं कार्य्यमेव हि ॥२९॥ सूत उवाच। गङ्गावचनमाकर्ण्य सा साध्वी प्राह सुव्रता। तथास्त्विति वचः प्रीत्या लोकानां हितहेतवे ॥३०॥ आनन्दार्थं शिवस्तस्याः सुप्रसन्नश्च पार्थिवे। तस्मिँल्लिंगे लयं यातः पूर्णांशेन तया हरः ॥३१॥ देवाः सर्वे सुप्रसन्नाः प्रशंसंति शिवं च ताम्। स्वं स्वं धाम ययुर्विष्णुब्रह्माद्या अपि स्वर्णदी ॥ ३२ ॥ तद्दिनात्पावनं तीर्थमासीदीदृशमुत्तमम्। नन्दिकेशः शिवः ख्यातः सर्वपापविनाशनः ॥ ३३ ॥ गङ्गापि प्रतिवर्षं तद्दिने याति शुभेच्छया। क्षालनार्थं स्वपापस्य यद्गृहीतं नृणां द्विजाः ॥३४॥ तत्र स्नातो नरः सम्यङ्नन्दिकेशं समर्च्य च। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते ह्यखिलैरपि ॥ ३५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच। द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या शिवलिंगानि तानि च। पश्चिमायां

प्रणाम कर प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया फिर हे विप्रों! वे हाथ जोड़ मस्तक झुका प्रसन्नचित्तसे स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ इसी समय साध्वी गंगाने चित्तमें प्रसन्न हो ऋषिकाके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा, ॥२८॥ गंगाजीने कहा कि-वैशाख मासमें एक दिनका वचन मेरे लिये भी देना चाहिये, मैं एक दिनके लिये (इस तीर्थके) समीपमें रहना चाहती हूँ ।२९। सूतजीने कहा, कि-गंगाजीकी बात सुन वह साध्वी सुव्रता संसारका हित करनेके लिये प्रीतिपूर्वक कहने लगीं, कि-तथास्तु ॥ ३० ॥ तब शिव प्रसन्न हो उसको आनन्द देनेके लिये अपने पूर्ण अंशसे उस पार्थिवलिंगमें लीन होगए ॥ ३१ ॥ तब सकल देवता प्रसन्न हो ऋषिकाकी और शिवकी प्रशंसा करने लगे फिर ब्रह्मा विष्णु आदि देवता और गंगा अपने अपने धामको पधार गए ॥ ३२ ॥ उस दिनसे वह उत्तमतीर्थ पावन होगया है और नन्दिकेश शिव सब पापोंको दूर करने वाले प्रसिद्ध होगए हैं ॥ ३३ ॥ और हे द्विजों! गंगा भी प्रतिवर्ष उस दिन शुभकी इच्छासे, मनुष्योंका जो पाप ग्रहण किया होता है उसको धोनेकी इच्छासे तहाँ पधारती है ॥ ३४ ॥ मनुष्य तहाँ स्नान कर और नन्दिकेशका पूजन कर ब्रह्महत्या आदि सकल पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३५ ॥ सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

सूतजीने कहा, कि-हे द्विजों! अब आप भूतलके पश्चिम दिशामें प्रसिद्ध शिव-

दिशायां वै यानि स्थानानि भूतले ॥ १ ॥ कपिलायां नगर्यां तु कालरामेश्वराभिधे। शिवलिंगे महादिव्ये दर्शनात्पापहारके ॥२॥ पश्चिमे सागरे चैव महासिद्धेश्वरः स्मृतः। धर्मार्थकामदश्चैव तथा मोक्षप्रदोऽपि हि ॥ ३ ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं क्षेत्रमुत्तमम्। ब्रह्महत्यादिपापघ्नं सर्वकामफलप्रदम् ॥४॥ गोकर्णे शिवलिंगानि विद्यन्ते कोटिकोटिशः। असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदेपदे ॥५॥ बहुनात्र किमुक्तेन गोकर्णस्थानि सर्वशः। शिवप्रत्यक्षलिंगानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ॥ ६ ॥ गोकर्णे शिवलिंगानां तीर्थानामपि सर्वशः। वर्ण्यते महिमा तात पुराणेषु महर्षिभिः ॥ ७ ॥ कृते युगे स हि श्वेतस्त्रेतायां सोऽतिलोहितः। द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति ॥ ८ ॥ आक्रान्तसप्तपातालकुहरोपि महाबलः। प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति ॥ ९ ॥ महापातकिनश्चात्र समभ्यर्च्य महाबलम्। शिवलिंगं च गोकर्णे प्रयाताश्शांकरम्पदम् ॥ १० ॥ गोकर्णे तत्र मुनयो गत्वा पुण्यर्क्षवासरे। येऽर्चयन्ति च तं भक्त्या ते रुद्राः स्युर्न संशयः॥ यदा कदाचिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः। पूजयेच्छिवलिंगं तत्स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां शंकरो हितकाम्यया। महाबला-

---

लिंगोंका भक्तिपूर्वक वर्णन सुनो ॥ १ ॥ कपिला नगरीमें कालेश्वर और रामेश्वर नामक महादिव्य शिव-लिंग हैं, ये दर्शनमात्रसे ही पाप हर लेते हैं २ पश्चिम सागर पर महासिद्धेश्वर नामक शिवलिंग है, यह धर्म अर्थ काम और मोक्ष तक प्रदान करता है ॥३॥ पश्चिम समुद्रके तट पर गोकर्ण नामका उत्तम क्षेत्र है, यह ब्रह्महत्या आदि समस्त पापोंको दूर करने वाला तथा सब कामनाओंका फल पूरा करने वाला है ॥ ४ ॥ गोकर्ण क्षेत्रमें करोड़ों शिवलिंग हैं और पद पद पर असंख्य तीर्थ हैं ॥५॥ अधिक कहनेसे क्या गोकर्णमें स्थित समस्त तीर्थ और जल शिवके प्रत्यक्ष लिंग हैं ॥ ६ ॥ हे तात ! पुराणोंमें महर्षियोंने गोकर्णके शिवलिंगोंकी और तीर्थोंकी महिमा सर्वत्र वर्णन की है ७ (गोकर्ण क्षेत्रका महाबल नामक शिवलिंग) कृतयुगमें श्वेत होता है, त्रेतामें बड़ा लाल होता है, द्वापरमें पीले वर्णका होता है और कलियुगमें श्याम-वर्णका होजावेगा ॥ ८ ॥ सातों पातालोंमें प्रसिद्ध महाबल नामक शिवलिंग घोर कलियुग आने पर कोमल होजावेगा ॥ ९ ॥ महापातकी भी यहाँ गोकर्णमें महाबल नामक शिवलिंगका पूजन कर शंकरके लोकको पाते हैं ॥ १० ॥ मुनि पवित्र नक्षत्र और वारमें गोकर्ण तीर्थमें जा भक्तिपूर्वक शिवका पूजन कर निःसन्देह रुद्रात्मक ही होजाते हैं ॥ ११ ॥ मनुष्य एक वार भी कभी गोकर्णमें शिवलिंगका पूजन कर लेता है तो ब्रह्मलोकमें जाता है ॥ १२ ॥ भगवान् शंकर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंके हितकी इच्छासे महाबल नामसे सदा

भिधानेन देवः संनिहितस्सदा ॥ १३ ॥ घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा । तल्लिङ्गं स्थापयामास गोकर्णे गणनायकः ॥ १४ ॥ विष्णुर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च विश्वेदेवा मरुद्गणाः । आदित्या वसवो दस्रौ शशांकश्च सतारकः ॥१५॥ एते विमानगतयो देवाश्च सह पार्षदैः । पूर्वद्वारं निषेवन्ते तस्य वै प्रीतिकारणात् ॥ १६ ॥ यमो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पावकः । पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥ १७ ॥ वरुणः सरितां नाथो गङ्गादिसरितां गणैः । महाबलं च सेवन्ते पश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥ १८ ॥ तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकालिका । मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिताः ॥ १९ ॥ सर्वे देवास्सगन्धर्वाः पितरः सिद्धचारणाः । विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नराः गुह्यकाः खगाः ॥ २० ॥ नानापिशाचावेताला दैतेयाश्च महाबलाः । नागाश्शेषादयस्सर्वे सिद्धाश्च मुनयोऽखिलाः ।२१। प्रणुवन्ति च तं देवं प्रणमन्ति महाबलम् । लभन्त ईप्सितान्कामान्रमन्ते च यथासुखम् ॥ २२ ॥ बहुभिस्तत्र सुतपस्तप्तं सम्पूज्य तं विभुम् । लब्धा हि परमा सिद्धिरिहामुत्रापि सौख्यदा ॥ २३ ॥ गोकर्णे शिवलिंगं तु मोक्षद्वार उदाहृतः । महाबलाभिधानोऽसौ पूजितः संस्तुतो द्विजाः ॥ २४ ॥ माघासितचतुर्दश्यां महाबलसमर्चनम् । विमुक्तिदं विशेषेण सर्वेषां पापिनामपि ॥२५॥ अस्यां शिवतिथौ

गोकर्णमें विराजमान रहते हैं ॥ १३ ॥ रावण नामक राक्षसने घोर तप कर इस लिंगको पाया था उसको गणनायकने गोकर्णमें स्थापित किया है ॥१४॥ विष्णु ब्रह्मा महेन्द्र विश्वेदेवा और मरुद्गण आदित्य वसु अश्विनीकुमार, तारों-सहित चन्द्रमा ये विमानचारी देवता अपने पार्षदोंको साथ ले महाबल महादेवकी प्रीतिके कारण पूर्वद्वार पर विराजमान रहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ यम मृत्यु चित्रगुप्त पावक पितर और रुद्रोंके साथ दक्षिणद्वारमें रहते हैं ॥ १७ ॥ नदीपति वरुण गंगा आदि नदियोंके साथ पश्चिम द्वार पर महाबलकी सेवा करते हैं ॥ १८ ॥ तथा वायु कुबेर देवेशी भद्रकालिका चण्डिका आदि मातृकाओंके साथ उत्तरके द्वार पर रहते हैं ॥१९॥ गन्धर्वोंसहित सकल देवता पितर सिद्ध चारण विद्याधर किम्पुरुष किन्नर गुह्यक खग, अनेक प्रकारके पिशाच और वेताल महाबली-दैत्य शेष आदि नाग सब सिद्ध और सकल मुनि इन महाबल देवकी स्तुति करते हैं और इनको प्रणाम करते हैं अतः मन-चाही वस्तुओंको पा सुखपूर्वक रमण करते रहते हैं ॥ २०-२२ ॥ अनेकोंने तहाँ विभुकी पूजा करते हुए तप किया है और इस लोक तथा परलोकमें सुख देनेवाली सिद्धि पाई है ॥ २३ ॥ हे द्विजों ! गोकर्णका महाबल नामक शिव-लिंग पूजा और स्तुति करने पर मोक्षका द्वार कहा है ॥ २४ ॥ माघ (फाल्गुन) कृष्णा चतुर्दशीके दिन महाबलका पूजन सकल पापियोंको भी मुक्ति देने वाला

सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः । आयांति सर्वदेशेभ्यश्चातुर्वर्ण्यमहाजनाः ॥ २६ ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः । दृष्ट्वा तत्रैत्य देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् २७ महाबलप्रभावात्ते तत्र लिंगं शिवस्य तु । संपूज्यैकाथ चाण्डाली शिवलोकं गता द्रुतम् ॥ २८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ऋषय ऊचुः । सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं शैवसत्तमः । चाण्डाली का समाख्याता तत्कथां कथय प्रभो ॥१॥ सूत उवाच । द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या तां कथां परमाद्भुताम् । शिवप्रभावसंमिश्रां शृण्वतां भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ चाण्डाली सा पूर्वभवेऽभवद् ब्राह्मणकन्यका । सौमिनी नाम चन्द्रास्या सर्वलक्षणसंयुता ॥३॥ अथ सा समये कन्या युवती सौमिनी द्विजाः । पित्रा दत्ता च कस्मैचिद् विधिना द्विजसूनवे ॥ ४ ॥ सा भर्तारमनुप्राप्य किंचित्कालं शुभव्रता । रेमे तेन द्विजश्रेष्ठा नवयौवनशालिनी ॥ ५ ॥ अथ तस्याः पतिर्विप्रस्तरुणस्सुरुजार्दितः । सौमिन्याः कालयोगात्तु पंचत्वमगमद् द्विजा ॥ ६ ॥ मृते भर्तरि सा नारी दुःखितातिविषण्णधीः । किंचित्कालं शुभाचारा सुशीलोवास सद्मनि ॥ ७ ॥ ततस्सा मन्मथाविष्टहृदया विधवापि च । युवावस्थाविशेषेण बभूव व्यभिचारिणी ॥८॥ तज्ज्ञात्वा

है ॥ २५ ॥ इस शिवतिथिमें महोत्सवको देखनेके लिये सब देशोंसे चतुर्वर्णके सज्जन पधारते हैं ॥ २६ ॥ चारों आश्रमोंके स्त्री बालक और वृद्ध तहाँ आ देवेशका दर्शन कर कृतकृत्य होते हैं ॥ २७ ॥ महाबलके प्रभावसे वे और एक चाण्डाली शिवलिंगका पूजन कर शिवलोकको पधार गई ॥ २८ ॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

ऋषियोंने कहा, कि-हे महाभाग शिवभक्त सूतजी ! आप धन्य हैं, हे प्रभो ! आपने कौनसी चाण्डालीका वर्णन किया उसकी कथा कहिये ॥ १ ॥ सूतजीने कहा, कि-हे द्विजों ! तुम शिवके प्रभावसे भरी हुई इस भक्ति बढ़ाने वाली परम अद्भुत कथाको भक्तिपूर्वक सुनो ॥२॥ यह चाण्डाली पहिले जन्ममें सब सुलक्षणों से सम्पन्न चन्द्रमुखी सौमिनी नाम वाली ब्राह्मणकन्या थी ॥ ३ ॥ हे मुने ! वह सौमिनी कन्या जब युवती होगई तब उसके पिताने एक ब्राह्मणपुत्रके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह कर दिया ॥ ४ ॥ वह शुभ व्रत वाली नवीन यौवनमें भरी ब्राह्मणी भर्ताको पा कुछ समय तक आनन्द करती रही ॥५॥ परन्तु हे द्विजों ! कालयोगसे उसका तरुण ब्राह्मणपति घोर रोगसे पीडित हो मर गया ॥ ६ ॥ स्वामीके मरने पर वह नारी बहुत दुःखित हुई और कुछ काल तक शुभ आचरण और सुशीलताका पालन करती हुई घरमें रही ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह विधवा

गोत्रिणस्तस्या दुष्कर्म कुलदूषणम् । समेतास्ततजुद् रं नीत्वा तां सकचग्रहाम् ९
कश्चिच्छूद्रवरस्तां वै विचरन्तीं निजेच्छया । दृष्ट्वा वने स्त्रियं चक्रे निनाय स्व-
गृहं ततः ॥ १० ॥ अथ सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी । असीजनत्सुता-
न्तेन शूद्रेण सुरतप्रिया ॥ ११ ॥ कदाचिद्भर्तरि क्वापि याते पीतसुराथ सा ।
इयेष पिशिताहारं सौमिनी व्यभिचारिणी ॥ १२ । ततो मेषेषु बद्धेषु गोभिस्सह
बहिर्व्रजे । निशामुखे तमोऽन्धे हि खड्गमादाय सा ययौ ॥ १३ ॥ अविमृश्य
मदावेशान्मेषबुद्ध्यामिषप्रिया । एकं जघान गोवत्सं क्रोशन्तमतिदुर्भगा ॥ १४ ॥
हतं तं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समङ्गना । भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्य-
कर्मणा ॥१५॥ सा मुहूर्तं शिवं ध्यात्वामिषभोजनलालसा । छित्त्वा तमेव गोवत्सं
चकाराहारमीप्सितम् ॥१६॥ एवं बहुतिथे काले गते सा सौमिनी द्विजाः । कालस्य
वशमापन्ना जगाम यमसंक्षयम् ॥ १७ ॥ यमोऽपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च
पौर्विकम् । निर्वर्त्य निरयावासाच्चक्रे चाण्डालजातिकाम् ॥ १८ ॥ साथ भ्रष्टा
यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता । ततो बभूव जन्मान्धा प्रशांतांगारमेचका ॥१९॥

युवावस्थाके प्रभावसे हृदयमें कामके व्यापने पर व्यभिचारिणी होगई ॥ ८ ॥ तब उसके कुलवालोंने उसके कुलको दूषित करने वाले दुष्कर्मको जानकर उसके केश पकड़ दूर लेजाकर उसको छोड़ दिया ॥ ९ ॥ उसको इच्छानुसार विचरती देख एक शूद्र उसको वनमें स्त्री बना अपने घर ले आया ॥ १० ॥ तब उसने मांस खा और नित्य शराब पी उस शूद्रसे रति कर पुत्र उत्पन्न करे ॥ ११ ॥ एक समय स्वामीके कहीं चली जाने पर सौमिनीने शराब पी फिर वह व्यभिचारिणी मांस खाना चाहने लगी १२ बाहर गोठमें गौओंके साथ मेढे बँधे रहे थे और वह अंधकारसे कुछ न दीखने वाले रात्रिके समय खड्गको लेकर चली १३ मदके आवेशमें उस मांसमें रुचि वालीको कुछ विचार न रहा और उस अभागिनीने मेढ़ा समझ कर एक रँभाते हुए गौके बछड़ेको मार डाला १४ वह स्त्री उस मरे हुए बछड़ेको घर लाई तो उसको गौका बछड़ा जान डरी और किसी पुण्यकर्मवश शिव शिव उच्चारण कर उठी ॥ १५ ॥ मांस खानेकी लालसा वाली वह मुहूर्त भर तक शिवका ध्यान करती रही फिर उसी गोवत्स को काट कर मनके अनुसार भोजन करने लगी ॥१६॥ हे द्विजों ! इस प्रकार बहुतसा समय बीतने पर वह सौमिनी कालके वशमें पड़ यमके घर पहुँची १७ यमने उसके पहिले धर्मकर्मका विचार कर नरकवासके बाद उसको चाण्डाल जाति वाली कर दिया ॥ १८ ॥ अतः वह यमपुरसे भ्रष्ट हो चाण्डालीके गर्भ में आई और जिसके लिये अंगारे और अंधकार शान्त मालूम हो कुछ कष्ट न

जन्मान्धा साथ बाल्येऽपि विध्वस्तपितृमातृका । ऊढा न केनचिद् दुष्टा महाकुष्टरुजार्दिता ॥ २० ॥ ततः क्षुधार्दिता दीना यष्टिपाणिर्गतेक्षणा । चाण्डालोच्छिष्टपिंडेन जठराग्निमतर्पयत् ॥ २१ ॥ एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा स्वविपुलं वयः । जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् ॥ २२ ॥ कदाचित्साथ चांडाली गोकर्णं तं महाजनान् । आयास्यन्त्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽध्वगान् ॥ २३ ॥ अथासावपि चांडाली वसनासनतृष्णया । महाजनान् याचयितुं संचचार शनैः शनैः ॥ २४ ॥ गत्वा तत्राथ चांडाली प्रार्थयन्ती महाजनान् । यत्र यत्र चचारासौ दीनवाक्प्रसृताञ्जलिः ॥ २५ ॥ एवमभ्यर्थयंत्यास्तु चांडाल्याः प्रसृतांजलौ । एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमंजरीम् ॥ २६ ॥ तामञ्जलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः । अभक्ष्यमिति मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा ॥ २७ ॥ तस्याः कराद्विनिर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमञ्जरी । पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिंगस्य मस्तके २८ सैवं शिवचतुर्दश्यां रात्रौ पान्थजनान्मुहुः । याचमानापि यत्किंचिन्न लेभे दैवयोगतः ॥ २९ ॥ एवं शिवचतुर्दश्या व्रतं जातं न निर्मलम् । अज्ञानतो जागरणं परमानन्ददायकम् ॥ ३० ॥ ततः प्रभाते सा नारी शोकेन महता वृता । शनैर्निववृते

पहुँचावें ऐसी जन्मांध हुई ॥ १९ ॥ जन्मांध होने पर भी बालकपनमें ही उसके माता पिता मर गए और बड़ा भारी कोढ़ रोग उसको होगया अतः उस दूषिताके साथ किसीने विवाह नहीं किया ॥२०॥ तब वह हाथमें लकड़ी लेकर घूमने वाली अंधी दीन लड़की भूखसे पीड़ित होने पर चाण्डालोंके झूँठे बचे अन्नसे अपना उदर भर लेती थी ॥ २१ ॥ इस प्रकार कठिनतासे अपनी बहुत आयु बिता कर सब अंगोंमें बुढ़ापा छा जाने पर घोर दुःख पाने लगी ॥ २२ ॥ एक समय उस चाण्डालीको मालूम हुआ, कि-आगामी शिवतिथिमें बहुतसे बड़े बड़े आदमी गोकर्ण नामक क्षेत्रको जावेंगे ॥ २३ ॥ तब वह चाण्डाली भी वस्त्र और भोजन पानेकी लालसासे उन पुण्यात्माओंसे माँगती हुई धीरे धीरे चली ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँच कर वह चाण्डाली बड़े आदमियोंके सामने हाथ फैला दीन वाणीसे प्रार्थना करती हुई घूमने लगी ॥ २५ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करती हुई चाण्डालीके फैले हुए हाथ पर एक पुण्यात्मा यात्रीने बिल्वमञ्जरी धर दी ॥२६॥ अञ्जलिमें आई हुई उस बेलकी मञ्जरीको खाने योग्य न मान उसने आतुर होकर दूर फेंक दिया ॥ २७ ॥ रात्रिमें उसके हाथसे फेंकी हुई वह बिल्वमञ्जरी किसी प्रारब्धवश शिवलिंगके ऊपर गिरी ॥ २८ ॥ इधर शिवचतुर्दशीकी रात्रिमें यात्रियोंसे बारम्बार माँगने पर भी दैवयोगसे उस चाण्डालीको कुछ न मिला ॥ २९ ॥ इसप्रकार अज्ञानवश शिवचतुर्दशी का निर्मल व्रत और परम आनन्द देने वाला जागरण होगया ॥ ३० ॥ तद-

दीना स्वदेशायैव केवलम् ॥३१॥ श्रांता चिरोपवासेन निपतन्ती पदेपदे । अतीत्य तावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥ ३२ ॥ अथ सा शम्भुकृपया जगाम परमं पदम् । आरुह्य सुविमानं च नीतं शिवगणैर्द्रुतम् ॥ ३३ ॥ आदौ यदेषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाप्यसती जगाद । तेनेह भूयः सुकृतेन विप्रा महाबलस्थानमवाप दिव्यम् ॥ ३४ ॥ श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके । कृत्वा जागरणं सा हि चक्रे बिल्वार्चनं निशि ॥३५॥ अकामतः कृतस्यास्य पुण्यस्यैव च तत्फलम् । भुनक्त्यद्यापि सा चैव महाबलप्रसादतः ॥ ३६ ॥ एवंविधं महालिंगं शङ्करस्य महाबलम् । सर्वपापहरं सद्यः परमानन्ददायकम् ॥ ३७ ॥ एवं वः कथितं विप्रा माहात्म्यं परमं मया । महाबलाभिधानस्य शिवलिंगवरस्य हि ॥३८॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं तस्य चाद्भुतम् । श्रुतमात्रेण येनाशु शिवे भक्तिः प्रजायते॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चाण्डालीसद्गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच । श्रीमतीक्ष्वाकुवंशे हि राजा परमधार्मिकः । आसीन्मित्रसहो नाम श्रेष्ठस्सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥ तस्य राज्ञः सुधर्मिष्ठा मदयन्ती प्रिया शुभा । दमयन्ती नलस्येव बभूव विदिता सती ॥ २ ॥ स एकदा हि मृगयास्नेही मित्र-

---

नन्तर प्रातःकाल होने पर वह दीन नारी बड़े भारी शोकमें हो धीरे २ अपने देशको ही लौट चली ।। ३१ ।। और बहुत समयके उपवासके कारण थक कर पद पद पर लड़खड़ाती हुई कुछ भूमिको लाँघ बेहोश होकर गिर पड़ी ३२ तब वह शंभुकी कृपासे परमपदको प्राप्त हुई, शिवजीके गण उसको झटपट विमान पर बैठा कर ले चले ।। ३३ ।। इस नारीने असती होने पर भी आरंभ में प्रमादवश शिवका नाम लिया था, हे विप्रों ! उस परम पुण्यसे यह महाबलके दिव्य स्थानमें पहुँची थी ॥ ३४ ।। और उसने शिवतिथिकी रात्रिमें गोकर्णक्षेत्रमें उपवास और जागरण कर शिव—मस्तक पर बिल्वार्चन किया था ।।३५।। अनजानमें किये इस पुण्यके फलको महाबलके प्रसादसे वह नारी आज भी भोग रही है ।। ३६ ।। महाबल शंकरका महालिंग ऐसा पापहारी और तत्काल परम आनन्द देने वाला है ।।३७।। हे विप्रों ! इस प्रकार आपसे मैंने महाबल नामक श्रेष्ठ शिव-लिंगका माहात्म्य कहा ॥ ३८ ।। अब मैं इस इस शिवलिंगके एक और अद्भुत माहात्म्यको कहता हूँ, उसको सुननेसे ही शिव में भक्ति होती है ॥ ३९ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा, कि–लक्ष्मीसे भरे हुए इक्ष्वाकुवंशमें सकल धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, परम धार्मिक मित्रसह नामक राजा हुआ ॥ १ ॥ उस राजाकी मदयन्ती नाम वाली शुभ धार्मिक रानी थी, वह नलकी दमयन्तीकी समान थी ।। २ ।।

सहो नृपः । महद्बलेन संयुक्तो जगाम गहनं वनम् ॥ ३ ॥ विहरंस्तत्र स नृपः कमठाह्वं निशाचरम् । निजघान महादुष्टं साधुपीडाकरं खलम् ॥४॥ अथ तस्यानुजः पापी जयेयं छद्मनैव तम् । मत्वा जगाम नृपतेरन्तिकं छद्मकारकः ॥ ५ ॥ तं विनम्राकृति दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम् । चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः ६ अथ तस्मिन्वने राजा कियत्कालं विहृत्य सः । निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीमाययौ मुदा ॥ ७ ॥ पितुः क्षयाहे सम्प्राप्ते निमन्त्र्य स्वगुरुं नृपः । वसिष्ठं गृहमानिन्ये भोजयामास भक्तितः ॥ ८ ॥ रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम् । शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत् ॥ ९ ॥ गुरुरुवाच । धिक् त्वां नरामिषं राजंस्त्वयैतच्छद्मकारिणा । खलेनोपहृतं मह्यं ततो रक्षो भविष्यसि ॥१०॥ रक्षःकृतं च विज्ञाय तदैवं स गुरुस्तदा । पुनर्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम् ॥ ११ ॥ स राजानुचितं शापं विज्ञाय क्रोधमूर्छितः । जलांजलिं समादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥१२॥ तदा च तत्प्रिया साध्वी मदयन्ती सुधर्मिणी । पतित्वा पादयोस्तस्य शापं तं हि न्यवारयत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्तरोषस्तु तस्या वचन-

---

एक समय वह मृगयाका स्नेही राजा मित्रसह बड़ी भारी सेनाको लेकर गहन वनमें घुसा ॥ ३ ॥ राजाने वहाँ विहार करते समय साधुओंको पीड़ा देनेवाले परम दुष्ट खल कमठ नाम वाले निशाचरको मार डाला ॥ ४ ॥ तब उसका पापी छोटा भाई मुझे इस राजाको छलसे जीतना चाहिये यह विचार कर छद्मवेश धर राजाके पास पहुँचा ॥ ५ ॥ विनम्र आकृति बनाकर नौकरी करने के लिये आये हुए उस राक्षसको उस राजाने अज्ञानवश रसोईघरका अध्यक्ष बना दिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर वह राजा उस वनमें कुछ दिन तक विहार कर मृगयाको छोड़ आनन्दपूर्वक अपनी नगरीमें लौटा ॥ ७ ॥ और पिताका एकोदिष्ट श्राद्ध आने पर राजाने अपने गुरु वसिष्ठजीको निमन्त्रण देकर अपने घर बुलाया और भक्तिपूर्वक उनको भोजन कराने लगा ॥ ८ ॥ उस समय रसोइयेके रूप वाले राक्षसने मनुष्यका मांस मिला हुआ भोजन परोस दिया, उसको देख कर गुरुने कहा ॥९॥ गुरुने कहा, कि—हे राजन्! तुझे धिक्कार है, तूने धोखा देनेके लिये मनुष्यका मांस मेरे सामने परोस दिया है अतः तू राक्षस होजा ॥ १० ॥ तदनन्तर गुरुने इस बातको राक्षसकी की हुई समझ फिर विचार कर उस शापको बारह वर्षके लिये ही कर दिया ॥ ११ ॥ और वह राजा शापको अनुचित समझ क्रोधमें भर गया और जलकी अञ्जलि ले गुरुको शाप देनेके लिये उद्यत होगया ॥ १२ ॥ तब उसकी साध्वी धार्मिक प्रिया मदयन्तीने राजाके चरणोंमें पड़कर राजा को रोका ॥ १३ ॥ तब अपनी स्त्रीके वचनके गौरववश राजाने क्रोध दूर

गौरवात् । तत्याज पादयोरम्भः पादौ कल्मषतां गतौ ॥१४॥ ततः प्रभृति राजाभूत्स लोकेऽस्मिन्मुनीश्वराः । कल्मषांघ्रिरिति ख्यातः प्रभावात्तज्जलस्य हि १५ राजा मित्रसहः शापाद् गुरो ऋषिवरस्य हि । बभूव राक्षसो घोरो हिंसको वनगोचरः ॥ १६ ॥ स बिभ्रद्राक्षसं रूपं कालान्तकयमोपमम् । चखाद विविधाञ्जन्तून् मानुषादीन्वनेचरः ॥ १७ ॥ स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ । अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्पती ॥ १८ ॥ राक्षसः स नराहारः किशोरं मुनिनन्दनम् । जग्धुं जग्राह शापार्त्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा ॥ १९ ॥ कुक्षौ गृहीतं भर्तारं दृष्ट्वा भीता च तत्प्रिया । सा चक्रे प्रार्थनां तस्मै वदती करुणं वचः ।२०। प्रार्थ्यमानोऽपि बहुशः पुरुषादः स निर्घृणः । चखाद शिर उत्कृत्य विप्रसूनोर्दुराशयः ॥ २१ ॥ अथ साध्वी च सा दीना विलप्य भृशदुःखिता । आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे किलोल्बणाम् ॥ २२ ॥ भर्तारमनुगच्छन्ती संविशन्ती हुताशनम् । राजानं राक्षसाकारं सा शशाप द्विजांगना ॥ २३ ॥ अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वं संगतो भवेः । तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा विवेश ज्वलनं सती ॥ २४ ॥ सापि

कर वह जल अपने ही चरणों पर डाल लिया, इस कारण उसके पैर चितकबरे होगए ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरों ! वह राजा उस जलके प्रभावसे उस दिनसे लोगोंमें कल्माषपाद नामसे प्रसिद्ध होगया ॥१५॥ और राजा मित्रसह ऋषिवर गुरुके शापसे वनचारी हिंसक घोर राक्षस होगया ॥ १६ ॥ वह यमराजकी समान राक्षस-रूपको धारण कर मनुष्य आदि अनेक प्रकारके प्राणियोंको खाता हुआ वनमें घूमने लगा ॥ १७ ॥ उस यमकी समान आकार वाले राक्षस राजाने एक समय नवविवाहित किशोर अवस्थाके मुनिदम्पतीको वनमें रमण करते हुए देखा ॥ १८ ॥ शापसे पीड़ित मनुष्योंका भक्षण करने वाला वह राक्षस जैसे बघर्रा मृगके छौनेको पकड़े इस प्रकार किशोर मुनिकुमारको खानेके लिये पकड़ने लगा ॥ १९ ॥ स्वामीकी कोख पकड़ी हुई देख कर उसकी प्रिया डर गई और करुणा भरे वचन कह कर प्रार्थना करने लगी ॥ २० ॥ परन्तु प्रार्थना करते रहने पर भी वह निर्दय दूषित अन्तःकरण वाला राक्षस ब्राह्मणपुत्रके शिरको काट कर खा गया २१ तब उस दीन साध्वीने परम दुःखी हो बड़ा विलाप किया और भर्ताकी अस्थियोंको एकत्रित कर चिता बनाई ॥ २२ ॥ फिर अग्निमें प्रवेश कर स्वामीके पास जाती हुई द्विजपत्नीने राक्षसके आकार वाले राजाको शाप दिया ॥ २३ ॥ आजसे जब तू स्त्रीसमागम करेगा, तब ही तेरी मृत्यु हो जावेगी, इस प्रकार कह कर वह सती अग्निमें प्रवेश कर गई ॥२४॥ यह राजा भी अवधि तक गुरुके शापको भोग फिर अपने स्वरूपको पा प्रसन्न

राजा गुरोश्शापमनुभूय कृतावधिम् । पुनः स्वरूपमास्थाय स्वगृहं मुदितो ययौ॥ ज्ञात्वा विप्रसतीशापं मदयन्ती रतिप्रियम् । पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ २६ ॥ अनपत्यो विनिर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः । विसृज्य सकलां लक्ष्मीं वनमेव जगाम ह ॥ २७ ॥ स्वपृष्ठतः समायान्तीं ब्रह्महत्यां सुदुःखदाम् । ददर्श विकटाकारां तर्जयन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ २८ ॥ तस्या निर्भेदमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः । चकार नानोपायान्स जपव्रतमखादिकान् ॥ २९ ॥ नानोपायैर्यदा राज्ञस्तीर्थस्नानादिभिर्द्विजाः । न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलां स ययौ तदा ३० बाह्योद्यानगतस्तस्याश्चिन्तया परयार्दितः । ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं पार्थिवश्च सः ॥ ३१ ॥ अभिसृत्य स राजेन्द्रो गौतमं विमलाशयम् । तद्दर्शनात्किंचित्कः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥ अथ तत्पृष्टकुशलो दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् । तत्कृपादृष्टिसंप्राप्तसुखः प्रोवाच तं नृपः ॥ ३३ ॥ राजोवाच । मुने मां बाधते ह्येषा ब्रह्महत्या दुरत्यया । अलक्षिता परैस्तात तर्जयन्ती पदेपदे ॥ ३४ ॥ यन्मया शापदग्धेन विप्रपुत्रश्च भक्षितः । तत्पापस्य न शान्तिर्हि प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ३५ ॥ नानोपायाः कृता मे हि तच्छान्त्यै भ्रमता मुने । न निवृत्ता ब्रह्महत्या मम पापा-

---

होता हुआ घरको लौट चला ॥ २५ ॥ मदयन्ती विप्र-सतीके शापको जान वैधव्यसे बहुत ही भयभीत हो राजाको रति करनेसे रोकती रहती थी २६ तब सन्तानहीन राजा राज्यभोगोंसे खिन्न हो सकल समृद्धिको छोड़ वनको चल दिया ॥ २७ ॥ उस समय उसने अपने पीछे विकट आकार वाली दुःखदायिनी ब्रह्महत्याको धमकाती हुई आती देखा ॥ २८ ॥ राजा चित्तमें खिन्न हो उससे छुटकारा पानेके लिये जप व्रत यज्ञ आदि अनेक प्रकारके उपाय करने लगा ॥ २९ ॥ हे द्विजो ! तीर्थस्नान आदि अनेक प्रकारके उपाय करने पर भी ब्रह्महत्या न हटी और राजा मिथिलामें पहुँचा ॥३०॥ राजा मिथिलाके बाहरके बगीचेमें बड़ी चिन्ता कर रहा था, कि-उसने गौतम मुनिको आते देखा ॥ ३१ ॥ तब वह राजेन्द्र पवित्र अन्तःकरण वाले गौतमके पास पहुँचा, उनके दर्शनसे उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ और उसने उन्हें बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ गौतम मुनिके प्रश्न करने पर राजाने बड़ा लम्बा गरम साँस भरा और उनकी कृपादृष्टिसे सुख पा उनसे कहने लगा ३३ राजाने कहा, कि-हे मुने ! यह घोर ब्रह्महत्या मुझे पीड़ा देरही है, हे तात ! यह दूसरोंको तो नहीं दीखती है, परन्तु मुझे पग पग पर धमकाती रहती है ॥ ३४ ॥ मैंने शापसे दग्ध होने पर जो ब्राह्मणपुत्र खा लिया था, उस पापकी शांति अब हजारों प्रायश्चित्तोंसे भी नहीं होती ॥ ३५ ॥ हे मुने ! ब्रह्महत्याकी शांतिके लिये मैंने घूमते २ अनेक उपाय किये, तो भी मुझ

त्मनः किमु ॥ ३६ ॥ अद्य मे जन्मसाफल्यं संप्राप्तमिव लक्षये। यतस्त्वद्दर्शनादेव ममानन्दभरोऽभवत् ॥ ३७ ॥ अद्य मे तव पादाब्जशरणस्य कृतैनसः। शान्तिं कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ सूत उवाच। इति राज्ञा समादिष्टो गौतमः करुणार्द्रधीः। समादिदेश घोराणामघानां साधुनिष्कृतिम् ॥३९॥ गौतम उवाच। साधु राजेन्द्र धन्योऽसि महाघेभ्यो भयन्त्यज। शिवे शास्तरि भक्तानां क्व भयं शरणैषिणाम् ॥ ४० ॥ शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम्। महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं शिवालयम् ॥ ४१ ॥ तत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्यो महतामपि। महाबलाभिधानेन शिवः संनिहितः स्वयम् ॥ ४२ ॥ सर्वेषां शिवलिंगानां सार्वभौमो महाबलः। चतुर्युगे चतुर्वर्णैस्सर्वपापापहारकः ॥ ४३ ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं तीर्थमुत्तमम्। तत्रास्ति शिवलिंगं तन्महापातकनाशकम् ॥ ४४ ॥ तत्र गत्वा महापापाः स्नात्वा तीर्थेषु भूरिशः। महाबलं च संपूज्य प्रयाताश्शांकरम्पदम् ॥ ४५ ॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम्। गत्वा सम्पूज्य तल्लिंगं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाः ॥ ४६ ॥ तत्र सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकन्त्वमाप्नुयाः ॥ ४७ ॥

पापोंकी वह ब्रह्महत्या क्या दूर नहीं होगी ॥३६॥ आज मुझे अपने जन्म की सफलता प्राप्त होती हुई सी दीख रही है, क्योंकि--आपके दर्शनसे ही मुझे आनन्द होरहा है ॥ ३७ ॥ हे महाभाग ! आज मुझ अपने चरण-कमलोंकी शरण लेने वाले पापीके लिये शान्ति दीजिये, जिससे मुझे सुख मिल सके ॥ ३८ ॥ सूतजीने कहा, कि--जब राजाने इस प्रकार प्रार्थना की तब गौतम करुणार्द्र होगए और उन्होंने घोर पापोंसे छूटनेका सरल उपाय बताया ॥ ३९ ॥ गौतमने कहा, कि--हे राजेन्द्र ! साधु ! तुम धन्य हो ! महापापोंका डर छोड़ दो, शिवसे शासकके होने पर उनकी शरण लेने वाले भक्तोंको दुःख कैसे हो सकता है ॥ ४० ॥ हे महाभाग राजन् ! सुनो, गोकर्ण क्षेत्रका शिवालय महापातकोंका संहार करनेके लिये प्रतिष्ठित है ४१ तहाँ बड़ेसे बड़े पाप भी नहीं टिकते, तहाँ महाबल नामसे शिव स्वयं ही विराजमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ सब शिवलिंगोंमें महाबल सार्वभौम (सम्राट्) हैं, यह चारों युगोंमें चारों वर्णोंके सकल पापोंको दूर करते रहते हैं ॥४३॥ पश्चिम समुद्रके तट पर उत्तम गोकर्ण तीर्थ है, तहाँ पर यह महापातकोंको नष्ट करने वाला शिवलिंग है ॥४४॥ बहुतसे महापापी तहाँ पहुँच तीर्थोंमें स्नान कर महाबलकी पूजा कर शंकरके लोकको चले गए हैं ॥४५॥ हे राजेन्द्र ! इसी प्रकार आप भी गोकर्णके शिवालयमें पहुँच उस शिवलिंगकी पूजा कर कृतकृत्य होजाओ ॥ ४६ ॥ तहाँके सकल तीर्थोंमें स्नान कर महाबल की

सूत उवाच । इत्यादिष्टः स मुनिना गौतमेन महात्मना । महाहृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत ॥ ४८ ॥ तत्र तीर्थेषु सुस्नात्वा समभ्यर्च्य महाबलम् । निर्धूताशेषपापौघोऽलभच्छम्भोः परम्पदम् ॥ ४९ ॥ य इमां शृणुयान्नित्यं महाबलकथां प्रियाम् । त्रिःसप्तकुलजैस्सार्द्धं शिवलोके व्रजत्यसौ ॥ ५० ॥ इति व्यस समाख्यातं माहात्म्यं परमाद्भुतम् । महाबलस्य गिरिशलिंगस्य निखिलाघहृत् ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलाह्वशिवलिंग-माहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ऋषय ऊचुः । सूतसूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः। महाबलस्य लिंगस्य श्राविवेयं कथाद्भुता ॥ १ ॥ उत्तरस्यां दिशायां च शिवलिंगानि यानि च । तेषां माहात्म्यमनघं वद त्वं पापनाशकम् ॥ २ ॥ सूत उवाच । शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः । माहात्म्यं शिवलिंगानां प्रवक्ष्यामि समासतः ॥३॥ गोकर्णं क्षेत्रमपरं महापातकनाशकम् । महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्तरम् ॥ ४ ॥ तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् । रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ॥५॥ तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनीश्वराः । सर्वलोकहितार्थाय

पूजा कर सब पापोंसे छुटकारा पा तुम शिवलोकको प्राप्त होजाओ ॥४७॥ सूतजीने कहा, कि--महात्मा गौतम मुनिके इस प्रकार आज्ञा देने पर राजाके चित्तमें बड़ा भारी हर्ष हुआ और वह गोकर्णक्षेत्रमें पहुँचा ॥ ४८ ॥ तहाँ तीर्थोंमें स्नान कर महाबल शम्भुका पूजन कर सम्पूर्ण पाप--मलोंको धोकर शम्भुके परम-पदको प्राप्त होगया ॥ ४९ ॥ जो प्राणी इस महाबलकी प्रिय कथाको नित्य सुनता है वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों सहित शिवलोकमें जाता है ॥ ५० ॥ इस प्रकार मैंने यह आपसे महाबल नामक शिवलिंगका सम्पूर्ण पापोंको हरने वाला परम अद्भुत माहात्म्य कह दिया ॥५१॥ दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

ऋषियोंने कहा, कि-हे महाभाग सूतजी ! आपकी बुद्धि शिवमें परायण रहती है, अतः आप धन्य हैं, आपने यह महाबल नामक शिवलिंगकी अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ अब आप उत्तर दिशामें जो शिवलिंग हैं उनके पाप-नाशक निर्मल माहात्म्यका वर्णन करिये ॥२॥ सूतजीने कहा, कि--हे विप्रों ! आप उत्तर दिशाके शिवलिंगोंका माहात्म्य आदरपूर्वक सुनिये, मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ गोकर्ण क्षेत्रमें ही एक दूसरा महापातकोंको नष्ट करने वाला पवित्र और अति--विस्तृत महावन है ॥ ४ ॥ वहाँ पर चन्द्रभाल नाम वाला श्रेष्ठ शिवलिंग है, उसको रावण लाया था और भक्ति करने पर वह सब प्रकारकी सिद्धि देता है ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वरों ! तहाँ पर उन करुणा-

करुणासागरस्य च ॥६॥ स्नानं कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं समर्च्य च । शिवलोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥७॥ चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाद्भुता। न शक्या वर्णितुं व्यासाद्भक्तस्नेहितरस्य हि ॥ ८ ॥ चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् । यथाकथञ्चित्संप्रोक्ता परलिंगस्य वै शृणु ॥ ६ ॥ दाधीचं शिवलिंगं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके । दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः । शिवलिंगं समर्चेद्वै दाधीचेश्वरमादरात् ॥११॥ दधीचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् । शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्राफलार्थिभिः ॥१२॥ एवं कृते मुनिश्रेष्ठाः कृतकृत्यो भवेन्नरः । इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र गतिमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम् । ऋषीश्वरमिति ख्यातं शिवलिंगं सुखप्रदम् ॥ १४ ॥ तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि । भुक्तिर्मुक्तिश्च तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ॥ १५ ॥ हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम् । पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम् १६ देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम् । शिवलिंगं सदा पूज्यं नरैस्सर्वाघनाशनम् १७

सागरकी स्थिति वैद्यनाथकी समान संसारका हित करनेके ही लिये है ।६। गोकर्णमें स्नान कर चन्द्रभालका पूजन करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ भक्तके परमस्नेही चन्द्रभाल लिङ्गकी परम अद्भुत महिमा व्यासजोसे भी पूरी २ वर्णन नहीं की जासकती ॥ ८ ॥ चन्द्रभाल महादेवके लिंगकी महान् महिमा कुछ कुछ कह दी अब एक और शिवलिंगकी महिमा सुनो ॥ ६ ॥ दाधीच नामक शिवलिंग मिश्रर्षि नामक श्रेष्ठ तीर्थमें है, इसकी दधीचि मुनिने प्रीतिपूर्वक प्रतिष्ठा की है ।।१०।। उस तीर्थमें पहुँच विधिविधानके अनुसार स्नान कर दाधीचेश्वर शिवलिंगका आदरपूर्वक पूजन करे ॥ ११ ॥ और तीर्थयात्रा का फल चाहने वालोंको शिवकी प्रीतिके लिये वहाँ दधीचिकी मूर्तिकी भी पूजा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियों ! ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाता है और इस लोकमें सब सुख भोग कर परलोकमें सद्गति पाता है ॥ १३ ॥ नैमिषारण्य तीर्थमें सम्पूर्ण ऋषियोंका प्रतिष्ठित किया हुआ ऋषीश्वर नामसे प्रसिद्ध सुखदायक शिवलिंग है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरों ! उसका दर्शन और पूजन करनेसे पापी मनुष्योंको भी इस लोकमें भोग और परलोकमें मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ हत्याहरण तीर्थमें पापको नष्ट करने वाले शिवलिंगकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये, यह शिवलिंग करोड़ों हत्याओंके पापको दूर करने वाला है ॥१६॥ देवप्रयाग तीर्थमें सब पापोंसे बचाने वाले ललितेश्वर नामक शिवलिंगका मनुष्योंको सदा पूजन

नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले। लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफल-प्रदम् ॥ १८ ॥ शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंगं तदस्ति हि। तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ॥ १९ ॥ तदारान्मुक्तिनाथाख्यं शिवलिंगं महाद्भुतम्। दर्शना-दर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ॥ २० ॥ इति वश्च समाख्यातं लिंगवर्णन-मुत्तमम्। चतुर्दिक्षु मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ २१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चन्द्रभालपशुपतिनाथ-लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ऋषय ऊचुः। सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः। तवाज्ञातं न विद्येत तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥ १ ॥ लिंगं च पूज्यते लोके त्वया कथितं च यत्। तत्तथैव न चान्यद्वा कारणं विद्यते त्विह ॥२॥ बाणरूपा श्रुता लोके पार्वती शिव-वल्लभा। एतत्किं कारणं सूत कथय त्वं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच। कल्प-भेदकथा चैव श्रुता व्यासान्मया द्विजाः। तामेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषि-सत्तमाः ॥ ४ ॥ पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तं तु द्विजन्मनाम्। तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥ दारुनामवनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः। शिवभक्ता-

करना चाहिये ॥ १७ ॥ पृथिवीमें नयपाल (नेपाल) नामसे प्रसिद्ध नगरी में पशुपति नामक शिवलिंग सब कामनाओंका फल देने वाला है ॥ १८ ॥ वह शिवलिंग शिरोभागस्वरूप है, इसकी कथा केदारेश्वरके वर्णनके समय कहूँगा ॥१९॥ उसके पास ही मुक्तिनाथ नाम वाला परम अद्भुत शिवलिंग है, इसका दर्शन और पूजन करनेसे भोग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है २० हे श्रेष्ठ मुनियों! इस प्रकार आपसे चारों दिशाओंके श्रेष्ठ शिवलिंगोंका वर्णन कर दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥२१॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

ऋषियोंने कहा, कि-हे सूत! आप व्यासजीकी कृपासे सब वस्तुओंको जानते हैं, कोई भी बात आपसे छिपी हुई नहीं है, अतः हम आपसे बूझते हैं ॥ १ ॥ संसारमें लिंगकी ही पूजा होती है इसीका आपने वर्णन किया है? और किसीकी भी पूजा होती है? इसमें क्या कारण है? ॥ २ ॥ संसारमें शिववल्लभा पार्वती बाणरूपसे प्रसिद्ध हैं, इसका क्या कारण है, हे सूत! जैसा तुमने सुना हो उसका वर्णन करिये ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे द्विजों! मैंने व्यासजीसे कल्पभेदकी कथा सुनी है, हे ऋषिसत्तमों! उसीको मैं आज कहता हूँ, सुनिये ॥ ४ ॥ पहिले दारुवनके ब्राह्मणोंमें जो घटना घटी थी उसको जैसा सुना है, तैसा ही कहता हूँ ॥ ५ ॥ दारु नामक श्रेष्ठ वनमें सदा शिवमें भक्ति करने वाले शिवके ध्यानमें परायण

स्सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥६॥ त्रिकालं शिवपूजां च कुर्वंति स्म निरन्तरम् । नानाविधैः स्तवैर्दिव्यैस्तुष्टुवुस्ते मुनीश्वराः ॥ ७ ॥ ते कदाचिद्वने याताः समिधाहरणाय च । सर्वे द्विजर्षभाश्शैवाश्शिवध्यानपरायणाः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः । विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ ९ ॥ दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः । स चेष्टामकरोद् दुष्टां हस्ते लिंगं विधारयन् ॥ १० ॥ मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् । जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः । विह्वला विस्मिताश्चान्यास्समाजग्मुस्तथा पुनः ॥ १२ ॥ आलिलिंगुस्तथा चान्या करं धृत्वा तथापराः । परस्परं तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्य्याः समागमन् । विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥१४॥ तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोयं कोयं तथाऽब्रुवन् । समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः ॥१५॥ यदा च नोक्तवान् किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः । ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥१६॥ त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपि यत् । ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले ॥१७॥ सूत उवाच । इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिङ्गं च पतितं क्षणात् । अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥ १८ ॥

श्रेष्ठ ऋषि रहते थे ॥ ६ ॥ वे तीनों समय निरन्तर शिवपूजन किया करते थे और हे मुनीश्वरों ! वह नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति करते थे ७ एक समय शिवके ध्यानमें परायण सब शैव द्विज वनमें समिधायें लेनेके लिये गए ॥ ८ ॥ इसी समय नीललोहित शंकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये तहाँ अद्भुत रूप बना कर आगए ॥९॥ भस्मके भूषणसे भूषित वह अतितेजस्वी दिगम्बर हाथमें लिंगको धारण कर दुष्ट चेष्टा करने लगे ॥ १० ॥ मनमें उन वनवासियोंका प्रिय करने की इच्छासे भक्तोंसे प्रसन्न रहने वाले हर उस वनमें गए ॥ ११ ॥ उनको देख कर ऋषिपत्नियें त्रस्त होगईं और विह्वल तथा विस्मित हो चारों ओरसे आगईं ॥ १२ ॥ एक दूसरीका हाथ पकड़ कर आलिंगन करने लगीं, इस प्रकार परस्पर संघर्ष कर वे स्त्रियें आश्चर्य में मग्न होगईं ॥ १३ ॥ इसी समय तहाँ वे ऋषि आये और इस विरुद्ध बातको देख दुःखित और क्रुद्ध होगए ॥१४॥ फिर शिवकी मायासे मोहमें पड़े वे सब ऋषि दुःखित हो, यह कौन है कौन है ? कहने लगे ॥ १५ ॥ जब उस अवधूत दिगम्बरने कुछ न कहा, तब वे परमर्षि उस भीम--पुरुषसे कहने लगे ॥ १६ ॥ तुम वेदमार्गको लुप्त करने वाले जो विरुद्ध कर्मको कर रहे हो, इस कारण तुम्हारा यह लिङ्ग पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १७ ॥ सूतजी ने कहा, कि--ऋषियोंके इस प्रकार कहने पर अद्भुत रूप वाले अवधूत शिव

तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्ददाह पुरः स्थितम् । यत्रयत्र च तद्याति तत्रतत्र दहेत् पुनः ॥ १९ ॥ पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च । भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ॥ २० ॥ लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽतिदुःखिताः । न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा २१ न ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः । दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः २२ तत्र गत्वा च ते सर्वे नत्वा स्तुत्वा विधिं द्विजाः । तत्सर्वमवदन्वृत्तं ब्रह्मणे सृष्टिकारिणे ॥२३॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा शिवमायाविमोहितान् । ज्ञात्वा ताञ्छंकरं नत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् २४ ब्रह्मोवाच । ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्वते गर्हितं द्विजाः । अज्ञातारो यदा कुर्युः किं पुनः कथ्यते पुनः ॥ २५ ॥ विरुद्ध्यैवं शिवं देवं कुशलं कस्समीहते । मध्याह्नसमये यो वै नातिथिं च परामृशेत् ॥ २६ ॥ तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयं च दुष्कृतं पुनः । संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनः शिवमेव वा ॥ २७ ॥ यावल्लिंगं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् । जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम् ॥२८॥ भवद्भिश्च तथा कार्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह । शिवलिंगस्य ऋषयो मनसा संविचार्यताम् २९

का लिंग तत्क्षण गिर पड़ा ॥ १८ ॥ वह लिंग अग्निकी समान सामनेकी वस्तुओंको भस्म करने लगा, वह जहाँ जहाँ पहुँचता था तहाँ २ आग लगा देता था ॥ १९ ॥ वह लिंग पातालमें स्वर्गमें और भूमिमें सर्वत्र घूमा परन्तु स्थिर न हुआ ॥ २० ॥ तब लोग व्याकुल होने लगे और वह ऋषि भी परम दुःखी हुए देवता और ऋषियोंको चैन नहीं पड़ा ॥ २१ ॥ तब शिव का स्वरूप जिनकी समझमें नहीं आया था ऐसे दुःख पाते हुए सकल देवता और ऋषि सम्मिलित हो ब्रह्म जीको शरणमें पहुँचे ॥ २२ ॥ तहाँ पहुँच कर द्विजोंने ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी स्तुति की, फिर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जीसे सब वृत्तान्त कहा ॥२३॥ ब्रह्माजी उनकी बात सुन उनको शिवमाया से मोहमें पड़े जान शिवको प्रणाम कर उन ऋषिसत्तमोंसे कहने लगे ।२४। ब्रह्माजीने कहा, कि–हे द्विजों ! आप ज्ञानी होकर भी निन्दित काम करते हैं, फिर अज्ञानी ऐसा काम करें तो उनसे फिर क्या कहा जासकता है?२५ इस प्रकार देव शिवसे विरोध कर कौन कुशलकी आशा रख सकता है, मध्याह्नके समय जो अतिथिका सत्कार नहीं करता है ॥२६॥ तो वह अतिथि उसके पुण्यको ले और अपने पापको तहाँ स्थापित कर चला जाता है, फिर शिवको तो बात ही क्या है ? ॥ २७ ॥ जब तक लिंग स्थिर नहीं होगा, तब तक त्रिलोकीमें कहीं भी सुख नहीं होसकता यह बात मैं सत्य कहता हूँ ॥ २८ ॥ हे ऋषियों ! तुम अपने मनमें शिवलिंगके विषयमें ऐसा विचार करो जिससे जगत्में स्वस्थता फैले ॥ २९ ॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार

सूत उवाच । इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुर्ब्रह्माणमृषयश्च वै । किमस्माभिर्विधे कार्यं तत्कार्यं त्वं समादिश ॥ ३० ॥ इत्युक्तश्च मुनीशैस्तैस्सर्वलोकपितामहः । मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच । आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराशिशवम् । योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥ तद्विधिम्प्रवदाम्यद्य सर्वं शृणुत सत्तमाः । तामेव कुरुत प्रेम्णा प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ ३३ ॥ कुम्भमेकं च संस्थाप्यं कृत्वाष्टदलमुत्तमम् । दूर्वायवांकुरैस्तीर्थोदकमापूरयेत्ततः ॥ ३४ ॥ वेदमंत्रैस्ततस्तं वै कुंभं चैवाभिमंत्रयेत् । श्रुत्युक्तविधिना तस्य पूजां कृत्वा शिवं स्मरन् ॥ ३५ ॥ तल्लिंगं तज्जलेनाभिषेचयेत्परमर्षयः । शतरुद्रीयमंत्रैस्तु प्रोक्षितं शांतिमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ गिरिजां योनिरूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः । तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभिमंत्रयेत् ॥ ३७ ॥ सुगन्धैश्चन्दनैश्चैव पुष्पधूपादिभिस्तथा । नैवेद्यादिकपूजाभिस्तोषयेत्परमेश्वरम् ३८ प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्वाद्यैर्गानैस्तथा पुनः । ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा जयेति व्याहरेत्तथा ॥ ३९ ॥ प्रसन्नो भव देवेश जगदाह्लादकारक । कर्ता पालयिता त्वञ्च संहर्ता त्वं निरञ्जनः ॥ ४० ॥ जगदादिर्जगद्योनिर्जगदन्तर्गतोऽपि च । शान्तो भव

कहने पर ऋषियोंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! हमैं क्या करना चाहिये, उस बातकी हमैं आज्ञा दीजिये ॥ ३० ॥ मुनीश्वरोंके इस प्रकार कहने पर सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा उनसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-आप गिरिजादेवीकी प्रार्थना करके शिवकी आराधना करें, यदि वह योनिरूप होजावेंगी, तो यह स्थिर होगा ॥३२॥ हे सज्जनों ! उसकी विधि मैं बताता हूँ, तुम उसको प्रेमपूर्वक करो तो गिरिजा प्रसन्न होंगी ॥ ३३ ॥ उत्तम अष्टदल बनाकर एक कुंभ स्थापित करो और उसमें दूब जौके अंकुरोंके साथ तीर्थका जल भरो ॥ ३४ ॥ फिर शास्त्रमें कही विधिसे शिवका स्मरण और पूजा करते हुए वैदिकमंत्रोंसे उस कुम्भको अभिमंत्रित करो ॥ ३५ ॥ हे परमर्षियों ! उस जलसे शिवका अभिषेक करो तो शतरुद्रिय मन्त्रोंसे प्रोक्षित हुआ शिवलिंग शान्त होगा ॥ ३६ ॥ योनिरूपा गिरिजाको शुभ बाणरूपमें स्थापित कर, उसमें लिंगको स्थापित कर फिर अभिमन्त्रण करो ॥ ३७ ॥ सुगंधित चन्दन पुष्प धूप नैवेद्य आदिसे पूजन कर परमेश्वरको संतुष्ट करो ॥ ३८ ॥ प्रणाम पवित्र-स्तोत्र गाना बजाना और स्वस्तिवाचन कर शिवकी जय बोलो ॥ ३९ ॥ हे जगत्को आनन्द देने वाले देवेश ! प्रसन्न हूजिये, आप निरञ्जन हैं और आप ही इस जगत्के कर्ता पालक और संहारक हैं ॥ ४० ॥ आप जगत्की आदि हैं, जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं और जगत्के भीतर वर्तमान हैं, हे महेशान ! आप

महेशान सर्वलोकांश्च पालय ॥ ४१ ॥ एवं कृते विधौ स्वास्थ्यं भविष्यति न संशयः। विकारो न त्रिलोकेऽस्मिन्भविष्यति सुखं सदा ॥ ४२ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तास्ते द्विजा देवाः प्रणिपत्य पितामहम् । शिवं तं शरणं प्राप्तास्सर्वलोकसुखेप्सया ॥ ४३ ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तदा । सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ॥ ४४ ॥ महेश्वर उवाच । हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् । योनिरूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ॥ ४५ ॥ पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा । तया धृतं च मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति ॥४६॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वा ऋषिभिर्देवैस्सुप्रसन्नैर्मुनीश्वराः । गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा ॥ ४७ ॥ प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च । पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ मंत्रोक्तेन विधानेन देवाश्च ऋषयस्तथा । चक्रुः प्रसन्नां गिरिजां शिवं च धर्महेतवे ॥ ४९ ॥ सम्पूज्य विशेषेण सर्वे देवर्षयः शिवम् । ब्रह्मा विष्णुः परे चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५० ॥ सुप्रसन्नः शिवो जातः शिवा च जगदम्बिका । धृतं तया च तल्लिंगं तेन रूपेण वै तदा ॥ ५१ ॥ लोकानां स्थापिते लिंगे कल्याणं चाभवत्तदा । प्रसिद्धं चैव

शान्त होकर सब लोकोंका पालन करिये ॥ ४१ ॥ ऐसा करने पर स्वस्थता फैलेगी और इस त्रिलोकीमें कोई विकार न रहकर सदा सुख मिलेगा ४२ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कहने पर वे द्विज और देवता ब्रह्माजीको प्रणाम कर सब लोगोंको सुख मिले इस इच्छासे शिवकी शरणमें गए ॥४३॥ तब परमभक्तिके साथ पूजन और प्रार्थना करने पर शंकरने प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ ४४ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे देवता और ऋषियो ! तुम सब मेरे वचनको आदरपूर्वक सुनो योनिरूपमें मेरा लिंग रखा जावेगा तब सुख होगा ॥ ४५ ॥ पार्वतीके विना और कोई मेरे लिंगको धारण नहीं कर सकती उसके धारण करने पर मेरा लिंग शीघ्र ही शान्त होजावेगा ४६ सूतजीने कहा, कि—हे मुनीश्वरों ! इस बातको सुन ऋषि और देवताओंने प्रसन्न हो ब्रह्माजीको साथमें ले गिरिजाकी प्रार्थना की ॥४७॥ और गिरिजाको तथा वृषभध्वजको प्रसन्न कर पूर्वोक्त रीतिसे उत्तम लिंग स्थापित किया ॥ ४८ ॥ फिर देवता और ऋषियोंने धर्मके कारण मन्त्रमें वर्णित विधिसे शिव और गिरिजाको प्रसन्न किया ॥ ४९ ॥ तब ब्रह्मा विष्णु और चराचर त्रिलोकी विशेष कर देवता और सकल ऋषियोंने शिवका पूजन किया ॥ ५० ॥ तब शिव और जगदम्बिका शिवा प्रसन्न हुए और शिवाने उस समय उस रूपसे शिवलिङ्गको धारण किया ॥ ५१ ॥ लिंगके स्थापित होने पर लोकोंमें कल्याण फैल गया और हे द्विजों ! वह शिवलिंग

तल्लिंगं त्रिलोक्यामभवद्द्विजाः ॥ ५२ ॥ हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवाशिवमित्यपि । पूजनात्तस्य लोकानां सुखं भवति सर्वथा ॥ ५३ ॥ इह सर्वसमृद्धिः स्यान्नानासुखवहाधिका । परत्र परमा मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां लिंगस्वरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच । यथाभवल्लिंगरूपः संपूज्यस्त्रिभवे शिवः । तथोक्तं वा द्विजाः प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः । अन्धकेश्वरलिंगस्य महिमानं वद प्रभो । तथान्यच्छिवलिंगानां प्रीत्या वक्तुमिहार्हसि ॥ २ ॥ सूत उवाच । पुराब्धिगर्तमाश्रित्य वसन् दैत्योऽन्धकासुरः । स्ववशं कारयामास त्रैलोक्यं सुरसूदनः ॥ ३ ॥ तस्माद्गर्ताच्च निस्सृत्य पीडयित्वा पुनः प्रजाः । प्राविशच्च तदा दैत्यस्तं गर्तं सुपराक्रमः ॥ ४ ॥ देवाश्च दुःखिताः सर्वे शिवं प्रार्थ्य पुनः पुनः । सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखं च मुनीश्वराः ॥ ५ ॥ सूत उवाच । तदाकर्ण्य वचस्तेषां देवानां परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दुष्टहंता सतां गतिः ॥ ६ ॥ शिव उवाच । घातयिष्यामि तं दैत्यमन्धकं सुरसूदनम् । सैन्यं च नीयतान्देवा ह्यायामि

त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगया ॥५२॥ वह शिवलिङ्ग हाटकेश और शिवा-शिव नामसे प्रसिद्ध है, उसका पूजन करनेसे लोगोंको सब प्रकारसे सुख प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ इस लोकमें अनेक प्रकारका सुख देने वाली सब प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है और परलोकमें श्रेष्ठ मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

सूतजीने कहा, कि–हे द्विजों ! त्रिलोकीमें लिंगस्वरूपमें शिव जिस प्रकार पूज्य हुए हैं, वह सब वृत्तान्त आपकी प्रीतिके कारण आपसे कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ।१। ऋषियोंने कहा, कि–हे प्रभो ! अब आप अन्धकेश्वर शिवलिंगकी महिमाका वर्णन करिये तथा अन्य शिवलिङ्गोंका भी प्रीतिपूर्वक वर्णन करिये ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि–पहिले अन्धकासुर नामक दैत्य समुद्रके गर्तका आश्रय लेकर रहता था, उसने देवताओंको दुःख दे त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया था ॥ ३ ॥ वह पराक्रमी दैत्य उस गर्तसे निकल प्रजाओंको पीड़ा पहुँचा उस गर्त (गड्ढे) में घुस जाता था ४ हे मुनीश्वरों ! तब सब देवताओंने दुःखी हो वारम्वार शिवकी प्रार्थना कर उनसे अपना दुःख निवेदन किया ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा, कि–दुष्टोंको दण्ड देने वाले, सज्जनोंकी गति परमेश्वर शिव देवताओंके इस वचनको सुन चित्तमें प्रसन्न होकर कहने लगे ॥६॥ शिवने कहा, कि–देवताओंको पीड़ा देने वाले उस अंधक दैत्यको मैं मारूँगा, हे देवताओं ! तुम सेना ले चलो,

च गणैस्सह ॥ ७ ॥ तस्माद्गर्तादंधके हि देवर्षिद्रुहि भीकरे। निस्सृते च तदा तस्मिन्देवा गर्तमुपाश्रिताः ॥ ८ ॥ दैत्याश्च देवताश्चैव युद्धं चक्रुः सुदारुणम्। शिवानुग्रहतो देवाः प्रबलाश्चाभवँस्तदा ॥ ९ ॥ देवैश्च पीडितः सोऽपि यावद्गर्तमुपागतः। तावच्छूलेन संप्रोतः शिवेन परमात्मना ॥ १० ॥ तत्रत्यश्च तदा शंभुं ध्यात्वा संप्रार्थयत्तदा। अन्तकाले च त्वां दृष्ट्वा तादृशो भवति क्षणात् ११ इत्येवं संस्तुतस्सोऽपि प्रसन्नः शंकरस्तदा। उवाच वचनं तत्र वरं ब्रूहि ददामि ते ॥ १२ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा स दैत्यः पुनरब्रवीत्। सुप्रणम्य शिवं स्तुत्वा सत्त्वभावमुपाश्रितः ॥ १३ ॥ अन्धक उवाच। यदि प्रसन्नो देवेश स्वभक्तिं देहि मे शुभाम्। कृपां कृत्वा विशेषेण संस्थितो भव चेह वै ॥ १४ ॥ सूत उवाच। इत्युक्तस्तेन दैत्यं तं तद्गर्ते चाक्षिपद्धरः। स्वयं तत्र स्थितो लिंगरूपोऽसौ लोककाम्यया ॥ १५ ॥ अन्धकेशं च तल्लिंगं नित्यं यः पूजयेन्नरः। षण्मासाज्जायते तस्य वांछासिद्धिर्न संशयः ॥ १६ ॥ वृत्त्यर्थं पूजयेल्लिंगं लोकस्य हितकारकम्। षण्मासं यो द्विजश्चैव स वै देवलकः स्मृतः ॥ १७ ॥ यथा देवलकश्चैव स भवेदिह वै तदा। देवलकश्च यः प्रोक्तो नाधिकारो द्विजस्य हि ॥ १८ ॥ ऋषय

मैं भी गणोंके साथ आता हूँ ॥ ७ ॥ तदनन्तर देवता और ऋषियोंसे द्रोह करने वाला वह भयदायक दैत्य अंधक जब गर्तमेंसे निकला तब देवता उस गर्तमें घुस पड़े ॥ ८ ॥ फिर देवता और दैत्य दारुण युद्ध करने लगे और शिवके अनुग्रहसे देवता उस युद्धमें प्रबल पड़े ॥ ९ ॥ जब देवताओंके पीड़ा देने पर वह गर्तमें घुसा, कि–तब परमात्मा शिवने अपने शूलमें उसको पिरो लिया ॥ १० ॥ तब शूलमें पुरे हुए दैत्यने शिवका ध्यान कर उनकी प्रार्थना की, प्राणी अन्तकालमें आपको देखकर क्षणभरमें आपसा ही होजाता है ११ इस प्रकार स्तुति करने पर शंकर प्रसन्न हुए और उससे कहने लगे, वर माँग, मैं तुझे वर दूँगा ॥ १२ ॥ इस बातको सुन सत्त्वभावमें स्थित हुआ वह दैत्य शिवकी स्तुति और प्रणाम कर उनसे कहने लगा ॥१३॥ अंधकने कहा, कि–हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी शुभ भक्ति दीजिये और अधिक कृपा हो तो यहाँ प्रतिष्ठित होजाइये ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा कि–इस प्रकार कहने पर शिवने उस दैत्यको गर्तमें फेंक दिया और लोगोंका हित करनेकी इच्छासे तहाँ लिंगस्वरूपमें स्थित होगए। १५ ॥ जो मनुष्य उस अंधकेश शिवलिंगका नित्य पूजन करता है, उसकी इच्छा छः मासमें पूर्ण होजाती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ संसारका हित करने वाले इस शिवलिंगका आजीविकाके लिये जो द्विज छः मास तक पूजन करता है वह देवलक कहाता है ॥ १७ ॥ जैसा देवलक होता है तैसा

ऊचुः। देवलकश्च कः प्रोक्तः किं कार्यं तस्य विद्यते। तत्त्वं वद महाप्राज्ञ लोकानां हितहेतवे ॥१९॥ सूत उवाच। दधीचिर्नाम विप्रो यो धर्मिष्ठो वेदपारगः। शिवभक्तिरतो नित्यं शिवशास्त्रपरायणः ॥ २० ॥ तस्य पुत्रस्तथा ह्यासीत्स्मृतो नाम्ना सुदर्शनः। तस्य भार्या दुकूला च नाम्ना दुष्टकुलोद्भवा ॥ २१ ॥ तद्वशे स च भर्ताभीत्तस्य पुत्रचतुष्टयम्। सोऽपि नित्यं शिवस्यैव पूजां च स्म करोत्यसौ २२ दधीचेस्तु तदा ह्यासीद् ग्रामान्तरनिवेशनम। ज्ञातिसंयोगतश्चैव ज्ञातिभिर्न स मोचितः ॥ २३ ॥ कथयित्वा च पुत्रं स शिवभक्तिरतो भव। इत्युक्त्वा स गतो मुक्तो दधीचिश्शैवसत्तमः ॥ २४ ॥ सुदर्शनस्य पुत्रोऽपि शिवपूजां चकार ह। एवं चिरतरः कालो व्यतीयाय मुनीश्वराः ॥ २५ ॥ एवं च शिवरात्रिश्च समायाता कदाचन। तस्यां चोपोषितास्सर्वे स्वयं संयोगतस्तदा ॥२६॥ पूजां कृत्वा गतस्सोऽपि सुदर्शन इति स्मृतः। स्त्रीसंगं शिवरात्रौ तु कृत्वा पुनरिहागतः २७ न स्नानं तेन च कृतं तद्रात्र्यां शिवपूजनम्। तेन तत्कर्मपाकेन क्रुद्धः प्रोवाच शंकरः ॥ २८ ॥ महेश्वर उवाच। शिवरात्र्यां त्वया दुष्ट सेवनं च स्त्रियाः कृतम्। अस्नातेन मदीया च कृता पूजाविवेकिना ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा चैवं कृतं यस्मात्तस्मात्त्वं

वह होजाता है और देवलकको द्विजका अधिकार नहीं होता। १८। ऋषियोंने कहा, कि—देवलक कौन कहाता है और उसका क्या कार्य होता है, हे महाप्राज्ञ! आप संसारका हित करनेके लिये इसका वर्णन करिये॥ १९॥ सूतजीने कहा, कि—एक वेदपारगामी धर्मात्मा दधीचि नामक ब्राह्मण थे, वह सदा शिवभक्तिमें परायण रहते थे और शिवशास्त्रका पाठ करते रहते थे २० उनका सुदर्शन नाम वाला पुत्र भी ऐसा ही था उसको भार्याका नाम दुकूला था और वह दूषित कुलमें उत्पन्न हुई थी॥२१॥ उसका पति और चारों पुत्र उसके वशमें रहते थे, वह सुदर्शन भी सदा शिवकी पूजा करता रहता था॥ २२॥ जातीय कार्यके संयोगवश दधीचिको दूसरे ग्राममें रहना पड़ा, जाति वालोंने उनको नहीं छोड़ा॥२३॥ तब शिवभक्त दधीचि अपने पुत्रको शिवभक्तिमें परायण रहनेका उपदेश देकर गृहस्थसे मुक्त हो चल दिये॥ २४॥ सुदर्शनका पुत्र भी शिवपूजा करता था, हे मुनीश्वरों! इस प्रकार बहुतसा समय बीत गया॥ २५॥ एक समय शिवरात्रि आई, उस समय संयोगवश उपवास किया॥ २६॥ सुदर्शन पूजा करके गया और शिवरात्रिमें स्त्रीसंग कर फिर आगया॥ २७॥ उसने स्नान किये विना ही उस रात्रिमें फिर शिवपूजन किया, शंकर इस कर्मपाकसे क्रोधमें भर कर कहने लगे॥ २८॥ महेश्वरने कहा, कि—अरे दुष्ट! तूने शिवरात्रिमें स्त्रीका सेवन किया और फिर कुछ विवेक न कर स्नान किये विना मेरी पूजा

जडतां व्रज । ममास्पृश्यो भव त्वं च दूरतः स्पर्शनं कुरु ॥ ३० ॥ सूत उवाच । इति शप्तो महेशेन दाधीचिस्स सुदर्शनः । जडत्वं प्राप्तवान्सद्यश्शिवमायाविमोहितः ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्समये विप्रा दधीचिः शैवसत्तमः । ग्रामान्तरात्समायातो वृत्तान्तं श्रुतवाँश्च सः ॥ ३२ ॥ शिवेन भर्त्सितः सोऽपि दुःखितोऽभूदतीव हि । रुरोद हा हतोऽस्मीति दुःखेन सुतकर्मणा ॥ ३३ ॥ पुनः पुनरुवाचेति स दधीचिस्सतां मतः । अनेनेदं कुपुत्रेण हतं मे कुलमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ स पुत्रोऽपि हतो भार्यां पुंश्चलीमुक्तवान्द्रुतम् । पश्चात्तापमनुप्राप्य स्वपित्रा परिभर्त्सितः ॥३५॥ तत्पित्रा गिरिजा तत्र पूजिता विधिभिर्वरैः । सुयत्नतो महाभक्त्या स्वपुत्रसुखहेतवे ॥ ३६ ॥ सुदर्शनोऽपि गिरिजां पूजयामास च स्वयम् । चण्डीपूजनमार्गेण महाभक्त्या शुभैः स्तवैः ॥ ३७ ॥ एवं तौ पितृपुत्रौ हि नानोपायैः सुभक्तितः । प्रसन्नां चक्रतुर्देवीं गिरिजां भक्तवत्सलाम् ॥ ३८ ॥ तयोः सेवाप्रभावेण प्रसन्ना चण्डिका तदा । सुदर्शनं च पुत्रत्वे चकार गिरिजा मुने ॥ ३९ ॥ शिवं प्रसादयामास पुत्रार्थे चण्डिका स्वयम् । क्रुद्धाऽक्रुद्धा पुनश्चण्डी तत्पुत्रस्य प्रसन्नधीः ॥

की ॥ २९ ॥ तूने जान बूझ कर ऐसा किया, अतः तू जड़ हो जा, तू मेरा अस्पृश्य रह दूरसे स्पर्श कर ॥३०॥ सूतजीने कहा, कि--जब महेशने दधीचि के पुत्र सुदर्शनको इस प्रकार शाप दिया, तब वह शिवकी मायासे मोहमें पड़ कर शीघ्र जड़ताको प्राप्त होगया ॥ ३१ ॥ हे विप्रो ! इसी समय शिवभक्त दधीचि दूसरे ग्रामसे लौटे और उन्होंने यह वृत्तान्त सुना ॥३२॥ शिव के भर्त्सना करने पर वह परम दुःखी हुए और पुत्रके दुःखमय कर्मसे हा ! मारा गया ! कह कर रोने लगे ॥ ३३ । तदनन्तर सज्जनोंके माननीय वह दधीचि ऋषि कहने लगे, कि--इस कुपुत्रने मेरे उत्तम कुलमें दाग लगा दिया ॥ ३४ ॥ अपने पिताके तिरस्कार करने पर सुदर्शनने पश्चात्ताप कर अपनी भार्याके लिये कहा, कि--यह पुंश्चली है ॥ ३५ ॥ तब उसके पिता दधीचिने अपने पुत्रके सुखके निमित्त परमभक्ति तथा यत्नके साथ अनेक श्रेष्ठ पदार्थोंसे गिरिजाका पूजन किया ॥ ३६ ॥ तब सुदर्शनने भी चण्डीपूजनकी विधिसे परमभक्तिपूर्वक शुभ स्तोत्रोंसे गिरिजाका पूजन किया ३७ इस प्रकार वे दोनों पिता पुत्र भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके उपायोंसे भक्तवत्सल गिरिजा देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ ३८ ॥ हे मुने ! उनकी सेवा के प्रभावसे चण्डिका प्रसन्न होगईं और गिरिजाने सुदर्शनको पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया ॥३९॥ तदनन्तर चण्डिकाने स्वयं ही पुत्रके लिये शिव को प्रसन्न किया क्रोधमें होकर भी क्रोध न करती हुई गिरिजा पुत्रके लिये प्रसन्न बुद्धिसे शिवको प्रसन्न करने लगीं ॥ ४० ॥ तदनन्तर वृषभध्वज

अथाज्ञाय प्रसन्नं तं महेशं वृषभध्वजम् । नमस्कृत्य स्वयं तस्य ह्युत्संगे तं न्यवेशयत् ॥ ४१ ॥ घृतस्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा स्वयम् । त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥४२॥ सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका । उद्दिश्य शिवगायत्रीं षोडशाक्षरसंयुताम् ॥ ४३ ॥ तदोंनमः शिवायेति श्रीशब्दपूर्वकाय च । वारान्षोडश संकल्पपूजां कुर्यादयं बटुः ॥ ४४ ॥ आस्नानादिप्रणामान्तं पूजयन्वृषभध्वजम् । मंत्रवादित्रपूजाभिस्सर्षीणां सन्निधौ तथा ॥ ४५ ॥ नाममंत्राननेकांश्च पाठयामास वै तदा । उवाच सुप्रसन्नात्मा चण्डिका च शिवस्तथा ॥ मदर्पितं च यत्किंचिद्धनधान्यादिकन्तथा । तत्सर्वं च त्वया ग्राह्यं न दोषाय भविष्यति ॥ ४- ॥ मम कृत्ये भवान्मुख्यो देवीकृत्ये विशेषतः । घृततैलादिकं सर्वं त्वया ग्राह्यं मदर्पितम् ॥ ४८ ॥ प्राजापत्यं भवेद्यर्हि तर्ह्येको हि भवान्भवेत् । तदा पूजा च सम्पूर्णान्यथा सर्वा च निष्फला ॥ ४९ ॥ तिलकं वर्तुलं कार्यं स्नानं कार्यं सदा त्वया । शिवसन्ध्या च कर्तव्या गायत्री च तदीयका ॥ ५० ॥ मत्सेवां प्रथमं कृत्वा कार्यमन्यत्कुलोचितम् । एवं कृतेऽखिले भद्रं दोषाः क्षान्ता मया तव ।५१। सूत उवाच । इत्युक्त्वा तस्य पुत्राश्च चत्वारो बटुकास्तदा । अभिषिक्ताश्चतुर्दिक्षु

महेशको प्रसन्न देख कर गिरिजाने उनको प्रणाम कर पुत्रको उनकी गोदी में बैठा दिया ॥ ४१ ॥ तब गिरिजाने स्वयं पुत्रको घृतस्नान कराया फिर अम्बिकाने प्रीतिपूर्वक सुदर्शन पुत्रको तीन लड़ वाला और एक ग्रन्थिवाला यज्ञोपवीत प्रीतिपूर्वक दिया, फिर षोडश अक्षर वाली शिवगायत्री "तत् पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि" दी और कहा, कि—यह बटु 'ॐ नमः श्रीशिवाय" सोलह वार कह कर संकल्प पूजा किया करे ॥ ४२-४४ ॥ फिर सप्तर्षियोंके सामने मन्त्र वाद्य और प्रणामसे लेकर स्नान तकको शिवपूजनकी विधि कही ॥ ४५ ॥ फिर अनेक नाम--मन्त्रोंको पढ़ाया तदनन्तर प्रसन्न होकर चण्डिकाने कहा और शिवने भी उसका अनुमोदन किया ४६ जो कुछ धन धान्य आदि मेरे अर्पण किया जाय, उस सबको तू ग्रहण करना, तुझे कोई दोष नहीं लगेगा ॥४७। तुम मुझ देवीके कृत्यमें विशेषतः मुख्य होगे मेरे अर्पण किये हुए घृत तेल आदि सब पदार्थोंको तू ग्रहण करना ४८ जब प्राजापत्य कर्म होगा, तब उसमें एक तुम भी रखे जाओगे, तब ही पूजा सम्पूर्ण होगी, अन्यथा पूजा निष्फल जावेगी ॥४९॥ तू वर्तुलाकार तिलक लगाना और सदा स्नान करना शिवसंध्या करना और शिवगायत्री का पाठ करना ॥ ५० ॥ पहिले मेरी सेवा करके फिर अन्य कुलोचित काम करना, इस प्रकार सम्पूर्ण कार्य करने पर कल्याण होगा, जो मैंने तेरे अपराध क्षमा कर दिये ॥ ५१ ॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कह परमात्मा

शिवेन परमात्मना ॥५२॥ चण्डी चैवात्मनिकटे पुत्रं स्थाप्य सुदर्शनम् । तत्पुत्रा-न्प्रेरयामास वरान्दत्त्वा ह्यनेकशः ॥ ५३ ॥ देव्युवाच । उभयोर्युवयोर्मध्ये बटुको यो भवेन्मम । तस्य स्याद्विजयो नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ भवांश्च पूजितो येन तेनैवाहं प्रपूजिता । कर्तव्यं हि भवद्भिश्च स्वीयं कर्म सदा सुत ।५५। सूत उवाच । एवं तस्मै वरा दत्तास्सपुत्राय महात्मने । सुदर्शनाय कृपया शिवा-भ्यां जगतां कृते ॥५६॥ शिवाभ्यां स्थापिता यस्मात्तस्मात्ते बटुकाः स्मृताः । तपो-भ्रष्टाश्च ये जाताः स्मृतास्तस्मात्तपोधमाः ॥ ५७ ॥ शिवयोः कृपया सर्वे विस्तारं बहुधा गताः । तेषां च प्रथमा पूजा महापूजा महात्मनः ॥ ५८ ॥ तेन यावत्कृता नैव पूजा वै शंकरस्य च । तावत्पूजा न कर्त्तव्या कृता चेन्न शुभापि सा ॥ ५९ ॥ शुभं वाप्यशुभं वापि बटुकं न परित्यजेत् । प्राजापत्ये च भोज्ये वै बटुरेको विशि-ष्यते ॥६०॥ शिवयोश्च तथा कार्ये विशेषोऽत्र प्रदृश्यते । तदेव शृणु सुप्राज्ञ यथाहं वच्मि तेऽनघ ।६१ तस्यैव नगरे राज्ञो भद्रस्य नित्यभोजने । नियमे प्राजापत्यस्य ह्यन्धकेशसमीपतः ॥६२॥ यज्जातमद्भुतं वृत्तं शिवानुग्रहकारणात् । श्रूयतां तच्च सुप्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ६३ ॥ ध्वज एकश्च तत्राब्दे दत्तस्तुष्टेन शंभुना ।

शिवने चारों दिशाओंमें बटुक रूपमें उसके पुत्रोंका अभिषेक कर दिया ५२ चण्डीने अपने पासमें सुदर्शन नामक पुत्रको स्थापित कर, उसके पुत्रोंको अनेक वर देकर प्रेरित किया ॥ ५३ ॥ देवीने कहा, कि-तुम दोनोंमें जो मेरा बटुक होगा, उसकी नित्य विजय होगी, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ५४ ॥ जिसने आपकी पूजा कर ली, वह मेरी पूजा कर सकता है, हे पुत्र ! आप अपने कर्मको सदा करना ॥ ५५ ॥ सूतजीने कहा, कि-इस प्रकार शिव और शिवाने जगत्के लिये कृपा कर पुत्रसहित महात्मा सुदर्शनको वर दिये थे ॥ ५६ ॥ शिव शिवाने इनको स्थापित किया है, इसलिये ये बटुक कहाते हैं, और ये तपोभ्रष्ट हुए थे अतः तपोऽधम कहाते हैं ॥ ५७ ॥ ये शिवकी कृपासे अनेक प्रकारसे विस्तारको प्राप्त हो गए हैं, इनकी प्रथम-पूजा महात्मा शिवकी ही महापूजा है ॥ ५८ ॥ जब तक बटुक शिवपूजन न करे तब तक शंभुकी पूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि-ऐसी पूजा शुभ फल नहीं देती है ॥ ५९ ॥ शुभ हो वा अशुभ बटुकको त्यागे नहीं, प्राजापत्य भोज्यमें एक बटुकी विशेषता है ॥ ६० ॥ शिव शिवाके कार्यमें यही एक विशेषता दीखती है, हे निष्पाप ! इस विषय का मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनिये ॥ ६१ ॥ अंधकेशके समीप राजा भद्रके नगरमें प्राजापत्यके नित्यभोजनका नियम था ॥ ६२ ॥ उस समय शिवके अनुग्रहसे जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ था उसको सुनो, मैं जैसा सुना है उसको

प्रोक्तश्च कृपया राजा देवदेवेन तेन सः ॥ ६४ ॥ प्रातश्च बध्यतां राजन्ध्वजो रात्रौ पतिष्यति । समत्वेवं च संपूर्णे प्राजापत्ये तथा पुनः ॥ ६५ ॥ अन्यथायं ध्वजो मे हि रात्रावपि स्थिरो भवेत् । इत्युक्त्वान्तर्हितः शंभू राज्ञे तुष्टः कृपानिधिः ॥६६॥ तथेति नियमश्चासीत्तस्य राज्ञो महामुने । प्राजापत्यं कृतं नित्यं शिवपूजाविधानतः ॥ ६७ ॥ स्वयं प्रातर्विबध्येत ध्वजः सायं पतेदिति । यदि कार्यं च सम्पूर्णं जातं चैव भवेदिह ॥ ६८ ॥ एकस्मिन्समये चात्र वटोः कार्यं पुरा ह्यभूत् । ध्वजः स पतितो वै हि ब्रह्मभोजं विनापि हि ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वा तच्च तदा तत्र पृष्टा राज्ञा च पण्डिताः । भुञ्जते ब्राह्मणा ह्यत्र नोत्थितो वै ध्वजस्त्विति ॥ ७० ॥ कथं च पतितः सोऽत्र ब्राह्मणा ब्रूत सत्यतः । ते पृष्टाश्च तदा प्रोचुर्ब्राह्मणाः पण्डितोत्तमाः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मभोजे महाराज वटुको भोजितः पुरा । चण्डीपुत्रःशिवस्तुष्टस्तस्माच्च पतितो ध्वजः ॥७२॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिस्सोऽथ जनाश्चान्येऽपि सर्वशः । अभवन्विस्मितास्तत्र प्रशंसां चक्रिरे ततः ॥ ७३ ॥ एवं च महिमा तेषां वर्द्धितः शंकरेण हि । तस्माच्च वटुकाःश्रेष्ठाः पुराविद्भिः प्रकीर्तिताः ॥७४॥ शिवपूजा तु तैः पूर्वमुच्चार्या नान्यथा पुनः । अन्येषां नाधिकारोऽस्ति शिवस्य वचनादिह ७५

प्रीतिपूर्वक कहता हूँ ॥ ६३ ॥ शंभुने प्रसन्न होकर उस राजाको एक ध्वजा दी थी और उन देवदेवने राजा पर कृपा कर कहा ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! मेरे प्राजापत्यके समय इस ध्वजाको प्रातःकाल बाँधना, रात्रिके समय यह गिर जाया करेगी ॥ ६५ ॥ अन्यथा यह ध्वजा रात्रिमें भी स्थिर रहेगी, राजा पर सन्तुष्ट हुए कृपानिधि शंभु इस प्रकार कहकर अन्तर्धान होगए ६६ हे महामुने ! उस राजाने यही नियम बाँध लिया था, वह शिवपूजा कर नित्य प्राजापत्य करता था ॥६७॥ ध्वजा प्रातःकाल बढ़ती थी और सायंकाल को स्वयं गिर जाती थी, एक समय बटुकार्य पहिले हुआ, तब वह ध्वजा ब्रह्मभोजके बिना ही गिर पड़ी ॥ ६८ ॥ इस बातको देख राजाने पण्डितों से बूझा, कि–ब्राह्मण तो भोजन कर रहे हैं, परन्तु ध्वजा खड़ी हुई नहीं है ॥७०॥ हे ब्राह्मणों ! तुम सत्य कहो, कि–ध्वजा क्यों गिर पड़ी, इस प्रकार बूझने पर उन पण्डितोंमें उत्तम ब्राह्मणोंने कहा, कि–॥ ७१ ॥ हे महाराज ! आपने पहिले चण्डीपुत्र बटुकको पहिले भोजन करा दिया अतः शिव प्रसन्न होगए और ध्वजा गिर गई ॥ ७२ ॥ इस बातको सुन राजा तथा और सब प्राणी भी विस्मित हुए और प्रशंसा करने लगे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार शंकर ने उनकी महिमा बढ़ाई थी, अतः पुरातत्त्ववेत्ताओंने बटुकोंको श्रेष्ठ कहा है ॥ ७४ ॥ पहिले शिवपूजा उनको करनी चाहिये, शिववचनके अनुसार दूसरोंको अधिकार नहीं है ॥ ७५ ॥ उनके उच्चारण करने पर पूजा पूर्ण

उत्तारणं च कार्यं वै पूजा पूर्णा भवेदिति। एतावदेव तेषां तु कार्यं नान्यत्तथैव च ॥ ७६ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं च मुनीश्वराः। यच्छ्रुत्वा शिवपूजायाः फलं प्राप्नोति वै नरः ॥ ७७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ऋषय ऊचुः। ज्योतिषां चैव लिंगानां माहात्म्यं कथयाधुना। उत्पत्तिं च तथा तेषां ब्रूहि सर्वं यथा श्रुतम् ॥ १ ॥ सूत उवाच। शृण्वन्तु विप्रा वक्ष्यामि तन्माहात्म्यं जनिं तथा। संक्षेपतो यथाबुद्धि सद्गुरोश्च मया श्रुतम् ॥ २ ॥ एतेषां चैव माहात्म्यं वक्तुं वर्षशतैरपि। शक्यते न मुनिश्रेष्ठास्तथापि कथयामि वः ३ सोमनाथश्च तेषां वै प्रथमः परिकीर्तितः। तन्माहात्म्यं शृणु मुने प्रथमं सावधानतः ॥ ४ ॥ सप्तविंशन्मिताः कन्या दक्षेण च महात्मना। तेन चन्द्रमसे दत्ता अश्विन्याद्या मुनीश्वराः ॥ ५ ॥ चंद्रं च स्वामिनं प्राप्य शोभमाना विशेषतः। चंद्रोऽपि चैव ताः प्राप्य शोभते स्म निरन्तरम् ॥ ६ ॥ हेम्ना चैव मणिर्भाति मणिना हेम चैव हि। एवं च समये तस्य यज्जातं श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सर्वास्वपि च पत्नीषु रोहिणीनाम या स्मृता। यथैका सा प्रिया चासीत्तथान्या न कदाचन ॥ ८ ॥ अन्याश्च दुःखमापन्नाः पितरं शरणं ययुः। गत्वा तस्मै च

होती है, उनका बस इतना ही कार्य होता है और कुछ कार्य नहीं होता ७६ हे मुनीश्वरों! आपने जो बात बूझी थी वह सब कह दी, मनुष्य इसको सुनने पर शिवपूजाके फलको पाता है ॥७७॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

ऋषियोंने कहा, कि--अब आप ज्योतिर्लिंगोंका माहात्म्य कहिये और इनकी उत्पत्ति भी जिस प्रकार सुनी हो वर्णन करिये ॥१॥ सूतजीने कहा, कि--हे विप्रों! मैंने सद्-गुरुसे जैसा सुना है अपनी बुद्धिके अनुसार ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्य और प्रादुर्भावका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियों! इनका माहात्म्य सैंकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कहा जासकता, तथापि मैं आपसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ हे मुने! इनमें सोमनाथ पहिला ज्योतिर्लिङ्ग कहाता है, हे मुने! पहिले सावधानतापूर्वक इसके माहात्म्यको सुनिये ४ हे मुनीश्वरों महात्मा दक्षने अश्विनी आदि अपनी सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको दीं थीं ५ वह चन्द्रमाको स्वामीरूपमें पाकर अधिक शोभा पाने लगीं, और चन्द्रमा भी उनको पाकर निरन्तर दमकता रहता था ॥ ६ ॥ सुवर्णसे मणिकी शोभा होती है और मणिसे सुवर्णकी शोभा होती है, इस प्रकार समय कट रहा था, उस समय जो घटना हुई उसको आप सुनिये ॥ ७ ॥ इन सब पत्नियोंमें चन्द्रमाको रोहिणी नाम वाली पत्नी जितनी अच्छी लगी उतनी

यद्दुःखं तथा ताभिर्निवेदितम् ॥९॥ दक्षस्च च तथा श्रुत्वा दुःखं च प्राप्तवांस्तदा। समागत्य द्विजाश्चन्द्रं शान्त्यावोचद्वचस्तदा ॥ १० ॥ दक्ष उवाच। विमले च कुले त्वं हि समुत्पन्नः कलानिधे। आश्रितेषु च सर्वेषु न्यूनाधिक्यं कथं तव ॥ ११ ॥ कृतं चेत्तत्कृतं तच्च न कर्तव्यं त्वया पुनः। वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम् ॥ १२ ॥ सूत उवाच। दक्षश्चैवं च संप्रार्थ्य चंद्रं जामातरं स्वयम्। जगाम मन्दिरं स्वं वै निश्चयं परमं गतः ॥१३॥ चंद्रोऽपि वचनं तस्य न चकार विमोहितः। शिवमायाप्रभावेण यया संमोहितं जगत् ॥ १४ ॥ शुभं भावि यदा यस्य शुभं भवति तस्य वै। अशुभं च यदा भावि कथं तस्य शुभं भवेत् ॥ १५ ॥ चन्द्रोऽपि बलवद्भाविवशान्मेने न तद्वचः। रोहिण्यां च समासक्तो नान्यां मेने कदाचन ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य स्वयं दुःखसमन्वितः। प्रार्थयामास चन्द्रं स दक्षो दक्षस्सुनीतितः ॥ १७ ॥ दक्ष उवाच। श्रूयतां चन्द्र यत्पूर्वं प्रार्थितो बहुधा मया। न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव ॥ १८ ॥ सूत उवाच। इत्युक्ते तेन चन्द्रो वै क्षयी जातः क्षणादिह। हाहाकारो महानासीत्तदेन्दौ क्षीणतां

और पत्नी प्रिय न लगीं ॥ ८ ॥ तब दूसरी कन्याएं दुःख पाकर पिताकी शरणमें पहुँची और पिताके पास पहुँच जो दुःख उन्हें था वह सब निवेदन किया ॥ ९ ॥ इस बातको सुन कर दक्षको दुःख हुआ और हे द्विजों ! दक्ष चन्द्रमाके पास आ शान्तिपूर्वक कहने लगे ॥ १० ॥ दक्षने कहा, कि—हे कलानिधे ! तुम निर्मल कुलमें उत्पन्न हुए हो, फिर आश्रितोंके साथ तुम्हारा न्यून अधिक भाव क्यों है ॥ ११ ॥ अस्तु ! जो कुछ कर लिया वह तो कर लिया, परन्तु आगेको ऐसा न करना, क्योंकि—विषमभावका व्यवहार करनेसे नरक मिलता है ॥ १२ ॥ सूतजीने कहा, कि—दक्ष अपने जामाता चन्द्रमासे स्वयं इस इस प्रकार प्रार्थना कर निश्चिन्त हो अपने भवन को चले गए ॥ १३ ॥ परन्तु जिसने जगत्को मोहमें डाल रखा है ऐसी शिवकी मायाके प्रभावसे मोहमें पड़े हुए चन्द्रमाने दक्षका कहना नहीं माना १४ जिसका शुभ होने वाला होता है उसीका शुभ होता है और जिसका अशुभ होने वाला होता है उसकी शुभ—बुद्धि कैसे होसकती है ॥ १५ ॥ चंद्रमा ने भी बलवान् प्रारब्धके वशमें पड़ दक्षके वचनको न माना, रोहिणीमें ही आसक्त रहा और किसी स्त्रीका उसने आदर ही नहीं किया ॥ १६ ॥ इस बातको सुन दक्ष दुःखी हो फिर चन्द्रमाके पास आये और नीतिपूर्वक चन्द्रमासे फिर प्रार्थना करने लगे ॥ १७ ॥ दक्षने कहा, कि—हे चन्द्र ! मैंने तुमसे पहिले अनेक वार प्रार्थना की, परन्तु तुमने मेरी बात न मानी अतः तुमको क्षय होजाय ॥ १८ ॥ सूतजीने कहा, कि—दक्षके इस प्रकार कहने पर

गते ॥ १९ ॥ देवर्षयस्तदा सर्वे किं कार्य्यं हा कथं भवेत्। इति दुःखं समापन्ना विह्वला ह्यभवन्मुने ॥ २० ॥ विज्ञापिताश्च चन्द्रेण सर्वे शक्रादयस्सुराः। ऋषयश्च वसिष्ठाद्या ब्रह्माणं शरणं ययुः॥२१॥ गत्वापि तु तदा प्रोचुस्तद्वृत्तं निखिलं मुने। ब्रह्मणे ऋषयो देवा नत्वा नुत्वातिविह्वलाः ॥ २२ ॥ ब्रह्मापि तद्वचश्श्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ। शिवमायां सुप्रशस्य श्रावयंस्तानुवाच ह ॥२३॥ ब्रह्मोवाच। अहो कष्टं महज्जातं सर्वलोकस्य दुःखदम्। चन्द्रस्तु सर्वदा दुष्टो दत्तश्च शतवानमुम् ॥ २४ ॥ सर्वं दुष्टेन चन्द्रेण कृतं कर्मार्ययनकेशः। श्रूयतामृषयो देवाश्चन्द्रकृत्यं पुरातनम् ॥ २५ ॥ बृहस्पतेर्गृहं गत्वा तारा दुष्टेन वै हृता। तस्य भार्या पुनश्चैव स दैत्यान्समुपस्थितः ॥ २६ ॥ समाश्रितस्तदा दैत्यान्युद्धं देवैश्चकार ह। मयाऽत्रिणा निषिद्धश्च तस्मै तारां ददौ शशी ॥ २७ ॥ तां च गर्भवतीं दृष्ट्वा न गृह्णामीति सोऽब्रवीत्। अस्माभिर्वारितो जीवः कृच्छ्राज्जग्राह तां तदा २८ यदि गर्भं जहातीह गृह्णामीत्यब्रवीत्पुनः। गर्भे मया पुनस्तत्र त्याजिते मुनिसत्तमाः ॥२९॥ कस्यायं च पुनर्गर्भस्सोमस्येति च साऽब्रवीत्। पश्चात्तेन गृहीता

क्षण भरमें ही चन्द्रमाका क्षय होने लगा, उस समय चन्द्रमाके क्षीण होने पर बड़ा हाहाकार मचा ॥ १९ ॥ हे मुने ! उस समय सकल देवता और ऋषि हा ! अब कार्य कैसे होगा, यह विचार कर दुःखित और विह्वल हुए २० फिर चन्द्रमाके सूचना देने पर इन्द्र आदि सकल देवता और वसिष्ठ आदि ऋषि ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे ॥ २१ ॥ हे मुने ! तहाँ पहुँच कर ऋषि और देवताओंने विह्वलतापूर्वक प्रणाम और स्तुति कर ब्रह्माजीसे सब वृत्तान्त कहा ॥ २२ ॥ इस बातको सुन ब्रह्माजी बड़े विस्मित हुए और शिवमाया की सराहना कर सुनाते हुए कहने लगे ॥२३॥ ब्रह्माजीने कहा, कि--अहो ! सब लोगोंको दुःख देने वाली बड़ी कड़ी बात होगई, कि--सर्वदाके दुष्ट चन्द्रमा को दक्षने शाप देदिया ॥ २४ ॥ इस दुष्ट चन्द्रमाने और भी बहुतसे कर्म किये हैं, हे ऋषि और देवताओं ! चन्द्रमाकी पुरानी करतूतोंको सुनिये २५ इस दुष्टने बृहस्पतिके घर जाकर उनकी भार्या ताराका हरण कर लिया था, फिर यह दैत्योंमें चला गया था ॥ २६ ॥ और इसने दैत्योंका आश्रय लेकर देवताओंसे युद्ध किया था, फिर मेरे और अत्रिके निषेध करने पर इसने उनको तारा दी थी ॥ २७ ॥ उसको गर्भवती देख बृहस्पतिने कहा, कि--मैं इसको ग्रहण नहीं करता, फिर हमारे कहने सुननेसे बड़ी कठिनता से बृहस्पतिने उसको ग्रहण किया था ॥ २८ ॥ और कहा था, कि--यह यदि गर्भप्रसव कर लेगी तो मैं इसको ग्रहण करूँगा हे मुनिसत्तमों ! गर्भप्रसव होने पर २९ यह किसका गर्भ है यह बूझने पर उसने कहा यह चन्द्रमाका गर्भ

त्ता मया च वारितेन वै ॥ ३० ॥ एवंविधानि चन्द्रस्य दुश्चरित्राण्यनेकशः । वर्ण्यन्ते किं पुनस्तानि सोऽद्यापि कुरुते कथम् ॥ ३१ ॥ यज्जातं तत्सुसंजातं नान्यथा भवति ध्रुवम् । अतः परमुपायं वो वक्ष्यामि शृणुतादरात् ॥३२॥ प्रभासके शुभे क्षेत्रे व्रजेच्चन्द्रस्सदैवतैः । शिवमाराधयेत्तत्र मृत्युंजयविधानतः ॥३३॥ निधायेशं पुरस्तत्र चन्द्रस्तपतु नित्यशः । प्रसन्नश्च शिवः पश्चादक्षयं तं करिष्यति ॥ ३४ ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणस्ते सुरर्षयः । संनिवृत्याययुस्सर्वे यत्र दक्षविधू ततः ॥ ३५ ॥ गृहीत्वा ते ततश्चन्द्रं दक्षं चाश्वास्य निर्जराः । प्रभासे ऋषयश्चक्रुस्तत्र गत्वाखिलाश्च वै ॥ ३६ ॥ आवाह्य तीर्थवर्याणि सरस्वत्यादिकानि च । पार्थिवेन तदा पूजां मृत्युंजयविधानतः ॥ ३७ ॥ ते देवाश्च तदा सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः । स्थाप्य चन्द्रं प्रभासे च स्वं स्वं धाम ययुर्मुदा ॥ ३८ ॥ चन्द्रेण च तपस्तप्तं षण्मासं च निरंतरम् । मृत्युंजयेन मंत्रेण पूजितो वृषभध्वजः ॥ ३९ ॥ दशकोटिमितं मन्त्रं समावृत्य शशी च तम् । ध्यात्वा मृत्युंजयं मन्त्रं तस्थौ निश्चलमानसः ॥ ४० ॥ तं दृष्ट्वा शंकरो देवः प्रसन्नोऽभूत्तदा प्रभुः । आविर्भूय विधुं प्राह स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥४१॥ शंकर उवाच ।

है, तब मेरे मनाने पर गुरुने ताराको ग्रहण किया था ३० चन्द्रमाके ऐसे २ अनेक दुश्चरित्र हैं उनका क्या वर्णन किया जाय तब भी (अनुचित बातें) आज कल भी कैसे किये जाता है ? ॥ ३१ ॥ जो होगया वह तो होगया, निश्चित बात कभी टल नहीं सकती. अब मैं तुमसे इसका उपाय कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा देवताओंको साथमें लेकर शुभक्षेत्र प्रभासतीर्थमें जावे और तहाँ मृत्युञ्जयके विधानसे शिवकी आराधना करे ३३ शिवलिंगको अपने सामने स्थापित कर चन्द्रमा तहाँ नित्य तप करे तो फिर शिव प्रसन्न होकर उसको अक्षय कर देंगे ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा, कि-वे देवता और ऋषि ब्रह्माजीकी इस बातको सुन तहाँसे लौट कर जहाँ पर दक्ष और चन्द्रमा थे तहाँ पर आये ॥ ३५ ॥ और दक्षको आश्वासन दे वहाँसे चन्द्रमाको ले वे सम्पूर्ण ऋषि और देवता प्रभासमें पहुच गए ॥३६॥ और श्रेष्ठ तीर्थोंका तथा सरस्वती आदि नदियोंका आवाहन कर मृत्युञ्जयके विधानसे पार्थिव पूजा करने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर पवित्र चित्त वाले वे देवता और ऋषि प्रभासमें चन्द्रमाको छोड़ अपने २ धामको आनन्दपूर्वक चले गए ॥ ३८ ॥ चन्द्रमाने तहाँ छः मास लगातार तप किया, मृत्युञ्जय मन्त्रसे वृषभध्वजका पूजन किया ॥ ३९ ॥ चन्द्रमाने निश्चल मनसे तहाँ मृत्युञ्जय मन्त्रका दश करोड़ जप किया ॥४०॥ तब प्रभु शंकर देव प्रसन्न हुए और प्रकट हो चन्द्रमाको देख भक्तवत्सल शंकर अपने भक्त चन्द्रमासे

वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यत्समीप्सितम् । प्रसन्नोऽहं शशिन्सर्वं दास्ये वरमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ चन्द्र उवाच । यदि प्रसन्नो देवेश किमसाध्यं भवेन्मम । तथापि मे शरीरस्य क्षयं वारय शंकर ॥४३॥ क्षन्तव्यो मेऽपराधश्च कल्याणं कुरु सर्वदा । इत्युक्ते च तदा तेन शिवो वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥ शिव उवाच । पक्षे च क्षीयतां चन्द्र कला ते च दिने दिने । पुनश्च वर्द्धतां पक्षे सा कला च निरंतरम् ॥ ४५ ॥ सूत उवाच । एवं सति तदा देवा हर्षनिर्भरमानसाः । ऋषयश्च तथा सर्वे समाजग्मुर्द्रुतं द्विजाः ॥ ४६ ॥ आगत्य च तदा सर्वे चन्द्रायाशिषमब्रुवन् । शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा प्रार्थयामासुरादरात् ॥ ४७ ॥ देवा ऊचुः । देवदेव महादेव परमेश नमोऽस्तु ते । उमया सहितश्शंभो स्वामिन्नत्र स्थिरो भव ॥ ४८ ॥ सूत उवाच । ततश्चन्द्रेण सद्भक्त्या संस्तुतश्शंकरः पुरा । निराकारश्च साकारः पुनश्चैवाभवत्प्रभुः ॥ ४९ ॥ प्रसन्नश्च स देवानां क्षेत्रमाहात्म्यहेतवे । चन्द्रस्य यशसे तत्र नाम्ना चन्द्रस्य शंकरः ॥ ५० ॥ सोमेश्वरश्च नाम्नासीद्विख्यातो भुवनत्रये । क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनाद्द्विजाः ॥ ५१ ॥ धन्योऽयं कृतकृत्योऽयं

कहने लगे ॥ ४१ ॥ शंकरने कहा, कि हे चन्द्र ! तेरा कल्याण हो, तू मनचीता वर माँगले, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ अतः तुझे श्रेष्ठ वर देसकता हूँ ४२ चन्द्रमाने कहा, कि–हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे कौनसी बात असाध्य होगी, तथापि हे शंकर ! मेरे शरीरके क्षयको दूर करिये ॥ ४३ ॥ मेरे अपराधको क्षमा कर सदा मेरा कल्याण करिये, चन्द्रमाके इस प्रकार कहने पर शिव कहने लगे ॥ ४४ ॥ शिवने कहा, कि–हे चन्द्रमा ! पक्ष भर तक तुम्हारी कला दिन दिन क्षीण होती रहेगी और वह दूसरे पक्षमें निरनिरन्तर बढ़ती रहेगी ॥ ४४ ॥ सूतजीने कहा, कि–हे द्विजों ! इस घटनाके होने पर सब ऋषि और देवता चित्तमें प्रसन्न होते हुए शीघ्र ही तहाँ पहुँचे ॥४६॥ और आकर सब चन्द्रमाको आशीर्वाद देने लगे फिर शिव को हाथ जोड़ प्रणाम कर आदरपूर्वक प्रार्थना करने लगे ॥४७॥ देवताओंने कहा, कि–हे देवदेव परमेश्वर महादेव ! आपको प्रणाम है, हे स्वामिन् ! आप यहाँ उमाके साथमें प्रतिष्ठित हूजिये ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा, कि-शंकर पहिले निराकार थे परन्तु चन्द्रमाके इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने पर वह प्रभु तहाँ साकार होगए ॥ ४९ ॥ देवताओं पर प्रसन्न हो क्षेत्रके माहात्म्यके लिये चन्द्रमाको यश देनेके लिये चन्द्रमाके नामसे ही शंकर तहाँ प्रतिष्ठित होगए ॥५०॥ वह त्रिलोकीमें सोमेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगए हे द्विजों ! वह पूजन करनेसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका नाश करते हैं ॥ ५१ ॥ यह चन्द्रमा धन्य और कृतकृत्य हैं, क्योंकि–उनके नामसे जगत्के स्वामी

यन्नाम्ना शंकरस्स्वयम् । स्थितश्च जगतां नाथः पावयञ्जगतीतलम् ॥ ५२ ॥ तत्कुण्डं तैत्र तत्रैव सर्वैर्देवैः प्रतिष्ठितम् । शिवेन ब्रह्मणा तत्र ह्यविभक्तं तु तत्पुनः ॥ ५३ ॥ चन्द्रकुण्डं प्रसिद्धं च पृथिव्यां पापनाशनम् । तत्र स्नाति नरो यः स सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥५४॥ रोगास्सर्वे क्षयाद्याश्च ह्यसाध्या ये भवंति वै । ते सर्वे च क्षयं यान्ति षण्मासं स्नानमात्रतः ॥ ५५ ॥ प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसंभवम् । फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतस्स्वर्गे महीयते ॥ ५६ ॥ सोमलिंगं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते । लब्ध्वा फलं मनोभीष्टं मृतस्स्वर्गं समीहते ॥ ५७ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम् । तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ इति ते ऋषयो देवाः फलं दृष्ट्वा तथाविधम् । मुदा शिवं नमस्कृत्य गृहीत्वा चन्द्रमक्षयम् । परिक्रम्य च तत्तीर्थं प्रशंसन्तश्च ते ययुः । चंद्रश्चापि स्वकीयं च कार्य्यं चक्रे पुरातनम् ॥ ६० ॥ इति सर्वः समाख्यातः सोमेशस्य समुद्भवः । एवं सोमेश्वरं लिंगं समुत्पन्नं मुनीश्वराः ॥ ६१ ॥ यः शृणोति तदुत्पत्तिं श्रावयेद्वा परान्नरः । सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सोमनाथज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शंकर पृथिवीतलको पवित्र करते हुए विराजमान हैं ॥५२॥ सब देवताओंने उनके एक कुण्डकी भी तहाँ प्रतिष्ठा की, वह शिव और ब्रह्माका सम्मिलित कुण्ड है ॥ ५३ ॥ वह पृथिवी पर पापका नाश करने वाला कुण्ड चन्द्रकुण्ड नामसे प्रसिद्ध है जो पुरुष उसमें स्नान करता है उसके सब पाप धुल जाते हैं ॥५४॥ इस कुण्डमें छः मास तक स्नान करनेसे क्षय आदि सब असाध्य रोग नष्ट होजाते हैं ॥५५॥ पवित्र चित्तवाला पुरुष प्रभासकी परिक्रमा कर पृथिवीकी परिक्रमाका फल पाता है और मरने पर स्वर्गमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ५६ ॥ मनुष्य सोमलिंगका दर्शन कर सब पापोंसे छूट जाता है और मनचाहा फल पाकर मरने पर स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ ५७ ॥ जिस २ फलके उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, वही फल प्राप्त होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ वे देवता और ऋषि ऐसे फलको देख, क्षयरहित चन्द्रमाको ग्रहण कर, शिवको प्रेमपूर्वक प्रणाम कर उस तीर्थकी परिक्रमा कर प्रशंसा करते हुए चल दिये, और चन्द्रमा भी अपना प्राचीन कार्य करने लगे ॥ ५९ ॥६०॥ इस प्रकार आपसे सोमनाथकी पूरी उत्पत्ति कही, हे मुनीश्वरों! इस प्रकार सोमेश्वर लिंग प्रतिष्ठित हुआ है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस सोमेश्वर लिंगको उत्पत्तिको सुनता है वा दूसरोंको सुनाता है उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं और वह सकल पापोंसे बच जाता है ६२

सूत उवाच । अतः परं प्रवक्ष्यामि मल्लिकार्जुनसंभवम् । यं श्रुत्वा भक्तिमान्धीमान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ पूर्वं च कथितं यच्च तत्पुनः कथयाम्यहम् । कुमारचरितं दिव्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ यदा पृथ्वीं समाक्रम्य कैलासं पुनरागतः । कुमारस्स शिवापुत्रस्तारकारिर्महाबलः ॥ ३ ॥ तदा सुरर्षिरागत्य सर्वं वृत्तं जगाद ह । गणेशस्य विवाहादि भ्रामयंस्तं स्वबुद्धितः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा स कुमारो हि प्रणम्य पितरौ च तौ । जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि हि ५ कुमारस्य वियोगेन तन्माता गिरिजा यदा । दुःखितासीत्तदा शम्भुस्तामुवाच सुबोधकृत् ॥ ६ ॥ कथं प्रिये दुःखितासि न दुःखं कुरु पार्वति । आयास्यति सुतः सुभ्रूस्त्यज्यतां दुःखमुत्कटम् ॥ ७ ॥ सा यदा च न तन्मेने पार्वती दुःखिता भृशम् । तदा च प्रेषितास्तत्र शंकरेण सुरर्षयः ॥८॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे सगणा हि मुदान्विताः । कुमारानयनार्थं वै तत्र जग्मुः सुबुद्धयः ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा च ते सर्वे कुमारं सुप्रणम्य च । विज्ञाप्य बहुधाप्येनं प्रार्थनां चक्रुरादरात् १० देवादिप्रार्थनां तां च शिवाज्ञासंकुलां गुरुः । न मेने स कुमारो हि महाहंकारविह्वलः॥ ततश्च पुनरावृत्य सर्वे ते हि शिवांतिकम् । स्वं स्वं स्थानं गता नत्वा प्राप्य शंकर-

---

सूतजीने कहा, कि—अब मैं मल्लिकार्जुनकी उत्पत्तिकी कथा कहता हूँ, भक्तिमान् और बुद्धिमान् पुरुष इसको सुननेसे सब पापोंसे बचने लगता है ॥ १ ॥ पहिले मैंने जिस चरित्रका वर्णन किया था, सकल पापोंसे बचाने वाले कुमारके उस दिव्य चरित्रका मैं फिर वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ जब तारकके शत्रु शिवापुत्र महाबली कुमार पृथिवीकी परिक्रमा कर फिर कैलास पर आये ।३। तब देवर्षि नारदने उनके पास पहुँच अपनी बुद्धिसे उनको भ्रममें डालनेके लिये गणेशके विवाह आदिका सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ४ ॥ कुमार इस बातको सुन माता पिताको प्रणाम कर उनके मना करने पर भी क्रौंच पर्वतको चल दिये ५ जब कुमारके वियोगमें उनकी माता गिरिजा दुःखित हुई तब ज्ञानदाता शम्भु उनसे कहने लगे ॥ ६ ॥ हे प्रिये पार्वति ! तुम दुःखित क्यों होरही हो दुःख मत करो, हे सुभ्रू ! तुम्हारा पुत्र आयगा, तुम अधिक दुःख न करो ॥ ७ ॥ परन्तु जब पार्वती नहीं मानीं और अधिक दुःखी होने लगीं तब शङ्करने देवता और ऋषियोंको तहाँ भेजा ॥ ८ ॥ तब सुबुद्धि देवता और ऋषि अपने गणों को साथ ले आनन्दित हो कुमारको लेनेके लिये चले ॥ ९ ॥ तहाँ पहुँच कर सबने कुमारको प्रणाम किया और इन्हें अनेक प्रकारसे समझा कर आदरके साथ प्रार्थना करने लगे ॥ १० ॥ परन्तु अहंकारसे विह्वल बड़े कुमारने शिव की आज्ञासे भरी देवताओंकी प्रार्थनाको न माना ११ तब वे सब फिर लौटकर शंकरके पास आये और उनको प्रणाम कर शंकरकी आज्ञा पा अपने स्थानको

शासनम् ॥१२॥ तदा च गिरिजा देवी विरहं पुत्रसम्भवम् । शम्भुश्च परमं दुःखं प्राप तस्मिन्ननागते ॥ १३ ॥ अथो सुदुःखितौ दीनौ लोकाचारकरौ तदा । जग्मुतुस्तत्र सुस्नेहात्स्वपुत्रो यत्र संस्थितः ॥ १४ ॥ स पुत्रश्च कुमाराख्यः पित्रोरागमनं गिरेः । ज्ञात्वा दूरं गतोऽस्नेहाद्योजनत्रयमेव च ॥ १५ ॥ क्रौंचे च पर्वते दूरं गते तस्मिन्स्वपुत्रके । तौ च तत्र समासीनौ ज्योतीरूपं समाश्रितौ ॥ १६ ॥ पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि । दर्शनार्थं कुमारस्य स्वपुत्रस्य हि गच्छतः ॥ अमावास्यादिने शम्भुस्स्वयं गच्छति तत्र ह । पौर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम् ॥१८॥ तद्दिनं हि समारभ्य मल्लिकार्जुनसम्भवम् । लिगं चैव शिवस्यैकं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ १९ ॥ तल्लिंगं यः समीक्षेत स सर्वैः किल्बिषैरपि । मुच्यते नात्र सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२०॥ दुःखं च दूरतो याति सुखमात्यंतिकं लभेत् । जननीगर्भसंभूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ॥२१॥ धनधान्यसमृद्धिश्च प्रतिष्ठारोग्यमेव च । अभीष्टफलसिद्धिश्च जायते नात्र संशयः ॥ २२ ॥ ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं च प्रोक्तं मल्लिकसंज्ञितम् । दर्शनात्सर्वसुखदं कथितं लोकहेतवे ॥ २३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मल्लिकार्जुनद्वितीयज्योतिर्लिङ्गवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

लौट गए ॥ १२ ॥ तब कुमारके न आनेसे गिरिजा देवी और शम्भु पुत्रवियोगके कारण परम दुःख पाने लगे ॥ १३ ॥ तब सांसारिक आचरणका पालन करने वाले वे दोनों दीन और दुःखित होते हुए स्नेहपूर्वक वहाँको चले जहाँ उनका पुत्र था ॥ १४ ॥ परन्तु उनके पुत्र कुमार स्नेहहीन होनेसे माता पिताके आगमनको जान उस पर्वत पर बारह कोस दूर चले गए ॥१५॥ अपने पुत्रके क्रौंच पर्वत पर दूर चले जाने पर वे वहाँ ज्योतिःस्वरूप धारण कर बैठ गए ॥१६॥ और पुत्रके स्नेहसे आतुर वे शिव और शिवा प्रत्येक पर्वमें अपने पुत्रका दर्शन करनेके लिये जाते हैं ॥ १७ ॥ अमावास्याके दिन स्वयं शिव वहाँ पहुँचते हैं और पूर्णिमाके दिन वहाँ पार्वती जाती हैं ॥ १८ ॥ उस दिनसे शिवका मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगया है ॥१९॥ जो उस शिवलिंगका दर्शन करता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है और उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ २० ॥ उसका दुःख दूर भाग जाता है और अतीव सुख मिलता है और माताके गर्भमें आनेका दुःख फिर नहीं होता २१ उसका धन धान्य प्रतिष्ठा और आरोग्य बढ़ता है तथा अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है ॥ २२ ॥ मल्लिकार्जुन नामवाले यह दूसरे ज्योतिर्लिंगका वर्णन कर दिया, संसारके उपकारके कारण इस दर्शनसे सब प्रकारका सुख देने वाले ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन कर दिया ॥ २३ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

ऋषय ऊचुः । सूत सर्वं विजानासि वस्तु व्यासप्रसादतः । ज्योतिषां च कथां श्रुत्वा तृप्तिर्नैव प्रजायते ॥ १ ॥ तस्मात्त्वं हि विशेषेण कृपां कृत्वातुलां प्रभो । ज्योतिर्लिङ्गं तृतीयं च कथय त्वं हि नोऽधुना ॥ २ ॥ सूत उवाच । धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं श्रीमतां भवतां यदि । गतश्च संगमं विप्रा धन्या वै साधुसंगतिः ॥ ३ ॥ अतो मत्वा स्वभाग्यं हि कथयिष्यामि पावनीम् । पापप्रणाशिनीं दिव्यां कथां च शृणुतादरात् ॥४॥ अवन्ती नगरी रम्या मुक्तिदा सर्वदेहिनाम् । शिवप्रिया महापुण्या वर्तते लोकपावनी ॥ ५ ॥ तत्रासीद् ब्राह्मणश्रेष्ठश्शुभकर्मपरायणः । वेदाध्ययनकर्त्ता च वेदकर्मरतस्सदा ॥६॥ अग्न्याधानसमायुक्तश्शिवपूजारतस्सदा । पार्थिवीं प्रत्यहं मूर्तिं पूजयामास वै द्विजः ॥ ७ ॥ सर्वकर्मफलं प्राप्य द्विजो वेदप्रियस्सदा । सतां गतिं समालेभे सम्यग्ज्ञानपरायणः ॥ ८ ॥ तत्पुत्रास्तादृशाश्चासंश्चत्वारो मुनिसत्तमाः । शिवपूजारता नित्यं पित्रोरनवमास्सदा ॥ ९ ॥ देवप्रियश्च तज्ज्येष्ठः प्रियमेधास्ततः परम् । तृतीयस्सुकृतो नाम धर्मवाही च सुव्रतः तेषां पुण्यप्रतापाच्च पृथिव्यां सुखमैधत । शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्तते च निरन्तरम् ॥ ११ ॥ तथा तेषां गुणास्तत्र वर्द्धन्ते स्म सुखावहाः । ब्रह्मतेजोमयी सा

ऋषियोंने कहा, कि–हे सूतजी ! आप व्यासजीकी कृपासे सब वस्तुओंको जानते हैं, हमें ज्योतिर्लिङ्गकी कथा सुनते २ तृप्ति नहीं हुई है ॥१॥ हे प्रभो ! इस लिये आप तीसरे ज्योतिर्लिङ्गको कथाका वर्णन करिये ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि–आपसे श्रीमानोंका संग होनेसे मैं धन्य हूँ और कृतकृत्य हूँ, क्योंकि हे विप्रों ! साधुसमागमको धन्य है ॥ ३ ॥ अतः मैं अपने भाग्यकी सराहना कर पापको नष्ट करने वाली और पवित्र करने वाली दिव्य कथाका वर्णन करता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनें ॥ ४ ॥ रमणीय अवन्ती नगरी सब प्राणियों को मुक्ति देने वाली है, यह संसारको पवित्र करने वाली नगरी शिवको प्रिय है ॥ ५ ॥ तहाँ शुभकर्ममें परायण वेदका पाठ करने वाला और वैदिक कर्मोंमें परायण रहने वाला एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था ॥ ६ ॥ वह अग्निहोत्री शिवपूजापरायण ब्राह्मण प्रतिदिन शिवकी पार्थिव मूर्तिका पूजन किया करता था ॥ ७ ॥ वह वेदप्रिय ब्राह्मण ज्ञानमें भली भाँति लगा रहता था अतः सब कर्मोंके फलको पाकर सज्जनोंकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियों ! उसके चार पुत्र भी उसको ही समान शिवपूजामें परायण रहते थे और अपने माता पिता से उतरते हुए नहीं थे ॥ ९ ॥ उनमें बड़ेका नाम देवप्रिय था, दूसरेका नाम प्रियमेधा था, तीसरेका नाम सुकृत था और चौथा सुव्रत धर्मवाही था ॥१०॥ जिस प्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमा निरन्तर बढ़ता है इसी प्रकार उनके पुण्यप्रताप से पृथिवी पर सुख बढ़ने लगा ॥ ११ ॥ और उनके सुखदायक गुण बढ़ने

वै नगरी चाभवत्तदा ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्जातं वृत्तमुत्तमम् । श्रूयतां तद्द्विजश्रेष्ठाः कथयामि यथाश्रुतम् ॥ १३ ॥ पर्वते रत्नमाले च दूषणाख्यो महासुरः । बलवान्दैत्यराजश्च धर्मद्वेषी निरन्तरम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मणो वरदानाच्च जगत्तुच्छीचकार ह । देवाः पराजितास्तेन स्थानान्निस्सारितास्तथा ॥ १५ ॥ पृथिव्यां वेदधर्माश्च स्मृतिधर्माश्च सर्वशः । स्फोटितास्तेन दुष्टेन सिंहेनेव शशाः खलु ॥१६॥ यावन्तो वेदधर्माश्च तावन्तो दूरतः कृताः । तीर्थे तीर्थे तथा क्षेत्रे धर्मो नीतिश्च दूरतः ॥ १७ ॥ अवन्ती नगरी रम्या तत्रैका दृश्यते पुनः । इत्थं विचार्य तेनैव यत्कृतं श्रूयतां हि तत् ॥ १८ ॥ बहुसैन्यसमायुक्तो दूषणास्स महासुरः । तत्रस्थान्ब्राह्मणान्सर्वानुद्दिश्य समुपाययौ ॥ १९ ॥ तत्रागत्य स दैत्येन्द्रश्चतुरो दैत्यसत्तमान् । प्रोवाचाहूय वचनं विप्रद्रोही महाखलः ॥ २० ॥ दैत्य उवाच । किमेते ब्राह्मणा दुष्टा न कुर्वन्ति वचो मम । वेदधर्मरता एते सर्वे दंड्या मते मम ॥ २१ ॥ सर्वे देवा मया लोके राजानश्च पराजिताः । वशे किं ब्राह्मणाश्शक्या न कर्तुं दैत्यसत्तमाः ॥२२॥ यदि जीवितुमिच्छा स्यात्तदा धर्मं शिवस्य च । वेदानां परमं धर्मं त्यक्त्वा सुखमुभागिनः ॥ २३ ॥ अन्यथा जीवने तेषां

लगे और वह नगरी ब्रह्मतेजसे भर गई ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ द्विजों ! इसी समय जो उत्तम घटना घटी थी उसको जैसा सुना है, वर्णन करता हूँ, सुनो ।१३। रत्नमाल पर्वत पर दूषण नाम वाला महान् असुर रहता था, वह बलवान् दैत्य धर्मसे द्वेष ही करता रहता था ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीसे वरदान पाकर वह जगत् को तुच्छ समझने लगा, उसने देवताओंको हरा कर उनको उनके स्थानोंसे निकाल दिया ॥ १५ ॥ जैसे सिंह खरगोशोंको चीरफाड़ डाले, उसने इसी प्रकार पृथिवी परसे वैदिक तथा स्मार्त धर्मोंको तित्तर बित्तर कर डाला था १६ उसने जितने वैदिकधर्म थे सबको हटाना आरम्भ कर दिया, प्रत्येक तीर्थ और क्षेत्रसे वह धर्मको और नीतिको दूर करने लगा ॥ १७ ॥ उस समय एक अवन्ती नगरी ही रमणीय दीखती थी, यह विचार कर उसने जो कुछ किया था, उसको आप सुनिये ॥ १८ ॥ वह दूषण नाम वाला महादैत्य बहुतसी सेनाके साथ उज्जैनके सब ब्राह्मणों पर चढ़ा ॥ १९ ॥ तहाँ पहुँच कर उस विप्रद्रोही महाखल दैत्येन्द्रने चार श्रेष्ठ दैत्योंको बुला कर यह बात कही ।२०। दैत्यने कहा, कि-ये दुष्ट ब्राह्मण मेरी बात नहीं मानते, ये वेदधर्ममें परायण रहने वाले ब्राह्मण मेरे मतमें दण्डनीय हैं ॥२१॥ हे श्रेष्ठ दैत्यों ! मैंने संसार के सब देवताओंका और राजाओंका पराजय कर लिया, तो क्या ये ब्राह्मण वशमें नहीं किये जा सकते ॥ २२ ॥ अतः यदि जीवित रहनेकी इच्छा होतो ये शिवके धर्मको और वेदोंके परमधर्मको त्याग कर सुख पाते रहें ॥ २३ ॥

संशयश्च भविष्यति । इति सत्यं मया प्रोक्तं तत्कुरुध्वं विशंकिनाः ॥ २४ ॥ सूत उवाच । इति निश्चित्य ते दैत्याश्चत्वारः पावका इव । चतुर्दिक्षु तदा जाताः प्रलये च यथा पुरा ॥२५॥ ते ब्राह्मणास्तथा श्रुत्वा दैत्यानामुद्यमं तदा । न दुःखं लेभिरे तत्र शिवध्यानपरायणाः ॥ २६ ॥ धैर्यं समाश्रितास्ते च रेखामात्रं तदा द्विजाः । न चेलुः परमध्यानाद्धराकाः के शिवाग्रतः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तैस्तु व्याप्तासीन्नगरी शुभा । लोकाश्च पीडितास्तैस्तु ब्राह्मणान्समुपाययुः ॥ २८ ॥ लोका ऊचुः । स्वामिनः किं च कर्त्तव्यं दुष्टाश्च समुपागताः । हिंसिता बहवो लोका आगताश्च समीपतः ॥ २९ ॥ सूत उवाच । तेषामिति वचश्श्रुत्वा वेदप्रियसुताश्च ते । समूचुर्ब्राह्मण स्तान्वै विश्वस्ताश्शंकरे सदा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणा ऊचुः । श्रूयतां विद्यते नैव बलं दुष्टभयावहम् । न शस्त्राणि तथा सन्ति यच्च ते विमुखाः पुनः ॥ ३१ ॥ सामान्यस्यापमानो नो ह्याश्रयस्य भवेदिह । पुनश्च किं समर्थस्य शिवस्येह भविष्यति ॥ ३२ ॥ शिवो रक्षां करोत्वद्यासुराणां भयतः प्रभुः । नान्यथा शरणं लोके भक्तवत्सलतश्शिवात् ॥ ३३ ॥ सूत उवाच । इति धैर्यं समास्थाय समर्चा पार्थिवस्य च । कृत्वा च ते द्विजा स्म्यक्स्थिता ध्यान-

---

अन्यथा इनका जीवन भी संदेहमें पड़ जावेगा, यह बात मैंने सत्य कही, अतः तुम निःशंक होकर ऐसा ही बर्ताव करो ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार निश्चय करके वे चारों दैत्य चारों दिशाओंमें प्रलयाग्निकी समान प्रकट होगए ॥ २५ ॥ वे ब्राह्मण दैत्योंके उद्यमको सुन दुःखित न हुए और शिवके ध्यानमें ही मग्न रहे ॥ २६ ॥ वे देवता पर भरोसा रखने वाले द्विज धैर्य धरे रहे और ये बकवादी क्या हैं? यह समझ कर परमध्यानमे च्युत न हुए ॥ २७ ॥ इसी समय उन दैत्योंने वह शुभ नगरी घेरली और लोग पीड़ा पाकर ब्राह्मणोंकी शरणमें पहुँचे ॥ २८ ॥ लोगोंने कहा, कि-हे स्वामियो! अब हमें क्या करना चाहिये वह दुष्ट बहुतसे लोगोंको मारते हुए अब समीप ही आलगे हैं ॥ २९ ॥ सूतजीने कहा, कि—उनके इस वचनको सुन शंकर पर विश्वास रखने वाले वेदप्रियके पुत्रोंने ब्राह्मणोंसे कहा, ॥ ३० ॥ सुनो! यहाँ दुष्टोंको भय देने वाला दल नहीं चल सकता, न यहाँ शस्त्र चल सकते हैं, ये राक्षस विमुख होकर लौट जावेंगे ॥ ३१ ॥ यहाँ पर साधारण रीति पर आश्रय लेने वालेका भी अपमान नहीं होसकता, फिर समर्थ शिवका आश्रय लेनेवालेका अपमान तो हो कैसे सकता है ॥ ३२ ॥ आज प्रभु शंकर असुरोंके भयसे रक्षा करेंगे, संसारमें भक्तवत्सल शिवसे अधिक शरण लेने योग्य और कौन है? ॥ ३३ ॥ सूतजीने कहा, कि-इस प्रकार धैर्य धर पार्थिव-शिवलिंगका पूजन कर वे द्विज भली भाँति शिवका ध्यान करने लगे तब तक दैत्य और उसके दलने

परायणाः । दृष्टा दैत्येन तावच्च ते विप्रास्सबलेन हि ॥ ३४ ॥ दूषणेन वचः प्रोक्तं हन्यतां बध्यतामिति । तच्छ्रुतं तैस्तदा नैव दैत्यप्रोक्तं वचो द्विजैः । वेदप्रियसुतैश्शंभोर्ध्यानमार्गपरायणैः ॥ ३५ ॥ अथ यावत्स दुष्टात्मा हन्तुमैच्छद्द्विजांश्च तान् । तावच्च पार्थिवस्थाने गर्त्त आसीत्सशब्दकः ॥ ३६ ॥ गर्तात्ततस्समुत्पन्नः शिवो विकटरूपधृक् ।.महाकाल इति ख्यातो दुष्टहंता सतां गतिः ॥ ३७ ॥ महाकालः समुत्पन्नो दुष्टानां त्वादृशामहम् । खल त्वं ब्राह्मणानां हि समीपाद् दूरतो व्रज ३८ इत्युक्त्वा हुंकृतेनैव भस्मसात्कृतवांस्तदा । दूषणं च महाकालः शंकरस्सबलं द्रुतम् ।३९। कियत्सैन्यं हतं तेन किंचित्सैन्यं पलायितम् । दूषणश्च हतस्तेन शिवेन परात्मना ॥ ४० ॥ सूर्यं दृष्ट्वा यथा याति संक्षयं सर्वशस्तमः । तथैव च शिवं दृष्ट्वा तत्सैन्यं विननाश ह ॥ ४१ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह । देवास्समाययुस्सर्वे हरिब्रह्मादयस्तथा ॥४२॥ भक्त्या प्रणम्य तं देवं शंकरं लोकशंकरम् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः कृतांजलिपुटा द्विजाः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणांश्च समाश्वास्य सुप्रसन्नश्शिवस्स्वयम् । वरं ब्रूतेति चोवाच महाकालो महेश्वरः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा ते द्विजास्सर्वे कृताञ्जलिपुटास्तदा । सुप्रणम्य शिवं भक्त्या प्रोचुस्संनतमस्तकाः ४५ द्विजा ऊचुः । महाकाल महादेव दुष्टदण्डकर प्रभो । मुक्तिं प्रयच्छ नश्शंभो

भी ब्राह्मणोंको देख लिया ॥३४॥ और दूषणने कहा, कि-मारो पीटो, परन्तु शम्भुके ध्यानमें मग्न वेदप्रियके पुत्र द्विजोंने दैत्यका वचन सुना ही नहीं ३५ जब वह दुष्टात्मा उन ब्राह्मणोंको मारना चाहता था, कि पार्थिव लिंगके स्थान में धड़ाकेके साथ एक गड्ढा पड़गया ३६ और उस गड्ढेसे शिव विकटरूप धारण कर प्रकट होगए, वह सज्जनोंकी गति दुष्टोंका संहार करने वाले शिव महाकाल नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ३७ "तुमसे दुष्टोंके लिये मैं महाकाल प्रकट हुआ हूँ, रे दुष्ट ! तू ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग जा" ३८ महाकाल शंकरने इस प्रकार कह हुँकार कर ही दूषणको और उसके दलको भस्म कर डाला ३९ परमात्मा शिवने दूषण और बहुतसी सेना मार डाली और कुछ सेना भाग गई ॥४०॥ सूर्यको देखकर जैसे चारों ओरका अंधकार नष्ट होजाता है, इसी प्रकार शिवको देख कर वह सेना नष्ट होगई ४१ उस समय देवताओंने दुन्दुभियें बजा कर पुष्पोंकी वर्षा की और हे द्विजों ! हरि ब्रह्मा आदि सब देवता तहाँ पहुँच गए और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ संसारका कल्याण करने वाले शंकरको प्रणाम कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ फिर प्रसन्न होकर महाकाल महेश्वर शिवने ब्राह्मणोंको ढाढस देकर कहा, कि--वर माँगो ॥ ४४ ॥ इस बातको सुन वे सब द्विज हाथ जोड़ मस्तक झुका शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर कहने लगे ॥ ४५ ॥ द्विजों ने कहा, कि–हे दुष्टोंको दण्ड देने वाले महा-

संसारांबुधितश्शिव ॥ ४६ ॥ अत्रैव लोकरक्षार्थं स्थातव्यं हि त्वया शिव । स्वदर्शकान्नराञ्छंभो तारय त्वं सदा प्रभो ॥ ४७ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्तैश्शिवस्तत्र तस्थौ गर्ते सुशोभने । भक्तानां चैव रक्षार्थं दत्वा तेभ्यश्च सद्गतिम् ॥ ४८ ॥ द्विजास्ते मुक्तिमापन्नाश्चतुर्दिक्षु शिवास्पदम् । क्रोशमात्रं तदा जातं लिंगरूपिण एव च ॥ ४९ ॥ महाकालेश्वरो नाम शिवः ख्यातश्च भूतले । तं दृष्ट्वा न भवेत्स्वप्ने किंचिद् दुःखमपि द्विजाः ॥५०॥ यं यं काममपेक्ष्यैव तल्लिंगं भजते तु यः । तं तं काममवाप्नोति लभेन्मोक्षं परत्र च ॥ ५१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं महाकालस्य सुव्रताः । समुद्भवश्च माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ५२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ऋषय ऊचुः । महाकालसमाह्वस्य ज्योतिर्लिंगस्य रक्षिणः । भक्तानां महिमानं च पुनर्ब्रूहि महामते ॥१॥ सूत उवाच । शृणुतादरतो विप्रा भक्तरक्षाविधायिनः । महाकालस्य लिंगस्य माहात्म्यं भक्तिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनाह्वयो महान् । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञश्शिवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ तस्याभ-

---

काल महादेव शिव शंभो ! हमें इस संसारसमुद्रसे मुक्ति दीजिये ॥ ४६ ॥ और हे शिव ! आप संसारकी रक्षा करनेके लिये यहीं पर प्रतिष्ठित होजावें और हे प्रभो शंभो ! अपना दर्शन करने वालोंको सदा तारते रहें ॥४७॥ सूतजीने कहा, कि-उनके इस प्रकार कहने पर शिव उनको सद्—गति दे भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये उस ही सुन्दर गर्तमें विराजमान होगए ॥ ४८ ॥ और वे द्विज मुक्तिको प्राप्त हो चारों दिशाओंमें शिवमें प्रतिष्ठित हो कोस कोस भर तक शिवलिंगरूपी होगए ॥ ४९ ॥ हे द्विजों ! वह शिव भी महाकाल नामसे पृथिवी पर प्रसिद्ध होगए, इनका दर्शन करने पर स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता ५० जो जिस कामनासे इस शिवलिंगकी सेवा करता है, उसको वह कामना पूर्ण होती है और परलोकमें मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ५१ ॥ हे सुव्रतों ! आपसे यह महाकालका प्रादुर्भाव और माहात्म्य पूर्णरूपसे कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५२ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ *

ऋषियोंने कहा, कि-हे महामते ! आप महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गके रक्षकोंकी और भक्तोंकी महिमाका और वर्णन करिये ॥ १ ॥ सूतजीने कहा, कि-हे विप्रों ! आप भक्तकी रक्षा करने वाले महाकाल नामक शिवलिङ्गके भक्तिको बढाने वाले माहात्म्यको आदरपूर्वक सुनिये ॥ २ ॥ उज्जैनमें चन्द्रसेन नाम वाले एक बड़े राजा होगए हैं, यह शिवभक्त जितेन्द्रिय राजा सकल शास्त्रोंके अर्थ और तत्त्वको जानते थे ॥ ३ ॥ हे द्विजों ! इस राजाका

तत्सखा राज्ञो मणिभद्रो गणो द्विजाः । गिरीशगणमुख्यश्च सर्वलोकनमस्कृतः ४
एकदा स गणेन्द्रो हि प्रसन्नास्यो महामणिम् । मणिभद्रो ददौ तस्मै चिंतामणि-
मुदारधीः ॥ ५ ॥ स वै मणिः कौस्तुभवद्द्योतमानोर्कसन्निभः । ध्यातो दृष्टः श्रुतो
वापि मंगलं यच्छति ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तस्य कांतितलस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयं त्रपु ।
पाषाणादिकमन्यद्वा द्रुतं भवति हाटकम् ॥ ७ ॥ स तु चिंतामणिं कंठे बिभ्रद्राजा
शिवाश्रयः । चन्द्रसेनो राजाति देवमध्येव भानुमान् ॥ ८ ॥ श्रुत्वा चिंतामणि-
ग्रीवं चन्द्रसेनं नृपोत्तमम् । निखिलाः क्षितिराजानस्तृष्णाक्षुब्धहृदोऽभवन् ॥९॥
नृपा मत्सरिणस्सर्वे तं मणिं चन्द्रसेनतः । नानोपायैरयाचंत देवलब्धमबुद्धयः १०
सर्वेषां भूभृतां याच्ञा चंद्रसेनेन तेन वै । व्यर्थीकृता महाकालदृढभक्तेन भूसुराः ११
ते कदर्थीकृताः सर्वे चन्द्रसेनेन भूभृता । राजानस्सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे
तदा ॥ १२ ॥ अथ ते सर्वराजानश्चतुरंगबलान्विताः । चन्द्रसेनं रणे जेतुं संब-
भूवुः किलोद्यताः ॥ १३ ॥ ते तु सर्वे समेता वै कृतसंकेतसंविदः । उज्जयिन्या-
श्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः ॥ १४ ॥ संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा निखिलराजभिः ।

मणिभद्र नामक एक गण मित्र था यह शिवके गणोंमें मुख्य था और सब लोग इसको प्रणाम करते थे ॥ ४ ॥ एक समय उस उदार बुद्धि वाले गणोंके राजा मणिभद्रने प्रसन्न मुखसे चिन्तामणि नामक महामणि अपने मित्रको दी ॥ ५ ॥ कौस्तुभ मणिकी समान वह मणि दमकते हुए सूर्यकी समान थी और ध्यान दर्शन तथा श्रवणसे मंगल किया करती थी ॥ ६ ॥ उसकी कान्तिके नीचे छुआ हुआ ताँबा कांसी और सीसा शीघ्र सुवर्णरूपमें बदल जाता था ॥ ७ ॥ शिवभक्त राजा चन्द्रसेन चिन्तामणिको कण्ठमें धारण कर देवताओंके मध्यमें कांतिमान् वरुणकी समान दमकता था ॥ ८ ॥ नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनको गलेमें चिन्तामणि पहिरे हुए सुन कर पृथिवीके सकल राजाओंका हृदय तृष्णासे क्षुब्ध होने लगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर डाह रखने वाले वे सब मन्दबुद्धि राजे देवतासे प्राप्त हुई उस मणिको चन्द्रसेनसे अनेक उपायोंसे झपटना चाहने लगे ॥ १० ॥ परन्तु हे विप्रो ! महाकालके दृढ़भक्त राजा चन्द्रसेनने सब ही राजाओंकी प्रार्थना ठुकरा दी ॥ ११ ॥ राजा चन्द्रसेनके तिरस्कार करने पर उन सब देशोंके राजाओंको बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ १२ ॥ तदनन्तर वे सब राजे चतुरङ्गिनी सेनाओंको साथ ले चन्द्रसेनको रणमें जीतनेके लिये उद्यत होगए ॥ १३ ॥ फिर उन सबने संकेत और सम्मति कर बहुतसे सैनिकोंको साथ ले उज्जैनके चारों द्वारोंको रोक लिया ॥ १४ ॥ राजा अपनी पुरीको बहुतसे राजाओंसे घिरी देख उन ही महाकालेश्वरकी शरणमें

तमेव शरणं राजा महाकालेश्वरं ययौ ॥१५॥ निर्विकल्पो निराहारस्स नृपो दृढनिश्चयः। समानर्च महाकालं दिवा नक्तमनन्यधीः ॥ १६ ॥ ततः स भगवाञ्छंभुर्महाकालः प्रसन्नधीः। तं रक्षितुमुपायं वै चक्रे तं शृणुतादरात् ॥ १७ ॥ तदैव समये गोपी काचित्तत्र पुरोत्तमे। चरंती सशिशुर्विप्रा महाकालांतिकं ययौ ।१८। पञ्चाब्दवयसं बालं वहन्ती गतभर्तृका। राज्ञा कृतां महाकालपूजां सापश्यदादरात् ॥ १९ ॥ सा दृष्ट्वा सुमहाश्चर्यं शिवपूजां च तत्कृताम्। प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥२०॥ एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा वल्लवीसुतः। कुतूहलेन तां कर्त्तुं शिवपूजां मनो दधे ॥ २१ ॥ आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिबिरांतरे। अविदूरे स्वशिबिराच्छिवलिगं स भक्तितः २२ गन्धालंकारवासोभिर्धूपदीपाक्षतादिभिः। विधाय कृत्रिमैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्पयत् ॥२३॥ भूयो भूयस्समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः। नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनः पुनः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्समये पुत्रं शिवासक्तसुचेतसम्। प्रणयाद्गोपिका सा तं भोजनाय समाह्वयत् ॥ २५ ॥ यदाहूतोऽपि बहुशः शिवपूजासक्तमानसः। बालश्च भोजनं नैच्छत्तदा तत्र ययौ प्रसूः॥ तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम्। चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन सम-

---

पहुँचा ॥ १५ ॥ दृढ निश्चय रख संकल्प विकल्प छोड़ वह राजा निराहार रह दिनरात महाकालका अनन्यभक्तिसे पूजन करने लगा ॥ १६ ॥ तब उन महाकाल भगवान् शंभुने प्रसन्नबुद्धिसे उसकी रक्षाके जिस उपायको किया था, उसको आप आदरपूर्वक सुनें ॥ १७ ॥ उसी समय हे विप्रों ! उस श्रेष्ठ नगरमें एक गोपी अपने बालकके साथ घूमती हुई महाकालके समीप पहुँची १८ उस पतिविहीन और पाँच वर्षके बालकको साथमें लेकर घूमती हुई गोपीने राजाकी की हुई महाकालकी पूजाको आदरके साथ देखा ॥ १९ ॥ वह राजा की की हुई बड़े भारी आश्चर्यमें डालने वाली शिवपूजाको देख शिवको प्रणाम कर फिर अपने शिबिरमें आगई ॥ २० ॥ इस सब घटनाको देख उस गोपीके पुत्रने कुतूहलवश मनमें शिवपूजन करनेका विचार किया ॥ २१ ॥ वह एक मनोहर पाषाणको एक खाली डेरेमें लेगया, वह डेरा उसके डेरेसे बहुत दूर नहीं था, तहाँ उसने शिवलिंगकी भक्तिपूर्वक गंध अलंकार वस्त्र धूप दीप अक्षत आदि कृत्रिम बनाकर पूजा की और नवेद्य भी चढ़ाया ॥ २२ ॥ २३ ॥ फिर उसने मनोहर पुष्प और पत्रोंसे पूजन किया और अनेक प्रकारसे नृत्य कर वारम्वार प्रणाम करने लगा ॥ २४ ॥ इसी समय शिवमें मन लगाने वाले पुत्रको गोपीने प्रमके साथ भोजन करनेके लिये बुलाया ॥ २५ ॥ अनेक बार बुलाने पर भी शिवपूजनमें आसक्त मन वाले बालकने जब भोजन करना नहीं चाहा, तब उसकी माता तहाँ पहुँची ॥ २६ ॥ और उसको शिवके आगे नेत्र

ताडयत् ॥ २७ ॥ आकृष्टस्ताडितश्चापि नागच्छत्स्वसुतो यदा । तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिंगं च दूरतः ॥ २८ ॥ हाहेति दुःखमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं च सा । पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी क्रोधसमन्विता ॥२९॥ मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः । देवदेवेति चुक्रोश निपपात स बालकः ॥३०॥ प्रनष्टसंज्ञः सहसा स बभूव शुचाकुलः । लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥ ३१ ॥ तदैव जातं शिबिरं महाकालस्य सुन्दरम् । ददर्श स शिशुस्तत्र शिवानुग्रहतोऽचिरात् ।३२। हिरण्मयबृहद्द्वारं कपाटवरतोरणम् । महार्हनीलविमलवज्रवेदीविराजितम् ।३३ संतप्तहेमकलशैर्विचित्रैर्बहुभिर्युतम् । प्रोद्भासितमणिस्तंभैर्बद्धस्फटिकभूतलैः ३४ तन्मध्ये रत्नलिंगं हि शंकरस्य कृपानिधेः । स्वकृतार्चनसंयुक्तमपश्यद्गोपिकासुतः ॥ स दृष्ट्वा सहसोत्थाय शिशुर्विस्मितमानसः । संनिमग्न इवासीद्धि परमानंदसागरे ॥ ततः स्तुत्वा स गिरिशं भूयोभूयः प्रणम्य च । सूर्ये चास्तं गते बालो निर्जगाम शिवालयात् ॥ ३७ ॥ अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरंदरपुरोपमम् । सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रं परमोज्ज्वलम् ॥ ३८ ॥ सोन्तर्विवेश भवनं सर्वशोभासमन्वितम् । मणि-

---

मूँद बैठे देख हाथ पकड़ कर खेंचने लगी और क्रोधसे पीटने लगी ॥ २७ ॥ जब खेंचने और पीटने पर भी पुत्र न चला तब उसने शिवलिंगको दूर फेंक कर उसकी पूजाको भ्रष्ट कर दिया ॥ २८ ॥ तब हाहा करके दुःखित होते हुए अपने पुत्रको धमका कर क्रोधमें भरी हुई वह गोपी फिर अपने डेरेमें घुस गई ॥ २९ ॥ माताने शूलधारी शंकरदेवकी पूजाको नष्ट कर दिया, यह देख वह बालक देव देव कह रोता हुआ गिर पड़ा ॥ ३० ॥ वह शोकसे व्याकुल हो सहसा मूर्छित होगया और मुहूर्तभरमें होशमें आने पर नेत्रोंको खोला ३१ तो उस शिशुने देखा, कि-वह डेरा शिवके अनुग्रहसे शीघ्र ही महाकालका सुन्दर (मंदिर) बन गया है ॥ ३२ ॥ उसमें सुवर्णका बड़ा दरवाजा श्रेष्ठ किवाड़ और तोरण लगे हुए हैं और बहुमूल्य नीलम तथा निर्मल रत्नोंकी वेदियें सुशोभित होरही हैं ॥ ३३ ॥ तपे हुए सुवर्णके बहुतसे कलश रखे हुए हैं और स्फटिककी भूमि पर मणिजटित स्तंभ दमक रहे हैं ॥ ३४ ॥ गोपीके पुत्रने उसके मध्यमें अपनी पूजाकी सामग्रीसे सुशोभित कृपानिधि शंकरके रत्नलिंगको देखा ॥ ३५ ॥ इस बातको देख वह बालक चित्तमें विस्मित हो सहसा उठ खड़ा हुआ और परमानन्दसागरमें गोते खाने लगा ॥३६॥ तब वह बालक शंकरकी स्तुति कर और वारंवार उनको प्रणाम कर सूर्यास्त होने पर शिवालयमेंसे निकला ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उसने अपने डेरेको तत्काल सुवर्णमय हुए परम उज्ज्वल विचित्र देखा ॥ ३८ ॥ तब वह रात्रिके आरंभके समय प्रसन्न होता हुआ सुवर्ण और मणियोंसे जटित सर्वशोभासम्पन्न भवनके

हेमगणाकीर्णं मोदमानो निशामुखे ॥ ३९ ॥ तत्रापश्यत्स्वजननीं स्वपंतीं दिव्यलक्षणाम् । रत्नालंकारदीप्तांगीं साक्षात्सुरवधूमिव ॥ ४० ॥ अथो स तनयो विप्राः शिवानुग्रहभाजनाम् । जवेनोत्थापयामास मातरं सुखविह्वलः ॥ ४१ ॥ सोत्थिताद्भुतमालक्ष्यापूर्वं सर्वमिवाभवत् । महानंदसुमग्ना हि सस्वजे स्वसुतं च तम् ॥ श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः । प्रभुं विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम् ॥ ४३ ॥ स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि । ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषणम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा महीपतिस्सर्वं तत्सामात्यपुरोहितः । आसीन्निमग्नो विधृतिः परमानंदसागरे ॥ ४५ ॥ प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चश्चन्द्रसेनो नृपो हि सः । शिवनामोच्चरन्प्रीत्या परिरेभे तमर्भकम् ॥ ४६ ॥ महामहोत्सवस्तत्र प्रबभूवाद्भुतो द्विजाः । महेशकीर्तनं चक्रुः सर्वे च सुखविह्वलाः ॥ ४७ ॥ एवमत्यद्भुताचाराच्छिवमाहात्म्यदर्शनात् । पौराणां संभ्रमाच्चैव सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ अथ प्रभाते युद्धाय पुरं संरुध्य संस्थिताः । राजानश्चारवक्त्रेभ्यश्शुश्रुवुश्चरितं च तत् ॥ ४९ ॥ ते समेताश्च राजानः सर्वे ये ये समागताः परस्परमिति प्रोचुस्तच्छ्रुत्वा चकिता अति ॥५०॥ राजान ऊचुः । अयं राजा चन्द्रसेनशिवभक्तोति-

---

भीतर घुमा ॥ ३९ ॥ तहाँ उसने अपनी माताको दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न रत्न और अलंकारोंसे दमकते हुए अंगों वाली साक्षात् सुरवधूकी समान शयन करती हुई देखा ॥ ४० ॥ तब सुखसे विह्वल होते हुए उस पुत्रने, शिवके अनुग्रहकी पात्र हुई अपनी माताको वेगपूर्वक उठाया ॥ ४१ ॥ उसने उठ कर जब इन सब अपूर्व बातोंको देखा तो बड़े आनन्दमें मग्न हो अपने पुत्रका आलिंगन करने लगी ॥४२॥ और पुत्रके मुखसे गिरिजापतिकी कृपाको सुन, उसने निरन्तर शिवभजन करने वाले अपने प्रभु (राजा) से सब वृत्तान्त कहा ॥ ४३ ॥ रात्रिमें नियम समाप्त कर वह राजा सहसा तहाँ आया और गोपीपुत्रके शिवको सन्तुष्ट करनेके प्रभावको देखने लगा ॥ ४४ ॥ इस सब घटनाको देख मंत्री और पुरोहित सहित राजा परमानन्दसागरमें मग्न होगया ४५ फिर उस राजा चन्द्रसेनने प्रेमके आँसू बहा प्रीतिपूर्वक शिवके नामका उच्चारण कर उस बालकका प्रीतिपूर्वक आलिङ्गन किया ॥ ४६ ॥ हे द्विजो ! फिर तहाँ परम अद्भुत उत्सव हुआ सुखमें विह्वल हो सब शिवजीका कीर्तन करने लगे ॥ ४७ ॥ ऐसे अद्भुत आचरणसे और शिवका माहात्म्य प्रकट होनेसे और पुरवासियोंके संभ्रमके कारण वह रात्रि क्षण भरसी होगई ॥ ४८ ॥ तदनन्तर प्रभात होने पर युद्ध करनेके लिये नगरको घेर कर पड़ेहुए राजाओंने दूतोंके मुखसे यह वृत्तान्त सुना ॥ ४९ ॥ तब तो तहाँ आये हुए सब राजे एकत्रित हुए और चकित हो परस्पर कहने लगे ॥ ५० ॥ राजाओंने कहा,

दुर्जयः । उज्जयिन्या महाकालपुर्य्याः पतिरनाकुलः ॥ ५१ ॥ ईदृशाश्शिशवो यस्य पुर्य्यां संति शिवव्रताः । स राजा चन्द्रसेनस्तु महाशंकरसेवकः ॥ ५२ ॥ नूनमस्य विरोधेन शिवः क्रोधं करिष्यति । तत्क्रोधाद्धि वयं सर्वे भविष्यामो विनष्टकाः ॥ तस्मादनेन राज्ञा वै मिलापः कार्य एव हि । एवं सति महेशानः करिष्यति कृपां पराम् ॥ ५४ ॥ सूत उवाच । इति निश्चित्य ते भूपास्त्यक्तवैरास्सदाशयाः । सर्वे बभूवुस्सुप्रीता न्यस्तशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ५५ ॥ विविशुस्ते पुरीं रम्यां महाकालस्य भूभृतः । महाकालं समानर्चुश्चन्द्रसेनानुमोदिताः ॥ ५६ ॥ ततस्ते गोपवनिता-गेहं जग्मुर्महीभृतः । प्रशंसंतश्च तद्भाग्यं सर्वे दिव्यमहोदयम् ॥ ५७ ॥ ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः । महार्हविष्टरगताः प्रत्यनंदन्सुविस्मिताः ॥ ५८ ॥ गोपसूनोः प्रसादात्तत्प्रादुर्भूतं शिवालयम् । संवीक्ष्य शिवलिंगं च शिवे चक्रुः परां मतिम् ॥ ५९ ॥ ततस्ते गोपशिशवे प्रीता निखिलभूभुजः । ददुर्बहूनि वस्तूनि तस्मै शिवकृपार्थिनः ॥६०॥ ये ये सर्वेषु देशेषु गोपास्तिष्ठंति भूरिशः । तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः ॥६१॥ अथास्मिन्नंतरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः । प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरेश्वरः ॥ ६२ ॥ ते तस्याभिगमादेव राजानो जात-

---

कि—यह महाकालकी नगरी उज्जैनका स्वामी राजा चन्द्रसेन शिवभक्त है, अतः इसका जीतना कठिन है, देखो ! इसमें व्याकुलताका नाम भी नहीं है ५१ जिसकी नगरीमें ऐसे शिवका व्रत रखने वाले बालक हैं, वह राजा चन्द्रसेन तो शंकरका बड़ा सेवक होगा ॥ ५२ ॥ इसके साथ विरोध करने पर शङ्कर अवश्य ही कुपित होंगे और उनके क्रोधसे हम सब नष्ट होजावेंगे ॥ ५३ ॥ अतः इस राजाके साथ मिलाप करना चाहिये, ऐसा करने पर महेश हम पर अच्छी कृपा करेंगे ॥५४॥ सूतजीने कहा, कि—यह निश्चय कर उन राजाओंने वैरभाव छोड़दिया, उनका चित्त स्वच्छ होगया और वे हाथोंमेंसे अस्त्र शस्त्र रख परम प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ और फिर वे राजे चन्द्रसेनसे सम्मति ले महाकालकी रमणीय नगरीमें घुस महाकालका पूजन करने लगे ॥ ५६ ॥ तदनन्तर वे राजे गोपस्त्रीके दिव्य और उदय होते हुए भाग्यकी प्रशंसा करते हुए उसके घरकी ओर बढ़े ॥ ५७ ॥ तहाँ पर चन्द्रसेनने उनकी अगवानी कर उनका सत्कार किया तब उन्होंने बहुमूल्य आसनों पर बैठ विस्मित हो प्रत्यभिनन्दन किया ॥ ५८ ॥ गोपपुत्रके प्रसादसे प्रकट हुए शिवालयको और शिवलिङ्गको देख उन्होंने शिवमें उत्कृष्ट बुद्धि की ॥ ५९ ॥ तदनन्तर उन सब राजाओंने शिवकी कृपा पानेकी इच्छासे गोप—बालकको प्रसन्न होकर बहुतसी वस्तुएँ दीं ॥ ६० ॥ और अनेक देशोंमें जो बहुतसे गोप रहते थे सब राजाओंने गोपबालकको उन गोपोंका राजा बना दिया ॥ ६१ ॥ इसी समय सकल

संभ्रमाः । प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ६३ ॥ तेषां मध्ये समासीनः पूजितः प्लवगेश्वरः । गोपात्मजं तमालिंग्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ हनूमानुवाच । सर्वे शृण्वन्तु भद्रं वो राजानो ये च देहिनः । ऋते शिवं नान्यतमो गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ६५ ॥ एवं गोपसुतो दिष्ट्या शिवपूजां विलोक्य च । अमंत्रेणापि संपूज्य शिवं शिवमवाप्तवान् ॥६६॥ एष भक्तवरश्शंभोर्गोपानां कीर्तिवर्द्धनः । इह भुक्त्वाखिलान्भोगानंते मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६७ ॥ अस्य वंशेऽष्टमो भावी नन्दो नाम महायशाः । प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणस्स्वयम् ६८ अद्य प्रभृति लोकेस्मिन्नेष गोपकुमारकः । नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोकख्यातिं गमिष्यति ॥ ६९ ॥ सूत उवाच । एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुः शिवरूपो हरीश्वरः । सर्वान्राज्ञश्चन्द्रसेनं कृपादृष्ट्या ददर्श ह ॥ ७० ॥ अथ तस्मै श्रीकराय गोपपुत्राय धीमते । उपादिदेश सुप्रीत्या शिवाचारं शिवप्रियम् ॥ ७१ ॥ हनूमानथ सुप्रीतः सर्वेषां पश्यतां द्विजाः । चन्द्रसेनं श्रीकरं च तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७२ ॥ तं सर्वे च महीपालास्संहृष्टाः प्रतिपूजिताः । चन्द्रसेनं समामंत्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ ७३ ॥ श्रीकरोपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता । ब्राह्मणैस्सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोस्सम-

देवताओंसे पूजित तेजस्वी वानरेश्वर हनूमान्‌जी तहाँ प्रकट होगए ।६२। उनके आते ही राजाओंमें संभ्रम फैल गया और भक्तिसे नम्र चित्त वाले उन राजाओं ने उठकर उनको प्रणाम किया ।। ६३ ।। उनके मध्यमें बैठे हुए वानरराज हनूमान्‌ने पूजा करनेके उपरान्त उस गोपपुत्रका आलिङ्गन कर राजाओंकी ओर देखते हुए यह बात कही ।। ६४ ।। हनूमान्‌जीने कहा, कि--हे राजाओं और सकल प्राणियों ! तुम सब कल्याण देने वाली बात सुनो, शिवके अतिरिक्त शरीरधारियोंकी और कोई श्रेष्ठ गति नहीं है ।। ६५ ।। यह गोपपुत्र प्रारब्धवश शिवपूजाको देख बिना ही मन्त्रके शिवपूजन कर शिवको प्राप्त हो गया ।। ६६ ।। यह गोपोंकी कीर्तिको बढ़ाने वाला शंभुका श्रेष्ठ भक्त यहाँ संपूर्ण भोगोंको भोग अन्तमें मोक्ष पावेगा ।। ६७ ।। इसकी आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द होंगे नारायण कृष्ण स्वयं उनके पुत्र बनेंगे ।। ६८ ।। आज से इस लोकमें यह गोपकुमार श्रीकर नामसे परम प्रसिद्ध होगा ।। ६९ ।। सूतजीने कहा, कि —अञ्जनीके पुत्र शिवरूप हरीश्वर इस प्रकार कह सब राजाओंको और चन्द्रसेनको कृपादृष्टिसे देखने लगे ।। ७० ।। तदनन्तर उन्होंने उस गोपपुत्र बुद्धिमान् श्रीकरको प्रीतिपूर्वक शिवप्रिय शिवाचारका उपदेश दिया ।। ७१ ।। हे द्विजों ! तदनन्तर श्रीकर चन्द्रसेन और सबके देखते देखते प्रसन्न हुए हनुमान् तहाँ ही अन्तर्धान होगए ।। ७२ ।। तब वे सब राजे भी परम प्रसन्न हुए और चन्द्रसेनसे सन्मान पा उसकी अनुमति ले अपने अपने

हंणम् ॥ ७४ ॥ चन्द्रसेनो महाराजः श्रीकरो गोपबालकः । उभावपि परप्रीत्या महाकालं च भेजतुः ॥ ७५ ॥ कालेन श्रीकरस्सोपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः । समाराध्य महाकालं भेजतुः परमं पदम् ॥ ७६ ॥ एवंविधो महाकालशिवलिंगस्सतां गतिः । सर्वथा दुष्टहंता च शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ७७ ॥ इदं पवित्रं परमं रहस्यं सर्वसौख्यदम् । आख्यानं कथितं स्वर्ग्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ऋषय ऊचुः । सूतसूत महाभाग श्राविता ह्यद्भुता कथा । महाकालाख्यलिंगस्य निजभक्तसुरक्षिणः ॥ १ ॥ ज्योतिर्लिङ्गं चतुर्थं च कृपया वद वित्तम । ॐकारे परमेशस्य सर्वपातकहारिणः ॥ २ ॥ सूत उवाच । ॐकारे परमेशाख्यं लिंगमासीद्यथा द्विजाः । तथा वदयामि वः प्रीत्या श्रूयतां परमर्षयः ॥ ३ ॥ कस्मिंश्चित्समये चात्र नारदो भगवान्मुनिः । गोकर्णाख्यं शिवं गत्वा सिषेवे परभक्तिमान् ॥४॥ ततस्स आगतो विन्ध्यं नगेशं मुनिसत्तमः । तत्रैव पूजितस्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥ मयि सर्वं विद्यते च न न्यूनं हि कदाचन । इति भावं समास्थाय संस्थितो नार-

---

स्थानको लौट चले । ७३ ॥ हनूमान्जीसे उपदेश पाकर महातेजस्वी श्रीकर भी धर्मज्ञ ब्राह्मणोंको साथमें लेकर शंभुकी पूजा करने लगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार महाराज चन्द्रसेन और गोपबालक श्रीकर दोनों परमप्रेमके साथ महाकालकी सेवा करने लगे ॥ ७५ ॥ तदनन्तर समय आने पर श्रीकर और राजा चन्द्रसेन महाकालकी सेवा करते हुए परम पदको प्राप्त होगए । ७६ ॥ भक्तवत्सल शंकरका महाकाल नामक शिवलिंग सज्जनोंको सद्गति देने वाला और दुष्टोंका सर्वथा संहार करने वाला है ॥ ७७ ॥ यह सब प्रकारका सुख देने वाला परम पवित्र रहस्यमय शिवभक्तिको बढ़ाने वाला स्वर्गप्रद आख्यान कहा ॥ ७८ ॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

ऋषियोंने कहा, कि हे महाभाग सूतजी ! आपने यह अपने भक्तोंकी रक्षा करने वाले महाकाल नामक शिवलिंगकी अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! अब आप ओंकारमें जो सब पापोंको हरने वाले महेशका चौथा ज्योतिर्लिङ्ग है उसका वर्णन करिये ॥ २ ॥ सूतजीने कहा कि हे द्विजो ! ओंकारमें जो परमेश नामक लिंग जिस प्रकार प्रकट हुआ है उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, हे परमर्षियो ! आप प्रीतिपूर्वक सुनिये ॥३॥ एक समय भगवान् नारद मुनि गोकर्ण नामक शिवके पास जा परमभक्तिके साथ उनकी सेवा करने लगे ४ तदनन्तर वह मुनिसत्तम पर्वतराज विंध्यके पास पहुँचे, उसने बड़े आदरके साथ नारदजीका सत्कार किया ५ और मुझमें सब बातें ठीक हैं

दाग्रतः ॥ ६ ॥ तन्मानं तत्तदा श्रुत्वा नारदो मानहा ततः । निश्श्वस्य संस्थित-स्तत्र श्रुत्वा विन्ध्योऽब्रवीदिदम् ॥ ७ ॥ विन्ध्य उवाच । किं न्यूनं च त्वया दृष्टं मयि निश्श्वासकारणम् । तच्छ्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्स महामुनिः ॥८॥ नारद उवाच । विद्यते त्वयि सर्वं हि मेरुरुच्चतरः पुनः । देवेष्वपि विभागोऽस्य न तवास्ति कदाचन ॥ ९ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा नारदस्तस्माज्जगाम च यथा गतम् । विंध्यश्च परितप्तो वै धिग्वै मे जीवितादिकम् ॥ १० ॥ विश्वेश्वरं तथा शंभुमाराध्य च तपाम्यहम् । इति निश्चित्य मनसा शंकरं शरणं गतः ॥ ११ ॥ जगाम तत्र सुप्रीत्या ह्योंकारो यत्र वै स्वयम् । चकार च पुनस्तत्र शिवमूर्तिं च पार्थिवीम् ॥१२॥ आराध्य च तदा शंभुं षण्मासं स निरंतरम् । न चचाल तपः-स्थानाच्छिवध्यानपरायणः ॥ १३ ॥ एवं विंध्यतपो दृष्ट्वा प्रसन्नः पार्वतीपतिः । स्वरूपं दर्शयामास दुर्लभं योगिनामपि ॥ १४ ॥ प्रसन्नस्स तदोवाच ब्रूहि त्वं मनसेप्सितम् । तपसा ते प्रसन्नोस्मि भक्तानामीप्सितप्रदः ॥१५॥ विन्ध्य उवाच। यदि प्रसन्नो देवेश बुद्धिं देहि यथेप्सिताम् । स्वकार्यसाधिनीं शंभो त्वं सदा भक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छंभुश्चिचेत हृदये चिरम् ।

किसी बातकी कमी तो नहीं है, यह भाव हृदयमें रख नारदजीके आगे खड़ा होगया ६ उसकी इस अभिमानकी बातको सुन अभिमानका नाश करने वाले नारदने श्वास खेंचा उसको सुनकर विंध्याचलने यह बात कही ७ विंध्याचल ने कहा, कि- आपने मुझमें क्या कमी देखी जो श्वास भरा, इस बातको सुन महामुनि नारद कहने लगे ॥ ८ ॥ नारदजीने कहा, कि--यद्यपि तुममें सब बाते हैं, तो भी मेरु तुमसे परम उच्च है, उनका विभाग देवताओंमें भी है, परंतु तुम्हारा कोई नहीं है ॥ ९ ॥ सूतजीने कहा, कि—नारदजी इस प्रकार कह उस स्थानसे चलदिये और विंध्य अपने जीवन आदिको धिक्कार देता हुआ सन्ताप पाने लगा ॥ १० ॥ और विश्वेश्वर शंभुको आराधना करता हुआ मैं तप करूँ, मनमें ऐसा निश्चय कर उसने शङ्करको शरण ली ॥११॥ ऐसा विचार कर जहाँ ओंकार थे वह तहाँ पहुँचा और उसने फिर तहाँ शिव की एक पार्थिव मूर्ति बनाई ॥ १२ ॥ और निरन्तर छः मास तक शंभुको आराधना करता हुआ तपके स्थानसे न हटा और शंभुके ध्यानमें ही मग्न रहा ॥ १३ ॥ विंध्यके ऐसे तपको देख पार्वतीपति प्रसन्न हुए और योगियों को भी दुर्लभ अपने स्वरूपका उसको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर भक्तों को मनचाहा पदार्थ देने वाले शंभु प्रसन्न होकर उससे कहने लगे, कि-- मैं तेरे तपसे प्रसन्न हूँ, तू अपने मनमें जो बात हो माँग ले ॥ १५ ॥ विंध्यने कहा, कि--देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मनचाही अपने कार्यको सिद्ध

परोपतापदं विन्ध्यो वरमिच्छति मूढधीः ॥ १७ ॥ किं करोमि यदेतस्मै वरदानं भवेच्छुभम् । मद्दत्तं परदुःखाय वरदानं यथा न हि ॥ १८ ॥ सूत उवाच । तथापि दत्तवाञ्छंभुस्तस्मै तद्वरमुत्तमम् । विंध्यपर्वतराज त्वं यथेच्छसि तथा कुरु १९ एवं च समये देवा ऋषयश्चामलाशयाः । संपूज्य शंकरं तत्र स्थातव्यमिति चाब्रुवन् ॥२०॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं प्रसन्नः परमेश्वरः । तथैव कृतवान्प्रीत्या लोकानां सुखहेतवे ॥२१॥ ॐकारं चैव यल्लिंगमेकं तच्च द्विधा गतम् । प्रणवे चैव ॐकारनामासीत्स सदा शिवः ॥२२॥ पार्थिवे चैव यज्जातं तदासीत्परमेश्वरः । भक्ताभीष्टप्रदो चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रदौ द्विजाः ॥ २३ ॥ तत्पूजां च तदा चक्रुर्देवाश्च ऋषयस्तथा । प्रापुर्वराननेकांश्च संतोष्य वृषभध्वजम् ॥ २४ ॥ स्वस्वस्थानं ययुर्देवा विंध्योपि मुदितोऽधिकम् । कार्यं साधितवान्स्वीयं परितापं जहौ द्विजाः २५ य एवं पूजयेच्छंभुं मातृगर्भं वसेन्न हि । यदभीष्टं फलं तच्च प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ २६ ॥ सूत उवाच । एतत्ते सर्वमाख्यातमोंकारप्रभवे फलम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि केदारं लिंगमुत्तमम् ॥ २७ ॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

करने वाली बुद्धि दीजिये, हे शंभो ! आप सदा भक्तवत्सल हैं ।१६। सूतजीने कहा, कि--इस बातको सुन भगवान् शंभुने अपने मनमें बहुत समय तक विचार किया कि -यह मूढ़ बुद्धि वाला विंध्याचल दूसरोंको दुःख देने वाला वर चाहता है ।। १७ ।। मैं ऐसी क्या बात करूँ, जिससे मेरा वरदान शुभ हो, इसको दिया हुआ मेरा वरदान दुःखदायक न हो ।। १८ ।। सूतजीने कहा, कि--तो भी शंभुने उसको उत्तम वर देते हुए कहा, कि -हे पर्वतराज विंध्य ! तुम जैसा चाहते हो तैसा करो ।। १९ ।। इसी समय निर्मल चित्त वाले देवता और ऋषियोंने शंकरकी पूजा करके कहा, कि--यहाँ आप प्रतिष्ठित हूजिये २० देवताओंकी इस बातको सुन परमेश्वर प्रसन्न हुए और उन्होंने लोगोंको सुख देनेके लिये प्रीतिपूर्वक ऐसा ही किया ।। २१ ।। वह एक ही ओंकार लिंग दो भागोंमें बँट गया है प्रणवमें वह सदाशिव ओंकार नामसे प्रतिष्ठित होगए हैं ।। २२ ।। और पार्थिवमें जो शिव प्रकट हुए थे उनका नाम परमेश्वर हुआ, हे द्विजो ! ये दोनों शिवलिंग भक्तोंको भोग और मोक्ष देने वाले हैं ।। २३ ।। तब उसकी पूजा देवता और ऋषियोंने की और वृषभध्वजको सन्तुष्ट कर उन्होंने अनेक वर पाये हैं२४हे द्विजो ! तब देवता अपने २ स्थानको चल दिये और विंध्याचल भी परम प्रसन्न हुआ उसने सन्ताप करना छोड़ दिया ।।२५।। जो इस प्रकार शंभुका पूजन करता है, वह माताके गर्भमें नहीं बसता और अभीष्ट फल पाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है २६ सूतजीने कहा, कि--यह मैंने आपसे ओंकारके शिवलिंगका फल कहा अब उत्तम केदारलिंगका वर्णन करता हूँ २७

सूत उवाच । नरनारायणाख्यौ यावयतारौ हरेर्द्विजाः । तेपाते भारते खण्डे बदर्याश्रम एव हि ॥ १ ॥ ताभ्यां संप्रार्थितश्शम्भुः पार्थिवे पूजनाय वै । आयाति नित्यं तल्लिंगे भक्ताधीनतया शिवः ॥ २ ॥ एवं पूजयतोश्शम्भुं तयोर्विष्णववतारयोः । चिरकालो व्यतीयाय शैवयोर्धर्मपुत्रयोः ॥३॥ एकस्मिन्समये तत्र प्रसन्नः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नोऽस्मि वरो मे व्रियतामिति ॥ ४ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन नरो नारायणस्स्वयम् । ऊचतुर्वचनं तत्र लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ नरनारायणावूचतुः । यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया । स्थीयतां स्वेन रूपेण पूजार्थं शङ्कर स्वयम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्तु तदा ताभ्यां केदारे हिमसंश्रये । स्वयं च शंकरस्तस्थौ ज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ ७ ॥ ताभ्यां च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः । लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय वै ॥ ८ ॥ स्वयं स्थितस्तदा शम्भुः केदारेश्वरसंज्ञकः । भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं दर्शनादर्चनादपि ६ देवाश्च पूजयन्तीह ऋषयश्च पुरातनाः । मनोभीष्टं फलं ते ते सुप्रसन्नान्महेश्वरात् ॥ १० ॥ भवस्य पूजनान्नित्यं बदर्याश्रमवासिनः । प्राप्नुवन्ति यतः सो हि भक्ताभीष्टप्रदः सदा ॥ ११ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य केदारेश्वर एव च । पूजितो

सूतजीने कहा, कि—हे द्विजों ! हरिके जा नर नारायण नामक अवतार हैं उन्होंने भरतखण्डके बदरिकाश्रममें तप किया था ॥ १ ॥ वे शंभुकी पार्थिव शिवलिंगमें पूजा करनेके लिये प्रार्थना किया करते थे तब शिव भक्तोंके अधीन होनेके कारण उस लिंगमें नित्य आया करते थे ॥२॥ विष्णुके अवतार धर्मपुत्र उन दोनों शैवोंको इस प्रकार शिवपूजन करते हुए बहुतसा समय बीत गया ॥ ३ ॥ एक समय परमेश्वर शिव प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—मैं प्रसन्न हूँ तुम वर माँगो ॥४॥ इस प्रकार कहने पर नर और नारायण संसारका हित करनेकी इच्छासे कहने लगे ॥ ५ ॥ नर नारायणने कहा, कि—हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि आप वर देना चाहते हैं, तो हे शंकर ! यहाँ पर पूजा पानेके लिये आप अपने स्वरूपसे प्रतिष्ठित हूजिये ६ सूतजीने कहा, कि—उनके इस प्रकार कहने पर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे शंकर हिमाचलके केदारमें स्वयं प्रतिष्ठित होगए ॥ ७ ॥ तब लोगोंका उपकार करनेके लिये और भक्तोंको दर्शन देनेके लिये सब दुःखोंको दूर करने वाले शंकर की उन दोनोंने भी पूजा की ॥८॥ इस प्रकार केदारेश्वर नामसे शंभु तहाँ स्वयं प्रतिष्ठित हैं वह दर्शन और पूजन करनेसे भक्तोंके मनोरथको सदा पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥ देवता और प्राचीन ऋषि प्रसन्न हुए महेश्वरसे अपना मनचाहा फल पाते हैं ॥ १० ॥ बदरिकाश्रममें रहने वाले शिवका पूजन कर अपना मनचाहा फल पाते हैं, क्योंकि—शंकर भक्तोंको सदा अभीष्ट फल

येन भक्त्या वै दुःखं स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥१२॥ यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः । मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत् ॥ १३ ॥ धृतश्च पांडवै-स्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः । पुच्छं चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनः पुनः ॥१४॥ तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक् । नयपाले शिरोभागो गतस्तद्रूपतः स्थितः ॥ १५ ॥ तथैव पूजनान्नित्यमाज्ञां चैवाप्यदात्तथा । पूजितश्च स्वयं शंभु-स्तत्र तस्थौ वरानदात् ॥ १६ ॥ पूजयित्वा गतास्ते तु पाण्डवा मुदितास्तदा । लब्ध्वा चित्तेप्सितं सर्वं विमुक्तास्सर्वदुःखतः ॥ १७ ॥ तत्र नित्यं हरस्साक्षा-त्क्षेत्रे केदारसंज्ञके । भारतीभिः प्रजाभिश्च तथैव परिभुज्यते ॥१८॥ तद्वत्यं वलयं यो वै ददाति हरवल्लभः । हररूपांतिकं तच्च हररूपसमन्वितम ॥ १९ ॥ तथैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते । जीवन्मुक्तो भवेत्सोपि यो गतो बदरीवने २० दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य हि । केदारेश्वरशंभोश्च मुक्तिभागी न संशयः ॥२१॥ केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः । तेऽपि मुक्ता भवं-त्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २२ ॥ गत्वा तत्र प्रीतियुक्तः केदारेशं प्रपूज्य च । तत्रत्यमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विन्दति ॥ २३ ॥ खण्डेऽस्मिन्भारते विप्रा नरनारा-

दिया करते हैं ॥ ११ ॥ उस दिनसे जो केदारेश्वरका भक्तिपूर्वक पूजन करता है उसको स्वप्नमें भी दुःख मिलना दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जो पाण्डवों को देख मायासे भैंसा बन गए थे और तहाँ ही भागने लगे थे ॥१३॥ और पाण्डवोंके पकड़ने पर नीचेको मुख कर खड़े होगए थे और उन्होंने पूँछ पकड़ कर वारम्वार प्रार्थना की थी ॥ १४ ॥ वह भक्तवत्सलनामधारी तहाँ इसी रूपमें विराजमान हैं और उनका शिरोभाग नेपालमें पहुँच कर तहाँ उसी रूपमें स्थित है ॥ १५ ॥ और इसी प्रकार पूजन करनेकी उन्होंने आज्ञा दी और पूजा करने पर शंभुने तहाँ प्रतिष्ठित होकर वर दिये थे ॥१६॥ तब पूजन करके पाण्डव मनोरथको पा सकल दुःखोंसे मुक्त हो प्रसन्न होते हुए चले गए थे ॥ १७ ॥ भारतीय प्रजायें केदारनामक क्षेत्रमें साक्षात् हर का इसी प्रकार पूजन करती हैं ॥ १८ ॥ तहाँ पर जो हरके रूपसे अंकित कंकणको हरको चढ़ाता है वह हरका वल्लभ होता है ॥ १९ ॥ और उनके वैसे रूपको देख सब पापोंसे मुक्त होजाता है और जो बदरीवनमें जाता है वह भी मुक्त होजाता है ॥ २० ॥ नर नारायणके रूपका और केदारेश्वर शंभुका दर्शन कर मनुष्य मुक्तिका भागी होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ जो केदारनाथके भक्त उनके मार्गमें ही मर जाते हैं, वें भी मुक्त होजाते हैं, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ २२ ॥ तहाँ पहुँच प्रेमपूर्वक केदारनाथका पूजन कर और तहाँका जल पी प्राणी पुनर्जन्म नहीं

यणेश्वरः । केदारेशः प्रपूज्यश्च सर्वैर्जीवैस्सुभक्तितः ॥ २४ ॥ अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः । सर्वकामप्रदश्शम्भुः केदाराख्यो न संशयः ॥२५॥ एतद्वस्समाख्यातं यत्पृष्टमृषिसत्तमाः । श्रुत्वा पापं हरेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां केदारेश्वरज्योतिर्लिङ्ग-माहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सूत उवाच । अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भैमशंकरम् । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥ १ ॥ कामरूपाभिधे देशे शंकरो लोककाम्यया । अवतीर्णः स्वयं साक्षात्कल्याणसुखभाजनम् ॥२॥ यदर्थमवतीर्णोऽसौ शंकरो लोकशंकरः । शृणुतादरतस्तच्च कथयामि मुनीश्वराः ॥३॥ भीमो नाम महावीर्यो राक्षसोऽभूत्पुरा द्विजाः । दुःखदस्सर्वभूतानां धर्मध्वंसकरस्सदा ॥ ४ ॥ कुम्भकर्णात्समुत्पन्नः कर्कट्यां सुमहाबलः । सह्ये च पर्वते सोऽपि मात्रा वासं चकार ह ॥ ५ ॥ कुम्भकर्णे च रामेण हते लोकभयंकरे । राक्षसी पुत्रसंयुक्ता सह्येऽतिष्ठत्स्वयं तदा६ स बाल एकदा भीमः कर्कटीं मातरं द्विजाः । पप्रच्छ च खलो लोकदुःखदो भीमविक्रमः ॥७॥ भीम उवाच । मातर्मे कः पिता कुत्र कथं वैकाकिनी स्थिता । ज्ञातु-

---

पाता ॥ २३ ॥ हे विप्रों ! इस भरतखण्डमें सब जीवोंको नरनारायणेश्वरकी और केदारनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि--शिव सबके स्वामी होने पर भी इस खण्डके विशेषरूपसे स्वामी हैं, यह केदारनाथ शंभु सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले हैं ॥२५॥ हे ऋषिसत्तमों ! आपने जो बात बूझी थी वह कहदी, इसको सुननेसे सब पाप दूर होजाते हैं, इसमें विचार करनेको कोई बात नहीं है ॥ २६ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त १९

सूतजीने कहा, कि–अब मैं भीमशंकर महादेवके माहात्म्यको कहता हूँ, इसके श्रवणमात्रसे ही मनुष्यको सकल अभीष्ट सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥१॥ कामरूप नामक देशमें लोगोंको सुख देनेकी इच्छासे कल्याण और सुखके पात्र स्वयं शंकरने अवतार लिया था ॥ २ ॥ हे मुनीश्वरों ! संसारका कल्याण करने वाले शङ्करने जिस लिये अवतार धारण किया था उसको मैं कहता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनें ॥ ३ ॥ हे द्विजों ! पहिले भीम नामका एक महावीर्यवान् राक्षस हुआ है वह सब प्राणियोंको दुःख देता था और सदा धर्मका नाश करता रहता था ॥४॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णसे कर्कटी में उत्पन्न हुआ था और सह्य पर्वत पर अपनी माताके साथ निवास करता था ॥ ५ ॥ जब रामने संसारको भय देने वाले कुम्भकर्णको मार डाला, तब वह राक्षसी अपने पुत्रको लेकर सह्य पर्वत पर रहने लगी ॥ ६ ॥ हे द्विजों ! एक समय उस संसारको दुःख देने वाले भयंकर पराक्रमी दुष्ट बालक भीमने

मिच्छामि तत्सर्वं यथार्थं त्वं वदाधुना ॥ ८ ॥ सूत उवाच । एवं पृष्टा तदा तेन पुत्रेण राक्षसी च सा । उवाच पुत्रं सा दुष्टा श्रूयतां कथयाम्यहम् ॥९॥ कर्कट्युवाच । पिता ते कुम्भकर्णश्च रावणानुज एव च । रामेण मारितस्सोऽयं भ्रात्रा सह महाबलः ॥ १० ॥ अत्रागतः कदाचिद्वै कुम्भकर्णस्स राक्षसः । मद्भोगं कृतवांस्तात प्रसह्य बलवान्पुरा ॥ ११ ॥ लंकां स गतवान् मां च त्यक्त्वात्रैव महाबलः । मया न दृष्टा सा लंका ह्यत्रैव निवसाम्यहम् ॥ १२ ॥ पिता मे कर्कटो नाम माता मे पुष्कसी मता । भर्ता मम विराधो हि रामेण निहतः पुरा ॥१३॥ पित्रोः पार्श्वे स्थिता चाहं निहते स्वामिनि प्रिये । पितरौ मे मृतौ चात्र ऋषिणा भस्मसात्कृतौ ॥ १४ ॥ भक्षणार्थं गतौ तत्र क्रुद्धेन सुमहात्मना । सुतीक्ष्णेन सुतपसाऽगस्त्यशिष्येण वै तदा ॥ १५ ॥ साऽहमेकाकिनी जाता दुःखिता पर्वते पुरा । निवसामि स्म दुःखार्ता निरालंबा निराश्रया ॥१६॥ एतस्मिन्समये ह्यत्र राक्षसो रावणानुजः । आगत्य कृतवान् संगं मां विहाय गतो हि सः ॥ १७ ॥ ततस्त्वं च समुत्पन्नो महाबलपराक्रमः । अवलंब्य पुनस्त्वां च कालक्षेपं करोम्यहम् ॥१८॥

अपनी माता कर्कटीसे बूझा ॥७॥ भीमने कहा, कि—हे मातः ! मेरे पिता कौन हैं और कहाँ हैं ? और तुम अकेली कैसे रहती हो ? इन सब बातोंको मैं यथार्थरीतिसे जानना चाहता हूँ, तुम कहो ॥ ८ ॥ सूतजीने कहा, कि—जब पुत्रने राक्षसीसे इस प्रकार बूझा, तब उस दुष्टा राक्षसीने पुत्रसे जो बात कही थी उसको मैं कहता हूँ, सुनिये ।९। कर्कटीने कहा, कि-तुम्हारे पिताका नाम कुंभकर्ण था और वह रावणके छोटे भाई थे, उन महाबलीको और उनके भाईको रामने मार डाला था ॥ १० ॥ एक समय वह कुम्भकर्ण राक्षस यहाँ आनिकले थे, वह बली थे उन्होंने मुझसे बलात्कार किया था ११ वह महाबली मुझे यहाँ ही छोड़ कर लंकाको चले गए, मैंने लंका नहीं देखी है, मैं तो यहाँ ही रहती हूँ ॥ १२ ॥ मेरे पिताका नाम कर्कट और माताका नाम पुष्कसी है, मेरे पति विराधको रामने पहिले ही मार डाला था ॥१३॥ प्रिय पतिके मारे जाने पर मैं अपने माता पिताके पास रहती थी एक ऋषिने मेरे माता पिताको भस्म कर दिया अतः वह मर गए ॥१४॥ वे अगस्त्यके शिष्य तपस्वी महात्मा सुतीक्ष्णका भक्षण करनेको गए थे, अतः उन्होंने क्रोधमें भर कर भस्म कर दिया था ॥ १५ ॥ तब मैं इस पर्वतपर निरालम्ब निराश्रय हो दुःखपूर्वक अकेली रहने लगी ॥ १६ ॥ इसी बीचमें रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णने यहाँ आकर मेरे साथ संग किया और मुझे छोड़ कर चले गए ॥ १७ ॥ तदनन्तर महाबली पराक्रमी तू उत्पन्न हुआ है अतः अब मैं तेरा सहारा लेकर समय बिता रही हूँ ॥१८॥ सूतजीने कहा, कि-भयंकर

सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्या भीमो भीमपराक्रमः । क्रुद्धश्च चिंतयामास किं करोमि हरिं प्रति ॥१९॥ पिताननु हतो मे हि तथा मातामहा अपि । विराधश्च हतोऽनेन दुःखं बहुतरं कृतम् ॥ २० ॥ तत्पुत्रोऽहं भवेयं चेद्धरिं तं पीडयाम्यहम् । इति कृत्वा मतिं भीमस्तपस्तप्तुं महद्ययौ ॥२१॥ ब्रह्माणं च समुद्दिश्य वर्षाणां च सहस्रकम् । मनसा ध्यानमाश्रित्य तपश्चक्रे महत्तदा ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादस्सूर्य्ये दृष्टिं दधत्पुरा । संस्थितस्स बभूवाथ भीमो राक्षसपुत्रकः२३ शिरसस्तस्य संजातं तेजः परमदारुणम् । तेन दग्धास्तदा देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२४॥ प्रणम्य वेधसं भक्त्या तुष्टुवुर्विविधैस्स्तवैः । दुःखं निवेदयांचक्रुर्ब्रह्मणे ते सवासवाः ॥ २५ ॥ देवा ऊचुः । ब्रह्मन्वै राक्षसस्तेजो लोकान्पीडितुमुद्यतम् । यत्प्रार्थ्यते च दुष्टेन तत्त्वं देहि वरं विधे ॥ २६ ॥ नोचेदद्य वयं दग्धास्तीव्रतत्तेजसा पुनः । यास्यामस्संक्षयं सर्वे तस्मात्तं देहि प्रार्थितम् ॥ २७ ॥ सूत उवाच । इति तेषां वचश्श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । जगाम च वरं दातुं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२८॥ ब्रह्मोवाच ।प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते। इति श्रुत्वा विधेर्वाक्यमब्रवीद्राक्षसो हि सः ॥२९॥ भीम उवाच । यदि प्रसन्नो

पराक्रम करने वाला भीम अपनी माताके वचन सुन क्रोधमें भर विचार करने लगा, कि-मैं हरिके साथ कैसा व्यवहार करूँ ॥ १९ ॥ इसने मेरे पिता मातामहको मार डाला और विराधको भी मार कर इसने हमें बड़ा दुःख दिया है २० यदि मैं इनका पुत्र हूँ, तो मैं विष्णुको पीड़ा पहुँचाऊँगा, भीम यह विचार कर महातप करनेको चल दिया ॥ २१ ॥ उसने मनमें ब्रह्माजीका ध्यान धर एक हजार वर्षतक महातप किया था ॥ २२ ॥ वह राक्षसका पुत्र भीम ऊपरको भुजा उठा एक पैरसे खड़ा हो सूर्यमें दृष्टि लगा कर खड़ा होगया ॥२३॥ जब उसके शिरसे परम दारुण तेज निकलने लगा उससे सन्तप्त हो देवता ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे ॥ २४ ॥ तब इन्द्रसहित देवताओंने भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीको प्रणाम कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति कर अपना दुःख निवेदन किया ॥ २५ ॥ देवताओंने कहा, कि-हे ब्रह्मन्! राक्षसका तेज संसारको पीड़ित करनेके लिये उद्यत है, अतः हे विधे! वह दुष्ट जो कुछ चाहता है उसे देदीजिये ॥ २६ ॥ नहीं तो हम ही आज उसके तीव्र तेजसे सन्तप्त होकर नष्ट होजावेंगे अतः उसे मनचाहा वर देदीजिये ॥ २७ ॥ सूतजीने कहा, कि--लोकपितामह ब्रह्मा उनके इस वचन को सुन उसको वर देनेके लिये गये और यह बात कहने लगे ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, जो तेरे मनमें हो वह वर माँग ले, ब्रह्माजीकी उस बातको सुन राक्षसने कहा ॥ २९ ॥ भीमने कहा, कि-

देवेश यदि देयो वरस्त्वया। अतुलं च बलं मेऽद्य देहि त्वं कमलासन ॥ ३० ॥ सूत उवाच। इत्युक्त्वा तु नमश्चक्रे ब्रह्मणे स हि राक्षसः। ब्रह्मा चापि तदा तस्मै वरं दत्त्वा गृहं ययौ ॥३१॥ राक्षसो गृहमागत्य ब्रह्मातोऽतिबलस्तदा। मातरं प्रणिपत्याशु स भीमः प्राह गर्ववान् ॥ ३२ ॥ भीम उवाच। पश्य मातर्बलं मेऽद्य करोमि प्रलयं महत्। देवानां शक्रमुख्यानां हरेर्वै तत्सहायिनः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच। इत्युक्त्वा प्रथमं भीमो जिग्ये देवान्सवासवान्। स्थानान्निस्सारयामास स्वात्स्वात्तान्भीमविक्रमः ॥३४॥ ततो जिग्ये हरिं युद्धे प्रार्थितं निर्जरैरपि। ततो जेतुं रसां दैत्यः प्रारम्भं कृतवान्मुदा ॥ ३५ ॥ पुरा सुदक्षिणं तत्र कामरूपेश्वरं प्रभुम्। जेतुं गतस्ततस्तेन युद्धमासीद्भयंकरम् ॥ ३६ ॥ भीमोऽथ तं महाराजं प्रभावाद् ब्रह्मणोऽसुरः। जिग्ये वरप्रभावेण महावीरं शिवाश्रयम् ॥ ३७ ॥ स हि जित्वा ततस्तं च कामरूपेश्वरं प्रभुम्। बबन्ध ताडयामास भीमो भीमपराक्रमः गृहीतं तस्य सर्वस्वं राज्यं सोपस्करं द्विजाः। तेन भीमेन दुष्टेन शिवदासस्य भूपतेः ॥ ३८ ॥ राजा चापि सुधर्मिष्ठः प्रियधर्मो हरप्रियः। गृहीतो निगडैस्तेन

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि वर देना चाहते हैं, तो हे कमलासन! मुझे आज अतुलित बल दीजिये ॥ ३० ॥ सूतजीने कहा, कि—उस राक्षसने इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया, तब ब्रह्माजी भी उसको वर देकर अपने घरको चले गए ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजीसे परम-बल पा वह राक्षस घर पहुँचा और गर्वपूर्वक माताको प्रणाम कर कहने लगा ॥ ३२ ॥ भीमने कहा, कि—हे मातः! अब तुम मेरे बलको देखो, अब महाप्रलय मचा दूँगा इन्द्र आदि मुख्य मुख्य देवताओंका और इनकी सहायता करने वाले हरिका (मैं मद झाड़ूँगा) ॥ ३३ ॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कह कर भीमने पहिले इन्द्र आदि देवताओंको जीता, उस भयंकर पराक्रमीने उनको अपने २ स्थानसे निकाल दिया ॥ ३४ ॥ तब देवता भी जिनकी प्रार्थना करते हैं उन विष्णुको युद्धमें जीता फिर उस दैत्यने आनन्दमें भर कर पृथिवीको जीतना आरंभ किया ॥ ३५ ॥ पहिले वह कामरूपदेशके राजा सुदक्षिणको जीतनेके लिये पहुँचा, तब उससे भयंकर युद्ध हुआ ३६ उसमें भीमासुरने ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे शिवके आश्रय पर रहने वाले महावीर महाराजको जीत लिया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भयंकर-पराक्रमी भीमने कामरूपके राजाको जीत कर बाँधा और मारा ॥ ३८ ॥ हे द्विजों! फिर उस दुष्ट भीमने शिवके दास राजा सुदक्षिणका सामग्रीसहित सब राज्य छीन लिया ॥ ३९ ॥ और उसने धर्मको प्रिय समझने वाले शिवके प्रिय धर्मात्मा राजाको बेड़ियोंसे जकड़ कर एकान्तमें डाल दिया ॥ ४० ॥ तब उसने प्रिय

लोकान्ते स्थापितश्च सः ॥४०॥ तत्र तेन तदा कृत्वा पार्थिवीं मूर्तिमुत्तमाम् । भजनं च शिवस्यैव प्रारब्धं प्रियकाम्यया ॥ ४१ ॥ गंगायाः स्तवनं तेन बहुधा च तदा कृतम् । मानसं स्नानकर्मादि कृत्वा शङ्करपूजनम् ॥४२॥ पार्थिवेन विधानेन चकार नृपसत्तमः । तद्ध्यानं च यथा स्याद्वै कृत्वा च विधिपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्मुद्रासनपुरस्सरम् । कृत्वा हि सकलं तच्च स भेजे शंकरं मुदा ४४ पञ्चाक्षरमयीं विद्यां जजाप प्रणवान्विताम् । नान्यत्कार्यं स वै कर्तुं लब्धवानन्तरं तदा ॥ ४५ ॥ तत्पत्नी च तदा साध्वी दक्षिणा नाम विश्रुता । विधानं पार्थिवं प्रीत्या चकार नृपवल्लभा ॥ ४६ ॥ दम्पती त्वेकभावेन शंकरं भक्तशंकरम् । भेजाते तत्र तौ नित्यं शिवाराधनतत्परौ ॥४७॥ राक्षसो यज्ञकर्मादि वरदर्पविमोहितः । लोपयामास तत्सर्वं मह्यं वै दीयतामिति ॥ ४८ ॥ बहुसैन्यसमायुक्तो राक्षसानां दुरात्मनाम् । चकार वसुधां सर्वां स्ववशे चर्षिसत्तमाः ॥ ४९ ॥ वेदधर्मं शास्त्रधर्मं स्मृतिधर्मं पुराणजम् । लोपयित्वा च तत्सर्वं बुभुजे स्वयमूर्जितः॥ देवाश्च पीडितास्तेन सशक्रा ऋषयस्तथा । अत्यंतं दुःखमापन्ना लोकान्निस्सा-

---

होनेकी इच्छासे तहाँ ही शिवकी उत्तम पार्थिव मूर्ति बना शिवका भजन करना आरंभ कर दिया ॥ ४१ ॥ उसने गंगाजीकी भी अनेक प्रकारसे स्तुति की और मानसिक स्नान आदि कर्म कर शंकरका पूजन किया ॥४२॥ उसने पार्थिव-विधानसे शिवपूजन किया, वह विधिपूर्वक मुद्रा आसन प्रणाम आदि कर शिवका ध्यान करने लगा, इसप्रकार वह सब प्रकारसे आनन्दपूर्वक शंकरका भजन करने लगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ और प्रणवसे युक्त पञ्चाक्षरमयी विद्या (ॐ नमः शिवाय) का जप करने लगा, इस बीचमें उसको दूसरा कार्य करनेका अवकाश ही नहीं मिलता था ॥ ४५ ॥ उसकी साध्वी पत्नी दक्षिणा नामसे प्रसिद्ध थी वह नृपकी रानी भी प्रीतिपूर्वक पार्थिवविधानसे शिव-पूजन करती थी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वे दोनों दम्पती शिवके आराधनमें परायण हो भक्तोंका कल्याण करने वाले शंकरकी एकसे भावसे नित्य पूजा करने लगे ।४७। इधर राक्षस वरके दर्पसे मोहमें पड़ यज्ञकर्म आदि सबका लोप करने लगा और कहने लगा, सब वस्तुएँ मुझे दो ४८ हे ऋषिसत्तमो ! उसने दुरात्मा राक्षसोंकी बहुत सी सेनाको साथमें ले सारी पृथिवीको अपने वशमें कर लिया ॥४९॥ वह वेद शास्त्र स्मृति और पुराणों में वर्णित धर्मका लोप कर बलवान् पड़ सबका स्वयं ही उपभोग करने लगा ॥ ५० ॥ हे द्विजों ! उसने इन्द्रसहित देवता और ऋषियोंको पीड़ित कर उनको उनके लोकोंसे निकाल कर बहुत ही पीड़ा दी ॥ ५१ ॥ तब वे सब इन्द्रसहित देवता और ऋषि बड़े विकल हो ब्रह्मा और विष्णुको साथमें

रिता द्विजाः ॥५१॥ ते ततो विकलास्सर्वे सवासवसुरर्षयः । ब्रह्मविष्णू पुरोधाय शंकरं शरणं ययुः ॥ ५२ ॥ स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकैश्च शंकरं लोकशंकरम् । प्रसन्नं कृतवंतस्ते महाकोश्यास्तटे शुभे ॥ ५३ ॥ कृत्वा च पार्थिवीं मूर्तिं पूजयित्वा विधानतः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्नमस्कारादिभिः क्रमात् ॥ ५४ ॥ एवं स्तुतस्तदा शंभुर्देवानां स्तवनादिभिः । सुप्रसन्नतरो भूत्वा तान्सुरानिदमब्रवीत् ॥५५॥ शिव उवाच । हे हरे हे विधे देवा ऋषयश्चाखिला अहम् । प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत किं कार्यं करवाणि वः ॥५६॥ सूत उवाच । इत्युक्ते च तदा तेन शिवेन वचने द्विजाः । सुप्रणम्य करौ बद्ध्वा देवा ऊचुश्शिवं तदा ॥५७॥ देवा ऊचुः । सर्वं जानासि देवेश सर्वेषां मनसि स्थितम् । अन्तर्यामी च सर्वस्य नाज्ञातं विद्यते तव ॥५८॥ तथापि श्रूयतां नाथ स्वदुःखं ब्रूमहे वयम् । त्वदाज्ञया महादेव कृपादृष्ट्या विलोकय ॥५९॥ राक्षसः कर्कटीपुत्रः कुंभकर्णोद्भवो बली । पीडयत्यनिशं देवान्ब्रह्मदत्तवरोर्जितः ॥६०॥ तमिमं जहि भीमाख्यं राक्षसं दुःखदायकम् । कृपां कुरु महेशान विलंबं न कुरु प्रभो ॥ ६१ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्तु सुरैस्सर्वैश्शंभुर्वै भक्तवत्सलः । वधं तस्य करिष्यामीत्युक्त्वा देवांस्ततोऽब्रवीत् ।६२। शंभुरुवाच ।

ले शंकरकी शरणमें पहुँचे ॥ ५२ ॥ और उन्होंने महाकोशीके शुभ तट पर संसारका कल्याण करने वाले शङ्करको अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति कर प्रसन्न किया ॥ ५३ ॥ फिर वे विधानके अनुसार पार्थिवी मूर्ति बना अनेक प्रकार के स्तोत्र नमस्कार आदिसे पूजन कर स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ देवताओंके स्तोत्र आदिसे इस प्रकारसे स्तुति पाकर शंकर प्रसन्न हो देवताओंसे यह बात कहने लगे ॥ ५५ ॥ शिवने कहा, कि—हे हरे ! हे विधे ! हे सम्पूर्ण देवताओं ! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं आपका क्या कार्य करूँ ॥५६॥ सूतजी ने कहा, कि—हे द्विजों ! जब शिवजीने यह बात कही तब देवता शिवको हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगे ॥ ५७ ॥ देवताओंने कहा, कि—हे देवेश ! प्रत्येकके मनमें जो बातें होती हैं उन सबको आप जानते हैं, क्योंकि—आप सबके अन्तर्यामी हैं अतः कोई बात आपसे छिपी हुई नहीं है ॥ ५८ ॥ तथापि हे नाथ ! आपकी आज्ञा पाकर हम अपना दुःख वर्णन करते हैं, सुनिये ! हे महादेव ! हमें कृपादृष्टिसे देखिये ॥ ५९ ॥ कर्कटीका पुत्र जो कुम्भकर्णसे उत्पन्न हुआ है, वह बलवान् राक्षस ब्रह्माजीके वर देनेसे बलवान् हो देवताओंको सदा पीड़ित करता है ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! हे महेशान ! आप इस भीम नामक दुःखदायक राक्षसका संहार करिये, कृपा करिये, विलम्ब न करिये ॥ ६१ ॥ सूतजीने कहा, कि—सब देवताओंके इस प्रकार कहने पर भक्तवत्सल शम्भुने कहा, कि—मैं उसका वध करूँगा, फिर वह

कामरूपेश्वरो राजा मदीयो भक्त उत्तमः। तस्मै ब्रूतेति वै देवाः कार्यं शीघ्रं भविष्यति ॥ ६३ ॥ सुदक्षिण महाराज कामरूपेश्वर प्रभो। मद्भक्तस्त्वं विशेषेण कुरु मद्भजनं रतेः ॥ ६४ ॥ दैत्यं भीमाह्वयं दुष्टं ब्रह्मप्राप्तवरोर्जितम्। हनिष्यामि न संदेहस्त्वत्तिरस्कारकारिणम् ॥ ६५ ॥ सूत उवाच। अथ ते निर्जरास्सर्वे तत्र गत्वा मुदान्विताः। तस्मै महात्मने गत्वोचुर्यदुक्तं शम्भुना च तत् ॥ ६६ ॥ तमित्युक्त्वा च वै देवा आनन्दं परमं गताः। महर्षयश्च ते सर्वे ययुश्शीघ्रं निजाश्रमान्

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्ये भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सूत उवाच। शिवोऽपि च गणैस्सार्द्धं जगाम हितकाम्यया। स्वभक्तनिकटं गुप्तस्तस्थौ रक्षार्थमादरात् ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र कामरूपेश्वरेण च। अत्यंतं ध्यानमारब्धं पार्थिवस्य पुरस्तदा ॥ २ ॥ केनचित्तत्र गत्वा च राक्षसाय निवेदितम्। राजा किंचित्करोत्येवं त्वदर्थं ह्यभिचारिकम् ॥३॥ सूत उवाच। राक्षसस्स च तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्तद्धननेच्छया। गृहीत्वा करवालं च जगाम नृपतिं प्रति ॥४॥ तद् दृष्ट्वा राक्षसस्तत्र पार्थिवादि स्थितं च यत्। तदर्थं तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा किंचित्करोत्यसौ ॥ ५ ॥ अत एनं बलादद्य हन्मि सोपस्करं नृपम्। विचार्येति महा-

---

देवताओंसे कहने लगे ६२ शंभुने कहा, कि-कामरूप देशका राजा मेरा श्रेष्ठ भक्त है, उससे आप कहें तो कार्य शीघ्र होगा ६३ हे कामरूपेश्वर महाराज प्रभो सुदक्षिण! तुम मेरे विशेष भक्त हो अतः तुम प्रेमपूर्वक मेरा भजन करो ६४ ब्रह्माजीसे वर पाकर बलवान् हुआ भीम नामक दुष्ट दैत्य, जब तुम्हारा तिरस्कार करेगा, तो मैं उसको अवश्य मार डालूँगा ॥ ६५ ॥ सूतजीने कहा कि तदनन्तर सब देवता आनन्दमें भर वहाँ पहुँचे और उस महात्मासे शंभुने जो बात कही थी वह कही ॥ ६६ ॥ देवता और ऋषि उस राजासे शंभुका सम्वाद कह परम आनन्दित हो अपने २ आश्रमोंको चले गए ॥ ६७ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ * * * *

सूतजीने कहा, कि तब शिव भी संसारका हित करनेकी इच्छासे अपने गणोंको साथ लेकर चले और अपने भक्तके निकट उसकी रक्षा करनेके लिये गुप्तरूपसे स्थित होगए ॥ १ ॥ इसी समय कामरूपदेशके राजाने पार्थिव शिव-लिंगके सामने अत्यन्त ध्यान करना आरंभ कर दिया ॥ २ ॥ इधर किसीने जाकर राक्षससे कहा, कि-राजा तुम्हारे लिये कोई अभिचार-कर्म कर रहा है ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा, कि-इस बातको सुन राक्षस कुपित हुआ और मारनेकी इच्छासे तलवार ले राजाके समीप चला ॥ ४ ॥ राक्षसने वहाँ जो पार्थिव शिवलिङ्ग आदि विराजमान था उसको देखकर अनुमान किया, कि-

क्रुद्धो राक्षसः प्राह तं नृपम् ॥ ६ ॥ भीम उवाच । रेरे पार्थिव दुष्टात्मन् क्रियते किं त्वयाधुना । सत्यं वद न हन्म्यां त्वामन्यथा हन्मि निश्चितम् ॥७॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य कामरूपेश्वरश्च सः । मनसीति विचिन्ताशु शिवविश्वास-पूरितः ॥ ८ ॥ भविष्यं यद्भवत्येव नास्ति तस्य निवर्तकः । प्रारब्धमर्थमेवात्र प्रारब्धस्य शिवः स्मृतः ॥ ९ ॥ कृपालुश्शंकरश्चात्र पार्थिवे वर्तते ध्रुवम् । मदर्थं न करोतीह कुतः कोऽयं च राक्षसः ॥१०॥ स्वानुरूपां प्रतिज्ञां स सत्यां चैव करिष्यति । सत्यप्रतिज्ञो भगवाञ्छिवश्चेति श्रुतौ श्रुतः ॥ ११ ॥ मम भक्तं यदा कश्चित्पीडयत्यतिदारुणः । तदाहं तस्य रक्षार्थं दुष्टं हन्मि न संशयः ॥१२॥ एवं धैर्यं समालम्ब्य ध्यात्वा देवं च शंकरम् । प्रार्थयामास सद्भक्त्या मनसैव रसेश्वरः ॥ त्वदीयोऽस्मि महाराज यथेच्छसि तथा कुरु । सत्यं च वचनं ह्यत्र ब्रवीमि कुरु मे हितम् ॥ १४ ॥ एवं मनसि स ध्यात्वा सत्यपाशेन यन्त्रितः । प्राह सत्यं वचो राजा राक्षसं चावमानयन् ॥ १५ ॥ नृप उवाच । भजामि शंकरं देवं स्वभक्तपरिपालकम् । चराचराणां सर्वेषामीश्वरं निर्विकारकम् ॥ १६ ॥ सूत उवाच । इति

यह कुछ अवश्य करता है ॥ ५ ॥ अतः इस राजाको इसकी सामग्री सहित आज बलपूर्वक नष्ट ही कर दूँ, यह विचार कर महाक्रोधमें भरा हुआ वह राक्षस उस राजासे कहने लगा ॥६॥ भीमने कहा, कि अरे दुष्टात्मन् राजन् ! तू इस समय क्या कर रहा है, सत्य कह, तो मैं तुझे नहीं मारूँगा, अन्यथा मैं तुझे अवश्य मार डालूँगा ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा, कि -राक्षसकी इस बात को सुन शिवके ऊपर विश्वास रखने वाला वह कामरूपका राजा मनमें शीघ्रता से विचारने लगा, कि--॥ ८ ॥ जो होने वाली बात है, वह तो अवश्य होगी, उसको हटाने वाला कोई नहीं है, यह सब प्रारब्धके अधीन बातें हैं और शिव ही प्रारब्धस्वरूप माने जाते हैं ॥ ९ ॥ कृपालु शंकर इस पार्थिव लिंगमें अवश्य ही वर्तमान हैं जो वह मेरे लिये क्या कुछ नहीं करेंगे, तो फिर इस राक्षसकी क्या बात है ? ॥ १० ॥ वह अपनी योग्य प्रतिज्ञाको सत्य ही करेंगे, क्योंकि-- श्रुतिमें सुना है, कि--भगवान् शिव सत्य--प्रतिज्ञ हैं ॥ ११ ॥ और जो कोई अतिदारुण जीव मेरे भक्तको पीड़ा देता है, तो मैं उसकी रक्षाके लिये उस दुष्टको अवश्य ही मार डालता हूँ ॥ १२ ॥ इस प्रकार धैर्य धारण कर वह राजा मनमें भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरका ध्यान धर प्रार्थना करने लगा १३ कि—हे महाराज ! मैं आपका हूँ, आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करिये, मैं कहता हूँ अपने वचनको सत्य कर मेरा हित करिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार मन में ध्यान धर सत्यपाशमें बँधा हुआ वह राजा राक्षसका अपमान करता हुआ सत्य वचन कहने लगा ॥ १५ ॥ राजाने कहा, कि—जो अपने भक्तोंकी रक्षा

तस्य वचः श्रुत्वा कामरूपेश्वरस्य सः । क्रोधेन प्रचलद्गात्रो भीमो वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ भीम उवाच । शंकरस्ते मया ज्ञातः किं करिष्यति वै मम । यो मे पितृव्यकेनैव स्थापितः किंकरो यथा ॥ १८ ॥ तद्बलं हि समाश्रित्य विजेतुं त्वं समीहसे । तर्हि त्वया जितं सर्वं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १९ ॥ यावन्मया न दृष्टो हि शंकरस्त्वत्प्रपालकः । तावत्त्वं स्वामिनं मत्वा सेवसे नान्यथा क्वचित् ॥ मया दृष्टे च तत्सर्वं स्फुटं स्यात्सर्वथा नृप । तस्मात्त्वं वै शिवस्येदं रूपं दूरतरं कुरु ॥२१॥ अन्यथा हि भयं तेऽद्य भविष्यति न संशयः । स्वामिनस्ते करं तीक्ष्णं दास्येऽहं भीमविक्रमः ॥ २२ ॥ सूत उवाच । इति तद्वचनं श्रुत्वा कामरूपेश्वरो नृपः । दृढं शंकरविश्वासो द्रुतं वाक्यमुवाच तम् ॥ २३ ॥ राजोवाच । अहं च पामरो दुष्टो न मोक्ष्ये शंकरं पुनः । सर्वोत्कृष्टश्च मे स्वामी न मां मुञ्चति कर्हिचित् २४ सूत उवाच । एवं वचस्तदा श्रुत्वा तस्य राज्ञश्शिवात्मनः । तं प्रहस्य द्रुतं भीमो भूपतिं राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ भीम उवाच । मत्तोभिन्नियते नित्यं स किं जानाति स्वाकृतिम् । योगिनां का च निष्ठा वै भक्तानां प्रतिपालने ॥२६॥

करते हैं, चर अचर सबके स्वामी हैं, विकाररहित हैं उन भगवान् शंकरका मैं पूजन करता हूँ ॥ १६ ॥ सूतजीने कहा, कि--कामरूपके राजाके इस वचनको सुन भीमके अंग क्रोधसे थरथराने लगे और उसने कहा ॥१७॥ भीम बोला, कि -मैं तेरे शंकरको जान गया, वह मेरा क्या कर सकता है, उसको तो मेरे पिताके भाईने नौकरकी तरह रख छोड़ा था ॥ १८ ॥ उसके बलका आश्रय लेकर तू जीतना चाहता है, तो तूने अवश्य ही सब कुछ जीत लिया ॥१९॥ जब तक मैंने तेरे स्वामी शंकरको नहीं देखा है, तभी तक तू उसको स्वामी मानकर उसकी सेवा कर रहा है, अन्यथा नहीं करेगा ॥ २० ॥ हे नृप ! मैं उसको देख पाऊँ तो यह सब बात साफ होजाय, इसलिये तू इस शिवके रूपको अलग उठा कर रख ॥ २१ ॥ अन्यथा तुझे भय उठाना पड़ेगा, मेरा पराक्रम भयंकर है, मैं तेरे स्वामी पर कड़े थप्पड़का प्रहार करूँगा ॥२२॥ सूतजीने कहा, कि- शङ्करमें दृढ़ विश्वास रखने वाला कामरूपेश्वर उसकी इस बात को सुन झट उससे कहने लगा ॥ २३ ॥ राजाने कहा, कि--मैं पामर और दुष्ट हूँ (क्योंकि---तेरी बातें सुन रहा हूँ) परन्तु मैं शङ्करको नहीं छोड़ूँगा, और सर्वश्रेष्ठ मेरे स्वामी भी मुझे कभी नहीं छोड़ेंगे ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा, कि--उस शिवपरायण राजाके वचनको सुन राक्षस भीम शीघ्र ही हँसा और भूपतिसे कहने लगा ॥२५॥ भीमने कहा, कि -वह तो नित्य मुझसे भी डरता है, उसे अपनी आकृतिका क्या पता होगा, और योगियोंमें अपने भक्तोंका पालन करनेकी लगन कहाँसे आई ॥ २६ ॥ यह विचार कर तू दूर हट जा,

इति कृत्वा मतिं त्वं च दूरतो भव सर्वथा । अहं च तव स स्वामी युद्धं वै करवावहै ॥२७॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्स नृपश्रेष्ठश्शम्भुभक्तो दृढव्रतः । प्रत्युवाचाभयो भीमं दुःखदं जगतां सदा ॥ २८ ॥ राजोवाच । शृणु राक्षस दुष्टात्मन्मया कर्तुं न शक्यते । त्वया विक्रियते तर्हि कुतस्त्वं शक्तिमानसि ॥२९॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्सैन्यमादाय राजानं परिभर्त्स्य तम् । करालं करवालं च पार्थिवे प्राक्षिपत्तदा ॥ ३० ॥ पश्य त्वं स्वामिनोऽद्यैव बलं भक्तसुखावहम् । इत्युवाच विहस्यैव राक्षसैस्स महाबलः ॥ ३१ ॥ करवालः पार्थिवं च यावत्स्पृशति नो द्विजाः। तावच्च पार्थिवात्तस्मादाविरासीत्स्वयं हरः ॥३२॥ पश्य भीमेश्वरोऽहं च रक्षार्थं प्रकटोऽभवम् । मम पूर्वव्रतं ह्येतद्रक्ष्यो भक्तो मया सदा ॥ ३३ ॥ एतस्मात्पश्य मे शीघ्रं बलं भक्तसुखावहम् । इत्युक्त्वा स पिनाकेन करवालो द्विधा कृतः ॥३४॥ पुनश्चैव त्रिशूलं स्वं चिक्षिपे तेन रक्षसा । तच्छूलं शतधा नीतमपि दुष्टस्य शम्भुना ॥ ३५ ॥ पुनश्शक्तिश्च निःक्षिप्ता तेन शम्भूपरि द्विजाः । शम्भुना सापि बाणैस्स्वैर्लक्षधा च कृता द्रुतम् ॥ ३६ ॥ पट्टिशश्च ततस्तेन निःक्षिप्तो हि शिवोपरि । शिवेन स त्रिशूलेन तिलशश्च कृतं क्षणात् ॥ ३७ ॥ ततश्शिवगणानां च

मैं और तेरा वह स्वामी अब युद्ध कर लें ।। २७ ।। सूतजीने कहा, कि- इस प्रकार कहने पर वह शम्भुका भक्त दृढव्रतधारी नृपश्रेष्ठ निर्भय हो जगत्को सदा दुःख देने वाले भीमको प्रत्युत्तर देने लगा ।। २८ ।। राजाने कहा, कि-- हे दुष्ट राक्षस ! मैं ऐसा नहीं कर सकता, यदि तू कुछ गड़बड़ी करना चाहता है, तो तुझमें शक्ति कहाँसे आवेगी ।। २९ ।। सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कहने पर उसके सैनिकोंने और उसने राजाको धमकाया और कराल तलवार पार्थिव लिंग पर फेंकी ।३०। और वह महाबली अपने राक्षसोंके सामने हँस कर कहने लगा, कि–आज ही तू अपने स्वामीके भक्तोंको सुख देने वाले बलको देख ।। ३१ ।। हे द्विजो ! तलवारने पार्थिव लिंगका स्पर्श कर भी न पाया था, कि—उस पार्थिव लिंगसे हर स्वयं प्रकट होगए ।। ३२ ।। "देख मैं भीमेश्वर हूँ और रक्षा करनेके लिये प्रकट हुआ हूँ, यह मेरा प्राचीन व्रत है, कि- भक्त की सदा रक्षा करनी चाहिये ।। ३३ ।। अब मेरे भक्तोंको सुख देने वाले बलको अब शीघ्र ही देख" शंभुने यह कह अपने पिनाकसे उस तलवारके दो टुकड़े कर डाले ।।३४।। फिर राक्षसने अपना त्रिशूल फैंका, परन्तु शंभुने उस दुष्टके शूल के सौ टुकड़े कर डाले ।।३५।। हे द्विजो ! फिर उसने शंभुके ऊपर शक्ति फैंकी, शंभुने अपने बाणोंसे शीघ्र ही उसके लाखों टुकड़े कर डाले ।।३६।। फिर उसने शिवके ऊपर पटा फेंका तब शिवने अपने त्रिशूलसे उसके तिल २ भरके टुकड़े कर डाले ।। ३७ ।। तदनन्तर शिवगणोंका और राक्षसोंका देखने वालोंको घोर

राक्षसानां परस्परम् । युद्धमासीत्तदा घोरं पश्यतां दुःखकावहम् ॥३८॥ ततश्च पृथिवी सर्वा व्याकुला चाभवत्क्षणात् । समुद्राश्च तदा सर्वे चुक्षुभुस्समहीधराः ॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे बभूवुर्विकला अति । ऊचुः परस्परं चेति व्यर्थं वै प्रार्थितश्शिवः ॥ ४० ॥ नारदश्च समागत्य शंकरं दुःखदाहकम् । प्रार्थयामास तत्रैव सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ४१ ॥ नारद उवाच । क्षम्यतां क्षम्यतां नाथ त्वया विभ्रमकारक । तृणे कश्च कुठारो वै हन्यतां शीघ्रमेव हि ॥४२॥ इति संप्रार्थितश्शंभुः सर्वान् रक्षोगणान्प्रभुः । हुङ्कारेणैव चास्त्रेण भस्मसात्कृतवांस्तदा ॥४३॥ सर्वे ते राक्षसा दग्धाः शंकरेण क्षणं मुने । बभूवुस्तत्र सर्वेषां देवानां पश्यतां द्रुतम् ।४४। दावानलगतो वह्निर्यथा च वनमादहेत् । तथा शिवेन क्रुद्धेन राक्षसानां बलं क्षणात् ॥४५॥ भीमस्यैव च किं भस्म न ज्ञातं केनचित्तदा । परिवारयुतो दग्धो नाम न श्रूयते क्वचित् ॥ ४६ ॥ ततश्शिवस्य कृपया शांतिं प्राप्ता मुनीश्वराः । देवास्सर्वे च शक्राद्यास्स्वास्थ्यं प्रापाखिलं जगत् ॥ ४७ ॥ क्रोधज्ज्वाला महेशस्य निस्ससार वनाद्वनम् । राक्षसानां च तद्भस्म सर्वं व्याप्तं वनेऽखिलम् ॥ ४८ ॥ ततश्चौषधयो जाता नानाकार्यकरास्तथा । रूपान्तरं ततो नृणां भवेद्वेषांतरं

दुःख पहुँचाने वाला युद्ध होने लगा ॥ ३८ ॥ उस समय क्षण भरमें सारी पृथिवी व्याकुल होउठी, पर्वत और समुद्र भी क्षुब्ध होगए ॥ ३९ ॥ सब देवता और ऋषि बडे विकल हो आपसमें कहने लगे, कि व्यर्थ ही शिवको प्रार्थना की ॥ ४० ॥ इसी समय नारद तहाँ पहुँचे और मस्तक झुका हाथ जोड़ दुःख का नाश करने वाले शंकरकी प्रार्थना करने लगे ॥४१॥ नारदजीने कहा कि हे हमें भ्रममें डालते हुए नाथ ! क्षमा करिये क्षमा करिये ! तृणके ऊपर कुल्हाड़ा क्या चलाना, शीघ्र ही इसका संहार करिये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करने पर प्रभु शंभुने सब राक्षसोंको हुङ्कार शस्त्रसे ही भस्म कर डाला ।४३। हे मुने ! सब देवताओंने अपने सामने क्षण भरमें ही शंकरके द्वारा सब राक्षसों को भस्म होते देखा ॥ ४४ ॥ जैसे दौं वनको जला डाले इसी प्रकार क्रोधमें भरे शिवने राक्षसोंके दलको क्षण भरमें भस्म कर डाला ॥ ४५ ॥ उस समय भीमकी भस्म कौनसी है, इस बातको कोई न पहिचान सका, वह अपने परिवारके साथ भस्म होगया उसका नाम भी कहीं नहीं सुनाई दिया ॥ ४६ ॥ इस प्रकार शिवकी कृपासे इन्द्र आदि सब देवता और मुनीश्वर शान्तिको प्राप्त हुए, सम्पूर्ण जगत्में स्वस्थता फैल गई ॥ ४७ ॥ महेश्वरकी क्रोधज्वाला एक वनसे दूसरे वनमेंको निकल गई और राक्षसोंकी भस्म सारे वनमें व्याप्त होगई ४८ उससे अनेक कार्योंको सिद्ध करने वालीं औषधियें उत्पन्न हुईं, उनसे मनुष्यों का रूपान्तर और वेषान्तर होजाता था ॥ ४९ ॥ और भूत प्रेत पिशाच आदि

तथा ॥ ४९ ॥ भूतप्रेतपिशाचादि दूरतश्च ततो व्रजेत् । तन्न कार्यं च यद्यैव ततो न भवति द्विजाः ॥ ५० ॥ तैर्देवैः प्रार्थितश्शम्भुर्मुनिभिश्च विशेषतः । स्थातव्यं स्वामिना ह्यत्र लोकानां सुखहेतवे ॥ ५१ ॥ अयं वै कुत्सितो देश अयोध्यालोकदुःखदः । भवन्तं च तदा दृष्ट्वा कल्याणं संभविष्यति ॥ ५२ ॥ भीमशंकरनामा त्वं भविता सर्वसाधकः । एतल्लिंगं सदा पूज्यं सर्वापद्विनिवारकम् ।५३। सूत उवाच । इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः । तत्रैवास्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सूत उवाच । अतः परं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः । विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्यां वस्तुमात्रकम् । चिदानन्दस्वरूपं च निर्विकारं सनातनम् ॥ २ ॥ तस्यैव कैवल्यरतेर्द्वितीयेच्छा ततोऽभवत् । स एव सगुणो जातश्शिव इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥ स एव हि द्विधा जातः पुंस्त्रीरूपप्रभेदतः । यः पुमान्स शिवः ख्यातः स्त्रीशक्तिस्सा हि कथ्यते ।४। चिदानन्दस्वरूपाभ्यां पुरुषावपि निर्मितौ ॥ ५ ॥ अदृष्टाभ्यां तदा ताभ्यां स्वभा-

---

दूर भाग जाते थे और यदि इन औषधियोंका प्रयोग नहीं किया जाता था तो भूत प्रेत आदि दूर नहीं होते थे ॥ ५० ॥ उस समय देवताओंने और मुनियोंने शंभुकी विशेषरूपसे प्रार्थना की, कि—हे स्वामिन् ! लोगोंको सुख देनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हूजिये ॥ ५१ ॥ यह कुत्सित देश युद्ध करनेके योग्य नहीं है, प्रकाशरहित है अत एव दुःख देने वाला है, आपको यहाँ विराजमान देख कर कल्याण होने लगेगा ॥ ५२ ॥ आप भीमशंकर नामसे सब कार्योंको सिद्ध करें यह शिवलिंग सब प्रकारकी आपत्तियोंको दूर करने वाला होगा अतः सदा पूज्य रहेगा ॥ ५३ ॥ सूतजीने कहा, कि—जब लोगोंका हित करने वाले शंभुकी इस प्रकार प्रार्थना की, तब भक्तवत्सल स्वतन्त्र शिव प्रीतिपूर्वक वहाँ प्रतिष्ठित होगए ॥ ५४ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

सूतजीने कहा, कि—हे ऋषिसत्तमो ! अब मैं महापातकोंको नष्ट करने वाले विश्वेश्वरके माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ १ ॥ पृथिवी में जो कुछ वस्तुएँ दीखती हैं, ये सब चिदानन्दस्वरूप निर्विकार सनातन शिवका ही रूप हैं ॥ २ ॥ जब उन कैवल्यमें प्रेम करने वालेकी द्वितीय होनेकी इच्छा हुई और वह सगुण होकर शिव कहलाने लगे ॥ ३ ॥ वह पुरुष और स्त्रीके भेदसे दो प्रकारसे प्रकट हुए, पुरुष शिव और स्त्री शक्ति कहलाती है ॥ ४ ॥ हे मुनिसत्तमो ! उन चिदानन्दस्वरूपोंने स्वयं अदृष्ट कर स्वभावसे ही प्रकृति

शाम्भुर्निर्मलतमाः । तावद्दृष्ट्वा तदा तौ च स्वमातृपितरौ द्विजाः ॥ ६ ॥ महा-संशयमापन्नौ प्रकृतिः पुरुषश्च तौ । तदा वाणी समुत्पन्ना निर्गुणात्परमात्मनः । तपश्चैव प्रकर्तव्यं ततस्सृष्टिरनुत्तमा ॥७॥ प्रकृतिपुरुषावूचतुः । तपसस्तु स्थलं नास्ति कुत्रावाभ्यां प्रभोऽधुना । स्थित्वा तपः प्रकर्तव्यं तव शासनतश्शिव ॥ ८ ॥ ततश्च तेजसस्सारं पञ्चक्रोशात्मकं शुभम् । सर्वोपकरणैर्युक्तं सुन्दरं नगरं तथा ॥९॥ निर्माय प्रेषितं तत्स्वं निर्गुणेन शिवेन च । अन्तरिक्षे स्थितं तच्च पुरुषस्य समीपतः ॥ १० ॥ तदधिष्ठाय हरिणा सृष्टिकामनया ततः । बहुकालं तपस्तप्तं तद्ध्यानमवलम्ब्य च ॥ ११ ॥ श्रमेण जलधाराश्च विविधाश्चाभवंस्तदा । ताभि-र्व्याप्तं च तच्छून्यं नान्यत्किंचिददृश्यत ॥ १२ ॥ ततश्च विष्णुना दृष्ट्वा किमेतद् दृश्यतेऽद्भुतम् । इत्याश्चर्यं तदा दृष्ट्वा शिरसः कम्पनं कृतम् ॥ १३ ॥ ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतः प्रभोः । तद्बभूव महत्तीर्थं नामतो मणिकर्णिका ॥१४॥ जलौघे प्लाव्यमाना सा पंचकोशी यदाभवत् । निर्गुणेन शिवेनाशु त्रिशूलेन धृता तदा ॥ विष्णुस्तत्रैव सुष्वाप प्रकृत्या स्वस्त्रिया सह । तन्नाभिकमलाज्जातो ब्रह्मा शंकर-शासनात् ॥ १६ ॥ शिवाज्ञां स समासाद्य सृष्टिं चक्रेऽद्भुतां तदा । चतुर्दशमिता लोका ब्रह्मांडे यत्र निर्मिता ॥ १७ ॥ योजनानां च पञ्चाशत्कोटिसंख्याप्रमाणतः ।

और पुरुषको निर्मित किया, हे द्विजों ! अपने माता पिताको न देख कर वे प्रकृति और पुरुष बड़े संदेहमें पड़ गए, तब निर्गुण परमात्मासे वाणी प्रकट हुई तप करो तब श्रेष्ठ सृष्टि चलेगी ॥ ७ ॥ प्रकृति पुरुषने कहा, कि–हे प्रभो ! तप करनेका तो कोई स्थल ही नहीं है, हे शिव ! हम आपकी आज्ञानुसार कहाँ पर तप करें ॥ ८ ॥ तब निर्गुण शिवने तेजका सार सब सामग्रियोंसे युक्त पाँच कोसका अपना शुभ नगर बनाकर भेजा, वह अन्तरिक्षमें पुरुषके समीप आकर खड़ा होगया ॥ ९ ॥ १० ॥ तब हरिने सृष्टिकी कामनासे उस पर अधि-ष्ठित होकर शिवका ध्यान धरते हुए बहुत समय तक तप किया ॥ ११ ॥ श्रमके कारण अनेक प्रकारकी जलधारायें तहाँ चलने लगीं, वह शून्यस्थान उन जलधाराओंसे व्याप्त होगया, तहाँ और कुछ दीखा ही नहीं ॥ १२ ॥ तब विष्णुने यह क्या अद्भुत बात दीख रही है, इस आश्चर्यमय दृश्यको देख कर शिर हिलाया ॥ १३ ॥ तब उन प्रभुके कानसे मणि गिर पड़ी और वह स्थल मणिकर्णिका नाम वाला महातीर्थ होगया ॥१४॥ जब वह पञ्चक्रोशी जलमें डूबने लगी, तब निर्गुण शिवने शीघ्र ही उसको अपने त्रिशूल पर उठा लिया ॥ १५ ॥ विष्णु अपनी प्रकृति स्त्रीके साथ तहाँ ही सोगए तब शंकरके शासनसे उनकी नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए ॥ १६ ॥ तब शिवकी आज्ञा पाकर उन्होंने अद्भुत सृष्टि की, ब्रह्माण्डमें चौदह लोक बनाये ॥ १७ ॥

ब्रह्माण्डस्यैव विस्तारो मुनिभिः परिकीर्तितः ॥१८॥ ब्रह्माण्डे कर्मणा बद्धा प्राणिनो मां कथं पुनः । प्राप्स्यन्तीति विचिन्त्यैतत्पंचक्रोशी विमोचिता ॥ १६ ॥ इयं च च शुभदा लोके कर्मनाशकरी मता । मोक्षप्रकाशिका काशी ज्ञानदा मम सुप्रिया ॥ अविमुक्तं स्वयं लिंगं स्थापितं परमात्मना । न कदाचित्त्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशक ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा च त्रिशूलात्स्वादवताार्य हरस्स्वयम् । मोचयामास भुवने मर्त्यलोके हि काशिकाम् ॥२२॥ ब्रह्मणश्च दिने सा हि न विनश्यति निश्चितम् । तदा शिवस्त्रिशूलेन दधाति मुनयश्च ताम् ॥ २३ ॥ पुनश्च ब्रह्मणा सृष्टौ कृतायां स्थाप्यते द्विजाः । कर्मणां कर्षणाच्चैव काशीति परिपठ्यते ॥२४॥ अविमुक्तेश्वरं लिंगं काश्यां तिष्ठति सर्वदा । मुक्तिदातृ च लोकानां महापातकिनामपि ॥ २५ ॥ अन्यत्र प्राप्स्यते मुक्तिस्सारूप्यादिर्मुनीश्वराः । अत्रैव प्राप्यते जीवैः सायुज्या मुक्तिरुत्तमा ॥ २६ ॥ येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी । पंचक्रोशी महापुण्या हत्याकोटिविनाशिनी ॥ २७ ॥ अमरा मरणं सर्वे वांछन्तीह परे च के । भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शंकरप्रिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा च

मुनियोंने ब्रह्माण्डका विस्तार पचास करोड़ योजन (२०००००००० कोस) का कहा है ।१८। ब्रह्माण्डमें कर्मसे बँधे हुए प्राणी मुझे फिर किस प्रकार प्राप्त होंगे, यह विचार कर उन्होंने इस पञ्चक्रोशीको छोड़ दिया १६ यह पञ्चक्रोशी संसारमें शुभ करने वाली और कर्मोंका नाश करने वाली मानी गई है, यह मोक्षका प्रकाश करने वाली ज्ञानदायिनी काशी मुझे परम प्रिय है ॥ २० ॥ परमात्माने इसमें अपना अविमुक्त लिंग स्वयं स्थापित किया है, हे मेरे अंश ! तुम मेरे इस क्षेत्रको कभी न त्यागना ॥२१॥ हरने इस प्रकार कह कर अपने त्रिशूलसे उतार कर मृत्युलोकमें छोड़ दिया ॥ २२ ॥ यह निश्चित है, कि यह काशीपुरी ब्रह्माजीके दिनमें भी नष्ट नहीं होती, हे मुनियों ! उस समय शिव इसको अपने त्रिशूल पर धारण करते हैं ॥२३॥ और हे द्विजों ! जब ब्रह्मजी फिर सृष्टि चलाते हैं, तब फिर इसको स्थापित कर देते हैं, यह पुरी कर्मोंका कर्षण करनेसे काशी कहलाती है ॥ २४ ॥ काशीमें अविमुक्त नामक लिंग सदा विराजमान रहता है, यह पुरी महापातकी पुरुषोंको भी मुक्ति देने वाली है ॥ २५ ॥ और स्थानों पर सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है और उत्तम सायुज्य मुक्ति जीवोंको यहीं प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ जिनकी कहीं भी सद्गति नहीं होसकती, उनकी सद्गति करोड़ों हत्याओंको दूर करने वाली महापुण्यमयी पञ्चक्रोशी वाराणसी पुरीमें होजाती है ॥ २७ ॥ दूसरोंकी तो बात ही क्या ? यहाँ पर तो अमर (देवता) भी मरना चाहते हैं, यह शंकरकी प्रिय काशी सदा भोग और मोक्ष देने वाली है ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी इसकी प्रशंसा

श्लाघते चामुं विष्णुस्सिद्धाश्च योगिनः । मुनयश्च तथैवान्ये त्रिलोकस्था जनाः सदा ॥ २६ ॥ काश्याश्च महिमानं वै वक्तुं वर्षशतैरपि । शक्नोम्यहं न सर्वं हि यथाशक्ति ब्रुवे ततः ॥३०॥ कैलासस्य पतिर्यो वै ह्यंतस्सत्त्वो बहिस्तमाः । कालाग्निर्नामतः ख्यातो निर्गुणो गुणवान्भवः । प्रणिपातैरनेकैश्च वचनं चेदमब्रवीत् ॥ रुद्र उवाच । विश्वेश्वर महेशान त्वदीयोस्मि न संशयः । कृपां कुरु महादेव मयि त्वं साम्ब आत्मजे ॥ ३२ ॥ स्थातव्यं च सदात्रैव लोकानां हितकाम्यया । तारयस्व जगन्नाथ प्रार्थयामि जगत्पते ॥३३॥ सूत उवाच । अविमुक्तोऽपि दांतात्मा तं संप्रार्थ्य पुनः पुनः । नेत्राश्रूणि प्रमुच्यैव प्रीतः प्रोवाच शंकरम् ॥ ३४ ॥ अविमुक्त उवाच । देवदेव महादेव कालामयसुभेषज । त्वं त्रिलोकपतिस्सत्यं सेव्यो ब्रह्माच्युतादिभिः ॥ ३५ ॥ काश्यां पुर्य्यां त्वया देव राजधानी प्रगृह्यताम् । मया ध्यानतया स्थेयमचिन्त्यसुखहेतवे ॥३६॥ मुक्तिदाता भवानेव कामदश्च न चापरः। तस्मात्त्वमुपकाराय तिष्ठोमासहितस्सदा ॥३७॥ जीवान्भवाब्धेरखिलांस्तारय त्वं सदाशिव । भक्तकार्य्यं कुरु हर प्रार्थयामि पुनः पुनः ॥३८॥ सूत उवाच । इत्येवं

करते हैं और विष्णु सिद्ध योगी मुनि तथा त्रिलोकीके दूसरे प्राणी भी सदा इसकी प्रशंसा करते हैं ॥ २६ ॥ मैं भी काशीकी महिमाका सौ वर्षमें भी पूरा वर्णन नहीं कर सकता, अतः यथाशक्ति ही कहता हूँ ॥ ३० ॥ कैलास के जो स्वामी हैं, उनके भीतर सत्त्व है और बाहर तम है, वह निर्गुणसे गुणवान् बने हुए भव कालाग्नि नामसे प्रसिद्ध हैं, वह अनेक प्रकारसे प्रणाम कर कहने लगे ॥३१॥ रुद्रने कहा, कि-हे विश्वेश्वर महेशान ! मैं आपका ही हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, हे साम्ब महादेव ! आप मुझ आत्मज पर कृपा करिये ॥३२॥ हे जगन्नाथ ! हे जगत्-पते ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, आप लोकोंका हित करनेकी कामनासे सदा यहाँ ही स्थित रहें ॥३३॥ सूतजीने कहा, कि-तब दान्तात्मा अविमुक्त भी उनकी वार वार प्रार्थना कर, प्रसन्नतासे नेत्रोंमेंसे आँसू बहा शंकरसे कहने लगे ॥ ३४ ॥ अविमुक्त ने कहा, कि-हे कालरूपी रोगकी श्रेष्ठ औषधरूप ! देवदेव महादेव ! आप सच्चे त्रिलोकपति हैं, ब्रह्मा अच्युत आदि भी आपकी सेवा करते हैं ।३५। हे देव ! आप काशीपुरीको अपनी राजधानीरूपसे ग्रहण कर लें, तो मैं यहाँ अचिन्त्य सुखको पानेके लिये यहाँ ध्यान लगा कर बैठूँ ॥३६॥ आप मुक्तिदाता हैं तथा कामना पूर्ण करनेवाला भी और कोई नहीं है अतः आप उपकार करनेके लिये उमाको साथमें लेकर यहाँ सदा विराजमान रहिये ३७ हे सदाशिव ! आप सकल जीवोंको संसारसागरसे सदा तारते रहिये, हे हर ! आप भक्तका कार्य करिये, मैं आपसे वारंवार प्रार्थना करता हूँ ।३८।

प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शंकरः । लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट् ३९
यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः । तदारभ्य च सा काशी सर्वश्रेष्ठतराभवत् ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रगमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ऋषय ऊचुः । एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महापुरी । तत्प्रभावं वदास्माकमविमुक्तस्य च प्रभो ॥ १ ॥ सूत उवाच । वक्ष्ये संक्षेपतस्सम्यग्वाराणस्यास्सुशोभनम् । विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं श्रूयतां च मुनीश्वराः ॥ २ ॥ कदाचित्पार्वती देवी शङ्करं परया मुदा । लोककामनया पृच्छन्माहात्म्यमविमुक्तयोः ॥३॥ पार्वत्युवाच । अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः । ममोपरि कृपां कृत्वा लोकानां हितकाम्यया ॥ ४ ॥ सूत उवाच । देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जगत्प्रभुः । प्रत्युवाच भवानीं तां जीवानां प्रियहेतवे ॥ ५ ॥ परमेश्वर उवाच । साधु पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां सुखदं शुभम् । कथयामि यथार्थं वै माहात्म्यमविमुक्तयोः ६ इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम । सर्वेषामेव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वथा ७ अस्मिन्सिद्धास्सदा क्षेत्रे मदीयं व्रतमाश्रिताः । नानालिंगधरा नित्यं मम लोका-

---

सूतजीने कहा, कि–जब विश्वनाथने शंकरकी इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वराट् शम्भु लोगोंका उपकार करनेके लिये वहाँ विराजमान होगए ।३९। जिस दिनसे हर काशीमें आये, उस दिनसे काशी सबसे श्रेष्ठ होगई है ४० बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

ऋषियोंने कहा, कि–हे सूतजी ! यदि वाराणसी (काशी) महापुरी ऐसी पुण्यमयी है, तो हे प्रभो ! इस महापुरीका और अविमुक्तका भी माहात्म्य हमसे कहिये ॥ १ ॥ सूतजीने कहा, कि–हे मुनीश्वरों ! मैं संक्षिप्तरूपसे काशीका और विश्वेश्वरका शोभन माहात्म्य कहता हूँ, सुनिये ।२। एक समय पार्वती देवीने संसारके हितकी कामनासे शंकरसे अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य परम–प्रेमके साथ बूझा था ॥ ३ ॥ पार्वतीने कहा, कि–मेरे ऊपर कृपा कर संसारका मङ्गल हो इस कामनासे आप इस क्षेत्रका माहात्म्य अच्छी तरह कहिये ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा, कि–देवीके इस वचनको सुन देवदेव जगत्–प्रभुने जीवोंका प्रिय करनेके कारण भवानीको उत्तर दिया ५ परमेश्वरने कहा, कि–हे भद्रे ! तुमने अच्छी बात बूझी यह बात संसारको सुख देने वाली है, मैं अविमुक्त क्षेत्रका माहात्म्य यथार्थरूपसे कहता हूँ ।६। यह काशी मेरा गुप्त क्षेत्र है, यह सब प्राणियोंकी मुक्तिका सब प्रकारसे हेतु है ॥ ७ ॥ इस क्षेत्रमें सिद्ध पुरुष मेरे लोकको पानेकी इच्छासे मेरे व्रतका

भिक्षांचिणः ॥ ८ ॥ अभ्यस्यन्ति महायोगं जितात्मानो जितेन्द्रियाः । परं पाशुपतं श्रौतं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥९। रोचते मे सदा वासो वाराणस्यां महेश्वरि । हेतुना येन सर्वाणि विहाय शृणु तद् ध्रुवम् ॥१०॥ यो मे भक्तश्च विज्ञानी तावुभौ मुक्तिभागिनौ। तीर्थापेक्षा च न तयोर्विहिताविहिते समौ ॥११॥ जीवन्मुक्तौ तु तौ ज्ञेयौ यत्र कुत्रापि वै मृतौ । प्राप्नुतो मोक्षमाश्वेव मयोक्तं निश्चितं वचः ।१२। अत्र तीर्थे विशेषोऽस्त्यविमुक्ताख्ये परोत्तमे । श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया ॥ १३ ॥ सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः । अस्यां पुर्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥ १४ ॥ अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा । विधवा वाथ वा वंध्या रजोदोषयुतापि वा ॥ १५ ॥ प्रसूतासंस्कृता कापि यादृशी तादृशी द्विजाः । अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ् नात्र संशयः ॥ १६ ॥ स्वेदजश्चांडजो वापि ह्युद्भिज्जोऽथ जरायुजः। मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित् ॥१७॥ ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः । कर्मापेक्षा न देव्यत्र दानापेक्षा न चैव हि ॥ १८ ॥ संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित् । नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न ॥१९॥ मम क्षेत्रे मोक्षदे हि यो वा वसति

आश्रय ले अनेक प्रकारके चिह्न धारण कर यहाँ सदासे रहते हैं ॥८॥ और अनेक जितेन्द्रिय महात्मा श्रुतिमें वर्णित भोग और मोक्ष देने वाले श्रेष्ठ पाशुपत महायोगका अनुष्ठान किया करते हैं ॥ ९ ॥ हे महेश्वरि ! सबको छोड़ कर काशीमें रहना ही मुझे जिस कारणसे रुचता है, उसको तुम सुनो ॥ १० ॥ जो मेरा भक्त होता है और जो विज्ञानी होता है, वे दोनों मुक्ति पाते हैं, उनको तीर्थकी अपेक्षा नहीं है उनके लिये शास्त्रमें विहित वा अविहित दोनों प्रकारके काम समान हैं ॥ ११ ॥ इन दोनोंको जीवन्मुक्त समझना चाहिये, ये तो जहाँ कहीं भी मरते हैं, शीघ्र ही मोक्ष पाते हैं, यह मेरा निश्चित वचन है ॥१२॥ हे परमोत्तम परम शक्ति स्वरूप वाली ! इस अविमुक्त नामक क्षेत्रमें कुछ विशेषता है उसको तुम चित्त लगा कर सुनो ॥ १३ ॥ सकल वर्ण और आश्रमों वाले बालक तरुण वा वृद्ध इस पुरीमें मरने पर अवश्य मुक्त होजाते हैं ॥ १४ ॥ पवित्र हो वा अपवित्र, कन्या हो अथवा विवाहित हो, विधवा हो वा वंध्या हो, रजस्वला हो, प्रसूता हो, असंस्कृत हो, हे द्विजों ! चाहे जैसी स्त्री हो इस क्षेत्रमें मरने पर अवश्य ही मुक्ति पाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज जैसे यहाँ मरने पर मोक्ष पाता है, तैसे और कहीं नहीं पासकता १७ हे देवि ! न यहाँ ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्ति की, न कर्मकी अपेक्षा है, न दान की ॥१८॥ न यहाँ संस्कृति, ध्यान, नामकीर्तन और पूजनकी अपेक्षा

मानवः। यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम् ॥ २० ॥ एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये। ब्रह्मादयोऽपि जानन्ति माहात्म्यं नास्य पार्वति २१ महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम्। सर्वेभ्यो नैमिषादिभ्यः परं मोक्षप्रदं मृते ॥ २२ ॥ धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषत्समम्। क्षेत्रतीर्थोपनिषदमवि-मुक्तं विदुर्बुधाः ॥२३॥ कामं भुञ्जन्स्वपन्क्रीडन्कुर्वन्हि विविधाः क्रियाः। अवि-मुक्ते त्यजन्प्राणाञ्जन्तुर्मोक्षाय कल्पते ॥ २४ ॥ कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्। न च क्रतुसहस्रत्वं स्वर्गे काशीं पुरीं विना ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वप्रय-त्नेन सेव्यते काशिका पुरी। अव्यक्तलिंगं मुनिभिर्ध्यायते च सदाशिवः ॥ २६ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य तपन्त्यत्र नराः प्रिये। तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि सम्यक्तत्तत्फलं ध्रुवम् ॥ २७ ॥ सायुज्यमात्मनः पश्चादीप्सितं स्थानमेव च। न कुतश्चित्कर्म-बन्धस्त्यजतामत्र वै तनुम् ॥२८॥ ब्रह्मा देवर्षिभिस्सार्द्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः। उपासते महात्मानस्सर्वे मामिह चापरे ॥ २९ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्त-धर्मरुचिर्नरः। इह क्षेत्रे मृतो यो वै संसारं न पुनर्विशेत् ॥ ३० ॥ किं पुनर्निर्ममा

है ॥ १९ ॥ मेरे इस मोक्ष देने वाले क्षेत्रमें जो कोई बसता है वह चाहे जैसे मरे, मोक्षको प्राप्त होता है, यह निश्चित बात है ॥२०॥ हे प्रिये! यह मेरा दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्य है, हे पार्वति! इसके माहात्म्यका ब्रह्मा आदिको भी पता नहीं है ॥ २१ ॥ इस कारण यह महाक्षेत्र अविमुक्त कहाता है और मरने पर नैमिष आदिकी अपेक्षा श्रेष्ठ मुक्तिदायक है ॥ २२ ॥ विद्वान् पुरुष धर्मका उपनिषत् सत्य, मोक्षका उपनिषत् समवर्तित्व और क्षेत्र तीर्थोंका उप-निषत् अविमुक्तको कहते हैं ॥ २३ ॥ भोजन करता हुआ, सोता हुआ, क्रीड़ा करता हुआ वा अनेक प्रकारकी क्रियाओंको करता हुआ जन्तु अवि-मुक्त-क्षेत्रमें प्राणत्याग करने पर मोक्ष पाता है ॥ २४ ॥ हजारों पाप कर मनुष्योंका पिशाच बनना अच्छा है, परन्तु काशीपुरीके विना स्वर्गमें इन्द्र-पदवी भी अच्छी नहीं ॥ २५ ॥ अत एव मुनि सब प्रकारका प्रयत्न कर काशीपुरीकी सेवा करते हैं और सदाशिवका ध्यान करते हैं ॥२६॥ हे प्रिये! जिस फलकी अभिलाषा रख मनुष्य यहाँ तप करते हैं, उनको वह फल मैं भली प्रकार देता हूँ ॥ २७ ॥ फिर मैं उनको अपना सायुज्य और अभि-लषित स्थान देता हूँ, जो यहाँ शरीर छोड़ते हैं, उन्हें कहीं कुछ कर्मबन्धन नहीं होता ॥२८॥ देवर्षियों सहित ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और सकल महात्मा यहाँ मेरी उपासना करते हैं ॥ २९ ॥ विषयमें आसक्त चित्त वाला और धर्ममें रुचि न रखने वाला मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मरता है तो फिर वह संसारमें प्रवेश नहीं करता है ॥ ३० ॥ फिर ममतारहित, धीर, सत्त्वगुणी,

धीरास्सस्वस्था दम्भवर्जिताः । कृतिनश्च निरारम्भास्सर्वे ते मयि भाविताः ३१ जन्मांतरसहस्त्रेषु जन्म योगी समाप्नुयात् । तदिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ॥ ३२ ॥ अत्र लिंगान्यनेकानि भक्तैस्संस्थापितानि हि । सर्वकामप्रदानीह मोक्षदानि च पार्वति ॥३३॥ पंचक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् । समंताच्च तथा जन्तोर्मृतिकालेऽमृतप्रदम् ॥३४॥ अपापश्च मृतो यो वै सद्यो मोक्षं समश्नुते । सपापश्च मृतो यस्स्यात्कायव्यूहान्समश्नुते ॥ ३५ ॥ यातनां सोऽनुभूयैव पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् । पातकं योऽविमुक्ताख्ये क्षेत्रेऽस्मिन्कुरुते ध्रुवम् ॥ भैरवीं यातनां प्राप्य वर्षाणामयुते पुनः । ततो मोक्षमवाप्नोति भुक्त्वा पापं च सुन्दरि ॥ ३७ ॥ इति ते च समाख्याता पापाचारे च या गतिः । एवं ज्ञात्वा नरस्सम्यक्सेवयेदविमुक्तकम् ॥ ३८ ॥ कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ३९ ॥ केवलं चाशुभं कर्म नरकाय भवेदिह । शुभं स्वर्गाय जायेत द्वाभ्यां मानुष्यमीरितम् ॥ ४० ॥ जन्म सम्यगसम्यक् च न्यूनाधिक्ये भवेदिह । उभयोश्च क्षये मुक्तिर्भवेत्सत्यं हि पार्वति ४१

दम्भरहित, कर्मकुशल, और किसी कर्मका आरम्भ न करने वालोंकी तो बात ही क्या है वे तो सब मुझमें ही लीन होते हैं ॥३१। योगी हजारों जन्म पानेके अनन्तर यहाँ पर मरनेसे परम मोक्षको पाता है ॥३२॥ हे पार्वति ! यहाँ भक्तोंके स्थापित किये हुए अनेक शिवलिंग हैं, ये सकल कामनाओंको पूर्ण करते हैं और मोक्ष देते हैं ॥ ३३ ॥ यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें पाँच कोस तकका कहा है, मरणके समय प्राणी इसमें होता है तो अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ निष्पाप पुरुष काशीमें मरते क्षण ही मोक्ष पाता है और जो पापी मरता है वह शरीर पाता है ॥ ३५ ॥ और कर्मभोग भोग मोक्ष पाता है और जो इस अविमुक्त नामक क्षेत्रमें पाप करता है, वह दश हजार वर्ष तक घोर यातना भोगता है, हे सुन्दरि ! इस प्रकार पाप भोगने के अनन्तर मोक्ष पाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार तुमसे पापाचरणोंकी भी गति कहदी, इस बातको जानकर मनुष्य सदा अविमुक्तका सेवन करे ३८ किया हुआ कर्म करोड़ों सैंकड़ों कल्पोंमें भी क्षीण नहीं होता, किया हुआ शुभ वा अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३९ ॥ यहाँ निरा अशुभ कर्म नरक देता है और इस संसारमें किया हुआ शुभ कर्म स्वर्ग देता है और दोनों प्रकारके कर्मोंसे मनुष्यलोक मिलता है ॥ ४० ॥ इनकी न्यूनता वा अधिकता होने पर भला बुरा जन्म मिलता है और शुभ अशुभ दोनों प्रकारके कर्म क्षीण होनेसे हे पार्वति ! मुक्ति होजाती है, यह बात सत्य है ॥ ४१ ॥ हे महेश्वर ! कर्मकाण्डमें बन्धनमें डालने वाला तीन प्रकारका

कर्म च त्रिविधं प्रोक्तं कर्मकांडे महेश्वरि। संचितं क्रियमाणं च प्रारब्धं चेति बन्धकृत् ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मसमुद्भूतं संचितं समुदाहृतम्। भुज्यते च शरीरेण प्रारब्धं परिकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ अनेन जन्मना यच्च क्रियते कर्म सांप्रतम्। शुभाशुभं च देवेशि क्रियमाणं विदुर्बुधाः ॥ ४४ ॥ प्रारब्धकर्मणो भोगात्क्षयश्चैव न चान्यथा। उपायेन द्वयोर्नाशः कर्मणोः पूजनादिना ॥ ४५ ॥ सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीं पुरीं विना। सर्वं च सुलभं तीर्थं दुर्लभा काशिका पुरी ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्मकृतं चेद्वै काशीदर्शनमादरात्। तदा काशीं च संप्राप्य लभेन्मृत्युं न चान्यथा ॥ ४७ ॥ काशीं प्राप्य नरो यस्तु गंगायां स्नानमाचरेत्। तदा च क्रियमाणस्य संचितस्यापि संक्षयः ॥ ४८ ॥ प्रारब्धं न विना भोगं नश्यतीति सुनिश्चितम्। मृतिश्च तस्य संजाता तदा तस्य क्षयो भवेत् ॥ ४९ ॥ पूर्वं चैव कृता काशी पश्चात्पापं समाचरेत्। तद्बीजेन बलवता नीयते काशिका पुनः ॥ ५० ॥ तदा सर्वाणि पापानि भस्मसाच्च भवन्ति हि। तस्मात्काशीं नरस्सेवेत्कर्मनिर्मूलनीं ध्रुवम् ॥ ५१ ॥ एकोऽपि ब्राह्मणो येन काश्यां संवासितः प्रिये। काशीवासमवाप्यैव ततो मुक्तिं स विन्दति ॥ ५२ ॥ काश्यां यो वै मृतश्चैव तस्य जन्म

कर्म कहा है सञ्चित-क्रियमाण तथा प्रारब्ध ॥४२॥ पूर्वजन्मोंमें बना हुआ कर्म सञ्चित कहाता है, और जिसका इस शरीरसे भोग होरहा है, वह प्रारब्ध कहा है ॥ ४३ ॥ और हे देवेशि ! इस जन्ममें जो शुभ वा अशुभ कर्म किया जाता है, उसको बुद्धिमान् पुरुष क्रियमाण कहते हैं ॥ ४४ ॥ प्रारब्ध कर्मका क्षय विना भोगे नहीं होता परन्तु सञ्चित और क्रियमाण इन दोनों कर्मोंका पूजन आदि उपायसे क्षय होसकता है ॥ ४५ ॥ काशी-पुरी के विना सब प्रकारके कर्मोंका नाश नहीं होता, सब तीर्थ सुलभ हैं, परन्तु काशीपुरीका मिलना दुर्लभ है ॥ ४६ ॥ पहिले जन्ममें यदि आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया होता है, तो काशीमें आकर मृत्यु होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ काशीमें आकर जो मनुष्य गंगामें स्नान करता है, उसके क्रियमाण और सञ्चित कर्मका क्षय होजाता है ॥४८॥ प्रारब्ध विना भोगके नष्ट नहीं होता यह निश्चित बात है, उसका क्षय तो मृत्यु होने पर ही होता है ॥ ४९ ॥ पहिले काशीका सेवन किया हो और फिर पाप करे, तो फिर उस बलवान् बीजसे फिर काशीमें आता है ॥ ५० ॥ और उस समय उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं, इस लिये मनुष्य कर्मोंकी जड़ उखाड़ने वाली काशीपुरीका सेवन अवश्य करे ॥५१॥ हे प्रिये ! जिसने काशीमें एक भी ब्राह्मण बसाया वह काशीवास या मुक्ति पाता है ॥ ५२ ॥ काशीमें जो कोई मरता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता और प्रयागमें मरने वालेकी कामना फल-

पुनर्न हि । समुद्दिश्य प्रयागे च मृतस्य कामनाफले ॥ ५३ ॥ सयोगश्च नयोश्चे-त्स्यात्काशीजन्यं फलं वृथा । यदि न स्यात्तयोर्योगस्तीर्थराजफलं वृथा ॥ ५४ ॥ तस्मान्मच्छासनाद्विष्णुस्सृष्टिं साक्षाद्धि नूतनाम् । विधाय मनसोद्दिष्टां तत्सिद्धिं यच्छति ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ सूत उवाच । इत्यादि बहु माहात्म्यं काश्या वै मुनिसत्तमाः । तथा विश्वेश्वरस्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ५६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं त्र्यंबकस्य च । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ५७

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां काशीविश्वेश्वर-ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सूत उवाच । श्रूयतामृषयः श्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम् । कथयामि यथा व्यासात्सद्गुरोश्च श्रुता मया ॥ १ ॥ पुरा ऋषिवरश्चासीद्गौतमो नाम विश्रुतः । अहल्या नाम तस्यासीत्पत्नी परमधार्मिकी ॥ २ ॥ दक्षिणस्यां दिशि हि यो गिरिर्ब्रह्मेतिसंज्ञकः । तत्र तेन तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तथा ॥ ३ ॥ कदाचिच्च ह्यनावृष्टिरभवत्तत्र सुव्रताः । वर्षाणां च शतं रौद्री लोका दुःखमुपागताः ॥ ४ ॥ आर्द्रं च पल्लवं न स्म दृश्यते पृथिवीतले । कुतो जलं विदृश्येत जीवानां प्राणधारकम् ५ तदा ते मुनयश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा । पक्षिणश्च मृगास्तत्र गताश्चैव दिशो दश ॥ ६ ॥ तां दृष्ट्वा चर्षयो विप्राः प्राणायामपरायणाः । ध्यानेन च तदा केचि-

---

वती होती है ॥५३॥ यदि कामना और फलका योग हो तो काशीमें मिलने वाला फल व्यर्थ होता है और यदि इन दोनोंका योग न हो तो तीर्थराजका फल व्यर्थ होता है ॥ ५४ ॥ अतः मेरी आज्ञासे विष्णु नूतन सृष्टि मनके अनुकूल कर उसको सिद्धि दिया करते हैं ॥ ५५ ॥ सूतजीने कहा, कि-मुनिसत्तमों ! इस प्रकार काशीका और विश्वनाथका सज्जनोंको भोग और मोक्ष देने वाला बहुत भारी माहात्म्य है ॥ ५६ ॥ अब मैं त्र्यम्बकेश्वरका माहात्म्य वर्णन करता हूँ, उसको सुनते क्षण ही मनुष्य सकल पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ५७ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

सूतजीने कहा, कि-हे श्रेष्ठ ऋषियों ! सद्गुरु व्यासजीसे सुननेके अनुसार मैं अब पापोंको नष्ट करने वाली कथाका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ १ ॥ पहिले गौतम नामके एक प्रसिद्ध ऋषिवर थे और परम धार्मिक अहल्या उन की पत्नी थी ॥ २ ॥ दक्षिण दिशामें एक ब्रह्मगिरि नामका पर्वत है, तहाँ उन्होंने दश हजार वर्ष तक तप किया था ॥३॥ हे सुव्रतों ! तहाँ एक समय सौ वर्ष तककी भयंकर अवर्षा हुई, लोग दुःखी होने लगे ॥ ४ ॥ पृथिवी पर गीला पत्ता तक नहीं दीखता था, तो फिर जीवोंके प्राणोंको बचाने वाला जल तो कहाँसे दीखता ॥ ५ ॥ तब मुनि मनुष्य पशु पक्षी और मृग

त्कालं निन्युस्सुदारुणम् ॥ ७ ॥ गौतमोऽपि स्वयं तत्र वरुणार्थं तपश्शुभम्। चकार चैव षण्मासं प्राणायामपरायणः ॥ ८ ॥ ततश्च वरुणस्तस्मै वरं दातुं समागतः। प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि च वचोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥ ततश्च गौतमस्तं वै वृष्टिं च प्रार्थयत्तदा। ततस्स वरुणस्तं वै प्रत्युवाच मुनिं द्विजाः ॥१०॥ वरुण उवाच। देवाज्ञां च समुल्लंघ्य कथं कुर्यामहं च ताम्। अन्यत्प्रार्थय सुज्ञोऽसि यदहं करवाणि ते ॥ ११ ॥ सूत उवाच। इत्येतद्वचनं तस्य वरुणस्य महात्मनः। परोपकारी तच्छ्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ गौतम उवाच। यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम। यदहं प्रार्थयाम्यद्य कर्तव्यं हि त्वया तथा ॥ यतस्त्वं जलराशीशस्तस्माद्देयं जलं मम। अक्षयं सर्वदेवेश दिव्यं नित्यफलप्रदम् ॥१४॥ सूत उवाच। इति संप्रार्थितस्तेन वरुणो गौतमेन वै। उवाच वचनं तस्मै गर्तश्च क्रियतां त्वया ॥१५॥ इत्युक्ते च कृतस्तेन गर्तो हस्तप्रमाणतः। जलेन पूरितस्तेन दिव्येन वरुणेन सः ॥ १६ ॥ अथोवाच मुनिं देवो वरुणो हि जलाधिपः। गौतमं मुनिशार्दूलं परोपकृतिशालिनम् ॥ १७ ॥ वरुण उवाच। अक्षय्यं

दशों दिशाओंमेंको भाग चले ॥६॥ हे विप्रों ! इस घटनाको देख कुछ ऋषियों ने प्राणायाम चढ़ा लिया और ध्यान कर उस दारुण समयको काटने लगे ७ उस समय गौतम भी प्राणायाम चढ़ा कर वरुणके निमित्त छः मास तक शुभ तप करने लगे ॥८॥ तब वरुण उसको वर देनेके लिये आए और मैं प्रसन्न हूँ, वर माँग, मैं तुझे वर दूँगा, यह बात कहने लगे ॥ ९ ॥ तब गौतमने उनसे वृष्टि की प्रार्थना की, हे द्विजों ! तब वरुणने उन मुनिको प्रत्युत्तर दिया ॥१०॥ वरुणने कहा, कि-देवताओंकी आज्ञाका उल्लंघन कर मैं वृष्टि कैसे कर सकता हूँ, तुम बुद्धिमान् हो अतः मैं जिसको कर सकूँ, ऐसी दूसरी बात माँग लो ॥ ११ ॥ सूतजीने कहा, कि—महात्मा वरुणके इस वचन को सुन कर परोपकारी गौतम यह बात कहने लगे ॥ १२ ॥ गौतमने कहा, कि—हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं प्रार्थना करता हूँ उसको आप वैसे ही पूर्ण कर दीजिये ॥ १३ ॥ क्योंकि—आप जलके स्वामी हैं अतः हे सर्वदेवेश ! मुझे अक्षय दिव्य नित्यफलप्रद जल दीजिये ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा, कि—गौतमके इस प्रकार प्रार्थना करने पर वरुणने कहा, कि—आप एक गर्त करें ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहने पर गौतम ने एक हाथ भर (गहरा) गड्ढा खोदा, तब वरुणने उसको दिव्य जलसे भर दिया ॥ १६ ॥ तदनन्तर जलके स्वामी वरुणने परोपकार करने वाले मुनिशार्दूल गौतम मुनिसे कहा ॥ १७ ॥ वरुणने कहा, कि—हे महामुने ! यह तुम्हारा अक्षय जल तीर्थस्वरूप होगा और पृथिवी पर यह तुम्हारे नामसे

च जलं तेऽस्तु तीर्थं नूतं महामुने । तव नाम्ना च विख्यातं क्षितावेतद्भविष्यति ॥ अत्र दत्तं हुतं तप्तं सुराणां यजनं कृतम् । पितॄणां च कृतं श्राद्धं सर्वमेवाक्षयं भवेत् ॥ १९ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वांतर्दधे देवस्स्तुतस्तेन महर्षिणा । गौतमोऽपि सुखं प्राप कृत्वान्योपकृतिं मुनिः ॥ २० ॥ महतो ह्याश्रयः पुंसां महत्त्वायोपजायते । महांतस्तत्स्वरूपं च पश्यंति नेतरेऽशुभाः ॥ २१ ॥ यादृङ्नरं च सेवेत तादृशं फलमश्नुते । महतस्सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा ॥ २२ ॥ सिंहस्य मन्दिरे सेवा मुक्ताफलकरी मता । शृगालमन्दिरे सेवा त्वस्थिलाभकरी स्मृता २३ उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता । स्वयं दुःखं च संप्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते ॥ २४ ॥ वृक्षाश्च हाटकं चैव चन्दनं चेक्षुकस्तथा । एते भुवि परार्थे च दक्षाः एवं न केचन ॥ २५ ॥ दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः । एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्यते मही ॥२६॥ ततश्च गौतमस्तत्र जलं प्राप्य सुदुर्लभम् । नित्यनैमित्तिकं कर्म चकार विधिवत्तदा ॥ २७ ॥ ततो व्रीहीन्यवांश्चैव नीवारानप्यनेकधा । वापयामास तत्रैव हवनार्थं मुनीश्वरः ॥२८॥ धान्यानि विविधानीह वृक्षाश्च विविधास्तथा । पुष्पाणि च फलान्येव ह्यासंस्तत्राप्यनेकशः ॥ २९ ॥

प्रसिद्ध होगा ॥ १८ ॥ यहाँ पर किया हुआ दान होम तप देवपूजन और पितृश्राद्ध सब ही अक्षय होगा ॥ १९ ॥ सूतजीने कहा, कि-इस प्रकार कह महर्षिसे स्तुति पाते हुए वरुण अन्तर्धान होगए और गौतम मुनि भी परोपकार कर सुखी हुए ॥२०॥ बड़ोंका आश्रय पुरुषोंको महत्त्व देता है, बड़े आदमी ही इस बातको पहिचानते हैं, अशुभ पुरुषोंको इस बातका पता नहीं चलता ॥ २१ ॥ प्राणी जैसे पुरुषकी सेवा करता है, वैसा ही फल पाता है, बड़ेकी सेवा करनेसे उच्चता मिलती है और क्षुद्रकी सेवा करनेसे क्षुद्रता प्राप्त होती है ॥ २२ ॥ सिंहके भवनकी सेवा करनेसे मोतियोंका लाभ हो सकता है और गीदड़की माँदको टटोलनेसे हड्डियें ही मिलती हैं ॥ २३ ॥ बड़े पुरुषोंका यह स्वभाव होता है, कि-वे दूसरोंका दुःख नहीं सह सकते उसको वे अपने ऊपर ही पड़ा हुआ दुःख समझते हैं अतः वे दूसरोंका दुःख दूर करते हैं ॥ २४ ॥ वृक्ष सुवर्ण, चन्दन और गन्ना ये पृथिवी पर परोपकार करनेमें जितने चतुर हैं उतना और कोई नहीं ॥ २५ ॥ दयालु, मदके लेशसे शून्य, परोपकारी और जितेन्द्रिय, इन चार पुण्यके खम्भों पर पृथ्वी टिकी हुई है ॥ २६ ॥ तदनन्तर गौतम तहाँ सुन्दर जलको पा नित्य और नैमित्तिक कर्मको विधिविधानसे करने लगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर मुनीश्वरने हवन करनेके लिये तहाँ धान जौं और नीवार (पसहीके धान) बुआये २८ इस प्रकार तहाँ अनेक प्रकारके धान्य विविधवृक्ष पुष्प और बहुतसे फल

तच्छ्रुत्वा ऋषयश्चान्ये तत्रायातास्सहस्रशः । पशवः पक्षिणश्चान्ये जीवाश्च बहवोऽगमन् ॥ ३० ॥ तद्वनं सुन्दरं ह्यासीत्पृथिव्या मण्डले परम् । तदक्षयकरायोगादनावृष्टिर्न दुःखदा ॥३१॥ ऋषयोपि वने तत्र शुभकर्मपरायणाः । वासं चक्रुरनेके च शिष्यभार्य्यासुतान्विताः ॥ ३२ ॥ धान्यानि वापयामासुः कालकारणहेतवे । आनन्दस्तद्वने ह्यासीत्प्रभावाद्गौतमस्य च ॥ ३३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूत उवाच । कदाचिद्गौतमेनैव जलार्थं प्रेषिताः निजाः । शिष्यास्तत्र गता भक्त्या कमंडलुकरा द्विजाः ॥ १ ॥ शिष्यांश्च जलसमीपे तु गतान्दृष्ट्वा न्यषेधयन् । जलार्थमागतास्तत्र चर्षिपत्न्योऽप्यनेकशः ॥ २ ॥ ऋषिपत्न्यो वयं पूर्वं ग्रहीष्यामो विदूरतः । पश्चाच्चैव जलं ग्राह्यमित्येवं पर्यभर्त्सयन् ॥ ३ ॥ परावृत्य तदा तैश्च ऋषिपत्न्यै निवेदितम् । सा चापि तान्समादाय समाश्वास्य च तैः स्वयम् ॥४॥ जलं नीत्वा ददौ तस्मै गौतमाय तपस्विनी । नित्यं निर्वाहयामास जलेन ऋषिसत्तमः ॥५॥ ताश्चैवमृषिपत्न्यस्तु क्रुद्धास्तां पर्यभर्त्सयन् । परावृत्य गतास्सर्वास्स्वटजान्कुटिलाशयाः ॥ ६ ॥ स्वाम्यग्रे विपरीतं च तद्वृत्तं निखिलं ततः ।

होगए ॥ २९ ॥ इस बातको सुन कर तहाँ हजारों ऋषि पशु पक्षी और बहुतसे जीव आने लगे ॥ ३० ॥ उस समय वह वन पृथिवीतल पर परम—सुन्दर लगने लगा, उस अक्षय जलके कारण अनावृष्टि तहाँ दुःख न दे सकी ॥ ३१ ॥ और अनेक शुभ कार्यमें परायण ऋषि शिष्य भार्या और पुत्रोंके साथ तहाँ रहने लगे ॥ ३२ ॥ और उन्होंने समय बितानेके लिये धान्य बुआ दिये, इस प्रकार गौतमके प्रभावसे उस वनमें आनन्द आगया ३३ चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

सूतजीने कहा, कि—एक समय गौतमने ही अपने शिष्योंको हाथमें कमण्डलु देकर तहाँसे जल लानेके लिये भक्तिपूर्वक भेजा ॥ १ ॥ तहाँ पर अनेक ऋषिपत्नियें जल लेनेको आई थीं, उन्होंने शिष्योंको जलके समीप पहुँचे देखकर मना किया ॥२॥ हम ऋषिपत्नियें ही पहिले समीपसे जलको ग्रहण कर लें, पीछेसे तुम जल भरना यह कह कर धमकाने लगीं ॥ ३ ॥ तब उन शिष्योंने लौट कर ऋषिपत्नीसे सब बात कही, तब तपस्विनी ऋषिपत्नीने उन शिष्योंको ढाढस दिया और उनको साथमें ले स्वयं जल लाकर गौतम को दिया, तब उस जलसे ऋषिसत्तमने नित्य कर्म किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ इधर क्रोधमें भरी ऋषिपत्नियोंने अहल्याको धमकाया और वे कुटिल आशय वाली स्त्रियें लौट कर अपनी कुटियाओंको चली गईं ॥ ६ ॥ और उन

दुष्टाशया भर्तृभिश्च ताभिर्वै विनिवेदितम् । अथ तासां वचः श्रुत्वा भाविकर्मवशात्तदा । गौतमाय च संक्रुद्धाश्चासंस्ते परमर्षयः ॥ ८ ॥ विघ्नार्थं गौतमस्यैव नानापूजोपहारकैः । गणेशं पूजयामासुस्संक्रुद्धास्तं कुबुद्धयः ॥९॥ आविर्बभूव च तदा प्रसन्नो हि गणेश्वरः । उवाच वचनं तत्र भक्ताधीनः फलप्रदः ॥१०॥ गणेश उवाच । प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत यूयं किं करवाण्यहम् । तदीयं तद्वचः श्रुत्वा ऋषयस्तेऽब्रुवंस्तदा ॥ ११ ॥ ऋषय ऊचुः । त्वया यदि वरो देयो गौतमस्त्वाश्रमाद्बहिः । निष्काश्यमानो ऋषिभिः परिभर्त्स्य तथा कुरु ॥१२॥ सूत उवाच । स एवं प्रार्थितस्तैस्तु विहस्य वचनं पुनः । प्रोवाचेभमुखः प्रीत्या बोधयंस्तान्सतां गतिः ॥ १३ ॥ गणेश उवाच । श्रूयतामृषयस्सर्वे युक्तं न क्रियतेऽधुना । अपराधं विना तस्मै क्रुध्यतां हानिरेव च ॥ १४ ॥ उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं न हि । यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह ॥ १५ ॥ ईदृशं च तपः कृत्वा साध्यते फलमुत्तमम् । शुभं फलं स्वयं हित्वा साध्यते नाहितं पुनः ॥१६॥ सूत उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य ते मुनिसत्तमाः । बुद्धिमोहं तदा प्राप्ता इदमेव वचोऽब्रुवन् ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः । कर्तव्यं हि त्वया स्वामिन्निदमेव न

दूषित भाव वाली स्त्रियोंने अपने स्वामियोंसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह उल्टी बातें जड़ दीं ॥ ७ ॥ तब उनके वचन सुन भावीके वशमें हो वे परमर्षि गौतम पर क्रोधमें भर गए ॥ ८ ॥ और उन कुबुद्धियोंने क्रोधमें भर कर गौतम पर विघ्न करनेके लिये अनेक प्रकारकी भेंटें चढ़ाकर गणेशको पूजा की ॥९॥ तब प्रसन्न होकर गणेश तहाँ प्रकट हुए, क्योंकि–वे भक्तोंके अधीन हैं और फल दिया करते हैं, गणेशजीने कहा ॥ १० ॥ मैं प्रसन्न हूँ, वर मागो, मैं तुम्हारा क्या मनोरथ पूर्ण करूँ, उनकी इस बातको सुन ऋषियोंने कहा ॥ ११ ॥ ऋषि बोले, कि–यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसा करिये, हम गौतमका तिरस्कार कर उनको अपने आश्रमसे निकाल सकें १२ सूतजीने कहा, कि–उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर सज्जनोंकी गति गजानन हँसे और उनको बोध देनेके लिये प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ १३ ॥ गणेशजीने कहा, कि–हे सकल ऋषियों ! सुनो यह आप उचित नहीं कर रहे हैं, अपराध न होने पर भी उन पर क्रोध किया जावेगा तो क्रोध करने वालोंको ही हानि पहुँचेगी ॥१४॥ जिन्होंने पहिले उपकार किया हो उनको दुःख देना हितकारक नहीं होसकता, यदि उनको दुःख दिया जाता है तो नाश होजाता है ॥ १५ ॥ ऐसा तप करके आप उत्तम फल पाना चाहते हैं, स्वयं शुभ फलको छोड़ अहित कैसे सध सकता है ॥ १६ ॥ सूतजीने कहा, कि–उनकी इस बातको सुन बुद्धिमोहमें पड़े उन ऋषिसत्तमोंने फिर यही

चान्यथा । इत्युक्तस्तु तदा देवो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ गणेश उवाच । असाधुस्साधुतां चैवासाधुश्च साधुतां तथा । कदाचिदपि नाप्नोति ब्रह्मोक्तमिति निश्चितम् ॥ १९ ॥ यदा च भवतां दुःखं जातं चानशनात्पुरा । तदा सुखं प्रदत्तं वै गौतमेन महर्षिणा ॥२०॥ इदानीं वै भवद्भिश्च तस्मै दुःखं प्रदीयते । नैतद्युक्ततमं लोके सर्वथा सुविचार्यताम् ॥२१॥ स्त्रीबलान्मोहिता यूयं न मे वाक्यं करिष्यथ । एतद्धिततमं तस्य भविष्यति न संशयः ॥२२॥ पुनश्चायमृषिश्रेष्ठो दास्यते वस्सुखं ध्रुवम् । तारणं न च युक्तं स्याद्वरमन्यं वृणीत वै ॥ २३ ॥ सूत उवाच । इत्येवं वचनं तेन गणेशेन महात्मना । यद्यप्युक्तमृषिभ्यश्च तदप्येते न मेनिरे ॥२४॥ भक्ताधीनतया सोऽथ शिवपुत्रोऽब्रवीत्तदा । उदासीनेन मनसा तानृषीन्दुष्टशेमुषीन् ॥ २५ ॥ गणेश उवाच । भवद्भिः प्रार्थ्यते यच्च करिष्येऽहं तथा खलु । पश्चाद्भावि भवेदेव इत्युक्त्वान्तर्दधे पुनः ॥ २६ ॥ गौतमस्स न जानाति मुनीनां वै दुराशयम् । आनन्दमनसा नित्यं पत्न्या कर्म चकार तत् ॥ २७ ॥ तदन्तरे च यज्जातं चरित्रं वरयोगतः । तद्दुष्टर्षिप्रभावाच्च श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥२८॥ गौत-

बात कही ॥ १७ ॥ ऋषियोंने कहा, कि—हे स्वामिन् ! आपको ऐसा ही करना चाहिये और कोई बात नहीं, उनके इस प्रकार कहने पर गणेश-देव कहने लगे ॥ १८ ॥ गणेशका भाषण--ब्रह्माजीकी कही हुई यह निश्चित बात है, कि-असाधु साधुताको और साधु असाधुताको कभी नहीं पाता ॥ १९ ॥ जब पहिले आपको अनशनके कारण दुःख होरहा था, तब महर्षि गौतमने आपको सुख दिया था ॥ २० ॥ और इस समय आप उनको दुःख देना चाहते हैं, संसारमें यह बात उचित नहीं मानी जावेगी, इसका आप भली भाँति विचार करलें ॥ २१ ॥ तुम स्त्रियोंके मोहमें पड़ मेरी बातको नहीं मान रहे हो, परंतु यह बात उनके लिये बड़ी हितकारी होगी, इसमें कुछ संदेह न समझना ॥ २२ ॥ यह ऋषिश्रेष्ठ फिर भी आपको उत्तम फल देंगे अतः इनको छलना उचित नहीं है आप कोई दूसरा वर माँगलें ॥ २३ ॥ सूतजीने कहा, कि-महात्मा गणेशने इस प्रकार बातें कर ऋषियोंको समझाया, तो भी वे न माने ॥ २४ ॥ तब वह शिव-पुत्र भक्तोंके अधीन होनेके कारण उन दुर्बुद्धि ऋषियोंसे उदासीन मनसे कहने लगे ॥ २५ ॥ गणेशजीने कहा, कि-आप जो प्रार्थना कर रहे हैं उसको मैं अवश्य करूँगा अब जो होनहार है वह तो होगा ही इस प्रकार कहकर वह अन्तर्धान होगए २६ परन्तु गौतमको मुनियोंके इस दुर्भावका कुछ पता नहीं था, अतः वह अपनी पत्नीके साथ रह आनन्दित मनसे नित्यकर्म करते रहे ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरों ! इस बीचमें उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे वरके कारण जो चरित्र हुआ उसको आप सुनिये २८

मस्य च केदारे तत्रासन्व्रीहयो यवाः । गणेशस्तत्र गौर्भूत्वा जगाम किल दुर्बला कंपमाना च सा गत्वा तत्र तद्दरयोगतः । व्रीहीन्संभक्षयामास यवांश्च मुनिसत्तमाः ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरे दैवाद्गौतमस्तत्र चागतः । स दयालुस्तृणस्तम्बैर्वारयामास तां तदा ॥ ३१ ॥ तृणस्तम्बेन सा स्पृष्टा पपात पृथिवीतले । मृता च तत्क्षणादेव तदृषेः पश्यतस्तदा ॥ ३२ ॥ ऋषयश्छन्नरूपास्ते ऋषिपत्न्यस्तथाशुभाः । ऊचुस्तत्र तदा सर्वे किं कृतं गौतमेन च ॥ ३३ ॥ गौतमोऽपि तथाहल्यामाहूयासीत्सुविस्मितः । उवाच दुःखतो विप्रा दूयमानेन चेतसा ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच । किं जातं च कथं देवि कुपितः परमेश्वरः । किं कर्त्तव्यं क्व गन्तव्यं हत्या च समुपस्थिता ॥ ३५ ॥ सूत उवाच । एतस्मिन्नन्तरे विप्रा गौतमं पर्यभर्त्सयन् । विप्रपत्न्यस्तथाऽहल्यां दुर्वचोभिर्व्यथां ददुः ॥ ३६ ॥ दुर्बुद्धयश्च तच्छिष्याः सुतास्तेषां तथैव च । गौतमं परिभर्त्स्यैव प्रत्यूचुर्धिग्वचो मुहुः ॥३७॥ ऋषय ऊचुः । मुखं न दर्शनीयं ते गम्यतां गम्यतामिति । दृष्ट्वा गोघ्नमुखं सद्यः सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ ३८ ॥ यावदाश्रममध्ये त्वं तावदेव हविर्भुजः । पितरश्च न गृह्णन्ति ह्यस्मद्दत्तं हि किञ्चन ॥ ३९ ॥ तस्माद्गच्छान्यतस्त्वं च परिवार-

---

गौतमके क्षेत्रमें धान और जौ थे, गणेश तहाँ दुर्बल गौ बन कर पहुँचे ॥२९॥ हे मुनिसत्तमो ! बरके योगसे वह गौ काँपती हुई तहाँ पहुँची और धान तथा जौं खाने लगी ॥ ३० ॥ इसी समय गौतम दैववश तहाँ पहुँचे, वह दयालु थे अतः तिनकोंकी मुट्ठीसे उसको हटाने लगे ॥३१॥ वह गौ मुट्ठी भर तृणोंका स्पर्श होते ही पृथ्वी पर गिर पड़ी और उन ऋषिके सामने उसी क्षण मर गई ॥ ३२ ॥ उस समय छिपे हुए सब ऋषियोंने और अशुभ ऋषिपत्नियों ने कहा, कि--यह गौतमने क्या कर डाला ॥ ३३ ॥ फिर हे विप्रो ! विस्मित हुए गौतमने चित्तमें दुःखित हो अहल्याको बुला दुःखके साथ कहा ॥ ३४ ॥ गौतमने कहा कि--हे देवि ! यह क्या हुआ, परमेश्वर क्यों कुपित होगए, अब मुझे क्या करना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये, यह हत्या आपड़ी ॥ ३५ ॥ सूतजीने कहा, कि--इसी समय ब्राह्मण गौतम को धमकाने लगे और विप्रपत्नियें दुर्वचन कह अहल्याको व्यथित करने लगीं ॥ ३६ ॥ और उनके दुर्बुद्धि शिष्य तथा पुत्र गौतमका तिरस्कार कर बारम्बार धिक्कार है, धिक्कार है कहने लगे ॥ ३७ ॥ ऋषियोंने कहा, कि--तेरा तो मुख न देखना चाहिये, गोहत्यारेके मुखको देखते ही सवस्त्र स्नान करना चाहिये ॥ ३८ ॥ जब तक तू आश्रमके भीतर रहेगा, तब तक हविका भक्षण करने वाले देवता और पितर हमारी दी हुई किसी वस्तुको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ३९ ॥ अतः हे गोहत्यारे पापी ! तू अपने परिवारको

समन्वितः। विलम्बं कुरु नैव त्वं धेनुहन्पापकारक ४० सूत उवाच। इत्युक्त्वा ते च तं सर्वे पाषाणैस्समताडयन्। व्यथां ददुरतीवास्मै त्वहल्यां च दुरुक्तिभिः ४१ ताडितो भर्त्सितो दुष्टैर्गौतमो गिरमब्रवीत्। इतो गच्छामि मुनयो ह्यन्यत्र निवसाम्यहम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा गौतमस्तस्मात्स्थानाच्च निर्गतस्तदा। गत्वा क्रोशं तदा चक्रे ह्याश्रमं तदनुज्ञया ॥४३॥ यावच्चैवाभिशापो वै तावत्कार्यं न किंचन। न कर्मण्यधिकारोऽस्ति दैवे पित्र्येऽथ वैदिके ॥ ४४ ॥ मासार्द्धं च ततो नीत्वा मुनीन्संप्रार्थयत्तदा। गौतमो मुनिवर्य्यस्स तेन दुःखेन दुःखितः ॥ ४५ ॥ गौतम उवाच। अनुकंप्यो भवद्भिश्च कथ्यतां क्रियते मया। यथा मदीयं पापं च गच्छेदिति निवेद्यताम् ॥ ४६ ॥ सूत उवाच। इत्युक्तास्ते तदा विप्रा नोचुश्चैव परस्परम्। अत्यन्तं सेवया पृष्टा मिलिता ह्येकतस्स्थिताः ॥ ४७ ॥ गौतमो दूरतः स्थित्वा नत्वा तानृषिसत्तमान्। पप्रच्छ विनयाविष्टः किं कार्यं हि मयाधुना ४८ इत्युक्ते मुनिना तेन गौतमेन महात्मना। मिलितास्सकलास्ते वै मुनयो वाक्यमब्रुवन् ॥ ४९ ॥ ऋषय ऊचुः। निष्कृतिं हि विना शुद्धिर्जायते न कदाचन। तस्मात्त्वं देहशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचर ॥५०॥ त्रिवारं पृथिवीं सर्वां कथ पापं

लेकर अन्यत्र चला जा, विलम्ब न कर ॥ ४० ॥ सूतजीने कहा, कि-इतना कह कर वे सब मुनिको पत्थरोंसे पीटने लगे और अहल्याको भी दुर्व्यचनों से व्यथा पहुँचाने लगे ॥ ४१ ॥ उनके ताड़ना और भर्त्सना करने पर गौतमने कहा, कि--हे मुनियों ! मैं यहाँसे जाता हूँ, अन्यत्र रह लूँगा ।४२। इस प्रकार कह कर गौतम उस स्थानसे निकल पड़े और उनकी आज्ञानुसार उन्होंने एक कोस पर जाकर आश्रम बनाया ॥ ४३ ॥ जब तक तुम पर यह अभिशाप रहे, तब तक तुम कुछ न करना क्योंकि--अब तुम्हें वैदिक दैव और पितृकर्म करनेका कोई अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ मुनिश्रेष्ठ गौतम मुनिने एक पक्ष तो विताया, फिर उस दुःखसे दुःखित हो मुनियोंसे प्रार्थना की ।४५। गौतमने कहा, कि--आपको मुझ पर कृपा करनी चाहिये, आप जो कुछ कहेंगे, मैं उसको करूँगा, यह मेरा पाप जिस प्रकार दूर हो वैसा उपाय बताइये ४६ सूतजीने कहा, कि--इस प्रकार कहने पर उन विप्रोंने कुछ न कहा, फिर जब बड़ी भारी सेवा करके बूझा, तब वह परस्पर मिल एकत्रित होकर बैठे ४७ तब गौतमने दूर पर खड़े हो उन ऋषिसत्तमोंको प्रणाम कर विनयपूर्वक बूझा, कि--अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ ४८ ॥ महात्मा गौतम मुनिके इस प्रकार कहने पर एकत्रित होकर बैठे हुए उन सब मुनियोंने कहा, ४९ ऋषियोंने कहा, कि-प्रायश्चित्तके विना शुद्धि नहीं होसकती, अतः आप देहशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करिये ॥ ५० ॥ आप अपना पाप कहते हुए तीन

प्रकाशयन् । पुनरागत्य चात्रैव चर मासव्रतं तथा ॥ ५१ ॥ शतमेकोत्तरं चैव ब्रह्मणोऽस्य गिरेस्तथा । प्रक्रमणं विधायैवं शुद्धिस्ते च भविष्यति ॥५२॥ अथवा त्वं समानीय गंगां स्नानं समाचर । पार्थिवानां तथा कोटिं कृत्वा देवं निषेवय ॥ गंगायां च ततः स्नात्वा पुनश्चैव भविष्यति । पुरा दश तथा चैकं गिरेस्त्वं क्रमणं कुरु ॥ ५३ ॥ शतकुम्भैस्तथा स्नात्वा पार्थिवं निष्कृतिर्भवेत् । इति तैरृषिभिः प्रोक्तस्तथेत्योमिति तद्वचः ॥ ५५ ॥ पार्थिवानां तथा पूजां गिरेः प्रक्रमणं तथा । कारयामि मुनिश्रेष्ठा आज्ञया श्रीमतामिह ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा सर्षिवर्यश्च कृत्वा प्रक्रमणं गिरेः । पूजयामास निर्माय पार्थिवान्मुनिसत्तमः ॥ ५७ ॥ अहल्या च ततस्साध्वी तच्च सर्वं चकार सा । शिष्याश्च प्रतिशिष्याश्च चक्रुस्सेवां तयोस्तदा

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सूत उवाच । एवं कृते तु ऋषिणा सस्त्रीकेन द्विजाशिवः । आविर्बभूव सशिवः प्रसन्नस्सगणस्तदा ॥ १ ॥ अथ प्रसन्नस्स शिवो वरं ब्रूहि महामुने । प्रसन्नोऽहं सुभक्त्या त इत्युवाच कृपानिधिः ॥ २ ॥ तदा तत्सुन्दरं रूपं दृष्ट्वा शम्भोर्महात्मनः । प्रणम्य शंकरं भक्त्या स्तुतिं चक्रे मुदान्वितः ॥ ३ ॥

वार सारी पृथिवीको परिक्रमा करिये, फिर यहां आन कर मासव्रत करिये ५१ तथा इस ब्रह्मगिरि पर एक सौ एक वार घूमिये, तब आपकी शुद्धि होगी ५२ अथवा आप गंगाजल लाकर स्नान कर एक करोड़ पार्थिव शिवलिंग बना कर शंकरकी पूजा करें ॥ ५३ ॥ फिर गंगास्नान कर इस पर्वतकी ग्यारह वार यात्रा करें ॥५४॥ और सौ घड़ोंसे पार्थिव शिव-लिंगको स्नान करावें तो उद्धार होगा, जब उन ऋषियोंने इस प्रकार कहा, तब ऋषिवर गौतमने कहा, कि--मैं इस बातको स्वीकार करता हूँ, हे मुनिश्रेष्ठो! मैं आप श्रीमानों की आज्ञासे पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन और पर्वतकी परिक्रमा करूँगा तब उन मुनिसत्तमने पर्वतकी प्रदक्षिणा कर पार्थिव शिवलिंग बना कर पूजन किया ॥ ५५-५७ ॥ और साध्वी अहल्याने भी सब ऐसा ही कर्म किया, तब गौतम मुनिके शिष्य और प्रशिष्य इन दोनोंको सेवा करने लगे ॥५८॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ❀ ❀ ❀

सूतजीने कहा, कि--हे द्विजो! जब ऋषिने और उनकी पत्नीने इस प्रकार प्रायश्चित्त किया तब शिवजी प्रसन्न होकर अपने गणोंको साथमें ले तहाँ प्रकट होगए ॥ १ ॥ उस समय कृपानिधि शंकर प्रसन्न होकर कहने लगे, कि-हे महामुने! मैं आपकी भक्तिसे प्रसन्न हूँ आप वर माँगिये ॥ २ ॥ महात्मा शंभुके उस सुन्दर रूपको देख ऋषि आनन्दमें भर भक्तिपूर्वक शंकर

स्तुत्वा बहु प्रणम्येशं बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः। निष्पापं कुरु मां देवाब्रवीदिति स गौतमः ॥ ४ ॥ सूत उवाच। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गौतमस्य महात्मनः। सुप्रसन्नतरो भूत्वा शिवो वाक्यमुपाददे ॥५॥ शिव उवाच। धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि निष्पापोऽसि सदा मुने। एतैर्दुष्टैः किल त्वं च छलितोऽसि खलात्मभिः ॥ ६ ॥ त्वदीयदर्शनाल्लोका निष्पापाश्च भवन्ति हि। किं पुनस्त्वं सपापोऽसि मद्भक्तिनिरतस्सदा ॥ ७ ॥ उपद्रवस्त्वयि मुने यैः कृतस्तु दुरात्मभिः। ते पापाश्च दुराचारा हत्यावन्तस्त एव हि ॥ ८ ॥ एतेषां दर्शनादन्ये पापिष्ठाः संभवन्तु च। कृतघ्नाश्च तथा जाता नैतेषां निष्कृतिः क्वचित् ॥ ९ ॥ सूत उवाच। इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै तेषां दुश्चरितं तदा। बहूवाच प्रभुर्विप्राः सत्कदोऽसत्सु दंडः ॥१० शर्वोक्तमिति स श्रुत्वा सुविस्मितमना ऋषिः। सुप्रणम्य शिवं भक्त्या सांजलिः पुनरब्रवीत् ॥ ११ ॥ गौतम उवाच। ऋषिभिस्तैर्महेशान ह्युपकारः कृतो महान्। यद्येवं न कृतं तैस्तु दर्शनं ते कुतो भवेत् ॥ १२ ॥ धन्यास्ते ऋषयो यैस्तु मह्यं शुभतरं कृतम्। तद्दुराचरणादेव मम स्वार्थो महानभूत् ॥ १३ ॥ सूत उवाच। इत्येवं तद्वचश्श्रुत्वा सुप्रसन्नो महेश्वरः। गौतमं प्रत्युवाचाशु कृपादृष्ट्या विलोक्य

को प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ गौतम शिवकी स्तुति कर और उनको अनेक बार प्रणाम कर हाथ जोड़ सामने खड़े हो कहने लगे, कि—हे देव ! आप मुझे निष्पाप करिये ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा, कि—महात्मा गौतम के इस वचनको सुन शिव परम प्रसन्न हो भाषण देने लगे ॥ ५ ॥ शिवने कहा, कि—हे मुने ! तुम धन्य हो ! कृतकृत्य हो और सदा निष्पाप हो, इन दूषित अन्तःकरण वाले दुष्टोंने तो आपके साथ छल किया था ॥६॥ तुम्हारे तो दर्शनसे ही प्राणी निष्पाप होजाते हैं, तुम मेरी भक्तिमें परायण हो, फिर तुम पापी कैसे होसकते हो ॥७॥ हे मुने ! जिन दुरात्माओंने आपके साथ उपद्रव किया, वे ही दुराचारी पापी हत्यारे हैं ॥ ८ ॥ इनके दर्शनसे भी दूसरे पापी होजावेंगे, यह कृतघ्न होगए, इनका कभी उद्धार नहीं होसकता ९ सूतजीने कहा, कि—प्रभु शंकरने इस प्रकार कह ऋषियोंका बहुतसा दुश्चरित्र कहा, क्योंकि—यह प्रभु सज्जनोंको सुख देने वाले हैं और दुष्टोंको दण्ड देने वाले हैं ॥ १० ॥ शिवकी बात सुन ऋषिके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और वह हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक प्रणाम कर फिर शिवसे कहने लगे ॥११॥ गौतम ने कहा, कि—हे महेशान ! इन ऋषियोंने तो मेरा बड़ा उपकार किया, यदि इन्होंने यह बात न की होती तो आपका दर्शन मुझे कैसे होता ? १२ जिन्हों ने मेरे साथ ऐसा शुभ व्यवहार किया, वे ऋषि धन्य हैं, उनके दुराचरण से मेरा बड़ा भारी स्वार्थ सिद्ध होगया ॥१३॥ सूतजीने कहा, कि—गौतमके

च ॥१४॥ शिव उवाच । ऋषिर्धन्योऽसि विप्रेन्द्र ऋषिश्रेष्ठतरोऽसि वै । ज्ञात्वा मां सुप्रसन्नं हि वृणु त्वं वरमुत्तमम् ॥ १५ ॥ सूत उवाच । गौतमोऽपि विचार्यैवं लोके विश्रुतमित्युत । अन्यथा न भवेदेव तस्माद्युक्तं समाचरेत् ॥ १६ ॥ निश्चित्यैवं मुनिश्रेष्ठो गौतमश्शिवभक्तिमान् । सांजलिर्नतशीर्षो हि शंकरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ गौतम उवाच । सत्यं नाथ ब्रवीषि त्वं तथापि पञ्चभिः कृतम् । नान्यथा भवतीत्यत्र यज्जातं जायतां तु तत् ॥ १८ ॥ यदि प्रसन्नो देवेश गंगा च दीयतां मम । कुरु लोकोपकारं हि नमस्तेऽस्तु नमोस्तु ते ॥१९॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा वचनं तस्य धृत्वा वै पादपंकजम् । नमश्चकार देवेशं गौतमो लोककाम्यया ॥२०॥ ततस्तु शंकरो देवः पृथिव्याश्च दिवश्च सः । सारं चैव समुद्धृत्य रक्षितं पूर्वमेव तत् ॥ २१ ॥ विवाहे ब्रह्मणा दत्तमवशिष्टं च किंचन । तत्तस्मै दत्तवाञ्शम्भुर्मुनये भक्तवत्सलः ॥ २२ ॥ गंगाजलं तदा तत्र स्त्रीरूपमभवत्परम् । तस्याश्चैव ऋषिश्रेष्ठः स्तुतिं कृत्वा नतिं व्यधात् ॥२३॥ गौतम उवाच । धन्यासि कृतकृत्यासि पावितं भुवनं त्वया । मां च पावय गंगे त्वं पतन्तं निरये ध्रुवम् २४ सूत उवाच । शम्भुश्चापि तदोवाच सर्वेषां हितकृच्छृणु । गंगे गौतममेनं त्वं पाव-

---

इस वचनको सुन महेश्वर प्रसन्न होगए और उनको कृपादृष्टिसे देखकर कहने लगे ॥१४॥ शिवने कहा, कि-हे विप्रेन्द्र ! आप धन्यवादके पात्र ऋषि हैं, आप परम श्रेष्ठ ऋषि हैं आप मुझको प्रसन्न जानकर उत्तम वर माँग लीजिये ॥ १५ ॥ सूतजीने कहा, कि-गौतमने विचार किया, कि—संसारमें जो बात प्रसिद्ध हो वह कभी उलटी नहीं पड़ती अतः उक्त बात करे ॥ १६ ॥ शिवके भक्त मुनिश्रेष्ठ गौतमने इस प्रकार निश्चय कर मस्तक झुका हाथ जोड़ कर शंकरसे कहा ॥ १७ ॥ गौतमने कहा, कि-हे नाथ ! यद्यपि आप सत्य कहते हैं पञ्चोंने जो बात कह दी, वह अन्यथा नहीं होनी चाहिये, जो बात होली सो हो ली ॥ १८ ॥ हे देवेश ! यदि अब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे गंगा दीजिये. ऐसा कर संसारका उपकार करिये, आपको प्रणाम है ! आपको प्रणाम है !! ॥ १९ ॥ सूतजीने कहा, कि-शिवसे यह बात कह गौतम संसारका हित करनेकी इच्छासे देवेशके चरणकमलोंको पकड़ कर उनको प्रणाम करने लगे ॥ २० ॥ तब भगवान् शंकरने पृथ्वी और स्वर्गपर से सार लेकर जो पहिले ही सुरक्षित रख छोड़ा था ॥२१॥ ब्रह्माजीने विवाह में जो दिया था उसमेंसे बचा हुआ जल भक्तवत्सल शंभुने उनको दिया २२ उस समय वह गंगाजल स्त्रीरूप होगया, ऋषिश्रेष्ठने उसकी स्तुति कर प्रणाम किया ॥ २३ ॥ गौतमने कहा, कि-हे गंगे ! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं आप संसारको पवित्र करती हैं, अतः नरकमें गिरते हुए मेरी भी आप रक्षा करें २४

रस्त्र मदाज्ञया ॥ २५ ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य शम्भोश्च गौतमस्य च । उवाचैव शिवं गंगा शिवशक्तिर्हि पावनी ॥२६॥ गंगोवाच । ऋषिं तु पावयित्वाहं परिवारयुतं प्रभो । गमिष्यामि निजस्थानं वचः सत्यं ब्रवीमि ह ।२७। सूत उवाच । इत्युक्ते गंगया तत्र महेशो भक्तवत्सलः । लोकोपकरणार्थाय पुनर्गङ्गां वचोऽब्रवीत् ॥ २८ ॥ शिव उवाच । त्वया स्थातव्यमत्रैवाब्रजेद्यावत्कलियुगः। वैवस्वतो मनुर्देवि ह्यष्टाविंशत्तमो भवेत् ॥ २९ ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वामिनश्शंकरस्य तत् । प्रत्युवाच पुनर्गंगा पावनी सा सरिद्वरा ॥ ३० ॥ गंगोवाच । माहात्म्यमधिकं चेत्स्यान्मम स्वामिन्महेश्वर । सर्वेभ्यश्च तदा स्थास्ये धरायां त्रिपुरान्तक ॥३१॥ किंचान्यच्च शृणु स्वामिन्वपुषा सुन्दरेण ह । तिष्ठ त्वं मत्समीपे वै सगणस्साम्बिकः प्रभो ॥ ३२ ॥ सूत उवाच । एवं तस्य वचः श्रुत्वा शंकरो भक्तवत्सलः । लोकोपकरणार्थाय पुनर्गङ्गां वचोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥ शिव उवाच । धन्यासि श्रूयतां गंगे ह्यहं भिन्नस्त्वया न हि । तथापि स्थीयते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि ॥३४॥ सूत उवाच । इत्येवं वचनं

सूतजीने कहा, कि--उस समय शंभुने भी सबका हित करने वाला जो वचन कहा था, उसको सुनो, कि-हे गंगे ! इस गौतमको तुम मेरी आज्ञासे पवित्र करो ॥ २५ ॥ सूतजीने कहा, कि--शंभुके और गौतमके इस वचनको सुन, शिवकी शक्ति पवित्र करने वाली गंगाजीने शिवसे कहा ॥ २६ ॥ गंगाजीने कहा, कि--हे प्रभो ! मैं ऋषिको और इनके परिवारको पवित्र कर अपने स्थान को चली जाऊँगी, यह बात मैं सत्य कह रही हूँ ॥२७॥ सूतजीने कहा, कि—गंगाजीके इस प्रकार कहने पर भक्तवत्सल महेशने संसारका उपकार करनेके लिये गंगाजीसे फिर कहा ॥ २८ ॥ शिवने कहा, कि हे देवि ! जब तक वैवस्वत मनुका अट्ठाईसवाँ कलियुग आवे, तब तक तुम यहाँ ही रहो ॥२९॥ सूतजीने कहा, कि--स्वामी शंकरके इस वचनको सुन नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र करने वाली गंगा फिर कहने लगीं ॥ ३० ॥ गंगाजीने कहा, कि-हे महेश्वर ! हे त्रिपुरांतक ! हे स्वामिन् ! यदि पृथिवी पर मेरा माहात्म्य सबसे अधिक हो तब मैं यहाँ टिक सकती हूँ ॥ ३१ ॥ हे स्वामिन् ! और एक बात सुनिये, कि-हे प्रभो ! आप अपने सुन्दर स्वरूपसे अम्बिका और गणोंके साथ मेरे समीप स्थित रहें ॥ ३२ ॥ सूतजीने कहा, कि-गंगाजीकी इस बातको सुन भक्तवत्सल शंकर संसारका उपकार करनेके लिये गंगाजीसे फिर बोले ॥३३॥ शिवने कहा, कि-हे गंगे ! तुम धन्य हो, सुनो ! मैं तुमसे भिन्न नहीं हूँ, तो भी मैं यहाँ स्थित रहूँगा, आप भी यहाँ स्थित रहें ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा, कि—स्वामी परमेश्वरके इस वचनको सुन गंगाने मनमें प्रसन्न होकर उनका

श्रुत्वा स्वामिनः परमेशितुः । प्रसन्नमानसा भूत्वा गंगा च प्रत्यपूजयत् ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवा ऋषयश्च पुरातनाः । सुतीर्थान्यप्यनेकानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ ३६ ॥ आगत्य,गौतमं सर्वे गंगां च गिरिशं तथा । जयजयेति भाषंतः पूजयामासुरादरात् ॥३७॥ ततस्ते निर्जरास्सर्वे तेषां चक्रुः स्तुतिं मुदा । करान् बद्धा नतस्कंधा हरिब्रह्मादयस्तदा ॥ ३८ गङ्गा प्रसन्ना तेभ्यश्च गिरिशश्चोचतुस्तदा । वरं ब्रूत सुरश्रेष्ठा दद्वो वः प्रियकाम्यया ॥३९॥ देवा ऊचुः । यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना त्वं सरिद्वरे । स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम् ॥४०॥ गङ्गोवाच । यूयं सर्वप्रियार्थं च तिष्ठथात्र न किं पुनः । गौतमं क्षालयित्वाहं गमिष्यामि यथागतम् ॥ ४१ ॥ भवत्सु मे विशेषोऽत्र ज्ञेयश्चैव कथं सुराः । तत्प्रमाणं कृतं चेत्स्यात्तदा तिष्ठाम्यसंशयम् ॥ ४२ ॥ सर्वे ऊचुः । सिंहराशौ यदा स्याद्वै गुरुस्सर्वसुहृत्तमः । तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ॥ ४३ ॥ एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह । क्षालितं यद्भवेदेवं मलिनास्स्मः सरिद्वरे ॥ ४४ ॥ तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामस्सर्वथा प्रिये । त्वत्सकाशं महादेवि प्रोच्यते सत्यमादरात् ॥ ४५ ॥ अनुग्रहाय लोकानामस्माकं प्रियकाम्यया । स्थातव्यं शंकरे-

---

सत्कार किया ॥३५॥ इसी समय देवता और प्राचीन ऋषि, अनेक श्रेष्ठ तीर्थ और अनेक प्रकारके क्षेत्र वहाँ आये और गंगा शिव तथा गौतमकी जयजयकार करते हुए आदरपूर्वक उनकी पूजा करने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सब देवता और हरि ब्रह्मा आदि आनन्दमें भर कंधा झुका हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ तब प्रसन्न होकर गंगाने और शिवने उनसे कहा, कि हे श्रेष्ठ देवताओं ! तुम वर माँगो हम तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे उस वरको देंगे ॥ ३९ ॥ देवताओंने कहा, कि- हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और हे सरिद्वरे ! यदि आप भी प्रसन्न हैं, तो हमारा तथा मनुष्योंका उपकार करनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हो जाइये ॥ ४० ॥ गंगाजीने कहा, कि--तुम ही सबका प्रिय करनेके लिये यहाँ क्यों नहीं ठहर जाते, मैं तो गौतमको पवित्र कर जैसे आई हूँ, तैसे लौट जाऊँगी ॥ ४१ ॥ आपमें मेरी विशेषता किसी प्रकार समझी जाय और उसका प्रमाण होजाय, तो मैं ठहरूँगी ॥४२॥ सबने कहा, कि--जब सबके मित्र बृहस्पतिजी सिंहराशि पर आया करेंगे, तब हम सब यहाँ आया करेंगे ॥ ४३ ॥ हे सरिद्वरे ! ग्यारह वर्ष तक लोगोंका जो पाप क्षालित होगा, उससे हम मलिन होजावेंगे ॥ ४४ ॥ हे प्रिय महादेवि ! उस पापको धोनेके लिये हम आपके पास आया करेंगे, यह हम आदरपूर्वक सत्य बात कह रहे हैं ॥ ४५ ॥ अतः हे सरिद्वरे ! हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे संसार पर अनुग्रह करनेके लिये आपको और शंकरको भी यहाँ रहना

णापि त्वया चैव सरिद्वरे ॥ ४६ ॥ यावत्सिंहे गुरुश्चैव स्थास्यामस्तावदेव हि । त्वयि स्नानं त्रिकालं च शंकरस्य च दर्शनम् ॥ ४७ ॥ कृत्वा स्वपापं निखिलं विमोचयामो न संशयः । स्वदेशांश्च गमिष्यामो भवच्छासनतो वयम् ॥४८॥ सूत उवाच । इत्येवं प्रार्थितस्तैस्तु गौतमेन महर्षिणा । स्थितोऽसौ शंकरः प्रीत्या स्थिता सा च सरिद्वरा ॥ ४९ ॥ सा गङ्गा गौतमी नाम्ना लिंगं त्र्यंबकमीरितम् । ख्याता ख्यातं बभूवाथ महापातकनाशनम् ॥ ५० ॥ तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ । आयांति सर्वतीर्थानि क्षेत्राणि दैवतानि च ॥ ५१ ॥ सरांसि पुष्करादीनि गङ्गाद्यास्सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवाः संति वै गौतमीतटे ॥ ५२ ॥ यावत्तत्र स्थितानीह तावत्तेषां फलं नहि । स्वप्रदेशे समायातास्तर्हितेषां फलं भवेत् ॥ ५३ ॥ ज्योतिर्लिंगमिदं प्रोक्तं त्र्यंबकं नाम विश्रुतम् । स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम् ॥ ५४ ॥ यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकनामकम् । पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकं हि पूजितं गौतमेन ह । सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम् ॥ ५६ ॥ इति वश्च

चाहिये ॥४६॥ जब तक सिंह राशि पर गुरु रहेगा, तब तक हम यहाँ टिकेंगे, आपमें तीनों समय स्नान और शंकरका दर्शन करके हम अपने सब पापोंसे मुक्त होजावेंगे, फिर आपकी आज्ञा लेकर हम अपने स्थानोंको चले जाया करेंगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा, कि—उनके और महर्षि गौतमके इस प्रकार प्रार्थना करने पर शंकर और गंगा वहाँ प्रीतिपूर्वक प्रतिष्ठित होगए ४९ वह गंगा वहाँ गौतमी गंगाके नामसे प्रसिद्ध हुई और महापातकोंको नष्ट करने वाला शिवलिंग त्र्यम्बकेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ ५० उस दिनसे जब सिंह राशि पर बृहस्पति आते हैं तब गौतमीके तट पर सकल तीर्थ क्षेत्र, वासुदेव आदि देवता पुष्कर आदि सरोवर और नदियोंमें श्रेष्ठ यह गंगादेवी पधारती हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जब तक यह वहाँ विराजमान रहते हैं, तब तक अन्यत्र उनका फल नहीं होता, जब वे अपने स्थान पर पहुँचते हैं, तब वहाँ उनका फल होता है ॥ ५३ ॥ यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगका वर्णन कर दिया, यह गौतमीके तट पर प्रसिद्ध शिवलिंग महापातकोंको नष्ट करने वाला है ॥ ५४ ॥ जो प्राणी भक्तिपूर्वक त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करता है पूजन करता है और स्तुति करके प्रणाम करता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है गौतमका पूजा हुआ त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग यहाँ सब कामनायें पूर्ण करने वाला है और परलोकमें मुक्ति देने वाला है ॥५६॥ हे मुनीश्वरों ! जो आपने बूझा था, वह आपसे इस प्रकार कह दिया, अब आप और क्या

संमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः। किमन्यदिच्छथ श्रोतुं तद् ब्रु वां वो न संशयः॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

ऋषय ऊचुः। गङ्गा च जलरूपेण कुतो जाता वद प्रभो। तन्माहात्म्यं विशेषेण कुतो जातं वद प्रभो ॥ १ ॥ यैर्विप्रै गौतमायैव दुःखं दत्तं दुरात्मभिः। तेषां किं च ततो जातमुच्यतां व्याससद्गुरो ॥२॥ सूत उवाच। एवं संप्रार्थिता गङ्गा गौतमेन तदा स्वयम्। ब्रह्मणश्च गिरेर्विप्रा द्रुतं तस्मादवातरत्॥३॥ औदुम्बरस्य शाखायास्तत्प्रवाहो विनिस्सृतः। तत्र स्नानं मुदा चक्रे गौतमो विश्रुतो मुनिः ४ गौतमस्य च ये शिष्या अन्ये चैव महर्षयः। समागताश्च ते तत्र स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ५ ॥ गङ्गाद्वारं च तन्नाम प्रसिद्धमभवत्तदा। सर्वपापहरं रम्यं दर्शनान्मुनिसत्तमाः ॥ ६ ॥ गौतमस्पर्द्धिनस्ते च ऋषयस्तत्र चागताः। स्नानार्थं तांश्च सा दृष्ट्वा ह्यंतर्धानं गता द्रुतम् ॥ ७ ॥ मामेति गौतमस्तत्र व्याजहार वचो द्रुतम्। मुहुर्मुहुः स्तुवन् गङ्गां सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ८ ॥ गौतम उवाच। इमे च श्रीमदांधाश्च साधवो वाप्यसाधवः। एतत्पुण्यप्रभावेण दर्शनं दीयतां त्वया ।९। सूत उवाच। ततो वाणी समुत्पन्ना गङ्गाया व्योममंडलात्। तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठा

सुनना चाहते हैं, वह मैं कहूँ ।। ५७ ।। छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।। २६ ।।

ऋषियोंने कहा, कि—हे प्रभो ! गंगा जलरूपसे कहाँ हुई हैं, इसको कहिये तथा हे प्रभो ! इनका माहात्म्य विशेष कहाँ हुआ है, इसको भी कहिये ।।१।। आपके सद्गुरु तो व्यासजी हैं अतः यह भी कहिये, कि- जिन दुरात्मा विप्रोंने गौतमको दुःख दिया था, उनको क्या हुआ था ।। २ ।। सूतजीने कहा, कि - हे विप्रों ! गौतमके इस प्रकार प्रार्थना करने पर गंगा उस ब्रह्मगिरिसे शीघ्र ही अवतीर्ण हुई थीं ।। ३ ।। गूलड़की शाखासे उनका प्रवाह निकला था, प्रसिद्ध मुनि गौतमने उसमें आनन्दपूर्वक स्नान किया था ।। ४ ।। गौतमके जो शिष्य तथा दूसरे भी महर्षि जो वहाँ आये थे, उन्होंने भी वहाँ आनन्दपूर्वक स्नान किया ।। ५ ।। तब वह स्थल गंगाद्वार नामसे प्रसिद्ध हुआ, हे मुनिसत्तमों ! उस रमणीय स्थानका दर्शन करनेसे सब प्रकारके पाप नष्ट होजाते हैं ।।६।। गौतमसे हिर्स रखने वाले मुनि भी वहाँ स्नान करनेको पहुँचे उनको देख कर गंगाजी शीघ्रतापूर्वक अन्तर्धान होगईं ।। ७ ।। तब गौतम मस्तक नमा हाथ जोड़ वारम्वार स्तुति कर कहने लगे, कि—ऐसा न करिये, ऐसा न करिये ८ गौतमने कहा, कि ये लक्ष्मीके मदसे चाहें अंधे हों, साधु हों, वा असाधु हों, इनके पुण्यके प्रभावसे आप इनको दर्शन दीजिये ।। ९ ।। सूतजीने कहा, कि—तदनन्तर आकाशमण्डलसे गंगाकी वाणी सुनाई दी, हे श्रेष्ठ ऋषियों !

गङ्गावचनमुत्तमम् ॥ १० ॥ एते दुष्टतमाश्चैव कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः । जाल्माः पाखंडिनश्चैव द्रष्टुं वर्ज्याश्च सर्वदा ॥११॥ गौतम उवाच । मातश्च श्रूयतामेतन्महतां गिर एव च । तस्मात्त्वया च कर्त्तव्यं सत्यं च भगवद्वचः ॥ १२ ॥ अपकारिषु यो लोक उपकारं करोति वै । तेन पूतो भवाम्यत्र भगवद्वचनं त्विदम् ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गौतमस्य महात्मनः । पुनर्वाणी समुत्पन्ना गङ्गाया व्योममंडलात् ॥१४॥ कथ्यते हि त्वया सत्यं गौतमर्षे शिवं वचः । तथापि संग्रहार्थं च प्रायश्चित्तं चरंतु वै ॥१५॥ शतमेकोत्तरं चात्र कार्यं प्रक्रमणं गिरेः । भवच्छासनतस्त्वेतैस्त्वदधीनैर्विशेषतः ॥ १६ ॥ ततश्चैवाधिकारश्च जायते दुष्टकारिणाम् । मद्दर्शने विशेषेण सत्यमुक्तं मया मुने ॥ १७ ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चक्रुर्वै ते तथाऽखिलाः । संप्रार्थ्य गौतमं दीनाः क्षंतव्यो नोऽपराधकः ॥ १८ ॥ एवं कृते तदा तेन गौतमेन तदाज्ञया । कुशावर्तं नाम चक्रे गङ्गाद्वाराद्धोगतम् ॥ १९ ॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सा तस्य प्रीतये पुनः । कुशावर्त्तं च विख्यातं तीर्थमासीदनुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्र स्नातो नरो यस्तु मोक्षाय परिकल्पते । त्यक्त्वा सर्वानघान्सद्यो विज्ञानं प्राप्य दुर्लभम् ॥ २१ ॥ गौतमो ऽप-

---

गंगाके उस उत्तम वचनको आप सुनें ॥१०॥ ये बडे दुष्ट हैं, कृतघ्न हैं, स्वामिद्रोही हैं, जाल्म हैं, पाखण्डी हैं, इनका दर्शन नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥ गौतमने कहा, कि —"जो अपकार करने वालोंके साथ उपकार करता है, उससे मैं पवित्र होता हूँ" यह भगवान्का वचन है, अतः हे मातः ! बड़े आदमियोंकी इस बातको आप सुनें और भगवान्के इस वचनको आप भी सत्य करें १२।१३ सूतजीने कहा, कि—महात्मा गौतम मुनिकी इस बातको सुन कर, आकाश मण्डलसे गंगाजीकी वाणी फिर सुनाई दी कि—॥ १४ ॥ हे गौतम ऋषे ! आप कल्याणकारी सत्य वचन ही कह रहे हैं तथापि संसारको शिक्षा देनेके लिये ये प्रायश्चित्त करें ॥ १५ ॥ और इनको आपके अधीन रह कर आपकी आज्ञासे इस पर्वतकी एकसौ एक परिक्रमा करनी चाहिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! तब इन दूषित कर्म करने वालोंको मेरे दर्शन करनेका अधिकार प्राप्त होगा, यह बात मैंने सत्य सत्य कह दी ॥ १७ ॥ सूतजीने कहा, कि-उन सबने गंगाजीके इस वचनको सुन कर वैसा ही किया, गौतमसे दीनतापूर्वक प्रार्थना की, कि—हमारा अपराध क्षमा करिये ॥ १८ ॥ इस प्रकार करने पर गौतमने गंगाजीकी आज्ञासे गंगाद्वारसे नीचे कुशावर्त नामक तीर्थ बनाया ॥१९॥ तब गंगाजी गौतमकी प्रीतिके लिये वहाँ प्रकट हुईं और वह स्थल कुशावर्त्त नामक श्रेष्ठतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २० ॥ मनुष्य वहाँ स्नान करने पर सब पापोंसे मुक्त हो तत्काल दुर्लभ ज्ञानको पा मोक्ष पानेमें समर्थ होजाता है २१

यश्चान्ये मिलिताश्च परस्परम् । लज्जितास्ते तदा ये च कृतघ्ना ह्यभवन्पुरा २२ ऋषय ऊचुः । अस्माभिरन्यथा सूत श्रुतं तद्वर्णयामहे । गौतमस्तान्द्विजान् क्रुद्धः शशापेति प्रबुध्यताम् ॥ २३ ॥ सूत उवाच । द्विजास्तदपि सत्यं वै कल्पभेदसमाश्रयात् । वर्णयामि विशेषेण तां कथामपि सुव्रताः ॥ २४ ॥ गौतमोऽपि ऋषीन्दृष्ट्वा तदा दुर्भिक्षपीडितान् । तपश्चकार सुमहद्वरुणस्य महात्मनः ॥२५॥ अक्षय्यं कल्पयामास जलं वरुणदायया । ततो व्रीहीन् यवांश्चैव वापयामास भूरिशः २६ एवं परोपकारी स गौतमो मुनिसत्तमः । आहारं कल्पयामास तेभ्यः स्वतपसो बलात् ॥ २७ ॥ कदाचित्तत्स्त्रियो दुष्टा जलार्थमपमानिताः । ऊचुः पतिभ्यस्ताः क्रुद्धा गौतमेर्ष्याकरं वचः ॥२८॥ ततस्ते भिन्नमतयो गां कृत्वा कृत्रिमां द्विजाः । तद्धान्यभक्षणासक्तां चक्रुस्तां कुटिलाशयाः ॥ २९ ॥ स्वधान्यभक्षणासक्तां गां दृष्ट्वा गौतमस्तदा । तृणेन ताडयामास शनैस्तां संनिवारयन् ॥ ३० ॥ तृणसंस्पर्शमात्रेण सा भूमौ पतिता च गौः । मृता ह्यभूत्क्षणं विप्रा भाविकर्मवशात्तदा ३१ गौर्हता गौतमेनेति तदा ते कुटिलाशयाः । एकत्रीभूय तत्रत्याः सकला ऋषयोऽवदन् ॥ ३२ ॥ ततस्स गौतमो भीतो गौर्हतेति बभूव ह । चकार विस्मयं नार्य-

---

उस समय गौतम तथा दूसरे ऋषि परस्पर मिले उस समय जो कृतघ्न थे वे लज्जित हुए ॥ २२ ॥ ऋषियोंने कहा, कि—हे सूतजी ! हमने यह घटना दूसरी रीतिसे सुनी है, कि—गौतमने क्रोधमें भर कर उन द्विजोंको शाप दे दिया था ॥ २३ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे सुव्रत द्विजों ! कल्पभेदसे यह घटना भी सत्य है, इस कथाका भी मैं विशेषरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ २४ ॥ कि—उस समय गौतमने ऋषियोंको दुर्भिक्षसे पीड़ित देख महात्मा वरुणके निमित्त बड़ा भारी तप किया ॥ २५ ॥ और वरुणकी दयासे अक्षय जल तहाँ भर दिया और बहुतसे धान तथा जौं तहाँ बुवा दिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार परोपकारी मुनिसत्तम गौतमने अपने तपके बलसे ऋषियोंके लिये भोजनका प्रबन्ध कर दिया था ॥ २७ ॥ एक समय जलके लिये अपमानित हुई उनकी दुष्ट स्त्रियोंने क्रोधमें भर अपने पतियोंसे गौतमसे डाह करनेकी बात कही २८ तब उन भ्रष्ट बुद्धि और कुटिल चित्त वाले मुनियोंने बनावटी गौ बना कर उनके धान्यको चुगनेमें लगा दी ॥ २९ ॥ गौतमने गौको अपना अन्न खाती देख उसको हटानेके लिये धीरेसे उसको तृणोंसे मारा ॥ ३० ॥ हे विप्रों ! तृणोंसे छूते ही वह गौ प्रारब्धकर्मवश पृथिवी पर गिर क्षण भरमें ही मर गई ३१ तब कुटिल आशय वाले सकल ऋषियोंने तहाँ एकत्रित होकर कहा, कि गौतमजी ने गौ मार डाली ॥ ३२ ॥ तब गौतम मुनि गौ मारी गई समझ कर डर गए, और शिव-भक्त गौतम उनकी स्त्री अहल्या तथा उनके शिष्योंको इस घटना

हत्याशिष्यैश्शिवानुगः ॥ ३३ ॥ ततस्त्र गौतमो ज्ञात्वा तां गां क्रोधसमाकुलः । शशाप तानृषीन् सर्वान् गौतमो मुनिसत्तमः ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच । यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा मे विशेषतः । शिवभक्तस्य सततं स्युर्वेदविमुखास्सदा ।३५। अद्यप्रभृति वेदोक्तसत्कर्मणि विशेषतः । मा भूयाद्भवतां श्रद्धा शैवमार्गे विमुक्तिदे ॥ ३६ ॥ अद्यप्रभृति दुर्मार्गे तत्र श्रद्धा भवेत्तु वः । मोक्षमार्गविहीने हि सदा श्रुतिबहिर्मुखे ॥ ३७ ॥ अद्यप्रभृति भालानि मृत्लिप्तानि भवन्तु वः । संसक्ता नरके यूयं भालमृल्लेपना द्विजाः ॥ ३८ ॥ भवंतो मा भविष्यंतु शिवैकपरदैवताः । अन्यदेवसमत्वेन जानंतु शिवमद्वयम् ॥ ३९ ॥ मा भूयाद्भवतां प्रीतिश्शिवपूजादिकर्मणि । शिवनिष्ठेषु भक्तेषु शिवपर्वसु सर्वदा ॥ ४० ॥ अद्य दत्ता मया शापा यावंतो दुःखदायकाः । तावंतस्संतु भवतां संततावपि सर्वदा ॥४१॥ अशैवास्संतु भवतां पुत्रपौत्रादयो द्विजाः । पुत्रैस्सहैव तिष्ठन्तु भवंतो नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ ततो भवंतु चाण्डाला दुःखदारिद्र्यपीडिताः । शठा निन्दाकरास्सर्वे तप्तमुद्रांकितास्सदा ।।४३।। सूत उवाच । इति शप्त्वा मुनीन् सर्वान् गौतमस्स्वाश्रमं ययौ । शिवभक्तिं चकारातिं स बभूव सुपावनः ॥४४॥ ततस्ते खिन्नहृदया ऋषयस्तेऽखिला द्विजाः । कांच्यां चक्रुर्निवासं हि शैवधर्मबहिष्कृताः ४५

से विस्मय हुआ ।। ३१ ।। तदनन्तर मुनिसत्तम गौतमने उस गौको (बनावटी) जान क्रोधमें भर कर उन सब ऋषियोंको शाप देदिया ।। ३४ ।। गौतमने कहा, कि—तुम सब दुरात्मा मुझ शिवभक्तको सदा दुःख देते रहते हो, अतः तुम वेदविमुख रहो ।। ३५ ।। आजसे तुम्हारी वेदोक्त सत् कर्मोंमें और विशेषतः मुक्ति देने वाले शैवमार्गमें श्रद्धा न रहे ।। ३६ ।। आजसे श्रुतिसे बहिष्कृत, मोक्षमार्गसे हीन दूषित मार्गोंमें ही श्रद्धा रहे ।। ३७ ।। आजसे तुम्हारे मस्तक पर मट्टी लगी रहे और हे अपने भाल पर मट्टी पोतने वाले द्विजो ! तुम नरक में पड़ो ।। ३८ ।। तुम एक शिवको ही परम-देवता न समझो और अनुपम शिवको भी दूसरे देवताओंकी समान समझो ।। ३९ ।। तुम्हारी शिवपूजा आदि कर्मोंमें, शिवनिष्ठ भक्तोंमें और शिवपर्वोंमें प्रीति न रहे ।। ४० ।। मेरे दिये हुए ये जितने दुःखदायी शाप हैं, ये आपकी सन्तानोंमें भी सदा बने रहें ।। ४१ ।। हे द्विजो ! तुम्हारे पुत्र पौत्र आदि शिवभक्ति न करें, अतः तुम पुत्रों सहित नरकमें पड़ो ।। ४२ ।। फिर तुम दुःख और दरिद्रतासे पीड़ित चाण्डाल बनो, दुष्ट बनो, सबकी निन्दा करो और तपी हुई मुद्रासे अंकित रहो ४३ सूतजीने कहा, कि गौतम सकल मुनियोंको इस प्रकार शाप देकर अपने आश्रम को चले गए और बड़ी भारी शिवभक्ति कर पवित्र करने वाले होगए ।४४। हे द्विजो ! तब उन शिवभक्तिविहीन सम्पूर्ण ऋषियोंने हृदयमें खिन्न हो

तत्पुत्राश्चाभवन्सर्वे शैवधर्मबहिष्कृताः । अग्रे तद्वद्भविष्यंति कलौ बहुजनाः खलाः ॥ ४६ ॥ इति प्रोक्तमशेषेण तद्वृत्तं मुनिसत्तमाः । पूर्ववृत्तमपि प्राज्ञाः श्रुतं सर्वैस्तु चादरात् ॥ ४७ ॥ इति वश्च समाख्यातो गौतम्याश्च समुद्भवः । माहात्म्यमुत्तमं चैव सर्वपापहरं परम् ॥ ४८ ॥ त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं ज्योतिर्लिंगस्य कीर्तितम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४९ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वैद्यनाथेश्वरस्य हि । ज्योतिर्लिंगस्य माहात्म्यं श्रूयतां पापहारकम् ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सूत उवाच । रावणो राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः । आरराध हरं भक्त्या कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १ ॥ आराधितः कियत्कालं न प्रसन्नो हरो यदा । तदा चान्यत्तपश्चक्रे प्रसादार्थं शिवस्य सः ॥ २ ॥ ततश्चायं हिमवतस्सिद्धिस्थानस्य वै गिरेः । पौलस्त्यो रावणश्श्रीमान् दक्षिणे वृक्षखंडके ॥३॥ भूमौ गर्तं वरं कृत्वा तत्राग्निं स्थाप्य स द्विजाः । तत्सन्निधौ शिवं स्थाप्य हवनं स चकार ह ॥ ४ ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थंडिलेशयः । शीते जलांतरस्थो हि त्रिधा चक्रे

काञ्चीपुरीमें निवास किया ॥ ४५ ॥ उनके सब पुत्र भी शिवभक्तिसे शून्य रहे, कलियुगमें भी आगे ऐसे बहुतसे मनुष्य होंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तमों ! यह सब वृत्तान्त आपसे कह दिया, हे बुद्धिमानों ! पहिला वृत्तान्त भी आपने आदरपूर्वक सुन ही लिया है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार आपसे गौतमी गंगाकी उत्पत्ति और इनका सब पापोंको दूर करने वाला माहात्म्य आपसे कह दिया ॥ ४८ ॥ और ज्योतिर्लिङ्ग त्र्यम्बक माहात्म्य भी आपसे कह दिया, इसको सुन कर मनुष्य सकल पापोंसे बच जाता है ॥ ४९ ॥ अब मैं वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गके पापोंको दूर करने वाले माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ ५० ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

सूतजीने कहा, कि-सम्मान रखने वाले और सम्मान करनेमें परायण राक्षसश्रेष्ठ रावणने पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर्वत पर शिवकी भक्तिपूर्वक आराधना की ॥ १ ॥ जब कुछ समय तक आराधना करने पर भी शिव प्रसन्न न हुये, तब वह शिवको प्रसन्न करनेके लिये दूसरा तप करने लगा ॥२ तदनन्तर पुलस्त्यनन्दन श्रीमान् रावणने हिमवान् पर्वतके दक्षिणमें सिद्धि-स्थान स्थान पर वृक्षखण्डोंमें भूमिमें एक श्रेष्ठ गड्ढा खोदा और हे द्विजों ! तहाँ उसने अग्निको स्थापित कर उसके समीप शिवको स्थापित किया और हवन करने लगा ॥३॥४॥ वह ग्रीष्ममें पञ्चाग्निके बीचमें बैठता था, वर्षामें खुली भूमि पर लेटता था और शीतमें जलके भीतर खड़ा रहता था, इस

तपश्च सः ॥ ५ ॥ चकारैवं बहुतपो न प्रसन्नस्तदापि हि । परमात्मा महेशानो दुराराध्यो दुरात्मभिः ॥६॥ ततश्शिरांसि छित्त्वा च पूजनं शंकरस्य वै । प्रारब्धं दैत्यपतिना रावणेन महात्मना ७ एकैकं च शिरश्छिन्नं विधिना शिवपूजने । एवं सत्क्रमतस्तेनच्छिन्नानि नव वै यदा ॥८॥ एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नश्शंकरस्तदा । आविर्बभूव तत्रैव संतुष्टो भक्तवत्सलः ॥९॥ शिरांसि पूर्ववत्कृत्वा नीरुजानि तथा प्रभुः । मनोरथं ददौ तस्मादतुलं बलमुत्तमम् ॥ १० ॥ प्रसादं तस्य संप्राप्य रावणस्स च राक्षसः । प्रत्युवाच शिवं शंभुं नतस्कंधः कृतांजलिः ॥ ११ ॥ रावण उवाच । प्रसन्नो भव देवेश लंकां च त्वां नयाम्यहम् । सफलं कुरु मे कामं त्वामहं शरणं गतः ॥ १२ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तश्च तदा तेन शंभुर्वै रावणेन सः । प्रत्युवाच विचेतस्कः संकटं परमं गतः ॥ १३ ॥ शिव उवाच । श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ वचो मे सारवत्तया । नीयतां स्वगृहे मे हि सद्भक्त्या लिंगमुत्तमम् ॥ १४ ॥ भूमौ लिंगं यदा त्वं च स्थापयिष्यसि तत्र वै । स्थास्यत्यत्र न संदेहो यथेच्छसि तथा कुरु ॥१५॥ सूत उवाच । इत्युक्तश्शंभुना तेन रावणो राक्षसेश्वरः । तथेति तत्समादाय जगाम भवनं निजम् ॥१६॥ आसीन्मूत्रोत्सर्गकामो मार्गे हि शिवमायया ।

प्रकार वह तीन प्रकारसे तप करने लगा ॥ ५ ॥ इस प्रकार उसने बड़ा तप किया तो भी शिव प्रसन्न न हुए, क्योंकि—परमात्मा महेश्वर दुरात्माओंको कठिनतासे आराधना करने देते हैं ॥ ६ ॥ तब तो दैत्यपति महात्मा रावणने अपने शिरोंको काट कर शिवका पूजन करना आरंभ कर दिया ॥ ७ ॥ वह विधिपूर्वक शिवपूजन कर एक एक शिर काटने लगा, इस प्रकार क्रमसे उसने जब नौ शिर काट डाले ॥ ८ ॥ और जब एक ही शिर बाकी रहा जब भक्तवत्सल शंकर प्रसन्न होकर प्रकट होगए ॥ ९ ॥ और प्रभु शङ्करने उसके शिरोंको पहिलेकी समान हो व्यथारहित कर देदिया और उसका मनोरथ पूर्ण करते हुए, उसको अतुल बल दिया ॥ १० ॥ राक्षस रावण शिवकी कृपाको पा शिव शंभुसे कंधा झुका हाथ जोड़ कर कहने लगा ११ रावणने कहा, कि—हे देवेश ! प्रसन्न हूजिये, मैं आपको लङ्काको ले जाना चाहता हूँ, आप मेरे मनोरथको पूर्ण करिये, मैं आपकी शरण लेता हूँ १२ सूतजीने कहा, कि—रावणके इस प्रकार कहने पर, शंभु बड़े संकटमें पड़ कर अनमने होगए ॥ १३ ॥ शिवने कहा, कि—हे राक्षसश्रेष्ठ ! मेरे सारवचनको सुनो, तुम मेरे उत्तम लिंगको भक्तिपूर्वक घर ले जाओ ॥ १४ ॥ परन्तु मेरे लिंगको तुम भूमिमें जहाँ कहीं भी रखोगे, वहीं पर यह स्थापित होजावेगा, इसमें कुछ सन्देह न समझना, अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो ॥१५॥ सूतजीने कहा, कि—शंभुके इस प्रकार कहने पर राक्षसेश्वर रावण बहुत

तत्स्तंभितुं न शक्तोऽभूत्पौलस्त्यो रावणः प्रभुः ॥१७॥ दृष्ट्वैकं तत्र वै गोपं प्रार्थ्य लिंगं ददौ च तत्। मुहूर्तके ह्यतिक्रांते गोपोऽभूद्विकलस्तदा ॥१८॥ भूमौ संस्थापयामास तद्भारेणातिपीडितः। तत्रैव तत्स्थितं लिंगं वज्रसारसमुद्भवम्। सर्वकामप्रदं चैव दर्शनात्पापहारकम् ॥ १९ ॥ वैद्यनाथेश्वरं नाम्ना तल्लिगमभवन्मुने। प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ २० ॥ ज्योतिर्लिंगमिदं श्रेष्ठं दर्शनात्पूजनादपि। सर्वपापहरं दिव्यं मुक्तिवर्द्धनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ तस्मिंल्लिंगे स्थिते तत्र सर्वलोकहिताय वै। रावणः स्वगृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम्। प्रियायै सर्वमाचख्यौ सुखेनाति महासुरः ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वा सकला देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा। परस्परं समामन्त्र्य शिवासक्तधियोऽमलाः ॥२३॥ तस्मिन्काले सुरास्सर्वे हरिब्रह्मादयो मुने। आजग्मुस्तत्र सुप्रीत्या पूजां चक्रुर्विशेषतः ॥२४॥ प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः। वैद्यनाथेति संप्रोच्य नत्वा नुत्वा दिवं ययुः ॥ २५ ॥ ऋषय ऊचुः। तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र रावणे च गृहं गते। किं चरित्रमभूत्तात ततस्तद्वद विस्तरात् ॥२६॥ सूत उवाच। रावणोऽपि

अच्छा कह, शिवलिङ्गको ले अपने घरको चल दिया ॥१६॥ शिवकी माया से मार्गमें उसको पेशाब करनेकी इच्छा हुई और पुलस्त्यनन्दन प्रभु रावण उसको रोक न सका ॥ १७ ॥ उसने तहाँ एक गोपको देख प्रार्थना करके उसको शिवलिङ्ग थमा दिया, मुहूर्त भर ही बीता था, कि--गोप घबड़ाने लगा ॥ १८ ॥ और उसके भारसे पोड़ित हो उसने वह शिवलिंग भूमि पर रख दिया, तब वह रत्नजटित शिवलिंग तहाँ ही अचल होगया, वह दर्शनसे पापोंको दूर करने वाला शिवलिंग सब मनोरथोंको पूर्ण करने वाला है १९ हे मुने! सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष देने वाला वह शिव-लिंग त्रिलोकीमें वैद्यनाथेश्वरके नामसे प्रसिद्ध होरहा है ॥ २० ॥ यह श्रेष्ठ ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजनसे सब पापोंको हरता है और यह दिव्य शिव--लिंग मुक्ति देता है ॥ २१ ॥ जब वह शिव-लिंग सब लोकोंका हित करनेके लिये तहाँ प्रतिष्ठित होगया तब महा--असुर रावणने परमोत्तम वर पा अपने घर पहुँच बड़े सुखके साथ अपनी प्रियासे सब समाचार कहा ॥ २२ ॥ इस बातको सुन इन्द्र आदि सकल देवता और मुनि परस्पर मंत्रणा करने लगे, हे मुने! फिर शिवमें लगी हुई बुद्धि वाले वे निर्मल हरि ब्रह्मा आदि सकल देवता प्रीतिपूर्वक तहाँ पहुँच कर विशेषरूपसे पूजन करने लगे ।२३।२४। वे देवता शंकर का प्रत्यक्ष कर और उनकी प्रतिष्ठा कर तथा उनको वैद्यनाथ कह स्तुति और प्रणाम कर स्वर्गको चले गए ॥ २५ ॥ ऋषियोंने कहा, कि--हे तात! जब वह शिव--लिंग तहाँ प्रतिष्ठित होगया और रावण अपने घरको चला गया

गृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम् । प्रियायै सर्वमाचख्यौ सुमोदाति महासुरः ॥२७॥ तच्छ्रुत्वा सकलं देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा । परस्परं समूचुस्ते समुद्विग्ना मुनीश्वराः ॥ २८ ॥ देवादय ऊचुः । रावणोऽयं दुरात्मा हि देवद्रोही खलः कुधीः । शिवाद्वरं च संप्राप्य दुःखं दास्यति नोऽति सः ॥२९॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः किं भविष्यति वा पुनः । दुष्टश्च दक्षतां प्राप्तः किं किं नो साधयिष्यति ॥ ३० ॥ इति दुःखं समापन्नाश्शक्राद्या मुनयस्सुराः । नारदं च समाहूय पप्रच्छुर्विकलास्तदा ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः । सर्वं कार्यं समर्थोऽसि कर्तुं त्वं मुनिसत्तम । उपायं कुरु देवर्षे देवानां दुःखनाशने ॥३२॥ रावणोयं महादुष्टः किं किं नैव करिष्यति । क्व यास्यामो वयं चात्र दुष्टेनापीडिता वयम् ॥ ३३ ॥ नारद उवाच । दुःखं त्यजत भो देवा युक्तिं कृत्वा च याम्यहम् । देवकार्यं करिष्यामि कृपया शंकरस्य वै ॥ ३४ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा स तु देवर्षिरगमद्रावणालयम् । सत्कारं समनुप्राप्य प्रीत्योवाचाखिलं च तत् ॥ ३५ ॥ नारद उवाच । राक्षसोत्तम धन्यस्त्वं शैववर्यस्तपोमनाः । त्वां दृष्ट्वा च मनो मेऽद्य प्रसन्नमति रावण ॥ ३६ ॥ स्ववृत्तं ब्रूह्यशेषेण शिवाराधनसंभवम् । इति पृष्टस्तदा तेन रावणो वाक्यमब्र-

---

तब और क्या चरित्र हुआ उसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥२६॥ सूतजीने कहा, कि--महाअसुर रावण परमोत्तम वर पा घर आ अपनी प्रिया को सब वृत्तान्त सुना परम प्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरों! इस सब बातको सुन इन्द्र आदि देवता और मुनि घबड़ा कर आपसमें कहने लगे २८ देवता आदिने कहा, कि-यह देवद्रोही दुरात्मा दुष्ट रावण शिवसे वर पाकर हमें बड़ा दुःख देगा ॥ २९ ॥ हम क्या करें ? कहाँ जावें ? अब और क्या होगा ? यह दुष्ट दक्षताको पा, न जाने हमसे क्या क्या काम करावेगा ॥३०॥ इस प्रकार दुःखित होते हुए इन्द्र आदि देवता और मुनियोंने नारदजीको बुलाया और विकल होकर बूझने लगे ॥ ३१ ॥ देवताओंने कहा, कि--हे मुनिसत्तम! आप सब काम करनेमें समर्थ हैं अतः हे देवर्षे! अब देवताओंके दुःख दूर करनेका कुछ उपाय करिये ॥ ३२ ॥ यह महादुष्ट रावण न जाने क्या क्या करेगा ? इस दुष्टके पीड़ा देने पर न जानें हमें कहाँ जाना पड़ेगा ३३ नारदजीने कहा, कि--हे देवताओं! तुम दुःख करना छोड़ दो मैं युक्ति करने को जाता हूँ, मैं शंकरकी कृपासे देवताओंका कार्य करूँगा ॥३४॥ सूतजीने कहा, देवर्षि नारद इस प्रकार कह रावणके स्थान पर पहुँचे और सत्कार पा प्रीतिपूर्वक सब बातें करने लगे ॥३५॥ नारदजीने कहा, कि—हे मनको तपमें लगाने वाले शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ राक्षसोत्तम रावण! तुम धन्य हो, हे रावण! तुमको देख कर आज मेरा मन बड़ा प्रसन्न होरहा है ॥ ३६ ॥

वीत् ॥ ३७ ॥ रावण उवाच । गत्वा मया तु कैलासे तपोर्थं च महामुने । तत्रैव बहुकालं वै तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥३८॥ यदा न शंकरस्तुष्टस्ततश्च परिवर्तितम् । आगत्य वृक्षखंडे वै पुनस्तप्तं मया मुने ॥ ३९ ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्ये तु वर्षासु स्थण्डिलेशयः । शीते जलांतरस्थो हि कृतं चैव त्रिधा तपः ॥ ४० ॥ एवं मया कृतं तत्र तपोत्युग्रं मुनीश्वर । तथापि शंकरो मह्यं न प्रसन्नोऽभवन्मनाक् ॥४१॥ तदा मया तु क्रुद्धेन भूमौ गर्तं विधाय च । तत्राग्निं च समाधाय पार्थिवं च प्रकल्प्य च ॥४२॥ गन्धैश्च चन्दनैश्चैव धूपैश्च विविधैस्तदा । नैवेद्यैः पूजितश्शंभु-रारार्तिकविधानतः ॥ ४३ ॥ प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैस्तोषितश्शंकरो मया । गीतै-र्नृत्यैश्च वाद्यैश्च मुखांगुलिसमर्पणैः ॥ ४४ ॥ एतैश्च विविधैश्चान्यैरुपायैर्भूरिभि-र्मुने । शास्त्रोक्तेन विधानेन पूजितो भगवान् हरः ॥४५॥ न तुष्टः सम्मुखो जातो यदा च भगवान् हरः । तदाहं दुःखितोऽभूवं तपसोऽप्राप्य सत्फलम् ॥ ४६ ॥ धिक् शरीरं बलं चैव धिक् तपःकरणं मम । इत्युक्त्वा तु मया तत्र स्थापितेऽग्नौ हुतं बहु ॥ ४७ ॥ पुनश्चेति विचार्यैव त्यक्ष्याम्यग्नौ निजां तनुम् । संछिन्नानि शिरांस्येव तस्मिन् प्रज्वलिते शुचौ ॥ ४८ ॥ सुच्छिन्नत्वैकैकशस्तानि कृत्वा शुद्धानि

तुम शिवपूजनसम्बन्धी अपना सब वृत्तान्त सुनाओ, मुनिके इस प्रकार बूझने पर रावणने यह बात कही ॥ ३७ ॥ रावणने कहा, कि-हे महामुने ! मैं कैलासपर्वत पर तप करनेके लिये गया, तहाँ मैंने बहुत समय तक दारुण तप किया ॥ ३८ ॥ जब शंकर प्रसन्न न हुए तब मैंने स्थान बदल दिया और हे मुने ! वृक्षखण्डमें आकर मैं फिर तप करने लगा ३९ मैंने ग्रीष्ममें पञ्चाग्निके बीचमें, वर्षामें खुले मैदानमें और जाड़ोंमें जलके भीतर खड़े होकर तीन प्रकारसे तप किया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने तहाँ परम उग्रतप किया, तब भी शंकर मुझ पर जरा भी प्रसन्न न हुए ॥ ४१ ॥ तब मैंने क्रोधमें भर भूमिमें गड्ढा खोदा और तहाँ अग्नि तथा पार्थिव शिव-लिंगको प्रतिष्ठित कर गन्ध चन्दन अनेक प्रकारकी धूपोंसे और नैवेद्यसे आरतीके विधानसे शम्भुकी पूजा की ॥४२॥४३॥ मैं प्रणाम कर, पवित्र स्तोत्र पढ़ गाना बजाना और नृत्य और मुख पर अंगुलि लगा शंकरको सन्तुष्ट करने लगा ॥ ४४ ॥ हे मुने ! इन उपायोंसे तथा दूसरे भी बहुतसे उपायोंसे शास्त्रीय रीतिसे मैंने भगवान् हरका पूजन किया ॥ ४५ ॥ परंतु भगवान् हर प्रसन्न होकर सन्मुख न आये, तब मैं तपके सत्-फलको न पाकर परम दुःखी हुआ ॥ ४६ ॥ मेरे शरीरके बलको धिक्कार है, मेरे तप करनेको धिक्कार है, इस प्रकार कह कर मैंने स्थापित की हुई अग्निमें बड़ी भारी आहुति दी ॥ ४७ ॥ कि-अपने शरीरको अग्निमें त्यागनेका विचार

सर्वशः। शंकरायार्पितान्येव नवसंख्यानि वै मया ॥ ४९ ॥ यावच्च दशमं छेत्तुं प्रारब्धमृषिसत्तम। तावदाविरभूत्तत्र ज्योतीरूपो हरस्स्वयम् ॥ ५० ॥ मा मेति व्याहरत् प्रीत्या हुतं वै भक्तवत्सलः। प्रसन्नश्च वरं ब्रूहि ददामि मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन मया दृष्टो महेश्वरः। प्रणतस्संस्तुतश्चैव करौ बध्वा सुभक्तितः ॥५२॥ तदा वृतं मयैतच्च देहि मे ह्यतुलं बलम्। यदि प्रसन्नो देवेश दुर्लभं किं भवेन्मम ॥ ५३ ॥ शिवेन परितुष्टेन सर्वं दत्तं कृपालुना। मह्यं मनोऽभिलषितं गिरा प्रोच्य तथास्त्विति ॥ ५४ ॥ अमोघया सुदृष्ट्या वै वैद्यवद्योजितानि मे। शिरांसि संधयित्वा तु दृष्टानि परमात्मना ॥ ५५ ॥ एवं कृते तदा तत्र शरीरं पूर्ववन्मम। जातं तस्य प्रसादाच्च सर्वं प्राप्तं फलं मया ॥ ५६ ॥ तदा च प्रार्थितो मेऽसौ संस्थितो वृषभध्वजः। वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये ॥ ५७ ॥ दर्शनात्पूजनाज्ज्योतिर्लिङ्गरूपो महेश्वरः। भुक्तिमुक्तिप्रदो लोके सर्वेषां हितकारकः ॥५८॥ ज्योतिर्लिङ्गमहं तद्वै पूजयित्वा विशेषतः। प्रणिपत्यागतश्चात्र विजेतुं भुवनत्रयम् ॥ ५९ ॥ सूत उवाच। तदीयं तद्वचः श्रुत्वा

किया और उस प्रज्वलित पवित्र अग्निमें अपने शिरोंको काटने लगा ।४८। मैं अपने एक एक शिरको काट उनको शुद्ध कर शंकरके अर्पण करने लगा, इस प्रकार मैंने नौ शिर काट डाले ॥ ४९ ॥ हे ऋषिसत्तम ! जब मैं दशवाँ शिर काटने लगा, तब ज्योतिःस्वरूप हर तहाँ स्वयं प्रकट होगए ॥ ५० ॥ और मुझसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे, कि--ऐसा मत कर ! ऐसा मत कर !! फिर भक्तवत्सल शम्भुने कहा, कि--मैं प्रसन्न हूँ तू मनचीता वर माँग लें, मैं तुझको दूँगा ॥ ५१ ॥ शंकरके इस प्रकार कहने पर मैंने महेश्वरको देखा और हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक उनको प्रणाम कर स्तुति की ॥५२॥ और यह वर माँगा, कि--मुझे अतुल बल दीजिये, हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे क्या वस्तु दुर्लभ रह सकती है ॥ ५३ ॥ तब कृपालु शिवने सन्तुष्ट होकर मेरा सब मनोरथ पूर्ण करते हुए वाणीसे कहा, तथास्तु ५४ और अपनी अमोघ दृष्टिसे देख कर उन्होंने वैद्यकी समान मेरे शिर लगाए और फिर परमात्माने उनको जोड़ दिया ॥ ५५ ॥ ऐसा करने पर मेरा शरीर पहिले की समान होगया और उनके प्रसादसे मैंने सब कुछ पा लिया ॥५६॥ फिर मेरे प्रार्थना करने पर यह वृषभध्वज वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रतिष्ठित हो त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगए हैं ॥५७॥ यह ज्योतिर्लिङ्गरूप महेश्वर दर्शन और पूजन करनेसे संसारके सब प्राणियोंका हित कर उनको भोग और मोक्ष तक देदेते हैं ॥ ५८ ॥ मैं उस ज्योतिर्लिङ्गका विशेषरूपसे पूजन कर और प्रणाम कर त्रिलोकीको जीतनेके विचारसे यहाँ आगया

देवर्षिर्जातसंभ्रमः । विहस्य च मनस्येव रावणं नारदोऽब्रवीत् ॥ ६० ॥ नारद उवाच । श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ कथयामि हितं तव । त्वया तदेव कर्त्तव्यं मदुक्तं नान्यथा क्वचित् ॥ ६१ ॥ त्वयोक्तं यच्छिवेनैव हितं दत्तं ममाधुना । तत्सर्वं च त्वया सत्यं न मन्तव्यं कदाचन ॥६२॥ अयं वै विकृतिं प्राप्तः किं किं नैव ब्रवीति च । सत्यं नैव भवेत्तद्वै कथं ज्ञेयं प्रियोऽसि मे ॥ ६३ ॥ इति गत्वा पुनः कार्य्यं कुरु त्वं ह्यहिताय वै । कैलासोद्धरणे यत्नः कर्त्तव्यश्च त्वया पुनः ॥ ६४ ॥ यदि चैवोद्धृतश्चायं कैलासो हि भविष्यति । तदैव सफलं सर्वं भविष्यति न संशयः॥ पूर्ववत्स्थापयित्वा त्वं पुनरागच्छ वै सुखम् । निश्चयं परमं गत्वा यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६६ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्स हितं मेने रावणो विधिमोहितः । सत्यं मत्वा मुनेर्वाक्यं कैलासमगमत्तदा ॥ ६७॥ गत्वा तत्र समुद्धारं चक्रे तस्य गिरेस्स च । तत्रस्थं चैव तत्सर्वं विपर्यस्तं परस्परम् ॥ ६८ ॥ गिरीशोपि तदा दृष्ट्वा किं जातमिति सोऽब्रवीत् । गिरिजा च तदा शम्भुं प्रत्युवाच विहस्य तम् ॥ ६९ ॥ गिरिजोवाच । सच्छिष्यस्य फलं जातं सम्यग्जातं तु शिष्यतः । शान्तात्मने सुवीराय दत्तं यदतुलं बलम् ॥ ७० ॥ सूत उवाच । गिरिजायाश्च साकूतं वचः

हूँ ॥ ५९ ॥ सूतजीने कहा, कि–रावणके इस वचनको सुन देवर्षि नारद अचम्भेमें होगए और मनमें हँस कर रावणसे कहने लगे ।.६०॥ नारदजी ने कहा, कि–हे राक्षसश्रेष्ठ ! सुनो ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, तुम वही करना मेरी बात अन्यथा नहीं है ॥ ६१ ॥ तूने जो कहा, कि–शिवने मेरा हित करने वाला सब कुछ देदिया, उसको तू सत्य न समझना ।६२। यह विकारमें आकर न जानें क्या २ कह जाते हैं, वह बातें सत्य नहीं होसकतीं, तू मेरा प्रिय है, इस लिये इस बातकी जाँच कैसे हो (यह बात बताता हूँ) ॥ ६३ ॥ तू फिर जाकर उनका जरा अहित करनेकी तो चेष्टा कर, कि–कैलासको उठानेको चेष्टा कर ॥ ६४ ॥ यदि कैलास उठ जाय तो शिवकी सब बातोंको सफल हुई समझना ॥ ६५ ॥ और कैलासको पहिले की समान स्थापित करके आजाना और निश्चय कर सुख पा जैसा चाहे तैसा करना ॥ ६६ ॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार कहने पर प्रारब्धसे मोहमें पड़े हुए रावणने उस बातको ठीक समझा और नारदजीके उस वचन को सत्य समझ कर कैलासको चला गया ॥ ६७ ॥ तहाँ पहुँच कर उसने पर्वतको उखाड़ा, तब पर्वत परकी सब वस्तुएँ परस्पर गड़बड़ होने लगीं ६८ शंकरने भी इस बातको देख कर कहा, कि–क्या हुआ ? उस समय गिरिजा हँस कर कहने लगीं ॥ ६९ ॥ गिरिजाने कहा, कि–आपने जो शान्त चित्त वाले वीरको अतुल बल दिया था, उस श्रेष्ठ शिष्यसे यह अच्छा फल होरहा

श्रुत्वा महेश्वरः। कृतघ्नं रावणं मत्वा शशाप बलदर्पितम् ॥ ७१ ॥ महादेव उवाच। रे रे रावण दुर्भक मा गर्वं वह दुर्मते। शीघ्रं च तव हस्तानां दर्पघ्नश्च भवेदिह ॥७२॥ सूत उवाच। इति तत्र च यज्जातं नारदः श्रुतवांस्तदा। रावणोपि प्रसन्नात्माऽगात्स्वधाम यथागतम् ॥ ७३ ॥ निश्चयं परमं कृत्वा बली बलविमोहितः। जगद्वशं हि कृतवान् रावणः परदर्पहा ॥ ७४ ॥ शिवाज्ञया च प्राप्तेन दिव्यास्त्रेण महौजसा। रावणस्य प्रतिभटो नालं कश्चिदभूत्तदा ॥ ७५ ॥ इत्येतच्च समाख्यातं वैद्यनाथेश्वरस्य च। माहात्म्यं शृण्वतां पापं नृणां भवति भस्मसात् ॥ ७६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

सूत उवाच। अथातः संप्रवक्ष्यामि नागेशाख्यं परात्मनः। ज्योतीरूपं यथा जातं परमं लिंगमुत्तमम् ॥१॥ दारुका राक्षसी काचित्पार्वती वरदर्पिता। दारुकश्च पतिस्तस्या बभूव बलवत्तरः ॥२॥ बहुभी राक्षसैस्तत्र चकार कदनं सताम्। यज्ञध्वंसं च लोकानां धर्मध्वंसं तदाकरोत् ॥३॥ पश्चिमे सागरे तस्य वनं सर्व-

---

है ॥ ७० ॥ सूतजीने कहा, कि—गिरिजाके नागके वचन सुन, महेश्वरने रावणको बलके घमण्डमें भरा कृतघ्न समझ कर शाप देदिया ॥७१॥ महादेवजीने कहा, कि—अरे दुर्भक दुर्मते रावण! तू घमण्ड न कर, तेरे हाथोंके घमण्डको मिटाने वाला भी शीघ्र ही इस संसारमें अवतार लेगा। ७२ ॥ सूतजीने कहा, कि—वहाँ पर हुई इस घटनाको नारदजीने भी सुना तथा रावण भी चित्तमें प्रसन्न होता हुआ अपने स्थानको पधार गया ॥ ७३ ॥ बलवान् रावण पक्का निश्चय कर बलके घमण्डमें भर गया फिर शत्रुओंका दर्प दलन करने वाले रावणने जगत्को वशमें किया। ७४॥ शिवको आज्ञासे प्राप्त हुए परमतेजस्वी दिव्य अस्त्रके कारण, रावणके सामने कोई योद्धा खड़ा न रह सका ॥७५॥ यह आपसे वैद्यनाथेश्वरका माहात्म्य कह दिया, इस आख्यान को सुनने वालोंका पाप भस्म होजाता है ॥ ७६ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतजीने कहा, कि-अब मैं परमात्मा शिवका नागेश नामक ज्योतिर्लिङ्ग जिस प्रकार प्रकट हुआ है उसका वर्णन करता हूँ १ दारुका नाम वाली एक राक्षसी पार्वतीके वरसे घमण्डमें भर गई थी, उसका पति दारुक भी बड़ा बली था २ वह बहुतसे राक्षसोंको साथमें लेकर सज्जनोंका संहार करने लगा तथा मनुष्यों के यज्ञ और धर्मका ध्वंस करने लगा ॥ ३ ॥ पश्चिमसमुद्रकी ओर उसका सकल समृद्धियोंसे सम्पन्न वन चारों दिशाओंमें चौसठ कोस तक फैला

समृद्धिमत् । योजनानां षोडशभिर्विस्तृतं सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ दारुका स्वविलासार्थं यत्र गच्छति तद्वनम् । भूम्या च तरुभिस्तत्र सर्वोपकरणैर्युतम् ॥ ५ ॥ दारुकायै ददौ देवी तद्वनस्यावलोकनम् । प्रयाति तद्वनं सा हि पत्या सह यदृच्छया ॥ ६ ॥ तत्र स्थित्वा तदा सोऽपि सर्वेषां च भयं ददौ । दारुको राक्षसः पत्न्या तया दारुकया सह ॥ ७ ॥ ते सर्वे पीडिता लोका और्वस्य शरणं ययुः । नत्वा प्रीत्या विशेषेण तमूचुर्नतमस्तकाः ॥ ८ ॥ लोका ऊचुः । महर्षे शरणं देहि नो चेद् दुष्टैश्च मारिताः । सर्वं कर्तुं समर्थोऽसि तेजसा दीप्तिमानसि ॥ ९ ॥ पृथ्व्यां न वर्तते कश्चित्त्वां विना शरणं च नः । यामो यस्य समीपे तु स्थित्वा सुखमवाप्नुमः ॥ १० ॥ त्वां दृष्ट्वा राक्षसास्सर्वे पलायंते विदूरतः । त्वयि शैवं सदा तेजो विभाति ज्वलनो यथा ॥ ११ ॥ सूत उवाच । इत्येवं प्रार्थितो लोकैरौर्वो हि मुनिसत्तमः । शोचमानः शरण्यश्च रक्षार्थं हि वचोऽब्रवीत् ॥१२॥ और्व उवाच । पृथिव्यां यदि रक्षांसि हिंस्युर्वै प्राणिनस्तदा । स्वयं प्राणैर्वियुज्येयू राक्षसा बलवत्तराः ॥ १३ ॥ यज्ञा यज्ञाश्च हन्येरंस्तदा प्राणैर्वियोजिताः । भवन्तु राक्षसास्सर्वे सत्यमेतन्मयोच्यते ॥ १४ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा वचनं तेभ्यस्समाश्वास्य प्रजाः पुनः । तपश्चकार विविधमौर्वो लोकसुखावहः ॥ १५ ॥ देवा-

---

हुआ था ॥४॥ दारुका विलास करनेके लिये जहाँ जाती थी, भूमि वृक्ष आदिक सकल सामग्रियोंसे सम्पन्न वह वन तहाँ ही पहुँच जाता था देवी पार्वतीने दारुकाको उस वनको देखनेका अधिकार दिया था, तब जब उसकी इच्छा होती थी, तब वह अपने पतिको साथमें लेकर उस वनमें विचरा करती थी ॥५॥६॥ दारुक राक्षस भी अपनी पत्नीके साथ तहाँ रहकर सबको भयभीत किया करता था ७ तब पीड़ा पाते हुए सब लोग और्वकी शरणमें पहुँचे और मस्तक झुका प्रणाम कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ८ ॥ लोगोंने कहा, कि—हे महर्षे ! हमें शरणमें लीजिये, नहीं तो दुष्ट हमें मार डालेंगे, आप तेजसे दीप्तिमान् हैं, अतः सब कुछ कर सकते हैं ॥ ९ ॥ आपको छोड़ कर पृथ्वी पर और ऐसा कोई नहीं है जो हमें शरण देसके और जिसके पास जाकर हम सुख पासकें ॥ १० ॥ आपको देखकर राक्षस दूरसे ही भाग जाते हैं आपमें शिवका तेज अग्निकी समान दमकता रहता है ॥११॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार प्रार्थना करने पर शरणागतरक्षक मुनिसत्तम और्व विचारमें पड़ गए और रक्षाके लिये यह बात बोले ॥१२॥ और्वने कहा, कि–यदि ये राक्षस इस पृथ्वी पर प्राणियोंको मारेंगे, तो ये बली राक्षस स्वयं ही प्राणहीन होजायेंगे ॥ १३ ॥ तथा यदि यह राक्षस यज्ञोंको नष्ट करेंगे, तो भी प्राणहीन होजावेंगे यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार कह प्रजाओंको वारंवार ढाढस

स्तदा ते विज्ञाय शापस्य कारणं हि तत् । युद्धाय च समुद्योगं चक्रुर्देवारिभिस्सह ॥१६॥ सर्वैश्चैव प्रयत्नैश्च नानायुधधरास्सुराः । सर्वे शक्रादयस्तत्र युद्धार्थं समुपागताः ॥१७॥ तान्दृष्ट्वा राक्षसास्तत्र विचारे तत्पराः पुनः । बभूवुस्तेऽखिला दुष्टा मिथो ये यत्र संस्थिताः ॥ १८ ॥ राक्षसा ऊचुः । किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं संकटं समुपागताः । युद्धयते म्रियते चैव युद्धयते न विहन्यते ॥ १९ ॥ तथैव स्थीयते चेद्धि भक्ष्यते किं परस्परम् । दुःखं हि सर्वथा जातं क एनं विनिवारयेत् ॥ २० ॥ सूत उवाच । विचार्येति च ते तत्र दारुकाद्याश्च राक्षसाः । उपायं न विजानन्तो दुःखं प्राप्तास्सदा हि वै ॥२१॥ दारुका राक्षसी चापि ज्ञात्वा दुःखं समागतम् । भवान्याश्च वरं तच्च कथयामास सा तदा ॥ २२ ॥ दारुकोवाच । मया ह्याराधिता पूर्वं भवपत्नी वरं ददौ । वनं गच्छ निजैः सार्द्धं यत्र गन्तुं त्वमिच्छसि ॥ २३ ॥ तद्वरश्च मया प्राप्तः कथं दुःखं विषह्यते । जले वनं च नीत्वा वै सुखं स्थेयं तु राक्षसैः ॥ २४ ॥ सूत उवाच । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्या हर्षमागताः । ऊचुस्सर्वे मिथस्ते हि राक्षसा निर्भयास्तदा ॥ २५ ॥ धन्येयं कृतकृत्येयं राज्ञ्या वै जीवितास्स्वयम् । नत्वा तस्य च तत्सर्वं कथयामासुरादरात् २६

दे, संसारको सुख पहुँचाने वाले और फिर अनेक प्रकारका तप करने लगे १५ देवताओंने जब इस शापकी बातको जाना, तब वे अपने शत्रुओंके साथ युद्ध करनेका उद्योग करने लगे ॥ १६ ॥ और इन्द्र आदि सब देवता अनेक प्रकारके आयुध धारण कर पूर्ण प्रयत्नके साथ तहाँ युद्ध करनेके लिये आडटे ॥ १७ ॥ उनको देखकर जो सम्पूर्ण राक्षस तहाँ उपस्थित थे वे विचारमें पड़ गए १८ राक्षसोंने कहा, कि--क्या करें ? कहाँ जावें, युद्ध करने पर तो मरना पड़ता है और युद्ध न करने पर मारे सैनिक मारे जाते हैं ॥१९॥ और यदि वैसे ही बैठे रहते हैं, तो परस्परमें हम खाँय क्या ? अहो ! सब प्रकारसे हमैं दुःख ही मिलेगा, हमारे इस दुःखको कौन टाल सकता है ? २० सूतजीने कहा, कि--वे दारुक आदि राक्षस इस प्रकार विचार कर, कुछ उपाय न सूझनेसे सदा दुःखी रहने लगे ॥ २१ ॥ तब दारुकाराक्षसीने दुःखको आया हुआ समझ, भवानीके वरका वर्णन किया ॥ २२ ॥ दारुकाने कहा, कि--मेरे आराधना करने पर भवपत्नीने मुझे वर दिया था, कि--तुम जहाँ जाना चाहो अपने आदमियोंके साथ वनको लेजासकती हो ॥ २३ ॥ वह वर मैंने पालिया है, फिर दुःख क्यों सहा जाय, इस वनको जलमें लेजाकर राक्षस सुखपूर्वक रहें ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा, कि--उस राक्षसीके इस वचनको सुन कर हर्षमें भरे हुए वे राक्षस निर्भय हो इस प्रकार कहने लगे, कि--॥ २५ ॥ इन रानीने हमैं जीवित रख लिया यह रानी धन्य हैं और कृतकृत्य हैं फिर

यदि गन्तुं भवेच्छक्तिर्गम्यतां किं विचार्यते । तत्र गत्वा जले देवि सुखं स्थास्याम निश्चशः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे लोका देवैस्सार्द्धं समागताः । युद्धाय विविधैर्दुःखैः पीडिता राक्षसैः पुरा ॥२८॥ पीडितास्च तदा तस्या भवान्या बलमाश्रिताः । समग्रं नगरं नीत्वा जलस्थलसमन्वितम् ॥२९॥ जयजयेति देव्यास्तु स्तुतिमुच्चार्य राक्षसी । तत उड्डीयनं कृत्वा सपक्षो गिरिराडयथा ॥३०॥ समुद्रस्य च मध्ये सा संस्थिता निर्भया तदा । सकलैः परिवारैश्च मुमुदेति शिवानुगा ॥ ३१ ॥ तत्र सिन्धौ च ते स्थित्वा नगरे च विलासिनः । राक्षसाश्च सुखं प्रापुर्निर्भयाश्च विजह्रिरे ॥३२॥ राक्षसाश्च पृथिव्यां वै नाजग्मुश्च कदाचन । मुनेश्शापभयादेव बभ्रमुस्ते जले तदा ॥ ३३ ॥ नौषु स्थिताञ्जनान्नीत्वा नगरे तत्र तांस्तदा । चिक्षिपुर्बन्धनागारे कांश्चिज्जघ्नुस्तदा हि ते ॥ ३४ ॥ यथायथा पुनः पीडां चक्रुस्ते राक्षसास्तदा । तत्र स्थिता भवान्याश्च वरदानाच्च निर्भयाः३५ यथा पूर्वं स्थले लोके भयं चासीन्निरन्तरम् । तथा भयं जले तेषामासीन्नित्यं मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ कदाचिद्राक्षसी सा च निस्सृता नगराज्जले । रुद्ध्वा मार्गं स्थिता लोकपीडार्थं धरणौ च हि ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र नावो बहुतराः

उसको प्रणाम कर आदरपूर्वक सब कहने लगे, कि--॥ २६ ॥ हे देवि ! यदि चलनेकी शक्ति है, तो विचार करनेकी क्या बात है, चलिये, हे देवि ! तहाँ जलमें जाकर हम सुखपूर्वक रहेंगे ॥ २७ ॥ इसी बीचमें जिन लोगोंको राक्षसों ने पहिले पीड़ित किया था वे देवताओंके साथ राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये आ डटे॥ २८ ॥ तब पीड़ित होते हुए राक्षस, भवानीके बलका भरोसा रख जलस्थलसहित समग्र नगरको लेजानेका (विचार करने लगे) ॥ २९ ॥ उस समय वह राक्षसी देवीकी स्तुति कर और देवीकी जयजयकार कर पर वाले गिरिराजकी समान उड़ी ॥ ३० ॥ और समुद्रके मध्यमें निर्भय होकर स्थित होगई, इस प्रकार पार्वतीकी भक्त वह राक्षसी सकल परिवारोंके साथ आनन्द में भर गई ॥ ३१ ॥ तब समुद्रमें टिक नगरमें विलास करने वाले वे राक्षस सुखी हुए और निर्भय होकर विहार करने लगे ॥ ३२ ॥ और वे राक्षस मुनि के शापके भयसे पृथ्वी पर कभी नहीं आते थे, जलमें ही घूमते रहते थे ॥३३॥ नौकामें बैठे हुए प्राणियोंको वे अपने नगरमें पकड़ कर ले जाते थे और कैदखानेमें डाल देते थे और कुछको मार डालते थे ॥३४॥ तहाँ जलमें टिके हुए भवानी के वरदानसे निर्भय हुए वे राक्षस फिर पीड़ा पहुँचाने लगे ॥ ३५ ॥ हे मुनीश्वरों ! प्राणियोंको जैसे पहिले स्थलमें उनका भय लगा रहता था, तैसे ही अब जलमें निरन्तर भय रहने लगा ३६ एक समय वह राक्षसी अपने नगरसे निकल जलमें लोगोंको पीड़ा देनेके लिये मार्ग रोक कर खड़ी

शुभाः। आगता बहुधा तत्र सर्वतो लोकसंभृताः ॥ ३८ ॥ ता नावश्च तदा दृष्ट्वा हर्षं संप्राप्य राक्षसाः। द्रुतं गत्वा हि तत्रस्थान्वेगात्संदध्रिरे खलाः ॥३९॥ आजग्मुर्नगरं ते च तानादाय महाबलाः। चिक्षिपुर्बन्धनागारे बद्ध्वा हि निगडैर्दृढैः ॥ ४० ॥ बद्धास्ते निगडैर्लोकास्संस्थिता बन्धनालये। अतीव दुःखमाजग्मुर्भर्त्सितास्ते मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥ तेषां मध्ये च योऽधीशस्स वैश्यस्सुप्रियाभिधः। शिवप्रियशुभाचारश्शैवश्चासीत्सदातनः ॥४२॥ विना च शिवपूजां वै न तिष्ठति कदाचन। सर्वथा शिवधर्मा हि भस्मरुद्राक्षभूषणः ॥ ४३ ॥ यदि पूजा न जाता चेन्न भुनक्ति तदा तु सः। अतस्तत्रापि वैश्योऽसौ चकार शिवपूजनम् ॥ ४४ ॥ कारागृहगतस्सोपि बहूँश्चाशिक्षयत्तदा। शिवमन्त्रं च पूजां च पार्थिवीमृषिसत्तमाः ॥ ४५ ॥ ते सर्वे च तदा तत्र शिवपूजां स्वकामदाम्। चक्रिरे विधिवत्तत्र यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥४६॥ केचित्तत्र स्थिता ध्याने बद्ध्वासनमनुत्तमम्। मानसीं शिवपूजां च केचिच्चक्रुर्मुदान्विताः ॥४७॥ तदाधीशेन तत्रैव प्रत्यक्षं शिवपूजनम्। कृतं च पार्थिवस्यैव विधानेन मुनीश्वराः ॥ ४८ ॥ अन्ये च ये न जानन्ति विधानं स्मरणं परम्। नमश्शिवाय मन्त्रेण ध्यायन्तश्शंकरं स्थिताः ४९

होगई ॥ ३७ ॥ इसी समय चारों ओर लोगोंसे भरी हुईं बहुतसी शुभ नावें तहाँ आ लगीं ॥ ३८ ॥ उन नौकाओंको देख राक्षस हर्षमें भर गए और उन दुष्टोंने नावोंमें बैठे हुए प्राणियोंको झपट कर पकड़ लिया ॥ ३९ ॥ फिर वे महाबली राक्षस उनको लेकर अपने नगरमें आये और उनको मजबूत बेड़ियोंसे बाँध कर जेलखानेमें डाल दिया ॥ ४० ॥ बेड़ियोंसे बँधे कर कैद खानेमें पड़े हुए लोग बारम्बार धमकी पाने पर बड़े दुःखी होने लगे ॥४१॥ इनमें जो प्रधान पुरुष था, उसका नाम सुप्रिय वैश्य था, वह शिवको प्रिय समझने वाला सदाचारी सनातनका शिवभक्त था ॥ ४२ ॥ वह शिवपूजा किये विना कभी नहीं रहता था, सर्वथा शिवधर्मका पालन करने वाला वह भस्म और रुद्राक्षके आभूषण धारण किये रहता था ॥ ४३ ॥ यदि पूजा नहीं हो पाती थी, तो वह वैश्य भोजन नहीं करता था, अतः उस वैश्यने तहाँ भी शिवपूजन किया ॥ ४४ ॥ हे ऋषिसत्तमों ! उसने जेलखानेमें भी बहुतोंको शिवमंत्र और शिवकी पूजा सिखा दी ॥ ४५ ॥ तब वे सब अपना मनोरथ पूर्ण करने वाली शिवपूजाको जिस प्रकार देखा था और सुना था, तिस प्रकार विधिवत् करने लगे ॥ ४६ ॥ कोई तहाँ उत्तम आसन बाँध ध्यान करने लगे और कोई आनन्दमें भर मानसी शिवपूजा करने लगे ॥ ४७ ॥ हे मुनीश्वरों ! उनके स्वामीने तहाँ पार्थिवविधानसे प्रत्यक्षरीति पर शिवपूजन किया ॥ ४८ ॥ और जो विधानके अनुसार स्मरण करना नहीं सीख सके थे, वे "नमः शिवाय"

सुप्रियो नाम यश्चासीद्वैश्यवर्यशिवप्रियः। ध्यायंश्च मनसा तत्र चकार शिवपूजनम् ॥५०॥ यथोक्तरूपी शम्भुश्च प्रत्यक्षं सर्वमाददे। सोपि स्वयं न जानाति गृह्यते न शिवेन वै ॥ ५१ ॥ एवं च क्रियमाणस्य वैश्यस्य शिवपूजनम्। व्यतीयुस्तत्र षण्मासा निर्विघ्नेन मुनीश्वराः ॥५२॥ अतः परं च यज्जातं चरितं शशिमौलिनः। तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठाः सावधानेन चेतसा ॥ ५३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

सूत उवाच। कदाचित्सेवकस्तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः। तदग्रे सुन्दरं रूपं शंकरस्य ददर्श ह। तस्मै निवेदितं राज्ञे राक्षसानां यथार्थकम्। सर्वं तच्चरितं तेन सकौतुकमथाद्भुतम् ॥२॥ राजापि तत्र चागत्य राक्षसानां स दारुकः। विह्वलस्सबलश्शीघ्रं पप्रच्छ च तं शिवम् ॥ ३ ॥ दारुक उवाच। किं ध्यायसि हि वैश्य त्वं सत्यं वद ममाग्रतः। एवं सति न मृत्युस्ते मम वाक्यं च नान्यथा ॥४॥ सूत उवाच। तेनोक्तं त्वञ्च जानासि तच्छ्रुत्वा कुपितस्स वै। राक्षसान्प्रेरयामास हन्यतां राक्षसा अयम् ॥ ५ ॥ तदुक्तास्ते तदा हन्तुं नानायुधधरा गताः। द्रुतं तं वैश्यशार्दूलं शंकरासक्तचेतसम् ॥६॥ तानागतांस्तदा दृष्ट्वा भयवित्रस्तलोचनः।

मन्त्रसे शिवका ध्यान करने लगे ॥ ४९ ॥ जब शिवका प्यारा सुप्रिय नामक वैश्य मनमें ध्यान धर शिवपूजन करता था ॥ ५० ॥ तब शास्त्रमें जैसा रूप कहा है, तैसा प्रत्यक्ष रूप धारण कर शंभु उसकी सकल पूजाको ग्रहण करते थे, इस बातका सुप्रिय वैश्यको भी कुछ पता न था, कि शिव स्वयं ही मेरी पूजाको ग्रहण करते हैं ॥ ५१ ॥ हे मुनीश्वरों ! इस प्रकार निर्विघ्नतापूर्वक वैश्यको पूजन करते २ छः मास बीत गए ॥ ५२ ॥ हे श्रेष्ठ ऋषियों ! इसके अनन्तर जो चन्द्रमौलका चरित्र हुआ था उसको आप सावधान चित्तसे सुनें ॥ ५३ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ * *

सूतजीने कहा, कि—एक समय उस दुरात्मा राक्षसके सेवकने वैश्यके आगे शंकरके सुन्दर रूपको देखा ॥ १ ॥ तब उसने राक्षसोंके राजाके सामने वह कौतुक भरा सब अद्भुत चरित्र कहा ॥ २ ॥ तब राक्षसोंका राजा दारुक विह्वल हो अपने दलबलके साथ तहाँ आया और उस वैश्यसे बूझने लगा ३ दारुकने कहा, कि -हे वैश्य ! तू क्या ध्यान कर रहा है, इसको मेरे सामने सत्य सत्य कह तो तू मारा नहीं जावेगा, मेरा वचन असत्य न होगा ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा, कि वैश्यने कहा, कि मैं जो कुछ करता हूँ उसको तू भी जानता है इस बातको सुन वह क्रोधमें भर गया और राक्षसोंसे कहने लगा, कि—अरे राक्षसों ! इसको मार डालो ॥ ५ ॥ उसके कहने पर वे दैत्य अनेक प्रकारके आयुध ले

शिवं सस्मार सुप्रीत्या तन्नामानि जगौ मुहुः ॥ ७ ॥ वैश्यपतिरुवाच । पाहि शंकर देवेश पाहि शम्भो शिवेति च । दुष्टादस्मात्त्रिलोकेश खलहन्भक्तवत्सल ॥ ८ ॥ सर्वस्वं च भवानद्य मम देव त्वमेव हि । त्वदधीनस्त्वदीयोऽहं त्वत्प्राणस्सर्वदा प्रभो ॥ ६ ॥ सूत उवाच । इति संप्रार्थितश्शम्भुर्विवरान्निर्गतस्तदा । भवनेनोत्तमेनाथ चतुर्द्वारयुतेन च ॥ १० ॥ मध्ये ज्योतिःस्वरूपं च शिवरूपं तदद्भुतम् । परिवारसमायुक्तं दृष्ट्वा चापूजयत्स वै ॥ ११ ॥ पूजितश्च तदा शम्भुः प्रसन्नो ह्यभवत्स्वयम् । अस्त्रं पाशुपतं नाम दत्त्वा राक्षसपुङ्गवान् ॥ १२ ॥ जघान सोपकरणांस्तान्सर्वान्सगणान्द्रुतम् । अरक्षच्च स्वभक्तं वै दुष्टहा स हि शंकरः ।१३। सर्वांस्तांश्च तदा हत्वा वरं प्रादाद्वनस्य च । अत्यद्भुतकरश्शम्भुस्स्वलीलात्तसुविग्रहः ॥ १४ ॥ अस्मिन्वने सदा वर्णधर्मा वै संभवन्तु च । ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां हि तथैव च ॥ १५ ॥ भवन्त्वत्र मुनिश्रेष्ठास्तामसा न कदाचन । शिवधर्मप्रवक्तारश्शिवधर्मप्रवर्तकाः ॥१६॥ सूत उवाच । एतस्मिन्समये सा वै राक्षसी दारुकाह्वया । देव्याः स्तुतिं चकारासौ पार्वत्या दीनमानसा ॥ १७ ॥ प्रसन्ना च

उस शंकरमें चित्तको लगाने वाले वैश्यको मारनेके लिये बढ़े ॥ ६ ॥ उनको आते देख वैश्य भयसे डरे हुए नेत्र वाला हो शिवका स्मरण करने लगा और प्रीतिपूर्वक उनके नामोंको बारम्बार लेने लगा ॥ ७ ॥ वैश्यपतिने कहा, कि—हे शंकर ! रक्षा करिये, हे देवेश ! रक्षा करिये, हे दुष्टोंका संहार करने वाले भक्तवत्सल शिव शंभो ! हे त्रिलोकेश ! इस दुष्टसे हमें बचाइये ॥ ८ ॥ हे देव ! आज आप ही मेरे सर्वस्व हैं, हे प्रभो ! मैं आपके अधीन हूँ, आपका हूँ, सदा आपको प्राणकी समान समझता हूँ ॥ ६ ॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार प्रार्थना करने पर शंभु विवरसे प्रकट हुए, उस समय वहाँ चार द्वार वाला उत्तम भवन बन गया, मध्यमें शिवका अद्भुत ज्योतिर्मय लिंग प्रतिष्ठित होगया, परिवारसहित शंभुका दर्शन कर वैश्यने उनका पूजन किया १०।११। पूजा करने पर शंभु प्रसन्न हुए और उन्होंने पाशुपत नामक अस्त्र लेकर राक्षसोंको उनकी सामग्रीको और उनके गणोंको नष्ट करना आरंभ कर दिया, इस प्रकार दुष्टोंका संहार करने वाले शंकरने अपने भक्तकी रक्षाकी ।१२।१३। उस समय उन सबका संहार कर लीला करनेके लिये अवतार धारण करने वाले, अद्भुत दृश्य दिखाने वाले शंभु वनके विषयमें वर देने लगे ॥ १४ ॥ इस वनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके वर्णधर्म सदा सुरक्षित रहें ॥१५॥ तथा हे मुनिश्रेष्ठों ! यहाँके प्राणी कभी तमोगुणी (राक्षस) न हों, सदा शिवधर्मके वक्ता और प्रवर्तक रहें ॥ १६ ॥ सूतजीने कहा, कि—इसी समय दारुका नाम वाली राक्षसी मनमें दीन हो देवी पार्वतीकी स्तुति करने लगी ॥ १७ ॥

तदा देवी किङ्करोमीत्युवाच हि । साप्युवाच पुनस्तत्र वंशो मे रक्ष्यतां त्वया १८ रक्षयिष्यामि ते वंशं सत्यं च कथ्यते मया । इत्युक्त्वा च शिवेनैव विग्रहं सा चकार ह ॥१९॥ शिवोपि कुपितां देवीं दृष्ट्वा वरवशः प्रभुः । प्रत्युवाचेति सुप्रीतया यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २० ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वपतेश्शंकरस्य वै । सुप्रसन्ना विहस्याशु पार्वती वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पार्वत्युवाच । भवदीयं वचस्तथ्यं युगान्ते संभविष्यति । तावच्च तामसी सृष्टिर्भवत्विति मतं मम ॥ २२ ॥ अन्यथा प्रलयस्स्याद्वै सत्यं मे व्याहृतं शिव । प्रमाणं क्रियतां नाथ त्वदीयास्मि त्वदाश्रया ॥ २३ ॥ इयं च दारुका देवी राक्षसी शक्तिका मम । बलिष्ठा राक्षसीनां च रक्षोराज्यं प्रशास्तु च ॥ २४ ॥ इमा राक्षसपत्न्यस्तु प्रसविष्यन्ति पुत्रकान् । ते सर्वे मिलिताश्चैव वने वासाय मे मताः ॥ २५ ॥ सूत उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्यास्स्वस्त्रियाः प्रभुः । प्रसन्नमानसो भूत्वा शंकरो वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शंकर उवाच । इति ब्रवीषि त्वं वै चेच्छृणु मद्वचनं प्रिये । स्थास्याम्यस्मिन्वने प्रीत्या भक्तानां पालनाय च ॥२७॥ अत्र मे वर्णधर्मस्थो दर्शनं प्रीतिसंयुतम् । करिष्यति च यो वै स चक्रवर्ती भविष्यति ।२८।

तब देवीने प्रसन्न होकर कहा, कि- मैं क्या करूँ, तो उसने फिर कहा, कि--आप मेरे वंशकी रक्षा करिये ॥ १८ ॥ तब पार्वतीने कहा कि--मैं तेरे वंशकी रक्षा करूँगी, यह बात मैं सत्य कहती हूँ, इस प्रकार कह वह शिवसे रूठ गई ॥१९॥ शिव भी देवीको कुपित हुई देख वरके कारण प्रीतिपूर्वक कहने लगे, कि--जैसी इच्छा हो तैसा करो ॥ २० ॥ सूतजीने कहा, कि -अपने पति शंकरके इस वचनको सुन पार्वती प्रसन्न हो हँस कर कहने लगीं ॥ २१ ॥ पार्वतीने कहा, कि--आपका यह वचन युगके अन्तमें सत्य होना चाहिये तब तक तामसी सृष्टि रहनी चाहिये, यह मेरा मत है ॥ २२ ॥ अन्यथा प्रलय हो जावेगा, हे शिव ! यह बात मैंने सत्य कही है, हे नाथ ! मैं आपकी हूँ और आपके आश्रित हूँ, अतः मेरे वचनको प्रमाणित (सत्य) करिये ॥२३॥ और यह दारुका देवी राक्षसियोंमें बलवान् हैं और यह राक्षसी मेरी ही शक्ति है यह राक्षसोंके राज्य पर शासन करे ॥२४॥ ये राक्षसोंकी पत्नियें पुत्रोंको उत्पन्न करेंगी. वे सब मिलकर वनमें रहें यह मेरा मत है ॥ २५ ॥ सूतजीने कहा, कि- अपनी स्त्री पार्वतीके इस वचनको सुनकर शंकर चित्तमें प्रसन्न हुए और यह बात कहने लगे ॥२६॥ शंकरने कहा, कि--हे प्रिये ! यदि तुम यह बात कहती हो तो मेरी बात सुनो मैं इस वनमें भक्तोंका पालन करनेके लिये प्रतिष्ठित हूँगा ॥ २७ ॥ यहाँ पर जो वर्णाश्रमधर्ममें स्थित पुरुष प्रीतिपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती होगा ॥२८॥ अन्यथा कलियुगके बीतने पर जब

अन्यथा कलिपर्याये सत्यस्यादौ नृपेश्वरः। महासेनसुतो यो वै वीरसेनेति विश्रुतः ॥ २९ ॥ स मे भक्तेति विक्रांतो दर्शनं मे करिष्यति। दर्शनं मे स कृत्वैव चक्रवर्ती भविष्यति ॥ ३० ॥ सूत उवाच। इत्येवं दंपती तौ च कृत्वा हास्यं परस्परम्। स्थितौ तत्र स्वयं साक्षान्महोतीकारकौ द्विजाः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपो हि नाम्ना नागेश्वरशिवः। नागेश्वरी शिवा देवी बभूव च सतां प्रियौ ३२ ऋषय ऊचुः। वीरसेनः कथं तत्र यास्यते दारुकावने। कथमर्चिष्यति शिवं त्वं तद्वद महामते ॥ ३३ ॥ सूत उवाच। निषधे सुन्दरे देशे क्षत्रियाणां कुले च सः। महासेनसुतो वीरसेनश्चैव शिवप्रियः ॥ ३४ ॥ पार्थिवेशार्चनं कृत्वा तपः परमदुष्करम्। चकार वीरसेनो वै वर्षाणां द्वादशावधिः ॥ ३५ ॥ ततः प्रसन्नो देवेशः प्रत्यक्षं प्राह शंकरः। काष्ठस्य मत्सिकां कृत्वा त्रपुधातुविलेपनाम् ॥३६॥ विधाय योगमायां च दास्यामि वीरसेनक। तां गृहीत्वा प्रविश्यैतं नृभिस्सह व्रजाधुना ॥ ततस्त्वं तत्र गत्वा च विवरे च कृते मया। प्रविश्य च तदा पूजां कृत्वा नागेश्वरस्य च ॥ ३८ ॥ ततः पाशुपतं प्राप्य हत्वा च राक्षसीमुखान्। मयि दृष्टे तदा किंचिन्न्यूनं ते न भविष्यति ॥ ३९ ॥ पार्वत्याश्च बलं चैव संपूर्णं वै भविष्यति। अन्ये च म्लेच्छरूपा ये भविष्यंति वने शुभाः ॥ ४० ॥ सूत उवाच। इत्युक्त्वा

सत्ययुगकी आदि होगी तब महासेनका पुत्र वीरसेन नामसे प्रसिद्ध एक नृपेश्वर होगा ॥ २९ ॥ वह मेरा पराक्रमी भक्त मेरा दर्शन करेगा और वह मेरा दर्शन करते ही चक्रवर्ती हो जावेगा ॥३०॥ सूतजीने कहा, कि हे द्विजो ! वे परम रक्षक दोनों दम्पति इस प्रकार परस्पर हास्य कर तहाँ प्रतिष्ठित होगए ॥३१॥ वह ज्योतिर्लिङ्ग नागेश्वर शिव नामसे और पार्वती नागेश्वरी देवीके नामसे सज्जनोंके प्रिय होगए हैं ॥ ३२ ॥ ऋषियोंने कहा, कि- हे महामते ! वीरसेन उस दारुकवनमें किसप्रकार पहुँचेगा और किस प्रकार शिवका पूजन करेगा, उसका आप वर्णन करिये ॥ ३३ ॥ सूतजीने कहा, कि- निषध नामक सुन्दर देशमें क्षत्रियोंके कुलमें महासेनका पुत्र शिवप्रिय वीरसेन होगा ॥ ३४ ॥ वह वीरसेन बारह वर्ष तक पार्थिव शिवलिंगका पूजन करता हुआ परम दुष्कर तप करेगा ॥३५॥ तब देवेश शंकर प्रसन्न होकर कहेंगे, कि हे वीरसेन ! मैं तुमको काठकी एक मछली देता हूँ, इस पर योगमायासे जस्तका पत्तर चढ़ा हुआ है, इसको लेकर तुम अपने मनुष्योंको साथ ले प्रस्थान करो ॥ ३६॥ ३७॥ फिर तहाँ पहुँच कर मेरे विवर करने पर उसमें प्रवेश करके तुम नागेश्वरकी पूजा करना ॥३८॥ फिर पाशुपतको पा राक्षसी आदिको मारना, मेरा दर्शन करने पर तुममें कुछ न्यूनता नहीं रहेगी ॥ ३९ ॥ पार्वतीका बल भी उस समय पूर्ण हो जावेगा और जो म्लेच्छ तहाँ होंगे वे भी (तुम्हारे लिये) शुभ होजावेंगे ।४०।

शंकरस्तत्र वीरसेनं हि दुःखहा। कृत्वा कृपां च महतीं तत्रैवांतर्दधे प्रभुः ॥४१॥ इति दत्तवरस्सोऽपि शिवेन परमात्मना। शक्तस्सर्वं तदा कर्तुं संबभूव न संशयः ॥४२॥ एवं नागेश्वरो देव उत्पन्नो ज्योतिषां पतिः। लिंगरूपस्त्रिलोकस्य सर्वकामप्रदस्सदा ॥ ४३ ॥ एतद्यश्शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्। सर्वान्कामानियाद्धीमान्महापातकनाशनान् ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिङ्गोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सूत उवाच। अतः परं प्रवक्ष्यामि लिंगं रामेश्वराभिधम्। उत्पन्नं च यथा पूर्वमृषयश्शृणुतादरात् ॥ १ ॥ पुरा विष्णुः पृथिव्यां चावततार सतां प्रियः ॥२॥ तत्र सीता हृता विप्रा रावणेनोरुमायिना। प्रापिता स्वगृहं सा हि लंकायां जनकात्मजा ॥ ३ ॥ अन्वेषणपरस्तस्याः किष्किन्धाख्यां पुरीमगात्। सुग्रीवहितकृद्भूत्वा वालिनं संजघान ह ॥ ४ ॥ तत्र स्थित्वा कियत्कालं तदन्वेषणतत्परः। सुग्रीवाद्यैर्लक्ष्मणेन विचारं कृतवान्स वै ॥५॥ कपीन्संप्रेषयामास चतुर्दिक्षु नृपात्मजः। हनुमत्प्रमुखान्रामस्तदन्वेषणहेतवे ॥ ६ ॥ अथ ज्ञात्वा गतां लंकां सीतां

सूतजीने कहा, कि—दुःखनाशक प्रभु शंकर वीरसेनने इस प्रकार कह बड़ी भारी कृपा कर तहाँ ही अन्तर्धान होजावेंगे ॥ ४१ ॥ परमात्मा शिवके इस प्रकार वर देने पर वह सब कुछ करनेमें समर्थ होगा ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्लिङ्गोंके स्वामी नागेश्वरदेव इस प्रकार प्रकट हुए हैं, यह शिवलिंग सदा त्रिलोकीकी सब कामनाओंको पूर्ण कर सकता है ।४३। जो इस नागेश्वर लिङ्गकी उत्पत्ति को आदरपूर्वक सदा सुनता है वह बुद्धिमान् पुरुष महापातकोंको नष्ट करने वाले सब मनोरथोंको पाता है ॥ ४४ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

सूतजीने कहा, कि—अब मैं रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन करता हूँ हे ऋषियों ! यह पहिले जिस प्रकार प्रकट हुआ है, उसको आप आदरपूर्वक सुनें ॥ १ ॥ पहिले सज्जनोंके प्रिय विष्णुने पृथिवी पर अवतार धारण किया था ॥ २ ॥ हे विप्रों ! उस समय बड़े भारी मायावी रावणने सीताको हर लिया था और उन जनकनन्दिनीको उसने अपने घर लङ्कामें पहुँचा दिया ॥३॥ तब राम उनको ढूँढते हुए किष्किधा-पुरीमें पहुँचे और सुग्रीव के हितकारी बन कर बालीको मार डाला ॥ ४ ॥ तहाँ वे सीताकी खोजमें कुछ दिन टिके फिर उन्होंने लक्ष्मण और सुग्रीव आदिके साथ विचार किया ॥ ५ ॥ फिर राजकुमार रामने सीताजीको खोजनेके लिये हनुमान् आदि वानरोंको चारों दिशाओंमें भेजा ॥ ६ ॥ तदनन्तर कपिवर हनुमान् के मुखसे सीताको लङ्कामें पहुँची हुई जान कर और सीताकी चूडामणिको

कपिवराननात् । सीताचूडामणिं प्राप्य मुमुदे सोऽति राघवः । सकपीशस्तदा रामो लक्ष्मणेन युतो द्विजाः ॥ ७ ॥ सुग्रीवप्रमुखैः पुण्यैर्वानरैर्बलवत्तरैः । पद्म र-ष्टादशाख्यैश्च ययौ तीरं पयोनिधेः ॥८॥ दक्षिणे सागरे यो वै दृश्यते लवणाकरः । तत्रागत्य स्वयं रामो वेलायां संस्थितो हि सः ॥ ९ ॥ वानरैस्सेव्यमानस्तु लक्ष्मणेन शिवप्रियः ॥ १० ॥ हा जानकी कुतो याता कदा चेयं मिलिष्यति । अगाधस्सागरश्चैवातार्या सेना च वानरी ॥ ११ ॥ राक्षसो गिरिधर्ता च महाबलपराक्रमः । लंकाख्यं दुर्गमगमदिंद्रजित्तनयोऽस्य वै ॥ १२ ॥ इत्येवं स विचार्यैव तटे स्थित्वा सलक्ष्मणः । आश्वासितो वनौकोभिरंगदादिरपुस्सरैः ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र राघवश्शैवसत्तमः । उवाच भ्रातरं प्रीत्या जलार्थी लक्ष्मणाभिधम् ॥ राम उवाच । भ्रातर्लक्ष्मण वीरेशाहं जलार्थी पिपासितः । तदानय द्रुतं पाथो वानरैः कैश्चिदेव हि ॥ १५ ॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वा वानरास्तत्र ह्यधावंत दिशो दश । नीत्वा जलं च ते प्रोचुः प्रणिपत्य पुरः स्थिताः ॥१६॥ वानरा ऊचुः । जलं च गृह्यतां स्वामिन्नानीतं तत्त्वदाज्ञया । महोत्तमं च सुस्वादु शीतलं प्राणतर्पणम् ॥१७॥ सूत उवाच। सुप्रसन्नतरो भूत्वा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान् । तच्छ्रुत्वा

पाकर राघव राम बहुत प्रसन्न हुए तथा हे द्विजों ! कपीश सुग्रीव और लक्ष्मण को भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर राम परमबली पुण्यात्मा सुग्रीव आदि अठारह पद्म वानरोंको लेकर समुद्रके तटको चले ॥ ८ ॥ दक्षिणकी ओर जो लवणाकर समुद्र दीखता है, तहाँ आकर राम उसके किनारे पर टिक गए ॥ ९ ॥ उस समय शिवप्रिय रामकी लक्ष्मण और वानर सेवा कर रहे थे ॥ १० ॥ "हा जानकी कहाँ गई अब वह कब मिलेंगी, समुद्र अथाह है, वानरोंकी सेनाको इसके पार पहुँचाना कठिन है ॥ ११ ॥ कैलास पर्वत को उठाने वाला महाबली रावण लंका नामक दुर्गमें पहुँच गया है, उसके पुत्रका नाम इन्द्रजीत है" ॥ १२ ॥ राम समुद्र तट पर बैठ लक्ष्मणके साथ इस प्रकार विचार कर रहे थे, कि-तब वनवासी अंगद आदिने उनको आश्वासन दिया ॥ १३ ॥ इसी समय शिवके भक्त रामने जलकी इच्छासे अपने भाई लक्ष्मणसे प्रीतिपूर्वक कहा ॥ १४ ॥ रामने कहा, कि-हे वीरेश भाई लक्ष्मण ! मैं प्यासा हूँ, अतः जल चाहता हूँ, अतः तुम कुछ वानरोंको साथमें ले शीघ्र ही जल लाओ ॥१५॥ सूतजीने कहा, कि-तब वानर दशों दिशाओंको ओर चले और वे जल लाकर प्रणाम कर रामके सामने खड़े होकर कहने लगे ॥१६॥ वानरोंने कहा, कि-हे स्वामिन् ! जल ग्रहण करिये हम आपकी आज्ञासे परम उत्तम स्वादिष्ट शीतल चित्तको तृप्त करने वाला जल ले आये हैं ॥ १७ ॥ सूतजीने कहा, कि-इस बातको सुन रामचन्द्र

रामचन्द्रोऽसौ स्वयं जग्राह तज्जलम् ॥ १८ ॥ सशैवस्तज्जलं नीत्वा पातुमार-
ब्धवांस्तदा । तदा च स्मरणं जातमित्थमस्य शिवेच्छया ॥ १९ ॥ न कृतं दर्शनं
शंभोर्गृह्यते च जलं कथम् । स्वस्वामिनः परेशस्य सर्वानंदप्रदस्य वै ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा च जलं पीतं तदा रघुवरेण च । पश्चाच्च पार्थिवीं पूजां चकार रघु-
नन्दनः ॥ २१ ॥ आवाहनादिकं चैव ह्युपचारान्प्रकल्प्य वै । विधिवत्षोडशं प्रीत्या
देवमानर्च शंकरम् ॥ २२ ॥ प्रणिपातैस्स्तवैर्दिव्यैश्शिवं संतोष्य यत्नतः । प्रार्थ-
यामास सद्भक्त्या स रामश्शंकरं मुदा ॥ २३ ॥ राम उवाच । स्वामिञ्छंभो महा-
देव सर्वदा भक्तवत्सल । पाहि मां शरणापन्नं त्वद्भक्तं दीनमानसम् ॥२४॥ एत-
ज्जलमगाधं च वारिधेर्भवतारण । रावणाख्यो महावीरो राक्षसो बलवत्तरः २५
वानराणां बलं ह्येतच्चंचलं युद्धसाधनम् । मम कार्यं कथं सिद्धं भविष्यति प्रिया-
प्तये ॥ २६ ॥ तस्मिन्देव त्वया कार्यं साहाय्यं मम सुव्रत । साहाय्यं ते विना नाथ
मम कार्य्यं हि दुर्लभम् ॥ २७ ॥ त्वदीयो रावणोऽपीह दुर्जयस्सर्वथाखिलैः ।
त्वद्दत्तवरदप्तश्च महावीरस्त्रिलोकजित् ॥ २८ ॥ अप्याहं तव दासोऽस्मि त्वदधी-
नश्च सर्वथा । विचार्येति त्वया कार्यः पक्षपातस्सदाशिव ॥ २९ ॥ सूत उवाच ।

परमप्रसन्न हो उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखने लगे और उन्होंने वह जल स्वयं ग्रहण कर लिया ॥१८॥ जब शिवभक्त राम उस जलको लेकर पीना चाहने लगे तब शिवकी इच्छासे उन्हें यह स्मरण आया, कि--॥ १९ ॥ मैंने सब प्रकारका आनन्द देने वाले अपने स्वामी परमेश्वर शंभुका अभी दर्शन तो किया हो नहीं है, फिर मैं जल कैसे लिये लेता हूँ ॥२०॥ यह कह कर रघुवरने जल पिया, फिर रघुनन्दनने पार्थिव--पूजा की ॥ २१ ॥ उन्होंने आवाहन आदि षोडशोपचार कर शंकरदेवका प्रीतिपूर्वक पूजन किया २२ फिर राम भक्तिपूर्वक प्रणाम दिव्य स्तोत्र आदि से शंकरको सन्तुष्ट कर आनन्दमें भर उनकी प्रार्थना करने लगे ॥ २३ ॥ रामने कहा, कि-हे भक्तों पर सदा वत्सलता दिखाने वाले महादेव शंभो ! मुझ दीन मनवाले शरणागत भक्तको आप रक्षा करिये ॥ २४ ॥ हे संसारसे उद्धार करने वाले ! समुद्रका यह जल अगाध है और रावण नामक राक्षस भी महावीर और बलवान् है ॥ २५ ॥ और युद्धकी साधन वानरोंकी यह सेना भी चञ्चल है, अतः प्रियाको पानेका मेरा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ॥ २६ ॥ अतः हे सुव्रत देव ! मेरे इस कार्यमें आपको सहायता देनी चाहिये, हे नाथ ! आपकी सहायताके विना मेरा कार्य होना दुर्लभ है ॥२७॥ आपका रावण भी सर्वथा सबसे दुर्जय है और आपके वरदानसे गर्वमें भर कर उसने त्रिलोकोको जीत लिया है ॥२८॥ और मैं भी आपका दास हूँ, सर्वथा आपके अधीन हूँ,

इत्येवं स च संप्रार्थ्य नमस्कृत्य पुनः पुनः । तदा जयजयेत्युच्चैरुद्घोषैश्शंकरेति च ॥ ३० ॥ इति स्तुत्वा शिवं तत्र मंत्रध्यानपरायणः । पुनः पूजां ततः कृत्वा स्वाम्यग्रे स ननर्त ह ॥ ३१ ॥ प्रेमविक्लिन्नहृदय गल्लनादं यदाकरोत् । तदा च शंकरो देवस्सुप्रसन्नो बभूव ह ॥३२॥ सांगस्सपरिवारश्च ज्योतीरूपो महेश्वरः । यथोक्तरूपममलं कृत्वाविरभवद् द्रुतम् ॥ ३३ ॥ ततस्संतुष्टहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः । शिवमस्तु वरं ब्रूहि रामेति स तदाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा सर्वे पूतास्ततस्स्वयम् । कृतवान्राघवः पूजां शिवधर्मपरायणः ॥ ३५ ॥ स्तुतिं च विविधां कृत्वा प्रणिपत्य शिवं मुदा । जयं च प्रार्थयामास रावणाजौ तदात्मनः॥ ततः प्रसन्नहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः । जयोऽस्तु ते महाराज प्रीत्या स पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शिवदत्तं जयं प्राप्य ह्यनुज्ञां समवाप्य च । पुनश्च प्रार्थयामास सांजलिर्नतमस्तकः ॥३८॥ राम उवाच । त्वया स्थेयमिह स्वामिंल्लोकानां पावनाय च । परेषामुपकारार्थं यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥३९॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्तु शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा । रामेश्वरश्च नाम्ना वै प्रसिद्धो जगतीतले ।४०।

हे सदाशिव ! यह विचार कर आपको पक्षपात करना चाहिये ॥ २९ ॥ सूतजीने कहा, कि--रामने इस प्रकार प्रार्थना करके बारम्बार प्रणाम किया और ऊँचे स्वरसे जयशंकर जयशंकर कहने लगे ॥ ३० ॥ शिवकी इस प्रकार स्तुति कर वह मंत्रपूर्वक ध्यानमें परायण होगए और फिर पूजा करके स्वामीके आगे नाचने लगे ॥ ३१ ॥ जब रामने प्रेम भरे हृदयसे गल्लनाद किया, तब शंकर देव प्रसन्न होगए ॥ ३२ ॥ महेश्वर दलबल और परिवार सहित निर्मल रूप धारण कर ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपमें प्रकट होगए ॥३३॥ तब महेश्वरने रामकी भक्तिसे हृदयमें प्रसन्न होकर कहा, कि--हे राम ! तुम्हारा कल्याण हो तुम वर माँग लो ॥ ३४ ॥ शिवके स्वरूपका दर्शन पाकर स्वयं ही सब पवित्र होगए तब शिवधर्मपरायण राघवने भी पूजा की ॥३५॥ रामने आनन्दपूर्वक अनेक प्रकारसे स्तुति कर शिवको प्रणाम करके युद्धमें रावणसे अपनी विजय चाही ॥ ३६ ॥ तब रामकी भक्तिसे हृदयमें प्रसन्न हुए महेशने प्रीतिपूर्वक कहा, कि--हे महाराज ! आपकी जय होगी ॥ ३७ ॥ शिवकी दी हुई विजय की आशिष पा और उनकी आज्ञा पा रामने मस्तक झुका हाथ जोड़ कर फिर प्रार्थना की ॥३८॥ रामने कहा, कि--हे स्वामिन् ! आप लोगोंको पवित्र करनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हो, हे शंकर ! यदि आप प्रसन्न हों तो परोपकारके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हूजिये ३९ सूतजीने कहा, कि--इस प्रकार कहने पर शिव तहाँ लिंगस्वरूपमें प्रतिष्ठित हो पृथिवी पर रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगए ॥ ४० ॥ राम शिवके वरके

रामस्तु तत्प्रभावाद्वै सिन्धुमुत्तीर्य चांजसा । रावणादीन्निहत्याशु राक्षसान्प्राप तां प्रियाम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः । भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४२ ॥ दिव्यगंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यश्शिवम् । रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ४३ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवानां दुर्लभानपि । अंते प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ४४ इति यश्च समाख्यातं ज्योतिर्लिंगं शिवस्य तु । रामेश्वराभिधं दिव्यं शृण्वतां पापहारकम् ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सूत उवाच । अतः परं च घुश्मेशं ज्योतिर्लिंगमुदाहृतम् । तस्यैव च सुमाहात्म्यं श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ १ ॥ दक्षिणस्यां दिशि श्रेष्ठो गिरिर्देवेतिसंज्ञकः । महाशोभान्वितो नित्यं राजतेऽद्भुतदर्शनः ॥ २ ॥ तस्यैव निकटे कश्चिद्भारद्वाजकुलोद्भवः । सुधर्मा नाम विप्रश्च न्यवसद् ब्रह्मवित्तमः ॥ ३ ॥ तस्य प्रिया सुदेहा च शिवधर्मपरायणा । पतिसेवापरा नित्यं गृहकर्मविचक्षणा ॥ ४ ॥ सुधर्मा च द्विजश्रेष्ठो देवतातिथिपूजकः । वेदमार्गपरो नित्यमग्निसेवापरायणः ॥५॥ त्रिका-

---

प्रभावसे सरलतापूर्वक समुद्रके पार पहुंच गए और उन्होंने रावण आदि राक्षसोंको मार अपनी प्रियाको पाया था ॥ ४१ ॥ पृथिवी पर रामेश्वरकी महिमा अद्भुत और अतुल है, भोग और मोक्ष देने वाली है और भक्तोंका मनोरथ सदा पूर्ण करने वाली है ॥ ४२ ॥ जो दिव्य गंगाजलसे रामेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह जीवन्मुक्त ही है ॥ ४३ ॥ वह यहाँ पर देवदुर्लभ समस्त भोगोंके भोगता हुआ, अन्तमें परम ज्ञानको पा कैवल्य पद पाता है ॥४४॥ यह आपसे सुनने वालोंके पापोंको हटाने वाले शिवके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य कह दिया ॥ ४५ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ ❀ ❀ ❀

सूतजीने कहा, कि-हे ऋषिसत्तमो ! इसके अनन्तर घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंगका वर्णन आया है, उसके माहात्म्यको आप सुनें ॥ १ ॥ दक्षिण दिशामें अद्भुत दृश्योंसे सुशोभित देवगिरि नामक एक श्रेष्ठ पर्वत नित्य दमक रहा है ॥ २ ॥ उसके समीप भारद्वाजके कुलमें उत्पन्न हुआ सुधर्मा नामक एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उसकी प्रियाका नाम सुदेहा था, वह शिवधर्ममें परायण रहती थी और वह गृहकर्ममें चतुर नारी सदा पति सेवामें परायण रहती थी ॥४॥ और द्विजश्रेष्ठ सुधर्मा भी देवता और अतिथियोंकी पूजा करता रहता था, वैदिक मार्गमें चलता था और अग्निहोत्री था ॥ ५ ॥ त्रिकाल-संध्या करता था, उसकी कान्ति सूर्यकी समान

लसंध्यया युक्तस्सूर्य्यरूपसमद्युतिः। शिष्याणां पाठकश्चैव वेदशास्त्रविचक्षणः ॥६॥ धनवांश्च परो दाता सौजन्यगुणभाजनः। शिवकर्मरतो नित्यं शैवश्शैवजनप्रियः ७ आयुर्बहु व्यतीयाय तस्य धर्मं प्रकुर्वतः। पुत्रश्च नाभवत्तस्य ऋतुः स्यादफलस्त्रियाः ॥ ८ ॥ तेन दुःखं कृतं नैव वस्तुज्ञानपरेण हि। आत्मनस्तारकश्चात्मा ह्यात्मनः पावनश्च सः ॥ ९ ॥ इत्येवं मानसं धृत्वा दुःखं न कृतवांस्तदा। सुदेहा च तदा दुःखं चकारापुत्रसम्भवम् ॥ १० ॥ नित्यं च स्वामिनं सा वै प्रार्थयद्यत्नसाधने। पुत्रोत्पादनहेतोश्च सर्वविद्याविशारदम् ॥ ११ ॥ सोपि स्त्रियं तदाभर्त्स्य किं पुत्रश्च करिष्यति। का माता कः पिता पुत्रः को बंधुश्च प्रियश्च कः ॥१२॥ सर्वं स्वार्थपरं देवि त्रिलोक्यां नात्र संशयः। जानीहि त्वं विशेषेण बुद्ध्या शोकं न वै कुरु ॥ १३ ॥ तस्माद्देवि त्वया दुःखं त्यजनीयं सुनिश्चितम्। नित्यं मह्यं त्वया नैव कथनीयं शुभव्रते ॥ १४ ॥ एवं तां सन्निवार्य्यैव भगवद्धर्मतत्परः। आसीत्परमसन्तुष्टो द्वन्द्वदुःखं समत्यजत् ॥ १५ ॥ कदाचिच्च सुदेहा वै गेहे च सहवासिनः। जगाम प्रियगोष्ठ्यर्थं विवादस्तत्र संगतः ॥ १६ ॥ तत्पत्नी स्त्रीस्वभावाच्च भर्त्सिता सा तया तदा। उक्ता चेति दुरुक्त्या वै सुदेहा विप्रका-

थी, वेदशास्त्रमें चतुर वह ब्राह्मण शिष्योंको पढ़ाया करता था ॥ ६ ॥ वह धनी था, श्रेष्ठ दाता था और बड़ा सज्जन था, शैवोंका प्यारा वह शैव सदा शिवपूजाकर्ममें लगा रहता था ॥ ७ ॥ धर्माचरण करते करते उसकी बहुत सी आयु बीत गई परन्तु उसके पुत्र न हुआ उसकी स्त्रीका ऋतुकाल निष्फल जाता था ॥८॥ उसको वस्तुस्थितिका ज्ञान था, अतः उसने कुछ दुःख नहीं माना, आत्मा अपनेको तारने वाला है, वही अपनेको पवित्र करने वाला है ॥ ९ ॥ यह विचार कर वह दुःख नहीं मानता था, परन्तु सुदेहा पुत्रके न होनेसे दुःखित रहने लगी ॥ १० ॥ वह अपने सब विद्याओंमें चतुर स्वामी से पुत्रकी उत्पत्तिका यत्न करनेके लिये सदा प्रार्थना करती रहती थी ११ वह अपनी स्त्रीकी भर्त्सना कर कहता था, कि-पुत्र क्या करेगा? यहाँ माता कौन है? कौन पिता है? कौन पुत्र है? कौन बंधु है? और कौन प्रिय है? ॥१२॥ हे देवि! त्रिलोकीमें सब स्वार्थके संबंधी हैं, इस बातका विचार से निश्चय करके तुम शोक न करो ॥ १३ ॥ अतः हे देवि! तुम यह दुःख करना छोड़ दो और हे शुभव्रते! इस बातके लिये तुम मुझसे नित्य न कहा करो ॥१४॥ वह इस प्रकार उससे मना कर परम सन्तुष्ट रहता हुआ द्वन्द्वदुःखोंको त्याग भगवद्धर्ममें परायण रहता था ॥ १५ ॥ एक समय सुदेहा अपने पड़ौसीके घर प्रियगोष्ठीके लिये गई, तहाँ विवाद होने लगा ॥ १६ ॥ पड़ौसीकी पत्नीने स्त्रीस्वभाववश विप्रकामिनी सुदेहाको धमका कर दुर्वचन

मिनी ॥ १७ ॥ पत्न्युवाच । अपुत्रिणि कथं गर्वं कुरुषे पुत्रिणी ह्यहम् । मद्धनं भोक्ष्यते पुत्रो धनं ते कश्च भोक्ष्यते ॥ १८ ॥ नूनं हरिष्यते राजा त्वद्धनं नात्र संशयः । धिग्धिक्त्वां ते धनं धिक्च धिक्ते मानं हि वन्ध्यके ॥१९॥ सूत उवाच । भर्त्सिता ताभिरिति सा गृहमागत्य दुःखिता । स्वामिने कथयामास तदुक्तं सर्वमादरात् ॥ २० ॥ ब्राह्मणोऽपि तदा दुःखं न चकार सुबुद्धिमान् । कथितं कथ्यतामेव यद्भावि तद्भवेत्प्रिये ॥ २१ ॥ इत्येवं च तदा तेन ह्याश्वस्तापि पुनः पुनः । न तदा सात्यजद् दुःखं ह्याग्रहं कृतवत्यसौ ॥२२॥ सुदेहोवाच । यथा तथा त्वया पुत्रस्समुत्पाद्यः प्रियोऽसि मे । त्यजामि ह्यन्यथाहं च देहं देहभृतां वर ॥ २३ ॥ सूत उवाच । एवमुक्तं तया श्रुत्वा सुधर्मा ब्राह्मणोत्तमः । शिवं सस्मार मनसा तदाग्रहनिपीडितः ॥ २४ ॥ अग्नेरग्रेऽक्षिपत्पुष्पद्वयं विप्रो ह्यतन्द्रितः । मनसा दक्षिणं पुष्पं तं मेने पुत्रकामदम् ॥ २५ ॥ एवं कृत्वा पणं पत्नीमुवाच ब्राह्मणस्स च । अनयोर्ग्राह्यमेकं ते पुष्पं पुत्रफलाप्तये ॥२६॥ तया च मनसा धृत्वा पुत्रश्चैव भवेन्मम । तदा च स्वामिना यच्च धृतं पुष्पं समेतु माम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा च

कहते हुए कहा, कि—॥ १७ ॥ पड़ोसीकी पत्नीने कहा, कि--अरी निपूती ! तू किस बातका गर्व करती है, मैं पुत्रवती हूँ, मेरे धनको मेरा पुत्र भोगेगा, तेरे धनको कौन भोगेगा ॥१८॥ तेरे धनको तो राजा ही लेगा, तुझे धिक्कार है, तेरे धनको धिक्कार है और अरी बाँझ ! तेरे मानको धिक्कार है ॥१९॥ सूतजीने कहा, कि--इस प्रकार तिरस्कृत होकर वह दुःखित होती हुई घर पहुँची और अपनी स्वामीको पड़ौसनोंकी बातें आदरपूर्वक सुनाईं ॥२०॥ बुद्धिमान् ब्राह्मणने उस समय भी कुछ दुःख न माना और कहा, कि—हे प्रिये ! जो कुछ उन्होंने कहा सो कहने दो, जो होनहार है, वह तो होगा ही ॥ २१ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणने बारंबार आश्वासन दिया, तब भी उसका दुःख न गया और वह हठ करने लगी ॥ २२ ॥ सुदेहाने कहा, कि—हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय हैं, अतः आपको जैसे भी हो वैसे पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, अन्यथा मैं शरीर त्याग दूँगी ॥ २३ ॥ सूतजीने कहा, कि- ब्राह्मणोत्तम सुधर्माने उसके इस वचनको सुन उसके आग्रहसे पीड़ित होकर मनमें शिवका स्मरण किया ॥ २४ ॥ फिर उस तन्द्रारहित विप्रने मनमें दक्षिण पुष्पको पुत्रकी कामना पूर्ण करने वाला समझ कर अग्निके सामने दो पुष्प रखे ॥२५॥ वह ब्राह्मण इस प्रकारका पण (दाँव) रख कर पत्नीसे कहने लगा, कि--इनमेंसे एक पुष्पको पुत्ररूप फल पानेके लिये ग्रहण करलो ॥ २६ ॥ फिर उस स्त्रीने मेरे पुत्र हो इस विचारसे मेरे स्वामीने जो पुष्प धरा हो वह मुझे प्राप्त हो ॥ २७ ॥ यह कह कर शिवको

तथा तत्र नमस्कृत्य शिवं तदा । नत्वा चाग्निं पुनः प्रार्थ्य गृहीतं पुष्पमेककम् २८ स्वामिना चिंतितं यच्च तद्गृहीतं तया न हि । सुदेहया विमोहेन शिवेच्छासंभवेन वै ॥ २९ ॥ तद्दृष्ट्वा पुरुषश्चैव निःश्वासं पर्यमोचयत् । स्मृत्वा शिवपदांभोजमुवाच निजकामिनीम् ॥ ३० ॥ सुधर्मोवाच । निर्मितं चेश्वरेणैव कथं चैवान्यथा भवेत् । आशां त्यज प्रिये त्वं च परिचर्यां कुरु प्रभोः ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा तु स्वयं विप्र आशां परिविहाय च । धर्मकार्यरतस्सोऽभूच्छंकरध्यानतत्परः ३२ सा सुदेहाग्रहं नैव मुमोचात्मजकाम्यया । प्रत्युवाच पतिं प्रेम्णा सांजलिर्नतमस्तका ॥३३॥ सुदेहोवाच । मयि पुत्रो न चास्त्यन्यां पत्नीं कुरु मदाज्ञया । तस्यां नूनं सुतश्चैव भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥ सूत उवाच । तदैव प्रार्थितो वै स ब्राह्मणश्शैवसत्तमः । उवाच स्वप्रियां तां च सुदेहां धर्मतत्परः ॥ ३५ ॥ सुधर्मोवाच । त्वदीयं च मदीयं च सर्वं दुःखं गतं ध्रुवम् । तस्मात्त्वं धर्मविघ्नं च प्रिये मा कुरु सांप्रतम् ॥ ३६ ॥ सूत उवाच । इत्येवं वारिता सा च स्वमातुः पुत्रिकां तदा । गृहमानीय भर्तारं वृणु त्वेनामिदं जगौ ॥ ३७ ॥ सुधर्मोवाच । इदानीं वदसि त्वं च मत्प्रियेयं ततः पुनः । पुत्रसूश्च यदा स्याद्वै तदा स्पर्द्धां करिष्यति ॥

तथा अग्निको प्रणाम कर फिर प्रार्थना करके एक पुष्प उठा लिया ॥२७॥ परंतु शिवकी इच्छासे प्राप्त हुए मोहके कारण सुदेहाने स्वामीके विचारे हुए पुष्पको नहीं उठाया ॥ २८ ॥ यह देखकर पुरुषने श्वास छोड़ा और शिवके चरणकमलका स्मरण कर अपनी कामिनीसे कहने लगा । ३० ॥ सुधर्माने कहा, कि–ईश्वरकी रची बात अन्यथा कैसे होसकती है, अतः हे प्रिये ! तू आशाको त्याग कर प्रभु शंकरकी सेवा किये जा ॥३१॥ वह विप्र इस प्रकार कह आशाको त्याग शंकरके ध्यान और धर्मकार्यमें परायण होगया ॥३२॥ परन्तु सुदेहाने पुत्रकी कामनासे अपना आग्रह नहीं छोड़ा और मस्तक झुका हाथ जोड़ पतिसे प्रेमपूर्वक कहने लगी ॥ ३३ ॥ सुदेहाने कहा, कि–यदि मुझसे पुत्र नहीं होसकता, तो मेरी आज्ञासे आप दूसरी पत्नी कर लीजिये, उससे अवश्य ही पुत्र होगा ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार प्रार्थना करने पर वह धर्मपरायण शिवभक्त ब्राह्मण अपनी प्रिया सुदेहासे कहने लगा ॥ ३५ ॥ सुधर्माने कहा, कि–तेरा और मेरा सब ही दुःख इस समय टला हुआ है अतः हे प्रिये ! इस समय तू धर्ममें विघ्न न डाल ॥३६॥ सूतजीने कहा, कि–इस प्रकार मना करने भी उसने अपनी माताकी लड़की (बहिन) को घर बुलाया और स्वामीसे कहने लगी, कि–आप इसके साथ विवाह करिये ॥ ३७ ॥ सुधर्माने कहा, कि–इस समय तू इसको अपनी प्रिया बता रही है, परन्तु जब यह पुत्रको उत्पन्न कर लेगी, तब तू इसके साथ स्पर्धा

सूत उवाच । इत्युक्ता तेन पतिना सा सुदेहा च तत्प्रिया । पुनः प्राह करौ बद्ध्वा सुधर्माणं पतिं द्विजाः ॥ ३९ ॥ नाहं स्पर्द्धां भगिन्या वै करिष्ये द्विजसत्तम । उपयच्छस्व पुत्रार्थमिमामाज्ञापयामि च । इत्येवं प्रार्थितस्सोऽपि सुधर्मा प्रियया तया । घुश्मां तां समुपायंस्त विवाहविधिना द्विजः ॥४०॥ ततस्तां परिणीयाथ प्रार्थयामास तां द्विजः । त्वदीयेयं कनिष्ठा हि सदा पोष्यानघे प्रिये ।४१। उक्त्वैवं स च धर्मात्मा सुधर्मा शैवसत्तमः । यथायेऽयं चकाराशु धर्मसंग्रहमात्मनः ।४२। सा चापि मातृपुत्रीं तां दासीवत्पर्यवर्त्तत । परित्यज्य विरोधं हि पुपोषाहर्निशं प्रिया ॥ ४३ ॥ कनिष्ठा चैव या पत्नी स्वस्रनुज्ञामवाप्य च । पार्थिवान्सा चकाराशु नित्यमेकोत्तरं शतम् ॥ ४४ ॥ विधानपूर्वकं घुश्मा सोपचारसमन्वितम् । कृत्वा तान्प्राक्षिपत्तत्र तडागे निकटस्थिते ॥ ४५ ॥ एवं नित्यं सा चकार शिवपूजां स्वकामदाम् । विसृज्य पुनरावाह्य तत्सपर्याविधानतः ॥ ४६ ॥ कुर्वन्त्या नित्यमेवं हि तस्याश्शंकरपूजनम् । लक्षसंख्याभवत्पूर्णा सर्वकामफलप्रदा ॥४७॥ कृपया शंकरस्यैव तस्याः पुत्रो व्यजायत । सुन्दरस्सुभगश्चैव कल्याणगुणभाजनः ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो स विप्रो धर्मवित्तमः । अनासक्तस्सुखं भेजे ज्ञानधर्मपरायणः ॥

करने लगेगी ॥ ३८ ॥ सूतजीने कहा, कि--हे द्विजों ! पतिके इस प्रकार कहने पर वह ब्राह्मणपत्नी सुदेहा हाथ जोड़ कर अपने पति सुधर्मासे कहने लगी, कि--॥ ३९ ॥ हे द्विजसत्तम ! मैं अपनी बहिनसे स्पर्धा नहीं करूँगी अतः आप मेरी प्रार्थनासे पुत्रके लिये इससे विवाह करिये, अपनी प्रियाके इस प्रकार प्रार्थना करने पर द्विज सुधर्माने घुश्माके साथ विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ४० ॥ उसके साथ विवाह कर द्विजने अपनी पत्नीसे प्रार्थना की, कि--हे पापरहित प्रिये ! यह तुम्हारी छोटी बहिन है, अतः तू इसका सदा पोषण करना ॥४१॥ शैवसत्तम धर्मात्मा सुधर्मा इस प्रकार कहकर यथोचित धर्मसंग्रह करने लगा ॥ ४२ ॥ और वह भी दासीकी समान अपनी बहिन की सेवा करने लगी, वह विरोधको त्याग प्रेमपूर्वक उसका पोषण करने लगी ॥ ४३ ॥ इधर छोटी पत्नी भी अपनी बहिनकी आज्ञाको पा नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिंग बनाने लगी ॥ ४४ ॥ घुश्मा विधिपूर्वक उपचारोंके साथ शिवलिंग बना कर उनको समीपवर्ती तलावमें सिला देती थी ४५ इस प्रकार पूजाकी विधिके अनुसार आवाहन और विसर्जन कर वह अपना मनोरथ पूर्ण करने वाली शिवपूजाको निरंतर करने लगी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नित्य शिवपूजन करते करते उसकी सब कामनाओंको सफल करने वाली एक लाखकी संख्या पूर्ण होगई ॥ ४७ ॥ तब शंकरकी कृपासे उसके पुत्र हुआ वह सुन्दर सौभाग्यवान और कल्याण तथा गुणोंका पात्र था ४८

सुदेहा तावदस्यास्तु स्पर्द्धामुग्रां चकार सा । प्रथमं शीतलं तस्या हृदयं ह्यसिवत्पुनः ॥ ५० ॥ ततः परं च यज्जातं कुत्सितं कर्म दुःखदम् । सावधानेन मनसा श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ ५१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सूत उवाच । पुत्रं दृष्ट्वा कनिष्ठाया ज्येष्ठा दुःखमुपागता । विरोधं सा चकाराशु न सहंती च तत्सुखम् ॥ १ ॥ सर्वे पुत्रप्रसूतिं तां प्रशशंसुर्निरन्तरम् । तया तत्सह्यते न स्म शिशो रूपादिकं तथा ॥ २ ॥ सुप्रियं तनयं तं च पित्रोस्सद्गुणभाजनम् । दृष्ट्वाऽभवत्तदा तस्या हृदयं तप्तमग्निवत् ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्राः कन्यां दातुं समागताः । विवाहं तस्य तत्रैव चकार विधिवच्च सः ॥४॥ सुधर्मा घुश्मया सार्द्धमानन्दं परमं गतः । सर्वे संबन्धिनस्तस्यां घुश्मायां मानमादधुः ॥ तं दृष्ट्वा सा सुदेहा हि मनसि ज्वलिता तदा । अत्यन्तं दुःखमापन्ना हा हतास्मीति वादिनी ॥ ६ ॥ सुधर्म्मा गृहमागत्य वधूं पुत्रं विवाहितम् । उत्साहं दर्शयामास प्रियाभ्यां हर्षयन्निव ॥ ७ ॥ अभवद्धर्षिता घुश्मा सुदेहा दुःखमागता ।

वह धर्मवेत्ता विप्र उस पुत्रको देख कर परम प्रसन्न हुआ और अनासक्तभावसे ज्ञान और धर्ममें परायण हो सुख भोगने लगा ॥४९॥ परन्तु सुदेहा अपनी बहिनसे बड़ी स्पर्धा करने लगी, उसका पहिले शीतल रहने वाला हृदय फिर तलवारकी समान होगया ॥५०॥ हे मुनीश्वरों ! इसके अनन्तर जो दुःख देने वाला कुत्सित कर्म हुआ था उसको आप चित्तको सावधान कर सुनें ॥ ५१ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ * *

सूतजीने कहा, कि—छोटीके पुत्रको देख कर बड़ी दुःखमें भर गई और उसके सुखको न सह उससे विरोध रखने लगी ॥ १ ॥ सब उस पुत्र सन्तान की प्रशंसा करते रहते थे, परन्तु वह शिशुके रूप आदिकी प्रशंसाको सह नहीं पाती थी ॥ २ ॥ माता पिताके सद्गुणोंके पात्र उस प्रिय पुत्रको देखकर उसका हृदय अग्निकी समान तपने लगा ॥ ३ ॥ कुछ समय बीतने पर कुछ द्विज कन्या देनेके लिये तहाँ आये, तब उसने विधिपूर्वक पुत्रका विवाह किया ॥ ४ ॥ उस समय सुधर्मा और घुश्माको बड़ा आनन्द हुआ, सब संबंधियोंने घुश्माका बड़ा सत्कार किया ॥ ५ ॥ इस घटनाको देख कर सुदेहा मनमें जलने लगी और अतीव दुःखित होकर कहने लगी, कि—हाय ! मैं मारी गई ॥ ६ ॥ सुधर्मा जब विवाह कर वधू और पुत्रको घर लाये, तब उन्होंने अपनी दोनों प्रियाओंको हर्षित करते हुए बड़ा उत्साह दिखाया ७ उस समय घुश्मा हर्षमें भर गई और सुदेहाको दुःख हुआ, वह उनके सुखको

न सहंति दुःखं तच्च दुःखं कृत्वापतद्भुवि ॥ ८ ॥ घुश्माऽवदद्वधूपुत्रौ त्वदीयौ न मदीयकौ । वधूः पुत्रश्च तां प्रीत्या प्रसूं श्वश्रूममन्यत ॥९॥ भर्त्ता प्रियां तां ज्येष्ठां च मेने नैव कनिष्ठिकाम् । तथापि सा तदा ज्येष्ठा स्वान्तमलवती ह्यभूत् ॥ १० ॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सा सुदेहा च दुःखिनी । हृदये संचिचिन्तेति दुःखशांतिः कथं भवेत् ॥ ११ ॥ सुदेहोवाच । मदीयो हृदयाग्निश्च घुश्मानेत्रजलेन वै । भविष्यति ध्रुवं शांतो नान्यथा दुःखजेन हि ॥१२॥ अतोऽहं मारयाम्यद्य तत्पुत्रं प्रियवादिनम् । अग्रे भावि भवेदेवं निश्चयः परमो मम ॥ १३ ॥ सूत उवाच । कदर्याणां विचारश्च कृत्याकृत्ये भवेन्न हि । कठोरः प्रायशो विप्राः सापत्नो भाव आत्महा ॥ १४ ॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सुप्तं पुत्रं वधूयुतम् । चिच्छिदे निशि चांगेषु गृहीत्वा छुरिकां च सा ॥ १५ ॥ सर्वांगं खंडयामास रात्रौ घुश्मासुतस्य सा । नीत्वा सरसि तत्रैवाक्षिपद्दृप्ता महाबला ॥ १६ ॥ यत्र क्षिप्तानि लिंगानि घुश्मया नित्यमेव हि । तत्र क्षिप्त्वा समायाता सुष्वाप सुखमागता ॥१७॥ प्रातश्चैव समुत्थाय घुश्मा नित्यं तथाकरोत् । सुधर्मा च स्वयं श्रेष्ठो नित्यकर्म समाचरत् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नंतरे सा च ज्येष्ठा कार्यं गृहस्य वै । चकारानन्दसंयुक्ता

न सह दुःख मानकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ८ ॥ घुश्माने कहा, कि-यह बहू बेटे तुम्हारे ही हैं मेरे नहीं हैं और बहू बेटे भी उसको सास और मा समझने लगे ॥ ९ ॥ भर्ता बड़ीको जितनी प्रिय समझता था उतना छोटीको नहीं मानता था, तब भी बड़ी पत्नीका हृदय मलिन होगया ॥ १० ॥ एक दिन वह बड़ी पत्नी दुःखिनी सुदेहा अपने हृदयमें विचारने लगी, कि-दुःख की शान्ति किसप्रकार होगी ॥११॥ सुदेहाने कहा, कि-मेरे हृदयकी अग्नि घुश्माके दुःख भरे आँसुओंसे ही शांत होसकती है और किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ १२ ॥ अतः आज मैं इसके प्रियवादी पुत्रको मार डालूँ, आगे जो होना होगा सो होगा, यह मेरा परम निश्चय है ॥१३॥ सूतजीने कहा, कि-कायर प्राणियोंके विचारमें कृत्य अकृत्यका कुछ विचार नहीं होता, हे विप्रो ! यह आत्मनाशक सौतियाभाव प्रायः कठोर हुआ करता है ॥ १४ ॥ एक दिन बहू बेटे सोरहे थे, कि-बड़ीने रात्रिके समय छुरी लेकर उसके अंगों को काटनेका आरंभ किया ॥१५॥ उसने रात्रिके समय घुश्माके पुत्रके सब अंगोंको काट डाला, फिर उसने घमण्डके कारण महाबलमें आ उन अंगों को सरोवर पर वहीं लेजाकर डाला ॥ १६ ॥ जहाँ घुश्मा नित्य शिवलिंगों को सिलाया करती थी, तहाँ डालनेके बाद लौटकर वह सुखपूर्वक सो गई ॥ १७ ॥ प्रातःकाल उठ कर घुश्मा अपना नित्यकर्म करने लगी और सज्जन सुधर्मा भी अपने नित्य कर्ममें लग गए ॥१८॥ इसी समय जिसके

सुशांतहृदयानला ॥ १९ ॥ प्रातःकाले समुत्थाय वधूश्शय्यां विलोक्य सा । रुधिरार्द्रां देहखंडैर्युक्तां दुःखमुपागता ॥ २० ॥ श्वश्रू निवेदयामास पुत्रस्ते च कुतो गतः । शय्या च रुधिरार्द्रा वै दृश्यंते देहखंडकाः ॥ २१ ॥ हा हतास्मि कृतं केन दुष्टं कर्म शुचिव्रते । इत्युच्चार्य रुरोदाति विविधं तत्प्रिया च सा ॥ २२ ॥ ज्येष्ठा दुःखं तदापन्ना हा हतास्मि किलेति च । बहिर्दुःखं चकारासौ मनसा हर्षसंयुता ॥ घुश्मा चापि तदा तस्या वध्वा दुःखं निशम्य सा । न चचाल व्रतात्तस्मान्नित्यपार्थिवपूजनात् ॥ २४ ॥ मनश्चैवोत्सुकं नैव जातं तस्या मनागपि । भर्तापि च तथैवासीद्यावद्व्रतविधिर्भवेत् ॥ २५ ॥ मध्याह्ने पूजनांते च दृष्ट्वा शय्यां भयावहाम् । तथापि न तदा किञ्चित्कृतं दुःखं हि घुश्मया ॥२६॥ येनैव चार्पितश्चायं स वै रक्षां करिष्यति । भक्तप्रियस्स विख्यातः कालकालस्सतां गतिः ॥२७॥ यदि नो रक्षिता शंभुरीश्वरः प्रभुरेकलः । मालाकार इवासौ यान्युंक्ते तान्वियुनक्ति च २८ अद्य मे चिंतया किं स्यादिति तत्त्वं विचार्य सा । न चकार तदा दुःखं शिवे धैर्यं समागता २९ पार्थिवांश्च गृहीत्वा सा पूर्ववत्स्वस्थमानसा । शंभोर्नामान्युच्चरंती

हृदयकी अग्नि शान्त होगई थी वह बड़ी पत्नी भी आनन्दमें भर कर गृहकार्य करने लगी ॥ १९ ॥ और जब वधू प्रातःकालके समय उठी तो उसने पलंगको रुधिरसे भीगा और उस पर शरीरके टुकड़े पड़े देखे अतः वह दुःखित हुई ।२०। और सासले कहा, कि-आपके पुत्र कहाँ गए, पलंग रुधिरमें भीग रहा है और शरीरके टुकड़े पड़े हुए हैं ॥ २१ ॥ हाय ! मैं मारी गई हे शुचिव्रते ! यह दुष्ट कर्म किसने कर डाला, इस प्रकार कह कर वह पुत्रवधू अनेक प्रकारसे रोने लगी ॥ २२ ॥ उस समय बड़ी पत्नीने दुःखित होते हुए कहा, कि-हाय ! मैं मारी गई, इस प्रकार उसने बाहरसे दुःख दिखाया परन्तु उसके मनमें हर्ष भर रहा था ॥ २३ ॥ उस समय घुश्मा बहूके दुःखको सुनकर भी नित्य पार्थिव शिव-लिंगोंके पूजनरूपी व्रतसे नहीं हटी ॥ २४ ॥ उसका मन जरा भी उत्सुक न हुआ और भर्ता भी नियम पूर्ण होने तक वैसे ही रहे ॥ २५ ॥ पूजनके अन्तमें मध्याह्नके समय भयदायक शय्याको देख कर भी घुश्माने कुछ दुःख न माना ॥२६॥ 'जिसने इसको दिया था, वही इसकी रक्षा करेगा, वह तो भक्तप्रिय प्रसिद्ध हैं, कालके काल हैं और सज्जनोंकी गति हैं ॥ २७ ॥ वही एकमात्र प्रभु ईश्वर शंभु हमारे रक्षक हैं, यह माला गूँथने वालेकी समान जिनको जोड़ते हैं उनको अलग भी करते हैं ॥२८॥ अतः मेरी इस समय की चिन्तासे क्या होसकता है" इस तत्त्व बातको विचार शिवके ऊपर धैर्य धारण कर उसने दुःख न किया ॥२९॥ और वह पहिलेकी समान स्वस्थ मनसे पार्थिव शिव-

जगाम सरसस्तटे ३० क्षिप्त्वा च पार्थिवांस्तत्र परावर्त्तत सा यदा। तदा पुत्रस्तडागस्थो दृश्यते स्म तटे तया ३१ पुत्र उवाच। मातरेहि मिलिष्यामि मृतोऽहं जीवितोऽधुना। तव पुण्यप्रभावाद्धि कृपया शंकरस्य वै ३२ सूत उवाच। जीवितं तं सुतं दृष्ट्वा घुश्मा सा तत्प्रसूर्द्विजाः। प्रहृष्टा नाभवत्तत्र दुःखिता न यथा पुरा॥ एतस्मिन्समये तत्र स्वाविरासीच्छिवो द्रुतम्। ज्योतीरूपो महेशश्च संतुष्टः प्रत्युवाच ह॥ ३४॥ शिव उवाच। प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि दुष्टया मारितो ह्ययम्। एनां च मारयिष्यामि त्रिशूलेन वरानने॥ ३५॥ सूत उवाच। घुश्मा तदा वरं वव्रे सुप्रणम्य शिवं नता। रक्षणीया त्वया नाथ सुदेहेयं स्वसा मम॥ ३६॥ शिव उवाच। अपकारः कृतस्तस्यास्तुपकारः कथं त्वया। क्रियते हननीया च सुदेहा दुष्टकारिणी॥ ३७॥ घुश्मोवाच। तव दर्शनमात्रेण पातकं नैव तिष्ठति। इदानीं त्वां च वै दृष्ट्वा तत्पापं भस्मतां व्रजेत्॥ ३८॥ अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति च। तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत्॥ ३९॥ इति श्रुतं मया देव भगवद्वाक्यमद्भुतम्। तस्मात्त्वैवं कृतं येन क्रियतां च सदाशिव ४० सूत उवाच।

लिंगोंको ग्रहण कर शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई सरोवरके तट पर पहुँची॥ ३०॥ और पार्थिव-शिव--लिङ्गोंको सिला कर जब वह लौटने लगी, तो उसने तालावके तट पर अपने पुत्रको देखा॥ ३१॥ पुत्रने कहा, कि--मातः! आइये मैं आपसे मिल लूँ, मैं मर गया था, परन्तु अब तुम्हारे पुण्यके प्रतापसे शिवकी कृपासे मैं फिर जीवित होगया हूँ॥ ३२॥ सूतजीने कहा, कि--हे द्विजो! उसकी जननी घुश्मा पुत्रको जीवित हुआ देखकर जैसे पहिले दुःखित नहीं हुई थी, इसी प्रकार इस समय प्रसन्न भी नहीं हुई॥ ३३॥ इसी समय तहाँ ज्योतिःस्वरूप महेश तत्क्षण प्रकट होगए और संतुष्ट होकर कहने लगे॥ ३४॥ शिवने कहा, कि--हे वरानने! मैं प्रसन्न हूँ, तू वर माँग, दुष्टा सुदेहाने इसको मार डाला था, मैं इसको त्रिशूलसे मारूँगा॥ ३५॥ सूतजीने कहा, कि--तब घुश्माने शिवको प्रणाम कर नम्रभावसे वर माँगा, कि--हे नाथ! यह सुदेहा मेरी बहिन है अतः आप इसकी रक्षा करें॥ ३६॥ शिवजीने कहा, कि--इसने तो तेरा अपराध किया था, तू इसका उपकार क्यों करती है, यह दूषित कर्म करने वाली सुदेहा तो मारने योग्य है॥३७॥ घुश्माने कहा, कि--आपके दर्शनमात्रसे ही पाप नष्ट होजाता है, इस समय आपको देखकर वह पाप भस्म होगया॥ ३८॥ जो अपकार होने पर भी उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर भाग जाता है॥३९॥ हे देव! मैंने आपका ऐसा अद्भुत वचन सुना है, हे सदाशिव! इस कारण जिसने जैसा किया है, वह जाने॥४०॥ सूतजीने कहा,

इत्युक्तस्तु तथा तत्र प्रसन्नोऽत्यभवत्पुनः। महेश्वरः कृपासिंधुः समूचे भक्तवत्सलः ॥ ४१ ॥ शिव उवाच। अन्यद्वरं ब्रूहि घुश्मे ददामि च हितं तव। त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नोऽस्मि निर्विकारस्वभावतः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच। सोवाच शंभुश्च त्वा यदि देयो वरस्त्वया। लोकानां चैव रक्षार्थमत्र स्थेयं मदाख्यया ॥ ४३ ॥ तदोवाच शिवस्तत्र सुप्रसन्नो महेश्वरः। स्थास्येऽत्र तव नाम्नाहं घुश्मेशाख्यस्सुखप्रदः ॥ ४४ ॥ घुश्मेशाख्यं सुप्रसिद्धं लिंगं मे जायतां शुभम्। इदं सरस्तु लिंगानामालयं जायतां सदा ॥ ४५ ॥ तस्माच्छिवालयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये। सर्वकामप्रदं ह्येतद्दर्शनात्स्यात्सदा सरः ॥ ४६ ॥ तव वंशे शतं चैकं पुरुषावधि सुव्रते। ईदृशाः पुत्रकाः श्रेष्ठा भविष्यंति न संशयः ॥ ४७ ॥ सुस्त्रीकास्सुधनाश्चैव स्वायुष्याश्च विचक्षणाः। विद्यावंतो ह्युदाराश्च भुक्तिमुक्तिफलाप्तये ॥ ४८ ॥ शतमेकोत्तरं चैव भविष्यंति गुणाधिकाः। ईदृशो वंशविस्तारो भविष्यति सुशोभनः ॥ सूत उवाच। इत्युक्त्वा च शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा। घुश्मेशो नाम विख्यातः सरश्चैव शिवालयम् ॥ ५० ॥ सुधर्मा स च घुश्मा च सुदेहा च समागताः। प्रदक्षिणं शिवस्याशु शतमेकोत्तरं दधुः ॥ ५१ ॥ पूजां कृत्वा महेशस्य मिलित्वा च

कि—उसके इस प्रकार कहने पर भक्तवत्सल कृपासिंधु महेश्वर प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ४१ ॥ शिवने कहा, कि—हे घुश्मे! मैं तेरी भक्तिसे और तेरे निर्विकार स्वभावसे प्रसन्न हूँ अतः तू जिसमें हित समझ रही है, वह बात तुझै देता हूँ, तू और भी वर माँग ले ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा, कि—घुश्माने कहा, कि—यदि आप वर देना चाहते हैं, तो आप संसारकी रक्षा करनेके लिये मेरे नामसे यहाँ प्रतिष्ठित होवें ॥ ४३ ॥ तब महेश्वर प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—मैं यहाँ तेरे नामसे घुश्मेश नामसे सुख देता हुआ प्रतिष्ठित होऊँगा ४४ मेरा घुश्मेश नामक प्रसिद्ध शिवलिंग यहाँ होगा और यह सरोवर शिवलिंगों का सदा भण्डार रहेगा ॥ ४५ ॥ अतः तीनों लोकोंमें शिवालय नामसे प्रसिद्ध होगा, इस सरोवरका दर्शन करनेसे सदा सब कामनायें पूर्ण हुआ करेंगी ॥ ४६ ॥ और हे सुव्रते! तेरे वंशमें एकसौ एक पीढ़ी तक ऐसे ही श्रेष्ठ पुत्र होंगे ॥ ४७ ॥ वह सुन्दर पत्नी सुन्दर धन और श्रेष्ठ आयुसे भरे पुरे रहेंगे और वह भोग तथा मोक्षरूप फल पानेके लिये विद्यावान् उदार और चतुर रहेंगे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार एकसौ एक पीढ़ी तक अधिकाधिक गुणी वंशज होंगे, तेरे वंशका ऐसा सुशोभन वंशविस्तार रहेगा ॥ ४९ ॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कह कर शिवजी तहाँ लिंगस्वरूप होगए और वह सरोवर शिवालय नामसे प्रसिद्ध होगया ॥ ५० ॥ तब सुधर्मा घुश्मा और सुदेहाने तहाँ आकर शीघ्र ही शिवकी एकसौ एक प्रदक्षिणाएँ कीं ॥ ५१ ॥

परस्परम् । हित्वा चांतर्मलं तत्र लेभिरे परमं सुखम् ॥ ५२ ॥ पुत्रं दृष्ट्वा सुदेहा सा जीवितं लज्जिताभवत् । तौ क्षमाप्याचरद्विप्रा निजपापापहं व्रतम् ॥ ५३ ॥ घुश्मेशाख्यमिदं लिंगमित्थं जातं मुनीश्वराः । तद् दृष्ट्वा पूजयित्वा हि सुखं संवर्द्धते सदा ॥५४॥ इति वश्च समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावलिः मया । द्वादशप्रमिता सर्वकामदा भुक्तिमुक्तिदा ॥ ५५ ॥ एतज्ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ ५६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेशज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

व्यास उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य च मुनीश्वराः । समूचुस्तं सुप्रशस्य लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः । सूत सर्वं विजानासि ततः पृच्छामहे वयम् । हरीश्वरस्य लिंगस्य महिमानं वद प्रभो ॥ २ ॥ चक्रं सुदर्शनं प्राप्तं विष्णुनेति श्रुतं पुरा । तदाराधनतस्तात तत्कथां च विशेषतः ॥ ३ ॥ सूत उवाच । श्रूयतां च ऋषिश्रेष्ठा हरीश्वरकथा शुभा । यतस्सुदर्शनं लब्धं विष्णुना शंकरात्पुरा ॥ ४ ॥ कस्मिंश्चित्समये दैत्याः संजाता बलवत्तराः । लोकांस्ते पीड-

---

और महेशकी पूजा कर परस्पर मिले और हृदयके मलको धोकर परम सुख पाने लगे ॥ ५२ ॥ सुदेहा पुत्रको जीवित हुआ देखकर लज्जित हुई उसने उन दोनोंसे क्षमा माँगी, हे विप्रो ! फिर उसने अपना पाप दूर करनेके लिये व्रत किया ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वरों ! घुश्मेश नामक शिव-लिंग इस प्रकार प्रकट हुआ है, इसका दर्शन और पूजन करने सदा सुख बढ़ता है ॥ ५४ ॥ यह मैंने आपसे सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली भोग तथा मोक्ष देने वाली बारह ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथा कह दी ॥ ५५ ॥ जो पुरुष इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथाको पढ़ता वा सुनता है, वह सब पापोंसे बच कर भोग और मोक्ष पाता है ॥ ५६ ॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ❁

व्यासजीने कहा, कि--हे मुनीश्वरों ! सूतजीके इस वचनको सुनकर ऋषि संसारका हित करनेकी इच्छासे उनसे प्रशंसा करके कहने लगे ॥१॥ ऋषियों ने कहा, कि-हे सूत ! आप सब कुछ जानते हैं, अतः हम आपसे बूझते हैं, हे प्रभो ! आप हरीश्वर शिवलिंगकी महिमाका वर्णन करिये ॥२॥ हे तात ! विष्णुने शिवकी आराधना कर सुदर्शन चक्र पाया था, यह कथा हमने पहिले सुनी है इस कथाको विशेषरूपसे सुननेकी हमारी इच्छा है ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे श्रेष्ठ ऋषियों ! आप हरीश्वरकी शुभ कथाको सुनें, इसमें विष्णुने शंकरसे सुदर्शन चक्र पाया था ॥ ४ ॥ एक समय दैत्य बल-

यामासुर्धर्मलोपं च चक्रिरे ॥ ५ ॥ ते देवा पीडिता दैत्यैर्महाबलपराक्रमैः । स्वं
दुःखं कथयामासुर्विष्णुं निजरक्षकम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः । कृपां कुरु प्रभो त्वं च
दैत्यैस्संपीडिता भृशम् । कुत्र यामश्च किं कुर्मश्शरण्यं त्वां समाश्रिताः ॥ ७ ॥
सूत उवाच । इत्येवं वचनं श्रुत्वा देवानां दुःखितात्मनाम् । स्मृत्वा शिवपदां-
भोजं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच । करिष्यामि च वः कार्य्यमाराध्य
गिरिशं सुराः । बलिष्टाश्शत्रवो ह्येते विजेतव्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ।
इत्युक्तास्ते सुरास्सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना । मत्वा दैत्यान्हतान्दुष्टान्ययुर्धाम
स्वकं स्वकम् ॥ १० ॥ विष्णुरप्यमराणां तु जयार्थमभजच्छिवम् । सर्वामराणा-
मधिपं सर्वसाक्षिणमव्ययम् ॥ ११ ॥ गत्वा कैलासनिकटे तपस्तेपे हरिस्स्वयम् ।
कृत्वा कुण्डं च संस्थाप्य ज्ञानदेश्वरमग्निनः ॥१२॥ पार्थिवेन विधानेन मन्त्रैर्नाना-
विधैरपि । स्तोत्रैश्चैवाप्सलैश्च गिरिशं चाभजन्मुदा ॥१३॥ कमलैस्सरसो जातै-
र्मानसाख्यैर्मुनीश्वराः । बद्ध्वा पद्मासनं तत्र न चचाल हरिस्स्वयम् ॥ १४ ॥
प्रसादावधि चैवात्र स्थेयं वै सर्वथा मया । इत्येवं निश्चयं कृत्वा समानर्च शिवं
हरिः ॥ १५ ॥ यदा नैव हरस्तुष्टो बभूव हरये द्विजाः । तदा स भगवान्विष्णु-

---

वान् पड़े और लोगोंको पीड़ा पहुँचाकर धर्मका लोप करने लगे ॥ ५ ॥ देवताओंने महाबली दैत्योंसे पीड़ित होकर अपना दुःख देवताओंकी रक्षा करने वाले विष्णुसे कहा ॥ ६ ॥ देवताओंने कहा कि—हे प्रभो ! दैत्य हमें पीड़ा देरहे हैं, आप हम पर कृपा करिये, और हम कहाँ जावें ? क्या करें ? हम शरण देने वाले आपकी ही शरणमें आये हैं ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा, कि—दुःखित चित्त वाले देवताओंके इस वचनको सुनकर विष्णु शिवके चरण-कमलोंका स्मरण करके यह बात कहने लगे ॥ ८ ॥ विष्णुने कहा, कि—हे देवताओं ! मैं शिवको आराधना कर आपका कार्य करूँगा, शत्रु बलवान् हैं अतः यत्नपूर्वक ही उनको जीता जासकेगा ॥ ९ ॥ सूतजीने कहा, कि—जब प्रभाववान् विष्णुने इस प्रकार कहा तब सब देवता दुष्ट दैत्योंको मारा हुआ जान कर अपने अपने धामको चले गए ॥ १० ॥ और विष्णु भी देवताओंकी विजयके लिये सब देवताओंके स्वामी सर्वसाक्षी अव्यय शिवका भजन करने लगे ॥११॥ हरिने कैलासके निकट पहुँच तहाँ कुण्ड बना अग्निको स्थापित कर तप किया ॥ १२ ॥ और आनंदके साथ पार्थिव-विधानसे अनेक प्रकारके मन्त्र और स्तोत्रोंके द्वारा शिवका भजन करने लगे ॥१३॥ और हे मुनीश्वरों ! हरि मानसरोवरके कमलोंसे पूजन करने लगे और आसन परसे नहीं हटते थे ॥ १४ ॥ शिवजीके प्रसन्न होने तक मुझे यहाँ सर्वथा रहना चाहिये यह विचार कर हरि शिवकी पूजा करने लगे ॥१५॥ हे द्विजों !

विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १६ ॥ विचार्यैवं स्वमनसि सेवनं बहुधा कृतम् । तथापि न हरस्तुष्टो बभूवोतिकरः प्रभुः ॥ १७ ॥ ततस्तु विस्मितो विष्णुर्भक्त्या परमयान्वितः । सहस्रैर्नामभिः प्रीत्या तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १८ ॥ प्रत्येकं कमलं तस्मै नाममन्त्रमुदीर्य च । पूजयामास वै शम्भुं शरणागतवत्सलम् ॥ १९ ॥ परीक्षार्थं विष्णुभक्तेस्तदा वै शंकरेण ह । कमलानां सहस्रात्तु हृतमेकं च नीरजम् ॥ २० ॥ न ज्ञातं विष्णुना तच्च मायाकारणमद्भुतम् । न्यूनं तच्चापि सञ्ज्ञाय तदन्वेषणतत्परः ॥ २१ ॥ बभ्राम सकलां पृथ्वीं तत्प्रीत्यै सुदृढव्रतः । तदप्राप्य विशुद्धात्मा नेत्रमेकमुदाहरत् ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा स प्रसन्नोऽभूच्छंकरस्सर्वदुःखहा । आविर्बभूव तत्रैव जगाद वचनं हरिम् ॥ २३ ॥ शिव उवाच । प्रसन्नोऽस्मि हरे तुभ्यं वरं ब्रूहि यथेप्सितम् । मनोऽभिलषितं दद्मि नादेयं विद्यते तव ॥ २४ ॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं केशवः प्रीतमानसः । महाहर्षसमापन्नो ह्यब्रवीत्साञ्जलिश्शिवम् ॥ २५ ॥ विष्णुरुवाच । वाच्यं किं मे त्वदग्रे वै ह्यन्तर्यामी त्वमास्थितः । तथापि कथ्यते नाथ तव शासनगौरवात् ॥ २६ ॥ दैत्यैश्च पीडितं विश्वं

जब शिव विष्णु पर प्रसन्न न हुए तो भगवान् विष्णु विचारमें पड़ गए कि-१६ मैंने बड़ी सेवा की तब भी यह रक्षक प्रभु हर प्रसन्न नहीं होते, इस प्रकार मनमें विचार कर विष्णु विस्मित हुए फिर परमभक्तिके साथ प्रीतिपूर्वक परमेश्वर शिवकी हजार नामोंसे स्तुति करने लगे ॥१७॥१८॥ वह नाम-मंत्रका उच्चारण कर प्रत्येक मंत्र पर शरणागतवत्सल शंभुको एक एक कमल चढ़ाने लगे ॥ १९ ॥ तब शंकरने विष्णुकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये हजार कमलोंमेंसे एक कमल छिपा लिया ॥ २० ॥ परन्तु अद्भुत मायाके कारण विष्णुको इसका कुछ पता न चला और वह फूलको कम जान कर ढूँढने लगे ॥ २१ ॥ दृढ़व्रत धारी विष्णुने शंभुको प्रसन्न करनेके लिये पृथ्वी पर उस कमलको बहुत खोजा और उसके न मिलने पर उन पवित्र अन्तःकरणवालेने अपना एक नेत्र चढ़ा दिया ॥ २२ ॥ इस बातको देख सब दुःखोंका हरण करने वाले शंकर प्रसन्न होगए और प्रकट होकर हरि से कहने लगे ॥ २३ ॥ शिवने कहा, कि-हे हरे ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम मनचाहा वर माँग लो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तुम्हें न दी जासके, मैं तुम्हें मनचाही वस्तु दूँगा ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा, कि-शंभुके इस वचनको सुन कर केशवका मन प्रसन्न होगया और वह परम हर्षमें भर हाथ जोड़ कर शिवसे कहने लगे ॥ २५ ॥ विष्णुने कहा, कि-आपके सामने मैं क्या कहूँ सबके अन्तर्यामी आप ही तो मेरे सामने खड़े हैं, तथापि हे नाथ ! आपकी आज्ञाके गौरवसे कहता हूँ ॥ २६ ॥ हे सदाशिव !

सुखं नो नस्सद्दाशिव । दैत्यान्हंतुं मम स्वामिन्स्वायुधं न प्रवर्त्तते ॥ २७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मे रक्षकः परः। अतोऽहं परमेशान शरणं त्वां समागतः ॥ २८ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा च नमस्कृत्य शिवाय परमात्मने । स्थितश्चैवाग्रतश्शंभोः स्वयं च पुरुपीडितः ॥ २९ ॥ सूत उवाच । इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्देवदेवो महेश्वरः । ददौ तस्मै स्वकं चक्रं तेजोराशिं सुदर्शनम् ॥ ३० ॥ तत्प्राप्य भगवान्विष्णुर्दैत्यांस्तान्बलवत्तरान् । जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान्विना श्रमम् ॥ ३१ ॥ जगत्स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुस्सुखिनस्सुराः । सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन्महासुखी ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः । किं तन्नामसहस्रं वै कथय त्वं हि शांकरम् । येन तुष्टो ददौ चक्रं हरये स महेश्वरः ॥ ३३ ॥ तन्माहात्म्यमशेषं ब्रूहि शिवसंवादपूर्वकम् । कृपालुत्वं च शंभोर्हि विष्णुपरि यथातथम् ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच । इति तेषां वचश्श्रुत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् । स्मृत्वा शिवपदांभोजं सूतो वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

जगत् दैत्योंसे पीड़ा पा रहा है, हमैं थोड़ासा भी सुख नहीं है क्योंकि—हे स्वामिन् ! दैत्योंको मारनेके लिये हमारे आयुध नहीं चलते अर्थात् दैत्योंको मारने योग्य आयुध हमारे पास नहीं हैं ॥२७॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? आपको छोड़ कर और कौन मेरा श्रेष्ठ रक्षक होसकता है ? अतः हे परमेशान ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥२८॥ सूतजीने कहा, कि—इस प्रकार कह परमात्मा शिवको प्रणाम कर घोर पीड़ा पाते हुए विष्णु शंभुके आगे खड़े होगए ॥ २९ ॥ सूतजीने कहा, कि—विष्णुके इस वचनको सुन देवदेव महेश्वरने अपना तेजोमय सुदर्शन चक्र उनको देदिया ॥ ३० ॥ भगवान् विष्णुने उस चक्रको पा उससे परम बली दैत्योंको विना श्रमके शीघ्रतापूर्वक मार डाला ॥ ३१ ॥ तब जगत्में स्वस्थता फैल गई, देवता सुखी हुए और हरि भी अपने लिये आयुध पा प्रसन्न और महासुखी हुए ॥ ३२॥ ऋषियों ने कहा, कि--वह कौन सा शिवसहस्रनाम है, जिससे प्रसन्न होकर महेश्वरने विष्णुको सुदर्शन चक्र दिया था, उसका आप वर्णन करिये ॥ ३३ ॥ शिवकी चर्चासे भरे हुए उस सहस्रनामका माहात्म्य मुझसे कहिये, शंभुने विष्णु पर जैसी कृपा दिखाई हो उसका यथार्थरीतिसे वर्णन करिये ॥३४॥ व्यासजीने कहा, कि--सूतजी पवित्र अन्तःकरण वाले मुनियोंके इस वचनको सुन शिवके चरणकमलोंका स्मरण कर कहने लगे ॥ ३५ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

ॐ नमःशिवाय । सूत उवाच । श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः । तदहं कथयाम्यद्य शैवं नामसहस्रकम् ॥१॥ विष्णुरुवाच । शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः । अर्थिगम्यस्सदाचारश्शर्वश्शंभुर्महेश्वरः ॥ २ ॥ चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वंभरेश्वरः । वेदान्तसारसंदोहः कपालो नीललोहितः ॥३॥ ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः । अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्स्वर्गसाधनः ॥ ४ ॥ ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः । वामदेवो महादेवो पटुः परिवृढो दृढः ॥ ५ ॥ विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः । सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ ६ ॥ ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः । तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः ॥ ७ ॥ कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः । उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरुशासनः ॥ ८ ॥ दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः । अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥ ९ ॥ कुबेरबन्धुश्श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो मृदुः । समाधिवेद्यः कोदंडी नीलकंठः परश्वधी ॥ १० ॥ विशालाक्षो मृगव्याधस्सुरेशस्सूर्यतापनः । धर्मधामा क्षमाक्षेत्रं

ॐ नमः शिवाय । सूतजीने कहा, कि-हे श्रेष्ठ ऋषियों ! जिससे महेश्वर प्रसन्न हुए थे उस शिवसहस्रनामका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥१॥ विष्णुने कहा, कि-शिव (कल्याणमय), हर (पापहारक), मृड (पूज्य), रुद्र (पापियोंको रुलाने वाले), पुष्कर, पुष्पलोचन (पुष्पकी समान नेत्र वाले), अर्थिगम्य (प्रार्थना करने वालेको प्राप्त होने वाले), सदाचार (श्रेष्ठ आचरणवाले), शर्व, शंभु, महेश्वर ॥ २ ॥ चन्द्रापीड, चन्द्रमौलि, विश्व, विश्वम्भरेश्वर, वेदान्तसारसन्दोह, कपाली, नीललोहित ॥ ३ ॥ ध्यानाधार (ध्यानके आधार), अपरिच्छेद्य (सीमारहित), गौरीभर्ता, गणेश्वर, अष्टमूर्ति, विश्वमूर्ति, त्रिवर्गस्वर्गसाधन ॥ ४ ॥ ज्ञानगम्य, दृढप्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन, वामदेव, महादेव, पटु, परिवृढ़ दृढ़ ॥५॥ विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, शुचिसत्तम, सर्वप्रमाणसम्वादी, वृषांक, वृषवाहन ॥ ६ ॥ ईश, पिनाकी (पिनाक नामक धनुषको धारण करने वाले), खट्वाङ्गी, चित्रवेष, चिरन्तन, तमोहर, महायोगी, गोप्ता (रक्षक), ब्रह्मा, धूर्जटी ॥७॥ कालकाल (कालके भी काल), कृत्तिवासा (गजासुरकी चर्म ओढ़ने वाले), सुभग, प्रणवात्मक, उन्नध्र, पुरुष, जुष्य, दुर्वासा, पुरुशासन ॥८॥ दिव्यायुध, स्कन्दगुरु, परमेष्ठी, परात्पर, अनादिमध्यनिधन (जिनकी उत्पत्ति मध्य और अन्तका किसीको पता नहीं है), गिरीश, गिरिजाधव ॥ ९ ॥ कुबेरबन्धु, श्रीकण्ठ, लोकवर्णोत्तम, मृदुसमाधिवेद्य (समाधिसे जाननेमें आने वाले), कोदण्डी, नीलकण्ठ, परश्वधी ॥ १० ॥ विशालाक्ष, मृग-

भगवान्भगनेत्रभित् ॥ ११ ॥ उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः । दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥ १२ ॥ श्मशाननिलयस्सूक्ष्मश्श्मशानस्थो महेश्वरः । लोककर्त्ता मृगपतिर्महाकर्त्ता महौषधिः ॥ १३ ॥ उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः । नीतिस्सुनीतिश्शुद्धात्मा सोमस्सोमरतस्सुखी ।१४। सोमपोऽमृतपस्सौम्यो महातेजा महाद्युतिः । तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः १५ अजातशत्रुरालोकसंभाव्यो हव्यवाहनः । लोककरो वेदकरस्सूत्रकारस्सनातनः॥ महर्षिः कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः। पिनाकपाणिर्भूदेवस्स्वस्तिदस्सुकृतस्सुधीः ॥ १७ ॥ धातृधामा धामकरस्सर्वगस्सर्वगोचरः । ब्रह्मसृग्विश्वसृक् सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः ॥ १८ ॥ शाखो विशाखो गोशाखश्शिवो भिषगनुत्तमः । गंगाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः ॥१९॥ विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः । सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ २० ॥ कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः । भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः ॥ २१ ॥ समावर्त्तो निवृत्तात्मा धर्मपुञ्जः सदाशिवः । अकल्मषश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः ॥ २२ ॥ दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयस्सुतंतुस्तन्तुवर्द्धनः ॥ २३ ॥ शुभांगो लोकसारंगो जगदीशो जना-

---

व्याध, सुरेश, सूर्यतापन, धर्मधाम, क्षमाक्षेत्र, भगवान, भगनेत्रभित् ॥ ११ ॥ उग्र, पशुपति (अज्ञानीको ज्ञान देकर पालन करने वाले), तार्क्ष्य, प्रियभक्त, परन्तप, दाता, दयाकर, दक्ष, कपर्दी, कामशासन ॥ १२ ॥ श्मशाननिलय, सूक्ष्म, श्मशानस्थ, महेश्वर, लोककर्ता, मृगपति, महाकर्ता महौषधि १३ उत्तर, गोपति, गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, नीति, सुनीति, शुद्धात्मा सोम सोमरत, सुखी ॥ १४ ॥ सोमप, अमृतप, सौम्य, महातेजाः, महाद्युति, तेजोमय, अमृतमय, अन्नमय, सुधापति ॥ १५ ॥ अजातशत्रु (जो किसीको शत्रु नहीं समझते), आलोकसंभाव्य हव्यवाहन, लोककर, वेदकर, सूत्रकार सनातन ॥१६॥ महर्षि कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, त्रिलोचन, पिनाकपाणि, भूदेव, स्वस्तिद, सुकृत, सुधी ॥ १७ ॥ धातृधामा, धामकर, सर्वाङ्ग, सर्वगोचर, ब्रह्मसृक्, विश्वसृक् कर्णिकारप्रिय, कवि ॥ १८ ॥ शाख, विशाख, गोशाख शिव, भिषर्क, अनुत्तम, गङ्गाप्लवोदक, भव्य, पुष्कल, स्थपति, ॥ १९ ॥ विजितात्मा, विधेयात्मा भूतवाहनसारथि, सगण, गणकाम, सुकीर्ति, छिन्नसंशय ॥ २० ॥ कामदेव कामपाल, भस्मोद्धूलितविग्रह (भस्म लगे हुए शरीर वाले), भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्ति, कृतागम ।२१। समावर्त अनिवृत्तात्मा, धर्मपुञ्ज, सदाशिव, अकल्मष चतुर्बाहु दुरावास दुरासद ।२२। दुर्लभ, दुर्गम, दुर्ग, सर्वायुधविशारद, अध्यात्मयोगनिलय, सुतन्तु,

दनः । भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २४ ॥ असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् । हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥ २५ ॥ महाह्रदो महागर्तस्सिद्धो वृन्दारवन्दितः । व्याघ्रचर्माम्बरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभंजनः । पंचविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परात्परः ॥ २७ ॥ सुलभस्सुव्रतशूरो ब्रह्मवेदनिधिर्निधिः । वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥२८॥ आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः । प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयस्सुपर्णो वायुवाहनः ॥ २९ ॥ धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणः राशिगुणाकरः । सत्यस्सत्यपरोऽदीनो धर्मो गोधर्मशासनः ॥ ३०॥ अनंतदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः । अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१ ॥ वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः । उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२ ॥ कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः । तपस्वी तारको धीमान्प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥ लोकपालोऽन्तर्हितात्मा च कल्पादिः कमलेक्षणः । वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४ ॥ चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्वरांगो विद्रुमच्छविः । भक्तिवश्यः

तन्तुवर्धन ॥ २३ ॥ शुभाङ्ग, लोकसारङ्ग, जगदीश, जनार्दन, भस्मशुद्धिकर, ओजस्वी, शुद्धविग्रह ॥२४॥ असाध्य, साधुसाध्य, भृत्यमर्कटरूपधृक् (सेवक हनूमानरूप धारण करने वाले), हिरण्यरेता पौराण (पुराणोंमें वर्णित महिमा वाले), रिपुजीवहर (शत्रुओंका प्राण हरण करने वाले), बली २५ महाह्रद, महागर्त सिद्धवृन्दारवंदित व्याघ्रचर्माम्बर, व्याली (सर्पधारी) महाभूत, महानिधि ॥ २६ ॥ अमृताश अमृतवपु, पाञ्चजन्य, प्रभञ्जन, पञ्चविंशतितत्त्वस्थ (पच्चीसवें तत्त्वमें स्थित , पारिजात, परात्पर २७ सुलभ, सुव्रतशूर ब्रह्मवेदनिधि वर्णाश्रमगुरु (वर्णाश्रमधर्म वालोंके गुरु), वर्णी (ब्रह्मचारीका रूप धारण करने वाले), शत्रुजित्शत्रुतापन ॥ २८ ॥ आश्रम, क्षपण क्षाम, ज्ञानवानचलेश्वर प्रमाणभूत, दुर्ज्ञेय, सुपर्ण, वायुवाहन ॥२९॥ धनुर्धर (पिनाक धनुषको धारण करने वाले)धनुर्वेद गुण, राशिगुणाकर, सत्य सत्यपर, अदीन, धर्म धर्मशासन ॥३०॥ अनन्तदृष्टि आनन्द, दण्ड-दमयिता, दम अभिवाद्यमहामाय, विश्वकर्मविशारद ॥३१॥ वीतराग, विनीतात्मा, तपस्वी, भूतभावन, उन्मत्तवेष प्रच्छन्न जितकाम, अजितप्रिय ॥ ३२। कल्याणप्रकृति (कल्याण करनेका स्वभाव वाले) कल्प, सर्वलोकप्रजापति, तपस्वी तारक, धीमान् प्रधान-प्रभु, अव्यय ॥ ३३ ॥ लोकपाल, अन्तर्हितात्मा, कल्पादि, कमलेक्षण, वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ (वेद तथा शास्त्रोंके अर्थका तत्त्व जानने वाले) अनियम, नियताश्रय ॥ ३४ ॥ चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु (सर्वव्यापक होनेसे इनमें व्याप्त), वराङ्ग, विद्रुमच्छवि (मूँगेकीसी

परं ब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥३५॥ अद्रिरद्र्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः। सर्वकर्मालयस्तुष्टो मंगल्यो मंगलावृतः ॥ ३६ ॥ महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः। अहस्संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३७ ॥ संवत्सरकरो मन्त्रप्रत्ययः सर्वदर्शनः। अजः सर्वेश्वरस्सिद्धो महारेताः महाबलः ॥ ३८ ॥ योगी योग्यो महारेतास्सिद्धिस्सर्वादिरग्रहः। वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ३९ सुकीर्तिः शोभनः श्रीमान् वेदांगो वेदविन्मुनिः। भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥ ४० ॥ अमृतश्शाश्वतश्शांतो बाणहस्तः प्रतापवान्। कमंडलुधरो धन्वी ह्यवाङ्मनसगोचरः ॥ ४१ ॥ अतीन्द्रियो महामायस्सर्वावासश्चतुष्पथः। कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥४२॥ महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरन्दरः। निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ४३ ॥ अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वाचार्यो मनोगतिः। बहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ।४४। तेजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासनः। नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥ ४५ ॥ स्पष्टाक्षरो बुधो मन्त्रस्समानस्सारसंप्लवः। युगादिकृद्युगावर्तो गंभीरो वृषवाहनः ॥ ४६ ॥ इष्टो विशिष्टश्शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः। तीर्थरूप-

---

वांति वाले), भक्तिवश्य, परब्रह्म मृगबाणार्पण, अनघ ॥ ३५ ॥ अद्रि (गोवर्धनपर्वतरूप), अद्र्याचल, कांत, परमात्मा, जगद्--गुरु, सर्वकर्मालय (सकल कर्मोंके स्थान), तुष्ट, मङ्गल्य, मङ्गलावृत ॥ ३६ ॥ महातपा, दीर्घतपा, स्थविष्ठ, स्थविर, ध्रुव, अहः, सम्वत्सर, व्याप्ति, प्रमाण, परम तप ॥ ३७ ॥ सम्वत्सरकर, मन्त्र, प्रत्यय, सर्वतापन, अज (जन्मरहित), सर्वेश्वर (सबके ईश्वर), सिद्ध, महातेज, महाबल ॥ ३८ ॥ योगी, योग्य, महातेजा, सिद्धि, सर्वादि, अग्रह, वसु, वसुमना, सत्य, सर्वपापहर--हर ३९ सुकीर्ति, शोभन, श्रीमान्, वेदांग, वेदवित्, मुनि, भ्राजिष्णु, भोजन, भोक्ता, लोकनाथ, दुराधर ॥ ४० ॥ अमृत, शाश्वत, शान्त, बाणहस्त, प्रतापवान्, कमण्डलुधर, धन्वी, अवाङ्मनस-गोचर (मन और वाणीसे अगम्य) ।४१। अतीन्द्रिय, महामाय, सर्वावास, चतुष्पथ, कालयोगी, महानाद, महोत्साह, महाबल ॥ ४२ ॥ महाबुद्धि, महावीर्य, भूतचारी, पुरन्दर (त्रिपुरका संहार करने वाले), निशाचर, प्रेतचारी, महाशक्ति, महाद्युति ॥ ४३ ॥ अनिर्देश्यवपुः (जिनके शरीरका वर्णन करना अशक्य है), श्रीमान्, सर्वाचार्य, मनोगति, बहुश्रुति, महामाय, नियतात्मा, ध्रुव, अध्रुव ॥ ४४ ॥ तेजस्तेज, द्युतिधर, जनक, सर्वशासन, नृत्यप्रिय, नित्यनृत्य, प्रकाशात्मा, प्रकाशक ४५ स्पष्टाक्षर, बुध, मन्त्र, समान, सारसंप्लव, युगादिकृत्, युगावर्त, गम्भीर, वृषवाहन; ॥ ४६ ॥ इष्ट, विशिष्ट, शिष्टेष्ट (सज्जन जिनको चाहते हैं ऐसे),

स्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः ॥ ४७ ॥ अपांनिधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित्। प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ४८ विमोचनस्सुरगणो विद्येशो बिन्दुसंश्रयः। वातरूपोऽमलोन्मायी विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९ ॥ करणं कारणं कर्त्ता सर्वबन्धविमोचनः। व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥ ५०॥ गुरुदो ललितो भेदो भवात्मात्मनि संस्थितः। वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः ॥ ५१ ॥ वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नदीश्वरः। आज्ञाधरस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥ ५२ ॥ बालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः। अभिरामस्सुशरणस्सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥ ५३ ॥ मघवा कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः। ललाटाक्षो विश्वदेहस्सारस्संसारचक्रभृत् ॥ ५४ ॥ अमोघदण्डी मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसः। परमार्थः परमायस्संचयो व्याघ्रकोमलः ॥ ५५ ॥ रुचिर्बहुरुचिर्वैद्यो वाचस्पतिरहस्पतिः। रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५६ ॥ युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः पुरंजनः। कैलासाधिपतिः कान्तस्सविता रविलोचनः ॥ ५७ ॥ विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता निवारितः। नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ५८ ॥ दूरश्रवो विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः। उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुस्सहो भवः ॥ ५९ ॥ अनादि-

---

सुलभ, सारशोधन, तीर्थरूप, तीर्थनामा, तीर्थदृश्य, तीर्थद ॥ ४७ ॥ अपांनिधि, अधिष्ठान, दुर्जय, जयकालवित् (जयके समय को समझने वाले), प्रतिष्ठित प्रमाणज्ञ, हिरण्यकवच, हरि ॥४८॥ विमोचन, सुरगण, विद्येश, बिन्दुसंश्रय, वातरूप, अमलोन्मायी विकर्ता गहन, गुह, ॥ ४९ ॥ करण, कारण, कर्ता, सर्वबन्धविमोचन, व्यवस्थान, व्यवसाय, स्थानद और जगदादिज ॥५०॥ गुरुद, ललित, भेद, भवात्मा, आत्मसंस्थित, वीरेश्वर, वीरभद्र वीरासनविधि, गुरु ॥ ५१ ॥ वीरचूडामणि, वेत्ता, चिदानन्द, नदीश्वर, आज्ञाधर, त्रिशूली, शिपिविष्ट, शिवालय ॥ ५२ ॥ बालखिल्य, महावीर, तिग्मांशु, बधिर, खग अभिराम, सुशरण, सुब्रह्मण्य, सुधापति ५३ मघवा, कौशिक, गोमान्, विराम, सर्वसाधन, ललाटाक्ष, विश्वदेह, सार, संसारचक्रभृत् ॥ ५४ ॥ अमोघदण्डी, मध्यस्थ, हरिण ब्रह्मवर्चस, परमार्थ, परमाय सञ्चय, व्याघ्रकोमल ॥ ५५ ॥ रुचि, बहुरुचि वैद्य, वाचस्पति, अहस्पति, रवि, विरोचन, स्कन्द, शास्त्र, वैवस्वत यम ॥ ५६ ॥ युक्ति, उन्नतकीर्ति, सानुराग, पुरञ्जन, कैलासाधिपति कान्त, सविता, रविलोचन, विश्वोत्तम, वीतभय, विश्वभर्ता, निवारित, नित्य, नियतकल्याण, पुण्यश्रवणकीर्तन (जिनका श्रवण और कीर्तन पुण्य देने वाला है) ॥ ५८ ॥ दूरश्रव, विश्वसह, ध्येय, दुःस्वप्ननाशन, उत्तारण, दुष्कृतिहा (दुष्कर्मोंका

भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः। विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिरांगदः॥ ६० ॥ जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्ध्रुवः। वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः॥ ६१ ॥ प्रणवस्सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः। जन्माधिपो महादेवस्सकलागमपारगः॥६२॥ तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विष्णुर्विभूषणः। ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यं जन्ममृत्युजरातिगः॥६३॥ पञ्चतत्त्वसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः। अनाद्यन्तो ह्यात्मयोनिर्वत्सलो भूतलोकधृक्॥ ६४ ॥ गायत्रीवल्लभः पांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः। शिशुर्गिरिरतस्सम्राट् सुषेणस्सुरशत्रुहा॥ ६५ ॥ अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वरः। स्वयंज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचंचलः॥६६॥ पिंगलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः। ज्ञानस्कंधो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः॥ ६७ ॥ भगो विवस्वानादित्यो गतपारो बृहस्पतिः। कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः॥ ६८ ॥ उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसत्त्रपः। नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानः षडाश्रयः॥६९॥ पवित्रः पापनाशश्च मणिपूरो नभोगतिः। हृत्पुण्डरीकमासीनश्शक्रश्शान्तिर्वृषाकपिः ७० उष्णो गृहपतिः कृष्णस्समर्थोऽनर्थनाशनः। अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरश्रुतः॥

नाश करने वाले), विज्ञेय, दुःसह, भव ॥५९॥ अनादि, भूर्भुवः, लक्ष्मी, किरीटी, त्रिदशाधिप (देवताओंके स्वामी), विश्वगोप्ता, विश्वकर्ता सुवीर, रुचिरांगद ॥६०॥ जनन, जनजन्मादि, प्रीतिमान नीतिमान्, ध्रुव, वसिष्ठ, कश्यप, भानु, भीम, भीमपराक्रम ॥ ६१ ॥ प्रणव, सत्पथाचार, महाकोश, महाधन, जन्माधिप, महादेव, सकलागमपारग (सब शास्त्रोंके पारगामी) ६२ तत्त्व, तत्त्ववित्, ऐकात्मा, विभु विष्णुभूषण, ऋषि, ब्राह्मण, ऐश्वर्य, जन्ममृत्युजरातिग (जन्म मृत्यु और बुढ़ापेके चुङ्गलसे बचे हुए) ॥६३॥ पञ्चतत्त्वसमुत्पत्ति विश्वेश, विमलोदय, अनाद्यन्त, आत्मयोनि, वत्सल, भूतलोकधृक् ॥ ६४ ॥ गायत्रीवल्लभ, पांशु, विश्वास, प्रभाकर, शिशु, गिरिश सम्राट् सुषेण, सुरशत्रुहा (देवताओंके शत्रुओंका संहार करने वाले) ६५ अनेमि, इष्टनेमि, मुकुन्द, विगतज्वर, स्वयंज्योति, महाज्योति, तनुज्योति, अचञ्चल ॥ ६६ ॥ पिंगल, कपिलश्मश्रु, भालनेत्र, त्रयीतनु (तीनों वेदोंमें जिनका विस्तार है), ज्ञानस्कन्ध, महानीति, विश्वोत्पत्ति, उपप्लव ॥६७॥ भग, विवस्वान, आदित्य, गतपार, बृहस्पति, कल्याणगुणनामा (जिनके नाम और गुण कल्याण करने वाले हैं), पापहा, पुण्यदर्शन ॥६८॥ उदारकीर्ति, उद्योगी, सद्योगी, सदसत्त्रप, नक्षत्रमाली, नाकेश, स्वाधिष्ठान, षडाश्रय ॥६९॥ पवित्र, पापनाश, मणिपूर, नभोगति, हृत्पुण्डरीक, आसीन, शक्र, शांति, वृषाकपि ॥ ७० ॥ उष्ण, गृहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थनाशन,

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ७२ हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः । आरोग्यो नमनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥७३॥ ब्रह्मज्योतिर्वसुर्धामा महाज्योतिरनुत्तमः । मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ ७४ ॥ पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः । निरावरणनिर्वारो वैरंच्यो विष्टरश्रवाः ॥ ७५ ॥ आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः । लोकवीराग्रणीर्वीरश्चन्द्रस्सत्यपराक्रमः ॥ ७६ ॥ व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।: अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः ॥ ७७ ॥ आयुः शब्दपतिर्वाग्मी प्लवनशिशिखिसारथिः । असंस्पृष्टोऽतिथिश्शत्रुः प्रमाथी पादपासनः ॥ ७८ ॥ वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः । जप्यो जरादिशमनो लोहितश्च तनूनपात् ॥ ७९ ॥ पृषदश्वो नभोयोनिस्सुप्रतीकस्तमिस्रहा । निदाघस्तपनो मेघभक्षः परपुरंजयः॥८०॥ सुखानिलस्सुनिष्पन्नस्सुरभिश्शिशिरात्मकः। वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥ ८१ ॥ अंगिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः । पावनः पुरजिच्छक्रस्त्रैविद्यो नववारणः ॥८२॥ मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः । जमदग्निर्जलनिधिर्विगालो विश्वगालनः ॥ ८३ ॥ अघोरोऽनुत्तरो यज्ञश्श्रेष्ठो निश्श्रेयसप्रदः । शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिरन्दमः ॥८४॥

अधर्मशत्रु, अज्ञेय, पुरुहूत, पुरश्रुत ॥ ७१ ॥ ब्रह्मगर्भ, बृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैषी, सुगत, कुमार, कुशलागम ॥ ७२ ॥ हिरण्यवर्ण, ज्योतिष्मान, नानाभूतरत, ध्वनि, आरोग्य, नयनाध्यक्ष, विश्वामित्र, धनेश्वर ॥ ७३ ॥ ब्रह्मज्योति वसुधामा, महाज्योति, अनुत्तम, मातामह, मातरिश्वा, नभस्वान्, नागहारधृक् ॥ ७४ ॥ पुलस्त्य, पुलह, अगस्त्य, जातूकर्ण्य, पराशर, निरावणनिर्वार, वैरञ्च्य, विष्टरश्रवा ॥ ७५ ॥ आत्मभू, अनिरुद्ध, अत्रि, ज्ञानमूर्ति, महायशा, लोकवीराग्रणी, वीर, चन्द्र, सत्यपराक्रम ॥ ७६ ॥ व्यालकल्प, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलाधर, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोन्नत, ॥ ७७ ॥ आयु, शब्दपति, वाग्मी, प्लवन, शिखिसारथि, असंस्पृष्ट, अतिथि, शत्रु, प्रमाथी, पादपासन ॥ ७८ ॥ वसुश्रवा, कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जप्य, जरादिशमन, लोहित, तनूनपात् ॥ ७९ ॥ पृषदश्व, नभोयोनि, सुप्रतीक, तमिस्रहा (अज्ञानरूपी अंधकारके नाशक), निदाघ, तपन, मेघभक्ष, परपुरञ्जय ॥ ८० ॥ सुखानिल, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशिरात्मक, वसन्त, माधव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन ॥ ८१ ॥ अङ्गिरा, गुरु, आत्रेय, विमल, विश्ववाहन, पावन, पुरुजित्, शक्र, त्रैविद्य, नववारण ॥ ८२ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक, जमदग्नि, जलनिधि, विगाल, विश्वगालन ॥ ८३ ॥ अघोर अनु-

चामुण्डो जनकश्चारुर्निश्शल्यो लोकशल्यधृक् । चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः॥ आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः। बहुरूपो महारूपस्सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६ ॥ न्यायनिर्मायको नेयो न्यायगम्यो निरञ्जनः । सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रस्सर्वशास्त्रप्रभंजनः ॥ ८७ ॥ मुण्डी विरूपो विकृतो दण्डो नादी गुणोत्तमः। पिंगलाक्षो हि बह्वक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ८८ ॥ सहस्रबाहुस्सर्वेशश्शरण्यस्सर्वलोकधृक्। पद्मासनः परंज्योतिः पारम्पर्यफलप्रदः ॥ ८९ ॥ पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः। परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः ॥९०॥ देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः। देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः ॥९१॥ देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहाश्रयः। देवोदेवोऽनयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः॥ सद्यो महासुरव्याधो देवसिंहो दिवाकरः। विबुधाग्रचरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ ९३ ॥ शिवज्ञानरतः श्रीमाञ्छिखी श्रीपर्वतप्रियः। वज्रहस्तस्सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः ॥ ९४ ॥ ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः । नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नवृत्तिधरश्शुचिः ॥९५॥ लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगापहः । स्वधामा स्वगतः स्वर्गी स्वरः स्वरमयः स्वनः ॥ ९६ ॥ बाणाध्यक्षो बीजकर्त्ता कर्मकृद्धर्मसम्भवः । दम्भो लोभोऽथ वै शम्भुस्सर्वभूतमहेश्वरः ।९७।

क्षर, यज्ञ श्रेष्ठ, निःश्रेयसप्रद, शैल, गगनकुन्दाभ, दानवारि, अरिन्दम ८४ चामुण्ड, जनक, चारु, निःशल्य, लोकशल्यधृक् चतुर्वेद, चतुर्भाव, चतुर, चतुरप्रिय ॥ ८५ ॥ आम्नाय, समाम्नाय, तीर्थदेव, शिवालय, बहुरूप महारूप, सर्वरूप, चराचर ॥ ८६ ॥ न्यायनिर्मायक, नेय, न्यायगम्य, निरंजन, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशास्त्रप्रभञ्जन ॥ ८७ ॥ मुण्डी, विरूप, विकृत, दण्डी, नादी, गुणोत्तम, पिंगलाक्ष; बह्वक्ष, नीलग्रीव, निरामय ॥ ८८ ॥ सहस्रबाहु, सर्वेश शरण्य, सर्वलोकधृक्, पद्मासन, परंज्योति, पारम्पर्यफलप्रद ॥ ८९ ॥ पद्मगर्भ, महागर्भ, विश्वगर्भ, विचक्षण, परावरज्ञ, वरद, वरेण्य, महास्वन ॥ ९० ॥ देवासुरगुरु, देव, देवासुरनमस्कृत, देवासुरमहामित्र, देवासुरमहेश्वर ॥ ९१ ॥ देवासुरेश्वर, दिव्य, देवासुरमहाश्रय, देव, अदेव, अनय, अचिन्त्य, देवतात्मा, आत्मसंभव ॥ ९२ ॥ सद्य, महासुरव्याध, देवसिंह, दिवाकर, विबुधाग्रचर, श्रेष्ठ, सर्वदेवोत्तमोत्तम ॥ ९३ ॥ शिवज्ञानरत, श्रीमान, शिखी, श्रीपर्वतप्रिय, वज्रहस्त, सिद्धखड्ग, नरसिंहनिपातन ॥ ९४ ॥ ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिप, नन्दी, नन्दीश्वर, अनन्त, नग्नवृत्तिधर, शुचि ॥ ९५ ॥ लिंगाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, युगाध्यक्ष, युगापह स्वधामा, स्वगत, स्वर्गी, स्वर, स्वरमय, स्वन ॥ ९६ ॥ बाणाध्यक्ष, बीजकर्ता, कर्मकृत्, धर्मसंभव, दम्भ, लोभ, शंभु, सर्वभूतमहे-

श्मशाननिलयस्त्र्यक्षस्सेतुरप्रतिमाकृतिः । लोकोत्तरस्स्फुटालोकः त्र्यम्बको नागभूषणः ॥ ९८ ॥ अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः । हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित् ॥ ९९ ॥ पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः । सन्मार्गप्रियो धूर्त्तः पुण्यकीर्त्तिरनामयः ॥ १०० ॥ मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो नियमेश्वरः । जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥ १०१ ॥ सद्गतिः सिद्धिदः सिद्धः सज्जातिः खलकंटकः । कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥ १०२ ॥ लोकलावण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः । चन्द्रसंजीवनश्शास्ता लोकग्राहो महाधिपः ॥ १०३ ॥ लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषितः । अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥ १०४ ॥ तेजोमयो द्युतिधरो लोकमानी घृणार्णवः । शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा ह्यजेयो दुरतिक्रमः ॥ १०५ ॥ ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः । तुंबवीणो महाकायो विशोकश्शोकनाशनः ॥ १०६ ॥ त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः । अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तोऽव्यक्तो विशांपतिः ॥ १०७ ॥ परः शिवो वसुर्नासासारो मानधरो यमः । ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः ॥ १०८ ॥ वेधा विधाता धाता च स्रष्टा हर्त्ता चतुर्मुखः । कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ॥ १०९ ॥ हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः । सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः ॥ ११० ॥ देवप्रियो देवनाथो

श्वर ॥ ९७ ॥ श्मशाननिलय, त्र्यक्ष, सेतु, अप्रतिमाकृति, लोकोत्तरास्फुट, लोकत्र्यम्बक, नागभूषण ॥ ९८ ॥ अन्धकारि, मखद्वेषी, विष्णुकंधरपातन, हीनदोष, अक्षयगुण, दक्षारि, पूषदन्तभित् ॥ ९९ ॥ पूर्ण, पूरयिता, पुण्य, सुकुमार, सुलोचन, सन्मार्गप्रिय, धूर्त, पुण्यकीर्ति, अनामय ॥ १०० ॥ मनोजव, तीर्थकर, जटिल, नियमेश्वर, जीवितान्तकर, नित्य, वसुरेता, वसुप्रद १०१ सद्गति, सिद्धिद, सिद्ध, सज्जाति, खलकण्टक, कलाधर, महाकालभूत, सत्यपरायण ॥ १०२ ॥ लोकलावण्यकर्ता, लोकोत्तरसुखालय, चन्द्रसंजीवन, शास्ता, लोकग्राह, महाधिप ॥ १०३ ॥ लोकबंधु, लोकनाथ, कृतज्ञ, कृत्तिभूषित, अनपाय, अक्षर, कान्त, सर्वशास्त्रभृद्वर ॥ १०४ ॥ तेजोमय, द्युतिधर, लोकमानी, घृणार्णव, शुचिस्मित, प्रसन्नात्मा, अजेय, दुरतिक्रम १०५ ज्योतिर्मय, जगन्नाथ, निराकार, जलेश्वर, तुम्बवीण, महाकाय, विशोक, शोकनाशन १०६ त्रिलोकप, त्रिलोकेश, सर्वशुद्धि, अधोक्षज, अव्यक्त लक्षण देव, व्यक्त, अव्यक्त, विशांपति १०७ पर, शिव, वसु, नासासार, मानधर, यम, ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापाल, हंस, हंसगति, वय १०८ वेधा, विधाता, धाता, स्रष्टा, हर्ता, चतुर्मुख, कैलासशिखरावासी, सर्वावासी, सदागति ॥ १०९ ॥ हिरण्यगर्भ, द्रुहिण, भूतपाल, भूपति, सद्-योगी, योगविद्, योगी, वरद, ब्राह्मण-

देवको देवचिन्तकः । विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥ १११ ॥ निर्ममो निरहंकारी निर्मोहो निरुपद्रवः । दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वार्थपरिवर्त्तकः ॥ ११२ ॥ सहस्रार्चिर्भूतिभूषः स्निग्धाकृतिरदक्षिणः । भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशनः ॥ ११३ ॥ अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्य्यैकपण्डितः । निष्कंटकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥ ११४ ॥ सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः कृतस्नेहः कृतागमः । अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥११५॥ सुप्रीतः सुखदः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः । नन्दिस्कन्दो धरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥११६॥ अपराजितः सर्वसहो गोविन्दः सत्त्ववाहनः । अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥ ११७ ॥ वाराहशृङ्गधृक् शृङ्गी बलवानेकनायकः । श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेकधृक् ॥ ११८ ॥ श्रीवत्सलः शिवारंभः शान्तभद्रः समो यशः । भूशयो भूषणो भूतिर्भूतिकृद् भूतभावनः ॥११९॥ अकंपो भक्तिकायस्तु कालहानिः कलाविभुः । सत्यव्रती महात्यागी नित्यः शान्तिपरायणः ॥ १२० ॥ परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः । शुभदः शुभकर्त्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥१२१॥ अनर्थितो गुणग्राही ह्यकर्त्ता कनकप्रभः । स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो विघ्ननाशनः ॥ शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डो च कुण्डली । अमृत्युः सर्वदृक सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥१२३॥ असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्य्यवान् वीर्य्यकोविदः । वेद्यश्च

प्रिय ॥ ११० ॥ देवप्रिय, देवनाथ, देवक, देवचिन्तक, विषमाक्ष, विरूपाक्ष, वृषद, वृषवर्धन ॥ १११ ॥ निर्मम, निरहंकारी, निर्मोह, निरुपद्रव, दर्पहा, दर्पद, दृप्त, सर्वार्थपरिवर्तक ॥ ११२ ॥ सहस्रार्चि, भूतिभूष, स्निग्धाकृति, अदक्षिण, भूतभव्यभवन्नाथ, विभव, भूतिनाशन ॥ ११३ ॥ अर्थ, अनर्थ, महाकोश, परकार्यैकपण्डित, निष्कण्टक, कृतानन्द, निर्व्याज, व्याजमर्दन ११४ सत्त्ववान, सात्त्विक, सत्य, कृतस्नेह, कृतागम, अकम्पित, गुणग्राही, नैकात्मा, नैककर्मकृत् ॥ ११५ ॥ सुप्रीत, सुखद, सूक्ष्म, सुकर, दक्षिणानल, नन्दिस्कन्द, धर, धुर्य, प्रकट, प्रीतिवर्धन ॥ ११६ । अपराजित, सर्वसह, गोविन्द, सत्त्ववाहन, अधृत, स्वधृत, सिद्ध, पूतमूर्त्ति, यशोधन ॥ ११७ ॥ वाराहशृङ्गधृक्, शृंगी, बलवान् एकनायक, श्रुतिप्रकाश श्रुतिमान्, एकबन्धु, अनेकधृक् ॥ ११८ ॥ श्रीवत्सल, शिवारंभ, शान्तभद्र, शम, यश, भूशय, भूषण, भूति, भूतिकृद्, भूतभावन ॥ ११९ ॥ अकम्प, भक्तिकाय, कालहानि, कलाविभु, सत्यव्रती, महात्यागी, नित्य, शान्तिपरायण ।१२०। परार्थवृत्ति, वरद, विरक्त, विशारद, शुभद, शुभकर्ता, शुभनामा, शुभ, स्वयम् ॥ १२१ ॥ अनर्थित, गुणग्राही, अकर्ता, कनकप्रभ, स्वभावभद्र, मध्यस्थ, शत्रुघ्न, विघ्ननाशन ॥ १२२ ॥ शिखण्डी, कवची, शूली, जटी,

वै वियोगात्मा सप्तावरमुनीश्वरः ॥ १२४ ॥ अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः । सुरेशः स्मरणः सर्वः शाब्दः प्रतपतां वरः ॥१२५॥ कालपक्षः कालकालः सुकृती कृतवासुकिः । महेष्वासो महीभर्त्ता निष्कलङ्को विशृंखलः ॥१२६॥ द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः । विश्वतस्सम्प्रवृत्तस्तु व्यूढोरस्को महाभुजः ॥१२७॥ सर्वयोनिर्निरातंको नरनारायणप्रियः । निर्लेपो यतिसंगात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः ॥ १२८ ॥ स्तवः स्तुतिप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निराकुलः । निरवद्यमयोपायो विद्याराशिश्च सत्कृतः ॥ १२९ ॥ प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्णः संग्रहो नित्यसुन्दरः । वैयाघ्रधुर्य्यो धात्रीशः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥ १३० ॥ परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिराश्रितवत्सलः । सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्त्वावलम्बनः ॥१३१॥ एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हरं हरिः । प्रार्थयामास शम्भुं वै पूजयामास पङ्कजैः ॥ ततः स कौतुकी शम्भुश्चकार चरितं द्विजाः । महाद्भुतं सुखकरं तदेव शृणुतादरात् ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सूत उवाच । श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम् । सहस्रनामस्वस्तोत्रं प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥ १ ॥ परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः । गोप-

---

मुण्डी, कुण्डली अमृत्यु, सर्वदृक्, सिंह, तेजोराशि, महामणि ॥ १२३ ॥ असंख्येय, अप्रमेयात्मा, वीर्यवान्, वीर्यकोविद वेद्य, वियोगात्मा, सप्तावरमुनीश्वर ॥१२४॥ अनुत्तम, दुराधर्ष, मधुर प्रियदर्शन, सुरेश, स्मरण, सर्व, शाब्द, प्रतपताम्वर ॥१२५॥ कालपक्ष, कालकाल, सुकृती, कृतवासुकि, महेष्वास, महीभर्ता, निष्कलङ्क, विशृङ्खल १२६ द्युमणि तरणि, धन्य, सिद्धिद, सिद्धिसाधन, विश्वतः संप्रवृत्त, व्यूढोरस्क, महाभुज ॥१२७॥ सर्वयोनि, निरातंक, नरनारायणप्रिय, निर्लेप यतिसंगात्मा, निर्व्यङ्ग, व्यङ्गनाशन ॥१२८॥ स्तव स्तुतिप्रिय, स्तोता, व्यासमूर्ति, निराकुल, निरवद्यमयोपाय, विद्याराशि, सत्कृत ॥ १२९ ॥ प्रशान्तबुद्धि, अक्षुण्ण, संग्रह, नित्यसुन्दर, वैयाघ्रधुर्य, धात्रीश, संकल्प, शर्वरीपति ॥ १३० ॥ परमार्थगुरु, दत्त, सूरि, आश्रितवत्सल, सोम, रसज्ञ रसद, सर्वसत्त्वावलम्बन ॥ १३१ ॥ विष्णुने इस प्रकार शिवकी हजार नामोंसे स्तुति की और प्रार्थना कर कमलोंसे पूजा की ॥ १३२ ॥ हे द्विजो ! इस समय कौतुक करने वाले शंभुने जो परम अद्भुत सुखदायक चरित्र किया था, उसको आप आदरपूर्वक सुनें ।१३३। पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

सूतजीने कहा, कि–महेश्वर, विष्णुके किये हुए दिव्य श्रेष्ठ नामोंसे विभूषित, अपने सहस्रनाम स्तोत्रको सुन कर प्रसन्न हुए ॥१॥ फिर भुवनेश्वर

यामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः ॥ २ ॥ पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु बभूव च । न्यूनमेकं तदा विष्णुर्विह्वलश्शिवपूजने ॥३॥ हृदा विचारितं तेन कुतो वै कमलं गतम् । यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न किम् ॥ ४ ॥ ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्त्वावलम्बनात् । पूजयामास भावेन स्तवयामास तेन च ॥५॥ ततः स्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम् । मा मेति व्याहरन्नेव प्रादुरासीज्जगद्गुरुः ।६। तस्मादवततारासु मण्डलात्पार्थिवस्य च । प्रतिष्ठितस्य हरिणा स्वलिंगस्य महेश्वरः ॥७॥ यथोक्तरूपिणं शम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम् । नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः ॥ ८ ॥ तदा प्राह महादेवः प्रसन्नः प्रहसन्निव । सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृतांजलिपुटं स्थितम् ॥ ९ ॥ शंकर उवाच । ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे । देवकार्य्यं विशेषेण देवकार्य्यरतात्मनः ॥१०॥ देवकार्य्यस्य सिद्ध्यर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम् । सुदर्शनाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम् ११ यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम् । हिताय तव देवेश धृतं भावय तद्ध्रुवम्॥ रणाजिरे स्मृतं तच्च देवानां दुःखनाशनम् । इदं चक्रमिदं रूपमिदं नामसहस्र-

---

महेश्वरने विष्णुकी परीक्षा करनेके लिये, उन कमलोंमेंसे एक कमलको छिपा दिया ॥ २ ॥ शिवपूजन करते २ जब हजार कमलोंमेंसे एक कमल कम होगया, तब विष्णु विह्वल होगए ॥ ३ ॥ उन्होंने हृदयमें विचार किया, कि-कमल कहाँ गया, गया तो सुखके साथ जाय, क्या मेरा नेत्र कमल नहीं है ॥ ४ ॥ यह समझ कर पूर्ण बलके साथ अपना नेत्र निकाल लिया और भावपूर्वक स्तुति और पूजा करने लगे ॥५॥ इस प्रकार हरिको स्तुति करते देख जगद्गुरु हर बस ! बस !! कहते हुए प्रकट होगए ॥ ६ ॥ और हरिने जो पार्थिव शिवलिंग प्रतिष्ठित किया था, उसके मण्डलसे शीघ्रतापूर्वक उतर पड़े ॥ ७ ॥ यथोचित रूपवाले तेजोराशि शम्भुको प्रकट हुआ देख विष्णु उनको प्रणाम कर सामने खड़े होकर स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ तब महादेव प्रसन्न हुए और हाथ जोड़ कर खड़े हुए विष्णुको कृपादृष्टिसे देख मुस्कुरा कर कहने लगे ॥ ९ ॥ शंकरने कहा, कि- हे हरे ! तुम्हारा चित्त देवताओंका कार्य करनेमें मग्न रहता है, मैंने तुम्हारे चित्तकी देवताओंका काम करनेकी सब बातें अच्छी तरह जानली हैं ॥१०॥ मैं देवताओंका काम सिद्ध करनेके लिये और बिना श्रमके ही दैत्योंका नाश करनेके लिये तुम्हें सुदर्शन नाम वाला सुन्दर चक्र देता हूँ ॥ ११ ॥ हे देवेश ! सब लोगोंको सुख पहुँचाने वाले जिस मेरे रूपको आप देख रहे हैं, यह रूप आपका हित करने लिये ही मैंने धारण किया है, ऐसा समझो ॥ १२ ॥ इस चक्र, इस रूप और इस सहस्रनामका यदि रणभूमिमें स्मरण किया जावेगा, तो देवताओं

कम् ॥ १३ ॥ ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या सिद्धिः स्यादनपायिनी । कामानां सकलानां च प्रसादान्मम सुव्रत ॥ १४ ॥ सूत उवाच । एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् । सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ १५ ॥ विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा । नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।१६। विष्णुरुवाच । शृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो । दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशंकर ॥ १७ ॥ सूत उवाच । इति पृष्टस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् । प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ॥ १८ ॥ शिव उवाच । रूपं ध्येयं हरे मे हि सर्वानर्थप्रशान्तये । अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ।१९। धार्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये । त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ॥ २० ॥ अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः । तेषां दुःखं न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ राज्ञां च संकटे प्राप्ते शतावृत्तिं चरेद्यदा । साङ्गं च विधिसंयुक्तं कल्याणं लभते नरः ॥ २२ ॥ रोगनाशकरं ह्येतद्विद्यावित्तदमुत्तमम् । सर्वकामप्रदं पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा ॥ २३ ॥ यदुद्दिश्य फलं

का दुःख नष्ट होगा ॥ १३ ॥ हे सुव्रत ! जो भक्तिपूर्वक सदा इस चरित्रको सुनेंगे उनको विघ्नरहित सिद्धि मिलेगी और मेरी कृपासे उनके सब मनोरथ पूर्ण होंगे ॥१४॥ सूतजीने कहा, कि--शिवने इस प्रकार कहकर अपने पाद (अंश) से उत्पन्न हुआ सब शत्रुओंका नाशक दश हजार सूर्योंकी समान कान्ति वाला सुदर्शन चक्र विष्णुको देदिया ॥ १५ ॥ तब विष्णु उत्तरकी ओर मुख कर पूजनपूर्वक सुदर्शन चक्रको ग्रहण करनेके अनन्तर महादेवको प्रणाम कर कहने लगे ॥ १६ ॥ विष्णुने कहा, कि--हे संसारका कल्याण करने वाले प्रभो देव ! दुःखोंका नाश करनेके लिये मुझे क्या ध्यान करना चाहिये और क्या पढ़ना चाहिये ॥ १७ ॥ सूतजीने कहा, कि--विष्णुके इस प्रकार बूझने पर प्रसन्न चित्त वाले शम्भुने सन्तुष्ट होकर देवताओंकी सहायता करने वाले विष्णुसे कहा ॥ १८ ॥ शिवने कहा, कि--हे हरे ! सकल अनर्थोंको शान्त करनेके लिये मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये और अनेक दुःखोंका नाश करनेके लिये सहस्रनामका पाठ करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे विष्णो ! सब मनोरथोंकी सिद्धिके लिये तुम इस सकल चक्रोंमें श्रेष्ठ चक्रको सदा धारण करो ॥ २० ॥ और भी जो पुरुष इस स्तोत्रका नित्य पाठ करेंगे वा करवावेंगे, उनको स्वप्नमें भी दुःख नहीं मिलेगा ॥ २१ ॥ जो प्राणी राजसंकट पड़ने पर विधिपूर्वक इसके सौ पाठ करेगा, तो उसका कल्याण होगा ॥ २२ ॥ यह उत्तम स्तोत्र रोगोंका नाश करने वाला, विद्या और धन देने वाला, सब कामनाएँ सफल करने वाला और सदा शिव-

श्रेष्ठ पठिष्यन्ति नरास्त्विह । लप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥ यश्च प्रातस्समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् । पठते मत्समक्षं वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ॥ २५ ॥ ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम् । अन्ते सायुज्य-मुक्तिं वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २६ ॥ सूत उवाच । एवमुक्त्वा तदा विष्णुं शंकरः प्रीतमानसः । उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः ॥ २७ ॥ शिव उवाच । वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ठ वरान्वृणु यथेप्सितान् । भक्त्या वशीकृतो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत ॥ २८ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् । सुप्रसन्नतरो विष्णुस्सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥ विष्णुरुवाच । यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः परा । कार्य्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो ॥ ३० ॥ त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम् । नान्यमिच्छामि भक्तानामार्त्तयो नैव यत्प्रभो ॥ ३१ ॥ सूत उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावान्सुतरां भवः । पस्पर्श च तदंगं वै प्राह शीतांशुशेखरः ॥ ३२ ॥ शिव उवाच । मयि भक्तिस्सदा ते तु हरे स्यादनपायिनी । सदा वन्द्यश्च पूज्यश्च लोके भव सुरैरपि ॥ ३३ ॥ विश्वम्भ-

---

भक्ति बढ़ाने वाला है ॥२३॥ हे श्रेष्ठ ! मनुष्य जिस फलके उद्देश्यसे इस का पाठ करेंगे, उनको वह उत्तम फल प्राप्त होगा, यह सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥२४॥ जो प्रातः काल उठ कर मेरी पूजा करके मेरे सामने इस स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, उससे सिद्धि दूर नहीं रहेगी ॥२५॥ (इस के पाठकको) इस लोकको सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली सिद्धि प्राप्त होती है और अन्तमें वह सायुज्य मुक्तिको पाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजीने कहा, कि--विष्णुसे इस प्रकार कह प्रसन्न मन वाले गिरिश शंकर उनका हाथोंसे स्पर्श कर कहने लगे ॥ २७ ॥ शिवने कहा, कि--हे सुरश्रेष्ठ ! मैं वर देना चाहता हूँ, अतः तुम जैसी इच्छा हो वैसे वर माँगलो, क्योंकि--हे सुव्रत ! भक्तिपूर्वक किये गए तुम्हारे इस स्तोत्रसे मैं तुम्हारे वशमें होगया हूँ ॥ २८ ॥ सूतजीने कहा कि--देवदेव (शंकर) के इस प्रकार कहने पर परम प्रसन्न हुए विष्णु हाथ जोड़ उन देवदेवको प्रणाम कर कहने लगे ॥ २९ ॥ विष्णुने कहा कि--हे नाथ ! जैसी कृपा आप इस समय कर रहे हैं हे प्रभो ! ऐसी ही कृपा कृपालुतापूर्वक करते रहें ॥३०॥ हे प्रभो ! भक्तोंको दुःख न उठाना पड़े और हे महादेव ! आपमें मेरी भक्ति रहे, प्रसन्न होकर आप मुझे यही उत्तम वर दीजिये मैं और कुछ वर नहीं चाहता ॥ ३१ ॥ सूतजीने कहा, कि--विष्णुके इन वचनोंको सुन कर चन्द्र-भाल शंकरने दयापूर्वक विष्णुके अङ्गोंका स्पर्श किया और कहने लगे ३२ शिवने कहा, कि--हे हरे ! मुझमें तुम्हारी अनपायिनी भक्ति सदा बनी

रेति ते नाम सर्वपापहरं परम् । भविष्यति न संदेहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥३४॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रस्सर्वदेवेश्वरः प्रभुः । पश्यतस्तस्य विष्णोस्तु तत्रैव च मुनीश्वराः ॥ ३५ ॥ जनार्दनोऽपि भगवान्वचनाच्छङ्करस्य च । प्राप्य चक्रं शुभं तद्वै जहर्षाति स्वचेतसि ॥ ३६ ॥ कृत्वा ध्यानं च तच्छम्भोः स्तोत्रमेतन्निरन्तरम् । पपाठाध्यापयामास भक्तेभ्यस्तदुपादिशत् ॥३७॥ इति पृष्टं मयाख्यातं शृण्वतामपापहारकम् । अतः परं च किं श्रेष्ठाः प्रष्टुमिच्छथ वै पुनः॥३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

ऋषय ऊचुः । सूतसूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत । पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात् ॥ १ ॥ पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा । आराधनश्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि ॥२॥ सूत उवाच । साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि वः । चरितं शांकरं रम्यं शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३ ॥ एतदेव पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच । शृणु नारद सुप्रीत्या शांकरं चरितं वरम् । प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापा-

---

रहेगो और तुम संसारमें देवताओंके भी सदा पूज्य और वन्दनीय रहोगे ३३ हे सुरोत्तम ! मेरी कृपासे तुम्हारा सब पापोंको हरने वाला विश्वम्भर नाम होगा ॥ ३४ ॥ सूतजी कहते हैं, कि–हे मुनीश्वरों ! सब देवताओंके ईश्वर प्रभु रुद्र इस प्रकार कह विष्णुको देखते २ तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥३५॥ और जनार्दन भगवान् भी शंकरके वचनसे शुभ चक्रको पा अपने मनमें परम प्रसन्न होने लगे ॥ ३६ ॥ और शंभुका निरन्तर ध्यान धर इस स्तोत्रका नित्य पाठ करते रहते थे और अपने भक्तोंको इसका उपदेश देते थे और पढ़ाते थे ॥३७॥ हे सज्जनों ! आपके बूझने पर यह पापनाशक आख्यान मैंने कहा, अब आप और क्या बूझना चाहते हैं ॥ ३८ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

ऋषियोंने कहा, कि–हे सुव्रत महाभाग सूतजी ! आप ज्ञानवान् हैं अतः शिवके ही चरित्रका फिर विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १ ॥ पुरातन राजा, ऋषि और देवता इन सबने ही इन देवश्रेष्ठकी आराधना की होगी ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि–हे श्रेष्ठ ऋषियों ! तुमने अच्छी बात बूझी, मैं सुनने वालोंको भोग तथा मोक्ष देने वाले शंकरके रमणीय चरित्रका आपसे वर्णन करता हूँ ॥३॥ पहिले यह बात नारदजीने ब्रह्माजीसे बूझी थी, तब ब्रह्माजी ने चित्तमें प्रसन्न होकर मुनिसत्तम नारदजीको प्रत्युत्तर दिया था ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे नारद ! आप प्रीतिपूर्वक शिवजीके उत्तम चरित्र

तकनाशनम् ॥ ५ ॥ रमया सहितो विष्णुश्शिवपूजां चकार ह । कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवाप हि ॥६॥ अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः । तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरस्सदा ॥ ७ ॥ शिवपूजाकरा नित्यं मत्पुत्राः परमर्षयः । अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजनकारकाः ॥ ८ ॥ नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः । सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याश्शिवपूजनकारकाः ॥ ९ ॥ अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च । अहल्या गौतमस्त्री च शिवपूजनकारिकाः ॥ १० ॥ दुर्वासाः कौशिकश्शक्तिर्दधीचो गौतमस्तथा । कणादो भार्गवो जीवो वैशंपायन एव च ॥ ११ ॥ एते च मुनयस्सर्वे शिवपूजाकरा मताः । तथा पराशरो व्यासश्शिवपूजारतस्सदा ॥१२॥ उपमन्युर्महाभक्तश्शिवस्य परमात्मनः । याज्ञवल्क्यो महाशैवो जैमिनिर्गर्ग एव च ॥ १३॥ शुकश्च शौनकाद्याश्च शंकरस्य प्रपूजकाः । अन्येऽपि बहवस्सन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥ अदितिर्देवमाता च नित्यं प्रीत्या चकार ह। पार्थिवीं शिवपूजां वै सवधूः प्रेमतत्परा ॥ १५ ॥ शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा । महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजकाः ॥ १६ ॥ गन्धर्वाः किन्नराद्याश्चोपसुराश्शिवपूजकाः । तथाऽसुरा महात्मानश्शिवपूजाकरा मताः ॥ १७ ॥

को सुनें, आपके स्नेहवश मैं महापातकोंको नष्ट करने वाले इस चरित्रका वर्णन करता हूँ ॥५॥ विष्णुने और रमाने शिवकी पूजा की थी और परमेश्वर की कृपासे सब कामनाएँ पाईं थीं ॥६॥ और मैं ब्रह्मा भी शिवपूजा करने वाला हूँ और हे तात ! उनकी कृपासे ही सदा विश्वकी रचना करता रहता हूँ ॥ ७ ॥ मेरे पुत्र परमर्षि भी सदा शिवपूजन करते रहते हैं और ऋषि भी शिवपूजा करते हैं ॥ ८ ॥ हे नारद ! तुम भी विशेषरूपसे शिवपूजक हो, तथा वसिष्ठ आदि सप्तर्षि भी शिवपूजन करते हैं ॥ ९ ॥ महासाध्वी अरुन्धती, लोपामुद्रा और गौतमकी स्त्री अहल्या ये शिवपूजन करने वाली हुई हैं ॥ १० ॥ दुर्वासा, कौशिक, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति और वैशम्पायन ये सब मुनि शिवपूजा करने वाले माने गए हैं तथा पराशरके पुत्र व्यासजी भी सदा शिवपूजन करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ उपमन्यु परमात्मा शिवके महाभक्त हैं, याज्ञवल्क्य जैमिनि और गर्ग ये भी महाशैव हैं ॥१३॥ हे मुनियों ! शुक शौनक आदि और भी बहुतसे मुनिसत्तम शंकरकी पूजा करते हैं ॥ १४ ॥ देवमाता अदिति और उनकी पुत्रवधुएँ प्रेमपूर्वक पार्थिव शिवलिंगका पूजन करती हैं ॥ १५ ॥ इन्द्र आदि लोकपाल, वसुगण, देवता, महाराजिक साध्यदेवता भी शिवपूजक हैं १६ और गंधर्व किन्नर आदि उपदेवता भी शिवपूजक हैं महात्मा असुर भी शिवपूजक हुए हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! पुत्र और भाइयों सहित दैत्य हिरण्य-

हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तस्यानुजस्तसुतो मुने । शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा ॥ १८ ॥ महाशैवः स्मृतो बाणो हिरण्याक्षसुतास्तथा । वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः ॥ १९ ॥ शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथापरे । शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ॥२०॥ सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यां वंशप्रवर्त्तकौ । शिवसेवारतौ नित्यं सवंश्यौ तौ मुनीश्वर ॥ २१ ॥ मनवश्च तथा चक्रुस्स्वायंभुवपुरस्सराः । शिवपूजां विशेषेण शिववेषधरा मुने ॥२२॥ प्रियव्रतश्च तत्पुत्रास्तथा चोत्तानपात्सुतः । तद्वंशाश्चैव राजानश्शिवपूजनकारकाः ॥ २३ ॥ ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नव योगिनः । तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकाः ।२४। वैवस्वतसुतास्तार्क्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः । शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः ॥ २५ ॥ ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरश्शैवसत्तमः । मुचुकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च ॥ २६ ॥ भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः । शिवपूजाकरा ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ॥ २७ ॥ खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः । विधितः पार्थिवीम्मूर्तिं शिवस्यापूजयत्सदा ॥ २८ ॥ तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा । रघुस्तत्तनयः शैवः सुप्रीत्या शिवपूजकः ॥ २९ ॥ अजश्शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत् । जातो दशरथो भूयो महाराजो विशे-

कशिपु तथा विरोचन और बलि ये शिवपूजक हैं ॥ १८ ॥ हिरण्याक्षके पुत्र और बाणासुर ये महाशैव हुए हैं, हे तात ! वृषपर्वा दनु और दानव शिवपूजक हुए हैं ॥ १९ ॥ शेष वासुकि तक्षक तथा दूसरे भी बड़े २ नाग और गरुड़ आदि पक्षी शिवभक्त हैं ॥२०॥ हे मुनीश्वर ! पृथ्वी पर वंशको प्रवृत्त करने वाले सूर्य और चन्द्र ये दोनों देवता अपने वंशजोंसहित शिव की सेवामें परायण हैं ॥ २१ ॥ हे मुने ! शिवका वेष धारण कर स्वायंभुव आदि मनु विशेषरूपसे शिवपूजा करते हैं ॥ २२ ॥ प्रियव्रत और उनके पुत्र, उत्तानपादका पुत्र और उनके वंशज राजे शिवपूजक हुए हैं ॥ २३ ॥ ध्रुव ऋषभ भरत और इनके नौ योगी भाई भी शिवपूजा करने वाले हुए हैं ॥ २४ ॥ तार्क्ष्य वैवस्वतके पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजे शिवपूजामें चित्तको लगाकर सदा सुख भोगते हैं ॥ २५ ॥ ककुत्स्थ मांधाता सगर मुचुकुन्द हरिश्चन्द्र और कल्माषपाद ये भी शंकरके उपासक हुए हैं ॥२६॥ भगीरथ आदि बहुतसे श्रेष्ठ राजे भी शिवभक्तोंका वेष धारण कर शिवपूजन करने वाले हुए हैं ॥ २७ ॥ देवताओंकी सहायता करने वाले महाराज खट्वांग शिवकी पार्थिव-मूर्तिका सदा पूजन करते थे ॥ २८ ॥ उनके पुत्र दिलीपने भी सदा शिवपूजन किया है और उनके पुत्र रघु भी शिवभक्त शिवपूजक शैव हुए हैं ॥ २९ ॥ और उनके पुत्र धर्मयुद्ध करने वाले अज भी शिव-

षतः ॥ ३० ॥ पुत्रार्थं पार्थिवीं मूर्तिं शैवीं दशरथो हि सः । समानर्च विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ॥ ३१ ॥ पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान् । ऋष्यशृङ्गमुनेराज्ञां संप्राप्य नृपसत्तमः ॥ ३२ ॥ कौसल्या तत्प्रिया मूर्तिं पार्थिवीं शांकरीं मुदा । ऋष्यशृङ्गसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ॥ ३३ ॥ सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा । पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ॥ ३४ ॥ शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुश्शुभंकरान् । महाप्रतापिनो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ॥ ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञस्स्वयं हरिः । चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ॥३६॥ कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मणः । शत्रुघ्नश्चैव कैकेया भरतश्चेति सुव्रताः ॥ ३७ ॥ रामस्ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् । भस्मरुद्राक्षधारी च विरजागममास्थितः ॥३८॥ तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने । ते सर्वे पार्थिवं लिंगं शिवस्य समपूजयन् ॥ ३९ ॥ सुद्युम्नश्च महाराजश्शैवो मुनिसुतो मुने । शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ॥४०॥ पार्थिवेशसमर्चातः पुनस्सोऽभूत्पुमान्वरः । मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं न्यवर्त्तत ॥ ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः । शिववेषधरो भक्त्या दुर्लभं मोक्षमास-

पूजक हुए हैं और महाराज दशरथ भी उनसे अधिक शिवभक्त हुए हैं ३० दशरथजीने वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे पुत्रके लिये पार्थिव शिवमूर्तिका विशेषरूपसे पूजन किया था ॥ ३१ ॥ और शिवकी भक्ति रखने वाले नृपसत्तम दशरथने ऋष्यशृंगकी आज्ञा पा पुत्रेष्टि यज्ञ किया था ॥३२॥ और उनकी प्रिया कौशल्याने भी ऋष्यशृंगकी आज्ञा पा पुत्रप्राप्तिके लिये शंकरकी पार्थिवमूर्तिका आनन्दपूर्वक पूजन किया था ॥ ३३ ॥ और हे मुनिसत्तम ! सुमित्राने और राजाकी प्रिया कैकेयीने भी सत्पुत्रकी प्राप्तिके लिये शिवका प्रीतिपूर्वक पूजन किया था ॥ ३४ ॥ हे मुने ! शिवके प्रसादसे उन्होंने महाप्रतापी शुभ कर्म करने वाले सन्मार्गगामी वीर पुत्र पाये थे ॥ ३५ ॥ और शिवकी आज्ञासे स्वयं विष्णु उस राजाके यहाँ उनकी पत्नियोंमें चार रूपोंमें प्रकट हुए थे ॥ ३६ ॥ हे सुव्रतों ! राम कौसल्याके पुत्र हुए, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके पुत्र हुए और कैकेयीके भरत हुए ॥ ३७ ॥ राम विरजागमका आश्रय ले भस्म और रुद्राक्ष धारण कर अपने भाइयोंसहित शिवपूजन करते थे ॥ ३८ ॥ हे मुने ! इनके वंशमें भी जो जो राजे हुए हैं वे अपने अनुयायियोंसहित शिवकी पार्थिव--मूर्तिका पूजन करते थे ॥ ३९ ॥ हे मुने ! शिवभक्त महाराज सुद्युम्न प्रियाके कारण शिवके शापसे सेवकों सहित नारी होगया था ॥ ४० ॥ पार्थिव शिवपूजन करनेसे वह फिर श्रेष्ठ पुरुष होगया था, वह एक मास तक पुरुष और एक मास तक स्त्री रहता

वान् ॥४२॥ पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजस्सुपूजकः । शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ॥ ४३ ॥ भरतस्तु महापूजां शिवस्यैव सदाकरोत् । नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ॥४४॥ ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् । अजीजनत्सुतान्पंच शिवधर्मपरायणान् ॥ ४५ ॥ तत्सुता यदुमुख्याश्च पंचापि शिवपूजकाः । शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥ ४६ ॥ अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चु शिवं हि ते । तद्वंश्या अन्यवंश्याश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ।४७। कृष्णेन च कृतं नित्यं बदरीपर्वतोत्तमे । पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥ ४८ ॥ प्रसन्नाद्भगवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः । सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शंकरात् ॥ ४९ ॥ प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरस्सदा । अन्ये च कार्ष्णिप्रवरास्साम्बाद्याश्शिवपूजकाः ॥ ५० ॥ जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा । निमिश्शैवश्च जनकस्तत्पुत्राश्शिवपूजकाः ॥ ५१ ॥ नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै । पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ॥ ५२ ॥ यतिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः । स्वयं व्याघ्रादिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो

था, इस प्रकार उसका स्त्रीत्व दूर हुआ था ॥ ४१ ॥ फिर वह राज्यत्याग कर भक्तिपूर्वक शैवोंका वेष धारण कर शिवधर्ममें परायण हो दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त हुआ था ॥ ४२ ॥ उसके पुत्र महाराज पुरूरवा भी देवदेव शिवकी अर्चना करते थे और उनके पुत्र भी शिवकी पूजा करते थे ॥ ४३ ॥ भरत भी शिवको सदा बड़ी भारी पूजा करते थे और नहुष भी शिवके परम भक्त थे और शिवकी अर्चना करते थे ॥ ४४ ॥ शिवपूजासे ययातिको सब मनोरथ प्राप्त हुए थे और उनके पाँच शिवधर्मपरायण पुत्र हुए थे ॥ ४५ ॥ उनके यदु आदि पाँचों पुत्र भी शिवपूजक थे, इन्होंने शिवपूजनके प्रभावसे सब मनोरथ पाये थे ॥ ४६ ॥ इनके वंश वाले और दूसरे वंश वालोंने अन्य भाग्यवानों भी हे मुने ! भोग और मोक्ष देने वाले शिवका पूजन किया है ४७ और स्वयं श्रीकृष्णने भी बदरी नामक उत्तम पर्वत पर सात मास तक शिव की पूजा की थी ॥ ४८ ॥ तब प्रसन्न हुए शंकरसे भगवान् विष्णुने अनेक दिव्य वर पाकर सकल जगत्को वशमें किया था ॥ ४९ ॥ हे तात ! इन के पुत्र प्रद्युम्न भी सदा शिवपूजा किया करते थे, कृष्णके साम्ब आदि दूसरे पुत्र भी शिवकी अर्चना किया करते थे ॥ ५० ॥ जरासंध और उसके वंशज राजे महाशैव हुए हैं, निमि और जनक भी शैव हुए हैं, और इनके पुत्रोंने भी शिवका अर्चन किया है ॥ ५१ ॥ वीरसेनके पुत्र नलने भी शिव की पूजा की है, यह पहिले जन्ममें भील था और वनमें मुसाफिरोंकी रक्षा करता था ॥ ५२ ॥ पहिले उसने शिवके समीप रह यतिकी रक्षा की थी.

वृषात् ॥ ५३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् । चक्रवर्ती महाराजो दमयंतीप्रियोऽभवत् ॥५४॥ इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवतानघ । शांकरं चरितं दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ५५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां देवर्षिनृपशैववृत्त-वर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ऋषय ऊचुः । धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव । यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ॥१॥ बहुभिश्चर्षिभिस्सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् । सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ॥२॥ केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् । कुशलश्शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥ भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येन व्रतेन वै । तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ सूत उवाच । सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं कथयामि यथाश्रुतम् ॥५॥ यथा भवद्भिः पृच्छ्यते तथा पृष्टं हि वेधसा। हरिणा शिवया चैव तथा वै शंकरं प्रति ॥ ६ ॥ कस्मिंश्चित्समये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने । केन व्रतेन सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं च यच्छसि ॥ ७ ॥ इति पृष्टस्तदा

और रात्रिमें स्वयं उसको व्याघ्र आदि खागए अतः वह धर्मपूर्वक मरा था ॥ ५३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे वह भील चक्रवर्ती महाराज नल हुआ था और उसकी प्रिया दमयन्ती हुई थी ॥ ५४ ॥ हे निष्पाप तात ! यह आपसे आपके बूझनेके अनुसार दिव्य शिवचरित्र कह दिया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५५ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

ऋषियोंने कहा, कि हे तात ! आप धन्य हैं और कृतकृत्य हैं, आप हमें महेश्वरकी शुभ कथा सुनाते हैं, अतः आपका जीवन सफल है ॥१॥ हे सूतजी ! बहुतसे ऋषियोंने अच्छी बातें सुनलीं तब भी हमारा सन्देह अभी नहीं गया अतः आपसे यह कहते हैं, कि-॥२॥ "शिवजी किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर शुभ सुख देते हैं" आप शिवकृत्यमें चतुर हैं, इसलिये हम आपसे यह बात बूझ रहे हैं ॥ ३ ॥ भक्त जिस व्रतसे भोग और मोक्ष पाते हों, उसका आप स्पष्टरूपसे वर्णन करिये, हे व्यासशिष्य ! आपको प्रणाम है ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे श्रेष्ठ ऋषियों ! आपके चित्तमें करुणा भरी हुई है, अतः आपने अच्छी बात बूझी, मैं शिवके चरणकमलों का स्मरण कर जैसा सुना है तैसा वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ जिस प्रकार आप प्रश्न कर रहे हैं, ब्रह्मा हरि और पार्वतीने शंकरसे बूझा था ॥ ६ ॥ एक समय इन्होंने परमात्मा शिवसे बूझा, कि—आप किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भोग और मोक्ष प्रदान किया करते हैं ॥ ७ ॥ विष्णु आदिके इस

तैस्तु हरिणा तेन वै तदा। तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम् ॥ ८ ॥ शिव उवाच। भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदानि च। मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दश-संख्यानि तानि वै ॥ ९ ॥ दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः। तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैस्तदा ॥ १० ॥ प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम्। कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ॥ ११ ॥ एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णो हि भोजनम्। असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे ॥१२॥ त्रयोदश्यां सितायां तु कर्तव्यं निशि भोजनम्। असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ॥१३॥ निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे। उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिवतत्परैः ॥ १४ ॥ व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः। यथा-शक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥ १५ ॥ व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्वि-जन्मभिः। व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः ॥ १६ ॥ मुक्तिमार्ग-प्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति। मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम् ॥ १७ ॥ शिवार्चनं रुद्रजप उपवासश्शिवालये। वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा सनातनी अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी। शिवतुष्टिकरं चैतन्नात्र कार्या विचा-

---

प्रकार बूझने पर (शिवने जो उत्तर दिया था) श्रोताओंके पापोंको दूर करने वाले उस व्रतको मैं आज कहता हूँ ॥ ८ ॥ शिवजीने कहा, कि-भोग और मोक्ष देने वाले मेरे अनेक व्रत हैं परन्तु इनमें दश मुख्य समझने चाहिये ॥ ९ ॥ जाबाल-श्रुतिके पारगामी दश शैवव्रतोंका वर्णन करते हैं, द्विजोंको इन व्रतोंको यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ १० ॥ प्रत्येक अष्टमीके दिन यत्नपूर्वक रात्रिको भोजन करना चाहिये और हे हरे! कालाष्टमीके दिन विशेष रूपसे भोजन त्याग देना चाहिये ॥ ११ ॥ हे विष्णो! शुक्ल-पक्षकी एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये और कृष्णपक्षकी एका-दशीको रात्रिमें मेरा पूजन करके भोजन करना चाहिये ॥ १२ ॥ शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें रात्रिमें भोजन करे और कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें शिव-व्रत करने वालोंको भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ हे विष्णो! सब समय दोनों पक्षोंमें सोमवारके दिन शिवभक्तोंको यत्नपूर्वक रात्रिमें ही भोजन करना चाहिये ॥ १४ ॥ और इन व्रतोंमें व्रतकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति शिव-भक्त श्रेष्ठ द्विजोंको जिमाना चाहिये ॥ १५ ॥ द्विजोंको इन व्रतोंका नियम-पूर्वक पालन करना चाहिये, इन व्रतोंको छोड़नेसे द्विज तस्कर होते हैं ॥१६॥ मुक्तिमार्गमें प्रवीण पुरुष नियमपूर्वक इन व्रतोंको करें, मुक्ति देने वाली चार बातें कही हैं ॥ १७ ॥ शिवपूजन, रुद्रजप, शिवालयमें उपवास और वारा-णसीमें मरण, यह सनातनी मुक्ति है ॥ १८ ॥ सोमवारकी अष्टमी और

रणा ॥१९॥ चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे। तस्मात्तदेव कर्त्तव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥ २० ॥ एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां हितावहम्। एतद्व्रतन्तु सर्वेषां धर्मसाधनमुत्तमम् ॥२१॥ निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणां तथा। वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रबालानां तथा हरे ॥ २२ ॥ दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च। शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद् व्रतं वरम् ॥२३॥ माघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा सा च कीर्तिता। निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटिविनाशिनी ॥ २४ ॥ तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातरारभ्य केशव। श्रूयतान्तन्मनो दत्त्वा सुप्रीत्या कथयामि ते ॥ २५ ॥ प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः। समाचरेन्नित्यकृतं स्नानादिकमतन्द्रितः ॥ २६ ॥ शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि। नमस्कृत्य शिवं पश्चात्संकल्पं सम्यगाचरेत् ॥ २७ ॥ देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते। कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥ २८ ॥ तव प्रभावाद् देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति। कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ॥ २९ ॥ एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत्। सुस्थले चैव यल्लिङ्गं

कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, ये शिवको प्रसन्न करने वाले योग हैं, इनमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे हरे ! इन चारोंमें शिवरात्रिका व्रत बलवान् है, अतः भोग और मोक्षरूप फल चाहने वालोंको यही व्रत करना चाहिये ॥ २० ॥ इस व्रतकी समान और कोई व्रत मनुष्योंका हित नहीं कर सकता, यह व्रत धर्मका उत्तम साधन है ॥ २१ ॥ यह श्रेष्ठ व्रत निष्काम सकाम सकल वर्ण और आश्रमके पुरुषोंका स्त्रियोंका तथा बालकोंका दासोंका तथा दासियोंका देवताओंका तथा हे हरे ! अन्य देहधारियोंका भी हित करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ फाल्गुनके कृष्णपक्षकी यह तिथि परम श्रेष्ठ कही है, यह अर्धरात्रिव्यापिनी लेनी चाहिये, इससे करोड़ों हत्याएँ दूर होजाती हैं ॥ २४ ॥ हे केशव ! इस दिन प्रातःकालसे लेकर जो काम करना चाहिये उसको आप मन लगा कर सुनें, मैं आपकी प्रीतिवश वर्णन करता हूँ ॥२५॥ बुद्धिमान् पुरुष तन्द्राको त्याग प्रातःकाल उठ परम आनन्दके साथ स्नान आदि नित्य कृत्य करे ॥ २६ ॥ फिर शिवालयमें जा यथाविधि पूजन कर शिवको प्रणाम करे और फिर संकल्प करे, कि--॥ २७ ॥ हे देवदेव महादेव नीलकण्ठ ! आपको प्रणाम है, हे देव ! मैं आपके शिवरात्रिव्रतको करना चाहता हूँ ॥ २८ ॥ हे देवेश ! आपकी कृपासे यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो तथा काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें ॥ २९ ॥ इस प्रकार संकल्प करके पूजाकी सामग्री लावे और शास्त्रोंमें जो शिवलिंग प्रसिद्ध हो उस सुन्दर स्थल पर रात्रमें स्वयं जावे और उत्तम विधिके साथ शिवके दाहिनो

प्रसिद्धं चागमेषु वै ॥ ३० ॥ रात्रौ तस्य स्वयं गत्वा संपाद्य विधिमुत्तमम् । शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे ॥ ३१ ॥ निधाय चैव तद् द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ । पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ॥ ३२ ॥ परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वासश्शुभन्तथा । आचम्य च त्रिवारं हि पूजारम्भं समाचरेत् ॥ ३३ ॥ यस्य मन्त्रस्य यद् द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत् । अमन्त्रकं न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च ॥३४॥ गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितः । पूजनं प्रथमे यामे कृत्वा मन्त्रं जपेद् बुधः ॥ ३५ ॥ पार्थिवं च तदा श्रेष्ठं विदध्यान्मन्त्रवान्यदि । कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्चात्स्थापनमाचरेत् । स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद् वृषभध्वजम् ॥३७॥ माहात्म्यं व्रतसंभूतं पठितव्यं सुधीमता । श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया ३८ चतुर्ष्वपि च यामेषु मूर्तीनां च चतुष्टयम् । कृत्वावाहनपूर्वं हि विसर्गविधि वै क्रमात् ॥ ३९ ॥ कार्यं जागरणं प्रीत्या महोत्सवसमन्वितम् । प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिवम् ॥४०॥ ततः संप्रार्थयेच्छम्भुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः । कृतसंपूर्णव्रतको नत्वा तं च पुनः पुनः ॥४१॥ नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया । विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम् ॥४२॥ व्रतेनानेन देवेश यथा-

ओर अथवा पश्चिमकी ओर शुभ-स्थलमें पूजाके द्रव्यको शिवके समीप रख, फिर विधिपूर्वक स्नान करे, फिर वह श्रेष्ठ पुरुष शुभ वस्त्र पहिन, अन्तर्वस्त्र भी शुभ पहिर कर तीन वार आचमन कर पूजाका आरंभ करे ।३०-३३। जिस द्रव्यका जो मन्त्र हो उससे पूजा करे, शिवका पूजन विना मंत्रके नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान पुरुष प्रथम प्रहरमें गाना बजाना और नृत्यके साथ शिव पूजन करके मंत्रका जप करे ॥ ३५ ॥ फिर मंत्रवान् पुरुष पार्थिव शिवलिंगको स्थापित करे और नित्यकृत्य करनेके पीछे पार्थिव शिवलिंगका पूजन करे ॥ ३६ ॥ पहिले पार्थिव लिंग बना कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उसको स्थापित कर वृषभध्वजको सन्तुष्ट करे ॥ ३७ ॥ और बुद्धिमान् पुरुष व्रतसे होने वाले माहात्म्यको पढ़े और श्रेष्ठ भक्त व्रत पूर्ण होने की कामनासे उसको सुने ॥ ३८ ॥ चारों प्रहरोंमें चारों मूर्तियोंका आवाहन और विसर्जन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और प्रीतिपूर्वक महोत्सवके साथ जागरण करे फिर प्रातःकाल स्नानकर शिवजीको प्रतिष्ठित कर शिवपूजन करे ॥ ४० ॥ फिर कंधा झुका हाथ जोड़ शंभुकी प्रार्थना करे और व्रतको पूर्ण करके उनको वारम्बार प्रणाम करे ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् हे महादेव ! आपकी आज्ञा लेकर मैंने जो व्रत किया था, वह उत्तम व्रत पूर्ण होगया अतः अब मैं विसर्जन करता हूँ ॥ ४२ ॥ हे देवेश ! यथाशक्ति किये हुए इस व्रत

शक्तिकृतेन च । सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४३ ॥ पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्त्वा दद्याद्दानं यथाविधि । नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ॥ ४४ ॥ यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः । भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ ४५ ॥ यामे यामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैर्हरे । शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते ॥ ४६ ॥ प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे । पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ४७ ॥ पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हरस्सदा । तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ॥४८॥ तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां ददेत वै । पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद् बुधः ॥ ४९ ॥ शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया । पूजयेच्च शिवं तत्र निर्गुणं गुणरूपिणम् ॥ ५० ॥ गुरुदत्तेन मन्त्रेण पूजयेद् वृषभध्वजम् । अन्यथा नाममन्त्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ॥ ५१ ॥ चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः । कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शम्भोः परात्मनः ॥ ५२ ॥ पुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः । अष्टभिर्नाममन्त्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे ॥ ५३ ॥ भवः शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा । उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ॥ ५४ ॥ श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यन्तैर्नामभिः पूजयेच्छिवम् । पश्चाद् धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ॥ ५५ ॥ आद्ये यामे

से आप सन्तुष्ट हूजिये, हे शर्व ! मुझ पर कृपा करिये ॥ ४३ ॥ फिर शिव को पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर यथाविधि दान देवे और शिवको प्रणाम कर नियम का विसर्जन करे ॥ ४४ ॥ और शक्तिके अनुसार शिवभक्त द्विजोंको और संन्यासियोंको विशेषरूपसे भोजन करा कर और उनको सन्तुष्ट कर अपने आप भोजन करे ॥ ४५ ॥ हे हरे ! श्रेष्ठ भक्तोंको प्रत्येक प्रहरमें विशेषतः शिवरात्रिमें जिस प्रकार पूजा करनी चाहिये उसका मैं वर्णन करता हूँ ४६ हे हरे ! पहिले प्रहरमें स्थापित किये हुए शिवलिंगका परमभक्तिके साथ उपचारोंसे पूजन करे ॥ ४७ ॥ पहिले पाँच द्रव्योंसे हरका पूजन करे और पृथक् पृथक् द्रव्योंको उनके मंत्रोंसे चढ़ावे ॥ ४८ ॥ उस द्रव्यको समर्पण कर जलधारा चढ़ावे, बुद्धिमान् पुरुष फिर जलधाराओंसे ही द्रव्यका उत्तारण करे ॥ ४९ ॥ एकसौ आठ वार मंत्र पढ़ जलधारासे निर्गुण गुणरूपी शिव का पूजन करे ॥ ५० ॥ गुरुके बताये हुए मंत्रसे शिवका पूजन करे अन्यथा नाममन्त्रसे सदाशिवका पूजन करे ॥ ५१ ॥ परमात्मा शंभुकी पूजा विचित्र चन्दन, अखण्डित चावल और काले तिलोंसे करनी चाहिये ॥५२॥ कमल और कनेरके पुष्पोंसे शिवपूजन करना चाहिये, शंकर पर आठ नाम–मन्त्रों से पुष्प चढ़ाने चाहियें ॥ ५३ ॥ वे मंत्र यह हैं, भव शर्व रुद्र पशुपति उग्र महान् भीम और ईशान ॥ ५४ ॥ इन नामोंके पहिले श्री लगावे और अन्त

च नैवेद्यं पक्वान्नं कारयेद् बुधः ।।अर्घं च श्रीफलं दत्त्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ नमस्कारं ततो ध्यानं जपः प्रोक्तो गुरोर्मनोः । अन्यथा पञ्चवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम् ॥ ५७ ॥ धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ सुजलैस्तर्पणं चरेत् । पञ्चब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ॥ ५८ ॥ महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद्यामो भवेदिह । ततः पूजाफलं तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत् ॥ ५९ ॥ पुनर्द्वितीये यामे च संकल्पं सुसमाचरेत् । अथवैकदैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम् ॥ ६० ॥ द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजां कृत्वा धारां समर्पयेत् । पूर्वतो द्विगुणं मन्त्रं समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ॥६१॥ पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम् । बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम्॥ अर्घ्यं च बजपूरेण नैवेद्यं पायसस्तथा । मन्त्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन ॥ ६३ ॥ ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत् । अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि ॥ ६४ ॥ यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजनं चरेत् । यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि च ॥ ६५ ॥ धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि । नैवेद्यापूपकैर्विष्णो शाकैर्नानाविधैरपि ॥ ६६ ॥ कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारात्रिकविधिं चरेत् । अर्घ्यं च दाडिमं दद्याद् द्विगुणं जपमाचरेत् ॥ ६७ ॥

में चतुर्थी लगाकर शिवपूजन करे, फिर धूप दीप नैवेद्य चढ़ावे ॥ ५५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष पहिले प्रहरमें पक्वान्नका नैवेद्य बनावे और अर्घ श्रीफल और ताम्बूल निवेदन करे ॥ ५६ ॥ फिर प्रणाम ध्यान और गुरुके बताये मंत्रका जप करे अन्यथा पाँच अक्षरों वाले (नमः शिवाय) मंत्रसे शंकरको सन्तुष्ट करे ॥ ५७ ॥ फिर धेनुमुद्रा कर सुन्दर जलसे तर्पण करे फिर यथाशक्ति पाँच ब्राह्मणोंको जिमानेका विचार करे ॥ ५८ ॥ और जब तक प्रहर पूरा हो महोत्सव करे, फिर पूजाका फल शिवके अर्पण कर विसर्जन करे ॥५९॥ फिर दूसरे प्रहरमें संकल्प पढ़े अथवा एक बार ही संकल्प पढ़ कर वैसे ही पूजा करे पहिले द्रव्योंसे पूजन करके जलधारा करे और पहिलेसे दुगने मन्त्रोंका उच्चारण कर शिवका पूजन करे ॥ ६१ ॥ पहिले तिल जौं और कमलोंसे शिवका पूजन करे फिर बिल्वपत्रोंसे शिवका विशेषरूपसे पूजन करे ॥ ६२ ॥ बिजौरे नीबूके साथ अर्घ देवे नैवेद्य और खीर चढ़ावे और हे जनार्दन ! पहिलेसे दुगना मन्त्र जपे ॥ ६३ ॥ फिर ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे और भी सब बातें दूसरे प्रहरके पूर्ण होने तक करे ६४ तीसरा प्रहर आने पर पहिलेकी समान पूजा करे और जौंके स्थानमें गेहूँ और आकके फूल लेवे ॥६५॥ और हे विष्णो ! अनेक प्रकारकी धूप देवे, अनेक प्रकारके दीपक प्रज्वलित करे, नैवेद्य गुलगुले और अनेक प्रकारके शाक शिव के अर्पण करे ॥ ६६ ॥ इस प्रकार करनेके अनन्तर कपूरसे आरती करे

ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम् । उत्सवं पूर्ववत्कुर्याद्यावद्यामावधिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ यामे चतुर्थे संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् । प्रयोगादि पुनः कृत्वा पूजां विधिवदाचरेत् ॥ ६९ ॥ माषैः प्रियंगुभिर्मुद्गैस्सप्तधान्यैस्तथाथवा । शंखीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ७० ॥ नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि । अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ॥ ७१ ॥ अर्घं दद्यात्कदल्याश्च फलेनैवाथवा हरे । विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घं शिवाय च ॥ ७२ ॥ पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मन्त्रजापं नरोत्तमः । संकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद्बुधः ॥ गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः । महोत्सवैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ॥ ७४ ॥ उदये च तथा जाते पुनस्स्नात्वार्चयेच्छिवम् । नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ॥ ७५ ॥ नानाविधानि दानानि भोज्यं च विविधन्तथा । ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया ॥७६॥ शंकराय नमस्कृत्य पुष्पाञ्जलिमथाचरेत् । प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मन्त्रैरेतैर्विचक्षणः ॥ ७७ ॥ तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड । कृपानिध इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ७८ अज्ञानाद्यदि वाज्ञानाज्जपपूजादिकं मया । कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद

और अनारका अर्घ देवे और दुगना जप करे ॥ ६७ ॥ फिर दक्षिणासहित ब्रह्मभोजका संकल्प करे और पहिलेकी समान प्रहरकी समाप्ति तक उत्सव करे ॥६८॥ फिर चौथा प्रहर आने पर (तीसरे प्रहरको पूजाका) विसर्जन करे और फिर प्रयोग आदि कर विधिपूर्वक पूजन करे ॥ ६९ ॥ उड़द, राई, मूँग अथवा सतनजा, शंखीपुष्प और बेलपत्रोंसे परमेश्वरकी पूजा करे ॥ ७० ॥ और अनेक प्रकारके मधुर नैवेद्य चढावे अथवा उड़दके पदार्थोंसे शिवको सन्तुष्ट करे ॥ ७१ ॥ हे हरे ! केलेकी फलीके साथ अर्घ देवे अथवा अनेक प्रकारके फल शिवके निमित्त अर्घमें देवे । ७२ ॥ नरोत्तम पहिलेसे दुगने मन्त्रका जप करे और यथाशक्ति ब्रह्मभोजका संकल्प करे ७३ गाना बजाना और नृत्यसे समयको भक्तिपूर्वक वितावे इस प्रकार अरुणोदय तक भक्तोंके साथ परम उत्सव करे ७४ फिर उदय होने पर स्नान करके अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्रियोंसे शिवपूजन करे, फिर अपना अभिषेक करे ॥ ७५ ॥ फिर प्रहरोंकी संख्याके अनुसार और ब्राह्मणोंको और संन्यासियोंको अनेक प्रकारके दान और भोजन देवे । ७६ ॥ फिर शंकर की प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि समर्पण करे फिर कुशल पुरुष इन मन्त्रोंसे स्तुति करता हुआ प्रार्थना करे ॥ ७७ ॥ हे मृड ! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण आपमें ही अटके रहते हैं, मेरा चित्त आपमें लगा रहता है, हे कृपानिधे ! यह जान कर आप जैसा उचित समझें तैसा करें ॥ ७८ ॥ मैंने अज्ञानपूर्वक वा ज्ञान-

मे ॥ ७९ ॥ अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च । तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ॥ ८० ॥ कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा । माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं न हि देवता ॥ ८१ ॥ पुष्पाञ्जलिं समर्प्यैवं तिलकाशिष एव च । गृह्णीयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च ततश्शम्भुं विसर्जयेत् ॥८२॥ एवं व्रतं कृतं येन तस्माद् दूरो हरो न हि । न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम ॥८३॥ अनायासतया चेद्धि कृतं व्रतमिदम्परम् । तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा ॥ ८४ ॥ प्रतिमासं व्रतं चैव कर्तव्यं भक्तितो नरैः । उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगफलं लभेत् ॥ ८५ ॥ व्रतस्य करणान्नूनं शिवोऽहं सर्वदुःखहा । दद्मि मुक्तिं च भुक्तिं च सर्वं वै वाञ्छितं फलम् ॥८६॥ सूत उवाच । इति शिववचनं निशम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम । तदनु व्रतमुत्तमं जनेषु समचरदात्महितेषु चैतदेव ॥ ८७ ॥ कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतन्त्विदम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ॥ ८८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमनिरूपणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

पूर्वक जो जप पूजा आदि की है, हे भूतनाथ ! उसको आप कृपानिधि होनेसे ज्ञानपूर्वक की हुई समझ कर मुझ पर प्रसन्न हूजिये ॥ ७९ ॥ इस उपवाससे जो फल प्राप्त होता है उससे सुखदायक शंकरदेव प्रसन्न हों ॥ ८० ॥ हे महादेव ! मेरे कुलमें आपका भजन सदा होता रहे, जिस कुलमें आप देवता न हों उस कुलमें मेरा जन्म न हो ॥ ८१ ॥ इस प्रकार पुष्पाञ्जलि समर्पण कर ब्राह्मणोंसे तिलक और आशीर्वाद ग्रहण करे, तदनन्तर शंभुका विसर्जन करे ॥ ८२ ॥ जो इस प्रकार व्रतको कर लेता है, हर उससे दूर नहीं रहते, इस व्रतका फल मैं नहीं कह सकता, मैं उसके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं समझता ॥ ८३ ॥ अनायास ही यह श्रेष्ठ व्रत होजाय तो उस पुरुषकी मुक्तिका बीज बोया जाचुका, इसमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ८४ ॥ मनुष्योंको भक्तिपूर्वक प्रतिमास यह व्रत करना चाहिये फिर उद्यापनको विधिके अनुसार कर सांगोपांग फल पाता है ॥ ८५ ॥ इस व्रतके करनेसे सब दुःखोंका नाश करने वाला मैं शिव भोग और मोक्ष आदि सब वाञ्छित फल देता हूँ ॥ ८६ ॥ सूतजीने कहा, कि विष्णु शिवके इस अद्भुत हितकारी वचनको सुन अपने धामको चले आये और इस व्रतका आत्महितैषी मनुष्योंके साथ पालन करने लगे ॥८७॥ एक समय केशवने इस भोग और मोक्ष देने वाले दिव्य शिवरात्रिव्रतका नारदजीसे वर्णन किया ॥ ८८ ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

ऋषय ऊचुः । उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च । यत्कृत्वा शंकरस्साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥१॥ सूत उवाच । श्रूयतामृषयो भक्त्या तदुद्यापनमादरात् । यस्यानुष्ठानतः पूर्णं व्रतं भवति तद् ध्रुवम् ॥ २ ॥ चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् । एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् ॥ ३ ॥ शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्यं संपाद्य वै विधिम् । शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥ ततश्च कारयेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः । गौरीतिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ५ ॥ तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतो भद्रमण्डलम् । अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥ कुम्भास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया । सवस्त्रास्सफलास्तत्र दक्षिणासहिताः शुभाः ॥७॥ मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः । मध्ये चैकश्च संस्थाप्यः सौवर्णो वापरो घटः ॥ ८ ॥ तत्रोमासहितां शम्भुमूर्तिन्निर्माय हाटकीम् । पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्त्याथवा व्रती ॥ ९ ॥ निधाय वामभागे तु शिवामूर्तिमतन्द्रितः । मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ॥ १० ॥ आचार्यं वरयेत्तत्र चर्त्विग्भिस्सहितं शुचिम् । अनुज्ञातश्च तैर्भक्त्या शिवपूजां समाचरेत् ॥ ११ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूजां

ऋषियोंने कहा, कि--जिसको करनेसे साक्षात् शंकर भगवान् प्रसन्न होते हैं, उस शिवरात्रि व्रतके उद्यापनका आप वर्णन करिये ॥ १ ॥ सूतजीने कहा, कि--हे ऋषियो ! भक्ति और आदरके साथ उद्यापनका वर्णन सुनिये, इसका अनुष्ठान करने पर ही व्रत पूर्ण होता है ॥ २ ॥ शिवरात्रिका शुभ व्रत चौदह वर्ष तक करना चाहिये, त्रयोदशीके दिन एक समय भोजन करना चाहिये और चतुर्दशीमें उपोषण करे ॥ ३ ॥ शिवरात्रिका व्रत आने पर नित्यकर्म कर शिवालयमें जाकर यथाविधि पूजा करे ॥ ४ ॥ तहाँ पर त्रिलोकामें गौरीतिलक नामसे प्रसिद्ध दिव्य मण्डलको यत्नपूर्वक बनावे ॥५॥ उसके मध्यमें दिव्य लिंगतोभद्रमण्डल बनावे अथवा मण्डपके भीतर सर्वतोभद्र बनावे ॥ ६ ॥ तहाँ प्राजापत्य व्रतके अनुसार वस्त्र फल दक्षिणासहित शुभ कुम्भ रखे ॥ ७ ॥ और उनको मण्डलकी करवटोंमें रखे मध्यमें एक सुवर्णका घट रखे वा एक दूसरा घट रखे ॥ ८ ॥ उसमें व्रत करने वाला पुरुष उमा और शंभुकी सुवर्णकी पल वा आधे पलकी मूर्ति रखे अथवा शक्तिके अनुसार सुवर्णकी मूर्ति बनावे ॥ ९ ॥ रात्रिके समय तन्द्रारहित हो बाईं ओर शिवाकी मूर्ति रखे और मेरो मूर्तिको दाहिनी ओर रख कर पूजन करे ॥ १० ॥ और ऋत्विजों तथा पवित्र आचार्यका तहाँ वरण करे और उनके आज्ञा देने पर भक्तिपूर्वक पूजनका आरंभ करे ॥११॥ व्रती पुरुष रात्रिमें प्रहरोंकी पूजा करता हुआ जागरण करे और गान तथा नृत्य

यामोद्भवां चरन् । रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती ॥ १२ ॥ एवं संपूज्य विधिवत्संतोष्य प्रातरेव च । पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि ॥१३॥ यथाशक्ति विधानं च प्राजापत्यं समाचरेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ॥ १४ ॥ ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालंकारभूषणैः । अलंकृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ॥१५॥ गां सवत्सां विधानेन पयोऽस्करसंयुताम् । उक्त्वा-चार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ॥ १६ ॥ ततस्सकुम्भां तन्मूर्ति सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् । सर्वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ॥ १७ ॥ ततः संप्रार्थ-येद्देवं महेशानं महाप्रभुम् । कृतांजलिर्नतस्कन्धस्सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ॥ १८ ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल । व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि ॥१९॥ मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव । न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया । कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर ॥ २१ ॥ एवं पुष्पांजलिं दत्वा शिवाय परमात्मने । नमस्कारं ततः कुर्या-त्प्रार्थनां पुनरेव च ॥ २२ ॥ एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते । मनोऽभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥२३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवरात्रिव्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

में सारी रात्रि बिता देवे ॥ १२ ॥ इस प्रकार विधिके अनुसार पूजन कर सन्तुष्ट कर प्रातःकालके समय पूजा करके विधिपूर्वक होम करे ॥ १३ ॥ यथाशक्ति प्राजापत्य विधान करे, ब्राह्मणोंको प्रेमपूर्वक भोजन करावे और भक्तिपूर्वक दान देवे ॥ १४ ॥ और ऋत्विजोंको तथा उनकी पत्नियोंको वस्त्र अलंकार आदिसे सजा कर विधानके साथ पृथक् पृथक् दान देवे १५ और झूल आदिसे सजी हुई बछड़े सहित गौको "शिव मुझ पर प्रसन्न हो" कह कर आचार्यको देवे ॥ १६ ॥ फिर वस्त्र और घटसहित सब अलंकारों से विभूषित शिवमूर्तिको वृषभ पर रख आचार्यको देवे ॥ १७ ॥ फिर महा-प्रभु शंकर देवकी प्रीतिपूर्वक गद्गद अक्षरोंमें हाथ जोड़ कंधा झुका कर प्रार्थना करे ॥ १८ ॥ हे शरणागतवत्सल देवदेव महादेव ! हे देवेश ! इस व्रतसे मेरे ऊपर कृपा करिये ॥ १९ ॥ हे शिव ! मैंने भक्तिके अनुसार यह व्रत किया है, हे शंकर ! यह न्यून हो तो आपकी कृपासे पूर्ण होवे ॥२०॥ हे शङ्कर ! मैंने ज्ञान वा अज्ञानपूर्वक जो जप पूजा आदि की है वह आपकी कृपासे सफल होवे ॥२१॥ इस प्रकार परमात्मा शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पण कर फिर प्रणाम और प्रार्थना करे ॥ २२ ॥ जो इस प्रकार व्रत कर लेता है, उसके लिये कोई कमी नहीं रहती और वह मनके अनुकूल सिद्धिको पाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

ऋषय ऊचुः । सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः । विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम् ॥ १ ॥ कृतं पुरा च केनेह सूतैतद्व्रतमुत्तमम् । कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ सूत उवाच । श्रूयतामृषयस्सर्वे कथयामि पुरातनम् । इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३ ॥ पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद् गुरुद्रुहः । कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ॥ ४ ॥ निरन्तरं वनं गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः । चौर्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन् ॥ ५ ॥ बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि । महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना । न दुरात्मा स जानाति महद्वनविवासकृत् ॥ ७ ॥ एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा । प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर ॥ ८ ॥ इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम् । जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम् ॥ ९ ॥ दैवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचिदेव हि । अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यस्स वै दुःखमुपागतः ॥ १० ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन । बालाश्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥ मदीयं वै कलत्रं च तस्याः किंचिद्-

---

ऋषियोंने कहा, कि—हे सूतजी ! आपके इस वचनको सुन कर हम परम आनन्दित हुए हैं, अब आप प्रीतिपूर्वक इस व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १ ॥ हे सूत ! इस व्रतको पहिले किसने किया है और अज्ञानपूर्वक करने पर भी क्या किसीने उत्तम फल पाया है ॥ २ ॥ सूतजीने कहा, कि—हे सकल ऋषियों ! सुनो ! मैं निषादके सब पापोंको दूर करने वाले प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥ पहिले गुरुद्रुह नामका एक बलवान् भील वनमें रहता था वह कुटुम्बी बली क्रूर और क्रूरकर्म करने वाला था ॥ ४ ॥ वह वनमें निरन्तर घूम कर सदा मृगोंको मारता रहता था और वह वनमें रहता हुआ अनेक प्रकारसे चोरी भी करता रहता था ॥ ५ ॥ बालकपनसे उसने कोई शुभ कर्म नहीं किया था, इस प्रकार उस दुरात्माको वनमें बहुतसा समय बीत गया ॥ ६ ॥ एक समय शोभन शिवरात्रि आगई, परन्तु महावनमें रहने वाले उस दुरात्माको इस बातका कुछ पता न था ॥ ७ ॥ इस समय भीलके माता पिता और स्त्रीने क्षुधित होकर भीलसे प्रार्थना की, कि—हे वनेचर ! हमें भोजन दो ॥ ८ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करने पर वह भील फुर्तीसे धनुष उठा चल दिया और मृगोंको मारनेके लिये सारे वनमें घूमा ॥ ९ ॥ परन्तु दैवयोगसे उसको कोई मृग न मिला और सूर्य अस्त होगया, तब वह दुःखित हुआ ॥ १० ॥ कि—क्या करना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये, आज तो कुछ मिला ही नहीं, घरमें जो बालक हैं और माता पिता

भविष्यति । किञ्चिद् गृहीत्वा हि मया गन्तव्यं नान्यथा भवेत् ॥ १२ ॥ इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः । जलावतरणं यत्र तत्र गत्वा स्वयं स्थितः अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति । तं हत्वा स्वगृहं प्रीत्या यास्यामि कृतकार्यकः ॥ १४ ॥ इति मत्वा स वै वृक्षमेकं बिल्वेतिसंज्ञकम् । समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ॥ १५ ॥ कदागमिष्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः । इति बुद्धिं समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ॥ १६ ॥ तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागता । तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ॥ १७ ॥ तां दृष्ट्वा च तदा तेन तद्वधार्थमथो शरः । संहृष्टेन द्रुतं विप्रा धनुषि स्वे हि संदधे ॥ १८ ॥ इत्येवं कुर्वतस्तस्य जलं बिल्वदलानि च । पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिंगमभूत्ततः ॥ १९ ॥ यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च । तन्महिम्ना हि तस्यैव पातकं गलितन्तदा ॥ २० ॥ तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वा सा हरिणी भिया । व्याधं दृष्ट्वा व्याकुला हि वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ मृग्युवाच । किं कर्तुमिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः । तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ व्याध उवाच । कुटुम्बं क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वां तर्पया-

---

हैं उनका आज क्या होगा ॥ ११ ॥ और मेरी जो घरवाली है उसकी भी आज क्या दशा होगी, कुछ लेकर ही मुझे घर जाना चाहिये, वैसे काम नहीं चलेगा ॥ १२ ॥ यह विचार कर वह व्याध जलाशयके समीप पहुँचा और जहाँ घाट था, तहाँ जाकर खड़ा होगया ॥ १३ ॥ कोई जीव यहाँ (जल पीनेके लिये) अवश्य ही आवेगा, मैं उसको मार कर कृतकार्य हो प्रीतिपूर्वक घरको जाऊँगा ॥ १४ ॥ वह भील यह विचार कर जल ले एक बेलके पेड़ पर चढ़ कर बैठ गया ॥ १५ ॥ कब कोई जीव आवेगा और कब मैं उसको मारूँ, यह विचारता हुआ भूखा प्यासा वह तहाँ बैठा रहा ॥ १६ ॥ कि-रात्रिके प्रथम प्रहरमें एक हिरनी तहाँ आई, वह प्याससे व्याकुल हो चकित हो उछल कूद रही थी ॥ १७ ॥ उस हिरनीको देख कर व्याधा प्रसन्न होगया, और हे विप्रो ! उसने उसको मारनेके लिये अपने धनुष पर शीघ्रतासे बाण चढ़ाया ॥ १८ ॥ उसके ऐसी चेष्टा करते समय जल और बिल्वपत्र नीचेको गिर पड़े, तहाँ एक शिवलिंग था ॥ १९ ॥ इस प्रकार उसकी प्रथम प्रहरकी शिवपूजा होगई और उसकी महिमासे उसका पातक गल गया ॥ २० ॥ तहाँके बाण चढ़ानेके शब्दको सुन हिरनी भयसे चौंकी और व्याधको देख व्याकुल हो यह वचन कहने लगी ॥ २१ ॥ मृगीने कहा, कि--हे व्याध ! तू क्या करना चाहता है, मेरे सामने सत्य कह, हिरनीके इस वचनको सुन कर व्याध कहने लगा ॥ २२ ॥ व्याधने कहा, कि-मेरा

स्यहम् । दारुणं तद्वचश्श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम् ॥ २३ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम् । इत्थं विचार्य सा तत्र वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥ मृग्युवाच । मन्मांसेन सुखं ते स्याद्देहस्यानर्थकारिणः । अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥ उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह । तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि २६ परं तु शिशवो मेऽद्य वर्तन्ते स्वाश्रमेऽखिलाः । भगिन्यै तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेऽथवा ॥ २७ ॥ न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर । आयास्येह पुनश्चाहं समीपं ते न संशयः ॥ २८ ॥ स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारिधिः । सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ सूत उवाच । इत्युक्तोऽपि तया व्याधो न मेने तद्वचो यदा । तदा सुविस्मिता भीता वचनं साब्रवीत्पुनः ॥ ३० ॥ मृग्युवाच । शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि शपथं हि करोम्यहम् । आगच्छेयं यथा ते न समीपं स्वगृहाद्ध्रुवम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम् । स्त्रियस्स्वस्वामिनो ह्याज्ञां समुल्लंघ्य क्रियान्विताः ॥ ३२ ॥ कृतघ्ने चैव यत्पापं यत्पापं विमुखे हरे । द्रोहिणश्चैव यत्पापं

कुटुम्ब भूखा पड़ा हुआ है, तुझको मारकर मैं आज कुटुम्बको तृप्त करूँगा, उसके इस दारुण वचनको सुन और उसको दुर्धर दुष्ट समझ, मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कोई उपाय करूँ, यह विचार कर वह हिरनी कहने लगी ॥ २३ ॥ २४ ॥ मृगीने कहा, कि--मेरे मांससे यदि तुझे सुख मिले तो इस निरर्थक देहसे मुझे बड़ा पुण्य होगा, इससे अधिक और कौनसी बात है, मैं धन्य होगई ॥ २५ ॥ उपकार करने वालेको इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्यका वर्णन सैंकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जासकता २६ परन्तु घर पर मेरे सब बच्चे छोटे छोटे हैं उनको अपनी बहिनको वा स्वामी को सौंपकर मैं लौट आऊँगी ॥ २७ ॥ हे वनेचर ! तुम मेरी बातको झूठ न समझना, मैं तुम्हारे समीप फिर आजाऊँगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ सत्यसे पृथ्वी टिकी हुई है, सत्यसे समुद्र टिका हुआ है, सत्य से जलधारायें बह रही हैं, सब कुछ सत्यमें ही प्रतिष्ठित है ॥ २९ ॥ सूतजीने कहा, कि--इस प्रकार कहने पर भी जब व्याधने उसका कहना नहीं माना तो वह विस्मित और भयभीत होकर फिर कहने लगी ॥ ३० ॥ मृगीने कहा, कि--हे व्याध ! सुन, मैं शपथ खाती हूँ यदि मैं घर पहुँचकर तेरे पास न लौटूँ ॥ ३१ ॥ तो वेद बेचने वाले ब्राह्मणको, तीनों समय संध्या न करने वाले ब्राह्मणको, स्वामीकी आज्ञाको न मान कर्म करने वाली स्त्रियोंको और कृतघ्नको जो पाप लगता हो, हरसे विमुख रहने वालेको जो पाप लगता हो, द्रोह रखने वालेको जो पाप लगता है वही पाप धर्मका

तत्पापं धर्मलंघने ॥ ३३ ॥ विश्वासघातके यच्च तथा वै छलकर्तरि । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥३४॥ इत्याद्यनेकशपथान्मृगी कृत्वा स्थिता यदा । तदा व्याधस्स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् । तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गतः ॥ ३६ ॥ तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता । तस्या मार्गं विचिन्वन्ती ह्याजगाम जलार्थिनी ॥३७॥ तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद्बाणस्य कर्षणम् । पूर्ववज्जल-पत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥३८॥ यामस्य च द्वितीयस्य तेन शम्भोर्महात्मनः । पूजा जाता प्रसंगेन व्याधस्य सुखदायिनी ॥ ३९ ॥ मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि वनेचर । पूर्ववत्कथितं तेन तच्छ्रुत्वाह मृगी पुनः ॥ ४० ॥ मृग्युवाच । धन्याहं श्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम् । अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भविष्यति ॥ ४१ ॥ परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्ठन्ति चार्भकाः । भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः ॥ ४२ ॥ व्याध उवाच । त्वया चोक्तं न मन्येऽहं हन्मि त्वां नात्र संशयः । तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरेः ॥४३॥ मृग्युवाच । शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि । वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारि-

---

उल्लंघन करने पर मुझे लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ विश्वासघातीको और छल करने वालेको जो पाप लगता है, यदि मैं न लौटूँ, तो उसी पापसे मैं लिप्त होऊँ ॥ ३४ ॥ इत्यादि अनेक प्रकारकी शपथ खाकर जब हिरनी खड़ी हो गई, तब उस व्याधने विश्वास करके कहा, कि--अच्छा जा घर हो आ ३५ तब हिरनी हर्षमें भर कर जल पीकर अपने झुण्डकी ओर गई, तब तक विना निद्राके उसको पहिला प्रहर बीत गया ॥ ३६ ॥ उसकी बहिन जो हिरनी थी वह उसको खोजती हुई उसके मार्ग पर ही चलती हुई जलके लिये वहाँ आपहुँची ॥ ३७ ॥ उसको देखकर भीलने बाण चढ़ाया तो पहिलेकी समान जल और बिल्वपत्र शिवके ऊपर गिरे ॥ ३८ ॥ इस प्रसंग से व्याधको सुख देने वाली महात्मा शंभुकी दूसरे प्रहरकी पूजा होगई ॥३९॥ मृगीने उसको देखकर कहा, कि--अरे वनेचर ! तू क्या करता है ? तो उसने पहिलेकी समान कहा, इस बातको सुनकर मृगी फिर कहने लगी ॥ ४० ॥ मृगीने कहा, कि- हे व्याध ! सुनो ! मैं धन्य हूँ मेरा देह धारण करना सफल होगया, क्योंकि इस अनित्य शरीरसे उपकार होगा ॥ ४१ ॥ परन्तु घर पर मेरे छोटे २ बालक हैं, उनको स्वामीको सौंप कर मैं लौट आऊँगी ४२ व्याधने कहा, कि-तेरी कही हुई बात मैं नहीं मान सकता, मैं तुझे अवश्य मार डालूँगा, इस बातको सुन कर हिरनी विष्णु भगवानकी शपथ खाकर कहने लगी ॥ ४३ ॥ मृगीने कहा, कि-हे व्याध ! सुनो, यदि मैं फिर न

तम् ॥ ४४ ॥ परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुमान् । वेदधर्मं समुल्लंघ्य कल्पितेन च यो व्रजेत् ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः । पित्रोः क्षयाहमासाद्य शून्यं चैवाक्रमेदिह ॥ ४६ ॥ कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः । तेन पापेन लिंपामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥४७॥ सूत उवाच । इत्युक्तश्च तया व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः । सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टा-गच्छत्स्वमाश्रमम् ॥ ४८ ॥ तावद् द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां विना गतः । एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वा विलम्बं चकितस्तदन्वेषणतत्परः । तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं गतः ॥ ५० ॥ पुष्टं मृगं च तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरस्स वै । शरं धनुषि सन्धाय हन्तुं तं हि प्रचक्रमे ॥ ५१ ॥ तदैवं कुर्वतस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित् । तत्प्रारब्धवशाद् द्विजाः पतितानि शिवोपरि ॥ ५२ ॥ तेन तृतीययामस्य तद्रात्रौ तस्य भाग्यतः । पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम् ॥ ५३ ॥ श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः । कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं

आऊँ, तो वचनसे फिरने वाला जिस पुण्यको खो देता है (तैसे ही मेरा भी पुण्य लुप्त होजाय)॥४४॥ जो पुरुष विवाहितस्त्रीको छोड़ दूसरी स्त्रीसे व्यभिचार करता है (उसको जो पाप लगता है वह मुझे लगे) और वेदमें कहे हुए धर्मको छोड़ कपोलकल्पित धर्म पर चलने वालोंको जो पाप लगता है वह मुझे लगे ॥४५॥ जो विष्णुभक्ति करता हुआ शिवकी निन्दा करता है और जो माता पिताके क्षयाहके दिन (श्राद्ध आदि न कर) उस दिनको वैसे ही खाली विता देता है (उसको जो पाप लगता है वह मुझे लगे) ४६ जो पश्चात्ताप करके फिर पाप करने लगता है, यदि मैं लौट कर न आऊँ तो उसका पाप मुझे लगे ॥ ४७ ॥ सूतजीने कहा, कि--मृगीके इस प्रकार कहने पर उस व्याधने मृगीसे कहा, कि--अच्छा जा! तब वह मृगी जल पीकर प्रसन्न होती हुई अपने घरको चलदी ॥ ४८ ॥ इतनेमें उस व्याध को दूसरा प्रहर भी विना निद्राके बीत गया, इसी समय तीसरा प्रहर आने पर ॥ ४९ ॥ मृग विलम्ब होता देख चकित हुआ और दोनों हिरनियोंको खोजनेके लिये चल पड़ा और व्याधेने जलके मार्गमें मृगको देखा ॥ ५० ॥ वह वनचारी भील उस पुष्ट मृगको देख हर्षमें भर गया और धनुष पर बाण चढ़ा कर उसको मारने लगा ॥ ५१ ॥ हे द्विजों! ऐसा करनेमें प्रारब्धवश कुछ विल्वपत्र शिवके ऊपर गिर पड़े ॥५२॥ उससे भाग्यवश रात्रिमें तृतीय प्रहरकी शिवकी पूजा होगई इस प्रकार शिवने अपनी कृपालुता दिखाई ५३ बाण खेंचनेके शब्दको सुन, मृगने कहा, कि--तू क्या करता है, तो व्याधने

हरिणो हृष्टमानसः । द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ हरिण उवाच । धन्योऽहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति । यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥ ५६ ॥ यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै । तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥ ५७ ॥ परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननीं शिशून् । आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः ॥ ५८ ॥ इत्युक्तस्तेन सं व्याधो विस्मितोऽतीव चेतसि । मनाक् शुद्धमना नष्टपापपुञ्जो वचोऽब्रवीत् ५९ व्याध उवाच । येये समागताश्चात्र तेते सर्वे त्वया यथा । कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि वंचकाः ॥ ६० ॥ त्वं चापि संकटे प्राप्तो व्यलीकं च गमिष्यसि । मम संजीवनं चाद्य भविष्यति कथं मृग ॥६१॥ मृग उवाच । शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि । सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ॥ ६२ ॥ यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलितं क्षणात् । तथापि शृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ॥ ६३ ॥ सन्ध्यायां मैथुने यस्तु शिवरात्र्यां च भोजने । कूटसाक्ष्ये न्यासहारे संध्याहीने द्विजे तथा ॥ ६४ ॥ शिवहीनं मुखं यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि

कहा, कि–मैं तुझे कुटुम्बका पोषण करनेके लिये मारता हूँ ॥ ५४ ॥ व्याध के इस वचनको सुन हिरन मनमें प्रसन्न हो उस व्याधसे झट यह बात कहने लगा ॥५५॥ हिरनने कहा, कि–मेरा पुष्ट होना आज धन्य है, क्योंकि–आपकी तृप्ति होगी, जिसका अंग उपकारमें नहीं आता, उसका सब कुछ व्यर्थ जाता है ॥५६॥ जो समर्थ होता हुआ भी उपकार नहीं करता उसका समर्थ होना व्यर्थ है और वह परलोकमें नरकमें पड़ता है ॥ ५७ ॥ परन्तु मैं अपने छोटे छोटे बच्चोंको उनकी माताको सौंप कर और उन सबको ढाढ़स देकर फिर आऊँगा ॥५८॥ उसके इस प्रकार कहने पर व्याध अपने मनमें बड़ा विस्मित हुआ, उसका मन थोड़ा थोड़ा शुद्ध होगया था और पाप-पुञ्ज नष्ट होगए थे अतः यह बात बोला ॥ ५९ ॥ व्याधने कहा, कि–जो जो यहाँ आये थे वे सब ही जैसे तूने कहा, इसी प्रकार कह कर चले गए, परन्तु वे वञ्चक अभी तक नहीं लौटे ॥ ६० ॥ तू भी संकटमें पड़ कर अपने वचनको झूठ कर देगा, तो हे मृग ! आज मेरी आजीविका कैसे चलेगी ॥६१॥ मृगने कहा, कि–हे व्याध ! सुन, मैं कहता हूँ मुझमें असत्य नहीं है, सत्यके बल पर ही यह चराचर सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है ६२ जिसकी वाणी झूठी होती है, उसका पुण्य क्षण भरमें गल जाता है, हे भील ! अब तुम मेरी सत्य–प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ६३ ॥ यदि मैं फिर न आऊँ तो संध्याके समय मैथुन करने वालेको शिवरात्रिके दिन भोजन करने वालेको, झूठी गवाही देने वालेको, धरोहरको हड़पने वालेको, संध्या न करने वाले

सन्। पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे ॥६५॥ असंपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः। एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ६६ ॥ शिव उवाच। इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज। स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ॥ ६७ ॥ ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः। वृत्तान्तं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम् ॥ ६८ ॥ गन्तव्यं निश्चयेनेति सत्यपाशेन यन्त्रिताः। आश्वास्य बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ॥ ६९ ॥ मृगी ज्येष्ठा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीत्। त्वां विना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यन्ति वै मृग ॥ ७० ॥ प्रथमं तु मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो। तस्मान्मया न गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ॥ ७१ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्ठा वाक्यमब्रवीत्। अहं त्वत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ॥ ७२ ॥ तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया। भवत्यौ तिष्ठतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम् ॥७३॥ तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः। प्रीत्योचतुः स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक् ॥७४॥ बालानाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः। गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ॥ ७५ ॥ ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानुसमागताः।

द्विजको, शिवका नाम न लेने वाले मुख वालेको, समर्थ होने पर भी उपकार न करने वालेको, पर्वके दिन श्रीफल तोड़ने वालेको, अभक्ष्य भक्षण करने वालेको, भस्मरहितको, शिवपूजन बिना किये भोजन करने वालोंको जो पाप लगते हैं, उन सबके पाप मुझै लगें ॥ ६४–६६ ॥ शिवजीने कहा, कि–उसके इस वचनको सुनकर व्याधने कहा जा, शीघ्र लौट आ, तब मृग जल पीकर चल दिया ॥ ६७ ॥ तब प्रतिज्ञा करने वाले वे सब अपने घर पर मिले और परस्परके सब वृत्तान्तको सुन कर, उन सत्यपाशमें बँधे हुओंने निश्चय किया, कि–तहाँ चलना चाहिये, तब वे बालकोंको आश्वासन देकर जानेके लिये उत्कण्ठित होने लगे ॥६९॥ उस समय बड़ी हिरनीने स्वामीसे यह बात कही, कि–हे मृग ! तुम्हारे बिना यह बालक यहाँ कैसे रहेंगे ७० और हे प्रभो ! पहिले मैंने ही तहाँ प्रतिज्ञा की थी अतः मुझै ही तहाँ जाना चाहिये, आप दोनों यहाँ ही रहें ॥ ७१ ॥ उसकी इस बातको सुन छोटीने कहा, कि–मैं आपकी दासी हूँ अतः मैं ही तहाँ जाती हूँ, आप यहाँ ही रहें ॥ ७२ ॥ इस बातको सुन कर मृगने कहा, कि–आप दोनों यहाँ ही रहें मैं तहाँ चला जाऊँगा, क्योंकि–मातासे बच्चोंकी रक्षा हुआ करती है ॥ ७३ ॥ स्वामीके इस वचनको सुन उन दोनोंने धर्मका विचार कर इस बातको न माना और प्रीतिपूर्वक स्वामीसे कहने लगीं, कि–विधवा होकर जीनेको धिक्कार है ॥ ७४ ॥ तब वे तीनों बालकोंको अपने साथियोंको

एतेषां या गतिः स्याद्धि ह्यस्माकं सा भवत्विति ॥ ७६ ॥ तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो बाणं धनुषि संदधे । पुनश्च जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥ ७७ ॥ तेन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा । तस्य पापन्तदा सर्वं भस्मसादभवत् क्षणात् ॥ मृगी मृगी मृगश्चोचुश्शीघ्रं वै व्याधसत्तम । अस्माकं सार्थकं देहं कुरु त्वं हि कृपां कुरु ॥ ७९ ॥ शिव उवाच । इति तेषां वचश्श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः । शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ॥ ८० ॥ एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीना-स्सुसम्मताः । स्वीयेनैव शरीरेण परोपकरणे रताः ॥८१॥ मानुष्यं जन्म संप्राप्य साधितं किं मयाधुना । परकायं च संपीड्य शरीरं पोषितं मया ॥८२॥ कुटुम्बं पोषितं नित्यं कृत्वा पापान्यनेकशः । एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भवि-ष्यति ॥ ८३ ॥ कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम् । इदानीं चिंतया-म्येवं धिग्धिक् च जीवनं मम ॥८४॥ इति ज्ञानं समापन्नो बाणं संवारयंस्तदा । गम्यतां च मृगश्रेष्ठा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ॥ ८५ ॥ शिव उवाच । इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नश्शंकरस्तदा । पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास सम्मतम् ॥

सौंप जहाँ वह श्रेष्ठ व्याध था तहाँको शीघ्र रासे चल दिये ॥ ७५ ॥ तब वे सब बालक भी इनकी जो गति होगी वही हमारी भी हो यह विचार कर उनके पीछे चल दिये ॥ ७६ ॥ उनको देख कर व्याधने प्रसन्न होकर धनुष पर बाण चढ़ाया, तब फिर शिव पर जल और बिल्वपत्र गिर पड़े ॥७७॥ और उससे चौथे प्रहरकी शुभ शिव--पूजा होगई तब क्षण भरमें ही उस व्याधका (बाकी बचा हुआ) सब पाप क्षण भरमें भस्म होगया ॥ ७८ ॥ इसी समय मृगीने मृगीकी बहिनने और मृगने कहा, कि--हे व्याधसत्तम ! तुम कृपा करके हमारी देहको सार्थक करो ॥ ७९ ॥ शिवने कहा, कि--उन के इस वचनको सुनकर व्याध विस्मयमें पड़ गया, क्योंकि-शिवपूजाके प्रभाव से उसको दुर्लभ ज्ञान होगया था ॥८०॥ "ये मृग धन्य हैं, ज्ञानहीन (पशु) होने पर भी माननीय हैं, क्योंकि--अपने शरीरसे ही परोपकार करनेके लिये उद्यत होरहे हैं ॥८१॥ और मैंने मनुष्य जन्म पाकर भी क्या साधा, दूसरोंके शरीरोंको पीड़ा देकर अपना शरीर ही पुष्ट किया है ॥ ८२ ॥ हा ! मैंने सदा पाप कर अपने कुटुम्बका पोषण किया है, अरे ! ऐसे पापों को करनेसे अब मेरी क्या गति होगी ॥ ८३ ॥ मैंने जन्मसे पाप ही किये हैं, मैं किस गतिको पाऊँगा, इस समय मैं यह विचार रहा हूँ, मेरे जीवन को धिक्कार है" ॥ ८४ ॥ इस प्रकार ज्ञान होनेसे उसने बाणको उतार लिया और कहने लगा, कि--हे श्रेष्ठ मृगों ! तुम लौट जाओ ! तुम धन्य हो ॥ ८५ ॥ शिवने कहा, कि--व्याधके इस प्रकार कहने पर शंकर प्रसन्न

संस्पृश्य कृपया शम्भुस्तं व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् । वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक ॥ ८७ ॥ व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात् । पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन् ॥ ८८ ॥ शिवोऽपि सुप्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च । विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरानदात् ॥८९॥ शिव उवाच । शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुंक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् । राजधानीं समाश्रित्य शृङ्गवेरपुरे पराम् ॥ ९० ॥ अनपाया वंशवृद्धिश्श्लाघनीयः सुरैरपि । गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ॥९१॥ करिष्यति त्वया मैत्रीं मद्भक्तस्नेहकारकः । मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यसि दुर्लभाम् ॥ ९२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे ते तु कृत्वा शंकरदर्शनम् । सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं मृगयोनेः प्रपेदिरे ॥ ९३ ॥ विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा । शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गताः ॥ ९४ ॥ व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले । दर्शनात्पूजनात्सद्यो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ९५ ॥ व्याधोऽपि तद्दिनान्नूनं भोगान्भूसुरसत्तमाः । भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान् ॥ ९६ ॥ अज्ञानात्स व्रतञ्चैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्त-

---

होगए और अपने पूजनीय तथा माननीय स्वरूपका उसको दर्शन दिया ८६ शंभु कृपापूर्वक उस व्याधका स्पर्श कर प्रीतिके साथ कहने लगे. हे भील ! तू वर माँग ! मैं तेरे इस व्रतसे प्रसन्न हूँ ॥ ८७ । व्याध भी शिवके रूपको देख तत्क्षण मुक्त होगया और शिवके चरणोंके आगे पड़कर कहने लगा, कि—मैंने सब कुछ पा लिया ॥ ८८ ॥ तब शिवने भी चित्तमें प्रसन्न होकर उसका गुह नाम रखा और उसको कृपादृष्टिसे देख कर दिव्य वर दिये ॥ ८९ ॥ शिवने कहा कि—हे व्याध ! आजसे तू शृंगवेरपुरमें श्रेष्ठ राजधानी बना कर दिव्य भोगोंको भोगता रह ॥ ९० ॥ तेरी वंशवृद्धि निर्विघ्न रूपसे होती रहेगी, और हे व्याध ! तेरे घरमें राम आवेंगे, यह निश्चित बात है ॥ ९१ ॥ वह तुझसे मित्रता करेंगे वह मेरे भक्त और स्नेही हैं, तब मेरी सेवामें आसक्त चित्त वाला तू दुर्लभ मुक्ति पावेगा ॥ ९२ ॥ इसी समय वे सब मृग भी शङ्करका दर्शन पा उनको प्रणाम कर मृगयोनिसे छूट श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त हुए ।९३। वे शिवके दर्शनमात्रसे शापसे मुक्त हो दिव्य देह धारण कर विमानोंमें बैठ स्वर्गको चले गए ।९४। और शिव व्याधेश्वर नामसे अर्बुदाचल पर प्रतिष्ठित होगए यह दर्शन और पूजन करनेसे तत्क्षण ही भोग और मोक्ष देने वाले हैं ॥ ९५ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! व्याध भी उस दिनसे भोगोंको भोगता हुआ रामकी कृपाको पा शिवसायुज्यको प्राप्त हुआ था ॥ ९६ ॥ व्याध अज्ञानवश इस व्रतको कर शिवसायुज्यको प्राप्त हुआ था, फिर भक्ति वाले पुरुषोंकी तो बात ही क्या है, वे तो शुभ तन्मयता

वान् । किं पुनर्भक्तिसंपन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम् ॥९७॥ विचार्य्य सर्वशास्त्राणि धर्मांश्चैवाप्यनेकशः । शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ९८ ॥ व्रतानि विविधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च । दानानि च विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा ॥ ९९ ॥ तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः । नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥ १०० ॥ तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः शिवरात्रिव्रतन्दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ १०१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रतं शुभम् । व्रतराजेति विख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ १२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

ऋषय ऊचुः । मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह । अवस्था कीदृशी तत्र भवेदिति वदस्व नः ॥ १ ॥ सूत उवाच । मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः । संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ॥२॥ सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा । सायुज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठाः केवलं शिव उच्यते । ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः ॥ ४ ॥ ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाश्शिवस्त्रिगुणतः परः । निर्विकारी पर-

---

को पाते हैं ॥९७॥ सब शास्त्र और अनेक धर्मोंका विचार कर यह सबसे श्रेष्ठ शिवरात्रिका व्रत कह दिया ॥ ९८ ॥ इस संसारमें अनेक प्रकारके व्रत हैं, विविध प्रकारके तीर्थ हैं, विचित्र प्रकारके दान हैं और अनेक प्रकारके यज्ञ हैं ॥ ९९ ॥ विविध भाँतिके तप और अनेक प्रकारके जप हैं, परन्तु वे इस शिवरात्रिके व्रतकी समता नहीं कर सकते ॥ १०० ॥ अत एव जो अपना हित चाहते हैं उनको इस सदा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले परम शुभ दिव्य शिवरात्रिव्रतका पालन करना चाहिये ॥ १०१ ॥ यह व्रतराज् नामसे प्रसिद्ध शिवरात्रिका शुभ व्रत पूर्णरूपसे आपसे कह दिया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ १०२ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ४०

ऋषियोंने कहा, कि–आपने जो मुक्तिका नाम लिया, सो इस मुक्तिमें क्या होता है ? इसमें कैसी अवस्था होती है, उसका आप वर्णन करिये ॥१॥ सूतजीने कहा, कि–मुक्ति चार प्रकारकी कही है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनिये, यह मुक्ति संसारका क्लेश दूर करती है और परम आनन्द देती है ॥ २ ॥ सारूप्य, सालोक्य, सांनिध्य और चौथी श्रेष्ठ मुक्तिका नाम सायुज्य है, वह इस व्रतको करनेसे प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियों ! केवल शिव ही मुक्तिके दाता कहाते हैं, ब्रह्मा आदि मुक्ति नहीं देसकते, वे तो केवल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) देसकते हैं ॥४॥ ब्रह्मा आदि त्रिगुण

ब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः ॥ ५ ॥ ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयस्स्वयम् । कैवल्यमुक्तिदस्सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ॥६॥ कैवल्याख्या पंचमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् । तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ७ ॥ उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् । यस्मिंश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥८॥ तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः । सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वेदधर्षिणाम् ९ विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा । कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ॥ १० ॥ शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः । तत्सर्वैश्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि ॥ ११ ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम् । निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः ॥१२॥ न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च । न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च १३ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम् ॥ १४ ॥ आकाशं व्यापकं यद्वत्तथैव व्यापकन्त्विदम् । मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ १५ ॥ तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम् । भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥ १६ ॥ ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् । तस्माच्छिवं च भजत

(सत्त्व रज और तम) के स्वामी हैं और शिव त्रिगुणसे पर निर्विकार, परब्रह्म, तुर्य और प्रकृतिसे पर हैं ॥५॥ ज्ञानरूप, अव्यय, साक्षी, ज्ञानगम्य, अद्वय केवल मुक्तिदाता हैं और यही त्रिवर्गके भी दाता हैं ॥ ६ ॥ कैवल्य नाम वाली पाँचवीं मुक्ति मनुष्योंको परम दुर्लभ है, हे ऋषिसत्तमो ! उसका लक्षण कहता हूँ, सुनिये ॥ ७ ॥ यह सब जगत् जिनसे उत्पन्न होता है, जिनसे इस जगत्का पालन होता है और यह विश्व फिर जिनमें लीन हो जाता है और जिनमें यह सब व्याप्त है, हे मुनीश्वरो ! वही शिवका रूप पढ़ा जाता है,इस रूपका वेदमें सकल और निष्कल दो प्रकारसे वर्णन है ८-९ ब्रह्मा विष्णु सनत्कुमार और नारदको भी इस मुक्तिके स्वरूपका ज्ञान नहीं है ॥ १० ॥ व्यासपुत्र शुक, व्यास, मुनीश्वर, सम्पूर्ण देवता, वेद और शास्त्र भी इस मुक्तिके स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते ॥ ११ ॥ जो सत्य ज्ञान अनन्त है, सत् चित् आनन्दस्वरूप है, निर्गुण उपाधिरहित अव्यय शुद्ध और निरञ्जन है ॥ १२ ॥ न लाल है, न पीला है, न नीला है, न छोटा है, न बड़ा है, न स्थूल है, न सूक्ष्म है ॥१३॥ मन और वाणी जिसको न पाकर लौट आते हैं वह पर-ब्रह्म ही शिव नामसे कहे जाते हैं ॥ १४ ॥ जिस प्रकार आकाश व्यापक है इसी प्रकार यह व्यापक है, मायातीत परात्मा, द्वन्द्वातीत और मत्सरतारहित हैं ॥ १५ ॥ उसकी प्राप्ति शिवज्ञान का उदय होनेसे होती है अथवा हे द्विजो ! सज्जन सूक्ष्म-बुद्धिसे शिवका

मुक्त्यर्थमपि सत्तमाः ॥ १७ ॥ शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः । भक्त्यैव बहवः सिद्धा मुक्तिं प्रापुः परां मुदा ॥१८॥ ज्ञानमाता शम्भुभक्तिर्मुक्तिभुक्तिप्रदा सदा । सुलभा सत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुरलक्षणा ॥ १९ ॥ सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया सगुणा निर्गुणा द्विजाः । वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा सा स्मृता परा ॥ २० ॥ नैष्ठिक्यनैष्ठिकीभेदाद् द्विविधैव हि कीर्तिता । षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितियैकविधा स्मृता ॥२१॥ विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः । तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते ॥ २२ ॥ ते नवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः । सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ॥ २३ ॥ भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शम्भुना वर्णिते द्विजाः । तस्माद्भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुस्सर्वदा सुखम् ॥ २४ ॥ विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः । शम्भुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ॥ २५ ॥ तस्माद्भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः । तयैव

भजन कर उनको पाते हैं ॥ १६ ॥ संसारमें ज्ञान होना कठिन है और भजन सरल है, हे सज्जनों ! अतः तुम मुक्तिके लिये भी शिवका भजन करो १७ ज्ञानात्मा शिव भजनके अधीन हैं, यह श्रेष्ठ मोक्ष देते हैं, इस भक्तिसे ही बहुतसे सिद्ध मुक्तिको पागए हैं ॥ १८ ॥ शंभुकी भक्ति ज्ञानकी माता है सदा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है, सज्जनोंकी कृपासे यह भक्ति सुलभ होती है, सत्प्रेम ही इसका अंकुर है ॥ १९ ॥ हे द्विजों ! यह भक्ति सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारकी है, सगुण भक्ति वैधी (शास्त्रमें वर्णित) होती है और निर्गुणभक्ति स्वाभाविक होती है, इनमें अगली श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ ये भक्तियें नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो प्रकारकी हैं, नैष्ठिकी भक्तिके छः भेद हैं और अनैष्ठिकी भक्ति एक प्रकारकी है ॥ २१ ॥ विद्वान् पुरुष विहित और अविहितके भेदसे इस भक्तिको अनेक प्रकारकी बताते हैं, उनके अनेक प्रकारकी होनेसे उनका विस्तार यहाँ वर्णन नहीं किया है ॥ २२ ॥ श्रवण आदिके भेदसे ये दोनों भक्तियें नौ प्रकारकी हैं, भगवान्‌की कृपाके बिना इनका प्राप्त होना कठिन है और भगवान्‌की कृपा होने पर यह सहजमें सिद्ध होजाती हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजों ! शंभुने भक्ति और ज्ञानका भिन्न (फल देने वाले कह कर) वर्णन नहीं किया है, इस लिये ज्ञानी और भक्तमें भेद नहीं समझना चाहिये, ज्ञान हो वा भक्ति इनका पालन करने वालेको सुख सदा मिलता है ॥२४॥ हे द्विजों ! भक्तिसे विरोध रखने वालेको ज्ञान नहीं होसकता और शंभुकी भक्ति करने वालेको शीघ्र ही ज्ञानका उदय होजाता है ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरों ! इस लिये महेश

निखिलं सिद्धं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥ इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया । तच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मुक्तिनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

ऋषय ऊचुः । शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्च कः । एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ॥ १ ॥ सूत उवाच । यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः । तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदान्तिनो विदुः ॥ २ ॥ तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता । ताभ्यान्तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधीः ॥ ३ ॥ पंचक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा । व्याप्तं च सकलं ह्येतत्तज्जलं विस्तृतो गतम् ॥४॥ सम्भाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरिस्स वै । नारायणेति विख्यातः प्रकृतिर्नारायणी मता ॥५॥ तन्नाभिकमले यो वै जातस्स च पितामहः । तेनैव तपसा दृष्टस्स वै विष्णुरुदाहृतः ॥ ६ ॥ उभयोर्वादशमने यद्रूपं दर्शितं बुधाः । महादेवेति विख्यातं निर्गुणेन शिवेन हि ॥ ७ ॥ तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कभालतः । रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ।८।

की भक्ति साधनी चाहिये, उससे सब सिद्ध होजावेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ इस प्रकार आपने जो कुछ बूझा था, वह सब मैंने कह दिया, इसको सुन कर प्राणी सब पापोंसे बचने लगता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

ऋषियोंने कहा, कि—शिव कौन हैं ? हरि कौन है ? रुद्र कौन है ? और ब्रह्मा कौन है ? और इनमें गुणोंके लेपसे रहित कौन है ? हमारे इस संदेह को आप दूर करिये ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि—निर्गुण परमात्मासे जो आरम्भमें उत्पन्न हुआ है, वेद और वेदान्तको जानने वाले उसको ही शिव नाम वाला कहते हैं ॥२॥ उससे पुरुषयुक्त प्रकृति उत्पन्न हुई, उन्होंने उस मूलमें स्थित जलमें तप किया था ॥३॥ वह स्थल पञ्चक्रोशी काशीके नाम से प्रसिद्ध है, और शिवको परम--प्रिय है, उसमें व्याप्त जल चारों ओर फैल गया है ॥ ४ ॥ हरि मायासे ध्यान करते हुए तहाँ सोगए, अतः वह नारायण नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति नारायणी कहाती है ॥५॥ उनके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए और उन्होंने तप करके जिनको देखा वह विष्णु कहे हैं ॥ ६ ॥ निर्गुण शिवने उन दोनोंका विवाद शांत करनेके लिये जो रूप दिखाया था वह महादेव नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ उसने कहा, कि—मैं ब्रह्माजीके भालसे प्रकट होऊँगा, तब संसार पर अनुग्रह करने वाले वह रुद्र नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ८ ॥ रूपरहित भक्तवत्सल साक्षात् शिव ही सब

ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत् । स एव च शिवस्साक्षाद्भक्तवात्सल्यका-
रकः ॥ ६ ॥ शिवे त्रिगुणसम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि । वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति
स्वर्णे तद्भूषणे यथा ॥ १० ॥ समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ । समाना-
खिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ ॥११॥ सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपरा-
क्रमः । उत्पन्नो भक्तकार्यार्थं हरिब्रह्मसहायकृत् ॥ १२ ॥ अन्ये च ये समुत्पन्ना
यथानुक्रमतो लयम् । यान्ति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते ॥ १३ ॥ ते वै
रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे । इमान् रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुति-
शासनम् ॥ १४ ॥ सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कंचिद्भजेन्न हि । स्वात्मना भक्तवा-
त्सल्याद्भजत्येव कदाचन ॥१५॥ अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः ।
तेनैव रुद्रं ते प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ॥ १६ ॥ रुद्रभक्तास्तु ये केचित्तत्क्षणं
शिवतां गताः । अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ॥१७॥ अज्ञानं विविधं
ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि । तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजाः ॥१८॥ ब्रह्मा-
दितृणपर्यंतं यत्किंचिद् दृश्यते त्विह । तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्व-

---

के ध्यानके लिये रूपवान् (रुद्र) हुए हैं ॥ ६ ॥ त्रिगुणसे भिन्न शिवमें और गुणोंके धाम रुद्रमें, सुवर्ण और उसके आभूषणमें जैसे कोई भेद नहीं होता, तैसे वास्तवमें कोई भेद नहीं है ॥१०॥ ये दोनों एकसे ही रूप और कर्म वाले हैं, समान रूपसे भक्तोंको गति देने वाले हैं, समानरूपसे सबके सेवनीय हैं और अनेक प्रकारकी लीला कर विहार करने वाले हैं ॥११॥ सर्वथा शिवके ही रूप रुद्र हरि और ब्रह्मा की सहायता करनेके लिये और भक्तोंका कार्य करनेके लिये प्रकट हुए, इनका पराक्रम बड़ा रौद्र है ॥१२॥ प्रकट हुए दूसरे प्राणी जिस प्रकार क्रमशः लयको पाते हैं, रुद्र उनकी समान लय नहीं होते, वह तो शिवमें ही विलीन रहते हैं ॥१३॥ साधारण प्राणी रुद्रमें मिल कर लीन होजाते हैं, और रुद्र इनमें मिल कर लीन नहीं होते, यह श्रुतिकी आज्ञा है ॥ १४ ॥ सब रुद्रका भजन करते हैं, रुद्र किसीका भजन नहीं करते, भक्तवत्सल होनेसे अपने चित्तसे आत्मस्वरूपका भजन करते हैं ॥ १५ ॥ जो विद्वान् दूसरेका भजन करते हैं वे उनमें लीन होकर उसके द्वारा बहुत समयमें रुद्रको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ और जो रुद्रके भक्त होते हैं, वे तत्क्षण ही शिवको प्राप्त होजाते हैं, उनको दूसरेकी अपेक्षा नहीं होती, यह सनातनकालकी श्रुति है ॥१७॥ यह अज्ञानप्रपञ्च अनेक प्रकार का है, परन्तु विज्ञान अनेक प्रकारका नहीं है, उसकी रीति मैं कहता हूँ, हे द्विजों ! आप आदरपूर्वक सुनें ॥ १८ ॥ इस संसारमें ब्रह्मासे तिनके तक जो कुछ दीखता है, वह सब शिव ही है, अनेक रूपोंकी कल्पना तो मिथ्या

कर्ष्मा ॥ १६ ॥ सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा । सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तस्सर्वशून्ये सदा शिवः ॥ २० ॥ तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वराः । स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्त्वाद् द्विधापि सः ॥ २१ ॥ येनैव विष्णवे दत्तास्सर्वे वेदास्सनातनाः । वर्णा मात्रा ह्यनेकाश्च ध्यानं स्वस्य च पूजनम् २२ ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी । वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छम्भुरुदाहृतः ॥२३॥ स एव शंकरः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः । कर्ता भर्ता च हर्ता च साक्षी निर्गुण एव सः २४ अन्येषां कालमानं च कालस्य कलनादिह । महाकालः स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः २५ तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा कालीं प्रचक्षते । सर्वं ताभ्यान्ततः प्राप्तमिच्छया सत्यलीलया ॥ २६ ॥ न तस्योत्पादकः कश्चिद्भर्ता हर्ता न तस्य हि । स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूतास्त्वच्युतादयः ॥ २७ ॥ स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन । एकोऽप्यनेकतां यातोऽप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् एकं बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च जायते । बहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ॥२९॥ एतत्परं शिवज्ञानं तत्त्वतस्तदुदाहृतम् । जानाति ज्ञानवानेव नान्यः

ही है ॥ १९ ॥ सृष्टिके पहिले शिव हैं और सृष्टिके मध्यमें शिव हैं और सृष्टिके अन्तमें भी शिव कहे हैं और सर्वशून्यमें भी शिव हैं ॥ २० ॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार शिव चतुर्गुण कहे हैं, वही शिव शक्तिमान होने पर सगुण हैं, इस प्रकार वह (सगुण निर्गुणभेदसे) दो प्रकारके हैं ॥ २१ ॥ उन्होंने विष्णुको सब सनातन वेद दिये हैं, अनेक वर्ण मात्रा अपना ध्यान और पूजन प्रदान किया है ॥ २२ । और यह सब विद्याओंके ईश हैं, यह सनातनी श्रुति है, इसी लिये शम्भु वेदकर्ता और वेदपति कहे हैं ॥ २३ ॥ यही साक्षात् शंकर सब पर अनुग्रह करते हैं, यह कर्ता हर्ता और साक्षी शङ्कर ही निर्गुण हैं ॥ २४ ॥ कालके कलन करनेसे दूसरोंका तो कालमान है, परन्तु यह तो साक्षात् स्वयं महाकाल हैं, महाकाली भी इनका आश्रय लेती हैं ॥ २५ ॥ ब्राह्मण भी रुद्र और कालीके विषयमें कहते हैं, कि--इन्होंने अपनी इच्छानुसार ही सब कुछ प्राप्त किया है ॥ २६ ॥ न इनका कोई उत्पादक है, न कोई भरण करने वाला है और, न कोई संहारक है, यह स्वयं सबके हेतु हैं और अच्युत आदिक इनके कार्यभूत हैं ॥२७॥ यह स्वयं कारण और कार्य हैं, इनका अपना कोई कारण नहीं है यह एक होने पर भी अनेकताको प्राप्त होरहे हैं और यह अनेक होकर भी एकताको प्राप्त होजाते हैं ॥२८॥ एक ही बीज बाहर होकर (अनेक रूपोंमें होता हुआ) फिर बीजरूपको प्राप्त होजाता है, यही दशा शिवरूपी महेश्वरकी बहुत्वमें है ॥ २९ ॥ यह शिवज्ञानका श्रेष्ठ तत्त्व कह दिया, हे ऋषीश्वरो !

कश्चिदृषीश्वराः ॥३०॥ मुनय ऊचुः । ज्ञानं सलक्षणं ब्रूहि यज्ज्ञात्वा शिवतामव्रजेत् । कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्वं वा शिव एव च ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच । एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजे मुनींस्तानब्रवीद्वचः

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सगुणनिर्गुणभेदवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

सूत उवाच । श्रूयतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं यथा श्रुतम् । कथयामि महागुह्यं परमुक्तिस्वरूपकम् ॥ १ ॥ कनारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च । एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम् ॥ २ ॥ इति ज्ञानं सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत् । शिवः सर्वमयो ज्ञेयस्सर्वज्ञेन विपश्चिता ॥३॥ आब्रह्मतृणपर्यन्तं यत्किञ्चिद् दृश्यते जगत् । तत्सर्वं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते ॥ ४ ॥ यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम् । सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन ॥५॥ रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतः स्थितः । न तत्र च प्रविष्टोऽसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान् ॥६॥ यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंबता । वस्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् ॥ ७ ॥ वस्तुतस्तु स्वयं सर्वं क्रमो हि भासते शुभः ।

इसको ज्ञानवान् ही जानता है और कोई नहीं जान पाता ॥ ३० ॥ मुनियों ने कहा, कि—जिसको जानकर शिवताकी प्राप्ति होती है उस ज्ञानका लक्षणसहित वर्णन करिये, शिव सबका स्वरूप किस प्रकार है और यह सब जगत् ही शिव किस प्रकार है ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा, कि—पौराणिकोंमें उत्तम सूतजी मुनियोंके इस वचनको सुन कर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण कर उनसे यह बात कहने लगे ॥ ३२ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

सूतजीने कहा, कि—हे सकल ऋषियों! श्रेष्ठ मुक्तिस्वरूप परम गुह्य शिव ज्ञानको मैंने जिसप्रकार सुना है, तिस प्रकार वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ ब्रह्मा नारद सनक आदि चारों कुमार व्यास और कपिल इनकी सभामें उन्होंने निश्चय करके कहा था, कि—॥ २ ॥ सब जगत् शिवमय है, यह ज्ञान सदा जानना चाहिये, सर्वज्ञ विद्वान्को शिव सर्वमय हैं यह ज्ञान होजाता है ॥३॥ ब्रह्मासे लेकर तिनके तक जो जगत् दीखता है, वह सब शिव ही है, वह देव शिव कहाते हैं ॥४॥ जब उसकी इच्छा होती है तब यह जगत् रचा जाता है, वह सबको जानता है, उसको कोई नहीं जानता ॥ ५ ॥ वह इस संसारको रचकर इसमें प्रवेश कर दूर पर स्थित होजाता है, यह निर्लिप्त चित्स्वरूप वाला तब इस संसारमें प्रविष्ट प्रतीत नहीं होता ॥ ६ ॥ जैसे ज्योतिका जल आदिमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वास्तवमें प्रवेश नहीं होता है, इसी प्रकार स्वयं शिवके सम्बन्धमें समझना ॥ ७ ॥ वास्तवमें वह स्वयं ही सब कुछ है,

अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयम्पुनः ॥ ८ ॥ दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते । परं वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते ॥ ९ ॥ स्वस्याप्यंशस्य जीवोंशो ह्यविद्यामोहितोऽवशः । अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः ॥ १० ॥ सर्वं व्याप्य शिवः साक्षाद् व्यापकः सर्वजन्तुषु । चेतनाचेतनेशोऽपि सर्वत्र शंकरस्स्वयम् ॥ ११ ॥ उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थं विचक्षणः । वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत् ॥ १२ ॥ यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्ठे काष्ठे च तिष्ठति । यो वै मन्थति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम् ॥ १३ ॥ भक्त्यादिसाधनानीह यः करोति विचक्षणः । स वै पश्यत्यवश्यं हि तं शिवं नात्र संशयः ॥ १४ ॥ शिवः शिवः शिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन । भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शंकरस्सदा ॥ १५ ॥ यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः । उपाधितो हि नानात्वं लभते शंकरस्तथा ॥ १६ ॥ कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते । केवलं भ्रांतिबुद्ध्यैव तदभावे स नश्यति ॥१७॥ तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत् । अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च नश्यति ॥ १८ ॥ ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो

उनका शुभ क्रम (प्रतिबिम्ब रूपमें आना) भासता है, अज्ञान तो मतिका भेद है, क्योंकि-दूसरा वा दो हैं ही नहीं ॥ ८ ॥ सब दर्शनोंमें मतिभेद दिखाई देता है, परन्तु वेदान्ती अद्वैतको ही नित्य कहते हैं ।९। जीव अपना ही अंश है, अविद्यासे मोहित होनेके कारण अवश होरहा है अतः अपनेको दूसरा समझता है, उस अविद्यासे मुक्त होने पर वह शिव ही है ॥ १० ॥ व्यापक शिव ही सबमें व्याप्त होकर स्थित हैं शंकर चेतन और जड़ सबके स्वामी होने पर भी सब व्याप्त होकर स्थित हैं ॥ ११ ॥ जो चतुर पुरुष वेदान्तमार्गका आश्रय लेकर इनका दर्शन पानेके लिये उपाय करता है वह ही दर्शनरूपी फलको पाता है ॥ १२ ॥ जैसे व्यापक अग्नि प्रत्येक काष्ठमें रहता है परन्तु जो काष्ठको मथता है–रगड़ता है वही अग्निको निःसन्देह रूपसे देखता ॥ १३ ॥ इसी प्रकार जो चतुर पुरुष भक्ति आदि साधनोंको करता है वह इन शिवका अवश्य ही दर्शन पाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ संसारमें शिव ही हैं, शिव ही हैं, शिव ही हैं, शंकर भ्रांतिके कारण ही अनेक स्वरूपों वाले भासते हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र मट्टी और सुवर्ण (नदी सरोवर, घड़ा नाँद हार बाजूबन्द आदि) उपाधिवश अनेक नाम रूपोंको पाते हैं यही दशा शंकरकी है ॥१६॥ कार्य और कारणका भेद वास्तवमें नहीं चलता है केवल भ्रमबुद्धि ही इसका कारण है, उस भ्रमबुद्धिके नष्ट होने पर यह कार्यकारण भेद नष्ट होजाता है ॥१७॥ जैसे बीजसे अंकुर आदि होकर वह बीज अपनेको अनेक रूपोंमें प्रकाशित करता

विकृतिर्मता। तन्निवृत्तौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥ सर्वं शिवः शिवस्सर्वो नास्ति भेदश्च कश्चन। कथं च विविधं पश्यत्येकत्वं च कथं पुनः ॥ यथैकं चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाविधं जनैः। जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः ॥२१॥ सर्वत्र व्यापकश्चैव स्पर्शत्वं न विबध्यते। तथैव व्यापको देवो बध्यते न कदाचित्स वै ॥ २२ ॥ साहंकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शंकरः स्वयम्। जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्लिप्तः शंकरो महान् ॥ २३ ॥ यथैकं च सुवर्णादि मिलितं रजतादिना। अल्पमूल्यं प्रजायेत तथा जीवोऽप्यहंयुतः ॥ २४ ॥ यथैव हि सुवर्णादि क्षारादैः शोधितं शुभम्। पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः ॥ प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः। शिवबुद्ध्या करोत्युच्चैः पूजनं स्मरणादिकम् ॥ २६ ॥ तद्बुद्ध्या देहतो याति सर्वपापादिको मलः। तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा ॥ २७ ॥ तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान्। शंकरस्य प्रसादेन याति शंकरताम्पुनः ॥ २८ ॥ यथाऽऽदर्शस्वरूपे च स्वीयरूपं प्रदृश्यते। तथा सर्वत्रगं शम्भुं पश्यतीति सुनिश्चितम् ॥२९॥ जीवन्मुक्तस्स एवासौ

है और अन्तमें बीजरूपको ही प्राप्त होजाता है और उसका सब विस्तार नष्ट होजाता है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार ज्ञानी बीजरूप है और प्ररोह (विस्तार) विकृति है, उस विकारकी निवृत्ति होने पर वह फिर ज्ञानी होजाता है, इसमें विचार करने को कोई बात नहीं है ॥ १९ ॥ सब प्रपञ्च शिवस्वरूप है, शिव ही सब कुछ हैं, कुछ भी भेद नहीं है, फिर कैसी अनेकता देखना और कैसी एकता खोजना ॥२०॥ जैसे पुरुष सूर्य नामक ज्योतिको जल आदिमें विशेष विशेष रूपमें देखते हैं, इसी प्रकार शंकरकी दशा है ॥ २१ ॥ सर्वत्र व्यापक होने पर वे जिस प्रकार स्पर्शमात्रसे ही बन्धनमें नहीं पड़ते इसी प्रकार वह व्यापक देव कहीं पर नहीं बँधते ॥२२॥ अहंकार होने पर वह जीव हैं और उस अहंकारसे मुक्त होने पर वह स्वयं शङ्कर हैं, कर्मभोगी जीव तुच्छ है और निर्लिप्त शङ्कर महान् हैं ॥ २३ ॥ जैसे सुवर्ण आदि चाँदी आदिसे मिल कर कम मूल्य वाला होजाता है, यही दशा अहंकार करने वाले जीवकी है ।२४। जैसे सुवर्ण आदि क्षार आदिसे शुद्ध करने पर शुभ हो फिर उसने मूल्यको पा जाता है, इसी प्रकार संस्कृत होने पर जीव भी शिव होजाता है ॥ २५ ॥ पहिले सद्-गुरुको पा भक्तिभावपूर्वक शिवबुद्धिसे उनका स्मरण पूजन आदि करे ॥ २६ ॥ ऐसे विचारसे देहमेंसे पाप आदि सब मल दूर होजाते हैं, तब अज्ञान नष्ट होकर जीव ज्ञानवान् होजाता है ॥ २७ ॥ उस समय जीव अहंकारसे मुक्त होकर निर्मल बुद्धि वाला हो शङ्करकी कृपासे फिर शङ्करताको प्राप्त होजाता है ॥ २८ ॥ जैसे दर्पणमें अपना ही रूप दीखता है, इसी प्रकार

देहः शीर्णः शिवे मिलेत् । प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः ॥ ३० ॥ शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं न हि । द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः ॥ ३१ ॥ आत्मयोगेन तत्त्वानामथवा च विवेकतः । यथा शरीरतो यास्याच्छरीरं मुक्तिमिच्छता ॥ ३२ ॥ सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च । ज्ञानमूलन्तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिश्शिवस्य च ॥ ३३ ॥ भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवणन्तथा । श्रवणाच्चापि सत्संगस्सत्संगाच्च गुरुर्बुधः ॥३४॥ संपन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् । इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शम्भुमेव सदा भजेत् ॥ ३५ ॥ अनन्यया च भक्त्या वै युक्तः शम्भुं भजेत्पुनः । अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ अतोऽधिको न देवोऽस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शंकरात् । शरणं प्राप्य यञ्चैव संसाराद्विनिवर्तते ॥ ३७ ॥ इति मे विविधं वाक्यमृषीणां च समागतैः । निश्चित्य कथितं विप्रा धिया धार्यं प्रयत्नतः ॥३८॥ प्रथमं विष्णवे दत्तं शम्भुना लिंगसम्मुखे । विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु ॥ ३९ ॥ नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः । व्यासाय नारदेनोक्तं

सर्वव्यापी शम्भुका ही प्राणी दर्शन करता है, यह निश्चित बात है ॥ २९ ॥ ज्ञानी जीवन्मुक्त है, देह गिर जाने पर वह शिवमें मिल जाता है, देह प्रारब्ध के वशमें चलता है, उसमें अहंकार न रखने वाला ज्ञानी माना जाता है ३० जो शुभ वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होता और अशुभको पाकर कुपित नहीं होता और सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंमें जिसका समान भाव रहता है वह ज्ञानवान् कहाता है ॥ ३१ ॥ मुक्ति चाहने वाला आत्मयोगसे, तत्त्वोंके विचारसे जिस प्रकार देहाध्यास दूर हो वैसा करे ॥३२॥ तब प्राणी सदा शिवस्वरूप हो मुक्त होजाता है- लीन होजाता है, शिवकी भक्ति और अध्यात्मज्ञान यह ज्ञानके मूल हैं ॥ ३३ ॥ भक्तिसे प्रेम होता है, प्रेमसे श्रवण होता है, श्रवणसे सत्संग होता है, सत्संगसे प्राणी बड़ा विद्वान होजाता है ॥३४॥ और ज्ञान होने पर प्राणी मुक्त होजाता है यह निश्चित बात है, अतः ज्ञानी बनने की इच्छा वाला शम्भुका सदा भजन करे ॥ ३५ ॥ प्राणी अनन्य भक्तिसे शंभुका भजन करता है तो अन्तमें मुक्ति पाता है, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ।३६। मुक्ति पानेके लिये शंकरसे अधिक और कोई देवता नहीं है, इनकी शरणमें जाकर प्राणी संसारसे छूट जाता है ॥३७॥ हे विप्रो ! इस प्रकार एकत्रित हुए ऋषियोंके अनेक वाक्योंका निश्चय करके मैंने यह बात कही है, इस बातको आप भी बुद्धिपूर्वक विचार कर पालन करें ॥ ३८ ॥ यह ज्ञान शम्भुने शिवलिंगके सामने पहिले विष्णुको दिया था, विष्णुने ब्रह्माजीको दिया था, और ब्रह्माने सनक आदिको दिया ॥ ३९ ॥

तेन मह्यं कृपालुना ॥ ४० ॥ मया चैव भवद्भ्यश्च भवद्भिर्लोकहेतवे । स्थापनीयं प्रयत्नेन शिवप्राप्तिकरं च तत् ॥ ४१ ॥ इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः । गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय आनन्दं परमं गताः । हर्षगद्गदया वाचा नत्वा ते तुष्टुवुर्मुहुः ॥ ऋषय ऊचुः । व्यासशिष्य नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः । श्रावितं नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव । सन्तुष्टाशिशिवसज्ज्ञानं प्राप्य त्वत्तो विमुक्तिदम् ॥ ४५ ॥ सूत उवाच । नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ॥ अभक्ताय महेशस्य न चाशुश्रूषवे द्विजाः ॥४६॥ इतिहासपुराणानि वेदाञ्छास्त्राणि चासकृत् । विचार्योद्धृत्य तत्सारं मह्यं व्यासेन भाषितम् ॥४७॥ एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात् । अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥ पुनश्श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुते पुनः । तस्मात्पुनः पुनश्श्राव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ४६ आवृत्तयः

फिर सनक आदिने यह ज्ञान नारद आदिसे कहा और नारदजीने व्यासजीसे कहा और उन्होंने कृपा करके मुझसे कहा था ॥४०॥ और मैंने इसका आपसे वर्णन किया है और आप भी संसारका हित करनेके इस शिवकी प्राप्ति कराने वाले ज्ञानका प्रयत्नपूर्वक प्रचार करें ॥४१॥ हे मुनीश्वरों ! जो आपने मुझसे बूझा था, वह मैंने आपसे कह दिया, इसकी आप प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥४२॥ व्यासजीने कहा, कि-इस बातको सुन कर ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और हर्षगद्गद वाणीसे सूतजीको प्रणाम कर उनकी वारम्वार प्रशंसा करने लगे ॥ ४३ ॥ ऋषियोंने कहा, कि-हे व्यासशिष्य ! आपको प्रणाम है, आप बड़े शिवभक्त हैं, अतः आप धन्य हैं, आपने श्रेष्ठ शिवज्ञानरूप अति उत्तम पदार्थ हमें सुनाया ॥ ४४ ॥ आपकी कृपासे हमारे चित्तकी भ्रान्ति दूर होगई आपसे मुक्ति देनेवाले श्रेष्ठ शिवज्ञानको पाकर हम सन्तुष्ट होगए ॥ ४५ ॥ सूतजीने कहा, कि-हे द्विजों ! यह ज्ञान आप नास्तिक, श्रद्धाहीन, शठ और महेशकी भक्ति न करने वालेको मत देना और जो आपकी शुश्रूषा न करे, उसको भी मत देना ॥ ४६ ॥ व्यासजीने इतिहास पुराण वेद और शास्त्रोंका अनेक वार विचार कर उनका सार निकाल यह कथाएँ मुझसे कहीं हैं ॥ ४७ ॥ इनको एक ही वार सुननेसे पाप भस्म होजाता है, भक्ति न करने वाला भक्ति करने लगता है और भक्तकी भक्तिमें वृद्धि होती है ॥४८॥ दूसरी वार सुनने पर श्रेष्ठ भक्ति होती है और तीसरी वार सुनने पर मुक्ति प्राप्त होती है, अतः भोग और मोक्षरूपी फल चाहने

पंच कार्याः समुद्दिश्य फलं परम् । तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यासस्य वचनं त्विदम् ॥५०॥ न दुर्लभं हि तस्यैव येनेदं श्रुतमुत्तमम् । पंचकृत्वस्तदावृत्त्या लभ्यते शिवदर्शनम् ॥५१॥ पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः । इदं श्रुत्वा पंचकृत्वो धिया सिद्धिं परां गताः ॥५२॥ श्रोष्यत्यद्यापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः । विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्तिं मुक्तिं लभेच्च सः ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच । इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दमागताः । समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात् ॥५४॥ नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः संतुष्टाश्छिन्नसंशयाः ॥ ५५ ॥ परस्परं च संतुष्टाः सूतस्ते च सुबुद्धयः । शम्भुं देवं परं मत्वा नमन्ति स्म भजन्ति च ॥ ५६ ॥ एतच्छिवसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥५७॥ इयं हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा । चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा ॥ ५८ ॥ एतां यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्ते परगतिं लभेत् ५९ इति श्रीशिवमहापुराणे कोटिरुद्रसंहितायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

वाला इन कथाओंको वारम्बार सुने ॥४९ । श्रेष्ठ फलकी इच्छा रख कर इस की पाँच आवृत्तियें करनी चाहियें, तो श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, यह व्यासजीका कथन है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥५०॥ इसकी पाँच आवृत्ति करनेसे शिव का दर्शन होता है, जिसने यह उत्तम पुराण सुना उसको शिवदर्शन दुर्लभ नहीं रहता ॥ ५१ ॥ प्राचीन राजे, ब्राह्मण और वैश्य इस पुराणको बुद्धिपूर्वक पाँच बार सुनकर परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ ५२ ॥ आज कल भी जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसको सुनेगा वह शिवज्ञानको पाकर भोग और मोक्षको पावेगा ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा, कि-सूतजीके इस वचनको सुन कर ऋषि परम आनन्दित हुए और वे सूतजीका अनेक वस्तु दे आदरपूर्वक पूजन करने लगे ॥५४॥ वे ऋषि संशय दूर होजानेसे सन्तुष्ट हो सूतजीको प्रणाम स्तुति स्वस्तिवाचन और आशीर्वाद देकर बढ़ावा देने लगे ॥ ५५ ॥ फिर सूतजी और वे ऋषि परस्पर सन्तुष्ट हो शम्भुको परम देवता समझ प्रणाम करने लगे और उनका भजन करने लगे ॥५६॥ यह शिवके स्वरूपका ज्ञान कराने वाली कथा शिवको परम प्रिय है भोग और मोक्ष देनेवाली है तथा यह दिव्य कथा शिवभक्तिकी वृद्धि करने वाली है ॥ ५७ ॥ यह मैंने आपसे शिवपुराण की आनन्द देने वाली कोटिरुद्र नाम वाली चौथी पुण्यभरी संहिता कह दी ५८ जो इसको भक्तिपूर्वक सुनता है वा सावधानतापूर्वक दूसरोंको सुनाता है वह इस लोकमें सब सुखोंको प्राप्त कर अन्तमें परम गति पाता है ॥ ५९ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ कोटिरुद्रसंहिता समाप्त